

नानक बागों

मित्र प्रकाशन गौरव ग्रंथ माला—२

नानक वाणी

डाक्टर जयराम मिश्र

एम ए, एम एड, साहित्य रत्न, पी-एच डी

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग—अप्रवाल डिग्री कालेज,

इलाहाबाद

संपादक

श्रीकृष्ण दाम



मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रकाशक :
मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद

मूल्य
तीस रुपये

मुद्रक
श्री वीरेन्द्रनाथ घोष
साया प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद,

समर्पण

अपने पिता एवं आध्यात्मिक गुरु

पण्डित रामचन्द्र मिश्र

को

श्रद्धापूर्वक

समर्पित

कृतज्ञताप्रकाश

हिन्दी भाषा के अनन्य सेवक एव पुजारी, राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने, 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के अध्ययन में मेरी अभिरुचि देख कर मुझे उस पवित्र ग्रंथ के अनुवाद करने की प्रेरणा सन् १९५० ई० में दी थी। उस समय मैं 'ग्रंथ साहिब' के दार्शनिक-सिद्धान्त के शोध कार्य में अत्यधिक व्यस्त था, अतएव उनके आदेश का पालन न कर सका। शोध-कार्य की समाप्ति के अनन्तर, सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ, पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने भी मुझे गुरु नानक देव की वाणी के अनुवाद करने की प्रेरणा इन शब्दों में दी. "हिन्दी-साहित्य में गुरु नानक की वाणी का ले आना नितान्त आवश्यक है। मेरा पूरा विश्वास है कि आप उसे क्षमतापूर्वक कर लेंगे।" दोनों ही पूज्य महानुभावों का मैं अत्यधिक आभारी हूँ, क्योंकि इन्हीं की प्रेरणा से मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका।

अनन्त श्री विभूषित, ज्योतिष्पीठाधीश्वर, जगद्गुरु शंकराचार्य, स्वामी शान्तानन्दजी सरस्वती अपने उपदेश द्वारा मुझे निष्काम कर्मयोग में निरन्तर प्रवृत्त करते रहे और कहते रहे, "प्राचीन ऋषिगण एकान्त स्थान में रहकर सदैव स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन और ग्रन्थ-रचना किया करते थे।" मैं श्री महाराज जी के इन उदात्त शब्दों से बहुत ही प्रेरित हुआ हूँ और बार बार उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

मैं अपने पूज्य पिता जी को प्रायः गुरु नानक के पद सुनाता और वे उन पदों को बड़े ध्यान से सुनते और मुझे बराबर प्रेरणा देते रहते कि उन्हें हिन्दी साहित्य में अवश्य लाया जाय। श्रद्धेय गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा० एव डॉ० हरदेव बाहरी मुझे इस कार्य में निरन्तर प्रेरित करते रहे। मैं उनके स्नेहपूर्ण आशीर्वाद का अत्यन्त आभारी हूँ।

भाई नर्मदेश्वर चतुर्वेदी के प्रोत्सहान एव मेरे स्वजन श्री रामनरेश त्रिपाठी तथा ब्रजमोहन अवस्थी के आग्रह के फलस्वरूप 'नानक-वाणी' शीघ्रता से समाप्त हो सकी। अतएव इन तीनों व्यक्तियों के प्रति मैं अपना प्रेम जताता हूँ।

श्री ब्रह्मनिवास,

७ अलोपीबाग, प्रयाग।

गुरु-पूर्णिमा,

संवत् २०१८ वि०

जयराम मिश्र

ग्रंथ के सम्बन्ध में

श्री गुरु नानक देव जी महाराज हमारे देश के महान् दार्शनिक और विचारक के रूप में पूजित हैं। संत परम्परा में नानक देव जी का स्थान अग्रणी है। वह मन्त्रद्रष्टा और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक हैं। श्री नानक देव जी की वाणियों एवं विचारधारा से अनुप्राणित होकर हमारे देश के एक विशिष्ट समुदाय ने सिक्ख धर्म ग्रहण किया और धीरे-धीरे सारे देश में इसका प्रसार और विस्तार हो गया।

मध्यकालीन धर्म-संस्थापकों में श्री गुरु नानक देव का महत्त्व इसलिये और भी बढ़ गया कि उन्होंने भक्ति, कर्म, ज्ञान के साथ ही तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का भी सम्यक् अनुशीलन एवं विश्लेषण किया। सजग, सचेष्ट देशभक्ति की खोज-खिन्नी भी उनकी वाणियों से फूट निकली।

श्री गुरु नानक देव की वाणी में जहाँ एक ओर गुरु गाम्भीर्य और ज्ञान-वैराग्य-भक्ति का अमृत-मथन है, वहीं उनकी भाषा में अद्भुत ओज और शक्ति है। उनकी रचनाशैली में काव्य का लालित्य, माधुर्य, विचार-सपन्नता-सब कुछ है। उनकी वाणी की सरलता-सुबांधता का क्या कहना ! उसमें साहित्य, संगीत एवं कला के विभिन्न गुणों का अद्भुत, सहज समन्वय है। फलतः उनकी वाणी हृदय और मस्तिष्क को म्मसों ही नहीं करती, प्रस्तुत-उन्हे अनुप्राणित भी करती है।

श्री गुरु नानक देव की संपूर्ण वाणी का यह सग्रह व्याख्या एवं अनुवाद के साथ प्रथम बार हिन्दी संसार के मामले में आ रहा है। हमारी राष्ट्रभाषा की शोभा और सपन्नता इस ग्रंथ के प्रकाशन के कारण बढ़ेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

डाक्टर जयराम मिश्र ने बड़े परिश्रम से इस ग्रंथ की वाणियों का सग्रह, अध्ययन, अनुशीलन एवं अनुवाद किया है। उन्होंने श्री गुरु नानक देव के दार्शनिक विचारों का गम्भीर अध्ययन किया और उन्हें आत्मसात् करने की चेष्टा की। श्री नानक देव की समस्त वाणी सिक्खों के पूज्य धर्म ग्रंथ 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित है। यह संकलन श्री गुरु अर्जुन देव ने सन् १६०४ ई० में किया था। सिक्खों का पूज्य धर्म ग्रंथ होने के कारण 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के पाठ की पवित्र-पवित्रता और शब्द-शब्द की बड़ी सावधानी से रक्षा की गयी है। फलतः सन् १६०४ ई० में आज तक श्री गुरु नानक देव की वाणी के पाठ में कोई भी परिवर्तन, परिवर्द्धन नहीं होने पाया है। अमृतसर की 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' ने देवनागरी लिपि में 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' की प्रति प्रकाशित की है। उसी प्रति से सग्रहीत श्री गुरु नानक देव की वाणी प्रस्तुत ग्रंथ में प्रकाशित की जा रही है। अतः प्रस्तुत का मूल पाठ शुद्ध है, प्रामाणिक है। विद्वान् लेखक ने इस ग्रंथ में वाणी का संकलन-क्रम भी वही रखा है जो 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में है। वाणी का वर्गीकरण रागों के आधार पर हुआ है।

डाक्टर जयराम मिश्र ने परिश्रम, सावधानी, सतर्कता और ईमानदारी के साथ 'नानक वाणी' का अनुवाद किया है। यदि श्री गुरु नानक देव ने किसी विशेष अवसर पर कोई वाणी उच्चरित की है तो उसकी चर्चा 'विशेष' शीर्षक के अन्तर्गत कर दी गयी है। परिशिष्ट में

श्री गुरु नानक देव की जीवनी, उनका व्यक्तित्व, उनकी शिक्षा, उनकी वाणी में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों के अर्थ, इतिहास और महत्व, गुरुमत सगीत के अनुसार श्री गुरु नानक वाणी में प्रयुक्त रागमाला आदि पर पूरा प्रकाश डाला गया है।

‘नानक वाणी’ की भूमिका में डाक्टर मिश्र ने ग्रंथ में सकलित वाणी का विशद अध्ययन, अनुशीलन एवं मूल्यांकन किया है। इसमें ग्रंथ की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गयी है।

हिन्दी संसार के समक्ष ऐसा अनुपम ग्रंथ प्रस्तुत करने में मित्र प्रकाशन को विशेष गौरव का अनुभव हो रहा है।

—संपादक

वाणी-सूची

नाम वाणी	पृष्ठ
जपु जी	७९

सिरी रागु

सबद

मोती त मदर ऊमरहि .	१००
कोटि कोटी मेरी आगजा	१०१
लेखे बोलणु बोलणा	१०२
लव कुता कुतु चूहडा	१०३
अमलु गलोला कूड का	१०४
जालि मोहु धमि मनु	१०५
सभि रस मिठे मनिऐ	१०६
कुगु बी काइआ रतना	१०७
गुणवती गुण बीधरै	१०८
आवहु भैणै गलि मिलह	१०९
भली मरी जि उबरी	११०
धानु मिले फानि धानु	१११
धगु जीवणु दोहागणी	११२
मुञ्जी देह डरावणी जा	११३
तनु जलि बलि माटी	११४
नानक बेडी मच बी	११५
मृणि मन मित्र	११६
मगुणै की चिन्ता नही	११७
एहु मनो मृग्य	११९
इकु निलु पिआग	१२०
हरि हरि जपहु	१२१
भरमै भाहि न विझबै	१२२
वणजु करहु वणजोगिहो	१२३
धनु जावनु अरु फूलडा	१२३
आपे रसीआ आपि	१२४
इहु तनु धरती बीजु	१२५
अमलु करि धरती	१२६
सोई मउला जिनि	१२६
एकु सुआनु दुइ सुआनी	१२७
एका सुरात जते है	१२८
तू दरोआउ दाना	१२९
कोना कहा करे	१२९
अछल छलाई नह छलै	१३०
असटपदीआं	
आखि आखि मनु	१३१

नाम वाणी	पृष्ठ
सभे कत सहेलीआ	१३३
आपे गुण आपे करै	१३४
मछली जालु न जाणिआ	१३६
मनि जूठै तनि जठि है	१३८
जपु तपु मजमु	१४०
गुर ते निरमलु	१४१
मुणि मन भूले बावरे	१४३
बिनु पिर धन गीगारीऐ	१४५
सनिगुरु पूरा जे मिलै	१४७
रे मन ऐसी हरि सिउ	१४८
मनमुखि भूलै भूलाईऐ	१५०
तूसना माइआ मोहणी	१५२
राम नामि गनु बेधिया	१५४
चिते दिमहि घउलहर	१५६
इ गुरु देखि डरावणो	१५८
मूकाम करि घरि	१५९
जागी अदरि जागीआ	१६१
पहरे	
पहिलै पहरे रंणि कं	१६४
पहिलै पहरे रंणि	१६६
वार	
दाती माहिब मदीआ	१६८

रागु भाभ

असटपदीआं	
मबदि रगाण हुकमि	१७२
वार	
गुरु दाता गुरु हिवै (आदि)	१७३

रागु गुडड़ी

सबद

भउ मनु भाग	२००
डरि धरु धरि डरु	२०१
माता मनि पिता मनोखु	२०२
पउणै पाणी अगनी	२०२
मुणि मुणि वृझै	२०३
जानो जाद कहा ते	२०४
काम कंधु माइआ	२०५
उलटिओ कमलु ब्रह्म	२०६

नाम-बाणी	पृष्ठ	नाम बाणी	पृष्ठ
सतिगुर मिलै सु मरणु	२०६	बाजा मति पखाउजु	२५०
किरतु पइआ नह	२०७	पउणु उपाइ धरी	२५१
जिनि अकथु कहाइआ	२०८	करम करतूति बेलि	२५२
जनमि मरै त्रै गुण	२०९	मै गुण गला के सिरि	२५२
अंमृतु काइआ रहै	२१०	करि किरपा अपनै धरि	२५३
अवरि पंच हम एक	२११	गुहू बनु समसरि	२५४
मुद्रा ते घट भीतरि मुद्रा	२१२	एको सरवर कमल	२५५
अउखध मंत्र मूल मन	२१३	गुरमति साची हुजति	२५६
कत की माई बापु	२१४	जो निनि कीआ सो	२५६
रैणि गवाई सोइ कै	२१५	इकि आवहि इकि	२५७
हरणी होना बनि बसा	२१६	निवि निवि पाद	२५८
जै धरि कीरति आखीए	२१६	किम कउ कहहि	२५९
असटपदीयां		कोई भीखकु भीखिआ	२६०
निधि सिधि निरमल	२१७	नुध बिनु धनु पख	२६१
मनु कुचरु काइआ	२१९	काइआ ब्रहमा मनु है	२६२
ना मनु मरै न कारजु	२२०	सेवकु दामु भगनु जनु	२६३
हउमै करतिआ नह	२२२	काचो गागरि देह	२६४
दूजी माइआ जगत	२२३	माहु कुटबु माहु	२६५
अधिआतम करम करे	२२४	आपि करे सचु अलख	२६६
खिमा गही बनु गील	२२५	विदिआ वीचारी ना	२६६
ऐसो दामु मिलै	२२७	एक न भगीआ	२६७
ब्रहमै गरबु कीआ	२२७	पंवकई धन खरी	२६८
कोआ चंदनु अकि	२२९	न किमका गुरु न	२६८
सेवा एक न जानसि	२३१	तिनु मरवडै भईल	२६९
हटु करि मरै न लेखै	२३२	छिअ घर छिअ गुर	२६९
हउमै करत भेखी नही	२३३	लख लमकर लख	२७०
प्रथमै ब्रहमा काल	२३४	दीवा मेरा एक नाम	२७१
बोलहि साचु मिथिआ	२३६	देवतिआ दरमन कै ताई	२७१
राम नामि चितु रावै	२३७	भीतरि पच गुपत	२७२
जिउ गार्ई कउ गोइली	२३८	मनु मोती जे गहणा	२७३
गुर परसादी ब्रुसि ले	२३९	कीता हावै करे कगडआ	२७४
छंते		गुर का सबदु मर्न गहि	२७५
मुघ रैणि दुहेलडीआ	२४१	गुड करि गिआनु	२७६
सुणि नाह प्रभु जीउ	२४३	खुगसान खममाना	२७६
रागु आसा		असटपदीयां	
सबद		उतरि अवघटि	२७७
सोदरु तेरा केहा	२४५	सभि जप सभि तप	२७९
सुणि वडा आखै सभ	२४६	लेख अमख लिखि लिखि	२८०
आखा जीवा विसरे	२४७	एकु मरै पचे मिलि रावै	२८२
जो दरि भागनु कूक	२४८	आपु वीचारी सु पखे	२८४
ताल मदीरे घटके	२४९	गुरमुखि गिआनु	२८५
जेता सबदु सुरति	२४९	गावहि गीते चीति	२८६
		मनु मैगलु साकनु	२८८

नाम बाणी	पृष्ठ
तनु बिनसै धनु काको	२८९
गुरु सेवे सो ठाकुर	२९१
जिन सिरि सोहनि	२९२
कहा सु खेल तवेला	२९३
जैसे गोइलि गोइली	२९५
चारे कुडा बुढीआ	२९७
मनसा मनहि समाइ	२९८
चले चलणहार वाट	२९९
किया जगलु बुढी	३०१
जिनी नामु विमारिआ	३०२
रुड़ो ठाकुर माहरो	३०३
केता आखणु आखीए	३०५
मनु रातउ हरि नाइ	३०६
आवण जाणा किउ रहै	३०७

पटी

ससै मोड सूरति	३०८
-------------------------	-----

छंद

मुध जोवनि बालडीए	३१५
अनहदो अनहदु बाजै	३१६
मेरा मनो मेरा मनु	३१८
तू सभनी थाई जियै	३२०
तू सुणि हरणा कानिआ	३२१

वार

बलिहारी गुर आपणे (आदि)	३२३
----------------------------------	-----

रागु गूजरी

सबद

तेरा नामु करी	३५६
नाभि कमल ते ब्रह्मा	३५७

असटपदीआं

एक नगरी पच चोर	३५८
कवन कवन जाचहि	३५९
ऐ जी जनमि मरै आवै	३६१
ऐ जी ना हम उतम	३६२
भगति प्रेम आगचित	३६४

रागु बिहागड़ा

वार

कली अंदरि नानका (आदि)	३६६
---------------------------------	-----

रागु वडहंसु

सबद

अमली अमलु न	३६७
-----------------------	-----

नाम बाणी	पृष्ठ
गुणवती सह राविआ	३६८
मोगी रुणझुण	३६८

छंद

काइआ कूड़ि विगाडि	३७०
कन्ह दइआ तेरा	३७१

अलाहखीआं

धनु मिरंदा मचा	३७५
आवहु मिलहु सहेलीहो	३७७
सचु सिरदा सचा	३७८
जिनि जगु सिरजि	३८१
बाबा आइआ है उठि	३८३

वार

जालउ ऐसी रोति (आदि)	३८४
-------------------------------	-----

रागु सोरठि

सबद

सभना मरणा आइआ	३८७
मनु हाली किरसाणी	३८८
माट बाप को बेटा	३८९
पुडु धरती पुडु पाणी	३९०
हउ पापी पतितु	३९१
अलख अपार अगम	३९२
जिउ मीना बिनु	३९३
तू प्रभ दाता दानि	३९४
जिसु जलनिधि कारणि	३९४
अपना घर मूसति	३९५
मग्ग जीआ मिगि	३९६
जा तिसु भावा	३९७

असटपदीआं

दुबिधा न पडउ	३९८
आमा मनसा बधनी	४०१
जिनी सतिगुरु सेविआ	४०३
तू गुणदातो निरमली	४०४

वार

मोरठि सदा मुहावणी (आदि)	४०६
-----------------------------------	-----

रागु धनासरी

सबद

जीउ डरतु है आपणा	४०८
हम आदमी हा इक	४०९
किउ सिमरी सिमरिआ	४१०
नदरि करे ता सिमरिआ	४११

नाम वाणी	पृष्ठ
जीउ तपतु है बारोबार	४१२
चोर मलाहे चीतु न भीजै	४१३
काइआ कागनु मनु	४१४
कालु नाही जोग नाही	४१५

आरती

गगनमै बालु रनि नन्द	४१६
---------------------	-----

असटपदीयां

गुरु सागर रतनी	४१७
सहजि मिलै मिलिआ	४१८

छंद

तीरथि नावणु जाउ	४२०
जोवा तेरे नाट मनि	४२०
पिर मणि मउडीए	४२४

राग तिलंग

सबद

यक अरज गकनम	४२७
भउ नेग भाग खलडी	४२८
उहु तनु माइआ	४२९
दआनडीए मानडा	४२९
जैसी मैं आवै	४३१
जिनि कीआ तिनि	४३२

राग मूही

सबद

भाडा धोउ वैमि	४३५
अतरि वमै न बाहरि	४३६
उजलु कैहा चिलकणा	४३६
जपु तपु का वधु बेडुला	४३८
जिन कउ भाड भाउ	४३९
भाडा हछा गोट जा	४३९
जोगी होवै जोगवै	४४०
जोग न मिथा जोग न	४४१
कउण तराजी	४४०

असटपदीयां

सभि अवगण मै गुण	४४३
कचा रगु कमु भ का	४४४
माणसु जनमु दुलभ	४४६
जिउ आरणि लोहा पाड	४४७
मनहु न नामु विम्वारि	४४८

कुचजी

मअ कुचजी अमावाणी	४५०
------------------	-----

नाम वाणी	पृष्ठ
----------	-------

सुचजी

जा तू ता मैं सभु को	४५१
---------------------	-----

छंद

भरि जेबनि मैं मत	४५२
हम घरि साजन आए	४५४
आवहो सजणा हउ देवा	४५६
जिनि कीआ तिनि	४५८
मेरा मनु राता गुण	४५९

वार

सूहा रगु मुपनं निम्नी (आदि)	४६३
-----------------------------	-----

राग विलावलु

सबद

तू मुलाना कहा हउ	४७३
मनु मदक तनु बेम	४७४
आपि सबदु आपे	४७५
गु वचनी मनु महज	४७६

असटपदीयां

निक्किटि वमै देखै मभु	४७७
मन का कहिआ मनमा	४७८

थिती

एकम एककार निराला	४८०
------------------	-----

छंद

मूध नखेलडीआ	४८६
मैं मनि चाउ घणा	४८८

वार

कोई वारे को लणै (आदि)	४९०
-----------------------	-----

राग रामकली

सबद

कोई पडता सहसाकिरता	४९१
मरव जोति तेरो	४९२
जिलु दरि बरमाहि	४९३
मुरति सबदु माखी	४९४
मुणि माछिद्रा नानक	४९५
हम डोलत बेडी पाप भरी	४९५
सुरती मुरति रलाईऐ	४९६
तुवनो निवणु मनणु	४९७
सागर महि बूद	४९८
जा हरि प्रभि किरपा	४९९
छादन भोजनु मागनु	४९९

नाम वाणी	पृष्ठ	नाम वाणी	पृष्ठ
असटपदीयां		सोलहे	
सोई चहु चडहि	५००	साचा मचु सोई	६०६
जगु परबोधहि मडी	५०२	आपे धरती धउलु	६०८
खनु मनु देही मनु	५०४	दूजी दुरमति अनी	६११
साहा गणहि न करहि	५०५	आदि जुगादी अपर	६१४
हटु निघहु करि काइआ	५०७	साचे मेल सबदि	६१७
अतरि उतभुज अवरु	५०९	आपे कर्ता पुरखु	६२०
जिउ आइआ तिउ	५१०	केते जुग वरते गुवार	६२२
जनु सनु सजमु	५१३	हगि भा मीनु नाही	६२५
अउहाठि हमत मडी	५१४	अमर सघारण रामु	६२८
ओअंकारु		घरि रहु रे मन सुगध	६३१
ओअकारि ब्रहमा उतपति	५१६	सरणि पर गुरदेव	६३४
सिध गोसति		माचे साहिब मिरजण	६३७
सिध मभा करि आगणि	५२८	काडआ नगर नगर	६४०
वार		दरमनु पावा जे तुधु	६४३
गनी पापु करि (आदि)	५६०	अरबद नरबद धु धूकारा	६४५
रागु मारु		आपे आयु उपाइ	६४८
सबद		सुन कला अपरपरि	६५१
माजन तेरे चरन	५७३	जह देखा तह दीन	६५३
मिलि मान पिता पिदु	५७८	हगि धनु सचहु रे	६५६
कर्णी कागदु मनु	५७५	मचु कहहु भवै	६५८
बिमल मझारि बभमि	५७६	कामु काधु परहरु	६६१
मखी महली गरबि	५७७	कुदगति कर्नैहाग	६६३
मुल खरीदी लाला	५७८	वार	
काई आवै भूतना	५७९	विणु गाहक गुण (आदि)	६६६
इहु धनु मरब	५७९	रागु तुखारी	
सूर मरु मोसि लै	५८०	छंत	
माइआ मुई न मनु मुआ	५८१	(वाग्दमाहा) तू मुणि किरत करमा	६७३
जागी जुगति नामु	५८३	पहिले पहर नैण	६८०
अहिनिमि जागै नोदु	५८४	ताग चडिआ लमा	६८२
असटपदीयां		भोलावडै भूली भुलि	६८४
वेद पुराण कथे मुणे	५८५	मरे लाल रगोले	६८६
बिषु बोहिथा लादिआ	५८७	ए मन मेगिआ	६८८
सर्बादि मरे ता मारि	५८९	रागु भैरउ	
साची कारि कमावणी	५९१	सबद	
लाले गारबु छोडिआ	५९०	तुज ते बाहरि कछु	६९१
हुकम भइआ रहणा	५९४	गुर कै सबदि	६९१
मनमुखु लहरि घरि	५९६	नैनी दूमटि नही	६९२
मात पिता सजोगि	५९९	भूडी चाल चरण कर	६९३
आवउ वजाउ डुमणी	६०१	सगली रंगि मोवत	६९४
ना भैणा भरजाईआ	६०३	गुर कै गांगि रहै	६९५
ना जाणा मूरखु है	६०४	हिरदै नामु सरब धनु	६९६

नाम वाणी पृष्ठ
जगन होम पुन तप ६९६

असटपदी

आतम महि राम राम ६९८

राग बसंत

सबद

माहा माह ममारखी ७००

हति आइले सरस ७०१

मुइने का चउका ७०२

सगल भवन तेरी ७०३

मेरी सखी सहेली ७०४

आपे कुदरति करे ७०४

सालग्राम बिप पूजि ७०५

साहुरडी बधु सभु किछु ७०६

राजा बालक नगरी काची ७०७

साचा साह गुरु मुखदाता ७०८

असटपदीआं

जगु कऊआ नाम ७०९

मनु भूलउ भग्मसि ७१०

दरसन की पिआम ७१२

चंचलु चीनु न पावै ७१३

मनु भमम अधूले ७१५

दुविधा दुरमति अधूली ७१६

आपे भवरा फूल ७१७

नउ सत चउदह ७१८

राग सारंग

सबद

अपने ठाकुर की हउ ७२०

हरि बिनु किउ रहोगे ७२१

दूरि नाही मेरा प्रभु ७२१

असटपदीआं

हरि बिनु किउ जीवा ७२२

हरि बिनु किउ धीरै ७२४

वार

न भीगै रागी (आदि) ७२५

राग मलार

सबद

खाणा पीणा हसणा ७४४

करउ बिनउ गुर अपने ७४५

साची सुरति नामि ७४६

जिन धन पिर का सादु ७४७

परदारा पर धनु ७४८

नाम वाणी पृष्ठ

पवर्ण पाणी जाणै ७४९

दुखु विछोइ इकु ७५०

दुखु महु रा मारण ७५०

बाग कापड बोले ७५१

असटपदीआं

चकवी नैन नीद ७५२

जागतु जागि रहै ७५४

चातुक मीन जल ही ७५६

अखली ऊडी जलु ७५७

मरण मुकति गति ७५९

वार

हेको पावरु हेकु (आदि) ७६०

राग परभाती बिभास

सबद

नाइ तेरै तरणा ७७६

तेरा नामु रतनु ७७७

जै कारणि बेद ७७८

जाकै रूपु नाही ७७९

ताका कहिआ दरि ७७९

अमृत नीरु गिआनि ७८०

गुर परमादी विदिआ ७८१

आवतु किनै न राविआ ७८१

दिमटि विकारी बधनि ७८२

मनु माइआ मनु ७८३

जागतु बिगसै मूडो ७८४

मसटि करउ मूरख ७८५

खाइआ मैलु वधाइआ ७८६

गीत नाद हरख ७८७

अतरि देखि सबदि ७८८

बागह महि रावल ७८९

मता की रेणु ७९०

असटपदीआं

दुविधा बउरी मनु ७९१

माइआ मोहि सगल ७९२

निवली करम भुअगम ७९३

गोतम तपा अहलिआ ७९५

आखणा सुनणा नामु ७९७

राम नामि जपि ७९९

इकि धुरि बखसि ८००

सलोक सहसकृती

पठि पुसतक सविआ (आदि) ८०२

सलोक वारां ते वधीक

उतगी पँओहरी (आदि) ८०४

भूमिका

श्री गुरु नानक देव का भारतीय धर्म-संस्थापको एवं समाज-सुधारको में गौरवपूर्ण स्थान है। मध्ययुग के संत कवियों में उनकी विशिष्ट और निराली धर्म-परम्परा है। वह उस धर्म के संस्थापक हैं जिसके आन्तरिक पक्ष में विवेक, वैराग्य, भक्ति, ज्ञान, योग, तितिक्षा और आत्म-समर्पण की भावना निहित है और बाह्य पक्ष में सदाचार, संयम, एकता, आतृभाव आदि विरोध हुए हैं। गुरु नानक मध्ययुग के मौलिक चिन्तक, क्रान्तिकारी सुधारक, अद्वितीय युग-निर्माता, महान् देशभक्त, दीन-दुखियों के परम हितैषी तथा दूरदर्शी राष्ट्र-निर्माता थे। हिन्दी में इनकी वाणी का अध्ययन न किया जाना खटकने की बात है। हिन्दी के कुछ उद्भट विद्वानों ने गुरु नानक के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया है कि "अन्त में कबीरदास की निर्गुण-उपासना का प्रचार उन्होंने पंजाब में आरम्भ किया।" मेरी समझ में उनकी यह धारणा समीचीन नहीं। वास्तव में गुरु नानक स्वतः कबीरदास की ही भाँति मौलिक चिन्तक थे। उन्होंने कबीरदास की निर्गुण उपासना का प्रचार नहीं किया, बल्कि अपने मौलिक विचारों का प्रचार और प्रसार किया। एकाध हिन्दी के विद्वानों ने गुरु तेगबहादुर जी के पदों को गुरु नानक का पद बतलाया है। उसका कारण यह है कि गुरु तेगबहादुर ही नहीं, बल्कि सिक्खों के सभी गुरुओं की वाणी के अन्त में 'नानक' शब्द आया है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के सिक्ख गुरुओं के सभी पदों के अन्त में 'नानक' शब्द के आ जाने में इस भ्रम का होना स्वाभाविक है। इस भ्रम के निवारणार्थ वाणी के प्रारम्भ में 'महला १', 'महला २', 'महला ३', 'महला ४', 'महला ५' तथा 'महला ६' दिया गया है। 'महला १' का अभिप्राय सिक्खों के आदि गुरु नानक से है। इसी प्रकार 'महला २' का तात्पर्य गुरु अंगद देव से, 'महला ३' का गुरु अमरदास से, 'महला ४' का गुरु रामदास से, 'महला ५' का गुरु अर्जुन देव से तथा 'महला ६' का अभिप्राय गुरु तेगबहादुर से है। वास्तव में वाणियों की रचना करते समय सभी गुरुओं ने अपने को 'नानक' गुरु में मिला दिया था। इसी से वे वाणी के अन्त में 'नानक' का ही नाम देते थे।

'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' १४३० पृष्ठों का बृहत्काय ग्रन्थ है। उसका संकलन सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने सन् १६०४ ई० में किया था। गुरु अर्जुन देव ने प्रथम पाँच सिक्ख-गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त बहुत से प्रभावशाली भक्तों की वाणियाँ भी संग्रहीत की। हाँ, उनके संग्रह में एक बात अवश्य है कि वे वाणियाँ सिक्ख-गुरुओं की विचारधारा के अनुरूप हैं। जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, परमानन्द, सदाना, बेनी, रामानन्द, धन्ना, पोपा, मेन, कबीर, रवदास अथवा रविदास अथवा रेदास, मीराबाई, फरीद, भीखन, सूरदास (मदनमोहन) की भी वाणियाँ हैं। भक्तों के अतिरिक्त कुछ भट्टों की भी रचनाएँ हैं। भट्टों के नामों की संख्या में विद्वानों में मतभेद है। ट्रम्प ने १५ भट्टों के नामों की सूची दी है^१। गोकुलचन्द नारङ्ग ने ट्रम्प के नामों की दो हुई तालिका की पुनरावृत्ति की है^२। मोलन सिंह ने बेल १२ नाम गिनाए

१. आदि ग्रंथ, ट्रम्प, भूमिका, पृष्ठ १२०

२. ट्रान्सफारमेशन आफ, सिक्खिज्म, गोकुलचन्द नारङ्ग, पृष्ठ २३०

हैं^१। साहब सिंह के मत से उनकी संख्या ११ है^२। शेरसिंह ने १७ नाम गिनाए हैं^३। इनके प्रतिरिक्त सुन्दर का 'रामकली सब', मरदाना की बाणी और सत्ता बलवंत की वार भी 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संग्रहीत है। गुरु तेगबहादुर, 'महला ६' (नवें गुरु) के पद बाद में, पाँचों गुरुओं के बाद रखे गए।

पिनकाट के अनुसार 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी' में ३३८४ शब्द और १५५७५ बन्द हैं। इनमें से ६२०४ बन्द पाँचवें गुरु (अर्जुन देव), 'महला ५' द्वारा, २६४६ बन्द आदि गुरु, नानक देव, 'महला १' द्वारा, २५२२ बन्द तीसरे गुरु, अमरदास, 'महला ३' द्वारा, १७३० बन्द चौथे गुरु, रामदास, 'महला ४' द्वारा, १६६ बन्द नवम गुरु, तेगबहादुर, 'महला ६' द्वारा और ५७ बन्द द्वितीय गुरु, अंगद देव, 'महला २' द्वारा रचे गए हैं। अवशिष्ट में कबीर के बन्द सबसे अधिक और मरदाना के सबसे कम हैं^४।

'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में निम्नलिखित ३१ रागों के प्रयोग हुए हैं—

- | | |
|---------------------|----------------------|
| १. सिरी रागु, | २. रागु माफ, |
| ३. रागु गउडो, | ४. रागु आसा, |
| ५. रागु गूजरी, | ६. रागु देवगंधारी, |
| ७. रागु बिहागड़ा, | ८. रागु बडहंसु, |
| ९. रागु सोरठि, | १०. रागु घनासरी, |
| ११. रागु जैतसिरी, | १२. रागु टोडो, |
| १३. रागु बैराडो, | १४. रागु तिलंग, |
| १५. रागु सूही, | १६. रागु बिलाव्लु, |
| १७. रागु गोड, | १८. रागु रामकली, |
| १९. रागु नट नाराइन, | २०. रागु माली गउड़ा, |
| २१. रागु मारु, | २२. रागु तुखारी |
| २३. रागु केदार, | २४. रागु भैरउ, |
| २५. रागु बसंतु, | २६. रागु सारंगु, |
| २७. रागु मलार, | २८. रागु कानडा, |
| २९. रागु कनिष्ठा, | ३०. रागु प्रभाती, |

३१. रागु जैजावंती,

उपर्युक्त ३१ रागों में से गुरु नानक देव की बाणी में निम्नलिखित १६ रागों के प्रयोग मिलते हैं—

- | | |
|----------------|-----------------|
| १. सिरी रागु, | २. रागु माफ, |
| ३. रागु गउडो, | ४. रागु आसा, |
| ५. रागु गूजरी, | ६. रागु बडहंसु, |
| ७. रागु सोरठि, | ८. रागु घनासरी, |

१. हिस्टरी आफ पंजाबी लिटरेचर, मोहन सिंह, पृष्ठ ५६

२. मठा दे सत्ये, साहब सिंह, पृष्ठ १०

३. फिलासफी आफ सिकिज़्म, शेर सिंह, पृष्ठ ४०

४. जे० आर० ए० एस०, भाग १८, (कच्छकता), मेडरिक पिनकाट का लेख।

- | | |
|--------------------|------------------|
| ६. रागु तिलंगु, | १०. रागु सूही, |
| ११. रागु बिलावलु, | १२. रागु रामकली, |
| १३. रागु मारु, | १४. रागु तुलारी, |
| १५. रागु भैरव, | १६. रागु बसंतु, |
| १७. रागु सारंगु, | १८. रागु मलार, |
| १९. रागु प्रभाती । | |

‘विहागड़े राग’ मे केवल वार मात्र है । अतः इसकी गणना रागों के साथ नहीं की गयी है ।

गुरु ग्रन्थ साहिब मे उपर्युक्त ३१ रागो के अतिरिक्त किसी-किसी स्थान पर किसी-किसी शब्द मे दो मिले रागों का प्रयोग हुआ है—

- | | |
|--|--------------------|
| १. गउड़ी-माऊ, | २. गउड़ी-दीपकी, |
| ३. आसा-काफी (काफी स्वतन्त्र राग नहीं है । यह लय का एक रूप है) । | |
| ४. तिलंग-काफी, | ५. सूही-काफी, |
| ६. सूही-ललित, | ७. बिलावलु-गोड, |
| ८. मारु-काफी, | ९. बसंतु-हिडोल, |
| १०. कलिआन-भोपाली, | ११. प्रभाती-विभास, |

१२. आसा-आसावरी ।

इस प्रकार उपर ३१ रागो के अतिरिक्त निम्नलिखित ६ रागों के और प्रयोग हुए हैं —

- | | |
|-----------|------------|
| १. ललित, | २. आसावरी, |
| ३. हिडोल, | ४. भोपाली, |
| ५. विभास, | ६. दीपकी । |

किन्तु ये ६ राग स्वतन्त्र नहीं हैं । प्रधानता तो उसी राग की है, जो पहले प्रयुक्त है । उदाहरणार्थ सूही-ललित मे सूही की ही प्रधानता है । गायन के लिए ललित का भी सहारा लिया गया है ।

‘श्री गुरु ग्रन्थ साहिब’ मे गुरु नानक देव जी की जो ‘वाणियाँ’ संग्रहीत हैं, उनमें १६०४ ई० के पश्चात् निश्चित रूप से कोई परिवर्तन नहीं हुआ । वे ज्यों की त्यों, उसी रूप मे हैं । यह निश्चित है कि गुरु नानक जी पढ़े-लिखे और मननशील थे । उनमे परमात्मा-प्रदत्त आसाधारण कवित्व-शक्ति विद्यमान थी । वे अपनी वाणियों के संग्रह के प्रति जागरूक थे । जब उन्होंने लोक-कल्याण के निमित्त सासारिक सुखो का परित्याग किया और लोगो का दुःख दूर करने के लिए दूर-दूर देशो की यात्राएं की, तो उनके मन मे अपनी वाणियों के संग्रह की भावना निश्चित रूप से जगी होगी । यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि अनजान प्रदेश वाले लोग उनकी वाणियाँ लिखते । गुरु नानक के सहवासी सिक्ख मरदाना आदि इतने पढ़े-लिखे नहीं थे कि उनकी वाणी लिख सकते । यह भी असंगत प्रतीत होता है कि गुरु नानक सदैव संगीतमय वाणी में ही उपदेश देते रहे । उनकी कुछ वाणी उदाहरणार्थ, ‘जपु जी’, ‘सिध गोसटि’ तथा ‘भोग्रंकार,’ आदि असमान रूप से लम्बी हैं । क्या वे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक गायी गयी थीं ? यदि गायी गयी थीं, तो कितना समय लगा होगा ? इन परिस्थितियों में यह बिलकुल स्पष्ट

है कि गुरु नानक देव ने अपनी वाणियाँ स्वयं लिखी थीं और वे उन्होंने इसलिए लिखी थीं कि भावी पीढ़ी उनसे लाभ उठाये ।^१

‘नानक-वाणी’ में वाणियों का क्रम

‘नानक-वाणी’ में गुरु नानक जी की वाणियाँ ठीक उसी क्रम से रखी गई हैं, जिस क्रम से ‘श्री गुरु ग्रन्थ साहिब’ में रखी गई हैं । प्रत्येक राग में वाणी का क्रम साधारणतः इस प्रकार है—

(क) सवद (शब्द), (ख) असटपदीयां (अष्टपदियाँ), (ग) छंत (छंद) और (घ) वारों (वारें) ^२। यदि किसी राग में ‘सवद’ नहीं है, तो असटपदियाँ पहले रखी गई हैं । यदि असटपदियाँ भी नहीं हैं, तो छंत रके गए हैं । तीनों नहीं हैं, तो वारें हैं ।

सवदों, असटपदियों, छंतों और वारों के अतिरिक्त कुछ रागों में कुछ वाणियाँ खास-खास नामों से सम्बोधित हैं । उनका क्रम इस प्रकार है :—

१. सिरो रागु में ‘पहरे’ नामक वाणी है । इसका क्रम अष्टपदियों के बाद तथा वार के पहले है । इस राग में गुरु नानक देव का कोई भी छंत नहीं है ।

२. रागु आसा में ‘सवदों’ के प्रारम्भ में एक वाणी का नाम ‘सोदरु’ है और इसी राग में गुरु नानक द्वारा एक ‘पट्टी’ भी लिखी गई है, इसमें ३५ पंक्तियाँ हैं । यह ‘पट्टी’ असटपदियों के बाद और छंतों के पहले रखी गई है ।

३. रागु बडहंसु में गुरु नानक द्वारा रचित एक वाणी “भलाहणीयां” है । यह छंतों के बाद तथा वारों के पहले रखी गई है । इसकी गणना छंतों में की गयी है ।

४. रागु ‘धनासरी’ में एक वाणी का नाम ‘भारती’ है, यह ‘सवदों’ में रखी गयी है । इसकी गणना ‘सवदों’ में ही की गई है ।

५. रागु ‘सूही’ में ‘कुचज्जी’ और ‘मुचज्जी’ दो वाणियाँ गुरु नानक द्वारा रची गई हैं । ये दोनों वाणियाँ ‘अष्टपदियों’ की समाप्ति के पश्चात् तथा छंतों के प्रारम्भ के पूर्व दर्ज हैं ।

६. रागु ‘विलावलु’ में नानक जी की एक वाणी ऐसी है, जो ‘थिती’ (तिथि) कहलाती है । यह वाणी असटपदियों के बाद और छंतों के पूर्व दर्ज की गई है ।

७. रागु ‘रामकली’ में गुरु नानक द्वारा रचित ‘भोभंकार’ और ‘सिध गोसटि’— ये दो वाणियाँ क्रमशः अष्टपदियों के बाद और छंदों के पूर्व रखी गई हैं । ‘भोभंकार’ में ५४ पंक्तियाँ हैं और ‘सिध गोसटि’ में ७३ । इन दोनों ही वाणियों में गुरु नानक के दार्शनिक सिद्धान्तों का बहुत सुन्दर निरूपण प्राप्त होता है ।

८. रागु ‘मारू’ में गुरु नानक की एक विशेष वाणी ‘सोलहे’ के नाम से विख्यात है । इसमें उनके २२ ‘सोलहे’ हैं । ये अष्टपदियों के पश्चात् और वारों के पहले रके गए हैं ।

१. कुछ और धार्मिक लेख—साहिबसिंह, पृष्ठ ९—२९

२. वार —उस कविता को कहते हैं, जिसमें किसी योद्धा को शौर्य का कोई प्रसिद्ध कहानी कही जाती है । पंजाब में वारों का उस अकार मचर था, जैसे उत्तर प्रदेश में ‘बालहंस’ का अचार है । ये रचनाएँ वीर रस में होती थीं । इनका अचार साधारण जनता में बहुत अधिक था । गुरु नानक देव ने जनता में भक्ति-भावना के अचार के लिए वारों का प्रयोग किया ।

६. 'तुखारी' रागु मे एक बाणी का नाम 'बारह माहा' है। इसकी गणना छंटों में है और इसमें १७ पउड़ियाँ हैं।

१०. 'सलोक सहस्रकृती' में गुरु नानक देव के ४ सलोक हैं, जो १६ रागों की समाप्ति के पश्चात् रखे गए हैं।

११. गुरु नानक जी के जो 'सलोक' बारो की पउड़ियों के साथ रखने से बच गए थे वे 'सलोक' वारां ते बधीक' शीर्षक के अंतर्गत रखे गए हैं। इनकी संख्या ३२ है। ये सबसे अन्त में रखे गए हैं।

'नानक-बाणी' में इसी प्रकार बाणियों का क्रम है।

राजनीतिक स्थिति

कदाचित् सत कवियों में गुरु नानक देव ही ऐसे कवि हैं, जिनकी देश की दुर्दशा के ऊपर पैनी दृष्टि थी। उन्होंने देश की राजनीतिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। उस समय देश में मुसलमानों का राज्य पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। उदार से उदार मुसलमान शासक में धर्मान्धता कूट-कूट कर भरी थी। 'तारीख-ए-दाऊदी' के लेखक ने सिकन्दर लोदी की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है, "मुल्तान सिकन्दर अत्यन्त यशस्वी शासक था। उसका स्वभाव अत्यन्त उदार था। वह अपनी उदारता, कीर्ति और नम्रता के लिए प्रसिद्ध था। उसे तड़क-भड़क, बनाव-शृंगार में कोई रुचि नहीं थी। धार्मिक और गुणी व्यक्तियों से वह सम्बन्ध रखता था।" किन्तु श्री बनर्जी के अनुसार सिकन्दर की यह न्यायप्रियता और उदारता संकीर्णता से युक्त थी। उसको यह न्यायप्रियता और उदारता अपने सहधर्मियों तक ही सीमित थी^१। भाई गुरुदास जी ने भी इस बात का संकेत किया है कि काजियों में रिश्तत का बोल-बाला था।^२

गुरु नानक के शब्दों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अनुमान कीजिए—

"कलियुग में लोग कुत्ते के मुँह वाले हो गए हैं और उनकी खाद्यवस्तु मुरदे का मांस हो गई है। अर्थात् इस युग में लोग कुत्तों के समान लालची हो गये हैं और रिश्तत तथा बेईमानी से पैसे खाने हैं। वे झूठ बोल-बोल कर भ्रूंकते हैं।"^३

गुरु नानक देव ने तत्कालीन राजाओं और उनके कर्मचारियों का चित्रण इस भाँति किया है—

राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइन बैठे सुते ॥

चाकर नहदा पाइन्हि घाउ। खु पितु कुतिहो चटि जाहु ॥

जियै जीआ होसी सार। नकीं बड़ी लाइतबार ॥^४

अर्थात्, "इस समय राजागण सिंह के समान (हिंसक) तथा चौधरी कुत्ते के समान (लालची हो गए हैं)। वे सोती हुई प्रजा को जगाकर (उसका मांस भक्षण कर रहे हैं)। (राजाओं के) नौकर अपने तीखे नाखूनों से घाव करते हैं और लोगों का खून कुत्तों (मुकद्दमों)

१. इबोल्युशन ब्राक-द सालसा, भाग १, इंदुप्रवण बनर्जी, पृष्ठ २९

२. भाई गुरुदास की बार, बार १, पउड़ी १०

३. "कलियुग की कुत्ते पुरी खाहु होआ मुरदा", 'नानक बाणी', सारंग की बार, सलोक २१.

४. 'नानक-बाणी', मखार की बार, सलोक १३.

के द्वारा चाट जते हैं। जिस स्थान पर प्राणियों के कर्मों की छानबीन होगी, वहाँ उन लाशतबारों की नाक काट ली जायगी।”

एक स्थल पर गुरु नानक देव ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का बड़ा हृदय-ग्राही वर्णन किया है—

कलि काती राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ।

कूट् अमावस सच्चु चंद्रमा दीसे नाही कह चड़िआ ॥

हउ भालि बिकुनो होई। आघेरै राहु न कोई ॥

विचि हउमै करि दुखु रोई। कहु नानक किनि बिधि गति होई ॥२५॥

(माझ की बार, महला १, सलोक ३५)

अर्थात्, “कलियुग (यह बुरा समय) घुरी है, राजे कसाई है; धर्म अपने पंखों पर (न मालूम कहाँ) उड़ गया है, झूठ रूपी अमावस्या (की रात्रि) है। (इस रात्रि में) सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ है? (वह) दिखाई नहीं पड़ता। मैं (उस चन्द्रमा को) ढूँढ़ ढूँढ़ कर व्याकुल हो गई हूँ; अन्धकार में (सृष्टि) अहंकार के कारण दुखी होकर रो रही है। हे नानक, (इस भयावह दुःखद स्थिति से) किस प्रकार छुटकारा हो?”

उपयुक्त पद में समय की भयावहता, तत्कालीन जागीरदारों की नृशंसा और क्रूरता, झूठ की प्रबलता, लोगों की कारुण्य-भावना का मार्मिक चित्रण मिलता है।

इतिहास में बाबर के आक्रमण प्रसिद्ध हैं। सन् १५२१ ई० में उसने ऐमनाबाद पर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। स्त्रियों की दुर्दशा की गई। गुरुनानक ने ऐमनाबाद के आक्रमण को स्वयं देखा था। उन्होंने उस रोमांचकारी दृश्य का हृदयद्रावी चित्रण किया है—

“जिन स्त्रियों के सिर की माँग में पट्टी थी और उस माँग में (शृंगार के लिए) सिन्दूर डाला गया था, (उनके) उन सिरों (की केशराशि) केँची से मूँड़ दी गई है और धूल उड़-उड़ कर उनके गले तक पहुँचती है। (जो स्त्रियाँ) महलों के अन्तर्गत निवात करती थी, उन्हें अब बाहर भी बैठने का स्थान नहीं मिलता है।.....वे स्त्रियाँ विवाहिता थी और अपने पतियों के पास सुशोभित थी। वे उन पालकियों पर बैठकर भाई थीं, जो हाथीदाँत के टुकड़ों से जड़ी थी। उन स्त्रियों के ऊपर पानी छिड़का जाता था और होरे-मोती से जड़े हुए पंखे उनके पास चमकते थे। एक लाख रुपये तो उनके खड़े होने पर और एक लाख रुपये उनके बैठने पर न्यौछावर किए जाते थे। जो स्त्रियाँ गरी-सुहारे खाती थी और सेजों पर रमण करती थी, उनके गले में रस्सी पड़ी हुई है और उनके मोती की लड़ियाँ टूट रही हैं।”

(देखिए, रागु आसा असटपदी ११)

आसा रागु की १२ वी अष्टपदी में गुरु नानक ने युद्ध के परिणामों को भी दिखलाया है—

“तुम्हारे वे खेल, अस्तबल और घोड़े आदि कहाँ हैं? तुम्हारे नगाड़े और शहनाइयाँ भी नहीं दिखाई पड़ रही हैं। वे सब कहाँ हैं? तलबारों की म्यानें तथा रथ कहाँ हैं? वे दर्पण और वे सुन्दर मुख कहाँ हैं? यहाँ तो वे सब नहीं दिखाई पड़ रहे हैं।.....तुम्हारे वे घर, दरवाजे, मंडप और महल कहाँ हैं? तुम्हारी सुखदायिनी सेज और उसे सुशोभित करने वाले

कामिनी कहाँ है ? वे पान देने वाली तंबोलिनें और परदों में रहने वाली स्त्रियाँ कहाँ हैं ? वे सब तो माया को छाया के समान बिलीन हो गई हैं ।”

इसी अष्टपदी में आगे यह भी बताया गया है कि बाबर के आक्रमण होने पर बहुत से पीरों ने उसे रोकने के लिए ठोने-टुटके के प्रयोग भी किए किन्तु कुछ भी परिणाम न निकला ।

मुगलों और पठानों की लड़ाई का भी चित्रण इसी अष्टपदी में मिलता है, “मुगलों और पठानों में घमासान कुछ हुआ । रण में तलवारें खूब चलाई गईं । मुगलों ने तान-तान कर तुपकें चलाईं और पठानों ने हाथी उत्तेजित करके आगे बढ़ाया ।” इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि मुगलों की जीत का प्रमुख कारण, तुपको का प्रयोग था ।

गुरु नानक देव ने इसी अष्टपदी में यह भी बताया है कि मुगलों ने हिन्दुओं अथवा मुसलमानों, किसी को भी नहीं छोड़ा —

“जिन स्त्रियों की दुर्दशा मुगलों ने की, उनमें से कुछ तो हिन्दुवानियाँ, कुछ तुरकानियाँ, कुछ भाटिनें और कुछ ठकुरानियाँ थी । इनमें कुछ स्त्रियों अर्थात् तुरकानियों के बुरके सिर से पैर तक काढ़ दिए गए और कुछ को अर्थात् हिन्दू स्त्रियों को श्मशान में निवास मिला अर्थात् मार डाली गईं । जिनके मुन्दर पति घर नहीं लौटे, उन बेचारियों ने अपनी रातें किस प्रकार काटी ?”

इस प्रकार गुरु नानक देव सच्चे अर्थ में देश भक्त थे । देश का निवासी चाहे हिन्दू रहा हो, चाहे मुसलमान सभी के लिए उनके हृदय में महान् प्रेम, सहानुभूति और अनुराग था । सभी की दुर्दशा पर उन्होंने आँसू बहाया ।

राष्ट्र आसा के ३६ वें ‘सबद’ में गुरु नानक देव का अपूर्व राष्ट्र-प्रेम मुखरित हो उठा है । उस पद को पढ़ने में यह प्रतीत होता है कि वे राजनीतिक परिस्थिति से कितने धुब्ध थे । वे प्रारब्ध की आड़ में सारी बुराईयों और अच्छाईयों को परमात्मा के सिर पर थोप कर अपने नैतिक कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व से मुक्ति नद्री पाना चाहते थे । उन्होंने साहस, दृढ़ता और धैर्य के साथ परमात्मा से उसी भाँति प्रश्न किया है, जिस भाँति कोई सरल बालक अपने पिता से किसी रहस्यमय बात का समाधान चाहता है —

“(हे परमात्मा), (बाबर ने) खुरासान पर शासन किया, किन्तु खुरासान को अपना समझ कर तूने बचा रक्खा और बेचारे हिन्दुस्तान को (बाबर के आक्रमण द्वारा) आतङ्कित किया । हे कर्ता पुरुष, (तू इन सब खेलों का जिम्मेदार है), पर अपने ऊपर दोष न लेने के लिए मुगलों को यम रूप में बनाकर (हिन्दुस्तान पर) आक्रमण कराया । इतनी मारकाट हुई कि लोग कष्टों से चीख उठे, किन्तु हे प्रभु, तुझे क्या (जरा भी) दर्द नहीं उत्पन्न हुआ ? (हे स्वामी), तू तो सभी का कर्ता है, (केवल मुगलों का नहीं, हिन्दुओं का भी है) । यदि कोई शक्तिशाली, किसी शक्तिशाली को मारता है, तो मन में क्रोध नहीं उत्पन्न होता ।”

उसी स्थल पर गुरु नानक देव ने तत्कालीन बादशाह को भी चुनौती दी है; उसे भी अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए सचेत किया है—“यदि शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के झुण्ड पर (आक्रमण कर) उन्हें मारता है, (तो उन पशुओं के) स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखलाना चाहिए । [यहाँ निरपराध पशुओं से तात्पर्य निरीह प्रजा से है और उनके

स्वामी का अभिप्राय लोदी-पठान शासकों से है]। इन कुत्तों ने हीरे (के समान हिन्दुस्तान) को बिगाड़ कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। [तात्पर्य यह कि पठान शासक मुगलों के सामने धड़े नहीं और हिन्दुस्तान ऐसा बहुमूल्य देश अपनी अकर्मण्यता से गँवा बैठे]।

इस प्रकार गुरु नानक देव ऐसे पहले धार्मिक सन्त हैं, जो राजनीतिक दुर्व्यवस्था को सहन न कर सके। उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठायी।

सामाजिक स्थिति

राजनीतिक घर्मान्विता का सामाजिक संघटन पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। मुसलमान शासकों ने धर्मपरिवर्तन के कई प्रत्न निकाले, जिनमें यात्रा कर, तीर्थयात्रा कर, धार्मिक मेलों, उत्सवों और जुलूसों पर कठोर प्रतिबन्ध, नये मन्दिरों के निर्माण तथा जीर्ण मन्दिरों के पुनरुद्धार पर रोक, हिन्दू-धर्म और समाज के नेताओं का दमन, मुसलमान होने पर बड़े-बड़े पुरस्कार देने आदि मुख्य थे। इन्हीं प्रत्नों के द्वारा वे लोग हिन्दू धर्म को सर्वथा मिटा देना चाहते थे।^१

इन अत्याचारों का परिणाम तत्कालीन जनता पर बहुत अधिक पड़ा। हिन्दुओं का अनुदार वर्ग और भी अधिक अनुदार हो गया। वे अपनी सामाजिक स्थिति के रक्षण के प्रति और भी अधिक सचेष्ट हो गए। इसका परिणाम हिन्दू मात्र के लिए अत्यन्त भयावह सिद्ध हुआ। हिन्दुओं का उच्च वर्ण असहिष्णु, अनुदार और संकीर्ण हो गया। अपने को विधर्मों प्रभावों से बचाना उसका उद्देश्य हो गया। युग धर्म, लोक धर्म से पराङ्मुख हो बाह्याचारों, रूढ़ियों के कवच से अपने को सुरक्षित रखना यही उनका सबसे बड़ा प्रयत्न था। उनकी यह पराङ्मुखता अन्य धर्मावलम्बियों तक सीमित नहीं रही, बल्कि अपने सहधर्मियों के साथ भी व्यापक रूप में परिलक्षित हुई। इसी कारण सामाजिक व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। हिन्दुओं का वर्णाश्रम धर्म कहने मात्र को रह गया। ब्राह्मण अपनी दैवी सम्पदा को त्याग कर धर्म के बाह्य रूप में अनुरक्त हो गए। इसी प्रकार क्षत्रियों ने भी अपने क्षात्र धर्म को त्याग दिया। वे अपनी भाषा और संस्कृति के अभिमान को त्याग कर उदरपापण के निमित्त श्रवण-कारसों के अध्ययन में रत हुए। गुरु नानक देव ने इस परिस्थिति का बड़ा सुन्दर आभास दिया है—

अखो त मोटोह नाक पकड़हि ठगण कउ संसार ॥१॥ रहाउ ॥

आठ सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोभ ।

मगर पाछे कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ ॥२॥

खत्रीआ त घरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही ।

सृसटि सब इक बरन होई धरम की गति रही ॥३॥

(राग धनासरी, सवद, ८)

अर्थात्, “(पाखण्डी ब्राह्मण) संसार के ठगने के निमित्त आँख बन्द करके नाक पकड़ते हैं, (जैसे कि समाधि द्वारा प्राणायाम में स्थित हो रहे हैं)। अग्रूठे और पास की दो अंगुलियों की सहायता से नाक पकड़ते हैं (और यह दम्भ करते हैं कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थित होकर मुझे) ‘तीनों लोकों का ज्ञान है’, किन्तु पीछे (की रखी हुई) वस्तु उन्हें सुझाई

१. इबोल्युशन आक द खालसा, भाग १, इन्दुश्रृण बनर्जी, पृष्ठ ५३

नहीं पड़ते। यह (कैसा अनोखा) पदमासन है ! क्षत्रियों ने (दासता में पड़कर अपना) धर्म त्याग कर दिया। सारी सृष्टि एकत्रण—वर्णसंकर हो गई है, (तात्पर्य यह कि लोग तमागुली हो गए हैं, उन्हें अपने कर्म-धर्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है)।”

सारंग की धार के २२ वे ‘सलोके’ में गुरु नानक देव ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति की वास्तविक भाँकी प्रस्तुत की है—

“स्त्रियाँ मूर्ख हो गई हैं और पुरुष शिकारी—जालिम हो गए हैं। गोल, संयम और पवित्रता तोड़कर लाच-अलाच खाने लगे हैं। शरम उठकर अपने घर चली गई है। उसके साथ प्रतिष्ठा भी उठ कर चली गई है। तात्पर्य यह कि लोगों में से लज्जा और प्रतिष्ठा की भावना लुप्त हो चुकी है।”

हिन्दू धर्म पर वेबल मुसलमानों का ही अत्याचार नहीं था, बल्कि सबर्ण हिन्दुओं का अत्याचार उनमें भी अधिक था। शूद्रों को नीच समझा गया। उच्च वर्ण वालों ने उन्हें सारे अधिकारों से वंचित कर दिया। वेदों और शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए त्याज्य बताया गया। अन्त्यजों की दशा तो और भी अधिक शोचनीय हो गई। वे मन्दिरों में देवताओं के दर्शन से भी वहिष्कृत किए गए। उनकी छाया के स्पर्श मात्र से उच्च वर्ण के हिन्दुओं का शरीर अपवित्र हो जाता था। गुरु नानक की वाणी से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि उस समय जातिगत अहंकार का प्राबल्य कितना अधिक था। उन्होंने इसका संकेत इस भाँति किया है—

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे ॥१॥ रहाउ ॥

(रागु आसा, महला १, सवद ३)

अर्थात्, “मनुष्य मात्र में स्थित परमात्मा की ज्योति ही को समझने की चेष्टा करो। जाति-पाति के टंटे-वखेड़े में रूज पड़ो। यह निश्चित समझ लो कि आगे (वर्णव्यवस्था के निर्माण के पूर्व) कोई भी जाति-पाति नहीं थी !”

“मुसलमानों के शासन काल में भारतीय नारियों के ऊपर अत्याचार तो अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। यह परम शोचनीय बात थी कि उनका सम्मान उनके परिवार में ही समाप्त हो गया। अमरत्व-प्राप्ति की साधना के सारे अधिकारों से वे वंचित कर दी गई थी। उनका कोई निजी कर्म ही न रह गया। वे आध्यात्मिक उत्तरदायित्व से हीन थी। उनका कोई अधिकार भी न रह गया। वेदों-शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए वर्जित था। गृह-परिचर्या हो उनकी साधना थी और उसी में उन्हें सन्तोष करना पड़ता था।”

इतना ही नहीं सन्त-महात्माओं की दृष्टि में भी वे हेय समझी जाने लगीं। ‘नारी नरक का मूल’ मानी जाने लगीं। सामाजिक दृष्टि से उनका तिरस्कार किया जाने लगा। लोग उनकी निन्दा करने में भी नहीं चूँते थे। सारङ्ग की धार के २२वें ‘सलोके’ में गुरु नानक ने इसका संकेत किया है कि ‘स्त्रियाँ मूर्ख और पुरुष शिकारी—जालिम हो गए हैं।’

गुरु नानक देव ने हिन्दू-जाति के उपेक्षित नारी-समाज को गौरव के आसन पर बिठाने की चेष्टा की। उन्होंने उनके गौरव वा तर्कपूर्ण शैली में समर्पण किया —

“स्त्री से ही मनुष्य जन्म लेता है। स्त्री के ही उदर में प्राणी का शरीर निर्मित होता है। स्त्री में ही सगाई और विवाह होता है। स्त्री के ही द्वारा अन्य लोगो से सम्बन्ध जुड़ता है और स्त्री से ही जगत् की उत्पत्ति का क्रम चलता है। एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी स्त्री की खोज की जाती है। स्त्री ही हमें सामाजिक बन्धन में रखती है। ऐसी परिस्थिति में उस स्त्री को बुरा क्यों कहा जाय, जिससे बड़े-बड़े राजागण जन्म लेते हैं ? स्त्री से ही स्त्री उत्पन्न होती है। इस संसार में कोई भी प्राणी स्त्री के बिना नहीं उत्पन्न हो सकता। हे नानक, केवल एक सच्चा प्रभु ही है, जो स्त्री से नहीं जन्मा है।”

इस प्रकार गुरु नानक जी क्रांतिकारी सुधारक थे। उन्होंने जाति-प्रथा को निरर्थक और निस्सार बताया तथा स्त्रियों को गौरव एवं सम्मान प्रदान किया। वे इस बात का अनुभव करते थे कि मनुष्य के आधे अंग की उषेक्षा करने से समाज एवं राष्ट्र का न तो उत्थान हो सकता है और न कल्याण ही।

धार्मिक स्थिति

भारतवर्ष में सदैव में ही धर्म ने राजनीति और समाज का संचालन किया। धर्म ही समाज और राजनानि का मेरुदण्ड रहा। गुरु नानक देव के समय में राजनीतिक एवं सामाजिक सकीर्णता एवं अत्याचारी और अनाचारी का मूल कारण धार्मिक सतीर्णता थी। उस काल के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने धर्म को उदार और सार्वभौमिक मान्यताओं को भूल कर साम्प्रदायिकता के गड्ढे में पड़े हुए थे। गुरु नानक देव ने उसका सर्जित चित्रण अपने शिष्य, भाई ‘लालो’ से इस भाँति किया है—

“शरम आर धर्म दोनों ही इस संसार से विदा हो चुके हैं आर झूठ प्रधान होकर फिर रहा है। काजियाँ और ब्राह्मणों को बाल समाप्त हो गई है और अब विशाद जेतान करवाता है।”^१

धर्म का वास्तविक स्वरूप लोग भूल गए थे। बाह्याङ्गियों का बोलचाल था। बहुत से लोग तो भय से और मुसलमानों का प्रसन्न करने के लिए कुरान इत्यादि पढ़ते थे। गुरु नानक के ही शब्दा में सुनि ए।

गऊ बिराहमण कउ कह, लावहु गावरि तरणु न जाई।

धोती टिका तै जपमाला धानु मनछा खाई॥

अंतरि पूजा पड़हि कतवा संजमु तुरका भाई।

छोड़ोले पाखंडा। नामि लइये जाहि तरंदा॥^२

अर्थात्, “ऐ सगुह्रिषाली हिन्दुओं, एक ओर तो तुम मुसलमानों का शासन सुट्टा बनाने के लिए गौशो और ब्राह्मणों पर कर लगाते हो और दूसरी ओर गौ के गोबर (अर्थात् गौ के गोबर आदि की गौरी, गरीश आदि की प्रतीक-पूति) के बल पर तरना चाहते हो। (भला यह कैसे सम्भव हो सकता है) ? धोती पहनते हो, टीका लगाने हो, गले में जप की माला धारण किए हो, किन्तु धान्य तो मनेच्छा का हो खाते हो। अपने संस्कारों

१. ‘मंठि जंमोये’...आदि—‘नानक वाणी’, भासा की बार, सलोक ४१

२. नानक-वाणी, रायु तिर्णग, सबद ५,

३. नानक-वाणी, भासा की बार, सलोक ३३

के बशीभूत भीतर-भीतर तो पूजा करते हो, विन्तु मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए बाहर कुरान आदि पढ़ते हो और सारे आचरण तुरकों के समान करते हो। इस पाखण्ड को छोड़ो इसमें कोई भी लाभ नहीं है। नाम का स्मरण करो, जिससे तर जाओ ।’

इसी प्रकार आसा की वार के २४ वे सलोक में भी हिन्दू-मुसलमानों, दोनों के पाखण्डों का गुरु नानक देव ने हृदयग्राही चित्रण किया है —

“मुसलमान काजी तथा अन्य हाकिम हैं तो मनुष्य-भक्षी—रिश्तखोर, पर पढ़ते हैं नमाज। उन काजियों और हाकिमों के मुंशी ऐसे खत्री हैं जो छुरी चलते हैं, तात्पर्य यह कि शरीरों के ऊपर अत्याचार करते हैं, पर उनके गले में जनेऊ है। ब्राह्मण उन अत्याचारियों के घर जाकर शंख बजाते हैं अतएव उन ब्राह्मणों को भी उन्हीं पदार्थों के स्वाद आते हैं, भाव यह कि वे ब्राह्मण भी उसी अत्याचार के कमाए हुए पदार्थ को खाते हैं। उन लोगों की झूठी पूजा है और झूठा हो व्यापार है। झूठ बोल कर ही वे लोग गुजारा करते हैं। शरम और धर्म का डेरा दूर हो गया है। हे नानक, सभी स्थानों में झूठ व्याप्त हो गया है।

“(वे खत्री) मत्थे में टीका लगाते हैं, कमर में धोती पहन कर कंधे बाँधते हैं, हाथ में (मानो वे) छुरी लिए हुए हैं और जगत् के लिए कसाई के समान हैं। वे नीले वस्त्र पहन कर तुर्क हाकिमों के पास जाते हैं, तभी वे प्रमाणिक समझे जाते हैं। तात्पर्य यह कि नीले वस्त्र पहन कर जाने से ही, उन्हें मुसलमान हाकिमों के पास जाने की इजाजत मिलती है। स्नेच्छो से धान्य लेते हैं (रोजी चलाते हैं) और फिर भी पुराणों को पूजते हैं ।”

“उनसे से ही बस नहीं, उनका भोजन वह बकरा है, जो मुसलमानों का कलमा पढ़कर हलाल किया गया है। किन्तु वे लोग कहते यही है कि हमारे चाँके में कोई न आए। चौका देकर लकीर खींच देते हैं। किन्तु इस चौके में वे झूठे आकर बैठते हैं। वे चौके में बैठकर कहते हैं —‘मत छुओ, मत छुओ’ नहीं तो ‘हमारा अन्न अपवित्र हो जायगा।’ वे अपवित्र शरीर में मलिन कर्म करते हैं और जूठे मन में कुल्ले करते हैं ।”

एक स्थान पर गुरु नानक देव ने यह कहा है कि अब परमात्मा का नाम ‘खुदा’ अथवा ‘अल्लाह’ हो गया है—

“कलियुग में अथर्ववेद प्रधान हो गया है। (जगत् के स्वामी का नाम ‘खुदा’ और ‘अल्लाह’ पड़ गया है, तुर्कों और पठानों का राज्य हो गया है, उन लोगों ने नीले वस्त्र पहने हैं ।”

(नानक-वाग्गी, आसा की वार, सलोक २६)

“जगत् के स्वामी का नाम ‘अल्लाह’ और ‘खुदा’ हो गया है” में कितना मासिक व्यंग्य है।

गुरु नानक की पैनी दृष्टि रासधारियों आदि पर भी थी। रास-नृत्य आदि को धर्म समझा जाने लगा गया था। किन्तु उन्होंने इसकी असार्थकता सिद्ध की है। उनका कथन है —

“रास इत्यादि लीलाओं में चले बाजे बजाते हैं और गुरु नाचते हैं। नाचते समय गुरु पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं। तात्पर्य यह है कि पैर हिलाकर तो ताल में ताल मिलाते हैं और सिर हिलाकर भाव प्रदर्शित करते हैं। पैरों को ताल के साथ पटकने से धूल उड़कर उनके सिर के बालों में पड़ती है। रास देखने वाले उन्हें नाचते हुए देखकर हँसते हैं। उनका

यह तमाशा देखकर वे अपने-अपने घर चले जाते हैं। रोटी के निमित्त वे रासधारी ताल पूरी करके नाचते हैं और अपने आप को पृथ्वी पर पछाड़ते हैं। इस प्रकार रासलीला में वे गोपी और कृष्ण बनकर गाते हैं। कभी-कभी सीता तथा राम का स्वाग बनाकर भी गाते हैं।”

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक १०)

इसी 'सलोक' के अंत में वे रासलीला और उसके नृत्य आदि का तर्कपूर्ण खण्डन करते हैं—“(नाचने और फेरा लगाने से जीवन का उद्धार नहीं हो सकता। बहुत-सी वस्तुएँ तथा जीव सदैव चक्कर लगाते रहते हैं, किन्तु इस चक्कर से क्या लाभ होता है? क्या उनकी मुक्ति हो जाती है)? कोल्हू, चरखा, चक्की, (कुम्हार की) चाक, रेतिले मैदानों के बहुत से बबण्डर लट्ट, मयानी, अन्न दाबने वाले फलहे सदैव घूमते रहते हैं। पक्षी और भँभोरियाँ एक साँस में उड़ती रहती हैं। बूत से जानवरों को घुल चुभो कर घुमाया जाता है। इस प्रकार, हे नानक चक्कर लगाने वाले जीवों और वस्तुओं का अन्त नहीं है। वह प्रभु जीवों को माया के बन्धनों में जकड़कर घुमाता रहता है। सभी जीव अपने किए हुए कर्मों के अनुसार नाचते रहते हैं। जो जीव नाच-नाच कर हँसते हैं, वे अन्त में रो-रो कर इस ससार से विदा होते हैं। नाचने कूदने से वे उड़ नहीं जाते, तात्पर्य यह कि नाचने-कूदने से उनकी गति-मुक्ति नहीं हो जाती और न वे सिद्ध हो जाते हैं। अतएव नाचना-कूदना तो मन की उमंग है। हे नानक, प्रेम केवल ऊँहीं के मन में है, जिनके मन में परमात्मा का भय है।”

(नानक-वाणी, आसा की वार सलोक, १०)

अपनी वाणी में गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर मूर्तिपूजा का निषेध किया है—

“हिन्दू बिलकुल भूले हुए कुमार्ग पर जा रहे हैं। जो नारद ने कहा है, वही पूजा करते हैं। उन अंधों और मूँगों के लिए घनघोर अंधकार है। वे मूर्त और गंवार पत्थर लेकर पूज रहे हैं। हे भाई, जिन पत्थरों की तुम पूजा करते हो, यदि वे स्वयं ही पानी में डूब जाते हैं, तो उन्हें पूज कर तुम संसार-सागर से किस प्रकार तर सकते हो?”

(नानक-वाणी, विहागडे की वार, सलोक २)

बहुत से लोग धर्म का प्रदर्शन मात्र करते थे। उस धर्म पर आचरण नहीं करते थे। गुरु नानक देव ने इस प्रकार के प्रदर्शनो का स्थान स्थान पर संबोधित किया है और उसकी निन्दा भी की है—

“पंडि पुसतक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं॥

मुखि झूठ विभूषण सारं।”

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक २८)

अर्थात्, “पुस्तकें पढ़ते हैं, संघ्या करते हैं। किन्तु उस संघ्या के वास्तविक रहस्य को नहीं समझते। पांडित्य-प्रदर्शन के निमित्त वाद-विवाद में रत रहते हैं। पाषाण की पूजा करते हैं और बगुले की भाँति झूठी समाधि लगाते हैं। सच्ची समाधि के आनन्द से बहुत दूर हैं। दिखावा-मात्र समाधि लगाने का दम्भ करते हैं। मुख से झूठ बोलकर लोह के गहने वी सोने का दिखाते हैं, अर्थात् झूठ के बल पर बुरी वस्तु को अच्छी बनाकर दिखाना चाहते हैं।”

तत्कालीन मुसलमान धर्म के आतंक का चित्रण भी नानक जी ने किया है—“कलियुग में, तात्पर्य यह कि इस युग में कुरान ही प्रामाणिक ग्रंथ है। पोथी, पंडित और पुराण दूर हो

गए हैं । हे नानक, इस युग में परमात्मा का नाम भी 'रहमान' पड़ गया है" ॥७॥१॥

(नानक-बाणी, राम रामकली, १ली अष्टपदी)

गुरु नानक जी ने धर्म को बाह्याडम्बरो और रुढ़ियों से मुक्त करना चाहा । यही कारण है कि जो व्यक्ति जिस स्थिति में था, उसे उसी स्थिति से ऊपर उठाना चाहा । उन्होंने धर्म के धान्तरिक भावों को ग्रहण करने के निमित्त बल दिया । उन्होंने उन गुणों को अपनाने के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया, जिनसे मानवता का कल्याण हो, भ्रातृभाव बढ़े, सहृदयता, सहिष्णुता की भावना का प्रसार हो, लोग सत्य, संयम, दया, लज्जा आदि गुणों की ओर आकृष्ट हों । उदाहरणार्थ उन्होंने माझ की बार, के १० वें, ११ वें, और १२ वें सलोकों में सच्चा मुसलमान बनने की विधि बताई है —

“प्राणियों के ऊपर दया-भावना को मस्जिद बनाओ और श्रद्धा को मुसल्ला । हक की कमाई की कुरान और बुरे कर्मों के प्रति लज्जा को सुन्नत मानो । शील-स्वभाव को रोजा बनाओ; हे भाई इस विधि से मुसलमान बनो । शुभ कर्मों को रोजा, सच्चाई को पीर, मुन्दर और दयापूर्ण कर्म को ही कलमा और नमाज बनाओ । जो बात खुदा को अच्छी लगे, उसी को मानना तुम्हारी तसबीह हो । हे नानक, खुदा ऐसे ही मुसलमान की लज्जा रखता है ।”

(नानक-बाणी, माझ की बार, सलोक १०)

इसी प्रकार आमा की बार में उन्होंने द्विजों के लिए आध्यात्मिक जनेऊ धारण करने की कहा है, “बह जनेऊ, जिसकी कपास दया हो, जिसका सूत संतोष हो, जिसकी गाँठ संयम हो, जिसकी पूरन सत्त्वगुण हो, हे पंडित यदि तुम्हारे पास इस प्रकार का जनेऊ हो, तो मेरे गले में पहना दो । ऐसा जनेऊ, न तो टूटता है, न गंदा होता है, न जलता है और न कभी नष्ट होता है । हे नानक, वे मनुष्य धन्य है, (जो) अपने गले में ऐसा जनेऊ पहनकर (परलोक) जाते हैं ।”

(नानक-बाणी, आमा की बार, सलोक २६)

गुरु नानक देव ने धर्म के बाह्याडम्बरो को त्याग कर उसका वास्तविक स्वरूप अपनाने के लिये बल दिया है । उन्होंने संयम के ऊपर बहुत जोर दिया है । उन्होंने सभी प्रकार के धर्म-साधकों को संयम-निर्वाह की अत्यधिक महत्ता बताई है । उदाहरणार्थ, उन्होंने योगियों को इस प्रकार उपदेश दिया है—

“हे योगी, तू जगत् को तो उपदेश देता है, किन्तु अपनी पेट-पूजा के निमित्त मठ बनाता है । स्वयं तो झडोलता के आसन को त्याग बैठा है, भला सत्य कैसे पा सकता है ? तू ममता, मोह और स्त्री का प्रेमी है । तू न तो त्यागी है और न संसारी ही है । हे योगी, अपने स्वरूप में स्थिर हो जाओ, जिससे तेरे द्वैतभाव और दुःख दूर हो जायँ । तुझे घर-घर मांगते हुए लज्जा नहीं लगती ? तू अलख निरंजन का गीत तो गाता है, किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता । तेरा लगा हुआ परिताप किस प्रकार दूर हो ? हे योगी, गुरु के शब्दों में अपने मन को प्रेम से अनुरक्त कर साथ ही सद्भावस्था की भिक्षा विचार पूर्वक खा । तू भस्म लगाकर पाखण्ड करता है; माया और मोह में पड़कर यमराज के डबे सहता है । तेरा हृदय रूपी खप्पर फूट गया है, जिससे भाव-रूपी भिक्षा उसमें नहीं आती । तू माया के बंधनों में बाँधा जाकर इस संसार-चक्र में घाता-जाता रहता है । तू बंधों की तो रक्षा नहीं करता, फिर

भी 'यती' कहलाता है। तीनों गुणों में लुब्ध होकर माया माँगता है। तू दयारहित है, भतएव परमात्मा को ज्योति का प्रकाश तेरे अन्तःकरण में नहीं होता। तू नाना प्रकार के सासारिक जजालों में डूबा हुआ है। तू नाना प्रकार के वेश बनाता है और बहुत प्रकार के कंधे साजता है। मदारी को भाति अनेक प्रकार के भूठे खेलो को खेलता है। तेरे हृदय में चिन्ता की अग्नि बड़े वेग से जल रही है। बिना शुभ कर्मों के तू संसार-सागर से कैसे पार हो सकता है?"

(नानक-वाणी, रामकली, अष्टपदी २)

मध्यकालीन धर्म-सुधारकों में गुरु नानक देव का स्थान

मध्यकालीन उत्तरा भारत का सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थिति बड़ी ही चिन्त्य थी। तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर धर्म-सुधारकों का एक ऐसा दल समाज के सामने आया, जो समाज और धर्म में सुधार करने के लिए प्रगतिशील हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हिन्दू धर्म में सुधार की भावना बड़े जोरो से अग्रसर हुई। प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम के अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सिक्खों के इतिहास' में लिखा है, "संसार प्रकार सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू-भक्तिष्ण प्रगतिहोन और स्थिर न रह सका। मुसलमानों के संघर्ष से वह उद्वेलित होकर परिवर्तित हो उठा और नवान् प्रगति के लिए उत्तेजित हो उठा। रामानन्द और गोरख ने धार्मिक एकता का उपदेश दिया। चैतन्य ने उस धर्म का प्रतिपादन किया, जिसमें जातियाँ सामान्य स्तर पर आईं। कबीर ने मूर्तिपूजा का निषेध किया और अपना संदेश लोकभाषा में सुनाया। बल्लभाचार्य ने अपने उपदेशों में भक्ति और कर्म का सामंजस्य स्थापित किया। पर वे महान् सुधारक जीवन की क्षणभंगुरता से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनकी दृष्टि में समाजोद्धार का उद्देश्य नगण्य-सा था। उनके प्रचार का लक्ष्य केवल ब्राह्मण-वर्ग के प्रभुत्व में छूटकारा दिलाना, मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की स्थूलता प्रदर्शित करना मात्र था। उन्होंने वैराग्यवान् और ज्ञान पुरुषों का पवित्र सघटन तो किया और आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया, पर वे अपने भाइयों को सामाजिक और धार्मिक बन्धनों को तोड़ने का उपदेश न दे सके। उन्होंने अपने मतों में तर्क-वितर्क, वाद-विवाद पर तो विशेष बल दिया, पर ऐसे उपदेश नहीं दिये, जो राष्ट्र-निर्माण में बीजारोपण का कार्य कर सकें। यही कारण है कि उनके सम्प्रदाय विकसित न हो सके और जहाँ के तहाँ ही रह गए।"^१

उपयुक्त सुधारकों की असफलता के दो प्रमुख कारण हैं।^२ इसका पहला कारण यह है कि गुरु नानक के पूर्व जितने भी धर्म-सुधार-संबंधी आन्दोलन हुए थे, वे प्रायः सभी साम्प्रदायिक और पास्परिक वादविवाद में रत थे। उदाहरणार्थ रामानन्द जो उत्तरी भारत के महान् सुधारक थे। उन्होंने ही भक्ति मार्ग सर्व-सुलभ बनाया और साधारण जनता में यह भावना भरी, 'जाति पाति पूछे नहि कोई। हरि-को भजे सो हरि का होई।' उन्होंने अवतारवाद को स्वीकार करके रामोपासना की प्रथा चलाई। इसका परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक अहंमन्यता बढ़ी। रामानन्द जी के अनुयायी रूढ़ियों और बाह्याचारों के बन्धन से मुक्त न हो

१. हिस्ट्री ऑफ़ द सिक्खस: जे० डी० कनिंघम, पृष्ठ २८

२. ट्रान्सफारमेशन ऑफ़ सिक्किज्म:— गोकुलचन्द नारङ्ग, पृष्ठ ३२, ३३, ३४.

सके। उनके पहुँचने के वरुण विशेष ढंग के थे, उनकी माला भी विशेष प्रकार की थी। वे रामानंद के अनुयायी किसी के स्पर्श मान से भय खाते थे और सबसे पृथक् रहते थे। इस प्रकार रामानंद जो का मत विकसित होने के बजाय संकीर्ण होता गया।

गोरखनाथ जी ने भी बाह्याचारों और प्रदर्शनों का उन्मूलन योगक्रिया के गुप्त साधनों द्वारा करना चाहा, परन्तु वे भी सम्प्रदाय के संकीर्ण प्रभावों से मुक्त न हो सके। आगे चलकर उनका धर्म भी बाह्यदम्बरो में परिणत हो गया। नाथ योगी सैकड़ों की संख्या में मेखला, शृंगी, मेला, गूदरी, खप्पर, कर्ण-मुद्रा, भोली आदि चिह्नों से युक्त सड़कों, तीर्थ स्थानों में घूमते हुए देखे जाने लगे।^१ गुरु नानक देव की "सिध गोसटि" में गोरखपथियों की वेशभूषा का सुन्दर चित्रण मिलता है। इसी प्रकार अन्य धार्मिक आन्दोलनों के प्रति भी थोड़ी या अधिक बातें कही जा सकती हैं। उन सभी आन्दोलनों के मूल में साम्प्रदायिकता निहित थी। सभी के अपने आध्यात्मिक और बाह्य नियम थे और वे सब उसमें बुरी तरह जकड़े थे।

"इन आन्दोलनों से राष्ट्रीय उत्थान क्यों न हुआ?"—इस प्रश्न का दूसरा उत्तर यह है कि प्रायः सभी सुधारक त्याग और वैराग्य को जीवन का परम लक्ष्य मानते थे। पञ्चाश इसके अग्रदाद अवश्य है, उदाहरणार्थ बल्लभाचार्य। रामानंद जी के अनुयायी तो वैराग्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा में भी त्याग आवश्यक अंग समझा जाता था, हालांकि उनके अनुयायी गृहस्थ भी थे। कबीर यद्यपि विवाहित थे और गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते थे, फिर भी वैराग्य पर बहुत जोर देते थे। सत्ता के त्याग के इस आदर्श ने लोगों में अकर्मण्यता की भावना भर दी। लोक-संग्रह के निमित्त कर्म करने का आदर्श लोग भूल गए। लोग हाथों पर हाथ रखकर भाग्यवादी बन गए और काल, कर्म तथा भाग्य पर मिथ्या दोष आरोपित करने लगे। इस प्रकार इस अकर्मण्यता से हमारे समाज का कर्म पशु हो गया, ज्ञान बँचु-ज्ञान मात्र रह गया और भक्ति आडम्बरयुक्त हो गई।

गुरु नानक देव अपूर्व धर्म-सुधारक, महान् देवभक्त, प्रबल रुढ़ि-विरोधी और अद्भुत युग-पुरुष थे। इसके साथ ही उनके हृदय में वैराग्य और भक्ति की मन्दाकिनी सदैव प्रवाहित होती रहती थी तथा मस्तिष्क में विवेक और ज्ञान का मार्सण्ड अविश प्रकाशित रहता था। वे अपूर्व दूरदर्शी थे। उन्होंने साष्टरूपा में यह समझ लिया था कि वर्तमान परिस्थितियों में कौन सा धर्म भारत के लिए और वह भी विशेषतः पंजाब के लिए श्रेयष्कर होगा। इसी विचार से उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा "सिक्ख धर्म" की संस्थापना की। यद्यपि मध्ययुग में भारतवर्ष में अनेक धर्म-सुधारक हुए, पर उन्हें वह सफलता नहीं प्राप्त हुई, जो गुरु नानक देव को प्राप्त हुई। कनिष्कम मोदय के इस कथन में हम अक्षरशः सहमत हैं, "यह सुधार के गुरु नानक के लिए अवशिष्ट था। उन्होंने सुधार के सच्चे सिद्धान्तों का सूक्ष्मता से साक्षात्कार किया और ऐसे व्यापक आधार पर अपने धर्म की नींव डाली, जिसके द्वारा गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने देववासियों का मस्तिष्क नवीन राष्ट्रीयता में उत्तेजित कर दिया और उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिया कि छोटी और बड़ी जानि तथा उनके धर्म समाज है। इसी भाँति राजनीतिक सुविधाओं की प्राप्ति में भी सभी की समानता है।"^२

१. नाथ-सम्प्रदाय—हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १५

२. हिस्टरी आफ् द सिक्खस, जे० डी० कनिष्कम, पृष्ठ २८—२९

इस प्रकार मध्ययुग के धर्म-सुधारकों में गुरुनानक देव का महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान है। उन्होंने देशवासियों के दुःखों, क्लेशों, अड़चनों का व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने युग को नाडो पहचान कर, तदनु रूप उसका निदान किया। सुभीते के लिए गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म की विशेषताओं को दो भागों में विभाजित कर और उनके अध्ययन करने के उपरान्त उनका महत्व आँका जा सकता है। वे विभाग निम्नलिखित हैं—

(१) व्यावहारिक पक्ष और (२) सैद्धान्तिक पक्ष।

व्यावहारिक पक्ष

राधाकृष्णन् का कथन है कि प्रत्येक मौलिक धर्म-संस्थापक अपनी व्यक्तित्व, समाज गत तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने धार्मिक संदेश देता है।^१ गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म में हम उपर्युक्त कथन की अक्षरशः पुष्टि पाते हैं। उत्तरी भारत में मध्ययुग में बहुत से धर्म-संस्थापक हुए किन्तु विषम राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण किसी ने भी नहीं किया। किसी में भी यह जिज्ञासा नहीं उत्पन्न हुई कि वह अपने आराध्य-देव से यह प्रश्न कर सकें—

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुसतानु डराश्चा।

.....

एतो मार पई करलाणै ते की दरदु न आइआ॥

(नानक-वाणी, भासा, सबद ३६)

अतएव गुरु नानक के धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रवृत्तिमूलक है और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति भी जागरूक है।

गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें पाखण्डों और बाह्याडम्बरो का जोरदार खण्डन प्राप्त होता है, चाहे वह पाखण्ड हिन्दू आह्वानों का हो, चाहे जैनों का हो, चाहे योगियों का हो और चाहे मुत्लाओं और काजियों का हो। बाह्याडम्बर ही लड़ाई-भगड़े और सकीर्णता का कारण होते हैं। धर्म के आन्तरिक स्वरूप में तो बहुत कम लड़ाई-भगड़े की गुंजाइश होती है।

गुरु नानक के धर्म की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें समाज के उत्थान के प्रति उदात्त विचार प्राप्त होते हैं। जातिगत प्रथा की आन्तरिक दुर्बलता को समझकर उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठाई —

जागहु जोति न पूछहु जाति आनै जाती न हे ॥१॥ रहाउ ॥२॥

(नानक-वाणी, रागु भासा, सबद ३)

उन्होंने हिन्दू-जाति के उपेक्षित नारी-समाज को फिर से प्रतिष्ठा एवं गौरव के आसन पर बिठाया। उन्होंने आसा की वार में स्त्रियों के अधिकारों का तत्पूर्ण समर्थन किया। आध्यात्मिक साधनों में स्त्रियों की महत्ता स्वीकार करके, राष्ट्र के कमजोर पक्ष को सबल बनाने की चेष्टा की।

गुरु नानक द्वारा संस्थापित धर्म की चौथी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने धर्म को किसी निश्चित परम्परा में नहीं बाँधा। इसकी विकासोन्मुखी प्रवृत्ति को रोका नहीं। यही कारण है कि कम से कम दसवे गुरु, गोविन्द सिंह जी तक इसकी विकासोन्मुखी प्रवृत्ति अक्षुण्ण बनी रही। यदि गुरु नानक जी अपने धर्म को निश्चित परम्पराओं में बाँध देते, तो वह भी कबीर-पंथ, दादू-पंथ अथवा रेदास-पंथ की भाँति एक सीमा में केन्द्रीभूति हो गया होता। किन्तु इसके विपरीत गुरु नानक के अनुयायों, अन्य सिक्ख गुरुओं ने धर्म के आन्तरिक सिद्धान्तों को कस कर पकड़े रखा, किन्तु वे बाह्याचारों अथवा धर्म के बाह्य रूपों में परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन करते गए।

गुरु नानक के धर्म की पाँचवी विशेषता यह है कि उन्होंने भक्तिमार्ग को उसके दोषों से बचा रखा। भक्ति मार्ग के तीन दोष मुख्य हैं—पहला तो यह कि इष्टदेव के नाम-भेद के कारण पारस्परिक भगड़े हो जाया करते हैं।^१ दूसरा दोष यह है कि अथ श्रद्धा के कारण लोग प्रायः इष्टदेवों की मूर्तों पर इतने अधिक निर्भर हो जाते हैं कि व्यवहार में भी स्वावलम्बी बनना छोड़कर एक-दम आलसी और निकम्मे से रहते हैं तथा अपनी कमजोरियों और आपत्तियों का दोष अपने अपने इष्टदेवों के मत्पे मढ़कर चुप हो जाया करते हैं।^२ तीसरा दोष यह है कि अन्धविश्वास का प्राबल्य कभी कभी इतना अधिक हो जाता है कि लोग दम्भियों के चक्कर में पड़कर दुःख भी खूब उठाते हैं।^३

गुरु नानक जी ने भक्ति के उपर्युक्त तीनों दोषों को अत्यंत सतर्कता से दूर किया। पहले दोष को मिटाने के लिए तो उन्होंने यह उपाय किया कि परमात्मा को रूप और आकार की सीमा में परे माना। उन्होंने ऐसे इष्टदेव की कल्पना की, जो 'अकाल मूरति', 'अज्ञानो' (अयोनि) तथा 'सैम' (स्वयंभू) है। दूसरे दोष को मिटाने के लिए गुरु नानक देव ने यह किया कि धर्म में प्रवृत्ति और लोक-संग्रह को महत्ता प्रदान की। तभी तो बाबर के आक्रमण करने पर परमात्मा से यह प्रश्न किया, "इतनी मारकाट हुई और इतनी कष्टों का व्याम हुआ, किन्तु हे प्रभु, तुझे कुछ भी दर्द नहीं हुआ?" इसी कारण उन्होंने अपने धर्म में सेवा-भाव पर बहुत अधिक बल दिया। तीसरे दोष के परिहार के निमित्त, उन्होंने बाह्याडम्बरो की महत्ता समाप्त की तथा आन्तरिक प्रेम और भक्ति की मर्यादा प्रतिष्ठापित की।

उनके सिक्ख-धर्म की छठी विशेषता यह है कि उन्होंने जनता की निराशावादिता को दूर कर उसमें आशा, विश्वास और पौरुष की भावना जागृत की। उन्होंने निराशों में यह भावना भरी कि उनका शरीर परमात्मा के रहने का पवित्र स्थान है। उन्होंने गीता के 'युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु' को व्यवहृत रूप दिया। गुरु नानक की इन्हीं शिक्षाओं का यह परिणाम था कि उनके अनुयायियों ने राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्र-सेवा में अनुपम योग दिया। उनके अनुयायी सिक्ख 'अहंभाव' को त्यागकर लोक-संग्रह और मानव-सेवा के माध्यम द्वारा परमात्म-चिन्तन में प्रवृत्त हुए।

गुरु नानक के धर्म की सातवी विशेषता यह है कि उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है। गुरु नानक देव यह भलीभाँति जानते थे कि हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक मनोमालिन्य को दूर करने के लिये सहज मार्ग यही है कि

उन दोनों की पारस्परिक अच्छादियों को ग्रहण करके, उनके बाह्याहम्बरों को दूर किया जाय । कदाचित् पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष सबसे अधिक था । इसीलिए उन्होंने जहाँ एक ओर सच्चे मुसलमान बनने की विधि बताई—

भिहर मसोति सिबकु मुसला हकु हलालु कुराणु ।

सरम सुनति सीलु रोजा होइ मुसलमाणु ॥

(नानक-वाणी, माफ़ की वार, सलोक १०)

वहाँ दूसरी ओर सच्चे ब्राह्मण बनने की भी विधि बताई—

“सो ब्राह्मणु जो ब्रह्मु बीचारै । आपि तरै सगले कुल तारै ॥३॥ ५ । ७॥

(नानक-वाणी, धनासरी, सबद ७)

इस धर्म की आठवीं विशेषता यह है कि यह निर्माणकारी प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है । जो यह समझते हैं कि इसमें विध्वंसक प्रवृत्तियाँ हैं वे गुरु नानक देव के व्यक्तित्व को समझने में भूल करते हैं । उन्होंने किसी भी धर्म को बुरा नहीं कहा, बल्कि उसमें फैली हुई बुराइयों को बुरा कहा । उनकी इतनी उदार दृष्टि थी कि जो व्यक्ति हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों में विभेद नहीं करता, वही धर्म-मर्मज्ञ एवं पारखी है —

राह दोबे हकु जाएँ सोई सिफ़सी ।

(नानक-वाणी, वार माफ़ की, ५वीं पउडी)

उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों की निन्दा इसलिए नहीं की कि उनके धर्म बुरे थे, बल्कि उनकी निन्दा इसलिए की कि वे वास्तविक मार्ग को भूलकर कुराह पर जा रहे थे । उन्होंने शुद्ध होकर दोनों की क्रूरताओं की तीव्र भर्त्सना की । उन्होंने कहा है, “मनुष्य-भक्षक (मुसलमान) नमाज पढ़ते हैं और जुलम की छुरी चलाने वाले (हिन्दू) जनेऊ धारण करते हैं ।” —

माणस खाणो करहि निवाज । छुरी बगाइन तिन गलि ताग ।”

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ३४)

गुरु नानक की उपर्युक्त भर्त्सना का यही आशय प्रतीत होता है कि हिन्दू-मुसलमान अपनी-अपनी कमजोरियों को समझें और उन्हें दूर करके अपने धर्मों का ठीक ठीक पालन करें ।

गुरु नानक के धर्म की अन्तिम और नवीं विशेषता यह है कि इसमें सभी धर्मों के प्रबल व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त उदारतापूर्वक संग्रहीत हैं । मुसलमानों के भाईचारे और एकता का सिद्धान्त जितना इस धर्म में दिखाई पड़ता है, उतना भारत के अन्य किसी भी धर्म में नहीं है । बौद्धों की संगठन-भावना भी इस धर्म में पूर्ण रूप से व्याप्त है । इसी भाँति वैष्णवों की सेवा भावना भी इस धर्म का प्रधान अंग है । गोरखनाथ और कबीर के जाति-विरोध संबंधी क्रांतिकारी विचारों से भी गुरु नानक का धर्म ओतप्रोत है ।

सैद्धान्तिक पक्ष

गुरु नानक देव ने परमात्मा का साक्षात्कार किया और प्रत्याक्षानुभूति प्राप्त की । उसी अनुभूति को उन्होंने लोक भाषा के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया । आंतरिक अनुभूतियों की एकता के संबंध में ‘मिस अंडरहिल’ का यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है, “कोई भी व्यक्ति सच्चाई से यह

बात नहीं कह सकता कि ब्राह्मण, सूफी और ईसाई रहस्यवादियों में कोई महान् अंतर है।^१ अतएव गुरु नानक के उपदेश में वही अनुभूति है, जो हिन्दुओं के प्रस्थानत्रयो—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता—, मुसलमानों के कुरान और ईसाईयों के धार्मिक ग्रंथ बाइबिल में मिलती है। संसार में जितने भी पैगम्बर हुए हैं, सभी अपने अपरोक्ष ज्ञान के बल पर मनुष्यों को उपदेश देते हैं। इसी से उनकी वाणी में चुम्बक-शक्ति होती है। गुरु नानक देव ने चरम सत्य परमात्मा को बतलाया और उसी को जनता के सम्मुख रक्खा। उस समय भारतवर्ष के पड़े-लिखे दार्शनिक तो परमात्मा का अव्यक्त स्वरूप मानते थे, किन्तु अनपढ़ों में अनेक देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित थी।^२ गुरु नानक देव ने परमात्मा को 'अव्यक्त' 'निर्गुण' स्वरूप में प्रतिष्ठित किया और लोकभाषा के माध्यम से उसे सर्वग्राह्य बनाया। उन्होंने अवतारवाद का खण्डन करके ऐकेश्वर-वाद का स्वरूप प्रतिष्ठित किया। परमात्मा के स्वरूप-निर्धारण के संबंध में गुरु नानक देव के विचार उपनिषदों की विचारधारा से साम्य रखते हैं। जीव, आत्मा, मनुष्य के सम्बन्ध में भी उनके निजी विचार हैं। परमात्मा ने अपने आप बिना किसी अन्त्य सहायता के सृष्टि रची। उनके अनुसार सृष्टि-रचना का समय अनिश्चित है। कहीं कहीं सृष्टि और परमात्मा के बीच अभिन्नता दिखलाई है और यह बतलाया है कि परमात्मा ही स्वयं सृष्टि के रूप में परिवर्तित हुआ है। इस दृष्टि से उनकी विचारधारा योगवासिष्ठ की विचारधारा के अनुकूल है। गुरु नानक देव ने सृष्टि को मिथ्या न मानकर सत्य माना है और माया को स्वतंत्र न मानकर परमात्मा के अधीन माना है। उनकी वाणी में स्थान स्थान पर माया के प्रबल स्वरूप का चित्रण मिलता है। आध्यात्मिक रूपकों द्वारा उन्होंने माया की मोहनी शक्ति का चित्रण किया है। अंत में माया के तरने के लिए विविध उपाय भी बताए हैं।

गुरु नानक देव ने अहंकार और द्वैतभाव का विनाश निरूपण किया है। अहंकार के विविध स्वरूपों तथा इसके होने वाले परिणामों को और उनकी व्यापक दृष्टि पड़ी है। उन्होंने अहंकार नाश के विविध उपायों को भी बताया है। अहंकार और मन के संबंध की भी चर्चा उन्होंने की है। मन के विविध स्वरूप, उसकी प्रबलता और चंचलता की भी विवेचना गुरु नानक को वाणी में प्राप्त होती है।

उन्होंने परमात्मा-प्राप्ति ही जीवन का परम पुरुषार्थ और फल माना है। उसकी प्राप्ति में कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति सबकी सार्थकता बताई है। गुरु नानक द्वारा निरूपित कर्ममार्ग योगमार्ग, तथा ज्ञानमार्ग भक्ति के अर्धान बताए गए हैं। उनके योग एवं हठयोग में विभिन्नता है। उन्होंने अपने योग को 'राजयोग' की संज्ञा दी है। उनके इस योग में कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का विचित्र सामंजस्य है। ज्ञानयोग के प्रति गुरु नानक देव की पूरी आस्था है। यत्र-तत्र इसकी व्याख्या भी मिलती है। अद्वैतवाद की अनुभूति ही 'ज्ञान' अथवा 'ब्रह्मज्ञान' है, चाहे उनकी प्राप्ति का जो भी माध्यम हो। अद्वैतवाद को सिद्ध करने के लिए गुरु नानक देव ने कहीं-कहीं जीव और ब्रह्म की एकता मानी है, हालांकि व्यावहारिक दृष्टि से वे जीव और परमात्मा को भिन्न मानते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों में भेद नहीं मानते। उन्होंने

१. द हिन्दू धर्म आक लाइवः राधाकृष्णन्, पृष्ठ १४

२. ट्रान्सकारमेशन आक सिक्किज्म, (फोरबर्ष, जीमेन्वर सिंह), पृष्ठ ९

भट्टतवाद की पुष्टि के लिए स्थान-स्थान पर ब्रह्म और सृष्टि को एकता भी प्रदर्शित की है। ज्ञान-प्राप्ति के साधनों का भी गुरु नानक की वाणी में उल्लेख प्राप्त होता है।

गुरु नानक देव ने भक्ति मार्ग पर सबसे अधिक बल दिया है। भक्ति को अर्थात् मन्दाकिनी उनके प्रायः सभी पदों में प्रवाहित हुई है। उनका सारा जीवन ही भक्तिमय था। उन्होंने वैधी और रागात्मिका भक्ति में से अन्तिम भक्ति को ही प्रधानता दी। गुरु नानक देव ने रागात्मिका भक्ति के स्वरूप और लक्षणों को भी बताया है। उन्होंने रागात्मिका भक्ति के विविध प्रकारों तथा उपकरणों की भी चर्चा की है।

इस प्रकार व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों ही दृष्टियों से गुरु नानक देव का मध्य कालीन धर्म सुधारको मे मौलिक एवं विशिष्ट स्थान है। उनके सुधार देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप थे। यही कारण है कि उनका धर्म शक्तिशाली धर्म में विकसित हुआ और इतने बड़े जन-समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर सका। गुरु नानक देव में यदि सकीर्णता होती, तो उनका भी धर्म 'कबीर पंथ', 'दाडू पंथ' अथवा 'रेदास पंथ' के समान एक निश्चित सीमा में आबद्ध हो गया होता।

नानक-वाणी का काव्य-पक्ष

काव्य को मोटे रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) धार्मिक काव्य, (२) लौकिक काव्य और (३) लौकिक-धार्मिक काव्य। मध्यकालीन काव्य को लौकिक काव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। मध्ययुग के समस्त काव्य को धार्मिक अथवा लौकिक-धार्मिक श्रेणी में रखा जा सकता है। उसमें गुरु नानक देव अथवा संत कबीर के काव्य पूर्ण रूप से धार्मिक काव्य है। हाँ, यह बात दूसरी है कि गुरु नानक के काव्य में यत्र-तत्र सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की ओर भी संकेत मिल जाता है। पर ऐसे स्थल कम हैं। गुरु नानक की वाणी में परमात्मा के स्वरूप, सृष्टिक्रम, परमात्मा के हुक्म, अहंकार के स्वरूप, उसके भेद, अहंकार के परिणाम, माया एवं उसके स्वरूप, उसकी प्रबलता एवं व्यापकता, जीव, मनुष्य, आत्मा, मनुष्य-योनि की श्रेष्ठता, मनुष्य-जीवन की विविध अवस्थाओं, मनुष्य का परमात्मा से वियोग और उसके कारण, मनुष्य में परमात्मा के मिलन के उपादान, आत्मोपलब्धि के साधन, मन के स्वरूप, उसके विभिन्न रूप, मनोमारण का महत्व, मनोमारण की विधि, हरि प्राप्ति के विभिन्न मार्ग—कर्ममार्ग, योगमार्ग, भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग—सद्गुरु और नाम आदि का विशद निरूपण प्राप्त होता है। अतएव यह विबुद्ध धार्मिक काव्य है।

गुरु नानक की वाणी प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती। काव्य के प्रकारों को ध्यान में रखते से उनकी वाणी 'मुक्तक' अथवा 'गीत' के अंतर्गत आ सकती है। "मुक्तक ऐसी रचनाओं को कहा गया है, जिनमें निहित काव्य रस का आस्वादन बिना उनके पढ़ने वा पीछे के पद्यों की अपेक्षा लिए भी, किया जा सके। इसी प्रकार 'गीत' वे कहलाती हैं, जिनकी रचना स्वर, लय एवं ताल को भी ध्यान में रखकर की गई रहती है और जो, इसी कारण, गेय भी हुमा करती हैं। ऐसी कविताएं अपना पूरा भाव प्रकट करने में स्वतः समर्थ रहा करती हैं और इन्हे किसी प्रकार के अनुबंध की आवश्यकता नहीं पड़ती, जहाँ प्रबन्ध-काव्य के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह सानुबन्ध हो।"

गुरु नानक की अधिकांश रचनाएँ काव्योचित गुणों से परिपूर्ण हैं। उन्होंने भावावेश में पदों का उच्चारण किया। या तो वे पद उनके आन्तरिक प्रेम की अभिव्यक्ति थे, अथवा किसी के निमित्त सदुपदेश के रूप में थे। गुरु नानक के अधिकांश पद भावयुक्त हैं। यही कारण है कि उनकी वाणी में अधिकांश रसों का समावेश स्वतः हो गया है। वे रस बड़े स्वामाविक रूप में पाठकों अथवा श्रोताओं का हृदय रस से आप्लावित कर देते हैं। गुरु नानक की वाणी में निम्नलिखित रस प्राप्त होते हैं —

शान्त रस:—गुरु नानक देव की वाणी में शान्त रस की प्रधानता है। उनकी वाणी ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और योग से परिपूर्ण है। शान्त रस में निर्वेद अथवा शम स्थायी भाव है। हर्ष, विषाद, धृति, स्मृति एवं निर्वेद आदि संचारी भावों की प्राप्ति मिल जाती है। संसार की अनित्यता का भान, प्रभुगुण कीर्तन और ईश्वर चिन्तन इसके आलम्बन विभाव हैं। वृद्धावस्था, व्याधि, मरण, सत्संग और हितोपदेश आदि इसके उद्बोधन विभाव हैं। रोमांच, योगसाधन, ईश्वर की भक्ति में रत होना तथा संसार से विरक्त होना आदि इसके अनुभाव हैं।

उदाहरणार्थ—

(१) अनहदो अनहदु बाजे रण भुण कारे राम ।

मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम ॥

अनदिनु राता मनु बैरागी सुन मंडलि घर पाइआ ।

आदि पुरखु आरंभक निआरा सतिगुरि अलखु लखाइआ ॥

आसणि बैसणि थिरु नाराइणु तितु मनु राता बीचारे ।

नानक नामि रते बैरागी अनहद रण भुण कारे ॥१॥२॥

(नानक-वाणी, आसा, महला १ छंद २)

(२) मेरा मनो मेरा मनु मानिआ नामु सखाई राम ।

हउमे ममता माइआ संगि न जाई राम ॥

माता पित भाई सुत चतुराई संगि न संपे नारे ।

साइर की पुत्री परहरि तिआगी चरन तलै बीचारे ॥

आदि पुरखि इकु चलतु दिखाइआ जह देखा तह सोई ।

नानक हरि की भगति न छोडत सहजे होइ मु होई ॥२॥३॥४॥३॥

(नानक-वाणी, आसा, महला १, छंद ३)

(३) जिन कउ सतिगुरि आपिआ तिन भेटि न सकै कोइ ।

ओना अदरि नामु निधानु है नामो परगटु होइ ॥

नाउ पूजीऐ नाउ मनीऐ अखंडु सदा सचु होइ ॥३॥५॥

(नानक-वाणी, सिरी राग, सबद ८)

(४) मन रे अहिनिंसि हरिगुण सारि ।

जिन लिनु पलु नामु नबीसरे ते जन बिरले संसारि ॥१॥रहाउ॥

जोती-जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु ।

हिंसा हउमे गनु गए नाही सहसा सोगु ॥
 गुरमुखि जिमु हरि मनि बसै तिसु मेले गुरु संजोषु ॥२॥२०॥
 (नानक-वाणी, सिरि रागु, सबद २०)

(५) सबदि रंगाए हुकमि सवाए । सची दरगह महलि बुलाए ।
 सचे दोन दइभाल मेरे साहिबा सचे मनु पतोआवणिआ ॥१॥
 हउ वारी जौउ वारी सबदि मुहावणिआ ।
 भंमृतु नामु सदा मुखदाता गुरमती मनि बसावणिआ ॥१॥रहाउ॥
 (नानक-वाणी, रागु माझ, असटपदी, १)

(६) ना मनु मरै न कारजु होइ । मनु बसि दूता दुरमति दोइ ।
 मनु माने गुर ते इकु होइ ॥१॥३॥
 (नानक-वाणी, रागु माझ, असटपदी, ३)

(७) साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआणा ।
 एयै धन्वा कूडा चारि दिहा आगे सरपर जाणा ॥
 आगे सरपर जाणा जितु मिहमाणा काहे गारवु कीजे ।
 जितु सेवीऐ दरगह मुखु पाईऐ नामु तिसै का लीजे ॥
 आगे हुकमु न चले मूले सिरि-सिरि किआ विहाणा ।
 साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआणा ॥२॥१॥
 (नानक-वाणी, रागु बडहंसु, अलाहणीआ, १)

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

शृङ्गार रस—श्री गुरु नानक देव ने अपनी रागात्मिका अथवा प्रेमा भक्ति में परमात्मा के साथ विविध सम्बन्ध स्थापित किए हैं, जिनमें से प्रधान निम्नलिखित है—

- (१) माता-पिता और पुत्र का सम्बन्ध,
- (२) स्वामि-सेवक भाव का सम्बन्ध,
- (३) सखा-भाव का सम्बन्ध,
- (४) दाता-भिक्षारी का सम्बन्ध, तथा
- (५) पति-पत्नी का सम्बन्ध

उपर्युक्त पाँच प्रकार के सम्बन्धों में पति-पत्नी के सम्बन्ध में जो एकरूपता, तदाकारिता और तन्मयता है, वह किसी अन्य सम्बन्ध में नहीं । कान्तासक्ति में द्वैतभाव के लिए कोई गुजाइश नहीं रह जाती ।

गुरु नानक का शृङ्गार रस लौकिक नहीं दिव्य है । पति-परमात्मा के साक्षात्कार करने पर जो जीवात्मा रूपी स्त्री को दिव्य आनन्द प्राप्त होता है, वही उसका स्थायी भाव 'रति' है । उनके शृङ्गार रस में निर्वेद, ग्लानि, शका, चिंता, मोह, विषाद, दैन्य, असूया, भय, उत्कण्ठा, स्वप्न, निद्रा, वितर्क और स्मृति संचारी भाव पाये जाते हैं । वर्षा ऋतु आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं ।

एक पद में गुरु नानक देव ने जीवात्मा रूपी स्त्री की चार अवस्थाएँ चित्रित की हैं, "पहली अवस्था तो वह है, जिसमें जीवात्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति से अनभिज्ञ रहती

है। उसे यह नहीं ज्ञात रहता कि परमात्मा रूपी पति का क्या पता-ठिकाना है ? दूसरी अवस्था में उसे यह बोध होता है कि मेरा प्रियतम है और वह एक है। वह (गुरु की अलौकिक कृपा से) मिल सकता है। तीसरी अवस्था यह है, जब समुद्राल में पहुँचकर उसे अपने प्रियतम का पूर्ण ज्ञान होता है कि यही मेरा प्रियतम है। गुरु की कृपा होती है, तब कामिनी (जीवात्मा) पति (परमात्मा) को अच्छी लगती है। चौथी और अन्तिम अवस्था यह है, जब भय और भाव का शृंगार करके, वह प्रियतम के पास जाती है। प्रियतम उसके शृङ्गार पर आकुल होकर, उसे सदैव के लिए अपना बना लेता है और सदैव उसके साथ रहण करता है।”

पेवकडे घन खरी इझाणी ।

.....

सद ही सेजै रबै भतारु ॥४॥२७॥

(नानक-बाणी, रागु आसा, सबद, २७)

गुरु नानक जी द्वारा निरूपित शृंगार रस में एकाध स्थान पर प्रियतम हरी के स्वरूप का सुहावना चित्रण मिलता है —

तेरे बंके लोइण, दंत रीसाता ।

सोहणे नक, जिन लंभडे बाला ॥

कंचन काइया, सुइने की ढाला ॥७॥

.....

तेरी चान मुहावी, मधुराडी बाणी ।

कुहकनि कोकिला, तरल जुआणी ॥८॥२८॥

(नानक-बाणी, रागु वडहंसु, छंद २)

गुरु नानक जी के काव्य में शृङ्गार रस के दोनों पक्ष मिलते हैं, (१) वियोग अथवा विप्रलंभ शृङ्गार (२) संयोग शृङ्गार ।

वियोग शृङ्गार के बड़े ही मार्मिक प्रसंग गुरु नानक द्वारा उपस्थित किए गए हैं —

(१) सार्वणि सरस मना घण बरसहि रति आए ।

मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिघाए ॥

पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए ।

मेज केली खरी दुहेली मरणु भइया दुख माए ॥

हरि बिनु नोद भूख कहु वैसी कापड़ि तनि न सुखावए ॥६॥

(नानक-बाणी, तुखारी, बारहमाहा)

(२) नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घडी छटु मासा ॥

(नानक बाणी, तुखारी, बारहमाहा)

गुरु नानक देव का ‘एक घडी छटु मासा’, मीराबाई के ‘भई छमासी रैन’ की स्मृति दिलाता है ।

(३) वेद बुलाइया वेदगी, पकड़ि ढंडोले बाह ।

भोला वेदु न जाएई, करक कलेजे माहि ॥

(नानक-बाणी, मलार की बार, सलोक ४)

(४) एक न भरोआ गुण करि घोवा ।
 मेरा सह जागै, हउ निसि भरि सोवा ॥१॥
 इउ किउ कंत पिआरी होवा ?
 सह जागै, हउ निसि भरि सोवा ॥१॥रहाउ॥
 आस पिआसी सेजै आवा ।
 आमे सह भावा कि न भावा ॥२॥
 किआ जाना किआ होइगा री माई ?
 हरि दरसनु बिनु रहन न जाई ॥१॥रहाउ॥
 प्रेमु न चाखिआ, मेरी तिस न बुझानी ।
 गइआ सु जोबनु, धन पछुतानी ॥३॥

(नानक-बाणी, आसा, सबद २६)

प्रियतम हरी से मिलने के लिए, जीवात्मा रूपी स्त्री के लिए वे शृंगार भी आवश्यक है, जिनसे वह संतुष्ट होकर उससे मिले । इसके लिए गुरु नानक देव ने उन शृङ्गारों की चर्चा की है—

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी ।

गिआन राउ जब सेजै आनै त नानक भोगु करेई ॥४॥१॥३५॥

(नानक-बाणी, आसा, सबद, ३५)

तथा —

फूल माला गलि पहिरउगी हारो ।

मिलेगा प्रीतमु तब करउगी सीमारो ॥२॥१॥३४॥

(नानक-बाणी, आसा, सबद, ३५)

प्रियतम हरी के मिलन का मुख 'संयोग' शृंगार के माध्यम द्वारा अनेक स्थानों पर चित्रित किया गया है —

(१) बाबीहा प्रिउ वोले कोकिल बाणीआ ।

साधन सभि रस बोले अंकि समाणीआ ॥

हरि अंकि समाणी जा प्रभ भाणी सा मोहागणि नारे ।

नव घर थापि महल घर ऊचउ निजघरि वामु मुरारे ॥२॥

(नानक-बाणी, तुलारी, छंत, बारह माहा)

(२) माधि पुनीत भई तीरथु अंतरि जानिआ ।

साजन सहजि मिले गुण गहि अंकि समानिआ ॥

प्रीतम गुण अंके सुणि प्रभ बके तुधु भावा सरि नावा ।

गंग जमुन तर बेसी संगम सात समुंद समावा ॥१५॥

(नानक-बाणी, तुलारी, छंत, बारहमाहा)

(३) जिन सोगारी तिसहि पिमारी मेलु भइषा रंगु माणै ।

घरि सेज मुहावो जा पिरि रावो गुरमुखि मसतकि भागो ।

नानक अहिनिंसि रावै प्रोतम हरि वरु धिरु सोहागो ॥१७॥

(नानक-बाणी, तुखारो, छंद, बारहमाहा)

(४) सतिगुर सबदो मिलै बिछुनी, तनु मनु भागै राखै ।

नानक भ्रंमृत विरखु महा रस कलिघ्रा मिलि प्रीतम रसु चाखै ॥ ॥४॥

(नानक-बाणी, तुखारी, छंद, ४)

करुण रस :—जिस रस के आस्वादन से हृदय में शोक का आधिर्भाव हो, उसे करुण रस कहते हैं। गुरु नानक को बाणी में संसार के विभवो, सुखो, भोगो की नश्वरता स्थान-स्थान पर दिखाई गई है। जो लोग सत्य, शाश्वत, भ्रमृत, षट्घटव्यापी, परमात्मा को त्याग कर क्षणभंगुर और अस्थायी विषयो में अनुरक्त हैं, वे सचमुच करुणा के पात्र हैं। गुरु नानक द्वारा निरूपित करुण रस में विषाद और निर्वेद संचारी भावो का आधिक्य है। इसका स्थायी भाव वैराग्यमूलक शोक है। इसके आलम्बन विभाव विषयासक्त, मायाप्रस्त, परमात्मा-विमुख मनुष्य हैं। वैराग्यपूर्ण वचन, संसार की असारता एवं क्षणभंगुरता ही इसके उद्दीपन विभाव हैं। सासारिक विषय-रत प्राणी के प्रति दुःख प्रकट करना ही इसका अनुभाव है।

गुरु नानक देव ने विविध अन्योक्तियों के माध्यम द्वारा विषयासक्त प्राणी की दशा का कारुणिक दृश्य उपस्थित किया है। निम्नलिखित पद में हरिण, भ्रमर, मछली और नहर की अन्योक्तियों द्वारा यज्ञ बताया गया है कि परमात्मा से बिछुड़े हुए प्राणियों की बड़ी करुणापूर्ण अवस्था होती है। जिस प्रकार हरिण मोठे फल के लोभ में फँसकर मारा जाता है, उसी प्रकार मनुष्य विषयो के चक्कर में फँसकर लोक-परलोक में नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार भँवरा पृष्णो को आसक्ति में पड़कर, अत्यधिक दुःख पाता है, उसी प्रकार सासारिक प्राणी मायिक पदार्थों के रस में पड़कर महान् कष्ट उठाते हैं। यमराज के दूता द्वारा बांधे जाकर, उनकी चोटे खाकर भ्रातृनाद करते हैं। जिस प्रकार मछली अपने प्रियतम जल से बिछुड़ कर, जाल में पड़कर आँखें भर-भर कर रोता है, उसी प्रकार जीवात्मा आनन्द स्वर्का परमात्मा से बिछुड़ कर, माया के जाल में पड़कर रोता है। जिस प्रकार, नहर नदी में बिछुड़कर प्रलाप करती है, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा से पृथक् होकर असह्य यंत्रणा सहनकर कारुण्य-प्रलाप करती है —

तू सुगि हरणा कलिघ्रा, की बाड़ीऐ राता राम ।

बिखु फलु मोठा चारि दिन, फिरि होवै ताता राम ॥

फिरि होइ ताता खरा माता नाम बिनु परताप ॥

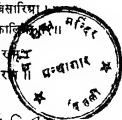
ओह जेव साइर देइ लहरी, बिजुल जिवैं चमकए ॥

हरि बाभू राखा कोइ नाही, सोइ तुझि विसारिआ ॥

सबु कहै नानक चेति रे मन मरहि हरणा कलिघ्रा ॥

भवरा, फूलि भवंनिघ्रा दुखु अति भारी ॥

मैं गुरु पूछिआ आपणा साचा बीचारी ॥



बीचारि सतिगुरि मुकै पूछिआ, भवरु बेली रातमो ।
 सूरजु चडिआ, पिडु पडिआ, तेलु तावणि तातमो ॥
 जम मगि बाधा खाहि चोटा सबद बिनु बेतालिआ ।
 सजु कहै नानक, चेति रे मन, मरहि भवरा कालिआ ॥२॥

मेरे जोषडिआ परदेसीआ, कितु पवहि जंजाले राम ।
 साचा साहिबु मनि वसै की फासहि जम जाले राम ॥
 मछुली विछुनी, नैण रुनी, जालु बधिकि पाइआ ।
 संसार माइआ मोहू मोठा अंति भरमु चुकाइआ ॥
 भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोडि मनहु अंदेसिआ ।
 सजु कहै नानक, चेति रे मन जोषडिआ परदेसीआ ॥३॥

नदीआ बाहू विछुनिआ मेला संजोगी राम ।
 जुगु जुगु मोठा बिमु भरे को जाएँ जोगी राम ॥
 कोई सहजि जाणै हरि पछाणै सतिगुरु जनि चेतिआ ।
 बिनु नामु हरि के भरम भूले पवहि मुगध अचेतिआ ॥
 हरि नामु भगति, न रिदे साचा से अंति धाही रुनिआ ।
 सजु कहै नानक, सबदि साचै मेलि चिरो विछुनिआ ॥४॥१॥५॥

(नानक-वाणी, रागु आसा, छत ५)

इसी प्रकार 'तुखारी' राग के दूसरे छत में गुरु नानक देव ने मनुष्य को आधु चार प्रहरो में विभाजित करके संसार की असारता प्रदर्शित कर उसके कल्याणक परिणामों पर दृष्टि डाल कर मनुष्य को मजग रह कर हरि भक्ति-प्राप्ति के लिये चेतावनी दी है—

पहिलै पहरै नैण मलोनडोए रणि अघिआरी राम ।

.....

नानक दुखीआ जग चारे बिनु नाम हरि के मन बमे ॥४॥

(नानक-वाणी, तुखारी, छत २)

गुरु नानक देव ने अनेक स्थलों पर इस बात का संकेत किया है कि मनुष्य के सौन्दर्य, वस्त्रादिक भोग्य वस्तुएं यही रह जानी हैं। अवगुणों के कारण नंगे होकर 'दोजब' (नरक) जाना पड़ता है ।

पउड़ी . कपड़ु रूपु मुहावणा छडि दुनीआ अदरि जावणा ।

मदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ॥

हुकम कीए मनि भावदे राहि भीडै अगे जावणा ।

नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥

करि अउगण पछोतावणा ।

(नानक-वाणी, रागु आसा की वार, पउड़ी १२)

साँसारिक संबंधों को स्थान-स्थान पर बंधन का हेतु बता कर, उनके कारुणिक अंत की ओर संकेत किया है—

बंधन मात पिता संसारि ।

बंधन मुत कनिष्ठा अरु नारि ॥२॥१०॥

(नानक-वाणी, भासा रागु, असटपदी १०)

वन, यौवन, आमोद-प्रमोद सभी नश्वर और क्षणभंगुर है —

धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीभड़े दिन चारि ।

(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद २४)

वीर रस : गुरु नानक की वाणी में स्थान-स्थान पर अपूर्व उत्साह पाया जाता है। यह उत्साह ही 'वीर रस' का स्थायी भाव है। साधक को निर्भय बनाने के लिये वे आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करते हैं। उनकी वाणी में अद्भुत ओज और उत्साह पाया जाता है। इसमें संशय नहीं कि साधक ऐसी वाणी को पढ़ कर उत्साह से भरकर अपूर्व शौर्य और आशा से अध्यात्म-पथ पर अग्रसर होता है —

देही अदरि नामु निबासी । आपे करता है अविनासी ॥

ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई हे ॥१२॥६॥

(नानक-वाणी, मारू, सोलहे ६)

साधक को निर्भय, वीर और उत्साही बनाने के लिए नानक देव कहते हैं कि परमात्मा को छोड़ अन्य स्थान तो है ही नहीं। डरा तो तब जाय, जब परमात्मा के भय के अतिरिक्त कोई अन्य भय हो। अन्य भयों में भयभीत होना तो केवल मन की आशंका मात्र है। वास्तव में जीव न तो मरता है, न डूबता है। वह मुक्त स्वरूप है —

तुधु बिनु दूजो नाही जाइ । जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ ॥१॥

डरीऐ जे डरु होबै होरु । डरि डरि डरणा मन का सोरु ॥१॥रहाउ॥

न जीउ मरै, न डूबै, तरै । ॥२॥

(नानक-वाणी, गडडी, सबद, २)

सच्चा साधक वीर सैनिक की भांति दशम द्वार में शब्द रूपी धनुष को चढ़ा कर पंच वाणो—सत्य, संतोष, दया, धर्म और धैर्य से—यमराज को मार डालता है। इस प्रकार वह गुरु के उपदेश द्वारा वीरतापूर्वक ससार-सागर में तर जाता है—

इहु भवजलु जगनु सबदि गुर तरीऐ ।

अतर की दुबिधा अंतरि जरीऐ ॥

पंच वाण ले जम कउ मारै गगनंतरि धगलु चड़ाइआ ॥६॥४॥२१॥

(नानक-वाणी, मारू, सोलहे २१)

रौद्र रस : गुरु नानक देव अत्यंत संयमी, विनम्र और मृदुभाषी होते हुए भी समाज, धर्म एवं राजनीति में कुव्यवस्था एवं अनाचार होते देख कर अपने आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त किए बिना रोक न सके। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने परमात्मा के प्रति भी अपना रोष एवं क्षोभ प्रकट किया। बाबर के आक्रमण से खिन्न होकर वे परमात्मा से कहते हैं “हे प्रभु, हिन्दुस्तान पर इतनी मार पड़ी, जनता को इतना कष्ट हुआ, इतनी मार-काट हुई, किन्तु तुझे जरा भी दर्द नहीं हुआ?”

एतो मार पई करलाणे तैं की दरदु न घाइया ।

(नानक-वाणी, आसा राग, सबद ३६)

इसी 'सबद' में उन्होंने यह कह कर अपना रोष प्रकट किया है कि "यदि शक्तिशाली सिंह शक्तिशाली सिंह को मारता है, तो मन में रोष उत्पन्न नहीं होता । किन्तु यदि शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के झुण्ड पर आक्रमण करता है, तो उनके स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखलाना चाहिए ।"

जे सकता सकते कउ मारे, ता मन रोसु न होई ॥१॥रहाउ॥

सकता सोहू मारे पै बगै खसमै सा पुरसाई ॥२॥

(नानक-वाणी, आसा राग, सबद ३६)

जब उन्होंने परमात्मा के प्रति भी अपना रोष प्रकट किया, तब अन्य लोगों की बात ही क्या है ? उन्होंने सरदारों, जागीरदारों तथा छोटे-छोटे राजाओं के प्रति उनके भत्याचारों एवं भनाचारों पर स्थल-स्थल पर अपना रोष प्रकट किया है । यथा —

(१) राजे सोहू मुकदम कुते ।

जाइ जगाइन बेंठे सुते ॥

(नानक-वाणी, मलार की बार)

(२) लबु पापु दुइ राजा महता कूडू होआ सिकदार ।

कामु नेबु सद पुछीऐ बहि-बहि करे बीचार ॥

अंधी रयति गिआन विहूणी, भाहि भरे मुरदार ।

(नानक-वाणी, आसा की बार, सलोक २१)

(३) कलि काती, राजे कासाई, धरमु पंखु करि उडरिआ ।

कूडू अमावस, सचु चंद्रमा दीसे नाही, कह चड़िआ ॥

(नानक-वाणी, माफ की बार, सलोक ३५)

इसी भाँति उन्होंने बाह्याचारों एवं रूढ़ियों में पड़े हुए धार्मिकों के प्रति भी अपना रोष प्रकट किया है, उदाहरणार्थ—

गऊ बिराहमण कउ करु लाबहु गोबरि तरणु न जाई ।

(नानक-वाणी, आसा की बार, सलोक ३३)

तथा—

माणस खारी करहि निवाज । छुरी बगाइनि तिन गलि ताग ॥

(नानक-वाणी, आसा की बार, सलोक ३४)

भयानक रस : गुरु नानक की वाणी में 'भयानक रस' दो रूपों में पाया जाता है पहले रूप में तो परमात्मा का भय सभी तत्त्वों, देवी-देवताओं, सिद्धों, बुद्धों, नाथों, शूरवीरों एवं मनुष्यों के ऊपर है । तात्पर्य यह कि उसी के भय से समस्त सृष्टि अपनी मर्यादा में स्थिर रहती है । भय का दूसरा रूप विषयासक्त, मायासक्त परमात्मा-विप्लव प्राणियों की अन्तिम दशा के चित्रण में प्राप्त होता है । ऐसे प्राणियों की बड़ी दुर्दशा होती है । यमराज के दरवाजे पर

बाँध कर उन्हें नारकीय यंत्रणाएँ दी जाती हैं। वे कारुण्य-प्रलाप करके विलाप करते हैं।
‘साकत’ यमराज के पाशों और बंधनों में पड़ कर अनन्त दुःख भोगते हैं।

भय के प्रथम रूप का उदाहरण लीजिए—

भै विचि पवणु वहै सद वाउ ।
भै विचि चालहि लख दरीआउ ॥
भै विचि अगनि कड़े बेगारि ।
भै विचि घरती दबो भारि ॥
भै विचि इन्दु फिरे सिर भारि ।
भै विचि राजा घरम दुआर ॥
भै विचि सूरखु भै विचि चंदु ।
कोह करोड़ी चलत न अतु ॥
भै विचि सिध बुध मुर नाथ ।
भै विचि आडाएँ आकास ॥
भै विचि जोध महाबल सूर ।
भै विचि आवहि जावहि पूर ॥
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु ।
नानक निरभउ निरंकार सच्चु एकु ॥

(नानक-बाणी, आसा की वार, सलोक ७)

‘भय’ के दूसरे रूप में मायाआस्त, विषयासक्त प्राणियों की भयावह परिस्थिति का चित्रण इस प्रकार मिलता है —

अंतरि चोरु मुहै घर मंदरु इनि साकति दूतु न जाता हे ॥७॥
दुंदर दूत भूत भीहाले । खिचोताणि करहि बेताले ॥
सबद मुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता हे ॥८॥
कूड़ कलरु तनु भसमै डेरी । बिनु नावै कैसो पति तेरी ॥
बाधे, मुकति नाही जुग चारे जमकंकरि कालि पराता हे ॥९॥
जमदरि बाधे मिलहि सजाई । तनु अपराधी गति नही काई ॥
करणपलाव करे बिललावे जिउ कुंडी मोनु पराता हे ॥१०॥
साकतु फासी पड़े इकेला । जम वसि कीआ मंधु दुहेला ॥
राम नाम बिनु मुकति न सूझै आखु कालि पचि जाता हे ॥११॥१५॥११॥

(नानक-बाणी, मारु, सोलहे ११)

गुरु नानक देव ने निर्भय परमात्मा की प्राप्ति एवं भय से निवृत्त होने के लिए जीवात्मा रूपी स्त्री को ‘भय का सुरमा’ लगाने के लिए कहा है —

भै कीआ देहि सलाईआ नेणी, भाव का करि सीगारो ॥

(नानक-बाणी, रागु तिलंग, सबद ४)

बीभत्स रस : एकाग्र स्थल पर गुरु नानक देव ने बीभत्स रस का भी निरूपण किया है। उदाहरणार्थ, "जैनी सिर के बाल नुचवा कर गंदा पानी पीते है और जूठी वस्तुएँ मँग मँग कर खाते है। वे अपना मल फैला देते है और मुँह से गंदी साँस लेते हैं और पानी देख कर सहमते हैं।"

सिर खोहाइ, पीअहि मलवाणी जूठा मँग मँग खाही।

फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणो देखि सगाही ॥

(नानक-वाणी, माझ की वार, सलोक ४५)

एकाग्र स्थल पर यह भी कहा है कि मनमुखों का मल के बदर नवास है। अतः वे परमात्मा के सहज सुख को नहीं जान सकते है। यथा —

मनमुख सदा कूड़िअर भरमि भुलाणिआ।

विसटा अंदरि वासु सादु न जाणिआ ॥

(नानक-वाणी, माझ की वार, पउडो ६)

अद्भुत रस : परमात्मा आश्चर्य रूप है, उसकी सृष्टि भी आश्चर्यमयी है और उसके कार्य भी आश्चर्यजनक है वह 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं' समर्थ है। अतः आश्चर्य का होना स्वाभाविक है। परमात्मा की सृष्टि के नाद, वेद, जीव, जीवों के अनन्त प्रकार, सृष्टि के विभिन्न रूप-रंग, वायु, जल, अग्नि और उसके विविध खेल, धरती, विभिन्न स्वाद, संयोग-वियोग, क्षुपा, भोग, स्तुति एवं प्रशंसा, कुराह और मुराह, समीपता-दूरी सभी आश्चर्यमय हैं।—

विसमाद नाद विसमादु वेद। विसमादु जीअ विसमादु भेद ॥

.....

वेखि विडाणु रहिआ विसमादु। नानक बुझणु पूरै भागि ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ५)

यह क्या कम आश्चर्यमय है कि प्रभु ही सब कुछ बना है, और वही समस्त वस्तुओं में बरत रहा है। जो इस तत्त्व को समझता है, उसे महान् आश्चर्य होता है —

आपे पटी कलम आपि उपरि लेख भि तूँ।

एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू ॥

(नानक-वाणी, मलार की वार, सलोक, २४)

उस प्रभु का सभी लोग सुन-सुन कर ही वर्णन करते है। वह कितना बड़ा है, इसे किसी ने भी नहीं देखा है। उसकी कीमत वर्णन नहीं की जा सकती। कथन करनेवाले उसी में समाहित हो जाते है—

सुरि बडा आखँ सभ कोई। केवडु बडा डीठा होई ॥

कीमती पाइन कहिआ जाड। कहूँ वाले तेरे रहे समाई ॥

(नानक-वाणी, रागु आसा, सबद १)

परमात्मा की सृष्टि रचना के निश्चित समय का कथन करना भी आश्चर्यमय है। उस समय शून्य निर्गुण हरी अपने आप में निवास किए थे, तत्पश्चात् यह कि वह अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित था।

आदि कउ विसमादु वोचार कथीअने सुन निरंतरि वासु लीअ,

(नानक-बाणी, रामकली, सिध गोसटि, २३वी पउडी)

परमात्मा अघटित घटनाओं को घटित कर सकता है। उसकी इस भौतिक शक्ति में आश्चर्य का होना स्वाभाविक है। गुरु नानक देव का कथन है कि "यदि प्रभु चाहे, तो सिंह, बाज, शिकरा तथा कुहीं ऐसे मांसाहारी पक्षियों को घास खिला दे। तात्पर्य यह कि उनकी मांसाहारी वृत्ति को परिवर्तित कर दे। जो घास खाते हैं, उन्हें वह मांस भक्षण करा दे। इस प्रकार वह प्रभु विरोधी वृत्तियों को प्रदान कर सकता है। यदि उसकी इच्छा हो, तो नदियों के बीच टीला दिखा दे और स्थलों को अथाह जल के रूप में परिवर्तित कर दे, कीड़े को बादशाही तक्त पर स्थापित कर दे और बादशाहों की सेना को खाक कर दे। संसार में जितने भी जीव जीते हैं, सभी मांस के द्वारा जीते हैं, किन्तु यदि प्रभु की इच्छा हो तो वह उन्हें बिना साँस के भी जिला सकता है। नानक कहता है कि जैसे जैसे प्रभु की मर्जी है, वैसे वैसे जीवों को रोजी देता है।"

सोहा बाजा चरगा कुीअ, एना खवाले घाह ।

घाहू खानि तिना मायु खवाले एहि चनाए राह ॥

नदीअ बिचि टिबे देखाले, थली करे असगाह ।

कीडा थापि देइ पातिमाही लमकर करे मुआह ॥

जेते जीअ जीवहि ले साहा, जीवाले ता कि असह ।

नानक जिउ जिउ सचे भाबै तिउ तिउ देइ गिराह ॥

(नानक-बाणी, माझ की वार, सलोक २१)

हास्य रस :—गुरु नानक जी बहुत ही हास्यप्रिय एवं विनोदी थे। उन्होंने हंसी हंसी में बहुतों को उद्देश दिये। उन्होंने समय समय पर वाद्याचार-रत एवं आडम्बर युक्त धार्मिकों की मीठी चुटकी ली। ऐसी चुटकियों में संयत एवं मर्यादापूर्ण हास्य रस मिलता है। एक स्थल पर रासधारियों पर व्यंग कसते हुए कहा है,—“रासों में चले बाजे बजते हैं और गुरु नाचते हैं। नाचने समय गुरु पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं। पैरों के पटकने से धूल उड़ उड़ कर उनके बालों में पड़ती है। दर्शक गगन उन्हें नाचते दृष्टि देख कर हँसते हैं। उनका यह तमाशा देख कर वे लोग अपने अपने घर चले जाते हैं। रोटी के निमित्त वे रासधारी ताल पूरी करके नाचने हैं और अपने आपको पृथ्वी पर पछाड़ते हैं। इस प्रकार रासलीला में वे गोपी और कृष्ण बन कर नाचने गते हैं। कभी कभी सीता तथा राम का स्वाग बना कर भी गते हैं।”—

वाइनि चले नचनि गुर । पैर हला नि फेरन्हि सिर ॥

उडि उडि रावा भाटे पाइ । बेव्हे लोकु हसै घरि जाइ ॥

रोटीअ कारणि पूरहि ताल । आपु पछाडहि घरती नालि ॥

गावनि गोपीअ गावन्हि कान्ह । गावनि सीता राजे राम ॥

(नानक-बाणी, आसा की वार, सलोक १०)

इसी प्रकार एक स्थान पर पाखण्डी ब्राह्मणों की मीठी चुटकी ली है —

अखी त मोटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसाह ॥

(राघु धनासरी, सबद ८)

रूपक

गुरु नानक देव नैसर्गिक कवि थे। उनके काव्य में रूपकों के प्रयोग का बाहुल्य है। इन रूपकों के प्रयोग में वे अत्यधिक सजग और सचेष्ट रहे। गुरु नानक की वाणी में प्रयुक्त रूपक कवित्व से युक्त हैं। उन्होंने जीवन के साधारण व्यापारों से रूपको को चुन कर अपूर्व आध्यात्मिकता, साकेतिकता और गंभीरता भर दी है। रूपकों के माध्यम से उन्होंने अध्यात्म के गूढ़ाति-गूढ़ एवं सूक्ष्मांतमूक्षम रहस्यों को सुलभाने का प्रयत्न किया है। इन रूपकों में उनके पांडित्य, अनुभव, कल्पना की विवेची प्रवाहित हुई है।

सिक्का ढालने (जपु जी की अन्तिम पउड़ी), सच्ची लिखावट (सिरी रागु, सबद ६), सच्चे भोजन (सिरी रागु, सबद ७), किसान (सिरी रागु, सबद २७), कीचड़, मेढक, कमल एवं भ्रमर (सिरी रागु, सबद २७), साँसी, (सिरी रागु, सबद २८), दीपक-जलाने (सिरी रागु, सबद ३३), मन्दिर (सिरी रागु, असटपदी ७), अनुदत्ता (सिरी रागु की वार, सलोक ६), सच्चे मुसलमान बनने (माफ की वार, सलोक १०) मन (गउड़ी, असटपदी २), वृक्ष एवं फल लगने (आसा, सबद १६), वास्तविक योग (रागु आसा, सबद ३७; रागु सूही, सबद ८; रामकली, सिध गोसटि, पउड़ी १०), मदिरा बनाने (आसा, सबद ३८), रास (आसा की वार सलोक ६), कपड़ा रंगने (आसा की वार, सलोक २०), वास्तविक यज्ञोपवीत (आसा की वार, सलोक २६), मृतक (आसा की वार, सलोक ३८), शरीर नगरी (गूजरी, असटपदी १, बन्द १), कृषि (सोरठि, सबद २), सौदागर (सोरठि, सबद २), दूध जमाने एवं मथने, (रागु सूही, सबद १), ज्ञान-दीपक (रागु रामकली, सबद ७), गाड़ी (रामकली, सबद ११, पद २) मनमुख की खेती (रामकली की वार, सलोक १२), गुरुमुख की खेती (रामकली की वार, सलोक १३), आरती (घनासरो, सबद ६) आदि के आध्यात्मिक रूपक बड़े ही हृदयग्राही, अनुभवयुक्त, कवित्वपूर्ण एवं कलायुक्त हैं। गुरु नानक के रूपकों पर पृथक् रूप से पुस्तिका लिखी जा सकती है। उदाहरण स्वरूप यहाँ कुछ रूपकों का सश्लोकरण किया जा रहा है, जिनमें उनकी अद्भुत काव्यशक्ति का परिचय प्राप्त होगा —

(१) गुरु का शब्द अथवा नाम रूपी सिक्का किस प्रकार ढालना चाहिये ? इसके लिये गुरु नानक जी निम्नलिखित विधि बताने है; “संयम अथवा इन्द्रिय-दमन भट्टो हो और धैर्य सोनार हो। बुद्धि निहई तथा गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान—वेद हथौड़ी हो। गुरु अथवा परमात्मा का भय धौंकनी हो और तपस्वर्या ही अग्नि हो। प्रेम ही पात्र हो और नाम रूपी अमृत गलाया हुआ सोना हो। इस प्रकार सच्ची टकसाल—गुह्य आत्मा में गुरु के शब्द रूपी सिक्के ढालने चाहिये।”—

जनु पाहारा धीरखु मुनिग्राह । अहरणि मति वेदु हथौग्राह ॥

भउ खला अगनि तपत्राउ । भांडा भाउ अमृत तितु ढालि ॥

घड़ोये सबदु सची टकसाल । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी ३८)

उपयुक्त रूपक में आध्यात्मिक मार्ग की प्रगति में सभी आवश्यक साधनों का समावेश हो गया है।

(२) वास्तविक किसान बनने की विधि निम्नलिखित रूपक द्वारा बतलाई गई है,
 “शुभ कर्मों को धरती तथा परमात्मा के नाम को बीज बनाओ। सत्य की कीर्ति के जल
 में उस पृथ्वी को नित्य सींचो। उस प्रकार के किसान बनकर ईमान (विश्वास) अंकुरित
 करो।”

अमृत करि धरती बीज सबदो करि सब की आब नित देहि प्राणी ॥

होइ किरसाण इमानु जंमाइ ले भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी ॥

(नानक-बाणी, सिरि राग, सबद २७, पहला पद)

(३) अमृत-रस वाली मदिरा बनाने की प्रणाली गुरु नानक ने निम्नलिखित रूपक के
 माध्यम द्वारा अभिव्यक्त की है, “हे साधक, परमात्मा के ज्ञान को गुड़ बनाओ, ध्यान को महुआ
 और शुभ करणी को बबूल की छाल—इन सब को एक में मिला दो। अद्वैत को भट्ठी और प्रेम
 को पोचा बनाओ। इस प्रकार अमृत रस वाली मदिरा चुवाओ।”

गुड़ करि गिम्नानु, घिम्नानु करि घावै, करि करणी कमु पाईये।

भाठी भवनु, प्रेम का पोचा, इतु रसि अमिउ चुभाईये ॥

(नानक-बाणी, राग आसा, सबद ३८, पद १)

(४) सच्चे योगी बनने की विधि गुरु नानक ने इस प्रकार बतलाई है —

“हे योगी, गुरु के शब्द को मन में बसाना मेरी मुद्रा है और धाम ही मेरा कथा है।
 परमात्मा के किए हुए को भला करके मानना मेरा सहज योग है। इसी योग के द्वारा मुझ अलौ-
 किक निधि (सिद्धि) प्राप्त होता है। जो साधक परमात्मा से युक्त है, वह युग-युगान्तरो से योगी
 है, क्योंकि उसका योग परमतत्त्व—हरा में तृप्ता है। उसने ‘निरंजन’ के अमृत रूपो नाम को
 प्राप्त कर लिया है। ज्ञान ही उसे शरीर में अमृत-रस के आम्बादन की प्रतीति कराता है। (मैं)
 शिव नगरी में आसन लगा कर बैठता हूँ। सारी कल्पनाएँ एवं समस्त वाद विवाद को मैंने त्याग
 दिया है। गुरु का शब्द—नाम मेरे लिए शृङ्गा की शाश्वत ध्वनि है, यह मुद्रावना और पूर्णनाद
 अहंनिश होता रहता है।

“विचार ही मेरा खप्पर है। ब्रह्मज्ञान की अखण्ड वृत्ति ही मेरा डडा है। परमात्मा को
 सर्वत्र विद्यमान समझना यही मेरी विभूति है। हरि की कीर्ति का गान यही मेरी परम्परा है
 तथा माया से अतीत रहना ही गुरुमुखों का पंथ है।

“नाना वर्णों और रूपों में परमात्मा का सर्वव्यापिनी ज्योति ही हमारी अघारो है। हे
 भरपरी, नानक का कथन सुनो—वास्तविक योगी वही है जो परब्रह्म में ध्यान लगाता है।”

गुर का सबदु मनै महि मुद्रा खिया विमा हडावउ।

जो किछु करै भला करि मानउ सहज जोग निधि पावउ ॥१॥

बाबा, जुगता जोउ जुगद जुग जोगी परम नंत महि जोगं।

अंमृत नामु निरंजनु पाइआ गिम्नान काइआ रस भोगं ॥१॥ रहाउ ॥

शिव नगरी महि आसणि बैसउ, कल्प तिम्नानी बार्दं।

सिखी सबदु सदा भुनि मोहै, अहंनिसि पूरे नार्दं ॥२॥

पतु बीबाह, गिमान मति डंडा, बरतमान बिभूतं ।
हरि कीरति रह्रासि हमारो, गुरमुखि पंधु अतोतं ॥३॥

सगली जोति हमारी संमिआ नाना बरन अनेकं ।

कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रह्म लिब एकं ॥४॥३॥३७॥

(नानक-वाणी, रागु आसा, सबद, ३७)

(५) रास-नृत्य के रूपक के माध्यम द्वारा प्रकृति के निरंतर रास-नृत्य को समझने की चेष्टा गुरु नानक देव ने इस भाँति की है, “सारी घड़ियाँ गोपियाँ हैं, (दिन के सारे) प्रहर कृष्ण हैं, पवन, पानी और आग ही आभूषण है, (जिन्हें उन गोपियों ने धारण किए हैं), (प्रकृति के रास-नृत्य में) चन्द्रमा और सूर्य दो अवतार हैं । सारी पृथ्वी (रास के रंगमंच का) धन और माल है । (जगत् के) सारे प्रपंच (रास के) व्यवहार हैं । हे नानक, इस ज्ञान के बिना (सारी दुनिया) टगी जा रही है और उसे यमकाल खाए जा रहा है ।” —

घड़ीआ सभे गोपिआ, पहर कंठ गोपाल ।

गहणे पउणु पाणी बैसंतर, चंदु सूरजु अवतार ॥

सगली परती मालु धनु, बरतणि सरब जंजाल ।

नानक मुसे गिमान विहणी, खाइ गइआ जम कालु ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलो ६)

(६) दूध जमाने एवं दही मथने के रूपक द्वारा गुरु नानक ने आध्यात्मिक साधनों का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है । उनका कथन है, “बरतन धोकर बैठ कर (उमंगे) घूब दो, तब फिर दूध लेने के लिए जाओ । (भावार्थ यह कि मन को पवित्र करके रोक्ने से ही शुभ कर्मों का सम्पादन हो सकता है) । शुभ कर्म ही दूध हैं, फिर मुरति (दूध जमाने के लिए) जामन है, (संसार से) निष्काम होकर दूध जमाओ । इस मन को (नेती में बाँधने की) गुल्ली बनाकर (उमंग) हाथ में पकड़ो । (प्रविद्या में) नीद न आना ही (मयाना की) नेती हो; जिह्वा से नाम जपना ही, (दही) मथना हो । इस विधि में मक्खन रूपो अमृत प्राप्त करो ।” —

भाडा धोइ बैसि धूपु देवहु, तउ दूधे कउ जावहु ।

दूधु करम कुनि मुरति समाइणु होइ निराश जमावहु ॥१॥

.....

इहु मनु ईटी हाथि करहु, कुनि नेउ नोद न आवे ।

रसना नामु जपहु तब मयोऐ इन विधि अमृत पावहु ॥२॥

(नानक वाणी, सूही रागु, सबद १)

उपर्युक्त पद में जीवन-निर्वाह के सामान्य व्यापार दूध-जमाने और दही मथ कर मक्खन प्राप्त करने के रूपक द्वारा गुरु नानक देव ने अव्यात्म को गूढ़ बातों को हृदयङ्गम करा दिया है ।

(७) गुरु नानक देव ने ‘आरती’ के रूपक द्वारा सगुण ब्रह्म के विराट् स्वरूप का बड़ा ही मनोहर चित्रण किया है ।

गगनमें थालु, रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती ।

ब्रु मलमानलो, पवरणु चवरो करे, सगल वनराइ फूलंत जोती ॥१॥

कैसे आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ।

अनहता सबद बाजंत भेरी ॥१॥ रहाउ ॥

(नानक बाणी, रागु वनासरी, सबद ६)

अर्थात्, “(हे प्रभु, तेरी विराट् आरती के निमित्त), आकाश रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामण्डल (उस थाल में) मोती के रूप में जड़े हैं । मलय चन्दन की सुगन्धि उस आरती की धूप है । वायु चंवर कर रहा है । हे ज्योतिस्वरूप (परमात्मा) वनों के खिले हुए समस्त पुष्प (तेरी आरती के निमित्त) पुष्प बने हैं । तेरी (सीमित) आरती कैसे हो सकती है ? हे भवखण्डन तेरी आरती कैसे हो सकती है ? (तेरी आरती में) अनाहत शब्द नगाड़े के रूप में बज रहा है । ”

गुरु नानक के काव्य में प्रकृति-चित्रण

गुरु नानक देव प्रकृति की गोदी में पले थे । इसलिए प्रकृति के प्रति उनका महान् आकर्षण था । प्रकृति की अनेकरूपता के सहारे उन्होंने परमात्मा को महत्ता बतलाई । उस हरी द्वारा निर्मित प्रकृति जब अनन्त मोहक है, तो उसका निर्माता कितना सुन्दर होगा । यही कारण है विस्तृत नीलाकाश, उन्हे प्रभु की आरती का थाल, चन्द्रमा-सूर्य दीपक एवं तारामण मोती प्रतीत होत हैं । मलय पवन उस आरती की धूप, तथा समस्त पुष्प-राशि उस आरती के निमित्त पुष्प हैं^१ । वायु, नदियाँ, अग्नि, पृथ्वी, इन्द्र, धर्मराज, सूर्य, चन्द्रमा, सिद्ध, बुद्ध, देवतागण आकाश आदि परमात्मा के भय से स्थित हैं^२ ।

उन्होंने परमात्मा के प्रेम की प्रतिशयता वन-विहारिणी हरिणी, अंबराइयो में आनन्द मनानेवाली कोयल, जल को जीवन समझने वाली मछली, तथा घरती में घंसी रहने वाली सर्पिणी के प्रेम के द्वारा अभिव्यक्त की है^३ । उन्होंने कही कही पर प्रकृति के उपमानों द्वारा परमात्मा के प्रेम की प्रगाढ़ता की समता की है, “हे मन हरि से ऐसी प्रीति कर, जिस प्रकार कमल जल से प्रीति करता है, मछली नीर में, चातक बादल से और चकवी सूर्य से^४ । ”

गुरु नानक देव ने अपनी अनुभूति, कल्पना के आधार पर उस अवस्था का चित्रण किया है, जब परमात्मा, शून्य हरी को छोड़कर कुछ भी अस्तित्व में नहीं था—“बई अरब तथा अरबों से परे—अगणित युगों तक अन्धकार ही अन्धकार था । उस समय पृथ्वी, आकाश, दिन, रात, चन्द्रमा, सूर्य, जीवों की चार खानियाँ, पवन, जल, उत्पत्ति, विनाश, जन्म-मरण, खण्ड, पाताल सप्त-सागर, नदियाँ, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल, दोजख, विहिस्त, क्षय, काल, नरक-स्वर्ग, आवागमन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुःख-सुख, यती, सतोगुणी, वनवासी, सिद्ध, साधक, भोगी, योगी, जंगम, नाथ, जप, तप, संयम, व्रत, पूजा, शौच, तुलसी आदि की माला, कृष्ण, गोपियाँ,

१. नानक-बाणी, रागु वनासरी, सबद ९. २. नानक-बाणी, आसा की वार, सलीक ७.

३. नानक-बाणी, गउडी-बैरागणि, सबद १९. ४. नानक बाणी, सिरि रागु, असटपदी १२.

खाल-बाल, गौर, तंत्र, मंत्र, पाखण्ड, कर्मकाण्ड, मायारूपी मन्त्री, निन्दा-स्तुति, जीव-जन्तु, कुल, ज्ञान, ध्यान, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, वर्णाश्रम, वेशादिक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, देवता, मन्दिर, गी-गायत्री, यज्ञ-होम, तीर्थस्थान, शेख, मशायख, हाजी, राजा-प्रजा, ग्रहंकार, संसार, भाव-भक्ति, शिव-शक्ति, साजन, मित्र, वीर्य, रज, कतेब, वेद, शास्त्र, स्मृति, पाठ, पुराण, सूर्योदय और सूर्यास्त कुछ भी नहीं थे^१ ।

गुरु नानक देव ने तुलारी राग के बारहमाहा में वर्ष के बारहवों महीनों का हृदयग्राही चित्रण किया है—

चैत्र महीने में वसन्त ऋतु के आगमन से वनराजि फूल पड़ती है । अमराइयो में कोयल मुहावनी बोली बोलती है । फूली हुई डालियों पर भँवरा चक्कर लगाता है । प्रियतम के वियोग में यह ऋतु बड़ी दुःखदायिनी हो जाती है^२ ।

वैशाख महीने में वृक्षा की शाखाएँ खूब वेश बनाती है । इस ऋतु में जीवात्मा रूपी स्त्री पति-परमात्मा की प्रतीक्षा करती है^३ ।

जेठ के महीने में सारा संसार भार के समान तपता है^४ ।

आषाढ़ के महीने में सूर्य आकाश में तपता है । घोर उष्णता से पृथ्वी दुःख सहन करती है । वह निरन्तर सूखकर आग के समान तपती है । अग्नि रूपी सूर्य जल सुखा देता है, बेचारा जल सुलग-सुलग कर मरता है, फिर भी निर्दयो सूर्य का कार्य जारी रहता है । वह अपने जलाने वाले स्वभाव से बाज नहीं आता । इस सूर्य का रथ निरन्तर चालू रहता है और स्त्री गर्मी से त्राण पाने के लिए छाया ताकती है । वन में टिड्डे वृक्षा के नीचे 'ची ची' करते हैं । भाव यह कि टिड्डे पानी के लिए तरसते हैं^५ ।

सावन में वर्षाऋतु आ गई है । बादल बरस रहे हैं । हे मेरे मन आनन्दित हो । ऐसे समय में मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर परदेश चले गए हैं । वे घर नहीं आ रहे हैं । मैं शोक में मर रही हूँ । बिजली चमक कर मुझे डरा रही है । हे माँ, मैं अपनी सेज पर अकेली हूँ और अत्यधिक दुःखी हूँ^६ ।

भादो के महीने में जलाशयो और स्थलो में जल भर गया है । वर्षा हो रही है । लोग रंग मना रहे हैं । अंधेरी काली रात्रि को वर्षा की झड़ी और भयानक बना रही है । भला, बिना प्रियतम के इस ऋतु में स्त्री को मुख कंसे प्राप्त हो सकता है ? मेडक और मोर बोल रहे हैं । पपीहा 'पी-पी' कह कर बोल रहा है । साप प्राणियों को डसने फिरते हैं । मच्छर डक मारते हैं । सरोवर लबालब भरे हैं । ऐसे समय में स्त्री बिना प्रियतम हरी के कैसे सुख पा सकती है^७ ?

आश्विन के महीने में कोकामेढी और कास आदि फूल गए हैं । आगे आगे तो धूप (उष्णता) चली जा रही है और पीछे पीछे जाड़े की ऋतु (टंडक) चली आ रही है । दशो दिशाओं में

१. नानक-बाणी भा०. खोलहै १४

२. नानक-बाणी, राग तुलारी, बारहमाहा, पड़ही ६

३. नानक-बाणी. राग तुलारी. बारहमाहा, पड़ही ८

४. नानक-बाणी, राग तुलारी, बारहमाहा, पड़ही १०

५. नानक-बाणी, राग तुलारी, बारहमाहा, पड़ही ४.

६. नानक-बाणी. राग तुलारी, बारहमाहा, पड़ही ७.

७. नानक-बाणी. राग तुलारी, बारहमाहा, पड़ही ९.

शाखाएँ हरी हरी दिखलाई पड़ रही है। वृक्षों में लगे हुए फल सहज भाव से पक कर मीठे हो गए हैं^१।

कार्तिक के महीने में बिरह अति तीव्र हो जाता है और एक चढ़ी छ. महीने के समान हो जाती है^२।

यदि हरि के गुण हृदय में समा जायें, तो अग्रहन का महीना बहुत अच्छा हो जाय^३।

पौष के महीने में तुषार पड़ता है। वन के वृक्षों और तृणों का रस सूख जाता है। हे प्रभु, तू मेरे तन, मन तथा मुख में बसा हुआ है, फिर क्यों नहीं मेरे समीप आता^४।

माघ के महीने में जो ज्ञान के सरोवर में स्नान करता है, उसे गंगा, यमुना, (सरस्वती) का सगम तथा त्रिवेणी—प्रयागराज और सातों समुद्रों के पवित्र तीर्थ अनायास प्राप्त हो जाते हैं^५।

फागुन के महीने में, जिन्हें हरी का प्रेम अच्छा लग गया, उनके मन में उल्लास रहना है^६।

उपर्युक्त 'बारहमाहे' में चैत्र, आषाढ, सावन, भादो और आश्विन का साकार चित्रण गुरु नानक देव ने किया है। सावन-भादो की भूरी, विजली का चमकना, जलाशयों का भर जाना, अंधेरी-रात्रि में वर्षा के कारण भयंकरता का बढ़ जाना, मेढक, मोर, पपीहो का बोलना, साँपो का उटना, मच्छरों का उटना आदि में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण ज्ञात होता है। 'आश्विन महीने में धूप के आगे आगे जाने एवं ठंडक को पीछे पीछे आने' में कितनी सजीवता है।

यह तो हुआ प्रकृति के बाह्य पक्ष का चित्रण। गुरु नानक देव अन्तःप्रकृति के पूर्ण ज्ञाता थे। इसी से उन्होंने अपने काव्य के मानवी प्रकृति का भी सफल चित्रण किया है। उन्होंने अहंकारियों के अहंकार, साधुओं की साधुता, गुणवती एवं सुहागिनी स्त्रियों के गुणों, पातिव्रत धर्म और अपार प्रेम, दुहागिनी स्त्रियों के दुर्गुणों एवं अहंमन्यता, पाखण्डियों के पाखण्ड, आक्रमणकारी की क्रूर भावना, मुत्ताओं, काजियों, पंडितों, ब्राह्मणों, योगियों, जैनियों के आडम्बर भाव, तत्कालीन राजाओं और जमीरदारों की नृशंसता एवं क्रूरता, बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

गुरु नानक की भाषा

जिस प्रकार गुरु नानक का व्यक्तित्व असाधारण एवं बहुमुखी है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी असाधारण एवं बहुरूपिणी है। वे अत्यधिक पर्यटनशील थे। जहाँ भी जाते थे, उसी स्थान की भाषा में वहाँ के निवासियों को उपदेश देते थे। साधारणतः उनकी भाषा पूर्वी पंजाबी के अंतर्गत रखी जा सकती है। किन्तु उस पर पश्चिमी पंजाबी भाषा का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। स्थान-स्थान पर खड़ीबोली, ब्रजभाषा, एवं रेखता के प्रयोग भी मिलते हैं। कहीं कहीं सिन्धी, लहंदा बोली के भी पर्याप्त शब्द मिलते हैं। इस प्रकार उनकी भाषा बहुरूपिणी है। उसकी अनेकरूपता के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१. नानक-बाणी, सुखारी बारहमाहा, पृष्ठ ११ २. नानक-बाणी, सुखारी, बारहमाहा, पृष्ठ १२

३. नानक-बाणी, सुखारी, बारहमाहा, पृष्ठ १३ ४. नानक-बाणी, सुखारी, बारहमाहा, पृष्ठ १४

५. नानक-बाणी, सुखारी, बारहमाहा, पृष्ठ १५ ६. नानक-बाणी, सुखारी, बारहमाहा, पृष्ठ १६

खड़ी बोली : खड़ी बोली का रूप भ्रमीर खुसरो और कबीर की कविताओं में पाया जाता है। गुरु नानक की वाणी में स्थान-स्थान पर खड़ी बोली का रूप दिखाई पड़ता है। यथा—

(१) कहू नानक गुरि ब्रह्मु बिलाइआ ।

भरता जाता नदरि न आइआ ॥४॥४॥

(नानक-वाणी, रागु गउडी गुमारेरी, सबद ४)

(२) फूल माल गलि बहिरउगी हारो । मिलैगा प्रीतम तब करउगी सीगारो ।

(नानक वाणी, आसा, सबद ३४)

(३) करि किरपा घर महलु बिलाइआ ।

नानक हउमै मारि बिलाइआ ॥४॥६॥

(नानक-वाणी, रागु गउडी गुमारेरी, सबद ६)

उपर्युक्त उदाहरणों में काले अक्षर के शब्द खड़ी बोली के प्रयोग हैं।

गुजराती : एकाध स्थल पर गुजराती के शब्दों का प्रयोग भी दिखलाई पड़ता है। उदाहरणार्थ—

सजए मेरे रंगुले जाइ खुले जोराणि ।

(नानक-वाणी, सिरा रागु, सबद २४)

लहंदा : गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर 'लहंदा' का भी प्रयोग किया है—

(१) हंभो बंआ झुंमणी रोवा भोणी बाणि ॥२॥२४॥

(नानक-वाणी, सिरा रागु, सबद २४)

(२) मंजु कुचजी भंभावणि डोमडे हउ किउ सह रावणि जाउ जीउ ।

इकदू इकि चडंदोआ कउणु जाणु मेरा नाउ जीउ ॥

(नानक-वाणी, रागु सूही, कुचजी)

(३) आबउ बंअउ डुमणी किती मित्र करेउ ।

सा धनु ढोई न लहै वाढी किउ धोरेउ ॥१॥

मेडा मनु रता आपनड़े पिर नालि ॥

(नानक-वाणी, माह काफी, सबद ६)

सिन्धी : भार अठारह मेवा होवा गरुड़ा होद मुआउ ।

(नानक-वाणी, माह की बार)

रेखता : रेखता बोली में फारसी शब्दों का बाहुल्य होता है। पर यह वास्तविक फारसी नहीं होती। हिन्दी एवं फारसी के मिश्रण को रेखता कहते हैं प्राये चलकर इसी रेखता ने 'उर्दू' का रूप धारण किया। गुरु नानक देव के समय में 'उर्दू' का जन्म नहीं हुआ था। पर हिन्दी और फारसी के पृथक् पृथक् ज्ञाता बातचीत के सिलसिले में हिन्दी के ढँचि में फारसी शब्द अथवा फारसी के ढँचि में हिन्दी शब्द बरत कर अपना काम चला लेते थे।^१ गुरु नानक ने अपनी वाणी में 'रेखता' का भी प्रयोग किया है—

यक भरज गुफतम पेसि तो दर गास कुन करतार ।
 हुका कबीर करोम तू बे ऐब परबदगार ॥१॥
 दुनीया मुकामे फानी तहकीक दिल दानो ।
 मम सर भूइ भजराईल गिरफतह दिल हेबि न दानो ॥ १॥ रहाउ॥

(नानक-बाणी, तिलंग, सबद १)

ब्रजभाषा : गुरु नानक ने अपनी वाणी में स्थान स्थान पर ब्रजभाषा के बड़े ही सुन्दर प्रयोग किए हैं, जैसे—

(१) आपि तरै संगति कुल तारै ।

(नानक-बाणी, आसा, सबद १४)

(२) हरि हरि नामु भगति प्रिभ प्रीतमु सुख सागर उर धारे ।

भगतबल्लु जगजीवनु दाता मति गुरमति निसतारे ॥३॥१६॥

(नानक-बाणी, आसा सबद १६)

(३) तुभ बिनु अवध न कोई मेरे पिआरे तुभ बिनु अवध न कोइ हरे ॥

(नानक-बाणी, आसा, सबद २२)

(४) काची गागरि देह दुहेली उपजै बिनमै दुखु पाई ॥

(नानक-बाणी, आसा, सबद २२)

पूर्वो हिन्दी : कुछ स्थलों पर पूर्वो हिन्दी के भी प्रयोग उनकी भाषा में मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ—

(१) भईले उदासी रहउ निरासी

(नानक-बाणी, आसा, सबद २६)

(२) तितु सरवरडै भईले निबामा वाणी पावकु तितहि कीआ ।

(नानक-बाणी, आसा, सबद २६)

(३) 'पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह बूबोअले'

इस प्रकार गुरु नानक देव ने कई भाषाओं के प्रयोग किए हैं ।

सामान्यतः गुरु नानक की भाषा में भावों के प्रकाशन की अद्भुत क्षमता है । उनकी भाषा कबीर की भाषा के समान आध्यात्मवादी नहीं है ।^१ उसमें अपूर्व शालीनता, मर्यादा, संयम और शिष्टता है । उनकी कठोर से कठोर भर्त्सनाएँ मर्यादापूर्ण हैं । एकाध स्थल की दूसरी बात है । उदाहरणार्थ —

(१) अथी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसार ।

(नानक-बाणी, रागु धनासरी, सबद ८)

(२) खत्रीआ त धरम छोडिआ मलेछ भाखा गही ।

(नानक-बाणी, रागु धनासरी, सबद ८)

(३) जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे ।

(नानक-वाणी, आसा, सबद ३)

(४) गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई ।

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ३३)

(५) छोडीले पाखंडा ।

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ३३)

(६) माणस खाणे करहि निबाज । छुरी बगाइनि, तिन गलि ताग ।

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ३४)

(७) नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ।

मलेसु धानु ले पूजहि पुराणु ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ३४)

(८) देके चउका कड़ी कार । उपरि आड बैठे कूडिआर ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार, सलोक ३४)

गुरु नानक ने भाषा को सजीव, भावपूर्ण और प्रवाह युक्त बनाने के लिए स्थान-स्थान पर 'प्रतीक' का सहारा लिया है । वे प्रतीक बड़े ही सार्थक, सजीव और कवित्वपूर्ण हैं ।

उदाहरणार्थ—

(१) बिमल मझारि बससि निरमल जल पदमनि जावल रे ।

पदमनि जावल जल रस संगति संग दोख नही रे ॥१॥

दादर तू कवहि न जानसि रे ।

भखसि सिबालु बससि निरमल जल अमृतु न लखसि रे ॥१॥रहाउ॥

(नानक-वाणी, रागु मारु, सबद ४)

उपर्युक्त पद में 'दादर' विषयासक्त पुरुषों का प्रतीक है । वह 'सिवार'—विषयो में ही अमुरक्त रहता है । 'कमल'—'ब्रह्मवृत्ति' का और उसका ध्यान नहीं जाता ।

(२) कहु नानक प्राणी चउथे पहरे लावी लुणिआ खेतु ॥४॥१॥

(नानक-वाणी, सिरो रागु, पहरे १)

अर्थात्, "नानक कहता है चौथे गहर में खेत काटने वाले ने खेत काट लिया" 'खेत काटने वाले' का प्रतीक 'यम' है । इसका पूरा भाव यह है कि "अन्तिम अवस्था में यमराज ने जीव को पकड़ लिया । उसका कोई भी बश न चला ।"

(३) वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु ॥

(नानक-वाणी, सोरठि, महला १, सबद २)

यहाँ 'संतो' का प्रतीक 'वणजारिआ' और 'भक्ति' का प्रतीक 'लाहा' (लाम) है ।

(४) जे मन जाणहि सुलीआ काहे मिठा खाहि ।

(नानक-वाणी, सोरठि, सबद १)

उपर्युक्त पद में 'मिठा' 'विषयो के रस' के प्रतीक में प्रयुक्त हुआ है ।

(५) रागु आसा, के '५' वे छंद में, 'काला हिरन', 'भंवरा', 'मछली' और 'नहर' जीवात्मा के बड़े हो सुन्दर प्रतीक है । इन प्रतीकों में अति निर्मल काव्यधारा भी प्रवाहित हुई है ।

(६) पंडित दही बिलोईये भाई बिचहु निकलै तथु ।

जलु मथीऐ जलु देखीऐ भाई इहु जगु एहा वथु ॥

(नानक-वाणी, सोरठि, महला, १, असटपदी २)

यहाँ 'दही बिलोना' 'परमात्मा' की भक्ति करने, 'जल मथना' 'सांसारिक विषयो में लिप्त रहने' का प्रतीक है ।

(७) नीजे पहरै, रैनि के वणजारिआ मित्रा सरि हंस उलथडे आइ ॥

(नानक-वाणी, सिरी राग, पहेरे २)

'हंसों का तालाब में आ उतरना' का तात्पर्य 'बृद्धावस्था में बालों का सफेद हो जाना' है

(८) उतरि अवधटि सरवरि न्हावे

(नानक-वाणी, आसा, असटपदी १)

उपर्युक्त पद में 'अवधटि', 'विषयों की घाटी' एवं 'सरवरि' 'सत्संग के सरोवर' के प्रतीक हैं

कहना न होगा कि ऐसे 'प्रतीकों' की योजना से भाषा की व्यंजना-शक्ति, लाक्षणिकता और प्रभाव-शक्ति बहुत बढ़ जाती है ।

गुरु नानक देव की भाषा की रूपक-योजना उसकी खास विशिष्टता है, जिसकी चर्चा इसके पहले पृथक् शीर्षक में की जा चुकी है ।

गुरु नानक की भाषा में संगीत के माधुर्य का अद्भुत प्रवाह है । वे स्वयं संगीत के पूर्ण ज्ञाता थे । इसी से उनके कुछ 'वाग्विषयो में अद्वितीय नाद-सौंदर्य के कारण उसमें अनुप्रास का प्रयोग सहज भाव से स्वतः प्राप्त हो जाता है । इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं —

(१) सहस तब नैन, नन नैन है तोहि कउ,

महम मूरति, नना एक तोही ।

सहस पद बिमल, नन एक पद, गंध बिनु,

सहस तब गंध, इव चलत मोही ।

सभ महि जोति जोति है सोइ ।

तिस के चानिणि सभ महि चानिणि होइ ॥

(नानक-वाणी, घनासरी, आरती, सवद ६)

(२) सावणि सरस मना घए वरसहि रति आए ।

मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ॥

पिर घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए ।

सेज इकेली खरी दुहेली मरगु भडभा दुगु माए ॥

हरि बिनु नीद भूल बहू कैसे कापड़ु तनि सूखावए ।

नानक सा सोहावणि कंती पिर के अकि समावए ॥६॥

(नानक-वाणी, राग तुखारी, बारहमाहा पउड़ी ६)

- (३) आपे दाना आपे बीना । आपे आपु उपाइ पत्तौना ।
 आपे पडणु पाणी बैसंतरु आपे मेलि मिली है ॥३॥
 आपे ससि सूरु पुरो पुरा । आपे मिआनि धिआनि छुट सूरु ॥
 कालु जालु जमु जोहि न साकै साचे सिउ निव लई है ॥४॥

.....
 आपे भवरु फुलु फलु तरवरु । आपे जल थलु सागरु सरवरु ॥
 आपे मछु कछु करणी करु तेरा रूपु न लखगा जाई है ॥६॥
 आपे दिनसु आपे ही रेखी । आपि पत्तौजे गुर की वैणी ॥
 आदि जुगादि अनाहदि अनदिनु घटि घटि सबदु रजाई ॥७॥

(नानक-बाणी, मारू सोलहे, १)

- (४) अनहदो अनहदु बाजे रुण भुण कारे राम ।
 मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम ॥
 अनदिनु राता मनु बैरागी सुनि मंडलि घर पाइआ ।
 आदि पुरखु अपरपर पिआरा सतिगुर अलख लखाइआ ॥
 आसणि बैसणि थिरु नारायणु तितु मन राता बीचारे ।
 नानक नामि रते बैरागी अनहद रुण भुणकारे ॥२॥१॥

(नानक-बाणी, रागु भासा, छंद २)

इम प्रकार के संगीतमय और नाद-सौन्दर्ययुक्त अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं । मेरी तो यह निश्चित धारणा है कि संगीत की जो दिव्य-माधुरी कुछ नानक देव की बाणी में पाई जाती है, वह किसी अन्य संत कवि में नहीं प्राप्त होती ।

गुरु नानक देव ने अपने काव्य में स्थान स्थान पर मुग़लियों एवं कहावतों के प्रयोग किए, है, जिससे उनकी भाषा की व्यावहारिकता बढ़ गई है । उदाहरणार्थ —

- (१) 'गूंगे का गुड' —

जिन चाखिआ सेई सादु जाणनि जिय गूंगे मिठिआई ।

(नानक बाणी, सोरठि, असटपदी १)

- (२) 'स्वान की पूछ'—

अपना आपु तू कबहु न छोडसि, सुआन पूछि जिय रे ॥४॥४॥

(नानक-बाणी, रागु मारू, सबद ४)

- (३) 'बाह पसार कर मिलना' —

उरवारि पारि मेरा सहु बसै हउ मिलउगी बाह पसारि

(नानक-बाणी, गडडी, सबद १६)

- (४) 'कसीटी पर कसना' —

कसि कसवटी लाईऐ परने हितु चितु लाउ ॥

(नानक-बाणी, सिरी रागु, असटपदी ७)

(५) 'ठौर पाना' —

छोटे ठउर न पाइनी, खरे खजाने पाइ ।

(नानक-वाणी, सिरि राग, असटपदी ७)

(६) 'मुंड काला होना' तथा 'पति खोना' (प्रतिष्ठा खोना)—

भगती भाइ बिहूणिआ सुह काला, पति खोइ ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, पहेरे २)

(७) 'कंधे पर आना' तथा 'सौसों का अन्त होना'—

झोड़कु आइआ तिन साहिआ, वणजारिआ मित्रा,

जरु जरवाणा कनि ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, पहेरे २)

(८) 'जो बोना, सो खाना'—

नानक जो बीजै सो खावणा करतै लिखि पाइआ ॥

(नानक-वाणी, सारंग की वार)

(९) 'जन्म गंवाना'—

भूटे लालचि जनमु गवाइआ ।

(नानक-वाणी, प्रभाती असटपदी, विभास, १)

(१०) 'मत में बसाना' —

सचा नामु भनि बसार ।

(नानक-वाणी, प्रभाती-विभास, असटपदी २)

(११) 'ढील पड़ना' —

भापे सदे ढिल न होइ ।

(नानक-वाणी, प्रभाती, विभास असटपदी ५)

गुरु नानक की वाणी से इस प्रसार के मुद्धारों के मकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इससे उनकी भाषा अत्यधिक लोकोपयोगी और व्यावहारिक हो गई है।

गुरु नानक देव की काव्य-भाषा की अतृती विषयता यह है कि उसके वाक्यांश अथवा तुक पंजाब की सामान्य-जनता की सूक्तियों के रूप में प्रवेश पा चुके हैं।^१ जीवन के सभी क्षेत्र के व्यापार, आध्यात्मिक ज्ञान के सिद्धान्त, प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण, सामाजिक और नैतिक जीवन के आदर्श इन सूक्तियों में समाविष्ट हैं। इनसे कवि की बहिर्दृष्टि और अन्तर्दृष्टि के व्यापक, सूक्ष्म और चमत्कारपूर्ण ज्ञान का परिचय प्राप्त कर हमें आश्चर्यविभोर हो जाना पड़ता है। उदाहरण के रूप में कुछ सूक्तियां नीची दी जा रही हैं —

(१) मछी तारु किआ करे, पंछी किआ आकास ।

(नानक-वाणी, भाग की वार)

(२) हंस, हेत, लोभ, क्रोध, चारे नदीआ अगि ।

(नानक-वाणी, भाग की वार)

१. गुरु ग्रंथ संहिता की साहित्यिक विशेषता. डा० गोपाल सिंह, पृष्ठ २४९

- (३) झूठा इदु संसार किनि समझाइऐ ॥
(नानक-वाणी, माझ की वार)
- (४) मारु मीहि न तृपतिआ अगी लहै न मुब ।
(नानक-वाणी, माझ की वार)
- (५) राजा राज न तृपतिआ साइर भरे कि सुक ।
(नानक-वाणी, माझ की वार)
- (६) भै बिनु कोई न लंघसि पारि ।
(नानक-वाणी, गउडी गुमारेरी, सबद १)
- (७) न जीउ मरै, न डुबै तरै ।
(नानक-वाणी, गउडी गुमारेरी, सबद २)
- (८) बिनु बख सूनो घर हाटु ॥
(नानक-वाणी, गउडी, सबद ६)
- (९) गुर मिलि खोले बजर कपाट ।
(नानक-वाणी, गउडी, सबद ६)
- (१०) सोइन लंका, सोइन माडी, संपे किसै न केरी ॥
(नानक-वाणी, गउडी, चैता, सबद १३)
- (११) हीरे जैसे जनमु है कउडी बदले जाइ ।
(नानक-वाणी, गउडी-चेती, सबद १८)
- (१२) आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागदु होइ ।
(नानक-वाणी, गउडी-चेती, सबद १८)
- (१३) रूपै कामै दोसती, भूजे साई गढ ॥
(नानक-वाणी, मलार की वार)
- (१४) सोई मउला जिनि जगु मउनिआ ।
(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद २८)
- (१५) काही सुरति मलूकी वेसु ।
(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद २६)
- (१६) जेही सुरति तहा तिन राहु ।
(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद ३०)
- (१७) बिनु तेलु दीवा किउ जलै ?
(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद ३३)
- (१८) तू ओना का तेरे ओहि ।
(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद ३०)
- (१९) जह करणी तह पूरी मति ।
(नानक-वाणी, सिरी रागु, सबद ३०)

- (२०) देवणहारे कै ठधि दानु ।
(नानक-बाणी, सिरीरागु , सबद ३२)
- (२१) जेही धातु तेहा तिन नाम ।
(नानक-बाणी, सिरी रागु, सबद ३२)
- (२२) आपि बीजि आपे ही खाइ ।
(नानक-बाणी, सिरी रागु, सबद ३२)
- (२३) फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ ॥
(नानक-बाणी, सिरी, रागु,)
- (२४) सोचै सोचि न होवई जे सोची लख बार ।
(नानक-बाणी, जपु जी, पउड़ी १)
- (२५) बिरगु नावै नाही को पाउ ॥
(नानक-बाणी, जपु जी, पउड़ी १६)
- (२६) बिरगु गुण कीते भगति न होइ ।
(नानक-बाणी, जपु जी, पउड़ी २१)
- (२७) बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥
(नानक-बाणी, जपु जी, पउड़ी २४)
- (२८) जोरु न जीबणि मरणि न जोरु ।
(नानक-बाणी, जपु जी, पउड़ी ३३)
- (२९) रीटीआ कारन पूरनि ताल ॥
(नानक-बाणी, आसा की वार)
- (३०) नदीआ बाहु बिछुनिआ मेल। संजोगी राम ।
(नानक-बाणी, आसा, छंद ५)
- (३१) हुकमु करहि मूरख गावार ।
(नानक-बाणी, वसंतु, सबद ३)
- (३२) सूरज एको रुति अनेक ।
(नानक-बाणी, आसा, सबद ३०)
- (३३) मनु कचरु काइआ उदिआनै ।
(नानक-बाणी, गउड़ी गुआरेरी, असटपदी २)
- (३३) काम क्रोधु काइआ कउ गाले ।
जिउ कंचन सोहागा दालै ॥
(नानक-बाणी, रामकली, ओधंकार, पउड़ी १८)
- (३४) चंचलु सोतु न रहई ठाइ ।
(नानक-बाणी, रामकली, ओधंकार, पउड़ी ३३)
- (३५) माइआ माइआ करि मुए माइआ किसै न साथि ॥
(नानक-बाणी, रामकली, ओधंकार, पउड़ी ४२)

(३६) कूड़ु बोलि बोलि भजकणा चुका धरम बोचार ।

(नानक-वाणी, सारंग की वार)

(३७) कूड़ु राजा, कूड़ु परजा, कूड़ु, सभु संसार ॥

(नानक-वाणी, भासा की वार)

साराश यह कि गुरु नानक की भाषा इतनी व्यवहारोपयोगी थी कि पंजाब की जनता द्वारा सूक्तियों के रूप में अपना ली गई ।

गुरु नानक देव के दार्शनिक सिद्धान्त^१

परमात्मा :—सृष्टि के अधिकांश धर्मों में परम तत्त्व परमात्मा को ही स्वीकार किया गया है । तर्क के द्वारा परमात्मा की अनुभूति होना अशक्य है । परमात्मा की अनुभूति में श्रद्धा-त्मक भावना का बहुत बड़ा महत्व है । गुरु नानक देव ने अनुभूति श्रद्धा के बलपर अपने मूलमंत्र अथवा बीजमंत्र में परमात्मा के स्वरूप की इस भाँति व्याख्या की है ।

“१ श्रोँ सतिनामु करतापुरखु निरभउ निरवैह अकाल मूरति अजूनी सेभं गुर प्रसादि ।”^२

मोहनसिंह जी ने मूलमंत्र की व्याख्या इस ढंग से की है —

“वह एक है, शब्द अथवा वाणी है और इसी के द्वारा सृष्टि रचता है । वह मत्प है, नाम है । उसके अस्तित्व का वाचक केवल नाम है और वही सत्य है और शेष जितने नाम हैं, उसके गुणों के वाचक हैं । उसके प्रत्यक्ष गुण ये हैं —‘वह कर्तार है, पुरियों का निर्माण करके उनके बीच निवास करने वाला है, महान् पौरुष और महान् शक्तिशाली है । वह समस्त शक्तियों का स्वामी है ।’—परमात्मा के निषेधात्मक गुण ये हैं —‘वह भय से रहित है वर से रहित है, मूर्तिमान् है, काल से रहित है, योनि के अन्तर्गत नहीं आता, त्रिपुटी से परे है ।’—इस प्रकार प्रत्यक्ष गुणों से प्रारम्भ करके फिर प्रत्यक्ष गुणों में अन्त करने है । “वह स्वयंभू है । वह प्राप्त होने वाला है और उसकी प्राप्ति गुरु-कृपा से होती है ।”^३

वास्तव में बीजमंत्र अथवा मूलमंत्र का अत्यधिक महत्व है । यदि हम गुरु नानक की समस्त वाणी को इसी बीजमंत्र का भाष्य कहे, तो कुछ अनुपपुक्त न होगा ।^४

उपासक की चित्त-वृत्ति एवं मन की अवस्था के अनुसार परमात्मा के गुण भी उन्निषदों और श्रीमद्भगवद्गीता में भिन्न भिन्न कहे गए हैं । गुरु नानक ने भी उपासक की आन्तरिक वृत्ति के अनुकूल ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण तीन प्रकार का मिलता है—(१) निर्गुण ब्रह्म, (२) सगुण ब्रह्म और (३) सगुण-निर्गुण दोनों से मिश्रित—उभय विधि ।

१. निर्गुण ब्रह्म :—निर्गुण ब्रह्म का वर्णन तो असंभव है, क्योंकि वहाँ तक न मन पहुँच सकता है, न वाणी, न इन्द्रियाँ । उसका केवल संकेत मात्र किया जा सकता है । ब्रह्म-प्रतिपादन के लिए दो शैलियों का प्रयोग होता है—एक तो विधि शैली और दूसरी निषेधात्मक

१. विस्तृत विवेचन के लिये देखिये,—श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, जयराम भिन्न

२. सिक्खों का मूलमंत्र, नानक-वाणी, पृष्ठ १

३. पंजाबी भाषा विविधान अर्थात् गुरुमति सिद्धान्त, मोहन सिंह, पृष्ठ २१, २२, २३

४. विस्तृत विवेचन के लिये देखिये, श्री गुरु-ग्रंथ दर्शन जयराम भिन्न पृष्ठ ६१—६५

शैली । गुरु नानक देव ने निर्गुण ब्रह्म के निरूपण में निषेधात्मक शैली का सहारा लिया है और सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन में विधि शैली का ।

उन्होंने निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन बड़ी ही रोचक, मौनिक शैली में किया है ।—

‘धरबद नरबद धुंघुंकारा ।.....

बेद कतेव न सिमृत सासत । पाठ पुराण उदै नहो आसत ।

(नानक-वाणी, मारू सोलहे १५)

निर्गुण ब्रह्म के सूक्ष्मत्व का उल्लेख गुरु नानक में बहुत पाया जाता है । ‘जपु जी’ में एक स्थल पर उन्होंने कहा है —

ता कीआ गलीआ कथीआ न जाहि ।

जो को कहै पिछै पछुताइ ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पङ्क्ति २६)

उम निर्गुण ब्रह्म में जल, धूल, धरती और आकाश कुछ भी नहीं है । वह स्वयम्भू अपने आप में प्रतिष्ठित है । वहाँ न माया है, न छाया है, न सूर्य है, न चन्द्रमा और न अपार ज्योति ही —

जल थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार ॥२॥

ना तदि माऱआ मगनु न छाडआ न मूरज बन्द न जोति अपार ॥

(नानक-वाणी, गूजरी, असटपदी २)

श्री गुरु नानक देव एव उपनिषदों की निर्गुण-प्रतिपादन-शैली में असाधारण साम्य है ।

२ सगुण ब्रह्म :—साक्ष्य मतानुसारी सृष्टि-रचना में प्रकृति का बहुत बड़ा हाथ मानने हैं । उनके अनुसार बिना प्रकृति की सहायता के सृष्टि-रचना ही नहीं सकती । परन्तु गुरु नानक देव ने स्पष्ट रूप से इस बात को माना है ‘निर्गुण ब्रह्म ने बिना किसी अवलम्बन के अपने आपको सगुण रूप में प्रकट किया’ —

आपे आपु उपाइ निराला ॥

(नानक-वाणी, मारू, सोलहे १६)

जगतु उपाइ खेनु रचाइआ ॥

(नानक-वाणी, मारू, सोलहे ११)

आपि उपाइआ जगतु सबाइआ ।

(नानक-वाणी, मारू, सोलहे ३)

परमात्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन गुरु नानक ने दो प्रकार से किया है (क) परमात्मा के विराट् स्वरूप के माध्यम द्वारा (ख) परमात्मा के अन्य गुणों के चित्रण द्वारा ।

विराट् स्वरूप का गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर चित्रण किया है । उस विराट् स्वरूप के चित्रण में प्रभु का सगुण स्वरूप व्यंजित है । उदाहरणार्थ —

“गगनमै थानु रवि चन्द दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।

धूपु मलआनलो, पवणु जवरो करै, मगल बनराइ फूलैत जोती ॥

(नानक-वाणी, घनासरी, सबद ६)

विराट् स्वरूप के निरूपण में अनेक स्थलों पर यह कहा गया है कि प्रभु ही सब कुछ है। उदाहरणार्थ—“परमात्मा आप ही पवन, जल और बैरवानर है। इनका मेल भी प्रभु ही करता है। आप ही शशि और आप ही पूर्ण सूर्य है..... वह आप ही भ्रमर है, वही वृक्ष है और वही उस वृक्ष का फूल और फल है। वह आप ही मच्छ-कच्छ की करणी करता है और उसका रूप कुछ समझ में नहीं आता। इस प्रकार वह स्वयं दिन और रात बना हुआ है।”
(नानक-वाणी, मारु सोलहे १)

जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म अनन्त है और उसका कथन नहीं किया जा सकता, उसी भाँति सगुण ब्रह्म का विराट्-स्वरूप भी कथन की सीमा में परे है। तभी तो गुरु नानक देव ने ‘जपु जी’ में कह दिया है।

अंतु न जापे कीता आकार । अंतु न जापे पारावार ॥

अंत कारणि केले बिल्लाहि । ता के अंत न पाए जाहि ॥

एहु अंतु न जाणे कोट । बहुता कीऐ बहुता होइ ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पउडी २४)

गुरु नानक देव ने परमात्मा को स्थान-स्थान पर सर्वव्यापी, सर्वान्वयि, सर्वशक्तिमान्, दाता, भक्त-वत्सल, पतिपावन, परमकृपानु, सर्वप्रेरक, शीलवन्त, सत्वा, सहायक, माता-पिता, स्वामी, धारणदाता आदि विशेषणों से युक्त कर उसके सगुण स्वरूप को अभिव्यक्त किया है। हाँ, उन्होंने स्थान-स्थान पर अवतारवाद का खण्डन किया है यथा —

“मन महि भूरे रामचन्दु सीता लछमणु जोगु ॥

(नानक-वाणी, सलोक बारा ते वधोक)

“अंधुले दइसिरि भूँड कटाइआ रावणु मारि किया बडा भइआ ॥

.....

आगे अंतु न पाइओ ताका कंसु छेदि किया बडा भइआ ॥

(नानक-वाणी, आसा राग, सबद ७)

गुरु नानक ने रामादिक अवतारों के संबंध में एक स्थान पर कहा है कि एक परमात्मा ही निर्भय और निरंकार है, रामादिक तो धूल के समान तुच्छ है —

नानक निरभउ निरकार होरि केले रझ खाल ॥

(नानक-वाणी, आसा की बार)

उन्होंने स्थान-स्थान पर जोरदार और स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मेरा परमात्मा एक ही है। यही बात उपनिषदों में भी पाई जाती है। इस्लाम का एकेश्वरवाद तो प्रसिद्ध ही है। गुरु नानक की उक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं —

साहिब मेरा एको है । एको है भाई एको है ॥

(नानक-वाणी, आसा राग, सबद ५)

साहिबु मेरा एकु है अवरु नही भाई ॥

(नानक-वाणी, आसा-काफी, अष्टपदीआ १८)

निर्गुण और सगुण उभय-स्वरूप

परमात्मा के निर्गुण और सगुण स्वरूपों के अतिरिक्त गुरु नानक देव ने स्पष्ट रूप से उसके उभय स्वरूपों को माना है। उनके विचार में ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। इसके साथ ही साथ वह निर्गुण और सगुण दोनों ही एक साथ है। गुरु नानक देव ने “सिद्ध गोष्ठी” में कहा है कि परमात्मा ने अव्यक्त निर्गुण से सगुण ब्रह्म को उत्पन्न किया और वह दोनों आप ही है —

अविगतो निरमाद्गु उपजे निरगुण ते सरगुण धीमा ॥

(नानक-बाणी, रामकली, सिध गोसटि, पडड़ी २४)

सृष्टिक्रम

सृष्टि-क्रम भी अद्भुत पहेली है। विभिन्न दार्शनिकों और तत्त्ववेत्ताओं ने इस समस्या को अपने-अपने ढंग से मुलझाने का प्रयास किया। परन्तु फिर भी वह ज्यों की त्यों बनी रही। गुरु नानक देव ने सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में एक ऐसे समय की कल्पना की है, जब सृष्टि का नाम-निशान तक नहीं था। वे कहते हैं, “अगणित युगों पर्यन्त महान् अन्धकार था। न तो पृथ्वी थी और न आकाश था। प्रभु का अपार हुक्म मात्र था। न दिन था, न रात थी। न तो चन्द्रमा था, न सूर्य । ” पाठ-पुराण तथा सूर्योदय और सूर्यास्त भी न थे। वह अगोचर, वह अलख स्वयं अपने को प्रदर्शित कर रहा था ।”

(नानक-बाणी, मारु सोलहे १५)

गुरु नानक देव की उपर्युक्त विचारावली एवं ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की विचारधारा में असाधारण साम्य है^१। तैत्तिरीय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि में भी इसी प्रकार की कल्पना है^२।

गुरु नानक देव ने परमात्मा के निर्गुण स्वरूप को कहीं कहीं शून्य कहा है और इसी से सब सृष्टि की उत्पत्ति मानी है^३। पर इस शून्य का अर्थ “कुछ नहीं” नहीं है। शून्यावस्था का तात्पर्य उस स्थिति से है, जब संसार की उत्पत्ति के पूर्व सारी शक्तियाँ एक मात्र निर्गुण ब्रह्म में केन्द्रीभूत थी।

सृष्टि के मूलार्थ के इस परम तत्व को गुरु नानक देव ने ‘ओंकार’ की संज्ञा से भी प्रतिष्ठित किया है और इसी ‘ओंकार’ को ब्रह्मादिक तथा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण माना है^४।

गुरु नानक देव परमात्मा को ही सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण मानते हैं —

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥

(नानक बाणी, आसा की वार)

१. ऋग्वेद मण्डल १०, १२९ सूक्त, ऋचा १ और २

२. बृहद् विधेयन के लिये देखिये, श्री गुरुग्रन्थ-दर्शन, जयराम मिश्र (सृष्टि-क्रम), पृष्ठ ९६-११९

३. नानक बाणी, “सुन कला अपरंपरि बारी ।” आदि, मारु सोलहे १०

४. नानक-बाणी, “ओंकारि ब्रह्मा उत्पत्ति” रामकली, दशमो ओंकार ॥

सांख्य मतानुसार सृष्टि-रचना के मूल कारण पुरुष और प्रकृति हैं। पर गुरु नानक को यह मत मान्य नहीं। वे परमात्मा को ही सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

गुरु नानक के अनुसार संसार की उत्पत्ति परमात्मा के 'हुकम' से होती है। यह 'हुकम' अनिवार्य है —

हुकमी होबनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।

.....

हुकमे अंदरि सभु को बाहिर हुकम न कोइ ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी २)

गुरु नानक देव ने 'हुकम' की महत्ता का मारू राग में विशद चित्रण किया है —

“हुकमे आइआ हुकमि समाइआ

.....

हुकमे सिध साधिक बीचारे ॥

(नानक-वाणी, मारू सोलहे १६)

सृष्टि-रचना का समय अज्ञात और अनिश्चित है। पंडित, काजी इत्यादि कोई भी सृष्टि-रचना का समय नहीं जानते। जिसने सृष्टि-रचना की है, वही इन सब बातों को जान सकता है —

कवणु सु वेला बखतु कवणु कवणु थिति कवणु वाह।

.....

जा करता सिरठी कउ साजे आपे जारौ सोई ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी २१)

इसी प्रकार “सिध गोसटि” (रामकली) की २३वीं पउड़ी में यह बतलाया है कि सृष्टि-रचना ने प्रारम्भ में विचार करना आश्चर्यमय है।

सृष्टि के अनन्त विस्तार परमात्मा के एक वाक्य से होते हैं —

“कीता पसाउ एको कवाउ”

(नानक-वाणी, जपु जी पउड़ी १६)

ज्योंही 'हुकम' की उत्पत्ति होती है, त्योंही हुउमै (अहंकार) की उत्पत्ति होती है। यही 'हुउमै' जगत् की उत्पत्ति का मुख्य कारण है —

“हुउमै बिचि जगु उपजै”

(नानक-वाणी, सिध गोसटि, पउड़ी ६५)

यही हुउमै बाह्य और आन्तरिक सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। तीनों गुण हुउमै में ही क्रियाशील होते हैं और वे ही समस्त सृष्टि के कारण होते हैं। गुरु नानक देव के अनुसार परमात्मा 'अफुर अवस्था' में तो सबसे परे और अव्यक्त है, किन्तु वही 'सफुर अवस्था' में सर्व-व्यापी और सर्वान्तरात्मा है।^१

योगवासिष्ठ के अनुसार भी अहंकार ही सूक्ष्म और सूक्ष्म सृष्टि का कारण है ।^१
 गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि सृष्टि की उत्पत्ति जिस परमात्मा से होती है, उसी परमात्मा में वह बिलीन भी हो जाती है । निम्नलिखित उदाहरणों से इसकी पुष्टि होती है—

जिसने उपजे तिसते बिनसै ।

(नानक-बाणी, सिरों राग, सबद १६)

जिनि सिरि साजी तिनि फुनि गोई ॥

(नानक-बाणी, आसा, सबद २१)

तुभ ते उपजहि तुभ माहि समावहि ॥

(नानक-बाणी, मारु-सोलहे १४)

मुण्डकोपनिषद् में भी सृष्टि-रचना और लय का कारण परमात्मा ही बताया गया है
 (मुण्डक० २, खंड १, मंत्र १ तथा मुण्डक १, खंड १, मंत्र ७)

गुरु नानक के अनुसार सृष्टि अनन्त है —

असंख नाव असंख धाव । अगंम अगंम असंख लोअ ॥

(नानक-बाणी, जपु जी, पउडी १६)

इसी प्रकार जपु जी के 'ज्ञान खण्ड' में सृष्टि की अनन्तता का विषय चित्रण किया गया है । सृष्टि की अनन्तता पर उन्होंने आश्चर्य भी प्रकट किया है —

“विसमादु नादु, विसमादु वेद
 ”

विसमादु रूप विसमाद रंगु ।” आदि

(नानक-बाणी, आसा की बार)

गुरु नानक ने वेदान्तियों की भाँति जगत् को मिथ्या नहीं माना है और न इसे भ्रम कहा है । उन्होंने जगत् को स्थान-स्थान पर सत्य कहा है —

सचे तेरे खंड सचे ब्रह्मंड । सचे तेरे लोअ सचे आकार ॥

(नानक-बाणी, आसा की बार)

उन्होंने जहाँ कहीं सृष्टि को झूठा अथवा मिथ्या कहा है, उसका यही अभिप्राय है कि वह नश्वर और क्षणभंगुर है, शाश्वत नहीं । अन्त में परमात्मा में ही यह सृष्टि लय हो जाती है —

तुधु आपे सृसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई ॥

(नानक-बाणी, रागु आसा, सोदरु)

हउमै (अहंकार)

‘अफुर’ ब्रह्म में परमात्मा के ‘ह्रकम’ से क्रियाशीलता उत्पन्न होती है और यही क्रियाशीलता सगुण ब्रह्म बन जाती है । ‘ह्रकम’ की उत्पत्ति के साथ ही साथ हउमै (अहंकार) की

उत्पत्ति होती है। यही हउमै अहंकार की उत्पत्ति का मुख्य कारण है —

हउमै बिचि जगु उपजे ।

(नानक-वाणी, रामकली, सिध गोसटि)

योगवासिष्ठ में भी अहंकार को ही सृष्टि-उत्पत्ति का मूल कारण माना गया है ।^१

‘हउमै’ इतना भयानक रोग है कि मनुष्य भर ही इस रोग के वशीभूत नहीं हैं, बल्कि पवन, पानी, वैश्वानर, धरती, सातो समुद्र, नदियाँ, खण्ड, पताल, षट्-दर्शन सभी पर इसका प्रभुत्व है। यहाँ तक कि त्रिदेव भी इससे मुक्त नहीं हैं —

नानक हउमै रोग बुरे ।

...

रोगी खट दरसन भेखधारी नाना हठी अनेका ॥

(नानक-वाणी, भैरव, असटपदी १)

गुरु नानक द्वारा वर्णित अहंभाव की प्रवृत्तियों तथा श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में वर्णन की गई आसुरी प्रवृत्तियों में अत्यधिक साम्य है। सासारिक पुरुषों के सारे कार्य अहंकार ही में हुआ करते हैं। जन्म-मरण, देना-लेना, लाभ-हानि, सत्य-असत्य, पुण्य-पाप, नरक-स्वर्ग, हँसना-रोना, शीघ्र-अशीघ्र, जाति-पाति, ज्ञान-अज्ञान, बन्धन-मोक्ष आदि सब कुछ ‘हउमै’ के द्वारा होते हैं। उनकी अन्य क्रियाएँ भी ‘हउमै’ के द्वारा ही होती हैं। गुरु नानक देव ने ‘आसा की वार’ में इसका चित्रण किया है—

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ।

...

हउमै करि करि जंत उपाइआ ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

सारांश यह कि ‘हउमै’ जीवात्मा का सासारिक यात्रा का प्रमुख कारण है। रजोगुण, तमोगुण एवं सत्त्वगुण के संयोग से नाना भाति की सृष्टि-रचना होता है। अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं। अनेक प्रकार के कर्म इसी ‘हउमै’ के कारण किए जाते हैं। इन कर्मों के प्रभाव और संस्कार जीवात्मा को मूकम शरीर द्वारा बाँधे रहते हैं। इस प्रकार जीव अनेक योनियों में भटकता रहता है और जीव का आपापन निरन्तर जारी रहता है ।^२

जिस प्रकार मनुष्य की वासनाएँ अनन्त हैं, उसी प्रकार हउमै के भेद भी अनन्त हो सकते हैं। फिर भी स्थूल दृष्टि से गुरु नानक की वाणी में हउमै के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं —

(१) धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार : ‘मैं ध्यानी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं तपस्वी हूँ, मैं योगी हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ ।’ यही धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार है। यह अहंकार साधक को नीचे गिरा देता है। गुरु नानक देव ने स्पष्ट कर दिया है, “लाखों भलाइयाँ, लाखों पुण्य,

१. द योगवासिष्ठ, की० एल० ब्राजेश, पृष्ठ १००

२. गुरुमति दर्शन : भेरसिंह, पृष्ठ २४४

कर्म, तीर्थों में लाखों तप, जंगलों में योगियों का सहज योग आदि आदि यदि अहंभाव से किए गए हैं, तो वे सब मिथ्या बुद्धि से किए गए हैं ।”

लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवागु

.....

नानक मतो मिथिआ करमु सचा नोसागु ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

(२) विद्यागत अहंकार : विद्यागत अहंकार आध्यात्मिक प्रगति में बहुत बड़ा बाधक है । गुरु नानक की पैनी दृष्टि इस पर थी । उन्होंने कहा है, “यदि पढ़-पढ़ कर काफिले भर दिए जायें, पढ़ पढ़ कर नावे लाद दी जायें, पढ़-पढ़ कर गड़वे भर दिए जायें और अध्ययन में ही सारे वर्ष, सारे मास, सारी आयु, सारी ससि व्यतीत कर दी जायें, फिर भी नानक के हिसाब में यही बात ठोक है कि अध्ययन-संबंधी सारे अहंकार सिर खपाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ।”—

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि... ..आदि

(नानक-वाणी, आसा की वार)

(३) कर्मकाण्ड और वेश संबंधी अहंकार . बहुत से साधक इन्हीं के बल पर संसार में अपनी ख्याति चाहते हैं । किन्तु उन्हें आन्तरिक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती —

बहु भेल कीआ देही दुखु दीआ

.....

रहै बेबाणी मड़ी मसाणी । अंधु न जागै फिर पछुताणी

(नानक-वाणी, आसा की वार)

गुरु नानक देव ने ऐसे वेशादिक अहंकार की विस्तार के साथ विवेचना की है । योगियों के भगवा-वेश, कंधा, भोली, तीर्थ-भ्रमण, विभूति-धारण, धूनी रमाना, संन्यासियों के मूंड मुड़ाने तथा कमण्डल धारण करने आदि बाह्य-वेशो एव तद्गत अहंकारों की तीव्र भर्त्सना की है —

घोली गेरु रग चडाइआ वसत्र भेल भेखारी ।

.....

इसत्री तजि करि कामि विआपिआ चितु लाइआ पर नारी ॥

(नानक-वाणी, मारु, असटपदी ७)

(४) जाति-सम्बन्धी अहंकार :—“मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं कुलीन हूँ,” आदि का अहंकार मनुष्यों के बीच में ऐसी खाई खोद देता है, कि वह शताब्दियों तक नहीं पटती । गुरु नानक देव ने जाति-संबंधी अहंकार को दूर करने के लिए अपने विचार इस भाँति प्रकट किए हैं —“जीव मात्र में परमात्मा की ज्योति समझो । जाति के संबंध में प्रश्न न करो, क्योंकि आगे किसी भी प्रकार की जाति नहीं थी ।”—

“जाएहु जोति न पूछहु जाती आगे जाति न हे ।”

(नानक-वाणी, आसा, सबद ३)

ग्रमे जाति न जोरु है, ग्रमे जीउ नवे ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

जाति महि जोति, जोति महि जाता, अकल कला भरपूर रहिआ ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

(५) धन-सम्पत्ति सम्बन्धी अहंकार :— धन-सम्पत्ति सम्बन्धी अहंकार मनुष्य को एकदम वैभवान्ध बना देने है। धन-सम्बन्धी अहंकार के वशीभूत होकर मनुष्य राक्षसी-कर्म करने में प्रवृत्त होता है। उसके सामने सम्पत्ति के प्रतिरिक्त कोई आदर्श नहीं रहता। उसे सदैव महर, मलूक, सरदार, राजा, बादशाह, चौधरी, राउ कहलाने की वासना सताती रहती है। किन्तु ऐसे मनमुख अहंकारी की दशा ठीक वैसी ही होती है, जो दशा दावाप्रि में पड़कर तृण समूह की होती है —

सुइना रुपा संचीऐ मालु जालु जंजालु ।

.....

सभु जगु काजल कोठडी तनु मनु देह सुग्राहि ॥

(नानक-वाणी सिरि राग, असटपदी १६)

सोने-चाँदी का कितना ही संग्रह क्यों न किया जाय, किन्तु यह सब कच्चा है, विष है, क्षार है —

“सुइना रुपा संचीऐ धनु काचा बिनु छारु ॥

(नानक-वाणी, रामकली, दखणी ओझकार, पउडी ४८)

(६) परिवार-सम्बन्धी अहंकार :—परिवार सम्बन्धी अहंकार प्रबल मोह के हेतु है। गुरु नानक देव कहते हैं कि जो सांसारिक व्यक्ति, “बहिन, भोजाई, मास, कूफी, नानी, मौसी” आदि में अहंबुद्धि रखते हैं, वे सचमुच ही मूर्ख हैं। स्मरण रखना चाहिए कि संसार का कोई भी सम्बन्ध अत मे हमारी सहायता नहीं कर सकता —

ना भैरणा भरजाईआ ना मे समुटोग्राह ।

.....

मामे ते मामणीआ भाइर बाप ना माउ ॥

(नानक-वाणी, मारु-काफी, सवद १०)

जितने भी सांसारिक संबंध हैं, सभी बंधन के हेतु हैं —

बंधन मात पिता संसारि । बंधन सुत कनिआ अरु नारि ॥

(नानक-वाणी, आसा, असटपदी १०)

(७) रूप-योवन सम्बन्धी अहंकार : यह अहंकार सार्वभौमिक है। यह अहंकार धनी से लेकर दरिद्र तक मे समान रूप से व्याप्त है। निर्धन से निर्धन और कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने रूप और यौवन पर अभिमान करता है। गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर इस अहंकार की प्रबलता बतलाई है। उन्होंने एक स्थल पर बतलाया है कि पाँच ठग संसार में अत्यन्त प्रबल है। वे हैं राज, माल, रूप, जाति और यौवन। इन पाँचों ठगों ने सारे संसार को ठग लिया है। उन्होंने किसी की भी लज्जा नहीं छोड़ी —

राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे छम ।

एनी ठगी जगु ठगिआ किनै न रखी लज ॥

(नानक-वाणी, मलार की वार)

उन्होंने यह भी बतलाया है कि रूप और काम का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । इन दोनों की प्रबल मैत्री है —

रूपे कामे दोसती

(नानक-वाणी, मलार की वार)

उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि रूप सम्बन्धी अहंकार की क्षुधा कभी शान्त नहीं होती —

रूपी मुख न उतरै

(नानक-वाणी, मलार की वार)

अहंकार के कारण बड़े-बड़े दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं । सद्गुरु ही 'हउमै' के बन्धनों को तोड़ सकता है ।

हउमै बन्धन सतिगुरि तोड़े चितु चंचलु चलणि न दीना हे ।

(नानक-वाणी, माक सोलहे ८)

माया

सृष्टि के प्रारम्भकाल में अव्यक्त और निर्गुण परब्रह्म जिस देशकाल आदि नाम-रूपात्मक सगुण शक्ति से व्यक्त अर्थात् दृश्य-सृष्टि रूप सा देख पड़ता है, उसी को वेदान्त-शास्त्र में 'माया' कहते हैं । लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुसार नाम, रूप और कर्म ये तीनों मूल में एक स्वरूप ही हैं । हाँ, उसमें विशिष्टार्थक सूक्ष्म भेद किया जा सकता है कि 'माया' एक सामान्य शब्द है और उसके दिखावे को नाम, रूप तथा व्यापार को कर्म कहते हैं ।^१

वेदान्तियों की भाँति गुरु नानक देव को माया का स्वतंत्र, अस्तित्व स्वीकार नहीं है । उन्होंने स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि माया की रचना परमात्मा ही ने की—“निरंजन परमात्मा ने स्वयं अपने आपको उत्पन्न किया है और समस्त जगत् में वही अपना खेल बरत रहा है । तीनों गुराँ एवं उनसे सम्बद्ध माया की रचना उसी परमात्मा ने की । मोह को वृद्धि के साधन भी उसी ने उत्पन्न किए ।”

आपे आपि निरंजना जिति आपु उपाइआ ।

आपे खेलु रचाइओनु सभु जगत सबाइआ ॥

त्रैगुण आपि सिरजिघनु माइआ मोहु बधाइआ ।

(नानक-वाणी, सारंग की वार)

गुरु नानक देव ने माया का 'कुदरत' नाम भी स्वीकार किया है—

१. गीता-रहस्य अध्याय कर्मयोगकाण्ड, बाल गंगाधर तिलक. पृष्ठ २६९

कुदरति कबण कहा बीचार ।

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी १६)

आपणि कुदरति आपै जाहीं ।

(नानक-वाणी, सिरो राग, असटपदी १)

माया की शक्ति मोहिनी शक्ति है । इसी से इसका प्रभुत्व सारे संसार में व्याप्त है । यह नाना रूपों में व्याप्त है —

माइआ मोहि सगलु जगु छाइआ ।

कामणि देखि कामि लोभाइआ ॥

सुत कंचन सिउ हेतु बचाइआ ॥१॥२॥

(नानक-वाणी, प्रभाती-विभास, असटपदी २)

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर इस बात का संकेत किया है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश माया से उत्पन्न हुए हैं और वे त्रिगुणात्मक माया में बंधे हैं —

एका माई जुगति बिआई तिन चेले परवारु ।

इकु ससारी, इकु भडारी, इकु लाए दीवारु ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी ३०)

उन्होंने माया की प्रबलता स्थान-स्थान पर रूपों द्वारा प्रदर्शित की है । एक स्थान पर गुरु नानक देव ने माया को उस बुरी सास के रूप में माना है, जो जीवात्मा रूपी बंधू को पति-परमात्मा से मिलने नहीं देती —

सासु बुरी घरि वासु न देवै पिर सिउ मिलण न देद बुरी ॥

(नानक-वाणी, आसा, सबद २२)

एक स्थान पर उन्होंने माया को ऐसी सर्पिणी माना है, जिसके विष के वशीभूत सारे जीव हैं —

इउ सरपनि कै बसि जीअडा ।

(नानक-वाणी, सिरो राग, असटपदी १५)

गुरु नानक देव ने कहा है कि माया की सारी रचना धोखा है । इसमें कुछ सार नहीं है —

बाबा माइआ रचना धोहु ॥१॥रहाउ ॥

(नानक-वाणी, सिरो राग, सबद ३)

सत्-संगति, सद्गुरु-प्राप्ति, नाम-जप, प्रेमाभक्ति से माया के बंधन कट जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति होती है ।

जीव, मनुष्य और आत्मा

जीव परमात्मा की सृष्टि की सबसे चेतनशील शक्ति है; इसमें सुख-दुःख अनुभव करने की प्रदुष्ट शक्ति तथा चेतना है । गुरु नानक देव के अनुसार जीव परमात्मा के 'हुकम' से उत्पन्न होने है —

“हुकमी होबनि जीअ”

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी २)

‘गउड़ी राग’ के एक सबद में भी यही बात स्वीकार की गई है कि जीव परमात्मा के ‘हुकम’ से अस्तित्व में आते हैं और ‘हुकम’ से ही फिर उसी में लीन हो जाते हैं —

हुकमे आवै हुकमे जाइ । आगे पाछे हुकमि समाइ ।

(नानक-वाणी, गउड़ी, सबद २)

जीव परमात्मा से उत्पन्न होते हैं और उनके अंतर्गत परमात्मा का निवास है, इसीलिए गुरु नानक देव ने अपनी वाणी में स्थान-स्थान पर जीव को श्रमर माना है —

देही अंदरि नामु निवासी । आपे करता है अविनासी ॥

ना जीउ मरै न मारिआ जाई कगि देखे सबदि रजाई हे ॥१३॥६॥

(नानक-वाणी, मारु सोलहे, ६)

न जीउ मरै, न हूब, तरै ॥

(नानक-वाणी, गउड़ी, सबद २)

जीव अनन्त है —

तिनके नाम अनेक अनंत ।

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी ३७)

जीवां का स्वामी परमात्मा है । उसी के अधीन समस्त जीव हैं —

जीअ उपाइ जुगति वसि कीनी ।

(नानक-वाणी, मलार, असटपदी २)

जीअ उपाइ जुगति हथि कीनी ॥

(नानक-वाणी, रागु आसा, सबद ७)

जीउ पिडु सभु तेरै पासि ।

(नानक-वाणी, सिरि रागु, सबद ३१)

गुरु नानक जी के अनुसार जीवों को उत्पन्न करके परमात्मा ही उनके भोजन आदि का प्रबंध करता है —

जीअ उपाइ रिजकु दे आपे ॥

(नानक-वाणी, मारु सोलहे २२)

किन्तु जीव जब अहंकारवश अपनी पृथक् सत्ता समझने लगता है, तो उसकी बढ़ी दुर्दशा होती है —

जह जह देखा तह तह तू है, तुझने निकसी फूटि मरा ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, सबद ३१)

मायाश्रस्त होने के कारण जीव अनेक योनियों में भटकते रहते हैं । कभी रूख-वृक्ष की योनि धारण करनी पड़ती है, कभी पक्षियों की योनि में जाना पड़ता है । और कभी सर्प योनि में जन्म धारण करना पड़ता है —

ना० बा० फा०—८

केते रुख बिरख हम चीने, केते पसू उपाए ।

केते नाम कुली महि घाए, केते पंख उडाए ॥

(नानक-वाणी, गडड़ी-चेती, सबद १७)

सारांश यह कि जिस भाँति जाल में मछली पकड़ी जाती है, उसी भाँति मनुष्य भी माया के जाल में जकड़ा रहता है —

जिउ मछी तिउ माणसा पवै अचिता जातु ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, असटपदी ४)

अंत में जीव साधन-सम्पन्न होकर परमात्मा में ही विलीन हो जाता है —

तुभ ते उपजहि तुभ माहि समावहि ।

(नानक-वाणी, मारू-सोलहे, १४)

मनुष्य

इस लोक की जीव-सृष्टि का मनुष्य ही सर्वाधिक चेतनशील प्राणी है। बड़े भाग्य से मानव जन्म होता है।

माणसु जनमु दुलंभ गुरुमुखि पाइआ ।

गुरु नानक देव ने मानव-जीवन की आयु को— गर्भावस्था, बाल्यावस्था, यौवावस्था, वृद्धावस्था, अति वृद्धावस्था, मरणावस्था में—विभाजित करके यह बतलाया है कि उसकी सारी आयु-व्यर्थ ही नष्ट हो रही है।^१

एक स्थल पर गुरु नानक देव ने सारी आयु का निचोड़ निम्नलिखित ढंग से रक्खा है, “मनुष्य की दस वर्ष तक तो बाल्यावस्था रहती है। बीस वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते उसकी रमण की अवस्था आ पहुँचती है। तीस वर्ष तक सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। चालीस वर्ष तक प्रौढ़ावस्था आ जाती है और पचास वर्ष तक पहुँचने-पहुँचने पर खिसकने लगते हैं। साठ वर्ष तक पहुँचते पहुँचते वृद्धावस्था आ जाती है। सत्तर वर्ष की अवस्था में मनुष्य मति-हीन हो जाता है। अस्सी वर्ष में वह व्यवहार के योग्य नहीं रह जाता। नब्बे वर्ष में वह मसनद का सहारा ले लेता है और सर्वथा शक्तिहीन हो जाने के कारण कोई वस्तु जानता नहीं।

दस बालसणि बीस रवणि तीसा का सुन्दर कहावे ॥” आदि

(नानक-वाणी, मलार की बार)

मनुष्य में परमात्मा के वियोग और मिलन के उपादान दोनों ही विद्यमान रहते हैं। कमल वृत्ति वाले मनुष्य परमात्मा से मिल जाते हैं और मेढक वृत्ति वाले विषय रूपी सिंवार का ही भक्षण करते हैं —

विमल भभारि बससि निरमल जल पदमनि जावल रे ॥आदि ॥

(नानक-वाणी, मारू, सबद ५)

१. नानक-वाणी, पहिली पहरै रीति, कै वणजाविआ मित्रा ... आदि, सिरिराट्ट, पहरै ।

मनुष्य अपनी मनमुखी और शाक्त वृत्तियों के कारण ही परमात्मा से विमुख हो जाता है —

जग सिउ भूठ प्रीति मनु बेधिआ जनसिउ बाहु रचाई ।

.....

जम दरि बाधा ठउर न पावै अपुना कीआ कमाई ॥

(नानक-वाणी, सोरठि, सबद ३)

मनुष्य यद्यपि प्रकाश और अन्धकार वृत्ति का अपूर्व सम्मिश्रण है, पर गुरु नाक देव ने मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति जगाने के लिए स्थान-स्थान पर बड़े जोरदार शब्दों में कहा है कि मनुष्य की काया परमात्मा के रहने का निवासस्थान है —

काइआ नगर नगर गड़ अंदरि ।

साचा बासा पुरि गगनंदरि ॥

(नानक-वाणी, मारू सोलहे १३)

परमात्मा रूपी अमृत मनुष्य के घट के भीतर ही है। उसे बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है —

मन रे थिरु रहु, मनु कत जाही जीउ ।

बाहरि डूढत बहुनु दुखु पावहि धरि अमृतु घट माही जीउ ॥

(नानक-वाणी, सोरठि, सबद ६)

शरीर के भीतर ही परमात्मा की अपार ज्योति रखी हुई है —

काइआ महलु मंदरु घर हरि का तिसु महि राखी जोति अपार ।

(नानक-वाणी, मलार, सबद ५)

परमात्मा की अपार ज्योति का अपने में साक्षात्कार करना ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है ।

आत्मा

वास्तव में आत्मा में परमात्मा और परमात्मा में आत्मा का निवास है। वेदान्तवादी इसी से आत्मा परमात्मा में अभिन्नता प्रदर्शित करने हैं। गुरु नानक देव ने भी आत्मा और परमात्मा में अभिन्नता प्रदर्शित की है —

आतम महि रामु, राम महि आतमु ॥

(नानक-वाणी, भैरउ, असटपदी १)

आतम रामु, रामु है आतम

(नानक-वाणी, मारू सोलहे १०)

इसी से आत्मा सत्, चित्, आनन्द-स्वरूप, अजर, अमर, नित्य, शाश्वत है ।

मनुष्य का परम पुरुषार्थ आत्मा-परमात्मा के एकत्व-दर्शन में ही है —

आतमा परमात्मा एको करै ।

(नानक-वाणी, धनासरी, सबद ४)

आत्मोपलब्धि में गुरु का बहुत बड़ा हाथ है —

आत्म महि राम, राम महि आत्म चोनसि गुर बीचारा ।

(नानक-वाणी, भैरव, असटपदी १)

आत्म-साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य निरंकार परमात्मा ही हो जाता है —

आत्मु बान्हि भए निरंकारी ।

(नानक-वाणी, आत्मा, असटपदी ८)

आत्मोपलब्धि के आनन्द वर्णनातीत है ।

मन

जिसके द्वारा मनन करने का कार्य सम्पादित किया जाय वह मन है । उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता, योगवासिष्ठ में मन के स्वरूप की व्याख्या मिलती है ।^१ भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने मन को डाटने-फटकारने, फुसलाने-पुचकारने का चेष्टा की है ।

गुरु नानक देव ने मन की उत्पत्ति पंच-तत्वों से मानी है —

ऽहु मनु पच ततु से जनमा ।

(नानक-वाणी, आत्मा, असटपदी ८)

गुरु नानक देव ने मन के दो रूप माने हैं—(१) ज्योतिर्मय अथवा शुद्ध-स्वरूप मन और (२) अहंकारमय अथवा माया से आच्छादित मन ।

इस ज्योतिर्मय मन में आध्यात्मिक धन निहित है —

मन महि माएकु लानु नामु रतनु पदारथु हीरु ॥

(नानक-वाणी, सिरौ राग, सबद २१)

अहंकारमय मन हाथी, शाक्त और अत्यन्त दीवाना है । ऐसा मन माया के बलखण्ड में मोहित तथा हैरान होकर फिरता रहता है और काल के द्वारा इधर-उधर प्रेरित किया जाता रहता है —

मनु मैगलु साकतु देवाना ।

बनर्थडि माइया मोहि हैराना ॥

इत उन जाहि काल के चापे ॥

(नानक-वाणी, आत्मा राग, असटपदी ८)

अहंकारयुक्त मन, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, छोटी बुद्धि तथा द्वैतभाव के वशीभूत है । बिना इसके मारे आध्यात्मिक पथ में उन्नति नहीं होती ।

ना मनु भरै न कारखु होइ ।

मनु बसि, दूता दुरमति दोइ ॥

(नानक-वाणी, गउडी गुझरेरी, असटपदी ३)

^१. देखिए : श्री गुरु ग्रंथ-संस्करण, जयराज मिश्र, पृष्ठ १८६-८७

जब तक मन नहीं मरता, माया भी नहीं मरती —

ना मनु मरे न माइया मरे ।

(नानक वाणी, प्रभातो-विभास, असटपदी १)

सांसारिक विषयों में वैराग्य भावना, दृष्ट जनों की संगति का त्याग, सत्याचरण, गुरु-जना द्वारा अहंकारयुक्त मन ज्योतिर्मय मन के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। मन-निरोध में अनिवर्चनीय सुख प्राप्त होता है। गुरु नानक देव ने मन-निरोध के परिणामों का विशद चित्रण किया है—“हरि के बिना मेरा मन कैसे धैर्य धारण कर सकता है ? करोड़ों कल्पों के दुःखों का नाश हो गया। परमात्मा ने सत्य को टढ़ कर दिया और हमारी रक्षा कर ली। क्रोध समाप्त हो गया। अहंकार और ममत्व जल कर भस्म हो गए। शाश्वत और मदैव रहने वाले प्रेम की प्राप्ति हो गई..... मन अत्यंत अनुरागी और निर्मल हो गया। मन को मार कर निर्मल पद को पहचान लिया और हरि-रस में शराबोर हो गया।..... मन से मन मान गया, जिससे वह शान्त और निश्चल हो गया, उसकी सारी दौड़ समाप्त हो गई।” —

हरि बिनु किउ जीवा मेरी माई ।

.....

तह ही मनु जह ही राखिया ऐसी गुरमति पाई॥

(नानक-वाणी, सारंग, असटपदी १)

हरि-प्राप्ति-पथ

जो दिव्य ज्योति परमात्मा ने हमारे अन्तर्गत रखी है, उसी का साक्षात्कार करना, उसी के साथ मिलजुल एक हो जाना, मानव जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य है। सारांश यह कि जिस निरंकार में हम उपजे हैं और जो सदैव हमारे साथ रह रहा है, किन्तु अज्ञानता और मोहवशा, जिसे हम नहीं समझ पाते, उसी के साथ साधनों के बल पर एक हो जाना ही हरि-प्राप्ति-पथ है। मनुष्य की मानसिक अवस्था, संस्कार, योग्यता, क्षमता आदि को ध्यान में रखते हुए परमात्म-साक्षात्कार के भिन्न भिन्न मार्ग निकाले गए। मोटे रूप से हरि प्राप्ति के चार प्रधान मार्ग हैं — (क) कर्ममार्ग, (ख) योगमार्ग, (ग) ज्ञानमार्ग और (घ) भक्तिमार्ग ।

(क) कर्ममार्ग

कर्म ‘कृ’ धातु से बना है, जिसका अर्थ करना होता है। व्यष्टि एवं समष्टि के समस्त क्रिया-कलाप कर्म के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। व्यष्टि कर्म व्यक्तिपरक है। मोटे रूप से इसके तीन भेद हैं, शारीरिक कर्म, मानसिक कर्म और आध्यात्मिक कर्म। मनुष्य के शरीर के समस्त व्यापार,—हँसना, बोलना, उठना, बैठना, गमन करना, देखना, सुनना, खाना-पीना, साँस लेना आदि शारीरिक कर्म के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। मनुष्य का सोचना, स्मरण करना, तर्क-वितर्क करना, कल्पना करना आदि मानसिक कर्म के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। समस्त जड-चेतन के अन्तर्गत एक भविष्याशी सत्ता अथवा सत्, चित् आनन्द ब्रह्म की अनुसृति के निमित्त किए कर्म आध्यात्मिक कर्म हैं। समस्त मानव-जाति के महान् पुरुषों द्वारा की गई साधनाएँ

आध्यात्मिक कर्म के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। ज्ञानयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग, प्रेम-योग, मंत्रयोग, लययोग, कर्मयोग सभी आध्यात्मिक कर्म के अन्तर्गत समाविष्ट हैं।

समष्टि कर्म का तात्पर्य सृष्टि के सामूहिक कर्म से है। ग्रह-नक्षत्रों, चन्द्रमा, सूर्यादिकों का बनना-बिगड़ना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश का उत्पन्न स्थित और लय होना, वायु का चलना, अग्नि का जलना, सूर्य का तपना आदि समष्टि कर्म हैं।

गुरु नानक के अनुसार निर्गुण ब्रह्म अथवा 'अकुर ब्रह्म' से ही कर्मों की उत्पत्ति हुई —

सुनहु उपजे दस अवतारा । सृष्टि उपाइ कोप्रा पासारा ॥

देव दानव गण गधरव साजे सभि लिखिआ करम कमाइदा ॥

(नानक-बाणी, माक सोलहे १७)

मनुष्य के सस्कारों एवं देह के संयोग से कर्मों के अभ्यास की शृंखला चलती रहती है —

देह संजोगी करम अभिआसा ॥

(नानक-बाणी, माक सोलहे १७)

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कर्मों की उत्पत्ति ब्रह्म से ही मानी गयी है —

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि^१

गुरु नानक देव के समष्टिगत कर्म का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। उनके अनुसार सृष्टि के समष्टि कर्म परमात्मा के भय अथवा उसके द्वारा स्थापित मर्यादा के अन्तर्गत होते रहते हैं —

“इसी निर्भय (परमात्मा) के भय से सैकड़ों ध्वनि उत्पन्न करने वाली वायु बहती है। इसी के भय से लाखों नद बहते रहते हैं और अपनी अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं कर सकते। इसी के भय से वशीभूत होकर अग्नि बेगार करती है। भय से पृथ्वी भार में दबी रहती है।.....”

भै विचि पवरणु बहै सद वाउ ।

.....

नानक निरभउ निरंकार सच्चु एकु ॥

(नानक-बाणी, आसा की बार)

तैत्तिरीयोपनिषद्^२, कठोपनिषद्^३ तथा बृहदारण्यकोपनिषद्^४ में भी प्रायः इसी प्रकार का भाव पाया जाता है।

मनुष्य व्यक्तिपरक कर्म ही करने का अधिकारी है और वे कर्म पूर्व जन्म के संस्कारों के परिणाम हैं। गुरु नानक देव ने भले और बुरे दो प्रकार के कर्मों को माना है—“कर्म काणज है और मन दवात है। इनके संयोग से बुरी आर भली दो प्रकार की लिखावटें लिखी गई हैं।

१. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १, श्लोक १४

२. तैत्तिरीयोपनिषद्, वल्ली २, ब्रजवाक ८, मंत्र १

३. कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली ३, मंत्र ३

४. बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय १, ब्राह्मण ८, मंत्र १

अपने-अपने पूर्व-जन्मों के किए हुये कर्मों से निर्मित स्वभाव (बुरे अथवा भले कर्म) द्वारा हम चलाये जाते हैं'—

करणी कागदु मनु मसवाणी, बुरा भला दुइ लेख पए ।

जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंतु हरे ॥

(नानक-वाणी, मारू, सबद ३)

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर संकेत किया है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है, किन्तु फल भोगने में परतन्त्र है। उनके विचार से मनुष्य यदि अपने किए हुए शुभ कर्मों का मुख भोगता है अथवा अशुभ कर्मों का दुःख भोगता है, तो उसे किसी को दोष नहीं देना चाहिये, क्योंकि वह स्वयं कर्मों को करने वाला है। अतः यदि उसे अच्छे कर्मों का मुख मिलता है अथवा बुरे कर्मों का दुःख मिलता है, तो उसे 'काल-कर्म' पर मिथ्या दोष नहीं लादना चाहिये, बल्कि उसे उन कर्मों के फल को भोगना चाहिये —

सुखु कृषु पुरब जनम के कीए

सो जाऐ जिनि दाते दीए ॥

किस कउ दोमु देहि तू प्राणी, सह अंपरा कौआ करारा हे ।

(नानक-वाणी, मारू सोलहे १०)

यह भावना कि कर्म बिना किसी चेतन-शक्ति के सहयोग से स्वतः फल देते हैं, नितान्त भ्रामक और त्रुटिपूर्ण है। गुरु नानक के अनुसार सारे कर्म-धर्म परमात्मा के हाथ में हैं। वह परमात्मा अत्यन्त निश्चित है और उसका भण्डार अनन्त है।

करमु धरमु सउ हाथि तुमारे ।

वेपरवाह अखुट भंडारे ॥

(नानक-वाणी, मारू-सोलहे १३)

कर्म दो प्रकार के हैं—(१) बन्धन-प्रद कर्म और (२) मोक्षप्रद कर्म। बन्धन-प्रद कर्म वे हैं, जो अहंकार से किए जाते हैं और मोक्षप्रद कर्म वे हैं, जो निष्काम-भावना से परमात्मा की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं।

बन्धन-प्रद कर्मों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) कर्म काण्ड युक्त कर्म, (२) अहंकारयुक्त कर्म और (३) त्रैगुणी त्रिविध कर्मः।

गुरु नानक देव ने कर्मकाण्डयुक्त कर्मों का वस्तुतः व्योरा निम्नलिखित पद में दिया है —

बाचहि पुस्तक वेद पुराना ।

.....

पाखंड धरमु प्रीति नही हरि सिउ गुर सबद महारसु पाहमा ॥

(गुरु नानक-वाणी, मारू-सोलहे, २२)

अहंभाव में फँसकर 'मैंपन' की भावना से ही अहंकारयुक्त कर्मों के सम्पादन होते हैं। अहंकारी व्यक्ति सदैव यही सोचता है कि "मैंने अमुक कर्म किया है, अमुक कष्टों" आदि। ऐसे अहंकारी पंडितों को गुरु नानक देव ने चेतावनी दी है, "कर्मकाण्डी पण्डित अहंभावना

से प्रेरित होकर शास्त्रों और वेदों को बकते हैं अवश्य, किन्तु उनके सारे कर्म सांसारिक हुआ करते हैं, अर्थात् आसुरी भाव से युक्त रहते हैं। उनके सारे कर्म पाषण्डयुक्त होते हैं। परिणाम यह होता है कि आन्तरिक मल की निवृत्ति उन अहंकारयुक्त कर्मों में नहीं होती।”

सुणि पंडित करमाकारी ।

.....

पाखंडि मैलु न चूकई भाई अंतरि मैलु विकारी ॥

(नानक-वाणी, सोरठि, असटपदी २)

सारा जगत् माया मोह के वशीभूत है। अतएव सारे सांसारिक प्राणी माया मोह के वशीभूत होकर त्रिगुणी कर्म ही करते हैं। गुरु नानक ने एक स्थल पर कहा है, “तीनों गुणों में प्रेम करने वाला बार-बार जन्मता और मरता है”—

जनमि मरै त्रैगुण हितकार ॥

(नानक-वाणी, गउडी, सबद १२)

यह तो हुई बन्धन-प्रद कर्मों की बात। अब मोक्षप्रद कर्म पर आइए। गुरु नानक के अनुसार मोक्षप्रद कर्मों का विभाजन तीन भागों में किया जा सकता है—(अ) हरि-कीरत कर्म (आ) अघ्यात्म कर्म और (इ) हुकम-रजाई कर्म।

हरि-कीरत कर्म को समझने के पूर्व ‘किरत’ कर्म को समझ लेना आवश्यक है। किरत कर्म वे अच्छे अथवा बुरे कर्म हैं, जो जीव ने पिछले जन्मों में किए हैं। बारम्बार उन्हीं कर्मों के कारण आदत पड़ जाती है। उसी आदत के वशीभूत होकर, जो पुरुष कर्म करता है, वह किरत कर्म कहलाता है। किरत कर्म भोगने ही पड़ते हैं, मिटते नहीं। कर्मों के भोग के लिये कर्मों की किरत भाग्य में लिख दी जाती है।^१—

आवे जाड भवाईऐ पड़े किरति कमाड ।

पूरवि लिखिआ किउ मेटीऐ लिखिआ लेलु रजाइ ॥

(नानक-वाणी, सिरी रागु असटपदी १०)

किरत-कर्म की दुरुहता भेटने में यदि कोई समर्थ है, तो वह है “हरि-कीरत-कर्म” यह कर्म सभी कर्मों में श्रेष्ठ है। परमात्मा के नाम का गुणगान ‘किरत-कर्म’ के सारे मलों को धो देता है। गुरु नानक ‘हरि-कीरत कर्म’ की प्रशंसा करते हुये एक स्थल पर इस भांति कहते हैं, “सद्गुरु जिसके अन्तर्गत सच्चे परमात्मा को बसा देता है, उसी को सच्चे योग की युक्ति के मूल्य का वास्तविक ज्ञान होता है। उनके लिए गृह और वन समान हो जाते हैं। चन्द्रमा की शीतलता एवं सूर्य की उष्णता में भी ऐसी व्यक्ति की बुद्धि समान हो जाती है। कीरति रूपी करगो उस का नित्य का अभ्यास हो जाता है” —

जिसकै अन्तरि साचु बसावे । जोग जुगति की कीमति पावे ।

रवि ससि एको गृह उदि आने । करखी कीरति करम समाने ॥

(नानक-वाणी, गउडी-गुआरेरी, असटपदी ६)

१. गुग्गलु अर्थात् कर्म करम फिलासफा, रसाधारिह, पृष्ठ २९५

प्राध्यात्मिक कर्म वे हैं, जो जीवात्मा और परमात्मा के बोध और उनसे एकता का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। गुरु नानक देव ने प्राध्यात्मिक कर्मों को सच्चा माना है। इन्हीं कर्मों के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होता है। गउड़ी राग में प्राध्यात्मिक कर्म के अन्तर्गत निम्न-लिखित साधन बताए हैं—यंत्र कामादिकों को मारना, सच्चाई धारण करना, परमात्मा की अखंड ज्योति सर्वत्र देखना, गुरु के शब्द पर आचरण करना, परमात्मा का भय मानना, आत्म-चिन्तन में निमग्न रहना, गुरु की कृपा में दृढ़ विश्वास रखना, गुरु की सेवा सर्वभाव से करना, अहंकार को मारना, एक मात्र परमात्मा को जप, तप संयम समझना—

अधिआत्म करम करे ता सावा ।

.....

कहु नानक अपरंपर मानु ॥८॥ ॥

(नानक-बाणी, गउड़ी, असटपदी ६)

प्राध्यात्मिक कर्मों की सीमा निर्धारित करनी कठिन है। हमारी राय में आत्म-साक्षात्कार-संबंधी वे सभी कर्म, सभी उपासनाएं और सभी आचार-व्यवहार जो अहंभावना से रहित होकर परमात्म-साक्षात्कार के निमित्त किए जाते हैं, प्राध्यात्मिक कर्म हैं।

‘हुकम रजाई’ कर्म वे हैं, जो परमात्मा की प्रेरणा, आज्ञा, मर्जी अथवा इच्छा से होते हैं। ये कर्म गुरु की महान् कृपा एवं परमात्मा की प्रेरणा से होते हैं। गुरु अन्तःकरण में जब परमात्मा की अन्तर्ध्वनि सुनाई पड़ती है, तभी ऐसे कर्म का होना संभव है, अन्यथा नहीं—

हुकम रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ॥

(नानक-बाणी, जपु जी, पउड़ी १)

ताकउ विघन न लागई चाले हुकम रजाई ।

(नानक-बाणी, आसा, असटपदी २०)

हुकमि रजाई जो चले, सो पवे खजाने ॥

(नानक-बाणी, असटपदी २०)

(ख) योगमार्ग

योग भारतवर्ष का सबसे प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण साधन है। शुक्ल यजुर्वेद, उपनिषदों, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगद्गीता, योगवासिष्ठ आदि प्राचीन ग्रंथों में योग का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।^१ पातंजल-योग दर्शन तो योग का पृथक् ग्रंथ ही है। इसमें हठयोग के अष्टांग साधनों की विस्तृत चर्चा की गई है।^२

गुरु नानक देव की बाणी में हठयोग की शब्दावलियाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। ‘दस दुआरि’ ‘उलटिओ कमल’, ‘अमृत धारि’, ‘गगनि’, ‘अमृत रस’, ‘अलिपत गुफा’, ‘अनहद सबद’, ‘सुन समाधि’, ‘सुन मंडल’, ‘सहज गुफा’ आदि शब्द स्थान-स्थान पर प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—गुरु ग्रंथ—दर्शन, अथराम मिश्र, पृष्ठ २२९

२. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—गुरु ग्रंथ दर्शन, अथराम मिश्र पृष्ठ २३१-२२

उदाहरणार्थ —

उलटिओ कमलु ब्रह्मु बीबारि ।

अमृत धार गगनि दस दुआरि ॥

(नानक-वाणी, गउड़ी, सबद ८)

अनखिनु जागि रहे लिब लाई ।

.....

तजि हउ लोभा एबो जाना ॥

(नानक-वाणी, रामकली, असटपदी ३)

अनहदो अनहदु वाजे रण भुण कारे राम ।

.....

नानक नामि रते वैरागी अनहद रण भुण कारे ॥

(नानक-वाणी, आसा, छंद २)

इस स्थल पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि योग के प्रति गुरु नानक देव की अपार श्रद्धा अवश्य है, पर उन्हें हठयोग की सारी क्रियाएँ मान्य नहीं। बिना भक्ति के हठयोग त्याज्य है। उनकी दृष्टि में प्राणायाम, नेवली आदि क्रियाएँ बिना भक्ति के शारीरिक व्यायाम मात्र है। भक्तिहीन योग निष्प्राण और तत्वहीन है —

चाहमि पवनु सिधावनु भोजे ।

निउली करम खुदु करम करीजे ॥

राम नाम बिनु विरथा सापु लीजे ॥

(नानक-वाणी, रामकली, असटपदी ५)

गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर वेशधारी योगियों की तीव्र भर्त्सना की है^१। उन्होंने कुछ आध्यात्मिक रूपको द्वारा स्थान-स्थान पर वास्तविक योग के प्रति अपने उदात्त विचार प्रकट किए हैं। उदाहरणार्थ —

मुंदा संतोनु सरमु पनु भोली धिआन की करहि बिभूति ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पउड़ी २८)

‘शून्य’ शब्द का योग में बहुत महत्व है। गुरु नानक देव के अनुसार ‘शून्य’ वह शब्द है, जो समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है। इस शून्य में मन नियोजित करना उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा योग है।^२ गुरु नानक देव का शून्य ‘कुछ नहीं है’ वाला शून्य नहीं है, बल्कि उनका शून्य वह शून्य है, जो सर्वभूतान्तरात्मा है, घटघटव्यापी है और निरकार ज्योति के रूप में सभी के अन्तर्गत व्याप्त है।

गुरु नानक देव ने ‘दशम द्वार’ का भी स्थल स्थल पर वर्णन किया है। हमारे अन्तःकरण में जहाँ निरकारी ज्योति का निवास है, वहाँ ‘दशम द्वार’ है। किन्तु ‘दशम द्वार’ के सिलसिले में दो बातें उल्लेखनीय हैं। पहली तो यह कि हठयोग के अनुसार तो योगी दशम द्वार में पहुँचने

१. नानक-वाणी, रामकली, असटपदी २

२. नानक-वाणी “अंवरि सुनि” आदि, रामकली, बिध गोसति, ४१, ४२ और ४३ पठकियाँ ।

के पूर्व ही अनाहत शब्द सुनता है, पर गुरु नानक देव के अनुसार अनाहत शब्द का रस 'दशम' द्वार में पहुँचने पर प्राप्त होता है। दूसरी बात यह है कि उनके अनुसार 'दशम' द्वार नाम-जप से खुलता है।^१

गुरु नानक देव ने 'सहज योग' के प्रति अपनी प्रगाढ़ आस्था प्रकट की है। उन्होंने 'सहज' शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है।^२

(ग) ज्ञानमार्ग

ज्ञान का शाब्दिक अर्थ 'किसी प्रकार का ज्ञान' होता है। किन्तु वेदान्त शास्त्र में ज्ञान का अभिप्राय 'ब्रह्मज्ञान' से है। अन्य ज्ञान 'भौतिक ज्ञान' अथवा 'चंचु ज्ञान' मात्र है। अद्वैत ब्रह्म की अनुभूति ही ब्रह्मज्ञान है। बिना ब्रह्म के साक्षात्कार के सारे प्राणी भ्रमज्ञान में भटकते रहते हैं और वे इस बात को नहीं जानते कि सत्य परमात्मा सभी में रम रहा है —

गिघ्रात बिहूणी भवे सवाई।

साचा रवि रहिआ लिब लाई ॥

(नानक-वाणी, माक-सोलहे, १४)

जिसने ब्रह्म के अद्वैतभाव की अनुभूति कर ली, उसके समस्त कर्म निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं।

जे जागमि ब्रह्मं करमं । मभि फोकट निसचउ करमं ॥

(नानक-वाणी, आसा की बार)

ब्रह्मज्ञान में अद्वैतभाव की अनुभूति आवश्यक है। अद्वैत ज्ञान की घनीभूतता ही ब्रह्म-ज्ञान है। ब्रह्मज्ञानी वही है, जो सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करता हो। गुरु नानक देव में यह भावना पूर्ण रूप से पाई जाती है —

आपे पटी कलम आपि उपरि लेख भो तू ।

एको कहीगे नानका दूजा काहे कू ॥

(नानक-वाणी, मलार की बार)

गुरु परसादी दुरमति खोई । जह देखा तह एको सोई ॥

(नानक-वाणी, आसा, सबद २८)

सरब जोति रूपु तेरा । देखिआ सगल भवन तेरी माइआ ।

(नानक-वाणी, आसा, सबद ८)

बेरीसिंह ने अपनी पुस्तक "फिलासफी आफ् सिक्खिज्म" में गुरु नानक की रचनाओं में अद्वैतवाद नहीं स्वीकार किया है और इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित तर्क उपस्थित किए हैं।^३ —

१. उन्होंने जीव ब्रह्म की एकता नहीं स्वीकार की।

२. ब्रह्म और सृष्टि में भी एकता नहीं स्वीकार की।

३. सोऽहं आदि अद्वैत शब्दावली नहीं पायी जाती।

४. शंकर के अद्वैतवाद में भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है।

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, गुरुग्रन्थ दर्शन, जयराम मिश्र, पृष्ठ २४३-२४८

२. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, नानक वाणी, परिशिष्ट (क), 'सहज'।

३. फिलासफी आफ् सिक्खिज्म, पृष्ठ ८२, ८३ और ८४

किन्तु हम शेरसिंह जी के चारो तकों से सहमत नहीं है। गुरु नानक देव ने स्थान स्थान पर जीव ब्रह्म की एकता स्वीकार की है। उदाहरणार्थ —

सागर महि बूंद बूंद महि सागर ।

(नानक-वाणी, रामकली सबद ६)

आतम महि रामु राम महि आतम चीनसि गुर वीवाग ।

(नानक-वाणी, भैरउ, असटपदी ६)

इतना ही नहीं उन्होंने आत्मा-परमात्मा की एकता की अनुभूति के साधन पर भी बल दिया है—

आतमा परातमा एको करै ।

अंतरि दुविधा अंतरि मरै ॥

(नानक-वाणी, घनासरी, सबद ४)

गुरु नानक देव के पदों में ब्रह्म और सृष्टि की एकता भी स्थापित की है —

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

अर्थात् “परमात्मा ने अपने आपको सृष्टि के रूप में माना है और आप ही ने उनका नाम रचा है।” नाना नाम-रूप, रंग-वर्ण प्रभु के ही स्वरूप हैं।

गुरु नानक देव की वाणी में एकाग्र स्थल पर सोऽह की शब्दावली भी पायी जाती है—

तनु निरंजन जोति सवाई सोहं भेदु न कोई जोउ ॥

(नानक-वाणी, सोरठि, सबद ११)

नानक सोहं हँसा जपु जापहि त्रिभवण तिसे समाहि ॥

(नानक-वाणी, मारू की वार)

शेरसिंह का चौथा तर्क कि शंकराचार्य में भक्ति नहीं पायी जाती, भी त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने ‘चर्पटपंचरिका’ में भक्तिभाव के ऊपर बहुत बल दिया है —

“भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।”

गुरु नानक की वाणी में ज्ञान-प्राप्ति के निम्नलिखित साधन प्राप्त होते हैं —

(१) विवेक : नानक वाणी में कदाचित् ही कोई पृष्ठ ऐसा हो जिसमें विवेक के प्रति हमारी आस्था न उत्पन्न की गई हो। इसी विवेक से साधक ज्ञानमार्ग में आगे बढ़ता है।

(२) वैराग्य : सासारिक विषयों में वैराग्य-भावना ज्ञान-प्राप्ति का साधन है। धन-सम्पत्ति, पद, ऐश्वर्य, नाम, यश सभी के प्रति गुरु नानक देव ने वैराग्य-भावना प्रदर्शित की है। गुरु नानक देव ने सासारिक संबंधों के प्रति वैराग्य भावना दिखाने हुए कहा है कि सभी संबंध नश्वर हैं और साथ निभाने वाले नहीं हैं।^१

(३) श्रद्धा : गुरु नानक के पदों में श्रद्धा, विश्वास और भक्ति की जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, वह बहुत कम ग्रंथों में पायी जाती है। इसी श्रद्धा के बल पर साधक अध्यात्म के सभी

पंथों पर सरलतापूर्वक आगे बढ़ सकता है। उदाहरणार्थ गुरु के प्रति गुरु नानक देव ने इसी प्रकार की श्रद्धा प्रदर्शित की है —

(४) श्रवण : ज्ञान-प्राप्ति के लिए श्रवण परमावश्यक साधन है। गुरु नानक देव ने 'जपु जी' की ८वीं, ९वीं, १०वीं पउड़ियों में श्रवण के माहात्म्य का विशद वर्णन किया है।

(५) मनन एवं निदिध्यासन : श्रवण के आगे की स्थिति का नाम मनन है। अद्वितीय ब्रह्म का तदाकार भाव से चिन्तन ही मनन है। व्यवधान-रहित ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिति ही निदिध्यासन है। गुरु नानक देव ने निदिध्यासन का पृथक् नाम नहीं दिया है। पर मनन की परिपक्वावस्था निदिध्यासन का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार निदिध्यासन का स्वरूप मनन ही में अन्तर्हित है। 'जपु जी' की १२वीं, १३वीं, १४वीं और १५वीं पउड़ियों में मनन की महत्ता का हृदयग्राही चित्रण प्राप्त होता है।

(६) अहंकार-त्याग : अहंकार का विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है।

(७) गुरु-कृपा एवं परमात्म-कृपा : गुरु नानक देव ने ज्ञान के सभी साधनों में गुरु-कृपा एवं परमात्म-कृपा को सर्वोपरि साधन माना है। बीज मंत्र अथवा मूल मंत्र में ही इसकी महत्ता प्रदर्शित भी की गई है—“गुरु प्रसादि।” गुरु नानक देव जी का कथन है कि गुरु-कृपा से जब यह अद्वैत बुद्धि और ब्रह्ममयी दृष्टि साधक को प्राप्त होती है, तब वह सत्य-स्वरूप परमात्मा में समाहित हो जाता है—

गुरु परसादी दुरमति खोई। जह देखा तह एको सोई॥

(नानक-वाणी, आसा, सबद ८)

ज्ञान-प्राप्ति परमात्मा की असीम कृपा से ही संभव है —

गिआनु न गलीई हूढीगे, कथना करडा सारु।

करमि मिलै ता पाईऐ, होर हिकमति हुकमु खुआरु॥

(नानक-वाणी, आसा की वार)

ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् साधक परमात्मा का स्वरूप हो जाता है—

जिनी आतम चीनिआ परमातमु सोई॥

(नानक-वाणी, आसा, असटपदी २०)

गुरु नानक देव ने बाह्यत्याग पर व भी नहीं बल दिया। उन्होंने गृहस्थ धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। नाम, दान तथा स्नान पर श्रद्धा भाव से आरुढ़ रहने पर ईश्वर की भक्ति अवश्य जगती है —

इकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे।

नामु दानु इसनानु दड़ हरि भगति सु जागे।

(नानक-वाणी, आसा काफी, असटपदी १४)

(घ) भक्तिमार्ग

भक्ति का सिद्धान्त बहुत ही प्राचीन है। उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत नारद-भक्ति-सूत्र आदि ग्रंथों में भक्ति की विशद व्याख्या की गई है।^१ मोटे रूप से भक्ति के दो प्रधान भेद हैं—(१) वैधी भक्ति, (२) रागात्मिका भक्ति अथवा प्रेमा भक्ति। वैधी भक्ति अनेक विधि-विधानों से युक्त होती है। इसका उद्देश्य रागात्मिका भक्ति को उद्दीप्त करना है। अतः परमेश्वर में निरतिशय और निरर्तुक प्रेम ही रागात्मिका भक्ति है। तीव्र श्रद्धालु साधकों के लिए रागात्मिका भक्ति है।

भक्ति की अबाध मंदाकिनी गुरु नानक के प्रायः प्रत्येक पद में प्रवाहित हुई है। गुरु नानक द्वारा निरूपित सभी पथ—कर्ममार्ग, योगमार्ग, और ज्ञानमार्ग भक्ति की धारा से सिंचित हैं। बिना परमात्मा की रागात्मिका भक्ति के कर्म पाषण्डपूर्ण और आध्मिकयुक्त है, ज्ञान बंधु-ज्ञान मात्र है और योग शरीर का व्यायाम मात्र है।

गुरु नानक देव ने स्थान स्थान पर वैधी भक्ति का खण्डन किया है। उन्होंने वैधी भक्ति के विधि-विधानों—तिलक, माला आदि—की निस्सारता स्थान स्थान पर प्रदर्शित की है—

गलि माला तिलकु ललाटं । दुइ धोली वस्त्र कपाट ॥

जे जाणसि ब्रह्मं करमं । सभि फोकट निसचउ करम ॥

(नानक-बाणी, आसा की वार)

प्रेमा भक्ति में मिलन के आनन्द और विरह की तड़पन—दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। गुरु नानक देव ने विरह की तड़पन का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है—

नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घडी खटु मासा ।

(नानक-बाणी, तुखारी, बारहमाहा, पउड़ी १२)

गुरु नानक देव का 'एक घडी खट मासा' मोराबाई के 'भई छमासी रैन' की स्मृति दिलाता है।

उन्होंने एक स्थल पर कहा है —

बैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि डंडोले बाह ।

भोला बैदु न जाणई न रक कलेजे माहि ॥

(नानक-बाणी, मलार की वार)

मोराबाई के 'कलेजे की करक' भी भोला वैद्व नहीं जान सका था।

गुरु नानक की प्रेमा भक्ति प्रेम के अनेक माध्यमों द्वारा व्यक्त हुई है—

(१) अपने को पुत्र तथा परमात्मा को पिता समझ कर उपासना करना।

(२) स्वामी-सेवक भाव की आराधना।

(३) परमात्मा को अपना मुहूर्त और लखा समझना।

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए : श्री गुरु-ग्रंथ-दर्शन, कविराज विश्व, पृष्ठ २८२-८३

(४) अपने को भिखारी तथा परमात्मा को दाता समझना ।

(५) अपने को पत्नी तथा परमात्मा को पति समझना ।^१

परमात्मा के बिस्मरण से भयानक कष्ट होते हैं। परमात्मा की विस्मृति भयानक रोग है —

इकु तिलु पिअारा बीसरै रोग बढा मन माहि ॥

(नानक-बाणी, सिरि राग, सबद २०)

बैसे तो भक्ति के अनेक उपकरण गुरु नानक द्वारा वर्णित हैं, पर जिनके ऊपर उनकी व्यापक दृष्टि गई है, वे निम्नलिखित हैं —

(१) सद्गुरु की प्राप्ति और उसकी कृपा तथा उपदेश ।

(२) नाम ।

(३) सत्संगति तथा दाधु-संग ।

(४) परमात्मा का भय और उसका हुक्म

(५) दृढ़ विश्वास ।

(६) आत्म-समर्पण भाव ।

(७) हैन्य भाव

(८) परमात्मा का स्मरण और कीर्तन

(९) भगवत्-कृपा ।^२

प्रेमा भक्ति के उपर्युक्त उपकरणों के आधार पर परमात्मा का शाश्वत मिलन होता है ।

नानक-वाणी में सद्गुरु और नाम

(अ) सद्गुरु

भारतीय धर्म-समाज में गुरु का स्थान बड़ा उच्च, गौरवपूर्ण और समाहत रहा है। उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीता में गुरु अत्यंत अपूर्व महत्ता मानी गयी है। तन्त्र-साधकों, योगियों, नाथपंथियों, सहजयानियों, वज्रयानियों तथा परवर्ती संतों ने गुरु की महिमा का अपार गुणगान किया है।

गुरु नानक की दृष्टि में सद्गुरु का स्थान धार्मिक साधना में सर्वोपरि है। मूलमंत्र में “गुरि प्रसादि” से यह बात सिद्ध हो जाती है। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सद्गुरु की आवश्यकता पर गुरु नानक देव वं पञ्चात् अन्य गुरुओं के द्वारा बल दिया गया पर यह धारणा निर्मूल और निराधार है। गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर गुरु की महत्ता स्वीकार करके उसकी महिमा का गुणगान किया है। उदा रणार्थ —

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ ।

एहु जीउ बढते जनम भरमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥

१. विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिए : श्रीगुरु ग्रंथ दर्शन, जयराम मिश्र, पृष्ठ २८०-२९४

२. विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिए : श्रीगुरु ग्रंथ दर्शन, जयराम मिश्र, पृष्ठ २९४-३१२

सतिगुर जेवहु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ ।
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ही बिचहु आपु गवाइआ ।
जिनि सचा सचु बुझाइआ ।

(नानक वाणी, आसा की वार)

गुरु नानक देव ने कर्ममार्ग, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग, और भक्तिमार्ग सभी में गुरु का महत्त्व माना है। उन्होंने अपनी वाणी में स्थान-स्थान पर सद्गुरु और परमात्मा में अभिन्नता दिखाई है। उदाहरणार्थ—

ऐसा हमरा सखा सहाई ।
गुर हरि मिलिआ भगति टडाई ॥

(नानक-वाणी, आसा, सबद २४)

करि अपराध सरणि हम आइआ ।
गुर हरि भेटे पुरबि कमाइआ ॥

(नानक-वाणी, रामकली, असटपदी ४)

किन्तु गुरु नानक देव ने असद् गुरु की तीव्र भर्त्सना की है। उनका कथन है कि “ऐसे असद्गुरु झूठ बोलते हैं और हराम का खाते हैं। उनके स्वयं तो ऐसे आचरण हैं, फिर भी दूसरों को उपदेश देते हैं। ऐसा गुरु स्वयं तो नष्ट ही होता है, पर अपने साथ ही दूसरों को भी नष्ट करता है। ऐसे असद् गुरु संसार में अगुआ (गुरु) के नाम से प्रसिद्ध होते हैं” —

कूडु बोलि मुरदाह खाइ ।
अवरो नो समभावणि जाइ ॥
मुठा आपि मुहाए साथै ।
नानक ऐसा आभू जापै ॥

(नानक-वाणी, मानक की वार)

गुरु सेवा प्राप्त होने वाले फल असंख्य हैं। उनकी गणना की नहीं जा सकती। उन फलों में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही सर्वोपरि है —

कहु नानक गुरि बहमु दिखाइआ ।
मरता जाता नदरि न आइआ ॥

(नानक-वाणी, गउड़ी, सबद ४)

(आ) नाम

मध्ययुग के लगभग सभी सन्तों ने नाम के प्रति अपूर्व श्रद्धा दिखालाई है। इस युग के सगुण और निगुण दोनों प्रकार के संतों ने नाम की महिमा खूब गाई है। नाम-माहात्म्य भागवत आदि प्रायः सभी पुराणों में पाया जाता है; पर मध्ययुग के भक्तों में इसका चरम विकास हुआ है।^१ कबीर, दरियादेव, दूलनदास, सहजोबाई, गरीबदास, पल्लव साहब आदि ने

१. हिन्दी साहित्य की सूचिका, इजारी मसाद द्विवेदी, पृष्ठ १२

नाम के प्रति अपनी असीम श्रद्धा, भक्ति और विश्वास अभिव्यक्त किया है। सगुणवादी कवियों—सूरदास, तुलसीदास आदि—में भी यहाँ विश्वास पाया जाता है।

गुरु नानक देव ने नाम के प्रति अपार श्रद्धा अभिव्यक्त की है। उनकी दृष्टि में नाम नामी का प्रतीक है। सतिनामु ही कर्त्तापुरुष, एक और ओंकार है। सारी सृष्टि की रचना नाम ही द्वारा हुई है। नाम ही समस्त स्थान बना हुआ है। अतः नाम के बिना स्थान का कोई महत्व नहीं है।

जेता कीता तेता नाउ । विणु नावै नाही को थाउ ॥

(नानक-वाणी, जपु जी, पङ्क्ति १६)

गुरु नानक की दृष्टि में नाम हो जप, तप, संयम का सार है।^१ लाखों, करोड़ों कर्म और तपस्याएँ नाम के सदृश नहीं।^२ मच्चे नाम की तिल मात्र बड़ाई भी वर्णनातीत है। चाहे कथन करते-करते थक भले ही जायें, परन्तु नाम की कीमत का वर्णन नहीं हो सकता।

माचे नाम की तिलु वडिआई । माखि थके कीमति नहीं पाई ॥

(नानक-वाणी, रागु आसा, सबद २)

नामविहीन यज्ञ, होम, पुण्य, तप, पूजा आदि सब व्यर्थ है। इनमें शरीर दुःखी रहता है और नित्य दुःख सहना पड़ता है। नाम के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती —

ऐसे अंधे गुरु एवं उनके शिष्य को ठोर-ठिकाना नहीं प्राप्त हो सकता —

गुरु जिना का अंधुला चेलें नाही ठाउ ।

(नानक-वाणी, सिरी रागु, असटपदी ८)

अंधा गुरु जो दूसरों को राह दिखाता है, सभी को नष्ट करता है —

नानक अंधा होउ केँ दसै राहँ सभसु मुहाएँ साथै ।

(नानक-वाणी, माझ की वार)

असद्गुरु से बचने के लिए इसीलिए गुरु नानक देव ने सद्गुरु के लक्षण स्थान-स्थान पर बताए हैं —

सो गुरु वरउ जि साचु हड़ावै ।

अकथु कथावै सबदि मिलावै ॥

(नानक-वाणी, घनासरी, असटपदी २)

गुरु नानक के अनुसार गुरु और शिष्यों का संबंध समुद्र और नदियों के प्रेम के समान अन्व्योन्याश्रित है —

गुरु समंदु नदी सभ सिखी ॥

(नानक-वाणी, माझ की वार)

१. नानक वाणी, अहिनिभि राम रहहु रंगि राते, एहु जपु तपु सजसु सारा हे ॥

मार-खोलवै १०,

२. नानक-वाणी, हरिनामी तुलि न पुजई अँ लल कोटी करम कमाह ॥ आदि

सिरी रागु, असटपदी १५,

गुरु नानक देव ने गुरु के 'सबद' की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है। 'सबद' का तात्पर्य 'वचन', 'उपदेश', अथवा 'शिक्षा' आदि से है। गुरु नानक देव का कथन है कि, "जो व्यक्ति गुरु के सबद में मरता है, वह ऐसा मरता है कि उसे फिर मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिना गुरु के 'सबद' के सारा जगत् भटक कर दधर-उधर घूमता फिरता है। बार-बार मरता है और जन्म लेता है"—

सबदि मरै सो मरि रहै फिरि मरै न दूजो बार ।

सबदै ही ने पाईऐ हरिनामे लगै पिआरु ॥

बिनु सबदै जगु भूला फिरै मरि जनमै बारोबार ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, असटपदी ८)

सद्गुरु में बिना आत्मसमर्पण भाव किए आध्यात्मिक प्रगति नहीं होती। सद्गुरु में आत्मसमर्पण-भाव मौखिक नहीं होना चाहिए, बल्कि अपना तन और मन गुरु को बेच देना चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो सिर के साथ मन भी सौंप देना चाहिए।

तनु मनु गुरु पहि बेचिआ मनु दीआ सिरु नालि ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, सबद १७)

बड़े भाग्य से गुरु की सेवा का अवसर प्राप्त होता है। गुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए गुरु की सेवा परमात्मा की ही सेवा है।

बडे भाग गुरु मेवनि अपुना, भेदु नाही गुरदेव मुरार ॥

(नानक-वाणी, भूजरी, असटपदी २)

जगन होम पुन तप पूजा देह दुखी नित दुख मटै ।

राम नाम बिनु मुक्ति न पावमि मुक्ति नामि गुरमुखि लहै ॥

(नानक-वाणी, भैरव, सबद ८)

इसी प्रकार राम नाम के बिना न तृप्ति होती है और न शान्ति है। राम नाम के बिना योग की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै बीचारै ।

(नानक-वाणी, रामकली, सिध गोसटि, पउडी ६८)

गुरु नानक ने परमात्मा के 'निर्गुणी' और 'सगुणी' दोनों नामों के प्रयोग अपनी वाणी में किए हैं। 'परब्रह्म', 'निरकार', 'अयोनि', 'अकालमूर्ति', 'स्वयम्भू', 'निरंजन' आदि 'निर्गुणी' नाम प्रयुक्त हुए हैं। सगुणी नामों में 'माधव', 'मोहन', 'राम', 'मुरारी', 'केशव', 'गोविन्द', 'हरि' आदि नामों के व्यवहार हुए हैं। किन्तु इनका अर्थ 'अवतारवाद' के अर्थ में नहीं है। उन्होंने कहीं-कहीं 'अलाह', 'कादिर', 'करीम', 'रहीम' आदि मुसलमानी नामों के प्रयोग भी किए हैं।

अलाहु अल्लहु अरंभ कादरु करणहार करीमु ।

सब दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु ॥

(नानक-वाणी, सिरि राग, असटपदी १७)

किन्तु यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी है कि गुरु नानक देव की वृत्ति प्रायः 'हरि' और 'राम' नाम में सबसे अधिक रमी है ।

'बाहिगुरु' नाम सिक्खों में बहुत प्रचलित है । खालसा-निर्माण के साथ 'बाहिगुरु' नाम अधिक व्यापक हो गया और यह परमात्मा का विशिष्ट नाम समझा जाने लगा । परन्तु गुरु नानक देव का कदाचित् यह तात्पर्य नहीं था कि 'बाहिगुरु' को "परमात्मा" का विशिष्ट नाम बताया जाय । वास्तव में 'बाहिगुरु' नाम में नाम की उतनी अधिक भावना नहीं है, जितनी की आश्चर्यमयी अनुभूति की ।^१ किसी आश्चर्यमयी वस्तु की अनुभूति में 'बाह-बाह' का निकलना अवश्यम्भावी है । इस प्रकार 'बाहिगुरु' बिलकुल नवीन शब्द है और यह सिक्ख की आन्तरिक अवस्था का प्रतीक है ।

गुरु नानक की वाणी को ध्यान पूर्वक देखने से उसमें नाम-जप के तीन प्रकार मिलते हैं—१. साधारण जप, २. अजपा जप, ३. लिब जप ।

(१) साधारण जप : जिह्वा में होता है । जहाँ जहाँ जप की चर्चा की गई है, वहाँ वहाँ जिह्वा जप में अभिप्राय है । पहले पहल नाम-अभ्यास साधना में इसी जप का सहारा लेना पड़ता है । साधारण जप हो 'अजपा' एवं 'लिब' जप की नींव है ।

(२) अजपा जप : जब साधारण-जप अथवा जिह्वा-जप का पूरा पूरा अभ्यास हो जाता है, तब 'अजपा-जप' प्रारंभ होता है । अजपा जप में जिह्वा का काम समाप्त हो जाता है और स्वास-प्रस्वास की संचालन-गति के आधार पर जप प्रारंभ हो जाता है । गुरु नानक देव ने इस जप पर बहुत अधिक बल दिया है—

अजपा जापु जपे मुखि नाम ॥

(नानक-वाणी, बिलावलु, पृथी, पउड़ी १६)

(३) लिब जप : लिब-जप, जप साधना का अन्तिम सोपान है । लिब जप में वृत्ति द्वारा जप होने लगता है । इस जप में शरीर, जिह्वा और मन एकनिष्ठ हो जाते हैं । यह जप अनुभूति मात्र है—

गुरुमुखि जागि रहे दिन राती ।

साचे की लिब गुरमति जाती ॥

(नानक-वाणी, मारु, सोलहे ५)

यह जप परम दुर्लभ है और करोड़ों में किसी विरले ही साधक को प्राप्त होता है ।

नाम-प्राप्ति के अनन्त फल है । सासारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं । संक्षेप में यह कि नामजप में 'विस्माद' अवस्था की प्राप्ति होती है । यह 'विस्माद' अवस्था अद्वैत स्थिति की द्योतिका है । इस अवस्था में ब्रह्म, जीव और सृष्टि सभी 'विस्माद' हो जाते हैं । सभी के बीच एकता स्थापित हो जाती है । गुरु नानक देव को वेद, नाम, जीव, जीवों को वे भेद, अनेक रूप रंग, पवन, पानी, अग्नि, और अग्नि के अनेकारूप-आत्मक खेल, खण्ड-ब्रह्माण्ड, संयोग-वियोग, भूख-भोग, सिफति-सलाह, राह-कुराह, नेह-दूरि, आदि में विस्माद—आश्चर्य दिखलाई पड़ता है।—

बिसमादु नादु बिसमादु वेदं
.....

नानक बुझणु पूरे भाणि ।

(नानक-वाणी, आसा की वार)

उपर्युक्त 'बिसमाद प्रवस्था'—आश्चर्यमयी अनुभूति 'नाम-जप' का ही परिणाम है ।

नानक-वाणी के पाठोच्चारण के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें

सिक्खों के पाँचवें गुरु, श्री अर्जुन देव ने 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' को जिन प्रणाली से लिपिबद्ध किया था, ठीक उसी प्रणाली में 'शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी', अमृतसर ने भी उन्हें, 'देवनागरी लिपि' में मुद्रित कराया है । 'नानक-वाणी' का पाठ उपर्युक्त देवनागरी वाली प्रति से निर्धारित किया गया है । उसमें किसी भी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया है ।

पाठोच्चारण के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातों की जानकारी पाठकों के लिए आवश्यक है —

(१) मंगलाचरण में जहाँ "१ ओ" लिखा है, उसका उच्चारण केवल 'एक ओ' नहीं है, बल्कि शुद्ध उच्चारण "एकोकार" है ।

(२) "नानक-वाणी" में अनुस्वारों का प्रयोग बहुत कम किया गया है । अतः पाठकों से निवेदन है कि वे अनुस्वारों का प्रयोग समझ से कर लिया करें । उदाहरणार्थ 'जपु जी' को प्रथम पड़ड़ी की प्रथम पंक्ति में —

"सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार"

यद्यपि 'सोची' शब्द में अनुस्वार का प्रयोग नहीं हुआ है, तथापि उसका उच्चारण 'सोची, करना चाहिए । इसी 'पड़ड़ी' में आगे लिखा है— "जे लाइ रहा लिवतार ।" इसमें 'रहा' का उच्चारण 'रहा' होगा ।

(३) अनुस्वार की भाँति 'नानक-वाणी' में संयुक्ताक्षरों का भी बहुत कम प्रयोग किया गया है । किन्तु पाठकगण अपने अनुभव तथा अभ्यास से आवश्यकतानुसार उसका उच्चारण संयुक्ताक्षर करें । उदाहरणार्थ —

जपु जी की २६ वी पड़ड़ी में —

"आखहि ईसर आखहि सिध

आखहि केते कीते बुध"

में 'सिध' और 'बुध' का उच्चारण 'सिद्ध' और 'बुद्ध' होगा ।

(४) 'नानक-वाणी' में स्थान-स्थान पर 'राखिआ', 'माइआ', 'आइआ', 'मानिआ', 'जानिआ' आदि इस प्रकार अनेक शब्द लिखे गए हैं । यद्यपि उनके लिखित रूप उसी प्रकार के हैं किन्तु उनके उच्चारित रूप क्रमशः 'राखा', 'माया', 'आया', 'माना', 'जाना' आदि होंगे । इस प्रकार सैकड़ों शब्द 'नानक वाणी' में प्राप्त होंगे । उनका उच्चारण इसी ढंग से करना अपेक्षित है ।

नानक वाणी

ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

उपर्युक्त बाणी सिक्खों का मूलमंत्र अथवा बीजमंत्र है। इसी में सिक्ख गुरुओं के समस्त आध्यात्मिक भिद्धान्त निहित है। प्रत्येक सिक्ख को दीक्षित होने तथा अमृतपान करते समय इस मंत्र को पाँच बार आवृत्ति करनी पड़ती है। यह मूलमंत्र प्रत्येक राग के प्रारम्भ में प्रयुक्त होता है। इसका संक्षिप्त रूप, “ॐ सतिगुर प्रसादि” भी है।

बीजमन्त्र का अर्थ इस भाँति है, “वह एक है, ओंकार स्वरूप है (शब्द अथवा वाणी है), वह सत्य नाम वाला है, करतार है, आदि पुरुष है, भय में रहित तथा वैर से रहित है, वह तीनों काल में रहित स्वरूप वाला (मूर्ति) है। वह अयोनि और स्वयंभू (सैभं) है, और (उपर्युक्त गुणों वाला परमात्मा) गुरु की कृपा में प्राप्त होता है।

विशेष :—आगे आने वाली वाणी का नाम “जपु” है।

“आदि सचु जुगादि सचु ॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥” आदि “जपु जी” का मंगलाचरण रूप ‘मलोक’ है। वास्तविक “जपु जी” ‘सोचै सोचि न होवई’ में प्रारम्भ होता है।

॥ जपु ॥

आदि सचु जुगादि सचु ॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥

“जपु जी” का मंगलाचरण, “आदि सचु” से प्रारम्भ होता है। इसका अर्थ इस प्रकार है, “(वह परमात्मा) आदि में (भूतकाल में) सत्य रूप में स्थित था, युगों के प्रारम्भ में (वही) सत्य (विद्यमान था), अब भी (वर्तमान काल में) सत्य ही है, आगे आने वाले समय में (भविष्य में) भी सत्य ही रहेगा।

सोचै सोचि न होवई जे सोची सल बार ।
चुपे चुपि न होवई जे लाइ रहा लिबतार ॥
भुलिआ भुल न उतरो जे बंनो पुरीआ भार ।
सहस सिआणया सल होहि त इक न बलै नालि ॥

किं सचिगारा होईये किं कूड़े सुटे पालि ।

हुकमि रजाई खलणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

यदि हम लाखो बार परमात्मा के सम्बन्ध में सोचे, तो भी उसे सोच नहीं सकते । जुग रहने से, मोन धारण करने में हमारी अलक्ष्य वृत्ति (लिबतार) उससे नहीं जुड़ सकती यदि हम अनेक पुरियो (इन्द्रादिक पुरियों) से संबंधित हो जाये, तो भी भूखों की भूख (बिना परमात्मा की प्राप्ति के) निवृत्त नहीं हो सकती । हजारों, लाखों चतुराइयाँ क्यों न हो, किन्तु वे एक भी साथ नहीं देती, (उनसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती) । किस भाँति हम सच्चे बनें और किस भाँति झूठ (कूड़े) के परदे (पालि) का नाश हो ? (परमात्मा) के हुकम और उसकी इच्छा (रजाई) के अनुसार चलने से हम सच्चे बन सकते हैं । किन्तु उसके हुकम और उसकी मर्जी के अनुसार चला, भाग्य में लिखा होता है, तभी होता है ॥१॥

हुकमी होबनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ।

हुकमि होबनि जोअ हुकमि मिलै वडिआई ॥

हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ।

इकना हुकमी बलसोइ इकि हुकमी सदा भवाईअहि ॥

हुकमे अंदरि सनु को बाहरि हुकम न कोइ ।

नानक हुकमे जे बुझै त हुमे कहै न कोइ ॥२॥

(परमात्मा के) हुकम से सभी सृष्टि (आकार) की उत्पत्ति हुई है । हुकम के संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता । हुकम से ही जीवों की उत्पत्ति होती है । हुकम से ही बड़ाई मिलती है । हुकम से ही उत्तम और नीच कर्म किए जाने हैं और उसी के अनुसार दुःख-सुख की प्राप्ति होती है । (उस परमात्मा के द्वारा) कुछ तो पुरस्कृत किए जाते हैं और कुछ (आवागमन के चक्र में) सदैव भ्रमण किए जाते हैं । इस प्रकार सारी सृष्टि ही हुकम के अंतर्गत है । हुकम के बाहर कोई नहीं है । नानक का कथन है कि जो व्यक्ति (परमात्मा के) इस हुकम को समझता है, वह अहंकार (हउम) के दोष से निवृत्त हो जाता है ॥२॥

गावै को तारु होवै किसे तारु । गावै को दाति जावै नीसारु ॥

गावै को गुण वडिआईआ चार । गावै को विदिआ विलमु बोचार ॥

गावै को साजि करे तनु लेह । गावै को जोअ लै फिरि बेह ॥

गावै को जाये विसै दूरि । गावै को वेखै हावरा हकूरि ॥

कथना कथो न गावै तोटि । कथि कथि कथो कोटी कोटि कोटि ॥

देवा वे लैवे थकि पाहि । जुगा जुगंतरि छाही छाहि ॥

हुकमी हुकमु चलाहे राहु । नानक विगसै वेपरवाहु ॥३॥

कोई उस परमात्मा के बल (तारु) का गुणगान करता है, जिस किसी में (उसके गुणगान की) शक्ति रहती है । कोई परमात्मा को दान का प्रतीक (नीसारु) समझ कर, उसके दान के गीत गाता है । कोई उसकी सुन्दर (चार) बड़ाइयों की प्रशंसा करता है । कोई उसके विषय (विलमु)—कठिन विचारों का वर्णन करता है । कोई परमात्मा के गुणों की

इसलिये बड़ाई करता है कि वह सर्वशक्तिमान् पहले शरीर की रचना करता है, फिर उस खाक (सेह) बना डालता है । कोई इसलिए उसका गुणगान करता है कि वही जीवदान देता है और फिर ले भी लेता है । कोई उसका इस प्रकार गुणगान करता है कि वह परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, प्रतीत नहीं होता, (क्योंकि वह अत्यन्त दूर और सबसे परे है) । कोई इसलिए उसकी प्रशंसा करता है कि वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा अत्यन्त समीप, दृष्टि के निकट है । (मंधोप में यह कि उसके गुणों का) कितना ही कथन क्यों न किया जाय उनका अंत (तोटि) नहीं है । करोड़ों व्यक्ति उसके गुणों का कथन करते हैं, (किन्तु उनका अंत नहीं है) । दाता, (हरी) देता ही रहता है; लेनेवाले (लंदे) लेते लेते थक जाते हैं, युग-युगान्तारों तक (उसके दान को) खाने रहते हैं, (किन्तु समाप्ति नहीं होती) । वह हुक्म देनेवाला (हुकमी) सभी को अपने हुक्म के मार्ग पर चलाता है । वह बेपरवाह (अपने ही आनन्द में) विकसित होता रहता है ॥३॥

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपार ।
 आखहि मंगहि बेहि बेहि दाति करे दातार ॥
 केरि कि अगै रखीऐ जितु विसै दरबार ।
 सुहो कि बोलतु बोलौऐ जितु सुणि धरे पिआर ॥
 मंझत बेला सचु नाउ बडिआई बीचार ।
 करमो आबै कपड़ा नदरी मोखु दुआर ॥
 नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सबिआर ॥४॥

नाइव (परमात्मा) सच्चा है । वह सत्य नाम वाला है । उसके गुणों का कथन (भाखिआ) अनन्त भावों में किया जाता है । (लोग उसके गुणों की) प्रशंसा करते रहते हैं और उससे 'दे दे' (देहि देहि) कह कर मांगते हैं । दाता परमात्मा (निरन्तर) देता ही रहता है । उस परमात्मा के सम्मुख (अगै) फिर कौन सी वस्तु समर्पित की जाय (रखीऐ), जिससे उसके दरबार का दर्शन हो ? (हम) मुँह में कौन सी ऐसी वाणी बोले, जिसे सुनकर वह प्यार करने लगे ? ब्रह्ममुहूर्त (अमृत वेला) में (उठकर) सत्य नामवाले (परमात्मा) की महिमा का ध्यान करो । हमें (सामारिक) कर्म करने से तो (शरीर रूपी) बन्ध की ही प्राप्ति होती है, किन्तु (परमात्मा को) कृपादृष्टि (नदरी) से मोक्ष-द्वार प्राप्त होता है । नानक कहते हैं कि इस प्रकार (एवै) यह जानो कि सच्चा परमात्मा स्वयं ही सब कुछ है ॥४॥

धापिआ न जाइ कीता ना होइ । आपे आपि निरंजनु सोइ ॥
 जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु । नानक गावोऐ गुणीनिधानु ॥
 गावोऐ सुरोऐ मनि रखीऐ भाउ । दुखु परहरि सुखु घरि सै जाइ ॥
 गुरमुखि नावं गुरमुखि बेवं गुरमुखि रहिआ समाई ।
 गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ॥
 जे हउ जाणा आला नाही कहणा कथनु न जाई ।
 गुरा इक बेहि बुभाई ।
 सबना जोआ का इकु दाता सो मै बिसरि न जाई ॥ ५ ॥

वह परमात्मा न तो स्थापित किया जा सकता है और न निर्मित। निरंजन आप ही सब कुछ है। जिन्होंने उसकी आराधना की है उन्होंने मान प्राप्त किया है। नानक गुणनिधान (परमात्मा) को स्तुति करता है। (उसी का) गुणगान करो, उसी का श्रवण करो और उसी का (अनन्य) भाव मन में रखो। (इस प्रकार) तुम्हारे सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे और तुम सुख अपने घर ले जाओगे। गुरुवाक्य हो नाद है, गुरु का वाक्य ही वेद है, क्योंकि गुरु की रसना में परमात्मा समाया हुआ है। गुरु ही शिव (ईसर) है, गुरु ही विष्णु (गोरखु) है, वही ब्रह्मा और पार्वती माता है। (गुरु की महिमा मैं नहीं जान सकता), यदि मैं जानता भी होऊँ, तो मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वह कथन द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। (हाँ,) गुरु ने मुझे एक बात (भलीभाँति) समझा दी है—(वह यह है कि) सभी प्राणियों का एक दाता है; उसे मैं (किसी प्रकार) न भूलूँ ॥ ५ ॥

तीरथि नाबा जे तिसु भावा बिरु भाए कि नाइ करी ।
जेती सिरठि उपाई देखा बिरु करमा कि मिले लई ।
मति बिचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ।
गुरा इक बेहि बुझाई ।
सभना जोआ का इकु दाता सो मे विसरि न जाई ॥ ६ ॥

यदि (जे) मैं उसे अच्छा लगता हूँ, तो मैंने तीर्थस्नान कर लिया। यदि मैं उसे अच्छा नहीं लगता, तो नहीं-धो कर क्या करूँ? जितनी सृष्टि-रचना उस प्रभु ने की है और जिसे मैं देख रहा हूँ, बिना कर्मों के क्या ले दे सकती है? (कुछ भी नहीं)। यदि हम गुरु की शिक्षा सुनते हैं, तो हमारी बुद्धि रत्न, जवाहर, माणिक्य की निधि हो सकती है। गुरु ने मुझे एक बात (भली भाँति) समझा दी है—(वह यह है कि) सभी प्राणियों का एक दाता है, उसे मैं (किसी प्रकार) न भूलूँ ॥ ६ ॥

जे जुग चारे आरजा होर दसुणी होइ ।
नवा खंडा बिचि जाणीऐ नालि चले सभु कोइ ॥
चंगा नाउ रखाइ के असु कीरति जगि लेइ ।
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुछे के ॥
कीटा भंदरि कीटु करि दोसी दोसु घरे ।
नालक निरगुणि गुरु करे गुणवंतिआ गुरु दे ।
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुरु कोइ करे ॥ ७ ॥

यदि चारों युगों के बराबर किसी की श्रायु हो जाय, (इतना ही नहीं) उसमें भी दसयुनी श्रायु प्राप्त हो जाय, यदि नव-खण्डों के लोग उसे जानते हों, और लोग उसके साथ चलते हों, यदि उसके नाम की जगत् में परम प्रसिद्धि हो और उसका यश, कीर्ति सारे जगत् में व्याप्त हों, (यह सब कुछ हो जाने पर भी) यदि हम उसकी (अच्छी) दृष्टि में नहीं आते हैं, तो कोई बात भी नहीं पूछता है। (यदि परमात्मा चाहता है तो महान् से महान् व्यक्ति को) कीड़ों में कीड़ा बना सकता है और दोषी भी (उसे) दोषी बनाने लगते हैं। नानक कहते हैं कि (वह प्रभु) अवगुणियों को गुणी बना सकता है और गुणवानों को और भी गुणी बना सकता है। प्रभु

के बिना मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता, जो किसी अन्य व्यक्ति में गुणों की उत्पत्ति कर सके । (हम में यह शक्ति नहीं है कि अपने में गुणों की उत्पत्ति कर सकें) ॥ ७ ॥

सुणिए सिध पीर सुरिनाथ । सुणिए घरति धवल आकास ॥
सुणिए दीप लोभ पाताल । सुणिए पोहि न सकै काल ॥
नानक भगता सदा बिगासु । सुणिए दूख पाप का नासु ॥ ८ ॥

विशेष :—(इस पड़ो से लेकर ग्यारहवीं पड़ो तक श्रवण की महत्ता बतलाई गयी है । आध्यात्मिक साधना में श्रवण, मनन, निदिध्यासन का बहुत बड़ा महत्व है) ।

श्रवण से (साधारण व्यक्ति) सिद्ध, पीर, देवता तथा नाथ अथवा इन्द्र (सुरिनाथ) हो जाते हैं । श्रवण से ही घरती, (उसका आधार) वृषभ (धवल) तथा आकाश स्थित हैं । श्रवण से ही (नाना) दीप, (चौदह) लोक तथा पाताल चल रहे हैं । श्रवण से ही काल स्वर्श (पोहि) नहीं कर सकता । (मनुष्य आवागमन के चक्कर से मुक्त हो, परमात्म-स्वरूप हो जाता है) । नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखो तथा पापो का नाश हो जाता है ॥८॥

सुणिए ईसर बरमा इंदु । सुणिए मुलि सालाहरु मंडु ॥
सुणिए जोग जुगति तनि भेद । सुणिए सासत सिमृति भेद ॥
नानक भगता सदा बिगासु । सुणिए दूख पाप का नासु ॥ ९ ॥

श्रवण से ही शिव (ईसर), ब्रह्मा और इन्द्र की पदवी पाते हैं । श्रवण से ही बुरे (मंडु) भी मुख से प्रशंसा योग्य बन जाते हैं । अथवा श्रवण से ही (ऋषिगण) मंत्र (मंडु) रचना करके, (अपने) मुख से परमात्मा की स्तुति करते हैं । श्रवण से ही योग की युक्ति एवं धारी के रहस्य (तनि भेद) जात होते हैं । श्रवण से ही शास्त्रों, स्मृतियों, वेदों का वास्तविक ज्ञान होता है । नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखो तथा पापो का नाश हो जाता है ॥९॥

सुणिए सतु संतोषु गिघानु । सुणिए अठसठि का इसनानु ॥
सुणिए पड़ि पड़ि पाबहि मानु । सुणिए लागै सहजि धिघानु ॥
नानक भगता सदा बिगासु । सुणिए दूख पाप का नासु ॥ १० ॥

श्रवण से सत्य अथवा सत्वगुण (सतु), संतोष एवं ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की प्राप्ति होती है । श्रवण से अठसठ तीर्थों के स्नान (का पुण्य) प्राप्त हो जाता है । श्रवण से ही पढ़ कर मान प्राप्त होता है । श्रवण से ही सहजावस्था (तुरीयावस्था, चतुर्थ पद) का ध्यान लगता है । नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखो और पापों का नाश हो जाता है ॥१०॥

सुणिए सरा गुण के गाह । सुणिए सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिए अंधे पाबहि राह । सुणिए हाथ होवै असगाह ॥
नानक भगता सदा बिगासु । सुणिए दूख पाप का नासु ॥ ११ ॥

श्रवण से श्रेष्ठ गुणों की याह मिल जाती है। श्रवण से ही (इस लोक में) शेष, पीर और बादशाह बन जाते हैं। श्रवण के फलस्वरूप ही ग्रंथे अपना मार्ग पा जाते हैं। श्रवण से ही ग्रथाह (वसु) की याह मिल जाती है ग्रथवा श्रवण से ही उसकी (परमात्मा की) ग्रथाघ गति हाथ आती है। नानक कहते हैं कि (श्रवण से ही) भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखों और पापों का नाश हो जाता है ॥११॥

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछे पछुताइ ॥

कागजि कलम न लिखणहारु। मंने का बहि करनि बीचारु ॥

ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाएँ मनि कोइ ॥ १२ ॥

विशेष : १२ वी पउड़ी से लेकर १५ वी पउड़ी तक में मनन की महत्ता बनाई गई है।

मनन की अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो इसे कहकर व्यक्त करना चाहता है, वह बाद में पश्चाताप करता है। (क्योंकि परमात्मा वर्णनातीत है)। (मनन की अवस्था को अभिव्यक्त करने के लिए न पर्याप्त) कागज है, न कलम है, न (सुयोग्य) लेखक ही है। (अतः कोई भी ऐसा नहीं है) जो स्थित होकर मनन की अवस्था पर सोच सके। वह नाम निरंजन (माया रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन जानता है, वह मन ही मन (इसका रसास्वादन करता है) ॥१२॥

मंने सुरति होवै मनि बुधि। मंने सगल भवन की सुधि ॥

मंने मुहि जोडा ना खाइ। मंने जम कै साथि न जाइ ॥

ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाएँ मनि कोइ ॥ १३ ॥

(परमात्मा के) मनन से मन और बुद्धि में सुरति (स्मृति, तन्मयता) उत्पन्न होती है। मनन से सारे भुवनों—लोको का ज्ञान हो जाता है। मनन से मुह में चोट नहीं खानी पड़ती। मनन से यम के साथ नहीं जाना पड़ता (आवागमन के चक्कर में छूट कर परमात्म-स्वरूप हो जाता है)। यह नाम-निरंजन (माया रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन जानता है, वह मन ही मन आनन्दित होता है ॥१३॥

मंने मारग ठाक न पाइ। मंने पति सिउ परगटु जाइ ॥

मंने मगु न चले पंथु। मंने घरम सेती सनबंधु ॥

ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाएँ मनि कोइ ॥ १४ ॥

(परमात्मा के) मनन से मार्ग में हकावट नहीं पड़ती। मनन करने से ही प्रतिष्ठा (पति) के साथ प्रकट रूप में (परमात्मा के पास) जाता है। मनन से ही मार्ग ग्रथवा पंथ में (कठिनाई) नहीं आती। मनन के फलस्वरूप ही उसका सम्बन्ध धर्म से हो जाता है। वह नाम-निरंजन (माया-रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन करना जानता है, वह मन ही मन आनन्दित होता है ॥१४॥

मंने पावहि मोख दुघारु। मंने परवारे स.धारु ॥

मंने तरै तारे गुरु सिख। मंने नानक भवहि न भिख ॥

ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाएँ मनि कोइ ॥ १५ ॥

(परमात्मा के) मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। मनन से ही (मनन करने वाला) अपने परिवार को आधार युक्त (साधार) बना लेता है, अथवा मनन से ही परिवार को सुधार लेता है। मनन से ही गुरु स्वयं तरता है और अपने शिष्य को भी तार देता है। मनन से भिक्षा के निमित्त भ्रमण नहीं करना पड़ता। वह नाम-निरंजन (माया रहित परमात्मा) वास्तव में ऐसा ही है। जो कोई भी वास्तविक मनन करना जानता है, वह मन ही मन आनन्दित होता है ॥१५॥

पंच परबाण पंच परधान । पंचे पावहि वरगहि मानु ॥
पंचे सोहहि दरि राजानु । पंचा का गुरु एकु धिमानु ॥
जे को कहे करे बीचारु । करते कै करणै नाही सुमारु ॥
घोसु धरसु बइआ का पुतु । संतोसु थापि रखिआ जिनि सूति ॥
जे को बूझै होवै सचिआरु । धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परे होरु होरु । तिसते भारु तलै कवगु जोरु ॥
जोग्र जाति रंगा के नाब । सभना लिखिआ बुझी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ । लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता तारु सुआलिहु रूपु । केतो दाति जाणै कौरु कृतु ॥
कोता पसाउ एको कवाउ । तिसते होए लख दरिआउ ॥
कुवरति कवण कहा बीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुषु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १६ ॥

(शुभ गुराणों में) श्रेष्ठ व्यक्ति (पंच) (परमात्मा के यहाँ) प्रामाणिक (समझे जाते हैं), श्रेष्ठ ही प्रधान माने जाते हैं। श्रेष्ठ ही (परमात्मा के) दरवाजे पर मान पाते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति ही राजाओं के दरबार में शोभनीय होते हैं। श्रेष्ठ का ध्यान एक गुरु में केन्द्रित होता है।

[डा० मोहन सिंह ने इस का अर्थ इस प्रकार किया है—

पंच परबाण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ।

पंच परधान—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ।

परमात्मा के दरवाजे पर पाँच मान पानेवाले—पंच ज्ञानेन्द्रियाँ ।

राजाओं के दरबार में पाँच मान पानेवाले—पंच कर्मेन्द्रियाँ ।

पाँच वे जिन्हें गुरु का ध्यान है—(पंच प्राण)—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान]

यदि कोई परमात्मा के सम्बन्ध में कथन करता है, तो पूर्ण रूप से सोच विचार कर ऐसा करे, (क्योंकि) कर्ता (परमात्मा) के कार्यों की गणना नहीं हो सकती। पृथ्वी को धारण करनेवाला कोई बेल (धौलु) है। (वास्तव में वह धर्म रूपी बेल पृथ्वी को धारण नहीं करता) बल्कि (परमात्मा का) धर्म ही बेल है और वह (परमात्मा की) दया का पुत्र है। (धर्म के साथ) संतोष की स्थापना करके (परमात्मा ने सारी सृष्टि-रचना) एक सूत्र में पिरो रखी है। जो कोई (इस रहस्य को) जानता है, वह सत्य स्वरूप ही हो जाता है। (भला बेचारे) बेल के ऊपर कितना भार है ! (तात्पर्य यह कि बेल को क्या सामर्थ्य है कि वह पृथ्वी को धारण करे। उसे धारण करनेवाला तो परमात्मा ही है) पृथ्वियाँ बहुत सी हैं। उनमें भी परे

अनेक पृथ्वियाँ है (अनन्त है)। (भला बताइए) उनके भार के नीचे कौन सी शक्ति है ? (अर्थात् उनका क्या आधार है ?)। (परमात्मा की सृष्टि में) अनन्त जीव है, अनन्त जातियाँ है, अनन्त रंग है और अनन्त नाम है। (सभी के भाग्य) उसकी आज्ञा की लेखनी से लिखे गये हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो (परमात्मा के) इस लेख को लिख सके ? यदि उन लेखों-जोखों का लेखा लगाया जाय, तो न मालूम कितने (लेख) हो सकते हैं ! (ऐ परमात्मा !) तेरी कितनी शक्ति (तायु) है और कितना सुन्दर (सुभ्रालिङ्ग) स्वरूप है ! (परमात्मा के) कितने दान हैं, इसे कौन जान सकता है और अनुमान (कूतु) लगा सकता है ? (परमात्मा के) एक वाक्य से सारा प्रसार (सृष्टि-निर्माण) हुआ। उसी से लाखों नद उत्पन्न हुए। (हे परमात्मा तेरी) कुदरत, प्रकृति अथवा शक्ति का किस प्रकार विचार कर्क ? (तेरी ऐसी आश्चर्यमयी सृष्टि है) कि एक बार नहीं (अनेक बार) न्योछावर हुआ जाय (तो भी कम हो है)। जो तुझे अच्छा लगे, वही अच्छा कर्म है। तू शाश्वत रहनेवाला और निरंकार स्वरूप है ॥१६॥

असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ ॥
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास ॥
असंख भगत गुण गिमान बीचार। असंख सती असंख दातार ॥
असंख सूर सुह भख सार। असंख मोनि लिब लाइ तार ॥
कुदरति कवण कहा बीचार। वारिआ न जावा एक बार ॥
जो तुषु भावै साई भलो कार। तू सवा सलामति निरंकार ॥ १७ ॥

विशेष—गुरु नानक देव ने इस पद मे यह दिखाने की चेष्टा की है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए अनेक साधन किये जा रहे हैं। साथ ही इस पद से सृष्टि की अनन्तता का भी बोध कराया गया है —

(उस प्रभु की दर्शन-प्राप्ति के लिए, अथवा उसके बोध के निमित्त) अनन्त जप किये जाते हैं और अनन्त भावों से (उसकी आराधना और भक्ति) की जाती है। (उसकी प्राप्ति के निमित्त) असंख्य पूजाएँ और तपश्चर्याएँ की जाती हैं, मुखों से अनन्त धार्मिक ग्रन्थों एवं वेदों के पाठ किए जाते हैं, असंख्य प्रकार की योग-साधनाएँ की जाती हैं, (जिनके द्वारा सासारिक विषयो से) मन उदासीन रखा जाता है। असंख्य भक्त (अपनी-अपनी प्रणाली के अनुसार) (परमात्मा के) गुणों का विचार करते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हैं। असंख्य (मनुष्य) सत्त्व-गुण और दान (द्वारा उस प्रभु तक पहुँचने में) तत्पर रहते हैं। असंख्य धूरवीर (उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए युद्धस्थल में) मुँह से लोहा भक्षण करते हैं, (तात्पर्य यह कि घनघोर युद्ध करते हैं)। (हे प्रभु) असंख्य मोनी (मोनि-व्रत-धारी साधक) एकनिष्ठ हो तेरे ही ध्यान में निमग्न रहते हैं। (हे प्रभु, तेरी) कुदरत, प्रकृति, शक्ति अथवा माया का किस प्रकार विचार कर्क ? (तेरी ऐसी आश्चर्यमयी रचना है) कि एक बार नहीं (अनेक बार) न्योछावर हुआ जाय (तो भी कम ही है)। जो तुझे अच्छा लगे, वही अच्छा कर्म है। तू शाश्वत रहनेवाला और निरंकार-स्वरूप है ॥१७॥

असंख सूरख ग्रंथ घोर। असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलबड हतिआ कमाहि ॥

असंख पापी वापु करि जाहि । असंख कूड़िआर कूड़े किराहि ॥
असंख मलेछ मसु भलि खाहि । असंख निन्दक सिरि करहि भार ॥
नानक नीचु कहै बीचार । बारिआ न जावा एक बार ॥
जो तुषु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १८ ॥

विशेष :—इस पद में गुरु नानक देव ने यह बतलाया कि परमात्मा की तमोगुणी सृष्टि भी अनन्त है । बहुत से ऐसे लोग हैं जो आसुरी वृत्ति में ही रहना पसंद करते हैं । उन्हें परमात्मा के अस्तित्व एवं धर्माधर्म का कुछ भी बोध नहीं रहता । इस प्रकार परमात्मा की सृष्टि में जहाँ एक ओर जपी, तपी, मोनी, शूरमे, सतोगुणी, दानी, भक्त, ज्ञानी, योगी इत्यादि हैं, वहाँ दूसरी ओर मूर्ख, घनघोर तमोगुणी, हरामखोर, पराया द्रव्य अपहरण करनेवाले, भीषण निन्दक भी हैं । किन्तु ऐसी सृष्टि भी उसकी लीला का एक अंग है :—

अर्थ :—असंख्य (प्राणी) मूर्ख एवं घनघोर तमोगुणी (अंधे) हैं । असंख्य चोर और हरामखोर हैं । असंख्य व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो जबर्दस्ती अपना हुक्म (अमर) मनवाते हैं । असंख्य व्यक्ति गला काटनेवाले (गनवड) और हत्या कमानेवाले हैं । असंख्य पापी ऐसे हैं, जो पाप-कर्म में ही सारी आयु समाप्त कर चल देते हैं । असंख्य भूटे (कूड़िआर) अपना भूट लेकर स्थान-स्थान पर फिरते हैं । असंख्य मलेच्छ (ऐसे) हैं, जो अखाद्य वस्तुएं (मसु) भक्षण करते हैं (और पचा जाते हैं) । असंख्य निन्दक (पराई निन्दा के पाप का भार अपने) सिर पर लादते हैं । (इस प्रकार) नानक अधर्मों का विचार करता है (वर्णन करता है) । (हे परमात्मा तेरी आश्चर्य-मयी सृष्टि है, उस पर) एक बार नहीं अनन्त बार न्योछावर होना भी थोड़ा ही है । जो तुझे अच्छा लगे, वही शुभ कर्म है । तू शाश्वत रहनेवाला, निरंकार ब्रह्म है ॥ १८ ॥

असंख नाव असंख धाव । अगंम अगंम असंख लोअ ॥
असंख कहहि सिरि भार होइ ।
अखरी नाम अखरी सालाह । अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु वाणि । अखरा सिरि संजोगु बखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिसु सिर नाहि । जिय फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ । विसु नावै नाही को पाउ ॥
कुदरति कबण कहा बीचार । बारिआ न जावा एक बार ॥
जो तुषु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १९ ॥

(परमात्मा तेरे) असंख्य नाम हैं और असंख्य स्थान हैं । मन, वाणी, बुद्धि से परे (अगंम) अनन्त लोक है । (वास्तविक बात तो यह है कि) असंख्य कहना भी सिर के ऊपर भार ही लादना है । अक्षर से ही नाम की प्राप्ति होती है, [अक्षर से तत्पर्यं यहां कई हो सकते हैं —(क) जो क्षर न हो, अर्थात् परमात्मा । (ख) परमात्मा की आज्ञा (ग) शास्त्र] अक्षर से (परमात्मा की) स्तुति (सालाह) होती है । अक्षर से ज्ञान प्राप्त होता है तथा परमात्मा की गुण-नाथा के गीत गाये जाते हैं । अक्षर से ही लिखना और वाणी बोलने का ज्ञान होता है । अक्षर द्वारा ही (मनुष्य) के भाग्य (सिरि) का संयोग अंकित किया रहता है (बखाणि) । जिस परमात्मा ने अक्षर की रचना की है, वह इनके अधीन नहीं है । (वह तो

सर्वशक्तिमान् है) वह जैसी आज्ञा देता है, उसी प्रकार मनुष्य पाता है । जो कुछ भी रचना हुई है, वह सब तेरा नाम ही है । (परमात्मा के) नाम बिना कोई स्थान नहीं है । (हे प्रभु, तेरी) प्रकृति, शक्ति, अथवा माया का किस प्रकार विचार करूँ ? (तेरी ऐसी आश्चर्यमयी शक्ति है कि उस पर) एक बार नहीं अनन्त बार न्योछावर होना भी थोड़ा ही है । जो तुम्हें अच्छा लगे, वही शुभ कर्म है । तू शाश्वत रहनेवाला, निरंकार ब्रह्म है ॥१६॥

भरीए हथु पैरु तनु बेह । पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत्र पलोतौ कपड़ होइ । बे साबुण लईऐ ओहू घोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि । ओहू घोपै नावै कै रंगि ॥
पुनौ पासी आखणु नाहि । करि करि करण लिखि ले जाहू ॥
आपे बीजि आपे ही खाहू । नानक हुकमो आवहू जाहू ॥ २० ॥

यदि हाथ, पैर और शरीर के ग्रन्थ अंगों में धूल लगी हो, तो पानी से धोने में वह धूल साफ हो जाती है । यदि मूत्र (आदि) से कपड़े अशुद्ध हों, तो साबुन लगा कर उन्हें धो लो । (इसी प्रकार यदि) बुद्धि पापों से भरी हो, तो वह नाम के प्रेम (रंग) से शुद्ध की जा सकती है । कहने मात्र से न कोई पुण्यात्मा हो जाता है और न कोई पापी, जो जो कर्म हम करते हैं, वे (परमात्मा के दूतों द्वारा) लिख लिये जाते हैं । (इस प्रकार) मनुष्य स्वयं ही बोता है और स्वयं ही खाता है । परमात्मा के हुक्म के अनुसार आना-जाना (जन्म-मरण का चक्र) लगा रहता है ॥२०॥

तीरथु तपु दइआ दनु दान । जे को पावै तिल का मानु ॥
सुलिआ भनिआ मनि कीता भाउ । अंतरगति तीरथि मनि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ । वियु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुससति आयि बाणी बरमाउ । सति सुहायु सदा मनि चाउ ॥
कवरु सु बेला बखतु कवरु कवरु धिति कवरु वारु ।
कवरि सि रूती माहू कवरु जितु होवा आकारु ॥
बेल न पाईआ पंडती जि होवै लेलु पुरायु ।
बखतु न पाइओ कावीआ जि लिखनि लेलु कुरायु ॥
धिति वारु ना जोगी जाएँ रति माहू ना कोई ।
जा करता सिरठी कड साजै आपे जाएँ सोई ॥
किव करि आज्ञा किव सालाही किउ बरनी किव जाणा ।
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा ॥
बडा साहिबु बडी नाई कीता जा का होवै ।
नानक जे को आपो जाएँ अगै गइआ न सोई ॥ २१ ॥

तीर्थयात्रा, तपश्चर्या, दया, पुण्य (दनु) दान (आदि करने से) तिल मात्र मान प्राप्त होता है । (क्योंकि इन सब साधनों से स्वर्गादिक की प्राप्ति क्षणभंगुर है) । किन्तु जो कोई परमात्मा का अवलोकन, मनन करके मन में भाव (प्रेम) उत्पन्न करता है, वह भान्तरिक तीर्थ में

मल मल कर स्नान करता है (और पापों को धो डालता है) । ऐ परमात्मा सभी गुण तुझ में है, मुझ में कुछ भी नहीं है । बिना गुणी को धारण किये (कोते), भक्ति नहीं (उत्पन्न) होती, (परमात्मा तू) धन्य है (आधि), जिसको वाणों से ब्रह्माण्डों (बरमाउ) की उत्पत्ति हुई । उसकी सत्ता (सति) की शोभा वर्णन करने के लिये बारबार मन में चाव उत्पन्न होता है । वह कौन सी बेला थी, कौन समय था, कौन तिथि थी, कौन वार था, कौन सी ऋतु थी, कौन महीना था, जिस समय सृष्टि-रचना हुई ? (गुरु नानक जी का उत्तर है कि सृष्टि रचना की निश्चित घड़ी कोई भी नहीं जानता) । पंडितों को (सृष्टि-रचना के समय का) पता नहीं है, (क्योंकि) यदि वे जानते होते, तो पुराणों में अवश्य लिखते । काजियों को भी (सृष्टि रचना के) वक्त का पता नहीं है, (क्योंकि यदि वे जानते होते) तो कुरान में इस बात का अवश्य उल्लेख करते । (इस प्रकार सृष्टि-रचना की) तिथि और वार को योगी भी नहीं जानते । कोई भी (सृष्टि रचना की) ऋतु अथवा महीना नहीं जानता । जो कर्त्ता सृष्टि को साजता है, वही (इस रहस्य को) जान सकता है । (ऐ परमात्मा तुझे) किस प्रकार सम्बोधित करूँ, तेरी किस प्रकार स्तुति करूँ, किस प्रकार वर्णन करूँ और कैसे जानूँ ? नानक कहते हैं, (ऐ परमात्मा,) सभी लोग तथा एक से एक चतुर व्यक्ति तेरा वर्णन करते हैं । वह साहब महान् (बड़ा) है, उसका नाम भी महान् है । उसी का किया हुआ (कीता) सब कुछ है । गुरु नानक कहते हैं जो कोई (परमात्मा को छोड़ कर) अपने आप को कुछ जानता है, वह आगे जाकर (परलोक में गमन कर) शोभा नहीं पाता ॥२१॥

पाताला पाताल लख आगासा आगास ।
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात ॥
सहस्र अठारह कहनि कतेबा असुलु इकु धातु ।
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ बिरणामु ॥
नानक बडा आखीऐ आये जाऐ आपु ॥ २२ ॥

(सृष्टि में) लाखों पाताल हैं और लाखों आकाश । (लोग) उसका अंत (ओड़क) लगाते लगाते थक गए (पर अन्त पाए नहीं) । वेद एक ही बात कहते हैं ('नेति नेति' अर्थात् उसका अन्त नहीं है) । कतेबों [१ तुरेन, २ अंजोल, ३ कुरान तथा ४ जंबूर] का कथन है कि अठारह हजार आलम (दुनिया, सृष्टि) है । किन्तु वास्तव में (असुलु) एक ही सत्ता है, (जो सृष्टि का सृजन, पालन एवं संहार कर रही है) । यदि (परमात्मा) का लेखा (हिसाब, गणना) हो, तो लेखा करो; सारे लेखे-जोखे नश्वर ही हैं । नानक कहते हैं कि वह (अत्यन्त) महान् है । वह अपने को आप ही जान सकता है, (अन्य कोई नहीं) ॥२२॥

सालाही सालाहि एती सुरति न पाइआ ।
नदीआ भतै बाह पबहि समुंदि न जाऐीअहि ॥
समुंब साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ।
कोड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न बीसरहि ॥ २३ ॥

(परमात्मा के) प्रशंसक उसकी प्रशंसा करते हैं, किन्तु उन्हें (उसकी पूर्णता की) स्मृति (बुद्धि) नहीं प्राप्त हुई । नदी और नाले समुद्र में गिरते हैं, किन्तु (वे समुद्र को) नहीं जान

सकते (कारण यह कि समुद्र में मिलकर वे समुद्रवत हो जाते हैं) । समुद्र के समान शाहंशाह और मुल्तान, जिनके पास पहाड़ों (गिरहा) के समान धन-माल हो, उस कीड़े की समता नहीं कर सकते, जिसे तू मन से नहीं बिसराता (अर्थात् तेरा अनन्य भक्त सर्वश्रेष्ठ है, उसकी समता न धनी कर सकते हैं, न शाहंशाह और न मुल्तान) ॥२३॥

अंतु न सिफती कहणि न अंतु । अंतु न करणै बैणि न अंतु ॥
 अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु । अंतु न जापै किया मनि अंतु ॥
 अंतु न जापै कीता आकारु । अंतु न जापै पारावारु ॥
 अंत कारण केते बिललाहि । ताके अंत न पाए जाहि ॥
 एहु अंतु न जाणै कोइ । बहुता कहोए बहुता होइ ॥
 बडा साहिबु ऊचा थाउ । ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥
 एबहु ऊचा होवै कोइ । तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥
 जेबड आपि जाणै आपि आपि । नानक नदरी करमो दाति ॥ २४ ॥

(परमात्मा के) गुणों का अंत नहीं है और न (उन गुणों के) कथन करनेवालों का ही अन्त है । न तो उसके कर्त्तव्य का अन्त है और न उसके दानों का ही । न तो (उस प्रभु के) देखनेवालों, का अंत है और न उसको श्रवण करनेवालों का ही । उसके मन में क्या मन्तव्य (रहस्य) है, उसका भी अन्त जाना नहीं जा सकता । उसके किए हुए सृष्टि-प्रसार (आकार) का अंत भी ज्ञात नहीं हो सकता । (सृष्टि-विस्तार) का आदि-अन्त भी नहीं जाना जा सकता । न मालूम कितने उसका अन्त जानने के लिए बिललाते रहते हैं, किन्तु उसका अंत नहीं पाया जाता । कोई भी उसका अन्त नहीं जानता । जितना अधिक हम उसका कथन करते जायें, उतना ही अधिक वह बढ़ता जाता है । साहब (स्वामी, प्रभु) महान है । उसका (स्थान बहुत ही) ऊंचा है; (हमारी पहुँच से परे है); स्थान से ऊंचा उसका नाम है । यदि उतना ऊंचा कोई हो, तो उस ऊँचे (परमात्मा) को जान सकता है । जितना बड़ा वह है, आप ही अपने द्वारा अपनी महत्ता जान सकता है । नानक कहते हैं कि परमात्मा की देन उसी के ऊपर होती है, जिसके ऊपर उसकी कृपा-दृष्टि होती है ॥२४॥

बहुता करसु लिखिआ ना जाइ । बडा दाता तिसु न तमाइ ॥
 केते मंडहि जोध अपार । केतिआ गणत नही बीचार ॥
 केते लपि तुरहि वेकार ।
 केते सै सै मुरु पाहि । केते मूरख खाही खाहि ॥
 केतिआ बूख भूख सद मार । एहि भी दाति तेरी बातार ॥
 बंदिखलासी भाणै होइ । होरु आखि सकै न कोइ ॥
 जे को खाइकु आखणि पाइ । ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥
 आपे जाणै आपे बेइ । आखहि ति नि केई केइ ॥
 जिसनो बखसे सिफति सालाह । नानक पातिसाही पातिसाहु ॥ २५ ॥

(उस दाता के) दानों का वर्णन नहीं किया जा सकता । वह दाता महान् है, उसमें तिल भर भी (रंच मात्र भी) लालच (तमाइ) नहीं है । कितने ही योद्धा—अनगिनती योधा,

(उससे) माँगते हैं। (परमात्मा से माँगनेवाले) कितने हैं, इसकी गणना का अनुमान (बीचार) नहीं लगाया जा सकता। कितने ही विकारी पुरुष (विषयों में ही) खप जाते और नष्ट हो जाते हैं। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो (परमात्मा से) ले ले कर मुकर जाते हैं। कितने ही मूर्ख इस प्रकार के हैं, जो (परमात्मा से पा पा कर) खाते हो चले जाते हैं। कितने ऐसे हैं, जिन पर सदैव ही दुःख और भूख की मार पड़ती रहती है। हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं, (अर्थात् दुःख-भूख भी तेरे ही दिए हुए हैं)। बंधन-मोक्ष तेरी ही आज्ञा से होते हैं। (तेरी आज्ञा के संबंध में) कोई कुछ कह नहीं सकता। जो कोई गप्पी (खाइक—फारसी), (परमात्मा के संबंध में) यह डींग मारे (कि वह इस प्रकार देता है, इस प्रकार नहीं देता) है, तो उसे अपनी मूर्खता का अच्छी तरह पता तब लगता है, जब उसके मुँह पर चोटे पड़ती हैं। (प्रभु) आप ही जानता है और आप ही देता है। जो व्यक्ति (सत्यस्वरूप परमात्मा का सच्चाई से) वर्णन करते हैं, वे कोई ही कोई होते हैं। (परमात्मा) जिसे भी चाहे, अपने गुणों की प्रशंसा करने की शक्ति प्रदान कर सकता है। नानक कहते हैं कि (वह प्रभु) बादशाहों का बादशाह है ॥२५॥

अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥
 अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ॥
 अमुल धरमु अमुल दीवारु । अमुल तुलु अमुल परवारु ॥
 अमुल बलसीस अमुल नोसारु । अमुल करमु अमुल कुरमारु ॥
 अमुलो अमुल आखिआन न जाइ । आखि आखि रहे लिब लाइ ॥
 आखहि वेव पाठ पुराण । आखहि पड़े करहि वलिआण ॥
 आखहि बरमे आखहि इंद । आखहि गोपो तै गोविंद ॥
 आखहि ईसर आखहि सिध । आखहि केते कीते बुध ॥
 आखहि दानव आखहि वेव । आखहि सुरि नर सुनि जन सेव ॥
 केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥
 एते कीते होरि करेहि । ता आखि न सकहि केई केइ ॥
 जेबहु भावै तेबहु होइ । नानक जाएँ साचा सोइ ॥
 जे को आखै बोलुबिगाडु । ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ॥ २६ ॥

(हे प्रभु, तेरे) गुण अमूल्य हैं; व्यापार (क्रिया-कलाप) भी अमूल्य हैं। तेरे व्यापारी अमूल्य हैं और तेरा भांडार भी अमूल्य है। जो (तुझसे) आते हैं, वे भी अमूल्य हैं (और) (तुझसे) जो लोग ले जाते हैं, वे भी अमूल्य हैं। (उस परमात्मा के यहाँ से आने वाले अमूल्य हैं और उसके गुणों को ग्रहण कर उसके पास जाने वाले भी अमूल्य हैं)। परमात्मा के दिए हुए भाव अमूल्य हैं और उसकी दी हुई समाधि (समाधि) भी अमूल्य है। परमात्मा द्वारा प्रदत्त धर्म और दरबार अमूल्य हैं। प्रभु के दिए हुए तौल और तौलई (परवारु) दोनों ही अमूल्य हैं। परमात्मा की बलिआण और उसके दिए हुए चिह्न (निशान) अमूल्य है। (ऐ परमात्मा तेरी) कृपा अमूल्य है और (तेरी) आज्ञा अमूल्य है। तू अमूल्यों में अमूल्य है, तेरा वर्णन नहीं किया जा सकता। कितने ही व्यक्ति तेरी असीमता का वर्णन करते-करते ध्यान-निमग्न होते रहते हैं। वेदों और पुराणों को पढ़-पढ़ कर कितने ही व्यक्ति तेरा वर्णन करते हैं। बहुत से

लोग (शास्त्रों को) पढ़-पढ़ कर तेरे सम्बन्ध में व्याख्यान देते हैं, (प्रवचन करते हैं) । ब्रह्मा, इन्द्र, गोपी और कृष्ण, ईश्वर (शिव), सिद्धगण, ब्रह्म से बृद्ध अथवा बुद्धिमान पुरुष, दानव, देवता, सुर, नर, मुनि, सेवक जन (जन सेव) आदि तेरा ही वर्णन करते हैं । कइयों को (परमात्मा के स्वरूप के वर्णन करने का) पूर्ण अवसर प्राप्त हो जाता है और वर्णन करते ही करते उठ कर चल देते हैं (काल के बशीभूत हो जाते हैं) । (प्रभु ने जितने व्यक्तियों को) रचना कर दी है, उतने ही वह और निर्माण कर दे, तो भी कोई उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता । (वह स्वयं ही अपनी महिमा को जानता है) । तू जितना ही बड़ा बनना चाहता है, उतना ही बड़ा बन जाता है । सच्चा परमात्मा ही अपने वास्तविक स्वरूप को जान सकता है । जो कोई उसके वर्णन करने का दम्भ भरता है, वह अपनी बाणी ही खराब करता है और उसकी गणना गँवारों के बीच गँवार (अति गँवार) में होनी चाहिए ॥ २६ ॥

सो घर केहा सो घर केहा जितु नहि सरब समाले ।
 बाजे नाद अनेक असंख्य केते वावणहारे ॥
 केते राग परी सिउ कह्योअनि केते गावणहारे ।
 गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसतरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥
 गावहि चिनुगुपनु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु बीचारे ॥
 गावहि ईसर बरमा बेबी सोहनि सदा सवारे ॥
 गावहि ईद ईदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ।
 गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साथ बिचारे ॥
 गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ।
 गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुग जुग वेदा नाले ॥
 गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ।
 गावनि रतनि उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
 गावहि जोथ महाबल सूरु गावहि लाणी चारे ।
 गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रले धारे ॥
 सोई तुपनो गावहि जो तुषु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
 होरि केते गावनि से मे चिति न गावनि नानकु किआ बीचारे ॥
 सोई सोई सदा सनु साहिवु साचा साची नाई ।
 है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
 रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिन उपाई ।
 करि करि वेखै कोता आपणा जिव तिस दो बडिआई ॥
 जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ।
 सो पातिसाह साहा पातिसाहिवु नानक रहसु रजाई ॥ २७ ॥

विशेष:—इस पउड़ी में गुरु नानक देव ने परमात्मा की अनन्तता का वर्णन किया है परमात्मा की अनन्त सृष्टि के अनन्त प्राणों उसका गुणगान अनन्त समय में करते आ रहे हैं; पर कोई भी उसका पूर्ण गुणगान न कर सका और न कर सकेगा ।

अर्थ :—(ऐ परमात्मा) तेरा (वह) दरवाजा कहाँ है और (तेरा) घर कहाँ है, जहाँ बैठ कर सभी (प्राणिमात्र) को संभाल करता है ? (तेरे दरवाजे पर) अनेक, असंख्य नाद हो रहे हैं; असंख्य बजाने वाले (तेरे गुणों के संगीत विविध राग-रागिनियों में) बजा रहे हैं । असंख्य गायक (तेरे गुणों के गीत) अनन्त राग-रागिनियों (परी) द्वारा [सिद्ध=सं, द्वारा] गा रहे हैं । (हे प्रभु, तेरा यश) पवन, जल अग्नि सभी गा रहे हैं, धर्मराज भी तेरे दरवाजे पर बैठ कर तेरा गुणगान कर रहे हैं । चित्रगुण जो सभी के पाप-पुण्य को लिखते हैं और उनके धर्म के अनुसार विचार करते हैं, वे भी तेरा गुणगान कर रहे हैं । ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, देवी, (जो तुझ द्वारा) सुन्दर रूप में बनाए गए हैं, वे भी तेरे यश का गीत गा रहे हैं । देवताओं के साथ इन्द्रासन पर बैठे हुए इन्द्र भी तेरे दरवाजे पर बैठे हुए गुणानुवाद कर रहे हैं । सिद्धगुण समाधि के अंतर्गत तुझे ही गा रहे हैं, माधुपुरुष भी ध्यान में (विचारे) तेरा ही गुणगान कर रहे हैं । यती, सत्वगुणी, संतोषी, महान् (करारे) शूरवीर तेरे ही यश का गीत गा रहे हैं । युग-युगान्तरो से वेदों के अध्ययन द्वारा पंडित एवं श्रुतीश्वर (तेरो ही महत्ता का) गुणगान करते आए हैं । मन को मोहनेवाली स्वर्ग में अप्सराएं (मोहोग्रीष्म) तथा पाताल में स्थित कच्छ-मच्छादिक तेरी ही प्रशंसा कर रहे हैं । तेरे उत्पन्न किए हुए (चौदह) रत्न तेरा यश गाते हैं । माय ही (नाल) अडमठ तीर्थ भी तेरा गुणगान करते हैं । बड़े-बड़े महाबली शूरवीर, योद्धागण तथा चार प्रकार की योनियों (अंज, जेरज, उद्भिज, स्वेदज) के जीव तेरा यश गाते हैं । जिन खण्ड, मण्डन, ब्रह्माण्डादिक को रचना करके अपने-अपने स्थान पर धारण कर रक्खा है, वे भी तेरे गीत गा रहे हैं । जो तुझे अच्छे लगते हैं और तुझमें अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तेरी यश-गाथा गा रहे हैं । गुरु नानक देव कहते हैं कि हे प्रभु, और कितने ही लोग तेरा यशगान कर रहे हैं, वे सब मेरे चित्त में नहीं आ सकते (अनुमान नहीं कर सकता) । मैं क्या विचार करूँ ? (क्या गणना करूँ ?) । वही वह है, सदैव सच है, सच्चा साहब है और सच्चे नाम वाला है । (वही परमात्मा) (वर्तमान में) है, (भूत में) या और (भविष्य में) रहेगा, जिनसे यह अनन्त रचना रची है, वह न जा सकता है और न जायगा । जिसने रंग-रंग को भाँति-भाँति की माया को वस्तुः (जिनसा) उत्पन्न की, वह अपनी को हुई रचना और उसकी महत्ता देख-देख कर (प्रसन्न हो रहा है ।) जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वह उसी को करता है, उसकी आज्ञा का कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता । वह बादशाह, बादशाहों का भी बादशाह है । उसका मर्जों के भाँतर ही रहना चाहिए ॥ २७ ॥

सुंश संतोषु सरसु पतु भोली धिमान को करहि बिभूति ।

खिया कालु कुमारी काइमा जुगति डंडा परतीति ॥

आई पंथी सगल जमाली मनि जीतै जगु जीतु ।

आवेसु तिसै आवेसु ॥

आदि अनोलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥ २८ ॥

विशेष :—कहते हैं कि नाथ-सम्प्रदाय के सिद्ध-योगियों ने गुरु नानक देव जी से योगी का वेश बना कर गुरु गोरखनाथ जी को 'आदेस' करने को कहा । 'आदेस' नाथ-पंथी योगियों के प्रणाम करने की प्रणाली है । 'मुद्रा', 'भोरी' 'बिभूति', 'कंवा', 'डंडा' आदि धारण

करना योगियों के बाह्य चिह्न है। गुरु नानक देव जो ने २५, २६, ३० और ३१ पउड़ियों में उन योगियों को यह उत्तर दिया है कि बाह्य वेशादिक की आन्तरिक साधना के लिए कोई आवश्यकता नहीं। वेश से योगी नहीं बनना चाहिए, बल्कि आध्यात्मिक कर्मों के सम्पादन से आन्तरिक योगी बनना चाहिए।

अर्थ :—(हे योगी), संतोष एवं श्रम अथवा लज्जा [सरमु = (१) श्रम (२) लज्जा] को (कान में पहनाने की दो) मुद्रा बनाओ, प्रतिष्ठा (पतु) की भोली (धारण करो) (परमात्मा के) ध्यान को (शरीर में मलने के लिये) विभूति बनाओ। काल के बशी-भूत हो जाने वाले शरीर को ही कंथा (खिपा) बना कर धारण करो। इसे कुमारी की भाँति पवित्र रखो। युक्ति एवं विश्वास को ही डडा बनाओ। सारी जमात (जमा, समूह) को एक समझना यही तुम्हारा आई पंथ हो। (आई पंथ, योगियों के बारह पंथों में से एक है)। मन को जीतना ही (तुम्हारा) जगत जीतना हो। यदि 'आदेस' ही करना हो, तो उसे (परमात्मा को) 'आदेस' करो (बाहरी लोगों को नहीं)। (वह परमात्मा) आदि है, वर्ण-रहित है (अनीलु), अनादि है, अनाहत है तथा युग-युगान्तरो में एक ही वेश वाला (अविनाशी) है। (उसी परमात्मा को 'आदेस'— नमस्कार करो) ॥ २५ ॥

भुगति गिआनु दहआ भंडारणि घटि घटि बाजहि नाद ।

आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ॥

संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ।

आवेसु निते आवेसु ॥

आदि अनीलु अनादि अनाहति जुग जुग एको वेसु ॥ २६ ॥

(हे योगी), बहुज्ञान को ही भोग—भुक्ति (भुगति) बनाओ। दया ही भण्डारी हो। यदि नाद ही सुनना हो, तो (श्रुद्धी आदि का नाद मन मुनो, बल्कि) घट-घट के भीतर जो अनाहत नाद हो रहा है, उसी को सुनो। (परमात्मा को ही) नाथ समझो, उसी ने समस्त संसार नाथ रक्खा है (अपने बशीभूत किए हैं)। श्रुद्धियाँ सिद्धियाँ तो अन्य स्वाद हैं—सात्त्विक स्वाद हैं। (वास्तविक श्रुद्धि-सिद्धि तो परमात्मा में अनन्य भक्ति ही है)। संयोग, और वियोग ये दोनों सृष्टि का समस्त कार्य चलाते हैं और अपने-अपने भाष्यानुसार इनकी प्राप्ति होती है। अतएव यदि 'आदेस'—प्रणाम करना हो, तो उसी को कर। वह परमात्मा ही आदि है, वर्ण-रहित है, अनादि है, अनाहत है तथा युग-युगान्तरो में एक ही वेशवाला, (अविनाशी) है ॥ २६ ॥

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवारु ।

इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीवारु ॥

जिव तिसु भावे तिवे चलावे जिव होवे फुरमारु ।

ओहु वेले ओना नवरि न आवे बहुत एहु बिडारु ॥

आवेसु तिते आवेसु ॥

आदि अनीलु अनादि अनाहति जुग जुग एको वेसु ॥ २७ ॥

(हे योगी), एक माया ने युक्ति से तीन प्रामाणिक (परवाणु) बेलो —पुत्रों को उत्पन्न किया । (उन तीनों में से) एक तो संसार का निर्माता अर्थात् ब्रह्मा है, एक भण्डारी, पोषक अर्थात् विष्णु है और एक दीवान लगाने वाला, (प्रलय करने वाला), महेश है । वह प्रभु (त्रिगुणात्मक माया एवं उसके तीनों पुत्रों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश को) अपने आदेशानुसार, अपनी इच्छा के अनुसार चलाता है । वह प्रभु तो (त्रिगुणातीत होने के कारण) उन्हें देखता रहता है, पर उनकी दृष्टि में वह नहीं आता, यह बहुत ही आश्चर्यजनक है । (उसी परमात्मा को) 'आदेस'—प्रणाम करो । वह आदि है, वर्ण-रहित है, अनादि है, अनाहत है तथा युग-युगान्तरो से एक ही वेशवाला (परिवर्त्तन-रहित, अविनाशी है ।) ॥ ३० ॥

आसगु लोइ लोइ भंडार । जो किछु पाइआ सु एका बार ॥

करि करि बेलै सिरजणहार । नानक सबे की साथी कार ॥

आबेसु तिसै आबेसु ॥

आदि अनीलु अनावि अनाहति सुगु सुगु एको बेसु ॥ ३१ ॥

(हे योगी), (वह प्रभु) प्रत्येक लोक में आसन लगा कर विराजमान है और (साथ ही साथ) प्रत्येक लोक में उसका भण्डार है । जिसे जो कुछ भी पाना था, उसने एक बार ही में पा लिया । सृष्टि-रचयिता समस्त सृष्टि-रचना करके, उसे देखता रहता है (उसकी-खोज खबर लेता रहता है) । नानक कहते हैं कि सब्बे परमात्मा की सब्बी कारगरी (सृष्टि-रचना) है । (उसी परमात्मा को) 'आदेस'—प्रणाम करो । वह आदि है, वर्ण-रहित है, अनादि है, अनाहत है तथा युग-युगान्तरो से एक ही वेशवाला (परिवर्त्तन-रहित अविनाशी) है ॥ ३१ ॥

इकदू जीभौ लख होहि लख होबहि लख बीस ।

लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥

एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस ।

सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ॥

नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़े ठीस ॥ ३२ ॥

यदि एक जीभ से लाख जीभे हो जायँ और लाख से बीस लाख हो जायँ, (तो मैं) उन सारी जीभों से लाख लाख बार एक जगदीस (परमात्मा) का नाम जपूँगा । पति (परमात्मा) के मार्ग की यही सीढ़ियाँ हैं । (इन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ कर साधक बीस में) इक्कीस हो जाता है (अर्थात् श्रेष्ठ और प्रामाणिक हो जाता है) । नाम द्वारा भक्तों की उस उच्च पद की प्राप्ति की बात (गला आकास की) सुन कर हम लोग जो कीट हैं, उन्हें भी स्वर्दा हो गई । नानक कहते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति उसकी कृपादृष्टि (नदरी) से होती है । झूठा तो झूठी ढींगे ही मारता है ॥ ३२ ॥

आखणि जोरु तुपै नहु जोरु । जोरु न भंगणि देणि न जोरु ॥

जोरु न जीबणि मरणि नहु जोरु । जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥

जोरु न सुरती मिम्रानि बीबारि । जोरु न जुगती छुटे संसार ॥

जिसु ह्वि जोरु करि 'बेलै सोइ । नानक उतसु नीचु न कोइ ॥ ३३ ॥

न तो बहुत कथन में यह शक्ति (जोर) है (कि जिससे परमात्मा की प्राप्ति हो जाय), न मोन में है, न माग कर खाने में है और न दानी बन कर दान देने में है । न जीवन में न मरण में, न राज्य-सम्पत्ति में, न मन के संकल्प-विकल्प (सोर) में, न स्मृति (सुरति) में, न ज्ञान में, न विचार में, न युक्ति में वह जोर—शक्ति है जिससे संसार के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो (और परमात्मा की प्राप्ति हो) । (संसार से छुटकारा दिलाने की) वास्तविक शक्ति तो उस परमात्मा के हाथ में है । वही सृष्टि रचना करके देखता है (और प्रसन्न होता है) । नानक कहते हैं कि (उस परमात्मा की सृष्टि में) न कोई ऊँच है और न कोई नीच । (चेतन-सत्ता सब में समान रूप से विराजमान है) ॥ ३३ ॥

रातो रति धिती वार । पवण पानी अगनी पाताल ॥

तिसु बिचि धरती व्यापि रखी धरमसाल ।

तिसु बिचि जोम जुगति के रंग । तिनके नाम अनेक अनंत ॥

करमी करमी होइ बोचारु । सचा प्राप सचा दरबार ॥

तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमि पवै नीसाणु ॥

कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइया जायै जाइ ॥ ३४ ॥

विशेष :—गुरु नानक देव ने ३४वीं पउड़ी में 'धर्म खण्ड' का, ३५वीं में 'ज्ञान खण्ड' का, ३६वीं में 'सरम खण्ड' का तथा ३७वीं पउड़ी में 'करम खण्ड' और 'मच खण्ड' का वर्णन किया है । उपर्युक्त पाँचो खण्ड पंच भूमियाँ अथवा भूमिकाये हैं । इस प्रकार परमात्मा की अनन्त सृष्टि 'धर्म' से, 'ज्ञान' से, 'सरम' से, 'करम' से और 'सच्च' से चल रही है ।

'धरम' प्रकृति के नियमों के समूह को कहते हैं ।

अर्थ :—(परमात्मा ने) रात्रि, ऋतुएँ, नियमों, वार, पवन, जल, अग्नि, पाताल, आदि की रचना की । उन सब के बीच में पृथ्वी को धर्मशाला रूप में स्थापित किया । (अर्थात् पृथ्वी धर्मबद्ध है, धर्म-आश्रित है) । उस पृथ्वी में अनेक जीवों के विधान (जुगति) और अनेक जातियाँ, किस्में (रंग) निमित्त की । उन जीवों के (अनन्त रूप और) अनन्त नाम हैं । (देश, काल, नाम, रूप का यह जगत्) प्रत्येक के कर्मानुसार चल रहा है और प्रत्येक के कर्मानुसार (परमात्मा) विचार करता है, (अर्थात् फल देता है) । फलदाता परमात्मा सच्चा है और उसका दरबार भी सच्चा है । उसके दरबार में पंच तन्मात्राएँ (पंच परवाणु = पंच तत्वों के सूक्ष्म रूप) मुशोभित हैं । परमात्मा की कृपा एवं दया से उसका निशान (चिह्न) प्राप्त होता है । इस 'धरम खण्ड' में कच्चे लोग (कर्म अग्नि द्वारा) पकाए जाते हैं । नानक कहते हैं कि वहाँ पहुँचने पर ही (लोग) देखे जायेंगे ॥ ३४ ॥

धरम खंड का एहो धरसु । गिम्नान खंड का आलहु करसु ॥

केते पवण पाणि बेसंतर केते कान महेस ।

केते बरमे छाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के बेस ॥

केनीया करम भूमी मेर केते केते धू उपबेस ।

केते इंव खंड सूर केते केते मंडल बेस ॥

केते सिध सुथ नाथ केते केते बेबी बेस ।
 केते बेव बानव मुनि केते केते रतन ससुंद ।
 केतोआ खाणी केतोआ बाणी केते पात नरिंद ॥
 केतोआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥ ३५ ॥

(इस प्रकार) धर्म-खण्ड का यह धर्म है—(यहाँ कच्चे लोग अपने कर्मानुसार पकाए जाते हैं) । (अब) ज्ञान-खण्ड की दशा (कर्म) का वर्णन किया जाता है । (ज्ञान-खण्ड की भूमिका में स्थिति होने पर प्रभु की शक्तियों का ज्ञान उत्पन्न होता है । यह भौतिक खण्ड नहीं, मानसिक मण्डल है) । ज्ञानखण्ड में कितने ही वायु-देव, वरुण-देव (पाणो), अग्नि-देव, कृष्ण, महेश हैं । कितने ही ब्रह्मा हैं, जो अनेक रचना रचने हैं तथा नाना रूप रंग के वेश उत्पन्न करते हैं । इसमें न मालूम कितनी कर्मभूमियाँ हैं, कितने मुखे पर्वत हैं, कितने ही ध्रुव हैं, जो ज्ञान उपदेश देते हैं । कितने ही इन्द्र हैं, चन्द्रमा हैं, सूर्य हैं, कितने ही मण्डल और देश हैं । कितने ही सिद्ध, बुद्ध, नाथ, देवी, देवता, दानव, मुनि, रत्न तथा समुद्र (उस ज्ञान खण्ड में) स्थित हैं । कितनी ही खानियाँ (उड्डिज, अंडज, जेरज, पिंडज), कितने प्रकार की बाणियाँ, कितने ही बादशाह और राजे हैं । कितनी ही श्रुतियाँ हैं और कितने ही सेवक हैं । नानक कहते हैं कि इस प्रकार ज्ञान-खण्ड की सृष्टि का) अन्त नहीं है, अन्त नहीं है—‘नेति-नेति’ है ॥ ३५ ॥

गिम्मान खंड महि गिम्मानु परखंडु । तिये नाद विनोद कोड अनंदु ॥
 सरम खंड की बाणी रूपु । तिये घाड़ति घड़ीऐ बहुरु अन्तु ॥
 ता कीआ गला कबीआ ना जाहि । जे को कहे पिछे पछुताइ ॥
 तिये घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि । तिये घड़ीऐ सुरा सिधो की सुधि ॥ ३६ ॥

ज्ञानखंड में ज्ञान की प्रचंडता रहती है । (ज्ञानखंड में जानोजन) नाद में अनुरक्त रहते हैं, विनोद, कौतुक (कोड) आनन्द में निमग्न रहते हैं । ‘सरम खंड’ (‘सरम’ का तात्पर्य है ‘लज्जा’, प्रतिष्ठा के प्रति ध्यान) का साधन वाणी है, अर्थात् ‘सरम खंड’ का स्वरूप वाणी है । (गुरुवाणी से ही इस भूमिका की प्राप्ति होती है) । उस भूमिका में (वाणी द्वारा) वस्तुओं की अनुपम रचना होती है । उस भूमिका की बात कही नहीं जा सकती—वर्णनातीत है । जो कोई व्यक्ति कथन करने का प्रयास करता है, वह पीछे पछताता है, (क्योंकि वह भूमिका कथन से परे है) । वही सुरति (स्मृति), मति, मन एवं बुद्धि की रचना होती है । उसी स्थल पर देवताओं एवं सिद्धों की स्मृति की भी रचना होती है ॥ ३६ ॥

करम खंड की बाणी जोरु । तिये होरु न कोई होरु ॥
 तिये जोध महा बल सूर । तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥
 तिये सीतो सीता महिमा माहि । ताके रूप न कथने जाहि ॥
 ना ओहि सरहि न ठागे जाहि । जिनके रामु बसे मन माहि ॥
 तिये भगत वसहि के लोअ । करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
 सच खंड वसे निरंकारु । करि करि बेले नवरि निहाल ॥
 तिये खंड मंडल बरभंड । जे को कहे त अंत न अंत ॥

तिथै लोअ लोअ आकार । जिव जिव हुकमुतिवै तिव कार ॥

खेखे बिगसे करि वोचारु । नानक कथना करड़ा सारु ॥ ३७ ॥

‘करम खंड’ की वाणी शक्ति है । [अर्थात् स्मरण द्वारा स्त्री (साधक वृत्ति) शक्ति—परमात्मा की शक्ति—प्राप्त करती है] । ‘करम खंड’ (कृपा खंड) में परमात्मा की शक्ति को छोड़ कर कुछ नहीं है । उस खंड में महाबली शूरवीर ही निवास करते हैं । उन सब में राम ही समाया हुआ है । वहाँ उसकी महिमा में सीता ही सीता है । उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता । जिनके मन में राम निवास करते हैं, न वे मरते हैं और न (काल द्वारा) ठगे जाते हैं । वहाँ ऐसे भक्तों के कितने के लोक बसे हैं । ऐसे भक्त सदैव आनन्द ही करते हैं, क्योंकि सच्चा नाम उनके मन में बसा हुआ है ।

निरंकार परमात्मा का ‘सच्च खंड’ में निवास है । अपनी कृपा-दृष्टि (नदरि) से वह (भक्तों को) देखता रहता है और (उन्हें) निहाल (प्रसन्न) करता है । ‘सच्च खंड’ में अनन्त ‘खंड’, ‘मंडल’ और ‘ब्रह्माण्ड’ हैं । उन खण्डों, मण्डलों और ब्रह्माण्डों का कोई भी अन्त नहीं है । ऐसा कोई नहीं है, जो उनके अन्त का कथन कर सके । वहाँ अनन्त लोक आकारवत् हैं । किन्तु सब के सब उसके ‘हुकम’ के अनुसार अपने-अपने कार्य करते हैं । (शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति परमात्मा की इस अनन्तता को) देख-देख कर विचार करता है और प्रसन्न होता है । नानक कहते हैं कि (परमात्मा की इस अनन्त सृष्टि का) कथन करना उतना ही कठिन है जितना कि कठोर लोह को चवाना ॥ ३७ ॥

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु । अहरणि मति वेतु हथीआरु ॥

भउ खला अगनि तपताउ । भांडा भाउ अंभृतु तितु डालि ॥

घड़ीऐ सबदु सची टकसालु । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।

नानक नदरी नदरि निहाल ॥ ३८ ॥

(हे साधक), संयम अथवा इन्द्रिय-दमन भट्ठी है और धैर्य सोनार है । बुद्धि निहाई है और गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान (वेद) हथौड़ी है । (गुरु अथवा परमात्मा का) भय ही धौकनी है और तपस्या ही अग्नि है । प्रेम ही पात्र है, अमृत (भगवान् का नाम) (गलाया हुआ सोना) है । इस प्रकार सच्ची टकसाल (शुद्ध आत्मा) में गुरु के शब्द (सिक्के) डालो । पर यह कर्म वे ही करते हैं, जिनके ऊपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है । नानक कहते हैं कि (परमात्मा की) एक कृपा-दृष्टि मात्र से (साधक) निहाल हो जाता है ।

विशेष :—उपर्युक्त रूपक का भाव इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :—धैर्य रूपी सुनार इन्द्रिय दमन को भट्ठी बनावे । भट्ठी में आग होती है । काम-क्रोधादिक के रोकने से तेज उत्पन्न होता है । यही तेज अग्नि है । सुनार के पास निहाई होती है । उसी निहाई पर रख कर वह गरम सोने को हथौड़ी से कूटता है । साधक की निहाई दृढ़ बुद्धि है और उसकी हथौड़ी परमात्मा द्वारा प्रदत्त दिव्य ज्ञान है । सोनार धौकनी से अग्नि को प्रदीप्त करता है । साधक की अग्नि प्रदीप्त करने की धौकनी परमात्मा का भय है । अपने आप को विषयो से रोकना ही अग्नि का ताप है ।

सुनार के पास पात्र रहता है, जिसमें वह गलाए हुए सोने को ढाल देता है, जिससे उस सोने की मुहर तैयार हो जाती है । साधक का पात्र भाव अथवा प्रेम है और गलाया हुआ

सोना ही समुत्त है। इस प्रकार जो अन्तःकरण मे 'सच्च' को धारण करता है, उसकी अन्तरात्मा टकसाल बन जाती है और उस टकसाल मे सच्ची वाणी के पवित्र शब्द गढ़े जाते है।

पर यह सच्ची वाणी, पवित्र शब्द गढ़ने का काम उन्ही को करने को मिलता है, जिनके ऊपर उस परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है। गुरु नानक देव का कथन है कि परमात्मा की एक कृपा-दृष्टि से साधक निहाल हो जाता है ॥ ३८ ॥

सलोकु

पवणु गुरु पाणो पिता माता धरति महतु ।
 विवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगनु ॥
 चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरसु हडूरि ।
 करमो आया आपणो के नेडे के दूरि ॥
 जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ।
 नानक ते मुख उजले केतो छूटी नालि ॥ १ ॥

विशेष :-—यह सलोकु 'माभ की वार' मे गुरु अंगद जो (महला २) द्वारा रचित लिखा गया है। केवल एकाध शब्दों का ही अन्तर है।

अर्थ :- पवन गुरु है, जल पिता है, महान् धरती माता (महत् ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ) है। दिन और रात दोनों ही दाई-दाया है। ('दाई' स्त्री लिंग; दाया-'दाई का पुल्लिङ्ग')। सारा जगत् (बालकवत् इसी विराट् रचना मे) खेल खेल रहा है। जो अच्छाईयाँ और बुराईयाँ (शुभ कर्म और मन्द करनी) की जाती हैं, वे धर्म (परमात्मा के नियम) द्वारा बाँची जाती हैं (अर्थात् शुभ और अशुभ कर्मों के शुभ और अशुभ फल कर्मानुसार मिलते हैं)। सभी जीव अपने कर्मानुसार कर्म कर रहे हैं। कोई समीप है और कोई दूर है: (परमात्मा के लिए दूरी और समीपता का कोई प्रश्न ही नहीं है, वह सर्वत्र है)। (इस सृष्टि में जो व्यक्ति उसके आज्ञानुसार) नाम स्मरण करते हैं, परिश्रम करने हैं, उनके मुख उजले होते हैं। गुरु नानक देव कहते हैं ('कि ऐसे व्यक्ति स्वयं तो मुक्त ही होते हैं) किन्तु कितनों को ही (अपने प्रभाव से) मुक्त कर देते हैं ॥ १ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि

रागु सिरौ रागु, महला पहिला १, घर १

सबद

[१]

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ।
 कसतूरि कुंगू अगारि चंदनि लीपि आवै चाउ ।
 मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ १ ॥
 हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ ।
 मैं आपरणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 धरती त हीरे लाल जड़ती पलधि लाल जड़ाउ ।
 मोहणी सुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ ।
 मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ २ ॥
 सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ।
 गुप्तु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ ॥
 मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ ३ ॥
 सुलतानु होवा भेलि लसकर तखति राखा पाउ ।
 हुकमु हासतु करी बैठा नानका सभ वाउ ।
 मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ ४ ॥ १ ॥

विशेष :—तालो या सुरों के टिकाने के निमित्त गुरुवाणी में १ ने १७ घर दिए गए हैं ।
 ये घर संगीतज्ञों के लिए गायन के संकेत हैं ।

प्रर्थ :—मोती के घर बनाए गए हैं और उनमें रख जड़े गए हैं । कस्तूरी, केशर, अगार और चन्दन आदि (सुगन्धित द्रव्यों) से इस प्रकार लिपे हैं, जिसमें मन में प्रसन्नता प्राप्त होती हो । (ऐ परमात्मा), ऐसे (मकानों को देख कर) मैं कहीं भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ जिसमें तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आवे ॥ १ ॥

हरि के प्रेम के बिना यह जीव जल-बल जाय (नष्ट हो जाय) । मैंने अपने गुरु से यह भलीभाँति पूछ कर देख लिया है कि (परमात्मा को छोड़ कर) कोई अन्य स्थल (मेरे लिए) नहीं है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(इतना ऐश्वर्य हो कि) पृथ्वी हीरो और लालो से जड़ी हो और पलंग भी लाल से जड़े हो । मन को मोहित करने वाली (भति सुन्दरी स्त्री) हो, जिसके मुख पर मरिचियाँ सुशो-
भित हों और वह आनन्द का प्रसार कर रही हो; (अर्थात् प्रेम में नाना प्रकार के हाव-भाव करती हो) । (किन्तु ऐ परमात्मा, इन सब भोगों के होने पर भी) मैं कही भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आए ॥२॥

(मैं) सिद्ध बन जाऊँ और (सिद्धियों का चमत्कार लोगों के सामने) ला दूँ—प्रत्यक्ष कर दूँ—और साथ ही ऋद्धियों को आज्ञा दूँ कि मेरे पास आओ (और वे मेरी आज्ञा को मुन कर सामने उपस्थित हो जायें) मैं । (अपनी चमत्कारिणी शक्ति से इच्छा करने पर) ग्रस्त हो कर बैठ जाऊँ और फिर प्रकट हो जाऊँ । (इस प्रकार आश्चर्यकारिणी शक्ति देखकर) लोग मेरी श्रद्धा करने लगे । (किन्तु ऐ प्रभु, इन सब अलौकिक ऋद्धियों-सिद्धियों के होने पर भी) मैं कही भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ, जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आए ॥३॥

मैं सुल्तान हो जाऊँ, लश्कर (फौज, सेना) एकत्र कर लूँ और राज्य-सिंहासन (तख्त) पर पैर रखूँ, (सभी पर) हुक्म करूँ और महमूल वसूल करने बैठूँ, किन्तु नानक कहते हैं (कि हे प्रभु, तेरे बिना यह सब ऐश्वर्य) हवा ही हैं (अर्थात् पवनवत क्षणभंगुर हैं) । (हे परमात्मा, इन सब लौकिक और अलौकिक ऐश्वर्यों के प्राप्त करने पर भी मैं) कही भुलावे अथवा धोखे में न पड़ जाऊँ, जिससे तेरा नाम भूल जाय और मेरे चित्त में न आए ॥४॥१॥

[२]

कोटि कोटी मेरी आरजा पवगु पीअरगु अपिआउ ।

चंदु सरजू दुइ गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ ॥

भो तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ १ ॥

साचा निरंकारु निज थाइ ।

सुणि सुणि आखरगु आखरणा जे भवै करै तमाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

कुसा कुटीआ बार-बार पीसरिण पीसा पाइ ।

अगो सेतो जालोआ भसम सेतो रलि जाउ ॥

भो तेरी कीमती ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ २ ॥

पंखी होइ के जे भवा से असमानी जाउ ।

नवरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ ॥

भो तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ३ ॥

नानक कागद लख मरणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ ।

मसू तोटि न आवई लेखरिण पउरगु खलाउ ॥

भो तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ४ ॥ २ ॥

(यदि मेरी आयु करोड़ों वर्ष की हो जाय और खाना-पीना भी वायु ही हो, ऐसी कष्टों की वीच बैठूँ कि चन्द्रमा और सूर्य भी न देख सकें और सोने की स्वप्न में भी स्थान न मिले (अर्थात् निरन्तर जागता ही रहूँ), फिर भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) नहीं आँकी जा सकती । तेरे नाम को मैं कितना बड़ा बताऊँ ? ॥१॥

सच्चा निरंकार अपने स्थान में आप ही स्थित है । (अर्थात् वह अपने स्वरूप में ही स्थित है ।) जैसा वह है, उसका ज्ञान उसे आप ही है, उसके गुण सुन सुन कर ही वर्णन किए जाते हैं, पर यदि उसकी इच्छा हो, तो (वह अपने आपको दिखाने को) कृपा करता है ॥१॥ रहाउ ॥

मैं बार बार काटा जाऊँ और काट-काटकर टुकड़े-टुकड़े बना दिया जाऊँ (और फिर) चक्की में डाल कर पीसा जाऊँ, आग से जला दिया जाऊँ और (आग की) भस्म के साथ मिल जाऊँ, फिर भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) नहीं आँकी जा सकती । तेरे नाम को मैं कितना बड़ा बताऊँ ? ॥२॥

(यदि मैं) पक्षी हो जाऊँ और सौ आसमानों तक का भ्रमण कर आऊँ (उड़ आऊँ), (इतनी भौतिक सिद्धि प्राप्त हो जाय कि) किसी की दृष्टि में न आऊँ और न कुछ खाऊँ न पिऊँ, फिर भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) नहीं आँकी जा सकती । तेरे नाम को मैं कितना बड़ा बताऊँ ? ॥३॥

नानक देव कह रहे हैं कि यदि लाख मन कागज हो और उस पर लिख-लिख कर सिद्धान्त (भाव) जानने की चेष्टा की जाय, लिखते-लिखते स्याही में किसी प्रकार की कमी न आने पाये और लेखनी वायु की गति से (परमात्मा का यश लिखती जाय), तो भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) नहीं आँकी जा सकती । तेरे नाम को मैं कितना बड़ा बताऊँ ? ॥४॥२॥

[३]

लेखै बोलगु बोलण लेखै खारण खाउ ।

लेखै वाट चलाईआ लेखै सुणि वेजाउ ॥

लेखै साह लवाईअहि पड़े कि पूछण जाउ ॥ १ ॥

बाबा माइआ रचना घोहु ।

अंधे नामु बिसारिआ ना तिसु एह न ओहु ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जीवण मरणा जाइ कै एथे खाजै कालि ।

जिये बहि समझाईऐ तिये कोइ न चलिओ नालि ॥

रोवणावाले जेतड़े सभि बंनहि पंड परालि ॥२॥

समु को आखै बहुतु बहुतु घटि न आखै कोइ ।

कीमति किने न पाईआ कहणि न बडा होइ ।

साचा साहुतु एक तू होरि जीआ केते लोअ ॥३॥

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु ।

नानकु तिनकै संगि साधि बडिआ सिउ किआ रीस ।

जिये नीच समालीअनि तिये नदरि तेरी बखसीस ॥४॥ ३॥

हिसाब में ही (व्यक्ति) बचन बोलता है और हिसाब (सीमा में) ही खाना खाता है । हिसाब में ही मार्ग तय किया जाता है, (तात्पर्य यह कि मार्ग कितना लम्बा क्यों न हो, एक न एक दिन समाप्त हो जाता है) । हिसाब में ही (व्यक्ति) सुनता और देखता है । हिसाब

मे ही साँस ली जाती है । (यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसे पूछने के लिए) पढ़े-लिखों के पास क्या जाना है ? ॥१॥

अरे बाबा (पिता), माया की सारी रचना धोखेवाली है । अंधे (मूर्ख) द्वारा नाम भुला दिया गया । (नाम के भुलाने पर उस अंधे को) न यह लोक है और न वह लोक (पर लोक) है ॥१॥ रहाउ ॥

(मनुष्य इस संसार में) जन्म लेकर जीता और मरता है । इस काल में (वह) यहाँ खाता-पीता है । जिस स्थान पर (परमात्मा के दरवाजे पर) बँठकर (कर्मों का लेखा-जोखा) सम्झाया जाता, वहाँ कोई भी साथ नहीं चलता । जितने भी रोनेवाले हैं, सभी पयाल का गढ़र ही बाँधते हैं (अर्थात् मरनेवाले के पीछे जो रोते हैं, वे व्यर्थ ही रोते हैं) ॥ २ ॥

सभी कोई (उस परमात्मा के संबंध में) बहुत बहुत कहते हैं, कोई भी (उसे) घट कर नहीं बतलाता । (कथन सब करते हैं, किन्तु) उसकी कीमत कोई नहीं पाता; कहने से वह न बड़ा होता है (न छोटा) । सच्चा साहब, तू, अकेला ही है और जीवों के (न मालूम) कितने लोक हैं ॥२॥

नीच जातियों में जो नीच है और उन नीचों में भी जो बहुत ही नीच है, नानक कहते हैं (कि मेरा) उन्हीं से संग-साथ है । बड़ों में मैं (अपनी) क्या तुलना करूँ ? जहाँ पर नीच देखे भले जाते हैं, वहाँ तेरी कृपा-दृष्टि होती है । ॥४॥३॥

[४]

लखु कुता कड़ू, चूहड़ा ठगि खाधा सुरदास ॥

पर निदा पर मलु मुखसुधी अगनि कोधु चंडाल ॥

रस कस आपु सलाहण ए करम मेरे करतार ॥१॥

बाबा बोलीऐ पति होइ ।

ऊतम से दरि ऊतम कहीअहि नीच करम बहि रोइ ॥१॥ रहाउ॥

रस सुइना रस रूपा कामणि रसपरमल की बासु ।

रस घोड़े रस सेजा मंदर रस मीठा रस मासु ।

एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु ॥२॥

जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परबासु ।

फिका बोलि विगुबराण सुणि भूरख मन अजाण ।

जो तिसु भावहि से भले होरि कि कहूँ वखाण ॥३॥

तिन मति तिन पति तिन धनु पलै जिन हिरदै रहिआ समाइ ।

तिनका किआ सालाहणा अवर सुप्रालिउ काइ

नानक नवरी बाहरे राचहि दानि न नाइ ॥४॥ ४॥

विशेष : कहने है कि इस पद को गुरु नानक देव ने काशी के पंडितों से कहा था—

अर्थ : लालच कुत्ता है, भूठ भंगी है, ठग कर खाना मृत पशु खाना है । पराई निन्दा मानो मुँह में निरी (सुधी) पराई मेल है । क्रोध की अग्नि हो चाण्डाल है । हे कर्तार, विविध भाँति के कसैले आदि रस (भोग-सामग्री), आत्मा-दलावा—ये ही मेरे कर्म हैं ॥१॥

ऐ बाबा, (इस प्रकार की बाणी) बोलिए, जिससे प्रतिष्ठा प्राप्त हो । (परमात्मा के) दरवाजे पर उत्तम (पुरुष) उत्तम कहे जाते हैं । (जो व्यक्ति) बुरा कर्म करते हैं, (वे उसके दरवाजे के बाहर) बैठकर रोते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

सोने का रस (भोग) है, चाँदी का रस है, सुन्दरी स्त्री का रस (भोग) है, चंदन आदि की सुगंधि का रस है, घोड़े का रस है, सेजों का रस है, (आलीशान) मकानों का रस है, मांस का मीठा रस है । (इस प्रकार) शरीर के इतने रस (भोग) हैं । (शरीर इन्हीं भोगों में अर्हनिश रस लेता रहता है) । (भला बताओ,) किस प्रकार शरीर में नाम का निवास हो ? ॥२॥

जिस (प्रकार के) बोलने से प्रतिष्ठा प्राप्त हो, वही बोली प्रामाणिक है । ऐ अनजान, भूर्ख मन सुन, फीका बोलने से (मनुष्य) नष्ट हो जाता है । जो (लोग) उसे (उस परमात्मा को) अच्छे लगते हैं, वे ही अच्छे हैं । और (अन्य व्यक्ति) क्या कह सकते हैं ? ॥३॥

(वास्तव में) उन्हीं के (पास) बुद्धि है, उन्हीं के प्रतिष्ठा है, उन्हीं के पास धन है, जिनके हृदय में (परमात्मा) समाया हुआ है । उनकी क्या प्रशंसा की जाय ? (उनके बिना) कोई अन्य व्यक्ति भी सुन्दर हो सकते हैं ? नानक कहते हैं कि बिना उसकी कृपा के (लोगों को) न दान स्वत्ता है न (प्रभु का) नाम ॥४॥४॥

[५]

अमलु गलोला कूड़ का दिता देवराहारि ।
मतो मरगु बिसारिआ खुसो कीती दिन चारि ॥
सनु मिलिआ तिन सोफीआ राखरा कउ दरबार ॥१॥
नानक साखे कउ सनु जागु ।
जितु सेबिए सुलु पाईऐ तेरी दरगह चले मागु ॥१॥ रहाउ ॥
सनु सरा गुड़ बाहरा जिसु बिचि सचा नाउ ।
सुणहि बखारहि जेतड़े हउ तिन बलिहारै जाउ ॥
ता मनु खोवा जाणीऐ जा महली पाए थाउ ॥२॥
नाउ नीरु बंगिआईआ सनु परमसु तनि वासु ।
ता मुख होवे उजला लख दाती इक दाति ।
दूख तिसै पहि आखीअहि सुख जितै हो पासि ॥३॥
सो किउ मनहु विसारीऐ जा के जोअ पराण ।
तिसु बिरु सभु अपवितु है जेता पहिनसु खारु ॥
होरि गलां सभि कूड़ीआ तुषु भावे परबाणु ॥४॥ ५॥

देनेवाले द्वारा नशे का झूठा गोला दे दिया गया है (अर्थात् परमात्मा ने माया के झूठे आकर्षणों में सारे प्राणियों को बाँध रखा है,), (जिसके फलस्वरूप) उनकी बुद्धि ने मरणावस्था भुला दी है और (वे लोग) चार दिन की खुशियाँ मना रहे हैं । उन सूफियों को सत्य दिया गया, ताकि (वे सत्य के बल पर) (परमात्मा का दरबार) रख सकें । (अर्थात् परमात्मा के निकट रह सकें ॥१॥

नानक कहते हैं कि सच्चे को सच्चा ही समझो । जिसकी प्रार्थना करने से सुख की प्राप्ति होती है और (परमात्मा के) दरवाजे पर (व्यक्ति) मान से जाता है, (ऐ) प्राणी, तू उसी परमात्मा की प्रार्थना कर ।) ॥१॥ रहाउ ॥

सत्य रूपी शराब में गुड़ नहीं पड़ता, (बल्कि गुड़ के स्थान पर) उसमें सच्चे नाम का (रस) रहता है । जो लोग इसे सुनते हैं, इसकी प्रशंसा करते हैं, मैं उनकी बर्तैया लेता हूँ । मन को मस्त तभी जानना चाहिए, जब (उसे) (परमात्मा के) महल में स्थान प्राप्त हो जाय ॥२॥

(जब) नाम रूपी जल (से स्नान करे), शुभ कर्म और सत्य के चन्दन से शरीर सुगन्धित करे, तभी मुख उज्ज्वल (पवित्र) होता है । यह देन लाखों देनों में एक ही है, (जो मनुष्य मात्र को ग्रहण करने योग्य है) । दुःख भी उसी (दाता से) निवेदन करना चाहिए, जिसके पास (अनन्त) सुख है ॥३॥

उसे मन से कैसे भुलाया जाय, जिसके समस्त जीव और प्राण हैं ? उसके बिना जितना भी पहनना और खाना है, सब अपवित्र है । (हे हरी), जो तुझे अच्छा लगे, वही प्रामाणिक है, अन्य सभी बातें झूठी हैं ॥४॥५॥

[६]

जालि मोहू घसि मसु करि मति कागदु करि सारु ।
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुडि लिखु बीचारु ॥
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु ॥१॥
बाबा एहू लेखा लिखि जाए ।
जियै लेजा मंगीऐ तियै होइ सचा नीसारु ॥१॥ रहाउ
जियै मिलहि बडिआईआ सद खुसीआ सद चाउ ।
तिन मुखि टिके निकलहि जिन मन सचा नाउ ॥
करमि मिलै ता पाईऐ नाही गली वाउ दुआउ ॥२॥
इकि आदहि इकि जाहि उठि रखीअहि नाव सलार ।
इकि उपाए मंगते इकना बडे बरवार ॥
अगै गइआ जाणीऐ विसु नावै वेकार ॥३॥
भै तेरै उरु अगला खपि खपि छिजै बेह ।
नाव जिना सुलतान खान होवे डिठे खेह ॥
नानक उठी बलिआ सभि कूड़े तुटे नेह ॥४॥५॥

विशेष : गुरु नानक देव जी जब गोपाल पंडित के पास पढ़ने गए, तो उन्होंने पंडित से कहा, "पंडित जी, मुझे वह विद्या पढ़ाइये, जो परलोक में सुखदायिनी सिद्ध हो ।" पंडित जी ने आश्चर्यान्वित होकर गुरु नानक देव जी से पूछा, "वह विद्या कैसी है ?" इस पर उन्होंने निम्नलिखित 'सबद' का उच्चारण किया ।

अर्थ :—मोह को जला कर, (उसे) घिस कर स्याही बनाओ; बुद्धि को ही श्रेष्ठ कागज बनाओ, प्रेम को कलम बनाओ और चित्त को लेखक । गुरु से पूछ कर विचार पूर्वक

लिखो । नाम लिखो, (नाम की) स्तुति लिखो और (साथ ही यह भी) लिखो (कि उस परमात्मा का) न तो अंत है और न सीमा ॥ १ ॥

अरे बाबा, यही लेखा लिखना जानो । (क्योंकि) जहाँ (तुम्हारे कर्मों का) लेखा माँगा जायगा, वहाँ सही दस्तखत भी किया जायगा (कि तुम्हारा लेखा ठीक और प्रामाणिक है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(लेखा ठीक होने पर) जहाँ (परमात्मा के यहाँ) बड़ाई होगी, सदैव खुशी (होगी) और शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा । (परमात्मा के यहाँ) उन्हीं के मुख पर (प्रामाणिकता) के तिलक लगाए जायेंगे, जिनके मन में सच्चा नाम है । प्रभु-कृपा हो, तभी उसकी प्राप्ति होती है) व्यर्थ की इधर-उधर की बातों से नहीं ॥ २ ॥

कुछ तो (इस संसार में) आते हैं और कुछ 'सरदार' नाम रखवा कर उठ कर चल देते हैं । कुछ तो भिखारी उत्पन्न हुए हैं और कुछ (ऐसे) उत्पन्न हुए हैं जिनके) बड़े-बड़े दरबार (लगते) हैं । आगे जाने पर ही (वास्तविकता) जानी जाती है । बिना नाम के (परमात्मा के दरबार में सारे ऐश्वर्य) व्यर्थ सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु) तेरे भय में मुझे बहुत अधिक भय है । (उसी भय में) मेरा शरीर खप खप कर छीज रहा है । जिनके नाम 'मुल्तान' और 'खान' थे, (वे भी) खेह (राख) होते देखे गए । नानक कहते हैं कि (यहाँ से) उठ कर चलने पर सभी झूठे प्रेम टूट जाते हैं ।

[७]

सभि रस मिठे मंनिऐ सुगिएे सालोरो ।

खट तुरसी सुखि बोलया मारण नाव कोए ।

छत्तीह अमृत भाउ एकु जा कउ नदरि करेइ ॥१॥

बाबा होरु खारण लुसी लुभारु ।

जितु खायै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ ॥

रता पैनगु मनु रता सुपेवी सतु दानु ।

नोली सिम्राही कदा करणी पहिरणु पैर धिमानु ।

कमरबंदु संतोख का धनु जोवनु तेरा नामु ॥ २ ॥

बाबा होरु पैनगु लुसी लुभारु ।

जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ २ ॥ रहाउ ॥

घोड़े पाखर सुदने साखति बूझणु तेरी बाट ।

तरकस तोरु कमाण सांग तेगबंद गुण धातु ॥

बाजा नेजा पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति ॥ ३ ॥

बाबा होरु चड़ना लुसी लुभारु ॥

जितु चड़िऐ तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ ॥

घर मंदर लुसी नाम की नदरि तेरी परवारु ॥

हुकमु सोई तुभु भावसी होरु आखणु बहनु अपारु ।

नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु ॥४॥

बाबा होर सजराग खुसी खुभारु ॥

जितु सुतै तनु पीड़ीऐ मन महि बसहि बिकार ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ४ ॥ ७ ॥

(नाम के) मनन मे सभी मोठे रस (प्राप्त हो जाते हैं), श्रवण में सलोना रस (नमकीन) मिल जाता है; मुख से उच्चारण करने में (सारे) खट्टे रसों (की प्राप्ति हो जाती है) और कीर्तन करने में मसाले पड़ जाते हैं । (परमात्मा में) एक भाव—अनन्य प्रेम - करने में छतीस प्रकार के अमृत सदृश भोजन की प्राप्ति हो जाती है । (परन्तु यह सब उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है) जिस पर उसकी कृपा होती है ॥ १ ॥

ऐ बाबा, अन्य भोजन की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिनके खाने से शरीर पीड़ित होता है और मन मे विकार उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मन को (परमात्मा के चरणों मे) अनुरक्त कर देना लाल पोशाक है । सत्य और दान सफेद पोशाक है, (हृदय की कालिमा) को दूर करना ही नीली पोशाक है तथा (हरी के चरणों का) ध्यान बड़ा जामा है । सतोष ही कमरबन्द और (हे हरी,) तुम्हारा नाम ही धन और जीवन है ॥ २ ॥

ऐ बाबा, अन्य पहनावे की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिनके पहनने से शरीर को पीड़ा होती है और मन मे विचार होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तेरे मार्ग का ज्ञान होना ही घोड़े की काठी और सोने की भाँवर है । (शुभ) गुणों की ओर दीड़ना ही तरकस, बाण, धनुष, बरछी और तलवार की म्यान है । प्रतिष्ठा के साथ प्रकट होकर रहना ही बाजा और भाला है और तुम्हारी कृपा ही मेरी जाति है ॥ ३ ॥

ऐ बाबा, अन्य प्रकार की सवारियों की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिन पर चढ़ने से शरीर को पीड़ा होती है और मन मे विकार होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नाम की प्रसन्नता मेरा घर और महल है । तेरी कृपा-दृष्टि ही मेरा परिवार है । जो तुम्हे अच्छा लगे, वही हुक्म है, (हालांकि) अन्य बहुत से कथन हो सकते हैं । नानक कहते हैं कि सच्चा बादशाह (किसी अन्य से) पूछ कर विचार नहीं करता, (वह तो अपनी इच्छा से ही सारी बातें करता है) ॥ ४ ॥

ऐ बाबा, अन्य प्रकार के सोने की खुशी बरबाद करनेवाली है, जिस सोने से शरीर को पीड़ा होती है और मन मे विकार होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

कुंगू की कांइछा रतना की ललिता अगारि वासु तनि सासु ।

अठसठि तीरथ का मुखि टिका तितु घटि मति बिगासु ।

ओतु मतो सालाहणा सचु नामु गुणतासु ॥ १ ॥

बाबा होर मति होर होर ।

जे.सउ बेर कमाईऐ कूड़े कूड़ा जोरु ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पूज लगे पीरु आखीऐ सभु मिलै संसारु ।

नाउ सदाए आपणा होवै सिधु सुमारु ॥

जा पति लेखै ना पवै सभा पूज सुभारु ॥ २ ॥

जिन कउ सतिगुरि व्यापिआ तिन भेटि न सकै कोइ ।
 ओना अंबर नासु निधानु है नामो परगटु होइ ॥
 नाउ पूजोऐ नाउ मनीऐ अखंडु सदा सनु सोइ ॥ ३ ॥
 लेहू लेहू रलाईऐ ता जोउ केहा होइ ॥
 जलीआ सभि सिआएणा उठी जलिआ रोइ ॥
 नानक नाम बिसारिऐ दरि गइआ किआ होइ ॥ ४ ॥ ८ ॥

केशर का शरीर हो और रत्नों की जीभ हो, तथा शरीर की साँस से अगर की सुगन्ध (निकल रही) हो, मुख के ऊपर अडसठ तीर्थों की टीका हो । (तात्पर्य यह कि सारे तीर्थों का चक्कर लगा कर, हर स्थान से टीका लगावा कर आया हो); और उसमें बुद्धि का (सुन्दर) विकास हो । गुणों के भाण्डार (परमात्मा) के सच्चे नाम की प्रशंसा—स्तुति इस प्रकार की बुद्धि से करनी चाहिए ॥ १ ॥

ऐ बाबा, (नाम में न लगने वाली) बुद्धि और हो और तरह की होती है । (यदि झूठी भावना से) सौ बार भी अभ्यास किया जाय, तो झूठ की प्रबलता बढ़ती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पूजा होती हो (लोग पूजते हो), पीर कहलाते हो और सारा ससार मिलने के लिए आता हो, (अपना) नाम खूब प्रसिद्ध किए हो, सिद्धों में गणना की जाती हो, (किन्तु) यदि उसकी प्रतिष्ठा (परमात्मा) के लेखे में नहीं आती, तो सारी पूजा व्यर्थ है ॥ २ ॥

जिन्हें सद्गुरु ने स्थापित कर दिया है, उन्हें कोई भी भेट नहीं सकता । उनके अन्तर्गत नाम का खजाना है और नाम ही (बाहर भी) प्रकट होता है । (ऐसे व्यक्ति) निरन्तर नाम की ही पूजा करते हैं, नाम का ही मनन करते हैं और सत्य में ही (रमण करते हैं) ॥ ३ ॥

(देहान्त हो जाने पर) धूल से धूल मिल जाता है, तो (ऐसी स्थिति में) जीव का क्या होता है ? (यदि मनुष्य नाम से रहित है तो) उसकी सारा चतुराई भस्म हो जाती है और वह उठ कर रोता हुआ चल देता है । नानक कहते हैं कि नाम के भुलाने पर (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर क्या होगा ? ॥ ४ ॥ ८ ॥

[८]

गुणवंती गुण बीयरै अउगुणवंती भूरि ।
 जे लोइहि वरु कामणी नहू मिलीऐ पिर कूरि ॥
 ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना पाईऐ पिर दूरि ॥ १ ॥
 भेरे ठाकुर पूरै तखति अडोलु ।
 गुरुमुखि पूरा जे करे पाईऐ साचु अतोलु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 प्रभु हरिभंवरु सोहणा तिसु महि माणक लाल ।
 मोती हीरा निरमला कंचन कोट रीसाल ॥
 बिन पउड़ी गड़ि किउ चड़उगुर हरि विश्रान निहाल ॥ २ ॥
 गुरु पउड़ी बेड़ी गुरु गुरु तुलहा हरि नाउ ।
 गुरु सरु सागरु बोहियो गुरु तीरथ दरीआउ ॥
 जे तिसु भावै ऊजली सतसरि नाबखु जाउ ॥ ३ ॥

पूरो-पूरो आसीऐ पूरे तखति निवास ।

पूरे धानि सुहावणै पूरे आस निरास ॥

नानक पूरा जे मिलै किउ घाटे गुणतास ॥ ४ ॥ ६ ॥

गुणवती स्त्री अपने गुणों का विस्तार करती है, किन्तु अवगुणोंवाली स्त्री दुर्बल होती है । हे कामिनी, यदि तू प्रियतम (पति) से मिलने की इच्छा करती है, तो वह झूठे साधनों से नहीं प्राप्त होगा । प्रियतम दूर है; (तेरे पास) न नाव है, न छोटी किस्ती, (अतएव तू) उस तक नहीं पहुँच सकेगी ॥ १ ॥

मेरा पूर्ण ठाकुर (परमात्मा) अपने तत्त्व पर अडोल है । यदि पूर्ण गुरु यों करे (अर्थात् युक्ति बतावे), तो सच्चे और अतोल (परमात्मा) की प्राप्ति हो सकती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मेरे) प्रभु का हरि-मंदिर (बड़ा ही) सुहावना है, उसमें (नाना प्रकार के) माणिक्य और लाल है । उसके सोने के सुन्दर दुर्ग में (असंख्य) मोती और निर्मल हीरे हैं । (प्रश्न यह है—) बिना सीढ़ी के उस कोट पर किस प्रकार चढ़ूँ ? (इसका उत्तर यह है—) गुरु रूप हरी का ध्यान (करो), (इसमे सीढ़ी प्राप्त हो जायगी और) 'तू हरी को' देख लेगा ॥२॥

गुरु ही सीढ़ी है, गुरु ही नाव है, गुरु ही छोटी नाव है और हरि नाम है । गुरु ही सरोवर है, सागर है, जहाज है ; गुरु ही तीर्थ है (और) समुद्र है । यदि (जीवात्मा रूपी स्त्री को परमात्मा) प्यारा लगता है, तो (वह) बहुत ही उज्ज्वल है (और) वह सच्चे सरोवर में स्नान करने जाती है ॥ ३ ॥

वह पूर्ण (परमात्मा) पूर्ण कहा जाता है और उसका निवास भी पूर्ण तत्त्व पर है । (उसका) स्थान पूर्ण और सुहावना है; वह निराश (व्यक्तियों की) आशा भी पूरी करता है । नानक कहते हैं कि यदि (किसी को) पूर्ण (परमात्मा) मिल जाता है, तो (उसके) गुण क्यों घटेंगे ? (उसके गुण तो नित्य-नित्य बढ़ेंगे) ॥ ४ ॥ ६ ॥

[१०]

आवहु भैया गलि मिलह अंकि सहेलड़ीघ्राह ।

मिलि कै करहु कहाणीआ संत्रथ कंत कीघ्राह ।

साचे साहिब सभि गुण अउगुण सभि असाह ॥ १ ॥

करता सभु को तेरै जोरि ।

एकु सबडु बीचारीऐ जा तू ता किआ होरि ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जाइ पुछहु सोहागणी तुसी राबिआ किनी गुणी ।

सहजि संतोखि सीयारीआ मिठा बोलणी ॥

पिरु रीसानू ता मिलै जा गुर का सबड सुणी ॥ २ ॥

केलीआ तेरीआ कुवरती केवड तेरी दाति ।

केले तेरे जोअ अंत सिफति करहि दिन राति ॥

केले तेरे रूप रंग केले जाति अजाति ॥ ३ ॥

सचु मिलै सचु अपजे सच महि साधि समाइ ॥

सुरति होबै पति अगवै गुरबचनी भउ छाह ।

नानक सचा पातिसाह्य आपे सए मिलाह ॥ ४ ॥ १० ॥

(मेरी) बहनों, (मेरी) सहेलियों, आग्रो गले लग कर आलिंगन करो । (मुझसे) मिलकर (मेरे) समर्थ कत (प्रियतम परमात्मा) की कहानियाँ कहो । (मेरे) सच्चे साहब में सभी गुण हैं, हम में तो सभी अवगुण ही हैं ॥ १ ॥

हे कर्त्ता, सभी (प्राणियों) को तेरा ही जोर है । एक बात विचार कीजिए—यदि तू है, तो अन्य क्या है ? (यदि सर्वशक्तिमान् किसी ने तुम्हारा आश्रय ले लिया, तो उसे अन्य आश्रयो की क्या आवश्यकता है) ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जाकर उस सोहागिनी से पूछो कि तुम किन गुणों द्वारा (अपने प्रियतम से) रमण की गई ? (इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें यही मिलेगा ।)

“सहजावस्था एवं संतोष रूपी शृङ्गार एवं मीठी बोली से (मैंने प्रियतम के साथ रमण किया है) । रसिक प्रियतम तभी मिलता है, जब गुरु का उपदेश (सबद) सुना जाय ।” ॥ २ ॥

(हे प्रभु,) तेरी कुदरत कितनी (महान्) है ? तेरे दान कितने बड़े हैं ? (हे प्रभु, तुझ द्वारा रचे गए) कितने जीव-जंतु हैं, जो दिन-रात तेरी प्रशंसा करने हैं ? (तुझ द्वारा निमित्त) कितने रूप रंग और कितनी जातियाँ-अजातियाँ हैं ? (अर्थात् उनकी गणना नहीं की जा सकती । वे अनन्त हैं) ॥ ३ ॥

सत्य (परमात्मा) के मिलने पर ही मुख (सच्चु) प्राप्त होता है । इस प्रकार (सच्चा (साधक) सच्चे (परमात्मा) में ही समा जाता है । जब (साधक) गुरु के वचनों द्वारा (परमात्मा से) भय खाता है, तो (उमे) मुरति प्राप्त होती है और (परमात्मा के यहाँ) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । नानक कहते हैं कि सच्चा बादशाह (प्रभु) स्वयं अपने मे (साधक को) मिला लेता है ॥ ४ ॥ १० ॥

[११]

भली सरी जि उबरो हउमै मुई घराह ।

दूत लगे फिरि चाकरी सतिगुर का बेसाह ॥

कलप तिम्रागो बादि है सचा बेपरबाह ॥ १ ॥

मन रे सच्चु मिलै भउ जाह ।

भै बिनु निरभउ किउ थोए गुरमुखि सबदि समाह ॥ १ ॥ रहाउ ॥

केता आखणु आखोए आखणि तोटि न होइ ।

मंगण बाले केतड़े दाता एको सोइ ॥

जिसके जीअ पराण हहि मनि बसिऐ सच्चु होइ ॥ २ ॥

जगु सुपना बाजी बनी लिन महि खेनु खेलाइ ।

संजोगी मिलि एक से विजोगी उठि जाइ ॥

जो तिसु भाणु सो थोए अवरु न करणु जाइ ॥ ३ ॥

गुरमुखि वसतु बेसाहीऐ सच्चु बलरु सच्च रासि ।

जिनी सच्चु बंछाजिआ गुर पूरे साबासि ॥

नानक बसतु पछाएसी सच्चु सउवा जिसु पासि ॥ ४ ॥ ११ ॥

(यह) भली बात हुई जो मैं बच गई और शरीर से अहंता मर गई । सद्गुरु का विश्वास—भरोसा हो गया, तो (यम के) दूत उलट कर मेरी चाकरी करने लगे । जब सच्चे वेपम्बाह (परमात्मा की प्राप्ति हो गई), तो मैंने (सारी) कल्पनाओं और वादविवाद का परित्याग कर दिया ॥ १ ॥

अरे मन, (जब) सच (परमात्मा) की प्राप्ति हो जाती है, (तो सारे) भय चले जाते हैं । (साधक) बिना भय के निर्भय पद कैसे प्राप्त कर सकता है ? (अर्थात् निर्भय पद-प्राप्ति के लिए गुरु अथवा परमात्मा का भय आवश्यक है) गुरु द्वारा दिए गए उपदेश से ही (शिष्य) 'सबद' में समा जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(प्रभु के सम्बन्ध में) कितना ही कथन क्यों न किया जाय, (किन्तु) कथन से उसमें कमी नहीं आ सकती । माँगनेवाले तो कितने ही हैं, (किन्तु) दाता अकेला बहो है । जिनके (समस्त) जीव और प्राण हैं, (उसी के) मन में बसने से सुख होता है ॥ २ ॥

जगत् स्वप्न है (और यहाँ) खेल की बाजी लगी है, क्षण मात्र में (परमात्मा) खेल खिलाता है । संयोग के नियमानुसार (जीव परमात्मा से) मिलते हैं, और (उसमें) वियोग होने पर उठ कर चल देते हैं । जो उसे अच्छा लगता है, बहो होता है, (उसके अतिरिक्त) अन्य (वस्तुएं) नहीं की जा सकती ॥ ३ ॥

गुरुमुख द्वारा वस्तु (नाम रूपी वस्तु) खरीदी जाती है । (यह वस्तु) सच्चा सौदा है और सच्ची पूँजी (राशि) है । जिन्होंने सत्य का व्यापार किया है, (उनके ऊपर) गुरु की (पूरी) प्रसन्नता होती है । नानक कहते हैं जिनके पास सच का सौदा है, वे ही (असली) वस्तु पहचानते हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥

[१२]

धातु मिले कुनि धातु कउ भिफती सिफति समाइ ।

लालु गुलालु गहबरा सचा रंगु चड़ाउ ।

सच्चु मिले संतोखीआ हरि जपि एकै भाइ ॥ १ ॥

भाई रे संत जना की रेणु ।

संत सभा गुरु पाईऐ सुकति पदारथु धेणु ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ऊचउ थानु सुहावणा ऊपरि महलु मुरारि ।

सच्चु करणी बे पाईऐ बरु घरु महलु पिआरि ॥

गुरुसुखि मनु समझाईऐ आतम रासु बीचारि ॥ २ ॥

त्रिविधि करम कमाईअहि आस अवेसा होइ ।

किउ गुर बिनु त्रिकुटी छुटसी सहजि मिलिऐ सुखु होइ ।

निजघरि महलु पछाणीऐ नवरि करे मलु धोइ ॥ ३ ॥

बिनु गुर मैलु न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु ।

एको सबहु बोचारीऐ भवर तिघागै आस ॥

नानक देखि दिखाईऐ हउ सद बलिहारै जातु ॥ ४ ॥ १२ ॥

(जिस प्रकार) धातु से धातु मिल कर पुनः (एक हो जाती है), (उसी प्रकार) स्तुति करनेवाला स्तुति में समा जाता है (और एक हो जाता है) । (उसके ऊपर) गहरा लाल गुलाल का सच्चा रंग चढ़ जाता है (वह परमात्मा के अनुराग में सदैव के लिए रङ्ग जाता है) संतोषी व्यक्तियों को हरि के अनन्य (एक) भाव में जप करने से सत्य की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

अरे भाई, संत-जनों की रेणु (बन जाओ) । संतो की सभा में गुरु की प्राप्ति होती है, जो मुक्ति रूपी पदार्थ (देने वाली) कामधेनु है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वह) बहुत ही ऊँचा और सुहावना स्थान है, उसके ऊपर मुरारी (परब्रह्म) का महल है । प्यारे का महल और उसके घर का दरवाजा मन्चे कर्मों द्वारा प्राप्त होता है । गुरु के उपदेश द्वारा मन समझाया जाता है और आत्मा को विचार द्वारा (बोध कराया जाता है) ॥ २ ॥

त्रिविध कर्म (संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण अथवा सात्त्विक, राजस तथा तामस) के करने में आशा और अंदेश होते रहते हैं । गुरु के बिना त्रिकुटी (सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण की गाँठ) किस प्रकार छूट सकती है ? (गुरु की कृपा में) सहजावस्था प्राप्त होने पर सुख होता है । जब प्रभु कृपा दृष्टि करता है (और) मल (पाप) धो देता है, तभी अपने (वास्तविक) घर, (प्रभु के) महल को पहचाना जा सकता है ॥ ३ ॥

बिना गुरु के मेल नहीं उतरती (पाप नहीं कटता) । बिना हरि के (आत्म स्वरूप रूपी) घर में किस प्रकार निवास (वाम) हो सकता है ? (जो) एक शब्द (परमात्मा) को विचारता है और अन्य आशाओं को त्याग देता है, (उसी को अपने वास्तविक घर की प्राप्ति होती है) । नानक कहते हैं कि मैं उस पर बलिहारी हो रहा हूँ जो स्वयं अपने घर को देखता है और दूसरे को भी दिखाता है । (यहाँ गुरु में अभिप्राय है) ॥ ४ ॥ १२ ॥

[१३]

धनु जीवरु दोहागणी सुठी कूजै भाइ ।

कलर केरी कंध जिउ ग्रहिनिसि किरि बहि पाइ ॥

बिनु सबदै सुख ना योऐ पिर बिनु दुख न जाइ ॥ १ ॥

मुँघे पिर बिनु किआ सीमारु ॥

बरिघरि होई ना लहै दरगह भूठु लुभारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आपि सुजारु न भुलई' सचा बड किरसारु ।

पहिला घरती साजि कै सचु नामु दे दारु ॥

नउ निधि उपजै नामु एकु करमि पवै नीसारु ॥ २ ॥

गुर कउ जाणि न जाणई किआ तिसु चसु अचारु ॥

अंगुलै नामु विसारिआ मनमुखि अंगु सुभारु ॥

आवरु जाणु न चुकई मरि जनमै होइ लुभारु ॥ ३ ॥

चंदनु मोल अणाइआ कुंगू माणि संधारु ।

बोघा चंदन बहु घराण पाना नालि कपूरु ॥

जे धन कंति न भावई त सभि घडंबर कूड़ ॥ ४ ॥

सभि रस भोगए बादि हहि सभि सोमार विकारि ।

जब लगु सबदि न भेदीऐ किउ सोहे गुरदुमारि ॥

नानक धनु सुहायणी जिन सहि नास्ति पिछाड ॥ ५ ॥ १३ ॥

(उस) दोहागिनी (पति मे बिछुडी हुई) के जीवन को थिकार है, जो द्वैतभाव (के कारण) नष्ट हो जाती है । जिस प्रकार लोने की दीवाल रात-दिन दह दह कर गिर पड़ती है), (उसी प्रकार) दोहागिनी स्त्री कुछ कुछ कर नष्ट हो जाती है) । बिना शब्द (नाम) के सुख नहीं होता (और) बिना प्रियतम के दुःख नहीं जाता ॥ १ ॥

हे मुग्धे, (भ्रमित स्त्री) प्रियतम के बिना शृंगार कैसा ? (हे स्त्री) घर के दरवाजे मे तुम प्रवेश नहीं पा सकती, (क्योंकि) भ्रूडा (परमात्मा के) दरवाजे पर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वह चतुर स्वयं नहीं भूलता, वह सच्चा, बहुत बड़ा किसान है । पहले वह जमीन तैयार कर, सच्चेनाम का बीज (उगने के लिए) बोता है । नाम के एक (बीज) से नव निद्रिया उत्पन्न होती है; (परमात्मा की) कृपा द्वारा (प्रामाणिकता का) चिह्न लगता है ॥ २ ॥

जो (बुद्धिमान्) जान कर भी गुरु को नहीं जानता, उसकी क्या बुद्धिमानी है और क्या आचार है ? उस श्रेष्ठ ने नाम भुला दिया, वह मनमुख घनघोर अंधकार (मे है) । उसका प्राना-जाना समाप्त नहीं होता, वह (बार बार) जन्मता-मरता रहता है और बरबाद हो जाता है ॥ ३ ॥

चन्दन मोल मंगाया गया, माँग के लिए केशर और सिंदूर (प्रयोग मे लाए गए) । चोभा-चंदन (आदि सुगन्धित द्रव्य भी) अधिकता से (लगाए गए) और पान के साथ कपूर भी (खाया गया) । (इतना सब शृङ्गार करने पर भी) यदि स्त्री पति को प्रिय नहीं लगती, तो (सारे शृङ्गार) आडम्बरयुक्त और मिथ्या है ॥ ४ ॥

सभी रसो का भोगना व्यर्थ है और सारे शृङ्गार भी निरर्थक है । जब तक वह (गुरु के) शब्द के साथ विध नहीं जाती, तब तक वह गुरु के दरवाजे पर कैसे शोभा पा सकती है ? नानक कहते हैं वे ही मुहागिनी धन्य है, जिनका पति के साथ प्रेम है ॥ ५ ॥ १३ ॥

[१४]

सुंजी देह उरावणी जा जीउ विचहु जाइ ।

भाहि बलंदी बिभवी धूउ न निकसिउ काइ ॥

पंचे रुंने दुखि भरे बिनसे दूजे भाइ ॥ १ ॥

भूडे रामु जपहु गुण सारि ।

हउमै ममता मोहणी सब मुठी अंहकारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिनी नामु विसारिआ दूजी कारै लागि ।

दुबिधा लागे पछि मुए अंतरि तृसना अगि ॥

गुरि राखे से उबरे होरि मुठी धंधै ठगि ॥ २ ॥

मुई परोति पिछाह गइआ दुआ बैरु विरोधु ।

धंधा बन्ना हउ सुई ममता माइया कोसु ॥
 करमि मिले सचु पाईऐ गुरुमुखि सदा निरोधु ॥ ३ ॥
 सबी कारे सचु मिले गुरुमति पले पाइ ।
 सो नरु जंमै ना मरे ना धावै ना जाइ ॥
 नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाइ ॥ ४ ॥ १४ ॥

विशेष :—कहते हैं कि गुरु नानक देव ने एक मृत व्यक्ति को देख कर इस 'शब्द का उच्चारण किया ।

अर्थ :—(यदि शरीर से) जीव निकल जाता है, तो (यह) देह सुनी और डरावनी हो जाती है । जलती हुई अग्नि बुझ जाती है (जीवन की सत्ता नष्ट हो जाती है), और कुछ भी धूँआ नहीं निकलता (प्राण समाप्त हो जाते हैं) । पंच जानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, त्वचा एवं रसना) अथवा शरीर के पंच तन्त्र (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी) दुःख से भरे हुए रोने लगे । [पंच सम्बन्धी ये हैं—माता, पिता, भाई, स्त्री एवं पुत्र] । (वे) द्वैत भाव में पड़ने से नष्ट हो गए ॥ १ ॥

हे मूर्ख, गुणों को संभालते हुए, राम जपो । इन्हीं (अहंकार) और ममता सभी को मोह रही है । सारी (मृष्टि) अहंकार में ठगी गई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिनहोंने दूसरे कार्यों में लगकर नाम भुला दिया, (वे) द्वैतभाव में पड़कर खप कर मर जाते हैं, (उनके) अंतर्गत तृष्णा की अग्नि (जलनी रहती है) । (जिनकी) गुरु रक्षा करता है, वे ही बचते हैं, अन्य लोग (सामारिक) धन्यो में पड़ कर घोखा खाते हैं और ठग लिए जाते हैं ॥ २ ॥

(सासारिक) प्रीति मर जाती है, (सासारिक) प्यार भी समाप्त हो जाता है (और) बैर-विरोध भी मर जाते हैं, (सासारिक) ध्वे रुक जाते हैं, अहंता मर जाती है (और) ममता, माया, क्रोध भी (दूर हो जाते हैं) । (परमात्मा की) कृपा से ही सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति होती है (और) गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) सदैव (विषयो से मन का) निरोध करता रहता है ॥ ३ ॥

सत्य कर्मों से सत्य परमात्मा मिलता है और गुरु का मति द्वारा (शिष्य) के पल्ले (परमात्मा) पट जाता है । ऐसा नर न जन्म लेता है न मरता है और न (कहीं) आता जाता है । (वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है) । नानक कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति (परमात्मा के) दरवाजे पर प्रधान हो जाता है (और) वह (वहाँ) दरवाजे पर प्रतिष्ठा के वस्त्र पहनाया जाता है ॥ ४ ॥ १४ ॥

[१५]

तनु जलि बलि माटी भइया मनु माइया मोहि मनूरु ।

अउगुण फिरि लागू भए कूरि बजावै तूरु ॥

बिनु सबदै भरमाईऐ दुबिधा डोबे पूरु ॥ १ ॥

मन रे सबदि तरहु चितु लाइ ।

जिनि गुरुमुखि नामु न बूझिआ मरि जनमे धावै जाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तनु नृचा सो आखीऐ जिसु महि साखा नाउ ॥
 भै सचि राती बेहरी जिहवा सनु सुभाउ ॥
 सची नदरि नोहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ॥ २ ॥
 साखे ते पबना भइआ पबनै ते जसु होइ ।
 जल ते त्रिभवरु साजिआ घटि-घटि जोति समोइ ॥
 निरमसु मैला ना धीऐ सचवि रते पति होइ ॥ ३ ॥
 इह मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि ।
 पंच भूत सचि भै रते जोति सची मन माहि ॥
 नानक अउगुण बीसरे गुरि राखे पति ताहि ॥ ४ ॥ १५ ॥

शरीर जल-बल कर मिट्टी हो गया है, मन माया में मोहित होकर लोहे की मँल हो गया है । अवगुण फिर से पीछे पड़ गए हैं और झूठ तुम्हें बजाने लगा है । (इस प्रकार) बिना (गुरु के) शब्द के ॥ (मनष्य) भटकता फिरता है, द्वेषभाव नाव के बोझों को डुबो डालता है ॥ १ ॥

आरे मन, (गुरु के) शब्द चित्त में लाकर तर जाओ । जिसने गुरु के मुख द्वारा नाम नहीं ममका, (बढ़ बारम्बार) मरता और जन्मता है और आता जाता रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वही पवित्र (नृचा) शरीर कहलाता है, जिसमें सच्चा नाम (रहता) है । (ऐसा) शरीर (परमात्मा के) भय और सत्य में अनुरक्त रहता है और जीभ को सच्चा स्वाद आता है । (ऐसा व्यक्ति) मच्ची कृपा-दृष्टि में देखा जाता है (और वह) फिर ताप नहीं पाता ॥ २ ॥

सत्य (परमात्मा) से पवन उत्पन्न हुआ और पवन से जल की उत्पत्ति हुई । जल से त्रिलोक (आकाश, पाताल, मत्स्यलोक) का निर्माण किया गया । (इस प्रकार) प्रत्येक घट में (उसी सत्यस्वरूप परमात्मा की) ज्याति व्याप्त है । निर्मल (व्यक्ति) (कभी) अपवित्र (मैला) नहीं होता, शब्द में रत होने में प्रतिष्ठा होती है ॥ ३ ॥

(यदि परमात्मा अपनी) कृपादृष्टि इनके ऊपर कर दे, (तो) यह मन सत्य में मनुष्य हो जाता है । पंच भूत (पंच भूत निमित्त शरीर) सत्य स्वरूप परमात्मा के भय में रत हो जाते हैं और मन में मच्ची ज्योति (का निवास हो जाता है) । नानक कहते हैं कि उसके सारे अवगुण भूल जाते हैं; जिसकी गुरु रक्षा करता है, उन प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ ४ ॥ १५ ॥

[१६]

नानक बेड़ी सच की तरीऐ गुर बीचारि ।
 इकि आबहि इकि जावही पूरि भरे अहंकारि ॥
 मनहठि मती बूडीऐ गुरुमुखि सनु सु तारि ॥ १ ॥
 गुर बिनु किउ तरीऐ सुखु होइ ।
 जिउ भावै तिउ राखु तू मै अवरु न दूजा कोइ ॥ रहाउ ॥
 घागे देखउ उउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु ।
 जिस ते उपजे तिस ते बिनसै घटि घटि सनु भरपूरि ॥
 घागे भेलि मिलावही साखे महलि हदूरि ॥ २ ॥
 साहि साहि तुझु संमला कबे न बिसारेउ ।

जिउ जिउ साहिबु मनि बसै गुरमुखि अमृत पेउ ॥
 मनु तनु तेरा तू धरौ सरबु निशरि समेउ ॥ ३ ॥
 जिनि एहु जगनु उपाइआ त्रिभवरु करि आकारु ।
 गुरमुखि चानरु जाणीऐ मनमुखि सुनसु गुबारु ॥
 घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु ॥ ४ ॥
 गुरमुखि त्रिन्ही जाणिआ तिन कीचे साबासि ।
 सचे सेती रलि मिले सचे गुल परगासि ॥
 नानक नामि संतोखीआ जीउ पिंड प्रभ पासि ॥ ५ ॥ १६ ॥

नानक कहते हैं कि गुरु के ध्यान से सत्य की नाव पर (बैठ कर) (भवसागर का) पार हो जाओ । पूर्ण अहंकार से भरे हुए कुछ लोग (इस संसार में) भ्रान्ति हैं और कुछ चले जाते हैं । मनमानी बुद्धि से (कार्य करने वाले लोग) डूब जाते हैं, गुरु के सच्चे उपदेशानुसार (कार्य करनेवाले व्यक्ति) तर जाते हैं ॥ १ ॥

गुरु के बिना कैसे तरा जाय और कैसे मुख प्राप्त किया जाय ? (हे हरी) जैसा तुम्हें अच्छा लगे, वैसा रख, मेरे तो (तुम्हें) छोड़कर और कोई दूसरा नहीं है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आगे देखता हूँ तो दावागि जल रही है और पीछे (देखता हूँ) तो अंगूर हरे हो रहे हैं । जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी में विलीन हो रहे हैं; घट-घट में बड़ा सत्य परिपूर्ण है । (अपने) सच्चे महल में स्वयं (प्रभु ही) मेल मिलाता है (और अपने) समीप (रखता) है ॥ २ ॥

साँस-साँस में मैं तुम्हें स्मरण करूँ और कभी न भूलूँ । जैसे-जैसे साहब मन में बसता जाता है, वैसे-वैसे गुरुमुख अमृत रस (हरि-प्रेम रूपी अमृत) पीता है । तू स्वामी है, (यह) मन, तन तेरा ही है । (मेरे) गर्व को नष्ट करके अपने में मिला ले ॥ ३ ॥

जिसने इस जगत् की उत्पत्ति की है, (उसी ने) त्रिभुवन की भी रचना की है । गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) उस प्रकाश (हरी) को जानता है, मूर्ख मनमुख को तो अंधेरा ही रहता है । घट-घट में उस शाश्वत ज्योति की, उस तत्व को गुरु की शिक्षा द्वारा ही शिष्य जानता है ॥ ४ ॥

गुरु के उपदेश द्वारा जिन्होंने (उस परम तत्व को) जान लिया, उनकी प्रशंसा करना चाहिए । (वे) सब (परमात्मा) से मिल कर एक हो गए हैं और सच्चे ही गुणों का प्रकाश करते हैं । नानक कहते हैं वे नाम से संतुष्ट हो जाते हैं (और उनका) जीव और शरीर सब प्रभु के पास है—(प्रभु की सेवा में अर्पित है) ॥ ५ ॥ १६ ॥

[१७]

सुणि मन मित्र पिआरिआ मिसु बेला है एह ।
 जब लगु जोबनि सासु है तब लगु इहु तनु बेह ॥
 बिनु गुण कामि न आवई डहि डेरी तनु खेह ॥ १ ॥
 मेरे मन लै लाहा घरि जाहि ।
 गुरमुखि नामु सलाहीऐ हउमै निबरी भाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 सुणि सुणि गंदरु गंदीऐ लिखि पढ़ि बुझहि भार ।

गुसना अहिनिस्ति अगली हउमै रोगु विकार ॥
 ओहु वेपरबाहु अतोल्वा गुरमति कीमति सारु ॥ २ ॥
 लख सिम्राएण बे करी लख सिउ प्रीति मिलायु ।
 बिनु संगति साथ न धायोआ बिनु नावै बूख संतायु ॥
 हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि खीनै आयु ॥ ३ ॥
 तनु मनु गुर पहि बेखिआ मनु दोआ सिरु नासि ।
 अत्रिबगु खोजि डंडोसिआ गुरमुखि खोजि निहासि ।
 सतगुरि मेल मिलाइआ नानक सो प्रभु नासि ॥ ४ ॥ १७ ॥

विशेष :—यह शब्द गुरु नानक देव ने भाई लहना (बाद में गुरु अङ्गद देव, सिक्खों के दूसरे गुरु) से उस समय सुनाया, जब वे गुरु नानक देव से पहले-पहल मिले थे ।

अर्थ :—ऐ प्यारे मित्र, मुनी, प्रियतम से मिलो, यही उसके (मिलन की) वेला है । जब तक यौवन है, साँस है (जीवन है), तभी तक यह शरीर है, देह है । बिना गुणों के (यह शरीर) काम नहीं आता; यह तन ढह-ढह कर खाक हो जाता है ॥ १ ॥

हे मेरे मन, लाभ प्राप्त कर घर जाओ । गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) (जब) नाम की प्रशंसा करता है, (तो) उसके अहंकार की अग्नि निवृत्त हो जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(साक्षात्कार प्राप्ति) मुन-मुनकर उधेड़-बुन में लगा रहता है और लिख-लिख कर, पढ़-पढ़ कर, समझ-समझ कर (किताबों का) भार (लादता है) । (परन्तु फिर भी) वृष्णा रात-दिन बढ़ती ही रहती है और अहंकार का रोग विकार (उत्पन्न करता है) । वह चिन्तारहित (परमात्मा) अतोल है, गुरु की शिक्षा द्वारा उसकी वास्तविक कीमत मिलती है ॥ २ ॥

चाहे मैं लाखों चतुरादया करूँ और लाखों (मनुष्यों) से प्रीति तथा मेल करूँ, (तथापि) बिना साधु-संगति के सन्तोष नहीं प्राप्त होता और बिना नाम के दुःख और संताप (बने रहते हैं) । हरि-जप से ही जीव का छुटकारा होता है—मुक्ति होती है, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) अपने को पहचानता है ॥ ३ ॥

तन और मन गुरु के पास बेच देना चाहिए । (साथ ही गुरु के चरणों में) मन के साथ सिर भी दे देना चाहिए । (जिसे मैं) तीनों भुवनों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर खोजता था, उसे (मैंने) गुरु के द्वारा खोज कर प्रत्यक्ष देख लिया । नानक कहते हैं कि उस प्रभु के साथ सद्गुरु ने ही मिलाप कराया ॥ ४ ॥ १७ ॥

[१८]

मरगै की चिंता नही जीबण की नहों आस ।
 तू सरब जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास ॥
 अंतरि गुरमुखि तू वसहि जिउ भावै तिउ निरजासि ॥ १ ॥
 जीअरे राम जपत मनु मानु ।

अंतरि लागी जलि सुभी पाइआ गुरमुखि गिघ्रातु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 अन्तर की गति जाणीऐ गुर मिलोऐ संक उतारि ।
 सुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीबबिआ मरु मारि ॥

अनहद सबव सुहावखे पाईऐ गुर बीबारि । १ ॥ २ ॥
 अनहद बाणी पाईऐ तह हउमै होइ बिनासु ।
 सतगुरु सेवे आपरणा हउ सब कुरबाराँ तासु ॥
 खड़ि दरगह पैनाईऐ मुखि हरिनाम निवासु ॥ ३ ॥
 जह देखा तह रखि रहे सिब सकती का मेलु ।
 त्रिगु गुण बंधी बेहरी जो आइआ जगि सो खेलु ॥
 बिजोगी दुखि बिछुड़े मनमुखि खहहि न मेलु ॥ ४ ॥
 मनु बैरागी घरि बसै सच भै राता होइ ।
 निग्रान महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होइ ॥
 नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुखु न होइ ॥ ५ ॥ १८ ॥

(मुझे) न मरने की चिन्ता है और न जीने की आशा । (हे परमात्मा), तू सभी जीवों का भरण-पोषण करना है । (सारे जीवों के) साथ और ग्राम का लेखा तेरे पास है । (मारी आधु के भोग तेरे हिसाब में हैं) । गुरु द्वारा तू हमारे अंतर्गत आकर निवास करता है, जिस प्रकार तुझे अच्छा लगता है, उसी प्रकार निर्णय करता है ॥ १ ॥

अरे जीव, राम अपने से ही मन मानता है—स्थिर होता है । (जब) गुरु के उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्त हो जाता है, (तो) अंतर की लगी हुई जलन बुझ जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे शिष्य, जो गुरु) अन्तर की दशा जानता है, उस गुरु से भ्रम त्याग कर मिलो । जिस घर (अवस्था) में मरकर पहुँचना होता है, (उस अवस्था की प्राप्ति के लिए) जीवित ही (मंद वासनाओं को) मार कर मरो । मुहावने अनहद शब्द की प्राप्ति (गुरु के उपदेश पर) विचार करने में होती है ॥ २ ॥

यदि अनहद वाणी (शब्द) की प्राप्ति हो जाती है, तो हउमै (अहंकार) का नाश हो जाता है । (जो व्यक्ति) सद्गुरु की सेवा करता है, (में) उसके ऊपर कुरबान हो जाता है । जिनके मुख में हरिनाम का निवास है, (उन्हें) परमात्मा के दरवाजे पर खड़ा करके प्रतिष्ठा की पोशाक पहनाई जाती है ॥ ३ ॥

जहाँ देखा है, वही शिव और शक्ति (गुण-प्रकृति) का मेल है, (अतएव उस मेल से रची हुए सृष्टि के अंतर्गत भी) परमात्मा व्याप्त है । (समस्त) शरीर तीन (सत्व, रज, तम) गुणों के अंतर्गत बंधे हुए है, जो भी (इस संसार में) आता है वह (इसी सीमा में) खेलता है । (जो) मनमुख है, वे वियोग (का मार्ग) पकड़े हुए हैं, (अतएव) दुःख में (परमात्मा के व्यापक होते-हुए भी) बिछुड़े रहते हैं, उन्हें संयोग का मार्ग मिलता ही नहीं ॥ ४ ॥

(यदि) बैरागी मन सत्य और (परमात्मा के) भय में अनुरक्त हो जाय (और इधर-उधर के भटकने को त्याग कर) अपने घर (आत्म स्वरूप) में स्थिति हो जाय, तो वह ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) के महारस को भोगता है और उसे फिर (सांसारिक) भूख नहीं लगती । नानक कहते हैं कि (ऐ साधक,) इस मन को मारो (और परमात्मा से) मिलो, (इससे तुम्हें) कभी फिर दुःख न होगा ॥ ५ ॥ १८ ॥

[१६]

एह मनो मूरख लोभोभा लोभे लगा लोभानु ।
 सबधि न भोजे साकला दुरमति आवनु जानु ॥
 साधु सतगुरु जे मिलै ता पाईऐ गुरी निधानु ॥ १ ॥
 मन रे हउमै छोडि गुमानु ।
 हरिगुरु सरवरु सेवि तू पावहि वरगह मानु ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 रामनाम जपि दिनसु राति गुरमुखि हरि धनु जानु ॥
 सभि सुख हरि रस भोगए सत सभा मिलि मिथानु ॥
 निति अहिनिशि हरि प्रभु सेविआ सतगुरि दीआ नामु ॥ २ ॥
 कूरर कुड़ु कमाईऐ गुरनिदा पचै पचानु ।
 भरमे भूला दुख घरणो जसु मारि करै खुलहानु ॥
 मनमुखि सुख न पाईऐ गुरमुखि सुख सुभानु ॥ ३ ॥
 एवै धंधु पिटाईऐ सत्तु लिखत परवानु ॥
 हरि सजगु गुरु सेवदा गुर करणी परवानु ॥
 नानक नामु न बीसरे करमि सचै नोसागु ॥ ४ ॥ १६ ॥

यह मन मूर्ख और लोभी है और लोभ में लुभायमान हो रहा है। वह शाक्त (शक्ति—माया का उपासक) (गुरु के) शब्द में भी नहीं भोगता (अनुरक्त होता) है। (वह प्रपनी) दुर्मति से बारम्बार आता और जाता रहता है (आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है)। यदि साधु सद्गुरु से मिल जाय, तो गुणों के निधान (परमात्मा) की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

ऐ मन, हउमै (अहंकार) और गुमान को छोड़ दो। हरिगुरु रूपी सरोवर की सेवा (उपासना) करो, (जिससे) तुम (परमात्मा के) दरवाजे पर मान प्राप्त करो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) दिन रात 'राम नाम' जप कर हरि रूपी धन को जान लेता है। हरि रस के आस्वादन में सारे मुखों (की प्राप्ति हो जाती है); संतो की सभा में (ही) ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) (प्राप्त होता है)। जिसे सद्गुरु ने (कृपा करके) (परमात्मा का) नाम दे दिया है, (वह) नित्य अर्हनिश प्रभु दरी की उपासना करता रहता है ॥ २ ॥

(मनमुख) कुत्ते की तरह भूठ ही कमाता है। (वह) गुरु निन्दा करके नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। (वह) भ्रम में भटकता रहता है और महान् दुःख (पाता रहता है) और भ्रन्त में यम (उसे) मार कर खलिहान कर देता है (चूर-चूर कर देता है)। मनमुख को सुख नहीं प्राप्त होता है; गुरु के उपदेश द्वारा पवित्र, भले (शिष्य) को सुख मिलता है ॥ ३ ॥

(मनमुख) यहाँ (इस संसार में) तो धंधे में लगा रहता है, (जिससे नष्ट होता है); किन्तु वहाँ (परमात्मा के दरवाजे पर) सच्ची (करनी) की लिखावट ही प्रामाणिक समझी जाती है। (सच्चा साधक) हरि के मित्र गुरु की ही सेवा करता है; उसके लिए गुरु की करनी ही सबसे प्रधान (साधना) है। नानक कहते हैं (जो) नाम नहीं भूलता है, (उसके ऊपर) परमात्मा की कृपा से सच्चा निशान लगता है। (अर्थात् वह प्रामाणिक समझा जाता है) ॥ ४ ॥ १६ ॥

[२०]

इकु तिसु पिछारा बीसरै रोग बड़ा मन माहि ।
 किउ दरगह पति पाईऐ जा हरि न बसै मन माहि ॥
 गुरि मिलिऐ सुख पाईऐ अगनि मरै गुण माहि ॥ १ ॥
 मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि ।

जिन खिनु पलु नामु न बीसरै ते जन बिरले संसारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 जोती जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु ॥
 हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु ॥
 गुरमुखि जिमु मनि हरि बसै तिसु भेले गुरु संजोगु ॥ २ ॥
 काइया कामणि जे करी भोगे भोगएहारु ।
 तिसु सिउ नेह न कीजई जो दीसै चलएहारु ॥
 गुरमुखि रबहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतरु ॥ ३ ॥
 चारे अगनि निवारि मरु गुरमुखि हरि जलु पाइ ।
 अंतरि कसलु प्रगासिआ अंशुतु भरिआ अघाइ ॥
 नामक सतगुरु मीतु करि सखु पावहि दरगह जाइ ॥ ४ ॥ २० ॥

(यदि) प्रियतम एक तिल (रच मात्र) भी विस्मृत हो जाता है, (तो मेरे) मन मे बड़ा रोग (उत्पन्न हो जाता है) । जिसके मन मे हरि नहीं निवास करता, (उसे भला) (परमात्मा के) दरवाजे पर किस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है ? गुरु से मिलने पर ही, सुख की प्राप्ति होती है और (परमात्मा के) गुण मे (तृष्णा की) अग्नि शान्त हो जाती है ॥ १ ॥

अरे मन, अहंनिश परमात्मा के गुणों को स्मरण करो । ऐसे व्यक्ति संसार मे विरले ही है, जिन्हे क्षण और पल भर भी नाम नहीं विस्मृत होता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि) (जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की ज्योति से) मिला दी जाय और (जीवात्मा की) सुरति (गुरु की) सुरति से संयुक्त कर दी जाय, तो हिंसा और अहंकार भाव नष्ट हो जाते हैं तथा संशय और शोक भी नहीं रहते । गुरु के उपदेश के अनुसार जिसके मन मे हरि बसता है, गुरु उसका संयोग (परमात्मा से) जोड़ देता है ॥ २ ॥

यदि मैं अपनी काया को सुन्दरी स्त्री के समान कर दूँ, (तो) भोगनेवाला (परमात्मा) (उसे) भोगेगा ही । जो चलनेवाली—नक्षत्र (वस्तु) (दिखलाई पड़ती) है, उससे स्नेह नहीं करना चाहिए । गुरु की शिक्षा द्वारा सोहागिनी (स्त्री) उस प्रभु के साथ रमण करती है, जो शैव्या का भर्ता है (अंतःकरण का स्वामी है) ॥ ३ ॥

(हे साधक), गुरु की शिक्षा द्वारा परमात्मा रूपी जल डाल कर चारो अग्नियों का निवारण कर दो (और जीवित हो) मर जाओ, (जीवन्मुक्त हो जाओ) । [चार अग्नियाँ निम्नलिखित हैं—हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध—“हंयु हेतु लोभ, कोपु चारे नदीआ अग्नि” वार माफ, महला १] (फिर तुम्हारे) अंतःकरण मे कमल प्रस्फुटित हो जायगा (और तुम) अमृत से भर कर तृप्त हो जाओगे । नामक कहते हैं कि सद्गुरु को मित्र बनाओ, इससे (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर सत्य को ही पाओगे ॥ ४ ॥ २० ॥

[२१]

हरि हरि जपहु विभारिआ गुरमति ते हरि कोलि ।
 मनु सच्चु कसवटी लाईऐ तुलीऐ पूरे तोलि ॥
 कीमति किने न पाईऐ रिद माएक मोलि अमोलि ॥ १ ॥
 भाई रे हरि होरा गुर माहि ।
 सतसंगति सतगुरु पाईऐ अहिनिमि सबद सलाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 सच्चु बखर धनु रासि लै पाईऐ गुर परगासि ।
 जिउ अगनि भरे जलि पाईऐ तिउ नृसना दासनिदास ॥
 जम जंदाह न लगई इउ भउजलु तरै तरासि ॥ २ ॥
 गुरमुखि कूड़ु न भावई सचि रते सचि भाइ ।
 साकत सच्चु न भावई कूड़ै कूड़ी पाइ ॥
 सचि रते गुरि मेलिऐ सचे सचि समाइ ॥ ३ ॥
 मन महि माएकु लालु नामु रतनु पवारपु होरु ।
 सच्चु बखर धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु ॥
 नानक गुरमुखि पाईऐ दइआ करे हरि होरु ॥ ४ ॥ २१ ॥

हे प्यारे, 'हरि-हरि' जपो, गुरु से शिक्षा लेकर 'हरि' ही कहो। मन को सच की कसौटी पर कसो और (उमे) पूरी तीन भर तोलो। हृदय का माणिक मूल्य मे अमूल्य है और उसकी कीमत कोई भी नहीं आँक सकता ॥ १ ॥

अरे भाई, हरि रूपी होरा गुरु मे है। (और उस) सद्गुरु की प्राप्ति सत्संगति से होती है, गुरुवाणी द्वारा (परमात्मा की) स्तुति अहिंसा करनी चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सच का सोदा (देकर) (अपार) धनराशि (परमात्मा) को लो, (यह अपार धनराशि) गुरु के प्रकाश द्वारा प्राप्त की जा सकती है। जिस प्रकार जल डालने से अग्नि शान्त हो जाती है, उसी प्रकार दासानुदास (बनने की भावना से) तृष्णा शान्त हो जाती है। (ऐसे व्यक्ति को) जम के दूत अथवा चाण्डाल नहीं लगते, इस प्रकार (वह स्वयं) संसार-सागर से तर जाता है (और दूसरो को भी) तारता है ॥ २ ॥

गुरु के उपदेश से (शिष्य को) झूठ अच्छा नहीं लगता, जो सत्य मे अनुरक्त है, (उसे) सत्य ही भाता है (अच्छा लगता है)। शाक्त (माया के उपासक) को सत्य नहीं रुचता; झूठ की बुनियाद [पाई=पाया; बुनियाद] झूठी ही होती है। गुरु के मिलाप से (शिष्य) सत्य मे अनुरक्त होते हैं। (इस प्रकार) सच्चे (व्यक्ति) सत्य मे समाहित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

मन में ही माणिक्य और लाल है; नाम ही रख है, (वही वास्तविक) पदार्थ है (और बहो) होरा है। सच्चा सोदा और धुन नाम ही है; वह अथाह और गम्भीर (प्रभु) घट-घट में (रम रहा है)। नानक कहते हैं कि (यदि) परमात्मा दया करे तो गुरु के उपदेश से (शिष्य को) (नाम रूपी) हीरे की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ २१ ॥

[२२]

भरमै भाहि न बिभवे जे भवै बिसंतर बेसु ।
 अंतरि नैसु न उतरै द्विगु जीबणु धगु बेसु ॥
 होरु किते भगति न होबई बिनु सतगुर के उपबेस ॥ १ ॥
 मन रे गुरमुखि अगिनि निवारि ।
 गुर का कहिआ मन बरै हउमै वृसना मारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 मनु माणकु निरमोलु है रामनामि पति पाइ ।
 मिलि सतसंगति हरि पाईऐ गुरमुखि हरि लिव लाइ ॥
 आपु गइआ सुलु पाइआ मिलि सललै सलल समाइ ॥ २ ॥
 जिनि हरि हरि नामु न चेतियो सु अउगुणि आवै जाइ ।
 जिसु सतगुरु पुरलु न भेटियो सु भउजल पखै पछाइ ॥
 इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदले जाइ ॥ ३ ॥
 जिना सतगुरु रसि मिलै से पूरे पुरख सुजाणु ।
 गुर मिलि भउजलु संघोऐ दरगह पति परबाणु ॥
 नानक ते मुख उजले धुनि उपजै सबहु नोसाणु ॥ ४ ॥ २२ ॥

यदि (कोई) दिशा-दिशान्तरी और (अनेक) देशों में भ्रमण करता है, (तो) उस भ्रमण से (उसका तृष्णा को) अग्नि नहीं बुझती । (यदि) आंतरिक मेल नहीं उतरती (पाप की निवृत्ति नहीं होती), तो (उस फकीरी) जीवन को धिक्कार है और (फकीरी) बेध को भी धिक्कार है । बिना सद्गुरु के उपदेश के, और किसी भी प्रकार भक्ति नहीं (प्राप्त) हो सकती ॥ १ ॥

अरे मन, गुरु के उपदेश द्वारा (आन्तरिक) अग्नि का निवारण करो । गुरु के उपदेश को मन में बसा कर अहंकार और तृष्णा को मार डालो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे मन, (नाम) अमूल्य माणिक्य है; राम नाम से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । सत्संगति में मिलकर हरि पाया जाता है (और) गुरु की शिक्षा द्वारा ही हरि में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लगती है । अपनापन चले जाने पर सुख प्राप्त हो गया (और परमात्मा के साथ मिलकर इस प्रकार एक हो गया जिस प्रकार) जल जल से मिलकर एक हो जाता है ॥ २ ॥

जिसने 'हरि हरि', नाम को नहीं चेटा (ध्यान में लाया), वह बारम्बार अवगुणों में आता और जाता है (अवगुणों में जन्मता और मरता रहता है) । जिसने सद्गुरु पुरुष से मिलाप नहीं किया, वह संसार-सागर में नष्ट होता रहता है । यह जीवन अमूल्य माणिक्य है, (किन्तु) यह कौड़ी के बदले चला जा रहा है ॥ ३ ॥

जिन्हें सद्गुरु प्रसन्न होकर मिलता है, वे पूर्ण पुरुष हैं और सयाने हैं । गुरु से मिलकर (उनके द्वारा) संसार-जल लौंच लिया जाता है (और वे) (परमात्मा के) दरवाजे पर प्रतिष्ठा तथा प्रामाणिकता प्राप्त करते हैं । जिनके अंतःकरण में शब्द रूपी नगाडा (बजता है) (और परमात्मा के नाम की) ध्वनि उठती है, उनके मुख (सचमुच ही) उज्ज्वल हैं ॥ ४ ॥ २२ ॥

[२३]

वरणसु करहु वरणजारिहो वखरु लेहु समालि ।
 तैसी वसतु विसाहीऐ तैसी निबहै नालि ॥
 अग्रे साहु सुजाणु है तैसी वसतु समालि ॥ १ ॥
 भाई रे राम कहहु बिनु लाइ ।
 हरिजसु वखरु ले चलहु सहु बेले पतीआइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 जिना रासि न ससु है फिउ तिना सुसु होइ ।
 खोटें वरणजि वरणजिए मनु तनु खोटा होइ ॥
 काही काथे मिरग जिउ दूखु धरणी नित रोइ ॥ २ ॥
 खोटे पोतै न पवहि तिन हरिगुर दरसु न होइ ॥
 खोटे जाति न पति है खोटि न सीभसि कोइ ॥
 खोटे खोटु कमावणा आइ गइआ पति खोइ ॥ ३ ॥
 नानक मनु नमझाईऐ गुर के सबदि सालाह ।
 रामनाम रंगि रतिआ भारु न भरसु तिनाह ॥
 हरि जापि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह ॥ ४ ॥ २३ ॥

हे व्यापारियों, व्यापार करो, सोदे को (भलीभाँति) संभाल लो । ऐसी वस्तु खरीदो, जो साथ साथ निबह सके । प्राये (परलोक में) बड़ा सयाना साहु (परमात्मा) है, (वह) बहुत संभाल कर वस्तु (मोदे) को लेगा ॥ १ ॥

अरे भाई, चित्त लगा कर 'राम नाम' कहो । हरि-पश खूब सोदे को लेकर चलो, (जिसमें) स्वामो (उस सोदे को) देखे और (तुम्हारा) विश्वास करे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिनके पास सत्य की पूंजी नहीं है, उन्हें किस प्रकार मुक्त हो सकता है ? खोटा सोदा करने से में, तन और मन (दोनों ही) खोटे होने हैं । (खोटे मोदे वाले को) जाल में फँसे हुए मृग की भाँति अत्यधिक कष्ट होता है और सदेव रोना पड़ता है ॥ २ ॥

खोटे व्यक्ति (खोटे सिक्कों को भाँति) (परमात्मा रूपी) खजाने में नहीं लिये जाते; उन्हें हरि रूपी गुरु का भो दर्शन नहीं होता । खांटों को न जाति होती है और न पाँति; खोटों से कोई कार्य भी नहीं सिद्ध होता । खोटे (व्यक्ति) खोटा ही (कर्म) करते हैं, वे (इस संसार में) आते हैं (जन्म लेने हैं) और जा कर प्रतिष्ठा खो देने हैं ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि गुरु के शब्दों की प्रशंसा द्वारा मन को समझाओ । जो राम-नाम के रंग में रंगे हैं, उन्हें (पाप का) बोझ और भ्रम नहीं (व्यापता) हरि के जपने से महान् लाभ है (और) निर्भय हरी मन में (बस जाता है) ॥ ४ ॥ २३ ॥

महला १, घर २

[२४]

धनु जोबनु भरु कुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि ।
 पवणि केरे पत जिउ दलि दुलि जुमणहार ॥ १ ॥
 रंगु माणि लै पिमरिआ जा जोबनु नउकुला ॥

दिन बोड़े धके भइआ पुराणा बोला ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सकल मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि ।

हंभी बंझा डुमली रोबा भीली बाणि ॥ २ ॥

को न सुणही गोरीए आपण कंनी सोइ ।

लगी आबहि साधुरे नित न वेईआ होइ ॥ ३ ॥

नानक सुती वेईए जागु चिरती संनि ।

गुणा गवाई गंठड़ी भवगुण चली बंनि ॥ ४ ॥ २४ ॥

धन, यौवन और फूल चार दिन के मेहमान है, (वे सब) पद्मिनी के पत्ते के समान मुरझा और सूख कर नाश हो जानेवाले हैं ॥ १ ॥

ऐ प्यारे, जब तक नवीन यौवन (चंदती जवानी) है, तब तक राग-रंग मना ले; (जवानी के) थोड़े दिन (शीघ्र ही) समाप्त हो जाते हैं (और यह) बोला पुराना हो जाता है) (शरीर वृद्ध और जीर्ण हो जाता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

रंगरलियाँ करनेवाले मेरे मित्र कस्तिान में जाकर सो गए । मैं दोमनी—
दुचिती (दो मन—चित्त वाली) भी (उसी स्थान में) जाऊँगी, (जहाँ मे उनके) रोने की धीमी आवाज (आ रही है) ॥ २ ॥

ऐ गोरी (सुन्दरी स्त्री) तू अपने कानों से क्यों नहीं (यह शब्द) सुनती कि तुम्हें
(अन्त में) समुद्राल चले जाना है, नित्य मैंके (इस ससार में) मैं ही नहीं रहना है ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि जो स्त्री मैंके मे देवक्त सध्या काल (गोघृणि) में सोई हुई है, (उसे यह) समझो कि (उसने) अपने गुणों की गठरी गंवा दी और भवगुण (का गट्टर) बांध कर चली है ॥ ४ ॥ २४ ॥

[२५]

आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहार ।

आपे होत्रे जोलड़ा आपे सेज भतारु ॥ १ ॥

रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु ।

आपे जाल मरणकड़ा आपे अंदरि लालु ॥ २ ॥

आपे बहुबिधि रंगुला सखीए मेरा लालु ॥

नित रवे सोहागणी बेणु हमारा हालु ॥ ३ ॥

प्रणवै नानक बेनती तू सरवरु तू हंसु ॥

कउलु तू है कबीआ तू है आपे वेलि बिगलु ॥ ४ ॥ २५ ॥

स्वयं (परमात्मा) ही रसिक है, स्वयं ही रस और स्वयं ही (उस रस का) भोगनेवाला है । स्वयं ही स्त्री है और स्वयं ही सेज का पति है ॥ १ ॥

मेरा साहब (प्रभु) रंग (आनन्द) में अनुरक्त है (और वह) पूर्ण रूप से (सर्वत्र) रम रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मेरा प्रभु) स्वयं ही माझी (मल्लाह) है, स्वयं ही मछली है, स्वयं ही जल है और स्वयं ही जाल है । स्वयं ही जाल का मणका है [जाल को भारी करने के लिए, उसमें लोहे के 'मणके' बाँध दिए जाते हैं, ताकि वह जल में डूबा रहे] और वह स्वयं भीतर का (पुरानी मछली के भीतर कभी-कभी पाया जाने वाला) लाल है ॥ २ ॥

ऐ सखियो, मेरा लाल—प्रियतम स्वयं ही विविध भाँति के रंग—विनोद करने वाला है । वह सोहागिनी स्त्रियों से नित्य रमण करता है किन्तु (मुझ दुहागिनी की) दशा तो देखो, (मेरे निकट भी नहीं आता) ॥ ३ ॥

नामक विनती के साथ कहते हैं कि (हे प्रभु) तू ही सरोवर और तू ही (उममे निवास करनेवाला) हस भी है । तू ही कमल है और तू ही कुमुदिनी है और उन्हें देख-देख कर स्वयं ही प्रसन्न भी होता है ॥ ४ ॥ २५ ॥

महला १, घर ३

[२६]

इह तनु धरती बीसु करमा करो सलिल आपाउ सारिगपाणी ।

मनु किरमाए हुरि रिदै जंमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी ॥ १ ॥

काहे गरबसि मूड़े माइआ ।

पित सुनो सगल कालत्र माता तेरो होहि न अंति सखाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बिलै बिकार दुसट किरखा करे इन तजि आनमे होइ धिआई ।

जपु तपु संजमु होहि जब राखे कमलु बिगसे मधु आखमाई ॥ २ ॥

बीस सपताहरो बासरो संग्रहे तोनि खोड़ा नित कालु सारे ।

दस अठार में अपरंपरो चीनै कहे नामक इव एकु तारै ॥ ३ ॥ २६ ॥

(हे साधक), इस शरीर को धरती तथा शुभ कर्मों को बीज बनाओ, सारगपाणि (परमात्मा) को सींचने के लिए जल (बनाओ) । मन ही किसान हो और हरि को अपने हृदय में जमा लो । (इस प्रकार तुम) निर्वाण पद (फल) को प्राप्त कर लोगे ॥ १ ॥

ऐ मूर्ख, माया (सासारिक ऐश्वर्य) का अभिमान क्यों कर रहे हो ? (तुम्हारे) पिता सारे पुत्र, स्त्री, माता अंत में तुम्हारे सहायक नहीं होंगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(साधक) दुष्ट विषय-विकारों को (बल पूर्वक) खींच कर बाहर निकाल कर इनका त्याग करे और आत्मस्थित होकर ध्यान करे । जब (दृढ़तापूर्वक) संयम रखा जाता है, तभी-जप-तप होते हैं, (हृदय) कमल प्रस्फुटित होता है और मधु टपकता है (आनन्द की वर्षा होती है) ॥ २ ॥

(साधक) बीस (पंच महाभूत, पंच तन्मात्राएँ, पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय) तथा सात (पंचप्राण, मन और बुद्धि) के निवास स्थान (बासरो), अर्थात् शरीर को एकत्र (वशीभूत) करे और तीनों अवस्थाओं (बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था अथवा जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति) में काल का स्मरण करे; दस (छः शास्त्र तथा चार वेद) और अठारह (पुराणों) में अपरंपार परमात्मा को पढ़वाने । नामक कहते हैं कि इस प्रकार (ऐसे साधक को) एक (परमात्मा) तार देगा ॥ ३ ॥ २६ ॥

[२७]

अमलु करि धरती बीज सबदो करि सब की आब नित देहि प्राणी ।
 होइ किरसायु इयानु जंमाइ लै भिसनु दोजकु भूड़े एव जाणी ॥ १ ॥
 मनु जाएसहि गली पाइआ ।
 माल कै मारौ रूप की सोभा इनु बिधो जनसु गवाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 ऐब तनि चिकड़ो इहु तनु मीउको कमल की सार नही मूलि पाई ।
 भउर उसताव नित भाखिआ बोले किउ बूझै जा नह बुझाई ॥ २ ॥
 आँखण सुनणा पउरण की बाणी इहु मनु रता माइआ ।
 खसम की नदरि विलहि पमिदे जिनी करि एकु धिआइआ ॥ ३ ॥
 तोह करि रखे पंजि करि साथी नाउ सेतानु मनु कटि जाई ।
 नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितरु संजिआही ॥ ४ ॥ २७ ॥

हे प्राणी, युभ कर्मों को धरती तथा (परमात्मा के) नाम को बीज बनाओ; सत्य की कीर्ति : जल से (उस पृथ्वी को) नित्य सींचो । (इस प्रकार के) विज्ञान बन कर ईमान (विश्वास) को अंकुरित करो । हे मूलं विहिंसत (स्वर्ग) और दोजख (नरक) को इस प्रकार समझो—॥१॥

यह मत समझो कि (स्वर्ग की प्राप्ति केवल) बाता में हो जायगी । ऐश्वर्य तथा रूप-सौन्दर्य के अभिमान में इसी प्रकार (अमृत्य) जीवन नाष्ट कर दिया जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 शरीर में (स्थित) अवगुण ही काँचड़ है, यह मन भेड़क है, जिसे पाम ही स्थित कमल (सर्वव्यापक परमात्मा) का तनिक भी पता नहीं है । गुरु अमर है, (जो) नित्य उपदेश देता रहता है, किन्तु यदि (गुरु का उपदेश) नहीं समझ में आना, तो (उस कमल को किस प्रकार जाना जाय ? ॥ २ ॥

(चूंकि) यह मन माया में लगा हुआ है, (अतएव उसके लिये) कहना और सुनना वायु की ध्वनि की (तरह व्यर्थ है) । जो परमात्मा का एकनिष्ठ हाकर ध्यान करते हैं, उन्हीं के ऊपर पति (प्रभु) की कृपा होती है और वे ही उसे हृदय में प्रिय होते हैं ॥ ३ ॥

(तुम) तीस रोज रक्खो, पाँच नमाजों को साथी बना कर पढ़ो, (पर इतना स्मरण रक्खो कि) जिसका नाम शैतान है, (वह तुम्हारे सारे शुभ कर्मों के प्रभाव को) कटी काट न दे । (भाव यह कि जब तक आंतरिक बुराई नहीं छूटेगी, तब रोज़ा, नमाज में कुछ लाभ न होगा) । नानक कहते हैं कि (अन्त में तुम्हें मृत्यु के) मार्ग पर ही चलना है, फिर धन-दौलत का क्यो संग्रह कर रहे हो ? ॥ ४ ॥ २७ ॥

महला १, घरु ४

[२८]

सोई मउला जिनि जगि मउलिआ हरिआ कीआ संसारी ।

आब आकु जिनि बंधि रहार्द धनु सिरजणहारो ॥ १ ॥

मरणा मुला मरणा । भी करतारहु डरणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ता तू मुला ता तू काजो जाणहि नामु सुवार्द ।

जे बहुतेरा पड़िआ होबहि को रहे न भरीऐ पाई ॥ २ ॥

सोई काजी जिनि घापु तजिआ इकु नामु कीआ आघारो ।

हे भी होसी जाइ न जासी सच्चा सिरजणहारो ॥ ३ ॥

पंजि बखत निबाज गुजारहि पड़हि कतेब कुराण ।

नानकु घाखै गोर सवेई रहिओ पीणा खाण ॥ ४ ॥ २८ ॥

वही मानिक है, जिसने जगत् को प्रकृतिलत किया है और संसार को हरा-भरा बनाया है । (सृष्टि-रचना में) जिनने जल और पृथ्वी को बाँध कर—जोड़ कर रक्खा है, वह रचयिता धन्य है ॥ १ ॥

मर जाओ, ऐ मुल्ला, मर जाओ । कर्तार से भय करो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तभी तुम मुल्ला हो, तभी तुम काजी हो, जब तुम परमात्मा का नाम जानते हो । कोई चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो, यदि उसके साँसों की पनघड़ी भर जायगी, (तो वह संसार में) नहीं रहता ॥ २ ॥

वही (सच्चा) काजी है, जिसने अपनेपन का त्याग कर दिया है और नाम को ही एक मात्र आधार बना लिया है । (वही परमात्मा वर्तमान में) है, (भूतकाल में) था और (भविष्यत् काल में) रहेगा । (सृष्टि के) नष्ट होने पर भी सच्चा सिरजनहार नष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥

पाँच वक्त नमाज गुजार्ते है और कतेब-कुरान पढ़ते है; किन्तु नानक का कथन है कि जिस समय कब बुलानी है, उस समय (सारे) खाने-पीने (यही) रह जाने है ॥ ४ ॥ २८ ॥

। २६ ।

एक सुघानु दुइ सुघानी नालि । भलके भउकहि सदा बइआलि ॥

कूड़, छुरा मुठा मुरदार । धारण रूपि रहा करतार ॥ १ ॥

मे पति की पंदि न करणी की कार । हउ बिगड़े रूपि रहा बिकराल ॥

तेरा एक नामु तारे संसार । मैं एहा आता एहो आधार ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मुखि निदा आया दिनु राति । परघरु जोहो नीच सनाति ॥

कामु क्रोधु तनि बसहि चंडाल । धारण रूपि रहा करतार ॥ २ ॥

फाहो सुरति मलुकी बेसु । हउ ठगवाड़ा ठगी बेसु ॥

खरा सिआण बहूता भार । धारण रूपि रहा करतार ॥ ३ ॥

मे कीता न जाता हरामखोर । हउ किआ मुहु बेसा दुसदु चोर ।

नानकु नीचु कहै बीचार । धारण रूपि रहा करतार ॥ ४ ॥ २६ ॥

(मेरे) साथ एक (लोभ रूपी) कुता है (और) दो (आशा और तृष्णा रूपी) कुतियाँ हैं । (ये) बीखला कर सदैव सबेरे ही भूँकते हैं । (मेरे पास) झूठ का छुरा है और ठगी का माल मुरदार (शिकार) है । (इस प्रकार) हे कर्तार मैं धनुर्धारी (साँसी) के रूप में हूँ ॥ १ ॥

मैंने प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाली न कोई शिक्षा ही ग्रहण की है और न कोई करने योग्य कार्य ही किया है । मैं (बहुत ही) बुरूप और बिकराल हूँ । (मुझे केवल एक ही विश्वास

हे कि) तेरा केवल एक नाम संसार को तार देता है । मुझे यही भाषा है (और) यही आश्रय है । ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं अपने) मुख से सदैव निन्दा ही करता रहता हूँ । मैं नीच सांसियो । (एक जंगली लुटेरी जाति) को भाँति पराया घर ही (चोरी करने के लिए) ताड़ता रहता हूँ । (मेरे) शरीर में काम, क्रोध बसते हैं, (मैं) चाण्डाल हूँ । हे कर्तार, मैं धनुर्धारी (साँसी) के रूप में हूँ ॥ २ ॥

ध्यान तो मेरा दूसरो को फँसाने का है, किन्तु बेश है साधुओ का । मैं ठग हूँ और देश को ठगता हूँ । मैं बहुत ही चतुर हूँ (और मेरे ऊपर पाप का) भारी बोझ है । हे कर्तार, मैं धनुर्धारी (साँसी) के रूप हूँ ॥ ३ ॥

मैं किए हुए (उपकार) को जाननेवाला (माननेवाला) नहीं हूँ । (मैं कृतघ्न हूँ ; (मैं) हरामखोर हूँ । मैं, दुष्ट, चोर तुम्हें किस प्रकार मुँह दिखाऊँगा ? तुच्छ नानक (अपना) विचार प्रकट करता है कि हे कर्तार, मैं धनुर्धारी (साँसी) के रूप में हूँ ॥ ४ ॥ २६ ॥

[३०]

एका सुरति जेते हे जोष । सुरति बिहरणा कोइ न कोष ॥

जेही सुरति तेहा तिन राहु । लेखा इको आवहु जाहु ॥ १ ॥

काहे जोष करहि चतुराई । लेबे देबे डिल न पाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तेरे जोष जोषा का तोहि । कित कउ साहिब आवहि रोहि ॥

जे तू साहिब आवहि रोहि । तू ओना का तेरे ओहि ॥ २ ॥

असो बोलबियाइ बिनाइह बोल । तू नदरी अंदरि तोलहि तोल ॥

जह करणी तह पूरी मति । करणी बाझहु घटे घटि ॥ ३ ॥

प्रणवति नानक गिआनी कैसा होइ । आपु पछाएँ बूझै सोइ ॥

गुर परसादि करे बोचारु । सो गिआनी दरगह परवारण ॥ ४ ॥ ३० ॥

जितने भी जीव हैं, (सब में) एक ही समझ (ज्ञान) है [अपनेपन का ज्ञान कीट से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त में है]; इस ज्ञान के बिना कोई नहीं बनाया गया । जिसकी ऐसी समझ होती है, उसका वैसा मार्ग भी होता है । (मनुष्य की रहनी के) हिसाब के अनुसार (उसके) आने-जाने का (क्रम चलता रहता है ।) ॥ १ ॥

अरे जीव, होशियारी—चालकी क्यों कर रहे हो ? लेने-देने में (किसी प्रकार का) ढीलापन नहीं पड़ने पायेगा [तात्पर्य यह कि तुम्हारे कर्मानुसार परमात्मा फल देगे] ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(ऐ परमात्मा,) (सारे जीव) तेरे ही हैं और तू सारे जीवों का है । ऐ साहब, (तो फिर) क्यों क्रोध करता है ? ऐ साहब, यदि तू (जीवों के ऊपर) रोष करेगा, (तो वे बेचारे कहाँ के होंगे) ? तू उनका (जीवों का) है और वे तेरे हैं ॥ २ ॥

हम लोग बकवादी हैं और निमड़ी हुई (बातें) बोलते हैं; किन्तु तू अपनी दृष्टि के अंतर्गत (सभी को) तोल लेता है । जहाँ (सुन्दर और शुभ) कर्म हैं, वहीं पूर्ण बुद्धि है । बिना (शुभ) कर्म के, (सारे कर्म) अत्यन्त घटिया हैं ॥ ३ ॥

नानक विनय पूर्वक कहते हैं कि ज्ञानी (ब्रह्मज्ञानी) कैसा होता है ? जो अपने (वास्तविक आत्मस्वरूप) को पहचानता है, वही (वास्तव में) समझता है। (वही ज्ञानी है)। गुरु कृपा से ही (वह ब्रह्म के) विचार में (प्रवृत्त होता है)। ऐसा ज्ञानी (परमात्मा के) दरवाजे पर प्रामाणिक समझा जाता है ॥ ४ ॥ ३० ॥

[३१]

तू दरोआउ दाना बीना मै मछुली कैसे अंतु लहा ।
जह जइ देखा तह तह तू है तुम ते निकसी फूटि मरा ॥ १ ॥
न जाणा भेउ न जाणा जाली । जा दुखु लाये ता तुमै समाली ॥ १ ॥ रहाउ ॥
तू भरपूरि जानिआ मै दूरि । जो कछु करी सु तेरे हदूरि ॥
तू देखहि हउ मुकरि पाउ । तेरे कंमि न तेरे नाइ ॥ २ ॥
जेता देखि तेता हउ खाउ । बिआ दरु नाही कै दरि जाउ ॥
नानकु एक कहै अरदासि । जोउ पिनु सभु तेरे पासि ॥ ३ ॥
आपे नेइ दूरि आपे ही आपे भंभि मिआनु ।
आपे देखे सुणै आपे हो कुदरति करे जहानु ॥
जो तिसु भावे नानका हुकसु सोई परवानु ॥ ४ ॥ ३१ ॥

(हे प्रभु) तू समुद्र है, जाना (दाना) और द्रष्टा (बीना) है; भला मैं मछली, तेरा अत किस प्रकार पा सकनी हूँ ? जहाँ-जहाँ (मैं) देखती हूँ, वहाँ-वहाँ तू ही है। तुझसे निकलने पर मैं फूट कर मर जाती हूँ ॥ १ ॥

न तो मैं मन्नाहूँ नो जानती हूँ और न जान को (ही) । (मुझे) जब दुःख लगता है, तो तुम्ही को स्मरण करती हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तू तो (सर्वत्र) पूर्ण रूप में व्याप्त है, (किन्तु मैं अपनी अज्ञानता में) तुम्हें दूर जानती हूँ । मैं जो कुछ भी करती हूँ, (वह सब) तेरी समीपता में ही (होता है) । तू तो (सब कुछ) देखता है (और) मैं मुकर जाती हूँ । न मैं तेरे काम की हूँ और न तेरे नाम की ॥ २ ॥

जितना तू देता है, उतना ही मैं खाती हूँ । (मेरे कोई) दूसरा दरवाजा नहीं है, (अतएव मैं तेरे दरवाजे को छोड़कर) किस दरवाजे पर जाऊँ ? नानक एक प्रार्थना करते हैं कि जीव और प्राण—सभी तेरे ही हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु, तू) स्वयं ही समीप है, स्वयं ही दूर है और स्वयं ही मध्य में है । स्वयं ही देखता है (और) स्वयं ही सुनता है । (तू ने) स्वयं ही अपनी कुदरत (शक्ति—माया), सृष्टि रची है । नानक कहते हैं कि (हे प्रभु) जो तुम्हें अच्छा लगता है, वही दुष्कर्म प्रामाणिक है ॥ ४ ॥ ३१ ॥

[३२]

कीता कहा करे मनि मानु । बेवणहारे के हथि दानु ॥

भावे बेइ न देई सोइ । कीते कै कहिये किआ होइ ॥ १ ॥

आपे सचु भावे तिसु सचु । अंधा कबा कसुनिकसु ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जा के रुख बिरल धाराउ । जेही धातु तेहा तिन नाउ ॥
 फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ । आपि बीजि आपे ही खाइ ॥ २ ॥
 कच्ची कंधु कच्चा बिचि राज । मति अलूणी फिका साइ ॥
 नानक आपे आवै रासि । बिरु नाने नाहो साबासि ॥ ३ ॥ ३२ ॥

(परमात्मा का) बनाया हुआ जीव (अपने) मन में क्या अभिमान कर सकता है ? देनेवाले (परमात्मा) के हाथ में हो (सारे) दान है । (उसे) अच्छा लगे तो देता है (और न अच्छा लगे) तो नहीं देता । (भला परमात्मा द्वारा) बनाए गए (जीव) के कहने से क्या हो सकता है ? ॥ १ ॥

(वह कर्तार) स्वयं सत्य है (और) उसे सत्य ही अच्छा लगता है । अंधा (नमोगुण का उपासक) कच्ची में कच्चा है (अर्थात् बहुत ही गिरा हुआ है) ॥ १ ॥ २७३ ॥

जिसके (जिस परमेश्वर के) रुख, वृक्ष है, (उसी का) बाग भी है । [आराउ = उपवन, बाग, उद्यान] । (जिस रुख-वृक्ष की) जो किरमें होती है, उसका वही नाम होता है । फूल के भाव के अनुसार फल भी लिखे जाते हैं [मनुष्य के जीवन रूपी वृक्ष में जिस प्रकार के अच्छे-बुरे कर्मों के फूल लगते हैं, उसी के अनुसार उनके फल भी होते हैं] (मनुष्य) स्वयं ही (जो) बोता है, (वही) खाता है ॥ २ ॥

जो राज कच्चा (नासमझ) होता है, (उसके द्वारा बनाई गई) दीवान भी कच्ची होती है, (बुरी के बुरे कर्म होते हैं) । (यदि) बुद्धि अलोनी (बिना नमक की) होती है, है, तो उसका स्वाद भी फोका होता है [भाव यह कि यदि बुद्धि में परमात्म-रस का स्वाद नहीं है, तो उसकी सारी चेष्टाएं व्यर्थ हैं] । नानक कहते हैं कि (जिसे परमात्मा स्वयं) संवारता है, उसी को रस आता है । बिना (परमात्मा) के नाम के (परमात्मा के यहाँ) शाबासी—प्रशंसा नहीं मिलती ॥ ३ ॥ ३२ ॥

महला १, घर ५

[३३]

अछल छलाई नह छलै नह घाउ कटारा करि सकै ।
 जिउ साहिबु राखै तिउ रहै इतु लोभी का जिउ टलपलै ॥१॥
 बिनु तेलु दीवा किउ जलै ॥१॥ रहाउ ॥
 पोथी पुराण कमाईऐ । भउ बटो इतु तनि पाईऐ ॥
 सच्चु बूझणु आपणु जलाईऐ ॥२॥
 इहु तेलु दीवा इउ जलै । करि जानणु साहिबु तउ मिलै ॥१॥ रहाउ ॥
 इतु तनि लागै बालीआ । सुलु होवै सेव कमाणीआ ॥
 सभ दुनीआ आवणु जाणीआ ॥३॥
 बिचि दुनीआ सेव कमाईऐ । ता दरगह बेसणु पाईऐ ॥
 कहू नानक बाह लुडाईऐ ॥४॥ ३३ ॥

निश्चल (छलरहित मनुष्य) को छलबाली (माया) नहीं छल सकती, (उस माया की) कटार भी (उसे) घाव नहीं कर सकती । (वह निश्चल व्यक्ति) उस भक्ति

रहता, जैसे साहब उसे रखता है; (किन्तु) इस लोभी का दिल तो घाले-मेले में पड़ा रहता है ॥ १ ॥

बिना तेल के दिया कैसे जलेगा ? [यह प्रश्न है, इसका उत्तर आगे आने वाली पंक्तियों में दिया गया है] ॥ १ ॥

धार्मिक पोथियों का अध्ययन करना ही (तेल है) । (परमात्मा के) भय की बत्ती इस शरीर में डाली जाय, सत्य के ज्ञान को अग्नि लाकर (उसे जलाया जाय) तब आध्यात्मिक जीवन का दीपक जलता है ॥ २ ॥

(इस प्रकार उपर्युक्त) तेल से और (उपर्युक्त विधि में आध्यात्मिक जीवन का) दीपक जलता है । (इस भाँति) प्रकाश करने से, साहब (निश्चय ही) मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

इस शरीर में (जब) गुरु का उपदेश लगता है, तभी सुख होता है (और) गुरु की सेवा की कमाई होती है । सारी दुनिया आने-जाने वाली है (नश्वर है) ॥ ३ ॥

(यदि) इस दुनिया में (गुरु की) सेवा की कमाई की जाय, तभी (परमात्मा के) दरवाजे पर बैठने को मिलता है, नानक कहते हैं (अभी प्रसन्नता में) बाँहें हिलाई जाती हैं ॥ ४ ॥ ३३ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सिरी रागु, महला १, घर १,

असटपदीआं

[१]

आखि आखि मनु बावणा जिउ जिउ जापै वाइ ।
जिस नो वाइ सुणाईऐ सो केवडु किनु थाइ ॥
आखणवाले जेतड़े सभि आखि रहे लिव लाइ ॥१॥

बाबा अलहु अगम अपार ॥
पाकी नाई पाक बाइ सच्चा परवदिगार ॥२॥ रहाउ ॥

तेरा हुकमु न जापी केतड़ा लिखि न जाएँ कोइ ।
जे सउ साइर भेलीअहि तिल न पुजावहि रोइ ।
कीमति किनै न पाईआ सभि सुणि सुणि आखहि सोइ ॥२॥

पीर पैकामर सालक सादक सुहबे अउर सहीद ।
सेख मसाइक काजी मुला दरि दरवेस रसीद ॥
बरकति तिन कउ अगली पड़वे रहनि दख ॥३॥

पुछि न साजे पुछि न दाहे पुछि न देबै लेइ ।
आपणो कुदरति आपे जाएँ आपे करणु करेइ ॥
सभना बेखे नदरि करि जे भावै तै बेइ ॥४॥

थावा नाव न जाणीअहि नावा केवडु नाउ ।
 जिथे वसे मेरा पातिसाहु सो केवडु है पाउ ॥
 अंबडि कोइ न सकई हुउ किस नो पुछणि जाउ ॥५॥
 वरना वरन न भावनी जे किसे बडा करेइ ।
 बडे हृषि बडिआईआ जे भावे ते बेइ ।
 हुकमि सवारे आपणै चसा न डिल करेइ ॥६॥
 समु को आलै बहुतु बहुतु लेणै कै बीचारि ।
 केवडु दाता आखीऐ वे कै रहिआ सुमारि ॥
 नानक तोटि न आवई तेरे जुगह जुगह भंडार ॥७॥१॥

(परमात्मा का) कथन कर-कर के मन बाजा बजा रहा है, (अर्थात् आनन्दित हो रहा है), जैसे-जैसे (परमात्मा की महत्ता का) ज्ञान होता है, वैसे-वैसे (मन) बजाया जा रहा है । जिसे बजा कर सुनाया जाता वह कितना बड़ा है और किस स्थान पर है ? जितने सभी कथन करनेवाले हैं, सब (उसका) कथन करने करते गम्भीर ध्यान (लिव) में निमग्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

अरे बाबा, अल्लाह अगम और अपार है । वह सच्चा पालनकर्ता पवित्र नाम और पवित्र स्थान वाला है ॥ १ ॥ २५७ ॥

(हे प्रभु), यह ज्ञान नहीं कि तेरा हुक्म कितना (महान्) है और न उम कोई लिख ही सकता है । यदि सो जायर (कवि) एकत्र किए जायें, तो वे रो रो कर (खप-खप कर) तिल मात्र (तेरी महत्ता) का वर्णन नहीं कर सकते । तेरी कीमन किसी ने भी नहीं पाई है, सभी (लोग) सुन-सुन कर ही वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

(अमंख) पीर, पैगम्बर, मार्ग-प्रदर्शक (सालिक), अद्वावान् (सादक), सीधे-सादे फकीर (मुहंमद) तथा शहीद (धर्म के लिए बलिदान होने वाले), शेख, तपस्वी (मसाइक), काजी, मुल्ला, तथा परमात्मा के दरवाजे के पहुँचे हुए फकीर—(आदि के ऊपर) परमात्मा की बड़ी कृपा है, (जिससे वे) दुआ पढ़ने रहते हैं [दरूद=तमाज के पीछे की जो दुआ पढ़ी जाती है] ॥ ३ ॥

(परमात्मा) बिना (किसीके) पूछे ही रचना करता है, बिना पूछे ही नाश करता है (और) बिना पूछे ही नेता-देता है । अपनी कुदरत—शक्ति—माया वह स्वयं ही जानता है, (दूसरा कोई नहीं) वह स्वयं ही करण और कर्ता है, (वह) सभी के ऊपर दृष्टि डाल कर देखता रहता है (और उसे) जो अच्छा लगता है, उमी को (वह) देता है ॥ ४ ॥

(उसके) स्थानों का नाम नहीं जाना जा सकता (और न यही पता है कि नामों में (उसका) नाम कितना बड़ा है । वह स्थान कितना बड़ा है, जहाँ मेरा बादशाह निवास करता है ? (वहाँ तक) कोई नहीं पहुँच सकता; मैं किससे पूछने जाऊँ ? ॥ ५ ॥

(यदि) वह किसी को बड़ा बनाता है, (तो उसमें वर्णावर्ण ऊँची अथवा नीची जाति का भाव नहीं रहता । (वास्तव में) बडे (परमात्मा) के हाथ में ही बड़ाई (गौरव) है, जो (उसे) अच्छा लगता है, उसे (वह) देता है । वह अपने हुक्म को मंवारता है, (इसमें वह) रंजमाण भी डिलाई नहीं करता ॥ ६ ॥

लेने के विचार से सभी कोई (परमात्मा का) बहुत-बहुत कथन करते हैं। उस दाता को कितना बड़ा कहा जाय ? उसके देने की गणना नहीं की जा सकती। नानक कहते हैं कि (हे प्रभु तेरे दानों में किसी प्रकार की भी) कमी नहीं आती, (क्योंकि) तेरे भाण्डार युग-युगान्तरों से (भरे पड़े हैं) ॥ ७ ॥ १ ॥

[२]

सभे कंत सहेलीआ सगलीआ करहि सोगारु ।
 गणत गणावरण आईआ सुहा बेसु विकारु ॥
 पाल्खंडि प्रेसु न पाईऐ छोटा पालु लुभारु ॥१॥
 हरि जोउ इउ पिरु रावै नारि ॥
 तुघु भावनि सोहागणी अपणी किरपा लैहि सवारि ॥१॥ रहाउ ॥
 गुरसबदी सोगारोआ तनु मनु पिरु कै पासि ।
 बुझ कर जोरि खड़ी तकै सनु कहै अरदासि ॥
 लालि रती सब भै बसी भाइ रती रंगि रासि ॥२॥
 प्रिअ की चेरी काडीऐ लाली माने नाउ ।
 साची प्रीति न तुटई साचे मेलि मिलाउ ॥
 सबदि रती मनु बेधिआ हउ सब बलिहारै जाउ ॥३॥
 साधन रंड न बैसई जे सतिगुर माहि समाइ ।
 पिरु रीसालू नउतनो साचउ मरे न जाइ ॥
 नित रवै सोहागणी साची नदरि रजाइ ॥४॥
 सानु धड़ी धन माड़ीऐ कापड़ प्रेम सोगारु ।
 बंदन चीति बसाइआ मंदरु दसबा दुआरु ॥
 दोपकु सबदि बिगासिआ रामनासु उर हारु ॥५॥
 नारी अंदरि सोहणी मसतकि मणी पिआरु ।
 सोभा सुरति सुहावणी साचै प्रेमि अपार ॥
 बिनु पिरु पुरखु न जाएई साचे गुर कै हेति पिआरि ॥६॥
 निसि अंधिआरी सुतीए किउ पिरु बिनु रैणि बिहाइ ।
 अंकु जलउ तनु जालीअउ मनु धनु जलिबलि जाइ ॥
 जा धन कंति न राबोआ ता बिरथा जोबनु जाइ ॥७॥
 सेजै कंत सहेलड़ी सुती बूझ न पाइ ।
 हउ सुती पिरु जानणा किस कउ पूछउ जाइ ॥
 सतिगुरि मेली भै बसी नानक प्रेसु सखाइ ॥८॥२॥

सभी कंत की सहेलियाँ हैं (और) सभी शृङ्गार करती हैं। (सभी अपने-अपने शृङ्गारों की) गिनती-गिनाती (किन्तु) उनके लाल वेश व्यर्थ हैं। [अर्थात् दिखावे कर्म चाहे कितने ही अच्छे हो, किन्तु परमात्मा की दृष्टि में बुरे ही हैं]। पालखंड से प्रेम की प्राप्ति नहीं होती; (ऐसे व्यक्तियों के) छोटे दिखावे (उन्हें) बरबाद करते हैं ॥ १ ॥

हरि जी, प्रियतम (अपनी) पत्नी के साथ इस प्रकार रमण करता है—(हे हरी, तुझे), मुहागिनी स्त्रियो अच्छी लगती हैं; तू अपनी कृपा से (उन्हे) सँवार लेता है । (अच्छी बना लेता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो जीवात्मा स्त्री स्त्री) गुरु के शब्द द्वारा सँवारी गई है, (उसका) तन और मन प्रियतम (परमात्मा) के पास है । (वह) दोनों हाथ जोड़ कर खड़ी रहती है (और प्रियतम को) ताकती रहती है, और अरदास (बिनती—प्रार्थना) करता है । (वह अपने) लाल मे अनुरक्त है, सत्य भय मे निवास करती है, भाव मे रंगी और (उसके) प्रेम मे सँवारी गई है ॥ २ ॥

वह प्रिय को चेतो और दासो (लाली) कहलाती है और (प्रियतम परमात्मा के) नाम को ही मानती है । (यदि) सच्चा (परमात्मा) अपने मेल मे मिला लेता है, (तो उसको) सच्ची प्राप्ति (कभी नहीं) टूटती । (जो गुरु के) शब्द मे रगी हुई है और (जिसका) मन (उसी मे) बिध गया है, मैं सदैव उस पर न्यौछावर हो जाता हूँ ॥ ३ ॥

जो सद्गुरु मे (बिलकुल) समा गई है, ऐसी स्त्री राई (स्त्री) को भाँति (प्रियतम से अलग) नहीं बैठती । (वह तो प्रियतम के साथ सदैव एक रहती है) । (उसका प्रियतम) रसिक, नवीन तनवाला और सच्चा है, वह न मरता है (और न कहीं) जाता है । (वह अपनी) सोहागिनी स्त्री से नित्य रमण करता है और (उस पर अपनी मर्जी) मे सच्ची कृपा-दृष्टि रखता है ॥ ४ ॥

(वह मुहागिनी) स्त्री सत्य की माँग काढ़ती है और प्रेम के कपड़े का शृंगार करती है । (परमात्मा को) चित्त मे बसाना ही (उस स्त्री का) चंदन-लेप है, और दशम दरवाजे मे (निवास करना), उसका (वास्तविक महल है) । (उमने) शब्द का ही दीपक जलाया है और राम नाम को ही (अपने) गले का हार (बनाया) है ॥ ५ ॥

जिसके मस्तक मे प्रेम की मणि (मुशोभित) है, (वह स्त्री सभी) स्त्रियो मे (परम) सुन्दरी है । (उसकी) शोभा यह है कि (उसकी) सुन्दर सुरति उस सच्चे और अपार (हरी के) प्रेम मे लगी है । (अपने) प्रियतम के बिना—अतिरिक्त (वह अन्य) पुरुष को जानती ही नहीं; सच्चे गुरु के प्रति ही उसका प्रेम होता है ॥ ६ ॥

(अरी तू,) अंधकारपूर्ण रात्रि मे सोई है; (भला बताओ) बिना प्रियतम के तेरी रात्रि कैसे बीतेगी ? (तेरा) अंक जाल जाय, (तेरा) शरीर भा जल जाय और (तेरे) मन, धन भी जल-जल जाय, (क्योंकि तू मुहागिनी है) जिस स्त्री से कंत नहीं रमण करता, उसका जीवन व्यर्थ ही चला जाता है ॥ ७ ॥

सेज पर कंत है, (किन्तु) स्त्री सोई है; (अतएव) वह जान नहीं पाती है । मैं तो सोई हूँ, प्रियतम जाग रहा है, (यह बात) किससे जा कर पूछूँ ? सद्गुरु ने (प्रियतम से) मिला दिया । (अब वह स्त्री प्रियतम के) भय मे निवास करती है और प्रेम ही उसका सखा है ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

आपे गुण आपे कचे आपे सुणि बीजार ।

आपे रतनु परलि तूं आपे मोलु अपार ॥

साचउ मानु महतु तूं आपे बेबलहार ॥१॥

हरि जीउ तूं करता करता ।
 जिउ भावे तिउ राखु तूं हरिनामु मिलै आचार ॥१॥ रहाउ ॥
 आपे होरा निरमला आपे रंगु मजीठ ।
 आपे मोती ऊजलो आपे भगत बसोठु ॥
 गुर के सबदि सलाहणा घटि घटि डोठु अडोठु ॥२॥
 आपे सागर बोहिया आपे पार अपार ।
 साची बाट सुजाणु तूं सबदि लघावरणहार ।
 निडुरिआ उरु जाणीऐ बाभु गुरु मुबार ॥३॥
 असथिरु करता देखीऐ होरु केती आवै जाइ ।
 आपे निरमलु एक तूं होर बंधी धंधे पाइ ॥
 गुरि राखे से उबरे साखे सिउ लिब लाइ ॥४॥
 हरि जीउ सबदि पछाणीऐ साचि रते गुर वाकि
 तितु तनि मैलु न लगई सच धरि जिसु ओताकु ।
 नदरि करे सनु पाईऐ बिनु नावै किआ साकु ॥५॥
 जिनी सनु पछाणिआ से सुखीऐ जुग चारि ।
 हउमै तृसना मारि कै सनु रखिआ उरधारि ॥
 जगु महि लाहा एक नामु पाईऐ गुर बीवारि ॥६॥
 साचउ वखरु लादीऐ लामु सबा सनु रासि ।
 साची दरगह बैसई भगति सची अरदासि ॥
 पति सिउ लेला निबड़ै रामु नामु परगासि ॥७॥
 ऊचा ऊचउ आखीऐ कहउ न बेखिआ जाइ ।
 जह देला तह एक तूं सतिगुरि दोआ दिलाइ ॥
 जोति निरंतरि जाणीऐ नानक सहजि सुभाइ ॥८॥३॥

(हे प्रभु, तूम्) स्वयं ही गुण हो, स्वयं ही (उसका) कथन करते हो, और स्वयं (उसे) सुन कर (उस पर) विचार करते हो । स्वयं ही रत्न हो, स्वयं ही (उसके) पारखी हो, (और) स्वयं ही (उसका) अपार मूल्य हो । तुम्हीं सच्चा मान और महत्ता हो; (और) तुम्हीं उनके देनेवाले हो ॥ १ ॥

हे हरि जी, तुम्हीं (सब के) कर्त्ता हो । तुम्हें जैसे अच्छा लगे, उसी प्रकार (मुझे) रखो, मेरा आचार हरिनाम हो (और वही मुझे) प्राप्त हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तुम्हीं (नाम रूपी) निर्मल हीरा हो और तुम्हीं (भक्ति का गहरा) मजीठ रंग हो । तुम्हीं (ज्ञान रूपी) उज्ज्वल मोती हो और तुम्हीं भक्तों के मध्यस्थ हो । गुर के शब्द द्वारा (तुम्हीं अपनी) प्रशंसा—स्तुति कर रहे हो; घट-घट में तुम्हीं दृश्य और अदृश्य (रूप में दिखाई पड़ रहे हो) ॥ २ ॥

(हे प्रभु) तुम्हीं सागर हो और तुम्हीं जहाज हो; तुम्हीं (समुद्र का) यह पार (किनारा) हो (और तुम्हीं) वह पार भी हो । हे चतुर, तुम्हीं सच्चा मार्ग हो और (गुरु के) शब्द द्वारा तुम्हीं (संसार-सागर को) पार करानेवाले हो । (इस संसार सागर

मे) डरवाले उन्ही को समझना चाहिए (जो परमात्मा के) डर से रहित हैं; गुरु के बिना (घनघोर) भयंकार है ॥ ३ ॥

स्थिर (रहनेवाला तो एक मात्र) कर्ता ही देखा जाता है, अन्य (जीव-जन्तु) तो कितने घाते हैं और कितने जाते हैं । (हे स्वामी) एक तुम्ही निर्मल हो (और तो न मालूम कितने प्राणी) (सांसारिक) धंधों में बंधे पड़े हैं । (जिनकी) गुरु रक्षा करता है, वे ही उबरते हैं और सच्चे (परमात्मा) से लिब लगाते हैं ॥ ४ ॥

हरि (गुरु के) शब्द द्वारा पहचाना जाता है; गुरु के वाक्य से ही (शिष्य) सत्य (परमात्मा मे) रत होते हैं । जिसकी बैठक सत्य के घर में है, उसके शरीर मे (पाप की) मैल नहीं लगती । [ओताकु=फारसी ओताक=मरदानी बैठक] । (परमात्मा की) कृपा-दृष्टि से ही सत्य मिलता है; बिना (हरि) नाम के क्या शायद रहेगी ? ॥ ५ ॥

जिन्होंने सत्य को पहचान लिया (साक्षात्कार कर लिया) वे चारो युगों मे मुखी हैं । (ऐसे व्यक्तियों ने) झूठकार और तृष्णा को मार कर अपने हृदय मे सत्य को ही धारण कर रक्खा है । (उन्होंने) गुरु के विचार द्वारा जगत मे एक नाम के लाभ को प्राप्त कर लिया है ॥ ६ ॥

(जिन्होंने) सत्य का सादा लादा है, उन्हें सदैव लाभ ही होता है. (और उनकी) सत्य की पूँजो (अक्षुण्ण बनी रहती है) । (जिसकी) सच्ची भक्ति और सच्ची श्रद्धा (प्रार्थना) होती है, (वह परमात्मा के) दरबार मे (सम्मान के साथ) बैठेगा (उसके कर्मों का) लेखा प्रतिष्ठा से मुलभ जायगा, राम नाम भी (उसमे) प्रकाशित होगा ॥ ७ ॥

(वह परमात्मा) ऊँचे मे ऊँचे कहा जाता है, पर किसी के पास देखा नहीं जाता । (मैं) जहाँ देखता हूँ, वहाँ एक तू ही (दिखाई पड़ता) है, सद्गुरु ने मुझे (तुम्हारे इस सर्व-व्यापी स्वरूप को) दिखा दिया है । नानक कहते हैं कि तुम्हारी यह अलख (निरंतर) ज्योति सहज भाव से जानी जाती है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

मछली जालु न जाणिआ सरु खारा असगाह ।

अति सिध्दारी सोहरी किउ कीतो वेसाह ।

कीते कारण पाकड़ी कालु न टलै सिराह ॥१॥

भाई रे इउ सिरि जाणह कालु ।

जिउ मछी तिउ माणसा पवै अचिता जालु ॥१॥ रहाउ ॥

सभु जगु बाधो काल को बिनु गुरु कालु अफारु ।

सचि रते से उबरे दुखिया छोड़ि विकार

हुउ तिन कै बलिहारणं दरि सचै सचिआर ॥२॥

सोचाने जिउ पंखीआ जाली बधिक हाथि ।

गुरि राखे से उबरे होरि फाये चोमै साथि ॥

बिनु नावै जुणि सुटीअहि कोइ न संगी साथि ॥३॥

सचो सचा आखीऐ सचै सचा थानु ।

जिनी सचा मनिआ तिन मनि सचु धिआनु ॥
 मनि मुखि सूचे जाणीमहि गुरमुखि जिना गिआनु ॥४॥
 सतिगुरि अगे अरदासि करि साजनु बेइ मिलाइ ।
 साजनि मिलिऐ सुलु पाइआ जमदूत सुए बिखु लाइ ॥
 नावै अंदरि हउ वसां नाउ वसे मनि आइ ॥५॥
 बाहु गुरु गुबारु है जिनु सबदे बूझ न पाइ ।
 गुरमती परगासु होइ सचि रहै लिख लाइ ॥
 तिथे कालु न संचरै जोती जोति समाइ ॥६॥
 तूं है साजनु तूं सुजाणु तूं आये मेलणहारु ।
 गुर सबदी सालाहीऐ अंतु न पारावारु ॥
 तिथे कालु न अपडै जियै गुर का सबदु अपारु ॥७॥
 हुकमी सभे ऊपजहि हुकमी कार कभाहि ।
 हुकमी कालै बसि है हुकमी साचि समाहि ॥
 नानक जो तिसु भावै सो थोऐ इना जंता बसि किछु नाहि ॥८॥

मछली ने जाल को नहीं समझा (कि यह मेरी मृत्यु का कारण है) । (वह अपने निवास स्थान) समुद्र को खारा और अथाह (समझती रही) । वह तो बहुत सयानी और मुन्दर थी, (फिर उसने जाल का) क्या विश्वास कर लिया ? वह (अपने) किण (लालच) के कारण पकड़ी गई, (अब) उसके सिर पर मे काल नहीं टल सकता ॥ १ ॥

अरे भाई, इस प्रकार सिर पर काल समझो । जिस प्रकार मछली जाल में पड़ जाती है, उसी प्रकार मनुष्य भी अचानक (काल के) जाल में पड़ जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सारा जगत काल द्वारा बाँधा गया है; बिना गुरु के काल अमिट है । (जो व्यक्ति) द्वैत भाव (दुविधा) के विकार को त्याग कर सत्य में रत है, वे ही उबरे हैं । मैं उन पर न्योछाबर होता हूँ, जो सच्चे (परमात्मा के) दरवाजे पर सत्य (सिद्ध होते) है ॥ २ ॥

जिस प्रकार पक्षी बाज के (वश में है) और जिस प्रकार बधिक (शिकारी) के हाथ में जाल है, (उसी प्रकार मनुष्य भी काल के बन्धीभूत है) । जिनकी गुरु रक्षा करता है, वे ही बचते हैं, और लोग ता चारे द्वारा (मायिक आकर्षणों द्वारा जाल में) फँसा लिए जाते हैं । बिना (परमात्मा के) नाम के (वे लोग) चुन-चुन कर फेंक दिए जाते हैं, (उस समय उनका) कोई भी संगी-साथी नहीं होता ॥ ३ ॥

(वह) सच्चा ही सच्चा कहा जाता है (और उस) सच्चे का स्थान भी सच्चा ही है । जिन्होंने उस सत्य (परमात्मा) को मान लिया, उनके अन्तःकरण में सत्य का ही ध्यान होता है । (ऐसे पुरुषों को) मन और मुख से पवित्र जानना चाहिए, जिन्होंने गुरु के मुख द्वारा ज्ञान (प्राप्त किया है) ॥ ४ ॥

(हे साधक), सद्गुरु के आगे यह प्रार्थना कर कि वह साजन (परमात्मा) को मिला दे । साजन के मिलने पर (परम) मुख की प्राप्ति होती है (और) यमदूत जहर खाकर मर जाते हैं । यदि मैं नाम के अंतर्गत बस जाऊँ, तो नाम भी आकर मन में बस जाता है ॥ ५ ॥

बिना गुरु के अंधकार है; बिना (गुरु के) शब्द के समझ नहीं मिलती। गुरु द्वारा दी गई बुद्धि से (ज्ञान का) प्रकाश होता है (और शिष्य) सत्य स्वरूप परमात्मा में अपनी लिब लगा देता है। वहाँ काल का संवरण नहीं होता (और आत्मा को) ज्योति (परमात्मा की) ज्योति में समा जाती है ॥ ६ ॥

(हे हरी), तू ही साजन है और तू ही मुजान (चतुर) है, और तू ही अपने में (जीवों) को मिलानेवाला है। गुरु क शब्दों द्वारा (तुम्हारा) स्तुति को जानो है, (हे परमात्मा) न तुम्हारा अन्त है और न पारावार (सीमा) है। वहाँ काल नहीं पहुँचता, जहाँ गुरु का अपार शब्द है ॥ ७ ॥

(परमात्मा के) हुक्म से सब उत्पन्न होते हैं और हुक्म से ही सब (अपना-अपना) कार्य करते हैं। हुक्म से ही काल के बशीभूत होते हैं और हुक्म से सत्य (परमात्मा) में समा जाते हैं,। नानक कहते हैं कि जो उसे अच्छा लगता है, वही होता है, इन प्राणियों क वश में कुछ भी नहीं है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

मनि जूठे तनि जूठि है जिहवा झूठी होइ ।

भ्रूलि भूठे भूठ बोवण किउकरि सूचा होइ ॥

बिनु अम सबद न मांजीऐ साचे ते सच्चु होइ ॥१॥

मुंघे गुणहीनी सुलु केहि ।

पिर रचीआ रसि माणसी साचि सबदि सुलु नेहि ॥१॥ रहाउ ॥

पिठ परदेसी जे थोऐ धन बाढ़ी भूरेइ ॥

जिउ जलि थोड़े मछली करण पलाव करेइ ॥

पिर भावै सुलु पाईऐ जा आपे नदरि करेइ ॥२॥

पिर सालाही आपणा सबी सहेली नालि ।

तनि सोहें मनु मोहिआ रती रंगि निहालि ।

सबदि सवारी सोहणी पिर रावै गुण नालि ॥३॥

कामणि कामि न आवई लोटी अवगणिआरि ।

ना सुलु पेईऐ साहुरै भूठि जली बेकारि ॥

आवणु बंजरु डाखड़ो छोडो कंति बिसारि ॥४॥

पिर की नारि सुहावणी सुती सो कितु सादि ।

पिर कै कामि न आवई बोले फाविलु बादि ॥

वरि धरि दोई ना लहै छूटी दूजै सादि ॥५॥

पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि बीचार ।

अन कउ मती बे चलहि माइआ का बापारु ॥

कथनी भूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु ॥६॥

केते पंडित जोतकी वेदा करहि बीचार ।

बावि विरोधि सलाहणे वादे आवणु जाणु ॥

बिनु गुर करम न छुटसी कहि सुणि आखि बलाणु ॥७॥

सब गुणवंती आखीअहि मे गुरु नाहो कोइ ।

हरि वरु नारि सुहावणी मे भावे प्रभु सोइ ।

नानक सबवि मिलावड़ा ना बेछोड़ा होइ ॥८॥१॥

मन के जूठे होने से, शरीर जूठा हो जाता है और जीभ भी जूठी हो जाती है । (जिसका) मुख जूठा है, वह झूठ बोलता है; (भला बताओ वह) कैसे पवित्र हो सकता है ? बिना शब्द छपी पानी के (वे जूठनें) साफ नहीं होती, सत्य (व्यक्ति से ही) सत्य की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

अरी स्त्री, गुणविहीन (स्त्री) को मुख कहाँ (मिल सकता) है ? (तुम) अपने प्रियतम से मिलकर ही रस मानोगी (प्राप्त करोगी) ; सच्चे शब्द द्वारा ही प्रेम में मुख है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि प्रियतम परदेसी है, तो (उसमें) बिछुड़ी हुई स्त्री दुःखी होती है । (उस बिछुड़ी हुई स्त्री की ठाक वही दशा होती है) जैसे थोड़े जल में मछलो करुण-प्रलाप करती है । प्रियतम के अच्छी लगने पर ही, (स्त्री) को सुख प्राप्त होता है, (किन्तु यह सुख तभी मिलता है) जब (प्रियतम प्रभु) कृपा-दृष्टि करता है ॥२॥

(मैं) अपनी सखी-सहेलियों के अपने प्रियतम की प्रशंसा—स्तुति करूँगी । (प्रियतम के सौन्दर्य को देख कर) (मेरा) शरीर सुहावना (हो गया है), मन मोहित हो गया है (और) आनन्द में रत होकर (मैं) (पति को) देखती हूँ । (गुरु के) शब्दों से संवारी हुई (मैं बहुत ही) सुहावनी (हो गई हूँ) । (मेरे) गुणों में (रीझ कर) प्रियतम (मेरे साथ) रमण कर रहा है ॥३॥

अवगुणावाली छोटी स्त्री (अपने पति) के काम नहीं आती । उसे न तो मैंके (इस ससार) में सुख (मिलता है) और न समुराज (परलोक) में ही, वह झूठ में व्यर्थ ही जलती है । उसका आना-जाना (जन्म-मरण) कठिन होता है, (उसके) पति ने उसे भुला कर छोड़ दिया है ॥४॥

प्रियतम की सुहावना स्त्री किस स्वाद (मायिक आकर्षणों) के कारण छोड़ दी गई ? (वह छोड़ी हुई स्त्री) प्रियतम के किसी काम नहीं आती, (वह) व्यर्थ बकवास करती है । (परमात्मा के) दरवाजे और घर में (उसका) प्रवेश नहीं होता, दूसरे स्वादों में (लिस होने के कारण वह) छोड़ दी गई है ॥५॥

पंडित पांधियाँ बोलते हैं, (किन्तु स्वयं) विचार नहीं समझते । दूसरे को तो बुद्धि देते हैं, (किन्तु स्वयं) माया के व्यापार में चलते हैं । झूठे कथन में ही (सारा) जगत् भटकता फिरता है, (गुरु के) शब्द के अनुसार (वास्तविक) रहना रहना ही सार तत्व है ॥६॥

कितने ही पंडित, ज्योतिषी वेदों का विचार करते हैं; (किन्तु वे) बादविवाद और विरोध, प्रशंसा और बर (इन्हीं में) आते-जाते रहते हैं । व्याख्यानों के कहने और सुनने से ही, बिना गुरु-कृपा के छुटकारा नहीं मिलता ॥७॥

सारी (स्त्रियाँ) गुणवती कहलाती हैं, मुझ में तो कोई गुण नहीं है । (जिसका) पति हरी है, वही स्त्री सुहावनी है; मुझे तो वही प्रभु अच्छा लगता है । नानक कहते हैं कि (यदि गुरु के) शब्द से मिलाप हो जाता है, (तो फिर) बिछोह नहीं होता ॥८॥१॥

जपु तपु संजसु साथीऐ तीरथि कीचे वासु ।
 पुंन दान चंगिआईआ बिनु साचे किआ तासु ।
 जेहा राधे तेहा लुरै बिनु गुरा जनसु बिलासु ॥१॥
 सुंभे गुरा दासी सुलु होइ ।
 भवगण तिआगि समाईऐ गुरमति पूरा सोइ ॥१॥ रहाउ ॥
 बिरु रासी बापारीआ तके कुंडा चारि ।
 भूलु न बूझै आपणा वसतु रहो घरबारि ॥
 बिरु बखरु दुलु अगला कूड़ि सुठी कूड़िआरि ॥२॥
 लाहा अहिनिस्ति नउतना परखे रतनु बीचारि ।
 वसतु लहै घरि आपणै चले कारजु सारि ॥
 वणजारिआ सिउ वणजु करि गुरमुखि ब्रह्मसु बीचारि ॥३॥
 संतां संगति पाईऐ जे मेले मेलणहार ।
 मिलिआ होइ न विछुड़ै जिसु अंतरि जोति अपार ॥
 सचै आसणि सचि रहै सचै प्रेम पियार ॥४॥
 जिनी आपु पछाणिआ घर महि महलु सुथाइ ।
 सचे सेतो रतिआ सचो पलै पाइ ॥
 त्रिभबणि सो प्रभु जाणीऐ साचो साचै नाइ ॥५॥
 साधन खरी सुहावणी जिनि पिरु जाता संगि ।
 महली महलि बुलाईऐ सो पिरु राखे रंगि ॥
 सवि सुहावणि सा भलो पिरि मोहो गुरा संगि ॥६॥
 भूली भूली थलि चड़ा थलि चड़ि बूगि जाउ ।
 बन महि भूली जे फिरा बिनु गुर बूझ न पाउ ॥
 नाबहु भूली जे फिरा फिरि फिरि आबउ जाउ ॥७॥
 पुछहु जाइ पधाऊआ चले जाकर होइ ।
 राजनु जाणहि आपणा दरि घरि ठाक न होइ ॥
 नानक एको रवि रहिआ बूजा अवरु न कोइ ॥८॥६॥

(चाहें अनेक) जप, तप और संयम की साधना की जाय और तीर्थों में वास किया जाय, (अनेक प्रकार के) पुण्य, दान एवं दुभ कर्म किए जाय, (किन्तु) बिना सच्चे (परमात्मा) के उनका क्या (लाभ) है ? (मनुष्य) जैसा बोता है, वैसा ही वाटता है, बिना गुणों के जन्म नष्ट हो जाता है ॥१॥

ऐ स्त्री, (जो) गुणों की दासी है, (उसी को) सुख होता है । गुरु की शिक्षा द्वारा जो भवगुणों को त्याग कर, (परमात्मा में) समा जाता है, वही पूर्ण है ॥१॥ रहाउ ॥

बिना मूलधन के व्यापारी चारों दिशाओं में तावता फिरता है । (वह) अपने मूलधन को नहीं जानता, वस्तु तो घर के भीतर ही है । बिना सोदे के अत्यन्त दुःख होता है, झूठी (दुनिया) झूठ में ही नष्ट होती है ॥२॥

(उस व्यापारी को) ग्रहनिश नया लाभ होता है, (जो नाम करो) रत्न विचार करके परखता है । उसे वस्तु अपने घर में ही मिल जाती है (और वह) अपना कार्य पूरा करके चला जाता है । व्यापारियों के साथ व्यापार करो; (गुरु को) शिक्षा द्वारा ब्रह्म का विचार करो ॥३॥

संतो की संगति में (ब्रह्म तब) प्राप्त किया जाता है, यदि मिलानेवाला अपने में (शिष्य को) मिला ले, जिसके अंतर्गत अवार ज्यादा है (उसका) मिलाप होने पर, (फिर) वियोग नहीं होता । (जिस शिष्य का) सच्चा प्रेम होता है, वह सच्चे (परमात्मा) के सच्चे आसन पर (विराजमान) होता है ॥४॥

जिन्होंने अपने आप को पहचान लिया, उनके (शरीर रूपी) घर में, (उनके हृदय रूपी) महल में, (हरी के रहने का) सुन्दर स्थान है । (जिन्होंने) सच्चे (परमात्मा) से प्रेम किया है, उनके पल्ले में सच्चा ही पड़ता है । (जो प्रभु) सच्चा है, सच्चे नामवाला है, उसे त्रिभुवन (में व्याप्त) जानना चाहिए ॥५॥

वह स्त्री सच्ची सुन्दरी (सोभाग्यवती है) जिसने प्रियतम को अपने साथ (रहता हुआ) जान लिया है । वह स्त्री महल में बुलाई जाती है और प्रियतम के साथ आनन्दपूर्वक रमण करती है । वही सच्ची सुहागिनी है (और वही) भली है, जो (अपने) प्रियतम के गुणों के साथ मोहित हुई है ॥६॥

(मैं) भूलने-भूलते सूखी जमीन पर चढ़ी, उस सूखी जमीन पर चढ़ कर (मैं), पर्वत पर गई, (वहाँ से भी) भूतनी-भटकनी वन में भटकी, (उस प्रकार स्थल, पर्वत और वन आदि में भटकते रहने पर) बिना गुरु के ज्ञान नहीं पाया । (यदि) नाम वो भूल कर मैं भटकती फिरती हूँ, तो बार-बार आना-जाना पड़ेगा (जन्म-मरण के चक्कर में आना पड़ेगा) ॥७॥

उन पथिकों में जाकर (परमात्मा के मन्वन्त्र) में पूछो, जो (गुरु के मार्ग के) चाकर होकर चल रहे हैं । वे अपने राजा (परमात्मा) को जानते हैं, (अतएव आज्ञाकारी प्रजा होने के कारण, परमात्मा के) घर के दरवाजे पर वे रोक नहीं जाते । नानक कहते हैं कि एक (परमात्मा) ही (सर्वत्र) रमा हुआ है, (उसके अतिरिक्त) दूसरा और कोई नहीं है ॥८॥६॥

[७]

गुर ते निरमलु जाणीऐ निरमल बेह सरीरु ।

निरमलु साबो मनि बसे सो जाणै अम पीर ॥

सहजे ते सुलु अगलो ना लागै जम तोरु ॥१॥

भाई रे मैलु नाही निरमल जलि नाइ ।

निरमलु साबा एकू तू होरु मैलु भरी सभ जाइ ॥१॥ रहाउ ॥

हरि का भंदरु सोहरण कीआ करणैहारि ।

रवि ससि दीप अनूप जोति त्रिभवरिण जोति' अवार ॥

हाट पटरण गड़ कोठड़ी सचु सउवा बापार ॥२॥

गिआन अंजनु भैअंजना वेलु निरंजन भाइ ।

गुपतु प्रगटु सभ जाणीऐ जे मनु राखै ठाड ॥

ऐसा सतिगुरु जे मिले ता सहजे लए मिलाइ ॥३॥

कसि कसबटी लाईऐ परखे हितु चितु लाइ ।
 लोटे ठउर न पाइनी खरे खजाने पाइ ॥
 भ्रास भंवेसा दूरि करि हउ मलु जाइ समाइ ॥४॥
 सुख कउ भागे सभु को दुखु न भागे कोइ ।
 सुखे कउ दुखु भगना मनमुखि बूझ न होइ ॥
 सुख दुख सम करि जाणीअहि सबवि भेदि सुखु होइ ॥५॥
 बेदु पुकारै वाचीऐ साणी बहम बिभ्रासु ।
 मुनिजन सेवक साधिका नामि रते गुणतासु ॥
 सचि रते से जिरिण गए हउ सब बलिहारै जासु ॥६॥
 चहु लुगि मेलै मलु भरे जिन मुखि नामु न होइ ।
 भगतो भाइ बिहृणिआ मुहु काला पति खोइ ।
 जिनी नामु विसारिआ भवगण मुठी रोइ ॥७॥
 खोजत खोजत पाइआ डरु करि मिलै मिताइ ।
 आपु पछारो घरि वसे हउमे नृसना जाइ ।
 नानक निरमन ऊजले जो राते हरिनाइ ॥८॥७॥

गुरु से ही निर्मल (परमात्मा) जाना जाता है, (वह परमात्मा) निर्मल शरीर वाला है । (गुरु कृपा से) निर्मल सच्चा (परमात्मा) मन मे बस जाना है, वही आभ्यान्तरिक (हृदय की) पीड़ा जानता है । सहजावस्था मे अन्यन्त सुख मिलता है और यम का तोर नही लगता ॥१॥

अरे भाई, (जो नाम रूपा) निर्मल जन मे नहाता है, (उसे) मेल नहीं लगती । (हे परमात्मा) एक तू ही निर्मल और मच्चा है, और गारो जगह (जाउ) मेल से भरी है ॥१॥ रहाउ ॥

कर्ता ने हरि का मन्दिर (बडा ही) मुन्दर बनाया है । (उस विराट् मन्दिर मे) सूर्य और चन्द्रमा के दीपक की अनुपम ज्योति है; (वह अपार ज्योति) त्रिभुवन (मे व्याप्त है) । दूकानों, नगरो, गढो और कोठरियो में सच्चे सोदे का व्यापार (चल रहा) है ।

[मनुष्य के शरीर में स्थित हृदय, मण्डिक आदि दूकान आदि कहे गए है । हृदय दूकान (हाट) है, शरीर नगर (पटन) है, मस्तिक मे स्थित दशम द्वारा गढ (गड) है तथा शरीर मे स्थित विभिन्न गिराएं कोठरियां है] ॥२॥

ज्ञान का अंजन भय को नष्ट करने वाला है, (वही ज्ञान-अंजन आँखों मे लगाकर) निरंजन (परमात्मा) को भावपूर्वक देखो । यदि मन को टिका दिया जाय, तो ग्रहस्थ और दृष्य (सभी वस्तुएं) जान ली जाती है । यदि इस प्रकार का (मन निरोध करनेवाला) सद्गुरु प्राप्त हो जाय, तो वह (शिष्य को) सहजावस्था (चतुर्थ पद, निर्वाण पद) मे मिला लेता है ॥३॥

(परमात्मा साधको को) बड़े ही प्रेम और ध्यान से कसीटी पर चढ़ा कर परखता है । (जो उसकी कसीटी पर) छोटे (सिद्ध होते है), उन्हे स्थान नही मिलता, (वे फेक दिए जाते हैं), (जो) खरे (निकलते हैं), (वे उसके) खजाने मे डाल दिए जाते हैं । यदि भ्राशा और संशय को दूर कर दो, (तो) इस प्रकार (तुम्हारे सारे) मल (पाप) विलीन हो जायेंगे ॥४॥

सभी कोई सुख को ही माँगते हैं, कोई भी दुःख नहीं माँगता । (किन्तु) सुख (की आशा रखनेवाले) को महान् दुःख होता है, मनमुख को यह समझ नहीं होती । (गुरु के) शब्द को भेद कर (जो) सुख-दुःख को समान रूप से जानते हैं, उन्हें (अलौकिक) सुख होता है ॥५॥

(यदि) ब्रह्मा की बाणी वेद और व्यास के (वेदान्त सूत्र) आदि पढ़े जायें, (तो यही ज्ञात होता है) और वेद भी पुकार-पुकार कर कहते हैं (कि जो) मुनिगण, सेवक और साधक गुणों के खजाने—नाम में रत हैं, मत्स्य में रत हैं, वे ही विजयी हुए हैं; मैं उन पर सदैव बलिहारी होता हूँ ॥६॥

जिनके मुख में (परमात्मा का) नाम नहीं है, वे चारों युगों में मैले और मल से भरे हैं । (ऐसे लोगों का) मुँह काना होता है और प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है, (जो) भक्ति और प्रेम से विहीन है । जिन्होंने नाम भुला दिया है, वे अन्धगुण में नष्ट होकर रोते हैं ॥७॥

स्वोजने-स्वोजते (परमात्मा की) प्राप्ति हो गई, (जो परमात्मा में) डर कर मिलता है, (उसे वह अपने में) मिला लेता है । (जो) अपने को पदचानता है, (उसके) घर (जमीन) में (परमात्मा) बसता है, (ऐसे व्यक्ति के) अहंकार और तृष्णा की निवृत्ति हो जाती है । नानक कहते हैं जो हरि नाम में रत हैं वे निर्मल और उज्ज्वल हैं ॥८॥७॥

[८]

सुरिग मन भूले बावरे गुर की चरणी लागु ।

हरि जपि नाम धियाइ तू जमु डरपै दुख भागु ॥

दुख घणो दोहागणो किउ धिर रहै सुहागु ॥ १ ॥

भाई रे अबरु नाहो मै याउ ।

मे धनु नामु निधानु हे गुरि दीघ्रा बलि जाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गुरमति पति साबासि तिसु तिस के संगि मिलाउ ।

तिसु बिनु घड़ी न जीवऊ बिनु नावै मरि जाउ ॥

मे अंधुले नामु न बोसरे टेक टिकी घरि जाउ ॥ २ ॥

गुरू जिना का अंधुला चले नाहो ठाउ ।

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बिनु नावै किआ सुआउ ॥

आइ गइआ पहुतावणा जिउ सुँजै घरि काउ ॥ ३ ॥

बिनु नावै दुख बेहरी जिउ कलर की भीति ।

तब लगु महलु न पाईऐ जब लगु साधु न पीति ॥

सबदि नपै घर पाईऐ निरबारी पदु नीति ॥ ४ ॥

हउ गुर पूछउ आपणो गुर पुछि कार कमाउ ।

सबदि सलाहो मनि कसै हउमे दुखु जलि जाउ ॥

सहजे होइ मिलावड़ा साचे साचि मिलाउ ॥ ५ ॥

सबदि रते से निरमले तजि काम फोषु अहंकार ।

नामु सलाहति सद सदा हरि राखहि उरधारि ॥

सो किउ मनहु विसारीऐ सब औआ का आधार ॥ ६ ॥

सबदि मरे सो मरि रहै फिरि मरे न दूजो बार ।
 सबदे ही ते पाईए हरिनामे लगे पियारु ॥
 बिनु सबदे जगु भुला फिरि मरि जनमे बारो बार ॥ ७ ॥
 सभ सालाहै आप कउ बड्डु बडेरी होइ ।
 गुर बिनु आपु न चीनोए कहै गुरे किय़ा होइ ।
 नानक सबदि पड़ाणीए हउमै करै न कोइ ॥ ८ ॥ ८ ॥

अरे भूले और बावरे मन सुनो, गुरु के चरणों में लग जाओ । तू हरि का जप करा (और उन्हीं के) नाम का ध्यान करो, (तुम्हारे) इस क्रिया से) यम भयभीत हो जायेंगे (और सारे) दुःख भग जायेंगे । दुहागिनी (स्त्री) को बहुत ही दुःख होता है, (भला उसका) 'सौभाग्य' कैसे स्थिर रहेगा ? ॥१॥

अरे भाई, मेरे लिए (परमात्मा को छोड़कर) कोई अन्य स्थान नहीं है । नाम-निधान ही मेरा (वास्तविक) धन है, (उस नाम को) गुरु ने (मुझे) दे दिया है; मैं (उस गुरु पर) न्योछावर हो जाता हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु (द्वारा दी गई) बुद्धि में प्रतिष्ठा (पति) (प्राप्त होती है), ऐसे (गुरु को) धन्य है, गुरु के साथ (परमात्मा का) मिलन होता है । उसके बिना मैं एक घड़ी भी नहीं जीता हूँ; बिना नाम के मर जाता हूँ । मुझ अंधे को नाम नहीं भूलता । (यदि) उसी में टेक स्थिर रही (तो) (उसके) घर (अवश्य) जाऊंगा ॥२॥

जिसका गुरु अंधा है, (उसके) चेने को (परमात्मा के यहाँ) स्थान नहीं (प्राप्त होता) । बिना सद्गुरु के नाम को प्राप्ति नहीं होती और बिना नाम के स्वाद कैसा ? उसे आ-जाकर (उसी प्रकार) पछानना होता है, जैसे मूने घर में (जाकर) कोवे को पछानना पड़ता है ॥३॥

बिना नाम के देह में (बहुत) दुःख होता है (और वह उसी प्रकार दुःख से छीज जाती) जैसे लोने की दीवाल (ढह पड़ती है) । जब तक सच्चा (परमात्मा) चित्त में नहीं (आता), तब तक (उसके) महल की प्राप्ति नहीं होती । (गुरु के) शब्द में अनुरक्त होने से (अपने वास्तविक) घर की प्राप्ति होती है; शाश्वत निर्वाण पद (प्राप्त हो जाता है) । ॥४॥

मैं अपने गुरु में पूछता हूँ (और) गुरु से पूछ कर कर्म करता हूँ । (यदि गुरु के) शब्द द्वारा प्रणाम—स्तुति योग्य परमात्मा मन में बस जाता है, (तो) अहंकार का दुःख चला जाता है । सहजावस्था से (परमात्मा का) मिलाप हो जाता है, (इस प्रकार) सच्चा (शिष्य) सच (परमात्मा) में मिल जाता है ॥५॥

काम, क्रोध, अहंकार त्याग कर (जो गुरु के) शब्द में रत है, वे ही निर्मल हैं । (वे) सदैव ही नाम की स्तुति करते हैं (और) हरि को हृदय में धारण कर लेते हैं । जो सभी जीवों का अपार है, उसे मन से किस प्रकार भुलाया जाय ? ॥६॥

(जो गुरु के) शब्द में मरता है, वह (अहंकार आदि से) ऐसा मरता है कि उसे (फिर) दूसरी बार नहीं मरना पड़ता; (उसकी यह मृत्यु जीवन का भी जीवन है) (गुरु के) शब्द से ही (परमात्मा की) प्राप्ति होती है और हरिनाम प्यारा लगता है । बिना शब्द के यह जगत् भटकता फिर रहा है और बारंबार जन्म-मर रहा है ॥७॥

सभी भपनी-भपनी प्रशंसा करते हैं; (भ्रष्टम-दलाबा मे) बड़ी-बड़ी (बातें बनाने) है ।
(किन्तु) गुरु के बिना अपने आप को नहीं पहचाना जाता; कहने-सुनने से क्या होता है ? नानक
कहते हैं कि (यदि गुरु के) शब्द द्वारा कोई (अपने को) पहचान ले तो (वह) अहंकार नहीं
करेगा ॥८॥८॥

[६]

बिनु पिर धन सीगारीऐ जोबनु बादि लुभारु ।
ना मारो सुखि सेजड़ी बिनु पिर बादि सीगारु ॥
बूझु धरणी बोहागणी ना घरि सेज भतारु ॥ १ ॥
मन रे रामु जपहु सुखु होइ ।
बिनु गुर प्रेमु न पाईऐ सबदि मिलै रंगु होइ ॥ १ ॥ रहाज ॥
गुर सेवा सुखु पाईऐ हरि वरु सहजि सीगारु ।
सचि मारो पिर सेजड़ी गूड़ा हेतु पिभारु ॥
गुरमुखि जाणि सिज्जालीऐ गुरि भेली गुण चारु ॥ २ ॥
सचि मिलहु वर कामणी पिर मोहो रंगु लाइ ।
मनु तनु साचि विगसिआ कीमती कहगु न जाइ ॥
हरि वरु घरि सोहागणी निरमल साचै नाइ ॥ ३ ॥
मन महि मनुआ जे मरे ता पिर रावै नारि ।
इकतु तागे रलि मिलै गलि भोतीअन का हारु ॥
संत सभा सुखु ऊपजे गुरमुखि नाम अघारु ॥ ४ ॥
खिन महि उपजे खिनि खपे खिनु भावै खिनु जाइ ।
सबदु पछायो रवि रहै ना तिसु कालु संताइ ॥
साहिबु अतुलु न तोलीऐ कथनि न पाइआ जाइ ॥ ५ ॥
वापारी वरणजारिआ आए वजहु लिलाइ ।
कार कमावहि सच को लाहा मिलै रजाइ ॥
पूजो साची गुरु मिलै ना तिसु तिलु न तमाइ ॥ ६ ॥
गुरमुखि तोलि तुलाइसो सचु तराजू तोसु ।
आसा मनसा मोहणी गुरि ठाकी सचु बोसु ॥
आपि तुलाए तोलसो पूरे पूरा तोसु ॥ ७ ॥
कथने कहणि न छुटीऐ ना पड़ि पुसतक भार ।
काइआ सोच न पाईऐ बिनु हरि भगति पिभार ॥
नानक नामु न बीसरे भेले गुरु करतार ॥ ८ ॥ ६ ॥

बिना प्रियतम के स्त्री का शृंगार और यौवन व्यर्थ है, (वे) बरबाद हो जाते हैं ।
(वह) सेज पर सुख नहीं मानती; बिना प्रियतम के (उसका) शृङ्गार व्यर्थ है । दुर्हागिनी को
अत्यधिक दुःख होता है, (क्योंकि उसके) सेज का भर्ता (पति) घर में नहीं है ॥१॥

अरे मन, राम जपो, (तभी) सुख होगा। बिना गुरु के (प्रियतम का) प्रेम नहीं प्राप्त होता; (गुरु के शब्द) से ही (वह प्रेम) मिलता है, (और उसके प्राप्त होने पर) आनन्द होता है ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु की सेवा से ही सुख प्राप्त होता है; सहजावस्था के शृङ्गार से ही हरि रूपी पति (प्राप्त होता है)। प्रियतम (उसी) सच्ची (स्त्री) को सेज पर भोगता है, जिसका स्नेह और प्रेम गंभीर है। (गुरु की) शिक्षा द्वारा (वह) सयानी (चतुर) समझी जाती है; गुरु ने उसे (हरी से) मिलाया है, (तब जाकर उसे) गुणों वाला आचार (प्राप्त हुआ है) ॥२॥

हे कामिनी, सच्चे वर से मिलो; प्रियतम द्वारा मोही गई (तुम खूब) आनन्द करो। (तुम्हारा) तन और मन सत्य (परमात्मा) में प्रफुल्लित हुआ है, (उस प्रसन्नता) की कीमत नहीं कही जा सकती। (यदि) हरी (तुम्हारा) पति (हो जाय), (तो तुम) घर में सुहागिनी हो; (वह हरी) निर्मल और सच्चे नाम वाला है ॥३॥

यदि (ज्योतिमय) मन मे (मलिन) मन मर जाय (समाहित हो जाय) तो प्रियतम स्त्री के साथ रमण करता है। (जिस प्रकार) मोती ताने से (गूँथा जा कर), उसके साथ मिलकर गले का हार बन जाता है, [उसी प्रकार पति और पत्नी (परमात्मा और जीवात्मा) मिलकर एकाकार हो जाते हैं]। संतों की सभा में (अपार) मुख उत्पन्न होता है, गुरु की शिक्षा द्वारा नाम ही (उमका) आधार हो जाता है ॥४॥

(मनुष्य) क्षण में उत्पन्न होता है, क्षण में खप जाता है, क्षण में भ्रष्टा है और क्षण में चला जाता है। (यदि वह गुरु के) शब्द (नाम) को पहचान जाय और उसी में रमण करने लगे, (तो) उसे काल दुःख नहीं दे सकेगा। साहब (परमात्मा) अनुलनीय है, (उसकी) किसी वस्तु से) तुलना नहीं की जा सकती, वह कथन से नहीं पाया जा सकता है ॥५॥

व्यापारी और बनजारे (अपनी-अपनी) तनस्वाह लिला कर आ गए हैं। (यदि) सच्चे (परमात्मा) का काम (ईमानदारी और सच्चाई) से करे, (तो उन्हे उसकी) मरजी से (अवश्य ही) लाभ मिलेगा। सच्ची पूँजी मे ही गुरु प्राप्त होता है; उसमें तिल मात्र भी लालच नहीं है ॥६॥

(गुरु के) उपदेश द्वारा (शिष्य) पूरी तौल तौला जायगा; (हरी के) तराजू की तौल (बड़ी) सच्ची है। आशा और वासना (शिष्य को) मोहनेवाली हैं; (किन्तु) गुरु ने (अपनी) सच्ची बाणी से उन्हें रोक दिया है। (वह) स्वयं हो (भलीभाँति) तौलेगा, (उसकी) तौल पूरी पूरी (बहुत ही सच्ची) है।

[विशेष : तुलाइसी—गुरुबाणी मे कई स्थानों पर तुक की मात्राओं को पूरी करने के लिए किसी मात्रा को लघु अथवा दीर्घ करने की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ 'तुलाइसी' की छ' मात्राओं के स्थान पर सात मात्रा करने के लिए 'तु' को 'तु' के रूप मे लिखा गया है] ॥७॥

(अनेक प्रकार के) कथन कहने से छुटकारा (मोक्ष) नहीं मिलता, न पुस्तकों के भार के अध्ययन से ही (मुक्ति मिलती है)। बिना हार की भक्ति और प्रेम के शरीर की शुद्धि नहीं होती। (जिसके द्वारा) नाम नहीं विस्मृत होता, (उसे) गुरु, करतार (अपने में) मिला लेता है ॥८॥६॥

[१०]

सतिगुरु पूरा जे मिलै पाईऐ रतनु बीचारु ।
 मनु बीजै गुर आपरो पाईऐ सरब पिघारु ॥
 सुकति पदारसु पाईऐ अकगल भेटणहारु ॥ १ ॥
 भाई रे गुर बिनु गिझानु न होइ ।
 पूछहु कहमे नारदै बेदबिघालै कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 गिझानु चिझानु धुनि जाएणीऐ अकसु कहावै सोइ ।
 सफलझो बिरसु हरीआवला छाव घरोरी होइ ॥
 लाल जवैहर साणकी गुर भंडारै सोइ ॥ २ ॥
 गुर भंडारै पाईऐ निरमल नाम पिघारु ।
 साचो बल्लर संचोऐ पूरै करमि अपारु ॥
 सुखदाता दुख भेटणो सतिगुरु असुख संधारु ॥ ३ ॥
 भवजलु बिलसु डरावणो ना कंधी ना पारु ।
 ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना तिसु बंफु मलारु ॥
 सतिगुरु भे का बोहिया नदरी पारि उतारु ॥ ४ ॥
 इकु तिलु पिघारा बिसरै दुलु लागै सुलु जाइ ।
 जिहवा जलउ जलावणो नामु न जपे रसाइ ।
 घटु बिनसै दुलु अगलो जसु पकड़े पछुताइ ॥ ५ ॥
 मेरी-मेरी करि गए तनु धनु कलतु न साधि ।
 बिनु नावै धनु बादि है भूलो आरग धाधि ॥
 साचउ साहिबु सेबीऐ गुरमुखि अकथो काधि ॥ ६ ॥
 आवै जाइ भवाईऐ पड़े किरति कमाइ ।
 पूरबि लिखिआ किउ भेटोऐ लिखिआ लेलु इजाइ ।
 बिनु हरिनाम न छुटोऐ गुरमति मिलै मिलाइ ॥ ७ ॥
 तिसु बिनु मेरा को नही जिस का जोउ परानु ।
 हउमै ममता जलि बलउ लोभु जलउ अभिमानु ॥
 नानक सबदु बीचारोऐ पाईऐ गुणी निधानु ॥ ८ ॥ १० ॥

यदि पूर्ण सद्गुरु प्राप्त हो जाय, (तभी) विचार रूपी रतन की प्राप्ति होती है ।
 (यदि) अपने गुरु को मन दे दिया जाय, तभी सर्वप्रिय (परमात्मा) प्राप्त होता है । (सद्गुरु
 से ही उस) मुक्ति रूपी पदार्थ की प्राप्ति होती है, (जो समस्त) भवगुणों (दोषों, पापों) को
 मिटाने वाला है ॥१॥

अरे भाई, गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता । (यदि किसी को मेरे इस कथन पर विश्वास
 न हो, तो वह जाकर) किसी ब्रह्मा, नारद अथवा वेदव्यास से पूछ ले ॥१॥ रहाउ ॥

ज्ञान और ध्यान (गुरु के) शब्द (ध्वनि) से ही जाने जाते हैं, वह (गुरु) ही अकथनीय
 (परमात्मा) का कथन करता है । (वह गुरु ही) हर-भरा धनो छाया वाला, फलयुक्त वृक्ष
 उस (गुरु) के भाण्डार में (गुण रूपी) लाल, जवाहर और मणिव्य हैं ॥२॥

गुरु के भाण्डार में ही निर्मल नाम (के प्रति) प्रेम प्राप्त होता है पूर्ण भाग्य से ही सच्चा और अवार सौदा संग्रह किया जाता है । सद्गुरु सुख का देने वाला और दुःख का मेटने वाला है (वही) असुरों (काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार) का संहार करने वाला है ॥३॥

संसार रूपो जल (सागर) (अत्यंत) विषम और डरावना है; न तो (इसका) किनारा है और न आरवार है । (उस सागर को पार करने के लिए) न तो कोई छोटी नाव है और न बेटा है, न तो उसमें कोई वास (लगी) है और न मत्लाह ही है । सद्गुरु संसार-सागर का जहाज है, (वह अपनी) कृपा-दृष्टि से पार उतार देता है ॥४॥

(यदि) प्रियतम तिव मान के लिए विस्मृत होता है, तो (बहुत) ही दुःख होता है, और मुख नष्ट हो जाता है । (जो) रस-सहित नाम का जर नहीं करती, वह जलाने योग्य जीभ जल जाय । घट (शरीर) के नष्ट होने पर महान् दुःख होता है, (और जब) यम पकड़ते हैं, तो (वह) पछताता है ॥५॥

(लोग) “मेरो-मेरी” करने हुए (इस संसार से) चल दिए, (किन्तु) उनके साथ (उनका) शरीर, धन और स्त्री नहीं गई । बिना नाम के धन व्यर्थ है, (मनुष्य) माया के रास्ते में पड़कर भूला है । सच्चे साहब की सेवा करो; अकथनीय (परमात्मा) गुरु द्वारा कथन कर लिया जाता है ॥६॥

(मनुष्य इस संसार में) आता है, जाता है और भटकता रहता है, मनुष्य की जो ‘किरत’ पड़ी है, उसी के अनुसार कर्म करता है । पहले का निम्बा हुआ कैसे मेटा जा सकता है ? (परमात्मा की) मर्जी के अनुसार (मनुष्य के भाग्य) का लेख लिखा रहता है । बिना हरि-नाम के छुटकारा नहीं मिलता, (गुरु की) शिक्षा के द्वारा (शिष्य) का (परमात्मा में) मिलाप होता है ॥७॥

[विशेष : “किरत”—एक-एक करके जो कार्य किए जाते हैं, वे कर्म कहलाते हैं । उसी कर्म को बार-बार करने से, जीवन का एक स्वभाव बन जाता है, उसी को “किरत” कहते हैं ।]

जिसका (जिस हरी का) यह जीव और प्राण है, उसके बिना मेरा कोई (अन्य) नहीं है । अहंकार और ममता जल-बन जायँ, लोभ और अभिमान भी जल जायँ । नानक कहते हैं कि (यदि) (गुरु के) शब्द विचार किए जायँ, (तो) गुणों का निधान (परमात्मा) प्राप्त हो जाता है ॥८॥ १८॥

[११]

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि ।

लहरी नालि पछाड़ीऐ भी विगसै असनेहि ।

जल महि जोझ उपाइ कै बिनु जल मरणु तिनेहि ॥ १ ॥

मन रे किउ छूटहि बिनु पिअार ।

गुरुमुखि अंतरि रवि रहिआ बखसे भगति भंडार ॥ १ ॥ रहाउ ॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर ।

जिउ अधिकउ तिउ सुशु घरणो मनि तनि सांति सरीर ॥

बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाएँ अभ पोर ॥ २ ॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह ।
 सर भरि बल हरोप्रावले इक बूँद न पवई केह ।
 करम मिले सो पाईऐ किरतु पइया तिरि बेह ॥ ३ ॥
 रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल बुध होइ ।
 आबटणु आपे लखै दुष कउ खपरि न वेइ ॥
 आपे मेलि बिछु'निआ सचि बडिआई बेइ ॥ ४ ॥
 रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चकबो मूर ।
 खिनु पलु नोद न सोबई जाएँ दूरि हजूरि ॥
 मनमुखि सोभी ना पवै गुरमुखि सवा हजूरि ॥ ५ ॥
 मनमुखि गएत गणावरणो करता करे सु होइ ।
 ता की कीमति ना पवै जे लोचै सभु कोइ ॥
 गुरमति होइ त पाईऐ सचि मिलै सुख होइ ॥ ६ ॥
 सचा नेहु न तुटई जे सतिगुरु भेटे सोइ ।
 गिआन पदारथु पाईऐ त्रिभवरण सोभी होइ ॥
 निरमलु नामु न बोरै जे गुण का गाहकु होइ ॥ ७ ॥
 खेलि गए से पंखरू जो चुगवे सर तलि ।
 घड़ी कि मुहति कि चलणा खेलणु अमु कि कलि ॥
 जिसु तूं मेलहि सो मिलै जाइ सचा पिड़ु मलि ॥ ८ ॥
 बिनु गुर प्रीति न ऊपजै हउमे मेलु न जाइ ।
 सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ ॥
 गुरमुखि आपु पछाणीऐ अवर कि करे कराइ ॥ ९ ॥
 मिलिआ का किआ मेलोऐ सबदि मिले पतीआइ ।
 मनमुखि सोभी न पवै बीछुड़ि चोटा खाइ ॥
 नानक वरु घर एकु हे अवरु न दूजी जाइ ॥ १० ॥ ११ ॥

ह मन, हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) जल से कमल (करते है ।)
 वे (जल की) लहरो से धक्के खाते है, फिर भी प्रेम से विकसित होते है । उन (कमलो) का
 जीवन पानी में ही रचा गया है और पानी के बिना ही उनका मरण है ॥१॥

अरे मन, बिना प्यार के कैसे छूटोगे (मुक्त होगे) ? (वही हरी) गुरुमुखो के अन्तर्गत
 रमण कर रहा है (और उन्हें) भक्ति का भाण्डार प्रदान करता है ॥१॥ रहाउ ॥

अरे मन, हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) जल से मछली (करती है) । जैसे-
 जैसे (जल का) आधिक्य होता है, वैसे-वैसे (उस मछली के) सुख की धनीभूतता (होती है)
 (उसके) तन, मन (दोनों) में शान्ति रहती है । बिना जल के वह एक घड़ी भी नहीं जीती, पानी
 के बिना उसे (जो) आभ्यान्तरिक पीड़ा होती है, (उसे) प्रभु ही जानता है ॥२॥

अरे मन, हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) चातक बादल से (करता है ।)
 (सारे) सरोवर भरे है, स्थल हरे-भरे है, (किन्तु यदि स्वाती नक्षत्र के बादल की) एक बूँद
 नहीं मिली, तो (उनसे) क्या (लाभ) ? जो भाग्य में है, वही मिलता है; की दुई कमाई (किरत)
 के अनुसार (परमात्मा के दृक्म से) भाग्य भी बनता है ॥३॥

अरे मन, हरि से इस प्रकार प्रीति कर, जैसी (प्रीति) जल और दूध में होती है । (दूध और जल को मिलाकर) घोटने पर (जल) स्वयं खपता है, (पर) दूध को नहीं खपने देता । (हरी) बिछुड़े तृणों को स्वयं ही (अपने में) मिलाता है (और) सब द्वारा (उन्हें) बढ़ाई देता है ॥४॥

अरे मन, हरि से ऐसी प्रीति कर, जैसी (प्रीति) चकवी सूर्य से करती है । वह (एक) क्षण भी, (एक) पल भी नींद में नहीं सोती, (वह) दूरस्थ (सूर्य) को निकट ही समझती है । मनमुख को समझ नहीं प्राप्त होती, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य परमात्मा को) निकट ही (जानता है) ॥ ५ ॥

मनमुख (अपने कर्मों की) गिनती गिनता है—हिसाब लगाता है, (किन्तु वास्तव में) जो कर्ता (परमात्मा) करता है, वही होता है । जिसे सभी ढूँढ़ते हैं, उसकी कीमत नहीं पाई जाती । (यदि कोई) गुरु द्वारा शिक्षित हो, तभी (परमात्मा को) पाता है, (तभी वह) सत्य पाता है, (जिसके पाने से अपार) सुख होता है ॥ ६ ॥

यदि सद्गुरु मिल जाय (और सच्चे प्रेम की प्राप्ति हो जाय), तो सच्चा प्रेम नहीं टूटता । ज्ञान रूपी पदार्थ पा जाने पर त्रिभुवन का ज्ञान हो जाता है । यदि (परमात्मा के) गुणों का (कोई) ग्राहक हो जाय, तो (उसका) एवित्र नाम नहीं भूलता ॥ ७ ॥

वे पक्षी (अपना) खेल खेल कर चल दिए, जो तालाबों के घरातल पर अपना (चारा) चुगते थे [भावावयं यह कि वे मनुष्य इस संसार से विदा हो गए जो भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते थे] । पक्षी अथवा मुहूर्त भर में (यहाँ से प्रत्येक को) जाना है; आज अथवा कल भर का खेल है । (हे प्रभु), जिसे तू मिलाता है, वही (तुमसे) मिलता है; (वह) जाकर सच्चे मैदान में खेलने के लिए उतरता है ।

[विशेष : पिंड=सिंघी शब्द, खेल का मैदान । पिंड मलना=खेल के मैदान में खेलने के लिए उतरना] ॥ ८ ॥

बिना गुरु के (परमात्मा में) प्रीति नहीं उत्पन्न होती, (और बिना प्रीति के) अहंकार की मेल नहीं जाती । (गुरु के) शब्द द्वारा शिष्य भेदा जा कर यह विश्वास करता है कि सोऽहं तत्त्व मैं ही हूँ । (वह इस सोऽहं के वास्तविक तत्त्व को) पहचान लेता है । (यदि गुरु की) शिक्षा द्वारा (शिष्य) अपने आप को पहचान ले, (तो वह) क्या करे और क्या करावे ? (अर्थात् इस संसार में उसने सभी कुछ कर लिया और सभी कुछ करा लिया; उसके लिए अब कोई कर्तव्य करने को शेष नहीं है) ॥ ९ ॥

(जो) परमात्मा से मिल गए हैं, उन्हें (अब और) क्या मिलाया जाय ? (जो गुरु के) शब्द से मिलकर (एक हो) गए हैं, (परमात्मा) उनमें विश्वास करता है । मनमुख को ज्ञान नहीं होता, (वह परमात्मा से) बिछुड़ कर चोटे खाता है । नानक कहते हैं कि परमात्मा का महल एक ही है (उसे छोड़ कर) दूसरा कोई स्थान नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥

[१२]

मनमुखि सुले सुलाईऐ भूली ठउर न काह ।

गुर बिनु को न दिलावई अंधो आवै जाह ॥

गिआन पदारथु सोइछा ठगिआ सुठा जाह ॥ १ ॥

बाबा भाइआ भरमि भुलाई ।
 भरमि भुली डोहागली ना पिर अंक समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 भूली परं बिसंतरी भूली गृहु तजि जाइ ।
 भूली हुंगरि यलि चड़े भरमे मनु डोलाई ॥
 गुरगु बिछुंनी किउ मिले गरबि मुठी बिललाई ॥ २ ॥
 बिछुड़िआ गुरु भेलसी हरि रसि नाम पिआरि ।
 साजि सहजि सोभा घणी हरिगुण नाम अघारि ॥
 जिउ भावै तिउ रलु तूं मै तुफु बिनु कवनु भतारु ॥ ३ ॥
 अखर पड़ि पड़ि भुलोए भेली बडुतु अभिमानु ।
 तोरथ नाता किआ करे मन महि मैलु गुमानु ॥
 गुर बिनु किनि समझाईए मनु राजा सुलतानु ॥ ४ ॥
 भेम पदारथु पाईए गुरमुखि ततु बीचारु ।
 साधन आपु गवाइआ गुर कै सबदि सोगारु ॥
 घर ही सो पिरु पाइआ गुर कै हेति अपारु ॥ ५ ॥
 गुर को सेवा चाकरो मनु निरमलु सुलु होइ ।
 गुर का सबदु मनि वसिआ हउमै बिचहु खोइ ॥
 नामु पदारथु पाइआ लाभु सदा मनि होइ ॥ ६ ॥
 करमि मिले ता पाईए आपि न लइआ जाइ ।
 गुर की चरणी लगि रहु बिचहु आपु गवाइ ॥
 सचे सेती रतिआ सबो पलं पाइ ॥ ७ ॥
 भूलण अंदरि सभु को अभुलु गुरु करतारु ।
 गुरमति मनु समझाइआ लागी तिसै पिआरु ॥
 नानक साचु न बीसरै भेले सबदु अपारु ॥ ८ ॥ १२ ॥

मनमुखी (स्त्री) भुलावे में भटकती फिरती है, (उस) भटकती हुई को कोई स्थान नहीं (मिलता) बिना गुरु के उसे कोई भी (मार्ग) नहीं दिखाता; (इस प्रकार) वह भ्रंभी आती जाती रहती है । (उसने) ज्ञान-पदार्थ खो दिया है (और वह) ठगी जाकर नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अरे बाबा, माया भ्रमित करके (उसे) भुला देती है । (वह) दुहागिनी भ्रमित होकर भूली हुई प्रियतम के अंक मे नहीं समा सकती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वह) भूली हुई देश-देशान्तरों मे भटकती फिरती है; (वह अपना वास्तविक) घर छोड़कर भटकती फिरती है । (वह) भटकती हुई पर्वतों और स्थलों पर चढ़ती फिरती है, (इस प्रकार वह) मन बंचल करके भटकती रहती है । (जो) असल से ही (परमात्मा से) बिछुड़ी हुई है, (वह) किस भांति मिल सकती है ? अहंकार में फँसी हुई वह बिललाती है ॥ २ ॥

(जिनका) हरि में रस है और नाम में प्रीति है, (उन) बिछुड़ी हुई (स्त्रियों) को गुरु (परमात्मा से) मिला देगा । सत्य और, सहजावस्था द्वारा तथा हरिगुण और नाम

के आश्रय से बहुत शोभा (बढ़ती है)। जैसा तुम्हें अच्छा लगे, वैसा (तुम मुझे) रखो; तुम्हारे बिना मेरा (अन्य) पति कौन है ? ॥ ३ ॥

अक्षर पढ़-पढ़ कर (मनुष्य) भुलावे में पड़ जाता है; (साधु) वेश में तो और अधिक अभिमान है। मन में यदि मेल और गुमान (अभिमान) हैं, तो तीर्थों में स्नान करके भी (वह) क्या कर सकता है? गुरु के बिना (यह तथ्य) और कौन समझा सकता है कि “मम ही राजा और सुल्तान है।” (अर्थात् गुरु के अतिरिक्त कोई भी नहीं समझा सकता) ॥ ४ ॥

प्रेम-पदार्थ पाने पर ही (गुरु के) उपदेश द्वारा (शिष्य) तत्त्व-विचार (तत्त्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान, निर्वाणपद, चतुर्थपद, सहजावस्था, तुरीयपद अथवा मोक्षपद) प्राप्त करता है। (जो स्त्री) गुरु के शब्द द्वारा शृंगार करती है, वह अपने आगेपन को नष्ट कर देती है। गुरु के अपार प्रेम द्वारा, उसने घर में (अपने शरीर में) ही पति को पा लिया है ॥ ५ ॥

गुरु की सेवा तथा चाकरी से मन निर्मल होता है (और अपार) सुख होता है। जिसके मन में गुरु का शब्द बस जाता है, (उनका) अहंभाव नष्ट हो जाता है। नाम रूपी पदार्थ के पा जाने पर मन में सबा लाभ ही लाभ होता है ॥ ६ ॥

(यदि परमात्मा की) कृपा हो, तभी (नाम की) प्राप्ति होती है, वह अपने आप नहीं पाया जा सकता। अपने मे से आगेपन को गँवा कर गुरु के चरणों में लगे रहो। (जो) सत्य से अनुरक्त है, उनके पल्ले सत्य ही पड़ता है ॥ ७ ॥

सभी कोई भूल के अंतर्गत हैं; कर्तार रूप गुरु ही भूल न करनेवाला है। (यदि) गुरु की शिक्षा द्वारा मन को समझाया जाय, (तो) उसमें प्रेम उत्पन्न हो जाता है। नानक कहते हैं कि यदि (गुरु के) शब्द द्वारा अपार (परमात्मा) से मेल हो जाय, तो सत्य (परमात्मा) भूलता नहीं ॥ ८ ॥ १२ ॥

[१३]

तृसना माइआ मोहणो सुत बंधप घर नारि ।
धनि जोबनि जगु ठगिआ लजि लोभि अहंकारि ॥
मोह ठगउली हउ सुई सा बरतै संसारि ॥ १ ॥
मेरे प्रीतमा मै तुझ बिनु अवरु न कोइ ।
मै तुझ बिनु अवरु न भावई तूं भावहि सुखु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
नामु सालाही रंग सिउ गुर के सबवि संतोखु ।
जो बीसै सो चलसी कड़ा मोह न बेखु ॥
बाट बटाऊ आइआ नित चलदा साधु बेखु ॥ २ ॥
आखणि आखहि केतड़े गुर बिन बूझ न होइ ।
नामु बडाई जे मिलै सवि रमै पति होइ ॥
जो तुष्टु भावहि से भले खोटा खरा न कोइ ॥ ३ ॥
गुर सरणार्थ छुटोए मनमुख खोटो रासि ।

असट धातु पातिसाह की घड़ोए सबवि विगासि ॥
 आपे परखे पारखू पबै खजाने रासि ॥ ४ ॥
 तेरो कीमति ना पबै सभ डिठी ठोकि बजाइ ।
 कहणै हाथ न लभई सचि टिकै पति पाइ ॥
 गुरमति तूं सालाहरणा होरु कीमति कहणु न जाइ ॥ ५ ॥
 जितु तनि नामु न भावई तितु तनि हउमै बावु ।
 गुर बिनु गिअानु न पाईऐ बिखिआ दूजा सावु ॥
 बिनु गुरण काम न आवई माइआ फीका सावु ॥ ६ ॥
 आसा अंदरि जंमिआ आसा रस कस खाइ ।
 आसा बंधि चलाईऐ सुहे मुहि चोटा खाइ ॥
 अक्वणि बधा मारीऐ छूटै गुरमति नाइ ॥ ७ ॥
 सरबे पाई एकु तूं जिउ भावै तिउ रावु ।
 गुरमति साचा मनि वसै नामु भवो पति सावु ॥
 हउमै रोगु गवाईऐ सबवि सबै सचु भावु ॥ ८ ॥
 आकासी पातालि तूं त्रिभवणि रहिआ समाइ ।
 आपे भगती भाउ तूं आपे मिलहि मिलाइ ॥
 नानक नामु न वोसरै जिव भावै तिवै रजाइ ॥ ९ ॥ १३ ॥

पुत्र, सम्बन्धी, घर की स्त्री (के मोह के फल स्वरूप) जीव को मोहिनी माया की लृप्णा लगी हुई है। धन, जीवन, लालच, लोभ और अहंकार में ही (सारा) जगत् ठगा हुआ है। मोह की ठगमूरि जिससे मैं मर गई, वह सारे संसार में वरत रही है।

[विशेष :—ठगउलो > ठगमूरि, वह नशे वाली बूटी हैं, जिससे पथिकों को बेहोश करके ठग उनका धन लूट लेता है] ॥ १ ॥

हे मेरे प्रियतम, तुम्हारे बिना मेरा कोई और नहीं है। मुझे तुम्हारे बिना (कुछ) और अच्छा (भी) नहीं लगता; (यदि) तुम किसी को अच्छे लगते हो, (तो) (उमे) सुख (प्राप्त) होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) बड़े प्रेम में नाम की स्तुति करूँगा, गुरु के शब्द से संतोष (प्राप्त होता है ।) जो भी (वस्तु) दिखाई पड़ती है, वे चली जायँगी; (जगत् का) मोह झूठा है, (इसकी ओर) मत देखो। मार्ग में पथिक आया तो है, किन्तु देखो, वह नित्य चलता ही रहता है ॥ २ ॥

कितने ही लोग कथन करते हैं, किन्तु गुरु के बिना (सत्य) की समझ नहीं होती। यदि (किसी को) नाम की बड़ाई मिल जाती है, (तो वह) सत्य में रँग जाता है (और) प्रतिष्ठा (पाता है)। जो तुम्हें अच्छे लगते हैं, वे ही भले हैं, न कोई छोटा है न खरा है ॥ ३ ॥

गुरु की शरण से छुटकारा (मोक्ष) मिलता है; मनमुख (के पास) तो छोटी पूँजी है। (जिस प्रकार) बादशाह की आठ घातुओं को (गला बर सिक्के) गढ़े जाते हैं और (उन पर) शब्द खोदा जाता है, (उसी प्रकार परमात्मा के भी वर्ण-वर्ण के मनुष्य होते

है, उन्हें शब्द द्वारा गढ़ा जाता है और वे विकसित होकर उच्च बनते हैं) । (प्रभु) स्वयं ही पारखी है, (वह अच्छे सिक्कों को) परख कर खजाने की राशि में डाल देता है ॥

[विशेष :—अष्ट धातुएं निम्नलिखित हैं—सोना, चांदी, लोहा, ताँबा, रौंदा, सीसा, पारा, जस्ता] ॥ ४ ॥

(मैं) सब कुछ ठोक बजा कर देख लिया है, (किन्तु) तुम्हारी कीमत नहीं आँकी जा सकी । कहने से (वह) हाथ में नहीं आता, (यदि) सत्य में टिके, (तभी) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । गुरु के उपदेश द्वारा तुम प्रशंसा वि० जा सकते हो, और (साधनो) से तुम्हारी कीमत नहीं कही जा सकती ॥ ५ ॥

जिस शरीर में नाम नहीं आता, उस शरीर में अहंकार का झगड़ा है । गुरु के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता; परमात्मा के बिना अन्य स्वाद विष है [अथवा विषयो के सारे स्वाद द्वैतभाव के हैं] । बिना (परमात्मा के गुण) गान के, (सारी वस्तुएं) व्यर्थ हैं, माया का स्वाद फीका है ॥ ६ ॥

(लोग) आशा के ही अंतर्गत जन्म लेते हैं आशा ही में (विविध) रस भोगते हैं । आशा में बंध कर (वे) चलाये जाते हैं, (वे आशा ही में) ठगे जाते हैं और मुँह पर चोट खाते हैं । (इस प्रकार जो) अवयुगो में बँधा है, (वह) मारा जाता है, गुरु के उपदेश से नाम द्वारा (वह) छूटना है (मोक्ष पाता है) ॥ ७ ॥

सभी स्थानों पर एक तू ही है, जैसे तुझे अच्छा लगे, वैसे (मुझे) रख । गुरु के उपदेश द्वारा सच्चा (परमात्मा) मन में बस जाता है, नाम ही भली प्रतिष्ठा और भली संगति है । (गुरु के) शब्द द्वारा अहंभाव नष्ट कर, सत्य ही सत्य कहो ॥ ८ ॥

(हे प्रभु) तू आकाश, पाताल तथा त्रिभुवन में व्याप्त है । तू ही भक्ति है, प्रेम है, तू ही (भक्त से) मिलता है और (उसे) अपने में मिलाता है । नानक कहते हैं कि (मुझे) नाम न भूले, जिस प्रकार उसे अच्छा लगे, वैसे ही उसकी मर्जी (बर्ती जाय) ॥ ९ ॥ १३ ॥

[१४]

राम नाम मनु बेधिया अवरु कि करी वोचारु ।

सबद सुरति सुख ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु ॥

जिउ भावै तिउ राखु तूं मै हरिनासु अघारु ॥ १ ॥

मन रे साखी खसम रजाइ ।

जिन तनु मनु साजि सीगारिआ तिसु सेती लिख लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तनु बेसंतरि होमोए इक रती तोलि कटाइ ।

तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ ॥

हरिनामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ ॥ २ ॥

अरख सरीरु कटाईए सिरि करवतु धराइ ।

तनु हेमचलि गालीए भी मन ते रोमु न जाइ ॥

हरिनामै तुलि न पुजई सब ठिठी ठीकि बजाइ ॥ ३ ॥

कंचन के कोट दनु करी बनु हैवर गैवर दानु ।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु ॥
रामनामि मनु बेधिया गुरि दीया सनु दानु ॥ ४ ॥
मन हठ बुधी केतोआ केते बेद बिचार ।
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोलबुआरु ॥
सचहु ओरै सभु को उपरि सनु आचार ॥ ५ ॥
सभु को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ ।
इकनै भांडे साजिए इकु चानरु तिहु लोइ ॥
करमि मिलै सनु पाईऐ गुरि बलस न भेटै कोइ ॥ ६ ॥
साधु मिलै साधु जनै संतोखु वसै गुर भाइ ।
अकथ कथा बोबारीऐ जे सतिगुर माहि समाइ ॥
पी अंगुतु संतोखिआ दरगहि पैधा जाइ ॥ ७ ॥
घटि घटि वाजै किगुरी अनिवितु सबदि सुभाइ ।
विरले कउ सोभी पई गुरमुखि मनु समभाइ ॥
नानक नामु न बीसरै छूटै सबदु कमाइ ॥ ८ ॥ १४ ॥

(मेरे) मन मे राम नाम बिध गया है, (अब मैं) अन्य विचार क्या करूँ ? (गुरु के) शब्द की सुरति मे मुख उत्पन्न होता है; (प्रभु के प्रेम) मे अनुरक्त होना (समस्त) मुखों का सार है । तुम्हें जैसा अच्छा लगे, वंसा (मुझे) रख, मेरे तो हरिनाम ही आधार है ॥ १ ॥

अरे मन, खसम (गति, परमात्मा) की मरजी ही सच्ची है । जिस (खसम) ने तन, मन को रच कर संवारा है, उसी से लिव (अनन्य प्रेम) लगाओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि) मेरे शरीर को एक-एक रत्ती की तौल में काट कर होम किया जाय, (यदि) प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित करके तन और मन की समिधा की जाय, इसी प्रकार के यदि लाखों करोड़ों कर्म किए जायें, तो भी हरिनाम की तुलना में नहीं पुज सकते ॥ २ ॥

(चाहे) सिर पर आरा रखवा कर (मेरे) शरीर को आधा आधा कटा दिया जाय, (चाहे) शरीर को हिमाखन में गला दिया जाय, फिर भी मन से रोग (कामादिक) नहीं जाते । मैंने सब ठोक-बजा कर देख लिया है, हरिनाम की तुलना में (कोई भी साधन) नहीं पुज सकता ॥ ३ ॥

(चाहे) मैं सोने के किले का दान कर दूँ, (अथवा) बहुत से श्रेष्ठ घोड़ों और श्रेष्ठ हाथियों को दान में दूँ, (चाहे) भूमिदान अथवा बहुत सी गौबों का दान करूँ, फिर भी भीतर गर्व और गुमान (भरे रहते हैं) । मुझे गुरु ने सच्चा दान दे दिया है, (अतएव मेरा) मन राम नाम से बिध गया है ॥ ४ ॥

कितने ही मन के हठ और बुद्धि के (चमत्कार) हैं (और) कितने ही वेदों के विचार हैं । (इसी प्रकार) जीव के कितने ही बंधन हैं; पर (शिष्य को) मुक्ति का द्वार गुरु के उपदेश द्वारा (मिलता है) । सत्य की ओर तो सभी कोई हैं, किन्तु सत्य का आचार (रहनी) सबके ऊपर है ॥ ५ ॥

सभी कोई ऊँचे कहे जाते हैं, कोई भी नीचे नहीं दिखाई देता, (क्योंकि) एक (हरी) से ही सारे शरीर बने हैं और तीनों लोको में (उसी) एक का प्रकाश है । (परमात्मा की) कृपा से ही सत्य की प्राप्ति होती है; (उसकी असली—पूर्ण कृपा को कोई भेट नहीं सकता ॥ ६ ॥

(यदि) साधु को साधु मिल जाय, तो गुरु के प्रेम द्वारा (हृदय में) सतोष बस जाता है । यदि अकथनीय कथा पर (शिष्य) विचार करे, तो (वह) सद्गुरु में समाहित हो जाता है । वह अमृत पीकर, संतुष्ट होकर, परमात्मा के दरवाजे पर प्रतिष्ठा की पोशाक पहन कर जाता है ॥ ७ ॥

प्रतिदिन (गुरु के) शब्द द्वारा स्वाभाविक ही घट घट में सारंगी बज रहें हैं; किन्तु इसकी समझ बिरले को ही पड़ती है, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य अपने मन को यह तथ्य) समझ लेता है । नानक कहते हैं कि नाम को न भूल कर (गुरु के) शब्द पर आचरण करने (सासारिक बन्धनों से शिष्य) छूट जाता है ॥ ८ ॥ १४ ॥

[१५]

चिते बिसहि धडलहर बने बंक दुआर ।

करि मन खुसी उसारिआ वृजै हेति पिआरि ॥

अंदर खाली प्रेम बिनु दहि डेरी तनु छार ॥ १ ॥

भाई रे तनु धनु साथि न होइ ।

रामनाम धनु निरमलो गुरु दाति करे प्रभु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

रामनाम धनु निरमलो जे बेवं बेवरणहार ।

आगे पूछ न होवई जिसु बेली गुरु करतारु ॥

आपि छडाए छुटिऐ आपे बखसणहार ॥ २ ॥

मनमुखु जाए आगे धोआ पूत संजोगु ।

नारी बेलि बिगालीअहि नाले हरखु सु सोगु ॥

गुरुमुखि सबदि रंगाबले अहिनिजि हरिरसु भोगु ॥ ३ ॥

चितु चले वितु जावरणो साकत डोलि डोलाइ ।

बाहरि दूँडि विगुचीऐ घर महि बसतु सुथाइ ॥

मनमुखि हउमै करि सुखी गुरुमुखि पले पाइ ॥ ४ ॥

साकत निरगुणिआरिआ आपणा मूलु पछारु ।

रकतु बिंदु का इह तनो अगनी पाति पिरारु ।

पवरौ कै बसि देहुरी मसतकि सतु नीसारु ॥ ५ ॥

बहुता जीवरु मंगीऐ मुआन न लोडै कोइ ।

सुखजीवरु तिसु आखीऐ जिसु गुरुमुखि बसिआ सोइ ।

नाम विहरै किआ गली जिसु हरिगुर दरसु न होइ ॥ ६ ॥

जिउ सुपनै निसि भुसीऐ जबलगि निद्रा होइ ।

इउ सरपनि कै बसि जोअइ। अंतरि हउमै दोइ ॥

गुरमति होइ बीचारीऐ सुपना इह जगु लोइ ॥ ७ ॥

अगनि मरं जलु पाईऐ जिउ बारिक दुधे साह ।

बिनु जल कमल सु ना धोऐ बिनु जल मोनु मराह ॥

नानक गुरुमुखि हरिरसि मिलै जीवा हरिगुण गाह ॥ ८ ॥ १५ ॥

स्वेत धूलहर (महल) चित्रित दिखाई पड़ते हैं, (उनमें) सुन्दर दरवाजे भी (लगे हैं)। मन की खुशी के अनुसार (वे महल) बनाए गए हैं; (किन्तु यह सब) द्वैत भाव के ही प्रति स्नेह और प्यार है। (यदि) भीतर से खाली है, प्रेम विहीन है, तो यह शरीर ढह-ढह कर खाक (हो जाता है) ॥ १ ॥

अरे भाई, तन और धन (मनुष्य की मृत्यु के पश्चात्) साथ नहीं होंगे। रामनाम निर्मल धन है, गुरु उस प्रभु को दान में देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

रामनाम निर्मल धन है, जिसे देनेवाला ही देता है। जिसका साथी करतार रूप गुरु है, भविष्य में (परलोक में) उसमें प्रश्न नहीं होगा। (यदि परमात्मा) छुड़ाना है, (तभी) छूटा जाना है, वह स्वयं ही देनेवाला है।

पुत्री और पुत्र तो सयोग में मिले हैं, (किन्तु) मनुष्य (उन्हें) अपना जानता है। (वह) स्त्री को देखकर विकर्मित (आनन्दित) होता है, किन्तु हर्ष के साथ शोक भी है। गुरुमुख शब्द में रंग जाना है और अहंनिश हरि-रस भोगता है ॥ ३ ॥

चित्त (धन) के जानेमें चित्त भी उल्टा पलटता है, शक्ति का उपानक (सदैव) डोलता रहता है। बाहर ढुंढ कर (वह) नष्ट होता है, (वास्तव में) वस्तु (परमात्मा) घर ही में (शरीर में ही) सुन्दर स्थान (चित्त) में है। मनुष्य अहंकार करने के कारण लूट लिया जाता है, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) के पन्ने (परमात्मा) पड़ता है ॥ ४ ॥

ये गुणविहीन, शक्ति के उपानक (शक्त), अपने (वास्तविक) मूल को पहचानो। (माता के) रक्त तथा (पिता के) वीर्य में (निर्मित) इस शरीर को (अन्त) में अग्नि के पास ही प्रयाण करना है। प्रत्येक के मरने में यह सच्चा निशान पड़ा है कि उसका शरीर पवन (श्वास) के वशीभूत है ॥ ५ ॥

(सभी लोगों द्वारा) लम्बा जीवन माँगा जाता है, कोई भी मरना नहीं चाहता। सुखी जीवन तो उसी का कहा जाता है, जिसके (हृदय में) गुरु की शिक्षा द्वारा, वह (हरी) बस गया है। जिसे हरी रूपी गुरु का दर्शन नहीं होता और नाम-विहीन है, (उसके जीवन की) क्या गणना की जाय ? ॥ ६ ॥

जैसे राजा में, जब तक निद्रा रहती है, स्वप्न (देखने) में (हम) भटकते रहते हैं, वैसे ही (माया रूपी) सर्पिली के वशीभूत जीव, हृदय में अहंता और द्रव्यभाव (के कारण) जगत् में भटकता रहता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) यह विचार करे कि जगत् भी स्वप्न है; (इसी प्रकार जगत् को देखे) ॥ ७ ॥

(यदि) जल ढाल दिया जाय, तो अग्नि (उसी प्रकार) शान्त हो जाती है, जैसे बालक माँ के दूध से (संतुष्ट हो जाता है)। बिना जल के कमल नहीं रह सकता (और) बिना जल के मछली मर जाती है। नानक कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) हरि-रस पाता है, और हरिगुण गाकर जीवित रहता है ॥ ८ ॥ १५ ॥

[१६]

भूंगरु देखि डरावणो पेईभइ उरीभासु ।
 ऊचउ परबनु गालड़ो ना पउड़ी तितु तासु ॥
 गुरमुखि अंतरि जाणिआ गुरि मेली तरीभासु ॥ १ ॥
 भाई रे भवजल बिलमु डराउ ।
 पूरा सतिगुरु रसि मिलै गुरु तारे हरिनाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 चला चला जे करी जाणा चलएहारु ॥
 जो आइआ सो चलसी भ्रमरु सु गुरु करतारु ॥
 भो सचा सालाहणा सचै धानि पिआरु ॥ २ ॥
 दर घर महला सोहणे पके कोट हजार ।
 हसती घोड़े पाखरे लसकर लख अपार ॥
 किसही नालि न चलिआ खपि क्षपि सुए असार ॥ ३ ॥
 सुइना रूपा सचीऐ मालु जालु जंजालु ।
 सभ जग महि दोही केरीऐ बिनु नावै सिर कालु ॥
 पिडु पड़े जीउ खेलती बढकैली किआ हालु ॥ ४ ॥
 पुता देखि बिगसीऐ नारी सेज भतार ।
 चोआ चंदनु लाईऐ कापड़ु रूपु सोपारु ॥
 खेहू खेहू रलाईऐ छोटि चले घर बारु ॥ ५ ॥
 महर मलूक कहाईऐ राजा राउ कि खानु ।
 चउपरी राउ सदाईऐ जलि बलीऐ भ्रमिमानु ॥
 मनमुखि नामु विसारिआ जिउ डबि दधा कानु ॥ ६ ॥
 हउमै करि करि जाइसी जो आइआ जग माहि ।
 सभु जगु काजल कोठड़ी तनु मनु बेह सुआहि ॥
 गुरि राखे से निरमले सबदि निचारी भाहि ॥ ७ ॥
 नालक तरीऐ सचि नामि सिरि साहा पातिसाहु ।
 मे हरिनामु न बीसरै हरिनामु रतनु बेसाहु ।
 मनमुख भउजलि पचि सुए गुरमुखि तरे अयाहु ॥ ८ ॥ १६ ॥

पीहर (नहर) में डरावना पर्वत देखकर, मैं डर गई । पर्वत बहुत ऊँचा और दुर्गम है, वहाँ उसकी (उस पर्वत पर चढ़ने के लिए) सीढ़ी भी नहीं है । गुरु की शिक्षा से (परमात्मा को मैंने) अपने भीतर जाना, (इस प्रकार) गुरु ने (प्रभु से) मिला दिया और मैं तर गई ॥ १ ॥

अरे भाई, संसार-सागर (बहुत ही) विषम और डरावना है । यदि पूर्ण सद्गुरु मिल जाय, तो वह (शिष्य को) हरिनाम (प्रदान कर) (इस संसार सागर से) पार कर देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हालाँकि चलाचली (की तैयारी) कर रही हूँ, यह भी जानती हूँ, कि यहाँ से (मुझे) जाना है; जो आया है, वह चला जायगा, गुरु और कर्तार ही अमर हैं, तथापि मैं सब्बे स्वान में (सत्संग में) (प्यार पाकर) सच्चे (परमात्मा) की प्रशंसा कर रही हूँ ॥ २ ॥

सुन्दर घर और महल, हजारों पक्के किले, हाथों, घोड़े, काठियाँ, अमरूप लाख फौजें—कोई वस्तुएं (किसी के) साथ नहीं जातीं; (इस प्रकार) असार (मनुष्य) खप-खप कर मर गए ॥ ३ ॥

चाहे सोना, चाँदी, संपत्ति (तथा अन्य) प्रपंचों का समूह (जानु जंजालु; जालु; = समूह; जंजाल=भंभट; प्रपंच) संग्रह किया जाय, साग्रे जगत् में दुहाई फिरती रहे (बहुष्यन की प्रसिद्धि होती रहे), किन्तु बिना नाम के काल सिर पर है । शरीरपात होने पर जीव अपना खेल समाप्त कर देगा, (उस समय) दुष्कर्मियों का क्या हाल होगा ? ॥ ४ ॥

(मनुष्य) अपने पुत्रों को देखकर प्रसन्न होता है और पति सेज पर (अपनी) नारी को देखकर (प्रसन्न होता है) । (वह) चोप्रा-चंदन (इत्यादि मुग्धनिधन वस्तुओं को) लगाता है, (साथ ही अपने) कपड़ों और रूप को सजाता है । (किन्तु अन्त में शरीर को) मिट्टी-मिट्टी से मिल जाती है और (वह) घरबार छोड़कर चल देता है ॥ ५ ॥

(चाहे मनुष्य) सरदार कहा जाय, (चाहे) बादशाह, (चाहे) राजा, राय या खान, (चाहे वह) चौधरी या राय कहा जाय, (किन्तु अन्त में) अभिमान जल-बल जाता है । नाम भुला कर मनमुग्न की (ठीक वही अवस्था होती है), जैसे दावाझि मे दग्ध मरपत की ॥ ६ ॥

जो भी (व्यक्ति) इस संसार में आया है, वह अहंकार ही करके जायगा । सारा जगत् काजल की कोठरी है, जिसमें तन मन और (सारा जीवन) राख (की तरह कानि हो गए हैं) । जिनकी गुरु रक्षा करता है, वे ही निर्मल (रहते हैं), (गुरु के) शब्द ने (संसार की) अग्नि का निवारण कर दिया ॥ ७ ॥

नानक कहते हैं सत्य नाम—जो नाम—बादशाहों का भी श्रेष्ठ बादशाह है—से (संसार) तरा जाता है । मुझे तो हरिनाम नहीं भूलता, (क्योंकि मैंने उस) रत्न को खरीद लिया है । मनमुख तो इस ससार-सागर में पच पच कर मर जाते हैं, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा (सिष्य) इस अपार (सागर) को तर जाते हैं ॥ ८ ॥ १६ ॥

महला १, घर २

[१७]

मुकामु करि धरि बैसणा नित चलै की धोल ।

मुकामु ता पर जाणोए जा रहै निहचलु लोक ॥ १ ॥

दुनिआ कैसि मुकामे ।

करि सिद्ध करणी खरसु बाधहु लागि रहु नामे ॥ १ रहाउ ॥

जोगी त आसणु करि बहै मुला बहै मुकामि ।

पंडित बलारहि पोषीआ सिध बहहि बेबसयानि ॥ २ ॥

सुर सिध गए गंधरब मुनिजन सेख पीर सलार ।

दरि कूच कूचा करि गए अबरै मि चलणहार ॥ ३ ॥

सुलतान खान मलूक उमरे गए करि करि कूड ।
 घड़ी मुहति कि चलै बिल समझूँ तूँ नि पट्टु ॥ ४ ॥
 सबदाह माहि बखानीए बिरला त बूझै कोइ ।
 नानक बखानी वेनती जलि बलि महीबलि सोइ ॥ ५ ॥
 अलाहु अलहु अगम कादर करणहारु करीमु ।
 सभी दुनी आवण आवणी मुकामु एकु रहीमु ॥ ६ ॥
 मुकाम तिसनो आखीए जिसु सिसि न होवो लेवु ।
 असमानु धरती चलनी मुकामु ओही एकु ॥ ७ ॥
 दिन रवि चलै निसि ससि चलै तारिका लख पलोइ ।
 मुकामु ओही एकु है नानका सचु बुगोइ ॥ ८ ॥ १७ ॥

(हम ऐसे) स्वान मे घर बना कर बैठे हैं, (जहा मे) निरन्तर चलने का घोखा बना रहता है । किन्तु (वास्तविक) मुकाम तो उसी को समझना चाहिए, जो इस लोक मे निश्चल रहे ॥ ६ ॥

(किन्तु) यह संसार किस प्रकार (ठहरने का) मुकाम हो सकता है ? शुभ कर्मों को करो (और) बही (आगे के लिये) खर्च बाँधो, (निरन्तर) नाम मे लगे रहो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

योगी तो आसन करके बैठता है; मुस्ला अपने मुकाम मे बैठता है । पंडित (अपनी) पोथियो की व्याख्या करता है और मिट्ट लोग देवस्थानो मे बैठते हैं ॥ २ ॥

देवता, सिद्ध, (शिव के) गण, गंधर्व, मुनिगण, शेख, पीर तथा सरदार आदि कूच दर कूच कर गए (बारी-बारी मे चले गए) तथा अन्य लोग भी चलने वाले हैं ॥ ३ ॥

मुल्तान, खान, मलूक, अमीर लोग (भी) कूच करके चल दिए । ऐ दिल, यह समझ लो कि घड़ी (२४ मिनट) अथवा मुहूर्त (दो घड़ी, ४८ मिनट) (भर मे ही) (तुम्हे भी) चलना है, तुम्हे भी वही पट्टचना है ॥ ४ ॥

(यह बात) गुरु-बाणी (सबदाह) में बनाई जा रही है, कोई बिरला ही इसे समझता है । नानक विनय कर रहे हैं कि वही (परमात्मा) जन, स्थल, तथा पृथ्वी और आकाश के मध्य मे (व्याप्त है) ॥ ५ ॥

अल्लाह, अलफ्य, अगम्य, कादिर (शक्तिमान), करनेवाला, और करीम (कृपालु) है । सारी दुनिया आने-जाने वाली है, एक रहीम (कृपालु) ही निश्चल है ॥ ६ ॥

कायम रहने वाला तो वही कहा जाता है, जिसके सिर पर (किसी अन्य) का लेख नहीं होता (जो सर्वथा स्वतंत्र है) । आकाश और धरती तो सभी चला जायेंगी । (नष्ट हो जायेंगी); (अतएव वास्तविक) मुकाम तो एक वही (परमात्मा ही) है ॥ ७ ॥

दिन और सूर्य चले जायेंगे, रात्रि और चन्द्रमा (भी) चले जायेंगे, लाखों तारागण भी लोप हो जायेंगे । बस, रहनेवाला तो एक वही है; नानक कहते हैं कि (वह) सत्य कहा जाता है ॥ ८ ॥ १७ ॥

१औं सतिगुर प्रसादि ॥ महला १, धरु ३ [१८]

जोगी भंदरि जोगीआ तूं भोगी भंदरि भोगीआ ।
 तेरा भंतु न पाइआ सुरगि मखि पइआलि जोउ ॥ १ ॥
 हउ बारी हउ बारणै कुरवासु तेरे नाव नो ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 तुमु संसारु उपाइआ । सिरे सिरि धंधे लाइआ ॥
 वेखहि कीता आपणा करि कुदरति पासा दालि जोउ ॥ २ ॥
 परगटि पाहारै जापवा । सभु नावै नो परतापवा ॥
 सतिगुर बाझु न पाइओ सभ मोही माइआ जालि जोउ ॥ ३ ॥
 सतिगुर कउ बलि आईऐ । जितु मिलिऐ परम गति पाईऐ ।
 सुरनरि सुनिजन लोखे सो सतिगुर बोझा बुझाइ जोउ ॥ ४ ॥
 सतसंगति कौसो जाणीऐ । जिधे एको नामु बखानीऐ ॥
 एको नामु हुकमु है नानक सतिगुर बोझा बुझाइ जोउ ॥ ५ ॥
 इहु जगतु भरमि भुलाइआ । आपहु तुमु लुझाइआ ॥
 परितापु लगा दोहागणी भाग जिना के नाहि जोउ ॥ ६ ॥
 दोहागणी किआ नीसाणीआ । खसमहु घुषीआ फिरहि निमलीआ ॥
 मेले बेसु तिना कामणी दुखी रैणि बिहाइ जोउ ॥ ७ ॥
 सोहागणी किआ करमु कमाइआ । पूरबि लिखिआ फलु पाइआ
 नवरि करे कै आपणी आपे लए मिलाइ जोउ ॥ ८ ॥
 हुकमु जिना नो मनाइआ । तिन भंतरि सबदु वसाइआ ॥
 सहीआ से सोहागणी जिन सह नालि पिआरु जोउ ॥ ९ ॥
 जिना भाणे का रसु आइआ । तिन बिचउ भरमु चुकाइआ ॥
 नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ जो सभसै लए मिलाइ जोउ ॥ १० ॥
 सतिगुर मिलिऐ फलु पाइआ । जिनि बिचहु ग्रहकरगु चुकाइआ ॥
 दुरमत का दुलु कटिआ भागु मसतकि बैठा आइ जोउ ॥ ११ ॥
 भंमंतु तेरी बाणीआ । तेरिआ भगता रिदे समाणीआ ।
 तुलु सेवा भंदरि रखिऐ आपणी नवरि करै निसतारि जोउ ॥ १२ ॥
 सतिगुरु मिलिआ जाणीऐ । जितु मिलिऐ नामु बखानीऐ ॥
 सतिगुर बाझु न पाइओ सभ थकी करम कमाइ जोउ ॥ १३ ॥
 हउ सतिगुर बिटउ घुमाइआ । जिनि भ्रमि भुला मारगि पाइआ ॥
 नवरि करे जे आपणी आपे लए रलाइ जोउ ॥ १४ ॥
 तूं सभना माहि समाइआ । तिनि करतै आपु लुकाइआ ॥
 नानक गुरुमुखि परगटु होइआ जा कउ जोति धरी करतारि जोउ ॥ १५ ॥
 आपे खसमि निबाजिआ । जोउ पिडु बे साजिआ ॥
 आपणे सेवक की पैज रखीआ दुइ करि मसतकि धारि जोउ ॥ १६ ॥

सभि संजम रहे सिघ्राएपा । मेरा प्रभु सभु किछु जाणवा ।
 प्रगट प्रतापु बरताइआ सभु लोहू करै जैकार जोउ ॥ १७ ॥
 मेरे गुण भवगन न बीचारीआ । प्रभि अपणा बिरदु समारिआ ।
 कंठ लाइ कै रखिओनु लगै न तली वाउ जोउ ॥ १८ ॥
 मे मन तनि प्रभू धियाइआ । जोइ ईछिअइआ फतु पाइआ ।
 साह पातिसाह सिरि असमु तूँ जपि नानक जोवै नाउ जोउ ॥ १९ ॥
 तुघु आपे आपु उपाइआ । दूजा खेतु करि दिखलाइआ ॥
 सभु सचो सचु वरतवा जिसु भावै तिसै बुझाइ जोउ ॥ २० ॥
 गुर परसावी पाइआ । तिथे माइआ मोहु चुकाइआ ॥
 किरपा करि कै आपणी आपे लए समाइ जोउ ॥ २१ ॥
 गोपी नै गोआलीआ । तुघु आपे गोइ उठालीआ ॥
 हुकमी भांडे साजिआ तूँ आपे भंनि सवारि जोउ ॥ २२ ॥
 जिन सतिगुर सिउ चितु लाइआ ; तिनी दूजा भाउ चुकाइआ ॥
 निरमल जोति तिन प्राणीआ ओइ चले जनमि सवारि जोउ ॥ २३ ॥
 तेरीआ सदा सदा चंगिआईआ । मैं राति दिहै बडिआईआ ॥
 अणमंगीआ वानु देवणा कहु नानक सचु समालि जोउ ॥ २४ ॥ १८ ॥

(हे प्रभु,) तुम योगियो मे योगी हो (और) भोगियो मे भोगी । तुम्हारा अंत नहीं पाया जा सकता; स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पातानलोक—(सभी जगह) तुम (विराजमान हो) ॥ १ ॥

मैं तुम पर बलिहारी हूँ, मैं तुम पर बलिहारी हूँ, मैं तुम्हारे नाम पर न्योछावर हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तुमने संसार उत्पन्न किया है और प्रत्येक जीव को धंधे मे लगाया है । तुम अपने किए हुए को (स्वयं ही) देखते हो, तुम कुदरत का पाना ढाल कर (स्वयं ही खेल रहे हो) ॥ २ ॥

(सृष्टि के) प्रसार मे तुम्हीं प्रकट हो रहे हो (और तुम्हीं प्रत्यक्ष) दीख रहे हो । सभी लोग (तुम्हारे) नाम को चाहते हैं, (किन्तु) सद्गुरु के बिना (वह) नहीं पाया जाता; (संसार के) सभी (प्राणी) माया के जाल मे मोहे पड़े हैं ॥ ३ ॥

सद्गुरु के ऊपर बलिदान हो जाया जाय जिसके मिलने से परम गति की प्राप्ति होती है । देवता, मनुष्य, मुनिगण (जिस वस्तु की) इच्छा करते हैं, सद्गुरु ने (मुझे उसका) बोध करा दिया है ॥ ४ ॥

सत्संगति को किस प्रकार जाना जाय ? जिस स्थल पर एक नाम की व्याख्या हो, (वही सत्संगति है) । नानक कहते हैं कि एक नाम (का जपना ही) हुक्म है, (इसका रहस्य) सद्गुरु ने (मुझे भलीभाँति) बता दिया है ॥ ५ ॥

यह जगत् भ्रम में भूल गया है । 'अपनेपन' (और) 'तिरेपन' मे नष्ट हो गया है । (इस प्रकार) दुहागिनी (स्त्री) को परिताप लगा है, ऐ जी, (परमात्मा) उनके भाग्य में तुम नहीं हो ॥ ॥

दुहागिनियों के क्या चिह्न (निशान) है ? पति से विलग होकर, वे मान-बिहीन होकर (इधर-उधर) भटकती फिरती हैं । ऐ जी, (प्रभु), उन स्त्रियों के वेश मैंने होते हैं, (इससे) उनकी रात दुःख-भरी बीतती है ॥ ७ ॥

सोहागिनियों ने क्या कर्म किए हैं, (जिससे वे तुमसे मिलती हैं) ? (तुम द्वारा) पूर्व का लिखा हुआ फल (उन्हें) प्राप्त हुआ है । ऐ जी, (प्रभु, तुमने) उनके ऊपर कृपा करके अपने में मिला लिया है ॥ ८ ॥

(हे प्रभु) जिन्हे हुक्म मनवाये हो, उनके अंतर्गत (तुम गुरु का) शब्द बसा दिये हो । ऐ जी, (प्रभु) वे ही सहेलियाँ सुहागिनी हैं, जिनका पति के साथ प्यार है ॥ ९ ॥

(हे परमात्मा) जिन्हे (तुम्हारी) आज्ञा का रस मिल गया है, उनके अंतःकरण से भ्रम दूर हो जाता है । नानक बहते हैं, ऐ जी (प्रभु) सद्गुरु उसे समझना चाहिए, जो सभी को मिला लेता है ॥ १० ॥

सद्गुरु के मिलने से (साधको को उनके पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का) फल प्राप्त हो गया है, (जिन्होंने) भीतर से ग्रहकार समाप्त कर दिया है । ऐ जी, (प्रभु) उनकी दुर्मति का दुःख कट गया है, उनके मस्तक में भाग्य आकर बैठ गया है ॥ ११ ॥

तुम्हारी वागियाँ अमृत हैं । (वे) तेरे भक्त के हृदय में समा गयी हैं । ऐ जी (परमात्मा) मुख देनेवाली मेवा को हृदय में रखने में (तुम) अपनी कृपा करते हो और उद्धार कर देते हो ॥ १२ ॥

सद्गुरु के मिलने पर ही, (परम तत्व) जाना जाता है, जिस (सद्गुरु) के मिलने पर ही, नाम की प्रशंसा होती है । ऐ जी, (प्रभु), सारी (दुनिया) कर्म करते करते थक गई है, (किन्तु) सद्गुरु के बिना (परमात्मा) नहीं प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥

मैं सद्गुरु के ऊपर न्यौछावर हूँ, जिनने (मुझे) भ्रम में भटकते हुए को मार्ग में लगा दिया । हे प्रभु, यदि तुम अपनी कृपा करो, तो अपने में मिला लेते हो ॥ १४ ॥

(ऐ प्रभु) तू सभी में समाया है (व्याप्त है) । पर उस कर्त्ता ने अपने आप को छिपा लिया है । नानक कहते हैं, कि ऐ जी, वह (छिपा हुआ कर्त्ता) गुरु को शिक्षा द्वारा प्रकट हुआ है, (उस गुरु द्वारा)—जिस गुरु ने कर्त्तार ने अपनी ज्योति स्थापित कर दी है ॥ १५ ॥

खसम (पति, परमात्मा) ने स्वयं ही अपने आपको बड़ाई प्रदान की है । उसीने जीव और शरीर देकर (सबका) निर्माण किया है । ऐ जी (प्रभु), वह दोनों हाथ उसके मस्तक पर रख कर अपने सेवक की पैज (प्रतिज्ञा, मान, प्रतिष्ठा) रखता है ॥ १६ ॥

सारे संयम और चतुराइयाँ समाप्त हो गई हैं । मेरा प्रभु सब कुछ जानता है । ऐ जी, वह अपना प्रताप प्रकट रूप में बरत रहा है; सारे लोक (उसकी) जय जयकार करते हैं ॥ १७ ॥

(प्रभु ने) मेरे गुणो-श्रवणों पर विचार नहीं किया है । प्रभु ने अपने विरद (यश) को रख लिया है । ऐ जी, उन्होंने मुझे (अपने) कंठ से लगाकर रखा है, मुझे तत्ती बायु नहीं लगती ॥ १८ ॥

मैंने तन-मन से प्रभु का ध्यान किया है और मनोबांछित फल को पा लिया है । ऐ जी, (प्रभु) तुम बाहो-बादशाही के सिर के भी स्वामी (खसमु, पति) हो; नानक तो नाम-जप कर ही जी रहा है ॥ १९ ॥

तुमने अपने आप को उत्पन्न किया है । (तुम्हीं ने) द्वैतभाव वाला बेल भी दिखलाया है । ऐ जी, सभी (प्राणियों में) सच हो सच बरत रहा है; जिसे वह चाहता है, उसे वह (इस सत्य को) समझा देता है ॥२०॥

गुरु की कृपा से (परमात्मा की) प्राप्ति हुई; वहाँ माया और मोह समाप्त कर दिए गए । ऐ जी, (परमात्मा ने) अपनी कृपा करके (मुझे) अपने में मिला लिया ॥२१॥

(हे प्रभु) तुम्हीं गोपी हो, (तुम्हीं) नदी (यमुना) हो, (और तुम्हीं) गोपालक (कृष्ण) हो । सारी पृथ्वी की जिम्मेदारी तुम्हारे ही ऊपर है । ऐ जी (प्रभु), (तुम्हारे) हुक्म से शरीर साजे जाते हैं, (निर्मित होते हैं); तुम उन्हें नष्ट भी कर देते हो (और नष्ट करके फिर) सँवार देते हो ॥२२॥

जिन्होंने (अपना) चित्त सद्गुरु से लगा दिया है, उन्होंने अपने द्वैतभाव को नष्ट कर दिया है । ऐ जी, (प्रभु) उन प्राणियों में निमल ज्योति (स्थित) है, वे लोग अपना जन्म सँवार कर जाते हैं ॥२३॥

(ऐ प्रभु,) तुम सदैव ही भलाइयाँ (करते रहते हो); मैं रात-दिन (तुम्हारे) बड़ाइयाँ (करता रहता हूँ) ऐ जी, (प्रभु) (तुम सदैव ही) बिना मणि ही दान देने रहते हो । नानक कहते हैं कि सत्य को सदैव स्मरण रखो ॥२४॥१८॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सिरि रागु, महुला १, घर १ ॥

[१]

पहरे

पहिले पहरे रैणि कै बरगजारिआ मित्रा हुकमि पइआ गरभासि ।

उरख तपु अंतरि करे बरगजारिआ मित्रा लसम सेती अरदासि ॥

लसम सेती अरदासि बखारौ उरख धियानि लिव लागी ।

नामरजावु धाइआ कलि भोतरि बाहुड़ि जासी नामा ॥

जैसी कलम बुझी है मसतकि तैसी जीअड़े पासि ।

कहु नानक प्राणी पहिले पहरे हुकमि पइआ गरभासि ॥१॥

दुजै पहरे रैणि कै बरगजारिआ मित्रा विसरि गइआ धियानु ।

हयो हयि नचाईऐ बरगजारिआ मित्रा जिउ जसुवा धरि कानु ॥

हयो हयि नचाईऐ प्राणी मात कहै सुतु भेरा ।

जेति अचेत मूढ़ मन भेरे अंति नही कहु तेरा ॥

जिनि रखि रखिआ तिसहि न जाएँ मन भोतरि धरि मित्रानु ।

कहु नानक प्राणी दुजै पहरे विसरि गइआ धियानु ॥२॥

तीजे पहरे रैणि कै बरगजारिआ मित्रा धन जोचन सिउ चितु ।

हरि का नामु न जेतही बरगजारिआ मित्रा बंधा छुटहि जितु ॥

हरि का नाम न छेतै प्राणी बिकलु भइया संगि माइया ।
 धन सिउ रता ओबनि मता ग्रहिता जनसु गवाइया ॥
 धरम सेतो बापाक न कीतो करसु न कीतो मिनु ।
 कहु नानक तोजे पहरै प्राणी धन जोबन सिउ बिनु ॥३॥
 चउये पहरै रैसि कै बणजारिआ मित्रा लाबी आइया सेतु ।
 जा जमि पकड़ि चलाइया बणजारिआ मित्रा कितै न मिलिआ सेतु ॥
 सेतु सेतु हरि कितै न मिलिओ जा जमि पकड़ि चलाइया ।
 भूठा खदनु होआ दोआले खिन महि भइया पराइया ॥
 साई बसतु परापति होई जिसु सिउ लाइया हेतु ।
 कहु नानक प्राणी चउये पहरै लाबी सुणिआ सेतु ॥४॥१॥

विशेष : इस बाणी में मनुष्य को 'बणजारा' कह के संबोधित किया गया है । बणजारा अपनी रात किसी परदेश में व्यतीत करता है । अपने सौदे की रक्षा के लिए वह रात भर जागरण करता रहता है । रात्रि के चार पहर होते हैं । मनुष्य के जीवन को रात्रि कहा गया है, और रात्रि के चार प्रहर जीवन की चार अवस्थाएँ—गर्भावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था आदि हैं ।

अर्थ : हे बणजारे मित्र, रात्रि के पहले पहर में (परमात्मा) के हुक्म से (मनुष्य) गर्भाशय में पड़ जाता है । (वह गर्भाशय के) भीतर ऊर्ध्व होकर तप करता है और स्वामी (स्वामी) से (गर्भ से बाहर निकलने के लिए) प्रार्थना करता है । (वह) स्वामी (स्वामी) प्रार्थना करता है और उल्टा होकर ध्यान में लिव लगाये रहता है । वह मर्यादाहीन (नम्र) (इस) कलियुग में आया है और फिर नम्र ही जायगा । उसके मस्तक पर जैसी परमात्म कलम चली है, वैसा ही (भाग्य) उस जीव को प्राप्त होगा । नानक कहते हैं कि रात्रि पहर में परमात्मा के हुक्म से प्राणी गर्भाशय में पड़ गया है ॥१॥

हे बणजारे (सौदागर) मित्र, रात्रि के दूसरे पहर (अर्थात् बाल्यावस्था) गर्भ वाला) ध्यान विस्मृत हो गया । हे बणजारे मित्र, (वह बालक) हाथों हाथ इस प्रचाया जाता है, जैसे यशोदा के घर में कान्हू (नचाये जाते थे) । वह बालक हाथों हाथ रा जाता है, (प्यार-वश एक व्यक्ति के हाथों से दूसरे के हाथों में लिया जाता है) । माता है, " मेरा पुत्र है । " (किन्तु) ऐ विवेकहीन और मूढ़ मन, (यह) समझ लो, कि भ्रन्त में तू भी नहीं होगा । जिसने (सारी) रचना रच रखी है, उसे तুম नहीं जानते हो; अतएव तू ज्ञान धारण करके (उस निर्माता को जानने का प्रयत्न करो) ।

नानक कहते हैं कि रात्रि के दूसरे पहर में प्राणी ध्यान करना भूलता है ॥२॥

हे बणजारे मित्र, रात्रि के तीसरे पहर में (उस मनुष्य का) धन और जीवन से लग जाता है । हे बणजारे मित्र, वह परमात्मा के नाम को नहीं चेतता, उसे बंधन-युक्त प्राणी छूट जाते हैं । वह प्राणी, परमात्मा का नाम नहीं चेतता है, माया के ल विलुप्त हो गया है । (वह) धन से अनुरक्त है, जीवन में मस्त है, (इस प्रकार उसने) जन्म ० व्यर्थ ही गुंवा दिया । हे मित्र, (उस मनुष्य ने) न तो धर्म का व्यापार किया और न (झू) कर्मों को ही किया । नानक कहते हैं कि रात्रि के तीसरे पहर में प्राणी ने धन और जीवन से ही अपना चित्त लगा

दिया है ॥३॥

(है) बनजारे मित्र, रात्रि के चौथे पहर में खेत काटनेवाला (यम) खेत में था पहुँचता है (घोर खेत काट लेता है) । बनजारे मित्र, जब यम पकड़ कर (इस ससार से) बल देता है, तो कोई भी (मस्तिष्क) परिवर्तन (भेद) करने वाला नहीं मिलता (अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार जीवित था, उसी प्रकार मर भी जाता है) । (इस प्रकार) जब यम पकड़ कर (यहाँ से) चला देता है, तो कोई भी चित्त परिवर्तन करने वाला नहीं मिलता । उसके आस-पाम झूठा रुदन होता है, किन्तु वह तो क्षणमात्र में पराया हो जाता है । (अतः अंत में उसे) उसी वस्तु की प्राप्ति होती है जिससे प्रेम करता है । नानक कह रहे हैं कि (रात्रि के) चौथे पहर में खेत काटनेवाला आकर प्राणी का खेत काट कर चल देता है ॥४॥१॥

[२]

पहिले पहरै रैणि कै बणजारिआ मित्रा बालक बुधि अचेतु ।
खोरु पोए खेलाईऐ बणजारिआ मित्रा मात पिता सुत हेतु ॥
मात पिता सुत नेहू घनेरा साइआ मोहु सबाई ।
संजोगी आइआ किरतु कमाइआ करणी कार कमाई ॥
रामनाम बिनु मुकति न होई बूझी वृजै हेति ।
कहु नानक प्राणी पहलै पहरै छूटहिगा हरि चेति ॥१॥
दूजै पहरै रैणि कै बणजारिआ मित्रा भरि जोबनि मैमति ॥
अहिनिसि काम बिआपिआ बणजारिआ मित्रा अंशुले नामु न चिति ।
रामनाम घट अंतरि नाही होरि जाएँ रस कस मोठे ।
गिआनु धिआनु गुण संजमु नाही जनमि मरहुगे भूठे ॥
तीरथ बरत सुचि संजमु नाही करमु घरमु नही पूजा ।
नानक भाइ भगति निसतारा दुबिधा बिआपै दूजा ॥२॥
तीजे पहरै रैणि कै बणजारिआ मित्रा सरि हंस उलखे आइ ।
जोबनु घटै जरुआ जिएँ बणजारिआ मित्रा आँव घटे दिनु जाइ ॥
अंति कालि पछुतासी अंशुले जा जमि पकड़ि चलाईआ ।
समु किछु अयुना करि करि राखिआ खिन महि भइआ पराइआ ॥
बुधि बिसरजो गई सिआरणप करि अवगण पछुताइ ।
कहु नानक प्राणी तीजे पहरै प्रभु चेतहु लिव लाइ ॥३॥
चौ पहरै रैणि कै बणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खोरु ॥
अं अंशु न दोसई बणजारिआ मित्रा कंनो सुरो न वैण ॥
अं अंशु जीम रसु नाही रहे पराकउ तारणा ।
गुणअंतरि नाही किउ सुख पावे मनमुख आवणजारणा ॥
कहुनकि कुड़ि भजे बिनसे आइ चले किआ मारु ।
कहु नानक प्राणी बजये पहरै गुरमुखि सबदि पछारु ॥४॥

झोड़कु झाड़झा तिन साहिष्ठा बलजारिआ मित्रा जक जरबाणा कनि ।
इक रती गुण न समाहिआ बलजारिआ मित्रा अवगण खड़सनि बनि ॥
गुण संजमि जावै चोट न छावै ना तिसु जंमसु मरणा ।
कालुं जालु जसु जोहि न साकै भाइ भगति भै तरणा ॥
पति सेती जावै सहजि समावै सगले दूख मिटावै ।
कहु नानक प्राणी गुरमुखि छूटै साखे ते पति पावै ॥५॥२॥

हे बनजारे मित्र, रात्रि के पहले पहर में बानक बुद्धि में अचेत (बिबेहीन) रहता है । (वह) दूध पीता है और खेलाया जाता है, हे बनजारे मित्र, माता-पिता (अपने) पुत्र से स्नेह करते हैं । माता-पिता का (अपने) पुत्र के लिए बड़ा ही स्नेह होता है और सभी को माया मोह (की प्रबलता होती है) । संयोगवशात्, (वह इस संसार में) प्राया, पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार (किरत) जो लेना था, वह ले लिया (और अब अपनी करनी के अनुसार) कार्य कर रहा है । रामनाम के बिना मुक्ति नहीं हो सकती; (वह) द्वैतभाव के प्रेम के कारण डूब जाता है । नानक कहते हैं कि पहले पहर में हरि स्मरण करने से प्राणी (भव-बंधनों) से छूट जायगा ॥१॥

हे बनजारे मित्र, रात्रि के दूसरे पहर में (मनुष्य) भरी जवानी में मदमत्त रहता है । हे बनजारे मित्र, (वह) अनिष्ट काम में व्याप्त रहता है, (वह) अथा नाम में चित्त नहीं (लगाता) । उसके घट के अंगन रामनाम नहीं (रहता) । (वह अन्य सांसारिक) रसादिकों को मीठा समझता है । जिनमें ज्ञान, ध्यान, गुण और संयम नहीं है, (वे) जन्म कर झूठे ही मर जायेंगे । तीर्थ, व्रत, पुत्रि, सयम, कर्म, धर्म और पूजा आदि से (मुक्ति नहीं मिलती) । नानक कहते हैं कि (परमात्मा के) प्रेम और भक्ति में (भवसागर से) निस्तार होता है, द्वैत भाव स तो द्वैत ही व्याप्त होता है, (अर्थात् उपर्युक्त द्वैतभाव वाले कर्मों में संसार ही पत्थे पड़ता है ।) ॥२॥

हे बनजारे मित्र, रात्रि के तीसरे पहर में सिंग रूमी सरोवर में स्वेत बाल रूपी हंस आ उतरे, यौवन घटता जाता है और वृद्धावस्था (यौवन को) जोतती जाती है; हे बनजारे मित्र, (इस प्रकार) आयु घटती जाती है और दिन भी बीतने जाते हैं । ऐ अंधे, अंतकाल में जब यमराज पकड़ कर (यहां) चला देगा, (तब) पछतायेगा । जिस को (तुम) अपनाकर के रखे हो, वे क्षण मात्र में पराये हो जाते हैं । (तुमने) सारी बुद्धि त्याग दी, (तुम्हारी सारी) चतुरता समाप्त हो गई, अबगुण करके (तुम) पछताओगे । नानक कहते हैं कि हे प्राणी तीसरे पहर में लिव लगा कर परमात्मा का स्मरण करो ॥३॥

हे बनजारे मित्र, रात्रि के चौथे पहर में (मनुष्य) वृद्ध हो जाता है, (उसका) शरीर क्षीण हो जाता है । हे बनजारे मित्र, (वह) अंधी आँखों से (कुछ भी) नहीं देखता (और) कान से बचन भी नहीं सुनता । (वह) आँख से अन्धा हो जाता है, जोभ से रसास्वादन नहीं (कर सकता), (उसके सारे) पराक्रम और बल समाप्त हो जाते हैं । (उसके) हृदय में गुण भी नहीं हैं; (भला वह) कैसे मुख पा सक्ता है ? (इस प्रकार उस) मनमुख का आवागमन (बना रहता है) । तृण पक गया है, (वह) कड़क कर टूट कर नष्ट हो जाता है (भाव यह कि आयु पूरी हो जाने से मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाता है) । (ऐसे) आनेजाने वाले शरीर

का क्या मान (भर्हंकार) है ? नानक कहते हैं कि हे प्राणी, (इस) चौथे पहर में गुरु के उपदेश द्वारा शब्द को पहचानो ॥४॥

ऐ बनजारे मित्र, उनकी साँसों का अन्त आ पहुँचा है, बलवती वृद्धावस्था (उनके) कंधे पर (सवार हो चुकी है) । उनमें एक रस्ती भी गुण नहीं टिके हैं; हे बनजारे मित्र, (वे अपने) अवगुणों को बाँध कर ही जार्यंगे । (जो) गुणों के संयम (के साथ) जाता है, उस पर चोट नहीं पड़ती और उसका जन्म-मरण भी नहीं होता । यम अपने काल-जाल से उसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते, (उसे तो) प्रेमा भक्ति में भय (के समुद्र) को तरना है । (वह परमात्मा के दरवाजे पर) प्रतिष्ठा से जाता है, सहजावस्था (निर्वाण पद, मोक्ष, तुरीय पद,) में समा जाता है, और (अपने) सारे दुःखों को मिटा देता है । नानक कहते हैं (कि वह) गुरु की शिक्षा द्वारा (भवबन्धन से) छूट जाता है और सत्य (परमात्मा) में प्रतिष्ठा पाता है ॥५॥२॥

१ओं सतिगुरि प्रसादि ॥ सिरा राग की वार, महला १, सलोका नालि ॥

सलोकु दाती साहिब संदीप्रा किआ जलै तिसु नालि ।
इक जागंवे न लहंनि, इकना सुतिआ देइ उठालि ॥ १ ॥
सिबकु सबूरी सादिका सबरु तोसा मलाइका ।
बीदार पूरे पाइता थाउ नाहो खाइका ॥ २ ॥

सलोक :—सारे दान साहब ने दिए हैं, उसके साथ क्या (जोर) चल सकता है ? कुछ तो जागने हुए भी नहीं पाने हैं और कुछ सोने हुए को (दाता) उठा कर दे देता है ॥ १ ॥

विश्वासियों के पास विश्वास और मंत्र (संतोष) है, और देवता (के स्वभाव वाले मनुष्य) के पास संतोष (सत्र) का संबल (तोपा=संबल, पाथेय—मार्ग का खर्च) है, (भ्रतएव वे लोग) पूर्ण (परमेश्वर) को प्राप्त कर लेने हैं, (किन्तु) केवल गप्प मारने वाले को स्थान (भी) नहीं मिलता ॥ २ ॥

पडड़ी : सभ आपे तुघु उपाइ कै आपि कारे लाई ।
तूँ आपे बेलि बिगसवा आपणी बडिआई ॥
हरि तुधु बाहरि किछु नाही तूँ सचा साई ।
तूँ आपे आपि बरतवा सभनी हो थाई ।
हरि तिसै धिआवहु संत जनहु जो सए छडाई ॥ १ ॥

पडड़ी :—(हे प्रभु) तुम आप ही सारी (सृष्टि) रचकर आप ही (उसे) काम-धंधा में भी लगा दिए हो । तुम अपनी यह महत्ता (बड़ाई) देख कर आप ही प्रसन्न हो रहे हो । (हे प्रभु) तुम सच्चे स्वामी हो और तुमसे बाहर कोई भी वस्तु नहीं है; तुम अपने आप सारे ही स्थानों में बरत रहे हो । हे संत जनों, (तुम लोग) उस हरी का ध्यान करो, जो (सारे बिकारों) से छुड़ा लेता है ॥ १ ॥

सलोक ककड़ जाती ककड़, नाउ । सभना जीआ इका छाउ ॥
 प्रापहु जे को भला कहाए । नानक तापरु जापै जा पति लेखे पाए ॥ ३ ॥
 कुदरति करि के बसिआ सोइ । वखतु बीचारे सु बंदा होइ ॥
 कुदरति है कीमति नहीं पाइ । जा कीमति पाइ त कहो न जाइ ॥
 सरे सरीअति करहि बीचारु । बिनु बूझे कैसे पावहि पारु ॥
 सिबकु करि सिजदा मनु करि मखसूडु ।
 जिहि धिरि बेला तिह धिरि मउजूद ॥ ४ ॥
 गली असो चंगीआ आचारो गुरीआह ।
 मनहु कुसुधा कालीआ बाहरि चिटवीआह ॥
 रीसा करिह तिनाड़ीआ जो सेबहि दरु छड़ीआह ।
 नालि असमै रतीआ माएहि सुखि रलीआह ॥
 होई ताणि नितानीआ रहहि निमानणीआह ।
 नानक जनमु सकारया जे तिन के संगि मिलह ॥ ५ ॥

सलोक :—जाति (का अहंकार) व्यर्थ है और नाम (ब्रह्मण का अहंकार भी) व्यर्थ है । (वास्तव मे) सारे जीवो मे एक ही प्रतिबिम्ब (छाया) है, अर्थात् सारे घटो मे एक ही परमात्मा विराजमान है । कोई (व्यक्ति यदि अपनी जाति अथवा नाम के बल पर अपने को) अच्छा कहलाता है, (तो वह अच्छा नहीं बन जाता) । हे नानक, (जीव) भला तभी समझा जाता है, जब (परमात्मा) के लेखे मे प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥ ३ ॥

विशेष :—निम्नलिखित सलोक एक शरीअत मानने वाले मुसलमान को ममझाने के लिए कहा गया है, अतएव इसमे अरबी फारसी के शब्दों के प्रयोग की अधिकता है ।

अर्थ :—कुदरत (माया, शक्ति) की रचना करके, (प्रभु) स्वयं ही हममें बस रहा है । अतएव जो मनुष्य (मानवीय जन्म) के समय को विचारता है (तात्पर्य यह कि जो यह सोचता है कि इस ससार मे मनुष्य-योनि किमति प्राप्त हुई है), वह (उस प्रभु का) बंदा (सेवक) बन जाता है । प्रभु (अपनी निर्मित) कुदरत मे ब्राह्म है, उसका मूल्य आका नहीं जा सकता । यदि कोई कोमल पा भी जाय, तो उसका कथन नहीं किया जा सकता ।

शरीअत मानने वाले, निरी शरीअ आदि (भाव यह कि बाह्य धार्मिक रीति-रिवाजो) का ही विचार करते हैं । किन्तु बिना (आत्म स्वरूप के) ममके, (वे इस ससार-सागर को) कैसे पार पा सकते हैं ? (हे भाई), परमात्मा मे विश्राम रखने को ही सिजदा बनाओ [सिजदा = परमात्मा के आगे झुकना] । (अपने) मन को (परमात्मा मे जोड़ने को ही) लक्ष्य बनाओ । (उपर्युक्त साधनों के युक्त होने पर) जिसके पास देवी, उसी के पास परमात्मा मौजूद दिखाई देता है ॥ ४ ॥

विशेष :—कहते हैं कि निम्नलिखित 'सलोक' गुरु नानक देव जी ने कामरूप की रानी तूरशाह के प्रति कहा था । कामरूप का जादू-टोना प्रसिद्ध है । तूरशाह इस कला मे बड़ी दक्ष थी । उसी को विरक्त करने के लिए गुरु नानक देव ने निम्नलिखित 'सलोक' का उच्चारण किया ।

अर्थ :—हम बातों में तो (बहुत) प्रच्छी हैं, किन्तु आचरण में (बहुत ही) खराब; मन से तो अपवित्र और काली हैं, (किन्तु) बाहर से (खूब) साफ-सुथरी हैं । (फिर भी) हम प्रतिस्पर्द्धा उनको कर रही है, जो (परमात्मा) के दरवाजे पर खड़ी होकर (सावधानों से उसकी) सेवा कर रही हैं, पति के प्रेम में अनुरक्त है और आनन्द में रंजरनियाँ मना रही हैं, जो बल के रहने हुए भी, (अपने को) बचतीन समझ रही हैं (और साथ ही जो) मानबिहीन (होकर) रह रही हैं ॥ ५ ॥

पउड़ी : तूँ आपे जलु मोना है आपे आपे ही आपि जालु ।
 तूँ आपे जालु बताइदा आपे बिचि सेवालु ।
 तूँ आपे कमलु अलिपतु है सै हथा बिचि गुलालु ।
 तूँ आपे मुक्ति कराइदा इक निमख घड़ी करि लिमालु ॥
 हरि तुषहु बाहरि किछु नहीं गुरसबदी बेलि निहालु ॥ २ ॥

पउड़ी :—(हे प्रभु,) तू आप ही (मछली का जीवन-रूप) जल है और आप ही (जल में रहनेवाली) मछली है और आप ही जान है, तू आप ही जान बिछाता है (और) आप ही (जल में) शवाल (सिवार) है, तू आप ही सौ हाथों गहरे जल में गुनाल रंग वाला (बहुत ही गुन्दर) निलस कमन है । (हे हरो) जो (प्राणी) एक निमिष, एक घड़ी (तिरा) ध्यान घरे, (उषे) तू आप ही (उस संसार-जाल में) मुक्त कर्ता है । हे हरो तुझमें परे और कुछ नहीं है, मद्गुरु के शब्द द्वारा (तुझे प्रत्येक स्थान में) देखा जाता है ॥ २ ॥

सलोक कुबुधि डूमली कुदइसा कसाइल्लि पर निवा घट बूहरो मुठी ओधि चंडालि ।
 कारी कढ़ी किम्रा योऐ जां चारे बैठीसा नालि ॥
 सबु संजसु करणो कारां नाबलु नाउ जपेही ।
 नानक अगै ऊतम सेई जि पापा पंदि न बेही ॥ ६ ॥
 किम्रा हंसु किम्रा बगुला जा कउ नदरि करेइ ।
 जो तिसु भावै नानका कागहु हंसु करेइ ॥ ७ ॥

सलोक :—शरीर में स्थित कुबुद्धि डोमिनी है, निर्दयता कसाइनी है, परनिन्दा मेहतरानी और क्रोध चाण्डालिनी है—(इन चारों ने जीव की शान्ति और आनन्द को) उग लिया है । यदि ये चारों (हृदय में) एक साथ बैठी हों, तो (बाहरी चौके की गुद्धि के लिए), लकीर खींचने से क्या लाभ ? हे नानक, (जो मनुष्य) सत्य, सयम और पुनः कर्मों को (चौका शुद्ध करने के लिए) लकीर (समझने हों), नाम-जप को (तीर्थ) स्नान मानते हो, (जो श्रीरों को भी) पापवाली शिक्षा नहीं देते, वे ही (मनुष्य आगे, परमात्मा के दरबार में) उत्तम (गिने जाते हैं) ॥ ६ ॥

जिस पर (प्रभु) कृपा-दृष्टि करे, तो क्या हंस है और क्या बगुला है ? (अर्थात् वह चाहे तो बगुले को भी हंस बना देता है) । यदि प्रभु चाहे तो (वह बाहरी दृष्टि के प्रच्छेदी करने वाले को नहीं, बल्कि अंदर से भी गंदे आचरणवाले) कौबे को भी हंस बना देता है ॥ ७ ॥

पउड़ी : कीता लोड़ीऐ कंसु तु हरि पहि आखीऐ ।
 कारतु बेइ सवारि सतिगुर सतु साखीऐ ॥
 संता संगि निधानु भ्रमंतु चाखीऐ ।
 भै भंजन मिहरवान दास की राखीऐ ।
 नानक हरिगुण गाइ अलखु प्रभु साखीऐ ॥ ३ ॥

पउड़ी :—(यदि) किसी काम को कराने की इच्छा है, तो उसकी (पूर्णता के लिए मनुष्य को) हरि से प्रार्थना करनी चाहिए । (इस प्रकार) सद्गुरु की सच्ची शिक्षा द्वारा (प्रभु) कार्य सँवार देता है और संतो की संगति में (नाम) धर्म के निधान का (रस भी) चखने को मिलता है । (भक्त को सदैव इस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए —) हे भय-भंजन, कृपालु (हरे) दास की (लज्जा) रख ली । हे नानक, (इस विधि से) हरि का गुणगान करके अलख परमात्मा का दर्शन कर लिया जाता है ॥ ३ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु माझ महला, १, घर १

असटपदीआं

[१]

सबदि रंगाए हकमि सबाए । सची दरगह महलि कुलाए ।
सचे दीन बइयाल मेरे साहिबा सचे मनु पतीभावणिया ॥ १ ॥
हउ बारी जीउ बारी सबदि सुहावणिया ।
भ्रमंत नामु सदा सुखदाता गुरमती भंनि वसावणिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥
ना को मेरा हउ किसु केरा । साचा ठाकुर त्रिभवण मेरा ॥
हउमै करि करि जाई घखेरी करि भवगण पछोतावणिया ॥ २ ॥
हकमु पछाणै सु हरिगुण बख्खाणै । गुर के सबदि नामि नीसारे ॥
सभना का दरि लेखा सचै छूटसि नाम सुहावणिया ॥ ३ ॥
मनसुलु भूला ठउर न पाए । जम दरि बधा चोटा खाए ॥
बिनु नावै को संगि न साथी मुकते नामु घिघ्रावणिया ॥ ४ ॥
साकनु कूड़े सवु न भावै । दुबिधा बाधा भावै जावै ॥
लिखिया लेखु न मेटै कोई गुरमुखि मुकति करावणिया ॥ ५ ॥
पेईअइ पिरु जातो नाही । भूठि बिछुं नी रोवै घाही ॥
भवगण सुठी महलि न पावे भवगण गुणि बखसावणिया ॥ ६ ॥
पेईअइ जनि जाता पिघारा । गुरमुखि ब्रूभै तनु बीचारा ॥
भावगु जाणा ठाकि रहाए सचै नामि समावणिया ॥ ७ ॥
गुरमुखि ब्रूभै अकयु कहावै । सचे ठाकुर साची भावै ॥
नानक सचु कहै बेनती सचु मिलै गुण गावणिया ॥ ८ ॥ १ ॥

(वह हरी) अपने ह्रस्व में शब्द द्वारा सब को रंगता है । वह (उन्हे अपने) सच्चे दरबार तथा महल में बुलाता है । हे मेरे सच्चे साहब, दीन दयाल, (तुम्ही) सत्य में (मेरा) मन विश्वास कर रहा है ॥ १ ॥

हे जो, (प्रभु) मैं (गुरु के) सुन्दर शब्द पर न्योछावर हूँ, न्योछावर हूँ । (तेरा) अमृत-नाम शाश्वत आनन्द-प्रदाता है ; (गुरु की) शिक्षा द्वारा (तू इसे) मेरे मन में बसा दे रहे हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

न तो मेरा कोई है और न मैं किसी का हूँ । मेरा सच्चा स्वामी (ठाकुर) विभुवन (मे व्याप्त है ।) ग्रहकार करके बहुत से लोग (इस संसार में) चल देते हैं, अवगुण करके अंत में (वे) पछताते हैं ॥ २ ॥

(जो व्यक्ति) ह्रस्व पहचानता है, वह परमात्मा के गुणों की प्रशंसा करता है । गुरु के शब्द द्वारा वह नाम को प्रकट करता है । सभी लोगो का सच्चे दरबार में लेखा (हिसाब) होगा, छूटेगा वही जो नाम द्वारा मुहावना बनाया गया है ॥ ३ ॥

मनमुख भटकता रहता है, उसे (हरी के यहाँ) स्थान नहीं मिलता, यम के दरवाजे पर (वह) बोधा जा कर चाँटे खाता है । (वास्तव में) बिना नाम के कोई संगी-साथी नहीं (होता), जो नाम का ध्यान करने है, वे मुक्त हैं ॥ ४ ॥

भूटे शक्ति (शक्ति अथवा माया के उपासक) को सत्य नहीं अच्छा लगता । द्वैत भाव में बंधा हुआ वह आता-जाता (जन्मता-मरता) रहता है । जो लिखा हुआ भाग्य है, उसे कोई भेट नहीं सकता, गुरु की शिक्षा द्वारा (वह) मुक्त कराया जाता है ॥ ५ ॥

पीहर—नैहर (इस लोक) में प्रियतम (उससे) नहीं जाना गया, (वह) भूठ (मायिक) प्रपंच द्वारा, (प्रियतम से) बिछुड़ी है, (अतएव) दाह मार-मार कर रोती है । अवगुणों द्वारा ठगी हुई, (वह) अपने (वास्तविक) महल को नहीं पाती, गुणों द्वारा अवगुण क्षमा किए जाते हैं ॥ ६ ॥

जिस (स्त्री) द्वारा प्रियतम नैहर में जान लिया जाता है, (वह) गुरु की शिक्षा द्वारा (सत्य को) समझती है और तत्त्व का विचार करती है । उसका आवागमन समाप्त हो जाता है और वह सच्चे नाम में समा जाती है ॥ ७ ॥

गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) अकथनीय (परमात्मा) को समझता है (और अन्य व्यक्तियों से भाँ उसी* तत्त्व को) कहलवाता है । सच्चे व्यक्ति को सच्चा ठाकुर (परमात्मा) अच्छा लगता है । नानक एक सत्य विनती कहता है कि जो सत्य परमात्मा से मिलता है, वह (उसी का) गुणगान करता है ॥ ८ ॥ १ ॥

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥

वार माझ की तथा सलोक, महला १

मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीभा की धुनी गावणी ॥

सलोक

गुरु बासा गुरु हिवै घरु दोषकु तिह लोइ ॥

अमर पवारधु नानका मनि मानिए सुखु होइ ॥ १ ॥

पहिले पिझारि लगा परत दुधि । दूजे माइ बाप की सुधि ॥
 तीजे भया भाभी बेब । चउथे पिझारि उपनी लेड ॥
 पंजवे खारण वीक्षण की धातु । छिवै कामु न गुछै जाति ॥
 सतवै संजि कीघ्रा घर वासु । अठवै क्रीषु होबा तनु नःसु ॥
 नावै धउले उमे साह । इसवै दधा होबा सुभाह ॥
 गए सिगीत पुकारो धाह । उडिआ हंसु दसाए राह ॥
 आइआ गइआ सुदआ नाउ । पिछे पतलि मदिहु काव ॥
 नानक मनमुखि अघु पिझारु । बाभु गुरु डूबा संसारु ॥ २ ॥
 दस बालतरणि दोस रवरणि तीसा का सुंवर कहावै ।
 चालीसी पूरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोदेपा आवै ।
 सतरि का मतिहीरगु असीहां का बिउहार न पावै ।
 नवै का सिंहजासरी भूलि न जाऐ अषबलु ॥
 ढंढोलिसु दूडिसु डिटु में नानक अंगु धूए का धवलहरु ॥ ३ ॥

विशेष :—अकबर के दरबार में मुरीद खाँ और चन्द्रहड़ा दो सरदार हुए हैं। पहले की जाति थी 'मलिक' और दूसरे की 'सोही'। दोनों की आपस में चलती थी। एक बार अकबर बादशाह ने मुरीद खाँ को काबुल जीतने को भेजा। मुरीद खाँ ने वही को तो जीत लिया, किन्तु राज्य-श्रवण करने में उसे देर लग गई। चन्द्रहड़ा ने अकबर से चुगली खाई कि मुरीद खाँ काबुल का स्वयं स्वामी बन बैठा है। अतः मलिक के विरुद्ध चन्द्रहड़ा की अध्यक्षता में सेना भेजी गई। दोनों ही पारस्परिक लड़ाई में मारे गए। भाटों ने इस लड़ाई की 'वार' लिखी, जो पंजाब आदि प्रान्तों में प्रचलित हुई। गुरु अर्जुन देव ने उपर्युक्त शीर्षक देकर यह निर्देश किया कि गुरु नानक देव जी की इस माझ की वार को उसी राग में गाना चाहिए, जिस राग में 'मुरीद खाँ' और 'चन्द्रहड़ा' वाली 'वार' गाई जाती है। उस वार के गाने का उदाहरण निम्नलिखित है—

“काबुल बिच मुरीद खाँ फडिआ बड जोर”

सलोक्त अर्थ :—सद्गुरु (नाम के दान का) दाता है, गुरु ही हिम (बर्फ) का घर है (अर्थात् परम शान्ति का भाण्डार है)। वही तीनों लोकों का (प्रकाश करने वाला) दीपक है। हे नानक, (नाम रूपी) अमर पदार्थ (गुरु से ही प्राप्त होता है), (जिसका) मन गुरु से मान जाय, उसे (महान्) सुख होता है ॥ १ ॥

[**विशेष :**—निम्नलिखित 'सलोक्त' में गुरु नानक देव जी ने मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को दस भागों में विभाजित किया है। उसके किए हुए सारे प्रयत्नों का चित्र इस प्रकार बनता है]—

पहली अवस्था में (जीव) प्रेम से (माँ के) स्तन के दूध में उलझा रहता है; दूसरी अवस्था में (यानी जब कुछ बड़ा हो जाता है) उसे माँ-बाप की समझ आने लगती है; तीसरी अवस्था में (उसे) भाई, भाभी और बहन (की पहचान आ जाती है); चौथी अवस्था में खेल में प्रीति उत्पन्न होती है; पाँचवीं अवस्था में खाने-पीने की लालसा उत्पन्न होती है; छठी अवस्था में काम (जाग्रत होता है, जिसमें वह) जाति-कुजाति भी नहीं देखता; सातवीं अवस्था

में (जीव अनेक पदार्थों को) संग्रह करके (अपने) घर का वास बनाता है; आठवीं अवस्था में (कामनाओं की पूर्ति न होने पर) उसमें क्रोध (उत्पन्न होता है), जो शरीर का नाश करता है; (आधु के) नवें भाग में उसके बाल सफेद हो जाते हैं और लम्बी ससि आने लगती है; दसवी अवस्था में पहुँच कर वह जल कर खाक हो जाता है ।

संगी-साथी (जो इमसान तक जाते हैं) डाढ़ मार कर रोने लगते हैं, (किन्तु जीवात्मा) शरीर से निकल कर (आधु के) मार्ग पूछता है । (जीव जगत् में) आया और चला गया, (उसका) नाम भी समाप्त हो गया, (उसके देहान्त के पश्चात्) (आढ़ के) पत्तल में, (आढ़ान्न खाने के लिए) पीछे से कीबे बुलाए जाते हैं ।

हे नानक, मन के पीछे चलने वाले मनुष्य का (जगत् के साथ) अंधा प्यार होता है, गुरु (की शरण में आए) बिना संसार (इस अंधे प्यार में) डूबा रहता है ॥ २ ॥

जीव दस (वर्ष तक की अवस्था भर) बाल्यावस्था में रहता है, बीस वर्ष (तक पहुँचते-पहुँचते) (स्त्री के साथ) रमण वाली अवस्था में आ जाता है, तीस वर्ष का होकर सुन्दर (युवक) कहलाता है, बालीस वर्ष तक पूर्ण (जवान) होता है, पचास वर्ष तक होते-होते पैर (जवानी से) खिसकने लगते हैं, साठ वर्ष में बुढ़ापा आ जाता है, सत्तर वर्ष में (मनुष्य) मतिहीन हो जाता है और अस्सी वर्ष का होने पर व्यवहार करने योग्य नहीं रह जाता । नव्वे वर्ष की अवस्था में वह सेज पर आसन ले लेता है, न तो वह मेज में हिन सकता है और कमजोरों के कारण (न अपने को सभाल ही सकता है) ।

हे नानक, मैंने दूँढ़ा है, खाजा है और देखा है कि जगत् भुगं का महल (धवलगृह) है, (इसमें रच मात्र भी स्थायित्व नहीं है) ॥ ३ ॥

पउड़ी तू करता पुरखु अगंसु है आपि ससटि उपाती ।

रंग परंग उपारजना बहु बहु बिधि भाती ॥

तू जाणहि जिनि उपाईऐ सभु खेलु तुभाती ।

इक आवहि इकि जाहि उठि बिनु नाबै मरि जाती ॥

गुरमुखि रंगि चतुलिआ रंगि हरिरंगि राती ।

तो सेवहु सति निरंजनी हरि पुरखु बिधाती ॥

तू आपे आपि सुजाणु है बड पुरखु बडाती ।

जो मनि चिति तुषु धिआइवे मेरे सचिआ बलि बलि हउ तिन जाती ॥१॥

पउड़ी :— (हे प्रभु,) तू सिरजनहार है, (सभी में तू विराजमान है, फिर भी) तू अग्रम है, (वहाँ तक किसी की पहुँच नहीं है) । तूने स्वयं ही (सारी) सृष्टि उत्पन्न की है । (यह रचना) तूने नाना रंगों की, नाना प्रकार की और नाना विधि से बनाई है । (जगत् का यह) सारा खेल तेरा ही (बनाया हुआ) है, (इस खेल के भेद को) तू आप ही जानता है, जिसने (यह खेल) रचा है । (इस खेल में) कुछ (जीव) तो आ रहे हैं और कुछ (खेल देख कर) चले जा रहे हैं; किन्तु जो (लोग) बिना नाम के हैं, (वे) मार के (दुःखी हो कर) जाते हैं । (जो मनुष्य) गुरु के सम्मुख है, वे प्रभु के प्रेम में गहरे लाल रंग में रंगे हुए हैं, वे (शुद्ध रूप में) हरी के रंग में रंगे हुए हैं । [चतुलिआ=फारसी=चूँ-लावह; लाला के फूल के समान लाल]

(हे भाई !) जो प्रभु सब में व्यापक (पुरुष) है, जगत् का रचयिता है, सदैव स्थिर रहने वाला (सति) और माया से रहित (निरंजन) है, उसे स्मरण करो ।

(हे प्रभु), तू सबसे महान् पुरुष है, तू स्वयं ही सब जानने वाला वाला है, हे मेरे सच्चे (साहब) जो तुझे मन लगा कर चित्त लगा कर ध्यान करते हैं मैं उनपर (मैं बार-बार) बलि-हारी होता हूँ ॥१॥

सलोकु जीउ पाइ तनु साजिआ रलिआ बखत बणाइ ।
 भस्मी देखे जिहवा बोले कंनौ सुरति समाइ ॥
 पैरो चले हथो करगुा दिता पैने लाइ ।
 जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै अंधा अंधु कमाइ ॥
 जा भंजै ता ठीकरु होवै घाड़त घड़ी न जाइ ।
 नानक गुर बिनु नाहि पति पति किए पारि न पाइ ॥ ४ ॥
 सुइने कै परबति गुफा करी कै पारणी पइआलि ।
 कै बिचि धरती कं आकासी उरधि रहा सिरि भारि ॥
 पुरु करि काइआ कपडु, पहिरा घोवा सदा कारि ।
 बगा रता पीअला काला बेदा करी पुकार ।
 होइ कुचोनु रहा मलु धारी दुरमति मति विकार ।
 ना हउ ना मै ना हउ होवा नानक सबडु वोचारि ॥ ५ ॥
 बसत्र पखलि पखाले काइआ आपे संजमि होवै ।
 अंतरि मैलु लगी नही जाणै बाहरट्टु मलि मलि धोवै ॥
 अंधा भूल पइआ जम जाले ।
 वसतु पराई अपुनी करि जाने हउमै बिचि दुलु घाले ।
 नानक गुरमुखि हउमै तुटै ता हरि हरि नामु धियावै ।
 नामु जपे नामो आराधे नामे सुखि समावै ॥ ६ ॥

सलोकु :— (प्रभु ने) जीव उत्पन्न करके शरीर सजाया है, (क्या ही सुहावनी) रचना रच रखी है । (वह) आँवों में देखता है, जिह्वा से बोलता है और (उसके) कानों में श्रवण की सत्ता विद्यमान है, पैरों से चलता है, हाथों से (कार्य) करता है और (प्रभु का) दिया हुआ पहनता, खाता है । पर जिस (प्रभु) ने (इसे) बनाया और सँवारा है, उसे यह (जानता भी) नहीं, अंधा मनुष्य अंधे ही (कम) करता है ।

जब (यह शरीर रूपी पात्र) टूट जाता है, तो (यह) ठीकरा हो जाता है (तात्पर्य यह कि लपड़े के टुकड़े की तरह व्यर्थ हो जाता है) और फिर बनाए जाने पर बन भी नहीं सकता । हे नानक, (अंधा मनुष्य) गुरु (की शरण) के बिना प्रतिष्ठा-हीन हो जाता है और बिना प्रतिष्ठा (परमात्मा की कृपा) के (इस संसार-सागर को) लौट नहीं सकता ॥ ४ ॥

(मैं चाहूँ) सोने के पवंत (सुमेर पवंत) पर गुफा बना लूँ अथवा नीचे के जल में (बास करूँ), चाहूँ पृथ्वी पर रहूँ अथवा आकाश में सिर के बल पर ऊर्ध्व-तपस्या करूँ, चाहूँ शरीर को पूरी ठौर पर कपड़े पहना लूँ, चाहूँ शरीर को सदैव ही धोता रहूँ, चाहूँ श्वेत,

लाल, पीले धयवा काले (वस्त्र पहन कर) चारो वेदों को जोर में पढ़ूँ [इसका यह भी अर्थ हो सकता है—चाहे श्वेतवर्ण वाले सामवेद, लाल रंग वाले यजुर्वेद, पीत-वर्ण के ऋग्वेद और श्याम वर्ण के अथर्ववेद का उच्च स्वर से पाठ करूँ, (गायत्री-स्तोत्र के पाँचवें पटल में वेदों के उपर्युक्त रंग दिए गए हैं) ।] चाहे कुवस्त्र (कुचोल) पहनूँ और गंदगी धारण किए रहूँ—(किन्तु ये सब) दुर्बुद्धि के विकारयुक्त कर्म ही हैं । हे नानक, (मैं तो यह चाहता हूँ) कि (सद्गुरु के) शब्द को विचार कर न तो मेरा 'मैपन' रहे, न ममता रहे और न अहंकार रहे (अर्थात् सारा अहंभाव नष्ट हो जाय) ॥ ५ ॥

(जो मनुष्य निरप्य) कपड़े धोकर शरीर धोता है (और केवल कपड़े तथा शरीर की शुद्धि रखने से ही) अपने को संयमी मान बैठता है, (किन्तु) हृदय में लगी हुई मैल की जिसे जानकारी नहीं है, (सदैव शरीर को) बाहर ही में मल-मल कर धोता है, (वह) अन्धा मनुष्य (सोधे मार्ग को) भूल कर यम के जाल में पड़ा हुआ है, अहंकार में दुःख पाता है, क्योंकि पराई वस्तु (शरीर और अन्य पदार्थों) को अपनी समझ बैठता है ।

हे नानक, (जब) गुरु के सम्मुख होकर (मनुष्य का) अहंकार टूटता है, तो वह हरि के नाम का ध्यान करता है, नाम का ही जप करता है, नाम की ही आराधना करता है और नाम (के ही प्रभाव से सदैव) मुख में टिका रहता है ॥ ६ ॥

पउड़ी काइआ हंसु संजोगु मेलि मिलाइआ ।
 तिन ही कीआ विजोगु जिनि उपाइआ ।
 भूरखु भोगे भोगु दुखु सबाइआ ॥
 सुखहु उठे रोग पाप कमाइआ ॥
 हरखहु सोगु विजोगु उपाइ खपाइआ ।
 भूरखु गरल मणाइ भगड़ा पाइआ ॥
 सतिगुरु हथि निवेड, भगड़ु सुकाइआ ।
 करता करे सु होगु न चले खलाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी :—शरीर और जीव (आत्मा) का संयोग मिला कर (परमात्मा ने इन दोनों को मनुष्य के जन्म में) एकत्र कर दिया है; जिस (प्रभु) ने (शरीर और जीव को) उत्पन्न किया है, उसी ने (इनके लिए) वियोग भी बना रक्खा है । (पर इस वियोग को भुला कर) भूख (जीव) भोग भोगता रहता है, (जो) सारे दुःखों का (मूल कारण) है । पाप करने के कारण (भोगों के) मुख से रोग उत्पन्न होते हैं । (भोगों का) हर्ष और शोक (और अन्त में) वियोग उत्पन्न करके (प्रभु जीव को) खपा देता है । (जीव इस प्रकार) मूढ़ कर्मों को करके (जन्म-मरण के लम्बे) भगड़े में पड़ा रहता है ।

(जन्म-मरण के चक्कर को) समाप्त करने की शक्ति सद्गुरु के हाथों में है, (जिसे गुरु मिलता है उसका यह) भगड़ा समाप्त हो जाता है । (जीवों की कोई) अपनी चलाई (चानूरी) नहीं चल पाती, जो कर्तार करता है, वही होता है ॥ २ ॥

सलोक झड़ु, बोलि मुरदाखु खाइ । अवरि नो समभावणि जाइ ॥

मुठा आपि सुहाए साथै । नानक ऐसा धागू जापै ॥ ७ ॥

जे रतु लगे कपड़े जामा होइ पलीतु ।
 जो रतु पीवहि मारणसा तिन किउ निरमलु चीतु ॥
 नानक नाउ खुदाइ का विलि हछ मुखि लेहु ।
 अबरि दिवाजे दुती के भूठे अमल करेहु ॥ ८ ॥
 जा हउ नाही ता किआ आखा किहु नाही किआ होआ ।
 कीता करण कहिआ कयना भरिआ भरि भरि धोवां ॥
 आयि न बुझा लोक बुझाई ऐसा आगू होवां ॥
 नानक अ'धा होइ कै दसे राहै सभसु मुहाए साये ।
 अगै गइआ सुहे मुहि पाहि सु ऐसा आगू जाये ॥ ९ ॥

संलोक :— (जो मनुष्य) भूठ बोलकर (स्वयं) दूसरे का हक खाता है, (हराम का खाता है) तथा औरों को यह समझाने जाता है—(कि भूठ मन बोलो, हराम का मन खाओ) हे नानक, ऐसे उपदेश-कर्त्ता को (अतः मेरे प्रकार) कलई खुलती है कि वह स्वयं तो ठगा ही जाता है, अपने साथवालों को भी लुटाता है ॥ ७ ॥

विशेष : निम्नलिखित संलोक मुसलमानों के सबध में कहा गया है । उनकी यह धारणा है कि यदि कपड़े में रक्त लग जाय, तो वह अपवित्र हो जाता है । वह वस्त्र नमाज पढ़ने लायक नहीं रहता ।

अर्थ : यदि जामे (कपड़े) में रक्त लग जाय, तो जामा अपवित्र हो जाता है, (किन्तु) जो (बन्दे) मनुष्यों का रक्त पीते हैं (अत्याचार और अन्याय से उनका धन अपहरण करने हैं), उनका चित्त किस प्रकार निर्मल रह सकता है ? (और अपवित्र मन में पढ़ी हुई नमाज किस प्रकार स्वीकार हो सकती है) ?

हे नानक, खुदा का नाम अच्छे दिन और अच्छे मुख से लो, (इसके बिना) और दुनियावी काम दिखावे के है, ये तो भूठे ही कर्म करने हो ॥८॥

यदि मैं ही कुछ नहीं (तात्पर्य यह कि मेरा आध्यात्मिक अस्तित्व ही कुछ नहीं है), तो मैं औरों को उपदेश क्या करूँ ? यदि (हृदय में) कुछ (गुण ही) नहीं हैं, (तो बग-बन कर) क्या दिखाऊँ ? (मेरे) क्रिया-कर्म, मेरी बोलचाल (आदि मद मस्कारों में) भरी हुई है, (कभी मंद कर्मों में डिग जाता हूँ, तो फिर उन्हें) धोने का प्रयत्न करता हूँ । यदि मैं स्वयं ही नहीं समझे हूँ और लोगों को समझा रहा हूँ, तो (मैं इस अवस्था में उपहासात्मक) उपदेशक बनता हूँ ।

हे नानक, जो मनुष्य स्वयं अन्धा है, पर औरों को राह दिखाता है, वह सारे साथियों को लुटा देता है; आगे चलकर उसके मुँहों पर (जूते) पड़ते हैं, तब उस समय ऐसा उपदेशक (वास्तविक दशा में) प्रकट होता है ॥९॥

पड़ड़ी माहा रूती सभ तूं घड़ी मूरत बीचारा ।
 तूं सरणते किने न पाइओ सचे अलख अपारा ॥
 पड़िया मूरलु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ।
 नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती बीचारा ॥

गुरमती नाम धनु छटिआ भगनी भरे भंडारा ।
निरमलु नाम मंनिआ दरि सबै सचिआरा ॥
जिसदा जीउ परायु है अंतरि जोति अपारा ।
सचा साहु इकु तूँ होरु जगनु बणजारा ॥ ३ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु), सारे महीनो, ऋतुघो, घडियो और मुहूर्तों में तुम्हे स्मरण किया जा सकता है (भाव यह कि तुम्हारे स्मरण के लिए कोई विशेष ऋतु, घडी अथवा मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है । सभी समय तुम्हारा स्मरण किया जा सकता है) । हे सच्चे, अलक्ष्य, अपार (प्रभु), (तिथियो, मुहूर्तों आदि का) गणना करके किसी ने भी तुम्हे नहीं प्राप्त किया । जिस (व्यक्ति) में लालच, लोभ और अहंकार है, ऐसे पढे हुए को मूर्ख हो कहना चाहिए ।

(वास्तव में किसी तिथि, मुहूर्त के भ्रम में पड़ने का आवश्यकता नहीं, केवल) सद्गुरु द्वारा दी गई बुद्धि को विचार कर परमात्मा का नाम जपना चाहिए और उसे समझना चाहिए । जिन्होंने गुरु को शिक्षा के अनुसार नाम लपेटे धन प्राप्त कर लिया है, उनके भाण्डार भक्ति से भर गए हैं; जिन्होंने (परमात्मा का) निर्मल नाम स्वीकार कर लिया, वे प्रभु के सच्चे दरबार में सच्चे (सिद्ध होने) हैं । (हे प्रभु) तेरो ही दिग, हूँ, जीवन और प्राण प्रत्येक जीव को मिले हैं (और) तेरो ही अपार ज्योति प्रत्येक जीव के अंतर्गत (विराजमान है) । (इस प्रकार, हे प्रभु), तू ही अकेला सच्चा साहु है और सारा जगत् बनजारा है ॥३॥

सलोकु मिहर मसीति सिबकु मुसला हकु हलानु कुरायु ।
सरम सुनति सोलु रोजा होहु मुसलमायु ॥
करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निबाज ।
तसबो सा तिसु भावसी नानक रखै लाज ॥१०॥
हकु पराईआ नानका उसु सूअर उस गाड ।
गुरु पीरु हामा ता भरे ना मुरदारु न खाइ ।
गली भिसति न जाईऐ छुटे सचु कमाइ ।
मारण पाहि हुराम महि होइ हलालु न जाइ ॥
नानक गली कूड़ीई कुड़ो पलं पाइ ॥११॥
पंजि निबाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ ।
पहिला सचु हलाल बुइ तीजा खैर खुदाइ ॥
चउबी नोअति रासि मनु पंजबी सिफति सनाइ ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमायु सदाइ ।
नानक जेते कूड़िआर कूड़े कूड़ी पाइ ॥१२॥

सलोकु : विशेष :—निम्नलिखित वाणों में गुरु नानक देव ने सच्चे मुसलमान बनने की विधिवताई है—

अर्थ :—(प्राणियों के ऊपर) दया को मस्जिद (बनाओ), श्रद्धा को मुसल्ला [मुसल्ला वह वस्त्र जिस पर बैठ कर नमाज पढ़ी जाती है] और हक को कमाई को कुरान (बनाओ) । (बुरे कर्मों के प्रति) लज्जा को मुन्नत (मानो) शील-स्वभाव को रोजा (बनाओ); (हे भाई, इस

बिधि से) मुसलमान बनो । शुभ कर्मों को रोजा, सच्चाई को पीर, (सुन्दर और दयापूर्ण) कर्म को ही कलमा और नमाज बनाओ । जो बात खुदा को अच्छी लगे, (उसी को शिरोधार्य करना) नुम्हारी तसबीह (जप की माला) हो । हे नानक, (खुदा ऐसे ही मुसलमान की) लज्जा रखता है ॥१०॥

हे नानक, पराया हक मुसलमान के लिए मुघर है और हिन्दू के लिए नाव है । गुरु पैगम्बर तभी सिफारिश करता है, यदि मनुष्य पराया हक (बेईमानी की कमाई) न खाये । निरी बातें करने से विहिस्त (स्वर्ग) में नहीं जा सकता; मृत्यु को वास्तविक जीवन में बरतने से ही छुटकारा मिलता है । हराम के मांस में मसाला (चतुराई की बातें) डालने से हलाल नहीं हो जाता । हे नानक, झूठी बातें करने से झूठ ही पल्ले पड़ता है ॥११॥

(मुसलमानों की) पाँच नमाजे हैं, (उनके) पाँच वक्त हैं और उन पाँच नमाजों के (पृथक् पृथक्) पाँच नाम हैं—[नमाजों के पाँच नाम ये हैं—नमाजे मुबह, नमाजे पेसीन, नमाजे दीगर, नमाजे शाम तथा नमाजे खुफतन] । (पर हमारी राय में असली नमाजे निम्नलिखित हैं) सत्य बोलना नमाज का पहला नाम है (यानी प्रातःकाल की पहली नमाज है), हक की कमाई दूसरी नमाज है; परमात्मा से सब का भला माँगना नमाज का तीसरा नाम है, नीयत को साफ करना तथा मन को साफ रखना—यह चौथी नमाज है; और परमात्मा के वश की महिमा की प्रशंसा करनी यह पाँचवी नमाज है; (इन पाँचों नमाजों के साथ-साथ) जब ऊँची करनी (आचरण) का कलमा पढ़े, तभी अपने आग को मुसलमान कहलवा सकता है ।

हे नानक, (इन नमाजों और कलमे से रहित) जितने भी हैं वे सब झूठे हैं; झूठे (की प्रतिष्ठा) भी झूठी ही होती है ॥१२॥

पड़ड़ी इकि रतन पदारथ बरणदे इकि कचें दे बापारा ।
 सतिगुरि तुठे पाईअनि अंदरि रतन भंडारा ॥
 बिरु गुर किने न लधिआ अंधे भउकि मुए कड़िआरा ।
 मनमुख दूजै पचि मुए न बूझहि बीचारा ॥
 इकसु बाभ्रु दूजा को नही कसु अगै करहि पुकारा ।
 इकि निरधन सदा भउकदे इकना भरे तुजारा ॥
 धिरु नावे होरु धनु नाही होरु बिबिआ समु छारा ।
 नानक आपि कराए करे आपि हुकमि सवारणहारा ॥४॥

पड़ड़ी :—कुछ मनुष्य (परमात्मा के नाम रूपी) रत्न-पदार्थ का व्यापार करते हैं और कुछ लोग (संसार रूपी) काँच के व्यापारी हैं । (प्रभु के गुण रूपी ये) रत्न के भाण्डार (मनुष्य के) अंदर हैं, किन्तु सद्गुरु के संतुष्ट होने पर ही ये मिलते हैं । गुरु की (शरण में आए) बिना किसी ने भी इस भाण्डार को प्राप्त नहीं किया; झूठ के व्यापारी अंधे (मनुष्य) (कुत्तों की भाँति) भूँक भूँक कर मर जाते हैं । जो व्यक्ति मन के पीछे चलने वाले हैं, वे द्वैतभाव में पच पच कर मर जाते हैं, वे (वास्तविक) विचार नहीं समझते । (इस दुःखपूर्ण अवस्था की) पुकार भी वे लोग किसके सम्मुख करें ? एक (प्रभु) के बिना दूसरा कोई (सुननेवाला भी) नहीं है ।

(नाम रूपी भाण्डार के बिना) बहुत से निर्धन (कुत्तो की भाँति) सदैव भूँकते फिरते हैं और किसी के (हृदय रूपी) खजाने (परमात्मा रूपी धन से) भरे पड़े हैं । (परमात्मा के) नाम बिना और कोई (साथ निभने वाला) धन नहीं है, और विषयो (के धन) तो स्वाक (के समान) है ।

(किन्तु) हे नानक, सभी (जीवों में बैठा हुआ प्रभु) आप ही (काँच और रत्नों के व्यापार) कर-करा रहा है; (जिन्हें) सुधारता है (उन्हें) अपने हुकम में ही (सीधे मार्ग पर चलाता है) ॥४॥

सलोकु मुसलमान कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाण कहावै ।
 अबलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलमाना मालु मुसावै ॥
 होइ मुसलिमु दीन सुहाएँ मरण जोवण का भरमु चुकावै ।
 रब को रजाइ मने सिर उपरि करता मने आपु गवावै ॥
 तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाण कहावै ॥ १३ ॥

नदीआ होवहि धेएवा सुंम होवहि दुधु घीउ ।
 सगली घरती सकर होवै खुसी करे नित जोउ ॥
 परबनु सुइना रुपा होवै हीरे लाल जड़ाउ ।
 भी तूँ है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ १४ ॥

भार अठारह मेवा होवै गरुड़ा होइ सुआउ ।
 चंद्र सूरतु दुइ किरवे रखीअहि निहचलु होवै याउ ॥
 भी तूँ है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ १५ ॥

जे बेहे दुखु लाईऐ पाप गरह दुइ राहु ।
 रतु पोखे राजे सिरै उपरि रखीअहि एवै जायै भाउ ॥
 भी तूँ है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ १६ ॥

अगी पाला कपड़ु होवै खाणा होवै वाउ ।
 सुरगै बीआ मोहणीआ इसतरीआ होवनि नानक सभो जाउ ॥
 भी तूँ है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ १७ ॥

सलोकु : (वास्तविक) मुसलमान कहलाना (बहुत) कठिन है; यदि (वह इस प्रकार) हो, तब (अपने आप को) मुसलमान कहला सकता है । (असली मुसलमान बनने के लिए) सब से पहले (यह आवश्यक है) कि उसे श्रौणियों (सन्तों) का मजहब प्रिय लगे । (तत्पश्चात्) जैसे मिसकल से (लोहे का) जंग साफ किया जाता है, उसी प्रकार (अपनी कमाई का) धन (गरीबों को) बाँट कर (धन का अहंकार नष्ट करके, अतःकरण को पवित्र करे) ।

[मिसकल < अरबी, मिसकला = जंग साफ करने का औजार विशेष] । (इस प्रकार) मजहब के सम्मुख चल कर (सच्चा) मुसलमान बने और जीवन मरण के भ्रम को समाप्त कर दे । परमात्मा की मर्जी को शिरोधार्य करे, कर्ता को (सब कुछ करनेवाला) माने और आपापन को मिटा दे । इस प्रकार, हे नानक, (परमात्मा के उत्पन्न किए) सारे प्राणियों पर मेहरबान हो (दया करे)— तभी मुसलमान कहला सकता है ॥१३॥

यदि सारी नदियाँ (मेरे लिए) गायें बन जायँ, (पानी के) भरने दूध और घी बन जायँ, सारी पृथ्वी शक्कर बन जाय, (इन पदार्थों को भोग कर) मेरा जीव नित्य प्रसन्न हो, यदि हीरो और लालो से जड़े हुए सोने और चाँदी के पर्वत बन जायँ, तो भी (हे प्रभु, मैं इन पदार्थों में न फँसूँ और) तुम्हारी स्तुति करूँ, तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१४॥

विशेष : यह प्राचीन मत चला आ रहा है यदि प्रत्येक प्रकार की वनस्पति—पेड़, पौदे आदि के एक एक पत्ते एकत्र करके तोले जायँ तो सारा वजन १८ भार होता है । एक भार का वजन कच्चे पाँच मन होता है ।

अर्थ : यदि सारी वनस्पतियाँ मेवा बन जायँ, जिसका स्वाद अत्यंत रसीला हो तथा मेरे रहने का स्थान अटल हो जाय और चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों ही (मेरी सेवा के लिए) फिरते रहें, तो भी (हे प्रभु, मैं इन पदार्थों में न फँसूँ और) तुम्हारी स्तुति करूँ, तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१५॥

यदि (मेरे) शरीर को दुःख लग जायँ, दोनों (क्रूर-ग्रह) राहु और केतु (मेरे ऊपर आ जायँ), रक्त-पिपासु राजे मेरे सिर के ऊपर हो, जो तुम्हारा भाव अथवा प्रेम इसी तरह (तात्पर्य, इन्हीं दुःखों के रूप में मेरे ऊपर) प्रकट हो, तो भी (हे प्रभु, मैं इन दुःखों से घबड़ा कर तुम्हें भुला न दूँ) तुम्हारी स्तुति करूँ, तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१६॥

यदि (शीघ्र ऋतु की) आग और (हेमन्तु और शिशिर ऋतुओं का) पाला (मेरे पहनने का) बख़ हो, यदि वायु ही मेरा भोजन हो, स्वर्ग की (समस्त) अप्सराएँ मेरी स्त्रिय हो जायँ, तो भी, हे नानक (ये सारी ऐश्वर्य—सामग्रियों) नद्वार हैं (इनके मोह में फँस कर मैं तुम्हें न भुला दूँ) । तुम्हारी स्तुति करता रहूँ, तुम्हारी प्रशंसा करने का मेरा चाव न समाप्त हो ॥१७॥

पड़ड़ी बबर्फीली गेंबाना खसमु न जाएँई । सो कहोऐ बेवाना आपु न पछाँएँई ॥

कलहि बुरी संसारि बाबे खपीऐ । बिसु नावै बेकारि भरमे पचोऐ ॥

राह दोवै इकु जाएँ सोई सिभसी । कुफर गोअ कुफराएँ पड़आ दभसी ।

सब बुनीआ सुबहानु सचिसमाईऐ । सिभे दरि दीवानि आपु गवाईऐ ॥५॥

पड़ड़ी : (जो मनुष्य) छिप कर पाप करता है और स्वामी को (प्रत्येक स्थान में विराजमान) नहीं समझता, उसे दीवाना (पागल) कहना चाहिए, वह अपने आप को नहीं पहचानता । संसार में बुरा कलह (सर्वत्र) फैला हुआ है । (लोग) विवाद में ही नष्ट होते रहते हैं । बिना नाम (को जाने सब) बेकार ही हैं, (लोग) भ्रमित होकर नष्ट हो जाते हैं । (जो) दोनों रास्तों को एक जानता है, (वही) सफल होगा [दोनों रास्तों से तात्पर्य—हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों से है अथवा माया तथा परमात्मा के मार्ग से है] । नास्तिकता की बात करनेवाला नरक में पड़कर जलेगा ।

(जो मनुष्य) शाश्वत प्रभु से सदैव युक्त रहता है, उसके लिए सारा जगत सुहावना है, वह ग्रहणकार मिटा कर प्रभु के दरवाजे एवं दरबार में प्रतिष्ठित होता है ॥५॥

सलोकु सो जीविआ जिसु मनि बसिआ सोइ ।
 नानक भवहु न जीवे कोइ ॥
 जे जीवे पति लखी जाइ ।
 ससु हरामु जेता किछु खाइ ॥
 राजि रंगु मालि रंगु रंगि रता नचै नंगु ॥
 नानक ठगिआ सुठा जाइ ।
 बिरु नावै पति गइआ गवाइ ॥१८॥
 किआ खाधे किआ पैधे होइ । जा मनि नाहो सच्चा सोइ ॥
 किआ मेवा किआ चिउ गुड़, मिठा किआ मैदा किआ मासु ।
 किआ कपड़, किआ सेज सुलाली कीजहि भोग बिलास ॥
 किआ लसकर किआ नेव खवासी भावै महली बासु ।
 नानक सबे नाम बिरु समे टोल बिण्णासु ॥१९॥

सलोकु :— (वास्तव में) वही मनुष्य जीता है, जिसके मन में परमात्मा बसा हुआ है ।
 है नानक, (भक्त के प्रतिरिक्त) कोई और नहीं जाता है । यदि (नाम-विहीन होकर) जीता
 भी है, तो वह प्रतिष्ठा गंवा कर (यहाँ से) जाता है । (वह यहाँ) जो कुछ भी खाता-पीता
 है, हराम ही का खाता है । जो राज्य-सुख और धन-सुख के रंग में अनुरक्त है, वह (उन सुखों
 में उन्मत्त) नगा होकर नाचता है । हे नानक, प्रभु के नाम के बिना मनुष्य ठगा जा रहा है,
 लूटा जा रहा है और प्रतिष्ठा गंवा कर (यहाँ से) जाता है ॥१८॥

(जिस प्रभु ने सारे सुन्दर पदार्थों को दिया है), यदि वह सच्चा प्रभु हृदय में नहीं
 बसता, तो (रसयुक्त भोजन) खाने से तथा (सुन्दर वस्त्र) पहनने से क्या होता है ? क्या हुआ
 यदि मेवे, घी, मोठा घुड़, मंदा और मासादिक पदार्थ वरते गए ? क्या हुआ, यदि (सुहावने)
 वस्त्र तथा सुखद सेज मिल गई, और क्या हुआ यदि बहुत से भोग-विलास (भोग लिए) ? क्या
 बन गया यदि (बहुत सा) फीजे, नायब और शाही नौकर मिल गए और महलों में (सुन्दर)
 निवास हो गया ? हे नानक, (परमात्मा के) नाम बिना सारे पदार्थ नश्वर है ॥१९॥

पउड़ी जाती दे किआ हथि ससु परखीऐ । महरा होवै हथि मरीऐ चलीऐ ॥
 सच्चे की तिरकार गुगु गुगु जाणीऐ । हुकमु मने तिरदार वरि दीबारीऐ ।
 फुरमानी है कार खसमि पठाइआ । तबलबाज बीबार सबदि सुणाइआ ॥
 इकि होखे असवार इकना साखती । इकनी बधे भार इकना ताखती ॥६॥

पउड़ी :— (परमात्मा के दरवाजे पर तो) सच्चा नाम (रूपी सौदा) परखा जाता है,
 जाति के हाथ में कुछ नहीं है (तात्पर्य यह कि किसी जाति अथवा वर्ण का कोई लिहाज नहीं
 किया जाता); [जानि का अहंकार माहुर (विष) के समान है] यदि किसी के पास माहुर हो
 (चाहे वह किसी जाति का क्यों न हो), और वह उस माहुर को चखेगा, तो (अवश्य ही)
 मर जायगा । सच्चे (परमात्मा का यह) न्याय प्रत्येक युग में वरतता चला आया है, इसे जान लो
 प्रभु के दरवाजे पर, प्रभु के दरबार में वही प्रतिष्ठा पाता है, जो उसका हुक्म मानता
 है । स्वामी ने (जीव को) हुक्म मानने वाले कार्य को सौंप कर (जगत् में) भेजा है । नगरची
 घुड़ ने शब्द द्वारा यह बात सुना दी है (तात्पर्य यह है कि गुरु ने शब्द द्वारा इस बात का

ढिढोरा पीट दिया है) । (इस ढिढोरे को सुन कर) कुछ (गुरुमुख) तो सवार हो गए हैं (भाव यह कि परमात्मा के मार्ग पर चल पड़े है), कई (बन्दे) तैयार हो पड़े हैं, कुछ माल-असबाब लाद चुके हैं और कुछ जल्दी-जल्दी दौड़ पड़े हैं ॥६॥

सलोकु जा पका ता काटिआ रही सु पलरि बाड़ि ।
सगु कौसारा चिथिआ करु लइआ तनु भाड़ि ॥
दुइ पुइ चकी जोड़ि कै पीसणु आइ बहिहु ।
जो दरि रहे सु उबरे नानक अजब डिहु ॥ २० ॥
बेलु जि मिठा कटिआ कटि कुटि बधा पाइ ।
खुंटा अंदरि रखि कै बेनि सु मल सजाइ ॥
रसु कसु टटरि पाईऐ तपे ते बिललाइ ।
भो सो फोगु समालीऐ दिचै अगि जालाइ ॥
नानक मिठै पतरोऐ बेलहु लोका आइ ॥ २१ ॥

सलोकु : जब (कुपि) पक जाता है, तो (ऊपर-ऊपर) काट ली जाती है, जो वस्तु शेष रहती है, वह डंठल और फूस है, (फिर) उसे बाणियों समेत दबा लिया जाता है, (पीदों का) तन भाड़ के—भूसा ओसा कर दाना निकाल लिया जाता है ।

चक्की के दोनों पाटों में रख (उन दानों को) पीसने के लिए (मनुष्य आ बैठता है) । (पर) हे नानक, एक आश्चर्यमय तमाशा देखा है कि जा दाने (चक्का के) दरवाजे के पास (अर्थात् किल्ली के समीप रहते हैं), वे पीसने से बच रहते हैं (इसी प्रकार जो मनुष्य प्रभु के दरवाजे के पास रहते हैं, उन्हें जगत् के विकार नहीं व्याप्त हो सकते) ॥२०॥

(हे भाई), देखो कि गन्ना (मिठा) काटा जाता है, छील-छान कर रस्सी में डाल कर बाँधा जाता है फिर उसे बेल्न में डाल कर पहलवान (तगड़े आदमी) इसे (मानो) सजा देते हैं (पेरते हैं) । सारा रस कड़ाहे में डाल दिया जाता है । (आग की आँच से यह रस) तपता है और बिलखता है । (तत्पश्चात् गन्ने की खोई को इकट्ठा करके (सुखा कर) आग में डाल कर जला देते हैं, (ताकि कड़ाहे का रस गरम हो) । नानक कहते हैं कि हे लोगों आकर (गन्ने की दशा) देखो, मिठास के कारण, वह दुःखी होता है । (इसी प्रकार माया की मिठास के मोह के कारण जीव की भी दुर्दशा होती है और वह दुःखी होता है) ॥२१॥

पउड़ी इकना मरगु न चिति आस घरोरिआ ।
मरि मरि जंमहि नित किसे न केरिआ ।
आपनइ मनि चिति कहनि बंगेरिआ ।
जमराजै नित नित मनमुख हेरिआ ॥
मनमुखु लुणहाराम क्रिया न जाणिआ ।
बधे करनि सलाभ लसम न भाणिआ ॥
ससु मिले सुखि नामु साहिब भावसी ।
करसनि तखति सलासु लिखिआ पावसी ॥ ७ ॥

पड़ड़ी : कुछ लोग (संसार को) बड़ी आशाएँ (मन में बनते रहते हैं, मृत्यु का ध्यान उनके) चित्त में नहीं आता; वे सदैव (नित्य) जन्मते रहते हैं, वे (कभी) किसी के नहीं होते, (अपने ही स्वार्थ में रत रहते हैं) । (वे लोग) अपने मन में, अपने चित्त में (अपने को) भला कहते हैं । (पर) ऐसे मनुष्यों को यमराज नित्य ही देखता रहता है (तात्पर्य यह है कि वे समझते तो अपने को अच्छे हैं, किन्तु कर्म ऐसे नीच करते हैं, जिनके द्वारा यमराज के बन्धन में पड़ते हैं) । मनुष्य नमकहारी होते हैं, वे (परमात्मा के) किए हुए (उपकार को) नहीं जानते । (वे लोग) जब बंधते हैं, तभी (प्रभु को) सलाम करते हैं, (ऐसा करने से) वे खसम (स्वामी, प्रभु) को प्रिय नहीं हो सकते ।

(जिस मनुष्य को) सत्य (परमात्मा) मिल गया है, जिसके मुँह में (प्रभु का) नाम है, वह खसम को प्यारा लगेगा । उसे तब्त के ऊपर (बैठा देख कर) सभी लोग सलाम करेगे (और परमात्मा के) इस लिखे लेख (विधान को) वह पायेगा ॥७॥

सलोक : मछी तारु किआ करे पंखी किआ आकासु ।
पथर पाला किआ करे खुसरे किआ घर वासु ॥
कुते चंदनु साइए भी सो कुती धातु ।
बोला जे समझाईए पड़ोअहि सिमृति पाठ ॥
अंधा चानरि रखीए दीबे बलहि पचासु ।
चउरणे सुदना पाईए चुणि चुणि छाबे घासु ॥
लोहा मारणि पाईए डहै न होइ कपासु ।
नानक भूरलि एहि गुण बोले सदा बिलासु ॥ २२ ॥
कैहा कंचन तुटे सारु । अगनी गंडु पाए लोहारु ॥
गोरी सेती तुटे भतारु । पुती गंडु पबे संसारि ॥
राजा मंगे विते गंडु पाइ । भुलिआ गंडु पबे जा खाइ ॥
काल्ह। गंडु नदीआ मीह भोल । गंडु परीती मिठे बोल ॥
वेदा गंडु बोले सचु कोइ । मुइआ गंडु नेकी सतु होइ ॥
एतु गंडि बरते संसारु । भूरख गंडु पबे मुहि मार ॥
नानकु आखै एहु बीचार । सिफती गंडु पबे दरबारि ॥ २३ ॥

सलोक :— बहुत गहरा पानी मछली का क्या कर सकता है ? (तात्पर्य यह कि जल कितना ही गहरा क्यों न हो, मछली को चिन्ता नहीं । आकाश पक्षी का क्या कर सकता है ? पाला (कंकड़) पत्थर का क्या कर सकता है ? (यानी पाला कंकड़-पत्थर का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता) । हिजड़े को घर बसाने से (खी करने से) क्या लाभ ? कुत्ते को चन्दन लगा दिया जाय, फिर भी उसकी वृत्ति (स्वभाव) कुतियों में ही रहती है । गूँगे को (चाहे जितना) समझाए अथवा (चाहे जितना) स्मृतियों का पाठ कीजिए, (किन्तु, वह तो सुन ही नहीं सकता) । अंधे मनुष्य को प्रकाश में रक्खा जाय, (और उसके पास) पचास दीपक जलते हों, (फिर भी वह नहीं देख सकता) । चरने के लिए गए हुए पशुओं के सम्मुख चाहे सोना डाल दीजिए, तो भी वे तो घास ही चुग-चुग कर खायेंगे । (चाहे) लोहे को चूँ-चूँ कर डालिए, तो भी वह कपास (के समान मुलायम नहीं) हो सकता ।

हे नानक, मूर्ख भी इसी स्वभाव (गुण) के होते हैं; (चाहें उसे कितना ही समझाया जाय, बिल्कुल वह जभी बोलता है) तभी (ऐसा बोलता है, जिससे) दूसरो को नुकसान पहुँचे ॥ २२ ॥

यदि काँसा, सोना अथवा लोहा टूट जाय, तो अग्नि के द्वारा लोहार (आदि उन्हे) जोड़ देते हैं, यदि स्त्री से पति रुष्ट हो जाय तो जगत् में इनका मेल पुत्रों द्वारा (पुनः) हो जाता है। यदि राजा मांगता है, और (प्रजा) देती है, (तो दोनों का पारस्परिक) संबध जुड़ा रहता है। भूखे व्यक्ति का अपने शरीर से तभी सम्बन्ध जुड़ता है, जब वह भोजन करे। यदि बहुत मेह पड़ने से नदियाँ, (बहने लगे), तो दुग्ध (काल) में गाँव पड़ जाती है (तात्पर्य यह कि वर्षा होने से, दुग्ध की समाप्ति हो जाती है), मोठे वचन से प्रीति जुड़ती है (प्रीति प्रगाढ़ होती है)। वेद (आदिक धार्मिक पुस्तकों) में (मनुष्य का तभी) संबध जुड़ता है, यदि वह सत्य बोले। नेकी और सच्चाई के होने से मृत व्यक्तियों का (जीवितों से) सम्बन्ध बना रहता है, (तात्पर्य यह कि नेक पुरुषों की नेकी और सच्चाई की अपनाने को चेष्टा जीवित मनुष्य सदैव करते रहते हैं)। (अतएव) इस प्रकार के सम्बन्ध से जगत् का व्यवहार चलता है। मुँह पर मारने से मूर्ख के (मूर्खपन) की रोक होती है।

नानक यह विचार की बात बताता है कि (परमात्मा) की स्तुति के द्वारा (परमात्मा के) दरबार से सम्बन्ध जुड़ना है ॥ २३ ॥

पउड़ी : आपे कुवरति_साजि कै आपे करे बोचारु ।
इकि खोटे इकि खरे आपे परखणहारु ॥
खरे खजाने पाईअहि खोटे सटीअहि बाहरवारि ।
खोटे सजी दरगह सुटीअहि किमु आयै करहि पुकार ॥
सतिगुर पिछे भजि पवाहि एहा करणी सारु ।
सतिगुरु खोटिअहु खरे करे सबदि सवारणहारु ॥
सजी दरगह मंनोअनि गुर कै प्रेम पिधारि ।
गएत तिना दी को किआ करे जो आपि बखसे करतारि ॥ ८ ॥

पउड़ी :—(परमात्मा) आप ही कुवरत,—शक्ति, माया (सृष्टि-रचना) उत्पन्न करके आप ही इसका ध्यान रखता है। (इस सृष्टि में) कुछ प्राणी खोटे हैं, (तात्पर्य यह कि मनुष्यता के मापदण्ड से नीचे गिरे हैं) और कुछ (बादशाही सिक्के समान) खरे हैं, (इन सब को परखनेवाला भी) आप ही हैं। (अच्छे सिक्कों की भाँति) खरे बन्दे (प्रभु के खजाने में डाले जाते हैं) (तात्पर्य यह कि उनका जीवन प्रामाणिक होता है)। खोटे धक्का देकर बाहर फेंक दिए जाते हैं। सच्चे दरबार में उन्हे धक्का मिलता है, कोई ऐसा और स्थान भी नहीं, जहाँ वे लोग (सहायता के लिए) पुकार सकें।

(ऐसे तुच्छ जीवों के लिए) सब से श्रेष्ठ यही कर्म है कि वे लोग सदगुरु की शरण में जा पड़ें। गुरु खोटे व्यक्तियों को खरा बना देता है, (क्योंकि वह अपने) शब्द के द्वारा (खोटों को) सँवारने में समर्थ है, (फिर वे) सदगुरु द्वारा प्रदत्त प्रेम और प्यार से परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठा पाते हैं; जिन्हे परमात्मा देता है, उनकी गणना कौन कर सकता है ? ॥१॥ ८ ॥

सलोकु हम जेर जिमी बुनीआ पीरा मसाइका राइआ ।
 मे रबदि बाविसाहा अफजू खुदाइ ॥
 एक तूही एक तुही ॥ २४ ॥
 न बेव दानवा नरा । न सिध साधिका धरा ॥
 असति एकु बिगरि कुई । एक तुई एक तुई ॥ २५ ॥
 न दावे दिहंव आदमी । न सपत जेर जिमी ॥
 असति एक बिगरि कुई । एक तुई एक तुई ॥ २६ ॥
 न सूर ससि मंडलो । न सपत दीप नह जलो ॥
 अंन पउणु थिरु न कुई । एक तुई एक तुई ॥ २७ ॥
 न रिजकु दसत आ कसे । हमारा एकु आस बसे ॥
 असति एकु बिगरि कुई । एक तुई एक तुई ॥ २८ ॥
 परंबए न गिराह जर । दरखत आब आस कर ॥
 दिहंव सुई । एक तुई एक तुई ॥ २९ ॥
 नानक लिलारि लिखिआ सोइ । मेटि न साकै कोइ ॥
 कला धरै हिरे सुई । एक तुई एक तुई ॥ ३० ॥

सलोकु :—पीर, शेख, राय (आदि) सारा मंसार जो धरती के नीचे है (नाज हो जाता है)—(इस पृथ्वी पर शासन करने वाले) बादशाह भी नष्ट हो जाते हैं । सदा कायम रहने वाला, हे खुदा एक तू ही है, एक तू ही है ॥ २४ ॥

देवतागण, दानव, मनुष्य, सिद्ध, साधक कोई भी (इस) धरती पर न रहे । सदैव रहने वाला (तुझे छोड़ कर) दूसरा कौन है ? सदैव रहनेवाला, हे प्रभु, एक तू ही है, एक तू ही है ॥ २५ ॥

न न्याय करनेवाले व्यक्ति ही सदैव रहने वाले हैं, न पृथ्वी के नीचे सात (पाताल) ही रहने वाले हैं, सदैव रहनेवाला, (हे प्रभु, तुझे छोड़ कर) दूसरा कौन है ? हे प्रभु, सदैव स्थिर रहनेवाला एक तू ही है, एक तू ही है ॥ २६ ॥

सूर्य, चन्द्रमण्डल, सप्त दीप, जल, अन्न, पवन कुछ भी स्थिर नहीं रहनेवाले हैं । (सदा रहनेवाला, हे प्रभु) एक तू ही है, एक तू ही है ॥ २७ ॥

जीवों का आहार (परमात्मा के बिना) किसी और के हाथ में नहीं है, सभी जीवों को बस, एक प्रभु की आशा है (क्योंकि सदा स्थिर) और है ही कोई नहीं, सदैव रहनेवाला, हे प्रभु, एक तू ही है, एक तू ही है ॥ २८ ॥

पक्षियों के गाँठ के पल्ले धन नहीं हैं, वे प्रभु के बनाए हुए वृक्षों और पानी का ही आसरा लेते हैं । उन्हें रोज़ो देने वाला वही प्रभु है ।

(हे प्रभु, उन्हें रोटी देनेवाला) एक तू ही है, एक तू ही है ॥ २९ ॥

हे नानक (जीव के) मर्त्य में जो कुछ परमात्मा की ओर से लिखा गया है, उसे कोई भेट नहीं सकता । (जीव के अंतर्गत) वही शक्ति देता और वही लेता है ।

(हे प्रभु, जीवों को शक्ति देनेवाला और उनकी खोज-खबर लेने वाला) एक तू ही है, एक तू ही है ॥ ३० ॥

पउड़ी सचा तेरा हुकमु गुरमुखि जाणिआ ।
 गुरमती आपु गवाइ सनु पछाणिआ ॥
 सनु तेरा वरबार सबदु नीसाणिआ ।
 सचा सबदु बीजारि सचि समाणिआ ॥
 मनमुख सदा कूड़िआर भरमि भुलाणिआ ।
 बिसटा अंदरि वासु सादु न जाणिआ ॥
 बिरगु नाबै बुलु पाइ आवरण जाणिआ ।
 नानकु पारलु आपि जिनि छोटा खरा पछाणिआ ॥ ६ ॥

पउड़ी :—(हे प्रभु !) तेरा हुकम सच्चा है, गुरु के सम्मुख होकर यह जाना जाता है। जिसने गुरु की मति लेकर अपना अहंभाव दूर किया है उसने तुझ सच्चे को जान लिया है। (हे प्रभु,) तेरा दरबार सच्चा है; (इस तक पहुंचने के लिए गुरु का) शब्द ही निशान है। जिन्होंने सच शब्द को विचारा है, वे सच्चे में ही लीन हो जाते हैं।

(पर) मन के पीछे दौड़नेवाले भूठा (हो) व्यवहार करते हैं, वे भ्रम में भटकते फिरते हैं। वे सदैव विष्टा (मन) के भीतर वास करते हैं, (वे शब्द का) स्वाद नहीं जान सकते हैं। (परमात्मा के) नाम बिना वे दुःख पाकर आनि-जाने (जीवन-मरण) (के चक्कर में पड़े रहते हैं)।

हे नानक, परखनेवाला प्रभु आप ही है, जिसने खोटे-खरे को पहचाना है (तात्पर्य यह कि प्रभु आप ही जानता है कि छोटा और खरा कौन है।) ॥ ६ ॥

सलोकु : सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले पाह ।
 घाहू खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह ॥
 नदीआ बिचि टिबे बेखाले यली करे असगाह ।
 कीड़ा थापि बेइ पातिसाही लसकर करे सुगाह ॥
 जेते जोअ जीवहि लै साहा जीवाले ता कि असाह ।
 नानक जिउ जिउ सचे भावै तिउ तिउ बेइ मिराह ॥ ३१ ॥
 इकि मासहारी इकि तृणु खाहि । इकना छत्तीह अंमृत पाहि ।
 इकि मिटीआ महि मिटीआ खाहि । इकि पउण सुमारी पउण सुमारि ॥
 इकि निरंकारी नाम आधारि ॥
 जीवै दाता मरै न कोइ । नानक सुठे जाहि नाही मनि सोइ ॥ ३२ ॥

सलोकु :—(यदि प्रभु चाहे) तो सिंह, बाज, शिकरा तथा कुही (ऐसे मासाहारी पक्षियों को) घास खिला दे (तात्पर्य यह कि उनको मासाहारी वृत्ति को परिवर्तित कर दे) जो घास खाते हैं, उन्हें मास खिला दे। (इस प्रकार वह विरोधी) मार्गों में चला सकता है। (यदि प्रभु चाहे तो) नदियों के बीच में टीला दिखा दे और स्थलो को असाह (जल) बना दे, कीड़े को बादशाही (तख्त) पर स्थापित कर दे और (बादशाहों की) सेना को खाक कर दे। (संसार में) जितने भी जीव जीते हैं, साँस लेकर जीते हैं, (तात्पर्य यह कि तब तक जीते हैं, जब तक साँस लेते हैं), (किन्तु, हे प्रभु) यदि तू उन्हें जीवित रखना चाहे, तो साँस

(की क्या आवश्यकता है) ?

हे नानक, जैसे-जैसे प्रभु की मर्जी है, वैसे-वैसे (जीवों को) रोजी देता है ॥ ३१ ॥

कुछ जीव मांसाहारी हैं, कुछ तृण खाते हैं, कुछ प्राणी छत्तीस प्रकार के अमृतमय (स्वाद वाले) भोजन करते हैं और कुछ मिट्टी में (रहकर) मिट्टी ही खाते हैं ।

कुछ (साधक) पवन के गिनने वाले हैं और पवन ही गिनते रहते हैं (तात्पर्य यह कुछ प्राणायाम के अभ्यासी प्राणायाम में ही लगे रहते हैं), कुछ निरंकार के उपासक नाम के सहारे जीते हैं ।

उनका दाता जीवित रहे । उनमें से कोई भूखा नहीं मरता, (तात्पर्य यह कि उन्होंने अपने दाता—परमात्मा का सहारा पकड़ा है, इसलिए उन्हें रोजी अवश्य मिलती है) । हे नानक वे जीव ठगे जाते हैं, जिनके मन में वह प्रभु नहीं है ॥ ३२ ॥

पउड़ी पूरे गुर की कार करमि कमाइऐ ॥
 गुरमती आपु गवाइ नामु धिआईऐ ॥
 दूजो कारै लगि जनमु गवाईऐ ।
 बिरु नावै सभ बिसु पैभै लाईऐ ॥
 सचा सबदु सालाहि सचि समाईऐ ।
 बिरु सतिगुरु सेवे नाही सुखि निवासु फिरि फिरि आईऐ ॥
 दुनोप्रा खोटी रासि कूडु, कमाईऐ ।
 नानक सचु खरा सालाहि पति सिउ जाईऐ ॥ १० ॥

पउड़ी :—पूर्ण सदगुरु का कार्य, (प्रभु की) कृपा के द्वारा ही किया जा सकता है, गुरु (को दो हृद्) मति—बुद्धि द्वारा आपापन नष्ट करके (प्रभु का) नाम स्मरण किया जा सकता है ।

(प्रभु का स्मरण भूल कर) अन्य कार्यों में लगने से (मनुष्यों का) जन्म व्यर्थ ही जाता है, (क्योंकि) बिना नाम के सारा खाना-पीना विषय हो जाता है ।

(सदगुरु के) सच्चे शब्द की स्तुति करके (मनुष्य) (परमात्मा) में समा जाता है । सदगुरु की सेवा किए बिना, सुख में निवास नहीं हो सकता और बार-बार (जन्म-मरण के चक्कर में) आना पड़ता है । संसार (का प्रेम) खोटी पूँजी है, यह कमाई झूठ (का व्यापार है) ।

हे नानक, खरे सच्चे (परमात्मा की) स्तुति करके (मनुष्य इस संसार से) प्रतिष्ठा के साथ जाता है ॥ १० ॥

सलोक तुषु भावै ता वावहि गावहि तुषु भावै जसि नावहि ।
 जा तुषु भावहि ता करहि बिभूता सिढी नादु बजावहि ॥
 जा तुषु भावहि ता पडहि कतेबा सुला सेख कहावहि ।
 जा तुषु भावहि ता होवहि राजे रस कस बहुतु कमावहि ॥
 जा तुषु भावहि तेग बगावहि सिर मुंडी कटि जावहि ।
 जा तुषु भावहि जाहि दिसंतर सुणि गला धरि आवहि ॥

जा तुषु भावहि नाइ रचावहि तुषु भासो तूं भावहि ।
 नानक एक कहै बेनंती होरि सगले कूडु, कमावहि ॥ ३३ ॥
 जा तूं बडा सभि बडिआईआ जेने जंगा होई ।
 जा तूं सचा ता सभु को सचा कूडा कोइ न कोई ॥
 आखणु देखणु बोलणु चलणु जोअणु भरणा धातु ।
 हुकमु साजि हुकमे विचि रखै नानक सचा आपि ॥ ३४ ॥

सलोक :—जब तुम्हें अन्धता लगता है, तो (कुछ मनुष्य बाजा) बजाते हैं और (कुछ) गाते हैं (कुछ व्यक्ति तीर्थों के) जल में स्नान करते हैं, (कुछ अपने शरीर में) विभूति लगाते हैं और शृङ्गी का नाद बजाते हैं, (कुछ व्यक्ति) कुरान (आदि धार्मिक पुस्तकें) पढ़ते हैं और अपने आत्मको मूल्ना और शेख कइलवाते हैं, (कुछ लोग) राजे बन जाने हैं और उरह-तरह के स्वादों के भोजन करते हैं, (कुछ) तलवार चलाने हैं, (कुछ धूरमां के) गर्दन से सिर कट जाने हैं, (कुछ पुण्य) अन्य दिशाओं में (परदेस) जाते हैं (और वहाँ की) बाने सुनकर (फिर अपने घर) लौट आते हैं । (हे प्रभु,) यह भी तेरी मर्जी है (कि कुछ भाग्य शाली व्यक्ति) तेरे नाम में लगे रहने हैं, (जो) तेरी आज्ञा में हैं, (वे) तुम्हें अच्छे लगते हैं । नानक एक विनती करता है (कि वे व्यक्ति जो तुम्हारी आज्ञा में नहीं चल रहे हैं) झूठ ही कमा रहे हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि (हे प्रभु) तू बड़ा है, अतएव तुम्हीं में सामी बडाइयां (निकलती हैं) ; (हे प्रभु) तू भला है, (अतएव) भला में भला ही (उत्पन्न होता है) । जब (यह विश्वास हो जाय) कि तू सच्चा है, तो सभी कोई सच्चे दिखलाई पड़ेंगे, (क्योंकि सभी की उत्पत्ति तुम्हें में हुई, और तू ही सब में विराजमान है) : (इस प्रकार की दृष्टि से) कोई भी झूठा नहीं हो सकता ।

कहना, देखना, बोलना, चलना, जीना, मरना यह सब भाया-स्वरूप हैं, (वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है, निश्च और शाश्वत सत्ता तो प्रभु तू ही है) । हे नानक सच्चा प्रभु स्वयं तू ही है; वह अपने हुक्म को रच कर, सभी को हुक्म में ही पगलता है ॥ ३४ ॥

पउड़ी सतिगुरु सेवि निसंगु भरमु तुकाईऐ ।
 सतिगुरु आखै कार सु कार कमाईऐ ॥
 सतिगुरु होइ दइआसु त नामु चिआईऐ ।
 लाहा भगति सु सार गुरमुखि पाईऐ ॥
 मनमुखि कूडु, गुबार कूडु, कमाईऐ ।
 सचे दे दरि जाड सचु चवाईऐ ॥
 सचे अ'दरि महलि सचि बुलाईऐ ।
 नानक सचु सदा साचिआरु सचि समाईऐ ॥ ११ ॥

पउड़ी:—यदि निःशंक होकर सद्गुरु की सेवा की जाय, तो (समस्त) भ्रम समाप्त हो जाते हैं । वही काम करना चाहिए, जिसके करने के लिए गुरु कहे । यदि सद्गुरु कृपा करे, तो (प्रभु के) नाम का ध्यान किया जा सकता है । गुरु की प्राप्ति होने पर, (प्रभु की) भक्ति—सबसे श्रेष्ठ लाभ (प्राप्त होता है) । (किन्तु) मनमुख निरा झूठ और निरा अन्धकार ही कमाता है, (प्राप्त करता है) ।

(यदिसच्चे प्रभु के चरणों में लगकर) सच्चे का नाम जपा जाय तो इस सच्चे नाम के द्वारा (प्रभु के) सच्चे महल के अन्दर स्थान मिलता है । हे नानक, (जिसके पल्ले) सदा सत्य है, वह सत्य का व्यापारी है, वह सत्य मे ही निमग्न रहता है ॥११॥

सलोकु कलि काते राजे कासाई परमु पंखु करि उडरिआ ।
 कूहु, अमावस सतु चंद्रमा दीसे नाही कह चड़िआ ।
 हउ भालि बिकुनी होई ।
 आपेरै राहु न कोई ॥
 बिचि हउमै करि दुखु रोई ।
 कहू नानक किनि बिधि गति होई ॥ ३५ ॥

सबाही सालाह जिनी धियाइअ इकमनि ।
 सेइ पूरे साह बखतै ऊपरि लड़ि सुए ॥
 दूजै बहुते राह मन कीआ मती खिडोआ ।
 बहनु पए असगाह गोते छाहि न निकलहि ॥
 तीजे सुहो गिराह भुख तिला दुइ भउकीआ ।
 खाधा होइ सुआह भी खाणे सिउ बोसती ॥
 चउथै आई ऊंघ अखो मीटि पवारि गइआ ।
 भो उठि रचिओनु बादु सै बरिहा को पिड़ बधी ॥
 सभे बेला बखत सभि जे अठी भउ होइ ।
 नानक साहिबु मनि वसै सबा नावगु होइ ॥ ३६ ॥

पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई ।
 सगलै दूख पाणी करि पीवा घरती हांक चलाई ॥
 परि ताराजी अंवरु तोली पिछै टंकु चड़ाई ।
 एबहु वधा मावा नाही सभसै नधि चलाई ॥
 एता तागु होवै मन अंदरि करी भी आखि कराई ।
 जेबहु साहिबु तेबहु दानी बे बे करे रजाई ॥
 नानक नदरि करे जिसु उपरि सचि नामि वडिआई ॥ ३७ ॥

नानक गुरु संतोलु रसु घरसु फुलु फलु गिआनु ।
 रसि रसिआ हरिआ सदा पकै करमि शिआनि ॥
 पति के साद खादा सहै दाना कै सिरि दानु ॥ ३८ ॥

सुइने का बिरखुपत परवाला कुल जेबेहर लाल ।
 तितु फल रतन लगहि सुखि भाखित हिरदै रिदै निहालु ॥
 नानक करसु होवै सुखि असतकि लिखिआ होवै लेखु ।
 अठसठि तीरथ गुर की चरणी पूजै सदा बिसेखु ॥
 हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नवीआ अगि ।
 पवहि बभहि नानका तरीऐ करमी लगि ॥ ३९ ॥

सलोक : कलियुग (यह कुरा समय) छुरी है, राजे कसाई है धर्म अपने पंखों पर (न मालूम कहाँ) उड़ गया है, झूठ भ्रमावस्था (की रात्रि) है; (इस रात्रि में) सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ है ? (वह) दिखाई नहीं पड़ता । मैं (उस चन्द्रमा को) ढूँढ़-ढूँढ़ कर व्याकुल हो गई हूँ, ग्रंथकार में कोई रास्ता नहीं दिखाया पड़ता ।

(इस ग्रंथकार) मे (सृष्टि) ग्रहंकार के कारण दुःखी होकर रो रही है । हे नानक, (इस दुःख पूर्ण स्थिति से) किस प्रकार छुटकारा हो ? ॥२५॥

जो (मनुष्य) सबेरे ही (अमृतवेला में) (परमात्मा की) स्तुति करते हैं, एकाग्र मन से (प्रभु का) ध्यान करने हैं, समय पर (ब्रह्म-मुहूर्त में मन के साथ) युद्ध करने हैं (तात्पर्य यह कि आलस्य और प्रमाद से मुक्त होकर परमात्मा के चिन्तन में रत होते हैं), वे ही पूरे शाह हैं ।

दूसरे पहर में, अर्थात् दिन चढ़ने पर (मन के) अनेक रास्ते हो जाते हैं (अनेक सासारिक भ्रमेले में मन बँट जाता है), मन की मति बिखर जाती है (अनेक वासनाओं में बँट जाता है); (मनुष्य सासारिक प्रपंचों के) अथाह (समुद्र) में पड़ कर गोने खाते हैं और निकल नहीं सकते ।

तीसरे पहर में भूख और प्यास दोनों भूँकने लगती है (प्रबल पड़ जाती है) और (मनुष्य) मुँह में घास (डालने लगते हैं) जो कुछ खाने है, भस्म हो जाता है, फिर खाने में दोस्ती होती है (अर्थात् फिर खाने की इच्छा प्रबल होती है ।)

चौथे पहर नींद आ दवाती है, (मनुष्य) ब्राह्म मोच कर परलोक में चला जाता है, (तात्पर्य यह कि स्वप्न-संसार में विचरण करने लग जाता है) । (सोकर उठने पर फिर उन्ही (जगत् के) भ्रमों को प्रारम्भ कर देता है । (इस प्रकार मनुष्य ने) सौ वर्ष की शर्त बाँध रखी है ।

(अतएव अमृतवेला ही परमात्मा के स्मरण के लिए आवश्यक है, किन्तु) जब (अमृत वेला के चिन्तन के अभ्यास) आठ पहर परमात्मा का भय (मन में) स्थिर हो जाय, तो सारी बेला, सारे समय में (मन परमात्मा के स्वरूप-चिन्तन में निमग्न रहता है) । हे नानक, (इस प्रकार जब आठो पहर) साहब में मन बसा रहे, तभी सच्चा (आत्मिक) स्नान होता है ॥३६॥

विशेष :—कहते हैं कि एक बार कुछ योगियों ने गुरु नानक देव से सिद्धियों का चमत्कार दिखलाने को कहा । गुरु नानक देव ने निम्नलिखित पद में योगियों को यह बतलाया कि परमात्मा के नाम में बड़ कर कोई भी चमत्कार नहीं । सिद्धियाँ तो नाम की अपेक्षा तुच्छ है—

अर्थ :—यदि मैं आग पहन लूँ (अथवा) बर्फ में घर बना लूँ (तात्पर्य यह कि मेरे अंतर्गत इतनी शक्ति आ जाय कि मैं आग और बर्फ में बैठ सकूँ), लोहे को भोजन बना लूँ, सारे दुःखों को पानी की भाँति (बड़े शोक से) पी जाऊँ, सारी पृथ्वी को अपनी हाँक में चला लूँ (यानी समस्त भूमण्डल पर मेरा आधिपत्य हो), सारे आकाश को (जो अनन्त ब्रह्माण्ड, सूर्य, नक्षत्रगण और तारामण्डल आदि को धारण करने में ब्रह्म भारी है) तराजू के (एक पलड़े पर) रख कर, पिछले (पलड़े पर) टंक (चार माशा) रख कर (आसानी से) तोल लूँ, (अपने शरीर को) इतना अधिक बड़ा लूँ कि कहीं समा न सके और सब को नाथ लूँ (अपनी आज्ञा

में चलाऊँ), मेरे मन में इतनी शक्ति हो कि जो वाहे कर्क और कह कर दूसरों से भी करा लूँ, (फिर भी ये सब सिद्धियाँ तुच्छ हैं) ।

जितना बड़ा साहब है, उतने ही बड़े उसके दान हैं, (यदि) ब्राह्मणों का (स्वामी) और भी (अनन्त सिद्धियों का) दान मुझे दे दे, (तो भी ये सब तुच्छ ही हैं) ।

हे नानक, (वास्तविक बात तो यह है कि) जिस प्राणी पर, (प्रभु) कृपा-दृष्टि करता है, उसे (अपने) सच्चे नाम के द्वारा बड़ाई प्रदान करता है । (तात्पर्य यह कि सभी सिद्धियों एवं चमत्कारों से बढ़कर नाम की प्राप्ति है) ॥३७॥

हे नानक, (पूर्ण) संतोष (स्वरूप) गुरु वृक्ष है, (जिसमें) धर्म रूपी फूल (लगता) है और ज्ञान-रूपी फल (लगते) हैं, प्रेम-जल के सींचने में यह सदैव हरा-भरा रहता है । (परमात्मा की कृपा से) (प्रभु का) ध्यान करने से यह (ज्ञान-फल) पकता है, (तात्पर्य यह कि जो मनुष्य प्रभु कृपा से उसका ध्यान करता है, उसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है) । (इस ज्ञान-फल को) चखनेवाला व्यक्ति प्रभु के मिलन का रस लेता है, (मनुष्य के लिए प्रभु की ओर से) यह दान, सर्वोपरि दान है ॥३८॥

(गुरु) सोने का वृक्ष है, मूँगा—प्रवाल (अनुराग) उसके पत्र हैं, लाल, जवाहर (गुरु-उपदेश) उसके फूल हैं ; श्रेष्ठ कहे हुए वचन रूपी रत्न उस (गुरु)—वृक्ष के फल हैं; (उस गुरु को) हृदय के अन्तर्गत ही देख लो । हे नानक, (जिस पर प्रभु की) कृपा हो, जिसके मुख और मस्तक में भाग्य हो, वही गुरु के चरणों में लगकर, (उन चरणों को) अड़स तीर्थों से विशेष ज्ञान कर, पूजता है । हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध—यह चार अग्नि की नदियाँ (जगत में प्रवाहित हो रही हैं) । जो-जो (मनुष्य) उन नदियों में पड़ते हैं, वे दग्ध हो जाते हैं । हे नानक, प्रभु की कृपा से (गुरु के चरणों में) लगकर (इन नदियों को) पार किया जा सकता है ॥३९॥

पड़ड़ी जीवविघ्ना मरु मारि न पछोताईऐ ।
भूठा इहु संसारु किनि समझाईऐ ॥
सचि न धरे पिघारु धंधे घाईऐ ।
काल बुरा खै कालु सिरि बुनीघाईऐ ॥
हुकमी सिरि जंदाहु मारे दाईऐ ।
घ्रापे बेइ पिघारु मंनि बसाईऐ ॥
सुहृदु न जसा विलंसु भरीऐ पाईऐ ।
गुरपरसादी बुझि सचि समाईऐ ॥१२॥

पड़ड़ी : (हे साधक) (मंद वामनाथों को) मार कर जीवित ही इस प्रकार मरो कि (अन्त में) पछताना न पड़े । किसी बिरले को ही यह समझ आती है कि यह संसार भूठा है । (साधारणतया जीव मंद वासनाओं के अधीन होकर) संसार के प्रपंचों में भटकता रहता है और सत्य में प्यार नहीं पाता; (वह इस बात का ध्यान नहीं रखता कि) बुरा काल, नाश करने वाला काल संसार के सिर पर (हर समय खड़ा) है; यह यम प्रभु की आज्ञा से (प्रत्येक के) सिर के ऊपर (उपस्थित) है और दाव लगा कर मारता है । [जंदाहु < फारसी, जंदाहु =

गैवार, धाराबी । यह शब्द 'साधारणतया यम के साथ प्रयुक्त होने से, अकेला भी यम के अर्थ में व्यवहृत होता है ।

(जीव का क्या वश है ?) प्रभु आप ही अपना प्यार प्रदान करता है (और जीव के) मन में (अपने आप ही) बसाता है । जब (साँसे) पूरी हो जाती है, तो पलक मात्र, निमिष मात्र की देरी नहीं लगायी जा सकती । सदगुरु की कृपा से (कोई विरला ही व्यक्ति) इसे समझ कर सत्य में समाहित हो जाता है ॥ १२ ॥

सलोक तुमी तुमा विसु अकु धतूरा निसु फसु ।
मनि मुखि बसहि तिसु जिसु तूँ चिनि न आवही ।
नानक कहोऐ किनु हंडनि करमा बाहरे ॥४०॥
मति पंखेरु किरतु साधि कब उत्तम कब नीच ।
कब चंदनि कब अकि डालि कब उची परीति ॥
नानक हुकमि बलाईऐ साहिव लगी रीति ॥४१॥

सलोक :—(हे प्रभु,) जिस मनुष्य के चित्त में तू नहीं बसता उसके मन और मुख में तुम्ही, तुम्हा, विष, अक, धतूरा तथा नीम रूप फल बस रहे हैं (तात्पर्य यह कि उसके मन और मुख दोनों विष तुल्य कड़वे हैं) ।

हे नानक, ऐसे भाग्य-विहीन मनुष्य भटकने फिरने हैं, (प्रभु के अनिरक्ति और) किसके आगे (उनका विष) दिखाया जाय ? (तात्पर्य यह कि प्रभु आप ही उनका यह विष—यह रोग दूर करनेवाला है) ।

[तुम्ही, तुम्हा एक प्रकार के कड़वे फल हैं, जो जगल में उगने हैं] ॥ ४० ॥

(मनुष्य की) मति पक्षी है, उसके पूर्व जन्मों के किए हुए कर्मों के संस्कार (कीरत) उसके साथी है, (इन संस्कारों के फलस्वरूप) मति कभी उत्तम होती है और कभी नीच, कभी (यह मति रूपी पक्षी) चन्दन (के वृक्ष) पर (बैठता है) और कभी आक की डाल पर, कभी (इसके अन्तर्गत परमात्मा के प्रति) ऊँचा प्रीति (उत्पन्न होती है) ।

साहब की (आदि काल से ही यह) रीति चली आ रही है कि वह (सभी जीवों को अपनी) आज्ञा में चला रहा है, (तात्पर्य यह कि उनके आज्ञानुसार ही कोई अच्छी और कोई बुरी मति वाला है) ॥ ४१ ॥

पउड़ी केते कहहि बखाय कहि कहि जावणा ।
वेद कहहि बखिआण अंतु न पावणा ॥
पढ़िऐ नाहो भेदु बुझिऐ पावणा ।
खटु दरसन कै भेलि किसे सचि समावणा ॥
सचा पुरखु अलखु सबदि सुहावणा ।
मंने नाउ बिसंख दरगह पावणा ॥
खालक कउ आवेसु डाढी गावणा ।
नानक जुगु जुगु एकु मंनि बसावणा ॥ १३ ॥

पड़ड़ी :—कितने ही (मनुष्य) (परमात्मा के गुणों का) वर्णन करते आते आए और वर्णन करते-करते (जगत् से) चले गए । वेद (आदि धार्मिक ग्रन्थ भी उसकी महिमा का) वर्णन करते हैं, पर अन्त नहीं पाते हैं । पढ़ने से (उस परमात्मा) का रहस्य नहीं (ज्ञात होता है) समझने से ही (उसकी) प्राप्ति होता है । पटु-दर्शन (उत्तर मीमांसा, पूर्व मीमांसा, न्याय, योग, वैशेषिक, सांख्य) के (बाह्य) वेश धारण के द्वारा कौन व्यक्ति मत्स्य (परमात्मा) में समा सका ? (अर्थात् कोई भी नहीं) ।

(वह) सत्य पुरुष है, अलक्ष्य है, (पर गुरु के) शब्द द्वारा मुहावना लगता है । जो मनुष्य अनन्त परमात्मा के नाम को मानता है, (तात्पर्य यह कि जो परमात्मा के अनन्त नाम में युक्त होता है), वह उसके दरबार को पा लेता है ; (वह) मृष्टि-रचयिता (खालिक) को प्रणाम करता है, और चारण बन कर (उम प्रभु का) गुणगान करता है । हे नानक, (वह व्यक्ति) युग में (विराजमान रहतेबाने) एक (प्रभु) को अपने मन में बसाता है ॥ १२ ॥

सलोहु मारु मोहि न तृपनिआ ग्रमी लहै न भुख ।
राजा राजि न तृपनिआ साइर भरे कि सुक ॥
नानक सखे नाम की केरी पुछा पुछ ॥ ४२ ॥
खनिअहु जंमे खते करनि त खतिआ बिचि पाहि ।
धोते मूलि न उतरहि जे सउ धोवनग पाहि ॥
नानक बखसे बखसीअहि नाहि त पाहो पाहि ॥ ४३ ॥
नानक बोलयु भखणा दुख छडि मंगीअहि सुख ।
सुसु दुत्तु दुइ दरि कपड़े पहिरहि जाइ मनुख ॥
जिथै बोलणि हारीऐ तिथै चंगी चुप ॥ ४४ ॥

सलोकु :—मरुस्वल्प मेह से (कभी) गी तृप्त होता, अग्नि को (काष्ठादि को जलाने को) भूख भी नहीं मिटती, (कोई) राजा कभी राज्य-करने से नहीं तृप्त होता, भरे हुए (अर्गाथ) समुद्र को गुणकता क्या (बिगाड़ सकती है) ? (तात्पर्य यह कि चाहे जितनी गर्मी कभी न पड़े, किन्तु गर्मी को उष्णता और गुणकता समुद्र को नहीं सुखा सकती) । हे नानक, (उसी प्रकार) (नाम जपनेवालों के अंतर्गत) मछले नाम की कितनी (उत्कट अभिलाषा होती है), इस बात को क्या पूछताछ हो सकती है ? (अर्थात् यह बात बताई नहीं जा सकती) ॥ ४२ ॥

पापों के कारण जन्मते हैं, (यहाँ— इस संसार में भी) पाप ही करते हैं, (आगे भी इन पापों के किए हुए संस्कार के फलस्वरूप) पाप में ही पड़ते हैं (प्रवृत्त होते हैं) । (ये पाप) धोने से बिलकुल नहीं उतरते, चाहे इन्हे सौ बार ही धोया जाय । हे नानक (यदि प्रभु) कृपा करे, (तो ये पाप) बरखे जाते हैं, नहीं तो जूते ही पड़ते हैं ॥ ४३ ॥

हे नानक, जो (व्यक्ति) दुःख छोड़ कर सुख माँगने है, यह बोलना (माँगना) व्यर्थ ही है । सुख और दुःख दोनों ही (प्रभु के) दरवाजे से मिले हुए वस्त्र हैं, (जिन्हें मनुष्य जन्म धारण कर इस संसार में) पहनता है, (तात्पर्य यह कि दुःख और सुख के चक्र प्रत्येक पर आते

ही रहते हैं) । जिस स्थान पर बोलने में हार ही खानी पड़े, वहाँ चुप ही रहना भला है ।
(तात्पर्य यह कि परमात्मा को मर्जी में चलना सबसे सुन्दर है) ॥ ४४ ॥

पउड़ी चारे कुंडा देखि अंदरु भालिआ ।
सचे पुरखि अलखि सिरजि निहालिआ ॥
उभड़ि भुले राह गुरि बेखालिआ ।
सतिगुर सचे बाहु सनु समालिआ ॥
पाइआ रतनु घराहु बीबा बालिआ ।
सचे सबदि सलाहि सुखीए सच बालिआ ॥
निडिरआ डरु लगि गरबि सि गालिआ ।
नाबहु भुला जगु फिरै बेतालिआ ॥ १४ ॥

पउड़ी :—(जो मनुष्य) चारों कोनों को (तरफ) देख कर (भाव यह बाहर चारों ओर भटकना छोड़ कर) अपने अन्दर ढूँढता है, (उसे यह सूझ पड़ता है कि) सच्चे अलख अकाल पुरुष ने (सत्ता) उत्पन्न करके आप ही उसकी देख-रेख की है (तात्पर्य यह कि सँभाल कर रहा है) ।

कुमार्ग में भटकते हुए मनुष्य को गुरु ने मार्ग दिखवाया है, (गुरु ही मार्ग दिखाता है) । सच्चे मदगुरु को धन्य है, (जिसकी कृपा में) मनुष्य (परमात्मा) संभाला गया है । (जिस मनुष्य के अंतर्गत सदगुरु ने ज्ञान का) दीपक जला दिया है, उसे अपने भीतर ही (नाम—) रत्न प्राप्त हो गया है । (गुरु की शरण में आकर) सर्वे शब्दों के द्वारा (प्रभु की) स्तुति करके (मनुष्य) मुख्यपूर्वक सत्य में निवास करने लग जाते हैं ।

(किन्तु जिन्होंने प्रभु का) डर नहीं किया, (उन्हें अन्ध) डर लगने है (और वे) अहंकार में पड़ कर गलते हैं । (प्रभु के) नाम को विस्मृत होकर (मनुष्य) जगत् में बेताल (भूल के समान) फिरता है ।

[विशेष :—‘भालिआ’, ‘निहालिआ’ आदि शब्द भूतकाल की क्रियाओं के हैं । किन्तु इनका प्रयोग वर्तमान काल में करना समीचीन प्रतीत होता है ।] ॥ १४ ॥

सलोडु सिरु खोहाइ पोअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही ।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही ॥
भेड़ा बाणी सिरु खोहाइनि भरोअनि ह्य सुआही ।
माऊ पीऊ किरतु यवाईनि टबर रोवनि पाही ॥
ओना पिडु न पनलि किरिआ न बीबा मुगु किचाउ पाही ।
अठसठि तोरख बेनि न दोई ब्रहमण अंतु न खाही ॥
सदा कुचील रहहि दिन राती मखे टिके नाही ।
भुं'डो पाइ बहनि निति मररो वड़ि दीबाणि न जाही ॥
लकी कासे हथी कुमण अगो पिछी जाही ॥
न ओइ गोपी ना ओइ जंगम ना ओइ काजी मुला ।
बयि बिगोए फिरहि विगुते फिटा बतै गना ॥

जोधा मारि जीवाले सोई अरु न कोई रखे ।
 दानहु ते इसनानहु बँधे भसु पई सिरि खुबे ॥
 पाणी बिचहु रतन उपने मेरु कीभा भाषाणी ।
 अठसठि तीरथ देशे थापे पुरबी लगे बाणी ॥
 नाइ निवाजा नाते पूजा नाबनि सदा सुजाणी ।
 सुइया जीवविद्या गति होवै जाँ सिर पाईये पाणी ॥
 नानक सिरि खुबे सैतानी एना गल न भाणी ॥
 बुलै होइये होइ बिलावतु जोधा जुगति समाणी ।
 बुठै अंतु कमावु कपाहा सभसे पड़दा होवै ॥
 बुठै घाहु चरहि निति सुरही साधन दही विलोवै ।
 तितु घिइ होम जग सद पूजा पइये कारवु सोहै ॥
 गुरु संसुदु नवी सभि सिलो नाते जितु बडिआई ।
 नानक जे सिरि खुबे नाबनि नाही ता सत चटे सिरि छाई ॥ ४५ ॥

आपि बुझाए सोई ब्रह्म ।
 जिसु आपि सुभाए निसु सभु किछु स्रभै ॥
 कहि कहि कथना साइया स्रभै ॥
 हुकमो सगल करे आकार ।
 आपे जाणै सरब वीचार ॥
 अखर नानक आखिआ आपि ।
 लहै भराति होवै जिसु दाति ॥ ४६ ॥

विशेष :—निम्नलिखित 'सलोक' जैनियों के सम्बन्ध में कहा गया है ।

सलोक :—(जैनी) सिर के बाल नुचवा कर गदा पानी पीते हैं और जूठो (रोटी) माँग-माँग कर खाते हैं । (वे) अपना मल फैला देते हैं । और मुँह से (गंदी) साँस लेते हैं, पानी देख कर सहमते हैं, (शरमाने) हैं, (तात्पर्य यह कि पानी का प्रयोग नहीं करते) । भेड़ों की तरह बाल नुचवाते हैं (और उनके बाल नोचनेवालों के) हाथों में राख लगा दी जाती है । माँ-बाप के कर्म (तात्पर्य यह कि परिश्रम द्वारा धनोपार्जन करके कुटुम्ब पालन करने का कर्म) गँवा देते हैं, (अतएव इनके) कुटुम्बी—सम्बन्धी ढाँडे मार कर रोते हैं ।

(इस लोक को तो उन्होंने इस भाँति नष्ट कर दिया, आगे परलोक के सम्बन्ध में सुनिए) न तो वे पिंडदान करते हैं न तो (श्राद्ध के) पत्तल की क्रिया करते हैं, न दीपक देते हैं, मरने पर (पता नहीं) कहाँ जाते हैं ? अड़सठ तीर्थ भी उन्हें पनाह नहीं देते और ब्राह्मण (भी) (उनका) अन्न नहीं खाते । (वे) सदैव दिन रात गंदे रहते हैं, मत्स्य में तिलक भी नहीं लगाते । वे नित्य भुण्ड में बैठते हैं, (जैसे किसी) गम्भी में गए हो [“भुण्डी पाइ बहनि” —पंजाबी मुहावरा है जिसका अर्थ “सिर पर कपड़े रख कर उदास होकर इस प्रकार बैठना जैसे किसी गम्भी में गए हो” होता है] । (वे) किसी सभा-दरबार में भी नहीं जाते । (उनकी) कमर में प्याले बंधे हैं, हाथ में सूत का बना हुआ एक प्रकार का भाङ्ग लिए रहते हैं, (ताकि कोई कीड़ा-मकोड़ा मिल जाय तो उमंगे उन्हें बृंहार दें, जिससे वे

मरने न पारें)। और आगे-पीछे (एक पंक्ति में) चलने है। न तो वे योगी हैं, न जंगम है, न काजी अथवा मुल्ला हैं, (अर्थात् उनके आचार-व्यवहार न तो हिन्दुओं से मिलने है और न मुसलमानों से)। परमात्मा के मारे हुए (वे) धिक्कारने (योग्य अवस्था में) घूमते हैं, (उनका सारा) समूह — झुण्ड (सम्प्रदाय) ही बिगड़ा हुआ है।

(वे यह नहीं समझते कि) जीवों को मारने-जिलाने वाला (प्रभु) आप ही है; (प्रभु के बिना) कोई और (उन जीवों का) नहीं रख सकता। (जीवों-हसा के भय से, जैनी लोग किरत कर्म त्याग कर) दान और स्नान से भी विहीन हो गए हैं, (उनके) लुचित धार में भस्म पड़ी है।

(जैनी लोग जीव हिंसा के भय से साफ पानी नहीं पीते और स्नान भी नहीं करने, पर यह बात उनकी समझ में नहीं आती कि जब देवताओं ने) मंदराचल पर्वत को मथानी बना कर (समुद्र-मथन किया), तो उसमें से (चोदह) रत्न उत्पन्न हुए। (जल के ही सहारे) देवताओं के अष्टसठ तीर्थ स्थापित किए गए, जहाँ पर्व लगते हैं तथा कथा-वार्ता (होती है)। स्नान करके नमाज पढ़ी जाती है, स्नान करके ही पूजा होती है, (अनएव) सयाने लोग सदैव स्नान करते हैं। मरने-जीने पर (तभी) गति होती है, जब सिर के ऊपर पानी डाला जाय। (पर), हे नानक, ये लुचित सिरवाले शैतानी (मार्ग पर) हैं, इन्हें (जल एवं स्नानादि की महत्ता की) बातें अच्छी ही नहीं लगती।

(जल को और महत्ता देखिए), जल वर्षा होने से आनन्द होता है, [बिलावल राग आनन्द का प्रतीक है, अतः बिलावल का प्रतीकार्य आनन्द का प्रतीकार्य 'आनन्द', 'प्रगन्नता' होता है।] जीवों की जीवन-सुक्ति भी जल में ही समायो हुई है। जल-वर्षा होने में ही अन्न (पेदा होता है), ईख (उगता है) और कपास होती है, जो (सभी मनुष्यों का) परदा बनती है। पानी बरसने से (उगी हुई) घासें, गाँयें नित्य चरती हैं (और दूध देती हैं, उस दूध से बने हुए) दही को स्त्रियाँ बिलौता हैं—मथता हैं (और धा बनाती हैं)। उसा धा से सदैव होम, और पूजा होती है, (उस धा के) पड़ने से सारे कार्य शोभनाय होत हैं।

(एक और भी स्नान है), गुरु समुद्र है, (उसको) सारी शिक्षा नदी है (अथवा उससे सारे शिष्य नदियाँ हैं), (जहाँ) स्नान करने से, बड़ाई प्राप्त होती है। हे नानक, जो ये लुचित सिरवाले (इस नाम-जल में) स्नान नहीं करने, उनके सिर में सात बूक राख (डाली जाय) ॥ ४५ ॥

जिसे (परमात्मा) स्वयं समझाता है, वही समझता है। जिसे (प्रभु) स्वयं सूक्त देता है, उसे (जीवन-यात्रा को) सब कुछ सुझ आ जाती है। (केवल बार-बार) कथनी कहने से, (कुछ भी नहीं होता, ऐसा मनुष्य) माया में भगडता है।

(प्रभु ने) समस्त सृष्टि-रचना अपने हुक्म से की है। समस्त जीवों के सम्बन्ध में (वही) विचार करता है। हे नानक, (परमात्मा ने) स्वयं ही इस अक्षर को कहा है; जिसे प्रभु दान देता है, उसके मन की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है ॥ ४६ ॥

पड़ो हउ ढाढी बेकारु कारै लाइआ।

राति बिहै कै बार धुरदु फुरमाइआ ॥

ढाढी सच्चै महलि खसमि बुलाइआ ।
 सच्ची सिफति सालाह कपड़ा पाइआ ॥
 सच्चा अमृत नाम भोजनु आइआ ।
 गुरमति खाधा रजि तिनि सुख पाइआ ॥
 ढाढी करे पसाउ सबदु बजाइआ ।
 नानक सनु सास्ताहि पूरा पाइआ ॥ १५ ॥ सुधु ॥

पउड़ी — मैं बेकार था, मुझे प्रभु ने (अपना) चारण बना कर (वास्तविक) कार्य में लगा दिया । (प्रभु का) प्रारम्भ से हुक्म हो गया कि (मैं) रात-दिन (उसके) यश का गान करूँ । मुझ चारण को स्वामी ने अपने सच्चे महल में बुला लिया । (उसने) सच्ची स्तुति और प्रशंसा के प्रतिष्ठा-बन्ध मुझे पहना दिए । सच्चे अमृत नाम का भोजन (मुझे) परमात्मा के यहाँ से आ गया । गुरु की शिक्षा पर चलकर जिस-जिस मनुष्य ने (यह अमृत नाम रूपी भोजन) चूम होकर किया है, उसने सुख पाया है । मैं चारण (भो ज्यो-ज्यों) उसकी स्तुति एवं प्रशंसा के गीत गाता हूँ, (ज्यो-ज्यो प्रभु के यहाँ मे निने) नाम-प्रसाद को छकता हूँ (नाम का आनन्द मानता हूँ) ॥ १५ ॥ सुधु ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु गउड़ी गुआरेरी, महला १, चउपदे दुपदे

सबद

[१]

भउ मुनु भारा बडा तोलु। मनमति हउली बोले बोलु ॥
सिरि परि चलोऐ सहीऐ भारु। नदरी करमी गुर वीचारु ॥१॥
भै बिनु कोइ न संघसि पारि। भै भउ राखिआ भाइ सवारि ॥१॥ रहाउ ॥
भै तनि अगनि भखै भै नालि। भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि ॥
भै बिनु घाड़त कनुनिकाच। अंधा सचा अंधी सट ॥२॥
बुधी बाजी उपजै चाउ। सहस सिआरणप पवै न ताउ ॥
नानक मनमुलि बोलगु बाउ। अंधा अखरु बाउ बुआउ ॥३॥१॥

(परमात्मा का) भय बहुत भारी है और बड़े तौल वाला है (भाव यह है कि परमात्मा के य में गंभीरता और बड़ाई प्राप्त होती है) । (मनुष्य के) मन की बुद्धि हल्की है और (खाली) बोली ही बोलती है । (यदि इस भय को) शिरोधार्य करके चला जाय (और भ बलवान् होकर) इसका भार सहन किया जाय, तो उस कृपालु (परमात्मा) की कृपा-दृष्टि से गुरु का विचार (प्राप्त होता है) ॥ १ ॥

(परमात्मा के) भय बिना कोई भी (इस संसार-सागर को) नहीं पार कर सकेगा । (गुरुमुख ने परमात्मा के) भय में रह कर उस भय को बड़े प्रेम से सँवार कर रक्खा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(साधक के) शरीर में (जो परमात्मा के) भय की अग्नि है, वह भय में (और भी अधिक) प्रज्वलित होती है । भय में रहकर उस भय को (गुरु के) शब्द द्वारा संवार कर गढ़ा जाय । भय के बिना जो कुछ भी गढ़ना होता है, वह कच्चा ही होता है । जो सँचा अन्धा होता है, उस पर मुद्रित (सिक्का) भी अंधा ही होता है । (भावार्थ यह कि जैसी साधना-सम्बन्धी बुद्धि होती है, वैसा ही उसका फल भी होता है ।) ॥ २ ॥

(भक्तानियों को) बुद्धि (सासारिक) खेल में (लगे रहती है) और (वह उसी में) प्रसन्न होती है । चाहे हजारों चतुराइयाँ करे, पर (भय रूपी अग्नि का) ताप (उन्हें) नहीं लगता, (तात्पर्य यह है कि सासारिक व्यक्तियों की बुद्धि परमात्मा के भय से विहीन होती है) । हे नानक, मनमुखों का बोलना व्यर्थ होता है । उन्हें उपदेश (देना) व्यर्थ है और दुष्टा देनी भी व्यर्थ है ॥ ३ ॥ १ ॥

[२]

डरि घर घरि डरु डरि डरु जाइ । सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ ॥
तुष्टु बिनु दूजी नाही जाइ । जो किछु बरतै सभ तेरी रजाइ ॥१॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु । डरि डरि डरणा मन का सोरु ॥१॥ रहाउ ॥
न जीउ मरै न डूबै तरे । जिनि किछु कीआ सो बिछु करै ॥
हुकमे धावै हुकमे जाइ । आगे पाछे हुकमि समाइ ॥२॥
हंसु हेतु आसा असमानु । तिसु बिनु भूख बहनु नैसानु ।
भउ खारणा पीणा धाधारु । विरु खाधे मरि होहि गवार ॥३॥
जिसका कोई कोई कोई । सभु को तेरा तूँ समना का सोइ ।
जा के जीअ अंत धनु मालु । नानक आखरु बिलमु बीचार ॥४॥२॥

(परमात्मा के) डर से (वास्तविक) घर की (प्राप्ति होती है) और (हृदय रूपी) घर में ऐसा डर (आ बसता है), जिस डर से अन्य डर खले जाते हैं । वह डर कैसा है, जिस डर से और डर समाप्त हो जाते हैं ? (हे प्रभु,) तुम्हारे बिना और कोई स्थान नहीं है । (हे परमात्मा), जो कुछ भी (ससार में) बरत रहा है, वह सब नेरी इच्छा से ही है ॥ १ ॥

(यदि परमात्मा के भय के प्रतिरिक्त) अन्य डर हो, तो डरना चाहिये । किसी और डर के डर से डरना मन का द्वन्द्व (शोर) है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जीव न मरता है, न डूबता है, (वह) मुक्त (हो जाता है) । जिस (प्रभु ने) (सब) कुछ किया है, वही (सब) कुछ करता है । (परमात्मा के) हुकम में ही (जीव) आता है (उत्पन्न होता है) और उसी के हुकम से जाता है (उस ससार से विदा होता है) । (जीव) आगे-पीछे हुकम में ही समा जाता है ॥ २ ॥

हिंसा, मोह, आशा और अहंकार [असमान = किसी को अपने समान न समझना, अहंकार] — (जिस व्यक्ति में) बसते हैं, उसमें (विकारों की) भूख, नदी के प्रवाहवत् प्रबल है । (परमात्मा से) भय करना ही उसका भोजन है, (और परमात्मा का) आहार लेना ही उसका जल है । बिना (भय का) भोजन किए (मनुष्य) गँवार होकर मर जाता है ॥ ३ ॥

जिसका कोई होता है, उसका कोई ही कोई होता है (तात्पर्य यह कि हर एक का हर कोई नहीं होता), पर (हे हरी) तू सब बा है और सब तेरे है । हे नानक, जिसके जीव-जन्तु तथा धन और माल हैं, उस प्रभु के सम्बन्ध में कथन करना बड़ा कठिन विचार है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

माता मति पिता संतोखु । सत् भाई करि एहु बिसेखु ॥१॥

कहरा है किछु कहरा न जाइ । तउ कुदरति कीमति नहीं पाइ ॥१॥ रहाउ ॥

सख सूरति दुइ ससुर भए । करणी कामणि करि मन लए ॥२॥

साहा संजोगु बीआहु बिजोगु । सब संतति कहु नानक जोगु ॥३॥३॥

(हे साधक), बुद्धि को माता, सतोप को पिता तथा सत्य को भाई बनाओ—ये ही विशेष (सम्बन्ध) हैं ॥ १ ॥

(परमात्मा के सम्बन्ध में) कथन करना (व्यर्थ ही) है, (क्योंकि) उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता । (हे परमात्मा) तेरो कुदरत की कीमति नहीं पाई जा सकती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

लज्जा और (परमात्मा की) सुरति को दो—सख ससुर बनाओ । हे मन, (शुभ) करनी को स्त्री बनाओ ॥ २ ॥

(सत्संग का) मेल (विवाह की) लग्न हो, (आर सासारिक विषयों से) वियोग—उत्तरामता विवाह हो । गुरु नानक देव का कथन है कि सत्य को संतान बनाओ—(यही) सम्बन्ध ठीक है ॥ ३ ॥ २ ॥

[४]

पउखै पाणी अगनौ का मेलु । चंचल चपल बुधि का खेलु ॥

नउ दरवाजे दसवा दुआरु । बुभु रे गिआनी एहु बीचारु ॥१॥

कथता बकता सुनता सोई । आपु बीचारे सु गिआनी होई ॥१॥ रहाउ ॥

बेहो माटी बोलै पउखु । बुभु रे गिआनी मुआ है कउखु ॥

भूईं सुरति बाहु अहंकारु । ओहु न भूआ जो देखरुहारु ॥२॥

जै कारणि तटि तीरय जाही । रतन पदारथ घट ही माही ॥

पड़ि पड़ि पंडितु बाहु बखारौ । भीतरि होबी बसतु न जायौ ॥३॥

हउ न भूआ मेरी सुई बलाइ । ओहु न भूआ जो रहिआ समाइ ॥

कहु नानक गुरि ब्रह्मु दिखाइआ । मरता जाता नवरि न आइआ ॥४॥४॥

(मनुष्य का यह शरीर) पवन, पानी और अग्नि (आदि तत्वों) का मेल है, जिसमें चंचल और चपल, बुद्धि का खेल हो रहा है । इस शरीर में नव दरवाजे हैं (नासिका के दो छिद्र, दो आंखें, दो कान, मुँह, गुदा, तथा मूत्रेश्मि) और दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) भी है । अरे जानी, इस विचार को समझो ॥ १ ॥

कथन करनेवाला, वक्ता और श्रोता (शरीर में स्थित) वही (परमात्मा) है । जो अपने आप को विचारता है, वही जानी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

देह मिट्टी (आदि तत्वों का मेल) है, (इसमें) पवन बोल रहा है (सँसे आ जा रही हैं) । ऐ जानी, समझो कौन मरा है ? वह शरीर (सूरत, आकार) जो अहंकार और वादविवाद के सहारे स्थित था, समाप्त हो गया । (किन्तु शरीर में स्थित) जो द्रष्टा था, वह नहीं मरा (वह ज्यो का त्यों है, साक्षी भाव से स्थित है) ॥ २ ॥

जिस (साक्षी चेतन आत्मा की प्राप्ति के) निमित्त (मनुष्य) तीर्थ-तटों आदि में जाते हैं, वह (आत्मा रूपी) रत्न-प्रदार्थ घट (शरीर) में (स्थित) है। पंडित-गण पढ़-पढ़ कर तर्क-वितर्क की व्याख्या करते हैं, किन्तु भीतर होती हुई भी (आत्म—) — वस्तु को (वे लोग) नहीं जानते ॥ ३ ॥

(साक्षी रूप) में नहीं मरा, मेरी (अविद्या रूपी) बला (अवश्य) मर गई। जो (आत्मा सर्वत्र) व्याप्त है, वह नहीं मरा। नानक कह रहे हैं कि गुरु ने ब्रह्म को दिखा दिया (साक्षात्कार करा दिया)। (उस ब्रह्मसाक्षात्कार के फलस्वरूप अब मेरी दृष्टि में) न कोई मरता नजर आ रहा है, और न जन्म धारण करता हो (नजर आ रहा है) ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

गउड़ी देखणी

सुणि सुणि बूझै मानै नाउ । ता कै सद बलिहारै जाउ ॥
 आपि भुलाए ठउर न ठाउ । तूँ समझावहि मेलि मिलाउ ॥१॥
 नामु मिलै चले भे नालि । बिनु नावै बाधो सभ कालि ॥१॥ रहाउ ॥
 खेती बणनु नावै की ओट । पापु पुंनु बीज की पोट ॥
 कामु क्रोधु जीअ महि चोट । नामु बिसारि चले मन खोट ॥२॥
 साखे गुर की साखी सोख । तनु मनु सीतसु साचु परीख ॥
 जल पुराइनि रस कमल परीख । सबदि रते मोठे रस ईख ॥३॥
 हुकमि संजोगी गड़ि दस दुआर । पंच वसहि मिलि जोति अपार ॥
 आपि तुलै आपे बणजार । नानक नामि सवारणहार ॥४॥५॥

(जो शिष्य गुरु के उपदेश) गुन-मुन कर समझता है औरही नाम मानता है, उनके ऊपर मैं सदैव बलिहारी होता हूँ। (ऐ प्रभु, जिसे) तू भटका देता है, उसे कोई ठीर-टाँव (नहीं प्राप्त होता), (जिस) तू (सत्य का बोध) करा देता है, उसे तू अपने में मिला लेता है ॥ १ ॥

(यदि) नाम मिलता है, (तो) वही मेरे साथ (अन्त तक) चलता है। बिना नाम के काल ने सबको बाँध रक्खा है ॥१॥ रहाउ ॥

(वास्तविक) खेती और वाणिज्य नाम की ओट है। (मनुष्य) पाप-पुण्य के बीजों की पोटली है। काम और क्रोध अन्तःकरण में चोट (के समान) हैं। (जो लोग) नाम भुलाते हैं, वे छोटे मन से यहाँ से (इस संसार से) चले जाते हैं ॥ २ ॥

सच्चे गुरु की सच्ची शिक्षा के द्वारा सत्य स्वरूप (परमात्मा) को परख कर तन और मन दोनों ही शीतल हो जाते हैं। जल में कमल के पत्ते एवं कमल के रस की (भाँति अलिप्त रहना ही ऐसे पुरुष की) परख है। जो मनुष्य (गुरु के) शब्द में अनुरक्त है, वे ईश्वर के रस (की भाँति) मोठे हैं ॥ ३ ॥

(उस परमात्मा के) हुक्म के संयोग से (शरीर रूपी) किले में दस दरवाजे (स्थित) हैं। पंच-तत्त्व अपार ज्योति के (साय शरीर रूपी गढ़ में) निवास करते हैं (अर्थात् परमात्मा की अद्भुत कारीगरी से पंच-तत्त्वों द्वारा निर्मित शरीर में अपार चेतना-शक्ति का

निवास होता है) । (इरी) घ्राप ही बनजारा है और घ्राप ही (सोदा बन कर) तुल रहा है ।
हे नानक, (गुरु के द्वारा प्राप्त प्रभु का) नाम ही (शिष्य को) संबारने वाला है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

गउड़ी

जातो जाइ कहा ते आवै । कह उपजै कह जाइ समावै ।
किउ बाधिभो किउ मुक्तो पवै । किउ अविनासी सहजि समावै ॥१॥
नामु रिदै अंमृतु सुखि नामु । नरहर नामु नरहर निहकामु ॥१॥ रहाउ ॥
सहजे आवै सहजे जाइ । मन ते उपजै मन माहि समाइ ॥
गुरुमुखि मुक्तो बंधु न पाइ । सबदु बीचारि छुटे हरिनाइ ॥२॥
तरवर पंखी बहू निसि वासु । सुख दुखीआ मनि मोह बिणासु ।
सभ बिहाग तकहि आगासु । दहदिसि धावहि करम लिखिआसु ॥ ॥
नामु संजोगी गोइलि आदु । काम क्रोध फूटे बिसु मादु ॥
बिनु बलर सूनो घरु हादु । गुर मिलि खोले बजर कपाट ॥४॥
साधु मिलै पूरब संजोग । सचि रहसे पूरे हरि लोग ॥
मनु तनु बे लै सहजि सुभाइ । नानक तिन कै लागउ पाइ ॥५॥६॥

जन्म धारण करनेवाला और मरनेवाला (जीव) कहाँ में आता है (उत्पन्न होता है) ? (यह जीव) कहाँ में उत्पन्न होता है, और कहाँ समा जाता है ? (यह) किस प्रकार बाँधा जाता है और किस प्रकार मुक्ति पाता है ? (यह) किम प्रकार सहज अविनाशी (स्वरूप परमात्मा में) लीन होता है ? ॥ १ ॥

हृदय में (स्थित) नाम तथा मुख में (स्थित) नाम अमृत (सदाश) है । (जो) नृसिंह (परमात्मा) (का नाम जपता है), (वह) नृसिंह— परमात्मा का (रूप होकर) निष्काम (हो जाता है) ॥ १ ॥

(जीव) सहज ही आता है और सहज ही जाता है । मन (के संकल्पो-विकल्पो के अनुसार) जीव उत्पन्न होता है, और (उनके नाश में वह परमात्मा में) लीन हो जाता है । गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) मुक्त हो जाता है (और फिर) बन्धन में नहीं पड़ता । (गुरु के) शब्द पर विचार कर, परमात्मा का नाम (जप कर) (साधक सासारिक बन्धनों से) मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

(सार रूपी) वृक्ष पर बहुत से (जीव रूपी) पक्षी रात के समय आकर निवास करते हैं । मन के (मोह के कारण कोई) सुखी होते हैं और कोई दुःखी होते हैं, (इस प्रकार) नष्ट (होते रहते हैं) । संध्या के पश्चात् (रात बीतने पर) दिन उदय होने पर (फिर) आकाश की ओर (पक्षी) ठाकने लगते हैं, (इस प्रकार अपने) कर्म के लिये अनुसार (वे) दशो दिशाओं में दौड़ने लगते हैं ॥ ३ ॥

(जो) नाम के सयोगी हैं, (वे इस ससार को) चारागाह वाले स्थान (के सदाश) (क्षणभंगुर समझते हैं) । उनके काम-क्रोध के बिप का मटका फूट जाता है । बिना (नाम

रूपी) सीदे के घर और हाट सूना रहता है । (हे साधक) गुरु में मिलो, (वही अज्ञानता के) बज्र-कपाट खोलता है ॥ ४ ॥

पूर्व के संयोगानुसार साधु मिलते हैं । (जो) सत्य में आनन्दित होते हैं, (वे ही) हरि के पूर्ण भक्त हैं । (अपना) तन और मन सोप कर, स्वाभाविक ही (परमात्मा को) प्राप्त कर लेते हैं । नामक कहते हैं (कि ऐसे भक्तों) के चरणों में (मैं) पड़ता हूँ ॥ ५ ॥ ६ ॥

[७]

काम क्रोध माइप्रा महि चीतु । भूठ विकारि जागै हित चीतु ।
पूँजी पाप लोभ की चीतु । तरु तारी मनि नामु रूचीतु ॥१॥
बाहु बाहु सावे में तेरी टेक । हउ पापी तूँ निरमलु एक ॥१॥ रहाउ ॥

अगनि पाणी बोले भइ बाउ । जिहवा इंद्री एकु सुभाउ ॥
गिसटि विकारी नाही भउ भाउ । आपु मारे ता पाए नाउ ॥२॥
सबदि मरै फिरि मरणु न होइ । बिनु भूए किउ पूरा होइ ।
परपंचि विप्रापि रहिआ मनु दोइ । थिरु नाराइणु करे सु होइ ॥३॥
बोहियि चडउ जा आवै बारु । ठाके बोहियि दरगह मार ।

सनु सालाहो धनु गुर दुआरु । नामक दरि धरि एकंकारु ॥ ४ ॥ ७ ॥

(विषयासक्त मनुष्य का) विलसित काम, क्रोध और माया में ही (नगा रहता है) । भूठ और विकार में ही (उसका) मोह वाला चित्त जागता रहता है । (उसने) पाप और लोभ की पूँजी (एकत्र) की है । (साधक) मन में पवित्र नाम रख कर (स्वयं नगता है) और दूसरों को भी) तार देता है ॥ १ ॥

हे सत्य (परमात्मा) , तू धन्य है, मुझे तेरा ही महारा है । मैं पापी हूँ, तू ही एक पवित्र है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आग और पानी (के संयोग में) प्राण भडभड कर बोलने हैं, (तात्पर्य यह कि जीव आग और पानी के बल पर भला और बुरा बोलता है) । जिह्वा (आदि ज्ञानेन्द्रियों) में एक एक (पृथक् पृथक्) रख है । विकार-युक्त दृष्टि होने के कारण न (परमात्मा का) भय है (और न) प्रेम । (यदि कोई) अपनेपन (अहंभाव) को मार दे, (तो उसे) नाम की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

(यदि कोई गुरु के) शब्द में मरता है, (तो उसका) फिर मरना नहीं होता । बिना मरे (कोई भी) पूर्ण नहीं हो सकता । द्वैत-युक्त मन में प्रपंच व्याप्त हो रहा है, (इससे वह सदैव चंचल बना रहता है) । (यदि) नारायण (इसे) स्थिर करता है, (तभी यह मन) स्थिर होता है ॥ ३ ॥

मैं (संसार-सागर से पार होने के निमित्त) (नाम रूपी) जहाज पर (तभी) चढ़ सकता हूँ, जब मेरी बागे आवे (अर्थात् जब उपयुक्त अवसर प्राप्त हो) । (जो जहाज पर चढ़ने से) रोके गए हैं, (परमात्मा के) दरवाजे पर (उनपर) मार पड़ती है । गुरु का द्वार धन्य है, (जहाँ पर मैं) सत्य (हरी) की स्तुति करता हूँ । हे नामक, दरवाजे (पर और) घर (में) एकंकार (एक हरी ही) (दिखाई पड़ता है) । (तात्पर्य यह कि भीतर और बाहर सर्वत्र परमात्मा ही दृष्टिगोचर होता है) ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

उलटिओ कमलु ब्रह्मसु बीचारि । अमृत धार गगनि दस दुयारि ॥

त्रिभक्त्यु बेधिआ आपि मुरारि ॥ १ ॥

रे मन मेरे भरसु न कीजै । मनि मानिऐ अमृत रसु पीजै ॥१॥ रहाउ ॥

जनसु जीति मरणि मनु मानिआ । आपि सुआ मनु मन ते जानिआ ॥

नजरि भई घरु घर ते जानिआ ॥ २ ॥

जतु सतु तीरधु मजनु नामि । अधिक बियाह करउ किसु कामि ॥

नर नाराइण अंतरजामि ॥ ३ ॥

आन मनउ तउ पर घर जाउ । किसु जावउ नाही को याउ ॥

नानक गुरमति सहजि समाउ ॥ ४ ॥ ८ ॥

ब्रह्म-विचार करने से (जो) (हृदय रूपी) कमल (अधोमुखी था) वह उलट कर (सीधा) हो गया । ब्रह्मरंध में (स्थित) दशम द्वार से अमृत की धार (चूने लगी) । त्रिभुवन में मुरारि (परमात्मा) स्वयं ही व्याप्त है ॥ १ ॥

अरे मेरे मन भ्रम मत करो—संशय-विपर्यय में मत पड़ो । (जब) मन (परमात्मा रूपी) अमृत-रस पीता है, (तभी) मानता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जीवित ही) मर कर जन्म (मरण को जीत लिया) और मन (भलीभांति) मान गया (शान्त हो गया) । अहंकार के मरने पर (मनिन) मन (ज्योतिर्मय) मन के द्वारा जान लिया गया । (परमात्मा की) कृपा हो जाने पर एक घर दूसरे घर के द्वारा जान लिया गया ॥ २ ॥

इन्द्रिय-निग्रह, सत्वाचरण, तीर्थादिहो का स्थान नाम में ही है । (यदि) और अधिक विस्तार कहे, तो वह किस काम का ? नर में नारायण ही अंतर्धामी (भाव से स्थित है, वह घट घट की हाल जानता है ॥ ३ ॥

(यदि) दूसरे को मानूँ, तो द्वैत-भाव में रहना होगा । (अतएव मैं) किससे याचना कहे, कोई भी स्थान नहीं है ? हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा सहजावस्था में समाहित हो जाया जाय ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

सतिगुरु मिलै सु मरणु दिखै । मरण रहण रसु अंतरि भाए ॥

गरबु निवारि गगनपुरु पाए ॥ १ ॥

मरणु निखाइ आए नही रहेण । हरि जपि जापि रहणु हरि सरण ॥१॥ रहाउ ॥

सतिगुरु मिलै त दुविधा भागै । कमलु बिगासि मनु हरि प्रभ लागै ॥

जीवतु मरे महा रसु भागै ॥ २ ॥

सतिगुरि मिलिऐ सख संजमि सूचा । गुर की पडड़ी ऊचो ऊचा ॥

करमि मिलै जम का भउ सूचा ॥ ३ ॥

गुरि मिलिऐ मिलि अंकि समाइआ । करि किरपा घर महसु दिखाइआ ॥
नानक हउमै मारि मिलाइआ ॥ ४ ॥ ६ ॥

(यदि) सद्गुरु मिल जाय, (तो) वह (जीवित प्रवस्था में ही) मरने का (ढंग) दिखलाता है । (जीवितावस्था में) मरने (वाले भाव) की रहनी में हृदय में बड़ा आनन्द आता है । (ऐसा व्यक्ति) गर्व का निवारण करके ब्रह्मरथ में स्थित दशम द्वार (गगनपुर) को प्राप्त करता है ॥ १ ॥

(परमात्मा के यहाँ में तो पहले ही) मरने को लिखा कर (इस संसार में जीव) आए है, (अतएव यहाँ किसी को भी) नहीं रहना है । हरि का जप अपने में हरि की शरण में रहनी (प्राप्त होती है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि) सद्गुरु मिलता है, (तो) मन की दुविधा दूर हो जाती है और (हृदय रूपी) कमल विकसित हो जाता है, तथा मन प्रभु श्री (के चरणों में) लग जाता है । (सद्गुरु की प्राप्ति एवं प्रभु के चरणों में अनुराग में) (साधक शिष्य इस संसार में) जीवितावस्था में मरने का (सुख पाता है) और (यहाँ से जाने पर) आगे (परलोक में भी) उसे परम आनन्द (प्राप्त होता है) ॥ २ ॥

सद्गुरु के मिलने पर सत्य और संयम (की रहनी में शिष्य) पवित्र होता है । (वह) गुरु की (शिक्षा रूपी) सीढ़ी पर चढ़कर उच्च में उच्चतर (होता है) । (जो ईश्वर की कृपा में (परमात्मा अथवा सद्गुरु से) मिलने है, उनका यम-भय छूट जाता है ॥ ३ ॥

गुरु के मिलने पर (साधक शिष्य परमात्मा के) अह (मोदी) में समा जाता है । (सद्गुरु) कृपा करके (शिष्य को अपने हृदय रूपी) घर में ही (परमात्मा का) महल दिखा देता है । हे नानक, (सद्गुरु शिष्य के) अहकार को मार कर (परमात्मा से) मिला देता है ॥ ४ ॥ ६ ॥

[विशेष :—उपयुक्त नवें शब्द में 'समाइआ', 'दिखाइआ' और 'मिलाइआ' शब्द भूतकाल की क्रिया के हैं । किन्तु इनका प्रयोग वर्तमान काल की क्रियाओं के लिए किया गया है ।]

[१०]

किरतु पइआ नह मेटै कोइ । किया जाणा किया आगै होइ ॥

जो तिसु भाणा सोई हूआ । अबरु न करणै वाला दूआ ॥ १ ॥

ना जाणा करम केवड तेरो दाति । करसु धरसु तेरे नाम की जाति ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तू एबडु दाता देवणहाह । जोटि नाही तुधु भगति भंडार ॥

कौआ गरबु न आवै रासि । जोउ पिडु सभु तेरै पासि ॥ २ ॥

तू मारि जीबालहि बखसि मिलाइ । जिउ भावी लिउ नामु जपाइ ॥

तू दाना बीना साचा सिरि मेरै । गुरमति बेइ भरोसै तेरै ॥ ३ ॥

तन महि मैलु नाही मनु राता । गुर बचनी सनु सबदि पछाता ॥

तेरा ताणु नामु की बडिआई । नानक रहणा भगति सरणाई ॥ ४ ॥ १० ॥

(पूर्व जन्मों के लिए हुए कर्मों के) स्वाभाविक संस्कार (जो) पड़ गए हैं, उन्हें कोई नहीं भेट सकता । (मैं) क्या जानूँ कि आगे क्या होगा ? जो (कुछ) (परमात्मा) को अच्छा लगा है, वही दुआ है; कोई और दूसरा करनेवाला (कर्त्ता) नहीं है ॥ १ ॥

(मैं) नहीं जानता (कि हमारे) कर्म कितने महान् हैं (और उनकी अपेक्षा) तेरे दान कितने महान् हैं, (तात्पर्य यह कि हम लोगों के तुच्छ कर्मों की अपेक्षा तेरे दान न मालूम कितने महान् हैं) । (हे प्रभु), सारे कर्म, धर्म तेरे नाम की उत्पत्ति हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तू इतना बड़ा देने वाला दाता है कि तेरी भक्ति के भाण्डार में किसी प्रकार की कमी नहीं (प्यारी) । जब करने में (परमात्मा रूपी) राशि पल्ले नहीं पड़ती । (प्रभु), जीव और (उनके) शरीर सब से तेरे हो पाम हैं, (तेरे ही वशीभूत हैं) ॥ २ ॥

(हे प्रभु), तू ही मारता है और (तू ही) जिलाता है (तू ही) क्षमा करता है (और अपने में) मिला लेता है, जिस प्रकार तुझे अच्छा लगता है, उसी प्रकार (तू) अपना नाम (साधकों से) जपता है । हे सच्चे (प्रभु), तू ज्ञाता है, द्रष्टा है और मेरे सिर के ऊपर है । गुरु की शिक्षा के द्वारा तू अपने में भरोसा देता है ॥ ३ ॥

(यदि) शरीर में मल (स्थिति) है, (तो) मन (परमात्मा में) अनुरक्त नहीं होता अथवा (यदि शरीर में मल नहीं है, तो मन (परमात्मा में) अनुरक्त हो जाता है । गुरु के बचनो एवं उसके सच्चे शब्द द्वारा (परमात्मा) पहचाना जाता है । नाम की महत्ता ही तेरी शक्ति है । हे नानक, भक्त का रहना (परमात्मा की शरण में ही) होता है । ४ ॥ १० ॥

[११]

जिनि अकथु कहाइअ। अपिओ पिआइअ। अनभे विमरे नामि समाइअ ॥१॥

किआ उरीए उरु डरहि समाना । पूरे गुर के सबदि पढ़ाना ॥१॥ रहाउ ॥

जिसु नर रासु रिदै हरि रासि । सहजि सुभाइ मिले साबासि ॥२॥

जाहि सवारै साभ बिआल । इत उत मनमुख बाधे काल ॥३॥

अहिनिस्ति रासु रिदै से पूरे । नानक राम मिले भ्रम दूरे ॥४॥११॥

जिस गुरु ने अकथनीय (परमात्मा के सम्बन्ध में) बतलाया है, (उसी ने) (उस परमात्मा के सुख का) अमृत भी पिलाया है । (नाम रूपी) अमृत पीने से दूसरे भय विस्मृत हो गए हैं और (साधक) नाम में (पूर्ण रूप) से लीन हो गया है ॥

अब क्या डरा जाय, (क्योंकि) अन्य (सासारिक) डर (परमात्मा के) डर में लीन हो गए ? पूर्ण गुरु के शब्द द्वारा (वह परमात्मा) पहचान लिया गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिस मनुष्य के हृदय में राम (स्थित है), (अपार) राशि हरी (स्थित है), (वह) सहज भाव से (परमात्मा में) मिल कर (एक हो जाता है), (वह) धन्य है ॥ २ ॥

जिन व्यक्तियों की (परमात्मा) संध्या-सबरे देख-रेख करता है, (वे कृतघ्नी उसकी महिमा को न जानकर) इधर-उधर (भटकने रहते हैं) । (ऐसे) मनमुल्लों को काल (अपने पाप में) बाँधता है ॥ ३ ॥

(दूसरी ओर) (जिनके) हृदय में ग्रहनिश राम का निवास है, वे पूर्ण (हो गए हैं) ।
हे नानक, राम के मिलने से, (उनके समस्त) भ्रम दूर हो गए हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥

[१२]

जनमि मरै भ्रै गुण हितकार । चारे वेद कयहि आकार ॥
तोनि अवसथा कहहि बलिआनु । तुरीआवसथा सतिगुर ते हरि जानु ॥१॥
राम भगति गुर सेवा तरणा । बाहुड़ि जनमु न होइहै मरणा ॥१॥ रहाउ ॥
चारि पदारथ कहै सभु कोई । सिधति सासत पंडित मुखि सोई ॥
बिनु गुर अरथु बीचार न पाइआ । मुक्ति पदारथु भगति हरि पाइआ ॥२॥
जा कै हिरदे बसिआ हरि सोई । गुरमुखि भगति परापति होई ॥
हरि की भगति मुक्ति आनंद । गुरमति पार परमानंद ॥३॥
जिनि पाइआ गुरि देखि विष्ठाइआ । आसा माहि निरासु बुझाइआ ॥
वीनानाथु सरब सुखदाता । नानक हरि चरणी मनु राता ॥४॥ १२॥

(जो) तीनों गुणों से प्रेम करनेवाला है, (वह) जन्मदा मरता रहता है ।
चारों वेद आकार (दृश्यमान) का ही वर्णन करते हैं । (चारों वेद) तीन अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) का ही वर्णन करते हैं, [त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवायुं = हे अर्जुन सब वेद संसार को विषय करने वाले अर्थात् प्रकाश करने वाले हैं, अतएव तू तीनों गुणों से रहित हो ॥ श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक ४९]—त्रुगैयावस्था (चौथी अवस्था) में सद्गुरु के द्वारा हरी जाना जाता है ॥ १ ॥

राम की भक्ति और गुरु की सेवा से तरा जाता है, न फिर जन्म होगा और न मरण ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चार पदार्थों का ही सब कथन करते हैं, स्मृतियों शान्ति और पंडितों के मुख में यही (बात) है । बिना गुरु के (इन पदार्थों के रहस्य का) अर्थ नहीं जान पड़ता और (वास्तविक अर्थ न जानने के कारण) विचार भी नहीं होता । मुक्ति-पदार्थ तो हरि-भक्ति से ही प्राप्त होता है ॥ २ ॥

जिसके हृदय में वह हरी वास करता है, उस गुरुमुख को परमात्मा की भक्ति प्राप्त होती है । हरि की भक्ति मुक्ति और आनन्द (प्रदायिनी) है । गुरु की शिक्षा द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

जिन्होंने (परमात्मा को) पाया है, (उन्होंने गुरु के द्वारा ही पाया है) । गुरु ने (उस परमात्मा को) देख कर (शिष्य को) दिखाया है । (ऐसे साधकों ने परमात्मा की प्राप्ति की) आशा में (सारी सासारिक) निराशाओं को शान्त कर दिया है । नानक कहते हैं (कि जिसका) मन हरी के चरणों में अनुरक्त है, (उसे) वीनानाथ (परमात्मा) सारे सुख देता है ॥ ४ ॥ १२ ॥

[१३]

गउड़ी-चेती

अमृत काइया रहै सुखाली बाजी इहु संसारो ।
 लघु लोभु मृगु कूड़ु कमावहि बहुत उठावहि भारो ॥
 तू काइया मे खली देखी जिय धर उपरि छारो ॥१॥
 सुणि सुणि सिल हमारी ।
 सुकल कीता रहसो मेरे जोअड़े बहुड़ि न आवै वारो ॥१॥ रहाउ ॥
 हउ तुधु आखा मेरी काइया तूं सुणि सिल हमारी ।
 निदा चिदा करहि पराई भूठी लाइतबारी ॥
 बेल पराई जोहहि जोअड़े करहि चोरी बुरिभारी ॥
 हंसु बलिआ तूं पिछै रहीअहि छुटि होईअहि नारो ॥२॥
 तूं काइया रहीअहि सुपनंतरि तुधु किआ करम कमाइया ।
 करि चोरी मे जा किछु लोआ ता मनि भला भाइया ॥
 हलति न सोभा पलति न ढोई अहिला जनमु गवाइया ॥३॥
 हउ खरी दुहेली होई बाबा नानक मेरी बात न पुछै कोई ॥१॥ रहाउ ॥
 ताजो तुरकी सुइना रुपा कपड़ु केरे भारा ।
 किस ही नालि न चले नानक भड़ि भड़ि पए गवारा ॥
 कूजा मेवा मे सभ किछु खासिआ इकु अमृतु नामु तुमारा ॥४॥
 वे वे नीव दिवाल उसारी भसमंदर की बेरी ।
 संचे संचि न बेई किसही अंधु जाणै सभ मेरी ॥
 सोइन लंका सोइन माझी सपे किसै न केरी ॥५॥
 सुणि मूरख मन अजाणा । होमु तिसै का भाणा ॥१॥ रहाउ ॥
 साहू हमारा ठाकुर भारा हम तिस के वणजारे ।
 जीउ पिडु सभ रासि तिसै की मारि आपे जीवाले ॥१॥ १३॥

(अपने आप को) अमर मानने वाली, हे काया, तू सुखी (बेफिक्र) रहती है, (पर एक तू ही नहीं) बल्कि) सारा संसार एक खेल है । (तू) निरन्तर ही लालच लोभ तथा बहुत भूख कमाती रहती है (और इन पापों का) महान् भार (अपने सिर पर) उठाती है । किन्तु हे काया, मैंने तुझे (उसी प्रकार) दुःखी देखा है जिस प्रकार धरती के ऊपर खींक (दुःखी रहती है) ॥ १ ॥

मेरी शिक्षा, सुनो किए हुए शुभ कर्म ही रहेंगे; हे मेरे जीव, फिर उन शुभ कर्मों के करने की बारो भी नहीं आयेगी ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे मेरी काया, मैं तुझे कह रहा हूँ, तू मेरी सुन । तू पराई निन्दा का (सदैव) चिन्तन करती रहती है और भूठी चुगली (करती है) । ऐ जीव, तू दूसरों की स्त्री (सदैव पाप दृष्टि से) देखता रहता है और बुराई तथा चोरी करता है । (हे काया) जीवात्मा के चले जाने पर तू यहाँ अकेली ही (पति के द्वारा) छोड़ी हुई स्त्री के समान रह जायेगी ॥ २ ॥

हे काया, तू स्वप्न में रह जायगी, (जरा सोचो) तूने (इस संसार में) क्या कमाया है ? मैंने चोरी करके जो कुछ प्राप्त किया, वह मन मे बहुत भ्रष्ट हो गया । (किन्तु इतने दुष्टकों से) न इस लोक में कोई शोभा होती है, न परलोक मे धारण में मिलती है, (इस प्रकार) जीवन व्यर्थ हो गया दिया जाता है ॥ ३ ॥

हे बाबा नानक, मैं बहुत ही दुःखी हो रही हूँ, मेरी बात भी कोई नहीं पूछता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

शरीर और तुर्की छोड़े, सोना, चाँदी तथा कपड़ों के भार किसी के साथ नहीं जाते; नानक कहते हैं कि हे गँवार, ये सब यहीं रह जाते हैं । तुम्हारे एक अमृत रूपी नाम मे, (हे प्रभु) मैंने मिथ्या, मेवा सब कुछ चला लिया है ॥ ४ ॥

नींव दे दे कर दीवाल बनाई, किन्तु वह भस्म के बने महल की डेरी भाँति हो गई है । प्रधा (मायाच्छन्न व्यक्ति) (सासारिक वस्तुओं का) संग्रह करता है, संग्रह करके किसी को नहीं देता, और यह समझता है कि सारी (वस्तुएँ) मेरी हैं । (जब राखण की) सोने की लंका और सोने के महल (नहीं रह गए), (तो समझ लो कि) माया किसी की भी नहीं है ॥ ५ ॥

ऐ मूर्ख (और) अनजान मन सुनो, उस (परमात्मा) की मर्जी ही होती है, (अन्य वस्तुएँ नहीं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हमारा साहू बहुत बड़ा मालिक है, हम उसके बनजरि हैं । जीव और शरीर सब कुछ उसी (साहू की) दौ हुई पूँजी है; (वह) भाग्य ही मारता है (और भाग्य ही) जिलाता है ॥ ६ ॥ १ ॥ १३ ॥

[१४]

गउड़ी-चेती

अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बार मना ।

मारहि लुटहि नीत नीत किनु प्राण करी पुकार जना ॥१॥

खोराम नामा उचरु मना । प्राण जमवतु बिलसु घना ॥१॥ रहाउ ॥

उसार मझोली राखे दुधारा भीतरि बैठी साधना ॥

अंभृत कैल करे नित कामलि अवरि लुटेनि सु पंचजना ॥२॥

डाहि मझोली लुटिआ देठुरा साधन पकड़ी एक जना ।

जम बंढा गलि संगलु पड़िआ भागि गए से पंच जना ॥३॥

कामलि लोड़ै सुइना क्या मित्र लुटेनि सु जाघाता ।

नानक पाप करे तिन कारणि जासी जमपुरि बाधाता ॥४॥ २ ॥ १४ ॥

वे लोग तो पाँच—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार, हैं, मैं अकेला व्यक्ति हूँ; हे मेरे मन, मैं (अपने) घर-बार की रक्षा किस प्रकार करूँ ? (वे पाँचों) नित्यप्रति मुझे मारते हैं और लुटते हैं, (मैं) दास किसके प्राणें गृह्ण करूँ ? ॥ १ ॥

हे मन, श्री राम नाम का उच्चारण करो । (इस संसार से चलने पर) प्राणें धूम (के दूतों) का बहुत ही भयानक दल है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यह (शरीर रूपी) मठ बनाकर (इसमें दस) दरवाजे रखे गए हैं (और इसके भीतर) (जीव रूपी) स्त्री बैठे हैं । यह (जीव रूपी) स्त्री (अपने को) भ्रमर (मानकर) (नित्य सांसारिक) श्रद्धा करती रहती है और वे पाँचों ठग (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) इसे छूटते रहते हैं ॥ २ ॥

एक व्यक्ति (मृत्यु) ने आकर (शरीर रूपी) मठ ढहा दिया और देवालय (प्राणों) को छूट लिया; (जीव रूपी) स्त्री (मृत्यु द्वारा) अकेली ही पकड़ी गई । (सिर पर) यम के डंडे पड़ने लगे और गले में सक्किलें पड़ गईं वे पाँचों (ठग)— काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार भग गए ।

(लोग) सुंदरी स्त्री, सोना, चाँदी की कामना करते हैं और मित्रों की तथा खाने-पीने की इच्छा करते हैं । नानक कहते हैं कि उन्हीं कारणों से पाप करते हैं, (इसलिए ऐसे व्यक्ति) यमपुरी में बांधे जायेंगे ॥ ४ ॥ २ ॥ १४ ॥

[१५]

गउड़ी-चेती

मुंड्रा ते घट भीतरि मुंड्रा काइआ कीजे स्थिता ।

पंच खेले बस कोजहि राबस इहु मनु कोजे डंडता ॥१॥

जोग जुगति इव पावसिता ।

एकु सबहु दूजा होरु नासति कंब भूलि मनु लावसिता ॥१॥ रहाउ ॥

मुंडि मुंडाइऐ जे गुरु पाईऐ हम गुरु कीनी गंगाता ।

जिनबख तारणहाक सुआमी एकु न चेतसि अंघाता ॥२॥

करि पटंसु गली मनु लावसि संसा भूलि न जावसिता ।

एकसु बरणी जे चितु लावहि लबि लोभि की जावसिता ॥३॥

जपसि निरंजनु रबसि मना । काहे बोलहि जोगी कपटु घना ॥१॥ रहाउ ॥

काइआ कमली हंसु इधारा मेरी मेरी करत बिहाणीता ।

प्रणवति नानकु नागो वाकै फिरि पाछै पछुताणीता ॥४॥३॥१५॥

विशेष :—यह पद एक योगी के प्रति कहा गया है । उसे सच्चे योगी बनने की आन्तरिक विधि बताई गई है ।

अर्थ :—(हे योगी), (बाह्य) मुद्रा (के स्थान पर) आन्तरिक मुद्रा शरीर के भीतर ही धारण करो (मन्त्र वासनाओं को बंधना आन्तरिक मुद्रा है), (अपने) शरीर को ही कंधा बनाओ । हे योगी, पंच कामादिकों को अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियों को बन्धीभूत करो, (दृढ़ और विश्वासयुक्त) मन को ही (अपना) डंडा समझो ॥ १ ॥

योग की (वास्तविक) युक्ति इसी प्रकार प्राप्त करोगे । “एक शब्द (ब्रह्म) है, दूसरा और कुछ नहीं है” — इस भावना के बीच मन स्थापित करना ही (योगियों का) कंदमूल (सेवन करना) है; (इसके अतिरिक्त अन्य कन्दमूल की आवश्यकता नहीं है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गंगा के किनारे मूँढ़ मुड़ाने से यदि कुछ प्राप्त होता है, तो हमने तो (पतित-पावन)
 कुछ को ही गंगा बनाया है । ऐ अन्धे (विषयाच्छन्न), त्रिभुवन के तारनेवाले एक मात्र स्वामी
 को (तू) नहीं चेतता है ॥२॥

यदि चालाकी करके बातों में ही मन लगते हो, तो (इससे) संशय की-मूल विवृति
 नहीं होती । यदि एक परमात्मा के चरणों में (अपना) चित्त लगाते हो, तो लालच और लोभ
 की (ओर) क्यों दौड़ते हो ? (तात्पर्य यह कि तुम्हारा मन परमात्मा में नहीं लगता, क्योंकि
 यदि मन लगता होता, तो लालच और लोभ समाप्त हो जाते) ॥ ३ ॥

(हे योगी, तू) निरंजन (परमात्मा) का जप कर, (तेरा) मन (बिलकुल उसी में)
 अनुरक्त हो जायगी । ऐ योगी, बहुत कष्ट की बातें क्यों बोलता है ? ॥ १ ॥ रहाउ ।।

शरीर पागल है (और उसमें स्थित) जीव अज्ञानी है; 'मेरी मेरी' कहते हुए (सारी
 जिन्दगी) व्यतीत हो जाती है । नानक वित्तय पूर्वक कहते हैं कि (जीवात्मा के निकल जाने
 पर) यह काया नंगी ही जलाई जाती है, फिर पीछे पछताना पड़ता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ १५ ॥

[१६]

गउड़ी-चेती

अउलख मंत्र मूल मन एकै जे करि दृढ़, चित्तु कीजै रे ।

जनम जनम के पाप करम के काटन हारा लीजै रे ॥१॥

मन एको साहिबु भाई रे ।

तेरे तोनि गुण संसारि समावहि असलु न लखणा जाई रे ॥१॥ रहाउ ॥

सकर लंबु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उवाई रे ।

राति अनेरी सुभसि नाही लखु दूकसि भूसा भाई रे ॥२॥

मनमुल करहि तेरा दुख लागै गुरमुखि मिलै बडाई रे ।

जो तिनि कीआ सोई होवा किरतु न भेटिआ जाई रे ॥३॥

सुभर भरे न होवहि अउरे जो राते रंगु साई रे ।

सिनकी पंक होबै जे नानकु तउ भूआ किछु पाई रे ॥४॥४॥१६॥

हे मन, (समस्त) शीघ्रि और मूल मंत्र एक (हरी) ही है; (हे मन) जिसे तू
 चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण कर ले । जन्म-जन्मान्तरों के पाप कर्मों के काटनेवाले (उस हरी)
 को तू ग्रहण कर ले ॥ १ ॥

अरे मन, (मुझे तो) एक साहब ही अच्छा लगा है । जिन तीन गुणों को तू (सब
 कुछ) मान बैठा है, वे तो तुझे केवल संसार तक ही सीमित रखेंगे, अलख परमात्मा को नहीं
 समझ सकेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

शरीर में माया शर्करा-खण्ड (शक्कर) की भाँति मीठी लगती है, हमने तो (इसका)
 गढ़र उठा लिया है । अरे भाई, (प्रविद्या रूपी) अंधेरी रात्रि में कुछ सुझाई नहीं पड़ता; (काख
 रूपी) झूठा (जीवन रूपी) रस्सी को काटता जा रहा है ॥ २ ॥

(मनुष्य) हाट, नगर और पक्के महल में सेध लगा कर, चोरी करके (अपने) घर आता है; (वह अपनी चोरी छिपाने के लिए) आगे देखता है और पीछे देखता है (कि कोई देख तो नहीं रहा है) ; (किन्तु ऐ सर्वद्रष्टा), तुमसे (वह अपनी चोरी) कहाँ छिपा सकता है ? ॥ १ ॥

हमने नवलखण्डवाली (पृथ्वी के) अनेक तीर्थ-तट, हाट, नगर और बाजार देख लिए हैं, (जो कुछ अनेक जन्म-जन्मान्तरों में देखा, सुना, समझा है, उसे कई जन्मों से धक्के खाते आया हुआ) यह सौदागर तराजू लेकर अपने भीतर तौलने लगा है, (अर्थात् उस परमात्मा की अनन्तता का अनुमान लगाना चाहता है) ॥ ४ ॥

महा सागरों में जितना जल भरा है, उतने ही हमारे अवगुण हैं, (हे प्रभु), (मेरे ऊपर) दया कर, कुछ मेहरबानी कर, (तू तो) डूबते हुए पत्थरों को तारनेवाला है ॥ ५ ॥

जी में निरन्तर (तृष्णा की) अग्नि जल रही है और भीतर (हृदय) में (कष्ट की) छुरी चल रही है । दानक विनयपूर्वक कहते हैं कि (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) हुक्म को पहचानता है, उसे ग्रहणित सुख प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ ५ ॥ १७ ॥

[१८]

गउड़ी बैरागणि

रेलिंग गवाई सोई कै बिबसु गवाईआ लखइ ।

होरे जैसा जनसु है कउडी बबले जाइ ॥१॥

नामु न जानिआ राम का ॥ झूड़े फिरि पाछै पछुताहि रे ॥१॥ रहाउ ॥

अनता धनु धरणी धरे अनत न चाहिआ जाइ ।

अनत कउ चाहन जो गए से आए अनत गवाई ॥२॥

आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागदु होइ ।

करमा उपरि निबड़ जे लोचै सभु कोइ ॥३॥

नानक करण जिनि कोआ सोई सार करेइ ।

हुकमु न जापो खसम का किसे बडाई वेइ ॥४॥१॥१८॥

(मनुष्य) रात्रि सोने में गँवा देता है और दिन खाने-पीने में; (इस प्रकार) हीरा के समान (मनुष्य) जीवन (सासारिक सुखों की) कौड़ी के बबले जा रहा है ॥ १ ॥

(तू ने) राम का नाम नहीं जाना, अरे मूढ़, फिर पीछे पछताना पड़ेगा ॥१॥ रहाउ ॥

(लोगों ने) अनन्त धन पृथ्वी में (गाड़ कर) रक्खा है, (किन्तु) अनन्त (परमात्मा की) इच्छा (उनके द्वारा) नहीं की जाती । जो अनन्त (माया) की इच्छा धारण करके गए हैं, वे उस अनन्त (परमात्मा) को गँवा कर लौट आए हैं ॥ २ ॥

यदि अपने ही लेने से मिलने लगे, तो सभी भाग्यशाली हो जायें । सब कोई चाहे जो इच्छा करें, किन्तु निपटारा होता है कर्मों के ऊपर ही । ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि जिस (प्रभु ने सृष्टि-रचना) की है, वही इसकी खोज-खबर करता है । स्वामी का हुक्म ज्ञात नहीं होता कि वह किसे बड़ाई प्रदान करेगा ॥ ४ ॥ १ ॥ १८ ॥

[१६]

गउड़ी बैरागणि

हरणी होवा बनि बसा कंद मूल चुणि खाउ ।
 गुर परसादी मेरा सहु मिलै वारि वारि हउ जाउ जीउ ॥१॥
 मैं बनजारनि राम की । तेरा नामु बखरु बापाक जी ॥१॥ रहाउ ॥
 कोकिल होवा अंबि बसा सहजि सबव बीचार ।
 सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै बरसनि रूपि अषार ॥२॥
 मछली होवा जलि बसा जीअ जंत सभि सारि ।
 उरवारि पारि मेरा सहु वसै हउ मिलउगी बाह पसारि ॥३॥
 नागनि होवा धर बसा सबडु वसै भउ जाइ ।
 नानक सदा सोहागणी जिन जोती जोति समाइ ॥४॥२॥१६॥

यदि मैं हिरनी होऊ वन में निवास कछं और चुन-चुन कर कदमूल खाऊँ, फिर भी गुरु की कृपा से (मेरा) प्रियतम मिले, तो हे प्रभु, मैं बार-बार बलिहारी हो जाऊँ ॥ १ ॥

मैं राम नाम की बनजारिनि हूँ । (हे प्रभु) जी, तेरे नाम का सौदा ही मेरा व्यापार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि मैं कोकिल होऊँ और आम्र-वृक्ष पर निवास कछं, फिर भी (मैं) सहज भाव से (गुरु के) शब्द पर विचार करती रहूँ । सहज भाव से ही मेरा प्रियतम मिले और (मैं) उसके अपार रूप का दर्शन (कछं) ॥ २ ॥

यदि मैं मछली होऊँ और जल में निवास कछं, (तो भी मैं सदैव उसे स्मरण करती रहूँ), जो (प्रभु) समस्त जीव-जन्तुओं की खोज-खबर करता है । मेरा प्रियतम इस पार (इस लोक में) और उस पार (परलोक में) वास करता है, मैं उससे बाँह पसार कर मिलूँगी ॥ ३ ॥

यदि मैं नागिनि होऊँ और पृथ्वी में निवास कछं, तो भी (मेरे मन में) सदैव (गुरु का) शब्द वास करे, (जिम्में मासारिक) भय समाप्त हो जायें । नानक कहते हैं कि वे (स्त्रियाँ) सदैव मुझगिनी हैं जो (परमात्मा की) ज्योति में लीन हैं ॥ ४ ॥ २ ॥ १६ ॥

[२०]

गउड़ी पूरबी दीपकी

१ ओं सतिगुर प्रसादि

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारी ।
 तितु घरि गावहु सोहिला सिवरहु सिरजलहारी ॥१॥
 तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहेला ।
 हउ वारी जाउ जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥१॥ रहाउ ॥
 नित नित जीअड़े समालीअनि बेखैगा देवणहार ॥
 तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु वाते कवरु सुमार ॥२॥

संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेसु ।
बहु सज्जन आसीसडीआ जिउ होबै साहिब सिउ मेसु ॥३॥
धरि धरि एहो पाहुआ सबड़े नित पबनि ।
सबलहारा सिमरीऐ नानक से बिह आबनि ॥४॥१॥२०॥

जिस घर में कर्ता पुरुष (परमात्मा) की कीर्ति गाई जाती है और (उसके स्वरूप का) विचार होता है, उस घर में सोहिला (यश) का गान करो और सृजनकर्ता का स्मरण करो ॥ १ ॥

तुम मेरे निर्मय (परमात्मा) का सोहिला गाओ । मैं उस सोहिले की बलैया लेता हूँ, जिससे शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नित्य नित्य (परमात्मा द्वारा) जीव संभाले जाते हैं; देनेवाला (प्रभु) सब की देख-रेख करेगा । (हे प्रभु), तेरे दान की कीमत नहीं आँकी जा सकती; उस दाता (के दानों की) कीन गणना कर सकता है ? ॥ २ ॥

(प्रियतम से मिलने का) संबन्ध और शुभ दिन लिखा रहता है । हे सज्जनो, आप सभी मिलकर तेल बुवाइए और आशीर्वाद दीजिए कि (मेरा अपने) साहिब से मेल हो । [कन्या के अपने पति के घर में प्रवेश करते समय मित्र संबंधी द्वार पर तेल बुवाते हैं और सुहाग के गीत गाते हैं] ॥ ३ ॥

व्याह का बुलावा घर घर में नित्य पहुँचता रहता है [तात्पर्य यह कि नित्य मौत के बुलावे लोगों तक पहुँचते रहते हैं । हमारे आस-पास जो मृत्यु हो रही है यह मानो जीवितों के लिए चेतावनी दी जा रही है कि तुम्हारा भी बुलावा आने ही वाला है] । नानक कहते हैं हमें बुलाने वाले (परमात्मा) का स्मरण करना चाहिए, (क्योंकि) वे दिन (शीघ्रता से) आ रहे हैं ॥ ४ ॥ १ ॥ २० ॥

१ओं सति नामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥
रागु गुडड़ी, महिला १, गुडड़ी गुआरेरी ।

असटपदीआं

[१]

निधि सिधि निरमल नामु बीचारु । पूरन पूरि रहिआ बिलु मारि ॥
जिकुटी छूटी बिमल मझारि । गुर की मति जोइ आई कारि ॥ १ ॥
इन बिधि राम रमत मनु मानिआ । गिघान भंजनु गुर सबधि पछानिआ ॥१॥रहाउ॥
इहु सुख मानिआ सहजि मिलाइआ । निरमल बाणी भरमु सुकाइआ ॥
लाल भए सूहा रंगु माइआ । नवरि भई बिलु ठाकि रहाइआ ॥ २ ॥
जलट भई जोबत मरि जागिआ । सबधि रवे मनु हरि सिउ लागिआ ॥
रसु संग्रहि बिलु परहरि तिआगिआ । भाइ बसे जम का भउ भागिआ ॥ ३ ॥
साव रहे बाधं अहंकारा । बिलु हरि सिउ राता हुकमि अपारा ॥
जाति रहे पति के आचारा । नुसति भई सुख आतम धारा ॥ ४ ॥

तुम बिनु कोइ न देखउ मीतु । किन्तु सेबउ किन्तु देखउ बीतु ॥

किन्तु पूछउ किन्तु लागउ पाइ । किन्तु उपवेसि रहा लिब लाइ ॥ ५ ॥

गुर सेबी गुर लागउ पाइ । भगति करी राखउ हरिनाइ ॥

सिखिआ दीखिआ भोजन भाउ । हुकमि संजोगी निजधरि जाउ ॥ ६ ॥

परब वतं सुख आतम बिभाना । जोति भई जोती माहि समाना ॥

लिखतु मिटे नही सबहु नीसना । करता करणा करता जाना ॥ ७ ॥

नह पंडितु नह चतुर सिभाना । नह भूलो नह भरमि भुलाना ॥

कबड न कथनी हुकमु पछाना । नानक गुरमति सहजि समाना ॥ ८ ॥ १ ॥

(परमात्मा के) निर्मल नाम का विचार ही अष्टसिद्धियाँ और नवनिद्धियाँ हैं । [अष्टसिद्धियाँ निम्नलिखित हैं—१ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशत्व, ८ वशीत्व । नव निद्धियाँ निम्नलिखित हैं—१ पदम (सोना-चाँदी), २ महापदम (हीरे-जवाहर), ३ शंख (सुन्दर भोजन और कपड़े), ४ मकर (शस्त्रविद्या की प्राप्ति तथा राज-दरबार में सम्मान), ५ कच्छप (घन-वस्त्र का व्यापार), ६ कुंद (सोने का व्यापार), ७ मुकुंद (राग आदि ललित कलाओं की प्राप्ति), ८ नील (मोती-मृगे का व्यापार) तथा ९ खर्व] । विष रूप (माया) को मार कर (केवल) पूर्ण (परमात्मा सर्वत्र) व्याप्त है । पवित्र (परमात्मा) में लीन होने से (माया की) त्रिगुणात्मक प्रकृति (त्रिकुटी—सत्व, रजस्, तमस्) समाप्त हो गई है । गुरु का उपदेश आत्मा के निमित्त लाभदायक (सिद्ध हुआ है) ॥ १ ॥

इस विधि राम में रमने से मन मान गया है । गुरु के शब्द द्वारा ज्ञान का अंजन पहचान लिया गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वास्तविक ज्ञान द्वारा) सहज-पद (परमात्म-पद) से मिला दिया गया है, इसीलिए एक (सहज) सुख मान लिया है । (गुरु की) निर्मल वाणी ने (मेरे) भ्रम को दूर कर दिया है । माया के रंग को कुसुंभ की भाँति लाल जाना है, (जो शीघ्र हो नष्ट हो जाने वाला है), अतएव उसे त्याग कर (परमात्मा के मजोठी) लाल रंग में रंग हो गया है (जो सदैव एकरस रहता है) । (परमात्मा अथवा गुरु की) कृपा-दृष्टि से (माया का) विष समाप्त होगया है ॥ २ ॥

(जीवन) उल्टा हो गया और जीवित ही (माया की ओर से) मरकर (अपने आत्मिक प्रकाश) में जग पड़ा । (गुरु के) शब्द में रमण करने लगा और परमात्मा से युक्त हो गया । (परमात्मा के) रस का संग्रह करके, (माया का) विष त्याग दिया । (परमात्मा का) प्रेम (मन में) बस गया, यम का भय भग गया ॥ ३ ॥

स्वाद, भण्डे और अहंकार समाप्त हो गए । चित्त हरी और उसकी महान् आज्ञा में अनुरक्त हो गया । जाति और लोक-प्रतिष्ठा के निमित्त किए गए सारे आचार समाप्त हो गए । (उसकी) कृपा-दृष्टि हो गई और आत्म-सुख में स्थित हो गया ॥ ४ ॥

“(हे प्रभु), तुम्हारे बिना (मैं) (कोई अल्प) मित्र नहीं देखता हूँ । किसकी सेवा कऊँ और किसे अपना चित्त दूँ ? किससे पूछूँ (जिज्ञासा कऊँ) और किसके पैर लपूँ ? किसके उपदेश द्वारा (परमात्मा में) लिब (एकनिष्ठ ध्यान) लगाऊँ ? ॥ ५ ॥

(मैं) गुरु की सेवा करूँगा और गुरु के ही पाँवों में लगूँगा, (परमात्मा की) भक्ति करूँगा और हरी के नाम में अनुरक्त हूँगा । (हरि का) प्रेम ही (मेरी) शिक्षा दीला और भोजन है । (उस परमात्मा के) हुक्म से युक्त होकर अपने आत्म स्वरूप के धरे में स्थित हूँगा ॥ ६ ॥

आत्म-ध्यान (जनित) सुख मे मेरे सारे गन्धें दूर हो गए । (मेरे अन्तर्गत) महान् ज्योति प्रकट हो गई (और वह ज्योति परमात्मा की) ज्योति में समा गई । मेरे भाग्य में यदि परमात्मा की प्राप्ति लिखी है, तो वह लिखावट मिट नहीं सकती, (इसीलिए) (मेरे ऊपर) शब्द का निशान पड़ा है । कर्ता के कार्य केवल कर्ता (परमात्मा) ही जान सकता है ॥ ७ ॥

मैंने (परमात्मा के) हुक्म को पहचान लिया है, (अतएव) कथनी नहीं कथन करता; (अर्थात् मेरी रहनी में मेरी कथनी विलीन हो गई); न तो मैं अब अपने को पंडित समझता हूँ न चतुर और सयाना हो, न तो मैं अब भूलता हूँ और न भ्रम में भटकता हूँ । नानक कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा सहज पद में समा गया हूँ ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

मनु कुंकर काइया उदिआनै । गुरु अंकसु सनु सबदु नीसानै ॥

राज दुधारे सोभ सु मानै ॥ १ ॥

चतुराई नह चीनिआ जाइ । बिनु मारे किउ कीमति पाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

घर महि अंशुतु तसकरु लेई । ननाकारु न कोइ करेई ॥

राखै आपि बडिआई बेई ॥ २ ॥

नील अनील अगनि इक ठाई । जलि निबरी गुरि बूझ बुझाई ॥

मनु बे लीआ रहसि गुण गाई ॥ ३ ॥

जैसा घरि बाहरि सो तैसा । बैसि गुफा महि आखउ कैसा ॥

सागरि बूगरि निरभउ ऐसा ॥ ४ ॥

मूए कउ कहू मारे कउनु । निडरे कउ कैसा डरु कबनु ॥

सबवि पछानै तीने भजन ॥ ५ ॥

जिनि कहिआ तिनि कहनु बखानिआ । जिनि बुझिआ तिनि सहजि पछानिआ ॥

बेखि बीचारि मेरा मनु मानिआ ॥ ६ ॥

कीरति सूरति मुकति इक भाई । तही निरंजनु रहिआ समाई ॥

निज धरि बिआपि रहिआ निज ठाई ॥ ७ ॥

उसतति करहि केते मुनि प्रीति । तनि मनि सूबै साधु सुधीति ॥

नानक हरि भजु नीता नीति ॥ ८ ॥ २ ॥

मन रूपी हाथी शरीर रूपी उद्यान मे (घूमता-फिरता है) : गुरु ही (उस हाथी) का अंकुश है; सच्चा शब्द ही उस हाथी का निशान है (राजा-महाराजा के हाथी पर विशेष प्रकार का निशान लगा रहता है) । (परमात्मा रूपी) राजा के दरबाजे पर (वह हाथी) घोभा पाता है ॥ १ ॥

चतुराई से (परमात्मा) नहीं पहचाना जा सकता । बिना (मन को) मारे (हरी को) किस प्रकार कीमत पाई जा सकती है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

घर (शरीर) में ही (परमात्मा रूपी) अमृत रक्खा हुआ है, (उस अमृत को कामादिक) चोर चुरा रहे हैं । (कोई उन चोरों) को रोकता-थामता भी नहीं । (जो व्यक्ति इस अमृत की चोरों से) रक्षा करता है, उसे (परमात्मा) त्वयं बढ़ाई प्रदान करता है ॥ २ ॥

दस खरब और असंख्य (तृष्ण की) अग्नि जो एक जगह (हृदय में) एकत्र थी (वह) गुरु की शिक्षा द्वारा बुझ गई । (मैं अपना) मन (गुरु को) सौंप कर (परमात्मा से) मिला हूँ, (और अब) आनन्दपूर्वक (उसका) गुणगान करता हूँ ॥ ३ ॥

परमात्मा जैसे घर में है, वैसे वह बाहर भी है । गुफा में (अकेले) बैठ कर, मैं (उसका) बर्णन किस प्रकार करूँ ? समुद्रों और पर्वतों—(सभी स्थानों में) वह निर्भय (परमात्मा) एक समान (व्याप्त है) ॥ ४ ॥

(भला) बताओ (जो जीवित ही) मर गया है, उसे कौन मार सकता है ? (जो परमात्मा के डर से) निडर है, उसे किस व्यक्ति का किस प्रकार का डर (लग सकता है) ? (जो गुरु के) शब्द द्वारा (परमात्मा को) पहचानता है, उसे (वह हरी) त्रिभुवन में (व्याप्त) दिखाई पड़ता है ॥ ५ ॥

जो कथन करता है, वह तो यो ही कथन द्वारा ही (उस प्रभु का) बर्णन करता है, (वह आन्तरिक अनुभूति से विहीन है, उसका कथन सम्बन्धी ज्ञान चंचुज्ज्ञान मात्र है) । किन्तु जिन्होंने (गुरु की शिक्षा) समझ ली है, उन्होंने सहज-पद (चतुर्थ पद, निर्वाण पद, मोक्ष पद) को पहचान लिया है (उस प्रभु का) दर्शन करके, विचार करके, मेरा मन भली भाँति मान गया है (स्थिर हो गया है) ॥ ६ ॥

एक (परमात्मा के) नाम में कीर्ति, सुरति (ध्यान), मोक्ष (सभी कुछ है) । उसी (नाम में) वह निरंजन (माया से रहित हरी) व्याप्त हो रहा है; वह अपने घर से—(अपने स्वरूप में) और अपने स्थान में व्याप्त हो रहा है ॥ ७ ॥

कितने ही मुनिगण प्रेमपूर्वक (उस प्रभु की) स्तुति करते हैं । (जो) तन, मन (दोनों से) ही पवित्र हैं, उनके मुन्दर चित्त में सत्य स्वरूप (परमात्मा) स्थित है । हे नानक, नित्य-प्रति (सदैव ही) हरी का भजन कर ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

गउड़ी गुआरेरी

ना मनु मरे न कारनु होइ । मनु बलि वृता बुरमति बोइ ॥

मनु माने गुर ते इकु होइ ॥ १ ॥

निरगुण रामु गुणह बलि होइ । आपु निवारि बीचारे सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मनु भूलो बहुतु बितै विकारु । मनु भूलो सिरि आवै भारु ॥

मनु माने हरि एककारु ॥ २ ॥

मनु भूलो नाइआ घरि जाइ । कामि बिरुधउ रहै न ठाइ ॥

हरि भक्तु प्राणी रसन रसाइ ॥ ३ ॥

वेबर हैबर कंचन सुत नारी । बहु चिता पिड़ खाले हारी ॥

जुए खेलसु काबी सारी ॥ ४ ॥

संपड संबी मए बिचार । हरल सोप जमे दरबार ॥

सुसु सहजे जपि रिबे मुरारि ॥ ५ ॥

नबरि करे ता मेलि मिलाए । गुण संगहि भउगल सबवि जलाए ॥

गुरमुखि नामु पवारसु पाए ॥ ६ ॥

बिनु नाबै सम बूख निवासु । मनमुख भूइ माइभा वित बासु ॥

गुरमुखि गिमानु बुरि करमि लिखिभासु ॥ ७ ॥

मनु बंचसु भावतु कुनि धाबै । साखे सूखे नैसु न भाबै ॥

नानक गुरमुखि हरिगुण गावै ॥ ८ ॥ ३ ॥

ब तो मन मरता है और न (परमात्मा को प्राप्ति का) कार्य (पूरा) होता है । (यह) मन कामादेक दूतों, छोटी बुद्धि तथा द्वैतभाव के वशीभूत है । (यदि) मन को गुरु द्वारा मनवावे, (तो वह परमात्मा के स्वरूप से) एक हो जाता है ॥ १ ॥

निर्गुण राम (देवी) गुणों के वशीभूत होता है, (अर्थात् निर्गुण राम की प्राप्ति देवी गुणों के द्वारा होती है), (जो) आपापन दूर करता है, वही (इस बात का) विचार करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मन (अनेक विषय) विकारों को ओर देख कर भटक जाता है और मन के भटकने से सिर पर (पाप का) बड़ा बोझा लद जाता है । एकंकार हरी (के सानिध्य में आने से) मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) ॥ २ ॥

मन के भूलने पर, घर में (शरीर में) माया चली आती है । काम से अवरुद्ध होने पर, (मनुष्य अपने वास्तविक स्थान) पर नहीं टिकता । हे प्राणी रसना द्वारा रस से परमात्मा का भजन कर ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ हाथी, श्रेष्ठ घोड़े, सोना, पुत्र और नारी (आदि) की बड़ी चिन्ता में (पड़ कर मनुष्य) (जीवन का मैदान हार जाता है;) (जीवन रूपी) जुए में (वह) कच्ची बाजी खेलता है, (अर्थात् जीवन नष्ट कर देता है) ॥ ४ ॥

संपत्ति संग्रह करने से (अनेक) विकार उत्पन्न होते हैं । दुःख सुख (दोनों ही परमात्मा के) दरबार में खड़े रहते हैं । सुख (इसी में है) कि स्वाभाविक ही हृदय में मुरारी (परमात्मा) का नाम जपा जाय ॥ ५ ॥

(यदि परमात्मा) कृपा करता है, तो (शिष्य को अपने में मिला लेता है । (उसको कृपा से ही शिष्य) गुणों का संग्रह करके (गुरु के) शब्द द्वारा अवगुणों को जला डालता है । (इस प्रकार) गुरु द्वारा (शिष्य) नाम रूपी पदार्थ को पा लेता है ॥ ६ ॥

बिना (परमात्मा के) नाम के (मनुष्य के अन्तर्गत) सभी (प्रकार के) दुःखों का निवास रहता है । भूढ़ मनुष्य का चित्त माया में ही निवास करता है । पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही यदि (परमात्मा के यहाँ से यह) लिखा हो; तभी गुरु द्वारा ज्ञान (प्राप्ति होता है) ॥ ७ ॥

चंचल मन बार-बार (मायिक पदार्थों के पीछे) दौड़ता रहता है । सच्चे और पवित्र परमात्मा को मेल अच्छी नहीं लगती (भ्रष्टा सच्चे परमात्मा को पवित्र ही अच्छा लगता है, गन्दा नहीं) । हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) परमात्मा का गुणगान करता है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

गउड़ी गुधारेरी

हउमै करतिआ नह सुनु होइ । मनमति भूठी सबा सोइ ॥
 सगल बिगूते भावै होइ । सो कमावै सुरि लिखिआ होइ ॥ १ ॥
 ऐसा जनु बेलिआ जूझारी । सनि सुख मागै नामु बित्तारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 अबिसट्ट विसै ता कहिआ जाइ । बिनु देखे कहणा बिरथा जाइ ॥
 गुरमुखि दोसै सहजि सुभाइ । सेवा सुरति एक लिव लाइ ॥ २ ॥
 सुख मांगत बुलु भ्रामल होइ । सगल बिकारी हारु परोइ ।
 एक बिना भूठे सुकति न होइ । करि करि करता देखै सोइ ॥ ३ ॥
 वृसना भगनि सबवि सुभाए । दूजा भरमु सहजि सुभाए ॥
 गुरमती नामु रिदै बसाए । साची बाखी हरिगुण गाए ॥ ४ ॥
 तन महि साचो गुरमुखि भाउ । नाम बिना नाही निज ठाउ ॥
 प्रेम पराइए प्रीतम राउ । नदरि करे ता बूझै नाउ ॥ ५ ॥
 नाइआ मोहु सरब जंजाला । मनसुख कुघील कुछित बिकराला ॥
 सतिगुरु सेवे बूझै जंजाला । धंसुत नामु सदा सुख नाला ॥ ६ ॥
 गुरमुखि बूझै एक लिव लाए । निज घरि वासै साखि समाए ॥
 जंमगु मरणा ठाकि रहाए । पूरे गुर ते इह मति पाए ॥ ७ ॥
 कथनी कथउ न भावै ओरु । गुरु पुछि बेलिआ नाही दरु होरु ॥
 दुख सुख भाएँ तिसै रजाइ । मानकु नीनु कहै लिव लाइ ॥ ८ ॥ ४ ॥

अहंकार करते रहने से सुख नहीं प्राप्त होता । मन (के द्वारा कल्पित) बुद्धि झूठी है, वही (परमात्मा अकेला) सच्चा है । (जितने भी लोग) द्वैतभाव के हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं । पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के अनुसार (जिन्हें परमात्मा) लिख देता है, वही (उसे) प्राप्त करता है ॥ १ ॥

(मैंने) जगत् (के लोगों को) इस प्रकार का जुझाई देखा है कि सुख तो सभी कोई मांगते हैं, (किन्तु) नाम भुला देते हैं, (तात्पर्य यह कि सारे सुख नाम के अधीन ही हैं । नाम के बिना जगत् में कोई सुख नहीं है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) ग्रहण्य है, (यदि वह देखा जाय) तभी उसका (ठीक ठीक से) कथन किया जा सकता है । बिना देखे कथन करना, व्यर्थ होता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) को सहज भाव से (वह परमात्मा) दिखाई पड़ता है (शिष्य) सेवा, सुरति एवं एकनिष्ठ ध्यान (लिव) लगा कर (उस परमात्मा का) दर्शन करता है ॥ २ ॥

सुख माँगने पर (और) अधिक दुःख (प्राप्त) होता है । (ऐसा ज्ञात होता है कि सांसारिक लोग) समस्त विकारों की माला ग्रहण कर (पहने हैं) । एक (परमात्मा) के बिना समस्त (विकारी, मनुष्य) झूठे हैं, (उनकी) मुक्ति नहीं होती । कर्त्ता (पुरुष) ही (सृष्टि) रच-रच कर, उसे देखता रहता है ॥ ३ ॥

(गुरु के) शब्द द्वारा (शिष्य) तृष्णा की अग्नि बुझा दे, (फिर) द्वैतभाव स्वामा-^१ बिक ही (समाप्त हो जायगा) । गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) (परमात्मा का) नाम हृदय में बसा लेता है और (उसकी) सच्ची वाणी द्वारा हरि का गुणगान करता है ॥ ४ ॥

जिन्हें गुरु द्वारा प्रेम (उत्पन्न हुआ है), उनके शरीर में सच्चा (परमात्मा) स्थित है-) । कोई नाम के बिना अपने (वास्तविक) स्थान में (आत्मस्वरूप में) टिक नहीं (सकता) । प्रीतम राउ (परमात्मा) प्रेम-पारायण है, (अर्थात् प्रभु प्रेम के बशीभूत है) ॥ ५ ॥

माया (के प्रति) मोह ही सारे जंजालों का मूल कारण है । (अपने) मन के अनुसार चलनेवाला व्यक्ति गंदा, कुत्सित, तथा विकराल (भयानक) है । तद्गुरु की सेवा करने से सारे जंजाल समाप्त हो जाते हैं । जिसके मुख) में अमृत-नाम है, उसके साथ सदैव ही सुख है ॥ ६ ॥

गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) एक (परमात्मा से) लिव लगा कर, (उसे) समझ लेता है, (फिर) वह अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूप) में रहने लगता है और सच्चे (परमात्मा) में समा जाता है । (ऐसा व्यक्ति) जन्म-मरण को रोक देता है । पूर्ण गुरु से ही यह बुद्धि प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

कथन करने से (उस परमात्मा का) अन्त नहीं पाया जाता । गुरु से पूछ कर मैंने देख लिया है कि (परमात्मा को छोड़कर) कोई अन्य द्वार नहीं है । उसी (प्रभु) की आज्ञा और इच्छा से दुःख-सुख (प्राप्त होते हैं) । तुच्छ नानक ध्यान लगाकर यह बात कहता है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

गउड़ी

दूजी माइया जगत जितु बासु । काम कोथ अहंकार बिनासु ॥ १ ॥
 दूजा कउसु कहा नही कोई । सभ महि एक निरंजनु सोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 दूजी बुरमति आखै दोइ । आखै जाइ मरि दूजा होइ ॥ २ ॥
 धरणि गगनि नह देखउ दोइ । नारी पुरख सबार्द सोइ ॥ ३ ॥
 रजि ससि देखउ दीपक उजिआला । सरब निरंतरि प्रीतसु बाला ॥ ४ ॥
 करि किरपा मेरा जितु लाइया । सतिगुरि मो कउ एक बुझाइया ॥ ५ ॥
 एक निरंजनु गुरुसुखि जाता । दूजा मारि सबदि पछाता ॥ ६ ॥
 एको हुकमु बरतै सभ सोई । एकसु ते सभ ओपति होई ॥ ७ ॥
 राह बोखै लससु एको जाणु । गुर कै सबदि हुकमु पछाणु ॥ ८ ॥
 सगल रूप बदन मन माही । कहु नानक एको सालाही ॥ ९ ॥ ५ ॥

माया ने जगत् के चित्त में बास किया है (और भ्रम के कारण जीव के निमित्त) दूसरी (होकर प्रतीत हो रही है) । (माया ने) काम, क्रोध, अहंकार (का वेश धारण किया है); (ये) विनाश के कारण हैं ॥ १ ॥

दूसरा (मैं) किसे कहूँ, जब कोई द्वैत है ही नहीं ? सभी (जड़, चेतन) में एक वही निरंजन व्याप्त है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

द्वैतभाव वाली बुद्धि द्वैत कथन करती है । (द्वैत बुद्धि ही के कारण जीव) आता है, जाता है (जन्म धारण करता है और मरता है) और मर कर द्वैत ही हो जाता है ॥ २ ॥

भ्रमती और आकाश में (मुझे कुछ भी) द्वैत नहीं दिखाई पड़ता । नारी, पुरुष तथा सभी लोगों (प्राणियों) में (वही अकेला प्रभु दिखाई पड़ रहा है) ॥ ३ ॥

(मैं) सूर्य और चन्द्रमा (प्रभु के) प्रकाशमान दीपक के रूप में देखता हूँ । सदैव नवीन शरीर वाला (मेरा प्रभु) सभी के भीतर (वास कर रहा है) ॥ ४ ॥

(प्रभु ने) कृपा करके मेरा चित्त (अपने में) लगा लिया है । सद्गुद ने मुझे एक (तत्त्व का) बोध करा दिया है ॥ ५ ॥

गुरु की शिक्षा से (मुझ द्वारा) एक निरंजन जान लिया गया है । द्वैत भाव मार कर शब्द भी पहचाना गया है ॥ ६ ॥

(परमात्मा का) एक हुक्म सारे लोको में बरत रहा है । एक उसी (परमात्मा से) समस्त उत्पत्ति हुई है ॥ ७ ॥

दो मार्ग हैं, [हिन्दू धर्म और मुसलमान मजहब अथवा श्रेयस् (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग और प्रेयस् (सांसारिक ऐश्वर्य-प्राप्ति का) मार्ग]; किन्तु उन दोनों के बीच एक परमात्मा को ही जानो । गुरु के शब्द द्वारा (उस प्रभु के) हुक्म को पहचानो ॥ ८ ॥

सारे रूप और रंग मन के ही अंतर्गत हैं । नानक कहते हैं कि एक परमात्मा की ही स्तुति करनी चाहिए ॥ ९ ॥ ५ ॥

[६]

गउड़ी

अविघ्नतम करम करे ता साखा । सुकति भेदु किमा जालै काखा ॥ १ ॥

ऐसा जोगी सुगति-बोचारे । पंच मारि साखु उरिधारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिस कै अंतरि साखु बसावै । जोग सुगति की कीमति पावै ॥ २ ॥

रवि सति एको गृह उबिधाने । करणी कीरति करम सम्माने ॥ ३ ॥

एक सबद इक भिक्षिया मागे । विघ्नानु विघ्नानु सुगति सनु जागे ॥ ४ ॥

भै रवि रहै न बाहुर जाइ । कीमति कउरागु रहै लिख साइ ॥ ५ ॥

घाये जेले भरसु चुकाए । गुर परसावि परम पडु पाए ॥ ६ ॥

गुर की सेवा सबडु बोधारु । हुउमै मारे करणी सारु ॥ ७ ॥

अप तप संजम पाठ पुरासु । कहु-नानक अपरंपर सासु ॥ ८ ॥ ६ ॥

जो आध्यात्मिक कर्म करता है, वही सच्चा है। कच्चा मनुष्य मुक्ति के भेद को क्या जान सकता है ? ॥ १ ॥

(ब्रह्मत्विक) योगी (योग की ठोक) युक्ति विचार करता है। (वह योगी) पंच (कामादिकों) को मारता और (अपने) हृदय में सत्व धारण करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) अपने हृदय में सत्यस्वरूप (परमात्मा को) बसा लेता है, (वही) योग की युक्ति की कीमत पाता है ॥ २ ॥

एक (परमात्मा ही) सूर्य, चन्द्रमा और गुरु, वन में है। परमात्मा के यश को करनी (सच्चे साधक के लिये) कर्मकाण्ड के समान हो गई है ॥ ३ ॥

गुरु के एक शब्द के द्वारा वह (प्रभु के नाम की) भिक्षा माँगता है। सत्य (उसके अंतर्गत) प्रकाशित हो गया है, (अतएव उसमें) ज्ञान, ध्यान की युक्तियाँ (सहज भाव से आ गई हैं) ॥ ४ ॥

(ऐसा साधक) (परमात्मा के) भय में अनुरक्त रहता है, (उस भय से वह) बाहर नहीं जाता। उसका कौन मूल्य आँक सकता है, जो (परमात्मा के) लिव में लीन है ? ॥ ५ ॥

(जिसे परमात्मा) अपने में मिलाता है, वह (उसके समस्त) भ्रम समाप्त कर देता है। गुरु की कृपा से (वह) परम गति पाता है ॥ ६ ॥

गुरु की सेवा द्वारा (वह गुरु के) शब्द पर विचार करके अहंकार को मारता है। यही कर्म (सारे कर्मों का) सार (तत्व) है ॥ ७ ॥

नानक कहते हैं कि (सारे) जप, तप, संयम, पुराणों के पाठ (का यही सार है) कि सब से परे हरी को माना जाय ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

गउड़ी

लिमा गहो बतु सील संतोलं । रोगु न बिघ्रापै ना जम दोलं ॥

मुकत भए प्रभ रूप न रेखं ॥ १ ॥

जोगी फउ कैसा डरु होइ । कलि बिरलि गृहि बाहुरि सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

निरभउ जोगी निरंजनु बिघ्रावै । अनदिनु जालै सखि तिव लखै ॥

सो जोगी मेरै मनि भावै ॥ २ ॥

कालु जालु ब्रह्म भगनो जारे । जरा भरसु गतु गरसु निवारे ॥

आपि तरै पितरी निसतारे ॥ ३ ॥

सतिगुरु सेवे सो जोगी होइ । भे रजि रहै सु निरभउ होइ ॥

जोसा सेवे तेसो होइ ॥ ४ ॥

नर निहकेवल निरभउ नाउ । अनापह नाथ करे बलि जाउ ।

पुनरपि जनमु नाही गुण गाउ ॥ ५ ॥

अंतरि बाहुरि एको जासो । गुर के सबबे आपु पछासो ॥

साबे सबबि बरि नोसारी ॥ ६ ॥

सबबि मरे सिसु निज घरि बासा । आवे न जावे चूकै आसा ॥

गुर के सबबि कन्सु परगत्सा ॥ ७ ॥

जो दोहो सो आस निरासा । काम क्रोध बिसु भूख पिआसा ॥

नामक बिरले मिलहि उदासा ॥ ८ ॥ ७ ॥

(जिन्होंने) समा, शील, संतोष का व्रत ग्रहण कर लिया है, (उन्हें) न तो कोई रोग व्याप्त होता है और न यम का दोष ही (लगता है) । (ऐसे लोग) मुक्त हो जाते हैं और रूप तथा रेशा से रहित प्रभु का स्वरूप ही हो जाते हैं ॥१॥

(भला बताओ), योगी को किस प्रकार भय लग सकता है ? (सर्वात्मक दृष्टि के कारण उसका भयवाली भावना मिट जाती है) । (वह तो) रुख-वृक्षों तथा घर-बाहर (एक परमात्मा) को ही (देखता है) ॥१॥रहाउ॥

(जो) योगी निर्भय है, (वह) निरंजन (माया से रहित हरी) का ही ध्यान करता है । (वह) प्रति दिन जागता है और सत्य (परमात्मा) में (अपनी) निव लगाता है । ऐसा योगी मेरे मन को अच्छा लगता है ॥२॥

(ऐसा निर्भय योगी) काल के समूह को (अथवा काल के जाल को) ब्रह्मज्ञान की अग्नि में जला डालता है और जरा-मरण विषयक अभिमान का निवारण कर देता है । वह स्वयं तरता ही है (अपने) पितरों का भी निस्तार कर देता है ॥३॥

(जो) सद्गुरु की सेवा करता है, वही योगी होता है । (परमात्मा के) भय में धनुरक्त रहता है, वही निर्भय होता है । जिस प्रकार की आराधना करता है, वैसा ही हो जाता है ॥४॥

निष्केवल पुरुष तथा निर्भय नाम वाला (केवल परमात्मा ही है) । (हरी) अनाथों को नाथ बना देता है ! (मैं उस पर) बलिहारी होता हूँ । (चूंकि) उसका गुणगान करता हूँ (अतएव) पुनः जन्म नहीं (होगा) ॥५॥

गुरु के शब्द द्वारा (शिष्य) अपने आप को पहचानता है (तथा) अन्तर और बाहर एक (परमात्मा) को जानता है । सच्चे शब्द के द्वारा (परमात्मा के) दरवाजे पर (साधक को) निशान पड़ता है, (अर्थात् वह प्रतिष्ठित होता है) ॥६॥

(जो गुरु के) शब्द में मरता है, वह अपने (वास्तविक) घर में (आत्मस्वरूप में) निवास करता है । वह न आता है, न जाता है (न जन्म धारण करता है और न मरता है), (उसकी समस्त) आशाएँ समाप्त हो जाती हैं । गुरु के शब्द द्वारा (उसका हृदय रूपी) कमल प्रकाशित हो जाता है ॥७॥

जो भी (व्यक्ति इस संसार में) दिखाई पड़ता है, वह (या तो) आशा (में है), या निराशा (में है); काम-क्रोध का विष तथा भूख-प्यास (का दुःख सभी को है) । हे नानक, कोई बिरले ही (माया के आकर्षणों से) बिरक्त होते हैं ॥८॥७॥

[८]

गउदी

ऐसो वासु मिले सुख होई । बुख बितरे पावे सखु सोई ॥ १ ॥
 बरसन देखि भई मति पूरी । अठसठि मजनु बरन्हू खुरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 नेत्र संतोखे एक लिब तारा । जिहवा खूबी हरिदस सारा ॥ २ ॥
 सखु करणी अम अंतरि सेवा । मनु तुपतासिधा अलख अमेवा ॥ ३ ॥
 जह जह देखउ तह तह सावा । बिनु बुझे अगतर जगु कावा ॥ ४ ॥
 गुरु समभावे सोझी होई । गुरुमुखि बिरला बुझे कोई ॥ ५ ॥
 करि किरपा राखहु रखवाले । बिनु बुझे पसु भए बैताले ॥ ६ ॥
 गुरि कहिषा अखर नही पूजा । किन्तु कहु देखि करउ अम पूजा ॥ ७ ॥
 संत हेति प्रमि त्रिअवण धारे । अतमु जोने सु तनु बीजारे ॥ ८ ॥
 साखु रिदै सखु प्रेम निवास । अणवति नानक हम ताके दास ॥ ९ ॥ ८ ॥

जो (सांसारिक) दुःखों को विस्मृत हो जाता है, वही सत्य (परमात्मा) को पाला है । इस प्रकार के (भगवान् के) दास के मिलने से (परम) सुख होता है ॥१॥

(इस प्रकार के दास के) दर्शन करने से बुद्धि पूर्ण हो जाती है । (उनकी) चरण-धुलि अड़सठ (तीर्थों के) मञ्जन के समान है ॥१॥रहाउ॥

एक (हरी) में लिब की ताड़ी (लगने से) (उनके) नेत्र संतुष्ट हो गए हैं । हरि-रस ग्रहण करने से (धारण करने से) (उनकी) जिह्वा पवित्र हो गई है ॥२॥

आभ्यान्तरिक सेवा ही (ऐसे भक्तों की) सच्ची करणी है । अलख घोर अभेद (परमात्मा का साक्षात्कार करके) उनके मन वृत्त हो गए हैं ॥३॥

(मैं) जहाँ जहाँ देखता हूँ, वहाँ वहाँ (मुझे) सच्चा (परमात्मा ही बिलाई पड़ता है) । कच्चा (अज्ञानी) जगत् बिना समझे ही भगवत्ता है ॥४॥

गुरु समझता है, तभी समझ आती है । कोई बिरला ही व्यक्ति गुरु की शिक्षा द्वारा (सत्य परमात्मा को) समझता है ॥५॥

(हे मेरी) रक्षा करनेवाले, कृपा करके मेरी रक्षा करो । बिना (प्रभु को) समझे (लोग) पशु और भूत हो जाते हैं ॥६॥

गुरु ने मुझे (यह) कह दिया कि (एक परमात्मा को छोड़कर) कोई और दूसरा नहीं है । मैं किसे देख कर (धव) अन्त्य पूजा कर्क ? ॥७॥

संतों के ही निमित्त प्रभु ने तीनों लोकों को धारण कर रक्खा है । (जो) भगवत्ता को पहचानता है, वही तत्त्व का विचार करता है ॥८॥

सच्चे अंतःकरण में सच्चे प्रेम का निवास होता है । नानक वितयपूर्वक कहते हैं कि हम ऐसे (भक्तों के) दास हैं ॥९॥८॥

[९]

गउदी

महमै गरबु कोछा नही जानिषा । जेद की बिपति पड़ी पछुतानिषा ॥

जह प्रम त्रिपरे तही मनु मानिषा ॥ १ ॥

ऐसा गरबु बुरा संतारे । बिनु गुरु मिले तिसु गरबु निबारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बलि राजा नाइआ अहंकारी । जगन करे बहु भार अफारी ॥

बिनु गुरु दूजे जाइ पइसारी ॥ २ ॥

हरीचंद बानु करै जसु लेबै । बिनु गुरु अंत न पाइ अभेवै ॥

आपि मुलाइ आपै मति देवै ॥ ३ ॥

दुरबलि हरयालसु बुराबारी । प्रभु नारादसु गरब प्रहारी ।

प्रहलाब उचारे किरपा वारी ॥ ४ ॥

भूलो राबसु सुगसु अचेति । झूटी लंका सोस समेति ॥

गरबि गइआ बिनु सतिगुर हेति ॥ ५ ॥

सहसबाहु मधुकीट महिआसा । हरयालसु ले नलहु बिधासा ॥

देत संघारे बिनु भगति अभिआसा ॥ ६ ॥

जरासंधि कालजमुन संघारे । रक्तबीसु कालुनेसु बिबारे ॥

देत संघारि संत निसतारे ॥ ७ ॥

आपे सतिगुरु सबहु बीचारे । दूजे भाइ देत संघारे ॥

गुरमुखि साचि भगति निसतारे ॥ ८ ॥

बूडा दुरजोधनु पति खोई । रासु न जानिआ करता सोई ॥

जन कउ दूख पचै दुखु होई ॥ ९ ॥

जनमेजे गुर सबहु न जानिआ । किउ सुखु पावै भरमि मुलानिआ ॥

इकु तिलु भूले बहुरि पछुतानिआ ॥ १० ॥

कंसु केसु चांडूरु न कोई । रासु न चीनिआ अपनी पति खोई ॥

बिनु जगदीस न राखै कोई ॥ ११ ॥

बिनु गुर गरबु न भेटिआ जाइ । गुरमति धरसु धीरसु हरिनाइ ॥

नानक नामु मिलै गुण गाइ ॥ १२ ॥ ६ ॥

ब्रह्मा ने अभिमान किया और (परम तत्व को) न जान सके, (इस अभिमान का परिणाम यह हुआ कि जब उनके ऊपर) वेदों की विपत्ति पड़ी (वेद चुरा लिए गए), (तो वे) पछताने लगे । पुनः (जब) ब्रह्मा ने (अपने उत्पत्ति-स्थान) का स्मरण किया, तब (उनका) मन मान गया ॥१॥

ऐसा गर्व करना संसार में बुरा होता है । जिसे गुरु प्राप्त होता है, उसका गर्व (वह) दूर कर देता है ॥१॥२॥३॥

बलि राजा अपनी माया (धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य) में बहुत अहंकारी हो गया था । वह बहुत अहंभाव से यज्ञादिक करता था । बिना गुरु (शुक्राचार्य) के पूछे, उसे (बंध कर) पाताल लोक जाना पड़ा ॥२॥

(राजा) हरिश्चन्द्र दान करते थे और धन लेते थे । (किन्तु उन्होंने) बिना गुरु के प्रभेद (परमात्मा का) भ्रम नहीं पाया । परमात्मा स्वयं ही (जीवों को) मुला कर (अपने से पृथक् कर देता है) और स्वयं ही जीवों को बुद्धि देकर (अपने में मिला लेता है) ॥३॥

दुर्बिंद एवं दुराचारी हिरण्यकश्यप के गबं पर प्रभु नारायण ने फहार किया है । प्रह्लाद के ऊपर कृपा करके प्रभु ने (उसका) उद्धार किया है ॥४॥

मूर्ख और विवेकहीन रावण (अपने अहंभाव में) भूल गया (इसी कारण) (उसकी सोने की) लंका उसके (दसों) शिरों सहित लूटी गई । बिना सद्गुरु में प्रेम करने से उसका सारा अहंभाव जूर जूर हो गया ॥५॥

सहस्रबाहु, मधुकैटभ, महिषासुर (आदि अपने अहंभाव एवं गुरु की आज्ञा न मानने के कारण मारे गए), हिरण्यकश्यप को (दुर्तिह भगवान् ने अपनी गोदी में) लेकर (अपने) नखों से विध्वंस कर डाला । बिना भक्ति के अभ्यास के (सारे) दैत्य संहार किए गए ॥६॥

जरासंध, कालजमुन संहार किए गए । रक्तबीज और कालनेमि भी विदीर्ण किए गए । इस प्रकार (परमात्मा ने) दैत्यों का संहार किया और संतों की रक्षा की ॥७॥

प्रभु प्राप ही सद्गुरु (होकर) शब्द विचारता है और द्वैतभाव (के) दैत्य का संहार करता है । सत्य और भोक्ते के कारण (वह) गुरुमुखों को तारता है ॥८॥

दुर्योधन प्रतिष्ठा खोकर डूब गया, (नष्ट हो गया) । (अहंभाव की प्रबलता के कारण) उसने राम को कर्त्ता के रूप में नहीं जाना । (परमात्मा के) भक्तों को जो दुःख देता है, वह दुःखी होकर नष्ट हो जाता है ॥९॥

जन्मेजय ने भी गुरु के शब्द पर ध्यान नहीं दिया; (अतएव) भ्रमित होकर भटकते रहे; (बिना गुरु के शब्द पर विचार किए) कैसे सुख प्राप्त हो सकता है ? एक तिलमात्र भूल करने से (जन्मेजय) को बहुत पछताना पड़ा ॥१०॥

कंस, केशी (तथा) चाणूर (मे से) किसी ने भी राम को नहीं समझा, (अतः उन लोगों ने) अपनी प्रतिष्ठा गंवा दी (और मारे गए) । बिना जगदीश के कोई भी रक्षा नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

बिना गुरु के अहंकार नहीं मेटा जा सकता । गुरु के उपदेश द्वारा हरी का नाम (अपने से) धैर्य और धर्म (प्राप्त होते हैं) । नानक कहते हैं कि (परमात्मा का) गुणगान करने से (शिष्य) नाम में मिल जाता है ॥ १२ ॥ ६ ॥

[१०]

गउड़ी

जोसा चंबनु भंकि चड़ावउ । पाट पटंबर पहिरि हड़ावउ ॥

बिनु हरिनाम कहा सुख पावउ ॥ १ ॥

किष्ठा पहिरउ किष्ठा ओढि विलावउ । बिनु जगदीस कहा सुख पावउ ॥ १ ॥ रहाउ ।

कानी कुंडल यलि मोतीघन की माला । लाल निहाली फूल गुलाला ॥

बिनु जगदीस कहा सुख माला ॥ २ ॥

नेन सलोनी सुंदर नारी । जोड़ सीगार करै अलि पिमारी ॥

बिनु जगदीस भजे नित सुमारी ॥ ३ ॥

दर धर महला सेज सुजाँली । अहिनिशि फूल बिछावै माली ॥

बिनु हरिनाम सु बेह दुखाली ॥ ४ ॥

हैबर नैवर नेजे बाजे । लखकर नेब लखाली पाजे ॥

बिनु जगदीस भूटे दिखाले ॥ ५ ॥

सिधु कहावउ रिधि सिधि मुलावउ । तान कुलहु सिरि छत्र बनावउ ॥

बिनु जगदीस कहा ससु बावउ ॥ ६ ॥

खानु मल्लकु कहावउ राजा । अख तबे कूड़े है पावा ॥

बिनु गुर सबब न सबरसि काजा ॥ ७ ॥

हउमै ममता गुर सबदि बिसारी । गुरमति जानिअ रिबै मुरारी ॥

प्रणवति नामक सरसि तुमारी ॥ ८ ॥ १० ॥

(यदि मैं) शरीर में चोभा-चन्दन मलूँ, वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र पहन कर (इतराता) फिरे, (फिर भी) बिना हरिनाम के कहाँ सुख पा सकता हूँ ? ॥ १ ४

मैं क्या पहनूँ और क्या धोड़ कर (दूसरों को) दिखाऊँ ? बिना जगदीश के कहाँ सुख पा सकता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि मैं) कानों में कुण्डल तथा गले में मोतियों की माला (पहने होऊँ), लाल रजाई (धोड़े होऊँ) और लाल फूलों से सुसज्जित होऊँ, किन्तु बिना जगदीश के कहाँ सुख प्राप्त हो सकता है ?

(यदि) सलोनी घ्राँलोवाली सुन्दर स्त्री हो और (वह) सोलह शृंगार करके बड़ी खुभावनी (बनी हो); किन्तु बिना जगदीश के भजन के नित्य बरबादी ही होती है ॥ ३ ॥

(यदि) दरवाजे, घर और महल (हों), सुखदायिनी सेज हो, माली अहिनिश (सेज पर) फूल बिछाता हो, किन्तु बिना परमात्मा के नाम का भजन किए (सारे भोगों के भोगने के पश्चात् भी) देह दुःखी ही रहती है ॥ ४ ॥

(यदि) श्रेष्ठ घोड़े, श्रेष्ठ हाथी, भाले (तथा विविध प्रकार के) बाजे, सेना, नायब, शाही नौकर (तथा अन्य) दिखावेवाली (बस्तुएँ) हों, किन्तु बिना जगदीश के (सभी ऐश्वर्य) भूटे दिखावे मात्र है ॥ ५ ॥

(चाहे मैं) सिद्ध कहलाऊँ और श्रद्धियों-सिद्धियों को बुला लूँ, सिर पर ताज की टोपी (पहनूँ) तथा छत्र धारण करूँ, किन्तु बिना जगदीश के कहाँ सुख पा सकता हूँ ? ॥ ६ ॥

(चाहे) खान, बादशाह और राजा कहलाऊँ और "अबे तबे" (कहकर नौकरों पर हुकम-चलाऊँ), किन्तु यह सब भूटे दिखावे मात्र है । बिना गुरु के शब्द के कोई कार्य नहीं सँवरता ॥ ७ ॥

गुरु के शब्द द्वारा (मैं) अहं भावना और ममता को भुला दिया है तथा गुरु के उपदेश द्वारा मुरारी (परमात्मा) को अपने हृदय में (बिराजमान) समझ लिया है । नामक विनय-पूर्वक कहते हैं (कि हे प्रभु मैं) तुम्हारी शरण में हूँ ॥ ८ ॥ १० ॥

[११]

गउड़ी

सेवा एक न जानसि अबरै । परपंच बिभ्राधि तिभ्रायै कबरै ॥

भाइ मिलै सनु साचै सनु रे ॥ १ ॥

ऐसा राम भगतु जनु होई । हरिगुण गाइ मिलै सनु खोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ऊँचा कवतु सगल संसारै । बुरमति भगनि जगत परजारै ।

सो उबरै गुर सबहु बीवारै ॥ २ ॥

भूँग पतंगु कुंजरु अरु मोना । मिरगु मरै सहि अपुना कीना ॥

वृसना राखि तनु नही बीना ॥ ३ ॥

कामु बितै कामलि हितकारी । क्रोधु बिनासै सगल विकारी ॥

पति मति खोवहि नामु बिसारी ॥ ४ ॥

परधरि बीनु मनमुनि डोलाइ । गलि जेबरी बंधै लपटाइ ॥

गुरमुखि छूटसि हरिगुण गाइ ॥ ५ ॥

जिउ तनु बिधवा पर कउ बेई । कामि दामि चितु पर बसि सेई ॥

बिनु पिर नृपति न कबहूँ होई ॥ ६ ॥

पड़ि पड़ि पोथी सिमृति पाठा । बेध पुराण पड़ै सुणि थाटा ॥

बिनु रस रातै मनु बहु नमटा ॥ ७ ॥

जिउ बावुक जल प्रेम पिआसा । जिउ मोना जल माहि उलासा ॥

नानक हरि रसु पी नृषतासा ॥ ८ ॥ ११ ॥

(जो) एक (परमात्मा) को सेवा करता है, (वह) अन्य को नहीं जानता है, कड़वे (सासारिक) प्रपंचो तथा व्याधियों को त्याग देता है, अरे (भाई) (वह) प्रेम से सत्यस्वरूप (परमात्मा) से मिलता है ॥ १ ॥

राम का ऐसा भक्त कोई (बिरला ही) जन होता है । (ऐसा भक्त) परमात्मा का गुणगान करके, समस्त मलों को धोकर (परमात्मा से) मिल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सारे जगत का हृदय रूपी कमल उल्टा है (अर्थात् परमात्मा की ओर से विमुख है) । दुर्मति की भूमि में सारा जगत जल रहा है । जो गुरु के शब्द पर विचार करता है, वही उबरता है ॥ २ ॥

भौरा, पतंग, हाथी, मछली तथा मृग—(ये पाँचों क्रमशः गन्ध, रूप, स्पर्श, रस, श्रवण के अधीन हैं) ये अपने किए हुए के अनुसार सहन करते हैं और मरते हैं । इन सबों ने तृष्णा में अनुरक्त होकर वस्त्र नहीं पहनना है ॥ ३ ॥

(जिस प्रकार) खी का प्रेमी का काम का चिन्तन करता है, (और जिस प्रकार) विकारपूर्ण क्रोध सारी (वस्तुओं) का नाश कर देता है, (उसी प्रकार लोग) नाम को भुला कर प्रतिष्ठा और बुद्धि खो देते हैं ॥ ४ ॥

मनमुख दूसरो की स्त्री में अपना चित्त डोलाता है (चंचल करता है); (उसके) गले में रस्सी (पड़ी रहती है) और (सासारिक) धंधों में लिपटा रहता है । गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का गुण गान करके वह (संसार से) छूटता है ॥ ५ ॥

जिस भाँति विधवा (अपना) शरीर दूसरे को दे देती है, वह काम और धन के निमित्त अपना चित्त पराये के वशीभूत करती है, (किन्तु) बिना (अपने) पति के उसे कभी तृप्ति नहीं होती, (उसी भाँति मनमुख मायिक आकर्षणों में अपना चित्त वशीभूत कर देता है, किन्तु बिना परमात्मा के उन्हे शान्ति कभी नहीं प्राप्त होती) ॥ ६ ॥

(सासारिक व्यक्ति) (धार्मिक पुस्तकें) पढ़ते हैं तथा स्मृतियों का पाठ करते हैं, (वे) ठाट से वेद-पुराण पढ़ते और सुनते हैं, (किन्तु चित्त-वृत्ति बहिर्मुखी होने के कारण, उनके हृदय में परमात्मा के प्रति अनुराग नहीं उत्पन्न होता); (परन्तु) बिना (परमात्मा के) रस में अनुरक्त हुए, उनका मन (नट की भाँति) बहुत नाचता रहता है ॥ ७ ॥

जिस प्रकार चातक (स्वाती नक्षत्र के) जल के प्रेम के निमित्त व्यासा रहता है, और जिस प्रकार मछली जल में उल्लसित रहती है, (ठीक उसी प्रकार) नानक भी हरि रस को पीकर, तृप्त हो गया है ॥ ८ ॥ ११ ॥

[१२]

गउड़ी

हठ करि मरे न लेखै पावै । बेस करै बहु भसम लगावै ॥

नामु बिसारि बहुदि पछुतावै ॥ १ ॥

तूं मनि हरि जोड तूं मनि मूख । नाम बिसारि सहहि जम बूख ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चोप्रा बंवन अमर कपूरि । माहप्रा मगनु परम पदु कूरि ॥

नामि बिसारिऐ सभु कूड़ो कूरि ॥ २ ॥

नेजे बाजे तखति सलामु । अथकी तुसना बिघापे कामु ॥

बिनु हरि जाचे भगति न नामु ॥ ३ ॥

बाबि अहंकारि नाही प्रभ भेला । मनु बे पाबहि नामु सुहेला ॥

कूजै भाइ अगिअनु दुहेला ॥ ४ ॥

बिनु दम के सजदा नही हाट । बिनु बोहिय सागर नही बाट ॥

बिनु गुर सेवे घाटे घाटि ॥ ५ ॥

तिस कज बाहु बाहु जि बाट दिलावै । तिस कज बाहु बाहु जि सबदि सुरावै ॥

तिस कज बाहु बाहु जि खेलि मिलावै ॥ ६ ॥

बाहु बाहु तिस कज जिस का इहु जोड । गुर सबरी मधि धंभुत पीउ ॥

नाम बडाई तुघु भारण बीउ ॥ ७ ॥

नाम बिना किउ जीवा माइ । अनबिनु जपतु रहउ तेरी सरसाइ ॥

नानक नामि रते पति पाइ ॥ ८ ॥ १२ ॥

(मनसुख) हठ करके मरता है, किन्तु (परमात्मा के यहाँ) लेखा नहीं पाता है, (अर्थात् परमात्मा के यहाँ उसकी न तो पूछ होती है और न गणना) । (वह) अनेक वेश धारण करता है (और शरीर पर) भस्म लगाता है, किन्तु नाम को भुला कर पुनः पछताता है ॥ १ ॥

तू हरी को मन में (बसा) और मन ही में सुख ले । (तू) नाम भुलाकर यम के दुःखों को ही सह रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चोवा, चंदन, धगर, कपूर (इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोग में तू रत है), माया में निमग्न है, अतः परम पद (मोक्ष पद, निर्वाण पद, चतुर्थ पद) (तुझसे) दूर है । नाम के भुलाने पर सारी (मायिक वस्तुएँ) झूठी हो (सिद्ध होती) हैं ॥ २ ॥

भाले (हों), बाजे हो और तल्ल (सिंहासन) पर (लोग) सलाम (करते हों) । (इन सब सासारिक ऐश्वर्यों से) तृष्णा और अधिक बढ़ती है और काम भी (अधिक) व्याप्त होता है । बिना हरि से याचना किए न भक्ति (मिलती है और न) नाम (की प्राप्ति होती है) ॥ ३ ॥

वादो और अहंकार से प्रभु का मिलाप नहीं होता है । मन देने पर ही सुन्दर नाम की प्राप्ति होती है । द्वैतभाव में दुखदायी अज्ञान ही (बना रहता है) ॥ ४ ॥

बिना दाम (द्रव्य) के न सौदा (मिलता है) और न हाट ही मिलती है । बिना जहाज के समुद्र में मार्ग नहीं (प्राप्त होता) (और) बिना गुरु की सेवा किए घाटा ही घाटा (रहता है) ॥ ५ ॥

उसे धन्य है, धन्य है, जो (परमात्मा की प्राप्ति) मार्ग दिखाता है, उसे धन्य है (जो गुरु का) शब्द सुनाता है और उसे धन्य है जो परमात्मा से मेल मिलाता है ॥ ६ ॥

उसे धन्य है, धन्य है, जिसका यह जीव है । (मैं) गुरु के शब्द द्वारा मथकर (नाम रूपी) अमृत (निकाल कर) पीता हूँ । नाम की बड़ाई तुम अपनी मर्जी से देते हो ॥ ७ ॥

(हे माँ), नाम के बिना कैसे जीवित रहूँ ? तेरी शरण में रह कर प्रतिदिन (तेरा) नाम जपता रहूँ । हे नानक, नाम में रत होने पर ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ १२ ॥

[१३]

गउड़ी

हउमै करत भेखी नही जानिआ । गुरुमुखि भगति बिरले मनु मानिआ ॥ १ ॥

हउ हउ करत नही सनु पाईऐ । हउमै जाइ परम पदु पाईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हउमै करि राजे बहु धावहि । हउमै लपटि जनमि मरि आवहि ॥ २ ॥

हउमै निबरे गुर सबदु बीचारे । जंजल मति तिआमै पंच संधारे ॥ ३ ॥

अंतरि सानु सहज धरि आवहि । राजनु जाणि परम गति पावहि ॥ ४ ॥

सनु करली गुरु भरम चुकावै । निरभउ के धरि ताड़ी लावै ॥ ५ ॥

हउ हउ करि मरणा किरा पावै । पूरा गुरु भेटे सो भगरु चुकावै ॥ ६ ॥

जेतो है तेतो किहु नाही । गुरुमुखि गिआन भेटि गुण गाही ॥ ७ ॥

हउमै बंधन बंधि भवावै । नानक राम भगति सनु पावै ॥ ८ ॥ १३ ॥

ना० बा० फा०—३०

(जो) ग्रहंकार करता है, और वेष (बनाता है), (उसके द्वारा परमात्मा) नहीं जाना जाता । गुरु की शिक्षा द्वारा भक्ति (का आश्रय ग्रहण कर) किसी विरले (व्यक्ति) का ही मन मानता है ॥ १ ॥

“मैं मैं” करने से, (ग्रहंकार करने से) सत्य (परमात्मा की) प्राप्ति नहीं होती । ग्रहंकार के जाने से ही (नष्ट होने से ही) परम पद (निर्वाण पद, मोक्ष पद) की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ग्रहंकार करने से राजागण (विषयों में) अत्यधिक दौड़ते हैं । (वे) ग्रहंकार में लप जाते हैं, (फिर) जन्म लेते हैं, (फिर) मरते हैं (और फिर जन्म धारण कर संसार में) पाते हैं, (इस प्रकार उनके आवागमन का चक्र कुम्हार के चक्र की भाँति निरन्तर चलता रहता है) ॥ २ ॥

गुरु के शब्द पर विचार करने से ग्रहंकार दूर होता है; (शब्द पर विचार करके शिष्य) पंचस बुद्धि का त्याग करता है और पंच कामादिको का संहार करता है ॥ ३ ॥

(जिसके) अन्तःकरण में सत्य (परमात्मा) है, उसके घर (शरीर में) सहजावस्था भा जाती है । राजा (परमात्मा) को जान कर, वह परम गति पाता है ॥ ४ ॥

(शिष्य की) सत्य करनी करने से, गुरु (उसका) भ्रम दूर कर देता है और निर्भय (परमात्मा के) घर में लाड़ी (गंभीर ध्यान) लगवा देता है ॥ ५ ॥

“मैं मैं” करके मरने से क्या प्राप्त होता है ? (जो) पूर्ण गुरु से मिलता है, वही (आन्तरिक) ऋगङ्गों को समाप्त करता है ॥ ६ ॥

जितनी (भी) दृश्यमान वस्तुएँ हैं, वे (वास्तव में) कुछ भी नहीं हैं (क्षणभंगुर हैं) । (शिष्य) गुरु द्वारा यह ज्ञान प्राप्त कर (प्रभु के) गुरु गाते हैं ॥ ७ ॥

ग्रहंकार (जीवों को) बंधन में बाँध कर घुमाता है । नानक कहते हैं कि राम की भक्ति द्वारा (उन्हें) सुख प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ १३ ॥

[१४]

गउड़ी

प्रथमे ब्रह्मा काले घरि आइआ । ब्रह्म कमलु पइआलि न पाइआ ॥

आनिआ नही लोनी भरमि भुलाइआ ॥ १ ॥

जो उपजै सो कालि सघारिआ । हम हरि राखे गुर सबदु बीचारिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माइआ मोहे बेवो सभि बेवा । कालु न छोडै बिन गुर की सेवा ॥

प्रोष्ठु अविवासी अलख अमेवा ॥ २ ॥

सुलतान खान बाबिसाह नही रहना । नामदु भूलै जम का वसु सहना ॥

मैं घर नामु जिउ राखहु रहना ॥ ३ ॥

अउधरी राजे नही किते सुकामु । साह अरहि संचहि माइआ बाब ॥

मे धनु बीजे हरि अंभृत नामु ॥ ४ ॥

दुपत महर मुकवम सिकारै । निहंजलु कोइ न बिसै संसारै ॥

अकरिउ कालु कूडु सिरि मारै ॥ ५ ॥

निहचलु एकु सबा सलु सोई । जिन करि साजी तिनहि सभ गोई ॥

भोहु 'गुरमुखि जाये तां पति होई ॥ ६ ॥

काजी सेल खेल फकीरा । बडे कहावहि हुडमे तनि पीरा ॥

कालु न छोडे बिनु सतिगुर की धीरा ॥ ७ ॥

कालु जालु जिहवा भल नैली । कानी कालु सुगै बिलु बैली ॥

बिनु सबजै भूटे बिनु रैली ॥ ८ ॥

हिरदै सासु बसे हरिमाइ । कालु न जोहि सके गुण गाइ ॥

नानक गुरमुखि सबब समाइ ॥ ९ ॥ १४ ॥

(सर्व) प्रथम ब्रह्मा ही काल के घर में प्रविष्ट हुए । ब्रह्म-कमल [विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ कमल, जो ब्रह्मा की उत्पत्ति का स्थान है] (का भ्रन्त लगाने के लिए (वे) पाताल लोक में चले गए, किन्तु उसका भ्रन्त नहीं पा सके । (परमात्मा की) भाज्ञा नहीं मानी (उनकी इच्छा के अनुसार नहीं रहे, अतः) भ्रम में भटकते रहे ॥ १ ॥

(संसार में) जो भी (प्राणी) उत्पन्न हुआ है, काल ने उसका संहार किया है । गुरु के शब्द पर विचार करने से हरी ने हमारी रक्षा की है ॥ १ ॥ रहस्य ॥

माया ने सभी देवी-देवताओं को मोहित कर लिया है । बिना गुरु की सेवा किए काल किसी को भी नहीं छोड़ता । (एक मात्र) वह (परमात्मा ही) भविष्य और अग्रेद है ॥ २ ॥

सुल्तान, खान, बादशाह (किसी को भी यहाँ) नहीं रहना है । (परमात्मा के) नाम भूलने पर सभी को यम का दुःख सहना पड़ता है । मेरा आश्रय तो नाम ही है, जैसे (वह) रहे, वैसे ही रहना है ॥ ३ ॥

चौधरी, राजा किसी का भी (यहाँ) मुकाम नहीं है । (जो) साहूकार (अत्यधिक) माया और दाम संग्रह करते हैं, (वे भी) मर जाते हैं । हे हरी, मुझे तो (अपने) अमृत-नाम का ही धन प्रदान करो, (क्योंकि हरि-नाम-धन ही अक्षय और शाश्वत है) ॥ ४ ॥

प्रजा, मुखिया, चौधरी, सरदार (आदि में से) इस संसार में कोई निश्चल नहीं दिखाई पड़ता । अमिट काल भूटे के सिर पर चोट मारता है ॥ ५ ॥

वही एक सत्य (परमात्मा) निश्चल और शाश्वत है । जिसके द्वारा सारी सृष्टि रची जाती है, उसी के द्वारा (समस्त सृष्टि) लय भी की जाती है । (यदि वह परमात्मा) गुरु की शिक्षा द्वारा जान लिया जाता है, (अभी) प्रतिष्ठा होती है ॥ ६ ॥

काजी, शेख, भेलधारी फकीर बड़े कहते हैं, (किन्तु) (उनके) शरीर में अहंकार की पीड़ा (बनी हुई है) । बिना सद्गुरु के धैर्य दिए काल किसी को भी नहीं छोड़ता है ॥ ७ ॥

काल रूपी जाल जिह्वा, नेत्र, (कान, नासिका, त्वचा) के (विषयों के द्वारा जाना गया है) । विषयों वचनों को सुनना ही कानों का काल है । बिना गुरु के (मनमुख) दिन रात लूटे जा रहे हैं ॥ ८ ॥

(जिसके) हृदय में सत्य हरी का नाम बसता है, परमात्मा का गुणगान करने से काल उसकी ओर देख भी नहीं सकता है । नानक कहते हैं कि गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) शब्दों में समा जाता है ॥ ९ ॥ १४ ॥

[१५]

गउड़ी

बोलहि सासु बिधिआ नहो राई । बालहि गुरमुखि हुकमि रजाई ॥

रहहि अतीत सबे सरणाई ॥ १ ॥

सब घरि बैसै कासु न जोहै । मनमुख कउ आवत जावत दुसु मोहै ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अबिउ पीअउ अकसु कबि रहीऐ । निज घरि बैसै सहज घर लहीऐ ॥

हरि रस माते इहु सुसु कहीऐ ॥ २ ॥

गुरमति बाल निहजलु नहो डोलै । गुरमति साबि सहजि हरि डोलै ॥

पीये अंखनु तनु बिरोलै ॥ ३ ॥

सखिबुड बेखिआ बीखिआ लीनो । मनु तनु अरपिओ अंतरमति कीनो ॥

गति मिलि पाई अस्तनु बीनी ॥ ४ ॥

जोबनु नासु निरंजन साह । परम हंसु सनु जोति अपार ॥

अह बेकाउ तह एककार ॥ ५ ॥

रहै निरातसु एका सनु करणी । परम पदु पाइआ सेवा गुर चरणी ॥

अन ते मनु मानिआ बूकी अहं भमणी ॥ ६ ॥

इन बिधि कउयु कउयु नहो तारिआ । हरि जसि संत भगत निततारिआ ॥

अन पाए हय अबरु न आरिआ ॥ ७ ॥

साब महलि गुरि अलसु लकाइआ । निहजलु महलु नहो छाइआ माइआ ॥

साबि संतोले भरसु सुकाइआ ॥ ८ ॥

जिन कै मनि बसिआ सनु सोई । तिन को संगति गुरमुखि होई ॥

नानक साबि नामि मसु खोई ॥ ९ ॥ १५ ॥

(सच्चे भक्त) सत्य ही बोलते हैं, राई भर भी मिथ्या नहीं बोलते; गुरु के आदेशानुसार (वे) (परमात्मा के) हुकम और मर्जी में चलते हैं । सत्य (परमात्मा को) धारण में पड़कर (वे माया से) अतीत (परे) रहते हैं ॥ ' ॥

सत्य के घर में बैठने से काल देख भी नहीं सकता । मनमुख को मोह के कारण दुःख है (और वह सदैव) आता-जाता रहता है, (जन्मता मरता रहता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे साधक, नाम रूपी) अमृत पियो और अकथनीय (तरी) का कथन करते रहो । अपने (वास्तविक) घर में बैठकर (आत्मस्वरूप में स्थित होकर) सहजावस्था के घर को प्राप्त करो । हरि-रस में मगल होकर इसी सुख का कथन करो ॥ २ ॥

गुरु द्वारा (दिखाई गई) परम्परा—रीति में (सच्चा साधक) निश्चल रहता है, (वहाँ से वह तनिक भी) नहीं डोलता । गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य में स्थित होकर (वह) सहज भाव से हरि का उच्चारण करता है । वह तत्त्व को मथ कर अमृत का पान करता है ॥ ३ ॥

(जिसने) सद्गुरु को देखकर उससे दीक्षा ले ली और (अपना) तन मन अर्पित

कर (उस दीक्षा को) हृदयङ्गम कर लिया, (उसने) उसकी गति की मिति (अर्थात् परम गति) प्राप्त कर ली और (अपने) आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया ॥ ४ ॥

निरंजन का श्रेष्ठ नाम ही (उत्तम) भोजन है । उस गुरुमुख रूपी (परमहंस को सत्य स्वरूप (हरी) की ज्योति (दिखाई पड़ती है) । (मैं) जहाँ देखता हूँ, वहाँ एकंकार (परमात्मा ही दिखाई पड़ता है) ॥ ५ ॥

(वह परमात्मा) निरावलम्ब रहता है (और केवल) एक सत्य ही (उसकी) करनी है । गुरु के वरणों की सेवा द्वारा परम पद प्राप्त कर लिया गया । (ज्योतिर्मय) मन द्वारा (अहंकारी और मलिन) मन मान गया (और) अहंकार (जनित समस्त) भ्रम भी समाप्त हो गए ॥ ६ ॥

इस विधि से कौन-कौन (इस संसार से) नहीं तर गए ? हरि के वश (का गुणगान करके) संतों और भक्तों का निस्तार हो गया । हमने प्रभु को पा लिया है (और) भव धारों को नहीं खोजते ॥ ७ ॥

गुरु ने सच्चे महल में (पवित्र अन्तःकरण में) अवलोक्य (परमात्मा) का दर्शन करा दिया । (परमात्मा का) महल निश्चल है, इसमें माया की छाया (लेशमात्र भी) नहीं है । सच्चे संतोष से (अज्ञान-जनित) भ्रम समाप्त हो गया ॥

जिनके मन में सत्य (परमात्मा) निवास करता है, उनकी सगति में पड़कर (मनमुख) गुरुमुख हो जाता है । नानक कहते हैं कि सच्चे नाम से मल का नाश हो जाता है ॥ ६ ॥ १५ ॥

[१६]

गउदी

राम नामि खितु रापे जाका । उपजंषि दरसनु कीजै ता का ॥ १ ॥

रामु न जपहु अभाग्य तुमारा । जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गुरमति रामु जपे अनु पूरा । तितु घट अनहत बाजे तूरा ॥ २ ॥

जो जन राम भवति हरि पिआरि । से प्रभि राखे किरपा आरि ॥ ३ ॥

जिन के हिरदै हरि हरि सोई । तिन का बरसु परसि सुखु होई ॥ ४ ॥

सरब जोबा, महि एको रबै । मनसुलि अहंकारी फिरि जूनी भवै ॥ ५ ॥

सो बूझै जो सतिगुरु पाए । हउमै मारे गुर सबबे पाए ॥ ६ ॥

अरथ उरध की संधि किउ जाने । गुरमुखि संधि मिले मनु मानै ॥ ७ ॥

हम पापी निरगुण कउ गुणु करीऐ । प्रभु होइ बइआलु नानक जन तरीऐ ॥ ८ ॥ १६ ॥

जिसका चित्त राम नाम में रंगा है, सूर्योदय होते ही उसका दर्शन करना चाहिए ॥ १ ॥

यदि (तुम) राम नाम नहीं जपते हो, (तो यह) तुम्हारा अभाग्य है । हमारा प्रभु, राम युग-युगान्तरो से दाता रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) गुरु की शिक्षा द्वारा राम (को) जपता है, (वह) पूर्ण भक्त है (और) उसके घट में (निरन्तर) अनाहत की तुरही बजती है ॥ २ ॥

जो भक्त राम की भक्ति तथा हरि के प्रेम से (अनुरक्त) है, उनकी प्रभु कृपा करके रक्षा करता है ॥ ३ ॥

जिनके हृदय में वह हरी है, उनके दर्शन और स्पर्श से सुख होता है ॥ ४ ॥

सभी प्राणियों में एक (हरी ही) रस रहा है, किन्तु मनमुख और भ्रंशकारी व्यक्ति इस तथ्य को न जान कर और भ्रंशभाव में निमग्न होकर बार-बार (अनेक) योनियों में भ्रमण करता है ॥ ५ ॥

जिसे सद्गुरु की प्राप्ति होती है, वही (इस तथ्य को) जानता है। गुरु के शब्द द्वारा जो भ्रंशकार को मारता है, वही (परमात्मा को) पाता है ॥ ६ ॥

नीचे और ऊपर की संधि किस प्रकार जानी जाय ? (तात्पर्य यह कि निम्न स्थान वाले जीवात्मा तथा उच्च स्थान वाले परमात्मा के मिलाप का ज्ञान कैसे हो) ? गुरु की शिक्षा द्वारा ही यह सन्धि मिलती है, (अर्थात् जीवात्मा परमात्मा का मिलन होता है), (जिसके फल स्वरूप) मन शान्त हो जाता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु) हम (जैसे) पापों एवं गुणविहीन को गुणी बना दो। हे प्रभु (यदि) तुम दयालु हो जाओगे, तो (तुम्हारा) जन नानक तर जायगा ॥ ८ ॥ १६ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥

[१७]

गउड़ी बैरागणि

जिउ गार्ई कउ गोइली राखहि करि सारा ।

अहिनिशि पालहि राखि लेहि आतम सुख धारा ॥ १ ॥

इत छत राखहु बीन बइआला । तउ सरणामति नवरि निहाला ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जह बेखउ तह रबि रहे रलु राखनहारा ।

तूं दाता सुगता तूं है तूं प्रण अकारा ॥ २ ॥

किरतु पइआ अघ ऊरथी जितु निघान बीचारा ।

जितु उपमा जगदीस की बिनसै न अंधिआरा ॥ ३ ॥

जगु बिनसत हम बेखिआ लोभे अहंकारा ।

गुर सेवा प्रभु पाइआ सतु मुकति बुआरा ॥ ४ ॥

निजघरि महुलु अपार को अपरंपरु लोई ।

जितु सबई गिर को नही बुनै सुलु होई ॥ ५ ॥

किआ लै आइआ ले जाइ किआ कासहि जम जाला ।

डोलु बधा कसि जेवरी आकासि पताला ॥ ६ ॥

गुरमति नासु न बीसरै सहजे पति पाईऐ ।

अंतरि सबहु निवानु है मिलि आनु गवाईऐ ॥ ७ ॥

नहरि करे प्रभु आपसी सुख अंकि समाखे ।

नानक भेनु न झूठई लाहा सनु पाखे ॥ ८ ॥ १ ॥ १७ ॥

जिस प्रकार खाला (चरवाहा) गायों की खोज खबर लेकर (उनकी) रक्षा करता है, (उसी प्रकार परमात्मा भी जीवों का) पालन करता है, रक्षा करता है और आत्मिक सुख प्रदान करता है ॥ १ ॥

हे दीनदयालु (तू मेरी) यहाँ-वहाँ (इस लोक में, परलोक में) रक्षा कर । (हे प्रभु) (जो) तेरी शरणागति में आता है, (वह तेरी) कृपा दृष्टि से निहाल हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं जहाँ देखता हूँ, वही तू रम रहा है, (हे) रक्षा करने वाले, (मेरी) रक्षा कर । (हे प्रभु), तू ही दाता है, तू ही भोक्ता है (और) तू ही प्राणों का आधार है ॥ २ ॥

बिना ज्ञान और विचार के अपने किए कर्मों के अनुसार (मनुष्य) ऊँचे नीचे पड़ता है (अर्थात् स्वर्ग और नरक में जाता है) । बिना जगदीश (परमात्मा) की स्तुति किए (अज्ञान का) अन्धकार नहीं नष्ट होता ॥ ३ ॥

लोक और अहंकार में हमने जगत् को नष्ट होते हुए देखा है । गुरु की सेवा द्वारा प्रभु तथा मोक्ष का सच्चा दरवाजा प्राप्त कर लिया गया है । ४ ॥

उस अपार (हरी) का महल निज-घर (आत्म-स्वरूप) में है । वह सर्वोपरि है । बिना गुरु के शब्द के कोई भी स्थिर नहीं है, (उसी को) समझने से (वास्तविक) सुख होता है ॥ ५ ॥

क्या ले कर आया है, और जब यम के जाल में फँसता है, तो क्या लेकर जलगा ? कस कर बाँधी गई रस्सी का डोल (कुण्ड) में जैसे जैसे आकाश में (ऊपर) जाता है, और कभी पाताल में (नीचे) जाता है, (उसी भाँति यह जीव भी माया की रस्सी में बँधा है शुभ कर्मों से स्वर्गादिक लोकों को जाता है और मन्द कर्मों से नीचे के लोकों में जाता है । उसके आवा-गमन का चक्र निरन्तर चलता रहा है) ।

गुरु की शिक्षा द्वारा (हरी का) नाम नहीं भूलता है, और स्वाभाविक ही प्रतिष्ठा प्राप्ति होती है (अथवा स्वाभाविक ही पति-परमात्मा की प्राप्ति होती है) । भीतर ही (गुरु के) शब्द का भाण्डार (परमात्मा) है; आपेपन को गँवाकर उससे मिलो ॥ ७ ॥

जिसके ऊपर (प्रभु कृपा-दृष्टि करता है, (वह अपने) गुणों सहित (उसकी) गोदी में समा जाता है । नानक कहते हैं कि यह मिलाप समाप्त नहीं होता (और शिष्य) सच्चा लाभ पा जाता है ॥ ८ ॥ १७ ॥

[१८]

गउड़ी बैरागणी

गुर परसाबी झुक्ति से तउ होइ निबेरा ।

घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुर मेरा ॥ १ ॥

बिनु गुर सब न झूटीये बेल्हू बीचारा ।

जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

धंधे झकलो बाहरे किआ लिन सिउ कहोऐ ।
 बिनु गुर पंथ न सुझई किनु बिधि निरबहोऐ ॥ २ ॥
 लोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै ।
 धंधे का नाउ पारख कली काल बिडाणै ॥ ३ ॥
 सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सूता ।
 जीवत कउ सुआ कहै म्रए नही रोता ॥ ४ ॥
 आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ ।
 पर की कउ अपुनो कहै अपुनो नही भाइआ ॥ ५ ॥
 मोटे कउ कउड़ा कहै कड़ूए कउ मोठा ।
 रतैं की निदा करहि ऐसा कलि महि डोठा ॥ ६ ॥
 खेरी की सेवा करहि ठाकुर नही दीसै ।
 पोखर नीरु बिरोलीऐ माखनु नही रीसै ॥ ७ ॥
 इसु पद को अरपाइ लेइ सो गुरु हमारा ।
 नानक चीने आप कउ सो अपर अपारा ॥ ८ ॥
 सनु आपे आपि बरतवा आपे भरमाइआ ।
 गुर किरपा ते झुझीऐ सभु बहसु समाइआ ॥ ९ ॥ १८ ॥

(यदि) गुरु की कृपा से (कोई) (परमात्मा को) समझ ले, तभी भगवा समाप्त होता है । जो नाम-निरंजन घर-घर में (प्रत्येक शरीर में) (व्याप्त हो रहा है) वही, मेरा ठाकुर है ॥ १ ॥

बिना गुरु के शब्द (पर आचरण करने से) (कोई भी) नहीं मुक्त होता, (इसे) विचार करके देख लो । बिना गुरु के (यदि) लाखों (शुभ कर्म) किए जायें, (फिर भी) धंधकार ही है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) धंधे हैं, झकल से रहित है, उनसे क्या कहा जाय ? बिना गुरु के (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग नहीं सुझाई पड़ता, किस विधि से निर्वाह हो ? ॥ २ ॥

खोटी (वस्तु) को तो खरी कहा जाता है और खरी वस्तु का पता ही नहीं है । कलिकाल में यह आश्चर्यजनक (बात है) कि अन्धे (अज्ञानी) को लोग पारखी (गुणज्ञ) कहते हैं ॥ ३ ॥

(कलिकाल की आश्चर्यजनक बात यह है कि) (अज्ञान निद्रा में) सोनेवाले को लोग पारखी (गुणज्ञ) कहते हैं, (और जो ज्ञान के प्रकाश में) जग रहा है, उसे सोता हुआ कहते हैं, जो (आध्यात्मिक ज्योति में) जीवित है, (उसे लोग) मृत कहते हैं (और जो आध्यात्मिक दृष्टि से) मर चुका है, उसके निमित्त नहीं रोते हैं ॥ ४ ॥

(जो परमात्मा के प्रेम की की ओर) आया है, (उसे) गया-गुजरा कहते हैं, (और जो परमात्म-प्रेम की ओर से) विमुख हो गया है—चला गया है, उसे आया हुआ कहते हैं । पराई वस्तु को (मायिक पदार्थों को) तो अपनी वस्तु कहते हैं और अपनी वस्तु (आत्म-स्वरूप धारणा) अच्छी ही नहीं लगती ॥ ५ ॥

(आत्मिक आनन्द जो) मीठा है, (उसे तो लोग) कड़ुवा कहते हैं (और मायिक पदार्थों के भोग जो वास्तव में) कड़ुवे हैं, उन्हें मीठा कहते हैं । कवियुग में ऐसा ही देखा जाता है (कि लोग परमात्मा में) अनुरक्त अनुष्यों की मिन्दा करते हैं ॥ ६ ॥

(ऐसे सांसारिक लोग) (परमात्मा की) दासी— माया की तौ सेवा करते हैं (और सच्चा) ठाकुर (उन्हें) बिल्लाई ही नहीं देता । (किन्तु जिस प्रकार) पोखर का जल मथने से मक्खन नहीं निकलता, (उसी प्रकार माया की सेवा से सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता) ॥ ७ ॥

इस पद का जो (व्यक्ति) अर्थ निकाल ले, वही हमारा गुरु है । नानक कहने हैं कि जो अपने आपको पहचान लेता है, वह परे से भी परे—अनन्त है ॥ ८ ॥

(प्रभु) आप ही सब कुछ है (और) आप ही (सब में) विराजमान है । गुरु की कृपा से ही यह समझा जाता है कि सर्वत्र (जड़-चेतन में) ब्रह्म समाया हुआ (व्याप्त) है ॥९॥१॥१॥८॥

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुरु प्रसादि ॥

रागु गडड़ी पूरबी, महला १

[१]

छंद

पूरबी छंद

सुंघ रैलि बुहेलड़ीआ जीउ नीब न आबै ।
 सा धन बुबलोआ जीउ पिर कं हावै ॥
 धन बीई बुबलि कंत हावै केव नैरी बेखए ।
 सीगार मिठ रंस भोग भोजन समु भूठु कितै न लेखए ॥
 जैमस जोबनि गरबि गाली बुधा बरणी न आबए ॥
 नानक साधन मिले मिलीई बिनु पिर नीब न आबए ॥१॥
 सुंघ निमानड़ीआ जीउ बिनु धनी पिघारे ।
 किउ सुख पावैगो बिनु उरघारे ॥
 नाह बिनु घर बासु नाही पुछहु सखी सहेलीआ ।
 बिनु नाम प्रीति पिघारु नाही वसहि साचि सुहेलीआ ॥
 समु मन सजन संतोखि मेला गुरमती समु जाखिआ ।
 नानक नामु न छोड़े सा धन नामि सहजि समाएलीआ ॥२॥
 मितु सखी सहेलडोहो हम पिर रावेहा ।
 गुर पुछि लिखउगी जीउ सबबि सनेहा ॥
 सबबु साचा गुरि विखाइआ मनमुखी पटुताएलीआ ।
 निकसि जातउ रहै असधिरु जामि समु पछाएलीआ ॥

साथ की मति सबा नउतन सबहि नेहु नबेलयो ।
 नानक नबरी सहज साखा मिलहु सखो सहेलोहो ॥३॥
 मेरी इछ पुनी जोउ हम घरि साजनु आइआ ।
 भिसि बर नारी मंगलु गाइआ ॥
 गुण गाइ मंगलु प्रेमि रहसी सुंघ मनि ओमाहयो ।
 साजन रहसे दुसंट बिआये सातु जपि सनु लाहयो ॥
 कर जोड़ि साधन करै बिनती रैणि विनु रसि भिनीआ ।
 नानक पिर धन करहि रलोआ इछ मेरी पुंनोआ ॥४॥१॥

ऐ जी, (जीव रूपी) स्त्री (आयु रूपी) रात्रि में (अत्यन्त) दुःखी है, (उसे शान्ति रूपी) निद्रा नहीं आती । ऐ जी, प्रियतम के शोक में, वह (अत्यन्त) दुबली हो गई है ।

प्रियतम के शोक में स्त्री दुबली हो गई है, वह नेत्रों से किस प्रकार देखेगी ? (प्रियतम के बिछुड़ने से), (सारे) शृङ्गार, मोठे रस और भोग, भोजन (आदि) सभी कुछ भूटे हैं; (वे सब) किसी भी लेखे में नहीं हैं ।

(वह स्त्री) जीवन में मदमत्त है और (उसने) गर्व में (अपने आप को) गला दिया है, (उसके) धनों में दूध नहीं आता है । नानक कहते हैं कि वह स्त्री (गुरु के) मिलाने से ही (अपने प्रियतम—परमात्मा से) मिलती है; (बिना प्रियतम के मिले) उसे रात्रि में नींद नहीं आती ॥१॥

ऐ जी, बिना धनी प्रियतम के स्त्री मान-विहीन रहती है । बिना प्रियतम को हृदय में धारण किए (वह) कैसे सुख पावेगी ? बिना प्रियतम के घर बसता नहीं, (यह बात) सखी-सहेलियों (तात्पर्य यह कि हरिभक्तों) से पूछ लो । बिना (हरी के) नाम के प्रीति-प्यार नहीं हो सकता, (जिससे) सत्य में सुखपूर्वक निवास किया जाय ।

सत्य मन तथा संतोष ने सज्जन (हरी का) मिलाप होता है; गुरु की शिक्षा द्वारा पति (परमात्मा) जाना जाता है । नानक कहते हैं कि (जो स्त्री) नाम नहीं छोड़ती, (वह) नाम में सहज भाव से समा जाती है ॥२॥

ऐ सखी और सहेलियों (हमसे) मिलो, हम सब प्रियतम के संग रमण करेंगी । ऐ प्रिय (सखियों), गुरु से पूछ कर (उनके) शब्द द्वारा (प्रियतम को) (मैं) संदेश लिखूंगी ।

गुरु ने सच्चे शब्द को दिखा दिया है, किन्तु मनमुखी स्त्री (उस शब्द पर आचरण न करने से) पछताती है । जिस समय सत्य पहचान लिया जाता है, (उस समय) निकल-भगने वाला (चंचल मन) स्थिर हो जाता है ।

सत्य की बुद्धि सदैव नवीन (बनी रहती) है, (गुरु के) शब्द का प्रेम सदैव नया रहता है । नानक कहते हैं कि सच्चा हरी अपनी कृपा द्वारा स्वाभाविक ही मिलता है; (अतएव) सखी-सहेलियों, (आभो) मिलो ॥ ३ ॥

ऐ जी, मेरी इच्छा पूरी हो गई, (मेरा) प्रियतम मेरे घर आ गया है । नारी पति से मिल कर आनन्द के गीत गाती है । स्त्री मंगल का गुणगान कर प्रेम में आनन्दित हो गई है (और उसके मन में) (अत्यधिक) उत्साह है । (मेरा) साजन प्रसन्न हो गया है, दुष्ट

(कामादिक) प्रस लिए गए हैं, (इस प्रकार) सत्य (परमात्मा को) जप कर सत्य प्राप्त कर लिया गया है ।

(प्रियतम के मिलने पर) स्त्री हाथ जोड़ कर (उससे) प्रार्थना करती है और दिन-रात (वह) रस में भिनी रहती है । नानक कहते हैं कि प्रियतम और पत्नी (परस्पर) आनन्द कर रहे हैं; मेरी इच्छा पूरी हो गई है ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

सुणि नह प्रभू जीउ एकलड़ी बन माहे ।
 किउ धीरैवी नाह बिना प्रभ वेपरबाहे ॥
 धन नाह बाझहु रहि न साके बिलम रेणि घरोरीभा ।
 नह नोव धावै प्रेसु भावै सुणि बेनंती मेरीभा ॥
 बाझहु पिघारे कोइ न सारे एकलड़ी कुरलाए ।
 नानक सा धन मिलै मिलीई बिनु प्रीतम बुसु पाए ॥१॥
 पिरि छोडिछड़ी जीउ कवरु मिलावै ।
 रसि प्रेमि मिली जीउ सबदि सुहावै ॥
 सबवे सुहावै ता पति पावै दीपक बेह उजारे ।
 सुणि सखी सहेली सावि सहेली साचे के गुण सारे ॥
 सतिगुरि भेली ता पिरि राखी बिगसी भ्रंशत बाली ।
 नानक सा धन ता पिरु रावै जा तिस के मति भाएली ॥२॥
 माइभा मोहणी नोघरीभा जीउ कूड़ि मुठी कूड़िभारे ।
 किउ छुलै गल जेवड़ीभा जीउ बिनु गुर भति पिघारे ॥
 हरि प्रीति पिघारे सबदि बीचारे तिस ही का सो होवै ।
 पुन वान अनेक नावरु किउ अंतर मलु थोवै ॥
 नाम बिना गति कोइ न पावै ठि निग्रह बेबाए ।
 नानक सब घर सबदि सित्रापे दुबिधा महलु कि जाए ॥३॥
 तेरा नामु सचा जीउ सबदु सचा बीचारो ।
 तेरा महलु सचा जोउ नामु सचा बापारो ॥
 नाम का बापाठ मीठा भवति लाहा अनदिनो ।
 तिसु बाझु बखरु कोइ न सूभै नामु लेबहु खिनु खिनो ॥
 परखि लेखा नवरि साखी करमि पूरै पाइभा ।
 नानक नामु महा रसु मीठा गुरि पूरै सनु पाइभा ॥४॥२॥

हे नाथ (पति), प्रभु जी, सुनि, मैं प्रकैली ही (संसार रूपी) बन मे हूँ । वेपरबाह नाथ, प्रभु के बिना (स्त्री) कैसे धैर्य धारण करेगी ?

(अपने) स्वामी के बिना स्त्री नहीं रह सकती, (बिना प्रियतम के) रात्रि बहुत ही विषम (प्रतीत होती है) । (तुम्हारे बिना) नींद नहीं आ रही है, प्रेम ही अच्छा लगता है, (हे प्रभु) मेरी बिनती सुनो । बिना प्रियतम के (स्त्री) की कोई भी खोज-खबर नहीं लेता;

(वह) अकेली ही रीती है । नानक कहते हैं कि (जो स्त्री) बिना प्रियतम के दुःख पाती है ; (अर्थात् प्रियतम के अभाव में दुःख का अनुभव करती है) , वह प्रियतम से मिली हो मिलाई है ॥ १ ॥

ऐ जी (जीव) , प्रियतम द्वारा छोड़ी गई (स्त्री को) कौन (उससे) मिला सकता है ? ऐ जी, (गुरु के) सुहावने शब्द द्वारा (वह) आनन्द पूर्वक प्रेम से मिलती है ।

(जब गुरु का) शब्द सुन्दर लगता है, तभी (वह) पति (परमात्मा) को पाती है ; (गुरु के ज्ञान—) दीपक से नसका शरीर प्रकाशित हो जाता है । (हे) सखी-सहेलियो, सुनो, (वह स्त्री) सत्य (परमात्मा) द्वारा सुखी हुई है (और वह) सत्य के ही गुणों का स्मरण करती है ।

गुरु ने मिलाप कराया है, तो पति (परमात्मा) ने (उसके साथ) रमण किया है (और वह) अमृत वाणी द्वारा विकसित हो गई है । नानक कहते हैं कि वही स्त्री पति (परमात्मा) के साथ रमण करती है, जो उसके मन को अच्छी लगती है ॥ २ ॥

ऐ जी, माया (बड़ी ही) मोहिनी है, इसने बिना घर का कर दिया है (अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप से धृक् कर दिया है) । (जो स्त्री) झूठी है, (वह अपने) झूठ के कारण लूटी गई है । ऐ जी, बिना अति प्रिय गुरु के (मिले हुए) गले की रस्सी किस प्रकार खुल सकती है ?

जो हरी की प्रीति और प्यार में (अनुरक्त है) (और गुरु के) शब्द पर विचार करती है, उसी का वह (हरी) होता है । अनेक पुण्य, दान एवं स्नान करने से आन्तरिक मेल किस प्रकार भुल सकती है ?

नाम के बिना हठ-निग्रह करने और जंगल में रहने से कोई भी (व्यक्ति) मोक्ष नहीं पाता । नानक कहते हैं कि सत्य (परमात्मा का) घर (गुरु के) शब्द द्वारा जाना जाता है ; दुविधा के द्वारा (परमात्मा का घर) किस प्रकार जाना जाय ? ॥ ३ ॥

हे (प्रभु) जी, तेरा नाम सच्चा है, (गुरु के) शब्द द्वारा (उस) सच्चे का विचार किया जाता है । (हे प्रभु) जी, तेरा ही महल सच्चा है और तेरे नाम (को स्मरण करना ही) सच्चा व्यापार है ।

नाम का व्यापार बड़ा ही मीठा होता है और भक्ति से दिनोदिन लाभ (होता रहता है) । बिना नाम के कोई भी सौदा सुझाई नहीं पड़ता, (अतएव) प्रतिक्षण नाम लो ।

(मैंने) (परमात्मा की) सच्ची दृष्टि का लेखा पूर्ण भाग्य से (खूब) परख कर प्राप्त किया है । नानक कहते हैं कि नाम का रस अत्यन्त मीठा होता है ; पूर्ण गुरु से ही सत्य (परमात्मा) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ २ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु आसा, महला १, सबद

महला १, घर १ सोदरु

सोबर तेरा केहा सो घर केहा जितु बहि सरब सग्याले ।
 बाजे तेरे गाव अनेक असंखा केते तेरे गावणहारे ॥
 केते तेरे राम परी सिउ कहोअहि केते तेरे गावणहारे ।
 गाबन्हि तुघ नो पजगु पाणी बैसंतरु गाबै राजा धरम दुआरे ॥
 गाबन्हि तुघ नो चितमुपतु लिखि जाएनि लिखि लिखि घरमु बीचारे ।
 गाबन्हि तुघ नो ईसरु ब्रह्मा बेवी सोहनि तेरे सदा सवारे ॥
 गाबन्हि तुघ नो इंद्र इंद्रासणि बेटे देवतिआ बरि नाले ।
 गाबन्हि तुघ नो सिध' समाधी अंदरि गाबन्हि तुघ नो साध बीचारे ॥
 गाबन्हि तुघ नो जती सती संतोखी गाबनि तुघ नो बीर करावे ।
 गाबनि तुघ नो पंडित पड़े रखीसुर जुग जुग बेदा नाले ॥
 गाबनि तुघ नो मोहणीआ मनु मोहनि गुरगु मछु पइआले ।
 गाबन्हि तुघ नो रतन उपाए तेरे जेते अठसठि तीरथ नाले ॥
 गाबन्हि तुघ नो जोध महाबल मूरा गाबन्हि तुघ नो छाणी चारे ।
 गाबनि तुघ नो खंड मंडल अहमंडा करि करि रखे तेरे घारे ॥
 सोई तुघ नो गाबनि जो तुघु भाबन्हि रते तेरे भगत रसाले ।
 होरु केते तुघ नो गाबनि से मै चिति न गाबनि नानकु किआ बीचारे ॥
 सोई सोई सदा सनु साहिबु साचा साखी नाई ।
 है भी होसी जाइ न जासी रचना जनि रचाई ॥
 रंगी रंगो भासी जिनसी माइआ जनि उपाई ।
 करि करि देखै कोता अग्रणी जिउ तिस बी वडिआई ॥
 * जो तिसु भावै सोइ करसी फिरि हुकमु न करणा जाई ।
 सो पातिसाहु साहा पति साहिबु नानक रहगु रचाई ॥१॥१॥

सोचरु :— (हे प्रभु), तुम्हारा दरवाजा कहाँ है, तुम्हारा घर कहाँ है, जहाँ बैठ कर सभी (प्राणी मात्र) की सँभाल करते हो ? (तुम्हारे दरवाजे पर) अनेक, असंख्य नाद हो रहे हैं ; असंख्य बजनेवाले (तुम्हारे गुणों के संगीत विविध राग-रागिनियों में) बजा रहे हैं । असंख्य गायक (तुम्हारे गुणों के गीत) अनन्त राग-रागिनियों द्वारा गा रहे हैं । (हे प्रभु), तुम्हारा यश पवन, जल, अग्नि सभी गा रहे हैं । धर्मराज भी तुम्हारे दरवाजे पर बैठ कर तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं । चित्रगुप्त जो सभी का पाप-पुण्य लिखते हैं और उनके धर्म के अनुसार विचार करते हैं, वे भी तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं । ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, देवी, (जो तुम द्वारा) सुन्दर रूप में बनाए गए हैं, वे भी तुम्हारे यश का गीत गा रहे हैं । देवताओं के साथ इन्द्रासन पर बैठे इन्द्र भी तुम्हारे दरवाजे पर बैठे हुए मुणानुवाद कर रहे हैं । सिद्धगण समाधि के अंतर्गत तुम्हें ही गा रहे हैं; साधु पुरुष भी ध्यान में तुम्हारा ही गुणगान कर रहे हैं । यती, सत्त्वगुणी, संतोषी, महान् शूरवीर तुम्हारे ही यश का गीत गा रहे हैं । युग-युगान्तरों से वेदों के अध्ययन द्वारा पंडित एवं ऋषीश्वर (तुम्हारी ही महत्ता का) गुणगान करते आए हैं । मन को मोहनेवाली स्वर्ग में अप्सराएँ तथा पाताल में स्थिति कल-मच्छादिक तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं । तुम्हारे उत्पन्न किए हुए (जीवह) रत्न तुम्हारा ही यश गाते हैं, साथ ही अइसठ तीर्थ भी तुम्हारा गुणगान करते आए हैं । बड़े-बड़े महाबली, शूरवीर, योद्धागण तथा चार प्रकार की योनियों (अंशुज, जेरज, उद्भिज, स्वेदज) के जीव तुम्हारा यश गाते हैं । जिन खण्ड, मण्डल, ब्रह्माण्डिक की रचना करके अपने स्थानों पर धारण कर रक्खा है, वे भी तुम्हारे गीत गा रहे हैं । जो तुम्हें अच्छे और तुममें अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तुम्हारी यश-गाथा गा रहे हैं । गुप्त नानक कहते हैं कि (हे प्रभु) और कितने ही लोग तुम्हारा यशगान कर रहे हैं, वे सब मेरे चित्त में नहीं आ सकते (अनुमान नहीं लगा सकता) । मैं क्या विचार करूँ ? (क्या गणना करूँ ?) वही वह है, सदैव सच है, सच्चा साहब है और सच्चे नाम वाला है । (वही प्रभु) (वर्तमान में) है, (भूत में) था और (भविष्य में) रहेगा; जिसने यह अनन्त रचना रचाई है, वह न जा सकता है और न जायगा । जिसने रंग-रंग की, भौति-भौति की माया की वस्तुएँ (जिनसी) उत्पन्न की, वह अपनी की हुई रचना और उसकी महत्ता देख कर (प्रसन्न हो रहा है) । जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वह उसी को करता है ; उसकी आज्ञा का कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता । वह बादशाह बादशाहों का भी बादशाह है । उसकी मर्जी के भीतर ही रहना चाहिए ॥ १ ॥ १ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि

चउपदे, घर २

[१]

गुरि बडा बालै सभ कोई । केबहु बडा डीठा होई ॥

कीमति पाइ न कहिआ जाइ । कह्यै बाले तेरे रहे समाइ ॥१॥

बडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहोरा ।

कोई न जायै तेरा केता केबहु चोरा ॥१॥ रहाउ ॥

सभि सुरती मिलि सुरति कमाई । सभ कीमति मिलि कीमति पाई ॥

गिझानी धिझानी गुर गुरहाई । कह्यु न जाई तेरी तितु बडिझाई ॥२॥
सभि सत सभि तप सभि बंभिझाईझा । सिधा पुरखा कीझा बडिझाईझा ।
तुघु बियु सिधो किनै न पाईझा । करमि मिलै नाही ठाकि रहैझा ॥३॥
आखण वाला किझा बेचारा । सिफतो भरे तेरे भंडारा ॥
जितु तूँ बेहि तिलै किझा चारा । नानक सनु सबारणहारा ॥४॥१॥

सुन-सुन कर सभी लोग (उस ब्रह्म को) बड़ा कहते हैं । किन्तु वह कितना बड़ा है, इसे किसी ने देखा है ? (हे प्रभु, तुम्हारी कीमत अंकी नहीं जा सकती और न कही ही जा सकती है । तुम्हारे वर्णन करनेवाले, तुम्हीं में समाहित हो जाते हैं ॥ १ ॥

ऐ मेरे साहब, तुम महान् हो, अत्यन्त गम्भीर हो और गुणों में अग्राध हो । यह कोई नहीं जानता कि तुम कितने बड़े हो और तुम्हारा कितना बड़ा विस्तार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सभी श्रुति-जिज्ञासुओं ने मिलकर श्रुति की आराधना की और सभी अनुमान करनेवालों ने (तेरे सम्बन्ध में) अनुमान लगाया । ज्ञानियों, ध्यानियों और गुरुओं के मुख आदि ने (तेरी महत्ता के सम्बन्ध में) कथन किया, किन्तु (तेरे बड़प्पन का तिल मात्र भी) कथन न कर सके ॥ २ ॥

सारे सत्त्वगुण, सारे तप और समस्त शुभ गुण तथा सिद्ध पुरुषों को महिमाएँ (आदि कितनी बड़ी क्यो न हो किन्तु वास्तविक) सिद्धि तुम्हारे बिना किसी ने नहीं पाई । (परमात्मा की) कृपा द्वारा (सिद्धि) प्राप्त होती है (और इस प्राप्ति को) कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥

(तुम्हारे ऐश्वर्य के सम्बन्ध में) कथन करनेवाला बेचारा कथन ही क्या कर सकता है ? तुम्हारे भाण्डार प्रशंसा से भरे हैं । जिसे तुम देते हो, उसमें किसी का क्या चारा हो सकता है ? नानक कहते हैं कि सत्य (परमात्मा) (सभी बीजे) संवरने वाला है ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

आखा जोधा बिसरै मरि जाउ । आखणि अउखा सचा नाउ ॥
साबे नाम की लागे भूल । तितु भूलै खाइ चरीअहि दूख ॥१॥
सो किउ बिसरै मेरी माइ । साचा साहिबु साबै नाइ ॥१॥रहाउ॥
साबे नाम की तितु बडिझाई । आखि थके कीमति नही पाई ।
जे सभि मिलि कै आखण पाहि । बडा न होबै घाटि न जाइ ॥२॥
ना ओहु मरे न होबै सोगु । बैबा रहै न चूके भोगु ॥
गुगु एहो होरु नाही कोइ । ना को होआ ना को होइ ॥३॥
जेबहु आपि तेबड तेरो वाति । जिनि दिनु करि कै कीती राति ।
जसमु विसारहि ते कमजाति । नानक नाबै बाझु सनाति ॥४॥२॥

यदि मैं (नाम) लेता हूँ, तो जीवित रहता हूँ, यदि नाम भूलता हूँ, तो मर जाता हूँ । सच्चे नाम को कहना (स्मरण करना, लेना) कठिन है । यदि सच्चे नाम की भूल (साधक को) लगती है और उस भूल की तृप्ति करता है, तो उसके सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

ऐ मेरी माँ, तो फिर (उस परमात्मा को) मैं कैसे भूल सकता हूँ ? वह साहब सच्चा है और उसका नाम भी सच्चा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सच्चे नाम की तिल भर बढ़ाई करने के लिए (लोग) कथन कर करके थक गए, किन्तु उसकी कीमत का अनुमान नहीं लगा सके । यदि सब लोग मिल कर उसका वर्णन करने लगे, तो भी (उनके बख़्त से) न वह बड़ा होगा, न कम होगा ॥ २ ॥

व तो वह (परमात्मा) मरता है और न उसे कोई शोक ही होता है । वह (सदैव) बैठा ही रहता है, किन्तु उसके दिए हुए भोग कभी समाप्त नहीं होते । उसकी विशेषता यह है कि उसके बिना और कोई नहीं है, न कोई दुश्मा है और न होगा ॥ ३ ॥

(हे परमात्मा) जितने बड़े तुम हो, उतनी ही बड़ी तुम्हारी देवें भी हैं । जिस परमात्मा ने हिम ब्रह्मा है, उसी ने रात्रि भी निर्मित की है; (वह सर्व अस्तिमान है । वह 'अर्थ' अर्थात् 'अस्तित्व' करने में समर्थ है) । ऐसे परमात्मा को जो भूलते हो, वे नीच जाति के हैं । आनक कहते हैं कि नाम के बिना (लोग) नीच हैं ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

जे हरि मांगसु झूक करे महली कससु सुले ।

भावे घोरक भावे धके एक बढ़ाई देइ ॥१॥

आएहु जोति न पूछहु जाती भागै जाति न हे ॥१॥ रहाउ ॥

आपि कराए आपि करेइ । आपि उलाहै चिति धरेइ ॥

जा तूं करखहाइ करताइ । किष्ठा मुहताजी किष्ठा संसाइ ॥२॥

आपि उपाए आपे देइ । आपे दुरमति मनहि करेइ ॥

गुर परसाहि बखै नलि प्राइ । दुलु भन्हेरा चिचहु जाइ ॥३॥

सासु पिआरा आपि करेइ । अबरौ कज सासु न देइ ॥

जि किसे देइ बलारौ नानकु भागै पूछ न लेइ ॥४॥२॥

यदि कोई याचक बनकर (परमात्मा के दरवाजे पर पुकार करे, तो (उसकी पुकार) पति (परमात्मा) (अपने) महल में (अवश्य) सुनता है । (हे प्रभु), चाहे (तू) उसे धैर्य धारण करावे, चाहे धक्के दे, (किन्तु तू) अकेले ही बढ़ाई देता है ॥ १ ॥

(सभी में) परमात्मा की ज्योति समझो, किसी की जाति न पूछो, क्योंकि भागे (परलोक में) कोई भी जाति नहीं है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(प्रभु) स्वयं ही करता है और स्वयं ही (वस्तुओं का निर्माण) करता है । आप ही उपालम्भ देता है (और आप ही) चित्त में धारण करता है (सुनता है) । यदि (हे प्रभु) तुम करने वाले और करतार हो, (और इसे कोई भलीभाँति समझता है), तो (उसके लिये) (किसी अन्य व्यक्ति को) क्या मुहताजी है और (उसके लिए) संसार क्या है ? ॥ २ ॥

(ऐ प्रभु, तुम) स्वयं ही उत्पन्न करते हो, और स्वयं ही देते हो; तुम स्वयं ही दुबुद्धि दूर करते हो । (हे भगवान् यदि) (तुम) गुरु की कृपा से मन में आकार बसते हो, तो भीतर से दुःख और अन्धकार (अज्ञान) चले जाते हैं ॥ ३ ॥

वह ध्याप हो सत्य को प्यारा (बना) कर (दिखाता है), [तात्पर्य यह कि वह स्वयं ही कृपा करे तो सत्य जैसी विषम वस्तु प्यारी लगती है] । और कइयों को (वह परमात्मा) सत्य नहीं भी देता है । नानक कहते हैं कि यदि किसी को (परमात्मा) (सत्य) प्रदान भी करता है, तो आगे (परलोक में) उससे कोई पूछ नहीं करता, (लिखा नहीं माँगता) ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

ताल मबीरे घट के घाट । बोलक बुनीया बाजहि बाज ।
नारदु नाखे कलि का भाउ । जती सती कह राखहि बाउ ॥१॥
नानक नाम बिटहु कुरबाणु । अंधी बुनीया साहिबु जाणु ॥१॥
गुरु पासहु फिर चेला खाड । तमि परोति बसे घरि आइ ॥
जे सउ बहिआ जीबणु खाणु । लसम पछाणै सो बिनु परबाणु ॥२॥
दरसनि देखिऐ दइआ न होइ । लए बिते बिनु रहै न कोइ ॥
राजा निमाउ करे हयि होइ । कहै सुबाइ न माने कोइ ॥३॥
माणस भूरति नानक नामु । करणी कुता दरि कुरमानु ॥
गुर परसावि जाणै मिहमानु । ता किछु दरगह पावे मानु ॥४॥४॥

मन के संकल्प-विकल्प [घट के घाट = मन के रास्ते, लहरें; तात्पर्य यह कि मन के संकल्प-विकल्प] है और दुनिया ढोलक है—ये बाजे बज रहे हैं । नारद (रूपी मन) नाच रहा है—यही कलियुग का भाव है । (भला बताओ) यती—सती किधर पैर रक्खें ? ॥ १ ॥

नानक तो नाम के ऊपर कुरबान है । (ऐ) अन्धी दुनिया, साहब (परमात्मा) को जानो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

गुरु के पास (यदि) चेला रहकर (उल्टा) उसी का (गुरु का ही) साथे; रोटी की प्रीति के कारण (गुरु के घर में) आकर बसे और (इसी प्रकार) सौ वर्ष तक रहे तथा भोजन करे, (पर सब व्यर्थ हो है); (जिस दिन वह) पति (परमात्मा को) पहचाने, वही दिन प्रामाणिक (दिन) है ॥ २ ॥

(निरे) दर्शन (मात्र से) (किसी के ऊपर) दया नहीं होती । बिना लिए-दिए कोई भी नहीं रहता । (यदि कुछ देने को) हाथ में हो, (तभी) राजा न्याय करता है । खुदा कहते (तो सभी) हैं, (लेकिन) मानता कोई भी नहीं (तात्पर्य यह कि जीभ से सभी खुदा कहते हैं, किन्तु दिल से कोई भी नहीं मानता) ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं (कि कलियुग के सारे) (मनुष्यों) के नाम शकल (मूर्ति) मनुष्यों की हैं (किन्तु) करनी कुतों की है (जो) दरवाजे पर (लोभ के कारण) (सब की) आज्ञा मानता है । (यदि) गुरु की कृपा से (साधक संसार में अपने को) मेड़मान समझे, तभी (परमात्मा के) दरवाजे पर कुछ मान मिल सकता है ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

जेता सबहु सुरति घुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी ।

तूं आये रसना आये बसना अबक न दूजा कहउ भाई ॥१॥

ना० बा० फा०—३२

साहिब मेरा एको है । एको है भाई एको है ॥१॥ रहाउ ॥
 आपे मारे आपे छोड़े आपे लेवै बेइ । आपे वेलै आपे बिगसै आपे नदरि करेइ ॥२॥
 जो किछु करणा सो करि रहिआ अवक न करणा जाई ।
 जैसा वरतै तैसो कहीऐ सज तेरो बडिभाई ॥३॥
 कलि कलवाली माइआ मनु मीठा मनु मतवाला पीबतु रहै ।
 आपे रूप करे बहु भांती नानक बपुड़ा एव कहै ॥४॥५॥

(हे प्रभु), जितने भी (इस संसार के) शब्द है, वे सब (तेरी) चित्तवृत्ति (सुरति) की ध्वनि हैं (तथा) संसार में जितने भी रूप हैं, वे सब तेरी काया हैं । (हे हरी), तू ही जीभ है, और तू ही बाल लेनेवाली (नासिका) है; हे माँ, (मैं) कहता हूँ और कोई दूसरा नहीं है ॥ १ ॥

मेरा साहब एक है, एक है; (अरे) भाई (वह) एक है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(साहब) आप ही मारता है, आप ही छोड़ता है, आप ही लेता है और आप ही देता है, आप ही देखता है, आप ही विकसित होता है और आप ही कृपा करता है ॥ २ ॥

जो कुछ करने (योग्य) था, वह सब (तूने ही) किया है, (अब) और कुछ नहीं किया जा सकता । जैसा (तू) है, वैसा ही कहा जाता है, (हे प्रभु), सब तेरी ही महिमा है ॥ ३ ॥

कलियुग ही शराब पिलानेवाली—कलवारिन है, माया ही मोठी मदिरा है, और मन ही इसे पीकर मतवाला होता है । बेचारा नानक कहता है (कि हरी ही) अनेक भाँति के रूप धारण करता है, (वही कलवारिन है, वही शराब है, वही पीने वाला है वही नशा है और वही खुमारी है) ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

बाजा मति पखाउज भाउ । होइ अनंदु सदा मनि चाउ ॥
 एहा भगति एहो तप ताउ । इतु रंग नाचहु रखि रखि पाउ ॥१॥
 पूरे ताल जाणै सालाह । होरु नचणा खुसीआ मन माह ॥१॥ रहाउ ॥
 सतु संतोखु वजहि दुइ ताल । पैरी बाजा सदा निहाल ॥
 रागु नादु नही दूजा भाउ । इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ ॥२॥
 भउ केरी होबै मन चीति । बहविआ उठविआ नीता नीति ॥
 लेटणि लेटि जाणै तनु सुघाह । इतु रंगि नाचउ रखि रखि पाउ ॥३॥
 सिख सभा बोलिआ का भाउ । गुरमुखि सुणणा साचा नाउ ॥
 नानक आखणु बेरा बेर । इतु रंगि नाचहु रखि रखि बेर ॥४॥५॥

बुद्धि बाजा (संगीत) है प्रेम पखावज है । (इन दोनों के संयोग से— शुद्ध बुद्धि एवं प्रेम के सामंजस्य से) सदैव आनन्द होता है और मन में उत्साह (बना रहता है) । यही भक्ति है और यही तपस्या है । इसी रंग में (ठीक ठीक) पैर रख कर नाचो ॥ १ ॥

(परमात्मा की) स्तुति (करना) जाने, (तो यही) पूरे ताल का नाचना है; और नाचना केवल मन की खुशी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सत्य और संतोष (धारण करना) दो तालो का बजना है । सदा प्रसन्न रहना ही पैरों का बाजा (धंभुल) है । द्वैत भाव का न होना ही राग और नाद है । इसी रंग में (ठीक ठीक) पैर रख कर नाचो ॥ २ ॥

मन और चित्त में (हरी का) भय होना ही नृत्य की फेरी और बार-बार का (नृत्य में) उठना-बैठना है । शरीर को भस्म समझना ही—यही (पृथ्वी पर) लेट कर (नृत्य में दण्डवत प्रदर्शित करने का भाव है) । इसी-रंग में (ठीक ठीक) पैर रख कर नाचो ॥ ३ ॥

सिक्ख-सभा में (जाना ही) नर्तक की शिक्षा से प्रेम करना है । नानक कहते हैं कि गुरु द्वारा सच्चे नाम को सुनना, यही गाने की बार-बार की टेक है । इसी रंग में (ठीक ठीक) पैर रख कर नाचो ॥ ४ ॥ ६ ॥

[७]

पउरु उपाइ धरी सभ धरती जल अगनी का बंसु कीघ्रा ।
 ग्रंथुले वहसिरि मूंड कटाइघ्रा रावणु मारि किघ्रा बडा भइघ्रा ॥१॥
 किघ्रा उपमा तेरी आली जाइ । तूं सरबे पूरि रहिघ्रा लिब लाइ ॥१॥रहाउ॥
 जीघ्र उपाइ जुगति हयि कीनी काली नाभि किघ्रा बडा सइघ्रा ।
 किस्तु तूं पुरखु जोरु कउरु कहीऐ सरब निरंतरि रवि रहिघ्रा ॥२॥
 नालि कुंठु साधि बरदाता ब्रह्मा भालस सुसटि गइघ्रा ।
 आनै ग्रंतु न पाइघ्रो ताका कंसु छेवि किघ्रा बडा भइघ्रा ॥३॥
 रतन उपाइ धरे खीरु मधिघ्रा होरि भल्लाए जि असी कीघ्रा ।
 कहै नानक छपे किउ छपिघ्रा एकी एकी बंढि बीघ्रा ॥४॥७॥

(परमात्मा ने) पवन रच कर समस्त पृथ्वी को धारण किया है । और जल अग्नि को एकत्र करके सम्बन्ध स्थापित किया है [अर्थात् पिता के वीर्य (जल) तथा माया की जठराग्नि (अग्नि) के संयोग से जीवों की उत्पत्ति की है] । रावण ने ग्रंथा होकर (स्वयं ही) (अघ्नना) सिर कटा दिया; (भला बताओ), रावण को मार कर (वह) किस प्रकार बड़ा हो गया ? ॥ १ ॥

तेरी उपमा (तुलना) किस प्रकार कही (वर्णन की) जाय ? तू सर्व-परिपूर्ण है और सभी का ध्यान रखता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जिस परमात्मा ने) (सभी) जीवों को उत्पन्न करके, (उनके रहने की) युक्ति को (अपने) हाथों में रक्खी है, वह कालीय (नाग) को नाथ कर किस प्रकार बड़ा हो गया ? किसका तू पति है और कौन तेरों स्त्री कहो जातो है ? (तू तो) सभी में निरन्तर रम रहा है ॥ २ ॥

ब्रह्मा का कुटुम्ब अथवा जन्म-स्थान कमल-नाल है, यह कमल-नाल वरदाता (विष्णु की नाभि) से (संयुक्त है) ; (उस कमल-नाल के मार्ग से) ब्रह्मा सृष्टि (अपनी उत्पत्ति का मूल-स्थान) का पता लगाने गये, किन्तु उसका आदि अन्त न पा सके; (भला बताओ) ऐसा (परमात्मा) कंस को मार कर किस प्रकार बड़ा हो गया ? ॥ ३ ॥

(परमात्मा ने स्वयं ही) क्षीर (समुद्र) मध कर (चौदह) रत्नों को उत्पन्न कर

रख दिया, (किन्तु देवता-दैत्य गण) बड़बड़ा उठे कि (रखों को) हमने (उत्पन्न) किया है ।
 नावक कहते हैं कि वह छिपने वाला कैसे छिप सकता है जो (अपना दान) प्रत्येक को बाँट देता
 है ? ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

करम करतूती बेलि बिसचारी रामनाम फल हूँघ्रा ।

तिसु रूपु न रेख भनाहदु बाजै सबदु निरंजनि कीम्रा ॥१॥

करे बलिघ्राणु जाणै जे कोई । अंभृतु पीवै सोई ॥१॥ रहाउ ॥

जिन्ह पीम्रा से मस्त भए है तूटे बंधन फाहे ।

जोती जोति समारणी भीतरि ता छोड़े माइघ्रा के लाहे ॥२॥

सरब जोति रूपु तेरा देखिघ्रा सगल भवन तेरी माइघ्रा ।

रारै रूपि निरालसु बंठा नवरि करे बिचि छाइघ्रा ॥३॥

बीणा सबदु बजावै जोयी दरसनि रूपि अघारा ।

सबदि अनाहदि सो सहु राता नानकु कहै विचारा ॥४॥८॥

(शुभ) कमौ की बेलि का विस्तार हुआ है और उसमें राम नाम का फल लगा
 है । (उस राम नाम का) न कोई रूप है और न कोई रेखा, (वह) अनाहत रूप में बज रहा;
 (राम नाम का) शब्द निरंजन (हरी) ने प्रकट किया है ॥ १ ॥

(राम नाम की वही) व्याख्या कर सकता है, जो उसे जानता हो । (जो राम नाम
 जानता है), वही अमृत पीता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने (राम नाम का) अमृत पी लिया है, वे (उसी अमृत में) मस्त हो गये हैं,
 उनके बन्धन की फाँसियाँ कट गई हैं । उनकी भ्रातृरिक ज्योति के साथ (परमात्मा की) ज्योति
 मिल गई है और उन्होंने माया के लाभ को त्याग दिया है ॥ १ ॥

तेरा ज्योतिर्मय रूप सभी में दिखाई पड़ रहा है, सारे लोकों में तेरी ही माया
 (दिखाई पड़ रही है) । भगदो और (दृश्यमान) रूपाँ में (परमात्मा) निर्लेप होकर बंठा
 है (और माया की) छाया में (स्थित होकर) सभी को देख रहा है ॥ ३ ॥

वह योगी अपार (हरी के) दर्शन और रूप द्वारा शब्द रूपी बीणा को (निरन्तर)
 बजाता रहता है । नावक यह विचार कर कहते हैं कि वह परमात्मा उस योगी को अनाहत शब्द
 में रत वीख पढ़ता है, (तात्पर्य यह कि गुरु के शब्द द्वारा निरकार परमात्मा जाना जाता
 है) ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

ये गुण गला के सिरि भार । गली गला सिरजणहार ॥

सम्या पीखा हसखा बावि । जलु लसु रिदे न आबहि यावि ॥१॥

तज परबाहू केही किम्रा कीजै । जनमि जनमि किहु लीजी लीजै ॥१॥ रहाउ ॥

मन को मति मत्तागलु मत्ता । जो किछु बोलिए ससु जतो जत्ता ॥

किम्रा सुनु ले कीचे अरबासि । पायु पुंनु बुइ म्हाखि पासि ॥२॥

जैसा तू करहि तैसा को होइ । तुझ बिनु दूजा नाही कोइ ।
जैही तू मति देखि तेही को पावै । तुष्टु घ्राये भावै तिवे चलावै ॥३॥
राय रतन परीक्षा परवार । तिसु बिचि उपजै अंभृत सार ।
नानक करते का इष्टु बनु माल । जे को बूझै एष्टु बीचार ॥४॥६॥

मुझमें यही गुण है कि मेरे सिर पर बातों का ही बोझा है; पर सब से उत्तम बातें सिरजनहार (परमात्मा) की ही (होती हैं) । जब तक हृदय में (परमात्मा की) याद नहीं आती, तब तक खाना, पीना, हँसना (तथा अन्य आमोद-प्रमोद) व्यर्थ ही हैं ॥ १ ॥

(यदि सब खाने-पीने, हँसने आदि व्यर्थ हैं), तो उनकी परवाह क्यों की जाय ? (लोगों की यही प्रवृत्ति होती है) कि बार-बार जन्म धारण करके कुछ न कुछ लिया ही जाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हमारे) मन के संकल्प-विकल्प मदमस्त हाथी की भाँति हैं (वह) जो कुछ भी बोलता है, सब गलत ही गलत (बोलता है) । क्या मुँह लेकर प्रार्थना की जाय ? पाप और पुण्य दोनों ही मेरे समीप साक्षी के रूप में हैं ॥ २ ॥

(हे प्रभु), जैसा तू बनाता है, वैसा ही कोई बनता है । तेरे बिना कोई भी दूसरा नहीं है । तू जैसी बुद्धि देता है, वैसी ही कोई पाता है । तुझे जैसा अच्छा लगता है, वैसा ही चलता है ॥ ३ ॥

(गुरु वाणी) के रख के समान राग तथा रागिनियाँ और (उनके) परिवार (अन्य राग)—(इनसे) (नाम रूपी) श्रेष्ठ अमृत उत्पन्न होता है । नानक कहते हैं कि यदि कोई विचार करके समझे तो कर्ता-गुण्य (परमात्मा) की यही धन-दौलत है ॥ ४ ॥ ६ ॥

[१०]

करि किरपा अपने घरि आइआ । ता मिलि सखीआ काजु रचाइआ ॥
लेखु देखि मनि अननु भइआ सहु बीआहण आइआ ॥१॥
गावहु गावहु कामणी निबेक बीचार ।
हमरे घरि आइआ जगजीवनु भतार ॥१॥ रहाउ ॥
गुरुब्रह्मारे हमरा बीआहु जि होआ जां सहु मिलिआ तां जानिआ ।
तिहु लोका महि सबहु रविआ है आपु गइआ मनु मानिआ ॥२॥
आपणा कारहु आपि सवारे होरनि कारहु न होई ।
जितु कारजि सनु संतोख दइआ घरसु है गुरुमुखि बूझै कोई ॥३॥
अनति नानकु समना का पिरु एको सोइ ।
जिस नौ नवरि करे सा सोहासहि होइ ॥४॥१०॥

(प्रियतम परमात्मा ने) कृपा की और अपने घर आया । उससे मिलकर सखियों ने (विवाह) कार्य रच दिया । इस खेल को देख कर मन में आनन्द उत्पन्न हुआ कि प्रियतम (मुझे) व्याहृत आया है ॥ १ ॥

ऐ स्त्रियों निबेक एवं विचारवाली वस्तुओं को गाओ, गाओ । जगत् के जीवन का अंश (पति) हमारे (हृदय-रूपी) घर में आ कर बस गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि गुरु द्वारा हमारा विवाह (प्रियतम परमात्मा के साथ) हो गया, तभी जानना चाहिये कि प्रियतम मिल गया है। तीनों लोकों में शब्द व्याप्त हो गया है, अहंभाव दूर हो गया है और मन (अपने आप) मान गया (शान्त हो गया) है ॥ २ ॥

(प्रभु) अपना कार्य आप स्वयं ही सँवारता है, औरों से कार्य नहीं (सम्पादित) होता। जिस कार्य में सत्य, संतोष, दया और धर्म (का समावेश) है, (ऐसे कार्य) को कोई गुरुमुख ही समझता है ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि सभी का प्रियतम एक वही (परमात्मा ही) है। जिसके ऊपर कृपाहृष्टि करता है, वही उसकी सुहागिनी (स्त्री) होती है ॥ ४ ॥ १० ॥

[११]

गुरु बन समसरि सहजि सुभाइ । बुरमति गनु भई कोरति ठाड ॥

सब पडड़ी साखड मुखि नांड । सतिगुरु सेवि पाए निज पाउ ॥१॥

मन खुरे लडु बरसन जाणु । सरब जोति पूरन भगवानु ॥१॥ रहाउ ॥

अधिक तिघास भेल बहु करे । दुखु खिझा सुखु तनि परहरे ॥

कामु क्रोशु अंतरि धनु हिरै । दुविधा छोडि नामि निततरै ॥२॥

सिकति सत्ताहणु सहज अनंद । सखा सैनु प्रेमु गोबिंद ॥

आपे करे आपे बलसिदु । तनु मनु हरि पहि आपे जिदु ॥३॥

झूठ विकार महा दुखु वेद । भेल बरन दीसहि सभि लेह ।

जो उपजे सो आपे जाइ । नानक असचिक नामु रजाइ ॥४॥११॥

(अब) स्वाभाविक ही गुरु और वन एक समान हो गए हैं। दुर्बुद्धि समाप्त हो गई है (और उसके) स्थान पर (परमात्मा की) कीर्ति (आ बसी) है। मुख में (परमात्मा का) सच्चा नाम होना ही, यही (प्रभु की प्राप्ति की) सच्ची सीढ़ी है। (साधक) अपना (वास्तविक घर (आत्म स्वरूप) सद्गुरु में ही पाता है।

छः शास्त्रों [पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदान्त), न्याय, योग, वैशेषिक तथा सांख्य] का जानना यही है कि मन को चूर-चूर करके (वशीभूत करें) ; (और यह जाने) की भगवान् की ज्योति सर्वत्र परिपूर्ण है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अधिक तृष्णा (के वशीभूत होने से, उसकी पूर्ति के निमित्त) बहुत से वेशों को धारण करना पड़ता है ; विषयों का दुःख शरीर में (स्थित) मुख को दूर कर देता है। काम और क्रोध आंतरिक धन को चुरा लेते हैं। दुविधा को त्याग कर नाम द्वारा निस्तार पा सकता है ॥२॥

(जो) (परमात्मा) के गुणों की प्रशंसा करता है, (उसे) सहज आनन्द (प्राप्त होता है)। गोविन्द का प्रेम ही (उसके लिए) सखा और स्वजन है। (प्रभु) आप ही रचता है और आप ही देता है। (मेरे) तन और मन हरी के निमित्त ही हैं, (और) आगे (परलोक) में वही जीवन है ॥ ३ ॥

झूठ आदि विकार, शरीर (के निमित्त) बड़े ही कष्टदायक है। वेद और वर्णादिक सब ज्ञान (भ्रम) ही दिखाई पड़ते हैं। जो भी (वस्तु) उत्पन्न होती है, जाने-जाने वाली होती

हे । नानक कहते हैं स्थिर रहनेवाला केवल (परमात्मा का) नाम और उसकी आज्ञा है ॥ ४ ॥ ११ ॥

[१२]

एको सरवर कमल अनूप । सदा बिगासी परमल रूप ।

ऊजल मोती बूगहि हंस । सरब कला जगदीसै भंस ॥१॥

जो दोसै सो उपजै बिनजै । बिनु जल सरवरि कमलु न दोसै ॥१॥ रहाउ ॥

बिरला बूके पावे भेदु । साखा तीनि कहै नित वेदु ॥

नाव बिब की सुरति समाइ । सतिगुरु सेवि परम पदुपाइ ॥२॥

मुक्तो रातउ रंगि रवातउ । राजन राजि सदा विगसातउ ॥

जिस तूं राखहि किरपा धारि । बूझत पाहन तारहि तारि ॥३॥

त्रिभरण महि जोति त्रिभरण महि जाणिआ । उलट भई घर घर महि आनिआ ॥

अहिनिनिस भगति करे लिव लाइ । नानकु तिन कै लाने पाइ ॥४॥१२॥

एक (सत्संग रूपी) सरोवर है, (जिसमें गुरुमुख रूपी) सुन्दर कमल (खिले हैं) । (यह सरोवर कमलों) को विकसित करना है (और उन्हे) सुगंधि तथा रूप (प्रदान करता है) । (गुरुमुख रूपी) हंस (नाम रूपी) उज्ज्वल मोती चुगते हैं । (वे गुरुमुख रूपी हंस) सर्व शक्तिमान जगदीश के भंश (भाग) हो गए हैं ॥ १ ॥

जो कुछ भी (इस संसार में) दिखाई देता है, (वह सब) उत्पन्न होता और नष्ट होता है । (भक्ति रूपी) जल के बिना (सत्संग रूपी) सरोवर में (गुरुमुख रूपी) कमल नहीं रह सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(इस सत्संग के रहस्य को) कोई बिरला ही समझता है । वेद तो सदैव तीन शाखाओं का वर्णन करते हैं [तीन शाखाओं से तात्पर्य तीन गुणों से है—सत्त्व, रज, तम (त्रेगुण्य विषया वेदा.....श्रीमद्भगवद्गीता) अथवा—ज्ञान, कर्म, उपासना; अथवा त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश] । (साधक) नाद-बिन्दु के एकनिष्ठ ध्यान में समाहित हो जाता है [नाद=शब्द रूप, वह अवस्था जब सृष्टि नहीं थी और निरंजन परमात्मा शब्द रूप में ही विराजमान था । बिन्दु=फिर उसने सगुण रूप में समस्त सृष्टि-रचना का विस्तार किया । नाद-बिन्दु के ज्ञान को जो साधक एक कर देता है, एक समझ लेता है, वह तीनों अवस्थाओं से पार होकर चतुर्थ अवस्था—सहजावस्था में समा जाता है ।] सद्गुरु की सेवा करने से ही वह परम पद को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

(जो मनुष्य) मुक्त होने के लिये प्रेम करता है, (वह हरी को) प्रेम के साथ स्मरण करता है । वह राजाओं का राजा है, (अतएव) सदा प्रसन्न रहता है । (हे प्रभु), जिसकी तू कृपा धारण कर के रक्षा करता है, उसे (तू) हूबनेवाली पत्थर की नाव (मे भो) तार देता है ॥ ३ ॥

(जो) त्रिभुवन में व्याप्त (परमात्मा की) ज्योति को त्रिभुवन में परिपूर्ण जानता है, जो (माया की ओर से कृतियों को) उलट कर (मन रूपी) घर को (आत्म स्वरूप रूपी) घर में ले आता है, नानक उनके चरणों में लगता है (पड़ता है) ॥ ४ ॥ १२ ॥

[१३]

गुरमति साखी हुनति दूरि । बहुतु सिध्दाएण लागी धूरि ॥
 लागी मैलु मिटे सच नाइ । गुरपरसावि रहै तिव लाइ ॥१॥
 है हृदयि हाजरु अरसाति । बुलु सुलु सासु करते प्रभ पासि ॥१॥ रहाउ ॥
 कूड़ु कमावे आबै जाबै । कहलि कयनि वारा नही आबै ॥
 किआ देखा भूभु न पाबै । बिनु नाबै मनि नृपति न आबै ॥२॥
 जो जनमे से रोगि विधापे । हउमै माइआ दुखि संतापे ॥
 से जन बांचे जो प्रभि राखे । सतिगुरु सेवि भ्रंमृत रसु चाखे ॥३॥
 चलतउ मनु राखे भ्रंमृतु चाखे । सतिगुरु सेवि भ्रंमृत सबदु भाखे ॥
 साखे सबवि मुक्ति गति पाए । नानक बिचहु आसु गवाए ॥४॥ १३ ॥

गुरु द्वारा दी गई बुद्धि ही सच्ची है (और इसके द्वारा) हुजत [भगडा, तकरार, व्यर्थ लड़ाई] दूर होती है । बहुत सयानेपन मे (मन में) (पापों की) धूलि लगती है । (यह) लगी हुई मैल (परमात्मा के) सच्चे नाम से छूटती है । गुरु की कृपा से (शिष्य) एकनिष्ठ ध्यान में लीन रहता है ॥ १ ॥

(उस परमात्मा के) समीप हाजिर होकर प्रार्थना की जाय, (क्योंकि सारे) दुःख-सुख सबमुंच ही उसके पास हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो व्यक्ति) भूठ कमाता है, वह आता ही जाता रहता है । कयनी कहने में भ्रन्त नहीं प्राप्त होता, (तात्पर्य यह कि केवल कथन मात्र से संसार से भ्रन्त नहीं प्राप्त होता है) । यदि समझ नहीं प्राप्त होती, तो उसके देखने से क्या (लाभ होता) है ? बिना (परमात्मा के) नाम के, मन में तृप्ति—शान्ति नहीं आती ॥ २ ॥

जो (व्यक्ति) जन्म धारण करते हैं (वे सभी) रोग से व्याप्त होते हैं । अहंकार और माया के दुःख से (वे) संतप्त होते हैं । वे ही लोग (रोग, अहंकार, माया और दुःख से) बंधते हैं, जिनकी प्रभु (स्वयं) रक्षा करता है । सद्गुरु की सेवा करके (वे) (परमात्मा रूपी) भ्रमृत रस का आस्वादन करते हैं ॥ ३ ॥

जो चंचल मन को (रोक) रखता है, वही भ्रमृत चखता है । सद्गुरु की सेवा करके (वह) भ्रमृत शब्द (परमात्मा के नाम) का उच्चारण करता है । (गुरु के) सच्चे शब्द से (वह) मुक्ति और गति पाता है । नानक कहते हैं कि (वह) (अपने) में से अहंकार नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ १३ ॥

[१४]

जो तिनि कीआ सो सनु धीआ । भ्रंमृत नामु सतिगुरि धीआ ॥
 हिरदे नामु नाही मनि भंगु । अनदिनु नासि पिआरे संगु ॥१॥
 हरि जोउ राखहु अपनी सरणाई ।
 गुरपरसाखी हरि रसु पाइआ नामु पवारसु नउनिधि पाई ॥१॥ रहाउ ॥
 करम धरम सनु साखा नाउ । ता कौ सद बलिहारे जाउ ॥
 जो हरि राते से जन परबासु । तिन की संगति परम निषामु ॥२॥

हरि बरु जिनि पाइआ धन नारी । हरि सिउ राती सबहु बीचारी ॥

आपि तरे संगति कुल तारे । सतिगुरु सेबि तनु बीचारे ॥३॥

हमरी जाति पति सनु नाउ । करम धरम संजमु सत भाउ ॥

नानक बलसे पूछ न होइ । दूजा भेटे एको सोइ ॥४॥१४॥

(परमात्मा ने कृपा करके) जिसे (सत्य में धाकड़) कर दिया है, वही सच्चा होता है । अमृत नाम सद्गुरु ही देता है । (जिसके) मन में (हरी का) नाम है, उसका मन भंग नहीं होता है, (तात्पर्य यह कि उसके मन में कभी निराशा नहीं होती है), (उसका) संग प्रियतम के साथ सदैव (बना) रहता है ॥ १ ॥

हे, हरी जी, मुझे (अपनी) शरण में रख लो । गुरु की कृपा से (मुझे) हरी-रस प्राप्त हो गया है और नाम रूपी पदार्थ की नव निद्रियाँ मैंने पा ली हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने सच्चे नाम को ही सब कर्म-धर्म समझ लिया है, उन पर मैं सदैव बलिहारी होता हूँ । जो (व्यक्ति) परमात्मा में अनुरक्त है, वे ही जन प्रामाणिक हैं और उनकी संगति परम निधान है ॥ २ ॥

जिस (जीव रूपी) स्त्री ने (परमात्मा रूपी) पति को प्राप्त कर लिया है, वह धन्य है । (वह) (गुरु के) शब्द द्वारा विचार कर हरी से रंग जाती है । वह स्वयं (तो) तरती है, (अपनी) संगति में (समस्त) परिवार को भी तार देती है । (वह) सद्गुरु की सेवा करके तत्त्व का विचार करती है ॥ ३ ॥

(हरी का) सच्चा नाम ही हमारी जाति-पति है । सच्चा प्रेम (भाव) ही कर्म, धर्म और संयम है । नानक कहते हैं कि (यदि परमात्मा सच्चा नाम और प्रेम) प्रदान करे, (तो साधक से किसी हिसाब की) पूछ नहीं होती है । एक वही (परमात्मा ही) द्वैत भाव भेट सकता है ॥ ४ ॥ १४ ॥

[१५]

इकि आबहि इकि जावहि आई । इकि हरि राते रहहि समाई ।

इकि धरनि गगन बहि ठउर न पावहि ।

से करमहीण हरि नामु न विआवहि ॥१॥

गुर पूरे ते गति मिलि पाई ।

इहु संसार बिलुखत अति भउजलु गुरसबदी हरि पारि लंघाई ॥१॥ रहाउ ॥

जिन्ह कउ आपि लए प्रभु मेलि । तिन कउ कालु न साकै वेलि ॥

गुरमुखि निरमल रहहि पिआरे । जिउ जल अंभ ऊपरि कमल निरारे ॥२॥

बुरा भला कहु किस नो कहीऐ । बीसै बहसु गुरमुखि सनु लहीऐ ॥

अकथु कथउ गुरमति बीजारु । मिलि गुर संगति पावउ पारु ॥३॥

सासत बेद सिमूति बहु भेद । अठसठि मजनु हरिरसु रेद ॥

गुरमुखि निरमलु भैसु न लागे । नानक हिरदै नामु बडे चुरि लागे ॥४॥१५॥

कुछ तो (इस संसार में) पाते हैं और कुछ (यहाँ) धाकर चले जाते हैं । कुछ हरी में अनुरक्त होकर उसी में समाहित हो जाते हैं । कुछ (ऐसे हैं) (जो) पृथ्वी और आकाश में ठौर (स्थान) नहीं पाते हैं । (जो) हरी नाम का ध्यान नहीं करते हैं, वे भ्राम्यहीन हैं ॥ १ ॥

पूर्ण गुरु से ही गति-मिति (उच्च अवस्था की चरम सीमा) प्राप्त होती है । यह संसार विषयत है, संसार सागर (भव-जल) अति (दुस्तर) है, (किन्तु गुरु के) शब्द (पर आचरण) करने से हरि पार लंघा देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्हें प्रभु प्राप मिला लेता है, उन्हे काल दबा नहीं सकता । प्रिय गुरुमुख (इस संसार में रहते हुए भी) (उसी प्रकार) निर्मल रहते हैं, जिस प्रकार कमल जल के ऊपर रहते हुए भी (जल से) निर्लेप रहते हैं ॥ २ ॥

(भला बताओ) बुरा अथवा भला किसे कहा जाय ? गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य को सर्वत्र) ब्रह्म दिखाई पड़ता है और सत्य की प्राप्ति होती है । गुरु की शिक्षा द्वारा विचार करने से अकथनीय (परमात्मा) का कथन किया जाता है तथा गुरु की संगति में मिलने से पार पाया जाता है ॥ ३ ॥

शास्त्रों, वेदों तथा स्मृतियों के अनेक भेद हैं । हरि-रस (की प्राप्ति ही) अद्वैत (तीर्थों का) स्नान है तथा समस्त वेदों (का) पाठ है । गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) निर्मल रहता है, उसके मूल नहीं लगती । नानक कहते हैं कि हृदय के (बीच में) नाम (का स्थित होना) पहले के बड़े भाग्य से मिलता है (अर्थात् परमात्मा की विशेष कृपा हो, तभी हृदय में नाम आकर बसता है) ॥ ४ ॥ १५ ॥

[१६]

निवि निवि पाइ लगउ गुरु अपुने आतम रामु निहारिआ ।

करत बीचारु हिरदै हरि रविआ हिरदै देखि बीचारिआ ॥१॥

बोलहु रामु करे निसतारा ।

गुरपरसावि रतनु हरि लामे मिटै अगिआनु होइ उजीआरा ॥१॥ रहाउ ॥

रवनी रवै बंधन नही तूटहि बिचि हउमै भरसु न जाई ।

सतिगुरु मिले त हउमै तूटै ता को लेखे पाई ॥२॥

हरि हरि नामु भगति प्रिअ प्रीतसु सुख सागरु उर धारे ।

भगतिबछलु जगजीवनु दाता मति गुरमति हरि निसतारे ॥३॥

मन सिउ अकि मरै प्रसु पाए मनसा मनहि सयाए ॥

नानक कृपा करे जगजीवनु सहज नाइ लिब लाए ॥४॥१६॥

(मैं) अपने गुरु के चरणों में बार-बार नमिल होकर लगता हूँ, (उन्हीं की कृपा से) (मैंने घट-घट में रमनेवाले) आत्माराम का साक्षात्कार कर लिया है । विचार करने से हरी हृदय में ही रमण करता हुआ (बीज पड़ा), और उसे हृदय में देख कर विचार करने लगा । (इस भाँति हृदय और विचार हरी के साक्षिण्य से एक हो गए) ॥ १ ॥

राम (नाम) का उच्चारण करो, (वही) निस्तार करता है गुरु को कृपा से हरि-रज प्राप्त होता है, (उसके प्राप्त होने से) अज्ञान (का अन्धकार) मिट जाता है और (जान का) प्रकाश होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया के साथ रमण करने से बंधन नहीं टूटते (और) हृदय से अंधकार तथा भ्रम नहीं जाते [अथवा निरा जोष से उच्चारण करने से बंधन नहीं टूटते—शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ ३५३] [अथवा कितनी ही कविता की जाय, किन्तु बंधन नहीं टूटते—श्री गुरु ग्रंथ कोश, पृष्ठ ११००] । यदि सद्गुरु प्राप्त हो जाय, तभी अंधकार टूटता है (और तभी परमात्मा के) लेखे में आता है, (अर्थात् प्रामाणिक समझा जाता है) ॥ २ ॥

हरी का नाम भक्तों के लिए अत्यधिक प्रिय है, (भक्तों ने) उस सुख के सागर (नाम) को (अपने) हृदय में धारण कर लिया है । (परमात्मा) भक्त-वत्सन (और) जगत् के जीवन का दाता है, गुरु को शिष्या के द्वारा हरी (भक्तों का) निस्तार करता है ॥ ३ ॥

जो मन से झूठ कर (अर्हभाव से) मर जाता है वही परमात्मा को पाता है (और उसकी) इच्छाएं (उसके) मन में ही समाहित हो जाती हैं । नानक कहते हैं कि यदि जग-जीवन (परमात्मा) कृपा करता है, तो सहज भाव से लिव (एकनिष्ठ ध्यान) में लगा देता है—(आरूढ कर देता है) ॥ ४ ॥ १६ ॥

[१७]

किस कउ कहहि सुणावहि किस कउ किउ समझावहि समझि रहे ।

किसै पढ़ावहि पढ़ि गुणि बूझे सतगुरु-सुबदि संतोखि रहे ॥१॥

ऐसा गुरमति रमनु सरीरा । हरि भगु मेरे-मन नहिर गंभीरा ॥१॥रहाउ॥

अनत तरंग भगति हरि रंगा । अनबिनु भूचे हरि गुण संगी ॥

निधिआ जनम सारुत संसार । राम भगति जनु रहै निरारा ॥२॥

सूखी काइआ हरि गुण गाइआ । आतपु चीनि रहै लिव लाइआ ॥

आदि अपारु अपरंपरु हीरा । लालि रता मेरा मनु घीरा ॥३॥

कथनी कहहि कहहि से भूए । सो प्रभु हरि नाहो प्रभु तूं है ॥४॥१५॥

ससु जगु देखिआ माइआ छाइआ । नानक गुरमति नामु धियाइआ ॥४॥१५॥

(जो) (नाम के वास्तविक स्वभा को) समझ चुके हैं वे (इस बात को) किससे कह कह कर सुनावें और किससे कड़ कह कर समझावें ? (जो स्वयं) पढ़ कर और विचार कर (रहस्य को) जान गए हैं, (वे इस रहस्य को) किसे बतावें ? वे तो सद्गुरु के शब्द द्वारा संतोष में (स्थित) रहते हैं ॥ १ ॥

ऐसा हरी (जो) गुरु की शिक्षा द्वारा (समस्त) सरीरों में रमता हुआ (दृष्टिगोचर होता है), उस गहरे और गंभीर को हमें मेरे मन में स्मरण कर । ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हरी के रंग में शक्ति की अनन्त तरंगें हैं । (वे पुरुष) प्रतिदिन पवित्र रहते हैं, (जो) परमात्मा के गुणों के साथ रहते हैं । शक्ति के उपासक (माया के पुजारी) का जन्म इस संसार में मिथ्या है । रामकी भक्ति (मे अनुरक्त) पुरुष (संसार से) निर्लेप रहता है ॥ २ ॥

(जो) हरी का गुणगान करता है, (उसका शरीर पवित्र रहता है । (वह) आत्मा का साक्षात्कार कर के लिये (एकनिष्ठ ध्यान) में निमग्न रहता है । (जो हरी रूपी) हीरा थावि, अपार और अपरंपार है, (उस) लाल में मेरा मन अनुरक्त हो कर स्थिर हो गया है ॥३॥

(जो व्यक्ति बार-बार) कम्पनी (ही मात्र) करते हैं, वे मर चुके हैं । वह प्रभु दूर नहीं है, (हे प्रभु) तू ही (सर्वत्र) है । नानक कहते हैं (कि जिन्होंने) गुरु की शिक्षा के अनुसार नाम का ध्यान किया है, (उन्होंने वह प्रत्यक्ष) देख लिया है कि सारे जगत् में माया की छाया है, (जिसके फलस्वरूप लोग हरी के प्रत्यक्ष होते हुए भी, नहीं देख पाते हैं) ॥ ४ ॥ १७ ॥

[१८]

आसा, महला १, तितुका

कोई भीखकु भीखिया खाइ । कोई राजा रहिआ समाइ ॥
 किसहो मानु किते अपमानु । डाहि उसारे धरे धिमानु ॥
 तुझते बड़ा नाहो कोइ । किनु वेलासी बंगा होइ ॥१॥
 मैं तां नामु तेरा आचारु । तूं दाता करणहारु करताइ ॥१॥ रहाउ ॥
 बाट न पावउ बीगा जाउ । दरगह बेसण नाहो धाउ ॥
 मन का प्रभुला माइआ का बंसु । लीन लखानु होवै नित कंसु ॥
 लखण जीवण की बहुतो आस । लेखै तेरै सास निरास ॥२॥
 अहिनिनि प्रभुले वीपकु बेइ । भउजल डूबत चित करेइ ॥
 कहहि सुणहि जो मानहि नाउ । हुउ बलिहारै ता कै जाउ ॥
 नानकु एकु कहे अरदासि । जोउ पिडु सभु तेरै पासि ॥३॥
 जां तू बेहि जपी तेरा नाउ । दरगह बेसण होवै पाउ ॥
 जां सुख भावै ता दुरमति जाइ । गिआन रतनु बनि बसै आइ ॥
 नदरि करे ता सतिगुरु मिले । प्रणवति नानकु भवबसु तरे ॥४॥१८॥

कोई भिक्षुक है और भिक्षा (माँग कर) खाता है । कोई राजा है और (अपने प्राप में) मस्त है । (इस संसार में) किसी को मान और किसी को अपमान (प्राप्त होता है) । कोई व्यक्ति बड़ा कर (भवन) निर्माण करता है (और कोई परमात्मा का) ध्यान लगाता है । (हे प्रभु), तुझसे बड़ा कोई भी नहीं है । (मैं) किते दिक्काऊँ कि वह अच्छा है ? (अर्थात् कोई भी अच्छा नहीं है, कुछ न कुछ बुराई प्रत्येक व्यक्ति में है) ॥ १ ॥

मेरे लिए तो तेरा नाम ही (एक मात्र) आश्रय है । (हे प्रभु) तू दाता है, निर्माण-कर्ता और कर्तार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) (ठीक) रास्ता नहीं पाता हूँ, टेढ़ा-मेढ़ा जाता हूँ । (हरी के) दरवाजे पर बैठने का स्थान भी (मुझे) नहीं (प्राप्त होता है) । (मैं) मन का भन्ना हूँ और माया में बंसा हुआ हूँ । मेरी (शरीर रूपी) बीबल नित्य लीए होती है और लखाव होती है । (मुझे) जाने और जीने की बहुत आशा है, (किन्तु यह नहीं जानता) कि (मेरे जीवन का एक-एक)

स्वास, (और भोजन के एक एक घ्रास) तेरे लेखे में हैं । (अतएव तेरे लेखे से अधिक मैं न एक घ्रास अधिक खा सकता हूँ और न एक स्वास अधिक जीवित रह सकता हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु, तू) ग्रहनिवास ग्रंथों को दीपक देता है (और उन्हें रास्ता दिखाता है) । संसार-सागर में डूबने वालों को (तू ही) चिन्ता करता है (और उनका उद्धार करता है) । जो (हरी के) नाम को कहते हैं, सुनते हैं और मानते हैं, मैं उनपर न्यौछावर हो जाता हूँ । नानक एक प्रार्थना करता है (कि हे प्रभु), जीव और शरीर सब तेरे ही पास हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु), जब तू देता है, तभी तेरा नाम जपता हूँ (और उसी के द्वारा) (परमात्मा के) दरवाजे पर बैठने को स्थान (प्राप्त होता है) । (हे हरी) जब तुझे रुचता है, तभी दुर्मति दूर होती है और ज्ञान-रत्न मन में धाकर बसता है । (जब तेरी) कृपा-दृष्टि होती है, तभी सद्गुरु प्राप्त होता है । नानक विनय पूर्वक कहते हैं (कि सद्गुरु के द्वारा) संसार-सागर तरा जाता है ॥ ४ ॥ १८ ॥

[१८]

पंचपदे:

दुख बिनु घेनु पंख बिनु पंखी जल बिनु उतसुज कामि नाही ।

किआ सुलतानु सलाम बिहूना ग्रंथो कोठी तेरा नामु नाही ॥१॥

को बिसरहि दुखु बगुता लागे । दुखु लागे तूं बिसरु नाही ॥१॥ रहाउ ॥

अखी ग्रंथु जीभ रसु नाही कंनी पवणु न बाजै ।

चरणी चले पजूता आगे बिरु सेबा फल लागे ॥२॥

अखर बिरल बाग भुइ खोली सिंचित भाउ करेही ।

सभना फलु लागे नामु एको बिनु करमा कैसे लेही ॥३॥

जेते जीअ तेते सभि तेरे बिरु सेबा फलु किसी नाही ।

दुखु सुखु भाएना तेरा होबै बिरु नाबै जीउ रहे नाही ॥४॥

मति बिनु मरणु जीवरु होरु कैसा जा जीबां तां लुगति नाही ।

कहै नानक जीबाले जीआ जह भावै सह राखु तुही ॥५॥ १९॥

दूध के बिना गाय, पर के बिना पक्षी और जल के बिना उद्भिज (किसी) काम के नहीं रहते । सलाम के बिना सुलतान किस काम का है ? (अर्थात् जिस सुलतान को कोई सलाम नहीं करता, वह व्यर्थ है) । (इसी प्रकार) जिस कोठरी (हृदय मे) तेरा नाम नहीं है, वह व्यर्थ है ॥ १ ॥

(हे प्रभु), तू क्यों विस्मृत होता है ? (तेरे विस्मृत होने से) बहुत दुःख लगता है । (मुझे इसी बात से) दुःख लगता है कि (तू मुझे) विस्मृत न हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वृद्ध) आँखों से अन्धा है, (उसके) जीभ में रस नहीं है (और उसके) कानों से पवन (शब्द) नहीं सुनाई पड़ता, पकड़े जाने पर ही चरणों से आगे चलता है, (तात्पर्य यह कि वह दूसरों से पकड़ कर चलाए जाने पर, चल सकता है); (हे प्रभु) बिना (तुम्हारी) सेवा किए हुए यही (वृद्धावस्था का) फल लगता है । (भाव, यह कि बिना परमात्मा

को धारावना किं मनुष्य को बारम्बार योनि के अंतर्गत आकर, वृद्धावस्था आदि के दुःखों को भोगना पड़ता है) ॥ २ ॥

(गुरु के) अक्षर (उपदेश) बाग के वृक्ष हैं, (शुद्ध हृदय) अच्छी-पुखी है, (जिसमें ये वृक्ष उत्पन्न होते हैं) । (परमात्मा से) प्रेम करना ही (इन वृक्षों को) सीचना है । (ऐसा करने से) सभी वृक्षों में नाम रूपी एक फल लगेगा । किन्तु बिना (शुभ) कर्मों के (यह नाम रूपी फल) कैसे लगेगा ? ॥ ३ ॥

(हे प्रभु), जितने भी जीव हैं, वे सब तेरे ही हैं । बिना (परमात्मा और गुरु की) सेवा के किसी को भी फल नहीं प्राप्त होता । तेरी ही आज्ञा के दुःख-मुख होते हैं, बिना (तेरे) नाम के जीवन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

(गुरु की) बुद्धि द्वारा (जो ग्रहभाव से) मरना है, (वही वास्तविक) जीवन है । (इसके बिना) और जीवन कैसे हो सकता है ? (यदि और) प्रकार के जीवन (व्यतीत भी करें) तो वह (वास्तविक) जीवन की युक्ति नहीं है । नानक कहते हैं कि जीवों को वह अपनी मरजी के अनुसार जीवित रखता है । (हे प्रभु), तुझे जैसा अच्छा लगे, वैसा रख ॥ ५ ॥ १६ ॥

[२०]

काइआ ब्रह्मा मजु है धोती । गिरानु जनेऊ चिआनु कुसपाती ।

हरि नामा जसु जाचउ नाउ । गुर परसावि ब्रह्मि समाउ ॥१॥

पांडे ऐसा ब्रह्म बोचारु । नामे सुचि नामो पड़उ नामे चहु आचारु ॥१॥ रहाउ ॥

बाहुरि जनेऊ जिवरु जोति है नालि । धोती टिका नामु समालि ॥

एथे ओथे निबही नालि । बिरु नावे होरि करम न भालि ॥२॥

पूजा प्रेम माइआ परजालि । एको खेखहु अवरु न भालि ॥

चोन्है तजु गगन दसदुआर । हरि मुखि पाठ पढ़ै बोचार ॥३॥

भोजन भाउ भरसु भउ भयो । पाहकनरा छबि चोरु न लायो ॥

तिलकु लिलाटि जाली प्रभु एक । बुझै ब्रह्म अंतरि बिबेकु ॥४॥

आचारी नही जीतिआ जाइ । पाठ पढ़ै नही कीमति पाइ ॥

असटवसी चहु भेदु न पाइआ । नानक सतिगुरि ब्रह्मु बिखाइआ ॥५॥२०॥

काया ब्राह्मण है, मन (उस ब्राह्मण की) धोती है; ज्ञान यज्ञोपवीत तथा ध्यान कुशा के पत्ते हैं । (अन्य किसी नाम के स्थान में) (मैं) हरिनाम के यश की ही याचना करता हूँ । (इस प्रकार) गुरु की कृपा से मैं ब्रह्म में समा जाऊँगा ॥ १ ॥

हे पांडे (पंडित) इस प्रकार ब्रह्म का विचार करो । नाम ही पवित्रता है, नाम ही (का पाठ) पढ़ो (और) नाम ही को विहित कर्मकाण्ड (बनाओ) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बाहरी जनेऊ तो जब तक (शरीर के) साव ज्योति (प्राणज्योति) है, (तभी तक है) । (मृतपश्चात्) नाम को स्मरण करना ही धोती और टोका आदि (पूजा की सामग्री)

(बनाओ) । (नाम ही) यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) साथ निबहेगा, (काम देगा) । नाम के बिना अन्य (बाह्य) कर्मों को मत खोजो ॥ २ ॥

माया के जलाने को पूजा और प्रेम (बनाओ) । एक (परमात्मा) को ही देखो, अन्य को मत बुढ़ो—खोजो । तत्त्व को पहचानना ही गगन में (स्थित) दशम द्वार की प्रगति है; [ग्रन्थवा, गगन के दशम द्वार में स्थित होकर तत्त्व को पहचानना चाहिए] । (परमात्मा के) नाम को मुख में रखना ही पाठ करना और विचार (में स्थित होना) है ॥ ३ ॥

भाव के भोजन (का भोग) लगाओ, (जिससे) भ्रम और भय भग जायें (निवृत्त हो जायें) । (परमात्मा की) छवि (स्वरूप का चिन्तन) पहरेदार है, (इससे कामचक्र) चोर नहीं लंगेंगे । प्रभु को एक जानना ही ललाट का तिलक है । ब्रह्म को अंतर में जानना ही, (वास्तविक) विवेक है ॥ ४ ॥

आचारो से (प्रभु) नहीं जीता जा सकता है, (तात्पर्य यह कि परमात्मा आचारो द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता है) । (धार्मिक ग्रंथों के) पाठ करने से (उस परमात्मा की) कीमत नहीं पायी जा सकती है । अठारहो (पुराण) (तथा) चारों वेद उसका भेद नहीं पा सके हैं । नानक कहते हैं कि सद्गुरु ने ही ब्रह्म दिखाया है ॥ ५ ॥ २० ॥

[२१]

सेवकु दासु भगतु जनु सोई । ठाकुर का दासु गुरुमुखि होइ ॥
जिनि सिरि साजो तिनि कुनि गोई । तिसु बिनु दूजा अवरु न कोई ॥१॥
सासु नामु गुर सबदि बोचारि । गुरुमुखि साचे साचै बरबारि ॥१॥ रहाउ ॥
सचा अरसु सचो अरदासि । महली खससु सुणै साबासि ॥
सचै तखति बुलावै सोइ । बे बडिआई करे सु होइ ॥२॥
तेरा ताएगु तू है दोबारु । गुर का सबदु ससु निसारु ।
मंनै हुकसु सु परगटु जाइ । ससु नीसाएँ ठाक न पाइ ॥३॥
पंडित पढ़हि वखतएहि वेदु । अंतरि बसतु न जाएहि भेदु ॥
गुर बिनु सोभो बूझ न होइ । साचा रवि रहिआ प्रभु सोइ ॥४॥
किआ हउ आखा आखि वखाणी । तूं आपे जाएहि सरब बिडायी ॥
नानक एको बरु बोबारु । गुरुमुखि सासु तहा गुदरायु ॥५॥२१॥

जो ठाकुर का दास है, वह गुरुमुख है । वहीं सेवक, दास और भक्त है । जिस (प्रभु) ने सृष्टि निमित्त की हैं, वहीं उसे (फिर) लय करता है । (उस प्रभु) के बिना कोई और दूसरा नहीं है ॥ १ ॥

(हे साधक) गुरु के शब्द द्वारा सच्चे नाम का विचार करो । (परमात्मा के सच्चे दरबार में गुरुमुख ही सच्चे (सिद्ध) होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सच्ची अर्ज और सच्ची प्रार्थना को स्वामी (खसम) (अपने) महल में (अवश्य) सुनता है और शाबासी (देता है) । वह (प्रभु अपने सच्चे प्रार्थी को) (अपने) सच्चे तत्त्व पर

जुलाता है । (वह प्रभु) (अपने सेवक को) बड़ाई प्रदान करता है; (वह) जो कुछ करता है, वही होता है ॥ २ ॥

(हे प्रभु), तेरा ही बल है (और) तू हो दीवान लगाने वाला, अर्थात् न्याय करनेवाला है । गुरु का शब्द (परमात्मा की प्राप्ति का) सच्चा चिह्न है । जो (परमात्मा अथवा) गुरु का हृदय मानता है, वह प्रत्यक्ष (प्रभु के पास) जाता है । (उसके पास) सच्चा परवाना है, अतः (उसकी) रोक नहीं होती है ॥ २ ॥

पंडित गण (वेद) पढ़ते हैं (और) वेद की व्याख्या करते हैं, (किन्तु वे) भ्रान्तरिक वस्तु के रहस्य को नहीं जानते हैं । गुरु के बिना यह समझ-बूझ नहीं (प्राप्त) होती (कि) वही सच्चा प्रभु (सर्वत्र) रम रहा है ॥ ४ ॥

(हे प्रभु), मैं (तुम्हारे सम्बन्ध में) क्या कहूँ और क्या वर्णन करूँ ? हे समस्त आश्चर्य खरिबोवाले, (प्रभु) तू स्वयं ही (अपने को) जानता है । नानक (की शरण के लिए) एक ही दरवाजा और एक ही दरबार है । गुरुमुखो का उस स्थान पर सत्य रूप हरी हो गुजारा है ॥ ५ २१ ॥

[२२]

काशी गागरि बेह बुहेली उपजै बिनसे बलु पाई ।

इहु जगु सागरु इतरु किज तरीऐ बिनु हरि गुर पारि न पाई ॥१॥

तुभ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुभ बिनु अवरु न कोई हरे ॥

सरबो रंगो रूपी तू है तिसु बलसे जिसु नदरि करे ॥१॥ रहाउ ॥

सासु बुरी घरि बासु न बेचै पिर सिउ मिलन न बेइ बुरी ।

सखी साजनी के हउ चरन सरेबउ हरि गुर किरपा ते नदरि धरो ॥२॥

आसु बीचारि मारि मनु बेलिआ तुम सा मोतु न अवरु कोई ।

जिउ तूँ राखहि तिव हो रहसा बलु सुखु देवहि करहि सोई ॥३॥

आसा मनसा बोकु बिनासत त्रिहु गुण आस निरास भई ।

तुरीयावस्था गुरमुखि पाइये संत सभा की ओट लहो ॥४॥

गिआन पिआन सगले सभि जप तप जिसु हरि हिरदै अलख अभेवा ॥

नानक राम नामि मनु राता गुरमुखि पाए सहज तेब, ॥५॥२२॥

देह रूपी गागर कच्ची है, (जिससे) दुखी है; वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और दुःख पाती है । इस दुस्तर जगत्-सागर को किस प्रकार तरा जाय ? बिना हरी रूपी गुरु के (इसका) पार नहीं पाया जा सकता ॥ १ ॥

हे मेरे प्यारे, तेरे बिना और कोई (दूसरा) नहीं है; हे हरी, तेरे बिना और कोई (दूसरा) नहीं है । (हे हरी), समस्त रंगों और रूपों में तू ही है ; जिसके ऊपर (तू) कृपा-दृष्टि करता है, उसी को (यह गूढ़ रहस्य) प्रदान करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(माया रूपी) सास बड़ी ही बुरी है, (यह) (आत्म-स्वरूपी) गुरु में रहने नहीं देती; यह दुष्टा प्रियतम (परमात्मा) से नहीं मिलने देती; (संत-जन रूपी) सखी-सहेलियों के

चरणों की मैं सेवा करती हूँ, (जिसके फलस्वरूप) हरी रूपी गुरु ने कृपा की दृष्टि (मेरे ऊपर) डाल दी है ॥ २ ॥

(मैंने) अपने आप को विचार कर तथा अपने मन को मार कर (निरोध कर) भली भाँति देख लिया है कि तुम्हारे समान मेरा कोई और (दूसरा) मित्र नहीं है । (हे प्रभु), जिस प्रकार तू रखता है, उसी प्रकार रहना होता है ; जो दुःख-सुख तू देता है, वही (मनुष्य) भोगता है ॥ ३ ॥

(हे प्रभु, तुम्हारी कृपा से) मेरी आशा और इच्छा नष्ट हो गई है, त्रिगुणात्मक (माया की) आशा (से भी मैं) निराला हो गई हूँ । गुरु की शिक्षा द्वारा तथा संतों की सभा की शरण ग्रहण करने से तुरीयावस्था (चौथी अवस्था सहजावस्था) की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

जिसके हृदय में अलख और अमेद हरी का (निवास) है, उसमें समस्त ज्ञान, ध्यान, तथा सारे जप-तप (स्थित) है । नानक कहते हैं कि राम नाम में मन अनुरक्त हो गया है और गुरु की शिक्षा द्वारा सहज भाव की सेवा प्राप्त हो गई है ॥ ५ ॥ २२ ॥

[२३]

पंच २५दे

मोह कुटुंब मोह सब कार । मोह तुम तजहु सगल बेकार ॥१॥

मोह भर भरसु तजहु तुरुह बोर । साधु नामु रिबे रबे सरीर ॥१॥ रहाउ ॥

सबु नामु जा नवनिधि पाई । रोबे पूतु न कलपे माई ॥२॥

एतु मोहि दूबा संसार । गुरुमुखि कोई उतरै पारि ॥३॥

एतु मोहि फिर जूनी पाहि । मोहे साया जम पुरि जाहि ॥४॥

गुरदोखिआ ले जपु तपु कमाहि । ना मोहु तुटे ना याइ पाइ ॥५॥

नदरि करे ता एहु मोहु जाइ । नानक हरि सिउ रहै समाइ ॥६॥२३॥

(हे साधक), कुटुम्ब मोह है, सारे कार्य मोह है । (अतः) तुम मोह का त्याग करो, (सारी वस्तुओं के प्रति मोह) व्यर्थ है ॥ १ ॥

(हे) भाई, तुम मोह और भ्रम को त्याग दो । (तुम्हारा) शरीर सच्चे नाम को (अपने) हृदय में रमण करता हुआ (माने) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जब सच्चे नाम की नवनिधि प्राप्त हो जाती है, तब (वियोग में) न तो पुत्र रोता है और न माता कलपती है, (दुःखी होती है) ॥ २ ॥

इसी मोह ही में (सारा) संसार दूबा हुआ है । कोई (बिरला ही) गुरुमुख इससे पार उतरता है ॥ ३ ॥

इसी मोह (के कारण) फिर (मनुष्य) योनि के अंतर्गत पड़ता है और मोह ही लगा हुआ यमपुरी जाता है ॥ ४ ॥

(परम्परा के अनुसार) गुरु से बोक्षा ले कर (बाह्य) जप-तप करने से (कुछ भी नहीं बनता है) ; (इससे) न तो मोह टूटता है (और) न (परमात्मा के यहाँ) स्थान ही पाता है ॥ ५ ॥

नानक कहते हैं कि (प्रभु) कृपा करे, तभी वह मोह दूर होता है, (जिसके फलस्वरूप साधक) हरि से युक्त हो जाता है ॥ ६ ॥ २३ ॥

[२४]

आपि करे सत्तु अलख अपाक । हउ पापी तूँ बखसणहार ॥१॥
 तेरा भाणा सभु किछु होवै । मन हठि कोवै अंति विगोवै ॥ ॥ रहाउ ॥
 मनसुखो को मति कूड़ि विआपी । बिनु हरि स्मरण पापि संतापी ॥३॥
 बुरमति लिआनि साहा किछु सेबहु । जो उपजै सो अलख अमेबहु ॥४॥
 ऐसा हमरा सखा सहार्द । गुर हरि मिलिआ भगति दृडाई ॥४॥
 सयसीं सजदीं तोटा भावै । नानक राम नामु मनि भावै ॥५॥२४॥

सच्चा, अलख (तया) अपार (परमात्मा) (सब कुछ) आप ही करता है । (हे प्रभु) मैं पापी हूँ, तू क्षमा करनेवाला है ॥ १ ॥

(हे परमात्मा), तुम्हारी ही आज्ञा से सब कुछ होता है । (किन्तु जो व्यक्ति) मन के हठ से कुछ करता है, (वह) नष्ट हो जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

मनसुख की बुद्धि भूठ ही में व्याप्त रहती है । बिना हरि के स्मरण के पाप (कर कर के) (उसकी बुद्धि) संतप्त रहती है ॥२॥

(अतएव) दुर्बुद्धि का त्याग करके कुछ लाभ प्राप्त करो । जो (कुछ भी) उत्पन्न होता है, (वह सब) अलख, अमेद (हरी से ही उत्पन्न होता है) ॥३॥

हमारा सखा और सहायक (उपर्युक्त हरी) इसी प्रकार का है । गुरु (रूपी) हरि ने मिलकर भक्ति दृढ़ कर दी है ॥४॥

नानक (की दृष्टि में) सारे (सांसारिक) सौंदर्य में घाटा आता है, (अतएव) केवल रामनाम ही मन को अच्छा लगता है, (क्योंकि यह सोदा ऐसा है कि इसमें सदैव लाभ ही लाभ होता है) ॥५॥२४॥

[२५]

चउपदे४

विविआ बीचारी तां परउपकारी । जां पंच रासी ता तीरथ वासी ॥१॥
 घुंघरु बाजै जे मनु लायै । तउ जसु कहा करे मो सिउ आगै ॥१॥रहाउ॥
 आस निरासी तउ संनिआसी । जां जतु जोगी तां काइआ भोगी ॥२॥
 बइआ विगंबउ बेह बीचारी । आपि मरै अबरन नह मारी ॥३॥
 एकु तू होरि बेस बहुरे । नानकु जालै खोज न तेरे ॥४॥२५॥

जब (पंडित) विद्या के ऊपर विचार (आचरण) करता है, तभी (वह) परोपकारी होता है । जब (कोई) पंच ज्ञानेन्द्रियों को बलीभूत करता है, तभी (वह) (सच्चा) तीर्थवासी होता है ॥१॥

यदि मन (हरी में) लगता है, तो (सदैव अनाहत) घुंघरू बजता रहता है । (ऐसी स्थिति में) आगे (परलोक में) यम मुझसे क्या कर सकेगा ? (अर्थात् रागादिमका भक्ति के

आगे यम की दाल नहीं गल सकती । जो व्यक्ति रागात्मिका भक्ति में निभन्न है, वह यम के पाश से मुक्त है) ॥१॥ रहाउ ॥

जब (कोई) आशा से निराश हो जाता है, तभी (वह वास्तविक) संन्यासी (होता) है । जब (किसी) योगी में संयम होता है, (तभी) (वह) शरीर (के सुख का) भोगी होता है ॥२॥

यदि (जिसमे) दया है और शरीर का विचार है, तो वही (वास्तविक) दिगम्बर है । (जो जीवित अवस्था में ही अहंकार से) स्वयं मर जाता है, वह दूसरों को नहीं मारता है ॥३॥

(हे प्रभु), तू तो एक ही है, (किन्तु तेरे) वेश बहुत से हैं । नानक तेरे कौतुक (चरित्र) नहीं जान सकता है ॥४॥२५॥

[२६]

एक न भरोआ गुण करि घोवा । मेरा सह जागे हउ निसि भरि सोवा ॥१॥

इउ किउ कंत पिमारी होवा । सह जागे हउ निसि भरि सोवा ॥१॥रहाउ॥

आस पिमारी सेजै आवा । आगे सह भावा कि न भावा ॥२॥

किआ जाना किआ होइगा री माई । हरि दरसनु बिनु रहनु न जाई ॥१॥

प्रेसु न चालिआ मेरी तिस न बुझानी । गइआ सु जोबनु धन पछुतानी ॥३॥

अजै सु जागउ आस पिमारी । भईले उदासी रहउ निराली ॥१॥रहाउ॥

हउमे खोइ करे सीमार । तउ कामए सेजै रवे अतार ॥४॥

तउ नानक कंतै मन भावै । छोडि बडाई अपणे लसम समावै ॥१॥रहाउ॥२६॥

(मैं) एक (पाप) से नहीं भरी हुई (कि एकाध) गुण से (उसे धोकर साफ हो जाऊँ, मैं अनेक पापों में लित हूँ । मेरा प्रियतम तो जागता रहता है (और) मैं (सारी आयु रूपी) रात्रि भर (अज्ञानता की नींद में) सोती रहती हूँ ॥१॥

इस प्रकार (भला) मैं कैसे पति को प्यारी हो सकती हूँ ? प्रियतम तो जागता रहता है और मैं (आयु रूपी) रात्रि भर (अज्ञानता की निद्रा में) सोती रहती हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

(प्रियतम के मिलने की) आशा की व्यास (चाह) से मैं सेज पर आऊँ, तो पता नहीं कि उस (प्रिय को) आगे अच्छी लगूंगी अथवा नहीं अच्छी लगूंगी ? २॥

अरी माँ, मैं क्या जानूँ कि आगे (भविष्य में) क्या होगा ? बिना हरी के दर्शन के तो (मुझसे) नहीं रहा जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

न तो मैंने प्रेम का ही आस्वादन किया, और न मेरी (व्यास की) वृष्णा ही बुझी । (इस प्रकार) वह जीवन चला गया और स्त्री पछुताती है ॥३॥

(मैं) अब (सासारिक) आशा की व्यास से जग पड़ी हूँ और संसार से उदासीन तथा निराश हो गई हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

(यदि कोई स्त्री) अहंकार खोकर (सद्गुणों का) शृङ्गार करे, तो (उस) स्त्री के साथ पति सेज पर रमण करता है ॥४॥

नानक कहते हैं (कि सद्गुणों के आचरण से ही) (वह स्त्री) कंत के मन को अच्छी

लगी है । (वह) (समस्त) बड़प्पन को छोड़कर अपने पति से समा जाती है ॥ १ ॥
रहाउ ॥ २६ ॥

[२७]

पेचकड़े घन खरी इम्राणी । तिसु सह की मे सार न जाणी ॥१॥

सह मेरा एक हुआ नहीं कोई । नदरि करे मेनावा होई ॥१॥ रहाउ ॥

साहुरड़े घन सासु पछाणिआ । सहजि सुभाद प्रपणा बिर जाणिआ ॥२॥

गुरपरसावी ऐसी मति आवै । तां कामणि कंठं मनि भावै ॥३॥

कहतु नानक भै भाव का करे सीगार । सद ही सेजै रबै भतार ॥४॥ रहाउ ॥

(मायिक संसार रूपी) नैहर में (जीवात्मा रूपी) स्त्री बहुत भ्रान्तिनी (रहती है) । मैं तो उस पति की खबर नहीं जानती ॥१॥

मेरा पति एक ही है, दूसरा कोई नहीं है । (यदि वह) कृपा-दृष्टि करता है, (तभी) मिलाप होता है ॥१॥ रहाउ ॥

ससुराल में स्त्री ने (अपने) सच्चे (पति—परमात्मा) को पहचान लिया है । (उसने) सहज भाव से अपने प्रियतम को जान लिया है ॥२॥

गुरु की कृपा से जब ऐसी (उपर्युक्त) बुद्धि होती है, तभी स्त्री अपने पति के मन को अच्छी लगती है ॥३॥

नानक कहते हैं (कि यदि स्त्री) (परमात्मा के) भव तथा प्रेम का शृङ्गार करती है, (तो) पति सदैव ही (उसके साथ) सेज पर रमण करता है ॥४॥ रहाउ ॥

[२८]

न किस का पुत्र न किसकी माई । झुठै मोहि भरमि भुलाई ॥१॥

मेरे साहिब हउ कीता तेरा । जा तू देहि जपो नाउ तेरा ॥१॥ रहाउ ॥

बहुते घउगुण कूकै होई । जा तिसु भावै बलसे सोई ॥२॥

गुरपरसावी बुरमति खोई । जह बेला सह एको सोई ॥३॥

कहत नानक ऐसी मति आवै । तां को सचे सजि समावै ॥४॥ रहाउ ॥

न तो (कोई) किसी का पुत्र है और न (कोई) किसी की माता । झूठे हो मोह और भ्रम में (लोग) भूले हुए हैं ॥१॥

मेरे साहब, मैं तेरा ही बनाया हुआ हूँ । जब तू देता है, तभी मैं तेरा नाम जपता हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

(चाहे) कोई (अपने को) (उस हरी के दरवाजे पर) बहुत श्रवणों वाला ही पुकारे, (किन्तु यदि वह) उस (परमात्मा) को अच्छा लगता है, तो वह (उसके सारे श्रवणों को) समा कर देता है ॥२॥

गुरु की कृपा से दुर्बुद्धि का नाश हो गया है और जहाँ भी (मैं) देखता हूँ, वहाँ एक वही (परमात्मा) दिखाई पड़ता है ॥३॥

नानक कहते हैं कि यदि किसी को ऐसी बुद्धि (प्राप्त हो जाती) है, तो वह सत्य हरों के सत्य में समा जाता है ॥४॥२८॥

[२९]

दुपदे

तितु सरवरड़े भइले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीया ।

पंकजु मोह पगु नही बाले हम देखा सह डूबीधते ॥ १ ॥

मन एकु न चेतसि भूइ मना । हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥रहाउ॥

ना हउ जती सतो नही पड़िआ मूरख सुगधा जनमु भइआ ।

प्रणवति नानक तिन्हु की सरणा जिन्हु तूं नाहो बीसरिआ ॥२॥२९॥

मनुष्य का निवास उस सरोवर में हुआ है, जहाँ का जल (परमात्मा ने) अग्नि की भाँति (उष्ण) बनाया है। मोह के कीचड़ में (फँसकर) उसके पैर धामे नहीं बढ़ते; हमने उस मनुष्य को (मोह रूपी कीचड़ में) डूबते हुए देखा है ॥१॥

ऐ मूढ़ मन, तू मन में एक (परमात्मा) का चिन्तन नहीं करता । (तुम्हें विदित नहीं है कि) परमात्मा के विस्मरण से तुम्हारे सारे गुण नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

न मैं यती हूँ, न सत्त्वगुणी हूँ और न पढ़ालिखा ही हूँ; मैं तो मूर्ख ही जन्मा हूँ। नानक निवेदन करते हैं कि मैं उनकी शरण में पड़ा हूँ, जो तुम्हें विस्मृत नहीं होते ॥२॥२९॥

[३०]

त्रिअ घर छिअ गुर छिअ उपबेस । गुर गुरु एको बेस अनेक ॥१॥

जे घरि करते कीरति होइ । सो घरु राखु बडाई तोहि ॥१॥रहाउ॥

बिसुए बसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु भइआ ।

मूरख एको रुति अनेक । नानक करते के केते बेस ॥२॥३०॥

छः शास्त्र हैं [सांख्य, न्याय, वैशेषिक, पूर्व, मीमांसा अथवा कर्मकाण्ड, योग और उत्तर मीमांसा अथवा वेदान्त ।] छः (क्रमशः) इनके आचार्य—प्रवर्तक हैं, [कपिल, गौतम, कणाद, जैमिनि, पतंजलि और व्यास] और छः प्रकार की इनकी शिक्षाएँ हैं । किन्तु इन सभी गुरुओं का एक एक (परमात्मा) है, (हाँ) उसके वेश अनेक हैं ॥१॥

जिस शास्त्र में सृष्टि-रचयिता की कीर्ति का वर्णन रहता है, (हे प्रभु), उस शास्त्र की रक्षा करो, इससे तुम्हारी महत्ता बढ़ेगी ॥१॥ रहाउ ॥

जिस प्रकार सूर्य एक है और ऋतुएँ अनेक हैं और उनमें बिसा, चसा, चड़ी, पहर, तिथि, बार और महीने पृथक् पृथक् हैं; नानक कहते हैं कि उसी प्रकार कर्त्ता पुरुष तो एक ही है, उसके वेश अनेक हैं ॥२॥३०॥

विशेष : [१५ बार पलकों का गिरना = १ बिसा

१५ बिसा = १ चसा ।

३० चसे = १ पल ।

६० पल = १ घड़ी
 ७॥ घड़ी = १ पहर ।
 ८ पहर = १ रात-दिन

तथा वार ७, तिथियाँ १५, ऋतुएँ ६ और महीने १२ होते हैं]

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, घर ३, महला १

[३१]

लख लसकर लख बाजे नेजे लख उठि करहि सलामु ।

लखा उपरि कुरमाइसि तेरी लख उठि राखहि मानु ॥

जां पति लेखै ना पवै तां सभि निराफल काम ॥१॥

हरि के नाम बिना जगु घंघा ।

जे बहुता समझाईये भोला भी सो ग्रंथो ग्रंथा ॥१॥ रहाउ ॥

लख खटीग्रहि लख संगीग्रहि खानहि लख प्रावहि लख जाहि ।

जां पति लेखै ना पवै तां जीग्र किषे फिरि पाहि ॥२॥

लख सासत समझावली लख पंडित पढ़हि पुराण ।

जां पति लेखै ना पवै तां सभे कुपरबाण ॥३॥

सच नामि पति ऊपजे करमि नामु करताउ ।

अहिनिमि हिरवै जे वसै नानक नवरो पाक ॥४॥१॥३१॥

(चाहे तुम्हारे) लाखों लसकर हों, लाखों बाजे-गाजे हो, भाले हों, और लाखों (व्यक्ति) उठ कर (तुम्हें) सलाम करते हों; लाखों (मनुष्यों के) ऊपर तुम्हारा हुक्म (चलता हो) और लाखों (मनुष्य) उठकर तुम्हारा मान रखते हों, (इतना सब ऐश्वर्य होने पर भी) यदि पति परमात्मा के लेखे में नहीं आते, तो (तुम्हारे) सारे कार्य निष्फल ही हैं ॥१॥

हरि के नाम के बिना सारा जगत् प्रपंच (धंधे) में (फँसा) है । यदि इस भोले (मूर्ख) (जगत्) को बहुत समझाया भी जाय, तो भी यह निपट ग्रंथा ही बना रहता है, (और कुछ नहीं समझता) ॥१॥ रहाउ ॥

(चाहे) लाखों प्राप्त किए जायें, लाखों संग्रह किए जायें, लाखों खाए जायें, लाखों अर्घ्य और लाखों जायें, किन्तु यदि पति (परमात्मा) के लेखे में (तुम) नहीं आते, तो (तुम्हारा) जीव (न मालूम) किधर फिर कर पड़ता रहेगा ॥२॥

(चाहे) लाखों शास्त्र समझते रहे, पंडितगण लाखों पुराण (आदि धार्मिक ग्रन्थ) पढ़ते रहें, (किन्तु) यदि (वे) पति-परमात्मा के लेखे में नहीं आते, तो सभी कुछ अप्रामाणिक ही हैं ॥३॥

कर्तार के नाम की कृपा से (उसके) सच्चे नाम (की प्राप्ति होती है) और इसी के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । नानक कहते हैं कि (जब नाम) अर्हनिश हृदय में आ बसता है, तो उसकी कृपा से (शिष्य अथवा साधक) (संसार-सागर से) पार हो जाता है ॥४॥१॥३१॥

[३२]

दीया मेरा एक नामु बुलु बिचि पाइया तेलु ।
 उनि जानसि ओहू लोखिआ भूका जम सिउ मेनु ॥१॥
 लोका मत को फकड़ि पाइ ।
 लख मड़िया करि एकठे एक रती ले भाहि ॥१॥रहाउ॥
 पिनु पतलि मेरी केसउ किरिया सनु नामु करताक ।
 एये ओये आये पाखे ऐहू मेरा आघारु ॥२॥
 गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राउ ।
 सचा नावरु तां थोए जां अहिनिनि लागे भाउ ॥३॥
 इक लोकी होर छमिछरी बाहमरु वटि पिनु खाइ ।
 नानक पिनु बखसोस का कबहु निखूटसि नाहि ॥४॥२॥३२॥

एक (परमात्मा) का नाम ही मेरा दीपक है, इसमें दुःख (रूपी) तेल पड़ा है ।
 (नाम रूपी दीपक के) उस प्रकाश ने (दुःख रूपी) उस तेल को सोख लिया है, और यमराज
 से मिलाप होना भी समाप्त हो गया है ॥१॥

लोगो, (मेरे विश्वास की) बदनामी मत उड़ाओ । जिस प्रकार लाखों लकड़ियों के
 ढेर को आग की एक चिनगारी नष्ट कर देती है, (उसी प्रकार एक नाम पापो की राशि को
 दग्ध कर देता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

केशव ही (मेरे आद) के पिण्ड और पतल हैं और कर्तार का सच्चा नाम ही
 (मरणोपरान्त की) क्रिया है । इस स्थान पर (इस लोक में), उस स्थान पर (परलोक में),
 आगे तथा पीछे यही (नाम) मेरा आघार है ॥ २ ॥

(हे प्रभु), तुम्हारी स्तुति—प्रशंसा गंगा और बनारस है, आत्मा मे रमण करना ही
 (काशी की गंगा में) स्नान करना है । पवित्र स्नान तभी होता है, जब अहिनिश (परमात्मा
 में) भाव—प्रेम लगा रहे ॥ ३ ॥

एक (पिंड) तो देवताओं (के निमित्त प्रदान किया जाता है) और दूसरा पितरों के
 निमित्त; पिंड बनाने (के पीछे), (अर्थात् पिंडदान और आद कराने के पश्चात्) ब्राह्मण
 भोजन करते हैं । परमात्मा की कृपा का (जो) पिंड है (वह) कभी नहीं समाप्त होता
 है ॥ ४ ॥ २ ॥ ३२ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, घर ४, महला १

[३३]

देवतिआ बरसन के ताई बूख भूख तीरथ कीए ।
 जोगी जती जुगति महि रहते करि करि भगवे भेल भए ॥१॥

तउ कारणि साहिबा रंगि रते ।

तेरे नाम भनेका रूप अनन्ता कहणु न जाहो तेरे गुण केते ॥१॥ रहाउ ॥

वर घर पहला हुसती छोड़े छोड़ि बिलाइति बेस गए ।

पीर पेकाबर सालिक सालिक छोड़ी दुनीया याइ पउ ॥२॥

साद सहज सुख रस कस तजीअसे कापड़ छोड़े चमड़ लीए ।

दुखीऐ दरदबंद वरि तेरे नामि रते बरबेस भए ॥

खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी लिखा सुतु धोती कीन्ही ।

तूं साहिबु हउ सांगी तेरा प्रणवै नानक जाति कैसी ॥४॥१॥३३॥

(हे प्रभु), देवताओं ने (तेरे) दर्शन के निमित्त, दुःख और भूख (सहकर) तीर्थों का निर्माण किया । योगी और यती (अपनी-अपनी) युक्ति में रह कर भगवे वेश (धारण) कर-कर भ्रमण करते-रहते हैं ॥ १ ॥

हे साहब, तेरे ही कारण (वे) प्रेम में रंगे हुए (भ्रमण करते हैं) । (हे प्रभु), तेरे नाम धनेक है, (तेरे) रूप अनन्त हैं और तेरे गुण कितने हैं, (उनका) कथन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(त्यागी लोग) (अपना) स्थान, घर महल, हाथी, घोड़े छोड़ कर (अपने) बादशाह (परमात्मा) के देश में चले गए । [विलाइत अरबी, = पानशाह का मुल्क] । पीर, पैगम्बर मार्ग-प्रदर्शक तथा परमात्मा की स्तुति करनेवाले दुनिया छोड़कर (प्रभु के) स्थान में स्वीकार किए गए ॥ २ ॥

(उन्होंने) स्वाद, स्वाभाविक सुख, कसैला आदि (छः रसों) का त्याग कर दिया है, वस्त्र त्याग कर मृगचर्म (धारण कर) लिया है; (वे) दुःख और दर्द में तेरे दरवाजे पर खड़े हैं, तथा (तेरे) नाम में अनुरक्त होकर दरवेश हुए हैं ॥ ३ ॥

खाल धारण करने वाले, खप्पर में भिक्षा लेने वाले, दण्डधारी (संन्यासी), मृगचर्म का प्रयोग करने वाले (यती), शिखा, सूत्र (यज्ञोपवीत) और धोती पहनने वाले (वंछित गण) (परमात्मा की प्राप्ति के लिए) स्वांगधारी बनते हैं । नानक कहते हैं (हे प्रभु), तू मेरा साहिब है और मैं तेरा स्वांगी हूँ । (तेरी प्राप्ति के निमित्त जातियों के पृथक् पृथक् वेश और चिह्न हैं, किन्तु इन वेशों में और चिह्नों से किसी जाति को ऊंचाई और निचाई नहीं सिद्ध होती है) । (अतः) (हे प्रभु), जाति कैसी है ? ॥ ४ ॥ १ ॥ ३३ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, घर ५, महला १

[३४]

भीतरि पंच गुपत मनि बासे । धिरु न रहहि जेसे भबहि उवासे ॥१॥

मनु मेरा बड़बाल सेती धिरु न रहै ।

लोभो कपटी पापी पाबंड़ी माइआ अधिक लगे ॥१॥ रहाउ ॥

कुल माला घलि पहिरजगी हारो ।

मिलैया प्रीतसु तब करजगी सीगारो ॥२॥

पंच सखी हम एक भतारो । पेड़ लगी है जोघड़ा चालणहारो ॥३॥

पंच सखी मिलि रुनु करेहा । साहु पजुता प्रवणति नानक लेखा बेहा ॥४॥१॥३४॥

(हमारे) भीतर पंच कामादिक मन में (चोर की भाँति) गुप्त बसे रहते है । ये स्थिर नहीं रहते, ये (सदैव संसार से) विरक्त (पुरुष) की भाँति भ्रमण करते रहते है ॥ १ ॥

मेरा मन दयालु (परमात्मा) से स्थिर नहीं रहता । (यह मन) लोभी, कपटी, पापी, पाखण्डी है और माया में सदैव लगा रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं अपने) गले में फूलों की माला तथा (रत्नों का) हार पहनूँगी; मेरा प्रियतम जब मिलेगा, तब (इसी प्रकार अन्य) शृङ्गार भी कळंगी ॥ २ ॥

(मेरे) पाँच सखियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) है और एक पति (जीव) है । प्रारम्भ से ही (यह बात) चली आ रही है कि जीव चलनेवाला है ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि जब जीवात्मा लेखा देने के लिए एकड़ा गया, तो पाँचों सखियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) मिलकर रुदन करने लगेंगी ॥ ४ ॥ १ ॥ ३४ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा, महला १, घर ६ ॥

[३५]

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी ।

लिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रावै लाल पिमारी ॥१॥

लाल बहु गुणि कामणि मोही । तेरे गुण होहि न अवरौ ॥१॥रहाउ॥

हरि हरि हारु कंठि ले पहिरै दामोदरु दंतु लेई ।

करि करि करता कंगन पहिरै इन बिधि चितु धरेई ॥२॥

मधुसूवनु कर सुंदरी पहिरै परमेसरु पटु लेई ।

धीरतु धड़ी बंधावै कामणि खीरंगु सुरमा बेई ॥३॥

मन मंदरि जे दीपकु जाले काइप्रा सेज करेई ।

पिग्नान राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई ॥४॥१॥३५॥

स्वास रूपी सूत के धागे से मन रूपी मोती को (गूँथ) कर गहना बनाया जाय (और उसे पहना जाय) (अर्थात् स्वास-स्वास से परमात्मा का जप किया जाय) । क्षमा का शृंगार (बना कर) खी उसे (अपने) शरीर पर धारण करे, (तो वह प्रियतम की) प्यारी (बनती है) (और अपने) लाल के साथ रमण करती है ॥ १ ॥

लाल के बहुत से गुणों पर खी मोहित होती है । (हे प्रियतम), तेरे गुण और किसी में नहीं हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री) 'हरी-हरी' (के नाम को) कंठ का हार (बनावे) और उसे लेकर पहने, 'दामोदर' (के नाम का) दल-मंजन बनावे, हाथ के निमित्त कंगन 'कर्ता' को बना कर पहने; इस विधि से (अपना बंचल मन) (नाम में) टिकावे ॥ २ ॥

(बहु जीवात्मा रूपी स्त्री) 'मधुसूदन' को हाथ की मुंदरी (बना कर) पहने और 'परमेश्वर' के पट (रेशमी वस्त्र) को ग्रहण करे; स्त्री 'धैर्य' को धड़ी (माँग की पट्टी) (बना कर) गूँथे, 'श्रीरंग' (के नाम का) 'सुरमा' (नेत्रों में लगावे) ॥ ३ ॥

यदि (वह) (अपने) मन-रूपी मंदिर में (विवेक का) दीपक जलावे और अपनी कोयल को (प्रियतम के मिलने की) सेज बनावे और जब ज्ञान के राजा (परमात्मा) उसकी सेज पर आवें, तभी (वह) (प्रियतम के साथ) रमण कर सकती है ॥ ४ ॥ १ ॥ ३५ ॥

[३६]

कोता होबे करे कराइआ तिसु किआ कहीऐ भाई ।

जो कसु करणा सो करि रहिआ कोते किआ चतुराई ॥१॥

तेरा हुकमु भला तुषु भावै ।

नानक ताकउ मिले बडाई सच्चे नामि समावै ॥१॥रहाउ॥

किरतु पइआ परवाणा लिखिआ बाहुड़ि हुकमु न होई ।

जैसा लिखिआ तैसा पड़िआ मेटि न सकै कोई ॥२॥

जे को दरगह बहुता बोले नाउ पवै बाजारी ।

सतरंज बाजो पकै नाही कचो भावै सारी ॥३॥

ना को पड़िआ पंडितु बोना ना को मूरखु भंडा ।

बंदो श्रंदरि सिकति कराए ता कउ कहीऐ बंडा ॥४॥२॥३६॥

(जीव) (परमात्मा का ही) किया हुआ है और उसी का कराया करता है, (अतः) है भाई, (उस परमात्मा की रचना के संबंध में) क्या कहा जाय ? जो कुछ (जीव को) करने को है, (वही वह) करता है । किए हुए कार्य को करने में (निमित्त बन जाने में) (जीव की) क्या चतुराई है ? ॥ १ ॥

(हे प्रभु), तेरा हुकम भला है, (क्योंकि इसका मानना) तुझे अच्छा लगता है । नानक कहते हैं कि (जो प्रभु का हुकम मानता है), उसी को बड़ाई मिलती है और वह सच्चे नाम में समाहित हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) तुम्हारे परवाने (हुकम) के लिखने (के अनुसार) (हम जीवात्माओं की) किरत निर्मित होती है । [विशेष : 'किरति' पूर्वजन्म के किए हुए कर्मों के अनुसार परमात्मा के विधान के अनुसार कर्मों का संस्कार बनना 'किरत' कहलाता है ।] फिर कोई हुकम नहीं होता है । जैसा लिखा रहता है, वही धटित होता है; कोई उसे मेट नहीं सकता है ॥ २ ॥

यदि कोई (परमात्मा के) दरवाजे पर बहुत बोलता है, तो उसका नाम 'बाजारी' पड़ जाता है । [बाजारी = बाजार में इधर-उधर भटकने वाला, भोंदू, गंवार] । (जीव रूपी) शतरंज की गोटे (ठीक से बिछी नहीं रहती), शतएव (बाजी) सिद्ध नहीं होती, वह कच्ची ही रहती है ॥ ३ ॥

न कोई पढ़ा हुआ पंडित और बुद्धिमान है और न कोई भूर्ख और बुरा है । (जिससे प्रभु) सेवा भाव में (रख कर) अपनी स्तुति कराता है, (वही) (वास्तविक) बन्दा (सेवक) है ॥ ४ ॥ २ ॥ ३६ ॥

[३७]

गुरु का सबकु मने महि सुंदा लिखा लिखा हवाबउ ।
जो किछु करै भला करि मानउ सहज जोग निधि पाबउ ॥ १ ॥
बाबा जुगता जीउ जुगह जुग जोगी परम तंत महि जोगं ।
अमृत नामु निरंजनु पाइआ गिआन काहआ रस भोगं ॥ १ ॥ रहाउ ॥
सिख नगरी महि आसनि बैसउ कल्प तिआगी बावं ।
सिखी सबकु सवा पुनि सोहै अहिनिनि पूरै नावं ॥ २ ॥
पतु बीचारु गिआन भति डंडा बरतमान बिभूतं ।
हरि कीरति रह्रासि हमारी गुरुमुखि पंथु अतीतं ॥ ३ ॥
सगली जोति हमारी संभिआ नाना बरन अनेकं ।
कहु नानक सुनि भरघरि जोगी पारब्रह्म लिव एकं ॥ ४ ॥ ३ ॥ ३७ ॥

(हे योगी), गुरु के शब्द को मन में (बसाना ही) मेरी मुद्रा है और (मैं) क्षमा को कंधा (के रूप में) बरतता हूँ । “ (परमात्मा) जो कुछ करता है, उसे भला करके मानना ही ” (मेरा) सहज योग है, (और इसी योग के द्वारा) (अलौकिक) निधि प्राप्त करता हूँ ॥ १ ॥

हे बाबा (जो) जीव (परमात्मा से) युक्त है, (वह) गुण-गुणान्तरो से योगी है, (क्योंकि) उसका योग परम तत्त्व (हरी) से हुआ है । उसने निरंजन (माया-रहित) के अमृतवत् नाम को प्राप्त कर लिया है, ज्ञान ही उसे शरीर में (अमृत) रस के आस्वादन (की प्रतीति कराता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) शिव नगरी (आत्म-स्वरूप) में आसन लगा कर बैठता हूँ; (और सारी) कल्पनाओं तथा वादविवाद—भगड़ों को (मैंने) त्याग दिया है । (गुरु का) शब्द (मेरे लिए) शृङ्गी की शाश्वत ध्वनि है; (यह) सुहावना और पूर्णनाद अहनिश होता रहता है ॥ २ ॥

विचार ही (मेरा) खप्पर है, ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की बुद्धि (वृत्ति) मेरा डंडा है, (परमात्मा की सर्वत्र) विद्यमान समझना यही मेरी विभूति है । हरि की कीर्ति का गान हमारी मर्यादा (प्रथा, रीति, प्रणाली अथवा परम्परा) है तथा (माया से) अतीत अथवा परे रहना ही गुरुमुखों का पंथ है ॥ ३ ॥

नाना वणों और अनेक (रूपों) में (जो परमात्मा की) सर्वव्यापिनी ज्योति है (वही) हमारी अघारी है । [विशेष :—अघारी = योगी मेरुदण्ड को सीधा रखने के लिए लकड़ी की बनी हुई इसी वस्तु विशेष का सहारा लेते हैं । इसे हाथों से पकड़ कर मेरुदण्ड को सीधा रखते हैं । शरीर के थकने पर यह विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती है ।] नानक कहते हैं, ‘ हे भरघरी सुनो, (वास्तविक) योगी (वही) है जो परब्रह्म में एकनिष्ठ ध्यान (लगाता है) । ॥ ४ ॥ ३ ॥ ३७ ॥

[३८]

गुड़ करि पिघातु पिघातु करि घावे करि करणी कसु पाईए ।
 भाठी नवनु प्रेम का पोचा इतु रति भ्रमिउ चुझाईए ॥१॥
 बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीबै सहज रंग रवि रहिया ।
 अहिनिशि बनी प्रेम लिब लागी सबहु अनाहद रहिया ॥१॥ रहाउ ॥
 पूरा सासु पिघाला सहजे तिसहि पिघाए जा कउ नदरि करे ।
 भ्रमृत का बापारी होबै किआ मदि छुछै भाउ धरे ॥२॥
 गुर की साखी भ्रमृत बाणी पीवत ही परबाणु भइआ ।
 दर दरसन का प्रीतमु होबै मुकति बैकुण्ठे करै किआ ॥३॥
 सिफतो रता सब बैरागी जूऐ जनमु न हारै ।
 कहु नानक सुनि भरधरि जोगी खोबा भ्रमृत धारै ॥४॥ ४॥ ३८॥

(परमात्मा के) ज्ञान को गुड़ बनाओ, ध्यान को महुआ और शुभ करणी को बबूल की छाल—(इन सब को एक में) मिला दो । श्रद्धा (भवनु < भावनी = श्रद्धा) को भट्ठी और प्रेम को पोचा [पोचा = भाप ठंडी रखने के लिए भर्क निकालनेवाले पात्र के ऊपरी भाग में गीली मिट्टी और गीले कपड़े लपेट देते हैं] बनाओ; (इस प्रकार) भ्रमृत रस (वाली मदिरा) चुवाओ ॥ १ ॥

हे बाबा, नाम रूपी रस पीकर मन मतवाला हो जाता है और सहजावस्था के रंग में वह रंग जाता है । अर्धनिश प्रेम की लिब (एकनिष्ठ धारणा) लग गई है, (और मन ने) अनाहद शब्द को ग्रहण कर लिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिसके ऊपर (प्रभु) कृपादृष्टि करता है, उसी को पूर्ण सत्य का प्याला सहज भाव से पिलाता है । (जो) भ्रमृत (मदिरा) का व्यापारी होता है, (वह) तुच्छ (सासारिक) मद से क्यों प्रेम (भाउ = भाव) करे ? ॥ २ ॥

गुरु की शिक्षा भ्रमृत-वाणी है, (उसके) पीते ही (शिष्य) प्रामाणिक हो जाता है । (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) दरवाजे पर (उसके) दर्शन का प्रेमी होता है वह मुक्ति और बैकुण्ठ क्या करेगा ? [विशेष : देखिए—“हरी दरसन के जन मुकति न माँगहि” श्री गुरु ग्रंथ साहिब, कलिप्रदान, महला ४, पृष्ठ १३२४] ॥ ३ ॥

(जो परमात्मा की) स्तुति में रत है, वह सदैव बैरागी है, (वह जीवन रूपी) जूए की बाजी में (अपना) जन्म नहीं हारता है । नानक कहते हैं कि (हे) भरधरी, मुनो, (नाम रूपी) भ्रमृत को धार में योगी मस्त (हो जाता है) ॥ ४ ॥ ४ ॥ ३८ ॥

[३९]

खुरासान खसबाना कीआ हिबुसतानु उराइआ ।
 आप दोसु न बेई करता जसु करि सुगलु चड़ाइआ ॥
 एती मार पई करलाएँ तैं की बरबु न आइआ ॥१॥
 करता तू सजना का लोई ।
 जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई ॥१॥ रहाउ ॥

सकता सौहु मारे पै बगै खसमै सा पुरसाई ।
 रतन बिगाड़ि बियोए कुतीं मुइआ सार न काई ।
 आपे जोड़ि बिछोड़े आपे बैलु तेरी बडिआई ॥२॥
 जे को नाउ घराए बडा साव करे मनि माए ।
 खसमै नबरी कीड़ा आवै जेते सुगै दस्ये ॥
 मरि मरि जीवै ता किछु पाए नानक नामु बख्साए ॥३॥५॥३६॥

विशेष :—बाबर ने १५२१ ई० में ऐमनाबाद पर आक्रमण किया और उसे नष्ट-
 भ्रष्ट कर दिया। गुरु नानक देव ने इस आक्रमण को स्वयं अपनी आँखों से देखा था। निम्न-
 लिखित पद में उसी का संकेत है —

अर्थ :—(हे परमात्मा), (बाबर ने खुरासान पर शासन किया), किन्तु खुरासान को
 (तो अपना समझ कर) (तूने) बचा रक्खा और (बेचारे) हिन्दुस्तान को (बाबर के आक्रमण
 के द्वारा) आतङ्कित किया। हे कर्ता, (तू इन सब खेलों का जिम्मेदार है), पर अपने
 ऊपर दोष न लेने के लिए मुगलों को यम रूप में बना कर हिन्दुस्तान पर आक्रमण कराया।
 इतनी मार-काट हुई (कि लोग) कष्टना से चिल्ला उठे, (किन्तु हे प्रभु), तुझे क्या (जरा भी)
 दर्द नहीं उत्पन्न हुआ ? ॥ १ ॥

(हे स्वामी), तू तो सभी का कर्ता है, (केवल मुगलों का ही नहीं, हिन्दुओं का भी
 है)। यदि (कोई) शक्तिशाली (किसी) शक्तिशाली को मारता है, तो मन में क्रोध नहीं
 उत्पन्न होता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पर यदि शक्तिशाली सिंह (निरपराध) पशुओं के झुण्ड पर (आक्रमण कर) उन्हें
 मारता है, (तो उन पशुओं के) स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिए। [यहाँ निरपराध
 पशुओं से तात्पर्य निरीह प्रजा से है और उनके स्वामी का अभिप्राय लोदी-पठान शासकों से है]
 इन पठान कुत्तों ने हीरे (के समान हिन्दुस्तान) को बिगाड़ कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है
 [तात्पर्य यह कि पठान शासक मुगलों के सामने अड़े नहीं, और हिन्दुस्तान ऐसा बहुमूल्य देश
 ऐसे ही गंवा बैठे]। उनके मरने के पश्चात्, इनको कोई खोज-खबर नहीं करता। (इस प्रकार)
 (हे प्रभु), (तू) स्वयं ही मिलाना है और (फिर तू ही) वियोग भी कराता है (इन सब
 संयोग और वियोग से खेलों में) अपनी बड़ाई (आप ही) देखता है ॥ २ ॥

यदि कोई अपना बड़ा नाम रखता है और मन में बड़े स्वाद का अनुभव करता है,
 किन्तु खमम—पति (परमात्मा) की दृष्टि में वह निरा कीड़ा है जो दाँत छुगता फिरता है।
 बार-बार (ग्रहंभाव से) मर कर जीवित हो, तभी (कोई) कुछ पा सकता है। 'नामक' नाम
 की प्रशंसा करता है ॥ ३ ॥ ५ ॥ ३६ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु आसा, महला १, घर २ ॥

असटपदीआ

[१]

उतरि अबघटि सरबरि रहै । बकै न बोले हरिगुल गावै ॥

जसु आकासी सुनि समावै । रसु सतु भोनि महा रसु पावै ॥१॥

ऐसा गिघानु सुनहु अम मोरे । भरिपुरि बारि रहिआ सभ ठरे ॥१॥ रहाउ ॥
 सनु बनु नेमु न कासु संतावे । सतिगुर सबदि करोसु जलावे ॥
 गगनि निवासि समाधि लगावे । पारसु परसि परसु पदु पावे ॥२॥
 सनु मन कारणि तनु बिलोवै । सुभर सरवरि मैलु न धोवै ।
 जे सिउ राता तैसो होवै । आपे करता करे सु होवै ॥३॥
 गुर हिव सीतलु अगनि बुझावे । सेवा सुरति बिभूति चड़ावे ।
 वरलनु आपि सहज धरि आवे । निरमल बाणी नादु बजावे ॥४॥
 अंतरि गिघानु महा रसु सारा । तीरथ भजनु गुर बीचारा ॥
 अंतरि राजा थानु मुरारा । जोती जोति मिलाबणहारा ॥५॥
 रसि रसिआ मति एकै भाइ । तजत निवासो पंच समाइ ॥
 कार कमाई कसम रजाइ । अविगत नामु न लखिआ जाइ ॥६॥
 जल महि उपजै जल ते दूरि । जल महि जोति रहिआ भरपूरि ॥
 किसु नेहै किसु आखा दूरि । निधि गुण गावा देखि हदूरि ॥७॥
 अंतरि बाहरि अवरु न कोइ । जो तिसु भावै सो फुनि होइ ॥
 सुरि भरपरि नानक कहै बीचारु । निरमल नामु मेरा आचारु ॥८॥१॥

(योगी विषयो की) दुर्गम घाटी से उत्तर कर (सत्संग के) सरोवर में स्नान करे । (वह) न कुछ बके, न बोले, (मौन होकर) हरि का गुणगान करता रहे । (जिस प्रकार) जल आकाश-मण्डल में समाया रहता है, (उसी प्रकार) (योगी) अफुर ब्रह्म धून्य-पण्डल) में समाया रहें । सच्चे (नाम रूपी) रस को मथ कर महा आनन्द को प्राप्त करे ॥ १ ॥

ऐ मेरे अन्तःकरण, ऐसे ज्ञान को सुनो । (हरी) सभी स्थानों में परिपूर्ण है (और सब को) धारण कर रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि कोई साधक) सत्य (परमात्मा) को व्रत-नियम करके (धारण कर ले), (तो उसे) काल संताप नहीं देता । सद्गुरु के शब्द द्वारा (वह साधक) कोष को भी जला दे और दशम द्वार के निवास स्थान में (सहज) समाधि लगा कर बैठ जाय । (इस प्रकार) (गुरु रूपी) पारस मणि का स्पर्श करके परम पद को प्राप्त करे ॥ २ ॥

(साधक) मन की परम शान्ति और सुख के लिए (परम) तत्त्व (परमात्मा) का मंथन करे, परिपूर्ण सरोवर में (अपने को) इस प्रकार धोवे कि (रंजमात्र) मेल न रहे, जिस (प्रभु) से प्रेम करता है, (उसी के) समान हो जाय, (वह परमात्मा की मर्जी के ऊपर अपने को छोड़ दे और यह समझे कि) जो कुछ कर्तार करता है, (वही) भला है ॥ ३ ॥

गुरु बर्क (के समान) शीतल है, (साधक उसकी शीतलता में अपनी त्रिविध) अग्नि (देहिक, देविक एवं भौतिक तापो) को बुझा दे । सेवा की वृत्ति को विभूति (बनाकर शरीर पर) लगावे । (तीनों गुणों को लींच कर) अपनी सहजावस्था के धर में आना ही (उसका) दर्शन हो । पवित्र (परमात्मा की कीर्ति का) वांछी (द्वारा गुणगान करना) (शृङ्गी) बजाने का नाद हो ॥४॥

आन्तरिक ज्ञान का होना ही महान रस का तत्त्व हो तथा गुरु (के वचनों पर) विचार ही तीर्थस्थान हो । (मन) के अन्तर्मत मुरारी (परमात्मा) का निवास स्थान है, (इसी को समझना) (वास्तविक) पूजा है । (परमात्मा की) ज्योति के साथ (अपनी) ज्योति मिला देना (वास्तविक योग है) ॥५॥

बुद्धि में एक भाव का होना ही रस में अनुरक्त होना है । वह श्रेष्ठ पुरुष तत्त्व पर बैठने वाले (राजा—परमात्मा) में समा जाता है । वह स्वामी के आज्ञानुसार कर्म करता है । अव्यक्त (परमात्मा), (जो सभी का) नाथ (स्वामी है) देखा नहीं जा सकता है ॥६॥

(जिस प्रकार) जल में उत्पन्न होकर भी कमल जल में निलिप्त रहता है, (उसी प्रकार) (संसार-रूपी) जल में (परमात्मा की) ज्योति है (और वह सर्वत्र परिपूर्ण और निलिप्त है) । (अतएव) मैं कैसे कहूँ (कि फला व्यक्ति) (परमात्मा के) समीप है और (फला व्यक्ति) (परमात्मा से) दूर है, (फला व्यक्ति अच्छा है और फला बुरा है) ? (मैं तो उस गुणों के भाण्डार परमात्मा को) सर्वत्र विराजमान देख कर उसका गुणगान करता हूँ ॥७॥

भीतर और बाहर (उस परमात्मा को छोड़ कर) और कोई नहीं है; जो उसे अच्छा लगता है, वही फिर होता है । ऐ भरथरी (योगी), सुनो, नानक विचार (की बातें) कह रहा है कि (प्रभु का) निर्मल नाम ही मेरा (नानक का) आधार है ॥८॥॥

[२]

सभि जप सभि तप सभ चतुराई । ऊरुहि भरमे राहि न पाई ॥
बिनु बूझे को खाइ न पाई । नाम बिहारी माये छाई ॥१॥
साच धणी जगु भ्राइ बिनासा । छूटसि प्राणी गुरमुखि दासा ॥१॥रहाउ॥
जगु मोहि बाधा बहुती आसा । गुरमती इकि भए उदासा ॥
अंतरि नामु कमलु परमासा । तिन्ह कउ नाही जम की त्रासा ॥२॥
जगु त्रिध जितु कामण हितकारी । पुत्र कलत्र लगि नामु बिसारी ॥
बिरया जनमु गवाइआ बाजी हारी । सतिगुरु सेवे करणी सारी ॥३॥
बाहरहु हउमै कहै कहाए । अंदरहु मुकतु लेपु कदे न लाए ।
माइआ मोहु गुरसबदि जलाए । निरमल नामु सद हिरदै धिआए ॥४॥
धाबतु राखै ठाकि रहाए । सिल संगति करमि मिलाए ।
गुर बिनु भूलो आबै जाए । नदरि करे संजोगि मिलाए ॥५॥
रूढ़ो कहउ न कहिआ जाई । अकथ कथउ नह कीमति पाई ॥
सभ दुख तेरे सुख रजाई । सभि दुख भेटे साचै नाई ॥६॥
कर बिनु बाजा पग बिनु ताला । जे सबबु बुझै ता सबु निहाला ॥
अंतरि सासु सभे सुख नाला । नदरि करे राखे रखवाला ॥७॥
त्रिभरण सूझै आनु गवावे । बाणी बूझै सचि समावे ॥
सबबु बीचारे एक लिब तारा । नानक धंतु सवारण हारा ॥८॥२॥

सारे जप, सारे तप तथा सारी चतुराईयाँ (बिना भगवद्भक्ति के व्यर्थ हैं) । (उन सब के आचरण से परमात्मा की प्राप्ति ठीक उसी भाँति नहीं होती, जिस भाँति) उजाड़ स्थान

में भटकने से मार्ग की प्राप्ति नहीं होती । बिना (परमात्मा को समझे हुए) कोई भी (वास्तविक) स्थान नहीं पाता है । नाम के बिना मत्थे में राख पड़ती है ॥१॥

सत्य (परमात्मा ही) धनी है—शाश्वत है, जगत् तो उत्पन्न और विनष्ट होता रहता है । प्राणी गुरु के द्वारा सेवक बन कर मुक्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

जगत् मोह में बंध कर बहुत आशाएं (करता है) (परन्तु) कुछ लोग गुरु की शिक्षा द्वारा (जगत् से) उदासीन—विरक्त हो जाते हैं । (ऐसे लोगों के) हृदय में नामरूपी कमल विकसित हुआ है और उन्हें यम का भय नहीं रहता है ॥२॥

संसार ज्जी के द्वारा जीता गया है (और) वह स्त्री का ही प्रेमी है । पुत्र, कलत्र के निमित्त उसने नाम को भुला दिया है । (इन प्रपंचों में पड़ कर उसने) व्यर्थ ही जन्म गंवा दिया और (जीवन रूपी) बाजी हार गया । (शिष्य) सद्गुरु की आराधना करे, तभी करनी उत्पन्न होती है ॥३॥

(सद्गुरु की आराधना करनेवाला व्यक्ति) बाह्य (व्यवहारों में) अहंकार करता-कराता (सा प्रतीत होता है) । (किन्तु) भीतर से वह अहंकार-विहीन होने के कारण) मुक्त है (और) कभी लिपायमान नहीं होता है । (वह) माया और मोह की गुरु के शब्द द्वारा जला देता है और (परमात्मा का) निर्मल नाम सदैव (अपने) हृदय में ध्यान करता है ॥४॥

(जो व्यक्ति) (मन को विषयों से) दौड़ने से रोक रखते हैं, ऐसे सिक्खों की संगति (परमात्मा की) बड़ी कृपा से ही मिलती है । (मनुष्य) गुरु के बिना (इस संसार में) भटकता रहता है (और बारंबार इस जगत्) में आता-जाता रहता है । (परमात्मा) कृपा करके संगी से (अपने में) मिला लेता है ॥५॥

(मैं) सुन्दर (हरी का) वर्णन करना (चाहता) हूँ, (पर) कर नहीं पाता । अकथनीय (परमात्मा) को कहना (तो अवश्य चाहता) हूँ, (पर) उसकी कीमत नहीं पा सकता हूँ । (हे प्रभु), समस्त दुःख तेरी आज्ञा मानने से सुख (हो गए), सच्चे नाम ने समस्त दुःखों को मिटा दिया ॥६॥

यदि (किसी की) नाम की समझ आ जाय, (तो) सबकुछ ही (वह) निहाल हो जाता है । (वह आंतरिक संगीत में निमग्न हो जाता है), (उसे) हाथों के बिना बाजा बजता हुआ (प्रतीत होता है) और पैरों के बिना पूरी ताल (की अनुभूति होती है) । (जिसके) अंतःकरण में सत्य (परमात्मा) है, (उसके) साथ सारे सुख हैं । रक्षक (प्रभु) (उसके ऊपर) कृपा-दृष्टि करके (सदैव) (उसकी) रक्षा करता है ॥७॥

(यदि कोई अपने) आपेपन को गंवा दे, (तो) त्रिभुवन की समझ आ जाती है । (यदि) (गुरु की) वाणी समझने लगे, तो (वह) सत्य (परमात्मा) में समा जाय । (जो) एकनिष्ठ ध्यान से (गुरु के) शब्द को विचारता है, (ऐसे गुरुमुख को सँवारने वाला (हरी) धन्य है ॥८॥२॥

[३]

लेख असंख्य लिखि लिखि मानु । मनि मानिए सनु सुरति वखानु ॥

कथनी बवनी पड़ि पड़ि भरु । लेख असंख्य अलेखु अघारु ॥१॥

ऐसा साचा तू एको जायु । जंमयु मरणा हुकसु पछायु ॥१॥ रहाउ ॥
 माइआ मोहि जगु बापा जमकालि । बांघा छूटे नामु सम्हालि ॥
 गुरु सुखदाता अवरु न भालि । हलति पलति निबही तुघु नालि ॥२॥
 सबधि भरै तां एक लिव लाए । अचरु चरै तां भरसु चुकाए ।
 जीवन मुक्ति ननि नामु बसाए । गुरुमुखि होइ त सचि समाए ॥३॥
 जिनि अरि साजी गगनु अकासु । जिनि सभ थापी थापि उधापि ॥
 सरख निरंतरि आपे आपि । किसै न पूछे बल्लसे आपि ॥४॥
 तू पुरु सागर माएकु हीरु । तू निरमसु ससु गुणी गहीरु ॥
 तुघु मानै भेटै गुर पीरु । एको साहिबु एकु बजीरु ॥५॥
 जगु बंदी मुकते हउ मारी । जगि गिरानी बिरला आचारी ॥
 जगि पंडितु बिरला बीचारी । बिनु सतिगुरु भेटे सब फिरै अहंकारी ॥६॥
 जगु बुझीआ सुखीआ जनु कोइ । जगु रोगी भोगी गुण रोइ ॥
 जगु उपजै बिनसै पति खोइ । गुरुमुखि होबै बूझै सोइ ॥७॥
 महयो मोलि भारि अफारु । अटल अछसु गुरमती धारु ॥
 भाइ मिलै भावै भइ कारु । नानक नीसु कहै बीचारु ॥८॥ ३॥

(परमात्मा के सम्बन्ध में) असंख्य लेख लिखे गए हैं (और लिखने वाले) जिस लिख कर मान करते हैं । (किन्तु यदि) मन मान जाय (अपनी चंचलता का त्याग करके शान्त हो जाय), तभी सत्य की सुरति (ध्यान) का कुछ वर्णन हो सकता है, (नहीं तो) कथन करना, वर्णन करना, पढ़ना (आदि) (एक प्रकार का) बोझ ही है । (परमात्मा के संबंध में) लेख तो असंख्य हैं, (किन्तु) अपार (हरी) लेखों से परे हैं ॥१॥

ऐसे सच्चे (परमात्मा) को तुम एक ही समझो । जन्म-मरण को (उस प्रभु का) हुक्म ही समझो ॥१॥ रहाउ ॥

माया के मोह एवं काल (रूपा) यम के बंधनों में (समस्त) जगत् बंधा हुआ है । (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) नाम को स्मरण करता है, (वही) बंधनों से छूटता है । सुख का देनेवाला (एक मात्र) गुरु ही है, श्रीरो को मत खोजो । इस लोक और परलोक में (गुरु ही) तुम्हारे साथ निबहेगा (वही सच्चा साथी होगा) ॥२॥

(यदि कोई) (गुरु के) शब्द में (अपने आपेपन से) मरता है, तभी (वह) (परमात्मा के) एकनिष्ठ ध्यान में लग सकता है । (जब कोई) न चलनेवाले (अचर) (परमात्मा) में विचरण करता है, (तभी उसका) अम समास होता है । (वह) मन में नाम बसा कर जीवन्मुक्त (हो जाता है) । (जब कोई) गुरुमुख होता है, तब (वह) सत्य (परमात्मा) में समा जाता है ॥३॥

जिसने धरती, आकाश (आदि को) रचा है, जिसने सब को स्थापित किया है और स्थापित करके (जो) (फिर उन्हें) ढहा देता है, (वह परमात्मा) अपने आप ही सभी के अंतर (व्यास हो रहा है) । वह किसी से पूछता नहीं, (स्वयं ही) (सब को) देता है ॥४॥

(हे हरी), तू ही पूर्ण सागर है, तू ही माणिक, हीरा है । तू ही निर्मल, सच्चा और बुद्धि से गंभीर है । (जो व्यक्ति) गुरु-परी का दर्शन करता है, वही सुख पाता है (और उसे

ही यह बोध होता है कि) (वही परमात्मा) साहब है और वही बजोर है, (अर्थात् वही प्रभु स्वयं ही सब कुछ है) ॥५॥

संसार बंदी (के समान) है, (जिन्होंने) अहंकार को मारा है, (वे ही) मुक्त हैं । जगत् में (वाचक) जानी (तो बहुत से हैं), (किन्तु उस ज्ञान पर वास्तविक) आचरण करने वाला कोई बिरला ही है । जगत् में पंडित (तो बहुत से हैं), (किन्तु) विचारवान (पंडित) कोई बिरला ही है । बिना सद्गुरु के मिले सभी अहंकारी (बन कर) फिरते रहते हैं ॥६॥

(सारा) जगत् दुःखी है, कोई बिरला ही पुरुष सुखी है । (समस्त) जगत् रोगी और भोगी है और गुणो (त्रिगुणात्मक गुण—सत्व, रज, तम) में रोता रहता है । (इस प्रकार) प्रतिष्ठा खोकर जगत् उपजता-बिनसता रहता है । जो गुरु द्वारा दीक्षित होता है, वही (इसके रहस्य) को समझता है ॥७॥

(हरी) कीमत में (बहुत) मंहगा है और (उसका) वजन बहुत अधिक है । (वह) घटल और अछल है (किन्तु) गुरु की शिक्षा द्वारा धारण किया जा सकता है । वह भाव (प्रेम) के द्वारा मिलता है और (उससे) भय करके किए हुए कार्य (उसे) अच्छे लगते हैं । तुच्छ मानक विचार करके (उपर्युक्त) बातों को कहता है ॥८॥३॥

[४]

एक मरे पंचे मिलि रोवहि । हउमै जाइ सबधि मनु धोवहि ॥
समझि सुनि सहज धरि होवहि । बिनु भूझे सगली पति खोवहि ॥१॥
कउण मरे कउण रोवै ओही । करण कारण सबसै सिरि तोही ॥१॥रहाउ॥
मूए कउ रोवै बुलु कोइ । सो रोवै जिनु बेदन होइ ॥
जिनु बीती जाए प्रभ सोइ । आपे करता करै सु होइ ॥२॥
जीवत मरणा तारे तरणा । जै जगदीस परममति सरणा ॥
हुउ बालहारी सतिगुर चरणा । गुरु बोहियु सबदि भै तरणा ॥३॥
निरमउ आपि निरंतरि जोति । बिनु नावै मृतक जगि छोति ॥
दुरमति बिनसै किआ कहि रोति । जनमि मूए बिनु भगति सरोति ॥४॥
मूए कउ सनु रोवहि मोत । जैगुण रोवहि नीता नीत ॥
बुलु सुलु परहरि सहजि सु चीत । तनु मनु सउपउ कसन परोत ॥५॥
भीतरि एक अनेक असंख । करम धरम बहु संख असंख ॥
बिनु भै भगती जनसु बिरथ । हरि गुण गावहि मिलि परम रंथ ॥६॥
आपि मरे मारे भी आपि । आपि उपाए आपि उधापि ॥
सुसटि उपाई जोती तू जाति । सबदु वीचारि मिलणु नही आति ॥७॥
मृतकु भगनि भलै जगु लाइ । मृतकु जलि थलि सब हो थाइ ॥
नानक मृतक जनमि मरीजै । गुरपरसादो हरि रसु पीजै ॥८॥४॥

एक (मनुष्य) मर जाता है, तो पाँच (सम्बन्धी) मिलकर रोते हैं, (वे पाँच संबंधी हैं—माता, पिता, भाई, स्त्री और पुत्र हैं), [अथवा इसका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—एक मन मर जाता है, तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इस-

लिये रोने लगते हैं कि हमें भोगने वाला मन नहीं रहा । अब हमें कौन भोगेगा] ? उस (व्यक्ति) का अहंकार नष्ट हो जाता है, (जो) (गुरु के) शब्द में (अपने) मलों को धो देता है । (वह) (वास्तविकता को) समझ-बूझ कर (अपने आत्म स्वरूप रूपी) गुरु में निवास करता है । (जो) (वास्तविकता को) नहीं समझते हैं, (वे अपनी) सारी प्रतिष्ठा खो देते हैं) ॥१॥ रहाउ ॥

कौन मरता है ? कौन उसके निमित्त (हाय हाय करके) रोता है ? (हे हरी), सब के ऊपर तू ही करण-कारण है (तू ही सर्व सामर्थ्यवान् है) ॥१॥ रहाउ ॥

मृत (व्यक्ति) के लिए दुःख से कोई ही रोता है । रोता वही है, जिसे (अपना) दुःख होता है । जिसके ऊपर बीतती है, (वही) उस प्रभु को जानता है (और यह अनुभव करता है कि) जो कुछ कर्ता (परमात्मा) करता है, वही होता है ॥२॥

(यदि कोई) जीवित अवस्था में ही (अहंकार भाव से) मर जाता है, (तो वह स्वयं तो) तरता ही है, (दूसरों को भी) तार देता है । (हे) जगदीश, (तेरो) जय हो, (तेरी) शरण में (आने से) परम गति (प्राप्ति होती है) । मैं सद्गुरु के चरणों पर बलिहारी हूँ । गुरु जहाज है; उसके शब्द के द्वारा भाव (मैं)— संसार तरा जाता है ॥३॥

(वह परमात्मा) आप ही निर्भय है; (उसकी) ज्योति (घट घट में) निरन्तर (व्याप्त हो रही है) । बिना नाम के संसार में सूतक और सूत है । दुर्बुद्धि (के कारण) (जगत्) नष्ट होता है, (जब दोष अपना ही है, तब) क्या कह कर रोता है ? बिना भक्ति और श्रवण के लोग) जन्मते मरते रहते हैं ॥४॥

मृत (व्यक्ति) के लिए मित्र ही सचमुच रोते हैं । त्रिगुण में फँस कर तो (लोग) नित्य प्रति रोते रहते हैं । (वास्तव में मनुष्य का लक्ष्य यह होना चाहिए कि (वह) दुःख-सुख त्याग कर सहज भाव से ही सुन्दर चित्तवाला हो जाय । (मैं तो अपना) तन मन परमात्मा की प्रीति में सौंपता हूँ ॥५॥

(सृष्टि में) अनेक और असंख्य (जीव) हैं, (किन्तु उन सब के) भीतर एक (हरी ही) है । उन जीवों के कर्म और धर्म (विभिन्न शास्त्रों एवं मत मतान्तरो के अनुसार) संख्य और असंख्य, (अर्थात् अनन्त) है । (किन्तु) बिना (परमात्मा के) भय और भक्ति के जन्म व्यर्थ ही है । (अतएव) परमार्थी (पुरुष) (परस्पर) मिलकर परमात्मा का गुणगान करते हैं ॥ ६ ॥

(हरी सब कुछ है) (वह) आप ही मरता है और आप ही मारता है । आप ही उत्पन्न करता है, आप ही स्थापित कर के (उसका) संहार भी करता है । (हे प्रभु), तूने ही सृष्टि उत्पन्न की है, तू ही ज्योति (प्रकाश) है (और) तू ही जाति है । (गुरु के) शब्द को विचार कर (परमात्मा से) मेल होता है, नहीं तो भ्रान्ति ही (रहती है), (और उस भ्रान्ति के कारण जीव जगत् में भटकता रहता है) ॥ ७ ॥

(वास्तविक) सूतक [मरगोपरान्त जो सूतक हिन्दुओं के यहाँ माना जाता है] (तृष्णा की) अग्नि है, (जो समस्त) जगत् को भक्षण कर रही है ! (यह सूतक) जल, स्पल और सभी स्थानों में है । नानक कहते हैं (कि उसी सूतक में) (लोग) जन्मते और मरते रहते हैं । गुरु की कृपा से ही (इस सूतक को त्याग कर) हरि-प्रेम का रस पिया जाता है ॥ ८॥४॥

[५]

धातु बीबारे सु परले होरा । एक दृष्टि तारे गुर पूरा ॥
 गुरु भावै मन ते मनु बीरा ॥१॥
 ऐसा साहु सराफी करे । साची नदरि एक निब तरे ॥१॥ रहाउ ॥
 पुंजी नामु निरंजन साह । निरमलु सावि रता पैकार ॥
 सिफति सहज धरि गुरु करतार ॥२॥
 आसा मनसा सबवि जलाए । राम नराइणु कहै कहाए ।
 गुर ते बाट महलु घर पाए ॥३॥
 कंचन काइया जोति अमृतु । त्रिभवन देवा सगल सखु ॥
 मे सो धनु पले साहु अछूट ॥४॥
 पंच तीनि नव चारि समावै । धरणि गगनु कल धरि रहावै ॥
 बाहुरि जातउ उलटि परावै ॥५॥
 भूरखु होइ न घाखी झूझै । जिहवा रसु नहो कहिया झूझै ॥
 बिलु का माता जग सिउ झूझै ॥६॥
 ऊतम संगति ऊतम होवै । गुण कउ धावै अवगण धोवै ॥
 बिनु गुर सेवे सहलु न होवै ॥७॥
 होरा नामु जवेहर सालु । मनु मोती हे तिस का मालु ॥
 नामक परखै नदरि निहालु ॥८॥१॥

(जो) निज स्वरूप को विचार करता है, वही (हरिनाम रूपी) हीरे को परख सकता है । पूर्ण गुरु एक दृष्टि (मात्र) से तार देता है । गुरु (यदि प्रसन्न हो जाय, (तो) मन से ही मन को अपने आप धैर्य हो जाता है ॥ १ ॥

(गुरु) ऐसा साहु है और ऐसी सराफी करता है कि (उसकी) सच्ची (कृपा—)— दृष्टि से एकनिष्ठ ध्यान लग जाता है (और) (मनुष्य) तर जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

निरंजन (माया रहित) (हरी) का नाम श्रेष्ठ पूंजी है । निर्मल (शिष्य) सत्य में (त) हुआ पैकार (चतुर, गुणज्ञ) है [पैकार=निरीक्षण, प्राचीन काल में पैकार टकसाल की राख में सोने-चाँदी का निरीक्षण करते थे] । स्तुति द्वारा 'गुरु-करतार' (परमात्मा) सहज भाव से (अपने) घर (शरीर) में (उसे) प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

(गुरु के) शब्द द्वारा (शिष्य) आशा और इच्छा जला दे और 'राम', 'नारायण', (परमेश्वर का नाम) (स्वयं) जपे (और दूसरो से भी) जप कराए । (वह) गुरु द्वारा (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग, (उसका) महल (और उसका) घर पा जाता है ॥ ३ ॥

(हरी के महल और घर पानेवाले भक्त) को काया कंचन (की भाँति कान्तियुक्त हो जाती है) ; (और उसके अन्तर्गत परमात्मा की) अनुपम ज्योति (प्रकाशित होती है) । समस्त त्रिभुवन (परमात्मा) देव का ही स्वरूप (दिखलाई पड़ता) है । मेरे पल्ले वही सच्चा और न मृष्ट होनेवाला धन है ॥ ४ ॥

(वह परमात्मा) पंच (तत्त्वों) तीन (भुवनो) नव (लक्ष्यों) और चार (दिशाओं) में संभाव्य हुआ है; पृथ्वी और आकाश को (अपनी) शक्ति (कला) से धारण किए हुए है ।

(वही प्रभु) (हमारे) बहिर्मुख होते हुए (मन को) उलटा कर (अंतर्मुख) करता है ।

[विशेष :- उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—पंच कामादिको (काम, मोह, लोभ, मोह और अहंकार), तीन गुणों (सत्त्व, रज और तम), चार (अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) और नव (गोलकों—दो नासिका छिद्र, दो श्रोत्र, दो कान, एक मुख, एक मूत्रेन्द्रिय-द्वार और एक मलेन्द्रिय-द्वार) को (जिस व्यक्ति) ने) समाहित कर लिया है, (बधीभूत कर लिया है), जिसने धरणी को शक्ति के साथ वगन (मण्डल) में धारण कर लिया है, (अर्थात् स्थूल विषयों से उठ कर सूक्ष्म परमात्मा में टिक गया है, और 'गगन-मण्डल' में सुरति लगा दी है), (जिसने) बाहर जाती हुई इन्द्रियों को उलट कर (अपने में) (अंतर्मुख) कर लिया, (वह धन्य है) ।] ॥ ५ ॥

(जो) मूर्ख है, (उसे) श्रालो से सुभाई नहीं पड़ता; (उसकी) जीभ सीधी नहीं (होती) और (वह) कहना नहीं मानता । (वह) माया के विष में मतवाला होकर जगत् से लड़ता रहता है ॥ ६ ॥

(मनुष्य) उत्तम (पुरुषों को) संगति में उत्तम हो जाता है, (इसके फलस्वरूप) वह गुणों को (ग्रहण करने के लिए) दौड़ता है और अवगुणों को धो देता है । बिना धुक की सेवा (किए हुए) (वह) सहज (योगी) नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

(हरी का) नाम हीरा, रज और लाल है । (मनुष्य का) मन (भी) उल्ल (अपूर्व धन) का (अमूल्य) मोती है । नानक कहते हैं (कि साधक उपर्युक्त धन की) परख करता है और (परमात्मा की) कृपादृष्टि (प्राप्त करके) निहाल हो जाता है ॥ ८ ॥ ५ ॥

[६]

गुरमुखि गिघ्रातु गिघ्रातुमनि मानु । गुरमुखि महलो महलु पछानु ।

गुरमुखि सुरति सबदु नोसानु ॥१॥

ऐसे प्रेम भगति वीचारी । गुरमुखि साचा नामु सुरारी ॥१॥रहाउ॥

अहिनिनि निरमलु थानु सु थानु । तीन भवन निहकेवल गिघ्रातु ॥

सावे गुर ते हुकमु पछानु ॥२॥

साचा हरखु नाही तिसु सोगु । अमृत गिघ्रातु सहारसु भोगु ॥

पंच समई सुखी सभु लोगु ॥३॥

सगली जोति तेरा ससु कोई । आपे जोड़ि बिछोड़े सोई ॥

आपे करता करे सु होई ॥४॥

ढाहि उसारे हुकमि समावै । हुकमो वरतै जो तिसु भावै ॥

गुर बिनु पूरा कोइ न पावै ॥५॥

बालक बिरधि न सुरति परानि । भरि जोबनि बूढ़े अभिमानि ॥

बिनु नावै किआ सहसि निदानि ॥६॥

जिसका अनु धनु सहजि न जाना । भरमि भुलाना फिरि पसुताना ॥

मनि काही बजरा बजराणा ॥७॥

ब्रूइत जगु बेखिआ तउ डरि भाये । सतिगुरि राखे से बडभाये ॥

नानक गुर की चरणी लागे ॥८॥६॥

गुरु के उपदेश द्वारा ज्ञान, ध्यान (प्राप्त होता है) (घोर) मन मान जाता है (शान्त हो जाता) है। गुरु की शिक्षा द्वारा महल के स्वामी (महली) के महल की पहचान होती है। गुरु के उपदेश द्वारा ही सुरति (ध्यान) और (गुरु का) शब्द प्राप्त होता है, (जिसके फलस्वरूप) (परमात्मा के यहाँ) निशान (प्राप्त होता है) ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रेमाभक्ति (रागात्मिका भक्ति) बिचार की जाती है कि गुरु की शिक्षा द्वारा मुरारी (परमात्मा) का सच्चा नाम (प्राप्त होता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

निर्मल (हरी) स्थान—स्थानान्तरो मे अर्हनिश (निरन्तर) (व्याप्त है)। तीनों भुवनों में (एक हरी को ही व्याप्त देखना) यही निष्केवल ज्ञान है। (इस प्रकार) सच्चे गुरु से (परमात्मा के) हुक्म को पहचानना चाहिए (घोर उमके अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए) ॥ २ ॥

(साधक को) (परमात्मा के मिलन का) सच्चा हर्ष (होता है), उसे (तनिक भी) शोक नहीं होता। (वह) जानामृत के महान् रस का रसास्वादन करता है। (उसके) पंच कामादिक नष्ट हो जाते हैं और घर के सभी लोग सुखी हो जाते हैं (अर्थात् उसकी सारी आन्तरिक वृत्तियाँ सुखी हो जाती हैं) ॥ ३ ॥

(हे प्रभु), सब मे तेरी ही ज्योति (व्याप्त) है। (प्रभु) स्वयं ही जोड़ता है और स्वयं ही वियोग कराता है। (वह) कर्ता (पुरुष) जो करता है, वही होता है ॥ ४ ॥

(परमात्मा ही) नष्ट करता है, (और फिर) निर्माण करता है, (वह) (अपने) हुक्म से (अपने मे) मिला लेता है। (जैसा) उसे अच्छा लगता है, (उसके) हुक्म के अनुसार वैसा ही होता है। बिना गुरु के पूर्ण (परमात्मा) को कोई नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ ५ ॥

बचपन और वृद्धावस्था मे प्राणी को कोई स्मृति नहीं रहती। पूर्ण युवावस्था में (मनुष्य) अभिमान में डूबा रहता है। बिना (परमात्मा के) नाम के अन्त मे (वह) क्या प्राप्त करेगा? (अर्थात् कुछ भी नहीं) ॥ ६ ॥

(जिसके द्वारा) अन्न और धन दिए गए हैं, (उस परमात्मा को) सहज (ज्ञान) द्वारा (मनुष्य) नहीं जान सका। (वह मनुष्य) भ्रम में भटकता रहता है और बार बार पछताता रहता है ॥ ७ ॥

(जब मैंने) जगत् को दृष्टे दृष्ट देखा, तब (मैं) डर कर भगा (और गुरु की शरण में पड़ गया)। (जिनकी) सदगुरु ने रक्षा की है, वे (सचमुच ही) बड़े भाग्यशाली हैं। नानक कहते हैं (कि वे भाग्यशाली) गुरु के चरणों मे लग गए हैं ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

गावहि गोते चीति अनीते । राग सुखाइ कहावहि बोते ॥

बिनु नावे मनि भूहु अनीते ॥ १ ॥

कहा जसहु मन रहहु धरे ।

गुरमुखि राम नामि सुपतासे जोजत पावहु सहजि हरे ॥ १ ॥ १ ॥ ७ ॥

कामु कोष मनि मोहु सरीरा । लसु लोसु अहंकार सु पीरा ॥
 राम नाम बिनु किउ मनु धीरा ॥२॥
 अंतरि नाक्यु सासु पछाणै । अंतरि की गति गुरमुखि जाणै ॥
 साध सबद बिनु महसु न पछाणै ॥३॥
 निरंकार महि आकार समावै । अकल कला सनु सावि टिकावै ॥
 सो नर गरभ जोनि नही आवै ॥४॥
 जहां नाम मिलै तह जाउ । गुर परसादी करम कमाउ ॥
 नामे राता हरिगुण गाउ ॥५॥
 गुर सेवा ते आपु पछाता । अंमनु नामु बसिआ सुखदाता ॥
 अनदिनु बाणी नामे राता ॥६॥
 मेरा प्रभ साए ता को लागे । हउमे मारै सबदे जाये ॥
 ऐधे ओधै सदा सुखु आये ॥७॥
 मनु चंचलु बिधि नाही जाणै । मनमुखि मैला सबदु न पछाणै ॥
 गुरमुखि निरमसु नामु वखाणै ॥८॥
 हरि जोउ आये करी अरदासि । साधू जन संगति होइ निवासु ॥
 किलखिख दुख काटे हरिनामु प्रगासु ॥९॥
 करि बीचारु आचारु पराता । सतिगुर बचनी एको जाता ॥
 नानक रामनामि मनु राता ॥१०॥७॥

(लोग बाहर से) (पवित्र) गीत गाते हैं, किन्तु चित्त में अनीति (वरतते हैं) ।
 (वे लोग) (नाना प्रकार के) राग सुनाकर, (लोगो द्वारा) वीतराग कहे जाते हैं । (किन्तु)
 बिना नाम के (उनके) मन में झूठ और अनीति (भरी हुई है) ॥१॥

(हे मन), क्यों चलायमान होने हो ? (अपने आत्मस्वरूपी) गुरु में ही निवास
 करो । गुरु की शिक्षा द्वारा राम नाम में तृप्त हो (और) हरी को खोज कर सहज भाव से प्राप्त
 करो ॥१॥ रहाउ ॥

मन और शरीर में काम, कोष, मोह, लालच, लोभ और अहंकार (भरे हैं), (इसी
 कारण) पीड़ा है । बिना राम नाम के मन (भला) कैसे धैर्यशाली हो सकता है ? ॥२॥

(जब साधक) आन्तरिक स्नान करे, (तभी) वह सत्य (परमात्मा) को पहचान
 सकता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) आन्तरिक दशा को जान सकता है । बिना (गुरु के)
 सच्चे शब्द द्वारा (कोई भी) (परमात्मा के) महल को नहीं पहचान सकता ॥३॥

(जो साधक) निरंकार (हरी में) (समस्त) आकारों को टिका हुआ (देखता है)
 और सत्य (परमात्मा की) कलारहित कला (शक्ति) में (अपने को) सच्चे भाव से टिका
 देता है, ऐसा मनुष्य (मुक्त हो जाता है) (और पुनः) गर्भ-योनि में नहीं आता ॥४॥

जहाँ नाम मिलता है, वही (मैं) जाता हूँ, गुरु की कृपा से (नाम जपने का उत्तम)
 कर्म कमाता हूँ (और) नाम में ही अनुरक्त होकर हरिगुण गाता हूँ ॥५॥

गुरु की सेवा से (मैंने) अपने आप को पहचान लिया है और आनन्ददायक अमृत नाम
 (मेरे मन में) बस गया है । मैं निरन्तर (गुरु की वाणी) और नाम में अनुरक्त हूँ ॥६॥

मेरा प्रभु जब नाम में लगता है, तभी कोई नाम में समता है । (यदि कोई) अहंकार को मारता है, (तभी वह) (गुरु के) शब्द में जगता है (अग्यथा सांसारिक मोह में सोता रहता है) । (जो परमात्मा में अनुरक्त है), (उन्हें) यहाँ, वहाँ और आगे (परलोक में) सबैव सुख (प्राप्त होता) है ॥७॥

मन चंचल है, (अतएव परमात्मा से मिलने की) विधि नहीं जानता । मनमुख भैला होता है, (अतएव गुरु के) शब्द को नहीं पहचान सकता । गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) निर्मल नाम की व्याख्या करता है ॥८॥

(मैं) हरी जी के आगे प्रार्थना करता हूँ कि साधु-जन की संगति में (मेरा) निवास हो परमात्मा के नाम का प्रकाश (समस्त) कल्मषों (पापों) और दुःखों को काट देता है ॥९॥

विचार करके (शुभ) आचारों की प्राप्ति हो गई और सद्गुरु के वचनों द्वारा (मैंने) एक (परमात्मा) को जान लिया । नानक कहते हैं कि रामनाम में (मेरा) मन अनुरक्त हो गया है ॥१०॥७॥

[८]

मनु मैगनु साकनु देवाना । बनखंडि माइआ मोहि हेराना ॥
इत उत जाहि काल के आपे । गुरुमुखि खोजि लहै घर आपे ॥१॥
बिनु गुरु सबवे मनु नहीं ठउरा ।
निमरहु राम नामु अति निरमलु अवर तियागहु हउमै कउरा ॥१॥२॥७॥

इहु मनु मुगसु कहहु किउ रहसी । बिनु समझे जम का बुलु सहसी ॥
आपे बखसे सतिगुरु भेलै । कालु कंटक मारे सलु पेले ॥२॥

इहु मनु करमा इहु मनु घरमा । इहु मनु पंच तलु ते जनमा ।
साकनु लोभी इहु मनु मूड़ा । गुरुमुखि नामु जपै मनु छड़ा ॥३॥

गुरुमुखि मनु असयाने सोई । गुरुमुखि त्रिभवणि सोझी होई ॥
इहु मनु जोगी भोगी तपु तापै । गुरुमुखि बीन्है हरि प्रभु आपै ॥४॥

मनु बैरागी हउमै तियागो । घटि घटि मनसा दुबिधा लागी ॥
राम रसाइगु गुरुमुखि चालै । दरि घरि महली हरि पति राखै ॥५॥

इहु मनु राजा सूर संग्रामि । इहु मनु निरभउ गुरुमुखि नामि ।
मारे पंच अपुनै बसि कीए । हउमै प्राप्ति इकुलु थाइ कीए ॥६॥

गुरुमुखि राग सुप्याव अन तियागे । गुरुमुखि इहु मनु भगती जागे ॥
अनहद सुणि मानिआ सबहु बीचारी । आतसु चीन्है भए निरंकारी ॥७॥

इहु मनु निरमलु दरि घरि सोई । गुरुमुखि भगत भाउ सुनि होई ॥
अहिनिनि हरि जसु गुरुपरसादि । घटि घटि सो प्रभु आदि सुवादि ॥८॥

राख रसाइगु इहु मनु राता । सरब रसाइगु गुरुमुखि जाता ॥
अगसि हेतु गुरु अरण निबासा । नानक हरि जन के वासनि के दासा ॥९॥१०॥

(यह) मन हाथी, शक्त और दीवाना है और माया के बनसख में मोहित होकर हैरान (फिरता है) । काल का दबाया हुआ (यह मन) इधर-उधर फिरता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (मन) अपने (वास्तविक) घर को प्राप्त कर लेता है ॥१॥

बिना गुरु के शब्द के मन को कहीं भी ठौर नहीं प्राप्त होता । (हे भाई) अत्यन्त निर्मल रामनाम का स्मरण करो और कड़वे झंकार को त्याग दो ॥१॥ रहान ॥

यह मन मनबान (मूर्ख) है, (भला) बताओ यह कैसे सुखी होगा ? बिना (सत्य परमात्मा को) समझे यम का दुःख सहना पड़ेगा । (परमात्मा) स्वयं ही (जीव को) क्षमा करके सदगुरु से मिलाता है । (सदगुरु) सत्य (परमात्मा) की प्रेरणा से कण्टक के समान (दुःखदायी) काल को मार डालता है ॥२॥

यह मन जो पंच तत्त्वों से उत्पन्न हुआ है, (शुभ और बंद) कर्म करनेवाला और धर्म (इत्यादि) करनेवाला है । यह मूर्ख मन शक्त (माया का उपासक) और लोभी है । (किन्तु यही मूढ़ मन) गुरु की शिक्षा द्वारा नाम जप कर सुन्दर हो जाता है ॥३॥

गुरु की शिक्षा द्वारा यही (मन) (अपने वास्तविक) स्थान को (प्राप्त कर लेता है) और गुरु की शिक्षा द्वारा ही (इसे) त्रिबुवन की समझ आ जाती है । यह मन योगी, भोगी और तप तपनेवाला है और यह गुरु द्वारा प्रभु हरी को पहचान लेता है ॥४॥

(शिष्य का) मन बैरामी और झंकार को त्यागने वाला होता है । प्रत्येक घट में इच्छा और दुविधा लगी हुई है । (शिष्य) गुरु की शिक्षा द्वारा राम-रसायन का आस्वादन करता है, (जिस कारण) हरी (राजा), महल का स्वामी (अपने) दरवाजे और घर पर (शिष्य की) प्रतिष्ठा रखता है ॥५॥

यह मन राजा है और संग्राम में शूरवीर है । यह मन गुरु की शिक्षा द्वारा नाम (प्राप्त करके) निर्भय हो जाता है, पंच कामादिकों को मार कर अपने वश में कर लेता है और झंकार को घस कर एक स्थान में (केन्द्रीभूत करके) बाँध देता है ॥६॥

गुरु की शिक्षा द्वारा यह मन अन्ध (भन) रागों और रसों को त्याग देता है और भक्ति में जग जाता है । (यह मन) (गुरु के) शब्द पर विचार करके अनाहत (शब्द) सुनने लगता है और शान्त हो जाता है तथा आत्म-साक्षात्कार करके निरंकारी हो जाता है ॥ ७ ॥

उस हरी के दरवाजे और घर में (रहकर) यह मन निर्मल हो जाता है । गुरु द्वारा (इसे) भक्ति, प्रेम (और नाम की) ध्वनि प्राप्त होती है । गुरु की कृपा द्वारा (यह) अहंनिष्ठ हरि के यश (के गान में) लग जाता है और (उसे) आदि काल युग-युगान्तरो तथा घट-घट में वही प्रभु (दिखाई पड़ने लग जाता है) ॥ ८ ॥

राम-रसायन (का आस्वादन करके) यह मन मतवाला (हो जाता है) । सब के रसायन (हरी) को गुरु द्वारा समझ लिया जाता है । भक्ति (की प्राप्ति) के हेतु गुरु के चरणों को (अपने मन में) स्थान दिया है । नानक कहते हैं कि (मैं) हरि के दासों का दास हो गया हूँ ॥ ९ ॥ ८ ॥

[६]

तनु मिलै धनु का को कहोए । बिनु गुर रासु नासु कत लहीऐ ।

राम कृष्ण धनु संगि सखाई । अहिनिमि निरमलु हरि लिव लाई ॥१॥

राम नाम बिनु कबहु हमार ।

तुख दुख सम करि नामु न छोड़उ आपे बसति मिलावणहार ॥१॥ रहाउ ॥

कनिक कामनी हेतु गवार । दुबिधा लाने नामु विसार ॥

जिनु तूं बखसहि नामु जपाइ । ब्रु न लागि सकै गुन गाइ ॥२॥

हरि गुरु दाता राम गुपाल । जिउ भायै तिउ राखु दइभाल ॥

गुरुमुखि रामु मेरे मनि भाइभा । रोग मिटे दुखु ठाकि रहाइभा ॥३॥

अवरु न अउरुसु तंत न संता । हरि हरि सिमरणु किलबिख हंता ॥

तूं आपि मुलावहि नामु विसारि । तूं आपे राखहि किरपा धारि ॥४॥

रोगु भरसु भेद मनि दूजा । गुरु बिनु भरमि जपहि जपु दूजा ॥

आदि गुरुख गुरु वरसन देखहि । बिरगु गुरु सबदे जनमु कि लेखहि ॥५॥

बेखि अबरुसु रहे बिसमाधि । घटि घटि सुर नर सहज समाधि ॥

भरिपुर्णि धारि रहे मन माही । तुम समसरि अवरु को नाही ॥६॥

जा की भगति हेतु मुखि नामु । संत भगत की संगति रामु ॥

बंधन तोरे सहजि बिभानु । छूटे गुरुमुखि हरि गुरु गिभानु ॥७॥

ना जमबूत दूखु तिसु लावै । जो जनु रामनामि लिव जावै ॥

भगति बखलु भगता हरि संगि । नानक मुकति अए हरि रंगि ॥८॥१॥

शरीर के नष्ट होने पर धन किसका कहा जाय ? बिना गुरु के राम नाम (रूपी धन) किस प्रकार प्राप्त किया जाय ? राम नाम (रूपी) धन ही (अन्तिम समय का साथी) है । (साधक) अर्हतिश हरि में लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर पवित्र हो जाता है ॥ १ ॥

राम नाम के बिना हमारा कौन (दूसरा) है ? (मैं) दुःख-सुख को समान समझ कर नाम को नहीं छोड़ता हूँ; (प्रभु) क्षमा करके स्वयं ही अपने में मिलानेवाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गंवार व्यक्ति ने कामिनी और काश्चन के निमित्त दुबिधा में पड़कर नाम को भुला दिया है । (हे प्रभु), जिसे तू देता है, (उसी से) (अपना) नाम जपाता है । (तेरे गुणों का) गान करने से यमदूत नहीं लग सकते ॥ २ ॥

हरी ही दाता गुरु है, (वही) राम, गोपाल है । हे दयालु (प्रभु) जैसा तुझे अच्छा लगे, वैसा (मुझे) रख । गुरु के उपदेश द्वारा 'राम' मेरे मन को अच्छे लगने लगे है । (इसी कारण) (समस्त मानसिक) रोग मिट गए हैं और दुःख भी समाप्त हो गए हैं ॥ ३ ॥

कल्मष (पाप) को हरण करनेवाले हरि-स्मरण (के अतिरिक्त) न और कोई औषधि है, न तंत्र है और न मंत्र है । (हे प्रभु), तू नाम विस्मृत करा कर अपने आप को भुला देता है । तू ही कृपा करके (भक्तों की) रक्षा करता है ॥ ४ ॥

(यदि) मन में (हरी के बिना) द्वैतभाव है (तो मनुष्य के) रोग और भ्रम (बने रहते हैं) । गुरु के बिना भ्रम में पड़कर (वे) द्वैत का जप करते रहते हैं । गुरु का दर्शन करने से आदि पुरुष (परमात्मा) का दर्शन हो जाता है । बिना गुरु के शब्द के जन्म किस लेखे में है ? ॥ ५ ॥

(परमात्मा के) आश्चर्य को देख कर (भक्तगण) आश्चर्यान्वित हो गए । घट घट में देवताओं और मनुष्यों (अन्तर्गत) सहज समाधि (लग गई) । (हे हरी) सर्वव्यापी (भरपूर)

हो कर स्वयं ही (सब के) मन में स्थित हो कर (सबो को) धारण कर रहे हो (संभाल रहे) हो) तुम्हारे समान और कोई नहीं है ॥ १ ॥

जिसकी भक्ति के निमित्त मुख से नाम जपा जाता है, वह 'राम' संत-भक्तों की संगति में (प्राप्त होता है) । (हरी का) सहज ध्यान (माया के) बंधनों को तोड़ देता है । गुरु द्वारा प्राणी हरी का ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥

जो पुरुष रामनाम के लिये (एकनिष्ठ ध्यान) में जगता है, उसे यमदूत के दुःख नहीं लगते । भक्त-वत्सल हरी (अपने) भक्तों के साथ ही रहता है । नानक कहते हैं* (कि जो व्यक्ति) हरि के रंग में रंगे हैं, (वे) मुक्त (हो जाते) हैं ॥ ८ ॥ ६ ॥

[१०]

इकतुकी

गुरु सेवे सो ठाकुर जाने । ब्रह्म मिटे सनु सबधि पखाने ॥१॥
रामु जपहु मेरो सखो सखैनी । सतिगुरु सेवि बेखह प्रभु नैनी ॥१॥रहाउ॥
बंधन मात पिता संसारि । बंधन तुल कनिष्ठा अरु नारि ॥२॥
बंधन करम धरम हउ कीमती । बंधन पुनु कलतु मनि बीमती ॥३॥
बंधन किरखी करहि किरसाव । हउमै बंनु सहै राजा मंगै वान ॥४॥
बंधन सउबा अण बीचारी । लिपति नाहो भाइमो मोह पसारो ॥५॥
बंधन साह संजहि धनु जाइ । बिनु हरि भगति न पबई पाइ ॥६॥
बंधन बेडु बाहु अहंकार । बंधनि बिनसै मोह बिकार ॥७॥
नानक राम नाम सरणाई । सतिगुरि राखे बंनु न पाई ॥८॥१०॥

(जो) गुरु की सेवा करता है, वह ठाकुर (स्वामी, परमात्मा) को जान जाता है । (वह) (गुरु के) शब्द द्वारा सत्य (परमात्मा) को पहचान लेता है (और उसका) दुःख मिट जाता है ॥ १ ॥

(हे) मेरी सखी-सहेलियो राम का जप करो; सद्गुरु की सेवा करके प्रभु को (अपने) नेत्रों से देखो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सांसारिक माता-पिता बंधन हैं । [अपना, संसार में माता-पिता बंधन हैं] । पुत्र, कन्या और स्त्री भी बन्धन हैं ॥ २ ॥

अहंकार में किए हुए (सारे) कर्म, धर्म भी बंधन हैं । (यदि) मन में द्वैत भाव है, (तो) पुत्र-कलत्र बंधन हैं ॥ ३ ॥

किसान बंधन में ही कृषि करते हैं । अहंकार (के कारण मनुष्य) दण्ड सहता है और राजा दाल (धन, माल) मांगता है ॥ ४ ॥

विवेकहीन सौदा बंधन है । माया, मोह के प्रसार में तृप्ति नहीं मिलती ॥ ५ ॥

साधु धन-संचय करते हैं, यह बंधन है, (क्योंकि) जानेवाला है । बिना हरि-भक्ति के (परमात्मा के यहाँ) स्थान नहीं प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

अहंकार से बेव-पाउ और बाद-विवाद बंधन है । मोह के विकार के कारण (मनुष्य) बंधन में (पड़कर) नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

नानक कहते हैं कि रामनाम की शरण में (जाने से) और सद्गुरु द्वारा रक्षा करने पर, (मनुष्य) बंधन में नहीं पड़ता ॥ ८ ॥ १० ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ अटपदीआ, घर ३ ॥

[११]

जिन सिरि सोहनि पटोआ मांगी पाइ संधूर ।
 ते सिर काती मुंनोआन्हि गल बिचि आवे धुड़ि ।
 महला धंदरि होदीआ हुरि बहुरि न मिलन्ह हदुरि ॥१॥
 आवेसु बाबा आवेसु ॥
 आवि मुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि बेलहि बेस ॥१॥रहाउ॥
 जवहु सीआ बोआहीआ लाड़े सोहनि पासि ।
 हीदोली चडि घाईआ धंद खंड कोले रासि ॥
 उपरहु पाणी बारीऐ भले किमकनि पासि ॥२॥
 इकु लखु सहन्हि बहिठीआ लखु सहन्हि बझीआ ।
 गरी लुहारे लादीआ मारन्हि सेजझीआ ॥
 तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ ॥३॥
 धनु जोबनु बुड बैरी होए जिन्ही रले रंतु लाइ ।
 दूता नो कुरमाइआ लै जलै पति गवाइ ॥
 जे तिसु भावै दे बडिआई जे भावै बेइ सजाइ ॥४॥
 अगो दे जे जेतीऐ तां काइतु मिलै सजाइ ।
 साहां सुरति गवाईआ रंगि तमासै ब्याइ ॥
 बाबरबाणी फिरि गई कुइक न रोटी खाइ ॥५॥
 इकता बलत लुभाईअहि इकन्हा पूजा जाइ ।
 खउके बिगु हिबबाणीआ किउ टिके कइहि नाइ ॥
 रासु न कबहु खेतिआ हुरि कहुरि न मिलै लुवाइ ॥६॥
 इकि घरि आबहि आपलै इकि मिलि मिलि पुछहि सुख ।
 इकन्हा एहा लिखिआ बहि बहि रोवहि बुख ॥
 जो तिसु भावै सो धीऐ नानक किआ मानुख ॥७॥११॥

विशेष : ११ वीं और १२ वीं अष्टपदियों में बाबर के आक्रमण का जिक्र है । बाबर ने सन् १५२१ ई० में ऐमनाबाद पर आक्रमण किया । इन आक्रमणों में स्त्रियों एवं तस्लाबीन शासकों के भोगों और ऐश्वर्यों का बर्गुन है और यह भी बताया गया है कि भोग कितने क्षणभंगुर और असार हैं । अतएव परमात्मा के भजन में लगना चाहिए ।

अर्थ :—जिन (स्त्रियों) के सिर की मांग में पट्टी थी और उस मांग में (शृंगार के लिए) सिन्दूर डाला गया था, (उनके) उन सिरों (की केशराशि) कँचों से मूँड़ दी गई है

श्रीर घूल उड़-उड़ कर (उनके गले तक पहुँचती हैं । (जो) मझलों के अंतर्गत निवास करती थी, (उन्हें) अब बाहर (सारे लोगों के) समीप बैठने का स्थान भी नहीं मिलता है ॥ १ ॥

हे बाबा, नमस्कार है, (तुम्हें) नमस्कार है । हे आदि पुरुष (परमात्मा), तेरा अन्त नहीं पाया जाता, (तू) नाना भाँति के वेश धारण कर देखता है ॥ १ ॥

(वे स्त्रियाँ) विवाहिता थीं और (अपने) प्यारे (पतियों) के पास सुशोभित थीं । (वे) (उन) पालकियों में बैठ कर-झाई थी, (जो) हाथीदाँत के टुकड़ों से जड़ी थीं । (उन स्त्रियों के) ऊपर पानी छिड़का जाता था (और हीरे-मोती से) जड़े हुए पखे (उनके) पास चमकते थे ॥ २ ॥

एक लाख (रुपये) तो उनके खड़े होने पर (न्योछावर किए जाते थे) और एक लाख रुपये उनके बैठने पर [अर्थात् उन स्त्रियों के ऊपर रुपये की वर्षा होती थी । उनके उठने-बैठने पर लाख-लाख रुपये न्योछावर किए जाते थे] । (जो स्त्रियाँ) गरी-बुहारे खाती थी और सेजों पर रमण करती थीं, (उनके) गले में रस्सी पड़ी हुई और (उनकी) मोती की लड़ियाँ टूट रही हैं ॥ ३ ॥

घन और यौवन दोनों ही (उन स्त्रियों के) बैरी सिद्ध हुए, (क्योंकि उन्होंने) अपने रंग में (उन स्त्रियों को) लगा रक्खा था । (जब परमात्मा की) आज्ञा हुई, तब यम-दूतों (निर्दयी और क्रूर सिपाहियों) की हुकूम हुमा (और वे उन स्त्रियों की) प्रतिष्ठा गँबा कर लेकर चल पड़े । (अतएव) यदि उसे (परमात्मा को) अच्छा लगता है, (तो वह) बड़प्पन देता है और यदि (उसे) अच्छा लगता है, (तो वह) सजा देता है ॥ ४ ॥

यदि पहले से ही सचेत हुए होते (परमात्मा का स्मरण किए होते) तो क्यों सजा मिलती ? (तत्कालीन राज्य करनेवालों) राजाओं ने रंग और तमाशों के चाज में (अपने कर्त्तव्य का) स्मरण गँबा दिया, (अर्थात्, डटकर बाबर का न तो मुकाबला किया और न प्रजा की ही रक्षा की) । (इसी कारण) (अब) बाबर की दुहाई (आज्ञा) हो गई है, (जिसके फलस्वरूप) कुमारों को भी रोटियाँ खाने को (नहीं मिलती हैं) ॥ ५ ॥

एक (मुसलमानों) के (नमाज का) वक्त खो गया है (नष्ट हो चुका है) और एक (हिन्दुओं की) पूजा भी जाती रही । बिना चौके के हिन्दू-स्त्रियाँ कैसे स्नान करें, चंदन लगावें (और पूजा करें) ? जिन (व्यक्तियों ने) कभी राम (नाम) नहीं चेता था, (वे ही अब मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए 'खुदा' (शब्द) कहते हैं, (फिर भी जालिम) उन्हें 'खुदा' भी नहीं कहने देते ॥ ६ ॥

(जिन स्त्रियों के पति जीवित) (अपने) घर लौट आए हैं, (उनसे उनकी स्त्रियाँ) मिल-मिल कर कुशल-मंगल (सुख) का समाचार पूछती हैं । कोई कोई (स्त्रियाँ, जिनके पतियों को बाबर के नृशंस सिपाहियों ने मार डाला है), (उनके) (भाग्य में) यही लिखा है कि वे बैठ-बैठ कर (जीवन पर्यन्त अपने दुःखों पर) रोती रहे । नानक कहते हैं कि जो उसे (परमात्म को) अच्छा लगता है, वही होता है; मनुष्य का क्या (सामर्थ्य है) ? ॥ ७ ॥ ११ ॥

[१२]

कहा सु लेख तबेला छोड़े कहा भेरी सहनार्द ।

कहा सु तेगबंद गावेरि कहा सु लाल कबार्द ॥

कहा सु भारसीभा मुहु बंके ऐये विसहि नाही ॥१॥
 बहु जगु तेरा तू मोसाई ।
 एक घड़ी महि थापि उथाये जरु बंझि देवै भाई ॥१॥रहाउ॥
 कहा सु घर दर मंडप महला कहा सु बंक सराई ।
 कहा सु सेज सुजाली कामरिणि जिसु बेखि नीद न पाई ।
 कहा सु पान तंबोली हरमा होईभा छाई भाई ॥२॥
 इसु जरि कारणि घरी विसुतो इनि जर घरी सुभाई ।
 पापा बाभळु होवै नाही सुझा सापि न जाई ॥
 जिस नो भापि सुभाए करता सुसि लए बंभिभाई ॥३॥
 कोटी हू पीर बरजि रहाए जा मोर सुणिभा धाईभा ।
 धान सुकाम जले बिज मंबर सुछि सुछि कुडर रुलाईभा ॥
 कोई सुगलु न होभा अंधा किनै न परखा लाईभा ॥४॥
 सुगल पठाणा भई लड़ाई रल महि तेग वगाई ।
 ओन्ही तुपक ताणि कलाई ओन्ही हसति जिड़ाई ॥
 जिन्हु की खीरी बरगह फटी तिन्हा मरणा भाई ॥५॥
 इक हिववाणी अबर तुरकाणी भटिभाणी ठकुराणी ।
 इकन्हा पेरण सिर सूर पाटे इकन्हा वासु मसाणी ॥
 जिन्हु के बंके घरी न आइभा तिन्हु किउ रेणि बिहाणी ॥६॥
 भाये करे कराए करता किस नो बासि सुलाईऐ ॥
 इसु सुलु तेरे भाए होवै किसये जाइ क्खाईऐ ॥
 हुकमी हुकमि बलाए बिगसै नानक लिखिभा पाईऐ ॥७॥१२॥

(तुम्हारे) वे खेल, अस्तबल, घोड़े कहाँ हैं ? तुम्हारे नगाड़े और सहनाइयाँ
 (भी नहीं दिखाई पड़ रही हैं), (वे) कहाँ हैं ? तलवारों की म्यानं तथा रथ कहाँ हैं ?
 वे लाल (आकर्षक और रोनीली) वदियाँ कहाँ हैं ? वे दर्पण और वे सुन्दर मुख कहाँ हैं ?
 यहाँ तो नहीं दिखाई पड़ रहे हैं ॥ १ ॥

(हे हरी) यह जगत् तेरा है, तू ही (इसका) स्वामी है । एक घड़ी भर में तू इसे
 स्थापित करता है (और फिर) नष्ट करता है । (तू अपने इच्छानुसार) सुवर्ण (दौलत)
 भाइयों को बाँट देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तुम्हारे) वे घर, दरवाजे, मंडप (और) महल कहाँ हैं ? (वे) सुन्दर सरायें
 कहाँ हैं ? जिसे देख कर नीद नहीं पड़ती थी, (वह) सुखदायनी सेज (और उसे सुखोन्नत
 करनेवाली) कामिनी कहाँ है ? वे पान (देनेवाली) तमोलिनं और परवों में रहनेवाली
 स्त्रियाँ कहाँ हैं ? (वे सब) माया की छाया (के समान) (विलीन हो गई हैं) ॥ २ ॥

इस सोने (दौलत) के कारण बहुत से लोग नष्ट हो गए (और) बहुत से इसी
 दौलत के कारण (कुमार्ग में पड़ कर) विलीन हो गए । (यह धन) बिना पाप किए आता
 नहीं और मरने पर साम भी नहीं जाता । जिसे (हरि) स्वयं नष्ट करना चाहता है,
 (उसको) अचछाइयो को बलात् ले लेता है ॥ ३ ॥

जब (हिन्दुस्तान के निवासियों ने) मीर (बाबर) को (बहकर) दौड़ते हुए सुना (तो) करोड़ों पीरों ने उसे रोकने के लिए (टोने-टोटके किए) । (किन्तु उन टोने-टोटकों का कुछ भी परिणाम न निकला) (और बढ़े-बढ़े) स्थान तथा निवास स्थान और वज्र के समान (मुट्ठ) महल जल गए; टुकड़े टुकड़े करके शाहजादे (कुंवर) (मिट्टी में) मिला दिए गए । (पीरों के) (कागज के) परचों से (जिन पर टोने-टोटके लिखे गए थे), कोई भी मुगल घंघा नहीं हुआ, (अर्थात् टोने-टोटकों से मुगलों का कुछ भी बाल-बाला नहीं हुआ) ॥ ४ ॥

मुगलो और पठानों में (भयानक) लड़ाई हुई । रण में तलवारें (खूब) चलाई गईं । उन्होंने (मुगलो ने) ताल-ताब कर तुपके चलाई और उन्होंने (पठानों ने) हाथी उत्तेजित कर के (चिढ़ा कर) आगे बढ़ाया । जिनकी चिछी (परमात्मा के) दरबार से फाड़ दी गई थी, अरे भाई, उनका मरना (आवश्यक हो गया) । [पंजाब में यह प्रथा प्रचलित है कि मौत के खबर की चिछी का सिर फाड़ दिया जाता है] ॥ ५ ॥

(जिन स्त्रियों की दुर्दशा मुगलों ने की, उनमें से) कुछ तो हिन्दुवानियाँ, कुछ तुरकानियाँ, कुछ भाटिने (भट्टों की स्त्रियाँ) और कुछ ठकुरानियाँ थीं । (इनमें से) कुछ स्त्रियों (तुरकानियों) के (बुरके) सिर से पैर तक फाड़ दिए गए, (और) कुछ को (हिन्दू स्त्रियों को) इमशान में निवास मिला (अर्थात् मार डाली गई) । जिन (स्त्रियों) के सुन्दर (पति) घर नहीं लौटे, उन (बेचारियों) ने (अपनी) रातें किस प्रकार काटी ? ॥ ६ ॥

कर्ता (प्रभु) स्वयं ही करता और कराता है; (उसकी बातें) किससे कह कर सुनाई जायँ ? (हे प्रभु), दुःख-मुख (सब) तेरी ही आज्ञा में होते हैं; (अतएव) किसके पास जाकर रोया जाय ? वह हुक्म का स्वामी (हरी) (सभी को) (अपने) हुक्म में खलाता है और विकसित होता है; नानक कहते हैं (कि जो कुछ उसका) लिखा होता है, (वही) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ १२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आसा काफी, महला १, घर ८ ॥

असटपदीअ

[१३]

जैसे गोइलि गोइल्ले तैसे संसारा ।

कूडु कमावहि आदमो बांधहि घरबारा ॥१॥

जागहु जागहु सुतिहो बलिआ बखजारा ॥१॥ रहाउ ॥

नीत नीत घर बांधीअहि जे रहणा होई ।

पिनु पबै जीउ बलसी जे जालो कोई ॥२॥

ओही ओही किआ करहु हे होसी सोई ।

तुम रोबहुगी ओस नो तुम्ह कउ कउण रोई ॥३॥

धंधा पिटिहु भाई हो तुम्ह कूडु कमावहु ।

ओहु न सुणही कतही तुम्ह लोक सुणावहु ॥४॥

जिस ते सुता नानका जायाए सोई ।
 जे धरु ब्रूमे आपणा तां नीब न होई ॥५॥
 जे बलदा लै बलिआ किछु संपे नाले ।
 ता धनु संबहु देखि कै ब्रूभहु बीचारे ॥६॥
 बरानु करहु मक्षसूद सैनु मत पछोताबहु ।
 भउगए छोबहु गुण करहु ऐसे ततु पराबहु ॥७॥
 धरम भूजि सतु बीजु करि ऐसी किरस कमाबहु ।
 तां बापारी जाणीअहु लाहा लै जाबहु ॥८॥
 करसु होबै सतिगुरु मिले ब्रूमे बीचारा ।
 नामु बखारौ सुखे नामु नामे बिउहारा ॥९॥
 जिउ लाहा तोटा तिबै बाट बलदी आई ।
 जो तिसु भावै नानका साई बखिआई ॥१०॥१३॥

जिस प्रकार चारागाह में खाला (थोड़े समय के लिए होता है और वह मालिक नहीं होता), इसी प्रकार संसार है । (संसार के) आदमी (बड़े यत्नपूर्वक) (अपना) घर बार बनाते हैं, (पर यह सब) झूठ (व्यर्थ) ही कर रहे हैं ॥ १ ॥

ऐ सोनेवाले जगो, जगो; वनजारा चला गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि (इस संसार में) सदैव रहना हो, तभी नित्य रहनेवाले घर का निर्माण किया जाय । यदि कोई (बिबेको होकर) समझे, तो (वास्तविक बात यह है कि) शरीर वह ज्ञायगा और आत्मा चला जायगा ॥ २ ॥

(भरे मनुष्य), 'ओफ, ओफ', (हाय हाय) क्यों कर रहे हो ? (परमात्मा ही) (वर्तमान में) है और (भविष्य में) रहेगा ; (उसी का किया हुआ सब कुछ होता है) । तुम तो उस (मृत प्राणी) के लिए रोते हो, (किन्तु भला बताओ) तुम्हारे लिए कौन रोयेगा ? ॥ ३ ॥

(हे) भाई, तुम झूठ में प्रवृत्त होकर, व्यर्थ ही सिर पीट कर (कष्ट पा रहे हो) । वह (मृत व्यक्ति) किसी भी प्रकार (तुम्हारे रोने-धोने को) नहीं सुन सकता, तुम संसार को (यह सब रोना-बिल्लाना) सुना रहे हो ॥ ४ ॥

नानक कहते हैं कि जिस (परमात्मा के) द्वारा (वह) (भ्रजान में) सुलाया गया है, वही उसे (ज्ञान में) जगा सकता है । जो मनुष्य (अपने वास्तविक) घर को पहचान लेता है, उसे फिर (मोह) निद्रा नहीं आती है ॥ ५ ॥

जो (प्राणी) (इस संसार से) चलते हुए (अपने) साथ कुछ (पारमार्थिक) सम्पत्ति ले कर चलता है, (उसकी उस सम्पत्ति को) देख कर, उसी धन का संग्रह करो (और उसी सत्य-धन के ऊपर) विचार कर, समझने (की चेष्टा करो) ॥ ६ ॥

(हे साधक, तुम) (सत्य धन) का व्यापार करो, (और अपने) प्रयोजन, लक्ष्य को (सिद्ध करो); (यहाँ) पछताओ मत । अबगुणों का त्याग करो और गुणों को (ग्रहण) करो, इस प्रकार (परमात्मा रूपी) तत्व को प्राप्त करो ॥ ७ ॥

कर्म को भूमि बनाओ (धीर) सत्य का धीज (बोझो); इस प्रकार की कृपि करो ।
तनी (तुम) (सच्चे) व्यापारी जाने जाओगे धीर लाभ लेकर जाओगे ॥ ८ ॥

(यदि परमात्मा की) कृपा हो, तभी सद्गुरु मिलता है धीर तभी (वह) विचार
समझता है, नाम की व्याख्या करता है, नाम ही सुनता है धीर नाम का ही व्यवहार करता
है ॥ ९ ॥

जिस प्रकार लाभ (सुख) होता है, उसी प्रकार नुकसान (दुःख) भी होता
है; यही परम्परा चलती आई है । हे नानक, जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वही बढाई
है ॥ १० ॥ १३ ॥

[१४]

चारे कुंडा बूढीमा को नीन्ही मैडा ।
जो तुमु भावै साहिबो तू मैं हउ तेडा ॥१॥
वर बीभा मै नीन्ही को कै करो सवासु ।
हिको मैडा तू धरणी साखा सुखि नामु ॥२॥ रहाउ ॥
सिखा सेबनि सिध पीर मागहि रिधि सिधि ।
मै इकु नामु न बीसरै साखे गुर बुधि ॥३॥
जोयो भोयो कापड़ो किष्ठा भवहि दिसंतर ।
गुर का सबदु न चीन्हही ततु सारु निरंतर ॥४॥
पंडित पाथे जोइसी नित पढ़हि पुराणा ।
धंतरि बसतु न जाएनी घटि बहसु लुकारणा ॥५॥
इकि तपसी बन महि तपु करहि नित तीरथ बासा ।
प्रापु न चीनहि तामसी काहे भए उबासा ॥६॥
इकि बिदु जतन करि राखे से जलो कहाबहि ।
बिनु गुर सबद न छूटही भ्रमि धावहि जावहि ॥७॥
इकि गिरही सेबक साधिका गुरमती लावे ।
नामु वानु इसनातु हड़ हरि भवति सु जाने ॥८॥
गुर ते वर घर जाणीऐ सो जाइ सिजारी ।
नानक नामु न बीसरै साखे मनु मानै ॥९॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) (मैंने) चारो ओर ढूँढ़ा, (किन्तु मुझे यह ज्ञात हुआ कि) मेरा कोई
नहीं है । हे साहब, यदि तुझे अच्छा लगे, (तो मैं बताऊँगा) कि तू मेरा है धीर मैं तेरा
हूँ ॥ १ ॥

(तुम्हें छोड़कर) मेरे लिए (धीर कोई) दरवाजा नहीं है; (भला बताओ, मैं तुम्हें
छोड़कर) धीर किसे सलाम करूँ ? मेरा एक तू ही धनी (मालिक) है । तेरा सच्चा नाम
(मैं) मुख से जपता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(बहुत से लोग) सिद्ध, पीर (बनने के लिए) सिद्धों की सेवा करते हैं (धीर)
श्रद्धा-सिद्धि (आदिक शक्तियाँ) माँगते हैं । (किन्तु, हे प्रभु), (मेरी यही माँग है कि) सच्चे
गुरु की दी हुई बुद्धि द्वारा मुझे एक तेरा नाम कभी न भूले ॥ २ ॥

योयी, भोगी (तथा अन्य), वेदभूषा धारण करने वाले (फकीर) किछ निमित्त
देश-देशान्तरों में भ्रमण करते रहते हैं ? (वे लोग) न तो गुरु के शब्द को पहचानते हैं और
न एकरस (निरन्तर) सार तत्त्व (परमात्म-तत्त्व) को ही (पहचानते हैं) ॥ ३ ॥

पंडित, पढ़ानेवाले और ज्योतिषी नित्य पुराण पढ़ते हैं । (किन्तु वे लोग) हृदय में
(स्थित) वस्तु तथा घट-घट में भ्रन्तहित ब्रह्म को नहीं जानते हैं ॥ ४ ॥

कुछ तपस्वी वन में तप करते हैं और तीर्थ स्थानों में निवास करते हैं । (किन्तु वे)
तथेष्टगुणी अपने आप को नहीं पहचानते; (वे) किस लिए विरक्त हुए हैं ? ॥ ५ ॥

कुछ (लोग) वीर्य की यत्न से रक्षा करते हैं, वे यती कहलाते हैं । (किन्तु) बिना
गुरु के शब्द के (वे) मुक्त नहीं होते; वे (संसार-चक्र में) भटक कर आते-जाते रहते हैं,
(जन्मते-मरते रहते हैं) ॥ ६ ॥

कुछ गृहस्थी सेवक, गुरु द्वारा की गई बुद्धि में लगकर साधन सम्पन्न (होते हैं) (वे)
नाम, वान और स्नान (की रहनी को) दृढ़ करके हरि की भक्ति में जग गए हैं ॥ ७ ॥

गुरु से ही (अपने वास्तविक) दरबाजे और घर (का पता) जाना जाता है,
(जिसे) आगे जाकर मनुष्य प्राप्त कर लेता है । हे नानक, (यदि हरि का) नाम विस्मृत न
हो (निरन्तर स्मरण रहे), तो सत्य (हरी) से मन मान जाता है (और शान्ति प्राप्त हो
जाती है) ॥ ८ ॥ १४ ॥

(१५)

मनसा मनहि समाइ ले भजजसु सचि तरणा ।
आवि सुगवि बइभ्रासु तू ठाकुर तेरी सरणा ॥१॥
तू बानी हम जाचिका हरि दरसतु बीजे ।
गुरमुखि नामु धिझाईये मन मंदरु भोजे ॥१॥रहाउ॥
कूड़ा लालसु छाबीऐ तउ सासु पछगलै ।
गुर के सबवि समाईऐ परमारसु जाए ॥२॥
इहु मनु राजा लोभीआ सुभतउ लोभाई ।
गुरमुखि लोमु निबारीऐ हरि सिउ बलि आई ॥३॥
कलरि खेती बीजोऐ किउ लाहा पावै ।
मनमुख सचि न भीजई कूड़ कूड़ि गढावे ॥४॥
लालसु छोडहु अंधिहो लालचि दुलु भारी ।
साचो साहिबु मनि बसै हउमै बिलु मारी ॥५॥
इबिधा छोड़ि कुवाटड़ी भूतहुगे भाई ।
अहिनिमि नामु सलाहोऐ सतिगुर सरणाई ॥६॥
मनमुख पथक सेलु है अगु जीबसु फोका ।
जल सहि केता राखीऐ अम अंतरि सूका ॥७॥
हरि का नामु निधानु है पूरे गुरि बीछा ।
नानक नामु न बीसरै मधि अंमनु बीछा ॥८॥१५॥

वासनाओं को मन में समाहित करके (लीन करके) सत्य के द्वारा संसार-सागर तरा जाता है । (हे प्रभु), तू प्रारम्भ से और युग-युगान्तरीयों से बवालु है, (तू) (मेरा) ठाकुर (स्वामी) है, (मैं) तेरी शरण में हूँ ॥ १ ॥

(हे प्रभु,) तू दाता है, हम (तेरे) माचक हैं, हे हरी , हमें दर्शन दे । गुरु कि शिक्षा द्वारा नाम का ध्यान करने से मन रूपी मंदिर (भक्ति से) भीज जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(यदि साधक) झूठ और लालच त्याग दे तभी (वह) सत्य (परमात्मा) को पहचानता है । (यदि शिष्य) गुरु के शब्द में समाहित हो जाय (निमग्न हो जाय), तभी वह परमार्थ को जानता है ॥ २ ॥

यह मन (उस लोभी) राजा (के समान) है, (जो) लोभ में ललचता रहता है । गुरु की शिक्षा द्वारा लोभ का निवारण करो और हरि से (प्रीति) प्रगाढ़ कर लो ॥ ३ ॥

ऊसर भूमि (रेतीली जमीन) में (बंदि) कृषि बोई जाय, तो क्या लाभ प्राप्त हो सकता है ? मनमुख सत्य से नहीं भीजता है, (द्रवीभूत नहीं होता) । वह झूठा है और झूठ में ही (अपने को) गाढ़ता है ॥ ४ ॥

ऐ भण्डो, (मायाच्छन्न मनुष्यो) लालच छोड़ दो; लालच में (बहुत) भारी दुःख है । (यदि) सच्चा साहब (परमात्मा) मन में बसता है, (तो) अहंकार का विष मर जाता है ॥ ५ ॥

हे भाई, दुबिषा के कुमार्ग को छोड़ दो, (नहीं तो) लूटे जाओगे । सद्गुरु की शरण में पड़कर अहंनिश नाम की स्तुति करो ॥ ६ ॥

मनमुख पत्थर की चट्टान है, (अर्थात् जड़ है); उसके नीरस (फीके) जीवन को धिक्कार है । (जिस प्रकार पत्थर की शिला को कितना ही) जल में रखा जाय, किन्तु (उसका) भीतरी भाग सूखा ही रहता है, (उसी प्रकार मनमुख को कितने ही सुन्दर उपदेश दिए जायं, किन्तु उसका) आभ्यन्तर (अन्तःकरण) शुष्क ही रहता है ॥ ७ ॥

हरि का नाम (समस्त सुखों, ऐश्वर्यों का) भाण्डार है; पूर्ण गुरु ने (इसे) प्रदान किया है । हे नानक, (जिन्हे) नाम नहीं विस्मृत होता है (वे ही इसे) मघ कर अमृत पीते हैं ॥ ८ ॥ १५ ॥

[१६]

जले चलणहार बाट बटाइझा ।

धंसु पिटे संसार सनु न भाइझा ॥१॥

किष्ठा भबीऐ का कूडीऐ गुर सबवि विस्वाइझा ।

ममता मोह बिसरजिझा अपने घरि आइझा ॥१॥ रहाउ ॥

सचि मिले सचिघार कूडि न पाईऐ ।

सचे सिउ चितु लाइ बहुडि न आईऐ ॥२॥

मोइझा कउ किष्ठा रोचहु रोइ न जालहु ।

रोचहु सचि सलाहि हुकसु पछाणहु ॥३॥

हुकमी बज्जु लिखाइ ब्राह्मो बालीऐ ।

साहा पलै पाइ हुकमु सिखासीऐ ॥४॥

हुकमी पैथा जाइ बरगह भालीऐ ।

हुकमे सिरि मार बंदि रबासीऐ ॥५॥

साहा सबि निघ्राउ भनि बसाईऐ ।

लिखिआ पलै पाइ गरहु बजाइऐ ॥६॥

मनमुखीआ सिरि मार बादि लपाईऐ ।

ठगि सुठी कृड़िआर बंदि बलाईऐ ॥७॥

साहिबु रिबै बसाइ न पछोतावही ।

गुनहा बलसएहाक सबहु कमावही ॥८॥

नानकु मंगै सबु गुरमुखि धालीऐ ।

मैं तुम्ह बिनु अवरु न कोइ नदरि निहासीऐ ॥९॥१६॥

बलनेत्राले (मुसाफिर) (अपना) रास्ता बदल-बदल कर चलते रहते हैं । संसार (व्यर्थ के) प्रपंचों में पड़ा रहता है, (उसे) सत्य (परमात्मा) प्यारा नहीं लगता ॥ १ ॥

(तुम) क्यों (व्यर्थ) भटकते हो ? क्यों (व्यर्थ) दूँदूँते हो ? गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा ने अपने आप को) दिखा दिया है । (सच्चा शिष्य) ममता और मोह का विसर्जन करके (अपने वास्तविक) घर में आ गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सत्य परमात्मा सत्य द्वारा मिलता है, भूत से नहीं पाया जाता है, (ऐ साधक), सत्य (परमात्मा) से ही चित्त लगाओ, (ताकि इस संसार में) फिर न आओ ॥ २ ॥

मृत व्यक्ति के लिए क्यों रोते हो ? (तुम) रोना भी नहीं जानते । सत्य (परमात्मा) की स्तुति करने में रोओ, (जिससे उसके) हुकम को पहचान लो ॥ ३ ॥

(जो हरी के) हुकम में तनखाह (भक्ति-दान) लिखा के भ्राया है, (उसी का इस संसार में) घाना (जन्म लेना) (सायंक) समझो । (जो) (परमात्मा के) हुकम को मानता है, (उसके) पल्ले (नाम रूपी) लाभ पड़ता है ॥ ४ ॥

(यदि हरी को) अच्छा लगे, तो हुकम में ही (पुण्यत्मा) दरबार में प्रतिष्ठा के बंधन (सिरोपा) पहनता है और हुकम के ही अंतर्गत (कुछ पापी मनुष्यों के) सिर पर परमात्मा के बन्दीखाने में मार पड़ती है ॥ ५ ॥

सत्य व्याय का वह लाभ मिलता है कि (परमात्मा को) मन में बसा लिया जाय । यदि अहंकार को गंवा दिया जाय, (तो परमात्मा द्वारा) लिखा हुआ (सुन्दर भाग्य) पल्ले पड़ता है ॥ ६ ॥

मनमुखों के सिर पर मार पड़ती है और भगड़े में ही (वे) खप जाते हैं । झूठी (दुनियाँ) ठगी जाकर लूटी जाती है (और) बांध कर बलाई जाती है ॥ ७ ॥

(जो) साहब (परमात्मा) को (अपने) हृदय में बसाता है, उसे पछताना नहीं पड़ता । (यदि गुरु के) शब्द को कमाई की जाय, (तत्पर्य यह कि उस पर आचरण किया जाय), (तो हरी) (समस्त) गुनाहों (पापों) को क्षमा कर देता है ॥ ८ ॥

बाबक (तो उब) स्कृप को बाँगता है (जो) गुरु की शिक्षा द्वारा कमाया जाता है ।
मेरे तो तेरे बिना और कोई नहीं है, (अपनी) कृपा-दृष्टि से मुझे देल ले ॥ ६ ॥ १६ ॥

[१७]

किष्ठा जंगल डूबी जाइ मै घरि मनु हरीप्रावला ।
सचि टिकै घरि भाइ सबवि उतावला ॥१॥

जह बेला तह सोइ अबरु न जाणीऐ ।
गुर की कार कमाइ महलु पछाणीऐ ॥१॥ रहाउ ॥

आपि मिलावै सनु ता मनि भावई ।
बलै सदा रजाइ अंकि समावई ॥२॥

सचा साहिबु मनि बसै बसिआ मनि सोई ।
आपे बे बडिआईआ बे तोटि न होई ॥३॥

अबे तबे की चाकरी किउ दरगह पावै ।
पयर की बेड़ी जे बडै भर नालि मुडावै ॥४॥

आपनड़ा मनु वेचीऐ सिख बीजै नाले ।
गुरमुखि वसतु पछाणीऐ अपना घरु भाले ॥५॥

जंमल भरणा आखीऐ तिनि करतै कीआ ।
आपु गवाइआ मरि रहे किरि मरगु न थीआ ॥६॥

साई कार कमावली गुर की कुरमाई ।
जे मनु सतिगुर बे मिले किनि कीमति पाई ॥७॥

रतना पारलु सो धरणी तिनि कीमति पाई ।
नामक साहिबु मनि बसै सबी बडिआई ॥८॥ १७ ॥

मैं जंगल में (परमात्मा को) क्या ढूँढने जाऊँ ? मेरे घर में ही हराभरा जंगल है ।
(गुरु के) शब्द द्वारा मन में सत्य शीघ्र ही टिक जाता है ॥ १ ॥

(मैं) जहाँ देखता हूँ, वहाँ वही (हरी) है; (मैं) हरी को छोड़ कर) और को नहीं जानता । गुरु के कार्य को करने से (हरी का) महल पहचाना जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि सत्य (परमात्मा) स्वयं अपने से (साधक को) मिलादे, तभी (उसे—साधक को) (सत्य) प्रिय लगता है । (सत्य प्रिय लगने से) (वह) (परमात्मा की) मर्जी के अनुसार चलता है, (जिसके फलस्वरूप) (वह) (हरी के) भंग में समा जाता है ॥ २ ॥

(जिसके) मन में सच्चा साहब (हरी) निवास करता है, (वह) (अपने) मन में ही निवास करता है, (अर्थात् उसका मन हरी स्वरूप हो जाता है और शिष्य उसी में स्थित होकर परमात्मा का निरन्तर मुख लेता रहता है) । (हरी) स्वयं ही बड़ाई प्रदान करता है, उसके देने में किसी प्रकार की कमी नहीं आती ॥ ३ ॥

जिन्हें “अबे तबे” (कहकर सम्बोधित किया जाता है) (ऐसी) नौकरी (करने वाले, संसार में आसक्त पुरुषों को) किस प्रकार (परमात्मा का) बरबाजा प्राप्त हो सकता

है ? पत्थर को (लदी) नाव में जो (व्यक्ति) चढ़ेगा, (तो वह) (उसके बोझ से) डूब जायगा ॥ ४ ॥

(जब) अपना मन (गुरु के पास) बेच दिया जाय, (और साथ ही) (गुरु को) (अपना) सिर भी सौंप दिया जाय, (तब) गुरु के उपदेश द्वारा अपना घर ढूँढ़ने पर (वास्तविक) वस्तु की पहचान होती है ॥ ६ ॥

(जिसे हम) जन्मना, मरना कहते हैं, (उसे) कर्तार (हरी ने) ही (निमित्त) किया है । यदि (अपने) आपेन (अहंभाव) को नष्ट करके मर जाय, तो फिर मरना नहीं होता ॥ ६ ॥

वही कार्य करना चाहिए, (जिसे करने की) वास्तविक (असली हरी ने) आज्ञा दे रखी है । (यदि) सद्गुरु को मन (की भेंट चढ़ा कर) मिला जाय, तो फिर कोई उसकी कीमत नहीं पा सकता ॥ ७ ॥

वही धनी (मालिक) रत्नों (गुणों) को परखने वाला है; उसी ने कीमत पाई है । हे नानक, (जिसके) मन में साद्व (हरी) बसता है (उसी के पास) सच्ची बड़ाई है ॥ ८ ॥ १७ ॥

[१८]

जिनी नामु बिसारिआ डूजें भरमि भुलाई ।

भूलु छोड़ि डाली सगे किआ पावहि छाई ॥१॥

बिनु नावैं किड छूटीऐ जे जाएँ कोई ।

गुरुमुखि होइ त छूटीऐ मनसुखि पति खोई ॥१॥रहाउ॥

जिनी एको सेबिआ पूरी मति भाई ।

आवि जुगादि निरंजना जन हरि सरणाई ॥२॥

साहिबु मेरा एकु है अबरु नहो भाई ।

किरपा ते सुलु पाइआ साचे परथाई ॥३॥

गुर बिनु किनै न पाइओ केसी कहै कहाए ।

आपि दिखावैं बाटझैं सचो भगती दृढ़ाए ॥४॥

मनसुख जे समझाईऐ भी उमझि जाए ।

बिनु हरिनामु न छूटसी मरि नरक समाए ॥५॥

जनमि भरै भरसाईऐ हरि नामु न लेवैं ।

ताकी कीमति ना पवै बिनु गुर की सेवै ॥६॥

जेही सेव कराईऐ करणी भी साई ।

आपि करे किनु आलीऐ वेखैं बडिआई ॥७॥

गुर की सेवा सो करे जिसु आपि कराए ।

नानक सिरु बे छूटीऐ दरगह पति पाए ॥८॥१८॥

जिन्होंने नाम को भुला दिया है, (वे) द्वैतभाव के भ्रम में भटक रहे हैं। जो मूल (परमात्मा) को छोड़ कर डालियो (सासारिक प्रपंचों) में लग गए हैं, (वे) क्या पावेंगे ? खाक ! ॥ १ ॥

बिना नाम के (कोई) कैसे छूट सकता है ? (जो कोई) जानकार हो, (वही इस बात को ठीक-ठीक) समझ सकता है। (यदि कोई) गुरु द्वारा शिक्षा प्राप्त करे, (तो वही) मुक्त होता है, मनमुख (अपनी) प्रतिष्ठा खो देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिन्होंने एक (परमात्मा) की सेवा की है, हे भाई, (वे) पूर्ण बुद्धि के हैं। निरंजन (हरी) आदि (काल) तथा युग-युगान्तरो से (विराजमान) है। (हम) दास हरी की शरण में आए हैं ॥ २ ॥

हे भाई, मेरा साहब एक है और दूसरा कोई नहीं है। सच्चे (परमात्मा) के दरवाजे (परवाई) पर उसकी कृपा से सुख प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(चाहे) कितना ही कहा कहाया जाय, (किन्तु) गुरु के बिना (हरी को) किसी ने भी नहीं प्राप्त किया है। (परमात्मा) आप ही रास्ता दिखाता है और (हमें) सच्ची भक्ति बढ़ कराता है ॥ ४ ॥

मनमुख को यदि समझाया भी जाय, तो भी (वह) कुमार्ग में ही जाता है। बिना हरिनाम के (मनुष्य) मुक्त नहीं होगा, मरने के पश्चात् वह नरक में प्रविष्ट होता है ॥ ५ ॥

(इस प्रकार) (वह) जन्मता मरता रहता है (और) (आवागमन के चक्र में) भटकता रहता है, (वह) हरि का नाम नहीं स्मरण करता। बिना गुरु की सेवा के (हरि की दृष्टि में) (उसकी) कोई कीमत नहीं पड़ती ॥ ६ ॥

(हरि) जो भी सेवा करावे, वही हमारी सच्ची (करनी) होती है। (हरी) आप ही सब कुछ करता है; (अन्य) किसी को क्या कहा जाय (कि वह कुछ करने वाला है) ? (परमात्मा स्वयं ही) अपनी महत्ता देख देख कर (प्रसन्न होता है) ॥ ७ ॥

(परमात्मा) जिससे स्वयं (सेवा) कराता है, वही (गुरु की) सेवा कर सकता है, (अन्य कोई भी नहीं)। नानक कहते हैं कि (गुरु की) सिर अर्पित कर (शिष्य) (संसार से) छूटता है (और हरी के) दरवाजे पर प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८ ॥ १८ ॥

[१६]

रूढ़ो ठाकुर माहरो रूढ़ी गुरबाली ।

बडे भागि सतिगुरु मिलै पाईऐ पवु निरबाली ॥ १ ॥

मे ओल्हगीआ ओल्हगी हम छोळ थारे ।

जिउ तू राखहि तिउ रहा सुखि नामु हमारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

दरसन की पिआसा घली भारी भनि भाईऐ ।

मेरे ठाकुर हाथि बडिआईआ भारी पति पाईऐ ॥ २ ॥

साचउ दूरि न जाणीऐ अंतरि है सोई ।

जहु देखा तहु रवि रहे किनि कीमति होई ॥ ३ ॥

(परमात्मा के खजाने में) स्थान नहीं प्राप्त होता, वह बूटे (छोटे सिक्कों) के साथ मिल जाता है ॥ ४ ॥

नित्य प्रति खरा (सिक्का) संभाला जाता है और सच्चा सौदा किया जाता है । छोटे (सिक्के) (परमात्मा की) निगाह में ही नहीं आते (धीरे-धीरे) लिये जाकर आग में तपाए जाते हैं ॥ ५ ॥

जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, वे परमात्मा (के ही रूप) हो जाते हैं, (क्योंकि) एक (ही) अमृत का वृक्ष है, (जिसमें) फल भी अमृत के ही लगते हैं ॥ ६ ॥

जिन्होंने (परमात्मा के) अमृत फल को चख लिया है, (वे) सत्य (परमात्मा) में ही तृप्त हो जाते हैं । ऐसे (मनुष्यों में) न (किसी प्रकार का) भ्रम है और भेद है, (उनकी) जिह्वा हरि-रस में रसयुक्त हो गई है ॥ ७ ॥

(तू शुभ कर्मों के फल से) (परमात्मा के) हुक्म से मयोगवश (इस संसार में) आया है, (अतएव) सदैव उसकी मर्जी के अनुसार चल । (हे प्रभु), अवगुणी व्यक्ति को गुण प्राप्त हो प्रारंभ नानक को बढ़ाई (के रूप में) सत्य (प्राप्त हो) ॥ ८ ॥ २० ॥

(२१)

मनु रातउ हरि नाइ सनु बखारिआ ।

लोका दा किआ जाइ जा तुघु भारिआ ॥१॥

जउ लगु जीउ परानु सनु धियाईऐ ।

लाहा हरि गुण गाइ मिले सुखु पाईऐ ॥१॥रहाउ॥

सची तेरी कार बेहि दइभाल तूं ।

हउ जीवा तुघु सालाहि मे टेक अधारु तूं ॥२॥

दरि सेवक दरबानु दरदु तूं जाणही ।

भगति तेरी हैरानु दरदु गवावही ॥३॥

दरगह नामु हूरि गुरमुखि जाणसी ।

बेला सनु पखारु सबदु पछाणसी ॥४॥

सनु संतोखु करि भाउ तोसा हरि नामु सेइ ।

मनहु छोडि बिकार सचा सनु बेइ ॥५॥

सचे सचा नेहु सचै लाइआ ।

आपे करे निआउ जो तिसु भाइआ ॥६॥

सचे साची दाति बेहि दइभालु है ।

तिसु सेवी दिनु राति नामु अमोलु है ॥७॥

तूं उतसु हउ नीनु सेवकु कांदीया ।

नानक नदरि करेहु मिलै सनु बांढीआ ॥८॥२१॥

(मिरा) मन हरिनाम में अनुरक्त हो गया है; (मैं) सत्य (हरि का गुण) वर्णन करता हूँ । (यदि) मैं तुम्हें अच्छा लगता हूँ, (तो उसमें) संसार का क्या जाता है ? ॥ १ ॥

जब तक (शरीर में) जाँव और प्राण है, तब तक सत्य (परमात्मा) का ध्यान करना चाहिए। हरि के गुणगान (करने) से लाभ प्राप्त होता है और सुख की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तेरी सेवा सच्ची होती है, हे दयालु, तू (कृपा करके उस सेवा-वृत्ति को मुझे) प्रदान कर। मैं तेरी स्तुति करके जीवित हूँ। तू ही (मेरा) सहारा और आश्रय है ॥ २ ॥

सेवक (तेरे द्वार का) दरबान है, (उसका) दुःख तू ही जानता है। तेरी भक्ति आश्चर्यमयी है, (वह सारे) दुःखों को दूर कर देती है ॥ ३ ॥

(सेवक) (हरी के) द्वार पर और (उसकी) उपस्थिति में नाम जपता है, (कोई) गुरुमुख ही इसे समझ सकेगा। सच्चा और प्रामाणिक (शिष्य) ही (उपयुक्त) समय पर (गुरु के) शब्द को पहचानेगा ॥ ४ ॥

जो सत्य, संतोष और प्रेम को पाथेय (बनाता है), वही हरि नाम (पाता है)। (यदि) मन में विकार व्याप्त दिए जायें, तो सच्चा (हरी) सत्य (का दान) देता है ॥ ५ ॥

सत्य के प्रति सच्चा ही स्नेह होता है (और उसमें) सत्य (हरी) लगाता है। जैसा (उस परमात्मा को) अच्छा लगता है, वैसा ही (वह) न्याय करता है ॥ ६ ॥

सच्चे (परमात्मा का) सच्चा दान होता है, दयालु (हरि) कृपा करके (इस दान को) देता है। (जिसका) नाम अमृत्य है, उस (परमात्मा को) (मैं) दिनरात सेवा करता हूँ ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), तू उत्तम है, मैं तेरा नीच सेवक कहा जाता हूँ। नानक कहते हैं कि (हे प्रभु) कृपा को दृष्टि करो (जिसमें) बिल्कुले ढुंग को सत्य की प्राप्ति हो ॥ ८ ॥ २१ ॥

[२२]

आवरण जाएगा किउ रहै किउ मेला होई ।

जनम मरण का डुलु धरणी नित सहसा दोइ ॥१॥

बिनु नावे किआ जीवना फिटु धगु चतुराई ।

सनिगुर साधु न सेविआ हरि भगति न भाई ॥१॥रहाउ॥

आवरण जावसु तउ रहै पाइए गुरु पूरा ।

राम नाम धनु रासि बेइ बिनसै भ्रमु कूरा ॥२॥

संत जना कउ मिलि रहै धनु धनु जसु गाए ।

आदि गुरलु अपरंपरा गुरुमुखि हरि पाए ॥३॥

नट्रए सांगु बरणाइआ बाजी संसारा ।

खिए पलु बाजी देखीए उभरत नही बारा ॥४॥

हउमे चउपड़ि खेलणा भूटे ग्रहंकारा ।

सभ जगु हारे सो जिए गुर सबडु बीबारा ॥५॥

जिउ ग्रंथुलै हवि टोहणी हरि नामु हमारे ।

राम नामु हरि टेक है निसि दउत सवारै ॥६॥

जिउ तूँ राखहि निउ रहा हरि नाम अघारा ।

अति सखाई पाइआ जन मुक्ति दुआरा ॥७॥

जनम मरण दुख भेटिआ जपि नाम सुरारे ।

नानक नाम न बीसरै पूरा गुरु तारे ॥८॥२२॥

(संसार में) आना-जाना (जन्मना, मरना) किस प्रकार समाप्त हो (और किस प्रकार प्रभु से) मिलाप हो ? जन्म-मरण का दुःख बहुत भारी है और द्वैतभाव का भ्रम नित्य बना रहता है ॥ १ ॥

बिना नाम के जीवन क्या है ? (सासारिक) चतुराई को फटकार है, धिक्कार है । न तो (तू ने) सद्गुरु अथवा साधु की ही सेवा की (और) न (तुझे) हरिभक्ति ही प्रिय लगी ॥ १ ॥ रहाउ ॥

आना-जाना (जीवन-मरण) तभी समाप्त होता है, जब पूर्ण गुरु को प्राप्त हो । पूर्ण गुरु रामनाम की (अपार) धनराशि प्रदान करता है, (जिसे फलस्वरूप) मिथ्या भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

(साधक) संत-जनों में युक्त होकर रहे (और इस भिन्न के) यज्ञ का गुणगान कृतकृत्य होकर करे तथा आदि पुण्य अपरम्पार हरि को गुरु की शिक्षा द्वारा प्राप्त करे ॥ ३ ॥

(जिस प्रकार) मदारी स्वाग रचता है, (उसी प्रकार) यह संसार भी खेल है । (किंचित्) क्षण, पल भर (यह खेल) देखा जाता है, उसे नष्ट होने में कुछ देर नहीं लगती ॥ ४ ॥

भूत और अहंभाव में (पड़कर) (सारा संसार) अहंकार की चौपट खेलता है । (इस खेल में) सारा जगत् हार जाता है, वही जीतता है जो गुरु के शब्द (उपदेश) पर विचार करता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अंधे क हाथ में छड़ी (महारा) होती है, (वैसे ही) हमारा (आधार) हरिनाम है । रात-दिन राम और हरि का नाम ही मेरा सहारा है; (वही मुझे) संवारता है ॥ ६ ॥

(हे प्रभु), जिस भाँति तू रखता है, (उसी भाँति) मैं रहता हूँ, (मेरा तो) हरिनाम ही आधार है । दाम की अंत समय का साथी और मुक्ति का द्वार (हरी) प्राप्त हो गया है ॥ ७ ॥

मुरारी (परमात्मा) का नाम जपने से जीवन-मरण के दुःख मिट गए हैं । नानक कहते हैं कि (जिसे) नाम नहीं भूलता, (उसे) पूर्ण गुरु (संसार से) तार देता है ॥ ८ ॥ २२ ॥

१० सतिगुर प्रसादि ॥ रागु आसा, महला १, पटी लिखी ॥

मसै सोइ मूढि जिन साजी समरा साहिबु एकु भइआ ।

सेबत रहे चितु जिन का लागी आइआ तिन का सकलु भइआ ॥१॥

मन काहे भूले झूड़ मना ।
 जब लेखा बेवहि बीरा तउ पड़िआ ॥ १॥
 ईबड़ी आदि पुरखु है दाता आपे सचा सोई ।
 एना अखरा महि जो गुरमुखि बूझै तिसु सिरि लेखु न होई ॥ २॥
 ऊई उपमा ता की कीजै जा का अंतु न पाइआ ।
 सेवा करहि सेई फलु पावहि जिन्हो सतु कमाइआ ॥ ३॥
 ङई डिआतु बूझै जे कोई पड़िआ पंडितु सोई ।
 सरब जोआ महि एको जाएँ ता हउमै कहै न कोई ॥ ४॥
 ककै केस पुंडर जब हूए विगु साबुणै उजलिआ ।
 जम राजे के हेरु आएँ माइआ कै संगलि बंधि लइआ ॥ ५॥
 खलै खुदकारु साह अलसु करि खरीदि जिनि खरखु दीआ ।
 बयनि जाकै सभु जगि बाधिआ अचरी का नही हुकसु पइआ ॥ ६॥
 गगै गोड गाइ जिनि छोडी गली गोबिंदु गरबि भइआ ।
 घड़ि भाडे जिनि आबो साजो चाड़ण वाहै नई कीआ ॥ ७॥
 घघै घाल सेवकु जे घालै सबदि गुरु कै लागि रहै ।
 बुरा भला जे सम करि जाएँ इन बिधि साहिबु रमतु रहै ॥ ८॥
 चचै चारि वेद जिनि साजे चारे खाली चारि जुगा ।
 जुगु जुगु जोगी खाली भोगो पड़िआ पंडितु आपि थोआ ॥ ९॥
 छछे छाइआ बरती सभ अंतरि तेरा कीआ भरसु होआ ।
 भगमु उपाइ भुलाई अतु आपे तेरा करसु होआ तिन गुरु मिलिआ ॥ १०॥
 जजै जानु मंगत जानु जाचै लख चउरासीह भोख भविआ ।
 एको लेवै एको बेवै अवरु न दूजा मै सुणिआ ॥ ११॥
 झझै झूरि मरहु किआ प्राणी जो कितु बेला सु बे रहिआ ।
 बे बे वेखै हुकसु चलाए जिउ जोआ का रिजकु पइआ ॥ १२॥
 जजै नदरि करे जा देखा दूजा कोई नाही ।
 एको रवि रहिआ सभ याई एकु वसिआ मन साही ॥ १३॥
 टटै टंतु करहु किआ प्राणी घड़ो की मुहति कि उठि चतरा ।
 जूऐ जनसु न हारहु अपणा भाजि पड़हु तुम हरि सरणा ॥ १४॥
 ठठै ठाडि बरती तिन अंतरि हरि चरणी जिन का चितु लाग़ा ।
 चितु लाग़ा सेई जन निसतरे तउ परसादी सुखु पाइआ ॥ १५॥
 डडै डंकु करहु किआ प्राणी जो कितु होआ सु सभु चलाए ।
 तिसै सरेबहु ता सुखु पावहु सरब निरंतरि रवि रहिआ ॥ १६॥
 ढढै ढाहि उसारै आपे जिउ तिसु भावै तिवै करे ।
 करि करि वेखै हुकसु चलाए तिसु निसतरे जा कउ नदरि करे ॥ १७॥

एणै रबतु रहै घटि अंतरि हरि गुरा गावै सोई ।
 आपे आपि मिलाए करता पुनरपि जनमु न होई ॥ १८ ॥
 तसै नाह भवजलु होया ता का अंतु न पाइआ ।
 ना तरना तुलहा हम बूडसि तारि लेइ तारण राइआ ॥ १९ ॥
 धधै थानि थानंतरि सोई जा का कीआ सभु होआ ।
 किआ भरमु किआ माइआ कहीऐ जो तिसु भावै सोई भला ॥ २० ॥
 दवै दोसु न देऊ किसै दोसु करमा आपरिआ ।
 जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ॥ २१ ॥
 धधै धारि कला जिनि छोडी हरि चीजी जिनि रंग कीआ ।
 तिस दा दीआ सभनी लीआ करमी करमी हुकुमु पइआ ॥ २२ ॥
 ननै नाह भोग नित भोगै ना डोठा ना सम्हलिआ ।
 गली हउ सोहागणि भेरी कंतु न कबहूँ मै मिलिआ ॥ २३ ॥
 पपै पातिसाहु परमेसरु वेखण कउ परपंचु कीआ ।
 देखै बूझै सभ किछु जाएँ अंतरि बाहरि रवि रहिआ ॥ २४ ॥
 फकै काही सभु जगु फासा जम कै संगलि बंधि लइआ ।
 गुरपरसादी से नर उबरे जि हरि सरणागति भजि पइआ ॥ २५ ॥
 बबै बाजी खेलण लागा चउपड़ि कीते चारि जुगा ।
 जोअ जंत सभ सारी कीते पासा ढालणि आपि लगा ॥ २६ ॥
 भभै भालहि से फलु पावहि गुरपरसादी जिन कउ भउ पइआ ।
 मनमुख फिरहि न चेतहि मूढ़े लख चउरासीह केरु पइआ ॥ २७ ॥
 मंमै मोहु मरगु मधुसूदनु मरगु भइआ तब चेतविआ ।
 काइआ भोतरि अवरो पड़िआ मंमा अखरु बीसरिआ ॥ २८ ॥
 ययै जनमु न होबो कदही जे करि सचु पछाणै ।
 गुरमुखि आलै गुरमुखि बूझै गुरमुखि एको जाएँ ॥ २९ ॥
 रारै रवि रहिआ सभ अंतरि जेतै कीआ जंता ।
 जंत उपाइ धंधै सब लाए करमु होआ तिन नामु लइआ ॥ ३० ॥
 ललै लाइ धंधै जिनि छोडी मोठा माइआ मोहु कीआ ।
 खाला पीणा सम करि सहणा भालै ता कै हुकुमु पइआ ॥ ३१ ॥
 बबै वासुदेउ परमेसरु वेखण कउ जिनि वेसु कीआ ।
 बेले चालै सभु किछु जाएँ अंतरि बाहरि रवि रहिआ ॥ ३२ ॥
 झड़ै राड़ि करै किआ प्राणी तिसहि धिआवहु जि अमरु होआ ।
 तिसहि धिआवहु सबि समावहु ओसु विटहु कुरुबाणु कीआ ॥ ३३ ॥
 हाहै होरु न कोई दाता जोअ उपाइ जिनि रिजकु बीआ ।
 हरि नामि धिआवहु हरि नामि समावहु अनविनु लाहा हरिनामु लीआ ॥ ३४ ॥

आइइ आपि करे जिनि छोडी जो किछु करणा सु करि रहिआ ।

करे कराए सभ किछु जाहो नानक साइर इव कहिआ ॥ ३५ ॥ १ ॥

विशेष : पट्टी के ऊपर बानक अक्षरों को लिखना सीखते हैं । इस बाणि का नाम पट्टी है । इसमें गुरुमुखी लिपि के पैंतीस अक्षरों को क्रमानुसार लेकर उपदेश दिया गया है । गुरु नानक देव की यह रचना सबसे पहली मानी जाती है । उन्होंने यह बाणी अपने अध्यापक से कही है । इसमें गुरुमुखी के पैंतीस अक्षर आ गए हैं ।

अर्थ : 'ससा' (स) (का अभिप्राय) उस (परमात्मा) से है, जिसने सृष्टि की रचना की है (और जो) सब का स्वामी है । जिनका चित्त (उस परमात्मा में) लग गया है, (वे उसकी निरन्तर) सेवा करते रहते हैं और उन्हीं का इस संसार में आना (जन्म लेना) भी सार्थक हो गया है ॥ १ ॥

हे मन, मूर्ख मन, (तू) (उस हरी को) क्यों भूलता है ? (क्या इसीलिए तू पड़ गया है) ? भाई, तू पड़ा हुआ तब समझा जायगा, जब अपने कर्मों का पूरा पूरा हिसाब चुका देगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

'ईअड़ी' (ई) (का अभिप्राय यह है) कि आदि पुरुष (ही एकमात्र) दाता है, वह (परमात्मा) आप ही सच्चा है । जो गुरु द्वारा दीक्षित (शिष्य) इन अक्षरों में (हरी को) समझ लेता है, (तात्पर्य यह है कि विद्या द्वारा परमात्मा को समझ लेता है) उसके सिर पर (किसी कर्म का) हिसाब नहीं रहता ॥ २ ॥

'ऊडे' (ऊ) (अर्थ यह है कि) (उनकी) उपमा उससे की जाय, जिसका कहीं अन्त न प्राप्त हो (ऐसी उपमा कोई है नहीं, क्योंकि सभी वस्तुएँ, देशकाल के अन्तर्गत हैं । अतएव परमात्मा 'निरुपमेय' है) । जिन्होंने (सद्गुरु की) सेवा की है और सब की कमाई की है, (वे ही) (मोक्ष) फल पाने हैं ॥ ३ ॥

'इडा' (ड) :—जो ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) जानता है, वही (वास्तविक) पढ़ा हुआ पंडित है । (यदि कोई) सारे जीवों में एक (परमात्मा) को जानता है, तो (वह) अहंकार (की बातें) नहीं कह सकता (कि यह बात मैंने की है) ॥ ४ ॥

'कक्का' (क) : जब केश ध्वेत हो गए और साबुन लगाए बिना ही सफेद हो गए, (वृद्धावस्था आ गई), (तो यह समझना चाहिए कि) यमराज के दूत (पकड़ने के लिए) आ गए हैं (और उन्होंने उस व्यक्ति को) माया की जंजीरों में बाँध लिया है ॥ ५ ॥

'खक्खा' (ख) (का तात्पर्य) :—खुदाबंदकार (कर्तार) दुनिया का बादशाह है, (जिसने मनुष्य को) खरीद कर (भाव यह कि अपना सेवक बना कर) (इस संसार में) खर्च देकर (बेजा है) । जिसके बन्धन में सारा जगत बंधा है, (उसी का हुक्म चलता है), किसी और का हुक्म नहीं चलता ॥ ६ ॥

'गग्गा' (ग) (का तात्पर्य) :—गोविन्द की बाणी, जिन्होंने, गाने छोड़ दी है, वे बातों का ही गर्व करते हैं । (ऐसे कच्चे मनुष्यों को) (सृष्टि का रचयिता) गढ़े हुए बरतन की भाँति आँबों में पकाने के लिए तैयार करेगा, (अर्थात् उन्हें कठोर यंत्रणाएँ देगा) ॥ ७ ॥

'घग्घा' (घ) (का तात्पर्य) : जो सेवक (गुरु के कार्यों) में परिश्रम करता है (वह)

गुरु के शब्द में लगा रहता है। जो बुरे भले को समान भाव से जानता है, वह इस विधि से साहब (परमात्मा) के साथ (सदैव) रमण करता रहता है ॥ ८ ॥

‘बच्चवा’ (ब) (का अभिप्राय) : चार वेदों, चार खानियों (झंडज, जेरज, स्वेदज तथा उद्भिज) तथा चार युगों की रचना जिसने की है, (वह हरी) युग-युगान्तरो से (प्राप हो) निलिप्त (योगी) (बना रहता) है, (और प्राप ही) (चारों) खानियों (के जीव-जन्मों के माध्यम से) भोगी (भोक्ता) बना हुआ है (तथा प्राप ही) पढ़ लिख कर पंडित भी (बना हुआ) है ॥ ९ ॥

‘छच्छा’ (छ) (का तात्पर्य) : छाया (अविद्या) सारे (जीवों के अंतर्गत) बरत रही है, (अविद्या-जनित) भ्रम भी तैरा ही किया हुआ है। (इस प्रकार) भ्रम उत्पन्न करके (तु ने ही) (सब को) (माया में) भटकवा दिया है, (जिसके ऊपर) तेरी कृपा होती है, उसी को गुरु मिलता है, (जिसके फलस्वरूप वह अविद्या से पार हो जाता है) ॥ १० ॥

‘जज्जा’ (ज) (का अभिप्राय) : याचक (मांगता) दास (वह) ‘ज्ञान’ मांगता है, (जिसकी) भिक्षा के निमित्त (वह) बीरासी लाख योनियों में भटकता फिरता रहा है। एक (हरी) लेता है और एक ही देता है, मैंने दूसरे (लेने-देनेवाले) को नहीं सुना है ॥ ११ ॥

‘झझा’ (झ) (का आशय) : हे प्राणी, ‘झुलस’ ‘झुलस’ कर (दुःखी होकर) क्यों मर रहे हो ? जो कुछ उसे देना है, (उसे वह) (बराबर) देता जा रहा है। जिस जिस प्रकार जीवों की रोजी (खुराक) नियत है, (उसी के अनुसार वह) देता है, देखता है (संभालता है) और (अपना) हुक्म चलाता है ॥ १२ ॥

‘ज्जा’ (ज) (का अभिप्राय) : ‘नजर’ करके (गुरु के साथ) जब देखता हूँ, (तो हरी को छोड़ कर) और कोई दूसरा नहीं (दिखाई पड़ता)। एक (हरी ही) सभी स्थानों में रमा हुआ है (और) एक (हरी ही) (सभी) के मन में बस रहा है ॥ १३ ॥

‘ट्टा’ (ट) (का यह अभिप्राय है कि) : ऐ प्राणी, क्या ‘टंच’ (व्यर्थ का धन्या) कर रहे हो ? एक घड़ी अथवा एक मुहूर्त में (तुम्हें यहाँ से) उठकर चला जाना है। तुम (जीवन के) जुए में अपने जन्म (की बाजी) मत हारो, तुम (शीघ्रातिशीघ्र) भग कर हरी की शरण में पड़ जाओ ॥ १४ ॥

‘ठठा’ (ठ) (का आशय) : ‘ठंडक’ (गोतलता, मन की शान्ति) उन्हीं के हृदय में बिराजमान है, जिनका चित्त हरि के चरणों में लगा हुआ है। (हे प्रभु), जिनका चित्त (तेरे चरणों में) लगा है, वे ही प्राणी तर गए हैं, तेरी कृपा से ही (उन्हीं) सुख प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥

‘डड्डा’ (ड) (का मतलब यह है कि) : हे प्राणी, दंभ (‘डफ’) क्यों कर रहे हो ? जो कुछ भी (रचा) हुआ है, वह सब चलनेवाला है, (नश्वर है), (अतएव), (जो परमात्मा) सब में निरन्तर रम रहा है, उसी की सेवा करो, तभी सुख पावोगे, (अन्यथा नहीं) ॥ १६ ॥

‘ढढढा’ (ढ) (का अभिप्राय यह है कि) : (हरी) स्वयं ही ‘ढाहता’ है (नष्ट करता) है (और स्वयं) निर्माण करता है; उसे जैसा अच्छा लगता है, (वह) वैसा ही करता है। (वह हरी अपनी सृष्टि) रच-रच करे, उसे देखता है (संभालता) रहता है (और अपना) हुक्म (सब पर) चलाता रहता है, जिसके ऊपर अपनी कृपादृष्टि करता है, उसका निस्तार कर देता है ॥ १७ ॥

‘रांगण’ (ण) (का अर्थ यह है कि) : जिसके घट (हृदय के) अंतर्गत (हरी) रम रहा है, (वही) उसके गुण गाता है । (वह) कर्त्ता (पुरुष) आप ही अपने मे (साधक को) मिला लेता है, (जिससे उसका) जन्म पुनः नहीं होता है ॥ १८ ॥

‘तत्ता’ (त) (का अर्थ यह है कि) : यह संसार-जल (भव-सागर) अथाह [“तारू”= जो तेरे बिना न पार किया जा सके, अथाह, गहरा] है, उसका अंत (थाह) नहीं पाया जा सकता । (हे प्रभु), न तो (हम) तेरना (जानते हैं), न (हमारे पास पार उतरने का कोई) बेटा ही है, (अतः) हम डूब जायेंगे, हे तारने के राजा (हरी), (हमे) तार ले ॥ १९ ॥

‘यत्या’ (य) (का भाव यह है कि) ‘स्थान-स्थानान्तरो’ मे वही (हरी व्याप्त) है, उसी के करने से सब कुछ हुआ है । (अतएव) किमे भ्रम कहा जाय और किसे माया ? जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वही भला है ॥ २० ॥

‘दटा’ (द) (का साराश यह है कि) (मैं) किसी को ‘दोष’ न दूँ, दोष अपने ही कर्मों का है । जो कुछ मैंने (पूर्व जन्मो मे) किया है, (वही) मैं (इस जन्म मे) पा रहा हूँ, (अतएव) किसी और को दोष नहीं देना चाहिए ॥ २१ ॥

‘धट्टा’ (ध) (का अर्थ यह है कि) जिस (हरी) ने अपनी शक्ति टिका रखी है और हर एक चीज विभिन्न रंग की उत्पन्न की है, (उस परमात्मा) का दिया हुआ सभी लेने हे, (प्रत्येक के) कर्मानुसार (हरी) का हुक्म चढ़ा हुआ है ॥ २२ ॥

‘नन्ता’ (न) (का सार तत्व यह है कि) ‘नाह’—पति (परमात्मा) (मुहागिनी स्त्रियो के साथ) नित्य भोग भोगता है, (किन्तु मैंने) न तो (उसे) देखा है और न स्मरण ही किया है । हे बहिनो, मैं तो केवल बातों की ही मुहागिनी हूँ, (मैं) कन्त से कभी नहीं मिलती हूँ ॥ २३ ॥

‘पप्पा’ (प) (का अभिप्राय यह है कि) ‘पातशाह’ (बादशाह) परमेश्वर ने देखने के लिए प्रपंच (पंच तत्त्वों का विस्तार, जगत्) का निर्माण किया है । (वह परमेश्वर ही) सब कुछ देखता है, समझता है और जानता है, (और वही जड़-चेतन के) भीतर बाहर रम रहा है ॥ २४ ॥

‘फफा’ (फ) (का अर्थ यह है कि) सारा जगत् ‘फाही’ (पाश, बन्धन) मे फँसा हुआ है और यमराज की साँकल मे बंधा हुआ है । गुरु की कृपा से (इस संसार से) वे ही मनुष्य बचते हैं, जो भग कर हरी की शरण मे पड़ गए हैं ॥ २५ ॥

‘बब्बा’ (ब) (का मतलब यह है कि) (हरी ने) चारों युगों को चौपट बना कर (खेल को) ‘बाजी’ खेलनी प्रारम्भ की है । सारे जीव-जन्तुओं को (उसने अपने इस खेल का) मुहरा बनाया है और स्वयं ही पासा ढालना प्रारम्भ किया है [तात्पर्य यह है कि परमात्मा ने स्वयं ही काल को चार युगों—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग—मे बाँट कर संसार बनाया है और स्वयं ही जीवों को अपने हुक्म के अनुसार इधर-उधर चलाता रहता है ।] ॥ २६ ॥

‘भम्भा’ (भ) (का भाव यह है कि) जो (व्यक्ति) (उस हरी को) खोजते हैं (‘भालते हैं’), वे ही (मोक्ष—)फल पाते हैं; गुरु की कृपा से जिन्हें (परमात्मा का) भय लगता है, (वे ही मुक्तिफल पाते हैं) । मनमुख इधर-उधर फिरते रहते हैं; वे मूर्ख (परमात्मा) को नहीं

चेतते (स्मरण करते), (जिस कारण) चौरासी लाख योनियों में (बारबार) केरा लगाते रहते हैं ॥ २७ ॥

‘मम्मा’ (म) (का तात्पर्य यह है कि) मोह (के बशीभूत होकर) ‘मरण’ और ‘मधु-सूदन’ को (मनुष्य ने) तभी चेता (स्मरण किया), जब मरणकाल आ पहुँचा । (जब तक) शरीर के भीतर (जान थी), (तब तक) (वह) और ही कुछ पढ़ता रहा, (तात्पर्य यह कि विषय-विकारों में रत रहा) और ‘म’ मसर को ही भूल गया था, (भाव यह है कि ‘म’ वरों से प्रारम्भ होने वाले ‘मरण’ और ‘मधुसूदन’ याद ही न रहे) ॥ २८ ॥

‘यय्या’ (य) (का आशय यह है कि) यदि (साधक) सत्य को पहचान ले, तो फिर कभी जन्म नहीं हो सकता । (ऐसा शिष्य) गुरु के उपदेश को ही कहता है, गुरु की शिक्षा को ही समझता है और गुरु की शिक्षा द्वारा एक (हरी) को ही जानता है ॥ २९ ॥

‘ररी’ (र) (का मन्तव्य यह है कि) (हरी) ने जितने जीवों की रचना की है, (उन) सभी के अन्तर्गत वह ‘रम’ रहा है । (उसी हरी ने) जीवों को उत्पन्न करके, उन सब को (अपने-अपने) धंधों में लगाया है, (जिनके ऊपर उसकी) कृपा होती है, वे ही नाम लेते हैं ॥ ३० ॥

‘लल्ला’ (ल) (का अर्थ यह है कि) जिसने (हरी ने) (सभी जीवों) उनके धंधों में ‘लगा’ कर छोड़ दिया है और माया के मोठे आकर्षणों तथा मोह को बनाया है । अतएव खाने-पीने आदि को (तात्पर्य यह है कि) सुख भोगने हों तथा अन्य दुःख सहन करने हो उन्हें) सम भाव से ही सहन करना चाहिए (और यह भावना करनी चाहिए) कि उसकी इच्छा के हुक्म के अनुसार सब कुछ हो रहा है ॥ ३१ ॥

‘बब्बा’ (ब) (का मतलब यह है कि) ‘बामुदेव’ परमेश्वर ने देखने के निमित्त अनेक वेश धारण किया है । (वही बामुदेव, परमेश्वर अनेक वेश धारण करके) सब को देखता है, चखता है (रसास्वादन करता है) और सब कुछ जानता है; (वही) (सब के) भीतर-बाहर रम रहा है ॥ ३२ ॥

‘डडा’ (ड) (से यह माने है कि) हे प्राणी, तुम क्यों ‘रार’ (भगड़ा) कर रहे हो ? (तुम) उसका ध्यान करो, जो अमर है । उसी (हरी) का ध्यान करो और सत्य (परमात्मा) में समाहित हो जाओ और उसके ऊपर (अपने को) कुरबान कर दो ॥ ३३ ॥

‘हाहा’ (ह) (से यह समझो कि) (हरी को छोड़ कर) कोई और (‘होहा’) दाता नहीं है; उसी ने जीवों को उत्पन्न करके उनकी रोटी (भोजन, कुराक) दी है । (अतएव) हरी नाम का ही स्मरण करो, हरिनाम में समाहित हो जाओ और रात दिन हरि नाम का ही लाभ ग्रहण करो ॥ ३४ ॥

‘माइडा’ (मा) (से अभिप्राय यह है कि) जिस (प्रभु) ने ‘आप ही’ सब सृष्टि बना रक्खी है, वही जो कुछ करने को है, सब कुछ करता है । नानक कवि इस प्रकार कहते हैं कि वह सब कुछ करता करता है और सब कुछ जानता है ॥ ३५ ॥ १ ॥

[विशेष एकाग्र स्थान पर गुरु नानक देव ने अपने लिए ‘शायर’ शब्द का प्रयोग भी किया है; उदाहरणार्थ—“नानक साहब इव कहतु है सचे परबदगारा” (धनासरी, मूला १)] ।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु आसा, महला १, छंत, घरु १ ॥

(१)

मुंघ जीबनि बालझोए मेरा पिरु रलीआला राम ।
 धन पिर नेहु घणा रसि प्रीति दइआला राम ।
 धन पिरहि मेला होइ सुआमी आपि प्रभु किरपा करे ।
 सेजा सुहावी संगि पिर कै सात सर अंमृत भरे ॥
 करि दइआ मइआ दइआल साचे सबदि मिलि गुण गावहो ।
 नानका हरि वरु देखि बिगसी मुंघ मनि ओमाहओ ॥ १ ॥
 मुंघ सहजि सलोनझोए इक प्रेम बिनंती राम ।
 मे मनि तनि हरि भावै प्रभ संगमि राती राम ॥
 प्रभि प्रेम राती हरि बिनंती नामि हरि कै सुखि वसै ।
 तउ गुण पछाणहि ता प्रभु जाणहि गुणह बसि अवगण नसै ॥
 तुध बाभु इकु तिलु रहि न साका कहणि सुनणि न धीजए ।
 नानका प्रिउ प्रिउ करि पुकारे रसन रसि मनु भीजए ॥ २ ॥
 सखीहो सहेलझीहो मेरा पिरु वणजारा राम ।
 हरिनामु वणजझिआरसि मोलि अपारा राम ॥
 मोलि अमोला सच धरि ढोलो प्रभ भावै ता मुघ भली ।
 इकि संगि हरि कै करहि रलीआ हउ पुकारी दरि खली ॥
 करण कारण समरव लोधर आपि कारजु सारए ।
 नानक नदरो घन सोहागणि सबबु अम साधारए ॥ ३ ॥
 हम घर साचा सोहिलड़ा प्रभ आइअड़े भीता राम ।
 रावे रंगि रातझिआ मनु लीअड़ा दीता राम ॥
 आपणा मनु दीआ हरि वरु लीआ जिउ भावै तिउ रावए ।
 तनु मनु पिर आगै सबदि सभागै धरि अंमृत फलु पावए ॥
 बुधि पाठि न पाईए बहु चतुराईए भाइ मिलै मनि भाए ।
 नानक ठाकुर मोत हमारे हम नाही लोकारे ॥ ४ ॥ १ ॥

ये जीवन मे (उन्मत्त) मुग्ध बाले, मेरा पति राम आनन्दी स्वभाव वाला है ।
 (यदि जीव रूपी) स्त्री मे पति का गहरा प्रेम हो, तो दयालु पति 'राम' प्रसन्न होकर (अपनी)
 प्रीति (प्रदान करता) है । फिर प्रभु-पति आप कृपा करता है और स्त्री का पति के साथ मेल
 होना है । प्रियतम के साथ मे (उसकी) सेज सुहावनी (लगती) है, (और) स्त्री के सातों
 सरोवर (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि) अमृत से भर जाते है । (हे) दयालु (प्रभु) (मेरे
 ऊपर) दया और ममता करो, ताकि मैं (गुरु के) सच्चे शब्द से मिलकर, (तुम्हारा) गुण-
 गान करूँ । नानक कहते हैं कि हरि-वर (पति) को देखकर स्त्री बहुत अधिक प्रसन्न हुई है
 (और उसके) मन में बहुत उत्साह है ॥ १ ॥

हे स्वाभाविक सौन्दर्यवाली स्त्री, मेरी एक प्रेमपूर्ण प्रार्थना है कि राम (में मेरा सहज और एकनिष्ठ अनुराग हो) । मुझे तन-मन से हरि प्रिय लगे और प्रभु राम के सगम में नित्य अनुरक्त रहूँ । (मैं) (नित्य) प्रभु के प्रेम में अनुरक्त रहूँ, हरि की ही प्रार्थना (करूँ) और हरि का नाम सहज भाव से (सुखपूर्वक) (मेरे हृदय में) वास करे । (यदि) तू भी उसके गुणों को पहचानो, तो उसे प्रभु समझ कर जानने लगोगी, (जिसके फलस्वरूप तुम्हारे हृदय में) गुण बस जायेंगे और अवगुण नष्ट हो जायेंगे । (हे प्रभु), (सच्ची अनुरागिनी स्त्री) तेरे बिना तिल मात्र (एक निमिष) भी नहीं रह सकती । उसे कहने सुनने से धैर्य नहीं प्राप्त होता । नानक कहते हैं (कि वह स्त्री) (अहर्निश) “हे प्रिय, हे प्रिय” कह कर पुकारती है, जिसमें (उसकी) रसना रसमयी हो जाती है और मन (प्रेम में) भीग जाता है ॥ २ ॥

हे सखी-सहेलियो, (मेरा) प्रियतम, राम, (अनोखा) बनजारा है । (वह) हरिनाम का व्यापार करता है, वह राम (नाम) रस (आनन्द) और मूल्य में अपार है । प्यारा प्रभु जो मूल्य में अमूल्य है और सत्य के घर में (रहता है); (यदि) वह चाहे, (तो) (जीव रूपी) स्त्री भली हो जाती है । कुछ (मुहागिनी स्त्रियाँ) (पति) हरी के सग में आनन्द कर रही हैं, (और मैं मुहागिनी) (उसके) दरवाजे पर खड़ी होकर पुकारती हूँ । श्रीधर (परमात्मा) सभी कारणों का कारण है और समर्थ है, वहाँ (सारे) कार्यों को संवारता है । नानक कहते हैं कि (जिसके ऊपर परमात्मा की) कृपादृष्टि पड़े, तो (वह स्त्री) मुहागिनी हो जाती है और शब्द उसके अन्तःकरण को संवारता है (सुधारता है) । ॥ ३ ॥

हमारे घर में सच्चा ‘सोहिला’ (लुगी का गीत) (गाया जा रहा है), (क्योंकि) प्रभु तथा मित्र राम, (हमारे घर में) आ गए हैं । प्रेम में अनुरक्त (पति-परमात्मा) (मेरे साथ) रमण कर रहा है, मैंने (उस पति) राम का मन ले लिया है (और अपना मन) उसे दे दिया है । अपने मन को देकर, हरि रूपी वर को (प्राप्त कर) लिया है । (अब उसे) जैसा अच्छा लगता है, वैसे ही (मेरे साथ) रमण करता है । (जो जीवात्मा रूपी स्त्री) प्रियतम के सम्मुख अपने तन-मन को (समर्पित करती है), (वह गुरु के) सौभाग्यशाली वचनों द्वारा (अपने) घर (अन्तःकरण) में ही अमृत-फल को प्राप्त कर लेती है । (तीव्र) बुद्धि, (सद्ग्रन्थों के पाठ) (अथवा) बहुत सी चतुराईयों से (पति-परमात्मा) नहीं प्राप्त किया जा सकता ; (वह तो) प्रेम द्वारा मिलता है, (वह भी तब, जब उसके) मन को अच्छा लगे । नानक कहते हैं (कि हे) प्रभु, (तू ही) हमारा मित्र है, हम गैर लोग नहीं हैं ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

अनहदो अनहदु धाजै रुण भुण कारे राम ।
मेरा मनो मेरा मनु राता लात पिआरे राम ॥
अनदिनु राता मनु बैरागी सुन मंडलि घरु पाइआ ।
आवि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतिगुरि अखलु लखाइआ ॥
आसलि बेसलि धिरु नाराइखु तितु मनु राता बीचारे ।
नानक नामि रते बैरागी अनहद रुणभुणकारे ॥ १ ॥

तितु अगम तितु अगम पुरे कहु कितु बिधि जाईऐ राम ।
ससु संजमो सारि गुणा गुर सबहु कमाईऐ राम ॥
ससु सबहु कमाईऐ निज घरि जाईऐ पाईऐ गुणी निधाना ।
तितु साखा झुलु पतु नही डाली सिरि सभना परधाना ॥
जपु तपु करि करि संजम थाकी हठि निग्रहि नही पाईऐ ।
नानक सहजि मिले अगजीवन सतिगुर बूझ बुझाईऐ ॥ २ ॥

गुरु सागरो रतनागुरु तितु रतन घरोरे राम ।
करि सजनो सपत सरे मन निरमल मेरे राम ।
निरमल जलि नाए जा प्रभ भाए पंच मिले बीचारे ।
कामु करोधु कपटु बिलिआ तजि ससु नामु उरिधारे ॥
हउम लोभ लहरि सब धाके पाए दोन बडगाला ।
नानक गुर समानि तीरसु नही कोई साजे गुर गोपाला ॥ ३ ॥

हउ बन बनो देखि रही नृगु देखि सबाइआ राम ।
त्रिभवरणो तुभहि कीआ सभु जगतु सबाइआ राम ॥
तेरा सभु कीआ तूं थिरु थोआ तुधु समानि को नही ।
तूं दाता सभ जाचिक तेरे तुधु बिनु किसु सालाही ॥
अणमगिआ दानु दोजे दाते तेरी भगति भरे भंडारा ।
राम नाम बिनु मुकति न होई नानक कहै बीचारा ॥ ४ ॥ २ ॥

हे भाई, (परमात्मा का मिलन हुआ है) और अनाहत शब्द [आत्म-मण्डल का संगीत, जो बिना बजाये बजता है ; वह श्रवणेन्द्रिय का विषय नहीं है । केवल आन्तरिक एकाग्रता में अनुभव किया जाता है] अनाहत गति से 'रुनभुन रुनभुन' बज रहा है । हे प्यारे, लाल राम, मेरा मन मेरा मन (तुझ में) अनुरक्त हो गया है । मेरा (माया से) वीतराग मन प्रतिदिन (हरी में) अनुरक्त हो गया है, वह शून्य-मण्डल (निर्विकल्प अवस्था) में धर पा गया है—स्थित हो गया है । सद्गुरु ने आदि पुरुष, अपरपार, प्रियतम तथा अलक्ष्य (हरी) को दिखा दिया है—साक्षात्कार करा दिया है । नारायण (अपने) आसन पर स्थिर होकर बैठा है । (अर्थात् परमात्मा अचल और अडिग है), उसमें मन विचार द्वारा लग गया है । नानक कहते हैं कि बैरागी पुरुष नाम में अनुरक्त है; उन्हे ही (आत्म-मण्डल का) अनाहत और 'रुनभुन रुनभुन' (ध्वनि वाला आत्म-संगीत सुनाई पड़ रहा है) ॥ १ ॥

ह भाई, उस अगम, उस अगम पुर में, (जहाँ परमात्मा का निवास है), किस विधि में पहुँचा जाय ? गुरु के शब्द से सत्य, संयम तथा श्रेष्ठ गुणों की कमाई की जाय; सत्य शब्द की कमाई करने से (अपने वास्तविक) घर में पहुँचा जाता है, (और वही) गुणों के भाण्डार (हरी की) प्राप्ति होती है । वहाँ न शाखाएँ हैं, न मूल है, न पत्ते हैं और न डालियाँ हैं, (वह प्रभु) सबों का शिरमौर है (और) प्रधान है । जप-तप करके (तथा) संयम करके (सारी दुनियाँ) थक गई है (किन्तु परमात्मा की प्राप्ति उसे नहीं हुई), (इसी प्रकार) हठपूर्वक (इन्द्रियों का) निग्रह करने से भी (हरी का) प्राप्ति नहीं होती । नानक कहते हैं कि सद्गुरु के द्वारा सूझ-बूझ देने पर जग-जीवन (परमात्मा) सहज ही प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

हे भाई, गुरु सागर है, रखाकर है, उसमें बहुत से रज है। हे भाई, हे मेरे मन, (गुरु रूपी) सप्त-सागर में स्नान करो और निर्मल हो जाओ। जब प्रभु को (साधक) अच्छा लगे, (तभी) ऐसे निर्मल जल में स्नान किया जा सकता है, (अन्यथा नहीं), (तभी) विचार द्वारा पंच महा गुणों (सत्य, संतोष, ब्रह्मा, धर्म और धैर्य) का मिलाप होता है और काम, क्रोध, कपट, विषय त्याग कर, सत्य नाम को हृदय में धारण किया जाता है। दीनदयालु (परमात्मा) के पाने पर, अहंकार, लोभ और लालच की लहरे समाप्त हो जाती है। नानक कहते हैं कि गुरु के समान कोई भी तीर्थ नहीं है, सच्चा गुरु गोपाल (हरी, परमात्मा) ही है ॥ ३ ॥

हे भाई, मैं वन वन में (ढूँढ़ती घोर) देखती फिरी, सारी तृणराशि को देखती फिरी, (अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँची कि) यह समस्त तीनों भुवनोवाला संसार, तू ने ही बनाया है। (हे प्रभु), तेरा ही रचा हुआ सब कुछ है, (किन्तु तू) स्थिर है; तेरे समान अन्य कोई नहीं है। तू ही (एक) दाता, (और) सब तेरे याचक हैं; (मैं) तुम्हारे बिना (अन्य) किसकी स्तुति करूँ ? हे दाता, तू बिना माँगे ही दान देता है, तेरा भाण्डार भक्ति से परिपूर्ण है। नानक यह विचार करके कहता है कि बिना रामनाम के मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ४ ॥ २ ॥

(३)

मेरा मनो मेरा मनु राता राम पिप्रारे राम ।
 सच्चु साहिबो आदि पुरखु अवरंपरो धारे राम ।
 अगम अगोचरु अपर अपारा पारब्रह्म परधानो ।
 आदि जुगादी है भो होसो अवग भूझा सभु मानो ॥
 करम धरम की सार न जाणै सुरति मुरुति किउ पाईऐ ।
 नानक गुरमुखि सबद पछाणै अहिनिति नामु धियाईऐ ॥ १ ॥
 मेरा मनो मेरा मनु मानिआ नामु सखाई राम ।
 हउमै भमता माइआ संगि न जाई राम ॥
 माता पित भाई सुत चतुराई संगि न संपै नारे ।
 साइर की पुत्री परहरि तिआगी चरन तलै बीचारे ॥
 आदि पुरखि इकु चलतु दिखाइआ जहू देखा तहू सोई ।
 नानक हरि की भगति न छोडउ सहजे होइ सु होई ॥ २ ॥
 मेरा मनो मेरा मनु निरमलु साचु समाले राम ।
 अवगण भेटि चले गुण संगम नाले राम ॥
 अवगण परहरि करणी सारी दरि सचै सचिआरो ।
 आवगु जावगु ठाकि रहाए गुरमुखि ततु बीचारो ॥
 साजनु मोतु सुजागु सखा तूं सचि मिले बडिआई ।
 नानक नामु रतनु परगासिआ ऐसी गुरमति पाई ॥ ३ ॥
 सच्चु अंजनो अंजनु सारि निरंजनु राता राम ।
 भनि तनि रवि रहिआ जगजीवनो दाता राम ॥
 जगजीवनु दाता हरि भनि दाता सहजि मिले भेलाइआ ।

साथ सभा संत जना की संगति नदरि प्रभु सुख पाइया ॥

हरि की भगति रते बेरायो ब्रूके मोह पिछासा ।

नानक हउमै मारि पतीरो बिरले दास उदासा ॥ ४ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ३ ॥

हे प्रिय भाई, मेरा मन, मेरा मन राम में अनुरक्त हो गया है । (मेरे मन ने) सच्चे साहब, आदि पुरुष, अपरंपार (हरी) को धारण कर लिया है । परब्रह्म, अग्रम, अगोचर, सबसे परे, अपार है; (वही सब का) प्रधान है । (वह परब्रह्म) आदि तथा युग-युगान्तरो मे (वर्तमान काल में) है, (भूतकाल में) या और (भविष्य मे) रहेगा; अन्य सभी (वस्तुओं) को झूठी समझो । (मेरा मन) कर्मकाण्ड तथा धर्म (की बातों की) खबर नहीं जानता, (उसे यह पता भी नहीं है कि) आत्मिक जागरण (मुरति) तथा मुक्ति किस प्रकार पाई जाती है । नानक कहते हैं (कि मेरा मन) गुरु द्वारा, उसकी बाणी द्वारा (केवल इतनी बात) जानता है कि अहंनिंश (हरि के) नाम का ध्यान करना चाहिए ॥ १ ॥

हे भाई, मेरा मन, मेरा मन मान गया है (शान्त हो गया है) । नाम ही मेरा साथी है । हे भाई, अहंकार, ममता और माया (धन-सम्पत्ति) साथ में नहीं जाती है । माता, पिता, भाई, पुत्र, चतुराई, सपति और स्त्री भी साथ में नहीं जाती । समुद्र की पुत्री—लक्ष्मी—माया को हटा कर त्याग दिया है और विचार के द्वारा उसे पैरों के नीचे (रौंद डाला है) । आदि पुरुष (परमात्मा) ने एक कौतुक मुझे यह दिखाया है कि जहाँ देखता हूँ, वहाँ वही (दिखाई पड़ता है) । नानक कहते हैं (कि मैं) हरि की भक्ति नहीं छोड़ता हूँ, सहज भाव से जो कुछ होना हो, वह हो ॥ २ ॥

हे भाई, मेरा मन, मेरा मन सच्चे (हरी) को स्मरण कर करके निर्मल हो गया है । (मेरा मन) अवगुणों को मिटा कर (परमात्मा की ओर) चलता है, (क्योंकि) उसके साथ ही गुणों का संगम (गंगा, यमुना, सरस्वती के मिलने का स्थान, प्रयागराज) है । [भावार्थ यह कि मन के अतर्गत परमात्मा के नाम की उपस्थिति प्रयागराज—तीर्थराज है, जिस नाम रूपी संगम में स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं—“अंतरगति तीरथि मलि नाउ”] । अवगुणों को त्याग कर मैं शुभ कार्यों को करता हूँ, (जिस कारण) सच्चे (हरी) के दरवाजे पर सच्चा ही (सिद्ध) होता हूँ । गुरु की शिक्षा द्वारा तत्त्व का विचार करने से, मेरा आना-जाना (जन्म-मरण) समाप्त हो गया है । (हे प्रभु), तू ही मेरा साजन, मित्र और चतुर सखा है; सत्य (हरी) के द्वारा ही बड़ाई प्राप्त होती है । नानक कहते हैं कि गुरु के द्वारा ऐसी बुद्धि प्राप्त हो गई है कि नाम-रत्न प्रकाशित हो गया है ॥ ३ ॥

हे भाई, सत्य (हरी) अंजन है, इस अंजन को लगा कर (मैं) निरंजन (माया रहित हरी) में अनुरक्त हो गया । हे भाई, (मैं) तन और मन से जगजीवन, दाता (हरी) में रम रहा हूँ । (जिस व्यक्ति का) मन जगत् के जीवन, दाता तथा हरी में अनुरक्त है, (वह) सहज ही (परमात्मा से) मिलता है, (प्रभु उसे स्वयं अपने में) मिला लेता है । प्रभु की कृपादृष्टि से साधुओं की सभा और संतों की संगति में सुख की प्राप्ति हो गई है । (जो) हरि की भक्ति में रत से हैं, (वे) वैराग्यवान् हो गए; (उनका) (सासारिक) मोह तथा (माया की) पिपासा समाप्त हो गई । नानक कहते हैं कि अहंकार के मारने से (परमात्मा में) प्रतीति बढ़ गई है; बिरले ही दास विरक्त होते हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ३ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि । वरु २

(४)

तू सभनी याई जियै हउ जाई साचा सिरजणहार जोउ ।
 सभना का दाता करम बिधाता वूख बिसारणहार जोउ ॥
 वूख बिसारणहार सुआमी कोता जाका होवै ।
 कोटकोटंतर पापा केरे एक घड़ी मर्हि खोवै ॥
 हंसि सि हंसा वग सि वगा घट घट करे बीबार जोउ ।
 तू सभनी याई जियै हउ जाई साचा सिरजणहार जोउ ॥ १ ॥
 जिन्ह इक मनि धिआइआ तिन्ह सुलु पाइआ ते बिरले संसारि जोउ ।
 तिन जमु नेड़ि न आबै गुर सबहु कमावै कबहु न आवहि हारि जोउ ॥
 ते कबहु न हारहि हरि हरि गुर सारहि तिन्ह जमु नेड़ि न आवै ।
 जंमगु मरगु तिन्हा का बूका जो हरि लागे पावै ॥
 गुरमति हरि रसु हरि फलु पाइआ हरि हरि नाम उरधारि जोउ ।
 जिन्ह इक मनि धिआइआ तिन्ह सुलु पाइआ ते बिरले संसारि जोउ ॥ २ ॥
 जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ हउ तिसै विटहु कुरबानु जोउ ।
 ता की सेव करीजै लाहा लीजै हरि दरगह पाईऐ मायु जोउ ॥
 हरि दरगह मानु सोई जनु पावै जो नरु एहु पछारै ।
 ओहु नव निधि पावै गुरमति हरि धिआवै नित हरि गुर आखि बखारै ॥
 अहिनिनिसि नामु तिसै का लीजै हरि अंतमु पुरखु परधानु जो ।
 जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ हउ तिसै विटहु कुरबानु जोउ ॥ ३ ॥
 नामु लैन्हि सि सोहहि तिन्ह सुख फल होबहि मानहि से जिरिण जाहि जोउ ।
 तिन फल तोटि न आवै जा तिसु भावै जे जुग केते जाहि जोउ ॥
 जे जुग केते जाहि सुआमी तिन फल तोटि न आवै ।
 तिन जरा न मरणा नरकि न परणा जो हरि नामु धिआवै ॥
 हरि हरि करहि सि सुकहि नाही नानक पीड़ न खारि जोउ ।
 नामु लौन्हि सि सोहहि तिन्ह सुख फल होबहि मानहि से जिरिण जाहि जोउ ॥
 ४ ॥ १ ॥ ४ ॥

हे सच्चे सिरजनहार, जहाँ भी मैं जाता हूँ, तू सभी स्थानों में (विराजमान दिखाई देता है) । हे जी, (प्रभु), तू सभी का दाता है और सभी के कर्मों का विधाता है, और तू ही दुःखों को भुलानेवाला है । हे स्वामी, (तू ही) दुःखों को भुलाने वाला है और तेरा ही किया हुआ सब कुछ होता है । (हे प्रभु), (तू) (जीवों के) करोड़ों पापों को एक घड़ी में नष्ट करनेवाला है । (परमात्मा सभी जीवों के कर्मों का विधाता है, अतः जीवों के पाप-पुण्यों का इस प्रकार निर्णय करता है); जो-जो हंस (पुण्यात्मा) हैं, वे हंस, और जो-जो बगुले

(पापतमा; पाखण्डी) है वे बगुले दिखाई (पड़ते हैं) । हे सच्चे सिरजनहार, जहाँ भी मैं जाता हूँ, तू सभी स्थानों में (विराजमान दिखाई देता है) ॥१॥

जिन्होंने एकाग्र मन से तेरा ध्यान किया है, उन्होंने ही मुख पाया है; (हे जी, प्रभु) ऐसे (लोग) संसार में बिरले ही होते हैं । ऐ जी, ऐंसे (पुण्यों के) निकट यमराज नहीं जाते, (वे) गुरु के शब्दों की कमाई करते हैं, वे (जीवन में) कभी हारते नहीं हैं । जो हरी के चरणों में लग गए हैं, उनका जन्म-मरण समाप्त हो चुका है । (ऐसे व्यक्तियों ने) गुरु की बुद्धि द्वारा 'हरि-हरि' का नाम हृदय में धारण करके, हरि-रस और हरि के फल को प्राप्त कर लिया है । (ऐ जी प्रभु), जिन्होंने एकाग्र मन से तेरा ध्यान किया है, उन्होंने ही मुख पाया, ऐसे (लोग) संसार में बिरले ही होते हैं ॥३॥

ऐ जी, जिस (प्रभु ने) जगत उत्पन्न करके (उसके सभी प्राणियों को अपने आने) कर्म में लगाया है, उस (प्रभु के) ऊपर कुरबान (न्योछावर) हो जाना चाहिए । (हे प्राणी), उसी (प्रभु) की सेवा करो, लाभ प्राप्त करो तथा हरि के दरवाजे पर प्रतिष्ठा प्राप्त करो । जो पुरुष एक (हरी) को पहचानता है, वही हरी के दरवाजे पर प्रतिष्ठा पाता है । वह गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का ध्यान करके (हरि-प्राप्ति रूपों) नवविधि को पा लेता है, (वह) नित्य ही हरि के गुण का कथन और वर्णन करता है । अर्हन्सि उसी (प्रभु) का नाम लेना चाहिए (क्योंकि) हरी ही उत्तम और प्रधान पुण्य है । ऐ जी, जिस (प्रभु ने) जगत उत्पन्न करके, (उसके सभी प्राणियों को अपने-अपने) धंधे में लगाया है, उस (प्रभु के) ऊपर न्योछावर हो जाना चाहिए ॥३॥

ऐ जी, (जो) (हरि का) नाम लेते हैं, वे सुशोभित होते हैं, उन्हें (लौकिक तथा पारमार्थिक) सुख और फल (प्राप्त) होते हैं, (जो परमात्मा को) मानते हैं, वे (इस संसार की बाजी में) जीत कर जाते हैं । ऐ जी, यदि उम (परमात्मा) को अच्छा लगता है, तो चाहे कितने युग बीत जायें उन (भक्तों) के फल (की प्राप्ति में) किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाती । हे स्वामी, चाहे कितने ही युग बीत जायें, उन (परमात्मा के स्मरण करने वालों भक्तों के) फलों में (किसी भी प्रकार की) कमी नहीं आने पाती है । जो हरि के नाम का ध्यान करते हैं, उन्हें (न तो) वृद्धावस्था (सनाती है) और न मरण (का भय रहना है), और न वे नरक में ही पड़ते हैं । ऐ जी, जो (व्यक्ति) 'हरी हरी' करते हैं, वे सूखते नहीं (दुःखी नहीं होते); नानक (कहते हैं) कि (उन्हे कोई) पीडा भी नहीं सहन करनी पड़ती । ऐ जी, (जो व्यक्ति) (हरि का) नाम लेते हैं, वे सुशोभित होते हैं, उन्हें (लौकिक तथा पारमार्थिक) सुख और फल प्राप्त होते हैं, (जो परमात्मा को) मानते हैं, वे (इस संसार की बाजी में) जीत कर जाते हैं ॥४॥॥४॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि घर ३ ॥

[५]

तूं सुणि हरणा कालिमा की बाझो रे राता राम ।

बिलु फलु मोडा चारि दिन फिरि होवै ताता राम ।

फिरि होइ ताता खरा माता नाम बिनु परतापए ।
 ओह जेव साइर बेइ लहरो बिजुल जिवै चमकए ॥
 हरि बाकु राखा कोइ नाही सोइ तुम्हि बिसारिआ ।
 सचु कहै नानक चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ ॥ १ ॥

भवरा फूल भवतिआ दुलु अति भारी राम ।
 मै गुरु पूछिआ आपणा साचा बीचारी राम ॥
 बीचारि सतिगुरु मुझै पूछिआ भवरु बेली रातओ ।
 सूरजु चडिआ पिडु पडिआ तेलु तावणि तातओ ॥
 जम मणि बाधा खाहि चोटा सबद बिनु बेतालिआ ।
 सचु कहै नानक चेति रे मन मरहि भवरा कालिआ ॥ २ ॥

मेरे जोअडिआ परदेसीआ कितु पवहि जंगले राम ।
 साचा साहिबु मनि बसै की फासहि जम जाले राम ॥
 मछुली बिछुनी नैण रुंनी जातु बधिकि पाइआ ।
 संसार माइआ मोहु मोठा अंति भरमु चुकाइआ ॥
 भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोडि ननहु अंदेसिआ ।
 सचु कहै नानक चेति रे मन जोअडिआ परदेसीआ ॥ ३ ॥

नदीआ वाह बिछुनिआ मेला संजोगी राम ।
 जुग जुग मोठा विसु भरे को जाएण जोगी राम ॥
 कोई सहजि जाएण हरि पद्यागै सतिगुरु जनि चेतिआ ।
 बिनु नाम हरि के भरम भूले पवहि मुगच अचेतिआ ॥
 हरि नाम भगति न रिदै सावा से अंति घाही रुंनिआ ॥
 सचु कहै नानक सबदि सचै मेलि चिरी बिछुनिआ ॥ ४ ॥ १ ॥ ५ ॥

हे काले हिरन मुन, तू (विषयो की) वाणि (वाग) में क्यों अनुरक्त है ? विष (रूप) फल चार दिन के लिए मोटा है, फिर यह गरम (कष्टदायक) हो जायगा । (जिस फल के ऊपर) तू अत्यधिक मस्त हुआ है, (वह) पुनः गरम (कष्टदायी) हो जायगा, (इस प्रकार) बिना नाम के (तू) परितप्त होगा । (यह विषय रूप फल उसी भांति नदर आर क्षणभंगुर है), जैसे समुद्र लहरें देता है अथवा जमे बिजली चमकती है । जिन भांति समुद्र की लहरें अथवा बिजली की चमक अस्थिर है, उसी भांति माय के विषय भी क्षणभंगुर हैं । हरि के बिना तेरी कोई रक्षा नहीं कर सकता, और उसी को तू ने भुग दिया है । नानक सच कहता है, हे मन चेत जाओ, काला हिरन (विषयो की वाणि में उलझ कर) मर जायगा ॥१॥

(मायिक पदार्थों के) फूलों के ऊपर भ्रमण करनेवाले, मैं भारे, तुम्हें बहुत ही दुःख होगा । मैंने सच्चे विचार द्वारा अपने गुरु में पूछा है । विचार द्वारा सद्गुरु से मैंने पूछ लिया है कि (यह जीव रूपी) भीरा (विषय-रूपी) फूल-बेलों में रत हुआ है, (इसकी क्या अवस्था होगी) ? (जब आयु की रात समाप्त हो गई और) दिन चढ़ आया, तो शरीर ढह कर ढेर हो जायगा (और उसी प्रकार तपाया जायगा), जिस प्रकार तेज तौली के ऊपर तपाया जाता है । (मनुष्य) शब्द के बिना बेताल (भूत) है; नाम के बिना वह यमराज के मार्ग में बाँधा जायगा

और चोटें खायगा । नानक सब कहता है, हे मन चेत जाग्रो, काला औरा (मायिक पदार्थों के फूलों में रम कर) मर जायगा ॥२॥

हे मेरे परदेशी जीव, तू किस जंजाल में पड़ गया है ? हे भाई (जिसके) मन में सच्चा साहब वास करता है; (तो) क्या वह यम-जाल में फँस सकता है ? (अर्थात् वह नहीं फँस सकता है) । जब अधिक (शिकारी ने) अपना जाल बिछाया, (तो मछली) (जल से) बिछुड़ कर (जाल में फँस गई और) नेत्रों (में घाँस) भर कर रोई । अंत में उसका भ्रम दूर हो गया (और उसे विश्वास हो गया कि) संसार में जो कुछ भी था (वह निरा) माया का मोठा मोह ही था । (अतः, हे परदेशी, जीव) मन को सारी आशंकाओं को त्याग कर, हरि से वित्त लगा कर भक्ति करो । नानक सब कहता है, अरे परदेशी मन, अरे जीव, चेत जाग्रो ॥३॥

हे भाई, नदियाँ और नालों के बिछोड़ होने पर, (उनका पुनः) मिलाप संयोगवश ही होता है ; (इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का मिलाप भाग्य से ही होता है) । माया के इस मोठे विष को (सारा संसार) युग-युगान्तरों से ग्रहण करता आ रहा है; हे भाई, कोई विरला योगी ही (इस रहस्य को) जानता है । जिसने सद्गुरु को (भलीभाँति) सपन्न लिया है, ऐसा कोई (विरला ही) सहजावस्था (तुरीयावस्था) को जानता है और हरी को पहचानता है । बिना हरी के नाम के (स्मरण किए हुए) मूर्ख और बुद्धिबिहीन (प्राणी) भ्रम में भटकते रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं । जिनमें न हरिनाम की भक्ति है और न जिनके हृदय में सच्चा परमात्मा है, वे अन्तकाल में ढाड़ें मार कर रोते हैं । नानक सब कहता है कि (परमात्मा) (गुरु के) सच्चे शब्द (के माध्यम) से चिरकाल से (जो) बिछुड़ी हुई (जीवात्माएँ) हैं, (उन्हें अपने में) मिलाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ५ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरवैर
अकाल मूरति अजूनी संभं गुर प्रसादि

रागु आसा, महला १,

वार सलोका नालि, सलोक भी, महले पहले के लिखे ॥

टुडे असराज की धुनी ॥

सलोक बलिहारी गुर आपखे विउहाड़ी सबवार ।
जिनि माणस ते बेबते करत न लागी बार ॥ १ ॥
नानक गुरु न खेतनी मनि आपखे सुचेत ।
छुटे तिल ब्रह्माइ जिउ सुखे अंदरि सेत ॥
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह ।
फलोअहि कुलीअहि बपुड़े भी तन बिजि सुआह ॥ २ ॥

विशेष : एक देश का राजा सारंग था । अपनी पहली स्त्री के मरने के बाद उसने दूसरी शादी कर ली । दूसरी रानी, राजा की प्रथम रानी के पुत्र, असराज के ऊपर मोहित हो

गई। परन्तु असराज ने अपना धर्म नहीं छोड़ा। रानी ने असराज के ऊपर मिथ्या दोषारोपण लगा कर उसे मौत की सजा दिलवा दी। राजा का मंत्री बड़ा ही बुद्धिमान था। उसने असराज को मरवाया नहीं, उसके हाथ बंधवा कर उसे एक कुँए में डलवा दिया। एक काफिला उधर से जा रहा था। कुछ व्यक्तियों ने असराज को कुँए से बाहर निकाल लिया। असराज उसी काफिले के साथ अन्य देश को चला गया। संयोगवश, कुछ समय बीतने के पश्चात्, वह उस देश का राजा बना दिया गया। इसी समय राजा सारंग के देश में भ्रमाल पड़ गया। असराज ने अपने पिता सारंग की सहायता की। इस प्रकार पिता-पुत्र का फिर मेल हो गया। कुछ कवियों ने इस घटना पर 'वारे' बनाई। उन्हीं 'वारो' की ध्वनि के आधार पर 'भासा' राग की यह वार है। इस वार की ध्वनि का नमूना इस प्रकार है—

“भवकिप्रो शेर सरदूल राइ रण मारू बज्जे”

सलोक : (मैं) अपने (उस) गुरु के ऊपर (एक) दिन में सौ बार बलिहारी होता हूँ, जिस गुरु ने मनुष्यों से देवते बना दिए और बनाने में (कुछ) देरी नहीं लगी ॥ १ ॥

हे नानक, (जो मनुष्य) गुरु को नहीं चेतते और अपने मन में चतुर (बने हुए) हैं, (वे इस प्रकार हैं), जैसे खाली, भूटे तिल सून सेत में (यों ही) छोड़ दिए गए हैं। [बुझाड़ = खाली तिलो का पीदा, जो तिलो के सेत में उगता है, जिसकी फलियो में तिल नहीं होते]। हे नानक, ऐसे सेत में छोड़े हुए खालो तिलो के सौ पति होते हैं। वे बिचारे फूलते भी हैं, फलते भी हैं, फिर भी उनके शरीर में (तिलों के स्थान में) खाक ही होती है ॥ २ ॥

[विशेष : जब हम अपने मन में चतुर बन कर गुरु को मन से भुला देते हैं और गुरु के नेतृत्व की आवश्यकता नहीं समझते हैं, तो कामादिक सौ पति = स्वामी मन में आ बसने हैं। तात्पर्य यह कि मन किसी न किसी विकार का शिकार बना रहता है।]

पड़ड़ी आपोन्है आपु साजिप्रो आपोन्है रबिप्रो नाउ ॥
 दुयो कुदरति साजीऐ करि आसए डिठो चाउ ।
 बाता करता आपि तू तुसि देवहि करहि पसाउ ।
 तूँ जासोई सभसै बे लैसहि जिबु कवाउ ॥
 करि आसए डिठो चाउ ॥ १ ॥

पड़ड़ी : (भ्रमाल पुरुष ने) अपने आप ही अपने को निमित्त किया और आप ही ने अपना नाम (और रूप) धारण किया। [परमात्मा की सत्ता दो रूपों में है—एक निर्गुण अवस्था और दूसरी सगुण अवस्था। अपने आप में वह निर्गुण रूप में है और सृष्टि के सम्बन्ध से वह सगुण है, जिसे 'नाम-रूप' भी कहते हैं]। ('नाम रूप' रचने के पश्चात्) उसने अपनी कुदरत (माया, शक्ति) रची (और फिर उसी में) भासन जमा कर (तात्पर्य यह कि कुदरत में व्यापक होकर) (इस जगत् का) आप ही तमाशा देखने लग पड़ा है।

(हे प्रभु), तू आप ही (जीवों को) दान देनेवाला है (और आप ही इन्हें) बनाने वाला है। (तू आप ही) संतुष्ट होकर (जीवों को) देता है (और उनके ऊपर) कृपा करता है। तू सभी (जीवों का) जगानेवाला है। जीवन और उसकी पोशाक [शरीर से अभिप्राय है] देकर (तू आप ही) उन्हें ले लेगा (तात्पर्य यह है तू आप ही प्रण और शरीर देता है

धोर घाप ही फिर ले लेता है) । (तू ही) (कुदरत में) , आसन , जमा कर तमाशा देख रहा है ॥ १ ॥

सलोकुः सचे तेरे खंड सचे ब्रह्मंड ।
सचे तेरे लोभ सचे आकार ॥
सचे तेरे करणै सरब बीचार ॥
सचा तेरा भ्रमरु सचा बीबारु ।

सच तेरा हुकमु सचा फुरमारु ॥
सचा तेरा करमु सचा नीसारु ॥
सचे तुघु आखहि लख करोड़ि ।
सचे सभि तारिण सचै सभि जोरि ॥

सची तेरी सिफति सची सालाह ।
सची तेरी कुबरति सचे पातिसाह ॥
नानक सनु धिआइनि सनु ।
जो मरि जंमै सु कनु निकनु ॥ ३ ॥

बडी बडिआई जा बडा नाउ० ।
बडी बडिआई जा सनु निआउ ॥
बडी बडिआई जा निहचल थाउ ।
बडी बडिआई जाणै आलाउ ॥

बडी बडिआई सुभै सभि भाउ ॥
बडी बडिआई जा गुछि न दाति ।
बडी बडिआई जा आपे आपि ॥
नानक कार न कथनी जाइ ।
कीता करणा सरब रजाइ ॥ ४ ॥

बिसमादु नाद बिसमादु वेद ।
बिसमादु जीभ बिसमादु भेद ॥
बिसमादु रूप बिसमादु रंग ।
बिसमादु नागै फिरहि जंत ॥

बिसमादु पउरु बिसमादु पाणी ।
बिसमादु भगनी खेडहि बिडारणी ॥
बिसमादु धरती बिसमादु जारणी ।
बिसमादु साबि लगहि परारणी ॥

बिसमादु संजोगु बिसमादु बिजोगु ।
बिसमादु भुख बिसमादु भोगु ॥
बिसमादु सिफति बिसमादु सालाह ।
बिसमादु उभड़ बिसमादु राह ॥

बिसमाडु नेड़े बिसमाडु दूरि ।

बिसमाडु बेले हाजरा हजूरि ॥

बेसि बिडारणु रहिमा बिसमाडु ।

नानक बूझणु पूरे भागि ॥ ५ ॥

कुबरति बिसे कुबरति सुणीये कुबरति भउ सुख सारु ।

कुबरति पाताली आकासी कुबरति सरब आकारु ॥

कुबरति बेव पुराण कतेबा कुबरति सरब बोचारु ।

कुबरति लारणा पीणा पेन्हणु कुबरति सरब पिम्राक ॥

कुबरति जाती जिनसी रंगी कुबरति जोम्र जहान ।

कुबरति नेकीआ कुबरति बदीआ कुबरति मानु अभिमानु ॥

कुबरति पउणु पाणी बैसतरु कुबरति धरती लाकु ।

सभ तेरी कुबरति तूं काविरु करता पाकी नाई पाकु ॥

नानक हुकमे अंवरि बेले बरतै ताको ताकु ॥ ६ ॥

सलोक : (हे सच्चे बादशाह) तेरे (उत्पन्न किए हुए) खण्ड और ब्रह्माण्ड सच्चे हैं, (तात्पर्य यह है खण्ड और ब्रह्माण्ड निमित्त करने का तेरा यह क्रम सदा के लिए अटल है) । तेरे (बनाए हुए अनन्त) लोक और आकार (भी) सच्चे हैं । तेरे काम और तेरे समस्त विचार सच्चे हैं ।

(हे सच्चे बादशाह) तेरी बादशाही और तेरे दरबार सच्चे हैं, तेरा हुकम और तेरे (शाही) फरमान भी सच्चे हैं । तेरी बख्शिश सच्ची है और तेरी उन बख्शिशों के चिह्न भी सच्चे हैं । लाखों, करोड़ों (जीव), (जो तुझे) स्मरण कर रहे हैं, (वे भी) सच्चे हैं, (तात्पर्य यह है कि अनन्त जीवों का तुझे स्मरण करना भी एक अलौकिक कार्य है, जो तेरे द्वारा सदैव के लिए चलाया हुआ है) । (ये खण्ड, ब्रह्माण्ड, लोक, आकार, जीव-जन्तु आदि) (सच्चे परमात्मा की) शक्ति और बल के (अन्तर्गत) हैं, (तात्पर्य यह है कि इन सब को सत्ता और सहारा प्रभु आप ही है) ।

तेरी स्तुति और गुणगान करना भी सत्य है—(एक अटल सिलसिला है, जो युग-युगान्तरो से चला आ रहा है) । हे सच्चे बादशाह, तेरी कुबरत (माया, शक्ति, प्रकृति) भी सच्ची है (और यह न समाप्त होनेवाली क्रिया है) । हे नानक, (जो जीव उस सच्चे और अविनाशी प्रभु का) स्मरण करते हैं, वे भी सत्य हैं, (क्योंकि उस प्रभु का स्मरण करने से, वे स्वयं बही हो जाते हैं) । (पर जो परमात्मा का स्वरूप नहीं समझते) और जन्मते मरते रहते हैं, वे (अब भी) कच्चे में कच्चे, अर्थात् नितान्त कच्चे हैं ॥ ३ ॥

विशेष : गुरु नानक देव ने उपर्युक्त 'सलोक' में बतलाया है कि परमात्मा के बनाए हुए खण्ड, ब्रह्माण्ड, लोक आकार, जीव-जन्तु आदि का क्रम भ्रम रूप नहीं है, बल्कि सत्य परमात्मा की सत्य रचना है । मोटे रूप से सृष्टि का यह क्रम अनादि और शाश्वत नियम है । हाँ, इसमें जो पृथक् पृथक् पदार्थ, जीव-जन्तु और शरीरादिक दिखाई पड़ते हैं, वे नश्वर हैं । जो उस प्रभु का स्मरण करते हैं, वे उसका रूप हो जाते हैं ।

सलोक : (परमात्मा को) महत्ता इसमें है कि उसका नाम बहुत ही बड़ा है । (उस प्रभु की) महत्ता बड़ी महान् है, (क्योंकि उस प्रभु का) न्याय महान् है । उसकी यह एक बहुत भारी विशेषता है कि उसका स्थान अडिग है । (प्रभु की यह एक) बहुत बड़ी महत्ता है (कि वह सारे जीवों के) आनाप (प्रार्थना, पुकार) जानता है । (और समस्त जीवों की भावनाओं को) अपने आप जानता है ।

(परमात्मा की यह एक और) विशेषता है कि किसी में पूछ कर (जीवों को) दान नहीं देता । (वह स्वयं जीवों को अनन्त दान देता रहता है), क्योंकि उनके समान और कोई नहीं है), वह आप ही अपने समान है ।

हे नानक, (परमात्मा के) कार्य (सृष्टि-रचना) का वर्णन नहीं किया जा सकता । (उसकी) रची हुई गमस्त सृष्टि-रचना (कर्मणा), उगते हुए के अन्तर्गत हुई है ॥ ४ ॥

(परमात्मा का आश्चर्यमयी कुदरत को पूरा भाग्य से ही समझा जा सकता है । कुदरत की अनन्तता देख कर मन में तराती उत्पन्न हो रही है) ।

(शमस्य) नाद, (पार) भेद, (अन्न) जीव (और उनके) अगम्य भेद, (जीवों और अन्य पदार्थों के अगम्य) का, और उनके गम—(इन सब वस्तुओं को देख कर) आश्चर्यमयी अवस्था उत्पन्न हो रही है ।

(अनेक) जंतु (सदेव) नगों में फिर रहे हैं, (कितने ही) पवन हैं, (कितने ही) जल हैं, (अनेक) अग्नि हैं, (जो) आश्चर्यमय खेल खेल रही हैं, [अग्नि के अनेक प्रकार हैं—यथा बडवाग्नि, दावाग्नि, जलराग्नि, वीधाग्नि, चिन्ताग्नि, जानाग्नि आदि] । पृथ्वी (तथा पृथ्वी) के जीवों का चार गान्धा (अट्ज, जेरज, जौट्ज और स्वदेज) (आदि को देख कर) मन में आश्चर्यमयी भावना तथा घपड़ाहट उत्पन्न हो रही है ।

(अनन्त) जीव (पदार्थों के) स्वाद में लग रहे हैं, (कितने जीवों का) संयोग है, (कितनों का) वियोग है, (कितनों का) भूख (सता रही है), (कितनों को) (दुर्लभ पदार्थों) का भोग है, (कहीं पर कुदरत के स्वामी की) स्तुति एवं प्रशंसा हो रही है, (कहीं पर) कुराह है (और वहाँ पर) (सुंदर) राह है,—(इन सब आश्चर्यमय खेलों को देख कर) (मन में) आश्चर्यमयी अवस्था उत्पन्न हो रही है ।

(कोई कहता है कि परमात्मा) समीप है, (कोई कहता है कि) दूर है, (और कोई कहता है कि) (वह) सर्वत्र विराजमान (व्यापक) होकर (सभी जीवों को) देव रहा है, (खोज-खबर ले रहा है) । (इन सब आश्चर्यमय कानुकों को देख कर) आश्चर्यमयी अवस्था प्राप्त हो रही है । हे नानक, (परमात्मा के इन कानुकों का) बड़े भाग्य से ही समझा जा सकता है ॥ ५ ॥

(हे प्रभु), (जो कुछ) दिखाई दे रहा है (और जो कुछ) सुनाई पड़ रहा है, (वह सब तेरी ही) कुदरत है । (यह) भय, (जो) मुखों का सार है, तेरी ही कुदरत है । पातान से लेकर आकाश तक (तेरी ही) कुदरत है । ये सारे आकार (दृश्यमान जगत्) तेरी ही कुदरत (के परिणाम) है ।

(हिन्दुओं के) वेद और पुराण, (मुसलमानों के) कुरान (आदि धार्मिक ग्रन्थ) (तथा) समस्त विचार (तेरी ही) कुदरत (के स्वरूप हैं) । (जीवों के) खाने, पीने, पहनने

(आदि के व्यवहार) और जगत् के समस्त प्यार—(ये सब तेरी ही) कुदरत (के कारण हैं) ।

जातियों, वस्तुओं, रंगों, जगत् के जीवों में तेरी ही कुदरत बरत रही है । (संसार की कितनी ही) भलाइयों, बुराइयों, मान और अभिमान में (तेरी ही) कुदरत (दृष्टिगोचर हो रही है) ।

पवन, पानी, अग्नि, पृथ्वी की त्वाक (आदि पंच भूत) (तेरी ही) कुदरत (के परिणाम) हैं । (हे प्रभु, इस प्रकार सब और) (तेरी) कुदरत (बरत रही है), तू कुदरत का स्वामी है, (तू ही इसका) निर्माता है । तेरी बड़ाई पवित्र से पवित्र है; (तू आप पवित्र सत्ता वाला है) । [नाई < फारसी, नाईदन = बड़ाई करनी, बड़ाई ।]

हे नानक, (प्रभु इस सारी कुदरत को) अपने हुक्म (के धनगत) (रख कर) (सब को) देख रहा है, (संभाल कर रहा है) (और सारे स्थानों पर अकेला) आप ही आप बरत रहा है, (विराजमान है) ॥ ६ ॥

पउड़ी आधीन्है भोग भोगि कै होइ असमझि भउर सिधाइआ ।

बडा होआ दुनीदारु गलि संगसु घति चलाइआ ॥

अगै करणी कीरति बाबोए बहि लेखा करि समझाइआ ॥

थाउ न होबो पउदीई दुखि सुणीए किआ रुझाइआ ॥ २ ॥

मनि अंधै जनमु गवाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी : (मायासक्त मनुष्य) स्थयं ही भोग भोग कर, भस्म की ढेरी हो जाता है (और जीवात्मा रूपी) भोरा (शरीर त्याग कर) चला जाता है । (सासारिक प्रपंचों में फंसा हुआ) दुनियावी मनुष्य, (जब) मरता है, (तो वह) गले में जंजीर डालकर (यमदूतों द्वारा) आगे बलाया जाता है ।

परलोक में (धर्मराज के दरबार में) (परमात्मा की स्तुति रूपी) वाणी और कीरति-कर्म [कीरति = मनुष्य के पूर्व जन्मों के कर्मों के किए हुए संस्कार-जनित कर्म] पढ़े जाते हैं, (स्वीकार किए जाते हैं); वहीं पर (जीव के किए हुए कर्मों का) लेखा (भली भाँति उसे) समझा दिया जाता है ।

(माया के भोगों में फँसे रहने के कारण), उसके ऊपर मार पड़ती है, (और बचने के लिए) (कोई) स्थान नहीं मिलता, (शरण नहीं मिलती) । उस समय उसका कोई रुदन (करुण-प्रलाप) नहीं सुना जाता ।

अंधे मनवाला (विवेकहीन मनुष्य) (अपना अमूल्य) जन्म (माया की धुंध वस्तुओं में) नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

सलोक

भै बिचि पवरणु बहै सद वाउ ।

भै बिचि चालहि लख दरोआउ ॥

भै बिचि अगनि कटै बेवारि ।

भै बिचि धरती दबी भारि ॥

भै बिचि इंडु फिरै तिर भारि ।

भै बिचि राजा धरम दुआरु ॥

भै बिचि सूरजु भै बिचि चंद ।
 कोह करोड़ी चलत न प्रंतु ॥
 भै बिचि सिध सुध सुर नाथ ।
 भै बिचि घाडाएँ आकास ।
 भै बिचि जोध महाबल सूर ।
 भै बिचि आवहि जावहि पूर ॥
 सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेलु ।
 नानक निरभउ निरंकारु सच्चु एकु ॥ ७ ॥

नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवान ।
 केतोआ कन्ह कहाणीआ केते बेद बीचार ॥
 केते नचहि मंगते गिड़ि मुड़ि पूरहि ताल ।
 बाजारी बाजार महि आइ कदहि बाजार ॥
 गावहि राजे राणीआ बोलहि आल पताल ।
 लख टकिआ के मुंदड़े लख टकिआ के हार ॥
 जितु तनि पाईअहि नानका से तन होवहि छार ॥
 गिआनु न गलीई दूडीऐ कथना करड़ा सारु ।
 करमि मिले ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआर ॥ ८ ॥

सलोक : वायु सदैव ही (परमात्मा के) भय में बह रही है । लाखों नद भी भय में ही प्रवाहित हो रहे हैं । भय में ही आग बेगार कर रही है । समस्त पृथ्वी (परमात्मा के) भय के भार के कारण दबी हुई है (अपनी मर्यादा में स्थित है) ।

(परमात्मा के भय में ही) इन्द्र राजा सिर के बल फिर रहा है, (तात्पर्य यह है कि बादल उसके हुक्म में ही उड़ रहे हैं) । धर्मराज का दरबार भी (परमात्मा के) भय में ही है । सूर्य और चन्द्रमा भी (उसी के) भय में (आकाश में स्थित हैं) । (वे दोनों) करोड़ों कोस चलते हैं, (फिर भी उनके मार्ग का) अन्त नहीं होता ।

सिद्ध, बुद्ध, देवतागण और नाथ—(सभी) (परमात्मा के) भय में हैं । (ऊपर) तना हुआ आकाश भी, (जो दिखाई देता है), (वह भी) (परमात्मा के) भय में है । महाबली योद्धागण और शूरवीर—(सभी परमात्मा के) भय में हैं । सारे के सारे (जीव), (जो जगत् में) आते-जाते रहते हैं, (जन्मने और मरते रहते हैं), (वे सभी) भय में हैं ।

(इस प्रकार) (सारे जीवों के मध्ये के ऊपर) भय (का) लेख लिखा हुआ है, (तात्पर्य यह है कि प्रभु का नियम ही ऐसा है कि सभी के ऊपर परमात्मा का भय है, जिसके फलस्वरूप वे सब अपनी अपनी मर्यादा में बरत रहे हैं) । हे नानक, (केवल) एक सच्चा निरंकार ही निर्भय (भय-रहित) है ॥ ७ ॥

हे नानक, (एक) निरंकार ही निर्भय है और कितने ही राम धूल हैं । कितने ही कृष्ण की कहानियाँ और कितने वेदों के विचार भी (धूल हैं) । कितने ही (मनुष्य) मँगते (बन कर) नाचते हैं, (वे) झुककर, मुड़कर ताल पूरी करते हैं, (भाव-प्रदर्शित करते हैं) । बाजारी लोग [रासधारियों की ओर संकेत हैं] भी बाजार में अपना बाजार लगाते हैं ।

(वे लोग) राजा-रानियो (के स्वरूप बना कर) गाते हैं और आकाश-पाताल (अनाप-अनाप) (की बातें) बोलते हैं । (वे लोग पुरस्कार में) लाखों रुपये की बालियाँ और लाखों रुपयों के हार (पाते हैं) । (किन्तु वे बेचारे इस बात को नहीं जानते कि इन बालियो और इन हारों को) जो शरीर पहनते हैं, (वे सब अन्त में) साक हो जाते हैं । [तो भला बताओ, इस नाचने-गाने तथा बालियो और हारों को पहनने से ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हो सकता है] ?

ज्ञान (निरी) बानों से नहीं ढूँढ़ा जा सकता, (ज्ञान-प्राप्ति का) कथन (उतना ही) कठिन है, (जितना) 'नोहा' । (परमात्मा की) कृपा हो, (तभी) ज्ञान की प्राप्ति होती है । (कृपा के बिना ज्ञान-प्राप्ति के लिए) और चतुराईयाँ तथा हुबम (प्रादि) व्यर्थ हैं ॥ ८ ॥

पउड़ी : नदरि करहिं जे आपसी ता नदरी सतिगुरु पाइआ ।

एहु जोउ बहुते जनम भरंमिया ता सतिगुरि सबहु सुणाइआ ॥

सतिगुर जेबहु दाता का नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ ।

सनिगुरि मिलिऐ सहु पाइआ जिन्हो बिचहु आपु गवाइआ ॥

जिनि सचा सचु बुझाइआ ॥ ३ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु), यदि तू, (जीव के ऊपर) अपनी कृपा-दृष्टि करे, तभी (उसे) तेरी कृपा-दृष्टि से सद्गुरु मिल पाता है ।

यह (बेचारा) जीव (जब) अनेक जन्मों में भटक चुका (और सयोगवशात् जब तेरी कृपा-दृष्टि हुई), (तब) सद्गुरु ने अपना शब्द सुनाया ।

ऐ सारे लोगो, ध्यान देकर सुनो, सद्गुरु के रामान और कोई दाता नहीं है ।

जिन (मनुष्यों) ने अपने अन्तर्गत से अहंभाव नष्ट कर दिया, उन्हें उस सद्गुरु के मिलने से शान्ति प्राप्त हो गई, जिसने निष्कवल सच्चे (प्रभु) की सूझ पाई है । (तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अपने अन्तःकरण में आपापन गँवाते हैं, उन्हें उस सद्गुरु के मिलने से सच्चे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है, जो सद्गुरु सदैव स्थिर रहनेवाले प्रभु की सूझ-बूझ प्रदान करता है) ॥ ३ ॥

सलोक : घड़ीआ सभे गोपीआ पहर कंन्ह गोपाल ।

गहरो पउरा पाणी बैसतंग चंडु मूरतु अवतार ॥

सगली घरनी मालु धनु वरतरिण सरब जंजाल ।

नानक मुसै विद्यान बिहूणी ग्याइ गइआ जम कालु ॥ ६ ॥

बाइनि चले नबनि गुर । पैर हनाइनि केरन्हि सिर ॥

उडि उडि रावा भाटे पाइ । देखै लोकु हसै घरि जाइ ॥

रोटीआ कारणि पूरहि तान । आपु पड़ाइहि धरती नालि ॥

गावनि गोपीआ गावनि कान्ह । गावनि सीता राजे राम ॥

निरभउ निरंकारु सनु नामु । जाका कोआ सगल जहानु ॥

सेबक सेबहि करमि चड़ाउ । भिनी रैणि जिन्हा मनि बाउ ॥

सिक्की मिलिआ गुर बीचारि । नदरी करमि लघाए पारि ॥

कोलू चरखा चको चकु । थल घारोले बहुनु अननु ॥

साहू माधारीआ अन्नगाह । पंखी भउदीआ लेनि न साहू ॥
 सूए चाड़ि भवाईअहि जंत । नानक भउदिआ गएत न अंत ॥
 बंधन बंधि भवाए सोइ । पइए किरति नचै सभु कोइ ॥
 नचि नचि हसहि चलहि से रोइ । उडि न जाही सिध न होहि ॥
 नचए कुदए मन का चाउ । नानक जिन्हू मनि भउ तिन्हू मनि भाउ ॥ १० ॥

सन्तोक : (सारी धड़ियाँ गोपियाँ हैं, (दिन के सारे) प्रहर कृष्ण हैं, पवन, पानी और आग ही गहने हैं, (जिन्हें उन गोपियों ने धारण किये हैं) । (रासधारी लोग रासों में अवतारों का स्वांग बना-बना कर गाते हैं, प्रकृति के रास नृत्य में) चंद्रमा और सूर्य दो अवतार हैं । सारी पृथ्वी (राग के रगमंच का) धन और मान है । (जगत् के) सारे प्रपंच (रास के) व्यवहार हैं । त नानक, इस ज्ञान के बिना (सारी दुनिया) ठगी जा रही है और उसे यम-काल खाए जा रहा है ॥ ९ ॥

(रासों में) जेले बाजे बजाने हैं और गुरु नाचने हैं । (नाचते समय गुरु) पैरों को हिलाते हैं और गिर चुमने हैं (तात्पर्य यह कि पैर हिला कर तो ताल में ताल मिलाते हैं और गिर हिला कर भाव प्रदर्शन करते हैं) । (पैरों को ताल के साथ पटकने से) धूल उड़-उड़ कर उनके (गिर के) नालों में पड़ती है । (रास देखनेवाले उन्हें नाचते हुए) देख कर हंसते हैं । (उनका यह तमाशा दब कर), (वे अपने अपने) घर चले जाते हैं । रोटी के निमित्त (वे रासधारी) ताल पूरा करके (नाचते हैं) और अपने आप को पृथ्वी पर पछाड़ते हैं । (इस प्रकार रास-गोला में वे) गोपा और कृष्ण (बन कर) गाते हैं । (कभी कभी) सीता तथा राजा राम (का स्वांग बना कर भी) गाते हैं ।

(जिस प्रभु का) सारा जगत् बनाया गया है, जो निर्भय, निरंकार और सत्य नाम वाला है, (उसको) केवल (वे ही) सेवक आराधना करते हैं, (जिनके अन्तर्गत) परमात्मा की कृपादृष्टि में) चहुँती कला है, जिनके मन में (स्मरण करने का) उत्साह है, उन (सेवकों की जीवन रूपी) रात आनन्द से (व्यतीत होती है) । (उपर्युक्त) शिक्षा, (जिन्होंने) गुरु के उपदेश में सीख ली है, कृपा-दृष्टिवाला प्रभु (अपना) कृपा द्वारा (उन्हें ससार सागर से) पार उतार देता है ।

(नाचने और फेरा लगाने से जीवन का उद्धार नहीं हो सकता । बहुत सी वस्तुएँ तथा जीव सदैव चक्कर लगाते रहते हैं, किन्तु इस चक्कर लगाने में क्या लाभ होता है ? क्या उनकी मुक्ति हो जाती है ?) कोलहू, चरखा, चक्की, (कुम्हार की) चाक, रेतिले मैदानों के बहुत से बवण्डर, लट्टू, मधानों, अन्न दाबनेवाले फल्हे, [फल्हे=लकड़ी की बनी हुई वस्तु विशेष] (सदैव घूमते रहते हैं) । पक्षी, भँभारियाँ (एक साँस में) (उड़ती रहती हैं) और साँस नहीं लेती (तात्पर्य यह कि एक गति से निरन्तर उड़ती रहती हैं और विश्राम नहीं करती) । (बहुत से) जानवरों को धूल चुमो कर घुमाया जाता है । (इस प्रकार) हे नानक, चक्कर लगाने वाले (जीवों और वस्तुओं) का अन्त नहीं है । (इस भाँति, वह प्रभु जीवों को माया के) बन्धनों में जकड़ कर घुमाता रहता है । सभी कोई (जीव) अपने किए हुए कर्मों के संस्कारों के अनुसार नाचते रहते हैं । (जो जीव) नाच नाच कर हंसते हैं, (वे) (अंत में) रां रो कर (इस ससार से) विदा होते हैं । (वे भी) (नाचने-बूढ़ने से) उड़ नहीं

जाते, (अर्थात् किसी ऊँची अवस्था में उड़ कर नहीं पड़ूँच जाते) और न वे सिद्ध ही हो जाते हैं ।

(अतएव) नाचना-कूदना तो (केवल) मन की उमंग है, हे नानक, प्रेम केवल उन्हीं के मन में है, जिनके मन में (परमात्मा का) भय है ॥ १० ॥

पउड़ी : नाउ तेरा निरंकारु है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ ।

जोउ पिड्डु सभु तिसदा बे खाजै आसि गवाईऐ ॥

जे लोइहि खंगा आपणा करि पुनहु नीच सदाईऐ ।

जे जरवाणा परहुरै जरु बेस करेवी आईऐ ॥

को रहै न भरोऐ पाईऐ ॥ ४ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु), तेरा नाम निरंकार है, यदि तेरा नाम स्मरण किया जाय, तो नरक में नहीं जाना पड़ता ।

यह जीव और शरीर सब कुछ उसी (प्रभु) का ही है । वही जीवों को खाने के लिए (भोजन) देता है, (कितनों को वह प्रभु देता है, इस बात को) कहता, (अपनी बाणी को) नष्ट करना है ।

हे जीव यदि तू वास्तव में अपनी भलाई चाहता है, तो शुभ कर्म करके भी अपने आपको नीच ही कहला ।

यदि कोई बुद्धिमान को त्यागना चाहे (तो यह यज्ञ व्यर्थ है), (क्योंकि) बुद्धिमान वेश धारण करके भ्रा हो जाता है । पनघड़ी की प्याली, भर जाने पर, कोई यहाँ नहीं रह सकता । [पाई=पनघड़ी की प्याली]; (भाव यह है कि जब साँसे पूरा हो जाती है, तो कोई भी प्राणी यहाँ नहीं रह सकता) ॥ ४ ॥

सलोकु : मुसलमाना सिफति मरीअति पडि पडि करहि बीचार ।

बंदे से जि पवहि बिचि बंदी बेखरा कउ दीदार ॥

हिन्दू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपार ।

तोरथ नाबहि अरवा पूजा अंगरवामु बहकार ॥

जोगी सुनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतार ।

मूखम भूरनि नामु निरंजन काइआ का आकार ॥

सतीआ मनि संतोसु उपजै बेरौ कै बीचारि ।

बेबे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसार ॥

चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा बेकार ।

इकि होवा खाइ चलहि ऐयाऊ तिना भी काई कार ॥

जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार ॥

ओइ जि आखहि सु तूँ है जाणहि तिना भि तेरो सार ।

नानक भगता भुख सालाहणु सनु नामु आघार ॥

सदा अर्नवि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पाछार ॥ ११ ॥

मिटो मुसलमान को पेड़ै पई कुम्हिएर ।

घड़ि भांडे इटा कीआ जलदो करे पुकार ॥

जलि जलि रोवै बपुड़ी भड़ि भड़ि पवहि ग्रंथिआर ।

नानक जनि करते कारखु कीआ जो जालै करतारु ॥ १२ ॥

संलोक : मुसलमानों को शरीअत की प्रशंसा (सबसे अधिक अच्छी लगती है) । (वे) शरीअत को पढ़ पढ़ कर यह विचार करते हैं (कि) परमात्मा का दीदार (दर्शन) पाने के लिए, (जो व्यक्ति) शरीअत की बन्दगी में पड़ते हैं, वे ही (उसके) बन्दे हैं ।

हिन्दू (अपने धार्मिक ग्रन्थों द्वारा) स्तुति-योग्य, दर्शनीय (सुंदर) स्वरूपवाले तथा अपार (हरी) की प्रशंसा करते हैं । (वे) तीर्थों में नहाते हैं, (मूर्तियों की) पूजा-अर्चा करते हैं और अगर (आदि) सुगन्धित (द्रव्यों का व्यवहार करते हैं) ।

योगीगण शून्य-(समाधि) लगाकर कर्तार (परमात्मा) का ध्यान करते हैं और 'अलख' 'अलख' (उस प्रभु के) नाम (उच्चारण करते हैं) । (योगियों के मतानुसार परमात्मा) सूक्ष्म स्वरूप वाला है, निरंजन (माया रहित) नामवाला है, और सारा आकार (दृश्यमान जगत्) (उसी की) काया है ।

(किसी पात्र) को देने के विचार से दानियों के मन में संतोष उत्पन्न होता है; (किन्तु पात्रों को) दे दे कर (वे मन ही मन परमात्मा में) हजारों गुना अधिक मांगते हैं और (बाहर) जगत् (उनके दान की) बड़ाई करता है ।

(दूसरी ओर जगत् में अनन्त) चोर, पर-खो-गामी, भूटे, भोड़े और विकारी भी हैं, (जो पाप कर कर के) पिछली की हुई कमाई को समाप्त करके (खाली हाथ इस संसार से) चल पड़ते हैं, (पर ये सब भी परमात्मा के रंग हैं), उन्हें भी (उसी ने) कोई (ऐसे-वैसे) कार्य (सौंपे) है ।

जल में (रहनेवाले) तथा स्थल पर (निवास करने वाले), (अनन्त) पुरियो, लोको तथा अन्य दृश्यमान जगत् (आकारा आकार) में (अनन्त) जीव (हैं) । वे जो कुछ भी कहते हैं, (हे कर्तार तू) उन्हें सब कुछ जानता है, उन्हें भी तेरा ही सहारा (आसरा) है ।

हे नानक, भक्त-जनो को (केवल प्रभु की) स्तुति की ही भूख रहती है, (हरी का) सच्चा नाम ही उनका आधार है । वे सदैव दि-रात आनन्द में रहते हैं और (अपने आप को) गुणवानों के चरणों की धूलि समझते हैं ॥ ११ ॥

[मुसलमान यह ख्याल करते हैं कि देहावमान के पश्चात् जिनका शरीर जलाया जाता है, वे दोजख की आग में जलते हैं । गुरु नानक देव निम्नलिखित पद में यह बतलाते हैं कि मुसलमानों का शव मरणोपरान्त पृथ्वी में गाड़ा जाता है । संयोगवश यदि उनके शव की मिट्टी कुम्हार के हाथ में पड़ जाय, तो उसकी क्या दुर्दशा होगी] ?

अर्थ : मुसलमानों की मिट्टी (जहाँ वे कब्र में गाड़े जाते हैं), अनेक बार कुम्हार के वश में आ पड़ती है । (कुम्हार उस चिकनी मिट्टी को) गढ़ कर बरतन और ईंटें बनाता है, (अर्थात् में पड़ कर वह मिट्टी मानों) जलनी हुई चिल्लाती है । वह बेचारी जल-जल कर रोती है और उसमें से धंगारे झड़-झड़ कर निकलते हैं । हे नानक, जिस कर्तार ने जगत् रचा है, वही (वास्तविक) भेद जानता है ॥ १२ ॥

पउड़ी : बिनु सतिगुर किनै न पाइप्रा बिनु सतिगुर किनै न पाइप्रा ।
 सतिगुर बिचि आपु रलिओनु करि परगटु आलि सुणाइप्रा ॥
 सतिगुर निनिऐ सदा मुकतु है जिनि बिचहु मोठु चुकाइप्रा ।
 उतसु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइप्रा ॥
 जगजीवनु दाता पाइप्रा ॥ ५ ॥

पउड़ी : बिना सद्गुरु (की शरण में गए), किसी ने भी (हरी को) नहीं पाया है ।
 बिना सद्गुरु (की शरण) के किसी ने भी (प्रभु को) नहीं पाया है, (क्योंकि) (प्रभु ने)
 अपने आप को सद्गुरु के अन्तर्गत रखवा है, (तात्पर्य यह है कि सद्गुरु ने प्रभु का साक्षात्कार
 किया है) । (मैंने इस बात को) प्रकट रूप में (सब को) सुना दी है । (जिस) सद्गुरु ने
 अपने अन्तर्गत से (माया के) मोह को दूर कर दिया है, (यदि वह मनुष्य को मिल जाय),
 (तो मनुष्य मायिक बन्धनों से) मुक्त हो जाता है ।

(अन्य चतुराईयो की अपेक्षा) यहाँ विचार उत्तम है (कि जिस मनुष्य ने अपने गुरु के
 माध्यम से) सत्य (परमात्मा से) चित्त युक्त कर दिया है, उसे जग के जीवन का दाता प्राप्त
 हो गया है ॥ ५ ॥

सलोङ्ग हउ बिचि आइप्रा हउ बिचि गइप्रा ।
 हउ बिचि जंमिप्रा हउ बिचि मुप्रा ॥
 हउ बिचि दिता हउ बिचि सइप्रा ।
 हउ बिचि लटिप्रा हउ बिचि गइप्रा ॥
 हउ बिचि सचिआरु कूड़िआरु ।
 हउ बिचि पाप पुन बीचारु ॥
 हउ बिचि नरकि सुरगि भवनारु ।
 हउ बिचि हसै हउ बिचि रोवै ॥
 हउ बिचि भरीऐ हउ बिचि धोवै ।
 हउ बिचि जाती जिनसी खोवै ॥
 हउ बिचि मूरखु हउ बिचि मिआणा ।
 मोख मुकति की सार न जाणा ॥
 हउ बिचि माइप्रा हउ बिचि छाइप्रा ।
 हउमै करि करि जंत उपाइप्रा ॥
 हउमै यूभै ता दरु सूभै ।
 गिआन विहूणा कथि कथि लूभै ॥
 नानक हुकमी लिखोऐ लेखु ।
 जेहा वेखहि तेहा खेखु ॥ १३ ॥
 प्रसां बिरसां तीरयां तटां मेघा खेतांह ।
 दोपां सोणां मंडसां खडां वरभंडाह ॥
 शंडज जेरज उनभुजां खःणी सेतजाह ।
 सो मिति जाणै नानका सरां मेरा जेताह ॥

नानक जंत उपाइ के संभावे सभनाह ।
 जिनि करतै करणा कीम्रा चिता भि करणो ताह ॥
 सो करता चिता करे जिनि उपाइम्रा जगु ।
 तिसु जोहारी सुअसति तिसु तिसु दीबाणु अमगु ॥
 नानक सबे नाम बिनु किम्रा टिका किम्रा तगु ॥ १४ ॥
 लख नेकीम्रा बंनिम्राईम्रा लख पुंना परवाणु ।
 लख तप उपरि तीरथां सहज जोग बेबाण ॥
 लख मूरतण संगराम रण महि छुटहि पराण ।
 लख सुरतो लख गिमान बिमान पड़ीअहि पाठ पुराण ॥
 जिनि करतै करणा कीम्रा लिखिम्रा आवण जाणु ।
 नानक मति मिथिम्रा करमु सचा नीसाणु ॥ १५ ॥

संलोक : अहंकार मे (मनुष्य) (इस जगत् मे) आता है (और) अहंकार मे (यहाँ से) चला जाता है । अहंकार मे ही (वह) जन्म लेता है और अहंकार मे ही मर जाता है । अहंकार में ही (वह) देता और अहंकार मे ही लेता है । अहंकार मे (वह) (किसी वस्तु को) प्राप्त करता है और अहंकार मे ही खो देता है ।

अहंकार मे ही (वह) सच्चा (अथवा) झूठा (होता है) । अहंकार मे ही (वह) (अपने) पापों और पुण्यों को विचारता है । अहंकार ही (के कारण) (वह) स्वर्ग अथवा नरक मे पड़ता है । अहंकार ही के (वशीभूत), (यह सुख प्राप्त होने पर) हँसता है, (और दुःख मिलने पर) रोता है । अहंकार के (फलस्वरूप) वह (कभी) (पापों से) भर जाता है (और कभी उन पापों को पुण्यों द्वारा) धो देता है । अहंकार में ही (वह) (अपनी) जानि और वरुण (श्रेणी) खो देता है, (तात्पर्य यह है कि मनुष्यता की ऊँची-पदवी मे गिर जाता है) । अहंकार (के ही कारण) (वह) मूर्ख (होता है) और अहंकार मे ही बनुर (बनता है) । (अहंकार ही मे पड़े रहने के कारण) (वह) मोक्ष तथा मुक्ति का पता नहीं जानता ।

अहंकार ही (के प्रभाव के कारण) (जीव) माया (मे पड़ा रहता है) और अहंकार के ही कारण (उसे) माया का भ्रम (घेरे रहता है) । अहंकार कर करके जीव (अनेक बार) उत्पन्न होते रहते है । यदि इस अहंकार (का स्वरूप) (मनुष्य ठीक-ठीक) समझ ले, (तो उसे परमात्मा का दरवाजा) दिखाई पड़ने लगता है । (वास्तविक) ज्ञान के बिना (मनुष्य) (केवल) कथोपकथन (वाद-विवाद) मे परेशान रहता है ।

हे नानक, (जीव) जिस जिस प्रकार देखते हैं, उसी उसी प्रकार (उनके स्वरूप) दिखाई पड़ते हैं, (तात्पर्य यह है कि जिस नीयत से वे दूसरे प्राणियों से वरतते हैं, उसी प्रकार के उनके आन्तरिक संस्कार बनते है, और वही उनका पृथक् अहंकार बन जाता है), पर यह सब लेख भी उसी हुक्म देनेवाले (परमात्मा) की आज्ञा से ही लिखा जाता है ॥ १३ ॥

हे नानक, (वह हरी ही) निम्नलिखित का अनुमान लगा सकता है—मनुष्यो, वृक्षो, तीर्थ-तटो, बादलो, खेतो, द्वीपो, लोको, मण्डलो, खण्ड-ब्रह्माण्डों, अडज, जेरज, उद्भिज और स्वेदज (इन चार) खानियों, समुद्रो, पर्वतों (तथा अन्याय) जीव-जन्तुओं आदि का ।

(अर्थात् उपर्युक्त की संख्या कितनी है, परमात्मा के बिना और कोई नहीं जान सकता) । हे नानक, सभी जीव-जन्तुओं को उत्पन्न करके (परमात्मा ही) उनकी संभाल करता है । जिस कर्त्ता (परमात्मा ने) जगत् को उत्पन्न किया है, उसी को (उसकी) चिन्ता भी करनी है । (अतएव) वही कर्त्ता जगत् के (हित अथवा कल्याण) की चिन्ता करे, जिसने उसे उत्पन्न किया है । उस (कर्त्ता) को प्रणाम स्वीकार हो, उसका कल्याण हो, उसका दरबार अभंग — शाश्वत है । हे नानक, सच्चे नाम के बिना तिलक अथवा तागे (यज्ञोपवीत) की क्या (गणना) है ॥ १४ ॥

(मनुष्य) (चाहे) लाखों नेकियों और अच्छाइयों को (करे) और लाखों प्रामाणिक पुण्यों (का भी सम्पादन करे), तीर्थों में लाखों ऊर्ध्व तप करे और जंगलों में (योगियों के) सहज योग (की साधना करे), संग्राम में लाखों शरवीरता (प्रदर्शित करे), और युद्धस्थल में अपने प्राण त्याग, लाखों श्रुतियों का (अध्ययन करे), लाखों ज्ञान-ध्यान की (बातें करे), और लाखों पुराणादिक (धार्मिक ग्रन्थों) का पाठ करे, (किन्तु) नानक (की दृष्टि में) उपर्युक्त बुद्धियाँ मिथ्या हैं, (परमात्मा की) कृपा ही सच्चा चिह्न है । जिस कर्त्ता ने संसार रचा है, (उसी ने जीवों के) जाने-जाने (जन्म-मरण) (के क्रम की भी) लिख कर निर्धारित किया है ॥ १५ ॥

पउड़ी : सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु बरताइआ ।
जिस तूं देहि तिसु मिलै 'सचु ता तिन्ही सचु कमाइआ ॥
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ह कै हिरदै सचु बसाइआ ।
मूरख सचु न जाणन्ही मनमुखी जनमु गवाइआ ॥
विचि दुनोआ काहे आइआ ॥ ६ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु) तू ही एक सच्चा साहब है, जिसने सत्य को सच्चाई में बरता है । (हे हरी), जिसे तू देता, उसी को सत्य प्राप्त होता है और तब वही सत्य की कमाई करता है । जिसके हृदय में सत्य का निवास है, (ऐसे) सद्गुरु के मिलने पर (मनुष्य) सत्य प्राप्त करता है । मूर्ख सत्य को नहीं जानता, (अपनी) मनमुखता के कारण (अपने) (अमूल्य) जन्म को नष्ट कर दिया है । (वह) उस संसार में क्यों आया है ? ॥ ६ ॥

सलोकु : पड़ि पड़ि गरी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गरीअहि लात ॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास ॥
नानक लेखे इक गल होरु हउमै भूलखा आख ॥ १६ ॥
लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ ।
बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ ॥
बहु भेल कीआ बेहो दुख दीआ ।
सहु बे जीआ अपरा कीआ ॥
अनु न खाइआ सादु गवाइआ ।

बहु बुलु प इया दूजा भ.इया ॥
 बसत्र न पहिरे अहिनिंस कहरे ।
 मोनि त्रिभूता किउ जाये गुर बिनु सूता ॥
 पग उपेतारणा अपरणा कीया कमलगा ॥
 अलु मलु खाई सिरि छाई पाई ॥
 मूरखि अंधे पति गवाई ।
 बिरगु नावै किछु थाइ न पाई ॥
 रहै बेबाणी मझी ममाणी ।
 अंधु न जाएँ किगि पछुताणी ॥
 सतिगुरु भेटे सो सुलु पाए ।
 हरि का न मु मंनि वसाए ॥
 न.नक नदरि करे सो पाए ।
 आस अवेसे ते निहकेवलु हउमै सबदि जलाए ॥ १७ ॥

सलोक : (मनुष्य) चाहे पढ़ पढ़ कर (पुस्तकों से) गाड़ियाँ लाद दे, और पढ़ पढ़ कर (अपनी पुस्तकों से) काफिले (लाद दे), पढ़ पढ़ कर (अपनी पुस्तकों से) नावे (भर दे), पढ़ पढ़ कर (पुस्तकों द्वारा) खते (भर दे), (वह) महीनो (पुस्तकों) पढ़ता रहे, (वह) (अपनी सारी) आयु तक अध्ययन करे, (अपनी अन्तिम) श्वास तक पढ़े, किन्तु नानक के लेखे में केवल एक वान है—(परमात्मा के नाम का स्मरण वास्तविक अध्ययन है) और अन्य (बातों का अध्ययन) अहंकार है, सिर खपाना है ॥ १६ ॥

(जो जितना ही अधिक) लिखता-पढ़ता है, (वह उतना ही) अधिक दग्ध होता है; जो (जितना अधिक) तीर्थों का भ्रमण करता है, (वह उतना ही अधिक (वडवडाता) है; (जो जितना ही अधिक) वेश बनाता है, (वह उतना ही अधिक) शरीर को वष्ट देता है । (हे मेरे) जीव, (अपने किए हुए) कर्मों को सहन करो (भोगो) ।

(जो) भ्रम नहीं खाता है, (वह) (जीवन के) स्वाद को गँवा देता है । (मनुष्य) द्वैतभाव के कारण बहुत कष्ट पाते हैं । (जो) वस्त्र नहीं धारण करते, वे दिन-रात करा-ते हैं (दुखी होते हैं) । (मोनी) मोन धारण कर (अपने को) नष्ट कर देते हैं, जो (अज्ञान में) सो रहा है, (भला बताओ) (वह) गुरु के बिना कैसे जग सकता है ? (चाहे मनुष्य) गंगे ही पेर (क्यों न चले), (किन्तु) उसे (अपने) किए हुए कर्मों को सहना पड़ेगा ।

(यदि कोई) गंदगी भक्षण करता है और (अपने) सिर के ऊपर धूल डालता है, तो वह अंधा, मूर्ख (अपनी) प्रतिष्ठा गँवा देता है; बिना नाम के उसे कोई भी (रहने का) स्थान नहीं प्राप्त होता ।

(जो) अंधा (मूर्ख मनुष्य) जगलो, मझियो तथा स्मशानो में रहता है, (वह परमात्मा) को नहीं जानता, (उस अंधे को) अंत में (फिर) पछताना पड़ेगा । (जो व्यक्ति) सद्गुरु से मिलता है और हरि का नाम (अपने) मन में बसाता है, वही सुख पाता है । (नानक, (जिसके ऊपर परमात्मा अपनी) कृपादृष्टि करता है, वही (उसे) पाता है । (ऐसा व्यक्ति)

भाषा और चिन्ता से मुक्त हो जाता है और (गुरु के शब्द द्वारा) अहंकार को जला देता है ॥ १७ ॥

पउड़ी : भगत तेरे मनि भावये दरि सोहनि कीरति गावये ।
नानका करमा बाहरे दरि दोष न लहून्ही धावये ॥
इकि भूतु न बुझिन्ह आपणा अणहोवा आपु मणाइये ।
हउ दाढी का नीच जाति होरि उतम जाति सवाइये ॥
तिन्ह मंगा जि तुमै धियाइये ॥ ७ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु), भक्त ही तेरे मन को अच्छे लगने है, (वे ही) (तेरे) दरवाजे पर सुशोभित होते हैं और तेरी कीर्ति गाते हैं । हे नानक, (जो व्यक्ति) तुम्हारी कृपा से रहित हैं [अथवा इसका अर्थ इस भाँति भी हो सकता है, जो व्यक्ति (शुभ) कर्मों से विहीन है], (उन्हें परमात्मा) के दरवाजे में प्रवेश नहीं मिलता (और वे जन्म-जन्मान्तरो में) भटकते रहते हैं । कुछ (तो ऐसे हैं जो) अपना मूल (परमात्मा को) नहीं जानते, (किन्तु वे) अकारण हो (अपनी गणना श्रेष्ठ पुरुषों में) गिनाना चाहते हैं । (हे प्रभु), मैं नीच जाति का भाट हूँ और बहुत से लोग (अपने को) ऊँची जाति का (भाट) कहलवाने हैं । (हे हरी), मैं उम्मी से माँगता हूँ, जो तेरा (सदैव) ध्यान करने है ॥ ७ ॥

सलोकु : कूड़, राजा कूड़, परजा कूड़, सभु संसार ।
कूड़, मंडप कूड़, माड़ी कूड़, बेसगहार ।
कूड़, सुइना कूड़, रषा कूड़, पैन्हगहार ।
कूड़, काइम्रा कूड़, कपड़, कूड़, रुमु अपार ॥
कूड़, मोम्रा कूड़, बोबी खपि होए खार ।
कूड़, कूड़, नेहु सगा विसरिआ करतार ॥
किनु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहार ॥
कूड़, मिठा कूड़, माखिउ कूड़, डोबे पूर ।
नानक बखारै बेनती तुघु बाहु कूड़ो कूड़ ॥ १८ ॥
सबु ता परु जाएणीए जा रिदै सचा होइ ।
कूड़, की मसु उतरै तनु करे हछा धोइ ॥
सबु ता परु जाएणीए जा सचि धरे पिम्रार ।
नाउ सुखि मनु रहसीए ता पाए मोख दुप्रार ॥
सबु ता परु जाएणीए जा जुगति जाएँ जीव ।
धरति काइम्रा साधि कै बिचि बेइ करना बीउ ॥
सबु ता परु जाएणीए जा सिल सची लेइ ।
बइम्रा जाएँ जीव की किछु पुंनु दान करेइ ॥
सबु तां परु जाएणीए जा आत्म तीरथ करे निवास ।
सलिमुक नो पुछि कै बहि रहै करे निवास ॥
सबु सभना होइ दाक पाप कड़े धोइ ।
नानक बखारै बेनती जिन सबु पसै होइ ॥ १९ ॥

सलोक : राजा मिथ्या (भ्रम रूप) है, (उनकी) प्रजा भी मिथ्या है; सारा जगत् भ्रम है । (बड़े-बड़े) मण्डप, (आलीशान) महियाँ भूठी हैं; (उनमें) बैठनेवाले (मनुष्य भी) मिथ्या हैं । सोना मिथ्या है, चांदी भी मिथ्या है, (उन्हें) पहननेवाले भी भ्रमरूप ही हैं । (मनुष्य को सुन्दर) काया, (उनके) कपड़े (और उसका) अपार रूप— (सभी) मिथ्या हैं—भ्रमरूप हैं । *मिया, बीबी भी मिथ्या हैं; (मियाँ बीबी के सम्बन्ध से), (सारे जगत् के स्त्री-पुरुष) खप-खप कर खाक हो रहे हैं ।*

इस मिथ्या में (फँसे हुए जीव का) मिथ्या से हो स्नेह हो गया है, (जिसके फल-स्वरूप) (वह) कर्ता पुरुष (परमात्मा) को भूल गया है । (इस परिस्थिति में) किसके साथ दोस्ती की जाय ? सारा जगत् चला जानेवाला, (नश्वर है) ।

(यद्यपि समस्त मायिक पदार्थ मिथ्या और भ्रम रूप हैं, तथापि) यह छन, यह भ्रम मोटा लगता है, शहद की भाँति मोटा लगता है । नानक एक विनती करता है कि (हे प्रभु), तेरे बिना (सब कुल) मिथ्या ही मिथ्या है ॥१८॥

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब उसके हृदय में सत्य (परमात्मा) का निवास हो जाय । (सत्य परमात्मा के हृदय में बसने से) मिथ्या—भ्रम की मँल (मन से) धुल जाती है, (मन के स्वच्छ होने से) (उसका) शरीर भी धुल कर पवित्र हो जाता है (मानसिक अवस्था का प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है) ।

(मनुष्य को) सच्चा तभी जानना चाहिए, जब (वह) सत्य (परमात्मा) से अपना धार धारण कर ले । जो व्यक्ति (हरि के पवित्र) नाम के मुनने (मात्र) से आनन्दित होता है, वही मोक्ष का द्वार पाता है ।

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब (वह) (आध्यात्मिक) जीवन व्यतीत करने को युक्ति—उपाय—विधि जाने । (वह इस विधि से) अपनी पृथ्वी रूपी काया को (भली-भाँति) साध कर (तैयार कर) (उसमें) कर्ता (के नाम रूपों) बीज बोए ।

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब (वह) (गुरु से) सच्ची सीख (शिक्षा) ग्रहण करे । (वह) जीवों पर दया-भाव रखे, और (दूसरों को) आवश्यकता में जान कर उनकी सेवा के लिए कुछ दान-पुण्य करे ।

(मनुष्य को) सच्चा तभी समझना चाहिए, जब वह आत्मा रूपी तीर्थ में निवास करने लगे, (अपने) सद्गुरु से पूछ कर (आत्मा रूपी तीर्थ में) बैठ जाय (स्थित हो जाय), (और उनी में शाश्वत रूप से) निवास करने लगे ।

नानक एक विनती करता है कि जिनके पल्ले सत्य (परमात्मा) पड़ जाता है, उनके सारे (दुःखों की) दवा (प्रभु) आप वन जाता है और (उनके सारे) पापों को धोकर (हृदय से बाहर) निकाल देता है ॥१९॥

पउड़ी : दानु सहिडा तली खाकु जे मिले त मसत्रकि लाइऐ ।

कड़ा सालवु छड़ीऐ होइ इक मनि अलखु धियाईऐ ॥

फलु तेइहो पाईऐ जेबेहो कार कमाईऐ ।

जे होबे पूरब लिखिआ ता धूडि तिना दी पाईऐ ।

मति थोड़ी सेव गवाईऐ ॥ ८ ॥

पउड़ी : (मिरे चित्त मे यही आता है कि) मुझे (संतों के) चरणों की धूल का दान मिले। यदि (यह दान) मिल जाय, तो (मैं) (उसे) अपने मस्तक मे लगा लूँ। (मिरा मन) मिथ्या—भ्रम रूप लालच को त्याग देना चाहता है और एकनिष्ठ होकर श्रम्य (हरी का) ध्यान करना चाहता है, (क्योंकि मनुष्य) जिस प्रकार के कार्य करना है, उसी प्रकार की फल-प्राप्ति भी (उसे) होती है। यदि पूर्व जन्म मे लिखा हुआ हो, तभी उन (मंतो की) धूल प्राप्त होती है। (गुरुमुखी का आश्रय त्याग कर.) यदि अपनी श्रम्य बुद्धि (को टेक रखी जाय), तो की हुई परिश्रम की कमाई नष्ट हो जाती है, (क्योंकि उसमे अहंभावना की प्रधानता होती है) ॥१॥

सलोक : सच्चि कालु कूडु वरतिआ कलि कालख बेताल ।

बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि ॥

जे इकु होइ त उगवै स्त्री ही रुनि डोइ ।

नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ ॥

भै विचि खुं बि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ ।

नानक भगती जे रपै कूड़े सोइ न कोइ ॥ २० ॥

लसु पापु दुइ राजा महता कूडु होआ सिकदार ।

कामु नेनु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचार ।

अंधी रयति गिआन बिहारी भाहि भरे सुरवार ।

गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीमार ।

उचे कूकहि वादा गावहि जोधा का बीचार ।

भूरल पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआर ।

धरमी धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआर ।

जती सदावहि जुगति न जानहि छडि बहहि घर बार ।

सभु को पूरा आये होवै घटि न कोई आखै ।

पति परवारणा पिछै पाईऐ तः नानक तोलिआ जापै ॥ २१ ॥

बदी सु वजगि नानका सचा वेलै सोइ ।

सभनी छाला मारीआ करता करे सु होइ ॥

अगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे ।

जिनकी लेलै पनि पवै चंगे सेई केइ ॥ २२ ॥

सलोक : सत्य का काल पड़ गया है, भूत ही (प्रधान रूप से) बरत रहा है, कलियुग (के पापों की) कालिमा के कारण (लोग) भूत बने हैं। (जिन्होंने) (नाम रूपी) बीज बोया है, (वे) प्रतिष्ठा के साथ (यहाँ से) विदा हुए हैं। (अब भला, अधर्म रूपी) दाल किस प्रकार उग सकती है, (शुभ फल दे सकती है) ? यदि बीज एक हो (पूरा हो) और ऋतु भी अनुकूल हो (अमृतबेला अथवा ब्रह्ममूर्त हो), तभी यह बीज जमेगा।

हे नानक, बिना पाह दिये, कोरे (वस्त्र) मे (बमकीला) रंग नहीं चढ़ता [पाह मजीठ आदि लाल रंग बढ़ाने के पहले, पहले एक कच्चा पीला रंग दिया जाता है। पुराने ढंग के अनुसार कपड़े रंगने के पूर्व पाह देना आवश्यक होता था, क्योंकि इसके बिना रंग नहीं चढ़ता था]। (यदि मन को वास्तव मे परमात्मा की भक्ति मे रगना है, तो निम्नलिखित विधि

अपनानी चाहिए) — (यदि मन को) (परमात्मा के) भय रूपी हृडे में चढ़ाया जाय (और तत्पश्चात्) लज्जा (पाप कर्मों से शर्म) का पाह लगाया जाय (और फिर) (परमात्मा की) भक्ति के रंग में रंग दिया, (तो अनूठा रंग चढ़ जाता है) और मिथ्यापन का लेश मात्र भी वहाँ नहीं रहेगा ॥२०॥

(जगत में जीवों के निमित्त) (जीभ का) लालच (मानो) राजा है, पाप वजीर है और झूठ सिक्के बनाने वाला सरदार अथवा चौधरी है । (इस लालच और पाप के दरबार में) काम नायब है, (इसे) बुलाकर सलाह पूछी जाती है (और यह) बैठ-बैठ कर विचार करता है । प्रजा ज्ञान से विहीन होने के कारण अंधी हो गई है, (जिससे) (यह) अग्नि रूपी (तृष्णा) को रिश्वत दे रही है ।

(जो व्यक्ति अपने आप को) ज्ञानी (कहलवाने है), (वे) नाचते हैं, बाजे बजते हैं और नाना प्रकार के रूप (वेश, स्त्राग) बना कर शृङ्गार करते हैं । (वे ज्ञानी) उच्च स्वर से चिल्लाते हैं, (वे) मुद्दों के प्रसंग गत हैं और योद्धाओं (की शूरवीरता) का वर्णन करते हैं ।

पदे-निचे मूर्ख कोरी चालाकी करनी और तर्क-वितर्क करना जानते हैं, (पर वे) (माया के) आकर्षणों (प्यार) को मग्न करने में तत्पर हैं ।

(जो मनुष्य अपने आप को) धर्मी (समझते हैं, वे अपनी समझ में तो) धार्मिक कार्य करते हैं, (पर वे अपना सारा परिश्रम) गँवा देते हैं, (क्योंकि वे अपने धर्म के बदले में) मोक्ष-द्वार मांगते हैं ।

(कई मनुष्य ऐसे हैं जो अपने आप को) यती तो कहलवाते हैं, (किन्तु वास्तविक यती बनने) की युक्ति नहीं जानते, (या ही देखा-देखी) घर-बार छोड़ बैठते हैं ।

(अविद्या ग्रस्त) सभी लोग (अपने को) पूर्ण समझते हैं, कोई भी (अपने को) घट कर नहीं समझता । पर हे नानक, मनुष्य नील में तभी पूरा उतरता है, जब तराजू के दूसरे पलड़े में प्रतिष्ठा रूपी बाट रक्खा जाय (भावार्थ यह कि वही मनुष्य पूर्ण है, जो परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठित हो) ॥२१॥

(जो बात) परमात्मा के यहां में नियत है, वही प्रकट होगी, (भाव यह कि वही होकर रहेगी) । सभी छलांग मारते हैं, (प्रयत्न करते हैं) किन्तु होता वही है, जिसे परमात्मा करता है । परमात्मा के द्वार पर (आगे) न कोई जाति है और न कोई जोर ही है, (तात्पर्य यह कि परमात्मा के यहाँ ऊँच-नीच जाति का कोई प्रश्न नहीं है और न किसी के व्यक्तित्व का ही जोर वहाँ चल सकता है) । परमात्मा के यहाँ तो जीवों का नया ही (विधान) चलता है । वहाँ तो वे ही कोई-कोई व्यक्ति भले गिने जाते हैं, जिन्हें (कर्मों के) लेखे (हिस्साब) का उस समय आदर प्राप्त होता है, (भावार्थ यह है कि जिन्होंने इस संसार में शुभ कर्म किए हैं, उन्हीं को परमात्मा के दरवाजे पर आदर प्राप्त होता है) ॥२२॥

पउड़ी : सुरि करमु जिना कउ तुषु पाइआ ता तिनी खसमु घिआइआ ।
एना जंतु कै वसि किछु नाही तुषु बेकी जगतु उपाइआ ॥
इकना नो तूं भेलि लेहि इकि आपहु तुषु सुआइआ ।
सुर किरपा ते जाणिआ जियै तुषु आपु बुभाइआ ॥
सहजे ही सचि समाइआ ॥ ६ ॥

पड़ड़ी : (हे प्रभु) जिन मनुष्यों के ऊपर तू ने प्रारम्भ से ही कृपा की है, उन्होंने पति को (अर्थात् तुझे) स्मरण किया है । उन जीवों के वश में कुछ भी कही है (कि वे तुम्हारा स्मरण कर सकें) । तू ने नाना भक्ति का जगत् उत्पन्न किया है । कुछ (जीवों) को तो तू (अपने वरणी) में युक्त किए रहता है और कुछ (जीवों) को अपने से विद्यांग कराए रहता है ।

जिस (भाग्यवान् व्यक्ति को) तूने अपने आप समझ दे दो है, उसीने सदगुरु की कृपा से तुझे पड़वान लिया है और वह सहज भाव से अपने सत्य (सद्भा) में समाहित हुआ है ॥६॥

सलोक : दुनु बाक सुनु रोगु भइया जा सुख तामि न होई ।

तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई ॥ १ ॥

बलिहारी कुदरति बसिआ तेरा अंनु न जाई लखिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जाति महि जोति जोति महि जाता अकल कला भरपूर रहिआ ।

तूं सबा साहिबु सिफति सुआलिहउ जिनि कीती सो पारि पड़िआ ॥

कहु नानक करते कीआ बाता जो किछु करणा सु करि रहिआ ॥ २३ ॥

कुंसे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ ।

गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ ॥ २४ ॥

सलोक : (हे प्रभु, तेरी विविध माया है कि) विपत्ति (जीवों के रोगों की) दवा (बन जाती) है और सुख (उनके लिए) दुःख (का कारण) हो जाता है, पर यदि (वास्तविक आत्मिक) सुख (जीव को प्राप्त हो जाय), तो (दुःख) नहीं रहता । हे प्रभु, तू निर्माण करने वाला कर्त्ता है, (तू स्वयं ही इन भेदों को समझता है); मेरी सामर्थ्य नहीं है (कि मैं इन रहस्यों को समझ सकूँ); यदि मैं अपने आप को कुछ समझ लूँ (भाव यह कि जब मैं यह विचार करने लगूँ कि मैं तेरे भेद को समझ सकता हूँ) तो यह बात शोभा नहीं देती ॥१॥

हे कुदरत के बीच में बसने वाले (कर्त्तार), मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी होता हूँ । तेरा अन्त नहीं पाया जा सकता ॥१॥ रहाउ ॥

हर एक जाति (जीव) में तेरी ही ज्योति है और तेगी ज्योति में सारे जीव (जाति) हैं, (तू) (सभी स्थानों में) (अपनी) कलारहित कला से व्याप्त है । हे प्रभु तू सत्य (सदैव स्थिर रहने वाला है), तेरी सुहावनी बडाई (महत्ता) है; जिस जिसने तेरे गुण गाए हैं, (वे) (इस संसार सागर) से पार हो गए हैं । हे नानक, (तू भी) कर्त्ता पुरुष की (स्तुति और प्रशंसा की) बातें कह, (और यह समझ) कि प्रभु जो कुछ ठीक समझता है, वह कर रहा है, (उनके क्रिया-कलापों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता) ॥२३॥

(जिस भाँति) कुम्भ में बँधा हुआ जल रहता है, किन्तु बिना जल के कुम्भ हो नहीं सकता, (बन नहीं सकता), (उसी भाँति) ज्ञान द्वारा बँधा हुआ मन (टिकता) है, किन्तु बिना गुरु (मन) के ज्ञान भी नहीं होता ॥२४॥

पड़ड़ी : पड़िआ होवै गुनहारा ता ओमी साधु न मारीऐ ।

जैहा घाले घालणा तेबेहो नाउ पनारीऐ ॥

ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ ।

पड़िआ अते ओमीआ कीचारु अगै कीचारीऐ ॥

सुहि बलै सु अगै मारीऐ ॥ १० ॥

पउड़ी : (यदि) पढ़ा-लिखा (व्यक्ति) दोषी हो, (तो वह दण्ड का भागी है), किन्तु यदि अनपढ़ साधु है तो उसे मारना नहीं चाहिए । (मनुष्य) जिस प्रकार की करनी करता है, उसी प्रकार का उसके नाम का प्रचार होता है, (पुण्य करने से पुण्यात्मा और पाप करने से पापी कहलाता है) । (अतएव इस संसार में तू) ऐसा खेल मत खेल कि जिससे (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर (तुझे जीवन की बाजी) हारनी पड़े ।

पढ़े-लिखे अथवा अनपढ़ का विचार (निर्णय) आगे चलकर (परमात्मा के) दरबार में किया जायगा । जो अपने मुँह के अनुसार (मनमुख होकर) चलता है, आगे (परमात्मा के यहाँ) उसके ऊपर मार पड़ती है ॥१॥

सलोक : नानक मेरु शरीर का इकु रथु इकु रथवाहु ।
 जुगु जुगु केरि बटाईअहि गिआनी बुझहि ताहि ॥
 सतजुगि रथु संतोष का धरम अगै रथवाहु ।
 जेतै रथु जतै का जोरु अगै रथवाहु ॥
 दुआपुंरि रथ तपे का सतु अगै रथवाहु ।
 कलजुगि रथु अगनि का कड़ु अगै रथवाहु ॥ २५ ॥
 साम कहै सेतंबरु सुआमी सच महि आछै साचि रहे ।
 सभु को सचि समायै ।
 रिगु कहै रहिआ भरपूरि । राम नामु बेवा महि सुरु ॥
 नाइ लइए पराछत जाहि । नानक तउ मोखंतरु पाहि ॥
 जुज महि जोरि छली चंद्रावलि कान्ह कृसनु जावसु भइआ ।
 परजातु गोपी लै आइआ बिद्रावन महि रंगु कीआ ॥
 कलि महि बेदु अथरबसु हूआ नाउ लुदाई अलहु भइआ ।
 नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठारणी अमलु कीआ ॥
 चारे बेद होए सचिआर । पड़हि गुणहि तिनह चार वीचार ॥
 भाउ भगति करि नोबु सदाए । तउ नानक मोखंतरु पाए ॥ २६ ॥

सलोक : हे नानक, (चौरासी लाख योनियों में) मनुष्य-योनि सर्वश्रेष्ठ (सुमेरु) है; (इस शरीर का) एक रथ है और एक सारथी है । प्रत्येक युग में (रथ और सारथी) बार-बार बदलते रहते हैं, उम (रहस्य) को (कोई) ज्ञानी ही समझ सकता है ।

सत्ययुग में संतोष का रथ था (और उसके अग्र भाग में बैठने वाला) सारथी रहा । त्रेता में संयम का रथ था (और उसके अग्र भाग में बैठने वाला) शौर्य (पराक्रम) सारथी था । द्वापर युग में तप का रथ था (और उसके अग्र भाग में बैठने वाला) सत्य (उसका) सारथी रहा । कलियुग में धाग (तृष्णाग्रि) रथ है और झूठ ही (रथ के अग्रिम भाग का) सारथी है ॥२५॥

सामवेद कहता है कि (सत्ययुग में) (संसार के स्वामी का नाम) श्वेताम्बर (प्रसिद्ध है—[श्वेताम्बर शुद्ध सत्वगुणी वृत्ति का द्योतक है]; (उस युग में लोग) सत्य की इच्छा करते हैं, सत्य में ही रहते हैं (और अन्त में) सभी सत्य में समाहित हो जाते हैं ।

हे नानक, श्रुत्वेद का कथन है कि (त्रेतायुग में) (श्री) रामचन्द्र (जी) का नाम सभी देवताओं में सूर्य (को भीति चमकता है), (वे राम सर्वत्र) परिपूर्ण (व्यापक है) । (उनका) नाम लेने से पाप दूर हो जाते हैं और जीव तब मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ।

यजुर्वेद (कहता है कि) (द्वापर में) (जगत् के स्वामी का नाम) यादव-वंशी 'कान्हू' और 'कृष्ण' (प्रसिद्ध) हो गया, (जो) शक्ति के बल पर चन्द्रावली को छल लाया, (अपनी रानी) (सत्यभामा- के कहने से स्वर्ग से) पारिजात वृक्ष लाया (और जिसने) वृन्दावन में (भीति भीति के) कौतुक रचे ।

कलियुग में श्रथर्ववेद (प्रधान) हो गया है, (जगत् के स्वामी का नाम)—'खुदा' और 'अल्लाह' पड़ गया है, तुकों और पठानों का राज हो गया है, (जिन्होंने) नीचे वस्त्र के कपड़े (बनवा कर) पहने हैं ।

(हिन्दुओं के अनुसार) चारो वेद सत्य हैं, उनके पढ़ने और विचारने से सुन्दर (चाह) विचार ज्ञान होते हैं । किन्तु नानक (की दृष्टि में जब व्यक्ति) प्रेमाभक्ति करके (अपने को) नीच कहलवाता है, तभी (वह) मुक्ति प्राप्त करता है ॥२६॥

पउड़ी : सति-गुर बिटहु बारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ ॥

जनि करि उपवेसु गिआन अंजनु दीआ इन्ही नेत्री जगत् निहालिआ ॥

खसमु छोडि डूजे लगे डूबे से बणजारिआ ।

सतिगुरु है बोहिया विरलै किनै बीचारिआ ।

करि किरपा पारि उतरिआ ॥ ११ ॥

पउड़ी : (मैं अपने) सद्गुरु के ऊपर बलिहारी होता हूँ, जिसके मिलने से (मैं अपने) स्वामी-पति को स्मरण करता हूँ, जिसने अपना उपदेश देकर (मानो) ज्ञान का अंजन लगा दिया है, (जिसके फलस्वरूप) (मैंने) अपनी इन आँखों से जगत् (की वास्तविकता) को देख लिया है । (जो) बनजारे पति (परमात्मा) को छोड़कर द्वैतभाव में लगते हैं, वे डूब जाते हैं । किसी विरले ने ही यह विचार किया है (कि) सद्गुरु (संसार-सागर से पार उतारने के लिए) जहाज है । (जो सद्गुरु को जहाज समझते हैं, उन्हें) (वह) कृपा करके (संसार-सागर से) पार उतार देता है ॥११॥

सलोकु : सिमल रुषु सराइरा अति दीरघ अति मुचु ।

ओइ जि आबहि आस करि जाहि निरासे कितु ॥

फल फिके फुन बक बके कंमि न आबहि पत ॥

मिठतु नीची नानका गुण चंगिआईआ ततु ॥

सभु को निबे आप कउ परकउ निबै न कोइ ।

चरि तार/जू तोलीऐ निबै सु गउरा होइ ॥

अपराधी दूरा निबै जो हुंता मिरमाहि ।

सोसि निराइऐ किआ घोऐ जा रिबै कुसुधे जाहि ॥ २७ ॥

पडि पुसतक संधिआ बावं । सिल पूजसि बगुल समाधं ॥

मुलि झूठ बिभूखण सारं । जैपाल तिहाल विचारं ।

बलि माला तिलकु लिलाटं । दुई घोसी बसत्र कपाटं ॥

जे जाएसि ब्रह्मं करमं । तभि फोकट निसचउ करमं ॥

कहु न नक निहचउ धिग्रावै । बिरगु सतिगुर बाट न पावै ॥ २८ ॥

सलोक : सेमल का वृक्ष तीर के समान (सीधा), बहुत जँचा और बहुत मोटा होता है । पर वे (पक्षी), (जो फल खाने की) आशा से (इस पर) आकर (बैठते हैं), निराश होकर क्यों लौट जाते हैं ? (इसका कारण यह है कि) इसके फल फीके तथा फूल बेस्वाद होते हैं (और इसके) पत्ते भी किसी काम नहीं आते । हे नानक, विनम्रता में मिठास है, गुण ३ और (इसमें) (सारी) अच्छाइयों के तत्त्व हैं । सभी (मनुष्य) अपने (स्वार्थ के) निमित्त नमित होते हैं, दूसरों के लिए नहीं (भुक्तते) । तराजू में रख कर (कोई वस्तु) तोली जाय, (तो) हमें ज्ञात होता है कि तराजू का जो पलड़ा अधिक भुका होता है, (उसी का) (वजन) (अधिक) भारी होता है ।

(किन्तु भुक्ता भी दो प्रकार का होता है, एक तो हृदय की शुद्धता से और दूसरा मलिनता से । मलिनता और कपटवाला भुक्ता बड़ा भयावह होता है । इसका दृष्टान्त शिकारी का है) । अग्रगणी (शिकारी) मृग मारता फिरता है; (शिकार करते समय) वह भुक् कर दोहरा हो जाता है । [पर उसके भुक्तने में कितनी हिंसा की भावना व्याप्त है । गोस्वामी तुलसीदास जी की भी एक उक्ति इसी प्रकार की है—“नवनि नीच के अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।”—रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड] (अतएव) जब तक हृदय अशुद्ध है, शाय भुक्ताने से क्या हो सकता है ? ॥२७॥

विशेष : निम्नलिखित सलोक गुरु नानक द्वारा बनारस में बनाया गया । कहते हैं कि बनारस के स्थानीय पंडितों ने गुरु नानक देव से कहा कि आप पंडिताऊ बेश धारण कीजिए । इस पर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित सलोक बनाकर उच्चारण किया—

अर्थ : (पंडित वेद आदिक धार्मिक पुस्तकों को) पढ़ते हैं और सन्ध्या (करते हैं), (अन्य पंडितों के साथ) वाद-विवाद करते हैं । (वे) पत्थर पूजते (हैं) और बकुले की भाँति समाधि लगाते हैं । वे मुख से भूट बोलते हैं; (किन्तु उस भूट की वे उसी प्रकार आकर्षित कर सत्य रूप में दिखाते हैं जिस प्रकार) लोहे के गहने को (सोने का मुलम्मा देकर सोने के गहने के रूप में दिखाया जाता है) । (वे) त्रिपदा (गायत्री) का त्रिकाल में विचार करते हैं, गले में माला पहनते हैं, ललाट पर तिलक लगाते हैं, दो धोतियाँ रखते हैं और सिर पर एक वस्त्र धारण किए रहते हैं । (इन बाह्याचारों को अपेक्षा यह कितना अच्छा होता) यदि (वे) ब्राह्मणोचित ग्रन्थ (आन्तरिक) कर्म भी जानते होते, (ये सभी उपर्युक्त कर्म) निश्चय ही फोकट (व्यर्थ) है । नानक कहते हैं (कि मनुष्यों को) निश्चयपूर्वक (श्रद्धा और विश्वास पूर्वक) (परमात्मा का) ध्यान करना चाहिए, (किन्तु) यह मार्ग बिना सद्गुरु के नहीं प्राप्त होता ॥२८॥

पउड़ी : कपडु रूपु सुहावरणा छडि दुनीआ अंदरि जावरणा ।

मंदा चंगा आपरणा आपे ही कीता पावरणा ॥

हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावरणा ।

नंगा दोऊजिकि चासिआ ता विसै खरा डरावरणा ॥

करि अउगए पछोतावरणा ॥ १२ ॥

पउड़ी : (शरीर रूपी) वस्त्र तथा मुहावने स्वरूप को इसी दुनियाँ के अंतर्गत छोड़ कर (जीव) को (परलोक में) जाना है । (प्रत्येक जीव को) अपने किए हुए शुभ और अशुभ कार्यों

(के फल को) स्वयं ही भोगना है । (जिस मनुष्य ने इस जगत् में) मनमानी हुकूमत की है, उसे आगे (परलोक में) बड़े तंग रास्ते से जाना पड़ेगा, (तात्पर्य यह कि अपने किए हुए अत्याचारों के लिए परलोक में बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़ेंगे) । (इस प्रकार के जोव) नंगे दोजख (नरक) में भेजे जाते हैं; उस समय (उसे आना स्वर्ग) बड़ा ही भयावना दिखाई पड़ेगा । (अतएव) अवगुण से (अंत में) पछताना ही पड़ता है ॥१२॥

सलोक : दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंदी सतु बटु ।
 एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ॥
 ना एहु तूटे न मलु लगै न एहु जलै न जाइ ।
 धंतु सु भाएस नानका जो गलि चले पाइ ॥
 चउकड़ि मुलि अणाइआ बहि चउकै पाइआ ।
 सिखा कंनि चढ़ाईआ गुरु ब्राह्मनु बिआ ।
 ओहु सुआ ओहु भड़ि पइआ वे तगा गइआ ॥ २६ ॥
 लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गलि ।
 लख ठगोआ पहिनामीआ राति दिनसु जीअ नालि ॥
 तगु कपाहहु कतोए बाम्हणु बटे आइ ।
 कुहि बकरा रिन्हि खाइआ सभु को आखै पाइ ॥
 होइ पुराण सुटीए भी फिरि पाईए होरु ।
 नानक तगु न तुटई जे तगि होवै जोरु ॥ ३० ॥
 नाइ मंनिऐ पति ऊपनै सालाही सखि सूतु ।
 दरगह अंबरि पाईए तगु न तूटसि पूत ॥ ३१ ॥
 तगु न इंद्री तगु न नारी ।
 भलके थुक पवै नित दाड़ी ॥
 तगु न पैंरो तगु न हथी ।
 तगु न जिहवा तगु न अखी ॥
 बेलगा आपे बतै । बटि घागे अवरा घतै ॥
 लै भाड़ि करे बीआहु । कडि कागसु दसे राहु ।
 सुणि वेखहु लोका एहु बिडारु । मनि अंधा नाउ सुजारु ॥ ३२ ॥

सलोक : विशेष : निम्नलिखित सलोक गुरु नानक ने अपने पुरोहित से उस समय कहा, जब वह उन्हें यज्ञोपवीत पहनाने लगा । गुरु नानक देव ने आध्यात्मिक यज्ञोपवीत का निरूपण इस पद में इस प्रकार किया है—

अर्थ : (वह जनेऊ), (जिसकी) कपास दया हो, (जिसका) सूत संतोष हो, (जिसकी) गाँठ सयम हो (और जिसकी) पूरन सत्त्वगुण हो—हे पंडित (यदि तुम्हारे पास) (इस प्रकार का आध्यात्मिक जनेऊ) जोव (के कल्याण के निमित्त हो), तो (मेरे गले में) पहना दो । यह जनेऊ न तो टूटता है, न गंदा होता है, न जलता है और न (कभी) जप्ता है, (नष्ट होता है) । हे नानक, वे मनुष्य धन्य हैं, (जो) अपने गले में ऐसा जनेऊ पहन कर, (परलोक) जाते हैं ।

(हृ पण्डित, जो जनेऊ तुम पहनाते फिरते हो, यह ... तूने) चार कोड़ी देकर मँगवा लिया, (और अपने यजमान के चौके में) बैठ कर (उसके) गले में पहना दिया । (तत्पश्चात् तू ने उसके) कानों में यह उपदेश दिया (कि आज से तेरा) गुरु ब्राह्मण हो गया । (आपु समाम होने पर जब) वह (यजमान) मर गया, (तो) वह (जनेऊ उसके शरीर से) गिर गया (भाव यह कि चित्ता में जलते समय, वह जनेऊ जल कर यही गिर गया, जीव के साथ वह नहीं जा सका, इस कारण वह यजमान बेचारा) जनेऊ के बिना ही (संसार से) विदा हो गया ॥२६॥

(मनुष्य) लाखों चोरियाँ और पर-खी-गमन (करता है), (वह) लाखों भूठ (बोलता है) और लाखों गालियाँ (बकता है) । (वह) दिनरात लोगों से (जीव से) लाखों ठगियाँ तथा गुप्त पाप करता है । (यह तो मनुष्य की आन्तरिक दशा है; पर वह बाह्य क्या कर रहा है ?) कपास ले आकर सूत (तागा) काता जाता है (और) ब्राह्मण (यजमान के घर आकर) उसे पूर देता है । (घर में आए हुए सम्बन्धियों को) बकरा मार कर और रोध (पका) कर खिलाया जाता है, (तत्पश्चात् घर का प्रत्येक प्राणी) कहता है “(जनेऊ) पहनाया गया है, (जनेऊ) पहनाया गया है ।” पुराना होने पर (जनेऊ) फेंक दिया जाता है और फिर दूसरा पहन लिया जाता है । हे नानक, (यदि) धामे में शक्ति हो, (आध्यात्मिक जनेऊ हो), तो वह नहीं टूट सकता ॥ ३० ॥

(कपास से कात कर सूत के जनेऊ पहनने मात्र से परमात्मा के दरवाजे पर सम्मान नहीं होता; परमात्मा के दरबार में तभी) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जब (उसका) नाम (हृदय में) माना जाय, (क्योंकि परमात्मा की) स्तुति और प्रशंसा ही सच्चा जनेऊ है । (इस सच्चे जनेऊ को धारण करने से) (उसके) दरबार में (मान) प्राप्त होता है और यह पवित्र तागा (जनेऊ) कभी टूटता भी नहीं ॥ ३१ ॥

(पंडित ने) (अपनी) इन्द्रियों और नाड़ियों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वे इन्द्रियाँ विकारों की ओर न जायें; इसी कारण) प्रतिदिन (उनकी) डाढ़ी पर थूक पड़ता है; (भाव यह कि ऐसे कर्म करते हैं, जिससे नित्य थूक जाते हैं) । (उसने) पंरो को (ऐसा) तागा नहीं पहनाया (कि वे बुरे लोगों के पास न ले जायें) हाथों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वे बुरे कर्म न करें), जीभ को (कोई ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वह पराई निन्दा करने से बची रहे), आँखों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वे पराई स्त्री की ओर न देखे) । (इस प्रकार पंडित) स्वयं तो बिना तागे (जनेऊ) के भटकता फिरता है, (पर कपास के सूत के धागे बट-बट कर औरों को पहनाता (फिरता) है) । (अपने यजमानों को पुत्र-पुत्रियों का) विवाह भाड़े (दक्षिणा) ले लेकर कराता है और पत्रा शोध-शोध कर (उन्हे) मार्ग दिखता है । ऐ लोगों, सुनो और देखो यह आश्चर्यमय कौतुक ! (पंडित) मन से तो अन्धा है (तात्पर्य यह कि अज्ञानी है), किन्तु नाम (रक्खा है) सयाना ॥ ३२ ॥

पड़ो : साहिबु होइ बह्यालु किरपा करे ता सार्ई कार कराइसी ।
 सो सेबकु सेवा करे जिसनो हुकमु मनाइसी ॥
 हुकमि भंनिऐ होइ परबाणु ता खसमे का महलु पाइसी ।
 खसमे भाबै सो करे मनहु बिबिघा सो फलु पाइसी ॥
 ता हरगह पेया जाइसी ॥ १३ ॥

पड़ड़ी : (जिस सेवक के ऊपर) साहब दयालु हो जाय, और कृपा करे तो उसके द्वारा वही कर्म कराता है (जो उसे अच्छा लगता है); जिसे अपने हुक्म में चलाता है, वही सेवक (पति परमात्मा की) सेवा करता है । हुक्म मानने से (सेवक) प्रामाणिक समझा जाता है, (जिसके फलस्वरूप) (वह) खसम (पति-परमात्मा) का महल प्राप्त कर लेता है । जब सेवक वही कार्य करता है, जो पति (परमात्मा) को अच्छा लगता है, तो उसे मनो-वांछित फल प्राप्त होता है और (परमात्मा के) दरबार में प्रतिष्ठा के वस्त्र पहन कर जाता है ॥ १३ ॥

सलोक : गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबर तरणु न जाई ।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ॥
अंतरि पूजा पडहि कतेबा संजमु तुरका भाई ।
छोडोले पाखंडा । नामि लइए जाहि तरंदा ॥ ३३ ॥
माणस खासो करहि निदाज । छुरी बगाइनि तिन गलि ताग ॥
तिन घरि बहमण पूरहि नाद । उना भी आवहि ओई साद ॥
कूड़ी रासि कूड़ा वापारु । कूडु बोलि करहि आहारु ॥
सरम धरम का डेरा डूरि । नानक कूडु रहिआ भरपूरि ॥
मये टिका तेड़ि धोती कलाई । हथि छुरी जगत कासाई ॥
नील वस्त्र पहिरि होवहि परवारु । मलेछ धानु से पूजहि पुरारु ॥
अभाखिआ का कुठा बकरा खारण । चउके उपरि किसै न जाण ॥
बेकै चउका कदी कार । उपरि आइ बैठे कूड़िआर ॥
मत्तु भिटै वे मत्तु भिटै । इहु अंतु अमाडा फिटै ॥
तनि फिटै केड़ करेनि । मनि जूठै चुली भरेनि ॥
कहु नानक सचु धिआईऐ । सुचि होवै ता सचु पाईऐ ॥ ३४ ॥

सलोक . विशेष : लाहौर के किसी व्यक्ति ने एक ब्राह्मण को दान में गाय दी । किन्तु मुल्तापुर के वेदी नदी के घाट पर वह रोक लिया गया । वहाँ कार वमूल करने वाला एक खत्री था । ब्राह्मण की गाय ने जब गोबर किया, तो खत्री ने उस गोबर से अपना चौका लिपवाया । गुरु नानक देव का शिष्य मरदाना चौके की ओर जाना चाहता, किन्तु वह वहाँ से हटा दिया गया, ताकि चौका अपवित्र न हो जाय । इस पर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित 'सलोक' बनाया, जिसका अर्थ इस प्रकार है —

अर्थ : (हे भाई, नदी के घाट पर बैठ कर) गऊ और ब्राह्मण पर तो तुम कर लगा रहे हो (तात्पर्य यह है कि गऊ और ब्राह्मण को पार उतारने के लिये, तो तुम कर वमूल कर रहे हो, किन्तु साथ ही गऊ के गोबर के बल पर संसार से पार उतरना चाहते हो); गोबर के बल पर (ससार-सागर) से नहीं तरा जा सकता । (तुम) धोती (पहनते हो), (मस्तक में) टीका (लगाने हो) और माला (फेरते हो), पर धान्य तो मलेछों का ही खाते हो । अंदर बैठ कर (तुर्क हाकिमों की चोरी चोरी तो) पूजा करते हो, (किन्तु बाहर मुसलमानों की प्रसन्न करने के लिए) कुरान आदि पढ़ते हो और मुसलमानों (तुरकों) के (ढंग का संयम (भी) करते हो, (अर्थात् मुसलमानों की रहनी रहते हो) ।

(भाई), यह पाखण्ड छोड़ दो । (परमात्मा का) नाम लो, जिससे (तुम संसार-सागर से) तर जाओगे ॥ ३३ ॥

(मुसलमान काजी तथा अन्य हाकिम) हैं तो मनुष्य-भक्षी (रिश्वतखोर), पर पकते हैं नमाज । (उन काजियों और हाकिमों के मुंशी ऐसे खत्री हैं जो) छुरी चलाते हैं, (तात्पर्य यह कि गरीबों के ऊपर अत्याचार करते हैं), पर उनके गले में जनेऊ है । उन (अत्याचारी खत्रियों) के घर ब्राह्मण (जाकर) (शंख) बजाते हैं, (अतएव) उन (ब्राह्मणों) को भी उन्ही पदार्थों के स्वाद आते हैं (भाव यह, कि वे ब्राह्मण भी उसी अत्याचार से कमाए हुए पदार्थ को खाते हैं) । (उन लोगों की) झूठी पूंजी है और झूठा ही व्यापार है । झूठ बोल कर ही (वे लोग) गुजारा करते हैं (रोटी खाते हैं, रोजी चलाते हैं) । शरम और धर्म का डेरा दूर हो गया है (तात्पर्य यह है कि लोग न तो अपनी लज्जा का ध्यान रखते हैं और न धर्म के ही काम करते हैं) । हे नानक, (सभी स्थानों में) झूठ ही व्याप्त हो गया है ।

(वे खत्री) मत्थे में टीका (लगाते हैं), कमर में घोंती पहन कर बाँछ बाँधते हैं, हाथ में (मानो, वे) छुरी लिए हुए हैं, और जगत के लिए कसाई (के समान) हैं । (वे) नीले वस्त्र पहन कर (तुर्क हाकिमों के पास जाते हैं, तभी वे) प्राभागिक (समझे जाते हैं), (तात्पर्य यह है कि नीले वस्त्र पहन कर जाने से ही, उन्हें मुसलमान हाकिमों के पास जाने की आज्ञा मिलती है) । भ्रैच्छो रो धान्य लेने है (रोजी चलाते हैं) और (फिर भी) पुराणों को पूजने हैं ।

(इनमें से ही वम नहीं) उनका भोजन वह बकरा है जो (मुसलमानों का) कलमा पढ़ कर हलाल किया गया है । [मुसलमान बकरा मारते समय अथवा खाने समय 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण करते हैं । हिन्दुओं के लिए इस विधि से मारे हुए बकरे की मांस खाना वर्जित है] । (किन्तु वे लोग कहते यही है कि) 'हमारे' चौके में कोई न जाय । चौका देकर लकरी खींच देते हैं । (किन्तु) इस चौके में वे झूठे आकर बैठते हैं । (वे चौके में बैठ कर कहते हैं) 'मत छुओ, मत छुओ', (नही तो) 'हमारा अन्न अपवित्र हो जायगा ।' (मनुष्य) अपवित्र शरीर से मलिन कर्म करते हैं और जूठे मन से कुल्ले करते हैं ।

नानक कहते हैं कि सच्चे (प्रभु) का ध्यान करो, यदि पवित्रता होगी, तभी सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति होगी ॥ ३४ ॥

पउड़ी : चितै अंदरि सभु को बेखि नदरी हेठि चलाइदा ।
आपे वे बडिआईआ आपे ही करम कराइदा ।
बडहु बडा बड मेवनी सिरे सिरि धंधै लाइदा ।
नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ॥
दरि भंगनि भिख न पाइदा ॥ १४ ॥

पउड़ी : (प्रभु) सभी (जीवों) को अपने ध्यान में रखता है और प्रत्येक को अपनी नजर के नीचे रख कर चलाता है । (वड) आप ही (जीवों को) बडाइया प्रदान करता है (और) आप ही (उन्हें) कर्मों में लगाता है । (प्रभु) बडे से बडा है (तात्पर्य यह कि वह सबसे बडा है), (उसकी रची हुई) सृष्टि (बहुत) बड़ी—वैभवंत है । (इतनी अनंत सृष्टि होते हुए भी) प्रत्येक जीव को प्रभु (अपने-अपने) कार्य में लगाए हुए है । यदि (प्रभु अपनी)

दृष्टि उलटी कर ले, तो (बड़े बड़े) सुल्तानों को घास (तिनका) बना दे, (अथवा बड़े-बड़े सुल्तानों को घास खाने वाला बना दे) । (यदि वे) दरवाजे-दरवाजे पर (जाकर) मांगें, (तो उन्हें) भीख भी न मिले ॥ १४ ॥

सनोहु : जे मोहाका घरु सुहै घरु सुहि पितरो बेइ ।
 अगै वसतु सिअराणीऐ पितरो चोर करेइ ॥
 बढीअहि हथ दलाल के मुसफो एह करेइ ॥
 नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले बेइ ॥ ३५ ॥
 जिउ जोरु सिर नावरणी आबै बारोबार ।
 जूठे जूठा मुलि वसै नित नित होइ लुआर ॥
 सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिडा धोइ ।
 सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ ॥ ३६ ॥

सनोहु : यदि कोई ठग (पराया घर) छूटे और (उस पराये) घर को लूट कर अपने पितरों को (श्राद्ध के रूप में) अर्पित करे, तो परलोक में (वे) वस्तुपूर्व पहचान ली जायगी (और) पितर लोग चोर (प्रमाणित) होंगे । (परमात्मा वहाँ यह) न्याय करेगा कि दनाज (श्राद्ध कराने वाले ब्राह्मण) का हाथ काट लिया जाय । हे नानक, आगे (परलोक में) तो मनुष्य को वही मिलता है, जो वह प्राप्त करता है, कमाता है और (अपने) हाथों से देता है ॥ ३५ ॥

जिस प्रकार स्त्री को मासिक धर्म सदैव (प्रत्येक महिने में) होता है (और यह अपवित्रता सदैव उसके अन्तर्गत ही उत्पन्न हो जाती है), उसी प्रकार भूटे (मनुष्य) के मुँह में सदैव भूट ही बसता है और इससे वह सदैव भ्रष्ट (गंदा) रहता है । वे (मनुष्य) पवित्र नहीं कहे जा सकते, जो (केवल) शरीर को ही धोकर (अपनी ओर से पवित्र बन कर) बैठ जाते हैं । हे नानक, केवल वे ही (लोग) पवित्र हैं, जिनके मन में वह (प्रभु) निवास करता है ॥ ३६ ॥

पउड़ी : तुरे पलाए पउरु वेग हर रंगी हरम सवारिआ ।
 कोठे मंडप माड़ीआ लाइ बैठे करि पासारिआ ॥
 चीज करनि मनि भावबे हरि बुझन नाहो हारिआ ।
 करि कुरमाइस लाइआ बेलि महलति मरगु विसारिआ ॥
 जरु आई जोबनि हारिआ ॥ १५ ॥

पउड़ी : (जिनके पास) काठियों समेत (सदैव तैयार रहने वाले) पवन के समान चाल वाले घोड़े (रहते हैं), (जो अपने) महलों को अनेक रंगों से सजाते हैं, (जो मनुष्य) कोठों (उच्च अट्टालिकाओं), मण्डपों, महलों का फैलाव फैला कर (सज-धज से) बैठे हैं, (जो) मनमानी रंगरेलियाँ करते हैं, (नाना भाँति के कौतुक करते हैं), किन्तु हरी को नहीं पहचानते, (वे अपनी मानव-जीवन) हार बैठते हैं । (जो मनुष्य दोनों पर) हुकम चला चला कर (अनेक प्रकार का पदार्थ) खाते हैं, (भोग भोगते हैं), और (अपने) महलों को देख कर (अपनी) मृत्यु भुला देते हैं, (देखते-देखते) उनका यौवन हार जाता है, और बूढ़ावस्था आ (दबोचती है) ॥ १५ ॥

सलोकु : जे करि सूतकु मनीऐ सभ ते सूतकु होइ ।
 गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ॥
 जेते दाखे अन के जोआ बाहु न कोइ ।
 पहला पाणी जीउ है जितु पहिरिआ सभु कोइ ॥
 सूतकु किउ करि रखीऐ सूतकु पवे रसोइ ।
 नानक सूतकु एव न उतरै गिआनु उतारे धोइ ॥ ३७ ॥
 मन का सूतकु लोसु है जिहवा सूतकु कूडु ।
 अखी सूतकु बेखर्या परतुअ परधन रूप ॥
 कनी सूतकु कनि पै लाइतबारी खाहि ।
 नानक हंसा आदभी बधे जमपुरि जाहि ॥ ३८ ॥
 सभी सूतकु भरसु है दूजे लगै जाइ ।
 जंमए मरए ठुकसु है भाएँ आबै जाइ ।
 खाएा पोएा पबित्रु हे दितोनु रिजकु सबहि ।
 नानक जिवो गुरुमुखि बुझिआ तिन्हा सूतकु नाहि ॥ ३९ ॥

सलोकु : विशेष : एक धनी व्यक्ति ने गुरु नानक देव तथा कुछ ब्राह्मणों को भोजन का निमंत्रण दिया । ठीक उसी समय धनी व्यक्ति के घर में एक सन्तान उत्पन्न हुई । इस समाचार को सुन कर ब्राह्मणों ने (अगुडि, सूतक समझ कर) उमके यहाँ भोजन करने से इन्कार कर दिया और वे वहाँ से चले गए । इस पर गुरु नानक देव ने सूतक (अगुडि) के संबंध में कई सलोक बनाए, जो निम्नलिखित हैं :—

अर्थ : यदि सूतक माना जाय, तो सभी स्थानों में सूतक होता है । (पशुओं के) गोबर और लकड़ी के भीतर कीड़े होते हैं, (और इन्हीं से भोजन पकाया जाता है) । जितने अन्न के दाने हैं, (उनमें से कोई भी दाना) जीव के बिना नहीं है । सब से पहले पानी ही त्रिन्दगी है, जिस पानी से (प्रकृति की सारी वस्तुएँ एवं मनुष्य) हरे-भरे बने रहते हैं; (इस पानी के बिना भोजन कैसे तैयार हो सकता है) ? अतएव सूतक (का बिचार) किस प्रकार रक्खा जा सकता है ? (क्योंकि) सूतक तो हर समय हमारी रसोई में पड़ा रहता है । हे नानक, इस प्रकार (हमारे मन से) सूतक नहीं उतर सकता; इसे तो (प्रभु का) ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) ही धोकर उतार सकता है ॥ ३७ ॥

(यदि सूतक मानना ही है, तो इस प्रकार का सूतक मानो कि) मन का सूतक लोभ है, जिह्वा का (सबसे बड़ा) सूतक झूठ (बोलना) है । आँखों का सूतक दूसरे का धन तथा दूसरे की स्त्री का स्वरूप देखना है; कानों का सूतक यह है कि बेफिक्र होकर दूसरी की चुगली सुनी जाय । हे नानक, (बाह्य वेश में) हमें (के समान) मनुष्यों में भी (यदि उद्युक्त सूतक है), तो वे बंधे हुए बमपुरी जाते हैं ॥ ३८ ॥

सूतक सब (निरा) भ्रम ही है; (यह सूतक रूपी भ्रम) द्वैतभाव में फँस हुए, (मायासक्त मनुष्यों) को आ कर लग जाता है । (प्रभु के) हुक्म से (जीवों का) जन्मना मरना होता है (और उसकी प्राप्ता में जीव का) आना-जाना (निरन्तर) होता रहता है । रोजी के रूप में

जो खाना-पीना (हरी) सभी जीवी को पहुँचा कर देता है, वे सब पवित्र है। हे नानक, जिन (मनुष्यों ने यह बात) समझ ली है, उन्हें सूतक नहीं लगता ॥२६॥

पउडी सतिगुरु बडा करि सालाहीऐ जिसु बडोआ बडिआईआ ।
 सहि भेले ता नबरी आईआ ।
 जा तिसु आणा ता मनि बसाईआ ॥
 करि हुकमु मसतकि ह्यु धरि विचह मारि कडीआ बुरिआईआ ॥
 सहि तुठे नउनिधि पाईआ ॥ १६ ॥

पउडी — जिसके अंतर्गत बहुत बड़ाईया (बहुत मे गुण है), उस सद्गुरु की स्तुति (उसे) (बहुत) बड़ा (मान) कर, करनी चाहिए। (जिन मनुष्यों को प्रभु) पति ने (गुरु से) मिलाया है, (उन्हें ही) वे गुण आँखों से दिखाई देते हैं और यदि (प्रभु को) अच्छा लगे, तो (उनके) मन में भी वे ही गुण आ बसते हैं। (प्रभु) अपने हुक्म के अनुसार उन मनुष्यों के मत्थे पर हाथ रख कर (उनके) मन से सारी बुराइयों को मार कर निकाल देता है। (यदि) पति (परमात्मा) प्रसन्न हो जाय, तो नव निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥१६॥

सलोक पहिला सुवा आपि होइ सुचै दठा आइ ।
 सुचै अगै रखिओनु कोइ न भिटिओ जाइ ॥
 सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोक ।
 कुहयो जाई सटिआ किमु एहु लगा बोवु ॥
 अंनु देवता पारी देवता बैसंतरु देवता लूगु पंजबा पाइआ घिरतु ।
 ता होआ पाकु पवितु ॥
 पायो सिउ तनु गडिआ युका पईआ तितु ॥
 जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि ।
 नानक एव जाणीऐ तितु मुखि युका पाहि ॥ ४० ॥
 भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगगु वीआहु ।
 भंडहु होवै दोसती भंडहु चले राहु ॥
 भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु ।
 सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान ॥
 भंडहु ही भंडु ऊपजे भंडे बाहु न कोइ ।
 नानक भंडे बाहरा एको सचा सोइ ॥
 जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि ।
 नानक ते मुख ऊजले तितु सचै दरबारि ॥ ४१ ॥

सलोक — नोट : भूतकाल का अर्थ वर्तमान काल में किया गया है।

अर्थ :—(सब से) (पहले ब्राह्मण नृत्ता धोवर) पवित्र होकर, पवित्र (चंके में) आ बैठा है। उसके आगे (यजमान) वह पवित्र भोजन लाकर रखता है, जिसे किसी ने भी नहीं छुआ है। (ब्राह्मण) पवित्र होकर (उस पवित्र भोजन को) खाता है और गाने के पश्चात् (संस्कृत के) श्लोक पढ़ने लग जाता है। पर उस पवित्र भोजन को (विष्णु के रूप में) गंध

स्थान में त्याग आता है। (उस पवित्र भोजन को गंदा बनाने और गंदे स्थान पर त्यागने का) दोष किस पर लगा ? अन्न, पानी, आग और नमक (चारो हो) देवता हैं, (तात्पर्य यह कि ये चारो पवित्र पदार्थ हैं)। पाँचवाँ घी भी पवित्र है, (जो इन चारो में) डाला जाता है। (इन पाँचो को मिलाने से), बढ़ा ही पवित्र पकवान तैयार होता है। (पर देवताओं के इस पवित्र शरीर की—इस पवित्र भोजन की) पापियों (पापी मनुष्यों) से संगति होती है, जिस कारण (जब वह मल के रूप में परिवर्तित हो जाता है तो घृणा से उस पर थूक पड़ते हैं) अर्थात् मल देख कर लोग, घृणा से आँखें फेर लेते हैं, नाक दबा लेते हैं और “धू धू” करने लगते हैं)

हे नानक, (उसी तरह यह भी समझ लेना चाहिए कि) जिस मुख से (मनुष्य) नाम नहीं उच्चारण करत और बिना नाम के उच्चारण किए गुन्दर रममय (पदार्थों को) खाते हैं, (उस मुख पर) भी थूक ही पड़ता है ॥४०॥

स्त्री से ही (मनुष्य) जन्म लेता है, (स्त्री के ही पेट में प्राणों का शरीर, बनता है। स्त्री से ही सगाई और विवाह होता है। स्त्री के ही द्वारा (अन्य लोगों से) संबंध जुड़ता है (वांस्ती होती है) और स्त्री से ही (जगत् की उपात्ति का) मार्ग—क्रम चलता है। (जब) (एक) स्त्री मर जाती है, तो (तो दूसरी) स्त्री की खोज की जाती है, स्त्री के ही द्वारा (दूसरों के साथ सम्बन्ध के) बंधन (स्थापित) होते हैं। उस स्त्री को बुरा क्यों कहा जाय, जिससे राजागण भी जन्म लेते हैं ? स्त्री से ही स्त्री उत्पन्न होती है। (इस संसार में) कोई भी (प्राणी) स्त्री के बिना नहीं उत्पन्न हो सकता। हे नानक, केवल एक सच्चा (प्रभु ही) है, जो स्त्री से नहीं जन्मा है, (क्योंकि वह ‘अयोनि’ और ‘स्वयम्भू’ है)। जिस (प्राणी के) मुख से सदैव (परमात्मा का) गुणगान होता है, (उसी का मत्था) आम्हो से लाल (रती) और सुन्दर (चाह > चार) है। हे नानक, वे ही मुख उस सच्चे (प्रभु) के दरबार में उज्ज्वल (दिखाई पड़ते) हैं, (जिन मुखों में निरन्तर प्रभु का गुणगान होता रहता है) ॥४१॥

पउड़ी : सभु को आखैं आपणा जिसु नाही सो सुनि कडीऐ ।

कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संडीऐ ॥

जा रहणा नाही ऐतु जगि ता काइतु गारबि हंडीऐ ।

मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अलख एहो बुझीऐ ॥

मूरखे नालि न लुभीऐ ॥ १७ ॥

पउड़ी : (इस संसार में) सब कोई ‘अपना अपना’ कहते हैं, (तात्पर्य यह कि प्रत्येक जीव को ममता लगी है), जिस व्यक्ति में (ममता) नहीं है, उसे चुन कर (प्रभु प्रेषक) कर लेता है। अपने आप किए हुए कर्मों का लेखा आप ही भरना होता है। यदि इस संसार में रहना ही नहीं है, तो अहंकार में पड़ कर क्यों खपा जाय ? केवल यह अक्षर पढ़ कर समझ लिया जाय कि किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए और मूर्ख के साथ नहीं झगड़ना चाहिए ॥१७॥

सलोकु : नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ।

फिको फिका सबीऐ फिके फिको सोइ ॥

फिका बरगह सटीऐ मुहि थुका फिके वाइ ।

फिका मूरखु आखीऐ पाया सहै सजाइ ॥ ४२ ॥

भ्रंवरहु भूठे पैज बाहरि दुनोप्रा भ्रंदरि फैलु ।
 अठसठि तोरख जे नाबहि उतरै उतरै नाहो मेलु ॥
 जिन्ह पटु भ्रंदरि बाहरि मुवडु ते भले संसारि ।
 तिन नेहु लगा रज सेती देखन्हे वोचारि ॥
 रंगि हसहि रंगि रोवहि नृप भो करि जाहि ।
 परवाह नाहो कितै केरो बाभु सखे नाह ॥
 बरि बाट उपरि खरनु मंगा जबै वे इत खाहि ॥
 दीवानु एको कलम एका हमा तुम्हा मेलु ।
 बर लए लेखा पीढ़ि छुटे नानका जिउ तेलु ॥ ४३ ॥

सलोक : हे नानक, यदि (मनुष्य) रूखा (अप्रिय, कड़ुवा) वचन बोलता रहे, तो उसके तन और मन (दोनों ही) रूखे हो जाते हैं। अप्रिय बोलनेवाला (संसार में) 'अप्रियभाषी' (रूखा) ही प्रसिद्ध हो जाता है और लोग भी उसे अप्रिय (रूखे) वचनों से याद करते हैं। रूखा व्यक्ति (परमात्मा के) दरबार में अस्वीकृत कर दिया जाता है और उसके मुँह पर थूक पड़ता है, (तात्पर्य यह कि वह धिक्कारा जाता है)। (प्रेमविहीन) रूखे व्यक्ति को मूर्ख कहा जाता चाहिए; (प्रेमविहीन) रूखे व्यक्ति को जूतों की सजा मिलती है; (तात्पर्य यह कि प्रत्येक स्थान में मर्दाने उसका तिरस्कार किया जाता है) ॥४२॥

यदि (मनुष्य) मन से भूठे हैं, पर बाहर से भूठी प्रतिष्ठा बना कर बैठे हैं और (सारी) दुनियाँ में दिखावा बना रखते हैं, तो वे चाहे अठसठ नीयों में ही (जा कर) स्नान करें, उनके मन के कपट की मेल कभी नहीं उतरती।

जिन मनुष्यों के अंतर्गत (कीमलता और प्रेम रूपी) पट है, पर बाहर (मरलता और सादगी रूपी) गूदड़ है, जगत् में वे बड़े ही भले हैं। उनका परमात्मा में (निरन्तर) प्रेम लगा हुआ है और वे (परमात्मा के) दर्शन करने के विचार में (सदैव निमग्न रहते हैं)। (परमात्मा के) प्रेम में (वे) (कभी) हँसते हैं, (कभी) रोते हैं और (कभी) चुप हो जाते हैं, (मौन भाव में स्थित हो जाते हैं)। सच्चे स्वामी (प्रभु) के बिना, उन्हें किसी अन्य की परवाह नहीं होती। (जीवन रूपी) मार्ग में (चलते हुए) (वे लोग) (प्रभु के) दरवाजें में (नाम रूपी) स्वर्च मांगते हैं, जगत् (प्रभु) देना है, तभी वे खाते हैं।

हे नानक, (ऐसे भक्तों को यह निश्चय है कि) एक (प्रभु) दरबार लगा कर (फंसला करनेवाला है), (बड़ी) कलम से (लिखा लिखने वाला है), (और सारे भले बुरे जीवों का) मेल भी (उसी के) दरवाजे पर होता है)। (प्रभु सब के किए हुए कर्मों का) लेखा मांगता है और बुरे मनुष्यों को ऐसे पेरता है, जैसे तेल ॥४३॥

पउड़ी :
 आपे ही करणा कोओ कल आपे ही तें धारोए ।
 देखहि कीता आपणा धरि कचो पकी सारोए ॥
 जो आइआ सो खलसी सभु कोई आई बारोए ।
 जिसके जोअ पराण हहि किउ साहिबु मनहु बिसारोए ॥
 आपण हयो आपणा आपे ही कानु सबारोए ॥ १८ ॥

पउड़ी : (हे प्रभु), (तूने) आप ही यह सृष्टि रची है और तूने आप ही इसके अन्तर्गत कला (शक्ति) रख कर इसे धारण कर रक्खी है । भले-बुरे जीवों को उत्पन्न करके, अपने रचे जीवों की तू ही संभाल करता है । (जीवन रूपी चौपड़ के खेल में) कच्ची और पक्की गोठियों (बुरे और अच्छे जीवों की परख तू ही करता है) ।

जो भी (प्राणी) (इस संसार में) आया है, वह (निश्चय ही) चला जायगा; सब की बारी (पृथक् पृथक्) आयेगी ।

(अतएव, हे भाई), जिस (प्रभु के दिए हुए) जीव और प्राण है, उसे मन से किस प्रकार भुलाना चाहिए ? (अर्थात् ऐसे प्रभु को कभी नहीं भुलाना चाहिए) अपने हाथों से स्वयं अपना कार्य करना चाहिए ॥१८॥

सलोक : आपे भांडे साजिअनु आपे पूरण बेइ ।

इकही दुष समाईऐ इकि चुल्लै रहन्हि चड़े ॥

इकि निहाली पै सबन्हि इकि उपरि रहिन खड़े ।

तिना सबारे नानका जिन कउ मदरि करे ॥ ४४ ॥

सलोक :—(प्रभु ने) (जीवों के शरीर रूपी) पात्र को स्वयं ही बनाया है और स्वयं ही उन्हे भरता है, (तात्पर्य यह है कि उनके भाग्य में सुख-दुःख भी वही लिखता है) । किसी (पात्र में) दूध भरा रहता है और कोई चूल्हे पर चढ़े रहते हैं (तात्पर्य यह कि कुछ जीवों के भाग्य में सदैव सुख और सुन्दर पदार्थ लिखे रहते हैं और कुछ जीव निरन्तर कष्ट ही सहन करते हैं) । कुछ (भाग्यशाली व्यक्ति) रजाइयो (तोषकों) पर सोते हैं और कुछ (बिचारे) (उनकी रक्षा और भेवा के लिए हाथ बांधे 'जी हूँ' कहते हुए) खड़े रहते हैं । पर हे नानक, जिनके ऊपर (प्रभु) कृपादृष्टि करता है, उन्हे संवार लेता है, (भाव यह कि हम संसार-सागर से उनका बेटा पार कर देता है) ॥४४॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

राग गूजरी, महला १, चउपदे, घर १,

सबद

[१]

तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ ।
करणी कुंगू जे रलै घट अंतरि पूजा होइ ॥१॥
पूजा कीचै नामु धिआईऐ बिनु नावै पुज न होइ ॥१॥रहाउ॥
बाहुरि देव पखालीअहि जे मनु धोवै कोइ ।
जूठि लहै जोउ साजीऐ मोक्ष पइआणा होइ ॥२॥
पसू मिलहि बंगिआईआ लइ खावहि अंभृतु देहि ।
नाम बिहारे आदमी धृगु जीवण करम करेहि ॥३॥
नेड़ा है दूरि न जाणिअहु नित सारे संहाले ।
जो देवै सो खावण कहु नानक साचा है ॥४॥१॥

(ह प्रभु), यदि तेरे नाम को चंदन की लकड़ी का टुकड़ा बनाया जाय, और मन दुरसा
[जिस परावर पर चंदन घिसा जाता है] हो, और यदि उसमें (शुभ) कर्म (रूपी) कुमकुम
(केशर) मिला दिया जाय, तो घट) ही के अन्तर्गत पूजा होने लगती है ॥ १ ॥

नाम का ध्यान करना ही वास्तविक पूजा है, बिना नाम के पूजा नहीं होती है ॥ ? ॥

रहाउ ॥

(लोग) बाहर ठाकुर को धोते है, (स्नान कराने हैं), पर यदि कोई व्यक्ति मन को
(ठाकुर के समान) धोये, तो (पाप की) जूठ (मैल) नष्ट हो जाय, मन मज्जित हो जाय,
(पवित्र हो जाय) और मोक्ष (की ओर) प्रयाण हो जाय ॥२॥

पगुधो मे भी अच्छाइयां मिलती है, वे घास (तृण) खाते हैं, किन्तु अमृत रूपी (दूध)
देते है, (अतएव पगु-जाति श्लाघनीय है) । नाम के बिना (मनुष्य का) जीवन और (उसका)
कर्म करना धिक्कारने योग्य है ॥३॥

(हे मनुष्यां), (प्रभु) समीप ही है; (उसे) दूर न समझो; वह नित्य (सब को) खोज खबर लेता है और संभालता है । (अतएव) नामक (इस बात को) सच्चे (रूप में) कहता है कि (जो कुछ सुख-दुःख उसके हुक्म के अनुसार मिलता है) वही हमें खाना है, (अर्थात् दुःख सुख को समान भाव के सहन करना ही हमारा भोजन हो) ॥४॥१॥

[२]

नामि कमल ते ब्रह्म उपजे बेद पड़हि मुखि कंठि सवारि ।

ता को अंतु न जाई लखणा आवत जावत रहै गुबारि ॥१॥

प्रोतम किउ बिसरहि मेरे प्राणप्रधार ।

जाकी भगति करहि जन पूरे मुनि जन सेवहि गुर बोचारि ॥१॥रहाउ॥

रवि ससि दीपक जाके त्रिभवरि एका जोति मुरारि ।

गुरुमुखि होइ सु अहिनिशि निरमसु मनमुखि रेणि अंधारि ॥२॥

सिध समाधि करहि नित भगरा दुहु लोचन किआ हरै ।

अंतरि जोति सबहु घुनि जागै सतिगुरु भगरु निबेरै ॥३॥

सुरि नर नाथ बेअंत अजोनी साजै सहसि अपारा ।

नामक सहजि मिले जगजीवन नदरि करहु निसतारा ॥४॥२॥

(विष्णु के) नामि कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए और मुंह से कण्ठ संवार कर वेद उच्चारण करने लगे । (वे ब्रह्मा) (उस प्रभु) का अंत न जान सके और अंधकार में (इधर-उधर) अग्नि-जाने लगे (भटकने लगे) । [नामि-कमल से उत्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उत्पत्ति-स्थान को जानना चाहा । वे फिर से कमल-नाल में प्रविष्ट हो गए । युग-युगान्तर बीत गए, किन्तु वे अपना उत्पत्ति स्थान न जान सके । अन्त में उन्होंने परब्रह्म की स्तुति की और अपनी अज्ञानता की क्षमा-याचना की] ॥१॥

(हे मेरे मन), मेरे प्राणधार उस प्रियतम को (तुम) क्यों विस्मृत होते हो, जिसकी भक्ति पूर्ण पुरुष करते है और गुरु के विचार द्वारा मुनि जन जिसकी आराधना करते है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे मेरे मन, मेरे प्राणधार उस प्रियतम को तुम क्यों विस्मृत होने हो), जिसके दीपक सूर्य और चन्द्रमा हैं और जिस मुरारी (परब्रह्म) की एक ज्योति त्रिभुवन में व्याप्त है ? (जो) गुरुमुख (गुरु के उपदेश के अनुसार चलने वाला) होता है, वह अहिनिश निर्मल रहता है किन्तु मनमुखों के लिए (सदैव) रात्रि का घनघोर अंधकार (अज्ञान) रहता है ॥२॥

सिद्धगण समाधि लगते हैं और नित्य वाद-विवाद (तर्क वितर्क) करते हैं, (किन्तु उस परब्रह्म को) क्या वे (अपने) दोनों नेत्रों से देख सकते हैं ? (तात्पर्य यह कि ब्रह्मा क्या नेत्रों का विषय हो सकता है) ? (जब) अन्तःकरण में (परमात्मा के प्रेम एवं विश्वास) की ज्योति हो, (नाम स्मरण की निरन्तर) शब्द-ध्वनि जगती रहे, तभी सद्गुरु (द्वैत भाव का संपर्क) भगड़ा (दूर) करता है ॥३॥

हे देवताओं तथा मनुष्यों के स्वामी, अनन्त अयोनि, मुझ नानक को तेरे सच्चे श्रीर
अपार महल में सहजावस्था द्वारा जगत् का जीवन (हरी) मिल जाय, जिससे तू अपनी कृपा
दृष्टि द्वारा (मुझे) तार दे, (मेरा उद्धार कर दे ॥४॥२॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु गूजरी, महला १, घर १ ॥

असटपदीयां

[१]

एक नगरी पाँच चोर बसोभले बरजत चोरी घाबे ।
त्रिहृदस माल रखे जो नानक मोख मुक्ति सो पाबे ॥१॥
चेतहु बालबेड बनवाली । रामु रिदे जपमाली ॥१॥रहाउ॥
उरध मूल जिसु साख तलाहा चारि बेदु जितु लागे ॥
सहज भाइ जाइ ते नानक पारब्रह्म लिब जागे ॥२॥
पारजातु घरि आगनि मेरे पुहप पत्र ततु डाला ।
सरब जोति निरंजन सभू छोडहु बहुतु अंजाला ॥३॥
सुणि सिलबंते नानकु बिनबे छोडहु माइआ जाला ।
मनि बोचारि एक लिब लागी पुनरपि जनमु न काला ॥४॥
सो गुरु सो सिलु कथोभले सो वेदु जि जाए रोगी ।
तिसु कारणि कसु न धंधा नाही धंधे गिरही जोगी ॥५॥
कामु क्रोधु अहंकारु तजोभले लोभु मोहु तिस माइआ ।
मनि ततु अविगतु धिआइआ गुर परसादो पाइआ ॥६॥
गिआनु धिआनु सब दाति कथोभले सेत बरन सभि सूता ।
ब्रह्म कमल मधु तासु रसाव जगत नाही सूता ॥७॥
सहा गंभीर पत्र पाताला नानक सरब जु आइआ ।
जपबेस गुरु मम पुनहि न गरभं बिलु तजि अंभृतु पीआइआ ॥८॥१॥

एक (शरीर रूपी) नगरी है, (जिसमें) पाँच चोर (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार
बसते हैं । (ये पाँचों) बारबार के रोकने पर भी चोरी करने के लिए दाड पड़ते हैं, (बलात्
विषयो में प्रवृष्ट कराते हैं) । हे नानक, जो व्यक्ति (तीन गुणों; दस विषयो—पाँच ज्ञानेन्द्रियों
और पाँच कर्मेन्द्रियों के ।) —इन तेरह से (अपना प्राध्यात्मिक) धन बचा कर रखे, वही
मुक्ति पाता है ॥१॥

(हे मन), वासुदेव, बनमाली (परमात्मा) का स्मरण कर; राम को हृदय में रखना
ही जप की माला है ॥१॥ रहाउ ॥

(जिस परब्रह्म परमात्मा का) मूल ऊपर है, शाखा नीचे हैं चार वेद जिसके (पत्ते)
लगे हैं [भाव यह है कि ब्रम्ह रूपी वृक्ष की माया जड़ है, और तीनों गुण—सत्त्व रजस् ; तमस्
शाखाएँ हैं । इन तीन गुणों का विस्तार वेद करते हैं । “त्रैगुण्य विषया वेदा”—श्रीमद्भगवद्गीता

(इन तीन गुणों को छोड़कर) सहजावस्था (चौथी अवस्था) में जाते हैं, हे नानक, परब्रह्म की लिव (एकनिष्ठ ध्यान में) वे ही लोग जगते हैं । [“उर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययं छन्दामि यस्य पत्न्यानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ”—श्री मद्भगद्गीता अध्याय १५, श्लोक १ तथा “ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एवोऽश्वत्थः सनातनः” —कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली ६ मंत्र १] ॥२॥

पारिजात वृक्ष (सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला, स्वर्ग का वृक्ष विशेष), (परमात्मा) मेरे घर के आँगन में है । तत्व (ब्रह्म तत्व) उसके पत्ते, पुष्प और डालियाँ हैं । स्वयंभू, निरजं (माया से रहित परमात्मा) को ज्योति संबंध है ।, (वही सब कुछ है, इसी की धारणा करो), (अन्य) बहुत से प्रपंचों को छोड़ दो ॥३॥

नानक विनती करता है, हे शिक्षा ग्रहण करनेवालो (गुरुमुखो) मुनो, सारे माया के प्रपंचों को त्याग दो । मन से विचार कर एक (परमात्मा) मे लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग गयो, (जिससे) न फिर जन्म होता है, और न काल (सताता) है ॥ ४ ॥

यही वेश है, जो गेमी को (ठोढ़-ठोढ़) समझना हो, (उसी प्रकार) वही गुरु है और वही उसका मित्राया हुआ शिष्य है, (जो) (गेमी) संसार को समझते हो (अर्थात् गलती करनेवाले लोगों की गलती समझते हों) । (वह परब्रह्म में लीन है, अतः) उसके निमित्त (फोटी) काम या धंधा नहीं है, (वह सांसारिक) प्रपंचों में (फँसा हुआ) गृहस्थी नहीं है, (वः निर्लेप) योगी है ॥ ५ ॥

(ऐसे योगी ने) काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह, तृष्णा और माया को त्याग दिया है, (उगते) मन में (परम) तत्व, अव्यक्त (प्रभु) का ध्यान किया है और गुरु की कृपा से (उम प्रभु को) पा लिया है ॥ ६ ॥

ज्ञान और ध्यान को (परमात्मा का) दान ही कहो (समझो); (जिसे यह दान मिल जाना है, उसके) कामादिक विकार रूपी) दूत श्वेत वर्ण के हो जाते हैं, (अर्थात् डर कर वे सफेद रंग के हो जाते हैं, उनकी लाली नष्ट हो जाती है) । (उसने) (परब्रह्म रूपी) कमल के (प्रेम रूपी) मधु का रसास्वादन किया है, (वह ब्रह्मज्ञान में निरन्तर) जगता रहता है (और अज्ञान में कभी नहीं) सोता ॥ ७ ॥

(वह ब्रह्म कमल) बहुत गंभीर है, (उसके) पत्ते पाताल हैं, वह सबसे (सारी सृष्टि में) जुड़ा हुआ है । गुरु के उपदेश से मैं फिर गर्भ में (नहीं पड़ूँगा), (गुरु ने) (माया का) विष त्याग कर, (मुझे) (नाम रूपी) अमृत पिला दिया है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

कवन कवन जाचहि प्रभु बाते ताके अत न परहि सुमार ।

जैसी भूख होइ अन्न अतरि तूँ समरथ ससु देवणहार ॥१॥

ऐजी जपु तपु सजसु ससु अधार ।

हरि हरि नामु बेहि सुख पाइये तेरी भगति भरे भंडार ॥१॥रहाउ॥

सुन समाधि रहहि लिव लागे एका एकी सबहु बीचार ।

जलु बलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार ॥२॥

ना तबि नाइप्रा मगनु न छाइप्रा ना सूरज चंद न जोति अपार ।
 सरब हसति लोचन अभ अंतरि एका नदरि सु त्रिभवरण सार ॥३॥
 पवरण पारणी अगनि तिनि कोप्रा ब्रह्मा बिसनु महेश अकार ।
 सरबे जाचिक तूं प्रभु दाता दाति करे अपुनै बीचार ॥४॥
 कोटि तेतीस जाचहि प्रभ नाइक बे दे तोटि नाही भंडार ।
 ऊधे भांडै कछु न समावे सोधे अंशुतु परे निहार ॥५॥
 सिध समाधी अंतरि जाचहि रिधि सिधि जाचि करहि जैकार ।
 जैसी पिपास होइ मन अंतरि तैसी जलु देवहि परकार ॥६॥
 बडे भाग गुरु सेवहि 'अपुना भेदु नाही गुरदेव सुरार ।
 ताकउ कालु नाही जसु जोहै बूझहि अंतरि सबदु बीचार ॥७॥
 अब तब अवरु न मागउ हरि पहि नामु निरजन दीजै पिपारि ।
 नानक चातुकु अंशुत जलु मागै हरि जसु दीजै किरपा धारि ॥८॥१॥

(दाता) प्रभु से कौन-कौन (लोग), (कितना) मांगते हैं, (उसका वर्णन नहीं किया जा सकता); (उसके) दानों की गणना का अन्त नहीं पाया जा सकता । (हे प्रभु) तू समर्थ है, (जिसके) अन्तःकरण में जैसी भूख होती, (तू) सच्चे रूप में (उसे) (उसी प्रकार) देता है ॥ १ ॥

ऐ जी, (प्रभु), जप, तप, संयम, तथा सत्य (आदि साधक के) आधार है । (हे हरी), तेरा भाण्डार भक्ति से भरा हुआ है, (मुझे) “हरी हरी”,—यही नाम (दान में) दो (जिससे सच्चे) सुख की प्राप्ति हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(कुछ भाग्यशाली) शून्य समाधि (निर्विकल्प समाधि, अफुर समाधि) में अपना एकनिष्ठ ध्यान (लिव) लगाए रहते हैं (और केवल) एकमात्र, नाम को ही (गुरु के) शब्द (के माध्यम) से विचारते रहते हैं । (उस अफुर समाधि की अवस्था में), जल, थल, धरती, आकाश (कुछ भी) नहीं होते, (वहाँ) केवल कर्तार स्वयं ही होता है ॥ २ ॥

(उस अवस्था में) माया की निमग्नता नहीं होती, न (अज्ञान का) अंधेरा, न सूर्य, न चन्द्रमा और न आधार ज्योति ही होती है । सब को देखनेवाली आँखों (सब वस्तुओं) का ज्ञान अन्तःकरण में हो जाता है और एक ही दृष्टि से तीनों लोकों की सूझ हो जाती है ॥ ३ ॥

उसी (प्रभु ने) पवन, जल, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश के आकार रचे हैं । (हे प्रभु) तू अकेला ही दाता है, और सब तेरे याचक हैं; तू अपने विचार के अनुसार (सब को) दान देता है ॥ ४ ॥

तैंतीस करोड़ (देवता) प्रभु, नायक (स्वामी) से मांगते हैं; देते देते उसके भाण्डार में कमी नहीं आती । (किन्तु) उल्टे पात्र में कुछ नहीं समा सकता, सोधे (पात्र) में अमृत पड़ता है, (यह बात तू विचार पूर्वक) देख ले ॥ ५ ॥

सिद्धगण समाधि के अंतर्गत याचना करने हैं: (वे सब) ऋद्धियों-मिद्धियों को माँग कर (प्रभु का) जयजयकार करते हैं । (हे हरी), जिस याचक के मन में जैसी प्यास (चाह) होती है, (तू उसे) उसी प्रकार का जल देता है (इच्छा पूरी करता है) ॥ ६ ॥

बड़े भाग्य से ही (अपने) गुरु की सेवा का अवसर मिलता है; गुरुदेव और गुरारी (परमात्मा में) कोई अन्तर नहीं है । जो (अपने) मन के अन्तर्गत (गुरु के) शब्द को विचार करके समझते हैं उन्हें यम नष्ट करने की दृष्टि से नहीं देखता ॥ ७ ॥

(मैं) किसी समय भी परमात्मा के (अतिरिक्त) अर्थ (व्यक्ति से) कुछ नहीं माँगता, मुझे प्रेमपूर्वक नाम-निरंजन की ही (भिक्षा) दो । नानक चातक तो तुम्हारे (नाम रूपी) अमृत जल को माँगता है; (मुझे) कृपा करके (अपने) यश के गुण गान करने का (बरदान) दो ॥८॥२॥

[३]

ऐ जो जनमि मरै आवै कुनि जावै बिनु गुर गति नहीं काई ।

गुरमुखि प्राणी नामे राते नामे गति पति पाई ॥ १ ॥

भाई रे राम नामि चितु लाई ।

गुर परसादी हरि प्रभ जाचे ऐसी नाम बजाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ऐ जो बहुते भेख करहि भिखिआ कउ केते उदर भरन कै ताई ।

बिनु हरि भगति नाही सुनु प्राणी बिनु गुर गरबु न जाई ॥ २ ॥

ऐ जो कालु सदा सिर ऊपरि ठाढे जनमि जनमि बैराई ।

साचै सबवि रते से बाचे सतिगुर ब्रूक ब्रूकाई ॥ ३ ॥

गुर सरसाई जोहि न साकै दूत न सकै संताई ।

अविगत नाथ निरंजनि राते निरभउ सिउ लिब लाई ॥ ४ ॥

ऐ जोउ नामु दिङ्गु नामे लिब लाबहु सतिगुर टेक टिकाई ।

जो तिसु भावै सोई करसो किरतु न भैटिआ जाई ॥ ५ ॥

ऐ जो भागि परे गुर सरणि तुमारी मे अवर न दूजी भाई ।

अब तब एको एकु पुकारउ आवि जुगावि सखाई ॥ ६ ॥

ऐ जो राखहु पेज नाम अपुने की तुम्ह ही सिब बनि आई ।

करि किरपा गुर बरसु विसाखहु हउमै सबवि जलाई ॥ ७ ॥

ऐ जी किआ मागउ किछु रहै न दीसै इसु जग महि आइआ जाई ।

नानक नामु पदारथु दीजै हिरदै कंठि बरणाई ॥ ८ ॥ ३ ॥

ऐ जो, (प्राणी) जन्म धारण करके मरता है, (इस प्रकार) बारबार आता जाता रहता है, बिना गुरु के (उसकी) कोई भी गति नहीं होती । गुरु की शिक्षा द्वारा प्राणी नाम में अनुरक्त होते हैं और नाम से ही मुक्ति तथा प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ १ ॥

हे भाई, राम नाम में ही चित्त लगाना चाहिए । गुरु की कृपा से प्रभु हरी से याचना करनी चाहिए; नाम की (बहुत बड़ी) महत्ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ऐ जो (प्रभु), (मनुष्य) भिक्षा-प्राप्ति के लिए तथा उदर भरने के लिए कितने ही वेश बनाते हैं । हे प्राणी, बिना हरि-भक्ति के सुख नहीं (प्राप्त हो सकता है) और बिना गुरु के अहंकार नहीं जाता ॥ २ ॥

ऐ जी, काल सदैव सिर के ऊपर खड़ा है, इससे (प्राणियों को) जन्म-जन्मान्तरों की शत्रुता है। जिन्हें सद्गुरु ने ज्ञान दे दिया है और (जो शिष्य) (उसके) शब्द में अनुरक्त है, वे ही (इस संसार के दुःखों से) बचे हैं ॥ ३ ॥

गुरु की शरण में जाने से (काल) देख भी नहीं सकता (और कामादिक) दूत दुःख नहीं दे सकते। श्रव्य, निरंजन (माया रहित) स्वामी में (मैं) अनुरक्त हो गया हूँ और निर्भय (परमात्मा) से लिब लग गई है ॥ ४ ॥

ऐ जी, नाम ही को दृढ़ करो, नाम में लिब (एकनिष्ठ ध्यान) लगाओ, सद्गुरु न (नाम का) आसरा दे दिया है। जो (उस प्रभु को) अच्छा लगता है, वही करेगा, (मनुष्य के पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों के) सस्कार (कीरति-कर्म) नहीं मेटे जा सकते ॥ ५ ॥

ऐ जी, गुरु, मैं भग कर तेरी शरण पड़ गया हूँ, मुझमें (तुझे छोड़कर) और दूसरा भाव नहीं है। (मैं) हर समय, (उस) एकमात्र एक (प्रभु को) पुकारता हूँ, जो आदि में युग-युगान्तरो से (मेरा) सहायक रहा है ॥ ६ ॥

ऐ जी, (प्रभु), आने नाम की लज्जा रक्खो; (इस संसार में सभी जीवों का) तुम्हीं से बनेगा। (हे प्रभु), कृपा करके (उस) गुरु का दर्शन कराओ, (जो) अहंकार को (अपने) शब्द से जला देता है ॥ ७ ॥

ऐ जी, (प्रभु), (मैं) (तुझमें) क्या माँगू ? इस जगत् में (कोई वस्तु) स्थिर रहने वाली नहीं दिखाई पड़ती है, (सभी वस्तुएँ) आने-जाने वाली हैं (अर्थात् क्षणभंगुर हैं)। (अतएव, हे हरी) नानक को नाम रूपी पदार्थ ही (दान में) दो, जिसे मैं अपने हृदय और कंठ में सँवार के रखूँ ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

ऐ जी ना हम ऊतम नीच न मधिम हरि सरणागति हरि के लोग ।
नाम रते केवल बैरागी सोग बिजोग बिसरजित रोग ॥ १ ॥

भाई रे गुर किरपा ते भगति ठाकुर की ।
सतिगुर बाकि हिरदै हरि निरमलु ना जम कारिण न जम की बाकी ॥
॥ १ ॥ रहाउ ॥

हरि गुण रसन छहि प्रभ संगे जो तिसु भावै सहजि हरी ।
बिनु हरि नाम कृपा जगि जीवनु हरि बिनु निहकलमेक घरी ॥
ऐ जी लोटे ठउर नाही घरि बाहरि निबक गति नही काई ॥
रोसु करै प्रभु बलस न मेटे नित नित चढ़ै सवाई ॥ ३ ॥
ऐ जी गुर की दाति न मेटे कोई मेरै ठाकुर आपि दिवाई ।
निबक नर काले मुख निदा जिन्ह गुर की दाति न भाई ॥ ४ ॥
ऐ जी सरणि परे प्रभु बलसि मिलावै बिलस न अप्रभु साई ।
आनद झूलु नाथु सिरि नाथा सतिगुरु भेलि मिलाई ॥ ५ ॥
ऐ जी सदा दइआलु दइआ करि रविआ गुरमति भ्रमनि चुकाई ।
पारसु भेटि कंचनु घातु होई सतसंगति की बडिआई ॥ ६ ॥

हरि जसु निरमसु मनु इसनानी मजनु सतिगुरु भाई ।

पुनरपि जनमु नाहो जन संवति जोती जोति मिलाई ॥ ७ ॥

तूं बड पुरुष भ्रमं तरीवर हम पंखी तुभ भाही ।

नानक नामु निरंजन दोजे लुगि लुगि सबदि सलाही ॥ ८ ॥ ४ ॥

ऐ जी, न तो मैं उत्तम हूँ, न मध्यम हूँ और न नीच हूँ; मैं हरी की शरण में हूँ और हरी का ही जन हूँ । (जो व्यक्ति) नाम में रंगे हुए है, (वे ही) पवित्र (निष्पेवल) बेरागी है, (क्योंकि उन्होंने) शोक, वियोग और रोग विसर्जन कर दिया है (त्याग दिया है) ॥ १ ॥

अरे भाई, गुरु की कृपा से ठाकुर (परमात्मा) की भक्ति (प्राप्त होती है) । सद्गुरु के वचन (उपदेश) द्वारा (यदि) पवित्र परमात्मा हृदय में बस जाय, तो धर्मराज की मुहताजी नहीं रहती (और न उनका कुछ लेखा ही देना ही) बाकी रहता है, (क्योंकि परमात्मा के स्मरण में मन्द कर्म दग्ध हो जाते हैं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हरि के गुणों में ही रसना रमण करती है, (इस प्रकार मैं निरन्तर) प्रभु के सग में (रहता हूँ), जो परमात्मा को अच्छा लगता है, उसे 'हरि-इच्छा' समझ कर (ग्रहण करता हूँ) । बिना हरिनाम के जगत् में जीवन (व्यतीत करना) व्यर्थ है, हरि-स्मरण के बिना एक घड़ी (भी) बितानी (जन्म को) निष्फल करना है ॥ २ ॥

ऐ जी, छोटे (व्यक्ति) को न घर में ठीर मिलता है और न बाहर, निन्दक (मनुष्य को) कोई भी (शुभ) गति नहीं होती । (छोटे और निन्दकों के निन्दा करने पर भी) प्रभु (अपने भक्तों के ऊपर) गुस्सा करके (अपने) दानों को बन्द नहीं कर देता, बल्कि नित्य नित्य सचाया (और अधिक) देता रहता है ॥ ३ ॥

ऐ जी, गुरु की बख्शीशों को कोई भी नहीं मेट सकता; मेरा ठाकुर (परमात्मा) (गुरु के माध्यम में) स्वयं दलवाता है । जिन (व्यक्तियों) को गुरु के दान अच्छे नहीं लगने, ऐसे निन्दक मनुष्यों के निन्दा से मुहं काले (भ्रष्ट) होते हैं; (और भक्त का कुछ भी नहीं बिगड़ता) ॥ ४ ॥

ऐ जी, शरण में जाने से प्रभु कृपा करके अपने में मिला लेता है, उसमें वह प्राप्ती राई भर (रंच मात्र, तिल मात्र) भी बिलम्ब नहीं लगाता । आनन्द का मूल, नाथो का भी श्रेष्ठ नाथ (हरी), सद्गुरु के मिलने पर, प्राप्त हो गया ॥ ५ ॥

ऐ जी, शाश्वत दयालु (परमात्मा अपनी असीम) दया करके (हृदय में) रमण करने लगा और गुरु द्वारा प्रदत्त बुद्धि से (जन्म-मरण का) दौड़ना समाप्त हो गया । (गुरु रूपी) पारस पत्थर का स्पर्श कर (लोहा ऐसी) धातु (नीच व्यक्ति भी) सोना (सुन्दर व्यक्ति) बन गया; (यह) सत्संगति की महत्ता है ॥ ६ ॥

हरि का नाम निर्मल जल है, मन (उसमें) स्नान करनेवाला है, और (हे) भाई, सद्गुरु स्नान कराने वाला है । (हरी के) जनों (भक्तों) की संगति करके, फिर जन्म नहीं (धारण करना पड़ता); (हरी की) ज्योति में (हमारी) ज्योति (आत्मा) मिल जाती है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), तू महान् पुरुष है, अगम तरुवर (वृक्ष) है, मैं तुझी में एक पक्षी (के समान स्थित हूँ, और तेरे ही सहारे हूँ) । नानक कहता है, (कि हे हरी मुझे) नाम-निरंजन (की भीख) दो, ताकि युग-युगान्तरो तक शब्द द्वारा तेरा गुणगान करूँ ॥ ८ ॥ ४ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर ४ ॥

[५]

भगति प्रेम आराधितं सनु पिशास परम हितं ।
 बिलसाप बिलल बिनंतीआ सुख भाइ चित हितं ॥ १ ॥
 जपि मन नामु हरि सरणी ।
 संसार सागर तारि तारण रम नाम करि करणी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
 ए मन मिरत सुभ चितं गुर सबदि हरि रमणं ।
 भति ततु गिआनं कलिआण निघान हरि नाम मनि रमणं ॥ २ ॥
 चल बित बित भ्रमाभ्रमं जगु मोह मगन हितं ।
 थिरु नाम भगति दिङ्मती गुर वाकि सबद रतं ॥ ३ ॥
 भरमाति भरमु न चूकई जगु जनमि बिआधि क्षपं ।
 असचाऽनु हरि निहकेवलं सतिमती नाम तपं ॥ ४ ॥
 इहु जगु मोह हेत बिआपितं दुलु अधिक जनम मरणं ।
 भनु सरणि सतिगुर ऊबरहि हरि नामु रिद रमणं ॥ ५ ॥
 गुरमति निहचल मनि मनु मनं सहज बीचारं ।
 सो मनु निरमलु जितु सानु अतरि गिआन रतनु सारं ॥ ६ ॥
 भे भाइ भगति तरु भवजलु मना चितु लाइ हरि चरणी ।
 हरि नामु हिरदै पवित्रु पावु इहु सरीर तउ सरणी ॥ ७ ॥
 लब लोभ लहरि निवारणं हरिनाम रासि मनं ।
 मनु मारि तुही निरंजना कहु नानका सरनं ॥ ८ ॥ १ ॥ ५ ॥

विशेष :—निम्नलिखित अष्टपदी काशी के पंडित रामचन्द्र के प्रति कही गयी है ।

अर्थ :—(जो मनुष्य) प्रेमा-भक्ति से सच्चे (हरी) की आराधना करते हैं और अत्यंत प्रेम के व्यासे हैं, वे विलाप से युक्त विनती करते हैं; (इसके फलस्वरूप) प्रेमभाव के कारण (उनके चित्त में) (समस्त) सुख होते हैं ॥ १ ॥

(हे प्राणी), मन से (हरी का) नाम जपो और हरी की शरण में पड़ जाओ । संसार-सागर से तार देनेवाले जहाज, राम-नाम की करणी करो । (तात्पर्य यह कि ऐसे शुभ कर्म करो, जिससे राम-नाम की प्राप्ति हो । रामनाम की प्राप्ति से ही संसार-सागर तरा जाता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे मरणशील मन, गुरु के शब्द द्वारा पवित्र चित्त से हरि में रमण करो । (अथवा इसका अर्थ निम्नलिखित भी हो सकता है—हे मन, गुरु के उपदेश द्वारा यदि हरि को स्मरण करो, तो मीत भी शुभ हो जाती है) । (एकाग्र) मन से हरिनाम में रमण करने से बुद्धि तत्त्व-ज्ञान वाली (हो जाती है) और कल्याण का आण्डार प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

इस संसार में बलायमान चित्त, वित्त (धन) (के पीछे) भटकता रहता है और (सांसारिक) मोह में निमग्न हो जाता है । किन्तु गुरु के वाक्य एवं शब्द में अनुरक्त यह बुद्धि

(इस बात में) दृढ़ हुई है कि (परमात्मा के) नाम की भक्ति ही स्थिर रहने वाली है ॥ ३ ॥

(सारा) जगत् जन्म-मरण की व्याधि में खपता है और भटकता फिरता है; (किन्तु यह भटकना) समाप्त नहीं होता । हरी का स्थान निष्केवल (परम पवित्र) है, (अतएव) उसके नाम का तप करना ही सच्ची मति (बुद्धि) है ॥ ४ ॥

इस जगत् में मोह का प्रेम व्याप्त है, (इसीलिए) इसे जन्म-मरण का महान् दुःख लगा हुआ है । (इस दुःख की निवृत्ति के लिए) भग कर सद्गुरु की शरण में जा; (वहाँ) हरि का नाम हृदय में बसाने से उबर जायगा ॥ ५ ॥

(यदि) गुरु की निदचल मति मन में आ जाय, तो मन ज्ञान के विचार को मान जाता है । वह मन पवित्र है, जिसके अन्तर्गत सत्य और ज्ञान-रत्न का मार (भरा) है ॥ ६ ॥

हे मन, संसार-सागर को (हरी के) भय, भक्ति और प्रेम से पार कर ले, और हरि-चरणों में चित्त लगा ले; हृदय में पवित्र और पावन हरी का नाम (रख कर, यह कह—“हे हरी), यह शरीर तेरी शरण में पड़ा हुआ है ।” ॥ ७ ॥

हरी के नाम की राशि मन में धारण करो; (यह) लोभ और लालच की लहरों को दूर कर देती है । नानक कहते हैं, (कि हे शिष्य नाम धारण करने के पश्चात्) यह कहो, “हे, निरंजन (हरी) तू ही मेरे मन को मार दे (बशीभूत कर दे), (मैं तेरी) शरण में हूँ ।” ॥ ८ ॥ १ ॥ ५ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु बिहागड़ा, बिहागडे की वार, महला १

सलोक : कली अदरि नानका जिना दा अउतरु ।

पुनु जिनूरा धीअ जिनूरी जोरु जिना दा सिक्दारु ॥ १ ॥

हिंदू मूले भूले अठुटी जांही । नारद कहिआ सि पूज करांही ॥

अधे गुं ने अंध अंधारु । पाथरु ले पूजहि मुग्ध गवार ॥

ओहि जा आपि डुबे तुम कहा तरणहारु ॥ २ ॥

सलोक : हे नानक, कलियुग में रहनेवाले (मनुष्य नहीं) भूत जन्म लिए हैं ।
(उनके) पुत्र छोटे जिनद है, पुत्री भूतिनी तथा स्त्री भूतिनियों की स्वामिनी है ॥ १ ॥

हिंदू बिनकुल (परमात्मा से) भूले हुए कुमार्ग पर जा रहे हैं । जो नारद ने कहा है,
बड़ी पूजा करते हैं । (इन) अंधों और गंधों के लिए घनघोर अंधकार (बना हुआ) है ।
(तात्पर्य यह कि ये लोग न तो सही रास्ता देख रहे हैं और न वे प्रभु का गुणगान ही करने
हैं) । ये मूर्ख और गँवार पत्थर ले कर पूज रहे हैं ।

(हे भाई, जिन पत्थरों की तुम पूजा करते हो) यदि वे स्वयं ही (पानी में) डूब
जाते हैं, (तो उन्हें पूज कर) तुम (ससार-सागर में) कैसे तर सकते हो ? ॥ २ ॥

पडड़ी : सभु किहु तेरै वसि है तू सवा साहु ।

भगत रते रजि एक कै पूरा बेसाहु ॥

अमृतु भोजनु नामु हरि रजि रजि जन साहु ।

सभि पदारथ पाईअनि सिमरणु सचु लाहु ॥

संत पिअारे परब्रह्म नानक हरि अगम अगाहु ॥ १ ॥

पडड़ी : (हे प्रभु), तू सच्चा साह है और सब कुछ तेरे वश में है । (भजन करने
वाले) भक्त एक (हरी के नाम) में रंगे हुए हैं (और उसी का) उन्हें पूरा विश्वास है ।
(वे) दास, हरी के नाम रूपी अमृत (भोजन) को तृप्त हो हो कर (छक छक कर) करते
हैं । उन्हें सारे पदार्थ प्राप्त होते हैं (और वे नाम)-स्मरण रूपी सच्चा लाभ प्राप्त करते हैं ।

हे नानक, (मुख्य बात यह है कि) जो परब्रह्म अगम, और अगाध है, (भजन
करनेवाले) प्रिय सतगुरु उसका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु वडहंसु, महला १, घर १

सवद

[१]

अमली अमलु न अबड़ै मछी नीरु न होइ ।
जो रते सहि आपणै तिन भावै समु कोइ ॥ १ ॥
हउ वारी बंझा खनीऐ बंझा तउ साहिब के नवै ॥ १ ॥ रहाउ ॥
साहिबु सफलियो रखड़ु। अमलु जाका नाउ ।
जिन पोआ ते तृपत भए हउ तिन बहिारै जाउ ॥ २ ॥
मे की नदरि न आवै वसहि हभोआ नालि ।
तिखा तिहाइआ किउ लहै जा सर भीतर पालि ॥ ३ ॥
नानकु तेरा बाणीआ तू साहिबु मे रासि ।
मन ते घोखा ता लहै जा सिफति करी अरदासि ॥ ४ ॥ १ ॥

जिस प्रकार नशेड़ी को नशे की समानता (कोई वस्तु) नहीं कर सकती और मछली के लिए पानी (से प्रिय कोई वस्तु) नहीं होती, उसी प्रकार जो अपने मालिक हरी के प्रेम में रंगे हुए हैं, (उनकी दृष्टि में हरि की समानता कोई भी वस्तु नहीं कर सकती), चाहे उन्हें सारी वस्तु पड़ी मिलें ॥ १ ॥

तुम साहब के नाम पर मैं बार जाऊँ, टुकड़े-टुकड़े होकर कुरबान हो जाऊँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू) मेरा साहब फलदार वृक्ष है और तेरा नाम 'अमृत' है । जिन्होंने (तेरे नाम रूपी अमृत को) पी लिया है, वे (पूर्ण रूप से) तृप्त हो गए हैं, मैं उन पर न्योछावर हो जाता हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु), (तू) तो सभी के साथ बसा हुआ है, (किन्तु) मुझे (तू) दृष्टि में नहीं आ रहा है । जब तालाब के भीतर (भ्रम की) दीवाल (स्थित) हो, तो प्यासे (बेचारे) की प्यास किस प्रकार नष्ट हो ? ॥ ३ ॥

हे नानक, मैं तो तेरा ही बणिक (व्यापारी) हूँ, तू (मेरा) साहब (प्रभु, स्वामी) है
घोर (मेरी) राशि है मन से (माया का) भ्रम तभी दूर हो सकता है, जब (एकनिष्ठ
होकर) (परमात्मा की) स्तुति एवं प्रार्थना की जाय ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

गुणवंती सह राविभ्रा निरगुणि कूके काइ ।
जे गुणवंती थो रहै ता भी सह रावण जाइ ॥ १ ॥
मेरा कंतु रीसालू की धन भवरा रावे जी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
करणी कामण जे बीऐ जे मनु धागा होइ ।
माणकु मुलि न पाईऐ लीजं चिति परोइ ॥ २ ॥
राहु दसाई न जुलां आखां भ्रमड़ोआसु ।
तै सह नालि अकूअणा किउ थोवै घरवासु ॥ ३ ॥
नानक एको बाहरा दूजा नाही कोइ ।
तै सहै लगी जे रहै भी सह रावे सोइ ॥ ४ ॥ २ ॥

गुणवती (स्त्री) पति के साथ रमण करती है, गुण-विहीन (स्त्री) (उसके इस भाग्य
पर ईर्ष्या के वशीभूत हो) क्यों रोती है ? यदि (कोई गुणविहीन स्त्री) गुणवती हो जाय, तो
वह भी पति को भोगने के लिए जा सकती है ॥ १ ॥

मेरा कंत (अत्यन्त) रसिक है, फिर स्त्री अन्य वस्तुओं की ओर क्यों आनन्द लेने जाती
है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि शुभ कर्म जादू-टोने का माणिक्य (लाल, रत्न) हो (घोर) मन (उमे गूँघने
वाला) धागा हो, (तात्पर्य यह कि मन शुभ कर्मों को पिरोकर हरी में सुक कर दे), तो इस
माणिक्य के मूल्य को (कोई भी वस्तु) नहीं पा सकती; इसे चित्त के धागे में पिरो लेना
चाहिए ॥ २ ॥

(मैं) रास्ता तो पृथ्वी हूँ, (पर उस घोर) चलती नहीं (घोर) कहती (यह)
हूँ (कि मैं) (परमात्मा के पास) पहुँच गई हूँ तुझ प्रियतम से (मेरी) बोलचाल नहीं है;
(ऐसी परिस्थिति में मेरा) घर में निवास किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ३ ॥

हे नानक, एक (परमात्मा) के बिना घोर कोई दूसरा नहीं है । तुझ पति के साथ जो
स्त्री जुड़ो रहे, तो वह भी पति के साथ रमण कर सकती है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

मोरी खणभुण लाइआ भैए सावणु आइआ ।
तेरे मुंघ कटारे जेवडा लिनि लोभी लोभ लोभाइआ ॥
तेरे दरसन बिटहु खनोऐ बंआ तेरे नाम बिटहु कुरगालो ।
जा तू ता मे मारु कोआ है तुबु बिनु केहा मेरा मारु ॥
छूड़ा भनु पलंघ सिउ मुंघे सरु बाही सरु बाहा ।
एते बेस करेबीए मुंघे सह रातो भवराहा ॥

ना मनीआक न बूझीआ ना से वंगुड़ीआहा ।
जो सह कंठि न लगीआ जलनु सि बाहूड़ीआहा ॥
सभि सहीआ सहु रावणि गईआ हउ दाघी कै वरि जावा ।
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सहि एक न भावा ॥
माठि गुंदाई पटीआ भरीऐ माग संधूरे ।
अगै गई न मनीआ मरउ विसूरि विसूरे ॥
मै रोवदो सभु जगु रुना रुंनड़े वरणहु पखेरु ।
इकु न रुना मेरे तनका बिरहा जिनि हउ पिरउ बिछोड़ी ॥
सुपनै आइआ भी गइआ मै जलु भरिआ रोइ ।
आइ न सका तुभ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ ॥
आउ सभागो नीदड़ोए मतु सहु देखा सोइ ॥
तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै ।
सीसु बडे करि बैसगु दीजै विरगु सिर सेव करीजै ॥
किउ न मरीजै जोअड़ा न दीजै जा सहु भइआ बिडारणा ॥ १ ॥ ३ ॥

मोर (खुशो मे) मीठी-मीठी बोल बोली रहे है; ऐ बहिनो सावन आ गया है । (हे हरी), तेरे कटाक्ष (अत्यन्त रसयुक्त) हैं, उन्होंने (मुझ) स्त्री का मन लोभियों की भांति लोभ देकर लुभा लिया है । (हे प्रभु), तेरे दर्शन के ऊपर (मैं) खण्ड-खण्ड होकर (टुकड़े-टुकड़े होकर) (न्योछावर) हूँ, तेरे नाम के ऊपर (मैं) कुरवान हूँ । यदि तू (मेरा स्वामी है), तो मैं मान करती हूँ (और मेरा मान करना सार्थक है), तेरे बिना मेरा मान किस प्रकार का हो सकता है ?

हे स्त्री, अपनी चूड़ियों को पलंग समेत तोड़ दे, और अपनी बांहों को (पलंग की) पाटियों के साथ (नष्ट कर दे), (क्योंकि) इतने वेग और शृङ्गार करनेवाली ऐ स्त्री, तेरा पति श्रीरो के साथ रमण कर रहा है । न तो (तुम्हारे पास) (गुरु रूपी) मनिहार है और न (भक्ति रूपी) चूड़ियाँ और छोटी चूड़ियाँ ही है । जो बाँहे पति के गले के साथ नहीं लगती, वे जल जायें । (मेरी) सारी सलियाँ पति के साथ रमण करने गयी हैं; (बिरह में) दग्ध मैं किसके दरवाजे पर जाऊँ ? हे सखी, मैं तो अच्छी और सुचज्जी (सुन्दर आचरणवाली स्त्री) हूँ, जब कि तुम पति को जरा भी अच्छी नहीं लगती (तात्पर्य यह की जब तक मैं पति को अच्छी नहीं लगती, तब तक किस प्रकार सुचज्जी (सुन्दर आचरणवाली) हो सकती हूँ) ?

(मैंने बालों को बार-बार) दबाकर—बैठाकर गूँथा, (बालों के बीच से) पट्टी निकाली और माँग सिंदूर से भरा । (इतना सब बाह्य शृंगार करने पर भी) आगे जाकर (परलोक मे) (पति-परमात्मा द्वारा) नहीं स्वीकार की गई, (अतएव मैं) विसूर-विसूर कर मर रही हूँ । मुझे रोती हुई देख कर सारा जगत् रोने लगा, (यहाँ तक कि) वन के पक्षी भी रोने लगे । पर मेरे शरीर का (वह) वियोग, जो मेरा प्रियतम से वियोग करा दिया है, न रोया (और न दूर हुआ) ।

(मेरा प्रियतम) स्वप्न में (मेरे पास) आया भी और चला भी गया; (मैं उसके वियोग मे) अर्धसू भर कर रोई (जो भर कर रोई) । हे प्रियतम, न तो मैं तेरे पास आ सकती

और न (तुम्हें तक) किसी को भेज ही सकी। हे भाग्यशालिनी नौद, (तू ही) ध्या जा, कदाचित् (सोने-सोते स्वप्न में ही) पति का दर्शन हो जाय। नानक कहते हैं कि तुम्हें साहब प्रभु की जो बातें कहता है, उसे क्या दिया जाय ? (इस प्रश्न का उत्तर यह है कि) उसे (अपना) सिर काटकर बैठने को दिया जाय और (उसकी) सेवा बिना सिर के ही की जाय। यदि प्रियतम बेगाना हो गया है, तो क्यों न मर कर प्राण दे दिए जायें ? ॥ १ ॥ ३ ॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ वडहंसु, महला १,

छंद

[१]

काइआ कूड़ि बिगाड़ि काहे नाईऐ ।
 नाना सो परवारु सनु कमाईऐ ॥
 जब साच अदरि होइ साचा तामि साचा पाईऐ ।
 लिखे बाझहु सुरति नाही बोलि बोलि गवाईऐ ॥
 जियै जाइ वहीऐ भला कहीऐ सुरति सबदु लिखाईऐ ।
 काइआ कूड़ि बिगाड़ि काहे नाईऐ ॥ १ ॥

ता मै कहिआ कहणु जा तुम्है कहाइआ ।
 भ्रमंतु हरि का नामु मेरै मनि भाइआ ॥
 नामु मोठा मनहि लागु दूखि डेरा दाहिआ ।
 मूखु मन महि आइ बसिआ जामि ते कुरमाइआ ॥
 नदरि तुघु अरदास मेरी जिनि आपु उपाइआ ।
 ता मै कहिआ कहणु जा तुम्है कहाइआ ॥ २ ॥

बारी खसमु कडाए किरतु कमावणा ।
 मंदा किसे न आखि भगड़ा पावणा ॥
 नह पाइ भगडा सुआमि सेती आपि आपु बजावणा ।
 जिसु नालि सगति करि सरीकी जाइ किआ कमावणा ॥
 जो देइ सहणा मनहि कहणा आखि नाही बाबणा ।
 बारी खसमु कडाए किरतु कमावणा ॥ ३ ॥

सभ उपाईअनु आपि आपे नदरि करे ।
 कउड़ा कोइ न मागै मोठा सभ मागै ॥
 सभु कोइ मोठा मगि देखै खसम भावै सो करे ।
 किछु पुंन वान अनेक करणी नाम तुलि न समसरे ॥
 नानका जिन नामु मिलिआ करमु होआ धुरि कवे ।
 सभ उपाईअनु आपि आपे नदरि करे ॥ ४ ॥ १ ॥

घारर को झूठ से बिगाड़ कर, क्यों स्नान करने हो ? (उस हरी की दृष्टि में) स्नान करना तब प्रामाणिक होता है, (जब) सत्य की कमाई की जाय। जब सत्य के अन्तर्गत सच्चा

बना जाय, तभी सत्य (परमात्मा) को प्राप्ति होती है । (परमात्मा की ओर से हुक्म) न लिखा हो, तो सुरति (स्मृति, सूक्त) नहीं (प्राप्त) होती; (केवल) बड़बड़ाने (मात्र से मनुष्य) नष्ट हो जाता है । (अतएव) जहाँ भी जाकर बैठा जाय, अच्छी बातें कही जायँ और सुरति मे (ध्यान मे, स्मृति मे) शब्द को (नाम को) लिखा जाय । शरीर को झूठ से बिगाड़ कर, क्यों स्नान करते हो ? ॥ १ ॥

मैं (तेरा नाम) तब कह सका (स्मरण कर सका), जब तूने (मुझ्मे) कहलवाया, (स्मरण कराया) । अमृत के समान हरी का नाम मेरे मन को बहुत ही अच्छा लगा । (हरी का) नाम मन को (बहुत ही) मीठा लगा; (अभी तक जो मेरा निवास दुःख के डेरे मे था), वह दुःख का डेरा फट गया, (अर्थात् मेरे समस्त दुःखों का नाश हो गया) । (हे प्रभु), जब से तूने हुक्म दिया, (तब से) मुख (मेरे) मन मे आकर बस गया । (हे हरी) (मेरी शक्ति) अरदास (प्रार्थना) करनी है, कृपा की दृष्टि करनी—(यह) तेरा (काम) है । हे प्रभु, तूने अपने आप ही अपने को उत्पन्न किया है । मैं (तेरा नाम) तब कह सका, जब तूने (मुझ्मे) कहलवाया ॥ २ ॥

खसम—पति (परमात्मा) (हमारी कमाई हुई) कीरति (पिछने किए हुए कर्म) के अनुसार हमारी बारी देता है (जन्म देता है) ; (अतएव) किसी को बुरा कह कर भगड़े मे नहीं पडना चाहिए । (किसी के साथ भगड़े मे पडना, वास्तव मे पति परमात्मा के साथ भगड़े मे पडना है, क्योंकि करना सब कुछ बही है) । इसलिए स्वामी के साथ भगड़े में पड कर अपने आपको नष्ट नहीं करना चाहिए । जिसके साथ (तुम्हारी) मंगति है, उससे बराबरी (प्रतिस्पर्द्धा) करके क्यों रोते हो ? जो कुछ (परमात्मा) दे, (उसे स्वयं) सहना चाहिए, (अपने) मन को समझाना चाहिए, (मुख मे) कह कर व्यर्थ नहीं बकना चाहिए (क्योंकि बकने से परमात्मा का हुक्म तो बदलेगा नहीं) । [वाक्पण=बजाना—संसार में दिहोरा पीटना, बकना] । पति (हमारी की हुई) कीरति के अनुसार (हमारी) बारी देता है (जन्म देता है) ॥ ३ ॥

(परमात्मा ने) सभी को स्वयं रचा है और स्वयं ही उनके ऊपर नजर रखता है (देखभाल करता है) । सभी लोग मीठा ही माँगते है, कोई भी (व्यक्ति) कड़वा नहीं माँगता । सभी कोई मीठा माँग कर देख ले, (लेकिन) स्वामी करता वही है, जो उसे अच्छा लगता है । पुण्य, दान तथा (इसी प्रकार के अन्य) शुभ कर्म (परमात्मा के) नाम की तुलना अथवा समता नहीं कर सकते । हे नानक, जिन्हें नाम की प्राप्ति हुई है, उनके ऊपर निश्चय ही कभी परमात्मा की कृपा हुई होगी । (परमात्मा ने) स्वयं ही सभी को रचा है और स्वयं ही सबके ऊपर कृपा दृष्टि रखता है ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

करहु बइसा तेरा नाम बखारना ॥

सब उपाईए आपि आपे सरब समाणा ॥

सरबे समाणा आपि तू है उपाइ धरै साईना ॥

इकि तुम्हो कीए राजे इकना बिल्ल भवाईआ ॥
 लोभु मोहू तुम्हू कीआ मोठा एतु भरमि भुलाएण ।
 सदा बइआ करहु अपणी तामि नामु बलाएण ॥ १ ॥
 नामु तेरा है साचा सदा मै मनि भारण ।
 दूखु गइआ सुखु आइ समाएण ॥
 गावनि सुरि नर सुघड़ सुजाएण ॥
 सुरि नर सुघड़ सुजाएण गावहि जो तेरै मनि भावहे ।
 माइआ मोहे चेतहि नाहो ग्रहिला जनसु गवावहे ॥
 इकि मूढ़ मुगध न चेतहि मूले जो आइआ तिसु जाएण ।
 नामु तेरा सदा साचा सोइ मै मनि भारण ॥ २ ॥
 तेरा वखतु सुहावा अमृत तेरी बाणी ।
 सेवक सेवहि भाउ करि खागा साउ पराणी ।
 साउ प्राणी तिना लागा जिनी अमृत पाइआ ।
 नामि तेरै जोइ राते नित चढ़हि सवाईआ ॥
 इकु करमु धरमु न होइ संजमु जामि न एक पछाणी ।
 वखतु सुहावा सदा तेरा अमृत तेरी बाणी ॥ ३ ॥
 हउ बलिहारी साचे नावै ।
 रानु तेरा कबहु न जावै ॥
 राजो त तेरा सदा निहचलु एहु कबहु न जावए ।
 चाकन त तेरा सोइ होवै जोइ सहजि समावए ॥
 दुसमन त दूखु न लगै मूले पापु नेड़ि न आवए ।
 हउ बलिहारी सदा होवा एक तेरे नावए ॥ ४ ॥
 जुगह जुगंतरि भगत तुमारे ।
 कीरति करहि सुआमी तेरै दुआरे ॥
 जपहि त साचा एक मुरारे ॥
 साचा मुरारे तामि जापहि जामि मनि वसावहे ।
 भरमो भुलावा तुम्हहि कीआ जामि एहु चुकावहे ॥
 गुरपरसादी करहु किरपा लेहु जमहु उबारे ।
 जुगह जुगंतरि भगत तुमारे ॥ ५ ॥
 बडे मेरे साहिबा अलखु अपारा ।
 किउकरि करउ बेनंती हउ आलि न जाएण ।
 नदरि करहि ता साखु पछाएण ॥
 साचो पछाएण तामि तेरा जामि आपि बुझावहे ।
 बूख भूख संसारि कीए सहसा एहु चुकावहे ॥
 बिनबंति नानकु जाइ सहसा दुम्है गुर बीचारा ।
 बडा साहिबु है आपि अलख अपारा ॥ ६ ॥

तेरे बंके लोइए दंत रीसाला ।
 सोहरो नक जिन लंमड़े बाला ॥
 कंचन काइया सुइने की डाला ।
 सोबन डाला कसन माला जपहु तुसी सहेलीहो ।
 जम दुआरि न होहु लड़ीया सिल सुणहु महेलीहो ॥
 हुस हुंसा बग बगा लहै मन की जाला ।
 बंके लोइए दंत रीसाला ॥ ७ ॥

तेरी चाल सुहाबी मधुराड़ी बाणी ।
 कुहकनि कोकिला तरल जुआणी ॥
 तरला जुआणी आपि भाणी इछ मन की पूरीए ।
 सारग जिउ पयु घरे ठिमि ठिमि आपि आमु सधूरए ॥
 ली रंग राती फिरै माती उबकु गंगावाणी ।

बिनबंति नानकु दासु हरि का तेरी चाल सुहाबी मधुराड़ी बाणी ॥ ८ ॥ २ ॥

(हे प्रभु, तू मेरे ऊपर) दया कर, (ताकि मैं) तेरे नाम का वर्णन करूँ । (हे हरी), तू ने स्वयं ही सब की उत्पत्ति की है, और स्वयं ही सब में व्याप्त है । (हे प्रभु), तू ही सब में समाया है और सब को उत्पन्न करके तूने उन्हे (अपने अपने) धन्ये में लगा दिया है । कुछ (लोगों) को तुझी ने राजा बनाया है और कुछ को तू ही भोग मँगाना फिरता है । (मनुष्य को) लोभ और मोह तू ही मीठा लगाता है और इसी भ्रम में (मनुष्य को) भुला रक्ता है । (हे प्रभु), (तू मेरे ऊपर अपनी) शाश्वत दया कर, ताकि मैं तेरे नाम का वर्णन करूँ ? ॥ १ ॥

(हे हरी), तेरा नाम सत्य है, मेरे मन में सदैव तेरी ही मर्जी रहनी है (अर्थात् जो तेरी मर्जी होती है, वही मेरे मन को अच्छा लगता है) । (इस प्रवृत्ति के कारण) (मेरे सारे) दुःख समाप्त हो गए हैं (और मेरे अन्तःकरण में) सुख आकर समा गया है । जो चतुर तथा सयाने पुरुष, तथा देवता हैं, (वे तेरा) गुणगान करते हैं । (वे ही) देवता, चतुर और सयाने पुरुष (तेरा) गुणगान करते हैं, जो तेरे मन को अच्छे लगते हैं । (जो) माया में मोहित हैं, (वे) चेतते नहीं (और अपना मनुष्य का) जीवन व्यर्थ ही गँवा देते हैं । कुछ (ऐसे मूढ़ और गंवार हैं, (जो इस बात को (बिलकुल भी नहीं) चेतते कि (जो भी प्राणी इस संसार में) आया है, उसे (अवश्यमेव यहाँ से) जाना है । (हे प्रभु) तेरा नाम सच्चा है; वही मेरे मन में (तेरी) इच्छा (के रूप) में रहता है ॥ २ ॥

(हे प्रभु, जिस वक्त तू याद आये) तेरी (स्मृति का वह) वक्त (बहुत ही) सुहावना (होता) है । तेरी (स्तुति करनेवाली) बाणी अमृतस्वरूपिणी (होती है) जिन प्राणियों को (हरि नाम का) स्वाद लग गया है, (वे) सेवक प्रेम से (परमात्मा की) आराधना करते हैं । जिन्होंने (हरि-नाम) का अमृत प्राप्त कर लिया है, उन्ही प्राणियों को स्वाद की प्रतीति होती है । जो (व्यक्ति) तेरे नाम में अनुरक्त हैं, उनका (रंग नित्य सवाई चढ़ता है, (तात्पर्य यह है कि वे नित्य फलते-फूलते हैं) । जब तक, (तुझ) एक को नहीं पहचान लिया जाता, (तब तक) न कुछ कर्म होता है, न धर्म (होता है) और न संयम (होता है),

(क्योंकि बिना परमात्मा के पहचाने सारे कर्म, धर्म और संयम व्यर्थ है) । (हे प्रभु, तेरी स्मृति का) वक्त सदैव सुहावना होता है, (वह) बाणी (जिससे) तेरी (स्तुति होती है), अमृतस्वरूपिणी (होती है) ॥ ३ ॥

(हे हरी), मैं तेरे सच्चे नाम पर बलिहारी होता हूँ । (हे प्रभु) तेरा राज्य [कभी नहीं मिटता । तेरा राज्य] सदैव निश्चल है, यह कभी नहीं जाता (नष्ट होता) । जो (व्यक्ति) सहजावस्था में समा जाता है, वही तेरा (वास्तविक) चाकर होता है । (उसे) न तो शत्रु (सताते हैं) और दुःख भी बिल्कुल नहीं लगता, पाप भी (उसके) समीप नहीं फटता । (हे प्रभु), मैं तेरे एक नाम पर सदैव बलिहारी होता हूँ ॥ ४ ॥

हे स्वामी, तेरे भक्त युग-युगान्तरो से मेरे द्वार पर (तेरी) कीर्ति का गुणगान करते हैं । (वे सच्चे एक मुरारी को ही जपते हैं । जब (तू) (उनके) मन में बसा देता है, तभी वे सच्चे मुरारी को जपते हैं । (माया के) 'भ्रम में भटकाना'—(यह खेल) तेरा ही किया हुआ है, (रचा है), जब यह (भ्रम) समाप्त कर दे, तभी गुरु की कृपा से (अपने भक्तों को) यम से बचा लेता है । युग-युगान्तरो से भक्तगण (तेरा गुणगान कर रहे हैं) ॥ ५ ॥

हे मेरे साहब, (तू) बड़ा है, अलख है और अपार है, मैं (तेरी) प्रार्थना किस प्रकार करूँ ? मैं कहना नहीं जानता (अर्थात् मुझमें यह शक्ति नहीं है कि बाणी द्वारा तेरी महत्ता का दर्शन कर सकूँ) । (यदि तू अपनी कृपादृष्टि करे (तभी मैं) सत्य को पहचान सकता हूँ; (बिना तेरी कृपा दृष्टि के सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता) । (हे स्वामी), तेरे सत्य को तभी पहचाना जाता है, जब (तू) कृपा करके (उस सत्य को) समझा दे । (हे हरी), (तुम्हीं ने) इस ससार में दुःख और भूख को रचा है (और इस) भ्रम को तू ही निवृत्त कर सकता है । नानक विनयपूर्वक कहने है कि (जब) गुरु के विचार द्वारा समझे, तभी सत्य की निवृत्ति हो सकती है । हे साहब, (तू) महान् है, अलख है और अपार है ॥ ६ ॥

(हे प्रभु), तेरे नेत्र बाँके हैं और दाँत सुहावने हैं । [रीसाला=रस का घर, सुहावना] । (तेरी नासिका सुन्दर है (और तेरी) केशराशि लम्बी है । (तेरी) काया सोने की है और सोने में ही ढली हुई है । उस सोने से ढली (काया) में बैजयन्ती-माला (कृष्ण-माला) है । ऐ सहैलियों, तुम सब (उसका) जप करो । हे महिलाओं, (स्त्रियों) (मेरी) शिक्षा सुनो, (उस प्रभु का जप करने से) तुम सब यम के द्वार पर (निष्ठा देने के लिए) नहीं खड़ी की जाओगी । (परमात्मा के स्मरण में) मन की मैल नष्ट हो जायगी; इससे बड़े से बड़े बगुले (पाखण्डों) महान् से महान् हंस (पवित्रात्मा) (हो जायेंगे) । (हे प्रभु), तेरे नेत्र बाँके और दाँत सुहावने हैं ॥ ७ ॥

(हे हरी) तेरी चाल (बड़ी) सुहावनी है और तेरी बाणी (अत्यन्त) मधुर है । (तेरी बाणी) कोयल की कूक समान (मीठी है) (और तुम्हारा) यौवन कान्तिमय है । (तेरी वह) तरल युवावस्था ऐसी है, जो मन की इच्छा पूरी होने से (स्वयं अपने आप में मस्त है) । (तू) उस हाथी के समान ठुमुक ठुमुक के पैर रखता है, जो स्वयं अपने आप में मस्त है । (जीव रूपी स्त्री उपर्युक्त गुणों वाले) हरी के प्रेम में गंगा जी के जल के समान मस्त होकर फिर रही है । हरि का वास नानक विनय करता है (कि हे प्रभु) तेरी चाल बड़ी सुहावनी तथा बाणी (अत्यन्त) मधुर है ॥ ८ ॥ २ ॥

१ॐ सतिगुर प्रसादि ॥ रागु बडुहंसु, महला १, घरु ५

अलाहणीआ

[१]

धनु सिरदा सचा पातिसाहु जिनि जगु धंधे लाइआ ।
 मुहलति पुनी पाई भरी जानीअड़ा घति चलाइआ ।
 जानी घति चलाइआ लिखिआ प्राइआ रुने वीर सबाए ।
 काइआ हंस थोआ बेछोड़ा जां दिन पुने मेरे भाए ॥
 जेहा लिखिआ तेहा पाइआ जेहा पुरबि कमाइआ ॥
 धनु सिरदा सचा पातिसाहु जिनि जगु धंधे लाइआ ॥ १ ॥
 साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभराणा एहु पइआराणा ।
 एथे धंधा कूड़ा चारि दिहा आगै सरपर जाणा ॥
 आगै सरपर जाणा जिउ मिहमाणा काहे गारवु कीजे ।
 जितु सेबिऐ दरगहु सुनु पाईऐ नामु तिसं का लीजं ॥
 आगै हुकमु न चलै मूले सिरि सिरि किआ बिहाणा ।
 साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआराणा ॥ २ ॥
 जो तितु भावै संभ्रय सो थोए होलड़ा एहु संसारो ।
 जलि थलि महिअलि रबिरहिआ साचड़ा सिरजणहारो ॥
 साचा सिरजणहारो अलख अपारो ता का अंतु न पाइआ ।
 आइआ तिनका सफलु भइआ हे डक मनि जिनी भिआइआ ॥
 डाहे डाहि उसारे आपे हुकमि सवारणहारो ।
 जो तितु भावै संभ्रय सो थोए होलड़ा एहु संसारो ॥ ३ ॥
 नानक रुना बाबा जाणोए जे रोवै लाइ पिआरो ।
 बालेवे कारणि बाबा रोइऐ रोवरु सगल बिकारो ॥
 रोवरु सगल बिकारो गाफलु संसारो माइआ कारणि रोवै ।
 बंगा मंदा किलु मुझै नाहो इहु तनु एवै खोवै ॥
 एवै आइआ समु को जासी कूड़ि करहु अहंकारो ।
 नानक रुना बाबा जाणोए जे रोवै लाइ पिआरो ॥ ४ ॥ १ ॥

विशेष :— शोक के उन गीतों को 'अलाहणीआ' कहते हैं जो किसी की मृत्यु के समय गाये जाते हैं । उन्हीं के आधार पर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित शब्दों का उच्चारण किया है । ये शब्द बेराम्य से पूर्ण हैं । गुरु नानक देव ने 'मायिक पदार्थों' के लिए रोना मना किया है । उन्होंने सच्ची मीत का मरना सिखाया है ।

अर्थ : वह रचयिता धन्य है, (जो सच्चा बादशाह है और जिसने सभी जगत् के प्राणियों को (अपने अपने) धंधे में लगा रक्खा है । जब (आप) की अवधि पूरी हो गयी (और जीवन रूपी पनघड़ी) की प्याली भर गयी (और स्वास रुक गए), (तो इस प्यारे मित्र जीवन् म ।

को यमदूतों ने) पकड़ कर आगे चला दिया । [पाई पन = घड़ी की प्याली जिसके तले में छेद होता है, जिसके द्वारा पानी प्याली में आकर भरता रहता है । जब प्याली भर जाती है, तो वह हूब जाती है] । प्रिय (जानी) (जीवात्मा) (शरीर में पृथक् करके) आगे चला दिया गया । (जब परमात्मा के यहाँ से) लिखा हुआ (हुक्मनामा) आया, (और जीवात्मा इस शरीर से पृथक् हो गया), तो सारे सगे-सम्बन्धी रोने लगे ।, हे मेरी माता, जब (आयु के) दिन पूरे हो गए, तो काया से हंस (जीवात्मा) का वियोग हो गया । (मरणोपरान्त) पूर्व (जन्मों के) कर्मानुसार जैसा परमात्मा का) लिखा हुआ था, (विधान था), वैसे ही (फल की) प्राप्ति हुई । (वह) सृष्टि-रचयिता और सच्चा बादशाह धन्य है, जिसने जगत् (के सभी प्राणियों को अपने अपने) धंधे में लगाया है ॥१॥

हे मेरे भाइयो, साहब (प्रभु) का स्मरण करो; सभी को यहाँ से (इस संसार से) प्रयाण करना है, (कूच करना है) । यहाँ (इस संसार) के (सारे) धंधे भूटे हैं और चार दिन के हैं, निस्तान्देह हो (यहाँ से) परलोक प्रयाण करना है (इस संसार से) परलोक में (आगे) अवश्य प्रयाण करना है; (यहाँ तो तुम चार दिन के) मेहमान के समान हो, (अतएव) गर्व क्यों करते हो ? (अतः) जिस (प्रभु की) आराधना से (उसके) दरबार में सुख प्राप्त हो, (उसी के) नाम का स्मरण करो । परलोक में (तुम्हारा) हुक्म बिल्कुल न चलेगा, और (हर एक के) सिर पर क्या बोतेगी, (इसे कोन बता सकता है) ? हे मेरे भाइयो, साहब (परमात्मा) का स्मरण करो, सभी के यहाँ से—(इस संसार से) प्रयाण करना है, (कूच करना है) ॥२॥

(उस) समर्थ (सर्वशक्तिमान् परमात्मा) को जो रचना है, वही होता है; यह संसार तो हीला-हवाला (बहाना; झूठा) है (वह सृष्टि का) सच्चा सिरजनहार जल-धन में पृथ्वी और आकाश के मध्य—(सभी स्थानों में) रम रहा है । (वह) सच्चा सिरजनहार अलख और अपार है, उसका अन्त नहीं पाया जा सकता । (इस संसार में) उन्हीं का आना (जन्म धारण करना) सफल हुआ है, जिन्होंने एक मन से (परमात्मा का) ध्यान किया है । (वह प्रभु) स्वयं ही ढाहता है (सहार करता है) और ढाह कर फिर बनाता है (रचना है); (वह अपने) हुक्म से (सब को) संभारता है । (उस) समर्थ (सर्वशक्तिमान् परमात्मा) को जो रचना है, वही होता है; यह संसार तो हीला-हवाला (बहाना, झूठा) है ॥३॥

नानक कहते हैं कि हे बाबा, रोना तब (सफल) समझना चाहिए, जब प्रियतम (परमात्मा) के लिए रोना हो । हे बाबा, (जो) रोना (सासारिक) पदार्थों के लिए होता है, (वह) रोना सब व्यर्थ है ।

(मायिक) पदार्थों के लिए रोना सब व्यर्थ है, (किन्तु सारा) संसार गाफिल है, (इस तथ्य को नहीं समझता) और माया के निमित्त रोता है । (प्राणी को अपना) भला—बुरा कुछ नहीं सूझ पड़ता, (वह) इस (अमूल्य मानव) तन को यों ही नष्ट कर देता है । (इस बात को भलीभाँति समझ लो कि) यहाँ (इस संसार में) (जो कोई भी) आया है, सब किसी को जाना होगा, (फिर) अहंकार करना झूठा है । नानक कहते हैं कि हे बाबा, रोना तब सार्थक समझना चाहिए, जब प्रियतम (परमात्मा) के लिए रोना हो ॥४॥१॥

[२]

आबहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां ।
 रोवह बिरहा तनका आपणा साहिबु संग्हालेहां ॥
 साहिबु संग्हालिह पथु निहालिह असा भि ओये जाणा ।
 जिस का कीआ तिन हो लीआ होआ तिसै का भाणा ॥
 जो तिनि करि पाइआ सु आगै आइआ असी कि हुकमु करेहा ।
 आबहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां ॥ १ ॥
 मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे मरि जाएँ ऐसा कोइ ।
 सेविहु साहिबु सन्नथु आपणा पंथु सुहेला आगै होइ ॥
 पंथि सुहेले जावहु तां फलु पावहु आगै मिले बडाई ।
 भेटे सिउ जावहु सचि समावहु तां पति लेखै पाई ॥
 महली जाउ पावहु खसमे भावहु रंग सिउ रलीआ मारै ।
 मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे कोई मरि जाएँ ॥ २ ॥
 मरणु मुरसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो ।
 सूरै सेई आगै आखीअहि दरगह पावहि साबी मारणो ॥
 दरगह मारणु पावहि पति सिउ जावहि आगै डूलु न लागै ।
 करि एकु धियावहि तां फलु पावहि जितु सेविऐ भउ भागै ॥
 ऊचा नही कहणा मन महि रहणा आपे जायँ जाणो ।
 मरणु मुरसा सूरिआ हकु है जो होइ मरहि परवाणो ॥ ३ ॥
 नानक किसनो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो ।
 कीता वेखै माहिनु आपणा कुदरति करे बीचारो ॥
 कुदरति बीचारे पारण घारे जिनि कीआ सो जाएँ ।
 आपे वेखै आपे बूझै आपे हुकमु पछाणै ॥
 जिनि किछु कीआ सोई जाएँ ताका रूपु अपारो ।
 नानक किसनो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो ॥ ४ ॥ २ ॥

हे सहेलियों, आओ, मिलो और (परमात्मा के) सच्चे नाम को लो । (यदि तुम्हें
 रोना हो है), तो (अपने) तन के वियोग के लिए रोओ (तात्पर्य यह कि परमात्मा से जो
 हम लोगो का वियोग हुआ है, उसके लिए रोओ) और अपने साहब को याद करो । साहब
 (परमात्मा) का स्मरण करो और उम मार्ग की प्रतीक्षा करो (कि जिस मार्ग से और लोग गए
 हैं, उसी मार्ग से और) वही हमें भी जाना है । (यह समझो कि) जिस (प्रभु ने यह शरीर)
 रचा है, उसी ने (उसे) ले भी लिया और उसका हुक्म (पूरा) हो गया । जो (कुछ) उस
 (हरी) ने कर दिया, वही हमारे सामने आया; (अब) हम क्या हुक्म कर सकते हैं ? (हम
 कुछ नहीं कर सकते, विवश है) । हे सहेलियों, आओ, मिलो और (परमात्मा के) सच्चे नाम
 को लो ॥१॥

हे लोगो, मरने को बुरा मत कहो; यदि कोई ऐसा (निम्नलिखित ढंग का) मरना
 जानता है, (तो मरना बुरा नहीं है) । अपने समर्थ (सर्वशक्तिमान्) साहब (परमात्मा) की

सेवा करो, जिससे आगे मार्ग का (परलोक) सुहावना हो जायगा । यदि इस सुहावने मार्ग से जाओगे, तो (समस्त) फलो को पाओगे और आगे (परमात्मा के दरबार में) प्रतिष्ठा प्राप्त होगी । (यदि तुम सेवा और प्रेम की) भेंट लेकर (उस परमात्मा के दरबार में) जाओगे तो तुम सत्य में समा जाओगे और तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी । (परमात्मा के) महल में जाकर स्थान प्राप्त कर लोगे, खसम को अच्छे लगोगे और आनन्द से खुशियाँ मानोगे ।, अतः हे लोगे, जो कोई (वास्तविक) मरना जानता है, उस मरने को बुरा नहीं कहना चाहिए ॥२॥

उन्हीं शूरवीर पुरुषों का मरना सत्य (सफल) है, जो प्रामाणिक हो कर मरते हैं । आगे (परलोक में) भी (वे लोग) शूरवीर कहे जायेंगे और (परमात्मा के) दरबार में सच्चा मान पायेंगे । (ऐसे शूरवीर) (परमात्मा के) दरबार में मान पायेंगे और प्रतिष्ठा के साथ (यहाँ से) जायेंगे; (उन्हें) आगे (परलोक में भी) (किसी प्रकार का) दुःख नहीं होगा ।

(हरी को) एक समझ कर ध्यान किया जाय, तभी फल की प्राप्ति होती है, (उस हरी के) स्मरण करने से (सारे) भय भग जाते हैं । (अपने को) ऊँचा नहीं कहना चाहिए, (अपने) मन को काबू में रखना चाहिए । जाननेवाला (प्रभु) स्वयं ही सब कुछ जानता है । (उन्हीं) शूरवीर पुरुषों का मरना सत्य (सफल) है, (जो) प्रामाणिक होकर मरते हैं ॥ ३ ॥

नानक कहते हैं कि हे बाबा, किसके निमित्त रोया जाय ? यह संसार खेल है । साहब (प्रभु) (अपने द्वारा) रची हुई (वस्तुओं को) देखना रहता है, (वह अपनी) कुदरत (माया, शक्ति, प्रकृति) का स्वयं ही विचार करता है । (प्रभु स्वयं ही अपनी) कुदरत का विचार करता है, (वही) सब का निर्माण करता है और सब को धारण करता है, जिसने इस समस्त जगत् को रचा है, वही इसे जानता है, (इसका कौन जान सकता है) ? (प्रभु) आप ही देखता है, आप ही समझता है और आप ही (अपने) ह्रस्व को पहचानता है । जिस (प्रभु) ने (यह सब) कुछ रचा है, वही (इसे) जान सकता है, उसका रूप अपार है । नानक कहते हैं कि हे बाबा किसके निमित्त रोया जाय ? यह संसार खेल है ॥४॥२॥

[३]

दखणी

सनु सिरंदा सचा जाणीऐ सचड़ा परबदगारो ।
जिनि आपोनै आपु साजिआ सचड़ा अलख अपारो ॥
बुइ पुड़ जोड़ि बिछोड़िअनु गुर बिनु घोर अंधारो ।
सूरजु चडु सिरजिअनु अहिनिनि चलतु वोचारो ॥ १ ॥

सचड़ा साहिवु सनु तू सचड़ा देहि पिआरो ॥रहाउ॥

गुघु सिरजी मेदनी दुलु सुलु बेवणहारो ।
नारो पुरख सिरजिऐ बिलु माइआ मोहु पिआरो ॥
खाणी बाणी तेरीआ देहि जोआ आधारो ।
कुदरति तखतु रचाइआ सचि निबेइणहारो ॥ २ ॥

आबागवगु सिरजिआ तू थिरु करलैहारो ।
 जंमगु मरणा आइ गइआ बधिकु जीउ बिकारो ॥
 भूडडै नामु विसारिआ बूडडै किआ तिसु चारो ।
 गुण छोडि बिलु लविआ भवगुण का वरणजारो ॥ ३ ॥
 सडै आए तिना जानीआ हुकाम सचे करतारो ।
 नारी पुरख बिछु*निआ बिछुडिआ मेलणहारो ॥
 रूपु न जाणै सोहणीऐ हुकमि बधी सिरिकारो ।
 बालक बिरधि न जाणनी तोड़नि हेतु पिआरो ॥ ४ ॥
 नउ दर ठाके हुकमि सचै हंसु गइआ गैणारे ।
 सा धन छुटी मुठी भूठि बिधलीआ मिरतकड़ा अंडनड़े बारे ।
 सुरति मुई मरु भाईऐ महल रुंनो दरबारे ।
 रोवहु कंत महेलीहो सचे के गुण सारे ॥ ५ ॥
 जलि मलि जानी नबालिआ रुपडि पटि अंबारे ।
 बाजे बजे सची बालीआ पच मुए मनु मारे ॥
 जानी बिछु नड़े मेरा मरगु भइआ धुगु जीवगु संसारे ।
 जीवतु मरै सु जाणीऐ पिर सचडै हेति पिआरे ॥ ६ ॥
 तुसी रोवहु रोवण आईहो भूठि मुठी संसारे ।
 हउ मुठडी धये धावलीआ पिरि छोडिअडी बिधणकारे ॥
 धरि धरि कंतु महेलीआ रुडै हेति पिआरे ।
 मे पिरु सचु सालाहण हउ रहसिअड़ी नामि भतारे ॥ ७ ॥
 गुरि मिलिए वेसु पलटिआ साधन सनु सोगारो ।
 आबहु मिलहु सहेलीहो सिमरहु सिरजणहारो ॥
 बईअरि नामि सोहागणी सनु सवारणहारो ।
 गावहु गोतु न बिरहडा नानक ग्रहम बोचारो ॥ ८ ॥ ३ ॥

(सृष्टि का) रचयिता सच्चा है । (उसे) सच्चा समझना चाहिए; वही सच्चा परवरदिगार (पालनकर्ता) है जिनमें अपने आप अपने को रचा है, (जो स्वयंभू है), (वही प्रभु) सच्चा, अलख और अपार है । (हरी ने) दोनों पाटे—(तात्पर्य यह कि पृथ्वी और आकाश बना कर) जोड़ दिया है—(इसी से सारे जगत् की रचना हुई है) और फिर (जीवों को तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को) पृथक् पृथक् कर दिया है । गुरु के बिना घनघोर अन्धकार रहता है, (परमात्मा की समझ नहीं आती) । (उसी प्रभु ने) सूर्य और चन्द्रमा रचे हैं; (वह) अर्हनिश (सूर्य और चन्द्रमा की) चाल को विचारता है, (निगरानी करता है, निरीक्षण करता है) ॥१॥

सच्चे साहब तू ही (एक) सच्चा है, (तू) अपना सच्चा प्यार दे ॥रहाउ॥

(हे हरी) तू ने ही (सारी) मेदिनी (सृष्टि) बनाई है, (तू ही) दुःख-सुख का देनेवाला है । (तूने ही) स्त्री-पुरुष बनाए हैं, माया के विष तथा मोह के प्रति प्यार (आकर्षण)

(का भी निर्माण तू ने हो किया है) । तू ने ही (जीवों की) चार खानियाँ (अण्डज, जेरज, स्वेदज तथा उद्भिज) (और उनकी पृथक्-पृथक्) बोलियाँ (बनाई हैं) (और सारे) जीवों को आधार भी (तू ही) देता है । (हरी ने) कुदरत को (अपने बैठने का) तख्त बनाया है और उसी पर बैठ कर सच्चे व्याप्य से फैसला करता है, (भावार्थ यह कि परमात्मा कुदरत में निवास करता है । कुदरत के भीतर ही भले-बुरे का निर्णय होता रहता है और साथ ही साथ सजा या सहायता मिलती रहती है) ॥२॥

(हे प्रभु, तू ही ने) आवागमन की रचना की है (और अपनी कृपा से) उन्हें स्थिर करनेवाला भी तू ही है (भावार्थ यह कि जन्म-मरण को काट कर निश्चल कर देनेवाला तू ही है) । जन्मने-मरने से (निरन्तर) आना-जाना होता रहता है । (यह जीव) विकारों के कारण बद्ध हो गया है, (बन्दी हो गया है) । इस भोड़े (जीव) ने नाम भुला दिया है । इस हूबे हुए का बश ही क्या है, (चारा ही क्या है) ? उसने गुणों को छोड़ कर (माया के) विष का ही (बोझ) लादा है, (इस प्रकार) अक्वगुण का ही व्यापारी बना हुआ है ॥३॥

जो (गुरु का) उपदेश (लेकर) आए हैं, वे (परमात्मा के अत्यन्त) प्यारे हैं (और वे) सच्चे कर्तार के हुक्म में (रत हैं) । (प्रभु ने ही) नारी (जीवात्मा) और पुरुष (परमात्मा) का वियोग कराया है, (और वही) फिर बिछुड़े हुआ को मिला सकता है । (यमदूतों के) सिर पर तो हुक्म का कार्य है, अतएव वे रूप नहीं पहचानते कि सुन्दर है (कि नहीं) । (भावार्थ यह है कि उन्हें तो जो हुक्म होता है, वही करना होता है । वे यह नहीं देखते कि अमुक व्यक्ति सुन्दर है, उसे न मारा जाय) । (यमदूत) बालक और वृद्ध (का भेद भी) नहीं जानते । (वे) मुहुदों का प्रेम तांड देते हैं ॥४॥

सच्चे (परमात्मा) के हुक्म से (शरीर के) ना दरवाजे (दो कान, दो नाक, दो आँखें, एक मुख, तथा लिंग और गुदा के द्वार) बन्द हो गए और इस (जीवात्मा) आकाश (परलोक) में चला गया । स्त्री (पति से) छूट गयी है (यह) झूठ से उगी जाकर विधवा हो गई है (और) मुर्दा (उसके हृदय रूपी) आग्न में पड़ा हुआ है । हे माँ, (उसके) मरने से (उसकी) बुद्धि भी मारी गयी, (अब वह स्त्री) (परमात्मा के) महल और दरबार में रो रही है । पति (परमेश्वर) की स्त्रियो, यदि (तुम्ह) रोना ही है तो सच्चे (परमात्मा) के गुणों को स्मरण करके प्रेम से रोओ ॥५॥

फिर प्राणी (जानी) को मल-मल कर स्नान कराया जाता है (और शव को) बहुत से रेशमों वस्त्रों में लपेटते हैं, (तदन्तर) (अनेक) बाजे बजाए जाते हैं (और) सत्य वाणी उच्चरित की जाती है, (“राम नाम सत्य है” आदि वाक्य कहे जाते हैं) और सम्बन्धी (माता, पिता, भ्राता, स्त्री तथा पुत्र) मन मार के (शोक में) मृतक के समान हो जाते हैं । (पति के देहान्त के पश्चात् स्त्री कहती है कि) “प्रियतम के बिछुड़ने से मेरा ही मरण हो गया । मेरा जीवन संसार में व्यर्थ है ।” सच्चा मरना तो तब सम्भूत चाहिए, जब सच्चे पति के प्रेम में जीवित भाव से मरा जाय ॥६॥

(ऐं रोने के निमित्त) आई हुई (स्त्रियो), तुम (सब) रोओ; (तुम सब) संसार के झूठे (मायिक प्रपंचों) में उगी गई हो । मैं (भी) उगी हुई हूँ, (सासारिक) धंधों में

भटकती हैं; (मैं) पति द्वारा छोड़ी गयी हूँ, (पति-परित्यक्ता हूँ) और पति-रहित (दुहागिनियों का-सा) कार्य (कर रही हूँ) । घर-धर में पति का (निवास है); (किन्तु उसकी वास्तविक) स्त्रियाँ (वे ही) हैं, (जो अपने) सुन्दर (पति) से प्यार (करती है) । मैंने भी (जब) सच्चे पति (हरी) की स्तुति की, तो अपने भर्त्ता (परमात्मा) के नाम से हर्षित हुई—
आनन्दित हुई ॥७॥

गुरु के मिलने से बेश पलट गया (तात्पर्य यह कि स्वभाव परिवर्तित हो गया) और स्त्री (जीवात्मा) का सच्चा भ्रूङ्गार (बन गया) । (श्री) सहेलियो, आओ मिलकर (सच्चे) सिरजनहार का स्मरण करो । स्त्री सच्चे सँवारनेवाले (बनानेवाले, परमात्मा के) नाम से सुहागिनी होती है । नानक कहते हैं कि (हे सखियो), वियोग के गीत मत गाओ, (बल्कि) ब्रह्म का विचार करो ॥८॥३॥

[४]

जिन जगु सिरजि समाइआ सो साहिबु कुदरति जाणोवा ।
सचड़ा दूरि न भालोए घटि घटि सबदु पछाणोवा ॥
सबु सबदु पछाणहु दूरि न जाणहु जिन एह रचना राची ।
नामु धिआए ता सुलु पाए बिनु नावै पिड़ काची ।
जिन ध्यापी बिधि जाणै सोई किआ को कहै बलाणो ।
जिन जगु यापि बताइआ जालो सो साहिबु परबानो ॥ १ ॥
बाबा आइआ है उठि चलणा अथपंथै है ससारोवा ॥
सिरि सिरि सचड़ै लिखिआ दुलु सुलु पुरबि बीचारोवा ॥
दुलु सुलु दीआ जेहा कीआ सो निबहै जीअ नाले ।
जेहे करम कराए करता दूजी कार न भाले ॥
आपि निरालसु धंधे बाधो करि हुकमु छडावणहारा ।
अजु कलि करदिआ कालु बिआपे दूजै भाइ विकारो ॥ २ ॥
जम मारग पंथु न सुभई उभड़ु अंघ गुबारोवा ।
ना जलु लेफ तुलाईआ ना भोजन परकारोवा ॥
भोजन भाउ न ठंडा पाणो ना कापड़ु सींगारो ।
गलि संगलु सिरि मारे ऊभौ ना दीसै घर बारो ॥
इबके राहे जंमनि नाही पछुतारो सिरि भारो ।
बिनु साचे को बेली नाही साचा एहु बीचारो ॥ ३ ॥
बाबा रोवहि रबहि सुजाणीअहि मिलि रोवै गुण सारोवा ।
रोवै माइआ सुठड़ी धंधड़ा रोवणहारेवा ।
धंधा रोवै मैलु न धोवै सुपनंतरु संसारो ॥
जिउ बाजोगरु भरसै भूलै भूठि मुठी अहंकारो ।
आपे मारगि पावणहारा आपे करम कमाए ॥
नामि रते गुरि पूरै राखे नानक सहजि सुभाए ॥ ४ ॥ ४ ॥

जो (प्रभु) जगत् को रचकर (उसमें) व्याप्त है, (अथवा जो प्रभु जगत् को रच कर (फिर उसे अपने में) समाहित कर लेता है), उस साहब (परमात्मा) को कुदरत (के माध्यम से) जानो । (उस) सच्चे हरी को दूर मत खोजने जाओ, (बल्कि गुरु के) शब्द द्वारा (उसे) धट-धट में पहचानने (की चेष्टा करो) । सत्यस्वरूप (परमात्मा को गुरु के) शब्द द्वारा पहचानो; (उस प्रभु को) दूर न समझो, जिसने यह (समस्त) रचना रची है । नाम की आराधना से ही सुख की प्राप्ति होती है, बिना नाम के (मनुष्य-जीवन की) बाजी कच्ची रहती है । जिस (हरी) ने (मृष्टि) स्थापित की है, (रची है), (वही इसकी) विधि जानता है, और कोई क्या वर्णन कर सकता है ? जिम (स्वामी) ने जगत् को स्थापित करके, (उसके ऊपर मोह रूपी) जाल बिछा दिया है, उसे मानिक करके समझो (प्रामाणिक मानो) ॥१॥

(हे) बाबा, (जो भी) (इस संसार में) आया है, (उसे यहाँ से) उठ कर चला जाना है, यह ससार तो अधूरा ही रास्ता है, (पूरी मजिल नहीं है) । (अतएव यहाँ डेरा नहीं जमाना है, आगे चलना है) । सत्य पुरुष के पूर्व (कर्मां) ने विचारानुसार (प्रत्येक प्राणी के) भाल में सुख-दुःख लिख दिया है । (अतएव जाव ने) जैसा किया है, (उसी के अनुसार परमात्मा ने उसके भाग्य में) सुख-दुःख दे दिया है, और यह जीव के साथ तक निबहेगा । (तात्पर्य यह कि जीव के अन्त समय तक सुख-दुःख बने रहेंगे) । कर्त्ता पुरुष जो कर्म करायें, (उसी को करना चाहिए), (अन्य) दूसरे कार्यों को नहीं खोजना चाहिए । (प्रभु) आप तो निर्लेप है, (किन्तु मारे जगत् को माया के) धंधों (प्रपंचों) में बाँध रक्खा है, वह आप ही हुक्म करके (जीवों को माया के बंधनों में) घुंटाता है । द्वैत भाव में लग कर (जीव)-विकार करता है (और कहता है कि कल मे नाम जपूंगा, इस प्रकार आजकल करते हुए काल आ घमकता है (व्याप्त हो जाता है) ॥२॥

यमराज का मार्ग उजाड़ और धनधोर अथकारमय है, (अतः) मुझाई नहीं पड़ता । (उस मार्ग में) न रजाई है, न तोशक और न विविध प्रकार के भोजन हो हैं, न (कोई आदर) भाव करता है, न भोजन है, न ठंडा पानी है, न कपड़ों आदि का शृङ्गार ही है । (यम का मार्ग तब करते समय) गले में जंजीर पड़ी रहती है और ऊपर स सिर पर मार पड़ती है, घर-बार (कुछ भी) दिखाई नहीं पड़ता । उस समय (मरने के पदवात्) के बोए हुए बीज नहीं जागते (तात्पर्य यह कि उस समय के किए हुए सब काम में नहीं आते), और सिर के ऊपर पापों का भार (लाद कर जीव अत्यधिक) पछताता है । बिना सच्चे (परमात्मा) के, (उस समय) कोई भी मित्र (सहायक) नहीं होता, यही विचार सच्चा है ॥ ३ ॥

हे बाबा, (ठीक-ठीक) रोना-बीखना वे ही जानते हैं, (जो गुरु से) मिल कर (हरी के) गुण स्मरण कर कर के रोते हैं । (जो मृष्टि) माया की मोहो हुई होती है, (वह) (जगत् के) धंधों के लिए रोती है । (इस प्रकार सारा जगत् मायिक) प्रपंचों के लिए रोता है । (और अपनी आन्तरिक) मेल नहीं घोटा है; (यह) ससार स्वप्न के अंतर्गत का स्वप्न है, (नितान्त मिथ्या है) । जिस प्रकार बाजीगर (अपने खेल में) भटकता और भूलता है, (उसी प्रकार (दुनिया) भूट और अहंकार में ठगी गयी है । (मनुष्य) स्वयं मार्ग प्राप्त करने वाला है और स्वयं ही कर्म करता है । हे नानक, जो नाम में अनुरक्त हैं, पूर्ण गुरु उनकी रक्षा करता है (और वे स्वाभाविक ही सहजावस्था में निमग्न हो जाते हैं) ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

बाबा आइया है उठि चलएा इहु जगु भूठु पमारोवा ।
 सच्चा धरु सचई सेवीए सच्चु खरा सचिआरोवा ॥
 कूड़ि लबि जां थाइ न पासी अगै लहै न ठाओ ।
 अंतरि आउ न बैसहु कहीए जिउ सुअं घरि काओ ॥
 जंमए मरएा वडा वेछोड़ा बिनसै जगु सबाए ।
 लबि धंधै माइया जगनु भुलाइया कालु खड़ा लूपाए ॥१॥
 बाबा आबहु भाईहो गलि मिलह मिलि मिलि देह आसीसा हे ।
 बाबा सचड़ा मेलु न चुकई प्रीतम कीया बेह आसीसा हे ॥
 आसीसा देवहो भगति करेवहो मिलिया का किया मेलो ।
 इकि भूले नाबहु थेहहु थहहु गुरसबदी सच्चु खेलो ॥
 जम भारगि नहो जाणा सबदि समाणा जुगि जुगि साचै बेसे ।
 साजएा सैण मिलहु संजोगी गुर मिलि खोले फासे ॥२॥
 बाबा नांगड़ा आइया जग महि दुखु सुखु लेखु लिखाइया ।
 लिखिअड़ा साहा ना टलै जेहड़ा पुरबि कमाइया ॥
 बहि साचै लिखिया अंमृत बिखिया जितु लाइया तितु लागे ।
 कामलिआरी कामए पाए बहुरंगी गलि लागे ।
 होछी मति भइया मनु होछा गुटु सा मखी खाइया ।
 नामरजादु आइया कलि भीतरि नांगो बंधि चलाइया ॥ ३ ॥
 बाबा रोवहु जे किस रोवणा जानीअड़ा बधि पठाइया है ।
 लिखिअड़ा लेखु न मेटीएे दरि हाकारड़ा आइया है ॥
 हाकारा आइया जा तिसु भाइया रूने रोवणहारे ।
 पुत भाई भातीजे रोवहि प्रीतम अति पिआरे ।
 भै रोवै गुण सारि समाले को मरै न मुइया नाले ।
 नानक जुगि जुगि जाए सिजाणा रोवहि सच्चु समाले ॥ ४ ॥ ५ ॥

हे बाबा, (जो भी व्यक्ति इस संसार में) आया है, उसे (यहाँ से) उठ कर चला जाना है; यह जगत् भूटा प्रसार है । सच्चा घर तो सच्चे (परमात्मा) की आराधना से मिलता है, अत्यधिक सत्यवादी (होने से ही सच्चा घर) प्राप्त होता है) । भूट और लोभ से (मनुष्य) स्थान नहीं पा सकेगा, और आगे (परलोक में भी उगे) ठिकाना नहीं मिलेगा । (ऐसे व्यक्तियों को कोई भी यह) नहीं कहेगा कि “भीतर आओ और बैठो” । (उनकी दशा ठीक उसी प्रकार की होती है), जिस प्रकार सूने घर में कीबे (की होती है) । [जैसे कीबा सूने घर में आकर बैठता है और चला जाता है, उसी प्रकार वे मनुष्य भी हरी के दरबार में खाली ही रहेंगे] । जन्मना-मरना बड़ा वियोग है सारा जगत् (इसी में) नष्ट हो रहा है । माया के बंधे और लोभ में सारा संसार भूला हुआ है और काल खड़ा-खड़ा सबको रुलाता है ॥ १ ॥

हे बाबा, आओ, (सभी) भाइयों से गले मिलो (और गले) मिल-मिल कर एक दूसरे को आशीर्वाद दो । हे बाबा, (परस्पर यही) आशीर्वाद दो कि प्रियतम (परमात्मा) का सत्य

मिलाप कभी न समाप्त हो (यह मिलाप शाश्वत और अखण्ड हो) । यहाँ आशीर्वाद दो कि भक्ति करो, (किन्तु जो व्यक्ति परमात्मा से) आगे से ही मिले हुए हैं, (उन्हें आशीर्वाद देकर) मिलाने की क्या आवश्यकता है ? (अरे, आशीर्वाद देकर मिलाप कराना ही हो, तो उन्हें आशीर्वाद दो) जो नाम (और सत्संग रूपी) ठीर-ठिकाने से भूने हुए हैं; (उनसे यह कहो कि) गुरु के उपदेश द्वारा सच्ची खेल खेले । (उनसे यह बतलाओ कि) यम के मार्ग में न जाओ, उस शब्द रूपी हरी में समाए रहो जिसका युग-युगान्तरो में सच्चा वेश है । (उन) सज्जन-साधियों से बड़े संयोग से मेल होता है, जिन्होंने गुरु से मिलकर माया के बंधनों को खोल दिया है ॥ २ ॥

हे बाबा, (परमात्मा के यहाँ से) दुःख-मुख (भोगने का) लेखा (हिसाब) लिखाकर (इस संसार में मनुष्य) नंगा ही आया है । जो कुछ पूर्व जन्मों के कर्मानुसार (दुःख-मुख भोगने को) लिख दिया गया है, वह मुहूर्त—समय [साहा—व्याह का मुहूर्त] नहीं बदलता है । (सच्चे हरी ने) अमृत और विष (सुख तथा दुःख भोगने को) लिख दिया है, जिधर (उस प्रभु ने मनुष्य को) लगाया है, उधर (वह) लगा है । (माया रूपी) जादूगरनी ने जादू डाल दिया है और गले में अनेक रंगवाले धागे को बांध दिया है । [आश्चर्य यह है कि माया ने अनेक आकर्षणों में बांध छोड़ा है—(जादूगर टोने के निमित्त अनेक रंग-विरंगे धागे बांधा करते हैं)] । ओछी (नीच, तुच्छ बुद्धि के (संसर्ग से) मन भी ओछा हो गया, (जिससे) वह गुड़ को मक्खी समेत निगल गया है । जीव कलियुग (समार) में बेमरजाद (नगा) ही आया, और नंगा ही बाँध कर यहाँ से चना दिया गया । (आगतोर ग लोग समार में नये नहीं रहते, इसलिए नंगा होना मर्यादा से विहीन है) ॥ ३ ॥

हे बाबा, यदि और किसी के निमित्त रोना हो, तो रोओ—(जीव तो यहाँ है नहीं, वह तो इस शरीर से निकल गया है) प्यारे जीव को तो बाँध कर (अन्यत्र) भेज दिया गया है । जो कुछ (पहले से) लिखा हुआ है, वह नहीं मिटता, (परमात्मा के) दरवाजे से बुलावा आ गया है । यदि उस (हरी को), अच्छा लगा, तो बुलावा आ गया, (अब) रोनेवाले रोवे । पुत्र, भाई, भतीजे तथा अन्य अत्यधिक स्नेही जन रोते हैं । मरे हुए के साथ कोई भी नहीं मरता है, (सब रो रोकर चुप हो जाते हैं), पर जो परमेश्वर को डर कर तथा उसके गुणों की याद करके रोता है, (वह बहुत ही अच्छा है) । हे नानक, (जो व्यक्ति) सच्चे नाम को संभाल कर (याद कर) रोते हैं, वे युग-युगान्तरो तक चतुर समझे जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ वडहंस की वार, महला १

ललां बहलीमा की धुनि गावणी

सलोकु : जालउ ऐसी रीति जितु मे पिआरा बीसरे ।

नानक साईं भली परोति जितु साहिब सेती पति रहै ॥१॥

विशेष :—ललां और बहलीमा कांगड़े प्रान्त के राजपूत जमीन्दार थे । एक बार ललां के प्रान्त में दुर्भिक्ष पड़ गया । उसने बहलीमा से फसल का छटा भाग देना स्वीकार करके,

उसके (बहिलीमा के) पहाड़ी नाने का पानी लिया । किन्तु फलन हो जाने के अनन्तर, लला ने छठा भाग देने से इंकार कर दिया । इस कारण दोनों में लड़ाई छिड़ गई । लड़ाई में बहिलीमा की विजय हुई । इस लड़ाई का वर्णन भाटो ने 'वार' में किया, जिसका उदाहरण निम्न-लिखित है —

“काल लला दे देस दा खोइया बहिलीमा ।

हिस्सा छठा मनाइके जल नहरो दीमा ॥”

सद्गुरु का निर्देश है कि नानक के निम्नलिखित पदों को उद्धृत धुन में गाय जाय ।

सलोकु : मैं उस रीति को जला दूँ, जिसमें मेरा प्रियतम (प्रभु) मुझमें विस्मृत हो । (अर्थात् मैं उस प्रकार की क्रियाओं को करने के लिए त्रिकुण भी तैयार नहीं हूँ, जिसमें मेरे प्रियतम के भूलने का अंश हो) । हे नानक, वही प्रीति भनी है, जिसमें साहब के साथ प्रतिष्ठा बनी रहे ॥ १ ॥

पउड़ी : हरि इको दाता सेबीऐ हरि इकु धिमाईऐ ।

हरि इको दाता मंगीऐ मन बिदिआ पाईऐ ॥

जे दूजे पासहु मंगीऐ ता लाज मराईऐ ।

जिनि सेविआ तिनि फल पाइआ तिसु जन की सभ भुख गवाईऐ ॥

नानकु तिन बिटहु बारिआ जिन अनदिनु हिरदै हरि नामु धिमाईऐ ॥१॥

पउड़ी : एक ही दाता हरी की सेवा करनी चाहिए, एक हरी का ही ध्यान करना चाहिए । एक दाता हरी में ही माँगना चाहिए, (उसमें) माँगने में मनोराजित (फल) की प्राप्ति हो जाती है । यदि दूसरे में माँगना हो, तो लज्जा में मर जाना चाहिए । जिस (मनुष्य) ने हरी की आराधना की है, उसने (समस्त) फल पा लिया है, उस व्यक्ति की सारी भूख (तृष्णा) दूर हो गयी है । हे नानक, मैं उनके ऊपर न्योछावर हूँ, जो निरन्तर (अने) हृदय में हरि के नाम का ध्यान करने हैं ॥ १ ॥

सलोकु : घर ही मुंघि बिदेसि पिरु नित भूरे संहाले ।

मिलविआ डिल न होवई जे नोअति रासि करे ॥२॥

नानक गाली कूड़ीआ बाभु परीति करेइ ।

तिब्ररु जाऐ भला करि जिचह लेवै देइ ॥३॥

सलोकु : (जीव हरी) स्त्री के घर में ही पति है, पर (वह उसे) विदेश में सम्भरकर दुःखी होती है (और उसकी) नित्य याद करनी है । यदि (जीवहरी स्त्री) अपनी नीयत साफ कर ले, तो (पति परमात्मा में) मिलने में (तनिक-भी) देर नहीं लगती ॥ २ ॥

हे नानक, (परमात्मा में) प्रेम किए बिना अन्य बातें भूझी है । (मनुष्य स्वार्थी है) ; वह तभी तक (किसी को) भला करके मानता है, जब तक उसे कुछ मिलता-जुलता रहे (तत्पर्य यह कि वह भगवान् से निष्काम प्रेम नहीं करता, अतः उसके सारे कर्म निष्फल हैं) ॥ ३ ॥

पउड़ी : जिनि उपाए जोअ तिनि हरि राखिआ ।

अंशुत सचा नाउ भोजनु चाखिआ ॥

तिपति रहे घाघाह मिटि भभालिघा ।

सभ अंदरि इकु बरतै किनै विरलै साखिघा ॥

अन नानक भए निहालु प्रभ की पाखिघा ॥२॥

पड़्यो : जिस (हरी) ने जीवों को उत्पत्ति की है, उसी ने उनको रक्षा भी की है ।
 (जो जीव) (परमात्मा के) सच्चे नाम रूपी भोजन को करते हैं, (वे इससे) अघा कर तृप्त
 हो जाते हैं, (और उनकी धन्य) भूल मिट जाती है । सभी (जड़-चेतन) के अंतर्गत एक
 (परमात्मा) ही बरत रहा है, (व्याप्त है); (किन्तु इस तथ्य को) कोई विरला ही समझ
 पाता है । हे नानक, (ऐसा) भक्त प्रभु की शरण में जाकर निहान (धन्य) हो जाता है ॥ २ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु सोरठि, महला १, धरु १, चउपदे

सबद

[१]

सभना मरणा आइआ वेछोड़ा सभनाह ।
पुछहु जाइ सिआणिआ आगे मिलणु किनाह ॥
जिन मेरा साहिबु बीसरै बडड़ी वेदन तिनाह ॥ १ ॥
भो सालाहिहु साचा सोइ । जाकी नदरि सदा सुखु होइ ॥ रहाउ ॥
बडा करि सालाहणा है भो होसो सोइ ।
सभना दाता एकु तू माएस दाति न होइ ॥
जो तिसु भावै सो थोए रंन कि रुंनै होइ ॥ २ ॥
धरती उपरि कोट गड़ केतो गई बजाइ ।
जो असमानि न मावनी तिन नकि नया पाइ ॥
जे मन जाणहि मूलोआ काहे मिठा खाहि ॥ ३ ॥
नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ।
जे गुण होनि त कटीअनि से भाई से बीर ॥
अगे गए न मंनोअनि मारि कढ़हु बेपीर ॥ ४ ॥ १ ॥

सभी का मरना आवश्यक है और सब का वियोग भी (अवश्यम्भावी) है । किसी चतुर (सयाने) के पास जाकर पूछो कि (मर कर) किसी को (हरी का) मिलाप परलोक में होगा ? जिन्होंने मेरे साहब को भुना दिया है, उन्हें बड़ी वेदना होगी (तात्पर्य यह कि उन्हें अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे) ॥१॥

उस सच्चे (परमात्मा) को फिर, (पुनः—बारबार) स्तुति करो, जिसकी कृपादृष्टि से सदैव सुख प्राप्त होता है ॥ रहाउ ॥

महान् (समझ) कर, (उसकी) स्तुति करो, (वही प्रभु) (वर्तमान में) है, (भूत में) था (और भविष्य में) रहेगा । (हे प्रभु), एक तू ही सब का दाता है, मनुष्य के (दिए हुए) दान तो नहीं सकते । जो (उस प्रभु को) भाना है वही होना है; त्रियों की भाँति रोने से क्या होता है ? ॥२॥

धरती के ऊपर कोट (दुर्ग) और गढ़ बनाकर, किनने ही (लोग) (नीबत) बजा गए, (तात्पर्य यह कि राज्य कर गए) । जो (लोग ग्रहकार से) आकाश में भी नहीं समाते थे, उनको नाक में (गुलामो की भाँति) नाथ डाल दी गई । हे मन, यदि (तू) (विषयो को) शूली की भाँति जानता, तो (उन्हें) मीठे (की भाँति) क्यों खाता ? ॥३॥

हे नानक, (जिस मनुष्य में) जितने अवगुण होते हैं, (उसके गले में उतनी ही जंजीरे (पड़ेगी) । यदि गुण हों, (तभी ये जंजीरे) कटेगी, गुण ही हमारे भाई और मित्र है । (जिन-के गुरु नहीं हैं, मरणोपरान्त) आगे (परलोक में) वे माने नहीं जायेंगे, (स्वीकार नहीं किए जायेंगे) और बेपौर (निष्ठुरा) कह कर (परमात्मा के दरबार से वे) निकाल दिए जायेंगे ॥४॥१॥

[२]

मनु हाली किरसाणो करणी सरमु पाणो तनु खेतु ।
नामु बीसु संतोखु सुहागा रखु गरीबी खेतु ॥
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ बेलु ॥ १ ॥
बाबा माइया साथि न होइ ।
इनि माइया जगु मोहिआ बिरला बूझ कोइ ॥ रहाउ ॥
हाणु हटु करि आरजा सनुनामु करि वषु ।
सुरति सोच करि भाइसाल तिसु बिचि तिसनो रखु ॥
बलजारिआ मिउ बलजु करि ले लाहा मन हसु ॥ २ ॥
सुणि सासत सउवागरी सतु छोड़े ले चलु ।
खरजु बंनु चांगिआईआ मनु मन जाणहि कसु ॥
निरंकार के देसि जाहि ता सुखि लहहि महलु ॥ ३ ॥
साइ चितु करि चाकरी भंनि नामु करि कंसु ।
बंनु बदीआ करि धावणी ताको आखे धंनु ॥
नानक बेलै नदरि करि चड़े चवण बंनु ॥ ४ ॥ २ ॥

मन को हलवाहा, (शुभ) करनी को कृषि (खेती का व्यवसाय), लज्जा अथवा श्रम को पानी तथा शरीर को खेत बनाओ; नाम को बीज तथा संतोष को अपना भाग्य (बनाओ) । (सब कुछ करने के पश्चात् कृषि की फल-प्राप्ति के लिए भाग्य का अवलम्बन लेना पड़ता है, क्योंकि कृषि में ईति, भीति आदि आशंकाएँ बनी रहनी हैं) । नम्रता (गरीबी वेश) को ही रक्षा करनेवाली (वाड) बना । भावपूर्ण कार्य करने से (यह बीज) जमेगा, (जो लोग इस प्रकार की खेती करते हैं), उनके घरों को भाग्यशाली देखोगे ॥१॥

हे बाबा, माया साथ नहीं जाती । इस माया ने ही जगत् को मोहित किया है; कोई बिरला ही (इस तथ्य को) समझता है ॥रहाउ॥

नित्य नाश होती हुई आगु को दूकान बनाओ और (परमात्मा के) सच्चे नाम को सोदा समझो । ध्यान और विचार को गोदाम बनाओ, उसी में (हरी के) नाम रूपी सौदे को रखो । (सन्त रूपी) व्यापारियों के साथ व्यापार करो और (भक्ति रूपी) लाभ प्राप्त करके प्रसन्न हो ॥२॥

शास्त्र-श्रवण को ही सौदागरी बनाओ, (और उस सौदे को) सत्य रूपी घोड़े पर (लाद कर ले जाओ । शुभ कर्मों को ही पाथेय (मार्ग का खर्व) (बना कर) बाँधो; ऐ मन कल (का भरोसा) मत समझो, (जो कुछ करना हो, उसे आज ही कर लो, कल पर मत टालो) । (हे प्राणो, यदि उपर्युक्त सौदे को लेकर उपर्युक्त विधि से) निरंकार (परमात्मा के) देश में जायगा, तो सुख के साथ (उस प्रभु का) महल प्राप्त हो जायगा ॥३॥

(परमात्मा में) चित्त के लगाने को नौकरी समझो, नाम को (निश्चयपूर्वक) मानना ही, (उस नौकरी का) काम है, पापों को रोकना ही (उस नौकरी की) दौड़धूप है; (इस प्रकार की नौकरी करनेवाले को लोग "धन्य धन्य" कहेंगे । हे नानक, यदि (हरि तेरी ओर) कृपादृष्टि से देखेगा, तो तेरा चौधुना रंग चढ़ेगा ॥४॥२॥

[३]

चतुर्के

माइ बाप को बेटा नीका ससुरै चतुरु जवाई ।
बाल कनिआ कउ बाप पिआरा भाई की अति भाई ॥
हुकमु भइआ बाहरु घर छोड़िआ खिन महि भई पराई ।
नामु दानु इसनानु न मनमुखि तितु तनि धूड़ि धुमाई ॥ १ ॥
मनु मानिआ नामु सखाई ।
पाइ परउ गुर कै बलिहारै जिन साची बूझ बुभाई ॥ रहाउ ॥
जग सिउ भूठ प्रीति मनु बेधिआ जन सिउ वादु रचाई ।
माइआ मगनु अहिनिमि मगु जोहै नामु न लेवै मरै बिलु खाई ॥
गंधण बैणि रता हिनकारो सबदै सुरति न आई ।
रंगि न राता रसि नहि बेधिआ मनमुखि पति गवाई ॥ २ ॥
साध सभा महि सहलु न चाखिआ जिहवा रसु नही राई ।
मनु तनु धनु अपुना करि जानिआ दर को खबरि न पाई ॥
अखी मीटि चलिआ अंधिआरा घर दक दिसै न भाई ।
जम दरि बाधा ठउर न पावै अपुना कोआ कमाई ॥ ३ ॥
नदरि करे ता अखी बेला कहणा कथनु न जाई ।
कंनो सुरिण सुरिण सबदि सलाही अंमृतु रिदै बसाई ॥
निरभउ निरंकारु निरबैर पूरन जोति समाई ।
नानक गुर बिरु भरसु न भागै सबि नामि बडिआई ॥ ४ ॥ ३ ॥

माँ-बाप को बेटा तथा ससुर को चतुर दामाद प्यारा होता है । बच्चों और कन्याओं को बाप प्यारा होता है और भाई को भाई अति प्रिय होता है । (किन्तु जब परमात्मा का हुक्म होता है, (तो जीव) घर-बाहर दोनों को छोड़ देता है और क्षण मात्र में (उसकी सारी सम्पत्ति) पराये की हो जाती है । जो मनमुख 'नाम, दान और स्नान' (में निष्ठा नहीं रखता) उसके शरीर में धूल उड़ उड़ कर पड़ती है (अर्थात् वह बरबाद होता है) ॥१॥

(जब मैंने) नाम की (अपना) सहायक बनाया, तो (मेरा) मन मान गया (शान्त हो गया) । (मैं) गुरु के पाँव पड़ता हूँ, (उन पर) बलिहारी होता हूँ, जिन्होंने सच्चा ज्ञान समझा दिया है ॥ रहाउ ॥

(मनमुख का) मन जगत् की झूठी प्रीति से बिधा हुआ है (और वह हरी के) दासों के साथ झगडा मचाता रहता है । (वह) माया मे निमग्न हुआ अहंनिश (माया का) रास्ता देखता रहता है । (वह) नाम नहीं लेता (और विषय रूपी) विष खा कर मरता रहता है । (वह) गन्दे वचन (बात) में रत रहता है और उमका प्रेमी हो गया है, (परमात्मा अथवा गुरु के) शब्द का उसे ध्यान नहीं आता । (वह हरी के प्रेम मे नहीं अनुरक्त होता है और न (उसके) रस मे ही उसका मन वेधता है (द्रवोभूत होना है), (इस प्रकार) मनमुख (अपना) प्रतिष्ठा गँवा देता है ॥ २ ॥

(उस मनमुख ने) सत्यगति मे सहजावस्था का रसास्वादन नहीं किया । (उसकी) जीभ मे राई भर भी (नाम-उच्चारण का) रस नहीं आया । (वह अहंता वश) तन, मन, धन को अपना मान बैठता, (उमे) (परमात्मा के) दरवाजे की (जरा भी) खबर नहीं मिली । (अत मे वह अपनी) शीखें बन्द कर अंधकार मे चल पड़ा, (उस समय उमे) घर बार तथा भाई-बन्धु कुछ भी नहीं दिखाई पड़ते (अथवा हे भाई, उस समय उमे अपना घर और दरवाजा कुछ भी नहीं सूझ पड़ता) । अपनी ही की हुई कमाई के कारण, (वह) यमराज के दरवाजे पर बाँधा जाता है (और उमे कोई बचने का) स्थान नहीं मिलता ॥ ३ ॥

यदि (परमात्मा) कृपादृष्टि करे, तभी (वह) श्रोत्रो मे देखा जा सकता है (अन्यथा नहीं); (उसके सम्बन्ध मे) कुछ कथन नहीं किया जा सकता । कानो से सुन सुन कर शब्द द्वारा (प्रभु का) गुणगान करता चाहिए, (जिसमे नाम रूपी) अमृत हृदय में समा जाय । (प्रभु) निर्भय, निरकार और निर्वर है, (उसी) पूर्ण ज्योति (गर्वत्र) समायी हुई है । हे नानक, गुरु के बिना भ्रम नहीं भागता), (भ्रम नहीं निवृत्त होता), मन्चे नाम की (बहुत बड़ी) महत्ता है ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

दुतुके

पुट्ट धरती पुट्ट पाणी आसगु चारि कुंठ चउबारा ।

सगल भवण की मूरति एका मुखि तेरे टकसाला ॥ १ ॥

मेरे साहिबा तेरे चोज बिडाया ।

जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा आपे सरब समाया ॥ रहाउ ॥

जह जह देखा तह जोति तुमारी तेरा रूपु किनेहा ।

इकतु रूपि फिरहि परछाँना कोइ न किसहो जेहा ॥ २ ॥

प्रंडज जेरज उतभुज सेतज तेरे कांते जंता ।

एकु पूरबु मै तेरा देखिआ तू सभना माहि रवंता ॥ ३ ॥

तेरे गुण बहुते मै एकु न आणिआ मै मूरतु किछु दीजे ।

प्रणवति नानक सुनि मेरे साहिबा बुबदा पथरु लीजे ॥ ४ ॥ ४ ॥

(हे प्रभु) (तेरी एक कर्ष का तस्ता धरती है, और दूसरी कर्ष का तस्ता पानी (बादल, तत्पर्यं यह कि आकाश) है, चारों दिशाओं के बीपाल में (तेरे बैठने का) आसन है । समस्त भूबनों की एक ही सृष्टि है, (अर्थात् समस्त सृष्टि का एक ही स्वामी है) और (प्रभु के ही) मुँह पर (छोटे-छोटे मनुष्यों की) टकसाल (की भाँति) (परख होती है) ॥ १ ॥

हे मेरे साहब, तेरे कौतुक आश्चर्यमय है । (तू ही) जल, थल तथा धरती और आकाश के बीच में भरपूर लीन है (व्याप्त है) (और तू ही सर्वत्र समाया हुआ है) ॥ रहाउ ॥

(हे हरी), जहाँ-जहाँ भी (मैंने) देखा है, वहाँ वहाँ तेरी ही ज्योति दिखायी पड़ी है; तेरा रूप किस प्रकार है ? (हे प्रभु) तू एक रूप में ही परिच्छिन्न होकर (सब जगह) विचरणा कर रहा है, (किन्तु फिर भी) कोई (एक रूप) किसी (दूसरे रूप से) नहीं मिलता ॥ २ ॥

(जीवों की चार खानियों)—घंडज, जेरज, उड्डिज और स्वदेज—के प्राणी तेरे ही द्वारा निर्मित किए गए हैं । (हे प्रभु), मैंने तेरा एक माहात्म्य यह देखा है (कि) तू सब में रमा हुआ है ॥ ३ ॥

तेरे अन्नन्त गुण हैं, (मैं उनमें से) एक भी नहीं जानता; मुझ मूर्ख को भी कुछ (एकाग्र) गुण दे दे । नानक विनयपूर्वक कहता है, “हे मेरे साहब मुन, मुझ पाप में भरे हुए पत्थर के समान भारी (वजनी) (ब्यक्ति) को तार दे ।” ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

हउ पापो पतितु परम पाण्डो तू निरमलु निरंकारी ।

अमृत बालि परम रसि राते ठाकुर सरणि तुमारी ॥ १ ॥

करता तू मैं माँगि निमारे ।

मायु महतु नामु धनु पले साचै सबवि समारे ॥ रहाउ ॥

तू पूरा हम ऊरे होछे तू गउरा हम हउरे ।

तुम ही मन राते अहिनिशि परभाते हरि रसना जपि मन रे ॥ २ ॥

तुम साचै हम तुम ही राखे सबवि भेवि कुनि साचै ।

अहिनिशि नामि रते से सूखे मरि जनमे से काचै ॥ ३ ॥

अवरु न दोसै किनु सासाही तिसहि सरीकु न कोई ।

प्रणबति नानकु बासनिबासा गुरमति जानिधा सोई ॥४॥५॥

(हे स्वामी) मैं पापी, पतित एवं महान् पाण्डो हूँ; तू (परम) निर्मल और निरा-कार स्वरूप है । हे ठाकुर, तेरी शरण में आकर (मैंने नाम रूपी) अमृत का रसास्वादन किया है और महान् आनन्द में अनुरक्त हो गया हूँ ॥ १ ॥

हे कर्ता, तू मुझ मानरहित का मान है । मेरे लिए यही मान बढ़ाई है कि नाम-धन मेरे पल्ले हो और (मैं) सच्चे शब्द में रत रहूँ ॥ रहाउ ॥

तू पूर्ण है मैं ऊन (कम) और ओछा हूँ; तू गंभीर है और मैं हल्का हूँ । (मैं) अहिनिश तथा प्रभात में तुझी में मन से अनुरक्त हुआ हूँ, अरे मन रसना से हरि का जप कर ॥२॥

(हे प्रभु) तू सच्चा है और मैं तुझी में रंगा हूँ, (गुरु के) शब्द द्वारा भेद जानकर सच्चा हो गया हूँ। जो (व्यक्ति) अहंनिश नाम में रत हैं, (वे ही) पवित्र हैं; (जो नाम को नहीं पहचानते) और (बारंबार) जन्मने-मरने रहते हैं (अर्थात् आवागमन के चक्र पड़ते रहते हैं), वे कच्चे हैं ॥ ३ ॥

(मुझे तो हरी के समान कोई) और नहीं दिखाई पड़ता; (फिर) किसकी स्तुति करें ? उस (प्रभु) के समान कोई भी नहीं है। नानक विनयपूर्वक कहता है (कि हे प्रभु मैं तेरे) दासों का दास हूँ और गुरु की बुद्धि-द्वारा (मैंने) उस तत्त्व को (परमात्म-तत्त्व) को जान लिया है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

अलख अपार अगम अगोचर ना तिसु कालु न करमा ।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा ॥१॥
साचे सचिअार विटहु कुरबानु ।
ना तिसु रूप बरनु नही देखिअा साचे सबदि नोसाणु ॥रहाउ॥
ना तिसु सात गिता सुत बंधप ना तिसु कामु न नारी ।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी ॥२॥
घट घट अंतरि ब्रह्म लुकाइअा घटि घटि जोति सबाई ।
बजर कपाट मुक्ते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ॥३॥
जंत उपाइ कालु सिरि जंता बसगति जुगति सबाई ।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई ॥४॥
मूचे भाडे सानु समावे बिरले सूबाचारी ।
तंते कउ परमतंतु मिलाइअा नानक सरणि तुमारी ॥५॥६॥

(परमात्मा) अलख, अपार, अगम तथा अगोचर है, न तो उसमें काल (का भय) है, (क्योंकि वह काल का भी काल 'महाकाल' है) और न उसमें कर्मों (का बन्धन ही है, क्योंकि वह सब से निर्लस है)। किसी जाति का न होना ही उसकी जाति है; (वह) अयोगिन और स्वयंभू है, उसमें कोई भी भाव अथवा भ्रम नहीं है ॥ १ ॥

(मैं तो) सच्चे (अन्तःकरण से) सम्यक्स्वरूप (परमात्मा) के पर कुरबान हूँ। न तो उसका (कोई) रूप है, न वर्ण है और न रेश्मा है वह (गुरु के) सच्चे शब्द द्वारा प्रकट होता है ॥ रहाउ ॥

न तो उसके (परमात्मा के) मान-पिना हैं, न पुत्र और भाई हैं, न उसमें कोई काम की इच्छा है (और) न उसकी कोई स्त्री ही है। (हे प्रभु, तू) कुलरहित है, निरंजन (माया से रहित) है, अपरपार है, किन्तु फिर भी सारी ज्योति (सत्ता) तेरी ही है ॥ २ ॥

घट-घट में ब्रह्म ही अन्तर्हित है (छिपा है) तथा घट घट में और सभी स्थानों में (उसकी) ज्योति (व्याप्त) है। गुरु के उपदेश द्वारा (बुद्धि का) बज्र-कपाट (बज्र के समान किवाड़ा)

खुल जाता है, (तब यह ज्ञान होता है कि बुद्धि में) निर्भय (हरी) हो समाधि लगा कर (स्थित है) ॥ ३ ॥

(हरी ने ही) जीव उत्पन्न करके उनके सिर के ऊपर काल को बनाया है (और उसी ने) सब के जीवन की युक्ति अपने वण में रक्खी है । (मनुष्य) सद्गुरु की सेवा करके (नाम रूपी) पदार्थ पा जाते हैं (और गुरु के उपदेश पर आचरण करके (भव-बंधन से) मुक्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥

पवित्र पात्र (भाँट) में पवित्र (हरी) समाता है, किन्तु कोई बिरले ही पवित्र आचार-वाले होने हैं । हे नानक, (जीव रूपी) तन्त्र को (परमात्मा रूपी परम तन्त्र) प्राप्त हो गया है, (मैं) तेरी शरण में हूँ ॥ ५ ॥ ६ ॥

[७]

जिउ मोना बिनु पाणीऐ तिउ साकत मरै पिआस ।

तिउ हरि बिनु मरीऐ रे मना जो बिरया जावै सासु ॥१॥

मन रे राम नाम जसु लेइ ।

बिनु गुर इह रसु किउ लहउ गुरु मेलै हरि बेइ ॥रहाउ॥

संत जना मिलु संगती गुरुमुखि तीरथु होइ ।

अठसठि तीरथ मजना गुर दरसु परापति होइ ॥२॥

जिउ जोगी जत बाहरा तपु नाही मतु संतोषु ।

तिउ नामे बिनु देहुरी जसु मारै अंतरि दोषु ॥३॥

साकत प्रेसु न पाईऐ हरि पाईऐ सतिगुर भाइ ।

सुख दुख दाता गुरु मिलै कहू नानक सिफति समाइ ॥४॥७॥

जैसे मोन बिना पानी के (मर जाता है), वैसे ही शाक्त (माया का उपासक) भी (विषय-वासना को) प्यास में मर जाता है । उसी प्रकार हे मन, यदि तेरी स्वास (भगवत्-चिन्तन के) बिना व्यर्थ व्यतीत होती है, तो (तुझे भी) मर जाना चाहिए ॥ १ ॥

अरे मन, राम की कीर्ति को ग्रहण कर । (किन्तु) बिना गुरु के इस रस को (तू) कैसे प्राप्त करेगा ? (तू) गुरु से मिल । (वही) (तुझे) हरी देगा ॥ रहाउ ॥

संतजनों की संगति में मिलना ही गुरुमुखों के लिए तीर्थ है । गुरु के दर्शन की प्राप्ति हो जाना ही अठसठ तीर्थों का स्नान (मञ्जन), है ॥ २ ॥

जिस प्रकार संयम के बिना (कोई) योगी नहीं हो सकता और सत्य तथा संतोष के बिना (वास्तविक) तप नहीं होता है; उसी प्रकार शरीर भी नाम के बिना (व्यर्थ है); (इसके) आन्तरिक दोषों (के लिए) यमराज (इसे) मारेंगे ॥ ३ ॥

शाक्त (माया का उपासक) होने से (हरी का प्रेम) नहीं प्राप्त कर सकता । हरी तो सद्गुरु में प्रेम करने से प्राप्त होता है । नानक कहते हैं कि मुख-दुःख के देनेवाले गुरु के मिलने से, (शिष्य हरि के) यश में समाहित हो जाता है ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

तू प्रभ दाता दानि मति पूरा हम थारे भेखारी जीउ ।
 मे किन्ना मागउ किछु थिरु न रहाई हरि दोजे नामु पिघारी जीउ ॥१॥
 घटि घटि रबि रहिआ बनवारी ।
 जलि थलि महोअलि गुपतो वरते गुरसबदी देखि निहारी जीउ ॥रहाउ॥
 मरत पइआल अकासु दिख्खाइओ गुरि सतिगुरि किरपा घारी जीउ ।
 सो बहुसु अजोनी है भो होनी घट भीतरि देखु मुरारी जीउ ॥२॥
 जनम मरन कउ इहु जगु बपुडो इनि दूजे भगति विसारी जीउ ।
 सतिगुरु मिलै त गुरमति पाईऐ साकत बाजो हारी जीउ ॥३॥
 सनिगुरि बधन तोड़ि निरारे बहुरि न गरभ मझारी जीउ ।
 नानक गिआन रतनु परगासिआ हरि मनि बसिआ निरंकारी जीउ ॥४॥८॥

हे प्रभु, तू दाता है, तू दान और बुद्धि में परिपूर्ण है, हम तो तेरे भिखारी (याचक) हैं । (हे हरी), मैं (तुझसे) क्या मागूँ ? (इस जगत् में, तो) कोई भी (वस्तु) स्थिर नहीं रहती । (हे हरी), मुझे प्यारी (वस्तु) नाम दे ॥ १ ॥

बनवारी (परमात्मा) घट-घट में रम रहा है । (वही परमात्मा) जल में, थल में और पृथ्वी-आकाश के मध्य में गुप्त रूप से विराजमान है (व्याप्त है, परिपूर्ण है), गुरु के शब्द द्वारा देख कर (मैंने उस प्रभु का) दर्शन किया है ॥ रहाउ ॥

सद्गुरु ने कृपा करके मृत्युलोक, पानाल लोक, तथा आकाश में (व्याप्त) (हरी का) दर्शन करा दिया । वह अजन्मा ब्रह्मा (वर्तमान में) है, (भूतकाल में) था, (और भविष्य में) रहेगा; उस मुरारी (परमेश्वर) को अपने घट में देख लो ॥ २ ॥

जन्मने-मरने के लिए तो यह बेचारा जगत् ही बना है, द्वैतभाव में पड़कर (इसने) भक्ति को भुला दिया है । (यदि) सद्गुरु से मिला जाय, तभी गुरु की (वास्तविक) बुद्धि प्राप्त होती है, शक्ति (शक्ति अथवा माया का उपासक, तो द्वैतभाव में होने के कारण जीवन की बाजी हार जाता है ॥ ३ ॥

सद्गुरु बचनो को तोड़ कर निराला (स्वतंत्र, पृथक्) कर देता है, (जिससे) फिर माता के गर्भ के मध्य नहीं (आना पड़ता) । हे नानक, (गुरु द्वारा प्रदत्त) ज्ञान-रूपी रत्न प्रकाशित हो गया और निरकारी हरी मन में बस गया ॥ ४ ॥ ८ ॥

[९]

जिसु जलनिधि कारणि तुम जगि आए सो अमृत गुर पाही जीउ ।
 छोडहु बेसु भेल चतुराई दुबिधा इहु फलु नाही जीउ ॥१॥
 मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ ।
 बाहरि दूडत बहुरु दुलु पावहि घरि अमृतु घट माही जीउ ॥रहाउ॥

अवगुण छोड़ि गुणा कउ धावहु करि अवगुण पछुताही जोउ ।
 सर अपसर की सार न जाएहि फिरि फिरि कीच बुझाही जोउ ॥२॥
 अंतरि मैलु लोभ बहु भूटे बाहरि नावहु काही जोउ ।
 निरमल नामु जपहु सब गुरमुखि अंतर की गति ताही जोउ ॥३॥
 परहरि लोभु निदा कूडु तिआगहु सनु गुर बचनी फलु पाही जोउ ।
 जोउ भावै तिउ राखहु हरि जोउ जन नानक सबदि सलाही जोउ ॥४॥६॥

जिस (अमृत)-सागर के निमित्त तुम इस जगत् में उत्पन्न हुए हो, वह अमृत गुरु के पास है । [जोउ=जो, संबोधन का चिह्न है । पद में लालित्य लाने एवं पद-पूर्ति के लिए “जोउ”—(जो) का प्रयोग किया गया है] । चतुराई और पान्थण्ड का वेश—दिखावा छोड़ दो, दुविधा में इस (अमृत—) —फल की प्राप्ति नहीं होती ॥ १ ॥

अरे मन, स्थिर हो जा, कही (इधर-उधर) मत भटक । (उस अमृत को) बाहर ढूँढ़ने में बहुत दुःख पायेगा; घर ही में घट के भीतर अमृत है ॥ रहाउ ॥

अवगुण छोड़ कर गुणों की ओर दौड़ो, (यदि संयोगवश कभी) अवगुण (पाप) हो जाय, (तो उसके निमित्त) पश्चात्ताप करो (प्रायश्चित्त करो) । (साधारणतया प्राणियों को) अच्छे-बुरे की (कुछ) खबर (होश) नहीं है, (अतएव वे अवगुणों को करके) बार-बार (पापों के) कीचड़ में (फँस कर) डूबते हैं ॥ २ ॥

(तुम्हारे) अंतर्गत (अंतःकरण में) मैल (पाप), लोभ (और) अनेक भूट (आदि अवगुण) (भरे हैं), तो फिर बाहरी स्नान किस लिए करते हो ? (उसमें क्या लाभ होगा ?) । गुरु द्वारा (प्रदत्त) सदैव निर्मल (हरी का) नाम जपो; उसी के द्वारा अन्तःकरण की गति (शुद्धि) (होगी) ॥ ३ ॥

लोभ का परित्याग कर दो, निन्दा तथा भूट भी त्याग दो । गुरु के शब्द द्वारा सच्चा फल प्राप्त होगा । हे हरि जी, तुझे जैसा अच्छा लगे, वैसा ही रख । दास नानक तो गुरु के शब्द द्वारा तेरा गुणगान करता है ॥४॥६॥

[१०]

पंचपद

अपना घर भूखत राखि न साकहि की परघर जोहन लाग़ा ।
 घर बरु राखहि जे रसु बाखहि जो गुरमुखि सेवकु लाग़ा ॥१॥
 मन रे समझु कवन मति लाग़ा ।
 नामु बिसारि अनरस लोभाने फिरि पछुताहि अभला ॥रहाउ॥
 आबत कउ हरख जात कउ रोवहि इहु बुलु सुलु नाले लाग़ा ।
 आपे दुख सुख भोगि भोगावै गुरमुखि सो अनरागा ॥२॥
 हरि रसि ऊपरि अबरु किआ कहोऐ जिनि पोआ सो नृपतागा ।
 आइआ मोहित जिनि इहु रसु खोइआ जा साकत दुरमति लाग़ा ॥३॥
 मन का जोउ पवन पति बेही बेही महि बेउ समागा ।
 जे नू बेहि त हरि रसु गाई मनु नृपतै हरि लिव लाग़ा ॥४॥

साथ संगति महि हरि रसु पाईऐ गुरि मिलिऐ जम भउ भाग्य ।

नानक राम नामु जपि गुरमुखि हरि पाए मसतकि भाग्य ॥१॥१०॥

तू अपने लुटते हुए घर की रक्षा तो कर नहीं सकती; फिर क्यों दूसरे के घर को (लूटने की) दृष्टि से देखने लगा ? (तात्पर्य यह है कि तू श्रीरो को लूट कर ऐश्वर्य भोगना चाहता है, पर पाप तेरी आत्मा को लूट रहे है और तुझे खबर भी नहीं) । यदि तू हरि-रस पिये, (तभी) अपना घरबार बचा सकता है, (यह काम वही कर सकता है), जो गुरु द्वारा सेवक बन कर, (नाम में अनुरक्त रहे) ॥१॥

अरे मन, समझ किस बुद्धि में लगा हुआ है । (तू) नाम छोड़ कर अन्य रसों में लुब्ध है; अरे अभाग्य (चेत जा, नहीं तो) फिर पछतायेगा ॥रहाउ॥

(माया—सम्पत्ति) (जब) आती है, (तो मनुष्य) हर्षित होता है, (और जब यह) जाती है, (तो वह) रोता है, (इस प्रकार) ये सुख-दुःख (मनुष्य के) साथ लगे हुए हैं । जो गुरुमुख है वह वैरागी (अनरागी) होता है, (क्योंकि वह जानता है कि परमात्मा) स्वयं ही सुख-दुःख के भोगों को (जीवों से) भोगता है ॥२॥

हरि-रस (के आस्वादन के) उपरान्त और क्या कहा जाय ? (तात्पर्य यह कि हरि-रस में बह कर कोई अन्य रस नहीं है) । जिम्मे (इस रस को) पिया है, वह तृप्त हो गया है । माया में मोहित होकर, जिसने इस (परम) रस को खो दिया, वह शक्ति (माया का उपासक) जाकर दुर्बुद्धि में लग गया ॥३॥

जो देव मन का प्राण और प्राणों का स्वामी है, (वह चैतन्य ब्रह्म) देह-देह (घट-घट) में समाया हुआ है, (अर्थात् जो प्रभु मन और प्राणों का आधार है, वह घट-घट में व्याप्त है) । (हे प्रभु), यदि तू देता है, तभी हरि रस का गुणगान होता है, (तभी) मन तृप्त होता है और हरि से निब (एकनिष्ठ धारणा) लगती है ॥४॥

सत्संगति में ही हरि-रस प्राप्त होता है; गुरु से मिलने पर यम का भय भग जाता है । हे नानक, (पूर्व जन्मों के) भाव्यानुसार गुरु द्वारा राम नाम जप के हरि की प्राप्ति हो गयी ॥५॥११॥

[११]

सरब जीआ सिरि लेलु घुराहू बिनु लेखै नही कोई जोउ ।

आपि अलेलु कुदरति करि बेखै दुरुमि चलाए सोई जोउ ॥१॥

मन ने राम जपहु सुलु होई ।

अहिनिहि गुरु के चरन सरेबहु हरि दाता भुगता सोई ॥रहाउ॥

जो अंतरि सो बाहिरि देखहु अवर न दूजा कोई जोउ ।

गुरमुखि एक दसट करि देखहु घटि घटि जोति समोई जोउ ॥२॥

चलतौ ठाकि रलहु घरि अपने गुर मिलिऐ इह मति होई जोउ ।

बेखि अहसट रहउ बिसमादो दुबु बिसरै सुख होई जोउ ॥३॥

पीबउ अपिउ परम सुख पाईऐ निज घरि बासा होई जीउ ।

जनम मरण भव भंजनु ग आईऐ पुनरपि जनमु न होई जीउ ॥४॥

ततु निरंजनु जोति सवाई सोहं भेदु न कोई जीउ ।

अपरंपर पारब्रह्म परमेश्वर नानक गुर मिलिआ सोई जीउ ॥५॥११॥

सारे जीवों के सिर के ऊपर (परमात्मा के दरबार से) कर्मानुसार (पहले से ही) लेख लिखा रहता है, (जिसके अनुसार उन्हें सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं), इस लेख के बिना कोई भी जीव नहीं है। स्वयं (परमात्मा के ऊपर) कोई भी लेख नहीं है, (क्योंकि वह कर्मों से निलीत है)। (वह) कुदरत (माया, शक्ति अथवा प्रकृति) की रचना करके, (उसकी) देखरेख करता है (और उसे अपने) हुक्म के अनुसार चलाता है ॥१॥

अरे मन, राम का जप करो, (जिससे) सुख हो। अर्हनिश गुरु के चरणों की आराधना करो; (वही) हरी दाना है (और वही दान लेकर) भोगने वाला है ॥रहाउ॥

जो (हरी) (तुम्हारे) अतर्गत (विराजमान है), (वही सृष्टि के) बाहर है, (उसी को सर्वत्र) देखो; (उसे छोड़ कर) और कोई, दूसरा नहीं है। गुरु की शिक्षा द्वारा (द्वैत मिटा कर) एक (अद्वैत) दृष्टि से देखो (कि उसी की) ज्योति घट-घट में समायी हुई है ॥२॥

चलायमान (मन को) अपने ही घर (हृदय) में टिका कर रक्खो; (किन्तु) यह मति (बुद्धि) सद्गुरु के मिलने पर ही प्राप्त होती है। अष्ट (परमात्मा) को देख कर (साक्षात्कार करके), आश्चर्यमयी स्थिति (विस्मय अवस्था) में (स्थित रहो); (इसके फलस्वरूप) (सारे) दुःख विस्मृत हो जाते हैं (और अनन्त) सुख की प्राप्ति होती है ॥३॥

(नाम लूरी) अमृत का पान करो और परम सुख पाओ, (इससे) तुम्हारा निवास अपने घर में हो जायगा, (तात्पर्य यह कि आत्मज्ञान हो जायगा)। जन्म-मरण तथा संसार (के दुःखों को) नष्ट करनेवाले (परमात्मा का) गुणमान करो, (इससे तुम्हारा) फिर जन्म नहीं होगा ॥४॥

वह माया में रहित हरी (निरजन) सब का तत्त्व है और सभी जगह उसकी ज्योति (सत्ता) है, उसमें और मुझमें कोई भी अन्तर नहीं है। हे नानक, अपरंपर, परब्रह्म और परमेश्वर (मुझे) गुरु के रूप में मिला है, (मेरा गुरु परब्रह्म परमेश्वर आप है) ॥ ॥ १॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर ३

[१२]

जा तिसु भावा तबही यावा । ता यावे का फलु यावा ॥

यावे का फलु होई । जा आपे देवै सोई ॥१॥

मन मेरे गुर बचनी निधि पाई । ताते सब महि रहिआ समाई ॥रहाउ॥

गुर साखी अंतरि जागी । ता चंचल मति तिघ्यागी ॥
 गुर साखी का उजीझारा । ता मिटिआ सगल ग्रंथ्यारा ॥२॥
 गुरुचरनी मनु सागा । ता जसु का मारगु भागा ॥
 मै बिचि निरभउ पाइआ । ता सहजे कै घरि आइआ ॥३॥
 भएति नावकु बूझै को बीचारी । इसु जग महि करणी सारी ।
 करणी कोरति होई । जा आपे मिलिआ सोई ॥४॥१॥१२॥

जब उस प्रभु को अच्छा लगा, तभी (उसका) गुणगान किया और तभी (उसके गुणगान करने का) फल प्राप्त किया । (प्रभु के) गुणगान का तभी फल प्राप्त होता है, जब (प्रभु) अपने आप (उस फल को) दे ॥१॥

हे मेरे मन, गुरु के वचनो से (सभी सुनो का) भाण्डार प्राप्त हो गया । उसी के कारण (मैं) सत्य में समाहित हो गया ॥रहाउ॥

गुरु की शिक्षा अन्तःकरण के अन्तर्गत प्रकाशित हो गयी; इससे (मैंने) चंचल बुद्धि त्याग दी; (गुरु की शिक्षा धारण करने से बुद्धि की चंचलता समाप्त हो गई, बुद्धि स्थिर हो गयी) । गुरु की शिक्षा का प्रकाश (हो गया), उसमें सारा अन्धकार मिट गया ॥ २ ॥

(जब) गुरु के चरणों में मन लग गया, तो यमराज का मार्ग समाप्त हो गया । (परमात्मा के) भय के अन्तर्गत (मैंने) निर्भय (हरी) को पा लिया, जिसके फलस्वरूप (मैं) सहजावस्था वृत्ति में टिक गया ॥ ३ ॥

नानक कहता है कि कोई विरला विचारवान् ही इस बात को समझता है कि इस संसार में सर्वोत्तम करनी क्या है । वह करनी हरि की कीर्ति (का गुणगान) है, जो तभी प्राप्त होती है, जब वह हरी आप मिले ॥ ४ ॥ १ ॥ १२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सोरठि, महला १, घर १

असटपदीआं, चउतुकी [१]

बुझिया न पड़उ हरि बिनु होरु न पूजउ मड़ै मसाणि न जाई ।
 तुलना राचि न पर घरि ज.वा तुलना नामि बुझाई ॥
 घर भीतरि घरु गुरु दिखाइआ सहजि रते मन भाई ।
 तू आपे दाना आपे बीना तू देवहि मति साई ॥१॥
 मनु बेरागि रतउ बेरागी सबदि मनु बेधिआ मेरी माई ।
 अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिब लाई ॥रहाउ॥
 असंख बेरागी कहहि बेराग सो बेरागी जि लसमै भावै ।
 हिरदै सबदि सदा भै रचिआ गुर की कार कमावै ।
 एको चेतै मनुआ न डोले धावनु वरजि रहावै ॥
 सहजे माता सदा रंगि राता साचे के गुण गावै ॥२॥

मनुआ पउगु बिनु सुखवासी नामि वसै सुख भाई ।
 जिहवा नेत्र सोत्र सचि राते जलि बूझी तुम्हहि बुझाई ॥
 भ्रास निरास रहै बैरागी निज धरि ताड़ी लाई ।
 भिलिआ नामि रजे संतोखी भ्रंमनु सहजि पीछाई ॥३॥
 बुझिआ बिचि बैरागु न होवो जब लगु दूजी राई ।
 सनु जगु तेरा तू एको दाता भवरु न दूजा भाई ॥
 मनमुखि जंत बुझि सदा निवासी गुरुमुखि वे बडिआई ।
 अपर अपार अग्रंम अगोचर कह्यो कीम न पाई ॥४॥
 सुन समाधि महा परभारु तोनि भवण पति नामं ।
 मसतकि लेखु जोआ जगि जोनी सिरि सिरि लेखु सहामं ॥
 करम सुकरम कराए प्रापे प्रापे भगति हड़ामं ।
 मनि मुखि जूठि लहै भै मानं प्रापे गिआनु अग्रामं ॥५॥
 जिन चालिआ सेई सादु जाणनि जिउ गु मे मिठिआई ।
 अकथै का किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई ॥
 गुरु दाता भेले ता मति होवै निगुरे मति न काई ।
 जिउ चलाए तिउ चालह भाई होरि किआ को करे चतुराई ॥६॥
 इकि भरमि भुलाए इकि भगती राते तेरा खेनु अपारा ।
 जितु तुधु लाए तेहा फसु पाइआ तू हुकमि चलावणहारा ॥
 सेवा करी जे किछु होवै अपराणा जोउ पिडु तुमारा ।
 सतिगुरि मिलिए किरपा कीनी भ्रंमनु नामु अघारा ॥७॥
 गगनंतरि बासिआ गुण परगासिआ गुण महि गिआन धिआनं ।
 नामु मनि भावै कहै कहावै ततो ततु बखानं ॥
 सबदु गुर पीरा गहिर गंभीरा बिनु सबदै जगु बडरानं ।
 पूरा बैरागी सहजि सुभागी सनु नानक मनु मान ॥८॥१॥

(मैं) द्वैतभाव में नहीं पड़ता, (एकमात्र) हरी के बिना और किसी को नहीं पूजता, कर्त्रों और मरघटों में नहीं जाता । (मैं) तृष्णा में लग कर पराए घर नहीं जाता, (हरी के पवित्र) नाम ने (मेरी सारी) तृष्णा शान्त कर दी है । घर में (हृदय में) ही गुरु ने (वास्तविक) घर (आत्मस्वरूप) दिखा दिया है । हे भाई, हमारे मन सहजावस्था (तुरीय पद, चतुर्य पद में) रत हो गए हैं । (हे हरी तू) आप ही सब कुछ जानता और देखता है; जो तू देता है (उसी में सन्तुष्ट रहना) निर्मल बुद्धि है ॥ १ ॥

मन वैराग्य-भावना में रँग कर वैरागी हो गया है । हे मेरी माँ, हरि-नाम (शब्द) ने मेरा मन बेध दिया है । अन्तःकरण में (हरी की) अखण्ड ज्योति (बस गई है) और उसकी धागु (भलीभाँति) हृदय में टिक गई है) और सच्चे साहब से एकनिष्ठ ध्यान लग गया है ॥ रहाउ ॥

असंख्य वैरागी 'वैराग्य' बंराग्य' कथन तो करने है, किन्तु जो पति (परमात्मा) की अच्छा लगता है, वही वैरागी है । जिसका मन नाम द्वारा सदा हरी के भय में लगा रहे, वही

सद्गुरु के कार्य करता है। (साधक) एक (परमात्मा) को चेतने, मन को भटकने न दे और दोड़ते हुए मन को रोक रखे। (वह) सहजावस्था में निमग्न रहे और सदैव (परमात्मा के) प्रेम में अनुरक्त रहे (और) सत्य (परमात्मा का) गुणगान करता रहे ॥ २ ॥

वायु के समान चंचल मन यदि थोड़ी देर भी (बिंदु मात्र भी) टिक कर बैठे, तो हे भाई, (वह) नाम में स्थिर हो सकता है; (उसकी) जिह्वा, नेत्र और श्रवण—(सब के सब) सत्य में अनुरक्त हो जाते हैं, (उसकी) तृष्णा (मि) बुझ जाती है, (हे हरी, उसे, तू ही) बुझाता है। (जो) आशा-निराशा दोनों से विरक्त रहता है, (वही) अपने (वास्तविक, धर (आत्म-स्वरूप) में समाधि लगा सकता है, (वह) नाम रूपी भिक्षा में तृप्त एवं सन्तुष्ट रहता है और सहजावस्था (चतुर्थ पद, तुरीय पद) के अमृत को पीता है ॥ ३ ॥

जब तक दुविधा है और राई भर (तिलमात्र, तनिक) भी द्वंद्वभाव है, (तब तक) बेराग्य नहीं होता। (हे प्रभु), सारा जगत् तेरा है, तू ही एक दाता है, हे भाई, (प्रभु को छोड़ कर कोई) दूसरा (दाता) नहीं है। मन-मुख प्राणी सदैव दुःख में ही निवास करने हैं, गुरु के उद्देशानुसार (चलने से, हरी शिष्य को) बड़ाई देता है। (हरी) अपरंपार, अग्रम तथा ओचर है, (उसकी) कीमत् कहने में नहीं आती ॥ ४ ॥

(हे प्रभु), (तेरा) नाम ही शून्य समाधि, परम परमाय (मोक्ष-पद) तथा तीनों भूवनों का स्वामी है। जीवों के मत्थे पर (उस हरी की मर्जी का) लेख है, (उसी के अनुसार वे) जगत् में जन्म लेने हैं और अपने-अपने सिर के लेख के अनुसार दुःख-मुख सहते हैं। (हरी ही) कर्म और शुभ कर्म कराता है (और वही) भक्ति भी दृढ़ कराता है। (परमात्मा का) भय मानने में मन और मुख की झूठ (अविवर्तता, गद्गो) नष्ट हो जाती है (और हरी) आप ही अग्रम ज्ञान (ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान) देता है ॥ ५ ॥

जिन्होंने (परमात्म-रस का) आस्वादन किया है, वे ही (उसका) स्वाद जानते हैं, (किन्तु उस स्वाद का वर्णन करना उतना ही कठिन है) जितना कि गुंथे का मिठाई (के स्वाद का वर्णन करना)। हे भाई, अकथनीय (हरी) का क्या कथन किया जाय? (अतएव सर्वोत्तम उपाय यही है कि) उसकी मर्जी के अनुसार चला जाय, (जीवन व्यतीत किया जाय) (जब) दाता गुरु से मिला जाय, तभी (इस प्रकार की) बुद्धि होती है, गुरु में विहीन व्यक्ति में कोई भी बुद्धि नहीं (होती)। हे भाई, (अन्तिम मिढान्त यही है कि) जैसा (प्रभु) चलाए, उसी प्रकार चलो, कोई और क्या चतुराई कर सकता है? ॥ ६ ॥

(हे स्वामी) कुछ लोग तो (माया के) भ्रम में भटकने रहते हैं और कुछ लोग भक्ति में अनुरक्त हैं, तेरा खेल अपार है। (हे प्रभु), जिसे (तू भक्ति में) लगाता है, वही फल पाता है; तू (सभी के ऊपर) हुक्म चलावेवाला है। यदि कोई वस्तु अपनी हो, तो मेवा कर्क (मे क्या सेवा कर सकता हूँ? सारी वस्तुएँ तो तेरी ही दाँ हुई हैं), जीव (प्राण) और शरीर (ये सब तो) तेरे ही हैं। सद्गुरु ने मिनने पर कृपा की, (उसी ने) अमृत-नाम का आधार दिया ॥ ७ ॥

(साधक) गगन-मण्डल (दशम द्वार अथवा आत्मिक मण्डल) में निवास करना है, (वही से उसके) गुणों का प्रकाश होता है और गुणों में ही ज्ञान, ध्यान (स्वाभाविक रीति से) आ जाते हैं। (ऐसे साधक के) मन को (हरी का) नाम अष्टालगता है, (वह स्वयं नाम)

कहता है, (जपता) है और दूसरो से भी (नाम) जपाता है, वह तत्व-तत्त्व का ही वर्णन करता है । शब्द (नाम) दो द्वन्द्व है, पीर है, अत्यन्त गहरा और गम्भीर है; शब्द (नाम) के बिना सारा जगत् बीराया बीराया (फिरता) है । जिसका चित्त सत्य को मानता है, वह पूर्ण बैरागी है और स्वाभाविक ही बड़ा भाग्यशाली है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

तितुकी

आता मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी ।
पाप पुनि जगु जाइया भाई बिनसै नामु विसारी ॥
इह माइया जगि मोहली भाई करम सभे बेकरी ॥१॥
सुनि पंडित करमाकारी ।
जितु करमि सुलु ऊपजै भाई सु आतम ततु बीचारी ॥रहाउ॥
सासतु बेदु बकै लड़ी भाई करम करहु संसारी ।
पाखंडि मैलु न चूकई भाई अंतरि मैलु विकारी ॥
इन बिधि बूबी मकुरी भाई ऊंडी सिर कै भारी ॥२॥
दुरमति घाली बिगूती भाई दूजै भाइ लुझाई ।
बिनु सतिगुर नामु न पाईऐ भाई बिनु नामै भरमु न जाई ॥
सतिगुरु सेवे ता सुलु पाए भाई आबगु जागु रहाई ॥३॥
सासु सहलु गुर ते ऊपजै भाई मनु निरमलु सावि सभाई ।
गुरु सेवे सो बूकै भाई गुर बिनु मगु न पाई ॥
जिसु अंतरि लोभु कि करम कमावै भाई कूहु बोलि बिलु लाई ॥४॥
पंडित दही बिलोईऐ भाई बिबहु निकलै तसु ।
जलु मपीऐ जलु देखीऐ भाई इहु जगु एहा वसु ॥
गुर बिनु भरमि बिगूचीऐ भाई घटि घटि बेउ अलसु ॥५॥
इहु जगु तामो सूत को भाई दहदिसि बाधो माइ ।
बिनु गुर गाठि न छूटई भाई धाके करम कमाइ ॥
इहु जगु भरमि भुलाइया भाई कहणा किछु न जाइ ॥६॥
गुर मिलिऐ भउ मनि बसै भाई भे मरणा सनु लेलु ।
मजनु बानु बधिआईया भाई वरगह नामु विसेलु ॥
गुरु अंकसु जिनि नामु हड़ाइया भाई मनि बसिया जूका भेलु ॥७॥
इहु तनु हाटु सराफ को भाई बलरु नामु अपारु ।
इहु बलरु वापारी सो दृष्टु भाई गुर सबदि करे बीचारु ॥
बनु व.पारी नानका भाई भेलि करे वापारु ॥८॥२॥

हे भाई, आशा और इच्छा बन्धन डालने वाले हैं; (सारे) कर्मकाण्ड और धर्म (पूजापाठ, तीर्थयात्रा आदि) बन्धन में बांधने वाले हैं, (क्योंकि इन सबसे एक प्रकार का ना० वा० फा०—५१

सात्त्विक अहंकार बढ़ता है) । पाप-पुण्यो मे ही जगत् जन्मा है, (तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य पाप-पुण्य मिश्रित कर्म करता रहता है, तब तक वह जन्म के अंतर्गत आता रहता है) और नाम को भुला कर विनष्ट होता है । हे भाई, संसार में यह माया मोहित कर देने वाली है । (माया में किए हुए) सारे कर्म विकार उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १ ॥

हे कर्मकाण्ड करने वाले पंडित, मुनो । हे भाई, जिस कर्म से (वास्तविक) सुख उत्पन्न होता है, वह है आत्म-तत्व का विचारना ॥ रहाउ ॥

(हे पंडित), तू खड़ा होकर शास्त्र-वेद तो बकता है, किन्तु कर्म दुनियादारी ही करता है । हे भाई, पाषण्ड से मैल नहीं दूर होती । तुम्हारे मन मे (विषयो का) विकार भरा हुआ है । हे भाई, इसी प्रकार मकड़ी भी सिर के बल उल्टी होकर (आस ही अपने जाल मे उलझ कर) मर जाती है । (तू भी दिखावेवाले झूठे कर्म धर्म करके, उन्हीं के पापों के साथ नष्ट हो जाता है) ॥ २ ॥

दुर्बुद्धि से (सारी की सारी सृष्टि) अत्यधिक बरबाद हुई (और माया के) द्वैतभाव के कारण (वह) भटक गई (कुमार्ग पर चली गयी) हे भाई, बिना सद्गुरु के नाम की प्राप्ति नहीं होती और बिना नाम के (संसार का) भ्रम भी नहीं दूर होता । (जब) सद्गुरु की सेवा की जाती है, तभी सुख की प्राप्ति होती है । (और तभी) आना-जाना (जन्म-मरण) समाप्त होता है ॥ ३ ॥

हे भाई, सच्चे (आत्मज्ञान का) स्वाभाविक जीवन गुरु से ही प्राप्त होता है और मन निर्मल होकर सत्य (परमात्मा मे) समाहित हो जाता है । हे भाई (जो व्यक्ति) गुरु की आराधना करता है, वही (सच्चा आत्मज्ञान) समझता है, बिना गुरु के (आध्यात्मिक जीवन का) मार्ग नहीं पता है । जिसके अंतर्गत लोभ है, वह क्या कर्म करता है ? (उसके कर्म करने का कोई भी लाभ नहीं है) यह तो झूठ बोल कर (माया का) विष खाता रहता है ॥ ४ ॥

हे भाई, (वास्तविक) पंडित के दही मथने पर, (उममे मे) तथ्य (असली वस्तु, मक्खन) निकलता है । जल के मथने पर जल ही दिखाई पड़ता है, (अर्थात् जल मथने से जल ही निकलता है) । यह संसार इसी प्रकार की (पानी ही के समान) वस्तु है । घट-घट में अलक्ष्य देव (परमात्मा) (के होते हुए भी) गुरु के बिना भ्रम (अज्ञान मे) नष्ट होना पड़ता है, (क्योंकि अलक्ष्य परमात्मा समझ मे नहीं आता, उसकी समझ गुरु से ही प्राप्त होती है) ॥ ५ ॥

हे भाई, यह जगत् सूत के धागे के समान है, (जिसे) दसा दिशाओं से माया ने बांध रक्खा है (और उसमें अज्ञान की गाँठें पड़ गयी हैं) । बिना गुरु के (माया की) गाँठें नहीं खुलती, (इस गाँठ को खोलने के लिए कितने ही लोग कर्म करके थक गए हैं) (इस प्रकार) यह जगत् (अज्ञान के) भ्रम में भूला हुआ है, (इसके संबंध में) कुछ कहा नहीं जा सकता ॥ ६ ॥

हे भाई, गुरु से मिलो, (तभी परमात्मा का) भय मन में बसता है; भय द्वारा (अहंभाव का) मरना ही सच्चा लेख है (सुंदर भाष्य है) । स्नान, दान तथा शुभ कर्म यह है (कि परमात्मा के) दरबार से विशेष (वस्तु) नाम (प्राप्त हो) । गुरु के अंकुश (तात्पर्य यह कि शिक्षा) से जिसने नाम को दृढ़ कर लिया है, उसके (मन में) नाम बस गया है (और उसके सारे बाह्य वेश आदि समाप्त हो गए हैं) ॥ ७ ॥

हे भाई, यह शरीर सर्राफ की दूकान है, अपार नाम हो (इस शरीर रूपी दूकान का सोदा है । इस सोदे को वह व्यापारी पक्की तरह—दृढ़तापूर्वक प्राप्त करता है जो गुरु के उपदेश द्वारा विचार करता है । हे नानक, वह व्यापारी धन्य है, जो गुरु से मिल कर (नाम का) व्यापार करता है ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

जिनी सतिगुरु सेविआ पिआरे तिन के साथ तरे ।
तिना ठाक न पाईऐ पिआरे अमृत रसन हरे ॥
बूढे भारे मै बिना पिआरे तारे नदरि करे ॥१॥
भी तू है सालाहणा पिआरे भी तेरी सालाह ।
बिरगु बोहिष भै डूबीऐ पिआरे कंधी पाई कहह ॥१॥रहाउ॥
सालाही सालाहणा पिआरे दूजा अवरु न कोइ ।
मेरे प्रभ सालाहनि से भले पिआरे सबदि रते रंगु होइ ॥
तिस की सगति जे मिले पिआरे रसु लै ततु बिलोइ ॥२॥
पति परवाना साच का पिआरे नामु सचा नोसाणु ।
आइआ लिखि ले जावणा पिआरे हुकमी हुकमु पछाणु ॥
गुर बिनु हुकमु न बूझीऐ पिआरे साचे साचा ताणु ॥३॥
हुकमे अंदरि निमिआ पिआरे हुकमे उवर मआरि ।
हुकमे अंदरि अंमिआ पिआरे ऊधउ सिर कै भारि ।
गुरमुखि दरगह जाणीऐ पिआरे चले कारज सारि ॥४॥
हुकमे अंदरि आइआ पिआरे हुकमे जावो जाइ ।
हुकमे बंनि चलाईऐ पिआरे मनमुखि सहै सजाइ ॥
हुकमे सबदि पछाणीऐ पिआरे दरगह पैघा जाइ ॥५॥
हुकमे गणत गणाईऐ पिआरे हुकमे हउमै दोइ ।
हुकमे भवे भवाईऐ पिआरे अवनणि सुठी रोइ ॥
हुकमु सित्रापे साह का पिआरे सतु मिले बडिआई होइ ॥६॥

आखणि अउला आलोऐ पिआरे किउ सुलीऐ सचु नाउ ।
जिनी सो सालाहिआ पिआरे हउ तिन बलिहारै जाउ ॥
नाउ मिले संतोलीआ पिआरे नदरी मेलि मिलाउ ॥७॥
काइआ कागदु जे थोऐ पिआरे मनु मसबाणी धारि ।
ललता लेखणि सच की पिआरे हरि गुण लिखहु बोचारि ॥
अनु लेखारि नानका पिआरे साचु लिखै उरिधारि ॥८॥३॥

हे प्यारे, जिन्होंने सद्गुरु की आराधना की, उनके काफिले (संसार-सागर) पार हो गए । उन्हें (परलोक में कोई) रोक नहीं पाता, अमृत-नाम से उनका रसना हरी (मीठी) कर

देता है। जो परमात्मा के भव बिना (पापों के भार से) भारी (बजनी) हुए थे, वे डूब गए; (यदि परमात्मा) कृपादृष्टि करे, (तो उन्हें भी तार दे) ॥ १ ॥

हे प्यारे, (परमात्मा) बार-बार (फिर-फिर, प्रत्येक दशा में) तेरा गुणगान करना चाहिए और तेरी ही स्तुति करनी चाहिए। बिना जहाज के (मनुष्य) भयावह—डरावने (समुद्र) में डूबता है, उस किनारे वह कैसे लग सकता है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे प्यारे, क्लेशनीय—प्रशंसनीय (हरी) की ही प्रशंसा करनी चाहिए; उसके बिना कोई दूसरा नहीं है। जो मेरे प्रभु की स्तुति करते हैं, वे (बहुत) भले हैं; शब्द (नाम) में अनुरक्त होने से, (बड़ा) रंग (आनन्द) होता है। यदि ऐसे पुरुष की संगति प्राप्त हो जाय, तो (नाम के) रस को लेकर परमात्म-तत्व रूपी (मक्खन) को मथना चाहिए ॥ २ ॥

हे प्यारे, सच्चा परवाना प्रतिष्ठा (पति) का होना है और उसके ऊपर नाम का चिह्न (निशान) होता है। जगत् में जो यह सच्चा परवाना लिखा कर ले जाता है, (वही धन्य है); हुक्म करनेवाले (हरी) का हुक्म पहचानो। गुरु के बिना हुक्म समझा नहीं जा सकता; उस सच्चे (हरी) का सत्य ही बल है ॥ ३ ॥

हे प्यारे, (मनुष्य परमात्मा के) हुक्म से ही (माता के) गर्भ में स्थित हुआ और हुक्म से ही उल्टे सिर के बल जन्म धारण किया। (मारे मनुष्यों में) गुरुमुख को ही परमात्मा के दरबार में मान प्राप्त हुआ और अपना कार्य बना लिया (जन्म सार्थक कर लिया) ॥ ४ ॥

हे प्यारे, (जीव) (परमात्मा के) हुक्म के अंतर्गत ही (इस संसार में) आया है और जाते समय भी हुक्म से ही जाता है। हुक्म से ही (जीव अपने कर्मानुसार) बाँधा जाकर (यमपुर की ओर) चलाया जाता है (और हुक्म से ही) मनुमुख सजा पाता है। हुक्म द्वारा ही शब्द—नाम के माध्यम में (हरी को) पहचाना जाता है (और परमात्मा के) दरबार में जाकर मनुष्य विरोधा (प्रणिष्ठा के वस्त्र) पाता है ॥ ५ ॥

हे प्यारे, (मनुष्य) (परमात्मा के) हुक्म द्वारा गिननी गिनने में पड़ जाता है, (कि मैंने अमुक अमुक कर्म किए और इनका अमुक (अमुक फल होना चाहिए); हुक्म से ही अहंकार और द्वेष भाव उत्पन्न होते हैं। हुक्म के अनुसार ही (वह कर्मों के बन्धन में पड़ कर) भटकता फिरता है, (हुक्म से ही) श्रवणगुणों में मोहित (सृष्टि) रोती है—दुःखी होती है ॥ ६ ॥

हे प्यारे, नाम कहने में (बहुत) कठिन है। फिर किस प्रकार सच्चा नाम मुना जाय ? जिन (भक्तों) ने नाम की प्रशंसा की है, मैं उन पर बलिहारी हो जाता हूँ। (यदि) नाम प्राप्त हो जाय, तो मैं संतुष्ट हो जाऊँ, किन्तु कृपा-दृष्टि करने वाला (हरी) यदि इसे दे, तभी मिल सकता है ॥ ७ ॥

यदि शरीर कागज हो जाय, और मन को दावात धारण कर लिया (मान लिया जाय), जीव सत्य लिखने वाली कलम हो, तो हरी के गुणों को विचारपूर्वक लिखो। हे नानक, वह लेखक धन्य है, जो हृदय में धारण करके सत्य लिखता है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

दुनुकी

तू गुणबाली निरमलो भाई निरमलु ना मनु होइ ।

हम अपराधी निरगुले भाई तुझी ते गुण सोइ ॥ १ ॥

मेरे प्रीतमा तू करता करि बेलु ।
हउ पापी पाखंडीआ भाई मनि तनि नाम बिलेखु ॥२॥
बिलु माइआ चितु मोहिआ भाई चतुराई पति खोइ ।
चित्त महि ठाकुरु सच्चि बसे भाई जे गुर गिआनु समोइ ॥३॥
रुड़ी रुड़ी आखीऐ भाई रुड़ी लाल चललु ।
जे मनु हरि सिउ बैरागीऐ भाई दरि घरि साखु अमूलु ॥४॥
पाताली आकासि तू भाई घरि घरि तू गुण गिआनु ।
गुर मिलिऐ सुख पाइआ भाई चूना मनहु गुमानु ॥५॥
जलि मलि काइआ माजोऐ भाई भी मैना तनु होइ ।
गिआनि महा रसि नईऐ भाई मनु तनु निरमलु होइ ॥६॥
देवी देवा पूजीऐ भाई किआ मागउ किआ देहि ।
पाहणु नीरि पखालीऐ भाई जल महि बूडहि तेहि ॥७॥
गुर बिनु अलखु न लखीऐ भाई जगु बूडे पति खोइ ।
मेरे ठाकुर हाथि बडाईआ भाई जे भावे ते बेइ ॥८॥
बईअरि बोलै मोठली भाई साखु कहै पिर भाइ ।
बिरहै बेधी सच्चि बसी भाई अधिक रहौ हरि नाइ ॥९॥
सभु को आखे आपणा भाई गुर ते बुझै सुजानु ।
जो बोधे से उबरे भाई सबहु सचा नीसानु ॥१०॥
ईअन अधिक सकेलीऐ भाई पावकु रंचक पाइ ।
खिनु पलु नामु रिदे बसे भाई नानक मिलणु सुभाइ ॥१०॥४॥

(हे हरी), तू गुणों का दाता और पवित्र है, (किन्तु हमारा) मन निर्मल नहीं है ।
(हे प्रभु) हम अपराधी और गुणहीन हैं, तुम्हीं से (प्रभु) गुण प्राप्त हो सकते हैं ॥१॥

हे मेरे प्रियतम, तू कर्ता है (और तू ही सृष्टि) रच कर उसकी देखभाल करता है ।
मैं पापी और पाखण्डी हूँ, मेरे तन मन में नाम विशेष रूप से बसा दे ॥२॥

चित्त माया के त्रिष में मोहित हों कर चतुरता से अपनी प्रतिष्ठा खो बैठता है । यदि
गुरु द्वारा (प्रदत्त) ज्ञान मन में समा जाय, तो चित्त में ठाकुर (स्वामी, प्रभु) सच्ची (रीति
सं) बस जाता है ॥३॥

हे भाई, (सभी कोई) 'सुन्दर सुन्दर' कहते हैं, (लेकिन) सुन्दर गहरे लाल रंग का
है [चञ्चल = फारीसी चू — लाजा, लावा के फूल के समान लाल] । यदि मन हरी (के प्रेम) में
बैरागी हो जाय, तो हरी के महल और दरबार में सच्चा और भूल से रहित गिना जाता है ॥४॥

(हे प्रभु) तू ही आकाश और पानाल में है । प्रत्येक घर में (प्रत्येक स्थान में)
तू ही (सारे) गुण है (और तू ही) ज्ञान है । (जब मैं) गुरु से मिला, (तभी) सुख
पाया और (मेरे) मन से अभिमान नष्ट हो गया ॥ ४ ॥

पानी से मल-मल कर शरीर को (खूब) धोया जाय, किन्तु (वह फिर भी) गंदा

हो जाता है । (अतएव) हे भाई, ज्ञान के महा रस (अमृत) में स्नान करो, (जिससे) तन और मन—(दोनों ही) निर्मल हो जायें ॥ ५ ॥

देवी-देवताओं को पूजकर (उनसे) क्या मांगूँ और (वे) दे ही क्या सकते हैं ? पत्थर (की मूर्तियों) को (यदि) पानी में धोया जाय, तो वे डूब जाती हैं, तब वे औरों को कैसे तार सकती है ? ॥ ६ ॥

गुरु के बिना अलक्ष्य (हरी) को नहीं लखा जा सकता, नहीं समझा जा सकता, बिना गुरु के (संसार) प्रतिष्ठा खोकर डूब जाता है । मेरे ठाकुर (स्वामी) के हाथ में (सारी) बड़ाईयाँ हैं, जिसे अच्छा लगता है, उसे (वह) देता है ॥ ७ ॥

यदि पति- (परमात्मा के) प्रेम में स्त्री सत्य का अप करे, तो (वह) मृदुभाषिणी हो जाती है । वह विरह की विधो हुई सत्य में निवास करती है और हरि के नाम में (भलीभाँति रंग जाती है) ॥ ८ ॥

(हरी को) सभी कोई 'अपना अपना' कहते हैं, किन्तु जो व्यक्ति गुरु के द्वारा (हरी का स्वरूप) समझता है, (वही) चतुर है । (जो व्यक्ति) हरि के प्रेम में बिधे हुए है, वे तर गए, (उनके ऊपर) नाम शब्द का सच्चा चिह्न लगता है—(मुहर लगती है) ॥ ९ ॥

जिस प्रकार खूब ईंधन एकत्र किया जाय और रस्ती भर (रंच मात्र) घग्नि डाल दी जाय, (तो सारा ईंधन दग्ध हो जाता है), उसी प्रकार क्षण और पल मात्र भी यदि हरी का नाम मन में बस जाय, (तो समस्त पाप दग्ध हो जाते हैं) और स्वाभाविक ही (परमात्मा का) मिलाप हो जाता है ॥ १० ॥ ४॥

१ ओं सतिगुरु प्रसादि ॥ राग सोरठि, महला १,

वार

सलोकु : सोरठि सदा सुहावणी जे सवा मन होइ ।

दंबी मैलु न कतु मन जीभे सवा सोइ ॥

ससुरै पेईऐ भै वसी सतिगुरु सेवि निसंग ।

परहरि कपड़ु जे पिर मिले खुसी राबे पिरुसंगि ॥

सवा सीगारी नाउ मन कबे न मैलु पतंगु ॥

बेवर जेठ मुए दुखि समू का उरु किमु ।

जे पिर भावै नानका करम मणी सनु सनु ॥१॥

ता की रजाइ लेखिआ पाइ अब किआ कीजे पांजे ।

हुकम होआ हासलु तबे होइ निबड़िआ हंडहि जीअ कमबे ॥२॥

सलोकु : सोरठ रागिनी तभी सदैव सुहावनी होती है, यदि इसके द्वारा गाया और सुना गया सच्चा हरी मन में बस जाय और (स्त्री—प्राणी के) दाता में मेल न लगे (तात्पर्य यह कि हराम की चीज खा कर मुँह मेलना न करे), मन में (वैर-विरोध वा) धाव न हो और जीभ पर उस सच्चे (हरी) का नाम हो । [कतु=धरवी, जहम, धाव]

ससुराल और मायके (नहर) (तात्पर्य यह कि लोक-परलोक) में (हरी के) भय में रहा जाय और सद्गुरु को निशंक होकर सेवा की जाय । कपड़े (सांसारिक शृङ्गार) त्याग कर ही यदि पति का मिलाप हो सके, तो (स्त्री को) उससे मिलकर प्रसन्नता होती है और (उसके मन में) कभी पाप (मैल) का पतिगा नहीं लगता ।

उसके देवर और जेठ (सासारिक विकार) दुःखी होकर मर गए, तो सास (माया) का किसे डर है ? हे नानक, (पति-परमात्मा को) मन में बसा कर, यदि (जीवात्मा रूपी) स्त्री पति परमात्मा को अच्छी लगे, तो उसके कर्म (ललाट) में भाग्य का टीका समझो । (उसे हर स्थान में) सच्चा (प्रभु) ही दिखाई पड़ता है ॥ १ ॥

हे पंडित, इस (समय दुःख करने से) कुछ नहीं बन सकता, प्रभु की मर्जी के अनुसार (अपने ही किए पूर्व कर्मों के अनुसार) लिखा लेख (भाग्य) मिलता है; जब प्रभु का हुक्म हुआ, तभी जो कुछ होना था, वह हुआ (और उसी लेख के अनुसार) जीव (कर्म) करते फिरते हैं ॥ २ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु धनासरी, महला १, चउपदे, घर १,

सबद

[१]

जीउ डरतु है आपणा कै सिउ करी पुकार ।
 दूख विसारणु सेविआ सदा सदा दातारु ॥१॥
 साहिबु मेरा नीत नवा सदा सदा दातारु ॥१॥ रहाउ ॥
 अनदिनु साहिबु सेबीऐ अंति छड़ाए सोइ ।
 सुणि सुणि मेरी कामणी पारि उतारा होइ ॥२॥
 बड़भाल तेरे नामि तरा । सब कुरबाणै जाउ ॥१॥ रहाउ ॥
 सरबं साखा एकु है दूजा नाही कोइ ।
 ताकी सेवा सो करे जाकउ नवरि करेइ ॥३॥
 तुषु बाकु पिघारे केव रहा ।
 सा बड़िआई देहि जिनु नामि तेरे लागि रहा ॥
 दूजा नाही कोइ जिसु आगे पिघारे जाइ कहा ॥१॥ रहाउ ॥
 सेबी साहिबु आपणा अवरु न जाखउ कोइ ।
 नानकु ताका दासु है बिंद बिंद चुल चुल होइ ॥४॥
 साहिब तेरे नाम बिटहु बिंद बिंद चुल चुल होइ ॥१॥ रहाउ ॥४॥१॥

(अपने पापों का स्मरण करके) मेरा जी डर रहा है; मैं किससे अपनी पुकार कऊँ ? (इसीलिए) (मैं) दुःखों के भुना देनेवाले (दुःखों के दूर करनेवाले) हरी की सेवा करता हूँ, जो सदैव दयालु है ॥ १ ॥

मेरा साहब नित्य नवीन है और सदैव से ही दयालु है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

प्रतिदिन साहब (स्वामी) की आराधना करनी चाहिए, अंत में (लोगों को दुःखों से) बड़ा छुड़ाता है । (हरी का नाम) सुन-पुन कर, हे मेरी सखी, मुक्ति हो जाती है ।
 [कामणी=स्त्री, सहेली] ॥ २ ॥

हे दयालु (परमात्मा), तेरे नाम से (मैं) तर जाता हूँ; मैं (उस नाम पर) सदैव कुरबान होता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सर्वत्र (सभी स्थानों में) एक सच्चा (हरी ही) (व्यापक है) । (उसे छोड़ कर) दूसरा कोई और नहीं है । उस (परमात्मा की) सेवा बही कर सकता है, (जिसके ऊपर) वह कृपादृष्टि करता है ॥ २ ॥

हे प्यारे तेरे बिना, मैं किस तरह रह सकता हूँ ? (हे प्रभु) मुझे बही बड़ाई दे, जिससे (मैं) तेरे नाम में लगा रहूँ । हे प्यारे, मेरे लिए कोई दूसरा ऐसा नहीं है, जिसके सम्मुख जा कर (अपने दुःखो-मुखों को) कहूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) अपने साहब की आराधना करता हूँ, और किसी से भी नहीं याचना करता । नानक, उस (प्रभु) का दास है, (जिसके ऊपर) पल-पल मैं (वह) कुरबान-कुरबान होता है ॥ ४ ॥

हे मालिक, तेरे नाम के ऊपर (मैं) पल-पल में टुकड़े टुकड़े होऊँ, कुरबान होऊँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

हम आदमी हाँ इक दमी मुहलति मुहलत न जाणा ।

नानक बिनबै तिसै सरेबहु जाके जोध पराणा ॥१॥

अंधे जीवना बीचारि बेलि केते के बिना ॥१॥रहाउ॥

साजु मासु सभु जोध तूमारा तूं मे खरा पिआरा ।

नानकु सादरु एब कहतु है सचे परबदगारा ॥२॥

जे तू किसै न बेही मेरे साहिबा किआ को कइ गहणा ।

नानकु बिनबै सो किछु पाईऐ पुरबि लिखे का लहणा ॥३॥

नासु खसम का चिति न कीआ कपटी कपटु कमरणा ।

जम दुआरि जा पकड़ि खलाइआ ता चलदा पछुताणा ॥४॥

जब लगु इनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ ।

आलि रहे हम रहणु न पाइआ जीवतिआ मरि रहीऐ ॥५॥२॥

हम आदमी है, एक दम भर रहनेवाले है, हमें पता नहीं है कि जीवन की अवधि और मुहूर्त कितना है । (इसीलिए) नानक बिनय करता है कि तुम उसकी सेवा करो, जिसके जीव और प्राण है (अर्थात् जो जीव और प्राण का स्वामी है) ॥१॥

हे अन्धे (मूर्ख मनुष्य), विचार करके देखो कि हमें कितने दिन जीना है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु), सारी साँसे, शरीर और प्राण तेरे ही है । नानक शायर (कवि) इस प्रकार कहता है, "हे सच्चे पालनकर्ता, (हरी) तू मुझे अत्यधिक प्रिय है ।" ॥२॥

हे मेरे साहब, यदि तू किसी को दान न दे, तो कोई बया गहने रख कर ले सकता है [गहना काढ़ना=कोई आभूषण गिरवी रख कर कोई वस्तु अथवा रुपये आदि ले लेना];

(अर्थात् मनुष्य के पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे रख कर वह हरी से कोई दान ले सके। यदि किसी को परमात्मा का दान मिलता है, तो वह कृपा से ही मिलता है। हम में कोई भी गुण ऐसा नहीं है, जो परमात्मा के दान के बदले में दिया जा सके)। नानक विनय करता है, (कि हमें) वही कुछ प्राप्त होता है, जो पहले से ही (हरी की ओर से) हमें प्राप्त होना लिखा रहता है ॥ ३ ॥

पति (परमात्मा) का नाम बित्त में (धारण) नहीं किया और यह कपटी (पाखण्डी) मनुष्य (अहर्निश) कपट ही करता रहा। यमराज के दरवाजे की ओर जब पकड़ कर धसोटा गया, तब (घसिट कर) चलते हुए पछताने लगा ॥ ४ ॥

जब तक संसार में जीवित रहिए, तब तक (हरी का नाम) कहिए (जपिए) और सुनिए। (हमने अत्यधिक) खोज की (पर इस संसार में स्थिर) रहने की (कोई भी युक्ति दृष्टि में नहीं आई), (किन्तु अन्त में इसी सिद्धान्त पर पहुँचा कि) जीवित भाव से मर कर (इस दुनियाँ में) रहा जाय। (तात्पर्य यह कि अहंभाव से मर कर दुनिया में रह कर कर्म किए जायें) ॥ ५ ॥ २ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु दूजा ॥

[३]

किउ सिमरी सिबरिआ नही जाइ। तपै हिआउ जोअड़ा बिलसाइ ॥

सिरजि सवारे साचा सोइ। तितु बिसरोऐ चंगा किउ होइ ॥१॥

हिकमति हुकमि न पाइआ जाइ। किउकरि साबि मिलउ मेरो माइ ॥१॥रहाउ॥

बलरु नामु देखण कोई जाइ। ना को चाखै ना को खाइ ॥

लोकि पतीऐ ना पति होइ। ता पति रहै राखै जा सोइ ॥२॥

जहू देखा तहू रहिआ समाइ। तुषु बिनु दूजी नाही जाइ।

जे को करै कीतै किआ होइ। जिसनो बलसे साचा सोइ ॥३॥

हुण उठि चलण सुहति कि तालि। किआ सुहु देसा गुण नही नालि ॥

जैसी नदरि करै तैसा होइ। बिरु नवरी नानक नही कोइ ॥४॥१॥३॥

(हे प्रभु), (मैं) किस प्रकार (तेरा) स्मरण करूँ? स्मरण नहीं करते बनता।

(मेरा) हृदय दग्ध होता है और मन ज्वलता है। वही सच्चा (प्रभु) सृष्टि रच कर (उसे) संवारता है, (उसका शृङ्गार करता है)। (भला), उसे भूलने पर भला (अच्छा) कैसे बना जा सकता है ॥१॥

किसी भी चालाकी अथवा हुक्म (जोर) के द्वारा (सच्चा हरी) प्राप्त नहीं किया जा सकता। हे मेरी माँ, किस प्रकार सत्य (हरी) से मिलूँ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नाम रूपी सोदा कोई विरला ही देखने (परखने, खोजने) जाता है। इसे न तो कोई चखता है और न खाता है (तात्पर्य यह है कि सच्चे अन्तःकरण से न तो कोई नाम को जप

करता है और न उसका कोई रसास्वादन ही करता है) (सांसारिक) लोगो की तसल्ली (सन्तोष) से प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त होती । प्रतिष्ठा तो तभी होती है, जब (परमात्मा) (उसे) रखे ॥ २ ॥

(हे प्रभु), जहाँ मैं देखता हूँ, वही तू समायो है (व्याप्त है); तेरे बिना (मेरे लिये) कोई अन्य जगह (स्थान—आश्रय) नहीं है । यदि कोई करना चाहता है, तो उसके करने से क्या होता है ? जिसे वह सच्चा (प्रभु) देता है, (उसो को मिलता है) ॥ ३ ॥

मुझे तुरन्त ही उठकर चले जाना है—एक मुहुर्त में और ताली बजने मात्र में । (हरो को) क्या मुँह दिखाऊँगा ? (मुझमें) तो कुछ भी गुण नहीं हैं । (प्रभु) जैसी दृष्टि करता है (मनुष्य) वैसा ही हो जाता है, (तात्पर्य यह कि यदि प्रभु की कृपादृष्टि होती है, तो मनुष्य अच्छा हो जाता है और यदि उसको कोप की दृष्टि होती है, तो वह बुरा बन जाता है) । (हे प्रभु), बिना (तेरी) दृष्टि के कोई भी मनुष्य नहीं है (सभी के ऊपर तेरी दृष्टि है) ॥ ४ ॥ १ ॥ ३ ॥

[४]

नदरि करे ता सिमरिआ जाइ । आत्मा ब्रवे रहै लिब लाइ ॥

आत्मा परात्मा एको करे । अंतर की बुझिया अंतरि मरे ॥१॥

गुर परसादी पाइआ जाइ । हरि सिउ चितु लागे फिर कालु न खाइ ॥१॥रहाउ॥

सचि सिमरिऐ होबे परगासु । तते बिलिआ महि रहै उवासु ॥

सतिगुर की ऐसी बडिआई । पुत्र कलत्र बिचे गति पाई ॥२॥

ऐसी सेवकु सेवा करे । जिस का जीउ तिसु आगै धरे ॥

साहिब भावै सो परबासु । सो सेवकु दरगह पावै मासु ॥३॥

सतिगुर की भूरति हिरदै बसाए । जो इछे सोई फलु पाए ॥

साचा साहिबु किरपा करै । सो सेवकु जम ते कैसा उरै ॥४॥

भनति नानकु करे बीचारु । साचो बाणी सिउ धरे पिआरु ॥

ता को पावै मोल बुआरु । जपु तपु सभु इहु सबहु है सारु ॥५॥२॥४॥

यदि (हरो) कृपा करे, तभी उसका स्मरण किया जा सकता है, (अन्यथा नहीं) । (प्रभु की कृपा-दृष्टि से ही) (साधक की) आत्मा द्रवीभूत हो जाती है और (हरो के) एक निष्ठ [ध्यान में लग जाती है । (वह साधक) (अपनी) आत्मा को] परमात्मा से (युक्त करके) एक कर देता है (और उसके) अन्तःकरण का द्वैतभाव (उसके) अन्तर्गत ही समाप्त हो जाता है ॥ १ ॥

गुरु की कृपा से ही (हरी) पाया जाता है । हरी से चित्त लग जाने पर फिर काल नहीं भक्षण करता ॥१॥ रहाउ ॥

सत्यस्वरूप (परमात्मा) का स्मरण करने से (ब्रह्मज्ञान का) प्रकाश हो जाता है । इस कारण (ब्रह्मज्ञानी माया के) विष में भी उदासीन उपराम रहता है (तात्पर्य यह कि सांसारिक कार्यों को करता हुआ भी ब्रह्मज्ञानी निर्लिप्त रहता है । सद्गुरु की ऐसी महत्ता है

(कि उसकी शिक्षा पर चलने से शिष्य) पुत्र-कलत्र के बीच रहते हुए भी (गृहस्थी में रहते हुए) मुक्ति पा लेता है ॥ २ ॥

सेवक (परब्रह्म को) ऐसी आराधना करे कि जिस (प्रभु का) जीव है, उसे समर्पित कर दे (तात्पर्य यह कि अपना जीवन परमात्मा को आशा में व्यतीत करे, जो उसे अच्छा लगे, उसे शिरोधार्य करे) । (जो) प्रभु को अच्छा लगता है, वही प्रामाणिक है और वही सेवक (परमात्मा के) दरबार में सम्मान पाता है ॥ ३ ॥

जो सद्गुरु की मूर्ति [मूर्ति का भाव सद्गुरु के गुण, आवरण और माहात्म्य से है] (अपने) हृदय में बसा लेता है; वह जो इच्छा करता है, वही फल पा लेता है । (जिसके) ऊपर सच्चा साहब कृपा करता है, यह सेवक यमराज से क्यों डरे ? ॥ ४ ॥

नानक सोच विचार कर प्रार्थना करता है कि यदि कोई (गुरु की) सच्ची बाणी से प्यार करे तो वही मोक्ष-द्वार प्राप्त करता है । शब्द (नाम-जप) ही (वास्तविक) जप-तप और सब कुछ है ॥ ५ ॥

[५]

जिउ तपतु है बारोबार । तपि तपि लपे बहुतु बेकार ।

जे तनि बाणी विसरि जाइ । जिउ पका रोगी बिललाइ ॥ १ ॥

बहुता बोलतु भूलतु होइ । बिरु बोले जाणै सनु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिनि कन कोते प्रखी नाकु । जिनि जिहवा बिती बोले तातु ॥

जिनि मनु राखिआ भगनी पाइ । बाजै पवरु आखै सभ जाइ ॥ २ ॥

जेता मोहु परीति सुभाव । सभा कालख बाया बाय ॥

बाग दोस सुहि बलिआ लाइ । बरगह वैसरु नाहो जाइ ॥ ३ ॥

करमि मिले आखतु तेरा नाउ । जितु लगि तरणा होक नही चाउ ॥

जे को डूबै फिरि होवै सार । नानक साचा सरब दातार ॥ ४ ॥ ३ ॥ ५ ॥

जोब बारबार दग्ध होता रहता है । वह दग्ध ही होकर खप जाता है और बहुत विकारयुक्त हो जाता है । जिस शरीर (मनुष्य) को गुरुवाणी भूल जाय, वह पक्के रोगी के समान बिललाता है (चीखता) है ॥ १ ॥

बहुत बोलना तो व्यर्थ बकना होता है । (हरी) बिना बोले ही सब कुछ समझता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिसने हमारे कान, आँख और नाक बनायी हैं; जिसने जिह्वा प्रदान की, जो तुरन्त बोलती है, जिसने मन को (हमें) (माता के गर्भ की) उष्णता में डाल कर (फिर) बचा रक्खा (और जिस हरी की कृपा से कानों में हवा) जाकर बजती है (ध्वनि उत्पन्न होती है) (और सारी बातें) जाकर (कंठ से) उच्चरित होती है, (उस परमात्मा का स्मरण करना चाहिए) ।

बिलने भी मोह, (सांसारिक) प्रीति और स्वाद (आकर्षण) हैं, (ये सब आत्मा को) (क्लृप्त बनाने के लिए) कालिख हैं, जो उसे दागों से भर देते हैं । (जो मनुष्य इन) बाणों

को, (इन) दोषों को (अपने) मुंह में लगा कर जाता है, उसे (परमात्मा के) दरबार में बैठने नहीं मिलता ॥३॥

(हे प्रभु), (तेरी) कृपा से ही तेरा नाम कहने (अपने) को मिलता है । उसी (नाम-जपने) से ही (संसार-सागर से) तरा जा सकता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं है । यदि कोई ब्रह्मा भी हो, तो (नाम जपने से) उसकी भी खोज ली जाती है (हरी संभाल करता है) । हे नानक, सच्चा (हरी) ही सब का दाता है ॥४॥ ३॥ ५ ॥

[६]

चोर सलाहे चितु न भीजे । जे बदी करे ता तसू न छोर्जे ॥
चोर को हामा भरे न कोइ । चोर कीया चंगा किउ होइ ॥१॥
सुणि मन ग्रंथे कुत्ते कूड़िभार । बिनु बोले बूझीये सचिभार ॥२॥ रहाउ ॥
चोर सुभालिउ चोर सिभारणा । छोटे का सुलु एकु दुगारणा ॥
जे साथि रखीये दीजे रलाइ । जा परखीये छोटा होइ जाइ ॥२॥
जैसा करे सु तैसा पावै । आपि बीजि भाये ही खावै ॥
जे बडिभारिभा भाये खाइ । जेही सुरति तेहै राहि जाइ ॥३॥
सउ कूड़ीया कूहु कबाहु । भावै सभु भालउ संसार ॥
तुषु भावै ग्रथी परवारु । नानक जाएँ जायु सुजगु ॥४॥४॥६॥

(यदि कोई) चोर (छोटा व्यक्ति) किसी की इलाधा (प्रशंसा) भी करे, (तो उससे उसका) चित्त नहीं प्रसन्न होता । यदि (वह चोर) बुराई भी करता है, (तो तनिक) घाटा भी नहीं होता । चोर की हामी कोई भी नहीं भरता (चोर का जामिन कोई भी नहीं होता) । जो काम चोर ने किया है, वह सुंदर कैसे हो सकता है ? ॥ १ ॥

हे ग्रंथे कुत्ते और भूटे मन सुनो; सच्चा (हरी) बिना बोले ही सब कुछ जानता है ॥१॥ रहाउ ॥

चाहे चोर सुहावना (बन जाय) और चतुर (दिखाई दे), किन्तु है वह छोटा ही । छोटे का मूल्य दो गंडे है (अत्यन्त तुच्छ है) । चाहे छोटे रुपये को (अन्य खरे सिक्कों के) साथ रखिये (अथवा उनमें बिलकुल) मिला दीजिए, किन्तु जब उसकी परख होगी, तो छोटा ही निकलेगा ॥२॥

(मनुष्य) जैसा करता है, वैसा ही पाता है, (वह) आप ही बोता है और आप ही (उसके फल) खाता है । यदि (कोई छोटा मनुष्य) स्वयं ही (अपनी) बड़ाईयाँ करे, (तो बड़ा नहीं बन जाता), जैसा उसकी बुद्धि है, वैसा ही राह चलेगा । तात्पर्य यह कि वह अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य करेगा ॥३॥

यदि (छोटा आदमी) सौ भूठी (बाते) करे और बुरी वस्तुओं को अच्छी बना कर दिखाये, और सारा (संसार धोखा खाकर उसे अच्छा) कहे, किन्तु है वह छोटा ही । [कबाड़ = टूटी फूटी चीजों को अच्छी बना कर बेचना, जैसा कबाड़ी लोग करते हैं] । (हे प्रभु, यदि) तुम्हें अच्छा लगे, तो अर्द्ध (पुख) (अपूर्ण व्यक्ति) भी प्रामाणिक हो जाये । हे नानक, वह जानकार (त्रिकालज्ञ प्रभु) सब कुछ जानता है ॥४॥ ४॥ ६॥

[७]

काइआ कागदु मनु परबाणा । सिर के लेख न पड़े इआणा ॥
 दरगह घड़ीअहि तीने लेख । खोटा कामि न आवै वेणु ॥१॥
 नानक जे बिचि रूपा होइ । खरा खरा आखै सभु कोइ ॥१॥रहाउ॥
 कादी कूडु बोलि मस्तु खाइ । ब्राह्मणु नावै जीबा घाइ ॥
 जोगी जुगति न जाएँ अंधु । तीने ओजाड़े का बंधु ॥२॥
 सो जोगी जो जुगति पछाएँ । गुर परसादी एको जाएँ ॥
 काजो सो जो उलटी करे । गुर परसादी जीवतु मरे ॥
 सो ब्राह्मणु जो बहसु बीबारे । आपि तरे सगले कुल तारे ॥३॥
 दानसबंदु सोई दिलि धोवै । मुसलमाणु सोई मलु लोवै ॥
 पड़िआ बूझे सो परबाणु । जिसु तिरि दरगह का नोसाणु ॥४॥५॥७॥

शरीर कागज है और मन (स्वभाव, आचरण) (उसके ऊपर लिखा हुआ) परबाना (आदेशपत्र) है। मूर्ख (अज्ञानी) पुरुष (अपने) मत्थे के ऊपर (लिखा हुआ परमात्मा का) लेख नहीं पढ़ता। परमात्मा के दरबार में तीन प्रकार के लेख लिखे जाते हैं (उत्तम, मध्यम और निकृष्ट)। (विचार करके) देखो (जो) खोटा है, (वह) काम नहीं आता ॥१॥

हे नानक, जिस (सिक्के) में चाँदी होती है, (उसी को) सब 'खरा-खरा' कहते हैं; (और वही काम में आता है, खोटा सिक्का काम में नहीं आता, वह खोटी में फेंक दिया जाता है) ॥ ॥ रहाउ ॥

काजो भूत बोन बोल कर मल (ह्रगम को कमाई) खाता है। ब्राह्मण जीवों को मार कर (दुःख देकर), (फिर प्रदर्शन के लिए तीर्थों में) नहाता फिरता है। योगी अंधा (अज्ञानी) है, वह (परमात्मा में मुक्त होने की) युक्ति नहीं जानता, (उपयुक्त) तीनों ही उजाड़ के समान हैं ॥२॥

(वास्तव में) (सच्चा) योगी वही है, जो (परमात्मा से मिलन की) युक्ति जानता है और (वह) गुरु की कृपा से एक मात्र (हरी को ही) जानता है। काजो वही है, जो (माया की ओर से चित्त) उलट ले, (मोड़ ले) और गुरु की कृपा से जीवित ही (अपने अहंकारो से) मर जाय; वही ब्राह्मण है, जो ब्रह्म-तत्त्व का विचार करता है; (ऐसा ब्राह्मण) स्वयं तो तरता ही है, अपने समस्त वंश को भी तार देता है ॥३॥

जो (अपना) हृदय धोता है, (शुद्ध करता है), वही चतुर है। [दानसबंद—फारसी,=चतुर, सयाना, बुद्धिमान, अवलमंद]। जो पापों का मल नष्ट कर दे, वही (वास्तव में) मुसलमान है। जो पड़े हुए (शास्त्रों) को समझता है, (आचरण करता है) वही प्रामाणिक है—(लोक में भी, परलोक में भी) और (उसी के) मत्थे पर (हरी के) दरबार में प्रामाणिकता की मुहर लगती है [निशान=चिह्न, छाप, मुहर] ॥ ४ ॥ ५ ॥ ७ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर ३

[८]

कालु नाही जोगु नाही नाही सत का डबु ।
 धानसट जग भरिसट होए डूबता इव जगु ॥
 कल महि राम नामु साह ।
 अखी त मोटहि नाक पकड़हि ठगए कउ संसार ॥१॥ रहाउ ॥
 घांट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिन लोअ ।
 मगर पाछे कहु न सूझे एहु पवसु अलोअ ॥२॥
 खत्रोअ त घरसु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही ।
 सूसटि सभ एक बरन होई घरम की गति रही ॥३॥
 असट साज साजि पुराए सोधहि करहि बेद अभिआसु ।
 बिनु नासु हरि के सुकति नाही कहै नानक दासु ॥४॥ १॥६॥८॥

बिशेष : यह पद एक पाखण्डी ब्राह्मण के प्रति कहा गया है। वह ब्राह्मण अपने इष्ट स्थान पर बैठ कर लोगों से यह कहता था कि मैं त्रिकालज्ञ हूँ और मुझे तीनों लोकों का ज्ञान है। पर जब उसने अपनी अखि बन्द की, तो किसी ने उसके ठाकुर की पूजा की चौकी, उसके पीछे ही रख दी और वह उसे न पा सका। इसी घटना को देखकर गुरु नानक देव ने निम्नलिखित 'मवाद' कहा —

अर्थ : (भाजकल) न तो, वह समय है, न योग है और न सात्त्विक (जीवन व्यतीत करने का) डब, (ढंग-तरीका) ही (किसी को मालूम) है। संसार के द्रष्टव्यस्थान (पूजा-स्थान) भ्रष्ट हो गए हैं; (इस प्रकार) सारा जगत् डूब रहा है ॥ १ ॥

(इस) कलियुग में रामनाम ही श्रेष्ठ वस्तु है। (पाखण्डी लोग) संसार को ठगने के लिए अखि बन्द करके नाक पकड़ते हैं (जैसे कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थित हो रहे हैं) ॥१॥ रहाउ ॥

भँगूटे और पास की दो भँगुलियों की सहायता से (घांट से) नाक पकड़ते हैं (और यह दम्भ भरते हैं कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थिति होकर मुझे तीनों लोकों का ज्ञान है। किन्तु पीछे की वस्तु उन्हें नहीं सुझाई पड़ती; यह (कैसा अनोखा) पदमासन है ! ॥२॥

क्षत्रियों ने (दासता में पड़कर अपना) धर्म त्याग दिया और म्लेच्छों की भाषा ग्रहण कर ली। (सारी) सृष्टि एकवर्ण (वर्णसंकर) हो गई है, [तात्पर्य यह है कि लोग तमोगुणी हो गए हैं, उन्हें अपने कर्म-धर्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है—गुरु नानक का अभिप्राय 'एकवर्ण' से यह है कि 'दासता की एकता'] वैसे तो गुरु नानक देव जी जाति प्रथा के विरोधी थे—“ककड़ जाती ककड़ नाउ” ॥ ३ ॥

(पाठ एवं अर्थ बोध के) छाठो अंग (अथवा व्याकरण) शोध-शोध कर पुराणों का विचार करते हैं और वेदों का अभ्यास करते हैं, (पर यह सब अपरा ही बिद्या हैं, इन्से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती) । दास नानक यह कहता है कि बिना हरि के नाम के मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ४ ॥ १ ॥ ६ ॥ ८ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आरती

[६]

गगन मे धालु रवि चंदु दीपक बने-तारिका मंडल जनक मोती ।

धूपु मलप्रानलो पवणु चबरो करे सल बनराइ कूलंत जोती ॥१॥

कैसी आरती होइ भवसंडना तेरी आरती ।

अनहता सबद बाजंत मेरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सहस तब नैन नन नैन है तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ।

सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तब गंध इव चलत मोही ॥२॥

सब महि जोति ओति है सोइ । तिस कै चानणि सब महि चानणु होइ ॥

गुर साखी जोति परगटु होइ । जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥३॥

हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ।

कृपा जलु बेहि नानक सारिग कउ होइ जाते तेरे नामि बासा ॥४॥१॥७॥६॥

विशेष : गुरु नानक देव ने जगन्नाथपुरी के पंडितों को यह आरती सुनाई थी । इस पद में सगुण ब्रह्म के विराट्-स्वरूप का बड़ा ही मनोहर चित्रण किया गया है ।

अर्थ : (हे प्रभु तुम्हारी विराट् आरती के निमित्त) आकाश ऊनी धल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामण्डल (उस धान में) मोती के रूप में जड़े हैं । मलय चन्दन की सुगन्धि (तुम्हारी आरती की) धूप है । वायु चँवर कर रहा है । हे ज्योतिस्वरूप, बनों के खिले हुए सारे पुष्प (तुम्हारी आरती के लिए) पुष्प बने हुए हैं ॥ १ ॥

तुम्हारी आरती (सीमित आरती) कैसे हो सकती है ? हे भवखण्डन, तुम्हारी आरती कैसे हो सकती है ? अनाहत शब्द (तुम्हारी आरती में) नगाडे (के रूप में) बज रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

तुम्हारे सहस्रों नेत्र हैं, (फिर भी) एक भी नेत्र नहीं है । सहस्रों [मूर्तियाँ तुम्हारी ही हैं, (फिर भी) तुम एक मूर्ति भी नहीं हो । तुम्हारे सहस्रों] पवित्र चरण हैं, (तथापि) एक भी चरण नहीं है । (इसी प्रकार) तुम्हारी एक भी आणोन्द्रिय के बिना सहस्रों आणोन्द्रियाँ हैं । मैं तुम्हारे इस (अद्भुत) चरित्र पर मोहित हूँ ॥२॥

हे ज्योतिस्वरूप (परमात्मा), तुम्हारी ज्योति सभी में है । (तुम्हारी ही ज्योति के) प्रकाश से सारी वस्तुएं प्रकाशित होती हैं । यह (परमात्मा का अद्वितीय प्रकाश) गुरु के उपदेश से (अपने में) प्रकट होता है । जो तुम्हें अच्छा लगता है, वही (वास्तविक) आरती है ॥३॥

हरि के कमल रूपी चरणों के मकरंद में मेरा (भीरा रूपी) मन सदैव लोभी बना रहता है । मुझे प्रतिदिन (तुम्हारे प्रेम रूपी मकरंद की) व्यास बनी रहती है । नानक कहते हैं (कि हे प्रभु) मुझ पपीहे को अपनी कृपा का जल दो, जिससे तुम्हारे नाम में ही निवास हो ॥ ४ ॥ १ ॥ ७ ॥ ६ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ धनासरी महला १, घर २

असटपदीआं

[१]

गुरु सागर रतनी भरपूरे । अमृत संत चुगहि नही दूरे ॥
हरि रसु चोग चुगहि प्रभ भावै । सरवर महि हंसु प्रानपति पावै ॥१॥
किआ बगु बपुड़ा छपुड़ी नाइ । कीचड़ि डूबै मैलु न जाइ ॥१॥रहाउ॥
रखि रखि चरन धरे वीचारी । दुबिधा छोड़ि भए निरंकारी ॥
मुक्ति पदारथु हरि रसु चाखे । आबण जाण रहे गुरि राखे ॥२॥
सरवर हंसा छोड़ि न जाइ । प्रेम भगति करि सहजि समाइ ॥
सरवर महि हंसु हंस महि सागर । अकथ कथा गुर वचनी प्रादरु ॥३॥
सुन मंडल डकु जोगी बैसे । नारि न पुरलु कहहु कोऊ कैसे ।
नृभबण जोति रहे लिब लाई । सुरि नर नाथ सचे सरणाई ॥४॥
आनंद मूलु अनाथ अधारी । गुरमुखि भगति सहजि वीचारी ।
भगतिबछल भै काटणहारे । हउमे मारि मिले पगु धारे ॥५॥
अनिक जतन करि कालु संताए । मरगु लिखाइ मंडल महि आए ॥
जनमु पदारथु दुबिधा खोवै । ग्रासु न चीनसि भ्रमि भ्रमि रोवै ॥६॥
कहतउ पड़तउ सुणतउ एक । धीरज धरमु धरणीधर टेक ॥
जतु सतु संजमु रिदै समाए । चउथे पद कउ जे मनु पतीआए ॥७॥
साचे निरमल मैलु न लागै । गुर कै सबदि भरम भउ भागै ॥
मूरति मूरति आदि अनुपु । नानक जाचै सावु सरूपु ॥८॥१॥

गुरु समुद्र है और रत्नों में (सुन्दर गुणों से) परिपूर्ण है । वहाँ संतगण (हंसों की भाँति) अमृत (रूपी मोती) चुगते हैं (और वे) वहाँ से दूर नहीं जाते । (वे संतगण) हरि-रस (रूपी) चारे को चुगते हैं और प्रभु को (बहुत) अच्छे लगते हैं । (सद्गुरु रूपी) सरोवर में हंस (संत) प्राणों के स्वामी (हरी) को प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

बगुला बेचारा क्या कीचड़ वाली छोटी तलैया (गड्ढी) में नहाता है ? (वह तो) कीचड़ में ही डूबता है उसकी गंदगी नहीं दूर होती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(विचारवान् पुरुष) सँभल सँभल कर विचारपूर्वक कदम रखता है । (वह) दुबिधा को त्याग कर निरंकारी (निरंकार प्रभु का अनुगामी) हो जाता है, मुक्ति रूपी ना० वा० फा०—५३

(अमृत्य) पदार्थ (पा लेता है) और हरि-रस (का आस्वादन करता है) ; गुरु ने उसे बचा लिया और उसके जन्म-मरण समाप्त हो गए ॥ २ ॥

(सद्गुरु रूपी) सरोवर को (गुरुमुख रूपी) हंस कभी नहीं त्यागते; (वे) प्रेमा- (रागात्मिका) भक्ति करके सहजावस्था (तुरीय पद, चतुर्थ पद में) समा जाते हैं । सरोवर में हंस और हंस में सरोवर समाया रहता है । (तात्पर्य यह गुरु में शिष्य और शिष्य में गुरु समाया रहता है) । (शिष्य) गुरुवाणी द्वारा अकथनीय (हरी) को कथा और उसका सम्मान करता रहता है ॥ ३ ॥

शून्यमण्डल (निर्विकल्प अवस्था) में एक योगी (हरी) रहता है । न वह स्त्री है और न पुरुष । कोई उसके सम्बन्ध में कदा कह सकता है ? तीनों लोक (तात्पर्य यह कि सारी सृष्टि) उसकी ज्योति में ध्यान लगाए रखती है । देवतागण, मनुष्य और (योगियों के) नाथ उस सच्चे (प्रभु को) शरण में पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥

(हरी) आनन्द का मूल है और अनाथों का नाथ है । गुरुमुख लोग भक्ति और स्वाभाविक (आत्मज्ञान) द्वारा, उसका विचार करते हैं । (वह हरी) भक्त-वत्सल तथा भय को काटने वाला है । अहंकार को मार कर (साधक हरि में) मिलता है (और उसके मार्ग पर) चरण रखता है ॥ ५ ॥

(चाहे) अनेक यत्न किए जायें, (किन्तु फिर भी) काल दुःख देता है । (क्योंकि) मरना (तो हम अपने भाग्य में ही) लिखा कर, इस ससार में आए हैं । दुविधा (द्वैतभाव) में पड़कर जन्म के (अमृत्य) पदार्थ (परमात्मा) को खो देते हैं । (इस प्रकार मनुष्य) अपने भाग्य को नहीं पहचानता (और ससार-चक्र में चौरासी लक्ष योनियों के अंतर्गत) भटक-भटक कर रोता है ॥ ६ ॥

यदि साधक का मन सहजावस्था (तुरीयावस्था, चतुर्थ पद, निर्वाण पद) में आरूढ़ हो जाय, (तो वह एक हरी का ही वर्णन करता है, उसी को) पढ़ता है (और उसी को) सुनता है । घरणीघर (परमात्मा) (के प्रति उसकी) टेक ही (उसमें) धैर्य और धर्म (आदि शुभ गुणों को) दे देनी है । (इसके फलस्वरूप) यत्न, सत और संयम (स्वाभाविक रीति से) (उसके) हृदय में समा जाते हैं ॥ ७ ॥

(जो) सच्चे (हरी) द्वारा निर्मल (पवित्र होते हैं) उन्हें मैल नहीं लगती । गुरु के शब्द द्वारा (उनके) भ्रम और भय भग जाते हैं । नानक उस सच्चे स्वरूप वाले (हरी) को याचना करता है जो मुहावनी मूर्ति वाला, (सब से) आदि और अनुपम (उपमा से परे) है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

सहजि मिले मिलिआ परबाणु । ना तितु मरणु न आवणु जाणु ॥

ठाकुर महि दासु दास महि सोइ । जह बेला तह अवरु न कोइ ॥१॥

गुरुमुखि भगति सहज घरु पाईऐ । बिनु गुर भेटे मरि आईऐ जाईऐ ॥१॥रहाउ॥

सो गुरु करउ जि सासु टुड़ावै ॥ अकसु कयावै सबदि मिलावै ।

हरि के लोग अवर नही कारा । साचउ ठाकुर सासु पिछारा ॥२॥

तन महि मनुष्या मन महि साचा । सो साचा मिलि साचे राचा ॥

सेवक प्रभ के लागे पाइ । सतिगुरु पूरा मिले मिलाइ ॥३॥

आपि बिखावै आपे देखै । हठि न पतोजै ना बहु भेखै ॥

घड़ि भाड़े जिति श्रंखलु पाइआ । प्रेम भगति प्रभि मनु पतीआईआ ॥४॥

पड़ि पड़ि भूलहि छोटा खाहि । बहुतु सिआरणप आवहि जाहि ॥

नामु जपे भउ भोजनु खाइ । गुरुमुखि सेवक रहे समाइ ॥५॥

पूजि सिला तीरथ बनवासा । भरमत डोलत भए उदासा ॥

मनि मैले सूचा किउ होइ । साचि मिले पावै पति सोइ ॥६॥

आचारा बीचार सरीरि । आदि जुगवि सहजि मनु घीरि ।

पल पंकज महि कोटि उधारे । करि किरपा गुरु मेलि पिआरे ॥७॥

किसु घागै प्रभ तुषु सालाहो । तुषु बिनु वृजा मे को नाहो ।

जिउ तुषु भावै तिउ राखु रजाइ । नानक सहजि भाइ गुण गाइ ॥८॥१॥

(जो साधक हठ-निग्रह किए बिना) सहज (आत्मज्ञान) द्वारा (हरी से) मिलता है, (वही) प्रामाणिक (समझा) जाना है । उस व्यक्ति का मरना नहीं होता और उसका आना-जाना भी समाप्त हो जाता है । (दास और स्वामी में अभेद भाव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है) ठाकुर में सेवक और सेवक में ठाकुर (समाए रहते हैं) । जहाँ भी देखा जाय, (एक हरी को छोड़ कर) और कोई दूसरा नहीं है ॥१॥

गुरु की शिक्षा द्वारा भक्ति और सहज घर (सहजावस्था,) तुरीय पद, चतुर्थ पद पाया जाता है । बिना गुरु का दर्शन किए मर कर आते जाते रहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं उसे अपना) गुरु बनाता हूँ, जो (हृदय में) सत्य (परमात्मा) को दृढ़ कराता है । वह अकथनीय (हरी) को समझाना है और शब्द-ब्रह्म से मिलाप करा देता है । हरि के लोगो (भक्तो) को (सिवाय भजन के) और कोई कार्य नहीं रहता । उन्हे सच्चा ठाकुर और (उसका) सत्य प्यारा लगता है ॥ २ ॥

वह (मनुष्य) सच्चा है (जो) सच्चे (हरी) से मिलकर (उसके रंग) में रंग गया है, (इसी कारण) (उसके) शरीर तथा मन में सच्चा (हरी) बस गया है । वह सेवक प्रभु के चरणों में लगता है, जिसे पूर्ण सद्गुरु (स्वयं) मिले और (हरी के स्तय) मिला दे ॥ ३ ॥

(हरी) स्वयं ही दिखाता (समझाता) है (और) स्वयं ही देखता (समझता) है । (परमात्मा) हठ-निग्रह (आदि) से तथा अनेक (बाह्य) वेशो से नहीं प्रसन्न होता । (मनुष्यों के शरीर अथवा मन रूपी) पात्र गढ़ कर, जिसने (नाम रूपी) अमृत डाला है, (उस) प्रभु का मन प्रेमा (रागात्मिका) भक्ति से प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

(सांसारिक मनुष्य) पढ़-पढ़ कर (माया में और अधिक) भटकते है और चोटे (ठोकरे) खाते हैं, (वे) अत्यधिक चतुराई (के फनस्वरूप) (संसार-चक्र में) आते-जाते रहते हैं । गुरु की शिक्षा पर आचरण करनेवाला सेवक नाम जपता है, और (परमात्मा के) भय का भोजन करता है (खाता है), (ऐसा सेवक हरी में) समाहित हो जाता है ॥५॥

(बहुत से लोग) पत्थर (की मूर्ति) पूजने हैं, तीर्थों, बनों में वास करते हैं, उदासी (विरक्त, त्यागी) होकर (इधर-उधर) भटकते फिरते हैं, (किन्तु उनका) मन बँदा ही है, (अतएव वे) कैसे पवित्र हो सकते हैं ? (जो) सत्य (हरी अथवा गुरु) से मिले, वही प्रतिष्ठा पाता है ॥६॥

जो शरीर (जीवन) के प्रति विचारवान् (और शुभ) आचार (करनी) (करने वाला है) (अर्थात् जिसमें विद्या और आचरण दोनों ही हैं), (जिसका) मन आदि तथा युग-युगान्तरो से (सदैव में) सहजावस्था में तथा धैर्य में टिका रहता है, (ऐसा गुरु मुझे प्राप्त हो) । हे प्यारे हरी, मुझे ऐसा गुरु मिलाओ, जो आप के पलक मारने में करोड़ों को तार देता है । [पकज = कमल — तापर्य कमल के समान आँखें—आँखें । पल = पलक मारना] ॥७॥

(हे प्रभु), किसके आगे (तेरी) प्रशंसा करूँ ? मेरे लिए तेरे बिना और कोई दूसरा नहीं है । जैसे तुझे अच्छा लगे, वैसे ही (अपनी) मर्जी में (आज्ञा में) मुझे रख । नानक, तो महजभाव से (हरी के) गुण गाता है ॥ ८ ॥ २ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ धनासरी, महला १

छंत्

[१]

तीरथि नावणु जाउ तीरथ नामु है ।

तीरथु सबद बोचारु अंतरि गिआनु है ।

गुर गिआनु साचा यानु तीरथु दस पुरब सदा दसाहरा ।

हउ नामु हरि का सदा जाचउ बेहु प्रभ धरणीधरा ।

संसार रोगी नामु दाह मैलु लागै सच बिना ।

गुरवाकु निरमलु सदा चानलु नित साचु तीरथु मजना ॥१॥

साचि न लागै मैलु किआ मलु धोईऐ ।

गुणहि हारु परोइ किम कउ रोईऐ ॥

बोचारि मारै तरै तारै उलटि जोनि न आवए ।

आपि पारमु परम धिआनी सानु साचे भावए ।

आनंदु अनदिनु हरषु साचा दूख किलविल परहरे ॥

सबु नामु पाइआ गुरि दिखाइआ मैलु नाहो सच मने ॥२॥

संगति मोत मिलापु पूरा नावणो ।

गाबै गावणहारु सबदि सुहावणो ॥

सालाहि साचे मंनि सतिगुर पुनं दान दइआमते ॥

पिर संगि भाबै सहजि नाबै बेणी त संगमु सतसते ॥

आराधि एकंकारु साचा नित बेइ चडै सबाइआ ।

गति संगि मीता संत संगति करि नदरि भेलि मिलाइआ ॥३॥

कहणु कहै सभु कोइ केबहु आखोए ।
हउ धूरसु नीसु अजगणु समझा साखोए ॥
सनु गुर की साखी अमृत भाखी तितु मनु मानिआ मेरा ।
कूचु करहि आवहि बिलु लावे सबदि सचै गुरु मेरा ॥
आखणि तोटि न भगति भंडारी भरिपुरि रहिआ सोई ।
नानक साचु कहै बेनंती मनु मांजे सनु सोई ॥४॥१॥

(मैं) तीर्थ में स्नान करने जाता हूँ, (हरी का) नाम ही (वास्तविक) तीर्थ है । शब्द (नाम) का विचार करना तथा मन में हरी का ज्ञान होना (वास्तविक) तीर्थ है । गुरु का (दिया हुआ) सच्चा ज्ञान (असली) तीर्थ स्थान है । यही दस पर्व है और यही (दस पापों को हरने वाला) शाश्वत 'दशहरा पर्व' है [दस पर्व जिनमें स्नान करना पवित्र माना जाता है, निम्नलिखित है—अष्टमी, अशुद्धी, अमावस्या, संक्रान्ति, पूर्णमासी, उत्तरायण तथा दक्षिणायण (लगने पर), व्यतीपात, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण] । [दशहरा—ज्येष्ठ सुदी दशमी; यह गंगा की जन्मतिथि है, जो दस प्रकार के पापों को हरनेवाली है] । मैं सदैव प्रभु के नाम की याचना करता हूँ, हे धरणीधर प्रभु, (उस नाम की भिक्षा मुझे) दो । (सारा) संसार (अविद्याप्रस्त) रोगी है, [उन रोगियों की] औषधि नाम है; बिना सत्य (परमात्मा) को धारण किए अंतःकरण में निरन्तर) मेल लगती है । गुरु का पवित्र वाक्य शाश्वत (ज्ञान का) प्रकाश है; (यही) शाश्वत और सत्य तीर्थ का स्नान है ॥१॥

सच्चे को मेल नहीं लगती; मेल क्या धो रहे हो ? गुणों का हार गूँथ कर (जब गले में पहन लिया, तो फिर किस निमित्त रोना है ? विचार के द्वारा (अपने अहंभाव को) मार दे, (तो प्राप) तरता है (और दूसरों को भी) तार देता है और फिर उलट कर योनि के अंतर्गत नहीं आता । (वह) स्वयं पारस और महान् ध्यानी होता है । इस प्रकार का सच्चा पुरुष सच्चे हरी को अच्छा लगता है । (उसे) प्रतिदिन आनन्द और सच्चा हर्ष होता है । (वह) दुःखों और कल्मषों (पापों) को त्याग देता है । गुरु के दिखाने पर, उसे सच्चे नाम की प्राप्ति हो गई । उसके सच्चे मन में मेल नहीं (रह गई) ॥ २ ॥

(हरी रूपों) मित्र की संगति का मिलाप पूर्ण स्नान है । गानेवाला (गायक, संगीतज्ञ) परमात्मा के गुण गाता है और नाम (शब्द) के द्वारा (वह) सुहावना हो जाता है । सद्गुरु को मान कर सच्चे (हरी) की स्तुति करना, यही पुण्य, दान और दयावाली बुद्धि है । पति (परमात्मा) की संगति में प्रसन्न हो और उसके सहज (प्रेम) में स्नान करे, तो सच्ची उत्तम त्रिवेणी का संगम (प्रयागराज) मिल जाता है, [त्रिवेणी-गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम—प्रयाग] । यही सच्ची बुद्धि है । सच्चे एककार (हरी) की आराधना करो, (वह) नित्य ही देता है (और उसकी आराधना से) सबाया रंग चढता है । मुक्ति (गति) हरी मित्र की संगति तथा संतों की संगति में होती है, (और इस संगति का) मिलाप उसकी कृपादृष्टि से होता है ॥ ३ ॥

(हे प्रभु, तेरी महत्ता का) कथन सभी करते हैं; (परन्तु तू) कितना बड़ा है, (इसका) कथन (कौन) कर सकता है ? हम मुख, नीच और अज्ञानी हैं; (गुरु के उपदेश से) (मैंने) (तत्त्व को) समझ लिया है । सच्चे गुरु की शिक्षा (अमृत) (के समान उत्तम) कही गयी है,

उस (शिक्षा) से मेरा मन मान गया है । (मनुष्य) विष (पापों) से लदे हुए आते है (जन्म लेते हैं) और वैसे ही कूच कर जाते है; सच्चे शब्द (नाम) के द्वारा मेरा गुरु (मिलता है और आवागमन समाप्त हो जाता है) । (हरी की महत्ता की) कथा और भक्ति के भाण्डार की (कोई) कमी नहीं है; (हरी) सभी स्थानों में व्याप्त (भरपूर,) परिपूर्ण है । 'नानक' सच्ची विनती करता है, कि सच्चा वही (व्यक्ति) है जो मन को मँजता है (शुद्ध करता है) ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

जोबा तेरे नाइ मनि आनंद है जोउ ।
 साचो साचा नाउ गुण गोविंदु है जोउ ॥
 गुर गिर्यानु अपारा सिरजणहारा जिनि सिरजी तिनि गोई ।
 परबाणा आइआ हुकमि पठाइआ फेरि न सकै कोई ॥
 आपे करि बेलै सिरि सिरि लेखै आपे सुरति बुझाई ।
 नानक साहिवु अगम अगोचरु जोबा सची नाई ॥१॥
 तुम सरि अवरु न कोइ आइआ जाइसी जोउ ।
 हुकमी होइ निबेडु भरमु चुकाइमो जोउ ॥
 गुरु भरमु चुकाए अकथु कहाए सच महि सानु समाणा ।
 आपि उपाए आपि समाए हुकमी हुकमु पछाणा ॥
 सची बडिआई गुर ते पाई तू मनि अंति सखाई ।
 नानक साहिवु अवरु न दूजा नामि तेरे बडिआई ॥२॥
 तू सचा सिरजणहारु अलख निरंदिआ जोउ ।
 एकु साहिवु दुइ राह वाद वधंदिआ जोउ ॥
 दुइ राह चलाए हुकमि सबाए जनमि मुआ संसारा ।
 नाम बिना नाही को बेली बिलु लादी सिरि भारा ॥
 हुकमी आइआ हुकमु न बूझे हुकमि सवारणहारा ।
 नानक साहिवु सबदि सिजाये साचा सिरजणहारा ॥३॥
 भगत सोहहि दरबारि सबदि सुहाइआ जोउ ।
 बोलहि अंमृत बाणि रसन रसाइआ जोउ ॥
 रसन रसाए नामि तिसाए गुर कै सबदि बिकाखे ।
 पारस परसिऐ पारसु होए जा तेरे मनि भाखे ।
 अमरापदु पाइआ आपु गवाइआ बिरला गिरान वीचारी ।
 नानक भगत सोहनि दनि साचै साचे के बापारी ॥४॥
 भूख पिआसो आधि किउ दरि जाइसा जोउ ।
 सतिगुरु पूछउ जाइ नामु धिआइसा जोउ ॥
 सनु नामु धिआई सानु चबाई गुरमुखि सानु पछाणा ।
 बीनानासु बडिआसु निरंजतु अनदिनु नामु बखाणा ॥

करणी कार घुरहु कुरमाई आपि सुभा मनु मारी ।

नानक नामु नामु महारसु मीठा तुसना नामि निवारी ॥५॥२॥

विशेष : यहाँ पद के अंत में 'जोड' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका कई बार प्रयोग हुआ है। यह संशोबन सूचक शब्द है। मुखवाणी में एकाध स्थल पर ऐसे पद मिलते हैं, जहाँ 'राम' 'भई' 'जोड' 'बलिराम जोड', आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

अर्थ : (हे प्रभु), (मैं) तुम्हारे नाम (के ही सहारे) जीता हूँ, (उमी से) मन में आनन्द रहता है। सच्चे 'गोविन्द' का सच्चा ही नाम है और (उसके) सच्चे ही गुण हैं। गुरु के (दिए हुए) अपार ज्ञान में (यह बोध हुआ कि एकमात्र हरी ही सृष्टि का) सिरजनहार है, जो हरी (सृष्टि) रचता है, (वही उसे अपने में) लीन कर लेता है। (मोत का) परवाना प्राप्त गया, (उमे हरी ने अपने) हुक्म में भेजा, (उस हुक्म को) कोई फेर नहीं सकता। (हरी) स्वयं ही (सृष्टि) रच कर, उसकी देखभाल करता है, प्रत्येक के सिर पर (उसके हुक्म की) लिखावट (लिखी हुई है), (इस वस्तु को हरी) आप ही सुरति (ऊँची वृत्ति) द्वारा समझता है। हे नानक, प्रभु (साहब) अग्रम और अगोचर है; (मैं तो उमी के) नाम से जीता हूँ ॥ १ ॥

(हे प्रभु), तेरे समान और कोई नहीं है, (तेरे बिना जो कोई और है वह तो) आना जाता (जन्मता मरता) रहता है, (भला वह तेरे बराबर क्यों हो सकता है ? तू तो अजन्मा और अविनाशी है)। (हरी के) हुक्म से ही छुटकारा (मोक्ष) होगा (और उसी से) भ्रम भी समाप्त होगा। गुरु ही (अविद्याजनित) भ्रम दूर करता है, और अकथनीय (हरी) का कथन करना है, (जिसके फलस्वरूप) सत्य (हरी) में सच्चा (शिष्य) समा जाता है। (प्रभु) आप ही (संसार) उत्पन्न करता है और आप ही (उसे अपने में) लीन कर लेता है हुक्म देनेवाले (हरी) का हुक्म (गुरु द्वारा ही) संप्रभा जाता है। (हे प्रभु, तेरी) सच्ची महत्ता गुरु से ही प्राप्त होती है; अन्तिम समय में, तू ही, मन का साथी है। हे साहब, तुम्हें छोड़ कर और कोई दूसरा नहीं है, तेरे नाम में ही बड़ाई (महत्ता) है ॥ २ ॥

(हे हरी) तू ही, सिरजनहार है, अलक्ष्य रूप से सृष्टि रचने वाला है। साहब एक (हरी हो) है, मार्ग दो है, [श्रेयस् (परमात्मा का मार्ग) और प्रेयस् (माया का मार्ग)]। (इसी प्रकार) भगवें (दुःख) बढ़ते हैं। दो मार्ग चलाए गए हैं— (एक परमात्मा प्राप्ति का और दूसरा माया का); सब (मनुष्य) हुक्म के अन्तर्गत है, (माया में आसक्त होने के कारण सारा) संसार जन्मता-मरता रहता है। नाम के बिना कोई भी सहायक नहीं (होता); (नाम के बिना मनुष्य माया के) विष का भार (बोझ) सिर पर लाद कर (संसार से चला जाता है)। (मनुष्य परमात्मा के) हुक्म से ही (इस संसार में आया है), (किन्तु माया के बशीभूत होने के कारण वह) हुक्म नहीं समझता। (अंत में) हुक्म ही (उसे) संवारने वाला (होता) है। हे नानक, सच्चा सिरजनहार (परमात्मा) (गुरु के शब्द द्वारा ही) सूक्त पड़ता है ॥ ३ ॥

(परमात्मा के) दरबार में भक्तगण सुशोभित (होते हैं); (वे) शब्द (नाम) के द्वारा सुहावने लगते हैं। (वे) अमृत वाणी बोलते हैं (और उस वाणी से अपने) जीभ रसयुक्त (मीठी) बनाते हैं। (वे भक्तगण अपनी) जीभ रसयुक्त बनाते हैं, (वे) नाम के ही

प्यासे है और गुरु के शब्द पर बिके हुए है । (हे हरी), यदि वे तेरे मन को अच्छे लगे, (तो वे उसी भाँति परिवर्तित हो गए, जैसे), जैसे पारस को छूकर पारस हो जाता है । अपने पन को गँवा देने से (साधक अथवा शिष्य) अमर पद प्राप्त कर लेता है । ज्ञान पर विचार करनेवाला कोई विरला ही होता है । हे नानक, भक्तगण (परमात्मा के) सच्चे दरबाने पर सुशोभित होते हैं, (वे लोग) सच्चे (प्रभु) के व्यापारी होते हैं ॥ ४ ॥

(मैं) माया का भूला-प्यासा (लोभी) (हूँ); (हरी के) दरबार में किस प्रकार जाऊँगा ? सद्गुरु (के पास) जाकर पूछूँ, (वही) नाम रूपी (अमृत) पिलायेगा । (सद्गुरु ने) सत्य (हरी का) नाम पिला दिया, (उसने) सच्चे नाम का उच्चारण किया और गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने सत्य (परमात्मा) को पहचान लिया । (सद्गुरु की शिक्षा के कारण मैं) दीनानाथ, दयालु निरंजन (हरी) (का नाम) स्मरण करने लगा । (यह नाम स्मरण की) करुणा और कार्य (परमात्मा के दरबार से) पहले से ही हुक्म किए गए हैं, (इस प्रकार धीरे-धीरे) अहंभाव मिट गया और मन को जीत लिया । हे नानक, नाम रूपी महा मीठा रस (अमृत) (प्राप्त हो गया) (और उसी) नाम ने (सारी) तृष्णा का निवारण कर दिया ॥ ५ ॥ २ ॥

[३]

पिर संगि मूठड़ीऐ खबरि न पाईआ जोउ ।
मसतकि लिखिअइ लेखु पुरबि कमाइआ जोउ ।
लेखु न मिटाई पुरबि कमाइआ किआ जाणा किआ होमी ।
गुणी अचारि नही रंगि रातीअवगुण बहि बहि रोसी ॥
धनु जोबनु अक को छाइआ चिरति भए दिन पुं निआ ।
नानक नाम बिना दोहागणि छूटी भूठि बिछुंनिआ ॥१॥
बूझी घर घालिउ गुर कै भाः खतो ।
साचा नाम धिआइ पावहि सुखि महलो ॥
हरिनाम धिआए ता सुनु पाए पेईअइ दिन चारे ।
निज घरि जाइ बहै सनु पाए अनदिनु नालि पिआरे ॥
बिरु भगती घरि वासु न होवी सुणिअहु लोक सबए ।
नानक सरसी ता पिरु पाए राती साचै नाए ॥२॥
पिरु धन भावै ता पिर भावै नारी जीउ ।
रंगि प्रीतम राती गुर कै सबवि बीचारी जीउ ॥
गुर सबवि बीचारी नाह पिआरी निवि निवि भगति करेई ।
माइआ मोहु जलाए प्रीतमु रस महि-रंगु करेई ॥
प्रभ साचै सेती रंगि रंगेनी लाल भई मनु मारी ।
नानक साचि बसी सोहागणि पिर सिउ प्रीति पिआरी ॥३॥
पिर घरि सोहै नारि जे पिर भावए जीउ ।
भूठे बैए खवे कामि न आबए जीउ ॥

भूझ असावे कामि न आवे ना पिर बेखे नैली ।
 भवगुणिआरी कंति बिसारी छूटी विधरण रैली ॥
 गुर सबदु न मानै फाहो फाथो सा धन महसु न पाए ।
 नानक आपे आपु पछाणै गुरमुखि सहजि समाए ॥४॥
 धन सोहागणि नारि जिनि पिर जाणिआ जीउ ।
 नाम बिना कूड़िआरि कूड़ु कमाणिआ जीउ ॥
 हरि भगति सुहावो सावे भावो भाइ भगति प्रभ राती ।
 पिर रसोआला जोबनि वाला तिसु रावे रंगि राती ।
 गुर सबदि बिगासो सहु रावासो कलु पाइआ गुरकारो ।
 नानक सातु मिलै बडिआई पिर घरि सोहे नारो ॥५॥३॥

प्रियतम (हरी तो तेरे) सग मे हो है, (किन्तु विषयो मे) मोहित होनेवाली, (ऐ स्त्री) तुझे खबर नहीं है । तेरे पूर्व कर्मों के अनुसार (हरी का) हुक्म ही ऐसा हुआ था (कि तू साथ होने हुए भी उम हरी को न पहचाने) । (अतएव) पूर्व जन्म का कमाया हुआ लेख (भाग्य) नहीं मिटता, कौन जानना है कि क्या होगा ? (जो) (स्त्री) गुणो, आचारो (और हरी के) रग मे नहीं अनुरक्त हुई, वह बैठ-बैठ कर अपने अवगुणों के लिए रोयेगी । धन और यौवन आका की छाया के समान (क्षुद्र और क्षणभंगुर हैं), वृद्ध हो जाने पर (आयु के) दिन पूरे हो जाते हैं । हे नानक, (जीव रूपी स्त्री) नाम के बिना दुहागिनी रह गई, (उसे पति-परमात्मा ने) त्याग दिया और (वह) झूठ के द्वारा बिछुड गई ॥ १ ॥

हे हवी हुई (स्त्री), तू ने (अपने) घर को नष्ट कर दिया है; (अब यदि अपने असली घर को फिर बसाना हो, तो) गुरु के भावानुसार चल (यदि तू) सच्चे नाम का ध्यान कर, तो मुख्यपूर्वक (अपने वास्तविक) महल मे (निवास) पा लेगी । हरिनाम के ध्यान करने से ही मुख्य प्राप्त होता है, मायके—नैहर (संसार) में तो (केवल) चार दिन (रहते हैं) । तू सत्यस्वरूप (हरी) के पाने पर अपने (वास्तविक) घर मे जाकर बस जायगी और प्रतिदिन प्रियतम के साथ (रहेगी) । बिना (हरी की) भक्ति के (अपने वास्तविक) घर में निवास नहीं होता, समस्त लोगो, (इस तथ्य को तुम लोग, कान खोलकर) सुन लो । हे नानक, (वह सोभाग्यशालिनी स्त्री), तभी आनन्दित होकर प्रियतम को प्राप्त कर लेती है, जब सच्चे नाम मे अनुरक्त हो जाय ॥ २ ॥

यदि (जीव रूपी) स्त्री (परमात्मा रूपी) पति को अच्छी लगे, तो प्रियतम (हरी) उसे प्यारा लगता है । सद्गुरु के उपदेश पर विचार करके, (वह स्त्री) प्रियतम हरी के रंग मे रंग गई है । गुरु के शब्द पर विचार करके (वह) पति को प्यारी हो गई है और नमित होकर (अभिमान रहित होकर) भक्ति करती है । (वह) माया और मोह को जला कर आत्मन्पूर्वक (हरि से) प्रेम करती है । (वह) सच्चे प्रभु (के अनुराग) मे रेंगी हुई है और अपने मन को मार कर (जीत कर) मुहावनी हो गई है । हे नानक, सत्यस्वरूप (परमात्मा) में बस कर, (वह स्त्री) मुहागिनी हो गयी है, (उस) प्रियतमा की प्रीति प्रियतम (हरी) से (हो गयी है) ॥ ३ ॥

पति के घर में स्त्री तभी शोभित होती है, यदि पति उसे प्यारा लगे । (आन्तरिक प्रेम ना० बा० फा०—५४

के बिना) यदि (स्त्री) झूठे और मोठे वचन बोले, तो वे किसी काम नहीं आते । वह (कितना ही अधिक) झूठा आलाप करे, (किन्तु उसकी झूठी बातें) काम में नहीं आयेगी और (वह) पति (परमात्मा को) आँखों से नहीं देखेगी । पति (परमात्मा) ने उस अवगुणी स्त्री को भुला दिया है, (उस) पति-परित्यक्ता की राते पति से विहीन हो गयी है । गुरु के शब्दों को (वह स्त्री) नहीं मानती, (इसी से वह) बन्धनो में फँस जाती है, (और उसे पति-परमात्मा का) महल नहीं प्राप्त होता । हे नानक, जो (जीव रूपी स्त्री) अपने आप को पहचान लेती है, तो (वह) गुरु की शिक्षा द्वारा (आत्मज्ञान के) सहज मुख में समा जाती है ॥ ४ ॥

वह (जीव रूपी) मुद्रागिनी स्त्री धन्य है, जिसने (परमात्मा रूपी) पति को पा लिया है । नाम के बिना झूठी स्त्री झूठे कर्मों को करती है । हरि की भक्ति में (वह) मुद्रावनी हो गई है । वह सच्चे प्रभु को अच्छी लगती है और भक्ति-भाव कर प्रभु में अनुरक्त हो गई है । प्रियतम (हरी) विनोदी—आनन्द—कौतुकी है, वह (बिर) युवा है । (उसके) अनुराग में रंगी हुई स्त्री उसे भोगती है । गुरु के उपदेश से वह विकसित हो गई है और पति के साथ (उसने) रमण किया है तथा (अद्भुत) गुणकारी फल (परमात्मा) को पा लिया है । हे नानक, सत्य- (परमात्मा) के मिलने पर, बड़ाई प्राप्त होती है और प्रियतम (हरी) के घर में (जीव रूपी) स्वरूप स्त्री सुशोभित होती है ॥ ५ ॥ ३ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु तिलंग, महला १, घर १

सबद

[१]

यक भ्रज गुफतम पेसि तो वर गास कुन करतार ।
हका कबीर करीम तू बे ऐब परबदगार ॥१॥
दुनोआ मुकामे फानी तहकीक दिस दानी ।
मम सर मूइ भ्रजराईल गिरफतह दिल हेबि न दानी ॥१॥रहाउ॥
जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसतंगीर ।
आखिर बिग्नफतम कस न वारव च सबद तकबीर ॥२॥
सब रोज गसतम दर हवा करबेम बदी लिमाल ।
गाहे न नेकी कार करदम मम ई चिनी अहवाल ॥३॥
बदबलत हम चु बलील गाफिल बे नजर बेबाक ।
नानक भुगोयद जनु नुरा तेरे चाकारां पा लाक ॥४॥१॥

हे कर्तार, मैंने तेरे पास एक बिनती की है; कान लगा के सुन । तू सच्चा है, बड़ा है, दयालु है, दोष रहित और पालनकर्त्ता है ॥१॥

दुनिया नश्वर स्थान है, (यह बात) दिल में सच मानो । मेरे सिर के बाल मौत के फरिश्ते, भ्रजराईल ने पकड़े हैं ; हे मन, तू कुछ नहीं समझता । [उस दिनों पापियों के सिर के बालों को पकड़ कर खींचा जायगा—कुरान, सूरत रहमान, आयत ४०] ॥१॥रहाउ॥

स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, कोई भी सहायक नहीं है । यदि अन्त में डिंग पड़ा, तो उस समय कोई रख (बचा) नहीं सकता, जब मौत का समय आ जाता है । [तकबीर=जनाजा, वह नमाज है जो मुरदे को दफनाते समय पढ़ते हैं ।] ॥२॥

दिन-रात मैं लालच में फिरता रहा और बुराई ही सोचता रहा; (मैंने) कभी नेकी का काम नहीं किया । मेरा इसी प्रकार हाल रहा है ॥३॥

(मैं) अभंगा, साथ ही चुगलखोर, भूलनेवाला, निर्लज्ज और निडर हूँ । हे नानक, मैं कहता हूँ कि मैं तेरा दास हूँ और तेरे दासों की चरण-धूनि हूँ ॥४॥१॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर २ ॥

[२]

भउ तेरा भांग खलड़ी मेरा चीनु ।

मे देवाना भइआ अतीतु ॥

कर कासा दरसन की भूख ।

मे दरि मागउ नीतानीत ॥१॥

तउ दरसन की करउ समाइ ।

मे दरि मागनु भीखिआ पाइ ॥१॥२॥३॥

केसरि कुमम मिरगैमे हरणा सरब सरीरी चढ़णा ।

चंडन भगता जोति इनेही सरबे परमलु करणा ॥२॥

धिअ पट भांडा कहे न कोइ ।

ऐसा भगनु बरन महि होइ ॥

तेरे नामि निबे रहे लिब लाइ ।

नानक तिन दरि भीखिआ पाइ ॥३॥१॥२॥

विशेष : निम्नलिखित 'शब्द' बाबर बादशाह के प्रति कहा गया है ।

अर्थ (हे हरी), तेरा भय मेरी भग (नद्या) है ; मेरा मन (भग पाने के लिए) 'खलड़ू' है । ['खलड़ू'—'इसमे भंग आदि पदार्थ रखते हैं, यह मरे हुए पशुओं के चमड़े का बनता है] । मैं दीवाना और सबसे परे (त्यागी) हो गया हूँ । मेरे हाथ (मँगते—भिक्षा मँगने के) प्याले हैं ; मुझे तेरे दर्शन की भूख है और तेरे दरवाजे पर नित्य-नित्य माँगता हूँ ॥१॥

(मैं) तेरे दर्शन का अभ्यास करता हूँ । मैं तेरे दरवाजे पर माँगता हूँ ; (मेरी प्रार्थना है कि मैं) भिक्षा पाऊँ ॥१॥२॥३॥

वेशार, फूल, मृगमद (कस्तूरी) तथा सोना—(ये वस्तुएँ) सब के शरीर पर चढ़ती हैं (तत्पर्य यह कि सभी ऊँच नीच मनुष्य उपर्युक्त वस्तुओं का सत्कार करते हैं और अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इन्हे बरतते हैं) । चंदन और संतो की बड़ाई (ज्योति) भी ऐसी ही है — (ये दोनों ही) सभी (ऊँच-नीच) को सुगन्धित कर देते हैं ॥ २ ॥

घी और रेशमी बदन को कोई निन्दनीय नहीं कहता । इसी प्रकार (हरी के) भक्त (चाहे जिस) वर्ण (जाति) में हो, (उनकी कोई निन्दा नहीं करता) । जो तेरे नाम में लग कर नष्ट हो जाता है और तेरे ही मे निब (एकनिष्ठ ध्यान) लगाए रहता है ; नानक ऐसे (भक्त के) दरवाजे की भीख माँगता है ॥३॥१॥२॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर ३ ॥

[३]

इहु तनु माइया पाहिआ पिआरे लीतड़ा लवि रंगाए ।
मेरे कंत न भावै बोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए ॥१॥
हुंड कुरबानै जाउ मिहरबाना हुंड कुरबानै जाउ ।
हुंड कुरबानै जाउ तिना कै लेनि जो तेरा नाउ ॥
लेनि जो तेरा नाउ तिना कै हुंड सद कुरबानै जाउ ॥१॥रहाउ॥
काह्या रंडहि जे धोए पिआरे पाईए नाउ मजोठ ।
रंडलवाला जे रंडै साहिबु ऐसा रंगु न डोठ ॥२॥
जिन के चोले रतड़े पिआरे कंतु तिना कै पासि ।
धूड़ि तिना की जे मिलै जो कहु नानक की अरबासि ॥३॥
आपे साजे आपे रंगे आपे नदरि करेइ ।
नानक कामलि कंतै भावै आपे हो रावेइ ॥४॥१॥३॥

इस शरीर (हमारे जीवन) में माया को पाह लगी है और (वह) लोभ में रंगा हुआ है; [पाह=मजोठ आदि लाल रंग चढ़ाने के पूर्व कोरे कपड़े को पोले रंग से रंगते हैं, इसी को 'पाह लगाना' कहते हैं। बिना 'पाह दिए' कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता]। मेरे पति (परमात्मा) को ऐसा बोला—शरीर (सांसारिक जीवन) अच्छा नहीं लगता; इसलिए स्त्री (जीवात्मा) को किस प्रकार सेज पर जाने मिले, (जिससे पति-परमात्मा का मिलाप हो) ? ॥१॥

हे कृपालु (परमात्मा), मैं तेरे ऊपर कुरबान हो जाता हूँ, मैं तेरे ऊपर कुरबान हो जाता हूँ। (हे प्रभु), जो तेरा नाम स्मरण करते हैं, मैं उनके ऊपर कुरबान हो जाता हूँ। जो तेरा नाम लेते हैं, मैं उनके ऊपर सदैव कुरबान हो जाता हूँ ॥१॥रहाउ॥

यदि शरीर रंगवाला मिट्टा बन जाय, तभी नाम रूपी मजोठ का (पक्का रंग) चढ़ता है। यदि रंगनेवाला साहब इस रंग में रंग दे, (तो बहुत ही अच्छा हो) और ऐसा रंग कभी न देखा गया होगा ॥२॥

जिनके चोले (शरीर) (इस रंग में) रंगे हुए हैं, पति (परमात्मा) उनके पास ही है। हे नानक, मेरी यह प्रार्थना है ऐसे (संतो के चरणों की) धूल मुझे मिल जाय ॥३॥

(प्रभु) आप ही सँवारता है, आप ही रंगता है और आप ही कृपादृष्टि करता है। हे नानक, यदि पति को स्त्री अच्छी लगती है, तो स्वयं ही उसे भोगता है (अंगोकार करके अपनी बना लेता है) ॥४॥१॥३॥

[४]

इयानड़ीए मानड़ा काइ करेहि ।
आपनड़े धरि हरि रंगो की न मारोहि ॥

सहु नेडे धन कमलीए बाहरु किम्रा दूडेहि ।
 भे कीम्रा बेहि सलाईम्रा नैरणी भाव का करि सीमारो ॥
 ता सोहागएि जाणीए लागी जा सहु धरे पिम्रारो ॥१॥
 इम्राणी बाली किम्रा करे जा धन कंत न भावै ।
 करण पलाह करे बहुतेरे सा धन महलु न पाखै ॥
 बिगु करमा किछु पाईए नाही जे बहुतेरा धाबै ॥
 लव लोभ अहंकार की माती माइम्रा माहि समाणी ॥
 इनी बाती सहु पाईए नाही भई कामएि इम्राणी ॥२॥
 जाइ पुछहु सोहागणी बाहै किनी बाती सहु पाईए ।
 जो किछु करे सो भला करि मानोए हिकमति हुकमु चुकाईए ॥
 जाके प्रेमि पदारथु पाईए तउ चरणी जितु लाइए ॥
 सहु कहै सा कीजें तनु मनो दीजें ऐसा परमलु साईए ।
 एव कहहि सोहागणी भैरौ इनी बाती सहु पाईए ॥३॥
 आपु गवाईए ता सहु पाईए अउरु कसौ चतुराई ।
 सहु नदरि करि बेखै सो विनु लेखै कामएि नउनिधि पाई ॥
 आपणी कंत पिम्रारी सा सोहागएि नानक सा सभराई ॥
 ऐसे रंगि रातो सहज की माती अहिनिनि भाइ समाणी ।
 सुंदरि साइ सरूप बिजलएि कहोए सा सिम्राणी ॥४॥२॥४॥

ऐ भ्रजानिनी (स्त्री), मान क्यों करती है ? अपने घर (मन) में (हरी के प्रेम का) रस क्यों नहीं लेनी ? हे मूर्ख स्त्री, (तेरा) पति (परमात्मा) तेरे पास ही है, (फिर) बाहर क्यों ढुंढती फिरती है ? (हरी के) भय (के मुरमे की) सलाइयाँ (अपनी) आँखों में लगा और प्रेम का शृङ्गार कर ॥१॥

(हे स्त्री) तू तभी (पति के साथ युक्त) सुहागिनी स्त्री समझी जायगी, यदि पति के साथ प्रेम कर ले ॥१॥

यदि स्त्री पति को नहीं अच्छी लगती, तो मूर्ख नवयुवती कर ही क्या सकती है ? (वह स्त्री) चाहे (अत्यधिक) काष्ण्य-प्रलाप करे, (किन्तु), (पति-परमात्मा का) मूल नहीं पाती । चाहे वह बहुत ही दीडधूप (क्यों न) करे, किन्तु बिना भाग्य के (वह) कुछ भी नहीं पाती । (ऐसी मूर्ख स्त्री) लालच, लोभ और अहंकार में भल होने (के कारण) (माया) में डूब गयी । इत बातों में (स्त्री) पति को नहीं पाती और (वह) स्त्री मूर्ख हो जाती है ॥२॥

(हे स्त्री), जाकर सुहागिनी स्त्रियों से पूछो कि किन बातों से (उन्होंने) पति (परमात्मा) को प्राप्त किया है ? (वे निम्नालिखित उत्तर देगी) । (परमात्मा) जो कुछ भी करता है, उसे भना समझ कर स्वीकार करना चाहिए और चालाकी तथा जोर (हुकम) को त्याग देना चाहिए । जिसके प्रेम के द्वारा (नाम भयवा मुक्ति का) पदार्थ पाया जाता है, उसके चरणों में चित्त लगाना चाहिए । जो पति (परमात्मा) आज्ञा दे, वही करो, (अपना)

तन और मन (उसे) अर्पित कर दो (और सद्गुणों की) सुगन्धि को (अपने शरीर में) लगाओ । इस प्रकार वे सुहागिनी (स्त्रियाँ) कहती हैं , ' हे बहिनो, इन्हीं बातों (उपायों) से पति (परमात्मा) पाया जाता है, ॥३॥

(अपने) आपाभाव को मिटा देने से ही पति (परमात्मा) की प्राप्ति होती ; अन्य चतुराइयों से क्या (लाभ) ? (जिस दिन) पति- (परमात्मा) कृपादृष्टि करके देखता है , वही दिन लेखे मे है (अन्य दिन व्यर्थ हैं) ; (उस दिन) स्त्री नव-निर्दिष्टा पा जाती है । हे नानक जो (अपने) कंठ को प्यारी है , (वही स्त्री) सुहागिनी है , (वही) पूर्ण सौभाग्य-शालिनी है । (वह स्त्री) इस प्रकार के रंग में रंगी रहती है , सहजावस्था (चतुर्थ पद , तुरीय पद , निर्वाण पद , मोक्ष पद) में मत्त रहती है और अर्हतिश (परमात्मा के) प्रेम में निमग्न रहती है ; उसी ' स्त्री ' को सुंदरी , स्वरूपवाली , गुणोंवाली तथा चतुर कहना चाहिये ॥४॥२॥

[५]

जैसी मे आबै खसम की बाणी तेसड़ा करी गिमानु बे लालो ।
पाप की अंज ले काबलहु धाड़आ जोरी भंगे दानु बे लालो ॥
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिर परधानु बे लालो ।
काजीआ बाभणा की गलि पकी अगदु पड़ु सैतानु बे लालो ॥
सुसलमानोआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ बे लालो ।
जाति सनाली होरि हिदवाणीआ एहि भी लेख लाइ बे लालो ॥
खून के सोहिले गावीअहि नानक रतु का कुंगू पाइ बे लालो ॥१॥
साहिब के गुण नानकु गावै मास पुरी बिचि आखु मसोला ।
जिनि उपाई रंगि खाई बैठा बेखे बलि इकेला ॥
सच्चा सो साहिबु सत्तु तपावसु सचड़ा निआउ करेगु मसोला ।
काइआ कपड़ु टुकु टुकु होसी हिदुसतान समालसी बोला ॥
आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला ।
सच की बाणी नानकु आखै सुणाइसी सच की बेला ॥२॥३॥५॥

विशेष : यह 'शब्द' बाबर बादशाह के सैदपुर (ऐमनाबाद) के आक्रमण के अवसर पर 'भाई लालो' को सम्बोधित करके कहा गया है ।

अर्थ : हे लालो, जैसा जैसा पति (परमात्मा) का हुक्म मेरे पास पहुँचता है , वैसा ही वैसा ज्ञान (का प्रकाश) करता हूँ । (बाबर) पाप (जुल्म) की बारात लेकर काबुल से चढ़ आया है और जबर्दस्ती (हिंदू रूपो कन्या का) दान माँगता है । शर्म और धर्म दोनों ही छिप गए हैं और झूठ प्रधान होकर फिर रहा है (तात्पर्य यह की झूठो का ही जोर और बोलबाला है) । काजियों और ब्राह्मणों की बात समाप्त हो गई है , (तात्पर्य यह कि उन्हें कोई नहीं पूछता है) और (अब उनके स्थान पर) विवाह सैतान पड़वाता है (कराता है) , [तात्पर्य यह कि लड़कियों को बलात् छीन कर आक्रमणकारी अपनी पत्नी बनालेते है, पंडितो अथवा काजियों के द्वारा विवाह अथवा निकाह कराने की आवश्यकता नहीं समझी जाती] ।

मुसलमानिने दुःखी होकर कुरान पढ़ रही हैं और खुदा के आगे दुआएं कर रही है। (मुगल) सिपाही मुसलमान पठानियों के ऊपर भी अत्याचार कर रहे हैं। अन्य हिन्दू ऊंची और नीची रित्रियों को भी इस गिनती में समझ लो। खून के गीत गाये जा रहे हैं ; (और) हैं नानक , रक्त का केशर (स्थान स्थान पर) पड़ रहा है ॥१॥

नानक (कहते हैं कि) मैं साहब (प्रभु का) गुण गाता हूँ और इस मास (लोथों) से भरी हुई नगरी में यह आस्थान कहता हूँ कि जिस (प्रभु ने यह सृष्टि) रची है (और पृथक् पृथक्) रंग में रंगी है , (वह) आप अकेला बैठा हुआ (सब कुछ) देख रहा है। वह साहब (प्रभु) सच्चा है , (उसका) न्याय भी सच्चा है और (वह) सच्चे न्याय वाला हुक्म भी करेगा। शरीर रूपी कपड़ा टुकड़े टुकड़े हो जायगा और हिन्दुस्तान मेरे वाक्य को याद करेगा। (मुगल) (संवत्) ७८ में आयेगे और १७ में चले जायेंगे और (तभी) एक और मर्द का चेला (शूरवीर) उत्पन्न होगा। [यहाँ सम्वत् १५७८ विक्रमी में बाबर के ऐमनाबाद के आक्रमण तथा सं० १५६० वि० में हुमायूँ के भारत छोड़ने का संकेत है। 'मरद का चेला' का भाव 'शेरशाह' सूरों से प्रतीत होता है, जिसने मुगल राज्य को भारतवर्ष से निकाल कर अपना राज्य स्थापित किया। यह सचमुच ही 'मरद का चेला' कहलाने के योग्य था, क्योंकि सर्वप्रथम इसी मुसलमान शासक ने हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए समान कानून बनाने की चेष्टा की।] । नानक (कहते हैं कि) मैं सच्ची बात कह रहा हूँ, क्योंकि सत्य (वस्तु) सुनाने की (यही) सत्य वेला है। (बाबर के चले जाने पर इस बात को सुनाने का क्या लाभ होगा ?) ॥ २ ॥ ३ ॥ ५ ॥

ॐ सतिगुर प्रसादि ॥ घर २ ॥

[६]

जिनि कीआ तनि बेखिआ किआ कहोए रे भाई ।
आपे जाले करे आपि जिनि बाड़ी है लाई ॥१॥
राइसा पिआरे का राइसा जितु सदा सुलु होई ॥रहाउ॥
जिनि रंगि कंतु न राबिआ सा पछो रे तारणी ।
हाथ पछोई सिरु धुरै जब रैणि बिहारणी ॥२॥
पछोतावा ना मिले जब चूकैगी सारी ।
ता फिर पिआरा राबोए जब आवंगी वारी ॥३॥
कंतु लीआ सोहागणी मे ते बधवीएह ।
से गुण मुझे न आवनी कै जी दोसु घरेह ॥४॥
जिनी सखी सहु. राबिआ निन पूछउगी जाए ।
पाइ लगउ बेनती करउ लेउगी पंशु बताए ॥५॥
हुकमु पछारै नानका भउ खंदनु लावै ।
गुण कामण कामणि करै तउ पिआरे कउ पावै ॥६॥

जो बिलि मिलिआ तु मिलि रहिआ मिलिआ कहोए रे सोई ।

जे बहुतेरा लोबीए बातो मेलु न होई ॥७॥

धातु मिलै कुमि धातु कउ लिव लिवै कउ धावै ।

गुर परसादी जाणीए तउ अनुभउ पावै ॥८॥

पानाबाड़ो होइ घरि खरु सार न जायै ।

रसोआ होवै सुसक का तब कलु पछायै ॥९॥

अपिओ पोवै जो नानका भ्रमु भ्रमि समावै ।

सहजे सहजे मिलि रहै अमरा पदु पावै ॥१०॥१॥६

जिस (हरी) ने (संसार) बनाया है, उसी ने (इसकी) देखभाल (खबर-दारी) की है । अरे भाई, और क्या कहा जा सकता है ? जिस (प्रभु) ने (यह संसार रूपी) वाटिका लगाई है, वह स्वयं ही (इसकी गतिविधि) जानता है और स्वयं ही (इसके संबंध में देखभाल) करता है ॥ १ ॥

(मैं अपने) प्यारे (परमात्मा का) 'रासो'—कथा-प्रसंग कह रहा हूँ, जिसे सुनकर सदैव सुख होगा ॥ रहाउ ॥

जिस (स्त्री—जीवरूपी स्त्री) ने प्रेम के साथ पति (परमात्मा) के साथ रमण नहीं किया, वह (अंत में) पछताती है । जब रात (आयु) बीत जाती है, (तो वह) (शोक में) हाथ पटकती है और (अपना) सिर धुनती है ॥ २ ॥

जब (जीवन रूपी शतरंज के खेल की) गोटियाँ (मुहरे) समाप्त हो जायँगी, (अर्थात् जीवन लीला समाप्त हो जायगी) (तो) पछतावे का भी (अवसर) नहीं मिलता । फिर तो प्यारे के साथ, तभी रमण किया जा सकता है, जब (मनुष्य-जन्म की) बारी पुनः आयीगी ॥ ३ ॥

उन सुहागिनियों ने (परमात्मा रूपी) पति को प्राप्त किया है, जो (गुणों में) मुझसे बड़ कर हैं । वे गुण मुझमें नहीं आते (तो फिर किस प्रकार) चित्त में (हरी को) दोष दूँ ? ॥ ४ ॥

त्रिन सखियों ने पति (परमात्मा) के साथ रमण किया है, उनके पास जाकर (मैं पति से मिलने की विधि) पूछूँगी । (मैं उनके) पाँव लगूँगी, बिनती कहेँगी और रास्ता पूछ लूँगी ॥ ५ ॥

हे नानक, (जब जीवात्मा रूपी) स्त्री (प्रभु के) द्वय को पहचाने, (उसके) भय का चंदन (अपने अंगों में) लगाए, और (पति को वशीभूत करने के लिए) गुणों का टोना करे, तभी वह प्रियतम को पा सकती है, (अन्यथा नहीं) ॥ ६ ॥

जो (मनुष्य) दिल से (हरी से) मिलता है, वह (हरी से सदैव) मिला रहता है (युक्त रहता है), वास्तविक मिलन वही कहलाता है । चाहे (परमात्मा से मिलने की) बहुत ही इच्छा की जाय, किन्तु (कोरी) बातों से मिलाप नहीं होता; (इसके लिए जीवन की रहनी परमावश्यक है) ॥ ७ ॥

(जिस प्रकार) धातु से मिल कर धातु एक हो जाती है, (उसी प्रकार) प्रेम प्रेम की ओर दौड़ता है (भाव यह कि) जिस प्रकार सोने आदि धातु का आभूषण, तोड़ा और गलाया जा कर फिर अपनी असली धातु में मिल जाता है और कोई अन्तर नहीं रहता, उसी प्रकार प्रेमी मनुष्य (प्रेमस्वरूप परमात्मा की ओर आकर्षित किया जाता है और अंत में तद्रूप हो जाता है) । गुरु की कृपा द्वारा जब समझ पा जाता है, तो निर्भय (हरि) प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

घर में पनबाड़ी (पानों की क्यारी) हो, पर गधा उसकी कद्र नहीं जानता । जो (मनुष्य) सुगन्धि का प्रेमी (रसिक) हो, वही फूल को पहचान सकता है ॥ ९ ॥

हे नानक, जो अमृत पीता है, उसका भ्रम में भटकना स्वतः ही समाप्त हो जाना है, (वह) सहज ही (हरी से) मिल जाता है और अमर पद पा लेता है ॥ १० ॥ १ ॥ ६ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

राग सूही, महला १, चउसदे, घर १

सवद

[१]

भांवा धोइ बैसि धूप देवहु तउ दूधै कउ जावहु ।
दूध करम कुनि सुरति समाइसु होइ निरास जमावहु ॥१॥
जपहु त एको नामा । अवरि निराफलु कामा ॥१॥रहाउ॥
इहु मनु ईटी हाथि करहु कुनि नेत्रउ नोद न धावै ।
रसना नामु जपहु तब मयोऐ इन बिधि भ्रंमंतु पावहु ॥२॥
मन संपटु जितु सतसरि नावसु भावन पातो कृपात करे ।
पूजा प्राण सेवकु जे सेवे इन्ह बिधि साहिबु रबतु रहै ॥३॥
कहवे कहहि कहे कहि जावहि तुम सरि अवरु न कोई ।
भगतिहीसु नानकु जनु जंपै हउ सालाही सबा सोई ॥४॥१॥

बरतन धोकर बैठ कर (उसमें) धूप दो, तब फिर दूध लेने के लिए जाओ ।
(भावायें यह कि मन को पवित्र करके रोको, तभी शुभ काम का सम्पादन हो सकता है) ।
(शुभ) कर्म दूध है, फिर सुरति (दूध जमाने का) जामन है, (संसार में) निष्काम होकर
(दूध) जमाओ ॥१॥

एक (परमात्मा) के ही नाम का जप करो । अन्य कार्य निष्फल है ॥१॥रहाउ॥

इस मन को (नेती में बाँधने की) गुल्ली बना कर हाथ में पकड़ो । (अविद्या में) नोद न भ्राना हो (मयानी की) नेती हो, जिह्वा से नाम जपना ही, (दही) मयना हो, इस विधि
(दही मथ कर) मक्खन रूपी भ्रमृत प्राप्त करो ॥२॥

मन को (परमात्मा के रखने का) संपुट (डिब्बा) बनावे, (और उसे) सत्संग रूपी
नदी में स्नान करावे, भाव (श्रद्धा, प्रेम) के पत्र चढ़ावे और (परमात्मा को) तृप्त करे । प्राण
तक देकर जो सेवक सेवा-रूपी पूजा करे तो, वही इन विधियों से साहब (परमात्मा) के साथ
रमण करता रहेगा ॥३॥

कथन करनेवाले (तेरी महिमा का) कथन करते है और कथन करते करते (इस संसार से) चले जाते है, (किन्तु तेरी महिमा का पार नहीं पाते) । (हे प्रभु), तेरे समान कोई दूसरा नहीं है । हे नानक, भक्ति से रहित दास विनती करता है कि मैं सच्चे (परमात्मा) की ही स्तुति करता रहूँ ॥४॥१॥

१ ओ सतिगुर प्रसादि ॥ घर २ ॥

[२]

अंतरि बसे न बाहरि जाइ । अंतु छोड़ि काहे बिलु खाइ ॥१॥
ऐसा गिझानु जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ॥१॥रहाउ॥
गिझानु धिझानु सभु कोई रबै । बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ॥२॥
सेवा करे सु चाकरु होइ । जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ ॥३॥
हम नही चंगे बुरा नही कोइ । प्रणवति नानकु तारे सोइ ॥४॥१॥२॥

(हे मन,) (हरी तेरे) अंतर्गत ही बसता है, (कही) बाहर मत जा । (तू) अमृत छोड़ कर, विष क्यों खाता है ? ॥१॥

हे मेरे मन, ऐसे ज्ञान को टूट कर कि सच्चे प्रभु के सेवक हो जा ॥१॥रहाउ॥

ज्ञान-ध्यान की बातें सब कोई करते है; (पर वास्तव में) सारा जगत् (माया के) बंधन में बंधा हुआ फिरना है ॥२॥

जो प्रभु की सेवा करता है, वही (उसका) दास होता है । (वह हरी) जल, थल तथा पृथ्वी और आकाश के मध्य में रमा हुआ है ॥३॥

हम अच्छे नहीं है, कोई भी बुरा नहीं है । नानक विनती करता है कि वही (हरी ही) तारना है (नहीं तो मनुष्य स्वयं कभी भी तरने योग्य नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ १ ॥ २ ॥

१ ओ सतिगुर प्रसादि ॥ घर ६ ॥

[३]

उजसु कैहा बिलकणा घोटिम कासड़ी मसु ।
घोतिआ जूठि न उतरै जे सउ धोवा तिसु ॥१॥
सजए सेई नालि मै चलदिआ नालि चलन्हि ।
जियै लेखा मंगोऐ तिथै खड़े बसन ॥१॥रहाउ॥
कोठे मंडप माड़ीआ पासहु खिलवीआहा ।
ढठीआ कंमि न आबन्हि बिचहु सखलीआहा ॥२॥

बगा बगे कपड़े तीरथ मंझि वसन्हि ।

घुटि घुटि जीआ जावए बगे ना कहोअन्हि ॥३॥

सिमल कलु सरीरु मै मै जन बेलि मुलन्हि ।
 से फल कंमि न भ्रावन्ही ते गुण मै तनि हंन्हि ॥४॥
 ग्रंथुलै भारु उठाइआ डगर वाट बहतु ।
 ग्रखी लोड़ी ना लहा हउ चडि लंघा कितु ॥५॥
 चाकरीआ चंगिआईआ भवर सिआरण कितु ।
 नानक नामु समालि तू बधा छुटहि जितु ॥६॥१॥३॥

बिशेष : यह पद मुलतान जिले में स्थित तुलंभा गाँव के निवासी, शेख सज्जन के प्रति कहा गया है। शेख सज्जन ठग था। (वह) ऊपरी वेश तो साधु का बनाए था ; किन्तु मनुष्यों की हत्या करता था। गुरु नानक देव ने इसका उद्धार किया उन्होंने उसकी बुराइयों को ६२ करके अपना शिष्य बनाया और उसे वहाँ का प्रचारक बना दिया।

अर्थ : काँसा धातु सफेद और चमकीली होती है, (पर यदि वह) रगड़ी जाय, तो काली स्याही हो जाती है। (आन्तरिक) झूठ (अपवित्रता) (बाहरी) सफाई से नहीं दूर होती है, चाहे उसे सौ बार ही (क्यों न) धोया जाय ॥१॥

(सज्जन ठग के नाम के वास्तविक अर्थ की ओर संकेत करते हुए गुरु नानक देव कहते हैं कि) सज्जन वे ही होते हैं, जो जहाँ भी जाते हैं, (वहाँ साथी बन कर) साथ जाते हैं। (उनसे) जिस स्थान पर (जब भी जीवन की बुराइयों और अच्छाइयों का) लेखा माँगा जाता है, उसी स्थान पर खड़े-खड़े (अपना हिसाब) दिखा देते हैं ॥१॥२॥३॥

(चाहे) (बड़ी, बड़ी) भट्टालिकाएँ और मंडप (महल) निर्मित कर लिए जायँ और पास से चित्रित भी कर दिए जायँ, (किन्तु) डिडोरा (डुंगी) पीटना (बाह्य प्रदर्शन) कुछ भी काम नहीं आयेगा, (क्योंकि) भीतर से (ये सब ऊपरी तड़क-भड़क) खाली है ॥२॥

बगुलों के साफ कपड़े (पंख) होते हैं और तीर्थों में (तात्पर्य यह कि तीर्थस्थान से सम्बद्ध जलाशयों में) निवास करते हैं, (किन्तु वे) घोट घोट कर जीवों (मछलियों आदि) को खाते हैं, (अतएव वे अपनी इस हिसक मनोवृत्ति के कारण) साफ—निर्दोष नहीं कहे जा सकते। [उपर्युक्त पंक्तियों का तात्पर्य शेख सज्जन से है—तुम भी सज्जनों का वेश बना कर, हिसा कर रहे हो अतएव तुम्हारी ओर बगुले की समान अवस्था है।] ॥३॥

मेरा शरीर (जीवन) सेमल के वृक्ष के समान है। (बाह्य दृष्टि से खूब फूला हुआ है, उसी प्रकार मेरी बाह्य वेशभूषा एवं आचार आदि को) देखकर लोग भूल जाते हैं भ्रमित हो जाते हैं। जिस प्रकार (सेमल वृक्ष के फल) किसी काम नहीं आते हैं, (उसी प्रकार) मेरे शरीर में (जो ऊपरी) गुण हैं (वे किसी भी काम नहीं आते) ॥४॥

अन्धे ने (मैंने) (पाप का बहुत भारी) बोझ उठाया है, मार्ग बहुत ही पहाड़ी है। (मैं) आँखों से रास्ता ढूँढता (तो अवश्य) हूँ, (किन्तु) पाता नहीं हूँ; मैं किस प्रकार पहाड़ चढ़ कर लौँपू ? (गुरु नानक देव ने इन तुको में सारे अवगुण अपने में दिखा कर शेख सज्जन को लज्जित किया है।) ॥५॥

(हरी के नाम के बिना) अन्य सेवाएँ, नेकियाँ (अच्छाइयाँ) तथा चतुराइयाँ किस काम की ? हे नानक, तू नाम को सम्हाल, (जिससे तू) (बुरे कर्मों के) बन्धनों से मुक्त हो जा ॥६॥१॥३॥

[४]

जप तप का बंधु बेडूला जितु लंघाह बहेला ।
 ना सरवर ना ऊछले ऐसा पंधु सुहेला ॥१॥
 तेरा एको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सद रग ढोला ॥१॥रहाउ॥
 साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई ।
 जे गुण होबहि गंठड़ीऐ मेलेगा सोई ॥२॥
 मिलिआ होइ न बोछुड़ै जे मिलिआ होई ।
 आवागउणु निवारिआ है साचा सोई ॥३॥
 हउमे मारि निवारिआ सीता हे चोला ।
 गुर बचनो फलु पाइआ सह के अमृत बोला ॥४॥
 नानक कहै सहेलीहो सहु खरा पिआरा ।
 हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा ॥५॥२॥४॥

(हे मनुष्य), जप-तप के बेड़े को बांधो, (जिससे संसार-सागर को) शीघ्रता से पार कर लो । (नाम के द्वारा) रास्ता ऐसा सुखदायी हो जायगा (जैसा कि) समुद्र (का मार्ग होता) नहीं और यदि हो भी तो उछाल नहीं मारेगा ॥१॥

(हे हरी), तेरा एक नाम भी मंजीठी रंग है, हे प्रियतम, (उस मंजीठी रंग में) मेरा चोला (वस्त्र, शरीर) पक्के रंगवाला हो गया है । ('ढोला' = दक्षिणी पंजाब में 'ढोला' एक प्रसिद्ध प्रेमी हो गया है । ढोला ऐसा प्रसिद्ध प्रेमी हुआ कि उसका नाम ही 'प्रियतम अथवा प्रेमी' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा) ॥१॥रहाउ॥

साजन (अपनी) प्यारियों की ओर चल पड़े हैं; किस प्रकार मिलाप होगा ? (इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित ढंग से गुरु नानक देव देते हैं)—(यदि उन स्त्रियों को) गाँठ में (पल्ले) गुण हों, तो वह (प्यारा आप ही उन्हें अपने में) मिला लेगा ॥२॥

यदि (सच्चा) मिलाप हो, तभी मिलने के पदवान् विछोह नहीं होता । जो सच्चा (प्रभु) है, उसने आवागमन (जन्मना-मरना) निवारण कर दिया है । जिसने अहंकार को मारकर निवारण कर दिया है, उसका शरीर शीतल हो गया है, (तात्पर्य यह कि उसके त्रिविधि ताप शान्त हो गए हैं । [इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—“जिसने अहंकार को मार कर दूर कर दिया है, उसने पति—परमेश्वर के मिलने के लिए यह चोला सिया है ।]

[विशेष : उपर्युक्त पद में 'चोला' और 'सीता' शब्द श्लिष्ट हैं, जिनके निम्नलिखित अर्थ हैं—चोला—(१) वस्त्र (२) शरीर । सीता—(१) सिया (२) शीतल] (उस व्यक्ति को) गुरु के उपदेश द्वारा पति (परमात्मा के) अमृत वचन रूपी फल प्राप्त हो गए हैं ॥४॥

नानक कहते हैं कि हे सहेलियों, पति (परमात्मा) बहुत प्यारा है । हम सभी पति (परमात्मा) को दासियाँ हैं, वही हमारा सच्चा पति है ॥ ५ ॥ २ ॥ ४ ॥

[५]

जिन कउ भांडे भाउ तिना सवारसी ।
 मूखी करै पसाउ दूख बिसारसी ॥
 सहसा मूले नाहि सरपर तारसी ॥१॥
 तिना मिलिघा गुरु घ्राइ जिन कउ लीलिघा ।
 धंमूत हरि का नाउ बेवै बीलिघा ॥
 बालहि सतिगुर भाइ भबहि न भीलिघा ॥२॥
 जाकउ महसु हजूरि दूजै निवै किनु ।
 दरि दरबाणी नाहि मूले पुछ तिसु ॥
 छुटे ता कै बोलि साहिबु नदरि जितु ॥३॥
 खले घ्राए घ्रापि जितु नाही दूजा मतै कोइ ।
 डाहि उसारे साजि जाए सभ सोइ ॥
 नाउ नानक बखसीस नदरी करसु होइ ॥४॥३॥५॥

जिनके पात्र (शरीर, तात्पर्य यह कि अन्तःकरण) में प्रेम है, उन्हें (परमात्मा) सँवारेगा । (वह) प्रसन्न होकर उन्हें सुखी करेगा है और (उनके) सारे दुःखों को विस्मृत कर देगा । (इसमें) बिलकुल संशय नहीं है, (वह उन्हें) अवश्य तार देगा ॥ १ ॥

जिन्हें (परमात्मा के यहाँ से पहले से) लिखा है, उन्हें गुरु आकर मिल जाता है और हरि के अमृत-नाम की दीक्षा देता है । (जो) सद्गुरु के भावानुसार चलते हैं, (उन्हें स्थान-स्थान-पर) भिक्षा (माँगने के लिए) नहीं घूमना पड़ता ॥ २ ॥

जिसका महल सामने (निकट, समीप) ही है, (तात्पर्य यह कि आत्मस्वरूपी घर जिसके पास है), वह दूसरे से क्यों भुके ? (अन्य से याचना क्यों करे) ? (जो हरी के नाम में अनुरक्त है, उनके लिए) परमात्मा के द्वार पर दरबानी (पहरा) नहीं है, जिससे (वहाँ) बिलकुल पूछना पड़े । जिसके ऊपर साहब कृपादृष्टि करता है, उसका बोलना (बकवाद करना) समाप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

(वह प्रभु) आप ही हमें भेजता या ले आता है, जिसे (उस प्रभु को) कोई दूसरा सलाह देनेवाला नहीं है । (वही) प्रभु नष्ट करता है, (नष्ट करके) फिर निर्माण करके साजता है (और वही) सब कुछ जानता है । (जब प्रभु की) दृष्टि और कृपा होती है, हे नानक, (तभी) (उसके) नाम की बख्शिश मिलती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

भांडा हछा सोइ जो तिसु भावसी ।
 भांडा अति मलीगु धोता हछा न होइसी ॥
 गुरु दुघारै होइ सोभी पाइसी ।
 एतु दुघारै धोइ हछा होइसी ॥
 मैले हछे का बीचारु आपि बरताइसी ।

मनु को जाएँ जाइ अपने पाइसी ॥
 जेहे करम कमाइ तेहा होइसी ।
 अमृत हरि का नाउ आपि बरताइसी ॥
 चलिआ पति सिउ जनमु सवारि बाजा बाइसी ।
 मारणसु किआ बेचारा तिहु लोक सुराइसी ॥
 नानक आपि निहाल सभि कुल तारसी ॥१॥४॥६॥

जो (उस प्रभु को) अच्छा लगेगा, वही अच्छा पात्र (मनुष्य) सिद्ध होगा । जो बहुत मलिन पात्र है (पापी मनुष्य है), वह (बाहर के) धोने से अच्छा नहीं होगा ।

गुरु के द्वार पर होने से ही (जाने से ही) समझ प्राप्त होगी । इसी द्वार पर (अन्तःकरण) धोने से (मनुष्य) अच्छा होगा ।

पापात्मा (मूले) और पुण्यात्मा (अच्छे) का विचार (निर्णय) (प्रभु) स्वयं करेगा । किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि आगे जाकर (अवश्य स्थान) प्राप्त होगा, (क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों का निर्णय नहीं कर सकता । वह निर्णय तो परमात्मा ही करता है) ।

(मनुष्य) जिस प्रकार के कर्म करता है, उसी प्रकार का (फल भी प्राप्त) होगा । हरि के अमृत नाम को (प्रभु ही) बरतेगा (प्रदान करेगा), (ऐसा मनुष्य) (अपना) जन्म संवार कर प्रतिष्ठा के साथ (प्रभु के यहाँ) जाता है, (उसके जाने पर उसकी कीर्ति का) बाजा बजेगा ॥

एक बेचारे मनुष्यलोक का क्या कहना है, ऐसे मनुष्य की कीर्ति का डंका तीनों लोकों में बजेगा । हे नानक, (ऐसा व्यक्ति) स्वयं तो निहाल होता ही है, वह अपने समस्त कुल को भी तार देगा ॥१॥४॥६॥

[७]

जोगी होवै जोगवै भोगी होवै छाड ।
 तपीआ होवै तपु करे तीरथि माल मलि नाइ ॥१॥
 तेरा सदड़ा सुरीजै भाई जे को बहै अलाइ ॥१॥२॥हाउ॥
 जैसा बीजे सो लुरे जो खटे सुो खाइ ।
 अगे पुछ न होवई जे सगु नोसाराँ जाइ ॥२॥
 तैसो जैसा काढीऐ जैसी कार कमाइ ।
 जो दसु चिति न आवई सो दसु बिरया जाइ ॥३॥
 दहु तनु बेची बँ करी जे को लए बिकाइ ।
 नानक कंभि न आवई जितु तनि नाही सजा नाउ ॥४॥५॥७॥

(यदि कोई) योगी होता है, (तो वह) अपना योग पूर्ण करना (चाहता) है । (और कोई) भोगी होता है, तो वह भोग भोगना (चाहता) है । (यदि कोई) तपस्वी होता है, (तो वह) तप करता है और तीर्थों में मल मल कर स्नान करता है ॥१॥

हे प्यारे , मैं तो तेरा सन्देशा हो मुनना चाहता हूँ , यदि कोई बैठकर सुनावे ॥१॥रहाउ॥
(मनुष्य) जैसा बोता है , वैसा ही काटता है , और जो प्राप्त करता है , वही खाता है ।
यदि कोई (नाम के) परवाने के साथ (समेत) जाय , (तो उसको) आगे परलोक में
पूछ नहीं होती ॥२॥

(मनुष्य) जैसा कर्म करता है , वैसा ही कहा जाता है । जिस साँस में (परमात्मा)
चित्त में नहीं आता है , वह साँस व्यर्थ ही जाती है ॥३॥

(प्रियतम को पाने के निमित्त) यदि कोई व्यक्ति (मेरे) इस शरीर को बिक्री में
खरीदे , तो (मैं इसे) बच कर सकती हूँ हं नानक , जिस शरीर में सच्चे (हरी के) नाम
का (निवास) नहीं होता , (वह शरीर) (किसी भी) काम नहीं आता ॥४॥५॥७॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ७ ॥

[८]

जोगु न लिखा जोगु न डंडे जोगु न भसम चड़ाईऐ ।

जोगु न मुंडी मुंडि मुडाइऐ जोगु न सिङ्गी बाईऐ ।

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥१॥

गली जोगु न होई ।

एक दृष्टि करि समसरि जागै जोगी कहीऐ सोई ॥१॥रहाउ॥

जोगु न बाहरि मड़ी भसानी जोगु न ताड़ी लाईऐ ।

जोगु न देसि दिसंतरि भबिए जोगु न तोरवि नाईऐ ॥

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥२॥

सतिगुरु भेटे ता सहसा तूटे धावतु बरजि रहाईऐ ।

निभरु भरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ ॥

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥३॥

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ ।

बाजे बाझू सिङ्गी बाजे तउ निरभउ पडु पाईऐ ॥

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जुग जुगति तउ पाईऐ ॥४॥१॥८॥

योग (की प्राप्ति) न तो कंथा (पहनने) में है , न डंडा (लेने) में है , और न
शरीर पर भरम लगाने में है । योग न तो (कानो में) मुद्रा (पहनने) में है , न मुंड मुडवाने
में (सिर घोटाने में) और न शृङ्गी (बाजा) बजाने ही में है । (यदि) माया के बीच में
(रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से (युक्त) रहा जाय , (तो यही) योग की
(वास्तविक) युक्ति है (और इसी से योग) प्राप्त होता है ॥१॥

(निरी , कोरी) बातों से ही योग (की प्राप्ति) नहीं होती । (जो) एक दृष्टि करके
(सभी को) समान समझे , (उसी को वास्तविक) योगी कहा जाता है ॥१॥रहाउ॥

योग बाहर—कबो (समाधिस्थलो) (अथवा) स्मथानो (के बीच रहने में) नहीं
है (और बाहर) ध्यान लगाने में भी योग नहीं है । देश , देशान्तरों के भ्रमण करने में भी

योग नहीं है और न तीर्थादिकों के स्नान में ही योग (की प्राप्ति होती) है । (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से (युक्त) रहा, जाय (तो यही) योग की (वास्तविक) युक्ति है (और इसी से योग) प्राप्त होता है ॥२॥

सद्गुरु मिले, (तभी) भ्रम टूट सकता है (और विषयो की ओर) दौड़ते हुए (मन को) रोक कर रखा जा सकता है ; तभी (आत्मानंद का) निर्भर (निरन्तर) भरने लगता है और सहजावस्था में वृत्ति (धुनि) लग जाती है (और) (अपने) घर ही में (आत्म-स्वरूप में ही परमात्मा का) परिचय प्राप्त हो जाता है । (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से (युक्त) रहा जाय, (तो यही) योग की (वास्तविक) युक्ति है (और इसी से योग) प्राप्त होता है ॥३॥

हे नानक, ऐसा योग कमाओ कि जीवितावस्था में ही (अहंकार से) मर कर रहो । (जब) बिना बजाए हो (नाम की) श्रृङ्गी बजती रहे, तभी निर्भय पद की प्राप्ति होती है । (यदि) माया के बीच में (रहते हुए) निरंजन (माया से रहित हरी) से युक्त रहा जाय, (तो यही) योगी का (वास्तविक) युक्ति है (और तभी योग) प्राप्त होता है ॥४॥१॥८॥

[६]

कउणु तराजी कवणु तुला तेरा कवणु सराफु बुलावा ।

कउणु गुरु के पहि दोखिया लेवा के पहि सुलु करावा ॥१॥

मेरे लाल जीउ तेरा अंतु न जाणा ।

तू जल थल महीअल भरिपुरि लीला तूं आपे सरब समाणा ॥१॥रहाउ॥

मनु ताराजी चितु तुला तेरो सेव सराफु कमावा ।

घट ही भीतरि सो सह तोली इन बिधि चितु रहावा ॥२॥

आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा ।

आपे देखे आपे बूझे आपे है बरणजारा ॥३॥

अंधुला नीच जाति परदेसी खिनु आवै तिलु जावै ।

ता को संगति नानकु रहवा किउ करि मूड़ा पावै ॥४॥२॥६॥

कौन तराजू है, कौन तोल (माप) है और तेरा कौन सराफ है (जो तोल करने के लिए) बुलावा गया है ? किस गुफ के पास दीक्षा ली है और किससे (उस परम तत्व का मूल्य) कराया है ? ॥१॥

हे मेरे लाल जी (प्रियतम), (मैं) तेरा अन्त नहीं जान सका । (हे प्रभु), तू जल, थल तथा पृथ्वी और आकाश के बीच में पूर्ण रूप से व्याप्त है, तू स्वयं ही सर्वत्र समाया हुआ है ॥१॥रहाउ॥

मन तराजू है, चित्त तोल है, 'तेरी सेवा की कमाई' मेरे लिए सराफ है, (तात्पर्य यह कि सेवा के द्वारा मन में प्रियतम हरी के परखने की कला उत्पन्न होती है) । अपने हृदय के अंतर्गत उस प्रियतम को तोलू—(इस प्रकार, अपने चित्त को स्थिर कर रखू—(यही) तोलने की सच्ची विधि है ॥२॥

प्रभु आप ही 'कुडा' है [कुडा=तराजू की डांडी के मध्य में जो मुई खड़ी होती और अधिक वजन वाले पलड़े की ओर झुकती है ।], आप ही वजन हैं, आप ही तराजू हैं और

आप ही (सब को) तोलने वाला है । (वह) आप ही देखता है, आप ही समझता है और आप ही बनजारा है । [बनजारा = छोटे व्यापारी जो अपना समान किसी पशु पर लाद कर बेचते हैं] ॥३॥

(मन) अंधा, नीच और परदेशी (बेगाना) है; (वह एक) क्षण में जाता है (और तिल मात्र में) जाता है, (तात्पर्य यह एक क्षण भी मन स्थिर नहीं रह सकता) । इस प्रकार के (मन की) सगति में (मैं) (नानक) रहता हूँ ; (मैं) मूल किस प्रकार हरी को प्राप्त कर सकता हूँ ॥४॥२॥६॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु सूही, महला १, घर १

असटपदीआं

[१]

सभि अवगण मे गुगु नही कोई । किउकरि कंत मिलावा होई ॥१॥
ना मे रूपु न बके नैरण । ना कुल दंगु न मोठे बैरण ॥२॥रहाउ॥
सहजि सीगार कामणि करि आवे । ता सोहागणि जा कंतै भावे ॥२॥
ना तिसु रूपु न देखिआ काई । अंति न साहिबु सिमरिआ जाई ॥३॥
सुरति मति नाहो चतुराई । करि किरपा प्रभ लावहु पाई ॥४॥
खरो सिआणी कंत न भाणी । माइआ लागी भरमि भुलाणी ॥५॥
हउमे जाई ता कंत समाई । तउ कामणि पिआरे नव निधि पाई ॥६॥
अनिक जनम बिछुरत बुलु पाइआ । करु गहि लेहु प्रीतम प्रभ राइआ ॥७॥
अणति नानक सहू है भी होसी । जे भावे पिआरा ते रावेसी ॥८॥१॥

मुझमें सभी अवगुण हैं, कोई भी गुण नहीं है । (भला, मुझ अवगुणवाली से) कंत (पति) का मिलाप किस प्रकार हो सकता है ? न तो मुझमें रूप (सौन्दर्य) है और न (मेरे) नेत्र ही बाँके (सुन्दर) हैं, न तो मुझमें कुल का ही दंग है, (तात्पर्य यह कि मैं कुलीना भी नहीं हूँ) और न मुझमें मोठी वाणी ही है ॥१॥रहाउ॥

स्त्री सहजावस्था की रहनी को (अपना) शृङ्गार करके आए, (तभी कंत से मिलाप हो सकता है) । जब स्त्री कंत को अच्छी लगती है, तभी (वह) मुहागिनी (समझी जाती है) ॥२॥

उस (हरी का) न तो कोई रूप है और न (उसकी) कोई रेखा ही है । (वह प्रभु) अंत में स्मरण भी नहीं किया जा सकता (अतएव उसका अभी से स्मरण करना चाहिए) ॥३॥

न तो मुझ में सुरति (ध्यान) है, न बुद्धि है (और न) कोई चतुराई ही है । हे प्रभु कृपा करके (अपने) चरणों में (मुझे) लगा ले ॥४॥

मैं अच्छी चतुर हूँ (कि चतुर बन कर के भी) कंत की प्रसन्नता न (प्राप्त कर सको) मैं माया में पड़ कर भ्रम में भटक गई ॥५॥

(यदि स्त्री का) अहंकार नष्ट हो जाय, (तभी वह) कंत से समा सकती है और तभी वह नव निधियों वाले प्रियतम को पा सकती है । [नव निधि = नाना भौतिक सुखों के

सामान; साधारणतया इनकी संख्या ६ मानी जाती है—(१) पद्म (सोना-चाँदी), (२) महापद्म (हीरे और जवाहर), (३) शंख (सुन्दर-सुन्दर भोजन और वस्त्र), (४) मकर (शस्त्र विद्या की प्राप्ति तथा राजदरबारों में मान), (५) कच्छप (कपड़े तथा दाने का व्यापार), (६) कुन्द (सोने का व्यापार), (७) नील (मोती-मृगे का व्यापार) (८) मुकुन्द (राग आदि ललित कलाओं की प्राप्ति) (९) खर्व] ॥६॥

(हे हरी), अनेक जन्मों में (तुझसे) बिछुड़ कर (बहुत) दुःख पाए हैं । हे मेरे प्रियतम , प्रभु , राजा , (अब मेरे) हाथ पकड़ कर (बचा ले) ॥७॥

नानक कहता है कि प्रभु (हरी) (वर्तमान काल में) है, (भूतकाल में) था (और भविष्य में) रहेगा । प्रियतम जिसे चाहता है, उसे भोगता है, (तात्पर्य यह कि जिस भक्त को प्रभु चाहता है, उसे अपना बना कर मानता है) ॥८॥१॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ६ ॥

[२]

कच्चा रंगु कसुंभ का योड़िझिआ दिन चारि जीउ ।
विगु नाबै भ्रमि भुलीआ ठगि सुठी कूड़िआरि जीउ ॥
सचे सेती रतिआ जनमु न दूजी बार जीउ ॥१॥
रंगे का किआ रंगीऐ जो रते रंगु लाइ जी ।
रंगलबाला सेबीऐ सचे सिउ चितु लाइ जीउ ॥१॥रहाउ॥
चारे कुडा जे भवहि बिनु भागा धनु नाहि जीउ ।
अवगणि सुठी जे किरहि बधिक धाइ न पाहि जीउ ॥
गुरि राखे से उबरे सबदि रते मन माहि जीउ ॥२॥
चिटे जिनके कपड़े मेले चित कठोर जीउ ।
तिन मुखि नामु न ऊपजै दूजै विआपे चोर जीउ ॥
मूलु न बूझहि आपणा से पसूआ से डोर जीउ ॥३॥
नित नित सुसीआ मनु करे नित नित मंगै सुख जीउ ।
करता चिति न आवई फिरि फिरि लगहि दुख जीउ ॥
सुख दुख दाता मनि वसै तितु तनि कैसी सुख जीउ ॥४॥
बाकी बाला तलबीऐ सिरि मारे जंदारु जीउ ।
लेखा मंगै बेवणा पुछै करि बीचारु जीउ ॥
सचे की लिव उबरै बखसे बखसणहारु जीउ ॥५॥
अन को कीजै मितड़ा लाकु रलै मरि जाइ जीउ ।
बहु रंग बेखि भुलाइआ भुलि भुलि आवै जाइ जीउ ॥
नदरि प्रभू ते छुटीऐ नदरी मेलि मिलाइ जीउ ॥६॥

नाफल गिमान बिहृणिआ गुर बिनु गिमानु न भालि जीउ ।

खिंचीताणि बिनुचोए कुरा भला दुइ नालि जीउ ॥

बिनु सबदै भै रतिआ सभ जोही जम कालि जीउ ॥७॥

जिनि करि कारखु धारिआ सभसै वेइ आधार जीउ ।

सो किउ मनहु विसारोए सदा सदा दातार जीउ ॥

नानक नामु न बीसरे निधारा आधार जीउ ॥८॥१॥२॥

विशेष : इस पद में 'जीउ' शब्द प्रत्येक तुक में लगा हुआ है। 'जीउ' का तात्पर्य 'जी' है। यह संबोधन-सूचक शब्द है। गुरु नानक देव जी के एकाग्र पदों में इस प्रकार संबोधन-सूचक शब्द के प्रयोग मिलते हैं, जैसे 'राम' 'जीउ' 'माई' 'पियरि' 'बनिराम जीउ' आदि।

अर्थ : कुसुभी रंग कच्चा और थोड़े (दिनों) का—चार दिनों का होता है, (तात्पर्य यह कि मायिक पदार्थों के आकर्षण नश्वर और क्षणभंगुर होते हैं)। (मनमुख स्त्री) नाम-विहीन होने के कारण (माया के) भ्रम में भूली रहो और यह भूठी (स्त्री) ठगी जाकर लूटी गयी। सच्चे (हरी) से अनुरक्त हो जाने पर, (फिर) दूसरी बार जन्म नहीं (धारण करना पड़ता) ॥१॥

नाम में रंगे हुए (व्यक्ति) को (माया के) रंग में किस प्रकार रंगा जाय ? (तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति हरि के मजीठी रंग में रंगा हुआ है, उसे माया के कुसुभी रंग में नहीं रंगा जा सकता)। (जो नाम के रंग में) सच्चा रंगनेवाला (गुरु) है, (उसी सच्चे से) चित्त लगाना चाहिए (और उमी की) सेवा करनी चाहिए ॥१॥२॥३॥

बाहे (लोग संसार की) चारो दिशाओं में भटके, किन्तु बिना (पूर्व जन्मों के) भाग्य के (नाम रूपी) धन नहीं प्राप्त होता। अवगुणों द्वारा लूटे जाकर जो (माया के बन्धनों) में बंधे हुए (कैदियों की तरह) फिरते रहते हैं, उन्हें ठिकाना नहीं मिलता। जिन (भाग्यवानों की) गुरु ने रक्षा की है, वे ही बचे हैं (और उनका) मन शब्द (नाम) से रंग गया है ॥२॥

जिनके वस्त्र (खूब) उजले हैं, पर चित्त मैला और कठोर है, उनके मुख से नाम नहीं निकलता, वे चोरो (की भाँति) द्वैतभाव में निमग्न रहते हैं। (जो व्यक्ति) अपना मूल स्थान (उत्पत्ति-स्थान) नहीं समझते, वे पशुओं और दोरों के समान हैं ॥ ३ ॥

(मनुष्य) नित्य-नित्य (नयी-नयी) खुशियों में मन लगाता है और नित्य नित्य (नवीन) सुखों को माँगता है। उसके चित्त में कर्त्ता पुरुष (परमात्मा का) (ध्यान) नहीं आता, (अतएव वह) बार-बार दुःखों में लगता है। जिसके मन में सुखों और दुःखों का देनेवाला (हरी) बस जाता है, उसके शरीर में भूख कैसे लगेगी ? ॥ ४ ॥

(किए हुए कर्मों की) बाकी निकालनेवाला—(यमराज) (शीघ्र ही हिसाब लेने के लिए) बुलायेगा (और बाकी निकलने पर) यम सिर में (तड़ियाँ) मारेगा। जब (कर्मों का) लेखा माँगा जाता है, (तो उसे अवश्य) देना होगा। हिसाब पूछ कर (उस पर) विचार किया जायगा। सच्चे (परमात्मा) के एकनिष्ठध्यान से मनुष्य (संसार-सागर से) उबर जाता है; क्षमा करनेवाला (प्रभु ही मनुष्य को) क्षमा करता है ॥ ५ ॥

(यदि मनुष्य परमात्मा को छोड़कर किसी अन्य को (अपना) मित्र बनाता है, (तो वह) मर जायगा और छाक में मिल जायगा। (मनुष्य माया के) अनेक रंगों को देख

कर (उसी में) भटक गया है, (वह बार-बार) भटक भटक कर (जन्म मरण के चक्कर में) घाता-जाता रहता है । (किन्तु हरी की) कृपादृष्टि से (वह भवक्लेश से) छूट जायगा (और वह परमात्मा उसे अपने में सदैव के लिये) मिला लेगा ॥ ६ ॥

ऐ ज्ञान-विहीन, गाफिय (मनुष्य), गुरु के बिना ज्ञान को मत खोज, (क्योंकि गुरु के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता है) । (मनुष्य) बुरे-भले की खीचातानी (संघर्ष) में नष्ट होता है; ये दोनों (भले और बुरे मनुष्य के) साथ ही रहते हैं । बिना (गुरु के) शब्द तथा (परमात्मा के) भय में रंगे हुए, यमराज-काल देखता रहता है ॥ ७ ॥

जिसने सृष्टि रच कर धारण कर रक्खी है, और जो सब को आश्रय देता है, उस शाश्वत दाता (प्रभु) को (भला) मन में कैसे भुलाया जाय ? नानक उस नाम को (कभी) न भूले, जो निराधारो का आधार है ॥ ८ ॥ १ ॥ २ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मूही, महला १ काफ़ी, घर १०

[३]

माणस जनमु दुखसु गुरमुखि पाइआ ।

मनु तनु होइ सुलंभु जे सतिगुर भाइआ ॥१॥

चलै जनमु सवारि बखरु सनु लै ।

पति पाइ दरबारि सतिगुर सबदि भै ॥१॥रहाउ॥

मनि तनि सनु सलाहि साचे मनि भाइआ ।

लालि रता मनु मानिआ गुरु पूरा पाइआ ॥२॥

हउ जीवा गुण सारि अंतरि तू वसै ।

तू बसहि मन भाहि सहजे रसि रसै ॥३॥

भूरख मन समझाइ आखउ केतड़ा ।

गुरमुखि हरि गुण गाइ रंगि रंगेतड़ा ॥४॥

नित नित रिदै समालि प्रीतमु आपरणा ।

जे चलहि गुण नालि नाही दुखु सतापना ॥५॥

मनमुख भरमि भुलाणा ना तिसु रंगु है ।

भरसी होइ बिडाणा मनि तनि अंगु है ॥६॥

गुर की कार कमाइ लाहा धरि आरिआ ।

गुरबारी निरबारा सबदि पछारिआ ॥७॥

इक नानक की अरदासि जे तुघु भावसी ।

भै दीजे नाम निवासु हरि गुण गावसी ॥८॥१॥३॥

मनुष्य का जन्म बहुत ही दुर्लभ है, (वास्तव में) गुरुमुखी को ही (यह जीवन) प्राप्त है, (तात्पर्य यह कि गुरुमुख ही मानव जीवन की वास्तविक कीमत जानते हैं) । यदि

सहगुरु को (मनुष्य) अच्छा लगने लगा, तो उसके तन और मन दोनों ही शीतल हो जाते हैं ॥ १ ॥

सद्गुरु की शिक्षा और भय के द्वारा (मनुष्य) सच्चाई का सोदा लेकर और अपना जन्म सँवार कर (इस संसार से) विदा होता है, (वह परमात्मा के) दरबार में प्रतिष्ठा पाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

तन और मन से सत्य (परमात्मा की) स्तुति करने पर मन सच्चे (हरी को) अच्छा लगने लगा । पूर्ण गुरु के पा जाने पर, मन लाल (प्रियतम) में अनुरक्त होकर मान गया ॥२॥

मैं (तेरे) गुणों का स्मरण करके जीता हूँ, (हे प्रभु), तू मेरे अन्तःकरण में बसता है । (हे प्रभु), तू (मेरे) मन में निवास करता है, (और मन) सहज ही भाव से आनन्द में भर जाता है ॥ ३ ॥

(हे मेरे) मूर्ख मन, (मैं) तुझे कितना समझा समझा कर कहूँ ? गुरु के द्वारा हरि के गुणों को गा कर, (उसके) रंग में रंग जा ॥ ४ ॥

अपने प्रियतम (परमात्मा) को नित्य नित्य हृदय में स्मरण कर । यदि गुणों को (अपने) साथ लेकर चले, तो दुःख संताप नहीं देगा ॥ ५ ॥

मनमुख (माया के) भ्रम में भटक गया है उसे कोई रंग (आनन्द) नहीं है, (भाव यह कि मनमुख में प्रेम की लगन लगती ही नहीं) । (मनमुख) मर कर बेगाना हो जाता है (और उसके) तन और मन विभ्र स्वरूप हो जाते हैं ॥ ६ ॥

गुरु का कार्य करके (उसका) लाभ घर में ले आया । गुरु की वाणी और उसके उपदेश द्वारा सहजावस्था (निर्वाण पद, चतुर्थ पद, तुरीयपद) को पहचान लिया ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), यदि तुझे अच्छा लगे, तो नानक की यह प्रार्थना है कि मुझे नाम में निवास दे, (ताकि) (तेरा) गुण गाऊँ ॥ ८ ॥ १ ॥ ३ ॥

[४]

जिउ आरणि लोहा पाद भंनि घड़ाईऐ ।

तिउ साकतु जोनी पाद भवै भघाईऐ ॥१॥

बिनु बूझै ससु दुलु वुलु कमावणा ।

हउमै आवै जाइ भरमि भुलावणा ॥१॥रहाउ॥

तूं गुरमुखि रखणहाक हरि नामु धिघाईऐ ।

मेलहि तुझै रजाइ सबडु कमाईऐ ॥२॥

तूं करि करि देखहि घापि देखि सु पाईऐ ।

तु देखहि घापि उघापि दरि बीनाईऐ ॥३॥

देही होबनि लाकु पवगु उडाईऐ ।

इहु किये घरु अउताकु महलु न पाईऐ ॥४॥

बिहु बीबी अंध घोरे घबु मुहाईऐ ।

गरबि मुसे घरु चोरु किनु रूपाईऐ ॥५॥

गुरमुखि चोरु न लागि हरि नामि जगाईऐ ।
 सबदि निबारी आगि जोति दीपाईऐ ॥६॥
 लालु रतनु हरि नामु गुरि सुरति बुझाईऐ ।
 सदा रहै निहकामु जे गुरमति पाईऐ ॥७॥
 राति दिहै हरि नाउ मनि बसाईऐ ।
 नानक मेलि मिलाइ जे तुषु भाईऐ ॥८॥२॥४॥

जिस प्रकार भट्टी में लोहा डाल कर तोड़ कर गड़ा जाता है (लोहा गड़ने के लिए उसे बार-बार भट्टी में डाला जाता है), उसी प्रकार भक्ति (माया का उपासक) योनि के अंतर्गत पड़कर (बार-बार) (इस संसार में) भटकता रहता है ॥ १ ॥

बिना (हरी को) समझे हुए सब दुःख ही होते हैं और दुःख ही कमाना होता है । (इस प्रकार) अहंकार (के वशीभूत) (मनुष्य) आता जाता रहना है और भ्रम में भटकता रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे हरा), तू गुरु द्वारा बचा लेनेवाला है, (अतएव) हरी का नाम स्मरण करना चाहिए । (यदि तेरी) मर्जी हो, (तो) तू (गुरु) मिला देता है (और फिर हम उपासक) शब्द कमाते हैं, (उसके शब्द पर आचरण करके अपना जीवन बनाते हैं) ॥ २ ॥

तू (सृष्टि) रच-रच कर (उसे) देखता रहता है, (उसकी देखभाल करता रहता है); (तू, जो कुछ) देता है, (वही हम) पाते हैं । तू (अपनी ही) निगरानी में (सृष्टि को) बना बिगाड़ कर देखता रहता है ॥ ३ ॥

(यह) शरीर खाक हो जायगा (और शरीर में स्थित) प्राण भी उड़ जायेंगे । (संसार में मनुष्यों के) घरो की जो बैठके थी, वे किधर (चली गईं)? (अब तो उनकी) जगह भी नहीं मिलती । [अउलाक फारसी ओताक=बैठक । महल (अरबो)=मकान, इलाका, मौका, कदर] ॥ ४ ॥

(यद्यपि) सूर्य स्थित है, (फिर भी) घनघोर अंधकार है और घर (तात्पर्य यह कि घर का माल-असबाब) लुटा जा रहा है । (यह घर) अहंकार (के हाथों) लुटा जा रहा है, यह घरेलू चोर है, फिर (किससे) रोये (और अपना दुखड़ा सुनाये)? ॥ ५ ॥

गुरु द्वारा (अहंकार रूपी) चोर नहीं लगना, (क्योंकि वह) नाम (के पहरेदार द्वारा) जगाता रहता है । (गुरु ने अपनी) शिक्षा द्वारा (नृगणा को) अग्नि शान्त कर दी (और अन्तःकरण में ज्ञान के दीपक की) ज्योति प्रदीप्त कर दी ॥ ६ ॥

गुरु ने नाम रूपी लाल और रत्न को ध्यान द्वारा समझा दिया । यदि गुरु की शिक्षा प्राप्त हो जाती है, (तो शिष्य) सदैव निष्काम (भाव से संसार में) रहता है ॥ ७ ॥

(वह शिष्य) रात-दिन (अपने) मन में हरिनाम बसा लेता है । नानक कहते हैं (कि हे प्रभु), यदि तुझे अच्छा लगता है, (तो) तू (उसे) (अपने में) मिला लेता है ॥ ८ ॥ २ ॥ ४ ॥

[५]

मनहु न नामु बिसारि अहिनिसि धिआईऐ ।

जिउ राखहि किरपा घारि तिवै सुख पाईऐ ॥१॥

मे धंधुले हरि नाम लुटो टोहणी ।
 रहउ साहिब की टेक न मोहै मोहणी ॥१॥रहाउ॥
 जह देखउ तह नालि गुरि देखानिआ ।
 अंतरि बाहरि भालि सबदि निहानिआ ॥२॥
 सेबी सतिगुर भाइ नामु निरंजना ।
 तुधु भावै तिवै रजाइ भरमु भउ भंजना ॥३॥
 जनमत हो दुधु लावै मरण। आइ कै ।
 जनमु मरण परवाणु हरि गुण गाइ कै ॥४॥
 हउ नाही तू होबहि तुध ही साजिआ ।
 आपे यापि उयापि सबदि निवाजिआ ॥५॥
 बेही भसम उलाइ न जापो कह गइआ ।
 आपे रहिआ समाइ सो जिसमाइ भइआ ॥६॥
 तूं नाही प्रभ दूरि जगहि सभ तू हे ।
 गुरमुखि बेलि हदूरि अंतरि भी तू हे ॥७॥
 मे दीत्रे नाम निवासु अंतरि साति होइ ।
 गुण गावै नानक दासु सतिगुरु मति बेइ ॥८॥३॥५॥

(हे मनुष्य), मन मे नाम को मत भुलावो, अहंनिश (उसी का) ध्यान करो । जिस प्रकार कृपा कर के (प्रभु) रक्षे, उसी प्रकार (रहो) (और उसी मे) सुख पाओ ॥१॥

मुझ् अपने के लिए हरि का नाम टटोलने की लकड़ी (छड़ो) है । मैं (अपने) साहब के आसरे रहता हूँ, (इसलिए) मोहिनी (माया) मुझे नहीं मोहित कर सकती ॥१॥रहाउ॥

(मैं) जहाँ देवता हूँ, वही (प्रभु मेरे) साथ है, गुरु ने (इस वस्तु को मुझे) दिखा दिया है । भीतर और बाहर खोज कर (गुरु के) शब्द द्वारा (इसे) देख लिया है ॥२॥

(मैं) प्रेम से सद्गुरु की सेवा करता हूँ, (जिसके द्वारा) नाम निरजन (की प्राप्ति होती है) । हे भ्रम और भय को नष्ट करनेवाले (हरो) (जैसा) तुम्हें अच्छा लगे, वैसी आज्ञा (मुझे) दे ॥३॥

जन्म लेते ही मरने का दुःख आकर पेश होता है । (किन्तु साधक) हरि का गुण गाकर जन्म-मरण (से छूट कर) (परमात्मा के यहाँ) प्रामाणिक समझा जाता है ॥४॥

(हे प्रभु) मैं नहीं (हूँ) तू ही है, तुम्हीं ने (सब कुछ) बनाया है । तू आप ही उत्पन्न करके नाश करता है, (पर किसी बिरले को ही) नाम (शब्द) के द्वारा बड़ाई देता है ॥५॥

शरीर को खाक मे मिला कर, पता नहीं, (जोव) कहाँ चला जाता है ? आश्चर्य मयी घबराहट यह है कि दोनों दशाओं मे—रचनावाली और संहारवाली मे—मनुष्य के रहने मे और न रहने मे (प्रभु) आप ही समाया हुआ है ॥६॥

हे प्रभु, तू दूर नहीं है, तू सब कुछ जानता है । गुरु को शिक्षा द्वारा (उन प्रभु को) समीप ही देखो; (हे प्रभु) तू ही (सबके) अन्तर्गत है ॥७॥

(हे प्रभु मुझे अपने) नाम में निवास दे, (जिससे कि) हृदय शान्त हो जाय । हे सद्गुरु, (मुझे) बुद्धि दे ताकि दास नानक (प्रभु का) गुणगान करे ॥८॥३॥५॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु सूही, महला १

(१)

कुचजी

मंझ कुचजी अंभावणि डोमड़े हउ किउ सहु रावणि जाउ जोउ ।
 इकडू इकि खंडीया कउणु जाएँ मेरा नाउ जोउ ॥
 जिन्ही सखी सहु राविआ से अबी छावड़ीएहि जोउ ।
 से गुण मंझ न आवनी हउ कै जी दोस धरेउ जोउ ॥
 किआ गुण तेरे विथरा हउ किआ किआ घिना तेरा नाउ जोउ ।
 इकतु टोलि न अबड़ा हउ सद कुरवाणै तेरै जाउ जोउ ॥
 सुइना रुपा रंगुला मोती त माणिकु जोउ ।
 से वसतू सहि दितीया मैं तिन्ह सिउ लाइआ चितु जोउ ॥
 मंवर मिटी सवड़े पथर कीते रासि जोउ ।
 हउ एनी टोली भुलीअसु तिसु कंत न बैठी पासि जोउ ॥
 अंबरि कूजा कुरलीआ बग बहिठै आइ जोउ ।
 सा धन चली साहुरै किआ सुहु देसी अगै जाइ जोउ ॥
 सुती सुती भालु थोआ भुली बाटड़ीआसु जोउ ।
 तै सह नालहु सुतीअसु दुखा कूं धरीआसु जोउ ॥
 तुघु गुण मै सभि अवगणै इह नानक की अरदासि जोउ ।
 सभि राती सोहागणौ मै डोहागणि काई राति जोउ ॥१॥

विशेष : इस पद में बुरे आचारवाली स्त्री का वर्णन है । इस पद में 'लहिदी' भाषा के शब्दों का आधिक्य है ।

यहाँ 'जोउ' शब्द संबोधन-सूचक है । जोउ का तात्पर्य 'जी' से है । यह सभी पंक्तियों में प्रयुक्त हुआ है ।

यह 'कुचजी' वाणी कामरूप (आसाम) की रानी नूरशाह के प्रति कही गई है । नूरशाह अपने जादू-टोने के लिए प्रसिद्ध थी । उसने गुरु नानक देव को भी अपने जादू-टोने के बशीभूत करना चाहा, पर असफल रही । गुरु नानक देव ने इस पर 'कुचजी' वाणी का उच्चारण किया ।

अर्थ : मैं अत्यधिक बुरे आचरण वाली (कुचजी) और दोषों वाली हूँ; (भला) मैं किस प्रकार (अपने पति) (परमात्मा) के पास रमण करने के लिए जा सकती हूँ ? (उस स्वामी की दासियाँ तो) एक एक से बड़-चढ़ कर हैं, मुझ (निकम्मे को) नाम वहाँ कौन जानता है ? (तात्पर्य यह कि वहाँ भोगे कौन परवाह करेगा) ?

जिन सखियों ने पति के साथ रमण किया है वे ग्राम (वृक्ष) की छाया के नीचे हैं (भाव यह कि वे परम सुखी हैं) । उनके गुण मुझमें नहीं है, (अतएव) मैं किसे दोष दूँ ?

मैं तेरे किन गुणों को विस्तारपूर्वक (कहूँ) ? और तेरे किन किन नामों को लूँ ? मैं तेरी एक बड़ाई तक भी नहीं पहुँच सकती, मैं तुझ पर सदैव कुरबान हो जाती हूँ ॥

सोना, चाँदी, भ्रान्तद प्रदान करनेवाले मोती माणिक्य—आदि (मूल्यवान्) वस्तुएँ (मेरे) पति (परमात्मा) ने मुझे दी हैं । मैंने इन्हीं में अपना बित लगा दिया है (और दाता को भूल गयी) ॥

मिट्टी के बनाए गए और पत्थरों द्वारा सजाए हुए (बड़े-बड़े) मकानों (आदि) में, बड़ाई और शोभा के सामानों में मैं (विलकुल) झूली रही और अपने उम पति के पास नहीं बैठी, (जिसने यह सब वस्तुएँ मुझे दी) ;

आकाश में (भाव यह कि सिर में) काच पक्षियों का कुरलना (आवाज करना) सुनाई पड़ने लगा, (तात्पर्य यह कि वृद्धावस्था के कारण सिर झँझ झँझ करने लगा) और बगुले आकर बैठ गए (यानी बाल सफेद हो गए) हैं । स्त्री (अपने) समुराल (परलोक) चली है, आगे (परलोक में) जाकर वह क्या मुँह दिखावेगी ?

(अज्ञान निद्रा में) सोते ही सोते सबेरा हो गया (आयु रूपी रात्रि व्यतीत हो गई) (और वह स्त्री अपना) मार्ग भूल गई । (ऐ मूर्ख स्त्री), तू पति के साथ विच्छुड गई और दुःखों को ही एकत्र किया ॥

(हे प्रभु), तुझ में तो (सभी) गुण हैं, और (मुझमें) सारे अवगुण हैं । नानक की एक प्रार्थना है— (हे प्रभु), (तूने) मुद्गालियों को तो सारी रातें (दे रखी हैं), मुझ दुहा-गिनी को भी कोई रात दो ॥१॥

(२)

सुचजी

जा तू ता मैं सभु को तू साहिबु मेरी रासि जीउ ।
तुष्टु अंतरि हउ सुखि बसा तू अंतरि साबासि जीउ ॥
भारौ तखति बडाईआ भारौ भोख उदासि जीउ ।
भारौ घल सिरि सरु वहै कमलु फुले आकासि जीउ ॥
भारौ भव जलु लंघीऐ भारौ मंकि भरीआसि जीउ ।
भारौ सा सहु रंगुला सिफति रता गुणतासि जीउ ॥
भारौ सहु भीहावला हउ आवणि जाणि सुईआसि जीउ ।
तू सहु अगमु अतोलवा हउ कहि कहि दहि पईआसि जीउ ॥
किआ मागउ किआ कहि सुली मैं दरसन भूख पिआसि जीउ ।
गुर सबदी सहु पाइआ सभु नानक की अरदासि जीउ ॥२॥

(हे प्रभु), यदि तू है, तो मेरे लिए सब कुछ है ; हे साजब, तू ही मेरी राशि (पूजी है) । तेरे भीतर मैं सुखी होकर निवास करता हूँ ; यदि तू मेरे भीतर है, तो (मेरी) बड़ाई (प्रशंसा) है ॥

(हे हरो), यदि तूम्हे अच्छा लगे, (तो मुझे) सिंहासन पर (बैठा कर) बड़ाइयाँ (दे), (और यदि तूम्हे) अच्छा लगे (तो मुझे) उदासी (बना कर घर घर) भीख मँगवा । (हे स्वामी) यदि तूम्हे अच्छा लगे, तो स्थल मे समुद्र बह चले और आकाश मे कमल खिल पड़े (भाव यह है कि परमात्मा असंभव को संभव तथा अशक्य को शक्य बना सकता है । यदि उसही कृपा हो, तो शुद्ध और नीरस हृदयों मे प्रेम तथा भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित होने लगे) ॥

(हे स्वामी), यदि तूम्हे अच्छा लगे (तो मेरा जहाज) संसार-सागर के पार लगा दे और यदि तूम्हे अच्छा लगे (तो यह जहाज) पानी से भर कर (डुबा दे) (हे प्रभु) यदि तूम्हे अच्छा लगे, तो तू मुझे रंगीला (आनन्दमय) होकर (दिखाई देता है) और गुणों के भाण्डार (हरी) की स्तुति मे मैं लग जाता हूँ ॥

(हे साहब), यदि तूम्हे अच्छा लगे (तो तू मुझे) डरावना (दिखाई पड़ सकता है) और मैं जन्म-मरण (के चक्कर मे पड़ कर) मर सकता हूँ । हे पति (परमात्मा) तू भगम और अनुलनीय है, मैं तेरा कथन कथन करते अपनी विह्वलता मे गिर पड़ती हूँ ॥

(हे प्रभु), मैं तुम्हमे क्या माँगूँ, क्या कहूँ सुनूँ ? मुझे तो तेरे दर्शन की ही भूख और प्यास है । नानक की यह सच्ची प्रार्थना है कि गुरु के उपदेश द्वारा मैंने पति (परमात्मा) को पा लिया है ॥८॥

१औं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु सूही, महला १, घर १

छंद

[१]

भरि जोबनि मै मन पेईछड़े घरि पाहुणी बलिराम जोड ।
मेली अखगण बिनि बिनु गुर गुण न समावनी बलिराम जोड ॥
गुण सार न जाणी भरनि भुलाणी जोबनु बादि गवाइया ।
वरु घरु वरु दरसनु नही जाता पिर का सहनु न भाइया ॥
सतिगुरि पूछि न मारणि चाली सूती रंणि बिहाणी ।
नानक बालतणि राडेया बिनु पिर धन कुमलानी ॥१॥
बाबा मे वरु बेहि मे हरि वरु भाबै तिसकी बलिराम जोड ।
रत्रि रहिआ जुग चारि त्रिभवण बाणी जिसकी बलिराम जोड ॥
त्रिभवण कंतु रबै सोह.पणि अखगणवंती दूरे ।
जैसी आसा तैसी मनसा पूरि रहिआ भरपूरे ॥
हरि की नारि सु सख सुहागणि रांड न मैले बेसे ।
नानक मे वरु साचा भाबै जुगि जुगि प्रीतम तैले ॥२॥

बाबा लगनु गलाइ हंभो वंजा साहुरै बलिराम जोड ।
साहा ठुकसु रजाइ सो न टलै जो प्रभु करै बलिराम जोड ॥
किरतु पइया करतै करि पाइया भेटि न सकै कोई ।

आजी नाउ नरह निहकेवलु रवि रहिआ तिहु लोई ॥

माइ निरासी रोइ बिछुंनो बाली बाले हेते ।

नानक साच सबदि सुख महलो गुर चरणी प्रभु चेतै ॥३॥

बाबुलि बितड़ी दूरि ना आवै घरि पेईए बलिराम जीउ ।

रहुसी बेलि हदूरि पिरि रावी घरि सोहीए बलिराम जीउ ॥

साचे पिर लोड़ी प्रीतम जोड़ी मति पूरी परधाने ।

संजोगी मेला यानि सुहेला गुणवंती गुर गिराने ॥

सतु संतोख सदा सतु पलै सच बोले पिर भाए ।

नानक बिछुड़ि ना दुलु पाए गुरमति घांक समाए ॥४॥१॥

विशेष : इस छंद में यत्र-तत्र पद के अंत में 'बलिराम जीउ' का प्रयोग किया गया है । यह शब्द संबोधन-सूचक है । इसका अर्थ है 'मैं राम के ऊपर बलिहारी हो जाती हूँ ।

अर्थ : मैं भरी जवानी (के अहंकार) में मदमस्त हूँ । (मुझे यह पता नहीं है कि) पीहर (मैं) में मैं थोड़े दिनों की मेहमान हूँ । (तात्पर्य यह कि इस संसार में थोड़े दिन रहने हैं) । मैं मैनी हूँ (मेरे) चित्त में (बहुत से) अवगुण हैं । बिना घर के गुण (मुझमें) नहीं प्रवेश करते; मैं राम के ऊपर बलिहारी हो जाती हूँ । मैंने गुणों की सूझ को नहीं जाना, (अत-एव माया के) भ्रम में पड़ कर भटक गई (और अपनी) जवानी को व्यर्थ ही गंवा दिया । (मैंने) न तो पति को, न (उसके) घरभार को और न (उसके) दर्शन को ही जाना । प्रिय-तम का स्वभाव भी मुझे अच्छा न लगा । सद्गुरु से पूछ कर (मैं) सन्मार्ग पर भी नहीं चली (इस प्रकार सोने में डी) (सारी आयु रूपी) रात्रि बीत गई । हे नानक, (इस प्रकार अव-गुणों वाली स्त्री) युवावस्था में हो रांड हो गई और बिना प्रियतम के (वह स्त्री) मुरझा (कुम्हला) गई ॥१॥

(हे सद्गुरु रूपी) पिता, मुझे बर से (मिला) दे, मुझे हरा ही बर अच्छा लगता है । मैं उस राम के ऊपर न्योछावर हो जाती हूँ जो चारों युगों में व्याप्त है (और जिसका) हुक्म (वाणी) तीनो भुवनों पर (चलता) है । त्रिभुवन का कंठ सुहागिनियों (के साथ) रमण करता है, किन्तु अवगुणी (स्त्रियों से) दूर रहता है । (अपनी) आशा (के अनुसार) मनष्य इच्छा करते हैं और परिपूर्ण हरी (उन इच्छाओं को पूरा करता है । हरी की स्त्री तो सदैव सुहागिनी (रहती) है, (किन्तु) मलिन वेश (अवगुणों) के कारण रांड (सदैव दुहा-गिनी बनी रहती है) । हे नानक, मुझे तो सच्चा बर (हरी) अच्छा लगता है ; वह प्रियतम युग-युगान्तरों में वैसा ही (एक समान) रहता है ॥२॥

हे (सद्गुरु रूपी) पिता, मुहूर्त निकलवा ले, (ताकि) मैं भी (अपने) समुराल (पति-परमात्मा के यहाँ) जाऊँ, मैं राम पर बलिहारी हो जाती हूँ । शाह तो वह है जो अपनी मर्जी (के अनुसार) हुक्म करता है, और जो (कुछ) (वह) प्रभु करता है, वह टलता नहीं है । पूर्व जन्मों के कर्मानुसार जैसे संस्कार कर्ता पुरुष ने बना दिए हैं, (वे ही संस्कार) पड़ गए हैं, (उन्हें) कोई भेद नहीं सकता । बारात का स्वामी—दूल्हा [जंज = बारात । आजी = बारात का स्वामी, अर्थात् दूल्हा] मेरा वह हरी है, जिसका नाम 'नरह निहकेवल' (अर्थात् मनुष्यों से निर्लेप हरी हैं), (फिर भी वह) तीनों लोकों में व्याप्त है ।

माता (माया) लड़की और लड़के (जीवात्मा और परमात्मा) के मिलन से रोती है , [क्यों-कि लड़की—(जीवात्मा) माँ — (माया) से] बिछुड जाती है । हे नानक, सच्चे शब्द द्वारा (पति-परमात्मा के) महनों में (वह सुहागिनी स्त्री) सुख पूर्वक निवास करती है और गुरु के चरणों में लग कर प्रभु को चेतती है ॥३॥

(सद्गुरु रूपी) पिता ने (माया के देश से) इतनी दूर ससुराल (घर) दिया है , (कि वह जीव रूपी सुहागिनी स्त्री) लौट कर फिर मायके (माया के प्रदेश) में नहीं जाती ; (मैं) राम पर न्यूँछावर हो जाती हूँ । (वह स्त्री) पति (परमात्मा) को समीप देख कर बहुत आनन्दित हुई पति, ने उसके साथ रम ग किया, (जिससे वह) घर में सुहावनी लगती है । सच्चे पति को उसकी आवश्यकता थी , तभी तो उस प्रियतम ने (उसे अपने साथ) युक्त कर लिया (जोड़ लिया , मिला लिया) , (इसी कारण उस स्त्री को) बुद्धि पूर्ण (हो गई) (और वह) प्रधान (मान्य हो गई) । संयोग (सुन्दर भाग्य) से (उसका) मिलाप (पति-परमात्मा से) हुआ है , सुखदायक स्थान में (उसका निवास हुआ है) , गुरु के ज्ञान से वह गुरु-वंती बन गई है । सत्त्व गुण और सतोग उसके सच्चे पत्ने में पड़े है , (जिससे वह) सत्य ही बोलती है और प्रियतम (उसे) चाहता है । हे नानक, न तो वह (पति-परमात्मा से) बिछुडनी है और न दुःख पाती है , गुरु की शिक्षा द्वारा वह (हरी के) श्रंक में समा गई है ॥४॥१॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर २ ॥

[२]

हम घरि साजन आए । साचै मेलि मिलाए ॥
 सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुख पाइआ ।
 साई बसतु परापति होई जिस् सेती मनु लाइआ ॥
 अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर भंवर सोहाए ।
 पंच सबद धुनि अनहद बाजे हम घरि साजन आए ॥१॥
 आवहु मोत पिपारै । मंगल गावहु नारे ॥
 ससु मंगलु गावहु ता प्रभ भावहु सोहिलड़ा कुग चारे ।
 अपने घरि आइआ यानि सुहाइआ कारन सबदि सबारे ॥
 गिघान महा रसु नेत्री अंजनु त्रिभवरण रूपु दिखाइआ ।
 सखी मिलहु रति मंगलु गावहु हम घरि साजनु आइआ ॥२॥
 मनु तनु अंमृति भिना । अंतरि प्रेसु रतना ॥
 अंतरि रतनु पदारथु मेरै परम तनु बीचारो ।
 जंत भेल तू सफलप्रो दाता सिरि सिरि देवणहारो ॥
 तू जानु गिघानी अंतरजामी आपे कारणु कोना ।
 सुनहु सखी मनु मोहनि मोहिआ तनु मनु अंमृति भोना ॥३॥

आत्म राम संसारा । साचा खेनु तुम्हारा ॥
सनु खेनु तुम्हारा अगम अपारा तुनु बिनु कउणु बुझाए ।
सिध साधिक सिआणे केते तुम्ह बिनु कबणु कहाए ॥
कालु बिकालु भए देवाने मनु राखिआ गुरि ठाए ।
नानक अवगण सदादि जलाए गुण संगमि प्रभु पाए ॥४॥१॥२॥

हमारे घर में मित्रगण (गुरुमुख) आ गए । सच्चे (हरी) ने (उनका) मिलाप करा दिया । (उन संतो ने मुझे) सद्भावस्था से मिला दिया है , (जिससे) मन को हरी अच्छा लगने लगा । संत-जनों (पंच) के मिलने से बहुत सुख की प्राप्ति हुई । जिस (वस्तु) से मन लगाया था, वह वस्तु प्राप्त हो गई । (उस प्रभु से) शाश्वत मिलन हो गया , (जिससे) मन मान गया और घर तथा महल सुहावने हो गए । (मेरे अंतर्गत) पाँच (बाजों को) ध्वनि (बिना बजाए ही) अनाहत गति से बजने लगी ; हमारे घर में मित्रगण आ गए । [पंच शब्द = तार, धातु , चाम, षड़े तथा फूँक में बजाए जाने वाले बाजे ।] ॥१॥

हे हमारे मित्रो, आओ । हे नारियो, (सत्संगियों), मंगल के गीत गाओ । यदि (प्रभु के) सच्चे मंगल के गीत गाओ तभी उस प्रभु को अच्छे लगोगे; (उसकी) बड़ाई चारों युगों में (व्याप्त है) । (आत्मस्वरूप) घर में (हरी) आकर बस गया है, (जिससे हृदय रूपी स्थान सुहावना हो गया है, शब्द (नाम) से (सारे) कार्य बन गए हैं । ब्रह्मज्ञान नेत्रों का परम अमृतमय अंजन है, (इसी अंजन ने) त्रिभुवन के स्वरूप (हरी) को दिखाया है । हे सखियों (गुरुमुखों), मिलकर आनन्दपूर्वक मंगल-गीत गाओ । हमारे घर में (परमात्मा रूपी) साजन आ गया है ॥२॥

मेरे तन और मन अमृत में भोग गए हैं । (मेरे) अन्तःकरण में प्रेम रूपी रत्न (प्रकट हो गया है) । परम तत्त्व (परमात्म-तत्त्व) के विचार से मेरे अन्तःकरण में (नाम रूपी) रत्न-पदार्थ (प्रकट हो गया है) । (हे हरी), जीव भिखारी है और तू सफल दाता, है (ऐसा दाता, जो सबको इच्छाओं को पूर्ण करता है) । प्रत्येक प्राणी—जीव को (तू ही) देनेवाला है । (हे प्रभु), तू ही सज्जन (सयाना है), जानी (ज्ञाता) और अन्तर्यामी है, (और) तूने ही सृष्टि रची है । हे सखियों (गुरुमुखों), सुनो हरी ने मन को मोहित कर लिया है, (जिससे मेरे) तन और मन अमृत में भोग गए हैं ॥ ३ ॥

(हे प्रभु); तू ही संसार का आत्मा राम है, (अर्थात् हे हरी तू ही समस्त संसार में रम रहा है) । (हे हरी), तेरा खेल सच्चा है; (वह) अगम और अपार है; तेरे बिना (सृष्टि के इस अनन्त रहस्य को) कौन समझ सकता है ? कितने ही सिद्ध, साधक तथा सयाने लोग हैं; (किन्तु) बिना (तुझे जाने हुए) कौन व्यक्ति (सिद्ध, साधक अथवा सयाना) कहलवा सकता है ? (अर्थात् कोई भी नहीं; तेरे ही जानने से वे लोग सिद्ध, साधक आदि बनते हैं; बिना तेरे उनका कोई पुण्य अस्तित्व नहीं है) । मरण और जन्म पागल हो गए । गुरु ने मन को ठिकाने रख दिया है, (गुरु ने मन को अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित कर दिया है) । हे नानक, गुरु के उपदेश द्वारा (मैंने) अवगुणों को दण्ड कर दिया है और गुणों के मेल के कारण प्रभु को पा लिया है । [विशेष काल-मृत्यु ॥ बिकालु = मृत्यु नहीं, (अर्थात्, मृत्यु का उलटा

जन्म) । काल विकालु भाए देवाने = जन्म और मरण पगले हो गए है, (अर्थात् जन्म-मरण समाप्त हो गए ।) ॥ ४ ॥ १ ॥ २ ॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ घरु ३ ॥

[३]

आवहो सजराण हउ बेला दरसनु तेरा राम ।
 घरि आपनड़े खड़ी तका मै मनि चाउ घनेरा राम ॥
 मनि चाउ घनेरा सुणि प्रभ मेरा मै तेरा भरवासा ।
 दरसनु देखि भई निहकेवल जनम मरण दुलु नासा ॥
 सगली जोति जाता तू सोई मिलिआ भाइ सुभाए ।
 नानक साजनु कउ बलि जाईऐ साचि मिले घरि आए ॥१॥
 धरि आइअड़े साजना ता धन खरी सरसी राम ।
 हरि मोहिअड़ी साव सबदि ठाकुर देखि रहसो राम ॥
 गुणि संगि रहसो खरी सरसी जा राखी रंगि रातै ।
 अक्वगणि मारि गुणो घरु छाइआ पूरै पुरखि बिघातै ॥
 तसकर मारि बसी पंचाइणि अदनु करे बीबारे ।
 नानक राम नामि निसतारा गुरमति मिलहि पिआरे ॥२॥
 वरु पाइअड़ा बालड़ीऐ आसा मनसा पूरी राम ।
 पिरि राखिअड़ी सबदि रली राख रहिआ नह दूरी राम ॥
 प्रभु दूरि न होई घटि घटि सोई तिस की नारि सबाई ।
 आपे रसीआ आपे राखे जिउ तिसदी बडिआई ॥
 अमर अडोलु अमोलु अपारा गुरि पूरै सनु पाईऐ ।
 नानकु आपे जोग मजोगी नवरि करे लिव लाईऐ ॥३॥
 पिरु उचड़ीऐ माइड़ीऐ तिहु लोआ सिरताजा राम ।
 हउ विसम भई देखि गुणा अनहद सबद अगाजा राम ॥
 सबदु बीचारी करणी सारी राम नामु नीसाणो ।
 नाम बिना छोटे नही ठाहर नामु रतन परवाणो ॥
 पति मति पूरी पूरा परवाना ना आवै ना जासी ।
 नानक गुरमुखि आपु पछाणै प्रभ जैसे अविनासी ॥४॥१॥३॥

हे साजन (हरी), आओ, मैंने तेरा दर्शन कर लिया है । (मैं) अपने घर में खड़ी होकर तुम्हें ताक रही हूँ, (तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ); मेरे मन (तेरे मिलन की) उत्कट चाह है । हे मेरे प्रभु, मुन, मेरे मन में (तेरे मिलन की) उत्कट इच्छा है; मुझे तेरा ही भरोसा है । हे स्वामी) (तेरा) दर्शन करके (मैं) निर्लेप, (असंग) हो गई हूँ (और मेरे) जन्म-मरण के दुःख नष्ट हो गए हैं । (हे प्रभु), सब में तेरी ही उद्योति है (और उसी

ज्योति से (तू) जाना जाता है, प्रेम से (तू) स्वाभाविक ही मिल जाता है । हे नानक, मैं अपने साजन (प्रभु) पर न्योछावर हो जाती हूँ, सत्य (वाली जिन्दगी व्यतीत करने से) (वह हरी) (हृदय रूपी), घर मे आ (बसता है) ॥ १ ॥

घर मे साजन (हरी) के आने पर (जीवात्मा रूपी) स्त्री अत्यधिक प्रसन्न होती है । सच्चे शब्द (नाम) द्वारा हरि ने उसे मोहित किया है, (अतएव) ठाकुर (प्रभु) को देख कर (वह) आनन्दित होती है । रंग मे अनुरक्त, अर्थात् आनन्दस्वरूप (हरी) ने जब (जीव रूपी) स्त्री को माना है, तो वह गुणों के संग मे अत्यधिक आनन्दित और प्रफुल्लित हुई है । सिरजनहार पुरुष (हरी) ने गुणों मे (हृदय रूपी) घर को छा दिया है, (जिसके फलस्वरूप काम क्रोधादि) चोरों को मार कर सूक्ष्म बुद्धि आ बसी है और (वह सत्य-भूत का) निर्णय करती है, [अथवा (कामादिक) चोरों को मार कर पंचायत (न्याय) करने वाली (बुद्धि) आ बसी है और विचारपूर्वक (सत्य और भूत) का न्याय करती है अथवा (कामादिक) चोरों को मार कर (बुद्धि) पक्षों के समूह (सत्य, संतोष, दया, धर्म और धैर्य) के वशीभूत हो गई है और विचारपूर्वक (सत्य-भूत का) निर्णय करती है ।] हे नानक, राम नाम ने (मुझे) पार उतार दिया है, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) प्यारे (हरी) को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

ज्ञान-विहीन लड़की ने (हरी रूपी) घर प्राप्त कर लिया है, (जिससे उसकी समस्त) आशाएँ और इच्छाएँ पूरी हो गई है । प्रियतम (हरी) ने (उसे) भोगा है और शब्द द्वारा (उसे अपने मे) मिला लिया है; अब उसे प्रत्यक्ष व्यापक हरी रमा हुआ दिखाई पड़ता है, (वह) दूर नहीं है । प्रभु दूर नहीं है, घर घर मे (वही) है । सभी कोई (समस्त प्राणी) (उसी की) स्त्रियाँ हैं । (प्रभु) आप ही रसिक है और आप ही रमण करता है, जैसा कि (उसकी) बड़ाई के (अनुरूप है) । (वह प्रभु) अमर, अडिग, अमूल्य और अपार है; पूर्ण गुरु मे (उस) सत्यस्वरूप (हरी) को प्राप्ति होती है । हे नानक, (प्रभु) आप ही संयोग मिलाने वाला है । जब (वह) कृपादृष्टि करता है, (तो भूले हुए को मार्ग दिखा कर) अपने एकनिष्ठ ध्यान (तिव) मे जोड़ लेता है ॥ ३ ॥

प्रियतम (हरी) ऊँचे मंडप वाला (दशम द्वार वाला, सबसे ऊँचे निवास वाला) है और तीनों लोकों का सिरताज है । मैं (उसके गुणों को देखकर विस्मय अवस्था (आश्चर्यमयी आनन्दमयी अवस्था) मे पड़ गई और अनाहत शब्द प्रकट हो गया है । (मैंने) शब्द (नाम) (के ऊपर) विचार करके श्रेष्ठ करने (का आचरण किया), (जिसके फलस्वरूप) राम नाम का निशान (चिह्न, हस्ताक्षर) (प्राप्त हो गया) । नाम से विहीन (पुरुष) छोटे (होते हैं), (उन्हें) स्थान नहीं (प्राप्त होता), (जिसने नाम रूपी रज (पा लिया है), (वही) प्रामाणिक है । (ऐसे व्यक्ति की) पूर्ण बुद्धि है, (और उसकी पूर्ण) प्रतिष्ठा होती है, (उसे) पूरा परवाना (प्राप्त हो गया है); (वह आत्मस्वरूप मे स्थित हो गया है, अतः) न वह कहीं आता है और न कहीं जायगा (तात्पर्य यह कि वह जीवन-मरण के बंधनों से मुक्त हो गया है) । हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) अपने आप को तथा अविनाशी प्रभु को पहचान लेता है ॥ ४ ॥ १ ॥ २ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर ४ ॥

[४]

जिनि कीम्रा तनि देखिआ जगु धंधड़े लाइआ
 दानि तेर घटि चानरा तनि चंडु दीपाइआ ॥
 चंदो दीपाइआ दानि हरि कै दुखु ग्रंथेरा उठि गइआ ॥
 गुण जंज लाड़े नानि सोहै परखि मोहणीऐ लइआ ॥
 बीबाहु होआ सोभ सेतो पंच सबदी आइआ ॥
 जिनि कीम्रा तनि देखिआ जगु धंधड़े लाइआ ॥१॥
 हुउ बलिहारी साजना मीता अवरौता ॥
 इहु तनु जिन सिउ गाडिआ मनु लीअड़ा दीता ॥
 लीआ त बीआ मानु जिन्ह सिउ से सजन किउ बीसरहि ॥
 जिन्ह दिसि आइआ होहि रलीआ जोअ सेतो गहि रहहि ॥
 सगल गुण अवगगु न कोई होहि नीता नीता ॥
 हुउ बलिहारी साजना मीता अवरौता ॥२॥
 गुणा का होवै वासुला कडि वासु लईजै ॥
 जे गुण होवनि साजना मिलि साभ करीजै ॥
 साभ करीजै गुणहू केरो छोडि अवगगु चलीऐ ॥
 पड़िरे पटंबर करि अडंबर आपणा पिडु मलीऐ ॥
 जिये जाइ बहीऐ भला कहीऐ भोलि अंशुतु पीजै ॥
 गुणा का होवै वासुला कडि वासु लईजै ॥३॥
 आपि करे किमु आखीऐ होरु करे न कोई ॥
 आखरा ताकउ जाईऐ जे भूलड़ा होई ॥
 जे होइ भूला जाइ कहीऐ आपि करता किउ भुले ॥
 सुणे बेले वाकु कहीऐ दानु अणमंगिआ दिवै ॥
 दानु बेइ दाता जणि बिधाता नानका सनु सोई ॥
 आपि करे किमु आखीऐ होरु करे न कोई ॥४॥१॥४॥

जिस (प्रभु) ने (सृष्टि) उत्पन्न की है, उसी ने (उसकी) देखभाल (निगरानी) भी की है, (उसी ने समस्त) जगत् को धंधे (रोजगार, प्राजीविका) में लगाया है । (हे प्रभु) तेरी कृपा से (मेरे) अन्तःकरण में प्रकाश हो गया है; (मेरे) शरीर में चन्द्रमा का प्रकाश हो गया है (तात्पर्य यह है कि मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है) । हरी के दान (कृपा) से (अन्तःकरण में) चन्द्रमा का प्रकाश हो गया है, (जिसके फलस्वरूप) दुःख और अन्धकार (अज्ञान) समाप्त हो गए हैं । (परमात्मा रूपी) दूल्हे के साथ गुणों की बारात सुशोभित है, (जिसे जिज्ञासु रूपी) स्त्री ने परस कर चुन लिया है । (जीवात्मा रूपी

स्त्री तथा परमात्मा रूपी पति का) विवाह बड़े ठाट-बाट (शोभा) के साथ हो गया है; (उस विवाह में) पंच शब्दों का बाजा भी बजने लगा [पंच प्रकार के बाजों के शब्द निम्नलिखित हैं—धातु चाम, तार, धड़े, तथा फूंक के द्वारा बजाये जाने वाले बाजों का शब्द । पंच शब्द आत्मानन्द का प्रतीकार्थ है । आत्मा एवं परमात्मा के विवाह—मिलन में परमानन्द की अनुभूति होती है ।] जिस (प्रभु) ने (सृष्टि) उत्पन्न की है, उसी ने (उसको) देखभाल (निगरानी) भी की है, (उसी ने समस्त) जगत् को धंधे (रोजगार, आजीविका) में लगाया है ॥ १ ॥

मैं (अपने) (उन) साजन मित्रों के ऊपर न्योछावर हूँ, (जो) आवरण तथा दोष से रहित हैं । जिन गुरुमुखों के साथ (अपना) शरीर मिला दिया है और जिनके पास मन (अन्तःकरण के भाव) खोले हैं, (उन साजन मित्रों के ऊपर मैं न्योछावर हूँ) । मैंने (अपना) मन देकर जिनसे (वस्तु) ली है, (भला) वे सज्जन क्यों भूल सकते हैं ? जिन्हें देखकर आनन्द प्राप्त हो, (उन्हें सामने पाकर) हृदय से लगा लेना चाहिए । (सन्तो के मिलन में) गुण ही गुण हैं, कोई भी अवगुण नहीं है, (उनके मिलने में) सदैव (आनन्द) होता है । मैं (अपने उन) साजन मित्रों के ऊपर न्योछावर हूँ, (जो) आवरण तथा दोष-रहित हैं ॥ २ ॥

यदि गुणों की मुग्धि के ढिब्बे (संतजन) मिल जायें, तो उनसे (गुण रूपी) मुग्धि ग्रहण कर लीजिए । यदि साजन (सत् पुरुषों) के गुण मिल जायें, तो उनसे साक्षात् कर लीजिए, (अर्थात् गुणों को व्यवहार में लाइए) । गुणों का साक्षात् करके तथा अवगुणों का त्याग कर, (इस ससार में) चलना चाहिए (वरतना चाहिए) । पाटम्बर बस्त्र पहनिये (तात्पर्य यह कि शुद्ध-जीवन व्यतीत कीजिए) (और गुणों की) सजधज (आडम्बर) कीजिए तथा खेल के मैदान को स्थापित कीजिए (अर्थात् अपने जीवन के आदर्शों का दृढ़तापूर्वक निर्वाह कीजिए) । जहाँ भी जाकर बैठिए, (अपनी गुण-ग्रहण करने वाली वृत्ति से, सभी को) भला कहिए और हाथों से झकझोर कर अमृत पीजिए (तात्पर्य यह कि वृत्ति को सुन्दर बना कर परमात्म-रस का पान कीजिए) । यदि गुणों की मुग्धि के ढिब्बे (संत जन) मिल जायें, तो उनसे (गुण रूपी) मुग्धि ग्रहण कर लीजिए ॥ ३ ॥

(प्रभु) स्वयं ही (सब कुछ) करता है ; (उसकी रचना की बातें) किससे कही जायें ? (क्योंकि एक हरी को छोड़कर) और कोई करनेवाला नहीं है । यदि कोई भूला हो, तो उसके सम्बन्ध में कथन करने के लिए जाना चाहिए । (अतएव) यदि कोई भूल किए हो, तो उसके सम्बन्ध में जाकर कहो ; स्वयं कर्ता पुरुष किस प्रकार भूल कर सकता है ? (प्रभु) बिना कुछ कहे ही, (सब कुछ) सुनता और देखता है ; (वह) बिना मणि ही दान देता है । हे नानक, वही सच्चा (प्रभु), दाता, जगत् का रचयिता, (बिना किसी के मणि ही) दान देता है । (प्रभु) स्वयं ही (सब कुछ) करता है , (उसकी रचना की बातें) किससे कही जायें ? (क्योंकि एक हरी को छोड़कर) और कोई करनेवाला नहीं है ॥ ४ ॥ १ ॥ ४ ॥

[५]

मेरा मनु राता गुण रवै मनि भावै सोई ।

गुर की पउड़ी साच की साचा सुलु होई ॥

सुखि सहजि आवै साखि भावै साच की मति किउ टले ।

इसनातु बानु सुनिघानु मजनु आपि अछलिओ किउ छले ॥

परपंच मोह बिकार बाके कूडु, कपटु न दोई ।
 मेरा मनु राता गुण रबै मनि भावै सोई ॥१॥
 साहिबु सो सालाहीऐ जिनि कारगु कीआ ।
 मैतु लागी मनि मैसिऐ किनै अंशुतु पोआ ॥
 मयि अंशुतु पोआ इह मनु दीआ गुर पहि मोलु कराइआ ।
 आपनडा प्रभु सहजि पछाता जा मनु साचै लाइआ ॥
 तिसु नालि गुण गावा जे तिसु भावा किउ मिलै होइ पराइआ ।
 साहिबु सो सालाहीऐ जिनि जगतु उपाइआ ॥२॥
 आइ गइआ की न आइआ किउ आवै जाला ।
 प्रीतम सिउ मनु मानिआ हरि सेली राता ॥
 साहिब रंगि राता सच की बाता जिन बिब का कोटु उसारिआ ।
 पंचभू नाइ॥१॥ आपि सिरंदा जिनि सच का पिडु सबारिआ ॥
 हम अवगणिआरे तू सुनि पिआरे तुधु भावै सनु सोई ।
 आवण जाणा ना योऐ साची मति होई ॥३॥
 अंजनु तैसा अंजीऐ जैसा पिर भावै ।
 समभै मूर्खै जाणोऐ जे आपि जाणावै ॥
 आपि जाणावै मारगि पावै आपे मनुआ लेवण ।
 करम सुकरम कराए आपे कीमति कउगु अमेवण ॥
 तंतु मनु पाखडु न जाणा रामु रिदै मनु मानिआ ।
 अंजनु नामु तिसै ते मूर्खै गुरसबदी सनु जानिआ ॥४॥
 साजन होवनि आपणो किउ परघर जाहो ।
 साजन राते सच के सगे मन माहो ॥
 मन माहि साजन करहि रलीआ करम धरम स आईआ ।
 अठसठि तीरथ पुन पूजा नामु साचा भाइआ ॥
 आपि साजे थापि जेखै तिसै भाणा भाइआ ।
 साजन रांगि रगोलड़े रगु लालु बराइआ ॥५॥
 अथाआगू जे थोऐ किउ पाधरु जाणै ।
 आपि सुसै मति होखीऐ किउ राहु पछाणै ॥
 किउ राहि जावै महलु पावै अंध की मति अंधली ।
 बिगु न छहुरि के कणु न मूर्खै अंध बूडो अंधली ॥
 बिनु राति चानगु चाउ उपजै सबडु गुर का मनि बसै ।
 करि जोड़ि गुर पहि करि बिनंती राहु पाधरु गुरु दसै ॥६॥
 मनु परवैसी जे थोऐ सभु बेसु पराइआ ।
 किनु गहि खोलहु गंठड़ी बूझी भरि आइआ ॥
 दूखी भरि आइआ जगतु सबाइआ कउगु जाणै बिधि मेरीआ ।

आवरणें जारो खरे डरावरणें तोटि न आवै केरीआ ।
नाम बिहूणें ऊणें भूणें ना गुरि सबहु सुणाइआ ।
मनु परवेसी जे थीए सभु बेसु पराइआ ॥७॥

गुर महली घरि आपणें सो भरपुरि लीणा ।
सेवकु सेवा ता करे सच सबदि पतीणा ॥
सबवे पतीजे अंकु भीजे सु महलु महला अतरे ।
आपि करता करे सोई प्रभु आपि अंति निरंतरे ॥
गुर सबदि मेला तां सुहेला बाजंन अनहद बीणा ।
गुर महली घरि आपणें सो भरपुरि लीणा ॥८॥

कीता किआ सालाहीए करि वेखै सोई ।
ता की कीमति ना पावै जे लोचै कोई ॥
कीमति सो पावै आपि जाणावै आपि असुलु न भुलए ।
जैजेकारु करहि तुधु भवहि गुर कै सबदि असुलए ॥
हीराउ नोचु करउ बेनेंती साधु न छोडउ भाई ।
नानक जिनि करि बेखिआ देवै मति साई ॥९॥२॥५॥

मेरा मन (हरी मे) अनुरक्त है, और (उसी के) गुणों को उच्चारण करता है, (और हरी ही मेरे) मन को अच्छा लगता है । (यह गुणों का उच्चारण करना) गुरु की (दिखलाई हुई) सोझी है, (जो) सत्यस्वरूप (हरी) तक पहुँचा देती है (और इससे सच्चा सुख) (प्राप्त) होता है । (जब मन) सहजावस्था के सुख में आ जाता है (टिक जाता है), (तो) सत्य प्रिय लगता है । यह सत्य की प्राप्तिवाली बुद्धि कभी नहीं टलती (तात्पर्य यह सत्य में स्थित होनेवाली बुद्धि कभी विवर्णित नहीं होती, वह निश्चयात्मिका होती है) । स्नान, दान, ज्ञान तथा मज्जन आदि, उभे न छले जानेवाले (भक्त) को किस प्रकार छल सकते हैं ? (क्योंकि वह तो परमात्मा की प्रेमा भक्ति में आरुढ़ है) । (सासारिक) प्रपंच, मोह तथा विकार समाप्त हो गए हैं, झूठ, कपट तथा द्वैतभाव (भी) नहीं (रह गए हैं) । मेरा मन (हरी में) अनुरक्त है, (उसी के) गुणों का उच्चारण करता है, (और हरी ही मेरे) मन को अच्छा लगता है ॥ १ ॥

उस साहब की स्तुति करनी चाहिए, जिसने सृष्टि (की रचना) की है । मैल लगने से मन गंदा हो जाता है, (भला अशुद्ध मन होने से) किस व्यक्ति ने (परमात्मा के प्रेम रूपी) अमृत को पिया है ? (अर्थात् मलिन मन से परमात्मा का प्रेम रूपी अमृत पीना असम्भव है) । इस मन को गुरु को दिया है और उसी से इसका मूल्य कराया है, (जिसके फलस्वरूप) (इस मन ने) मध कर (परमात्मा के प्रेम रूपी) अमृत को पिया है । जब मन को सच्चे (प्रभु) में लगाया, तो सहज भाव से ही अपने प्रभु को पहचान लिया । (जिसने सच्चे प्रभु में अपना मन लगाया है, उसके) साथ (मिलकर मैंने परमात्मा का) गुणगान किया, (यह गुणगान) उसे (परमात्मा को) (बहुत) अच्छा लगा । उस साहब की स्तुति करनी चाहिए, जिसने सृष्टि की रचना की है ॥ २ ॥

सलोक : (माया के) कुसुभी रंग रात के स्वप्न की भाँति (क्षणभंगुर) हैं (अथवा) उस हार के समान हैं, जो तागे के बिना गले में (स्थित) हो । (और दूसरी ओर) गुरु के द्वारा ब्रह्म का विचार करना मज्जीठ के पक्के रंग के समान है । हे नानक, जो (जीवात्मा) प्रेम के महा रस में रसी (आनन्दित) हुई, (उसको) सारी बुराईयाँ (जन कर) खाक हो जाती हैं ॥ १ ॥

पउड़ी : एहु जगु आपि उपाइओनु करि चोज बिडानु ।
पंच धातु विचि पाईअनु मोहु भूठ गुमानु ॥
आवै जाइ भवाईऐ मनमुख अगिआनु ।
इकना आपि बुझाईओनु गुरमुखि हरि गिआनु ॥
भगति खजाना बखसिओनु हरि नामु निधानु ॥१॥

पउड़ी : आश्चर्यजनक कौतुक करके इस जगत् की रचना (हरी ने) आप ही की है । (उभी हरी ने शरीर में) पंच धातु (भूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) प्रविष्ट कराए हैं और साथ ही मोह, भूठ और अहंकार (आदि विकार भी) प्रविष्ट कराए हैं । अज्ञानी मनमुख (अविद्या में) रत होने के कारण (ससार-चक्र में) आता जाता और भटकता रहता है । कुछ (व्यक्तियों) को गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का ज्ञान करा कर (परमात्मा) स्वयं ही उन्हें समझा देता है, (बोध करा देता है) । (परमात्मा उन्हें) हरि नाम प्रदान कर देता है, (जो समस्त सुखों) का निधान और भक्ति का भाण्डार है ॥ १ ॥

सनोहु : बाहु खसम तू बाहु जिनि रवि रचना हम कीए ।
सागर लहरि समुद्र सर बेलि वरस वराहु ।
आपि खड़ोबहि आपि करि आपोणे आपाहु ॥
गुरमुखि सेवा थाइ पवै उनमनि ततु कमाहु ।
मनकति लहहु मज्जुरीआ मंगि मंगि खसम दराहु ॥
नानक पुर दर बेपरवाह तउ दरि ऊणा नाहि को सचा बेपरवाहु ॥२॥
ऊजल भोनी सोहणे रतना नालि जुड़नि ।
तिन जरु बेरी नानका जि बुढे थोइ मरनि ॥३॥

सलोक : हे स्वामी, तू धन्य है, तू धन्य है, जिसने (सृष्टि-) रचना रच कर हमें बनाया है । (सृष्टि-रचना और सृष्टि रचयिता का वही संबंध है), जो समुद्र की लहरो और समुद्र-सर का है और हरी-भरी बेलि तथा वरसने वाले काले बादल का है, जो उस बेलि को वृष्टि द्वारा सींच कर हरी भरी करता है । (हरी) आप ही (सृष्टि) रच कर (उसके बीच में) आप ही स्थित रहता है (तात्पर्य यह कि वही सृष्टि को सहागा देता है) । (हरी) आप ही आप है । (यदि) गुरु की शिक्षा द्वारा सेवा करो और सहजावस्था (उन्मनी अवस्था) में होकर तत्त्व स्वरूप हरी का अभ्यास करो, (तो उसका) स्थान प्राप्त हो जाता है । (अपने) परिश्रम (की कमाई) की मजदूरी स्वामी के दरवाजे पर माँग माँग कर ली जाती है । हे नानक, उस बेपरवाह (परमात्मा) का दरवाजा पूर्ण है, तुम्हारा (यहाँ जीव से तात्पर्य है) दरवाजा तो खाली है । [उनमनि (अवस्था=योगियों के मन की ऊँची अवस्था को 'उनमनी' अवस्था कहते हैं । इसी को 'सहजावस्था' भी कहते हैं ।] ॥ २ ॥

जो (मनुष्य) उज्ज्वल और मुहावने मोतियों तथा रत्नों के साथ जुड़े है, [तात्पर्य यह कि (जिनके दाँत) मोती के समान श्वेत और मुहावने हैं और जिनकी (छाँखें) रत्नों की भाँति कान्तिमयी है], उनका शत्रु वृद्धावस्था है और जो बूढ़े होकर मर जायेंगे ॥ ३ ॥

पउड़ी : हरि सत्ताही सदा सदा तनु मनु सउपि सरोरु ।
गुर सबदी सनु पाइआ सचा गहिर गंभीर ॥
मनि तनि हिरदै रवि रहिआ हरि होरा हीरु ।
जनम मरण का वुलु गइआ फिरि पवै न कीरु ॥
नानक नामु सत्ताहि तू हरि गुणी गहोरु ॥२॥

पउड़ी : अपने तन, मन और शरीर को समर्पित करके हरी की सदैव ही स्तुति करनी चाहिये । गुरु के शब्द (उपदेश, शिक्षा) से (मैंने) सत्यस्वरूप, अगाध और गंभीर (हरी) को पा लिया है । हीरो मैं श्रेष्ठ हूँ हरी नन, मन और हृदय में रम रहा है, (व्यास है) । (हरी के प्राप्त हो जाने पर) जन्म तथा मरण के दुःख समाप्त हो गये (और) अब फिर (पुनर्जन्म) का फेरा नहीं पड़ेगा । हे नानक, तू गुणी और गंभीर हरि के नाम की स्तुति कर ॥ २ ॥

सलोकु : नानक इहु तनु जालि जिनि जलिए नामु बिसारिआ ।
पउदी जाइ परालि पिछे हथु न अंबड़े तितु निबंघे तालि ॥४॥
नानक मन के काम फिटिआ गलत न आवही ।
किती लहा सहंम जा बलसे ता धका नही ॥५॥

सलोक : हे नानक, जिस जले हुए (शरीर ने) नाम को भुला दिया है, उस शरीर को जला दो । (पापों का) पुश्तल इकट्ठा होता जाता है, (और उन्हें फेंकने के लिए) पीछे (शरीर रूपी) ताल के नीचे हाथ नहीं पहुँचिगा [तात्पर्य यह कि शरीर रूपी तालाब में पापों का घास-फूस इकट्ठा होता रहता है । यदि उन्हें साथ ही साथ साफ न करते जायें, तो बाद में उनकी सफाई करनी बहुत कठिन हो जाती है । इसी प्रकार निम्न खिंचाये शरीर को नीचा तालाब कहा गया है, जिसमें पाप-कर्मों का पुश्तल पड़ता रहता है । यदि नाम के द्वारा इस गंदगी को साथ ही साथ साफ न करते जायें, तो बाद में यह काम हमारी सामर्थ्य से बाहर हो जाता है ।] ॥ ४ ॥

हे नानक, मन के काम बिगड़े हुए हैं, (वे इतने बिगड़े हुए हैं कि) उनकी गणना नहीं की जा सकती । (उन बिगड़े हुए कामों के) कितने दुःख (मुझे) पाने हैं ; (यह मुझे ज्ञात नहीं है) । (पर) यदि (हरी) बख्शा दे, तो (उन दुःखों का) धक्का (मुझे) नहीं लग सकता ॥ ५ ॥

पउड़ी : सचा अमरु चलाइअनु करि सनु कुरमारु ।
सदा निहचलु रवि रहिआ सो पुरखु सुजारु ।
गुरपरसादी सेबीऐ सवु सबदि नोसारु ।
पूरा बाहु बलाइआ रंगु गुरमति मारु ॥
अगम अगोचरु अलखु है गुरमुखि हरि जारु ॥३॥

(वही स्थापित होगा, स्थित होगा) । (हरी ने) सारे जगत् को खेल (के समान) रचा है
(और उस जगत् के मध्य में) आप ही बरत रहा है ॥ ५ ॥

सलोक : चोरा जारा रंडीघ्रा कुटलीघ्रा दीबारा ।
बेदीना की दोसती बेदीना का खारा ॥
सिफती सार न जाएनी सदा बसै सैतानु ।
गबहु चंदनि लउलीऐ भी साहू सिउ पाए ॥
नानक कूड़े कतिऐ कूड़ा तएीऐ तारु ।
कूड़ा कपड़ कछीऐ कूड़ा पैरारु मारु ॥१०॥
बांगा बुगू सिडोघ्रा नाले मिली कलारु ।
इकि दाते इकि मंगते नामु तेरा परवारु ॥
नानक जिनी सुरि कै मंनिघ्रा हउ तिना बिटहु कुरवारु ॥११॥

सलोक : चोरों, व्यभिचारियों, वेश्याओं, कुटनियों—(इन सब की आपस में)
मर्जलिस लगती है, (साथ साथ उठते-बैठते और सलाह करने है) । (इन) अर्थियों की
(आपस में) मित्रता है (और आपस में) खाने-पीने का (व्यवहार) है । (अतएव वे लोग
परमात्मा की) प्रशंसा और उसका तत्त्व नहीं जानते । उनमें सदैव शैतान ही बसता है ।
(तात्पर्य यह कि वे लोग सदैव पापयुक्त कर्म करते हैं) । गधे को (चाहे जितना) चंदन
लगाइए (मलिए), (किन्तु) फिर भी वह खाक (धूल) में पड़ता (लोटता) है । हे
नानक, झूठ के कातने से, झूठ का ही ताना-बाना बनता है (तात्पर्य यह कि बुरे कर्मों का
बुरा ही फल होता है; जैसे कर्म किए जाते हैं, वैसे ही फल भी प्राप्त होते हैं) । (इस
प्रकार) झूठ का कपड़ा नाप कर उसे पहनना और उसके पहनने का मान करना झूठा ही
है ॥ १० ॥

(मुल्ले) बाँग (देकर), (फकीर) तूती (बजा कर), (और योगी) शृङ्गी
(बजा कर) (और मंगते जिन्हें) 'कल्याण हो' 'कल्याण हो' कहकर माँगना ही मिला
है (माँगते हैं) । (इस प्रकार संसार में) कुछ लोग पाते हैं और कुछ लोग माँगते हैं, पर तेरे
दरबाजे का प्रमाण तो नाम ही है । हे नानक, जिन्होंने (तेरा नाम) मुनकर, (उसपर) मनन
किया, मैं उनके ऊपर कुरबान हूँ ॥ ११ ॥

पउड़ी : माइघ्रा मोहू सभु कूड़ु है कुड़ो होइ गइघ्रा ।
हउमै भगड़ा पाइघ्रोनु भगड़े जगु सुइघ्रा ॥
गुरमुखि भगड़ु चुकाइघ्रोनु इको रवि रहिघ्रा ।
सभु आतम रामु पछाणिघ्रा भउजल तरि गइघ्रा ॥
जोति समाएी जोति बिचि हरि नामि समइघ्रा ॥६॥

पउड़ी : माया और मोह सब झूठे हैं, (वे सब) झूठे हो जाते हैं, (नष्ट हो जाते हैं) ।
(इस संसार के) लोग अहंकार और भगड़े में पड़कर, (अंत में) भगड़े में ही मर जाते हैं ।
गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) भगड़े (संघर्ष) को समाप्त कर देता है (और यह जानता
है कि) एक (परमात्मा ही सर्वत्र) रमा हुआ है । (वह साधक) सर्वत्र आत्मा राम को

पहचान कर संसार-सागर से तर जाता है । (इस प्रकार) (जीवात्मा को) ज्योति (परमात्मा की झलक) ज्योति में (मिल जाती है) और (जीवात्मा) हरिनाम में समा जाता है ।

[विशेष : उपर्युक्त पउडी में क्रियाएं भूतकाल की हैं, किन्तु अर्थ की सुविधा की दृष्टि से उनका अनुवाद वर्तमान काल की क्रियाओं में किया गया है] ॥ ६ ॥

सलोक सतिगुर भोखिआ देहि मै तूं संछमु दातारु ।
हउमै गरबु निबारोऐ कामु ओषु अहंकारु ॥
खु सोभु परजालीऐ नामु मिले आधारु ॥
अहिनिशि नवतन निरमला मेला कबहू न होइ ।
नानक इह बिधि छुटोऐ नवरि तेरी सुख होइ ॥१२॥
इको कंतु सबाईआ जितो वरि खड़ीआह ।
नानक कंतै रतीआ पुछहि बातड़ीआह ॥१३॥
सभे कंतै रतीआ मै बोहागणि किनु ।
मै तनि अवगण एतड़े खसमु न केरे जितु ॥१४॥
हउ बलिहारी तिन कउ सिफति जिना बै बाति ।
सभि राती सोहागणी इक मै बोहागणि राति ॥१५॥

सलोक : (हे) सद्गुरु, मुझे भिक्षा दे, (क्योंकि) तू समर्थ दाता है । (तू मेरे) अहंभाव, गर्व, काम, मोह (एवं) अहंकार का निवारण कर । (मेरे) लालच और लोभ को प्रज्वलित कर दे (जला डाल), (जिससे) मुझे नाम का आश्रय प्राप्त हो जाय । (हे प्रभु, तू) अर्हनिश नवीन शरीर वाला और निर्मल है, (तू शाश्वत पवित्र है) कभी मलिन नहीं होता है । हे नानक, तेरी कृपादृष्टि हो जाने से, इसी विधि से छुटकारा होता है और सुख (प्राप्त) होता है ॥ १२ ॥

जितनी भी (जीवात्मा रूपी स्त्रियाँ उसके) दरवाजे पर खड़ी हैं, उन सब का एक ही स्वामी (कत) है । हे नानक, (जो परमात्मा में) अनुरक्त हैं (वे उसके दरवाजे पर खड़े होकर, (उससे मिलने की) बातें पूछती हैं ॥ १३ ॥

सभी (शुभ गुणोवाली स्त्रियाँ) कंत में अनुरक्त हैं, मैं दुहागिनी किस (गणना में) हूँ ? मेरे शरीर में इतने अवगुण हैं, फिर भी वह खसम (स्वामी) मेरी ओर से चित्त नहीं करता ॥ १४ ॥

मैं उन (सौभाग्यशाली स्त्रियों) पर न्यौछावर हूँ, जिनके मुँह में (प्रभु की) स्तुति है, (अर्थात् जो अर्हनिश प्रभु के गुणगान में अनुरक्त हैं) । (पति परमात्मा) सारी रातें मुहागिनो को देता है, एक रात मुझे दुहागिनी को भी दे ॥ १५ ॥

पउडी : वरि मंगतु जाचे वानु हरि दीजे कृपा करि ।
गुरमुखि लेहु मिलाइ जनु पावै नामु हरि ॥
अनहव सबहु वजाइ जोती जोति घरि ।
हिरवे हरि गुण गाइ जे जे सबहु हरि ॥
जग महि वरतै आपि हरि सेती प्रीति करि ॥७॥

पउड़ी : (हे प्रभु, मैं) मंगता (तेरे) दरवाजे पर दान की याचना करता हूँ, (हे) हरी कृपा करके (मुझे) (दान) दे । गुरु द्वारा (मुझे अपने में) मिला ले, (जिससे) (यह) जन (भक्त) हरि के नाम को पा जाय । (हे प्रभु, मेरे अन्तर्गत) अनाहत शब्द (आत्मिक मडल का संगीत, जो बिना बजाये बजता है) बजा और (मुझ जीवात्मा की) ज्योति (अपनी अखण्ड) ज्योति में मिला ले । (हे प्रभु, ऐसा विधान रच कि) हृदय हरी के गुण गाये (और मुँह) हरी के 'जय जय' शब्द करे । (सारे) जगत् में (हरी) आप ही बरत रहा है, (अतएव उसी) हरी से प्रीति कर ॥ ७ ॥

सलोक : जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंत न पाइओ साउ ।
सुंजे घर का पाइएण जिउ आइआ तिउ जाउ ॥१६॥
सउ ओलाम्हे दिने के रातो मिलनि सहंस ।
सिफति सलाहए छडि कै करंगी लना हंसु ॥
फिटु इवेहा जीविआ जितु छाड वधाइआ पेदु ।
नानक सच्चे नाम विणु सभो दुसमन हेतु ॥१७॥

सलोक : जिन्होंने प्रेम रस को तथा परमात्मा के स्वाद को नहीं पाया, वे मूने घर के मेहमान (की भाँति) हैं, (मूने घर के मेहमान) जैसे आने हैं, वैसे ही चले जाते हैं ॥ १६ ॥

(जीव) दिन में सैकड़ों और रात में हजारों (पापों को करके) प्रायश्चित्त (सहन करता है) । [ओलाम्हे=उपानम्भ, प्रायश्चित्त] । (जीव रूपी) हंस (परमात्मा की) स्तुति धीरे प्रशंसा (रूपी मोती) को (खाना) छोड़कर (विषय रूपी मुरदार खाने में लग गया है । [करंगी=पंजाबी करग=मुण् हुण पशुओं की ठठरी] । ऐसे (मनुष्यों) के जीवन को धिक्कार है, जिन्होंने (विषय रूपी मुरदार को) खा खा कर अपना पेट बड़ाया है । हे नानक, सच्चे नाम के बिना सभी प्रकार के प्यार हमारे दुश्मन—वैरी ही है ॥ १७ ॥

पउड़ी : ढाढी गुण गावै नित जनमु सवारिआ ।
गुरमुखि सेवि सलाहि सचा उर धारिआ ॥
घरु दरु पावै सहनु नामु पियारिआ ।
गुरमुखि पाइआ नाम हउ गुर कउ वारिआ ॥
तू आपि सवारहि आपि तिरजनहारिआ ॥८॥

पउड़ी : (परमात्मा के) वश का गुणगान करनेवाला, (उसके) गुणों का गान करके (अपने) जन्म को संवार लेता है । गुरु द्वारा सेवा और स्तुति करके वह (अपने) हृदय में सच्चे (प्रभु) को धारण कर लेता है । जो नाम को धारण कर लेता है, वह अपने वास्तविक घर (तात्पर्य यह कि अपने प्रभु के महल) को प्राप्त करता है । (मैंने) गुरु द्वारा नाम को प्राप्त कर लिया है, मैं गुरु के ऊपर न्यौठावर हूँ । (हे प्रभु), तू आप ही संवारने वाला और आप ही मिरजनेवाला है ॥ [टिप्पणी. उपर्युक्त पउड़ी में 'सवारिआ', 'उरधारिआ' आदि क्रिया भूत काल की हैं, किन्तु अनुवाद में स्वाभाविकता के लिए इनका अर्थ वर्तमान काल की क्रियाओं में लिखा गया है] ॥ ८ ॥

सलोकु : दीबा बलं अंधेरा जाइ ।
 बेद पाठ मति पापा खाइ ॥
 उगवै सुरु न जापे चंदु ।
 जहू निग्रान प्रगासु अगिग्रानु मिटंतु ॥
 बेद पाठ संसार की कार ।
 पढ़ि पढ़ि पंडित करहि बीचार ॥
 बिनु बुझे सभ होइ लुग्रार ।
 नानक गुरुमुखि उतरसि पार ॥१८॥
 सबदे सादु न आइअओ नामि न लयो पिग्रार ।
 रसना फिका बोलणा नित नित होइ लुग्रार ॥
 नानक पड़े किरति कसावणा कोइ न मेटराहार ॥१९॥

सलोक : दीपक के जलने पर अन्धकार (स्वतः) नष्ट हो जाता है। वेद-पाठ पाप वाली बुद्धि को खा जाता है। सूर्य के उदय होने पर, चन्द्रमा नहीं दिखाई देता (व्योक्ति) जहाँ ज्ञान का प्रकाश होता है, (वहाँ) अज्ञान स्वतः मिट जाता है। (पर हो क्या रहा है?) वेदपाठ सासारिक व्यवहार (मात्र बन गया है)। (वेदों को) पढ़ पढ़ कर पंडित गण तब-वितर्क (विचार) तो करते हैं, (किन्तु उसे समझते नहीं), समझे बिना (सभी पंडित) बरबाद होने हैं। हे नानक, वे गुरु द्वारा ही पार उतर सकते हैं ॥ १८ ॥

(जिन व्यक्तियों को) शब्द — नाम मे स्वाद नहीं आता और नाम मे प्यार नहीं होना, (वे) जीभ से नीरस (फीका) बोलते हैं और नित्य नष्ट होने रहते हैं। (किन्तु) किए हुए कर्मों के द्वारा जो स्वभाव और सस्कार (किरत) बन जाते हैं, (उसी के अनुसार जीव) कर्म करते हैं, (उसे) कोई मेट नहीं सकता ॥ १९ ॥

पउड़ी : जि प्रभु सालाहे आपणा सो सोभा पाए ।
 हउमै विचहु दूरि करि सनु मंनि बसाए ।
 सनु बाणी गुण उचरै सचा सुनु पाए ।
 मेनु भइआ चिरो विछु'निआ गुर पुरखि मिलाए ॥
 मनु मैला इब सुधु है हरि नामु धियाए ॥६॥

पउड़ी : जो अपने प्रभु की स्तुति करता है, वही शोभा पाता है। (वह अपने) बीच (अन्तःकरण) मे अहंकार को दूर कर सत्य (परमात्मा) को अपने मन मे बसा लेता है। (वह प्रभु की) सच्ची बाणी और गुणों का उच्चारण करता है (और जिसके फलस्वरूप वह) सच्चा सुख पाता है। (इस प्रकार) चिरकाल से विछुड़ी हुई (जीवात्मा का परमात्मा से) मेल हो जाता है। (उन्हे) सद्गुरु-गुरु ने मिलाया है। हरि के (निर्मल) नाम (को) ध्यान करने से मलिन मन पवित्र हो जाता है ॥ ६ ॥

सलोकु : काइआ कूल गुण नानक गुपसि माल ।
 एनी कुली रउ करे अवर कि नुरीअहि डाल ॥२०॥

पहिल बसंतै आगमनि पहिलऽ मउलिओ सोइ ।

जितु मउलिऐ सभ मउलीऐ तिसहि न मउलिहु कोइ ॥२१॥

संलोक : (पवित्र) काया की कोमल पत्तियों (किशलय) तथा पुष्पो के फूलों की नानक माला रूपा है । (प्रभु) इसी प्रकार के फूलों को पसन्द करता है । और डालों को चुन कर (फूल तोड़ने की क्या आवश्यकता) है ? (परमात्मा के उपहार योग्य माला तो उपर्युक्त विधि से ही निर्मित होती है) ॥ २० ॥

सबसे पहले वसन्त ऋतु आती है, (तब सारी वस्तुएँ प्रफुल्लित होती हैं) ; (पर वसन्त ऋतु के आगमन के) पूर्व ही (परमात्मा) प्रफुल्लित है । जिस (परमात्मा के) प्रफुल्लित होने से सारी (वस्तुएँ) प्रफुल्लित होती हैं, उसे कोई भी नहीं प्रफुल्लित कर सकता है ॥ २१ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु विलावलु महला १, चउपदे, घर १

सबद

[१]

तू सुलतानु कहा हउ मीघा तेरी कवन बडाई ।
जा तू बेहि सु कहा सुधामी मै मूरखु करणु न जाई ॥१॥
तेरे गुण गावा बेहि बुझाई । जैसे सच महि रहउ रजाई ॥१॥ रहाउ ॥
जो किछु होवा सभु किछु तुझ ते तेरी सभ असनाई ।
तेरा अंतु न जाणा मेरे साहिब में अंतुते किछा चतुराई ॥२॥
किछा हउ कथो कथे कथि बेला मै अकसु न कथना जाई ।
जो तुषु भावै सोई प्राखा तिसु तेरी बडिछाई ॥३॥
एते कूर हउ बेगाना भउका इसु तन ताई ।
भगति हीणु नानकु जे होइगा ता खसमे नाउ न जाई ॥४॥१॥

(हे प्रभु), तू तो सुलतान (बादशाह—तात्पर्य यह कि सबसे बड़ा) है, (यदि) मैं (तुम्हें) मियाँ (अथवा चौधरी) कहूँ, तो इसमें तेरी कौन सी प्रतिष्ठा होगी ? (तात्पर्य यह कि तेरी महिमा अनन्त है । मैं उस महिमा का जितना भी वर्णन करूँ, सब अल्प ही है) । (अतएव) जो तू (मुझे) देता है, (उसी के अनुसार) हे स्वामी, मैं तेरा कथन करता हूँ । मुझ मूर्ख से (तेरा) कुछ भी कथन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

(हे हरी, मुझे ऐसी) बुद्धि दे, जिससे तेरे गुणों का गान करूँ और जिससे (मैं तेरा) हृवमी बन्दा होकर सत्य में निवास करूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, सब कुछ तुम्हीं से (हुआ) है । तेरी जानकारी सब से है, (अर्थात् तू जड़ और चैतन्य सब कुछ जानता है) । हे मेरे साहब, मैं तेरा घन नहीं जानता; मुझ ग्रन्थ में क्या चतुराई हो सकती है ॥ १ ॥ २ ॥

मैं (तेरी महिमा का) क्या कथन करूँ ? मैंने कथन कर कर के देख लिया (कि ना० वा० फा०—६०

तू) अकथनीय है और (तेरे संबंध में) कथन नहीं किया जा सकता । जो कुछ तुझे अच्छा लगता है, (उसी के अनुसार मैं) तिल मात्र (थोड़ी सी) (तेरी) महिमा कहता हूँ ॥ ३ ॥

ये (बहुत से) भूँकने वाले कुत्ते (अवगुणी मनुष्य हैं) ; मैं (उन्हीं कुत्तों में से एक हूँ) , मैं इस शरीर के निमित्त ही भूँकता रहता हूँ । (हाँ, मुझे यह चिन्ता अवश्य है कि मैं) भाव-भक्ति से रहित हूँ ; पर प्रभु हरी का नाम तो (किसी भी दशा में) निष्फल नहीं जा सकता । (क्योंकि वह बस्थाने वाला दाता है और मैं उसका कुत्ता कहलाता हूँ) ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

मनु मंदरु तनु बेस कलंदरु घट ही तोरथि नावा ।

एकु सबदु मेरै प्राणि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा ॥१॥

मनु बेधिआ दइआल सेतो मेरी माई । कउणु जाएँ पीर पराई ॥

हम नाही चित पराई ॥१॥ रहाउ ॥

अगम अगोचर अलख अपारा चिता करहु हमारी ।

जलि बलि महीअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुम्हारी ॥२॥

सिख मति सभ बुधि तुम्हारी मंदिर छावा तेरे ।

तुभ बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे ॥३॥

जोअ जंत सभि हरणि तुम्हारी सरब चित तुघु पासे ।

जो तुघु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदाने ॥४॥२॥

मैंने शरीर से फकीर (कलंदर) के वेश पहने हैं, और मन को (परमात्मा के रहने के लिए) मन्दिर (बनाया है) और (मैं) अगने घट के ही तीर्थ में स्नान करता हूँ, एक हरी का नाम ही मेरे प्राणों में बसता है, (इसीलिए) मैं फिर जन्म के अन्तर्गत नहीं आऊँगा ॥ १ ॥

हे मेरी माँ, (मेरा) मन दयालु (परमात्मा) से विंच गया है । पराई पीर को कौन जान सकता है ? (तात्पर्य यह है कि मेरे प्रेम की व्याकुलता को और कौन जान सकता है) ? हम तो हरी के बिना और किसी का ब्याल तक नहीं करते ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे) अगम, अगोचर, अलख और अपार (हरी) हमारी चिन्ता कर । (तू) जल, स्थल तथा धरती और आकाश के बीच में पूर्ण रूप से व्याप्त हैं, घट-घट में तेरी ही ज्योति (विराजमान) है ॥ २ ॥

(हे हरी) मारी शिक्षा, मति और बुद्धि तेरी ही (प्रदान की हुई) हैं । (सारे) घर और विश्राम के स्थान तेरे ही (दिए हुए हैं) । हे मेरे साहब, मैं तुम्हें छोड़कर अन्य किसी को नहीं जानता; (इसीलिए) नित्य तेरा गुणगान करता हूँ ॥ ३ ॥

सारे जीव-जन्तु तेरी शरण में पड़े हुए हैं और सभी की चिन्ता तुम्हें है । (हे हरी), जो (कुछ) तुम्हें रुचे, वही (तुम्हें) अच्छा लगे, यही एक नानक की प्रार्थना है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

आपे सबहु आपे नीसातु । आपे सुरता आपे जानु ॥
 आपे करि करि बेखै तागु । तू दाता नामु परबारागु ॥१॥
 ऐसा नामु निरंजन देउ । हउ जाचिकु तू अलखु अमेउ ॥१॥ रहाउ ॥
 माइआ मोहु धरकटी नारी । भूँडी कामरिण कामरिणारि ॥
 राखु रूपु भूठा दिन चारि । नामु निलै चानरागु अंधिआरि ॥२॥
 चलि छोड़ी सहसा नही कोइ । बापु दिसै बेजाति न होइ ॥
 एके कउ नाही भउ कोइ । करता करै करावै सोइ ॥३॥
 सबदि सुए मनु मन ते मारिआ । ठाकि रहे मनु साचै धारिआ ॥
 अवक न सूरै गुर कउ वारिआ । नानक नामि रते निसतरिआ ॥४॥३॥

(हरी) आप ही शब्द (हू) है (और) आप ही चिह्न (निशान) रूप मे है ।
 (वह) आप ही श्रोता है और आप ही जाना (जाने वाला) है । [इस बाणो के 'रहाउ'
 से स्पष्ट रूप मे प्रकट हो जाता है कि इसका केन्द्रीय विषय 'नाम' है । नाम उच्चारण 'शब्द'
 और 'निशान' (चिह्न) दोनों दशाग्रो मे हो सकता है, क्योंकि हरी दोनों दशाग्रों मे विराज-
 मान है—वही शब्द और 'चिह्न' दोनों स्वरूप है । हरी आप ही मनुष्य में स्थित होकर, उसे
 सत्ता देकर स्वयं ही नाम को मुनता और समझता है] । (हरी) आप ही सब शक्ति है और
 (सृष्टि की रचना) कर के, उसे देखता है, (उसको देखभाल और निगरानी करता है) ।
 (हे प्रभु), तू (सभी का) दाता है (और तेरा) नाम (सबसे बढ़कर) प्रामाणिक
 है ॥ १ ॥

ऐसा (तेरा) नाम है और (ऐसा तू) निरंजन (माया मे रहित) देव है । मैं तेरा
 याचक हूँ, तू अलक्ष्य और भेद-रहित है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया के मोह, धिक्कारी हुई (व्यभिचारिणी), भोखी (बदचलन) और जादू-टोने
 करने वाली स्त्री के मोह के सहस है । धरकटी < धिक्कृत, धिक्कारी हुई, बदचलन अथवा व्यभि-
 चारिणी । कामरिणारि=जादू-टोने करने वाली स्त्री] । राज्य (सासारिक वैभव) नश्वर
 है और चार दिन (के रहनेवाले हैं) । (हरी का) नाम प्राप्त हो जाय, तो (माया के)
 अन्धकार में (ज्ञान का) प्रकाश (हो जाता है) ॥ २ ॥

(मैं) माया को चख कर छोड़ दिया है, (इसमें) कोई भी संशय नहीं है । [व्यभि-
 चारिणी माया का पुत्र वेश्या के पुत्र के समान होता है । उसका कोई एक पिता नहीं होता है,
 अतः वह 'बेजाति' माना जाता है], (किन्तु जिसका) पिता (प्रत्यक्ष) दिखाई पड़ता हो,
 वह 'बेजाति' का नहीं हो सकता । [तात्पर्य यह है कि जिसने माया को त्याग कर हरी का पुत्र
 बनना स्वीकार कर लिया है, वह हरी की जाति का है और उसकी महिमा का उत्तराधिकारी
 है] । एक (हरी) के (हो जानेवाले को) किसी का भी भय नहीं है, (क्योंकि वह इस
 बात को भलीभाँति जानता है कि) कर्ता-पुरुष जो कुछ भी करता है, वही होता है, (अन्यथा
 कुछ भी नहीं होता) ॥ ३ ॥

शब्द के द्वारा (ग्रहभाव से) मर जाय और (ज्योतिर्मय) मन से (ग्रहंकारयुक्त) मन को मार दे । मन को (माया की ओर से) रोक कर, सच्चे (हरी) में टिकाए । (गुरु के प्रतिरिक्त) अन्य कोई न सूझ पड़े ; गुरु के ऊपर ही न्यौछावर हो जाया जाय । नानक (कहते हैं कि इस प्रकार) नाम में अनुरक्त होकर (साधक का) उद्धार हो जाता है ।

[टिप्पणी : उपर्युक्त पंक्तियों में क्रियाएँ भूतकाल की व्यवहृत हैं, किन्तु अर्थ में स्वाभाविकता के लिए उनका प्रयोग वर्तमान काल में किया गया है ।] ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

गुरुबचनी मनु सहज धिग्राने । हरि कै रंगि रता मनु माने ।

मनमुख भरमि भुले बडराने । हरि बिनु किउ रहोऐ गुर सबदि पछाने ॥१॥

बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी भाई ।

हरि बिनु जोग्ररा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥१॥ रहाउ ॥

मेरा प्रभु बिसरे हउ मरउ दुखाली । सासि गिरासि जपउ ग्रनुने हरि भाली ॥

सब बेरागनि हरि नामु निहाली । अब जाने गुरुमुखि हरि नाली ॥२॥

अकथ कथा कहीऐ गुर भाइ । प्रभु अगम अगोचरु देइ दिखाइ ॥

बिनु गुर करणी किम्रा कार कमाइ । हउमै मेटि चलै गुर सबदि समाइ ॥३॥

मनमुख बिछुड़े छोटी रासि । गुरुमुखि नामि मिलै साबासि ॥

हरि किरपाधारी दासनिदास । जन नानक हरि नाम धनु रासि ॥४॥४॥

गुरु के वचनो द्वारा मन सहज-ध्यान (करने वाला) हो गया है ; (तात्पर्य यह कि मन स्वाभाविक ही हरी के ध्यान में लगा रहता है) । हरि के रंग में रंगने से मन मान जाता है, (स्थिर हो जाता है और अपनी चंचलता त्याग देता है) । (इसके विपरीत) मनमुख भ्रमित होकर पागल (के समान) भटकता रहता है । हरि के बिना, किस प्रकार शान्ति हो ? (हरि को) गुरु के शब्द द्वारा पहचाना जाता है ॥ १ ॥

हे मेरी माँ, बिना (हरि के) दर्शन के कैसे जीवन रहे ? बिना हरी के मेरा जी क्षण भर नहीं रह सकता ; सद्गुरु ने (अन्त में) मुझे समझ दे दी, (और परमात्मा से मिला दिया) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जिस क्षण) मेरा प्रभु विस्मृत होता है, (उस क्षण) मैं दुःखी होकर मर जाती हूँ । (इसीलिये मैं) (प्रत्येक) द्वास में और (प्रत्येक) ब्रास में, (तात्पर्य यह कि निरन्तर) हरि को जपती हूँ (और उसे) खोजती हूँ । (मैं) सदैव की बेरागिनी थी, (किन्तु) हरि नाम (को पाकर) निहाल हो गयी—कृतार्थ हो गयी । गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने अब हरी को अपने साथ जान लिया ॥ २ ॥

हे भाई, (हरी की) अकथनीय कहानी गुरु के द्वारा (कुछ सीमा तक) कही जाती है । (गुरु ही) अगम, अगोचर प्रभु को दिखा देता है । बिना गुरु के क्या करनी करते हो और क्या कार्य करते हो ? (अर्थात् गुरु के बिना कितनी ही करनी तथा कार्य करने व्यर्थ सिद्ध होते हैं) । (जो व्यक्ति) गुरु के शब्द द्वारा ग्रहंकार को मिटाकर चलता है, (वह प्रभु में) समा जाता है ॥ ३ ॥

मनमुख (अपनी) छोटी पूंजी (दुर्गुणों) के कारण (परमात्मा से) बिछुड जाता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) नाम में मिल जाता है , (वह) धन्य है । हरि ने (अत्यन्त) कृपा करके (मुझे) (अपने) दासों का दास बना लिया । हे नानक, जन (भक्त) (के पास) हरिनाम की ही धनराशि होनी है ॥ ४ ॥ ४ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु, महला १, घर १०

असटपदीआं

[१]

निकटि वसै बेलै सभु सोई । गुरमुखि बिरला बूझै कोई ॥
 बिरु भै पड़े भगति न होई । सबदि रते सदा सुखु होई ॥१॥
 ऐसा गिआनु पदारथु नामु । गुरमुखि पावसि रसि रसि मानु ॥१॥ रहाउ ॥
 गिआनु गिआनु कथै सभु कोई । कथि कथि बाहु करे दुखु होई ॥
 कथि कह्यौ ते रहे न कोई । बिनु रस राते मुकति न होई ॥२॥
 गिआनु धिआनु सभु गुर ते होई । साची रहत साचा मनि सोई ॥
 मनुमुख कयनी है पर रहत न होई । नाबहु भूले घाउ न कोई ॥३॥
 मनु माइआ बंधिओ सर जालि । घटि घटि बिआपि रहिओ बिलु नालि ॥
 जो आजे सो दीसै कालि । कारजु सीधो रिदै समालि ॥४॥
 सो गिआनो जिनि सबदि लिव लाई । मनमुखि हउमै पति गवाई ॥
 आपे करते भगति कराई । गुरमुखि आपे दे वडिआई ॥५॥
 रैणि अंधारी निरमल जोति । नाम बिना भूठे कुचल कछोति ।
 बेदु पुकारै भगति सरोति । सुणि सुणि मानै बेलै जोति ॥६॥
 सासत्र सिद्धति नामु हड़ामं । गुरमुखि साति उतमा करमं ॥
 मनमुखि जोनी दूख सहामं । बंधन तूटे इकु नामु वसामं ॥७॥
 मंनै नामु सची पति पूजा । किमु वेला नाही को दूजा ।
 बेलि कहउ भावै मनि सोइ । नानकु कहै अवरु नही कोइ ॥८॥१॥

(हरि) (सभी के अति निकट बसता है और (सब कुछ) देखता है । कोई बिरला ही (पुरुष) गुरु की शिक्षा द्वारा (इस तथ्य को) समझता है । (मन में) बिना (परमात्मा का भय पाए हुए भक्ति नहीं होती । (हरी के) शब्द—नाम में अनुरक्त होने से शाश्वत सुख (प्राप्त) होता है ॥ १ ॥

ऐसा (हरी का) नाम ज्ञान-पदार्थ है । (ऐसे पवित्र और शक्तिशाली) नाम को गुरु द्वारा प्राप्त करके स्वाद से मानो ॥१॥रहाउ॥

सभी कोई 'ज्ञान ज्ञान' कथन करते हैं । कथन कर कर के वाद-विवाद करते हैं, (इस वाद विवाद से) दुःख होता है , (प्रान्तरिक शान्ति नहीं प्राप्त होती) । कथन (एवं वाद-

विवाद) किन् बिना कोई भी नहीं रहता, (अर्थात् सभी व्यक्ति कथन एवं वादविवाद के चक्कर में पड़ जाते हैं) । (किन्तु कोरे कथन से कुछ भी हाथ में नहीं आता) । (परमात्मा के) रस में अनुरक्त हुए बिना मुक्ति नहीं (प्राप्त) हो सकती ॥२॥

ज्ञान और ध्यान सब (कुछ) गुरु से (प्राप्त) होते हैं । सच्चे मन से ही सच्ची रहनी (प्राप्त) होती है । मनमुख तो (केवल) कथन करनेवाला है, किन्तु (बट) रहनी नहीं रहता । (हरि के) नाम के भूलने में कोई भी स्थान नहीं (प्राप्त होता है) ॥३॥

माया ने मन को (संसार रूपी) तालाब के जाल में बाँध रक्खा है । घट-घट में (प्रत्येक प्राणी के हृदय में माया का यह जाल) व्याप्त है (बिछा है), (उस जाल में) (माया का) विष भी साय ही है । जो उत्पन्न होता है, वह काल (के अधीन) दिखलाई पड़ता है । (परमात्मा को) हृदय में स्मरण करने से कार्य सिद्ध होता है ॥४॥

जिसने नाम—शब्द में एकनिष्ठ ध्यान लगाया है, वही जानी है । मनमुख तो अहंकार (में) पड़कर अपनी प्रतिष्ठा गँवा देता है । करता-गुण स्वयं ही अपनी भक्ति (साधकों में) कराता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (परमात्मा) प्राप्त हो (शिष्य को) बड़ाई प्रदान करता है ॥५॥

(आयु रूपी) राशी अंधेरी है, (इसमें परमात्मा की) ज्योति का निर्मल (प्रकाश) है । नाम के बिना (लंग) झूठे, मेल-कुचेल और अछूत, अपवित्र होते हैं । वेद भक्ति की ध्वनि का पुकार पुकार (कर प्रतिपादन करता है) । ईश ध्वनि को मुन मुन बर (जाँ व्यक्ति) मानता है, (वह परमात्मा को उस) ज्योति को देखता है ॥६॥

(जितने भी) शास्त्र और स्मृतियाँ हैं, (सभी) नाम को ही हठ करने हैं । गुरु द्वारा यह उत्तम कर्म (करके) धाम्नि मिलती है । (किन्तु) मनमुख होने से योनि (के अन्नगंत आकर) दुख सहना पड़ता है । एक (परमात्मा के) नाम को (हृदय में) बसाने से बंधन टूटता है ॥७॥

नाम को मानना ही सच्ची प्रतिष्ठा और पूजा है । (परमात्मा को छोड़ कर) और किस देव ? (वह आप ही सब कुछ है), दूसरा कोई नहीं । (गुरु कुछ) देखकर (मैं) कहता हूँ कि बहो (प्रभु) मन को अच्छा लगता है । नानक कहता है (कि उस प्रभु को छोड़ कर) और कोई नहीं है ॥८॥१॥

[२]

मन का कहिआ मनसा करे । इहु मनु पुंनु पापु उचरै ॥

माइआ मद माते तृपति न आवै । तृपति मुकनि मनि साचा भावै ॥१॥

तनु धनु कलत सभु बेनु अभिमाना । बिनु नावै किलु सगि न जाना ॥१॥ रहाउ ॥

कोचहि रस भोग सुसीआ मन केरी । धनु लोकां तनु भसमे डेरी ॥

खाक खाकु रलं सभु कैलु । बिनु सबदै नही उतरे मैलु ॥२॥

गीत राग धन ताल सि कूरे । त्रिह गुरा उपजै बिनसे दूरे ॥

दूजी दुरमति दरदु न जाइ । छूटे गुरमुखि दारु गुरा गाढ ॥३॥

थोती ऊजल तिलकु गलि माला । छंदरि कोधु पड़हि नाटसाला ॥

नमो विसारि माइआ मद पोआ । बिनु गुर भगति नाही सुखु थोआ ॥४॥

सूकर सुआन गरदभ मंजारा । वसू मलेछ नीच चंडाला ॥

गुर ते मुहु केरे तिन्ह जोनि भवाईऐ । बंधनि बाधिआ आईऐ जाईऐ ॥५॥

गुर सेवा ते लहै पदारसु । हिरदै नामु सदा किरतारसु ॥

साची दरगह पूछ न होइ । मानै हुकमु सीकै दरि सोइ ॥६॥

सतिगुर मिले त तिस कउ जाये । रहै रजाई हुकमु पछाएँ ।

हुकमु पछाणि सचे दरि वासु । काल बिकान सबवि भए नामु ॥७॥

रहै अतीतु जायै समु तिसका । तनु मनु अरपै है इहु जिसका ॥

ना ओहु आवै ना ओहु जाइ । नानक साचे साचि समाइ ॥८॥२॥

मन के कथनानुसार (मनुष्य) मर्जी (पूरी) करता है । (इस प्रकार) यह मन (निरन्तर) पाप-पुण्य को भक्षण करता रहता है [उचरें < उ + चरे = (१) वह चरे , भक्षण करे । (२) विशेष रूप से भक्षण करे] । माया के मद में मत्त होने से तृप्ति नहीं होती; (वास्तविक) तृप्ति और मुक्ति तो यह है कि सच्चे मन में (परमात्मा) अच्छा लग जाय ॥१॥

तु (यह भगोभाति) देख ले कि तन , धन और खो सब कुछ अभिमान ही है । बिना नाम के और कुछ भी साथ नहीं जाता ॥१॥रहाउ॥

(इस संसार में) (खूब) रस भोग कर लीजिए और मन की खुशियाँ मना लीजिए , लोक में धन (संग्रह कर लीजिए , पर साथ ही यह भी समझ लीजिए कि यह) शरीर भस्म की ढेर (हो जाने वाला है) । ये सारे विस्तार , (आडम्बर के फैलाव) खाक-खाक में मिल जायेंगे । बिना शब्द—नाम के (आन्तरिक) मल नहीं दूर होता है ॥२॥

(संसार के) गीत , राग तथा बहून से ताल (आदि) भूँटे हैं । (ये संसारिक वैभव , राग , ताल आदि) तीनों गुणों से उाजने हैं , (ये) नष्ट होनेवाले हैं (और मनुष्य-जीवन को परमात्मा में) दूर करने वाले हैं । द्वैतभाव वाली दुर्मति (में होने से) दुःख दूर नहीं होता । गुरु के द्वारा (परमात्मा के) गुणगान (रूपी शीषधि (दारू) से (वह दुःख) छूटता है ॥३॥

(जो व्यक्ति) उजली धोती (पहने हैं) , ललाट में तिलक (लगाए हैं) , और गले में माला पहने हैं , (किन्तु जिनके) अन्तर्गत क्रोध (भरा हुआ है) , (वे किसी धार्मिक ग्रंथ को) पढ़ते हुए (ऐसे लगते हैं) , (मानो) नाट्यशाला में (कोई नाट्य-अभिनय कर रहा हो) । [तात्पर्य यह कि उनका धार्मिक पाठ अभिनय मात्र है , उसके अनुरूप जीवन नहीं ढाला गया है] । (इस प्रकार सांसारिक मनुष्य) नाम को भुला कर माया की मदिरा पीते रहते हैं । (किन्तु) बिना गुरु के न भक्ति ही (प्राप्त) होती है और न सुख ही होता है ॥४॥

(गुरु से विहीन प्राणी) शूकर , श्वान , गर्दभ तथा मार्जार (बिल्ले) , पशु, लेच्छ , नीच और चाण्डाल हैं । जो गुरु से मुंह फेरे हुए है , (विमुख है) , (वे) (नाना प्रकार की) योनियों में भ्रमित किए जाते हैं । (वे यमराज के) बन्धनों में बंधे जाकर आते-जाते रहते हैं ॥५॥

गुरु की सेवा से (नाम रूपी) पदार्थ प्राप्त होता है । (जिसके हृदय में नाम है , (वह) सदैव कृतार्थ है । (ऐसे व्यक्ति की परमात्मा के) सच्चे दरबार में (किसी प्रकार की) पूछ-ताछ नहीं होती , (अर्थात् उसे कर्मों का लेखा नहीं देना होता और न इन सब के लिए उसकी

पूछ ही होती है) । (जो व्यक्ति) (परमात्मा के) हुक्म को मानता है, वही उसके दरवाजे पर कामयाब होता है ॥६॥

(जब) (साधक को) सद्गुरु प्राप्त होता है; तभी (वह) उस (परमात्मा) को जानता है, (वह) हुक्म को पहचान कर (उसकी) आज्ञा में रहता है । (प्रभु के) हुक्म को पहचानने से सच्चे दरवाजे पर निवास होता है । मरण और जन्म नाम—शब्द के द्वारा नष्ट हो जाते हैं । [काल=मरण । बिकाल=मृत्यु का विपरीत, तात्पर्य जन्म] ॥७॥

(साधक) सब से प्रतीत होकर रहे और सारी (वस्तुएँ उसी (प्रभु) की जाने; (वह) अपने तन और मन को उसे अर्पित करे, जिसके ये सब हैं । हे नानक, (इस वृत्तिवाला साधक) न कही आता है और न जाता है, (वह) सचा (साधक) सत्य में ही समा जाता है ॥८॥१॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु, महला १, थिती, घर १०, जति

[१]

एकम एककारु निराला । अमर अजोनो जाति न जाला ॥

अगम अगोचर रूपु न रेखिआ । खोजत खोजन घटि घटि देखिआ ॥

जो देखि दिखावै तिस कउ बलि जाई । गुरपरसादि परम पदु पाई ॥१॥

किआ जपु जापउ बिनु जगदीसै । गुर कै सबदि महलु घर दीसै ॥१॥ रहाउ ॥

दूजै भाइ लगे पछुताये । जम दरि बाधे आबरा जारो ॥

किआ ले आबहि किआ ले जाहि । सिरि जम कालु सि चोटा खाहि ॥

बिनु गुर सबद न छूटसि कोइ । पालंडि कोन्है मुकति न होइ ॥२॥

आपे सचु कोआ कर जोड़ि । अंडज फोड़ि जोड़ि विछोड़ि ॥

धरति अकासु कोए बैसण कउ याउ । राति दिनतु कोए भउ भाउ ॥

जिनि कोए करि बेखणहार । अवरु न दूजा सिरजणहार ॥३॥

तृनीआ ब्रह्मा बिसनु महेसा । देवी देव उपाए वेसा ॥

जोती जाती गएल न आवै । जिनि साजी सो कोमति पावै ॥

कोमति पाइ रहिआ भरपूरि । किनु नेड़ै किनु आखा दूरि ॥४॥

चउपि उपाए चारे वेदा । खानी चारे बाणी भेदा ॥

असट बसा छटु तीनि उपाए । सो बूझै जिसु आपि बुझाए ॥

तीनि समावै चउपै वासा । प्रणवति नानक हम ताके दासा ॥५॥

पंचमी पंच भूत बेताला । आपि अगोचर पुरखु निराला ॥

इकि भ्रमि भूले मोह पिआसे । इकि रसु चाखि सबदि तृपतासे ॥

इकि रंगि राते इकि मरि धूरि । इकि दरि घरि साचै देखि हदूरि ॥६॥

झूठे कउ नाही पति नाउ । कबहु न सूचा काला काउ ॥

पिजरि पंखी बंधिआ कोइ । छेरो भरमे मुकति न होइ ॥

तउ छूटै जा असमु छडाए । गुरमति भेले भगति दृडाए ॥७॥

खसटी खटु दरसन प्रभ साजे । अनहद सबहु निराला बाजे ॥
जे प्रभ भावै ता महलि बुलावै । सबदे भेदे तउ पति पावै ॥
करि करि वेस खपहि जलि जावहि । साचे साचे साचि समावहि ॥८॥

सपतमी सनु संतोख सरीरि । सात समुंद भरे निरमल नीरि ॥
मजनु सीलु सनु रिदै बोचारि । गुर कै सबदि पावै सभि पारि ॥
मनि साचा मुखि साचउ भाइ । सनु नीसारै ठाक न पाइ ॥९॥

असटमी असट मिधि बुधि साधे । सनु निहकेवलु करौम अराधे ।
पउगु पाणी अगनी बिसराउ । तही निरजनु साचो नाउ ॥
तिसु महि मनूआ रहिआ लिब लाइ । प्रणवति नानकु कालु न लाइ ॥१०॥

नाउ नउमी नवे नाथ नव खंडा । घटि घटि नाथु महा बलखंडा ॥
आई पूता इहु जगु सारा । प्रभ आदेसु आदि रखवारा ॥
आदि जुगादी है भी होगु । मोहु अपरंवरु करणै जोगु ॥११॥

दसमी नामु दानु इसनानु । अनदिनु मजनु सचा गुण गिआनु ॥
सचि मैलु न लागै भ्रमु भउ भागै । बिलमु न तूटसि काचै तागै ॥
जिउ तागा जगु एवै जाएहु । असधिरु चीनु साचि रंगु माणहु ॥१२॥

एकावसी इकु रिदै वपावै । हिंसा ममता मोहु चुकावै ॥
फलु पावै बहु आतम चीनै । पालंडि राचि तनु नही बीनै ॥
निरमलु निराहार निहकेवलु । सूचै साचे ना लागै मलु ॥१३॥

जहू बेखउ तहू एको एका । होरि जीअ उपाए बेको बेका ॥
फलोहार कीए फलु जाइ । रस कस खाए सादु गवाइ ॥
कूड़े लालचि लपटे लपटाइ । छूटे गुरमुखि साचु कमाइ ॥१४॥

दुआदसि मुद्रा मनु अउधूता । अहिनिंसि जागहि कबहि न सूता ॥
जागतु जागि रहै लिब लाइ । गुर परचै तिसु कालु न लाइ ॥
अतीत भए मारे बैराई । प्रणवति नानक तहू लिब लाई ॥१५॥

दुआदसी दइआ दानु करि जाए । बाहिर जातो भीतरि आसै ॥
बरतो बरत रहै निहकाम । अजपा जापु जपै मुखि नाम ॥
तीनि भरण महि एको जाए । सभि सुचि संजम साचु पछासै ॥१६॥

तेरसि तरवर समुद कनारै । अमृतु मूलु सिखरि लिब तारै ॥
डर डरि मरै न बूडै कोइ । निडरु बूडि मरै पति खोइ ॥
डर महि घरु घर महि डरु जाए । तलति निवासु सनु मनि भारै ॥१७॥

चउदसि चउथे थावहि लहि पावै । राजस तामस सत काल समावै ॥
ससीअर कै घरि मूरु समावै । जोग जुगति की कीमति पावै ॥
अउदसि भवन पाताल समाए । खंड ब्रह्मंड रहिआ लिब लाए ॥१८॥

अमावसिआ चंडु गुपतु मैरणारि । बुभुधु गिआनी सबडु बीचारि ॥
 ससीधरु गगनि जोति तिहु लोई । करि करि वेखै करता सोई ॥
 गुर ते दीसै सो तिस ही माहि । मनमुखि भूले आवहि जाहि ॥१६॥
 घर दर थापि थिर थानि सुहावै । आपु पछाएँ जा सतिगुरु पावै ॥
 जह आसा तह बिनसि बिनासा । कुटै खपरु बुबिधा मनसा ॥
 ममता जाल ते रहै उदासा । प्रणवति नानक हम ताके दासा ॥२०॥१॥

विशेष : चिती—तिथि । महीने में चंद्रमा की गति के अनुसार दो पक्ष होते हैं और एक एक पक्ष में पन्द्रह तिथियाँ होती हैं । उनके नाम एकम से लेकर चतुर्दशी या चौदस तक समान होते हैं । केवल कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि अमावस्या कहो जाती है और शुक्लपक्ष की अन्तिम तिथि पूर्णमासी अथवा पूर्णिमा । इन तिथियों के एक एक के नाम गिनाकर गुरु नानक ने सांसारिक मनुष्यों को चेतावनी देकर भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट किया है ।

जति : जोड़ी बजाने का एक ढंग ।

अर्थ : [पहिली तिथि 'एकम' है । इसके द्वारा गुरु जी ने बतलाया है कि] (हरी) एक ही है और सबसे निराला (पृथक्) है । (वह प्रभु) अमर और अयोनि है ; (उसकी) न (कोई) जाति है (और) न (उसे कोई) जंजाल—प्रपंच—बन्धन ही है । (वह) अगम और अगोचर (इन्द्रियों की पहुँच में परे) है , न (उसका कोई) रूप है और न (उसकी कोई) रेखा है । खोजते खोजते (मैंने उसे) घट-घट में (व्याप्त) देखा । जो (ऐसे प्रभु को स्वयं) देख कर (दूसरो को) दिखावे, उसके ऊपर मैं न्यौछावर हूँ । गुरु की कृपा से (मैंने) परम पद को पा लिया है ॥१॥

(मैं) बिना जगदोश (परमात्मा) के (और) जप क्या करूँ ? गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा का) महल और घर दिखाई पड़ता है ॥१॥रहाउ॥

द्वितीया (दुइज) तिथि द्वारा यह अभिप्राय है—कि द्वैतभाव में लग कर मनुष्य पछताता है । दरवाजे पर यमराज बाँधता है और आना जाना बना रहता है । (मनुष्य) क्या लेकर (इस संसार में) आता है और क्या लेकर यहाँ में चला जाता है ? वह (मनुष्य) सिर पर काल रूपी यमराज की चोटे खाता है । (इस प्रकार) बिना गुरु के शब्द के कोई भी नहीं छूटेगा । (अनेक) पाखण्ड करने में मुक्ति नहीं प्राप्त होती ॥२॥

सच्चे (हरी) ने आप ही अपने हाथों से सृष्टि की रचना की । (जगत् के) अंशों (के समान गोलाकर) को तोड़कर दो भाग किये । फिर दोनों के सिरो को मिलाकर बीच से एक दूसरों से अलग कर दिया । इस प्रकार धरती और आसमान रहने के लिए दो स्थान बनाए । (उसी हरी ने) रात और दिन तथा भय और प्रेम उत्पन्न किया । जिस (प्रभु) ने सृष्टि की रचना की है, वही उसकी निगरानी करनेवाला भी है । (उस प्रभु को छोड़ कर) अन्य कोई सिरजनहार नहीं है ॥३॥

तृतीया (से यह मतलब यह है कि सच्चे हरी ने ही) ब्रह्मा, विष्णु महेश—(त्रिदेवों (तथा अनेक) देवी—देवताओं के (पृथक् पृथक्) वेश उत्पन्न किए हैं । (उस प्रभु ने इतनी अधिक) व्योतिवाली जातियों (की रचना की कि उनकी) गणना ही नहीं की जा सकती ।

जिसने (उनका) निर्माण किया है, वही उनकी कीमत पा सकता है । (वही प्रभु उनकी) कीमत पाकर परिपूर्ण रूप से (विराजमान है) (उसकी सृष्टि में भला) किसे निकट कहा जाय और किसे दूर कहा जाय ? ॥४॥

चतुर्थी तिथि से यह समझना चाहिए कि उसी हरी ने) चारो वेदों की उत्पत्ति की है । (उसीने जीवों की) चार खानियाँ—अंडज, जेरज, उद्भिज, स्वेदज तथा विभिन्न बाणियों (बोलियों) की रचना की है अठारह (पुराणों), षट् (शास्त्रों) और तीन (गुणों) की उत्पत्ति ने (उसी प्रभु की है) । (इस रहस्य को) वही समझ सकता है, जिसे वह स्वयं समझा दे । जो तीन अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति को पार कर (अथवा तीन गुणों—सत्व, रज और तम को पार कर) चौथी अवस्था—तुरीयावस्था, सहजावस्था, चतुर्थ पद, निर्वाण पद, मोक्ष पद में स्थित हो जाय, नानक विनय करके कहते हैं हम ऐसे पुरुष के दास हैं ॥५॥

पंचमी (से यह आशय है कि) पंच तत्त्वों में (जिनमें यह सारा संसार वरत रहा है) भूत है (तात्पर्य है कि पंचभौतिक संसार में रहनेवाले जीव भूतो-ही तरह इधर उधर घूम रहे हैं), किन्तु (हरी) आप मन बाणी से परे, निराला पुरुष है । कुछ लोग तो मोह की ध्यास में अमृत होकर भटक रहे हैं और कुछ लोग (हरी) रस का आस्वादन करके शब्द—नाम में तृप्त हो गए हैं । कुछ लोग तो (प्रेम के) रंग में रंगे हैं और कुछ मर कर धूल हो रहे हैं । कुछ लोग सच्चे घर और सच्चे दरवाजे पर (हरी को अति) निकट में देखते हैं ॥६॥

भूठे (व्यक्ति) को न प्रतिष्ठा (प्राप्त होनी है) और न नाम ही (प्राप्त होना है) । काला कोवा कभी नहीं पवित्र होता है । (यदि) कोई पक्षी पिंजड़े में बंधा हो और (पिंजड़े के) छिद्रों की ओर घूमता हो, तो (उसकी इस क्रिया में उसकी) मुक्ति नहीं हो सकती । वह तभी छूट सकता है, जब स्वामी कृपा करके छुटकारा दे । गुरु की बुद्धि द्वारा मिलने से ही भक्ति की दृढता प्राप्त होती है ॥७॥

षष्ठी (छट्ठी) तिथि द्वारा गुरु नानक देव जी का यह उपदेश है कि) प्रभु (हरी ने) छः दर्शनों—शास्त्रों [वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा (व्यास कृत), पुरुष मीमांसा अथवा कर्म काण्ड (जैमिनि कृत), योग (पतञ्जलि कृत), न्याय (गौतम कृत), वैशेषिक (कणाद कृत) तथा सांख्य (कपिल द्वारा रचित)] की रचना की है । (प्रभु की रचना में) अनाहत शब्द तो निराले ढंग में बजता है ; (अनाहत शब्द आत्मिक-मण्डल का वह शाश्वत सगीत है, जो बिना बजाए ही बजता है) । यदि प्रभु को अच्छा लगता है, तो (वह साधक को अपने) महल में बुला लेता है । (यदि) (गुरु के) शब्द द्वारा (अपने मन को बेध दे, तभी) (प्रभु के निकट) प्रतिष्ठा पा सकता है (पाछण्डी लोग तो अनेक प्रकार के) वेश बना बना कर नष्ट होकर जल जाते हैं ; किन्तु सच्चे (साधक) तो सत्य स्वरूप (हरी) में ही समा जाते हैं ॥८॥

सप्तमी (तिथि द्वारा गुरु नानक महाराज यह समझाते हैं कि) यदि शरीर में (तात्पर्य यह कि जीवन में) सत्य, सतोष (आदि गुण) हो, तो सार्तां समुद्र (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि) (नाम के अमृत जल से) भर जाते हैं ; [तात्पर्य यह कि अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति हो जाती है] । हृदय में सच्चे (हरी) को विचार कर शील (पवित्रतापूर्वक जीवन) ही (सच्चा) स्नान है । गुरु का शब्द सभी को तार देता है । (जिसके) मन और मुख सच्चे

है (और जिसमें) सच्चा भाव है , (उन्हे) सत्य रूपी निशान (परवाना) प्राप्त होता है , (जिससे) उनकी कोई रोक नहीं होती ॥६॥

अष्टमी (तिथि से यह भाव है कि) (साधक) अष्ट सिद्धियों वाली बुद्धि के ऊपर विजय प्राप्त करे (तात्पर्य यह चमत्कारी शक्तियों की ओर बुद्धि न जाने दे । (वह) सच्चे और निष्केवल (हरी की) (शुभ) कर्मों द्वारा आराधना करे और वायु, जल तथा अग्नि (के क्रमशः रजोगुणी , सत्वगुणी , एवं तमोगुणी स्वभाव को) भुला दे ; ऐसे ही स्थान में (अर्थात् ऐसे ही मनुष्य के शुद्ध अन्तःकरण में) सच्चा नाम बसता है । ऐसे (सच्चे नाम) में (साधक का मन लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर रहता है । नानक विनती करके कहता है (कि ऐसे साधक को) काल नहीं खाता है , (अर्थात् वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो कर साक्षात् परमात्म-स्वरूप हो जाता है और उस पर काल का कोई वश नहीं चलता है) ॥१०॥

नवमी (से यह आशय है कि हरी का) नाम (योगियों के बड़े) नौ नाथों , (पृथ्वी के) नौ खण्डों (और प्रत्येक) घट का महा बलवंत (शक्तिशाली) स्वामी है । उस माता (रूपी हरी) की सन्तान यह सारा जगत् है । (उस) आदि रक्षक प्रभु को (हम सब का) प्रणाम है । (वह प्रभु) आदिकाल (एव) युग-युगान्तरो में है, था (और) रहेगा , (तात्पर्य यह कि परमात्मा भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा । वह अपरंपार (प्रभु सभी कुछ) करने में समर्थ है ॥ ११ ॥

दशमी (तिथि द्वारा गुरु नानक देव यह समझाते हैं कि) नाम (जपो), दान दो (बाँट कर खाओ) और स्नान करो (पवित्र रहो) । (हरी के) गुणों का सच्चा ज्ञान (लेना ही)—इसी को नित्य का स्नान (समझो) । सच्चे (व्यक्ति को) मेल नहीं लगती (और उसके समस्त) भ्रम और भय भग जाते हैं । कच्चे तागे को टूटने में विलम्ब नहीं लगता । (अतएव इस बात को) जानो कि जैसे तागा (कच्चा) है, वैसे ही यह जगत् भी (कच्चा है) । (यदि) सच्चे (परमात्मा में) आनन्द माना जाय, (तभी) चित्त स्थिर होता है ॥ १२ ॥

एकादशी (तिथि से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि) एक (परमात्मा को) (अपने) हृदय में बसा ले और हिंसा, ममता तथा मोह को समाप्त कर दे । (इसका) फल होगा— (सत्य) व्रत की प्राप्ति और आत्म-स्वरूप की पहचान । पाखण्ड में अनुरक्त होने से (पाखण्डो व्यक्ति) (परमात्म -) तत्व को नहीं देख सकता । (हरी) निर्मल, निराहारी और निर्लेप (निष्केवल) है । (इस प्रकार के) पवित्र (हरी) द्वारा जो (व्यक्ति) पवित्र होता है, उसे मेल नहीं लग सकती ॥ १३ ॥

(मैं) जहाँ देखता हूँ, (वहाँ) एक ही एक (एक मात्र हरी ही) (दिखाने पड़ता है) ; (उसी एक हरी ने) भक्ति भक्ति के जीव उत्पन्न किए हैं । (इन जीवों में से कुछ तो ऐसे हैं, जो सदैव) फलाहार ही करते हैं, (पर इस फलाहार का) (वास्तविक) फल, (उनसे) चला जाता है । (कुछ लोग ऐसे हैं जो नाना प्रकार की) रसमयी (वस्तुओं को) खाते हैं, (पर फिर भी स्वाद) गँवा देते हैं । (इस प्रकार दोनों प्रकार के लोग—(१) फलाहारी तथा (२) भ्रमेक प्रकार की स्वादिष्ट वस्तुओं को खाने वाले) झूठी लालच में

लिपटे हुए हैं। गुरु द्वारा सच्ची कमाई करने से ही (मनुष्य सांसारिक प्रपंचो एव बन्धनो से) छूटा है ॥१४॥

द्वादशी (तिथि द्वारा गुरु नानक देव यह कहते हैं कि जिनका) मन (बाह्य वेश की बारह) मुद्रामो से उपराम (भवभूत) हो गया है, वे अर्हनिश (ब्रह्मज्ञान के प्ररम प्रकाश में) जगते हैं और (अज्ञान रूपी निद्रा में) कभी नहीं सोते । [१२ मुद्राएँ निम्नलिखित हैं :—
५ चिह्न ब्रह्मचारियों के— यज्ञोपवीत, मृगचर्म, मुंज-मेखला, कमण्डलु एवं शिखा (चोटी),
३ चिह्न वैष्णवों के— तिलक, कंठी एव तुलसी की माला, २ चिह्न शैवों के— रुद्राक्ष की माला और त्रिपुण्ड्र, १ चिह्न योगियों का— मुद्रा तथा १ चिह्न संन्यासियों का— त्रिदण्ड] ।
(ऐसा साधक) (परमात्मा में) लिब (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर (सदैव) जागता रहता है । गुरु के (सच्चे) परिचय हो जाने से, ऐसे (व्यक्ति को) काल नहीं भक्षण करता ।
(ऐसे पुरुष) वास्तविक त्यागी (अतीत) हैं , (उन्होंने कामादिक) शत्रुओं का हनन किया है । नानक विनयपूर्वक कहता है कि ऐसी (भूमिका में) लिब (एकनिष्ठ ध्यान) लगाना चाहिए ॥१५॥

द्वादशी (तिथि द्वारा गुरु नानक महाराज पुनः समझाते हैं कि) (प्राणियों पर) दया (और असहायों) को दान देना— (यही द्वादशी तिथि) समझनी चाहिए और बाहर जानेवाले मन को (प्रयत्न एवं धैर्यपूर्वक) भीतर ले आना चाहिए ; (तात्पर्य यह कि विषयो में भटकते हुए बहिर्मुख मन को प्रयत्न पूर्वक अन्तर्मुख करना चाहिये) । व्रत रखने वाला (साधक) निष्काम होने का व्रत ले । (वह साधक) (निरन्तर) अजपा जप करता रहे (और इस प्रकार उसके) मुख में (सदैव) नाम (की धार प्रवाहित होती रहे) [अजपा जाप—से यह अभिप्राय है कि जो जप बिना जिल्हा को हिलाए-डुलाए हो । यह जप श्वास-प्रश्वास द्वारा होता रहता है । किन्तु इस जप को प्राप्ति के लिए वाणी-जप आवश्यक है । वाणी जप से अजपा जप होता है । अजपा जप जब परिष्कृत हो जाता है, तब 'लिब' जप होता है । लिब जप में सभी बाह्य-साधक छूट जाते हैं और एक मात्र हरी का आन्तरिक प्रेम प्रबल हो जाता है । गुरुओं के अनुसार लिब-जप सर्व श्रेष्ठ जप है] । तीनों लोकों में एक मात्र (हरी) को ही जाने । सत्य का साक्षात्कार करना (पहचानना) ही सारी पवित्रता (एवं सारा) संयम है ॥१६॥

त्रयोदशी (तिथि द्वारा यह बतलाया जाता है कि मनुष्य का जीवन) समुद्र के तट के वृक्ष (की भाँति क्षण-भंगुर है, जो किसी भी क्षण समुद्र की तरंगों में लीन हो सकता है) । पर उसका मूल अमर हो सकता है, यदि उसकी शिखा लिब (एक-निष्ठ ध्यान) के तार से बंधी रहे ; (तात्पर्य यह कि मनुष्य उस क्षण अमरणधर्मी हो सकता है, जिस क्षण वह अपनी वृत्तियों को परमात्मा की शाश्वत और अखण्ड सत्ता में नियोजित कर दे) । [शिखर —चोटी, शिखा ; दशम द्वार ; मन की ऊँची वृत्ति] । (जो व्यक्ति हरी के) डर में है, (उसका, डर मर जाता है, (ऐसा, कोई भी (व्यक्ति) (संसार-सागर में) नहीं डूबता । (किन्तु जो व्यक्ति परमात्मा से) निडर है, (वह अपनी) प्रतिष्ठा छोकर डूब मरता है । (परमात्मा के) भय में (अपना वास्तविक) घर, (और अपने) घर में (परमात्मा का)

भय जानना चाहिए । (यदि) अच्छा (हरी) मन को अच्छा लगने लगे, (तो शाही) तत्त्व का निवास (प्राप्त होता है) ॥१७॥

चतुर्दशी (तिथि का यह अभिप्राय है कि यदि कोई) चतुर्थ स्थान—तुरीयावस्था को प्राप्त करता है, (तो उसके) रजोगुण, तमोगुण एवं सत्वगुण काल में समा जाते हैं, (अर्थात् वह त्रिगुणात्मक बन्धनो से मुक्त होकर त्रिगुणातीत हो जाता है) ; चन्द्रमा के घर में सूर्य आकर समा जाता है, [भावार्थ यह कि मनुष्य की अज्ञानावस्था के चन्द्रमा में गुरु का उपदेश रूपी सूर्य आकर बस जाता है] । (ऐसा शिष्य—साधक) योग-विधियों के (समस्त) मूल्य को (अकस्मात् ही) पा जाता है । (वह इस महायोग के कारण इतना व्यापक और महान् हो जाता है कि) (वह) चतुर्दश भुवनो एव (समस्त) पाताल में व्याप्त हो जाता है ; वह समस्त खण्ड-ब्रह्माण्डो में एकनिष्ठ ध्यान (लिब) लगाकर (परिपूर्ण) हो जाता है ॥१८॥

अमावस्या (तिथि से गुरु नानक देव यह समझते हैं कि इस तिथि में) (व्यष्टिगत) चन्द्रमा (समष्टिगत चिदाकाश के) आकाश में अन्तर्हित हो जाता है । ऐ शानी, (गुरु के) शब्द को विचार कर (इस परम रहस्य को) समझने (की चेष्टा करो) । चन्द्रमा में, गगन में और तीनों लोकों में (उसी परमात्मा की अखण्ड और सर्वव्यापिनी) ज्योति (व्याप्त है) । वही कर्त्ता-पुरुष (सृष्टि) रच रच कर, (उसकी) देखभाल करता है । गुरु से (यह महान् रहस्य) दिखाई पड़ता है (कि परमात्मा की वह अखण्ड और सर्वव्यापिनी ज्योति) उस (शिष्य) के भीतर भी है । (विन्तु) मनमुख (इस रहस्य को तभी समझता, वह तो अपनी इन्द्रिय पराधरता के कारण बारंबार इस ससार-चक्र में) भटक कर आता-जाता रहता है ॥१९॥

जब (शिष्य) सद्गुरु को पा लेता है, (तभी वह परमात्मा के सच्चे) घर और दरवाजे पर स्थापित होता है (और तभी वह आत्मस्वरूप के) स्थिर स्थान में सुशोभित होता है (और तभी वह) अपने आप को पहचानता है । जहाँ पर आशा होती है, वहाँ (मनुष्य) नष्ट होकर बरबाद हो जाता है । (गुरु के प्राप्त हो जाने पर) द्वैतभाव एव (मनमुखी) दास-नामों का खप्पर फूट जाता है । (ऐसा व्यक्ति) ममता के समूह से उदासीन हो जाता है, नानक विनयपूर्वक कहता है कि हम ऐसे (व्यक्ति के) दास हैं ॥२०॥ १॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु, महला १, दखणी,

छंत

[१]

सुंध नबेलड़ीआ गोइलि आई राम ।

मटुकी डारि धरी हरि लिब लाई राम ॥

लिब लाइ हरि सिउ रही गोइलि सहजि सबदि सीगारीआ ।

कर जोड़ि गुर पहि करि बिनंतो मिलहु साचि पिप्रारीआ ॥

धन भाइ भगती बेलि प्रीतम काम क्रोधु निवारिआ ॥१॥

नानक सुंध नबेल सुंदरि बेलि पिरु साधारिआ ॥१॥

सचि नबेलझीए जोबनि बाली राम ।
 भ्राउ न जाउ कही अपने सहि नाली राम ॥
 नाह अपने संगि दासी मै भगति हरि की भावए ।
 भगधि बोधि अकधु कथीऐ सहजि प्रभ गुरु गावए ॥
 राम नाम रसाल रसीआ रबै साचि पिआरीआ ।
 गुरि सबदि दीआ दानु कीआ नानका बीचारीआ ॥२॥
 लीधर मोहिअझी पिर संगि सूती राम ।
 गुर के भाइ चलो साचि संगूती राम ॥
 धन साचि संगूती हरि संगि सूती संगि सखी सहेलीआ ।
 इक भाइ इक मनि नामु वसिआ सतिगुरु हम मेलीआ ॥
 विनु रैणि घड़ी न चसा विसरै सासि सासि निरंजनो ।
 सबदि जोति जगाइ दीपकु नानका भउ भंजनो ॥३॥
 जोति सबाइझीए त्रिभवण सारे राम ।
 घटि घटि रबि रहिआ अलख अपारे राम ॥
 अलख अपार अपार साचा आपु मारि मिलाईऐ ।
 हउमै ममता लोनु जालहु सबदि मैनु चुकाईऐ ॥
 दर जाइ दरसनु करी भाएँ तारि तारणहारिआ ।
 हरि नामु भंमनु चाखि नृपती नानका उर धारिआ ॥४॥१॥

विशेष : इस पद में कुछ पक्तियों के अन्त में 'राम' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'राम' संबोधन का चिह्न है। 'गुरु नानक' की वाणी में कुछ पद ऐसे हैं, जिनके अंत में इस प्रकार के सम्बोधन प्रयुक्त हुए हैं, जैसे 'राम', 'राम जो', 'बलिराम जीउ', 'पिआरे', आदि।

अर्थ युवा स्त्री, (इस संसार रूपी) चारागाह में (थोड़े दिन के लिए) आई है। (वह चतुर स्त्री—शुद्ध जीवात्मा) (माया की) मटकी नीचे रख कर (तात्पर्य यह कि सासारिक वस्तुओं से उपराम होकर), हरी में निव (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर बैठ गई है। (वह) हरी में निव (एकनिष्ठ ध्यान) लगा कर बैठ गई है, (उसने) स्वाभाविक ढंग से शब्द द्वारा अपना शृङ्गार किया है। (वह) हाथ जोड़कर गुरु से प्रार्थना करती है कि हे सच्चे प्रियतम मुझे मिलो। स्त्री का प्रेम और भक्ति देख कर प्रियतम (परमात्मा) उसके काम और क्रोध को दूर करता है। हे नानक, नयी, सुन्दरी स्त्री प्रियतम को देख कर, उसके आसरे हो गई है ॥१॥

हे सत्य (में प्रतिष्ठित होनेवाली) नयी स्त्री, हे युवती बाले, (तू) और कही न आ न जा, अपने प्रियतम के संग ही (रह)। (मैं) अपने स्वामी के संग में हूँ, (उनकी) दासी हूँ, मुझे हरि की भक्ति अच्छी लगती है। (जिस प्रभु का) बोध (ज्ञान) अगाध है (और जो) अकथनीय है, (उसका) कथन करना चाहिए और सहज भाव से उस प्रभु का गुणगान करना चाहिए। राम नाम रस का घर है, रसिक (परमात्मा) (अपनी) सच्ची प्रियतमाओं के साथ रमण करता है। हे नानक, गुरु ने विचार करके उपदेश दिया है (और शिष्य को) (महान्) दान दिया है ॥२॥

श्रीधर (परमात्मा) द्वारा मोहित की हुई स्त्री अपने पति (परमात्मा) के ही साथ शयन करती है। गुरु के भावानुसार चलने से (वह) सच्चे (हरी) के साथ जुड़ी हुई है। सत्य (परमात्मा) के साथ जुड़ी होने से, (वह सौभाग्यशालिनी स्त्री अपने पति) हरी के साथ ही शयन करती है, (और उसके) साथ में (उसकी) सखियाँ-सहेलियाँ (भी आनन्द मनाती है)। एक रस और एकाग्र मन होने से (हमारे अन्तर्गत) नाम बस गया है; सद्गुरु ने हमें (परमात्मा से) मिला दिया है। (अब परिणाम यह हुआ है) कि निरंजन (माया से रहित हरी) दिन, रात, घड़ी तथा पल का तीसवाँ भाग भी नहीं भूलता है; (वह) प्रत्येक साँस में (याद आता रहता है)। [विशेष :—चसा=पन्द्रह बार आँखों की पलकों के गिरने को 'विसा' कहा जाता है। पन्द्रह 'विसो' का एक 'चसा' होता है। तीस 'विसो' का एक 'पल' और साठ पल की एक घड़ी होती है।] हे नानक, भय को नष्ट करनेवाले हरी ने (गुरु के) शब्द की ज्योति द्वारा (हृदय में) (ज्ञान का) दीपक प्रज्वलित कर दिया है ॥३॥

हे सभी के मध्य आई हुई (परमात्मा की सर्वव्यापिनी और अखण्ड) ज्योति, (तू) सारे त्रिभुवन में (व्याप्त) है। अलक्ष्य और अपार हरी घट-घट में रमा हुआ है। (हे साधक, अपने) आपेपन को मार कर (अपने को) अलक्ष्य, अपार, सच्चे हरी से मिला दो। अहंकार, समता और लोभ को (गुरु के) शब्द द्वारा जला दो (और आन्तरिक) मैल को समाप्त कर दो। (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर (मैंने) उसका दर्शन किया (और) तारनेवाले हरी ने (अपनी) आज्ञा से—मर्जी से—इच्छा से (मुझे संसार-सागर से) तार लिया। हे नानक, (मैं) हरि के प्रभुत नाम को चख कर तृप्त हो गई और (उस नाम को अपने) हृदय में धारण कर लिया ॥४॥१॥

[२]

मे भनि चाउ घणा साचि विवासी राम ।
मोही प्रेम पिरे प्रभि अबिनासी राम ॥
अविगतो हरि नाथु नाथह तिसै भावै सो बीऐ ।
किरपालु सदा दइपालु दाता जीआ अंदरि तूं जोऐ ॥
मे अवरु गिरानु न धिअानु पूजा हरि नामु अंतरि बसि रहे ।
भेलु भवनी हठु न जाना नानका सचु गहि रहे ॥१॥
भिनड़ी रैणि भली दिनस सुहाए राम ।
निज घरि सूतड़ीए पिरमु जगाए राम ॥
नवहाणि नव धन सबदि जागो आपणै पिर भाणीआ ।
तजि कूड़ कपटु सुभाउ दूजा चाकरी लोकाणीआ ।
मे नामु हरि का हारु कंठे साच सबदु नीसाणिआ ।
करि जोड़ि नानकु सातु मागै नदरि करि तुधु भाणीआ ॥२॥
जागु सलोनड़ीऐ बोलै गुरबाणी राम ।
जिनि सुनि भनिअड़ी अकथ कहाणी राम ॥
अकथ कहाणी पदु निरबाणी को विरसा गुरमुखि बूझए ।
ओहु सबदि समाए आपु गवाए त्रिभवण सोझी सूझए ॥

रहै अतीतु अपरंपरि राता साबु मनि गुण सारिआ ।

ओहु पूरि रहिआ सरब ठाई नानका उरि धारिआ ॥३॥

महलि बुलाइइऐ भगति सनेही राम ।

गुरमति मनि रहसी सोभसि बेही राम ॥

मनु मारि रोमै सबदि सोमै त्रैलोक नाथ पछाएए ।

मनु डोगि डोलि न जाइ कतही आषणा पिरु जाएए ॥

मै आघारु तेरा तू खससु मेरा मै तारु तकीआ तेरओ ।

साचि सूचा सदा नानक गुर सबदि भगरु निबेरओ ॥४॥२॥

मेरे मन मे अत्यधिक चाव (उमग) है, मैं सब (हरी) द्वारा विकसित हो गई । अविनाशी, प्रियतम, प्रभु ने मुझे (अपने महान्) प्रेम मे मोहित कर लिया । अव्यक्त हरी स्वामियो का भी स्वामी है; (जो कुछ) उसे अच्छा लगता है, वही होता है । हे कृपालु, हे सदैव दया करनेवाले दाता, जीवो के अन्तर्गत तू ही जीवित है, (अर्थात् तेरी ही सत्ता से प्राणधारियों का जीवन है) । मुझमे (तुझे छोड़कर) न और कोई ज्ञान है, न ध्यान है और न पूजा है; (मेरे) अन्तर्गत हरि का नाम ही बस रहा है । हे नानक (मैं) न (तो कोई) वेश (बनाना) जानता हूँ, न (तीर्थोंदिको मे) भ्रमण ही (करता हूँ) (और न कोई) हठ-निग्रह ही जानता हूँ,—मैंने तो सत्य (हरी) को ही ग्रहण कर रक्खा है ॥१॥

रात्रि (आनन्द से) भीगी हुई और दिन सुहावने (प्रतीत होते हैं) । (मैं) अपने घर मे सोई थी, प्रियतम (हरी ने मुझे अज्ञान-निद्रा से) जगा कर (अपने स्वरूप मे स्थित कर दिया है) । नवयुवनी, नयी स्त्री (गुरु के) शब्द द्वारा जग गई है और अपने प्रियतम (परमात्मा) को अच्छी लगी है । (उस स्त्री ने) झूठ, कपट-स्वभाव तथा दूसरे मनुष्यों की चाकरी (नोकरी) छोड़ दी है (और एक मात्र परमात्मा मे लिव लगाया है) । मेरे गले मे हरी के नाम का हार और सच्चे शब्द का निशान पडा है । नानक हाथ जोड़ कर सत्य (की भील) मांगता है, (हे प्रभु) कृपादृष्टि करो (ताकि मैं) तुझे अच्छा लूँ ॥२॥

ऐ सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्री, (उठो), जागो और गुरुवाणी बोलो । जिस (गुरुवाणी को) सुन कर (परमात्मा की) अकथनीय कहानी को मानो, समझो । (परमात्मा की) अकथनीय कहानी तथा निर्वाणी पद—चतुर्थ पद—तुरीय पद को कोई विरला ही पुरुष गुरु की शिक्षा द्वारा समझता है । वह (पुरुष) अपनेपन को गँवा कर शब्द—नाम मे समा जाता है और (उसे) तीनों लोकों का ज्ञान हो जाता है । (सच्चा शिष्य) सच्चे मन से (परमात्मा के) गुणों को याद करके अपरपार (परमात्मा) मे अनुरक्त हो कर सबसे अतीत (त्यागी, निःस्पृह) हो गया है । हे नानक, (उस साधक ने उस हरी को अपने) अन्तःकरण मे धारण कर लिया है जो सभी स्थानों मे परिपूर्ण है (व्याप्त है) ॥३॥

भक्ति से स्नेह करनेवाले उस (परमात्मा) ने (तुझे) अपने महल में बुलाया है । गुरु की बुद्धि द्वारा तू मन मे प्रसन्न है और तू ने अपने शरीर (जीवन) को भी सकल कर लिया है । (जो) अपने (चंचल) मन को मार कर (गुरु के) शब्द मे रीझता है, (वही) सिद्ध होता है और त्रिलोकीनाथ (हरी) को पहचानता है । (तेरा) मन डिंग कर और डोल कर (चंचल होकर) कहीं भी न जाने पावे, (तू अपने) प्रियतम को पहचान । (हे प्रभु) मुझे

तेरा ही आधार है, तू ही मेरा पति है, मुझे तेरा ही बल और सहारा है । हे नानक, सच्चा सदैव ही पवित्र (होता है), गुरु के शब्द ने (मेरे) भगड़े को समाप्त कर दिया है ॥४॥२॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बिलावलु की वार, महला १

सलोङ्ग : कोई वाहे को लुणै को पाए खलिहानि ।
नानक एव न जापई कोई खाइ निदानि ॥१॥
जिसु मनि वसिआ तरिआ सोइ ।
नानक जो भावै सो होइ ॥२॥

सलोङ्ग : कोई तो (खेत) बोता है और कोई (उसे) काटता है, और कोई उसे खलि-
हान में लाता है । (पर) हे नानक, यह नहीं दिखाई पड़ता कि अंत में किसे खाना है ॥१॥

जिसके मन में (हरी) बस गया है, वही (इस संसार-सागर से) पार होता है । हे
नानक, (जो कुछ) उस हरी को अच्छा लगता है, वही होता है ॥२॥

पडङ्गी : पारब्रह्मि दइआलि सागर तारिआ ।
गुरि पूरे मिहरवानि भरसु भउ मारिआ ॥
काम क्रोधु बिकरालु दूत सभि हारिआ ।
अमृत नामु निधानु कंठि उर धारिआ ॥
नानक साधु संगि जनसु मरसु सबारिआ ॥१॥

पडङ्गी : दयालु परब्रह्म ने (मुझे) (इस संसार रूपी) सागर से तार दिया है । मेहर-
वान (कृपालु) पूर्ण गुरु ने (मेरे) भ्रम और भय को समाप्त कर दिया है । काम क्रोध
(इत्यादि) बिकराल दूत सब हार खाकर (बंठ गए हैं) । (मैंने) अमृत के भण्डार (हरी के)
नाम को अपने गले और हृदय में धारण कर लिया है । हे नानक, साधु-संग में मैंने अपना जन्म-
मरण बना लिया है ॥१॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

रामकली महला १, घर १, चउमदे

सबद

[१]

कोई पड़ता सहसाकिरता कोई पड़े पुराना ।
कोई नामु जपे जपमाली लागै तिसै धिघाना ॥
अब ही कब ही किछु न जाना तेरा एको नामु पछाना ॥१॥
न जाणा हरे मेरी कवन गते ।
हम भूरख अगिधान सरनि प्रभ तेरी ॥
करि किरपा राखहु मेरी नाज पते ॥१॥ रहाउ ॥
कबहु जीअड़ा उभि चड़तु है कबहु जाइ पइअले ।
लोभी जीअड़ा बिर न रहतु है चारे कुंडा भाले ॥२॥
भरणु लिखाइ मडल महि आए जीवगु साजहि माई ।
एकि चले हम देखहु सुग्रामी भाहि बलंती आई ॥३॥
न किसी का मोतु न किसी का भाई न किसै बापु न माई ।
प्रणवति नानक जे तू बेवहि अंते होइ सलाई ॥४॥१॥

विशेष : योगियों के गुरुओं की वाणी 'रामकली' राग में अधिक मात्रा में पाई जाती है। इस राग को योगियों ने बहुत अपनाया है। सिक्ख-गुरुओं ने योगियों से वार्तालाप करने के लिए 'रामकली' राग का अधिकता से प्रयोग किया है। [मुसलमान फकीरों से वार्तालाप करने के लिये सिक्ख-गुरुओं ने 'आसा', 'सूही' और 'तिलंग' रागों का अधिकता से व्यवहार किया है, क्योंकि उन फकीरों में ये राग बहुत प्रचलित थे।]

अर्थ : कोई तो संस्कृत, (जिसमें वेद लिखे गए हैं) पढ़ता है और कोई पुराण पढ़ता है। कोई माला से जप करता है, (ताकि) उसका ध्यान लगे। (मैं तो) 'अब तब' कुछ भी नहीं जानता, (हे प्रभु, मैंने) तेरे एक नाम को ही पहचाना है ॥ १ ॥

हे हरी, (मैं कुछ भी) नहीं जानता कि मेरी क्या गति होगी ? हे प्रभु, मैं मूर्ख और भ्रमानी हूँ; तेरी शरण में पड़ा हूँ। हे स्वामी, कृपा करके मेरी लज्जा रखो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

कभी तो यह जो (मन) ऊँचे (खूब) आकाश में चढ़ जाता है और कभी पाताल में चला जाता है ; (तात्पर्य यह कि कभी तो चित्तवृत्ति खूब ऊँचे चढ़ जाती है और कभी नीचे गिर जाती है) । (इस प्रकार) यह लोभी जो (मन) स्थिर नहीं रहता ; यह चारों दिशाओं में खोजता रहता है ॥ २ ॥

(मनुष्य तो परमात्मा के यहाँ से अपना) मरण लिखा कर संसार के बीच आया है, (किन्तु) हे माँ, (इस संसार में आकर वह) (स्थायी) जीवन की साज साजने लगता है । हे स्वामी, हमारे देखते देखते कुछ (लोग) तो (इस संसार से) विदा हो गए ; (मृत्यु की) आग जलती हुई चली आ रही है (मोत सभी को बारी बारी से जलाती चली आ रही है) ॥ ३ ॥

(इस संसार में कोई) न किसी का मित्र है, न (कोई) किसी का भाई है, न (कोई) किसी का माता-पिता है, (क्योंकि यहाँ के नाते क्षण-भंगुर हैं) । नानक विनय करके के कहता है (कि हे प्रभु) यदि तू (कृपा करके नाम का दान) दे, तो अन्त में वही सहायक (सिद्ध) होगा ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

सरब जोति तेरी पसरि रही ।

जह जह बेला तह नरहरी ॥१॥

जीवन तलब निवारि सुआमी ।

अंध कृपि माइआ मनु गाडिआ किउकरि उतरउ पारि सुआमी ॥१॥ रहाउ ॥

जह भीतरि घटि भीतरि बसिआ बाहरि काहे नाही ।

तिन को सार करे तित साहिबु सदा चित मन माही ॥२॥

आपे नेइ आपे दूरि । आपे सरब रहिआ भरपूरि ।

सतगुरु मिले अंधेरा जाइ । जह बेला तह रहिआ समाइ ॥३॥

अंतरि सहसा बाहरि माइआ नेणी लागसि बाणी ।

प्रणवति नानक दासनिदासा परतापहिमा प्राणी ॥४॥२॥

(हे प्रभु), तेरी ज्योति सर्वत्र फैल रही है । (मैं) जहाँ भी देखता हूँ, नरहरी (परमात्मा) (दिखाई पड़ रहा है) ॥ १ ॥

(हे हरी), जीवन की इच्छाओं का निवारण कर । (मेरा मन) माया के अंधे (धनधोर अंधकारपूर्ण) कुण्ड में गड़ा हुआ है ; हे स्वामी, (मैं) वहाँ से किस प्रकार (बाहर) निकलूँ ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिनके हृदय के अन्तर्गत (परमात्मा) बसा हुआ है, (भला उनके) बाहर क्यों न हो ? (तात्पर्य यह कि परमात्मा जिनके भीतर बसा हुआ है, उनके बाहर भी वही है) । साहब (प्रभु) ऐसे (व्यक्तियों) को सदैव खोज-खबर करता है और उनका सदैव (अपने) मन में चिन्तन करता है ॥ २ ॥

(प्रभु) आप ही समीप है और आप ही दूर है और आप ही सर्वत्र व्याप्त हो रहा है । सद्गुरु के प्राप्त होने पर ही अन्धकार (अज्ञान) दूर होता है । (मैं तो) जहाँ देखता हूँ, वही प्रभु व्याप्त (दिखलाई) पड़ता है ॥ ३ ॥

(प्राणियों के) अन्तर्गत (भीतर) तो संशय (व्याप्त है) और बाहर माया नेत्रों में बाणों की भाँति लगती है । दासों का दास नानक वियपूर्वक कहता है कि प्राणी (इस माया के कारण) बहुत ही दुखी होगा ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

जितु दरि बसहि कबनु दरु कहोऐ दरा भीतरि दरु कबनु लहै ।

जिसु दर कारणि फिरा उदासी सो दरु कोई आइ कहै ॥१॥

किन बिधि सागरु तरीऐ । जीवतिहा नह मरीऐ ॥१॥ रहाउ ॥

बुलु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा बुझ पट जड़े ।

माइआ जलु खाई पाणी घर बाधिआ सत कै आसणि पुरलु रहे ॥२॥

किते नामा अंतु न जाणिआ तुम सरि नाही अवरु हरे ।

ऊचा नही कहणा मन महि रहणा आपे जाणै आपि करे ॥३॥

जब आसा अंदेसा तब ही किउ करि एकु कहै ।

आसा भीतरि रहै निरासा तउ नानक एकु मिलै ॥४॥

इन बिधि सागरु तरीऐ । जीवतिआ झु मरीऐ ॥१॥ रहाउ दूजा ॥४॥३॥

जिस दरवाजे में (वह प्रभु) बसता है, (वह) कौन सा दरवाजा कहा जाता है ? (शरीर के) दरवाजे के भीतर कौन से स्थान पर (परमात्मा का) दरवाजा प्राप्त होता है ? जिस (परमात्मा के) दरवाजे (की प्राप्ति) के लिए (बहुत से लोग) विरक्त (उदासीन) होकर फिर रहे हैं, उस दरवाजे की (भला) कोई आकर (बातें तो) बतलाए ॥ १ ॥

किस उपाय से (यह संसार रूपी) सागर तरा जाय ? जीवित भाव से तो मरा नहीं जा सकता । (किस प्रकार जीवित भाव से मरा जाय) ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(उस दरवाजे का पता गुरु नानक देव इस प्रकार बतलाते हैं)—दुःख तो दरवाजा है, रोष—क्रोध (उस दुःख के दरवाजे का) रक्षक—प्रहरी है ; आशा और चिन्ता के दो किवाड़े (पट) जड़े हुए हैं । माया के जल की (अगाध) खाई है और पानी में घर बनाया है । (इन सब कठिनाइयों के लङ्घने के पश्चात् परमात्मा) सत्य के आसन पर (विराजमान) (दिखलाई पड़ता) है ॥ २ ॥

(हे प्रभु), (तेरे) कितने नाम हैं, उनका अन्त नहीं जाना जाता, (अर्थात् तेरे अन्त नाम हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती) । हे हरी, तेरे समान (और कोई) दूसरा नहीं है । (मनुष्य अपने को) ऊँचा न कहे, वह अपने मन में (अन्तर्मुखी वृत्ति में) स्थित रहे ; जो कुछ (वह) करता है, उसे आप ही जानता है ॥ ३ ॥

जब तक (मन में) आशा और चिन्ता है, तब तक (भला बताओ मनुष्य) एक (हरी) को किस प्रकार कह सकता है, (स्मरण कर सकता है) ? हे नानक, (जब

मनुष्य) भन्तःकरण से आशाओं के प्रति निराश हो जाता है, तभी उसे एक (हरी) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इस प्रकार (संसार रूपी) समुद्र को तरा जाता है और इसी (विधि से) जीवित भाव से मरा जाना है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दूजा ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

सुरति सबदु साखी मेरी सिडी बाजै लोक सुरे ।

पनु भोली मंगल कै ताई भोखिआ नामु पड़े ॥१॥

बाबा गोरख जाये ।

गोरख सो जिन मोड़ उठालो करते बार न लागै ॥१॥ रहाउ ॥

पाणी प्राण पवरि बंधि राखे चंदु सूरजु मुखि दीए ।

मरण जीवण कउ धरती दोनो एते गुण विसरे ॥२॥

तिथ साधिक अरु योगी जंगम पीर पुरस बहुतेरे ।

जे तिन मिला त कोरनि आखा ता मनु सेव करे ॥३॥

कागड लुगु रहै घून संगे पाणी कमल रहै ।

ऐसे भगत मिलहि जन नानक तिन जसु किआ करे ॥४॥४॥

(गुरु नानक देव ने इस शब्द में बताया है कि वास्तविक योगी कौन है) । गुरु की शिक्षा मेरे लिए शृङ्गी बाबा का बजना है और (वही शिक्षा) मेरे लिए सुरति तथा शब्द है । (क्योंकि मेरी सुरति में वह शब्द टिकता है) , और लोग इस नाद को गुनते हैं । प्रतिष्ठा अथवा इज्जत ही मार्गने के लिए भोली है (और उस भोली में) नाम की भीख पड़ती है ॥ १ ॥

हे बाबा, वह गोरख (परमात्मा) जागती ज्योति है । गोरख (परमात्मा) वही है, जिसने (समस्त) पृथ्वी को उठा रक्खी है (धाम् रक्खी है) , (परमात्मा को सृष्टि-रचना) करने में (तनिक भी) देर नहीं लगती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(उसी प्रभु ने) प्राणों को पवन और जल आदि से बंध रक्खा है , चंद्रमा और सूर्य दो मुख्य (बड़े) दीपक दिए हैं । (प्राणियों के) मरने और जीने के लिए इस धरती का निर्माण किया है ; (फिर भी प्राणी) इन सभी उपकारों को भूल जाता है ॥ २ ॥

(बड़े बड़े) सिद्ध, साधक, योगी, जंगम, पीर तथा अन्य बड़े बड़े पुरुषो—जिनके साथ भी मैं मिलूँ हरि की कीर्ति कहूँगा , (मैं किसी सम्प्रदाय अथवा वर्ग विशेष से सम्बन्धित नहीं हूँ, सभी मेरे हैं और सभी की मैं) मन से सेवा करता हूँ ॥ ३ ॥

कागज और नमक भी के साथ होने से निर्लेप रहते हैं और कमल भी पानी में निर्लेप रहता है ; उसी प्रकार भक्त भी सबसे मिलते हैं, (किन्तु) उनका यम क्या बिगाड़ सकता है ? ४ ॥ ४ ॥

[५]

सुखि माछिद्रा नानकु बोलै । वसगति पंच करे नह डोलै ॥
 ऐसी जुगति जोग कउ पाले । आपि तरै सगले कुल तारे ॥१॥
 सो अउभूत ऐसी मति पावै । अहिनिशि सुन समाधि समावै ॥१॥ रहाउ ॥
 भिखिआ भाइ भगति भै चले । होवै सु तृपति संतोखि अमुले ॥
 धिआन रुपि होइ आसणु पावै । सचि नामि ताड़ी चितु लावै ॥२॥
 नानकु बोलै अमृत बाणी । सुखि माछिद्रा अउधू नीसारी ।
 आसा माहि निरासु बलाए । निश्चउ नानक करते पाए ॥३॥
 प्रणवति नानकु अगमु सुणाए । गुर जेले की संधि मिलाए ।
 दोखिआ दाह भोजनु खाइ । छिअ दरसन की सोभी पाइ ॥४॥५॥

विशेष : यह और इसके साथ के दो शब्द गोरख-हठडी के योगियों के प्रति उच्चारण किये गए हैं ।

अर्थ : नानक कहता है, हे मत्स्येन्द्रनाथ मुनी । (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार)—इन पांचों को वश में करो और अपने आसन से (तनिक भी) न विचलित हो । इस प्रकार की युक्ति से योग कमाओ, (जिससे) स्वयं भी तर जावो और अपने समस्त कुल को भी तार दो ॥ १ ॥

वही अवभूत ऐसी बुद्धि पाता है कि अहिनिश शून्य समाधि—निर्विकल्प समाधि—अफुर समाधि में लीन रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(योगी की वास्तविक) भिक्षा यह है कि (वह) भक्ति-भाव और भय में चले । अमृत्य संतोष (वत को धारण करना ही) (योगी की सच्ची) तृप्ति है । (हरी का) ध्यान रूप हो जाना ही (यही योगी का सच्चा) आसन है । सत्य नाम चित में लगाना ही (यही योगी का) ताड़ी—ध्यान लगाना है ॥ २ ॥

नानक अमृत बाणी बोलता है, ऐ मत्स्येन्द्रनाथ, अवभूतो की निशानी मुनी—(योगी) आशा में निराश होकर (अपनी आयु) व्यतीत करे । हे नानक, (इस प्रकार का योगी) निश्चय ही कर्त्ता-पुरुष को पाता है ॥ ३ ॥

नानक विनयपूर्वक बड़ी गुप्त बात सुनाता है—वह ईश्वर और जीव की सन्धि—मिलाप (की युक्ति बताता है) । (साधक) (गुरु के) उद्देश को प्रीति और भोजन (बना कर) खाये । (इससे) छः शास्त्रो—(वेदान्त (उत्तर मीमांसा), पूर्व मीमांसा, न्याय, योग, वैशेषिक एवं सांख्य)—सभी की समझ आ जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

हम डोलत बेड़ी पाप भरी है पत्रु लगे मतु जाई ।
 सनमुख सिध भेटन कउ आए निहवउ बेहि बडिआई ॥१॥
 गुर तारि तारणहारिआ ।
 बेहि भगति पूरन अविनासी हउ तुभ कउ बलिहारिआ ॥१॥ रहाउ ॥

सिध साधक जोगी ग्रन्थ जंगम एकु सिधु जिनो धियाइया ।

परसत पेर सिधत ते सुधामी अखरु जिन कउ आइया ॥२॥

जप तप संजम करम न जाना नामु जपी प्रभ तेरा ।

गुरु परमेश्वर नानक भेटिओ सावै सबवि निबेरा ॥३॥६॥

हमारी (जीवन की) नौका पापो (के भार से) भरी हुई है, (अतएव) डगमगा रही है, (भय यह लग रहा है कि) हवा लगने से कहो यह डूब न जाय । (हे परमात्मा), सामने सिद्धगण मिलने के लिए आए हैं, हमे निश्चय ही मिलने का मान प्रदान (कर) ॥ १ ॥

हे तारनेवाले गुरु (मुझे) तार दे । हे पूर्ण, अविनाशी (परमात्मा) मुझे भक्ति प्रदान कर, मैं तुझ पर बलिहारी हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वे ही (वास्तविक) सिद्ध, साधक, योगी और जंगम है, जिन्होंने एक सिद्ध (परमात्मा) का ध्यान किया है । वे स्वामी (हरी) के चरण-स्पर्श करते ही सिद्ध (सफल) हो गए हैं, जिन्हें अक्षर (गुरु-उपदेश) प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

(हे प्रभु), मैं जप, तप, संयम, कर्म (कुछ भी) नहीं जानता, (केवल) तेरा नाम (मात्र) जपता हूँ । नानक ने गुरु (रूपी) परमेश्वर का साक्षात्कार कर लिया है (और उसके) सच्चे शब्द के द्वारा छुटकारा प्राप्त हो गया है ॥ ३ ॥ ६ ॥

[७]

सुरती सुरति रलाईऐ एतु । तनु करि तुलहा लंघहि जेतु ॥

अंतरि भाहि तिसै तू रखु । अहिनिश दीवा बले अथकु ॥१॥

ऐसा दीवा नीरि तराइ । जितु दीवै सभ सोभी पाइ ॥१॥रहाउ॥

हछी मिटी सोभी होइ । ता का कोआ मानं सोइ ॥

करणी ते करि चकहू ढालि । एयै ओयै निबही नालि ॥२॥

आपे नदरि करे जा सोइ । गुरमुखि बिरला बूझै कोइ ॥

तितु घटि दीवा निहचलु होइ ॥

पाणी मरै न बुझाइया जाइ । ऐसा दीवा नीरि तराइ ॥३॥

ढोलै वाउ न बडा होइ । जापै जित सिधासलि लोइ ॥

खत्रो ब्राह्मणु सूडु कि वैसु । निरति न पाईया गणी सहंस ॥

ऐसा दीवा बाले कोइ । नानक तो पारंगति होइ ॥४॥७॥

सभी ज्ञानों के स्वामी (परमात्मा के साथ) इस प्रकार सुरति लगाइए—(अपने) इस शरीर को नौका बनाइए—जिससे तर जाइए । (तेरे) अन्तर्गत तृष्णा की अग्नि है, (उसे) तू रोक रख । अहिनिश (ज्ञान का) अखण्ड दीपक (हृदय के अन्तर्गत) जले ॥ १ ॥

ऐसा (ज्ञान रूपी) दीपक (हृदय रूपी) नीर में (प्रज्वलित करो) कि जिसके प्रकाश से सभी को ज्ञान प्राप्त हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अच्छे विचार ही इस दीपक के लिए मिट्टी हो । इस प्रकार की मिट्टी के बने हुए दीपक को परमात्मा प्रामाणिक मानता है । शुभ करणी के चार पर उम मिट्टी का डालो । (इस प्रकार के दीपक तैयार होने से) यहाँ (इस लोक) और वहाँ (परलोक) दोनों के साथ निर्वाह होता है ॥ १ ॥

(परमात्मा) जब स्वयं ही कृपादर्शित करता है, (तब) गुरु की कृपा द्वारा कोई विरला (इस रस्य का) सम्भूता है और तब उसके घट में (ज्ञान के) दीपक का निश्चल (प्रकाश) होता है । (ऐसे ज्ञान का दीपक) पानी में मरता (डूबता) नहीं ; (उसकी अक्षण्ड ज्योति जलती रहती है, कभी) बुझती नहीं । ऐसा दीपक पानी में भी तैरता रहता है ॥ ३ ॥

(इस दीपक का) वायु हिला नहीं सकती और न वह बुझता ही है । (इस दीपक के) प्रकाश में (परमात्मा इस प्रकार) दिखाई पड़ता है (जैसे वह हृदा रणी) महासन पर विराजमान है । क्षत्रियो, ब्राह्मणों, मंत्री अथवा वैश्यो आदि ने (उम दीपक के निर्माण के लिए) हजारों सिद्धियों की, पर उम का निर्माण (कामना) (वे) न पा सके । नानक कहते हैं कि जो कोई व्यक्ति उम प्रकार (ज्ञान का दीपक आने अन्तःकरण में) जपाना है, वही पारगत होता है ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

तुधनो निबलु मंनसु तेरा नाउ । सलु भेट बैसल कउ थाउ ॥

सलु संतोखु होवै अरदासि । ता सुखि सदि बहाले पासि ॥१॥

नानक बिरथा कोइ न होइ । ऐसी दरगह साबा सोइ ॥१॥रहाउ॥

प्रापति पोता करमु पसाउ । तू देवहि मगत जन चाउ ॥

भाडै भाउ पवै तितु आइ । धुरि तै छोडी कीमति पाइ ॥२॥

जिनि किलु कीआ सो किलु करै । अपनी कीमति आवे धरै ॥

गुरमुखि परगटु होआ हरिराइ । ना को आवै ना को जाइ ॥३॥

लोक धिकार कहै मंगत जन मागत मानु न पाइआ ।

सह कीआ गला दर कीआ बाता तै ता कहलु कहाइआ ॥४॥८॥

तुम्हारा नाम मानना तुम्हसे विनम्र होना है । सत्य की भेट देनी होती है, जिससे बैठने का स्थान मिलता है, (यदि) सत्य और सन्तोष की प्रार्थना की जाय, (तो) उसे गुन कर (परमात्मा) सदैव (अपने) पास बैठा लेता है ॥ १ ॥

हे नानक, वह सच्चा (परमात्मा) ऐसा है और उसका दरबार ऐसा है कि वहाँ कोई प्राणी व्यर्थ नहीं गिना जाता (परमात्मा के दरबार में प्रत्येक जीव की थोड़ी सी थोड़ी कमाई की गणना की जाती है और उसका उसे पुरस्कार मिलता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(परमात्मा के यहाँ) कृपा और दान का आण्डार प्राप्त होता है । मुक्त याचक के मन में यही उमंग है कि तू यह दान (मुझे) दे । हृदय रूपी पात्र में प्रेम (अक्षरमात्र ही) आ पड़ता है । यह कीमत तू ने असल (परमात्मा) से ही पाई है ॥ २ ॥

जिस (प्रभु ने सब) कुछ किया है, वही (सब) कुछ करता भी है । वह अपनी कीमत आप ही जानता है, (दूसरा कोई भी उसकी कीमत नहीं जान सकता) । गुरु की शिक्षा द्वारा राजा हरी हृदय में प्रकट हुआ है । (वह निश्चल है), न तो कहीं आता है और न कहीं जाता है ॥ ३ ॥

लोग याचको (मँगतो) को धिक्कारते हैं और कहते हैं कि याचक-जनों को कभी मान नहीं मिला करता । पर मैं कहता हूँ कि (ये पारमार्थिक बातें) तू ने आप ही मुझसे कहा-लाया है, (अतएव मैं धिक्कार का पात्र नहीं हो सकता हूँ) ॥ ४ ॥ ८ ॥

[६]

सागर महि बूंद बूंद महि सागरु कवणु बुझै विधि जाएँ ।

उतभुज चलत आपि करि चीनै आपे ततु पछाएँ ॥१॥

ऐसा मिश्रानु बीचारै कोई । तिसते मुक्ति परमगति होई ॥१॥ रहाउ ॥

दिन महि रेरिण रेरिण महि दिनीअरु उसन सीत बिधि सोई ।

ताकी गति मिनि अवरु न जाएँ गुर बिनु सभक न होई ॥२॥

पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बुझहु ब्रह्म गिआनी ।

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी ॥३॥

मन महि जोति जोति महि मनूआ पंच मिले गुर भाई ।

नानक तिन कै सदि बलिहारी जिन एक सबदि लिख लाई ॥४॥६॥

जो जीवन की युक्ति को जानता हो, वही इस (परम रहस्य को समझ सकता है कि) समुद्र में बूंद है और बूंद में समुद्र है, (अर्थात्) (परमात्मा में जीवात्मा है और जीवात्मा में परमात्मा है) । उद्भिज तथा जंगम (चलते हुए) की रचना आप ही करके आप ही (उन्हें) पहुँचाना है तथा आप ही (उनका) भेद समझना है ॥ १ ॥

(जब) कोई इस प्रकार का ज्ञान विचार करता है, (तभी) उस (ज्ञान) में मुक्ति-परम गति (प्राप्त) होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

दिन में रात और रात में सूर्य, इसी प्रकार उष्णता में शीत (और शीत में उष्णता व्याप्त हैं) । (उस प्रभु की) गति-मिति अन्य कोई नहीं समझ सकता, गुरु के बिना इसकी समझ नहीं हो सकती ॥ २ ॥

पुरुष (के वीर्य में) नारी और नारी (के रज एवं उदर से) पुरुष (उत्पन्न होते हैं); ऐ ब्रह्मज्ञानी (परमात्मा के इस विचित्र रहस्य को) समझने की (चेष्टा) करो । गुरु-शब्द की ऐसी अकथनीय कहानी है कि शब्द की ध्वनि उठते ही ध्यान लग जाता है और ध्यान लगते ही (परमात्मा का) ज्ञान हो जाता है । (तात्पर्य यह है कि अन्य साधनों में उच्चारण, ध्यान और ज्ञान की तीन पृथक्-पृथक् अवस्थाएँ हैं, जो बड़े परिश्रम से प्राप्त होती हैं । पर गुरु-शब्द की कलाई से तीनों अवस्थाएँ एक साथ मिल जाती हैं) ॥ ३ ॥

मन में (परमात्मा की) ज्योति है और (परमात्मा की) ज्योति में मन है, पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर (एकाग्रता प्राप्त कर) गुरु-भाई के सङ्ग (मिश्रित) हो गई हैं । हे नानक,

(मैं) उन पर सदैव बलिहारी होता है, जिन्होंने एक शब्द—नाम में (अपना) एकनिष्ठ ध्यान (लिये) लगाया है ॥४॥१॥

[१०]

जा हरि प्रभि किरपाधारी । ता हजमै बिचहु मारी ॥
 सो सेवकि राम पिमारी । जो गुरसबरी बीचारी ॥१॥
 सो हरि जनु हरि प्रभ भावै ॥
 अहिनिशि भगति करे दिनु राती लाज छोड़ि हरि के गुण गावै ॥१॥रहाउ॥
 सुनि बाजे अनह्व घोरा । मनु मानिआ हरि रसि मोरा ॥
 गुर पुरै सतु समाइआ । गुरु आदि पुरलु हरि पाइआ ॥२॥
 सभि नाव वेद गुरुवाणी । मन राता सारिगपाणी ॥
 तह तीरथ बरत तप सारे । गुर मिलिआ हरि निसतारे ॥३॥
 जह आपु गइआ भउ भागा । गुर चरणी सेवकु लागा ॥
 गुरि सतगुरि भरमु चुकाइआ । कहु नानक सबदु मिलाइआ ॥४॥१०॥

जब प्रभु हरी ने कृपा कर दी है, तो भीतर से अहंकार को मार दिया है । वही सेविका राम की सच्ची प्यारी है, जिसने गुरु के शब्द पर (भलीभाँति) विचार किया है ॥ १ ॥

वही हरि-भक्त प्रभु हरी को अच्छा लगता है, जो अहिनिश, दिन-रात (प्रभु की) भक्ति करता है और लज्जा त्याग कर हरि का गुणगान करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अनाहत की धनधोर ध्वनि बजने लगी । हरि-रस से मेरा मन मान गया (शान्त हो गया) । पूर्ण गुरु द्वारा (मेरे अन्तर्गत) सत्य (परमात्मा) समा गया (व्याप्त हो गया) । गुरु द्वारा आदि पुरुष हरी को पा लिया ॥ २ ॥

गुरुवाणी ही नाद है और गुरुवाणी ही वेद है । (मेरा) मन परमात्मा (सारङ्ग पालि) में अनुरक्त हो गया है । (उसी हरी में) समस्त तीर्थ, व्रत, और तप है । गुरु के मिलने पर हरि (मिला) और (उसने) विस्तार कर दिया ॥ ३ ॥

जहाँ आपापन नष्ट हो गया, (वहाँ) भय दूर हो गया, सेवक गुरु के चरणों में लग गया । सद्गुरु ने भ्रम दूर कर दिया । नानक कहता है (कि गुरु ने शिष्य को शब्द से) मिला दिया ॥ ४ ॥ १० ॥

[११]

छावन भोजनु मागतु भागै । लुधिआ दुसट जलै दुलु आगै ॥
 गुरमति नही लीनी दुरमति पति खोई । गुरमति भगति पावै जन कोई ॥१॥
 जोगी जुगति सहज घरि वासै ।
 एक हुसति एको करि देखिआ भौलिआ भाइ सबदि गुपतासै ॥१॥रहाउ॥

पंच बैल गड़ीआ देह धारी रामकला निबहै पति सारी ॥
 घर तूटी गाड़ी सिर भारि । लकरी बिखरि जरी मंभ भारि ॥२॥
 गुर का सबहु बीचारि जोगी । दुख सुख सम करणा सोग बिभोगी ॥
 भुगति नामु गुर सबदि बीवारी । असबिह कंधु जपै निरंकारी ॥३॥
 सहज जगोटा बंधन ते छूटा । काम क्रोधु गुर सबदी लूटा ॥
 मन महि मुंडा हरि गुर सरणा । नानक राम भगति जन तरणा ॥४॥११॥

(योगी) भोजन और वस्त्र के लिए माँगना किरना है । (वह यज्ञ) दुष्ट भूख में जलता रहता है और भविष्य में (जन्म-मरण के) दुःख के रूप में जलता है । (उस अभाग्य ने) गुरु की शिक्षा नहीं ग्रहण की (और अपनी) दुर्बुद्धि द्वारा प्रतिष्ठा गंवा दी । कोई (विरला ही) व्यक्ति गुरु की बुद्धि द्वारा भक्ति प्राप्त करता है ॥ १ ॥

(सच्चे) योगी की युक्ति यह है कि वह सहजावस्था के गृह में निवास करता है । वह एक दृष्टि से एक (परमात्मा) को सर्वा में देखता है, उसकी भिक्षा (यह) है (कि) वह प्रेम से शब्द (नाम) द्वारा तृप्त होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पंच ज्ञानेन्द्रियाँ बैल (होकर) (इस) शरीर (रूपी) गाड़ी को चलाती हैं । राम की शक्ति से सारी प्रतिष्ठा का निर्वाह होता जाता है । जब (नाम रूपी) गाड़ी का धुरा टूट जाता है, (तो शरीर रूपी) गाड़ी मिर के बल बह जाती है और गाड़ी की सारी लकड़ियाँ अपने भार से बिखर कर जल जाती हैं ॥ २ ॥

हे योगी, गुरु के शब्द पर विचार करो । तुल्य, सुख, शोक और वियोग को एक समान समझो । (योगियों का) भोजन नाम हो, जो गुरु के शब्द के विचार द्वारा (प्राप्त हुआ हो) । (योगी) स्थिर शरीर से निरतारो परमात्मा का जप करे (इससे जीवन स्थिर हो जायगा) ॥ ३ ॥

(हे योगी), सहजावस्था का लंगोटा (बांध), (ज़िम्मे व सासारिक) बंधनों से छूट जाय । गुरु के शब्द द्वारा काम क्रोध को लुटा दे (समाप्त कर दे) । गुरु की शरण में हो कर हरी को मन में बसाना (यहो तेरी) मुद्रा हो । हे नानक, राम को भक्ति से ही भक्तगण तरते हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रामकली, महला १

असटपदीआं

[१]

सोई चंडु चड़हि से तारे सोई दिनोअर तपत रहै ।

सा धरती सो पउरु झुलारे जुग जीअ खेले थाव कैसे ॥१॥

जीवन तलब निबारि ।

होवै परबाणा करहि धिडारणा कलि लखण बीचारि ॥१॥रहाउ॥

किते बेसि न आइअः सुणीऐ तीरथ पासि न बैठा ।

बाता बानु करहि तः नाही महलि उसारि न बैठा ॥२॥

जे को सतु करे सो छोजे तप धरि तनु न होई ।
 जे को नाउ लए बसनाबी कलि के लखए एई ॥३॥
 जिसु सिकदारी तिसहि खुमारी चाकर केहे डरणा ।
 जा सिकदरै पवै अंजीरी ता चाकर हबहु मरणा ॥४॥
 आसु गुणा कलि आईरे ।
 निहु जुग केरा रहिआ तपावसु जे गुण देहि त पाईऐ ॥१॥रहाउ॥
 कलि कलवाली सरा निबेड़ी काजी कृसना होआ ।
 बाणी ब्रह्मा वेनु अबरबलु करणी कीरति लहिआ ॥५॥
 पति बिरु पूजा सत बिरु संजम जत बिरु काहे जनेऊ ।
 नाबहु धोवहु तिलक चडाइहु सुच बिरु सोच न होई ॥६॥
 कलि परवारु कतेब पुरारु । पोथी पंडित रहे पुरारु ॥
 नानक नाउ भइआ रहमारु । करि करत। तू एको जायु ॥७॥
 नानक नामु मिलै बडिआई । एबू ऊपरि करमु नही ॥
 जे धरि होदे मंगलि जाईऐ । किरि श्रोतामा मिलै तही ॥८॥१॥

विशेष : कहते हैं कि एक बार गुरु नानक देव जी एक तीर्थ में गए । मरदाने ने पूछा, “लोग तीर्थों में भी क्या पाप करते हैं ?” पास के एक पंडित ने उत्तर दिया, “कलियुग आया हुआ है । इसी कारण धर्म की शानि हो गई है ।” इस पर गुरु नानक देव जी ने समझाया, “कलियुग तो अपना ही स्वभाव है, जिसके अनुसार हम पाप करते हैं । हर युग में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा एक समान चल रहे हैं । फिर यह मानने की क्या आवश्यकता है कि मनुष्यों में कोई विशेष युग बरतता है ? अतएव जब हम शुभ कर्म करें, तभी सत्ययुग है और बुरा कर्म करे तो कलियुग ।”

अर्थ : वही चन्द्रमा (आकाश) में चढ़ा है और वही तारागण भी (दिखाई पड़ते हैं), वही सूर्य भी (पृथ्वी पर) तपता है । वही पृथ्वी स्थित है, वही पवन झूलता है, (फिर) युग जीवों के बीच खेलता है (बरतता है)—इस बात को मानने का स्थान कैसे हो सकता है ? (तात्पर्य यह कि इस बात के मानने का कोई भी गुनाहिन नहीं कि युगों का प्रभाव मनुष्यों के स्वभाव पर पड़ता है) ॥ १ ॥

जीवन की इच्छाओं को दूर करो, (कलियुग आप ही दूर हो जायगा) । जो यहाँ घोषाधीनी करता है, वही प्रामाणिक समझा जाता है—यही कलियुग का लक्षण है; इसे विचार करो—समझो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यह कभी नहीं सुना (कि कलियुग) फलाने (अमुक) देश में आया था अथवा अमुक तीर्थस्थान में बैठा देखा गया था । जहाँ कोई दाना दान करता है वहाँ भी (कलियुग) नहीं (बैठा) देखा गया न कहीं महल ही बना कर बैठा दिखाई पड़ रहा है ॥ २ ॥

(कलियुग के) लक्षण यह हैं कि जो कोई सत-धर्म करे वह छीजता है (नष्ट होता है) तप करनेवालों के घर में तप पूरा नहीं होता है; जो कोई (हरी का) नाम ले (उसकी) बदनामी होती है, ये ही कलियुग के लक्षण हैं ॥ ३ ॥

जिसे सरदारी मिली होती है, उसी की अप्रतिष्ठा (बेइज्जती) होती है, (भला) नौकरों को किसका डर है ? जब भी सरदारों (के पैरो में) जंजीरें पड़ती हैं, तो (वे) नौकरो के ही हाथ मरते हैं (तात्पर्य यह है कि नौकर कृतज्ञता के स्थान पर कृतघ्नता करते हैं और स्वामियों को टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं) ॥ ४ ॥

(हरी का) गुण गान करो, (क्योंकि) कलियुग आया है । पहिले तीनो युगो का स्वायम्भुव नष्ट हो गया है, यदि (तू अपने) गुणों को दे, (तो उसके बदले में नाम को) पाले (और नाम ही इस युग का प्रमुख सार है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

इस कलह (दुःख वाले) कलियुग में फौसला शर्मा (मुसलमानों की धार्मिक पुस्तक) करती है (और नीला बख्श पहन कर) काजी ही कृष्ण बना हुआ है । आजकल की बाणी क्या है ? ब्रह्मा का अथर्वण वेद । किन्तु अमल में क्या आ रहा है ? हरि की कीर्ति (यश) ॥५॥

बिना प्रतीति के पूजा किस काम की ? बिना सत्य के संयम किस काम का ? और बिना पवित्रता के जनेऊ किस काम का ? नहाते हो, धोते हो, तिलक लगाते हो, किन्तु (आन्तरिक) पवित्रता के बिना पवित्रता कैसे आ सकती है ? ॥ ६ ॥

कलियुग में कुरान ही प्रामाणिक ग्रंथ है । पोथी, पंडित और पुराण दूर हो गए हैं (नहीं माने जाते) । हे नानक, (इस युग में परमात्मा का नाम भी) 'रहमान' पड़ गया है । (हे भाई), तू उस कर्त्ते को (सभी समय) एक करके समझ ॥ ७ ॥

हे नानक, नाम से ही बड़ाई प्राप्त होती है, इससे बढ़ कर कोई भी कर्म नहीं है । यदि (कोई वस्तु) घर में होते हुए (बाहर) मंगने जाइए, तो फिर वहाँ उलाहना ही मिलता है; (तात्पर्य यह कि परमात्मा तेरे भीतर ही है तू बाहर क्यों भटकता फिरता है) ? ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

जगु परबोधहि मझी बधावहि । आसगु तिम्रागि काहे सनु पावहि ॥

ममता मोहु कामणि हितकारी । ना अउधृती ना संसारी ॥१॥

जोगी बैसि रहहु दुखिधा दुखु भाये । घरि घरि मागत लाज न लागै ॥१॥रहाउ॥

गावहि गीत न चीनहि आपु । किउ लागी निबरे परतापु ॥

गुर कै सबदि रचे मन भाइ । भिखिआ सहज बोचारी खाइ ॥२॥

भसम चड़ाइ करहि पाखंड । माइआ मोहु सहहि जम डंडु ॥

फूटै खापरु भोख न भाइ । बंवनि बाधिआ आवै जाइ ॥३॥

बिदु न राखहि जती कहावहि । माई मागत अै लोभावहि ॥

निशबदआ नही जोति उजाला । बूडत बूडे सरब जंजाला ॥४॥

भेख करहि लिखा बहु यदूआ । झूठो लेखु लेखै बहु नदूआ ॥

अंतरि अगनि जिना बहु जारे । विगु करमा कैसे उतरसि पारे ॥५॥

सुंद्रा फटक बनाई कानि । मुकति नही बिधिआ बिगिआनि ॥

जिहवा इ'त्री सादि सुभाना । पसु भए नही भिटै नीसाना ॥६॥

त्रिविधि लोग। त्रिविधि जोग। सबहु बीचारे चूकसि सोग ॥

ऊजल सातु सु सबहु होइ। जोगी जुगति बीचारे सोइ ॥७॥

तुभू पहि नउनिधि तू करणै जोगु। थापि उथाये करे सु होसु ॥

जतु सतु संजसु सतु सु चीतु। नानक जोगी त्रिभवण सीतु ॥८॥२॥

(हे योगी), तू जगत् को तो उपदेश देता है, किन्तु (अपने) पेट-भुजा के निमित्त) मठ बनाता है। (स्वयं तो) झडोलता के आसन को त्याग बैठा है, भला सत्य कैसे पा सकता है ? तू ममता, मोह और स्त्री का प्रेमी है। तू न तो त्यागी है और न संसारी ही है, (संशय के झूले में झूल रहा है। इस लोक को तो नष्ट ही कर चुका है, परलोक भी नष्ट कर रहा है) ॥ १ ॥

हे योगी, (अपने स्वरूप में) स्थिर हो जाओ, (जिससे तेरे) द्वैतभाव और दुःख दूर हो जायें। (हे योगी), तुझे घर घर में मांगते हुए लज्जा नहीं लगती ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू अलख निरंजन का) गीत तो गाता है, किन्तु अपने (वास्तविक) स्वरूप को नहीं पहचानता। तेरा लगा हुआ परिताप (दुःख) किस प्रकार दूर हो ? (हे योगी), गुरु के शब्दों में (अपने मन को प्रेम से अनुरक्त कर (साथ ही) सहजावस्था की भिक्षा विचारपूर्वक खा ॥ २ ॥

(तू) भस्म (विभूति) लगा कर पाखण्ड करता है; माया और मोह में पड़ कर यमराज के डंडे सहता है। (तेरा हृदय रूपी) खप्पर फूट गया है, (जिससे) भाव रूपी भिक्षा (उसमें) नहीं आती। (तू) (माया के) बंधनों में बाँधा जा कर (इस संसार-चक्र में) आता-जाता रहता है ॥ २ ॥

(तू) वीर्य की तो रक्षा नहीं करता, (फिर भी) यती कहलाता है। तीनों गुणों में लुब्ध होकर माया माँगता है। (तू) दया-रहित है, (अतएव परमात्मा की) ज्योति का प्रकाश (तेरे अन्तःकरण में नहीं होता)। (तू) नाना प्रकार के (सासारिक) जंजालों में डूबा हुआ है ॥ ४ ॥

(तू नाना प्रकार के) वेश बनाता है, और बहुत प्रकार के कथे साजता है। मदारी की भाँति अनेक प्रकार के झूठे खेलों को खेलता है। (तेरे) हृदय में जितनी की आग्नि वड़े वेग से प्रज्वलित हो रही है। जितना (शुभ) कर्मों के (संसार-सागर से) (तू) कैसे पार उतर सकता है ? ॥ ५ ॥

कानो में स्फटिक (विलौर) की मुद्रा पहनता है। (हे योगी, तू मन में अच्छी तरह से समझ ले कि) विद्या और विज्ञान से मुक्ति नहीं (प्राप्त हो सकती)। (तू) जीभ तथा (अन्य) इन्द्रियों के स्वाद में लुब्ध हुआ है। (इस कारण तू) पशु हो गया है (और आज तक भी इसका) चिह्न नहीं मिट रहा है ॥ ६ ॥

(सासारिक) लोगों की भाँति योगीगण भी त्रिगुणात्मक माया में ग्रसे रहते हैं। (जो योगी गुरु के) शब्द को विचारता है, (उसी का) शोक दूर होता है, (क्योंकि) वह शब्द उज्ज्वल (पवित्र) और सच्चा होता है। ऐसा ही योगी योग की (वास्तविक) युक्ति पहचानता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), तेरे ही पास नौ निधियाँ हैं—[नवनिधियाँ निम्नलिखित हैं—१ पद्म (सोना चाँदा), २ महा पद्म (होरे-जवाहर), ३ शस्त्र (मुन्दर गुदर भोजन और वस्त्र), ४ मकर (शस्त्रविद्या की प्राप्ति और राज-दरबार में सम्मान), ५ कच्छप (कपड़े और अन्न की गोदागरी), ६ कुन्द (सोने का व्यापार), ७ नील (मोती मूँगे का व्यापार) ८ मुकद (राग आदि तलिन कलाओं की प्राप्ति), ९ खर्व ।] तू ही आराधना करने योग्य है । (तू ही) निर्माण करता है, (और फिर) ढाहता है (नष्ट करता है), और जो करता है, वहीं होता है । हे नानक, (जिस योग में) यत, सत, संयम, सत्य और गुन्दर चित्त है, वह योगी ताना लोको का मित्र है ॥८॥ २॥

[३]

खट्ट मट्ट बेरी मनु बैरागी । सुरति सबदु धुनि अंतरि जागी ।
बाज अनहु मेरा मनु लोणा । गुरवचनी सचि नामि पतोणा ॥१॥
प्राणी राम भगति सुबु पाईऐ ।
गुरमुखि हरि हरि मोठा लागै हरि हरि नामि समीऐ ॥१॥रहाउ॥
माइआ मोटु विवरजि समाए । सति गुरु भेटे मेलि मिलाए ॥
नामु रतनु निरमोलकु होरा । तिनु राना मेरा मनु धोरा ॥२॥
हुउमै ममता रोगु न लागै । राम भगति जम का भउ भागै ।
जमु जंदाह न लागै मोहि । निरमल नामु रिदै हरि मोहि ॥३॥
सबदु बीचारि भए निरंकारी । गुरमति जागे दुरमति परहारी ॥
अनदिनु जागि रहे तिव लाई । जीवन मुकति गति अंतरि पाई ॥४॥
अलिपत गुफा महि रहि निररे । तमकर पंच सबदे मंधारे ॥
परघर जाइ न मजु डोलाए । सहज निरंतरि रहउ समए ॥५॥
गुरमुखि जागि रहे अउधारा । मद बैरागी तनु परोत ॥
जगु नूना गरि आवै जाइ । त्रिगुर गवदन सोभी पाइ ॥६॥
अनदु सबदु चजे दिनु रानी । अविगत की गति गुरमुखि जाती ॥
तजु जानी जा सबदि पछानी । एको रवि रहिआ निरबानी ॥७॥
सुन लभाधि सहज मजु राता । तजि हउ लोभा एको जाना ।
गुर चेतै अपना मजु मानिआ । नानक बूजा भेटि समानिआ ॥ ८ ॥३॥

पट-चक्रों वाला देह रूपी मठ है, (उसमें रहनेवाला) बैराग्यवान् मन है, उसके अन्तर्गत आत्मिक ज्ञानवाला शब्द गूँज रहा है । यही सुरति की उठती ध्वनि (समझो) । अनाम शब्द बज रहा है, मेरा मन उसमें लीन हो गया है । गुरु के उपदेश से (मेरा मन) सत्य नाम में मान गया ।

विशेष : [योग के अनुसार शरीर के छः चक्र माने जाते हैं—जिन्हें श्वास लोंघ कर दशम द्वार तक पहुँचता है । छः चक्र निम्नलिखित हैं—१ मूलाधार (गुदा-मण्डल का चक्र)

२ स्वाधिष्ठान (लिङ्ग के मूल में स्थित), ३ मणिपुर (नाभि-मण्डल में स्थित), ४ अनाहत (हृदय में स्थित), ५ बिबुद्ध (कण्ठ में स्थित), ६ अज्ञा चक्र (दोनों भौहों के मध्य में स्थित)] ॥ १ ॥

हे प्राणी, राम की भक्ति द्वारा मुख प्राप्त कर । गुरु की शिक्षा द्वारा तुझे 'हरि हरि' (का उच्चारण करना) भीठा लगने लगे और तू हरि नाम में ही समा जा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

माया और मोह को गोक कर / मेरा मन हरी में) समाहित हो गया है । सद्गुरु से मिलने पर हो, (वही परमात्मा से) मिलाव कराता है । नामरत्न रूपी अमूल्य हीरे में मेरा (मन) अनुरक्त हो गया है और उसी में बर टिक गया है ॥ २ ॥

राम की भक्ति में अहंकार और यमता का रोग नहीं लगता और यम का भय भी भग जाता है । मुझे जालिम यमराज भी नहीं लगता, (क्योंकि) हरि का निर्मल नाम (मेरे) हृदय में सुशोभित है ॥ ३ ॥

गुरु के शब्द पर विचार करके (मैं) निरकार (हरी का) हो गया हूँ । दुर्बद्धि का परित्याग करके गुरु की बुद्धि में जग गया हूँ । (मैं) अहंनिश (सदैव) परमात्मा का एकनिष्ठ ध्यान लगा कर जग गया हूँ । (मैंने) जीवन्मुक्ति-अवस्था को (अपने) अन्तःकरण में ही पा ली है ॥ ४ ॥

(मैं) (शरीर की) निर्लिप्त गुफा में निराले भाव से रहता हूँ । (गुरु के) शब्द द्वारा पंच कामादिक चोरो का संहार कर दिया है । दूसरो के घरों में (विषयो में) जा कर मन नहीं डगमगता है (विनमित करता हूँ) । मैं सदैव ही सहजावस्था—तुरीयावस्था—चतुर्थ पद में समाया रहता हूँ ॥ ५ ॥

(जो) गुरु की शिक्षा द्वारा अवधूत (त्यागी) बन कर जगते हैं, (ऐसे साधक) तत्त्व को अपने अन्तर्गत धारण करके सदैव विरागी (बने रहते) हैं । (सारा) जगत् (अज्ञान-निद्रा में) सोया हुआ है और मर कर आना जाता रहता है, बिना गुरु के शब्द के उसे ज्ञान नहीं होता ॥ ६ ॥

अनाहत शब्द (आदिम-मण्डल का मगीत जो बिना बजाए हो बजता रहता है) दिन-रात बजता रहता है । अव्यक्त (हरी) की गति गुरु की शिक्षा द्वारा जान ला गई । जब गुरु का शब्द गढ़वाना जाता है, तब (अव्यक्त हरी का गति) जानी जाती है । (बोध हो जाने पर यही अनुभव होता है कि) एक मात्र निर्लिप्त (हरी) (सर्वत्र) रम रहा है ॥ ७ ॥

शून्य-समाधि (निर्विकल्प समाधि—अगुरु समाधि) में सहज भाव से ही मेरा मन लग गया है । अहंभाव और लोभ को त्याग कर एक (हरी) को जान लिया है । अपना मन गुरु का चेला (हो गया) और मान गया है । हे नानक, वह द्वैतभाव को भेट कर (पूर्ण परमात्मा में) समाहित हो गया है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

साहा गणहि न करहि बीबारु । साहे ऊपरि एकंकारु ॥

जिसु गुरु मिलै सोई विधि जाणै । गुरमति होइ त हुकमु पछाणै ॥१॥

भूढ़ न बोलि पाडे सनु कहोए । हउमै जाइ सबदि घर लहोए ॥१॥रहाउ॥

गणि गणि जोतकु कांडी कीनी । पड़ै सुगायै ततु न चीनी ॥
 सबसैं ऊपरि गुर सबदु बीचारु । होर कथनी बंदन न सगली छारु ॥२॥
 नावहि धोवहि पूजहि सेला । बिनु हरि राते मैलो मैला ॥
 गरबु निवारि मिले प्रभु सारथि । मुक्ति प्राप्ति जपि हरि किरतारथि ॥३॥
 बाचे वादु न बेदु बीचारै । आपि डुबै किड पितरा तारै ॥
 घटि घटि ब्रह्म चीने जनु कोइ । सतिगुर मिलै त सोभी होइ ॥४॥
 गलत गलीऐ सहसा दुखु जोऐ । गुर की सरणि पवै सुखु जोऐ ॥
 करि अपराध सरणि हम आइआ । गुर हरि भेटे पुरबि कमाइआ ॥५॥
 गुर सरणि न आईऐ ब्रह्म न पाईऐ । भरमि भुलाईऐ जनमि मरि आईऐ ॥
 जमदरि बाधउ मरै विकारु । ना रिदै नामु न सबदु अचारु ॥६॥
 इकि पाधे पंडित मिसर कहावहि । दुबिधा राते महलु न पावहि ॥
 जिसु गुर परसादी नामु अधारु । कोटि मधे का जनु आपारु ॥७॥
 एकु बुरा भला सखु एकै । बूझु गिआनी सतगुर की टैकै ॥
 गुरमुखि बिरली एको जाणिआ । आबगु जाणा भेटि समाणिआ ॥८॥
 जिन कै हिरदै एकंकारु । सब गुरी साचा बीचारु ।
 गुर कै भागै करम कमावै । नानक साचे साचि समावै ॥९॥१॥

न तो (हम) शुभ दिन—शुभ मुहूर्त आदि गिनते हैं (और न इन सब का विचार ही करते हैं । एकंकार (परमात्मा) शुभ मुहूर्त आदि से बहुत ऊपर है । जिसे गुरु प्राप्त होता है, वही (इसकी वास्तविक) विधि जानता है । गुरु की शिक्षा (यदि वास्तविक रूप) से ही तभी (परमात्मा के) हुक्म की पहचान होती है ।

[विशेष=साहा=सु + आह=सु=सुन्दर, आह=दिन,=शुभ दिन, शुभ मुहूर्त ॥] ॥ १ ॥

हे पाण्डे (पंडित) झूठ न बोलो, सत्य भाषण करो । (गुरु के) शब्द द्वारा अहंकार नष्ट होता है, (तभी अपने वास्तविक) घर (आत्मस्वरूप) की प्राप्ति होती है ॥१॥

ज्योतिषी ने (ज्योतिष के अनुसार) गणना कर कर के पत्रा बनाया । (वह राशि के अनुसार लोगो को फल) पढ़ कर सुनाता है, किन्तु (परम) तत्त्व को नहीं जानता । (ऐ ज्योतिषी, यह बात समझ लो कि) गुरु के शब्दों पर विचार करना सर्वोपरि (तत्त्व) है । (मैं) अन्य (और) बातें नहीं करता, (क्योंकि) ये सारी (बातें) खाल हैं ॥२॥

(हे पंडित, तू) स्नान करता है, सफाई करता है और मूर्ति-पूजा करता है, (किन्तु) बिना हरि मे अनुरक्त हुए मैले का मैला ही (बना है) । अहंकार दूर कर के अर्थ-सहित (धन सहित) परमात्मा से मिल, (तात्पर्य यह कि धन की ममता त्याग कर इसे दीन-दुखियों में वितरित कर दे) । प्राणो से हरि को जप और मुक्ति (प्राप्त कर) कृतार्थ (हो) ॥३॥

(हे पंडित), (तू) वेद नहीं पढ़ता, (बल्कि) भगदा बाँचता है ; तू स्वयं तो डूबता है, (भना अपने) पितरों को कैसे तारेगा ? कोई बिरला ही जन प्रत्येक घट में ब्रह्म पहचानता है । (जब) सद्गुरु प्राप्त होता है, (तभी) समझ आती है ॥४॥

(मुहूर्तादिक की) गणना करने से हृदय के लिए संशय और दुख (बने रहते हैं) ।
गुरु की शरण में पढ़ने से ही सुख होता है । हम अपराध करके गुरु की शरण में आये हैं ।
हमने (अपने) पूर्व (जन्मों के शुभ कर्मों की) कमाई से ही गुरु (रूपी) हरी से मिलाप
किया है ॥५॥

गुरु की शरण में आए बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती । (परिणाम यह होता है कि
संसार-चक्र में) अमित होकर भटकना पड़ता है (और बार बार) जन्म मरण के अन्तर्गत
ग्राना पड़ता है । हृदय में नाम और शब्द की रहनी न होने के कारण यमराज के दरवाजे पर
बंध कर विकारों में मरना पड़ता है ॥६॥

कुछ लोग 'पापे' (पुरोहित), 'पंडित' और 'मिसिर' कहलाते हैं । (किन्तु वे सब)
द्वैतभाव में लगे हैं । जिससे (परमात्मा का) महल नहीं पाते । गुरु की कृपा से जिसका
आधार हरी-नाम हो गया है, करोड़ों में कोई विरला ही ऐसा अद्वितीय पुरुष है ॥७॥

(वह) (एक परमात्मा ही) निश्चयपूर्वक (सत्य ही) आप बुरा और भला हो रहा
है । हे ज्ञानी, (इस गुरु रहस्य को) सद्गुरु के आसरे समझ । किसी विरले ही (साधक ने)
गुरु के उपदेश द्वारा एक (परमात्मा को) जाना है । (वे अपने इस ज्ञान के फलस्वरूप)
जन्म-मरण समाप्त कर उसमें समा गए हैं ॥८॥

जिनके हृदय में एकंकार (अद्वैत ब्रह्म का) निवास है, वे समस्त गुण वाले हैं और
उनका विचार सच्चा है । (वे लोग इस संसार में लोक कल्याणार्थ) गुरु के आदेशानुसार कर्म
करते हैं । हे नानक, (अन्त में), (वे) सच्चे (पुरुष) सत्य (परमात्मा) में समाहित हो
जाते हैं ॥९॥४॥

[५]

हठु निग्रह करि काइया छोजे । वरतु तपनु करि मनु नहि भीजे ॥

राम नाम सरि अवरु न पूजे ॥१॥

गुरु सेवि मना हरि जन संगु कीजे ।

जमु जंदारु जोहि नही साकै सरपनि डसि न सकै हरि का रसु पीजे ॥१॥रहाउ॥

बाबु पड़े रागो जगु भीजे । त्रैगुण बलिआ जनमि भरीजे ॥

राम नाम बिनु दुलु सहोजे ॥२॥

चाड़सि पवनु सिधासनु भीजे । निउली करम लटु करम करीजे ॥

राम नाम बिनु बिरथा सासु लीजे ॥३॥

अंतरि पंच अगनि किउ घोरतु धीजे । अंतरि चोरु किउ सादु लहीजे ॥

गुरमुखि होइ काइया गड़ु लीजे ॥४॥

अंतरि मैनु तीरथ भरभीजे । मनु नहीं सूचा किआ सोच करीजे ।

किरतु पइआ दोसु का कउ दीजे ॥५॥

अंतु न लाहि बेही दुलु दीजे । बिनु गुर गिआन तृपति नही भीजे ॥

मनमुखि जनमे जनमि भरीजे ॥६॥

सतिगुरि पूछि संगति जन कीजे । मनु हरि राखै नही जनमि मरीजे ॥

राम नाम बिनु किम्रा करसु कीजे ॥७॥

ऊँदर दूँदर पासि धरीजे । धुर की सेवा रामु रबीजे ।

नानक नामु मिलै किरपा प्रभ कीजे ॥८॥१॥

हठयोग (आदि को क्रियाओं के) निग्रह करने से, काया छीजती है (कमजोर होती है) । (अनेक प्रकार के) व्रत एवं तप करने से मन रसार्द्र नहीं होता, (अर्थात् परमात्मा के प्रेम में भीजता नहीं) । राम नाम के समान अन्य (कोई साधन) समता नहीं कर सकता ॥१॥

हे मन, गुरु की सेवा कर तथा हरि के भक्तों का संग कर । (इसका फल यह होगा कि तुझे) जालिम यमराज देख नहीं सकेगा, (तात्पर्य यह कि दुःख न दे सकेगा), (माया रूपी) सर्पिणी भी (तुझे) न डस सकेगी, (अतएव) हरि का (अमृत) रस पी ॥१॥ रहाउ॥

(हे योगी, तू) विवादों में पड़ता है, सासारिक रागों आदि के द्वारा (मन को) तृप्त करना चाहता है । त्रिगुणात्मक (माया के) विषयों में पड़ कर (तू) जन्मता और मरता रहता है । (इस प्रकार) बिना राम नाम के (अनेक) दुःखों को सहता है ॥२॥

(हे योगी, तू) वायु को दशम द्वार में चढ़ाला है और उसका स्वाद लेता है ; नेवली आदि पट्-कर्मों को करता है । परन्तु राम नाम के बिना (तू) व्यर्थ ही ससे ले रहा है ॥

[विशेष—हठयोग के पट् कर्म निम्नलिखित हैं— १ धोती (कपड़े की पट्टी निगल कर भीतरी सफाई करके बाहर निकाल देना), २ नेती (नासिका रन्ध्र से सूत डाल कर मुँह से निकाल कर सफाई करना), ३ नेवली (पेट को चारों ओर घुमा कर अतडियों की सफाई करना), ४ बसती (बॉस की नली गुदा द्वार में डाल कर स्वास द्वारा उससे पेट में पानी खींच लेना, पेट की सफाई करके फिर उसी नली से पानी को निकाल देना), ५ ब्राटक (आँवों को किसी विशेष केन्द्र-बिन्दु पर स्थिर कर एक दृष्टि से उसे देखना) तथा ६ कपाल-भाति (लुहार की भट्टी के समान श्वासों को भीतर ले जाना और बाहर निकालना, जिससे नाडियों की शुद्धि हो) ।] ॥३॥

(हे योगी) (तेरे) अन्तर्गत पंच (कामादिकों की) अग्नियाँ जल रही हैं, (भला तू) कैसे घैर्य धारण करेगा ? (तेरे) अन्तर्गत (कामादिक) चोर (छिपे) हैं, (भला परमात्मा के अमृत-रस का) कैसे स्वाद ले सकेगा ? (तू) गुरु के द्वारा शिक्षित होकर काया रूपी गढ़ को जात ॥ ४ ॥

(यदि) अन्तःकरण में मल है, (पर) तीर्थ अभ्रमण करते हो, (तो इससे कोई लाभ नहीं होगा) । (यदि) मन ही पवित्र नहीं है, (तो) (स्नानादिक) पवित्रता क्या करते हो ? (यह तेरे पूर्व जन्म के किए कर्मों के) संस्कार (किरत) है, (भला इसके लिये) दोष किसे दिया जाय ? ॥ ५ ॥

(हे योगी, तू) अन्न नहीं खाना और शरीर को कष्ट देता है । (किन्तु यह समझ लो कि शरीर को कष्ट देने से कोई भी लाभ नहीं है); बिना गुरु के न तो ज्ञान होता है और न तृप्ति (ही होती है) । मनमुख जन्मता है और जन्म कर (फिर) मरता है ॥ ६ ॥

(हे योगी, तू) सद्गुरु से पूछ कर (हरि के) भक्तों की संगति कर (जिससे तेरा)

मन हरि मे अनुरक्त हो, (अन्यथा) जन्मता मरता रहेगा । राम नाम के बिना तू कर्मों को क्या करता है ? (बिना राम नाम के ये समस्त कर्म बन्धनप्रद बर्म ही है, मुक्तिप्रद नहीं हैं) ॥ ७ ॥

चूहे की भाँति (भीतर ही भीतर) शोर मचानेवाले (मन के संकल्पो-विकल्पों को) दूर कर दो, (ताकि मन स्थिर होकर) अमली (परमात्मा द्वारा) (दिखलाई हुई) सेवा में, अर्थात् राम नाम (के स्मरण में) रम सके । नानक (कहता है कि) हे प्रभु, कृपा करो, जिससे नाम प्राप्त हो ।

[विशेष : ऊँदर=चूहा । दूँद=शोर, ढन्ढ] ॥ ८ ॥ ५ ॥

[६]

अंतरि उतभुज अवरु न कोई । जो कहोऐ सो प्रभ ते होई ॥
जुगह जुगंतरि साहुनु सनु सोई । उतपति परलउ अवरु न कोई ॥१॥
ऐसा मेरा ठाकुर गहिर गंभीर ।
जिनि जपिआ तिन ही सुनु पाइआ हरि कै नामि न लगै जम तीर ॥१॥ रहाउ ॥
नाम रनउ हीरा निरमोनु । साचा साहिब अमरु अतोनु ॥
जिहवा सूची साचा बोनु । घरि दरि साचा नाही रोनु ॥२॥
इकि बन महि बैसहि डूगरि असथानु । नामु बिसारि पचहि अभिमानु ॥
नाम बिना किआ गिआन धिआनु । गुरुमुखि पावहि दरगहि मानु ॥३॥
हठ अहंकारु करै नही पावै । पाठ पढ़ै ले लोक सुणावै ॥
तीरथि भरमसि बिआधि न जावै । नाम बिना कैसे सुनु पावै ॥४॥
जतन करै बिद किवै न रहाई । मनूआ होलै नरकै पाई ।
जमपुरि बापो लहै सजाई । बिनु नावै जीउ जलि बलि जाई ॥५॥
लिथ साधिक केले मुनि बेवा । हठि निग्रह न नृपतावहि भेवा ।
सबदु बोचारि गहहि गुर सेवा । मनि तनि निरमल अभिमान अमेवा । ६॥
करमि मिलै पावै सनु नाउ । तुम सरणागति रहउ सुभाउ ।
तुम ते उपजिआ भगतो भाउ । जपु जापउ गुरुमुख हरि नाउ ॥७॥
हुमै गरबु जाइ मन भीनै । झूठि न पावसि पाखंडि कोनै ।
बिनु गुर सबद नही घरु बारु । नानक गुरुमुखि ततु बोचारु ॥८॥६॥

(सृष्टि की चारो खानियो)—उद्भिज, अंडज, जेरज, स्वेदज—की (उत्पत्ति) (उस हरी के) अन्तर्गत ही है, अन्य कोई (रचयिता अथवा सृष्टिकर्त्ता) नहीं है । जिस (वस्तु) को कहो, (नाम लो), वड (सब), प्रभु से ही होती है । युग-युगान्तरो से वही सच्चा साहब (विद्यमान) है । (उसके अतिरिक्त) अन्य दूसरा कोई (सृष्टि की) उत्पत्ति और प्रलय करनेवाला नहीं है ॥ १ ॥

मेरा ठाकुर (स्वामी, प्रभु) बहुत ही गहरा और गंभीर है । जिन्होंने (उस प्रभु को) जपा है, उन्होंने सुख पाया है । हरि का नाम (जपने से) यमराज का वाण (तीर) नहीं लगता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नाम रूपी रत्न अमूल्य हीरा है। वह साहब सच्चा, अमर और अतुलनीय है। (उसकी) जिह्वा पवित्र है, (जिसे नाम रूपी रत्न प्राप्त हुआ है) ; (अतएव उस) सच्चे (प्रभु) को बोलो (जपो)। (हृदय रूपी) घर के दरवाजे के बीच सच्चे (परमात्मा का निवास है), (वहाँ किसी प्रकार का) द्वन्द्व—गड़बड़ी नहीं है—(पूर्ण स्थिति है) ॥ २ ॥

कुछ मनुष्य तो वनों (में जा कर तपस्या के निमित्त) बैठ जाते हैं, और (कुछ लोग) पर्वतों (पर जाकर अपना डेरा जमाते हैं)। (किन्तु, वे लोग) नाम को भुला कर (तपस्या के) अभिमान में जलते हैं। नाम के बिना क्या ज्ञान है और क्या ध्यान है ? (अर्थात् ज्ञान-ध्यान सभी नाम के बिना व्यर्थ हैं)। गुरु के अनुगामी ही (परमात्मा के) दरबार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ ३ ॥

हठ और अहंकार करने से (परमात्मा की) प्राप्ति नहीं होती। (अहंकार में मनुष्य) पाठ करता है और लोगों को (एकत्र करके) सुनाता है, तीर्थों में भ्रमण करता है, (किन्तु, मन की) व्याधि नहीं जाती। (भला), नाम के बिना (वह कैसे सुख पा सकता है ?) ॥ ४ ॥

(ऋष्यचर्य धारण करने का अनेक) यत्न करता है, (किन्तु) वीर्य किसी भी प्रकार नहीं (स्थिर) होता। मन (अनेक रमणियों से रमण करने के लिए) चंचल होता रहता है (और अन्त में) नरक में (जाकर) पड़ता है। वह (अपने किए पापों के कारण) यमपुरी में बाँधा जा कर सजा पाता है। (इस प्रकार) बिना नाम (की प्राप्ति) के जीव जल-बल जाता है ॥ ५ ॥

कितने ही सिद्ध, साधक, मुनि तथा देवतागण हठ-निग्रह करते हैं (किन्तु वे) लोग (अपने अन्तःकरण के) रहस्य को नहीं तृप्त कर सकते। (यदि वे) (गुरु के) शब्द को विचार कर गुरु-सेवा ग्रहण कर लें, (तो वे) तन और मन से निर्मल हो जायें और अभिमान-विहीन हो जायें। [असेवा=अभाव। “अभिमान असेवा” का अभिप्राय “अभिमानविहीन” है।] ॥ ६ ॥

(यदि परमात्मा की) कृपा हो, (तभी) सच्चे नाम की प्राप्ति होती है। (हे प्रभु), (मैं) सुन्दर (सच्चे) भाव से तेरा शरणागत हूँ। भक्ति और भाव की उत्पत्ति तुम्ही से होती है। (मैं) गुरु द्वारा हरि नाम का जप जपता हूँ ॥ ७ ॥

(परमात्मा के स्वरूप में) मन के भीजने से ही अहंकार और गर्व नष्ट होते हैं। झूठ और पाखण्ड करने से (परमात्मा की) प्राप्ति नहीं होती। बिना गुरु के शब्द के घरबार (तात्पर्य यह कि परमात्मा का स्थान) नहीं (प्राप्त होता)। हे नानक, गुरु द्वारा इस तत्त्व का विचार कर ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

जिउ आइझा तिउ जावहि बजरे जिउ जनमे तिउ मरगु भइझा ।

जिउ रस भोग कीए तेता बुलु लागै नामु बिसारि भवजलि पइझा ॥१॥

तनु धनु बेखत गरबि गइझा ।

कनिक कामनी सिउ हेतु वधाइहि की नामु बिसारहि भरमि गइझा ॥१॥ रहाउ ॥

जनु सतु संजमु सोलु न राखिआ प्रेत पिंजर महि कासटु भइआ ।
 पुंनु दानु इसनानु न संजमु साध संगति बिनु बारि जइआ ॥२॥
 लालचि लागै नामु बिसारिओ आवत जावत जनमु गइआ ।
 जा जमु धाइ केस गहि मारै सुरति नही मुखि कालि गइआ ॥३॥
 अहिनिनि निदा ताति पराई हिरदै नामु न सरब दइआ ।
 बिनु गुर सबद न गति पति पाइहि राम नाम बिनु नरकि गइआ ॥४॥
 खिन महि बेस करहि नटूआ जिउ मोह पाप महि गननु गइआ ।
 इत उत माइआ देखि पसारी मोह माइआ कै मगनु भइआ ॥५॥
 करहि बिकार विथार घनेरे सुरति सबद बिनु भरमि पइआ ।
 हउमै रोगु महा दुखु लागु गुरमति लेबहु रोगु गइआ ॥६॥
 सुख सपति कउ आवत देखै साकत मनि अभिमानु भइआ ।
 जिस का इहु तनु धनु मो फिरि लेवै अंतरि सहसा दूख पइआ ॥७॥
 अति कालि किलु साथि न चालै जो दीसै समु तिसहि मइआ ।
 आवि पुगु अवरंपरु सो प्रभु हरि नामु रिदै लै पारि पइआ ॥८॥
 मूए कउ रोवहि किसहि सुणावहि भै सागरि असरालि पइआ ।
 देखि कुटबु माइआ गृह मंदरु साकतु अंजालि परालि पइआ ॥९॥
 जा आए ता तिनहि पठाए चले तिनै बुलाइ लइआ ।
 जो किलु करणा सो करि रहिआ बलसणहारै बलसि लइआ ॥१०॥
 जिनि एहु चाखिआ र म रसाइए तिन की संगति खोलु भइआ ।
 रिधि सिधि बुधि गिआनु गुरु ते पाइआ मुकति पदारथु सरणि पइआ ॥११॥
 बुलु सुलु गुरमुखि सम करि जाणा हरख सोग ते बिरकतु भइआ ।
 आपु मारि गुरमुखि हरि पाए नानक सहजि समाइ लइआ ॥१२॥७॥

विशेष : कहने है कि गुरु नानक देव ने यह वाणी एक धनी पापी से उच्चरित की । यह व्यक्ति गुरु महाराज का दर्शन करने आया था ।

अर्थ : भरे बावले, (तू इस ससार में) जैसे आया है, वैसे ही (यहाँ से) चला भी जायगा ; (इसी प्रकार) जैसे तू जन्मे थे, (वैसे) मर भी जाओगे । जितने ही तू रस और भोग किए हैं, उतने ही तुझे दुःख लगेंगे, नाम को भूल कर (तू) इस संसार-सागर में पड़ जायगा ॥ १ ॥

(तू अपने) तन और धन को देख कर गर्व में आ गया है । कांचन और कामिनी से (तू ने अपने) प्रेम बढ़ाया है । नाम को भुला कर क्यों भ्रमित हो गया है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू ने) यत, सत, संयम और शील का अभ्यास नहीं किया है, (अतएव) प्रेत के पिंजर (शरीर) में काठ (की भाँति शुष्क हो कर) रहेगा । (तात्पर्य यह कि तू कोमल-हृदय मनुष्य नहीं रहेगा, बल्कि प्रेतयोनि में सुखी लकड़ी की भाँति नीरस होकर रहेगा) ।

न (तुम्हें) पुण्य है, न दान है, न स्नान (पवित्रता) है और न संयम है । साधु-संगति के बिना (तेरा) जन्म-लेना व्यर्थ हो गया ॥ २ ॥

लालच में पड़कर (तू ने) नाम को भुला दिया और (तेरा) यह जीवन (जन्म) भ्रान्ति-जाने में हो चला गया । जब यमराज दीड़ार (तेरा) केश पकड़ कर मारेगा, और (जब तू) काल के मुख में पड़ जायगा, (तो तुम्हें प्रायश्चित्त करने की भी) स्मृति नहीं रहेगी ॥ ३ ॥

(तू) अहर्निश दूसरों की निन्दा और ईर्ष्या (नाति) करता है ; न तो तेरे हृदय में (हरि का नाम) है और न सर्व (प्राणियों) पर दया ही है । बिना गुरु के शब्द के (तेरी) न गति ही होगी और न (तू) प्रतिष्ठा ही पायेगा, राम नाम के बिना (तू निश्चय ही) नरक जायगा ॥ ४ ॥

(तू) किसी क्षण मदारियों की भानि (लोगों को दिखाने के लिये सच्चरित्रों का) वेश बनाता है, (परन्तु तू) मोह और पाप के बीच ही डूबा हुआ है, (बाह्य वेश में कुछ भी नहीं होना है) । (अपनी) माया (धन-दोलन) के दधर-उधर के फैलाव को देख कर तू माया के मोह में निमग्न हो गया है ॥ ५ ॥

(तू) बड़ बितार से विकार (पाप) करता है और बिना (गुरु के) शब्द की स्मृति से, भ्रम में पड़ गया है । (तुम्हें) अहंकार के रोग का महान् दुःख लग गया है, गुरु की शिक्षा लेने से ही यह रोग जायगा ॥ ६ ॥

शाक्त (माया का उपासक) सुख और सम्पत्ति को आते हुए देख कर मन में (बहुत) अभिमान करने लगता है । (जिस प्रभु का) यह तन और धन है, (यदि) वह फिर (इन्हीं) ले लेता है, (तो उसके) अन्तःकरण में संशय और दुःख हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अन्तिम समय में कोई भी (वस्तु) साथ नहीं जायगी ; जो कुछ भी (वस्तु यहाँ) दिखाई पड़ रहो है, नव (उम प्रभु की) माया है, (योग माया नश्वर है) वह प्रभु ही (परमात्मा ही) आदि पुरुष और अपरंपार है, (जो व्यक्ति उस प्रभु का) नाम (अपने) हृदय में धारण करता है, उसका उद्धार हो जाता है (वह पार हो जाता है) ॥ ८ ॥

(तू) मृत (व्यक्ति) के लिए रोता है । (तू अपना यह रोना-धोना) किसे सुनाता है ? (संभव है कि वह मृत व्यक्ति) भवानक ससार-मागर में पड़ा हो । शाक्त (माया का उपासक) झुटुप्प, धन-दोलत, घर, महल (आदि) देख कर प्रपंच के पलाल (धान का पियरा तात्पर्य यह कि कुछ कर्मों) में पड़ गया है । [विशेष : यसरालि=ताप, तात्पर्य यह कि भयानक] ॥ ९ ॥

(जब मनुष्य इस संसार में) आता है, तो उस (हृत्ते का) भेजा हुआ (आता है), और उसके बुलाने में ही (वह इस संसार से) चला जाता है । (प्रभु को) जो कुछ भी करता है, कर दिया है, क्षमा करनेवाला (परमात्मा) (सदैव ही) क्षमा करता है ॥ १० ॥

ऐ भाई, जिन्होंने राम-रसायन चक्का है, उन्हीं की सगति की खोज कर । गुरु की शरण में जाने से ही अष्ट सिद्धियाँ, नव निद्धियाँ, बुद्धि, ज्ञान तथा मुक्ति रूपी पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) दुःख और सुख को समान समझने लगता है और हृषं तथा शोक से विरक्त—निर्लिप्त हो जाता है। हे नानक, गुरु द्वारा जो (अपने) अहंभाव को मारता है, वही हरी को पाता है और सहजावस्था में समा जाता है।

[विशेष : सहजावस्था : सहजावस्था आत्मा को ऊँची ज्ञानमयी स्थिति है। यह तीनों गुणों से परे की अवस्था है। इसमें आत्मा स्थिर होकर अपने स्वरूप में टिक जाती है। ऐसी अवस्था में मनुष्य का जीवन सहज हो जाता है। भलाई और प्रेम उसके भीतर से फूट फूट कर निकलते हैं। उसका सारा जीवन आडम्बरविहीन और स्वाभाविक हो जाता है।]

॥ १२ ॥ ७ ॥

[८]

रामकली दखणी

जतु सतु संजमु सातु दृडाआ साच सबदि रस लीणा ॥१॥

मेरा गुरु बड़भालु सदा रंगि लीणा ।

अहिंनिसि रहै एक लिब लागी साचे देखि पत्नीणा ॥१॥ रहाउ ॥

रहै गगन पुरि हसति समेसरि अनहत सबदि रंगीणा ॥२॥

सतु बंधि कुपीन भरिपुरि लीणा जिहवा रंगि रंगीणा ॥३॥

मिलै गुर साचे जिन रसु राचे किरतु बीवारि पत्नीणा ॥४॥

एक महि सरब सरब महि एका एह सतिगुरि देखि दिखाई ॥५॥

जिनि कीए लंड मंडल बहमंडा सो प्रभु लखतु न जाई ॥६॥

दीपक ते दीपकु परगासिआ त्रिभण जोति दिखाई ॥७॥

सबे तखति सच महली बैठे निरभउ ताड़ी लाई ॥८॥

मोहि गइआ बेरागो जोगो घटि घटि किगुरी बाई ॥९॥

नानक सरणि प्रभु की छूटे सतिगुर सतु सखाई ॥१०॥॥

विशेष : इस अष्टपदी में गुरु की महिमा प्रदर्शित की गई है। गुरु ही वास्तविक योगी है। गुरु परमात्मा के सान्निध्य रूपी दशम द्वार में समाधि लगाए रहता है। योगियों की शब्दावली में गुरु की महिमा वर्णन की गई है।

अर्थ : (मेरे गुरु ने) जत, सत, संयम और सत्य को दृढ़ किया है और (वह) शब्द नाम के रस में निमग्न है ॥ १ ॥

मेरा दयालु गुरु सदैव आनन्द में लीन है। (वह) अहिंसा एक (परमात्मा में) लिब (एकनिष्ठ ध्यान) लगाये रहता है और सत्य (परमात्मा) को देख कर विश्वास करता है, भरोसा करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मेरा गुरु सदैव ही) गगनपुरी में—दशम द्वार में—ऊँची आत्मिक अवस्था में रहता है; उसकी दृष्टि—समदृष्टि है, (अतएव वह) अनाहत शब्द (आत्मिक-अण्डल के वास्तविक आनन्द) में रमा रहता है ॥ २ ॥

(गुरु) सत्य का कीपीन बाँधकर पूर्ण रूप से (परमात्मा में) लीन रहता है (और उसकी) जिह्वा (हरि-रस के आस्वादन में) रसी रहती है ॥ ३ ॥

ना० बा० फा०—६५

सच्चे गुरु को (वह हरी) प्राप्त होता है, जिसने (मृष्टि) रचना रची है (और जो) (हमारी) (शुभ) करणी को विचार करके विश्वास करता है, (तात्पर्य यह कि हमारी शुभ करणी हो, तभी परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न होता है, नहीं तो नहीं ॥ ४ ॥

एक (परमात्मा) में सब (जड-चेतन) हैं, और सभी (जड-चेतन) में एक (परमात्मा) है—सद्गुरु ने (इस तथ्य को स्वयं) देखा है (और तब दूसरों को) दिखाया है ॥ ५ ॥

जिस प्रभु ने खण्ड, मण्डल और ब्रह्माण्डों की रचना की है, वह (इन चर्म चक्षुओं से) नहीं देखा जा सकता ॥ ६ ॥

(गुरु रूपी) दीपक ने (साधको के हृदय रूपी) दीपक को प्रकाशित किया है (और) तीनों लोकों में (हरी की फौजी हुई) ज्योति दिखलाई है ॥ ७ ॥

निर्भय (परमात्मा) सच्चे महल में सच्चे सिंहासन (तल्ल) पर ध्यान लगा कर बैठा है ॥ ८ ॥

बेरागी योगी (गुरु) ने हमें मोह लिया है और प्रत्येक घट में किगरी (छोटी सारंगी) बजा दी है; (परमात्मा के आनन्दस्वरूप का परिचय दिया है) ॥ ९ ॥

हे नानक, प्रभु की शरण में पड़ने से (हम सासरिक बन्धनों से) मुक्त हो गए; सद्गुरु ही सच्चा सहायक है ॥ १० ॥ ८ ॥

[८]

अउहठि हसत मड़ी घर छाइआ धरणि गगन कल धारी ॥१॥

गुरमुखि केतो सबदि उपारी संतहु ॥१॥ रहाउ ॥

ममता मारि हउमै सोखै त्रिभवरणि जोनि तुमारी ॥२॥

मनसा मारि मनै महि राखै सतिगुर सबदि बीचारी ॥३॥

सिडो सुरति अनाहदि बाजै घटि घटि जोति तुमारी ॥४॥

परपंच बेणु तही मनु राखिआ अहम अगनि परजारी ॥५॥

पंच तनु मिलि अहिनिनि दीपकु निरमल जोति अपारी ॥६॥

रवि ससि लउके इहु तनु किगुरी बाजै सबदु निरारी ॥७॥

सिव नगरी महि आसगु अउभू अलपु अगंमु अपारी ॥८॥

काइआ नगरी इहु मनु राजा पंच वसहि बीचारी ॥९॥

सबदि रवे आसगि परि राजा अदलु करे गुणकारी ॥१०॥

कालु बिकालु कहे कहि बसुरे जीवत सुआ मनु मारी ॥११॥

ब्रह्मा बिसनु महेस इक भूरति आपे करत। कारी ॥१२॥

काइआ सोधि तरै भव सागर अतम तनु बीचारी ॥१३॥

गुर सेवा ते सदा सुलु पाइआ अंतरि सबदु रबिआ गुणकारी ॥१४॥

आपे मेसि लए गुणदाता हउमै नृसना मारी ॥१५॥

त्रै गुण मेटे चउथै वरतै एहा भगति निरारी ॥१६॥

गुरमुखि जोग सबदि आतमु जीनै हिरदै एकु मुरारी ॥१७॥

मनुआ असथिऊ सबदे राता एहा करणी सारी ॥१८॥
 बेदु बादु न पाखंडु अउधू गुरमुखि सबदि वीचारी ॥१९॥
 गुरमुखि जोगि कमावै अउधू जतु सतु सबदि वीचारी ॥२०॥
 सबदि मरै मनु मारे अउधू जोगि जुगनि वीचारी ॥२१॥
 माइआ मोहु भवजलु है अउधू सबदि तरे कुल तारी ॥२२॥
 सबदि सूर जुग चारे अउधू बाली भगनि वीचारी ॥२३॥
 एहु मनु माइआ मोहिआ अउधू निकसै सबदि वीचारी ॥२४॥
 आपे बखसे मेलि मिलाए नानक सरणि तुमारी ॥२५॥६॥

हृदय हाथ है और शरीर (मर्द्दा) घर है, ऐसा (विचार) करने में उन्होंने (योगियों ने) धरती, आकाश सभी स्थानों में (परमात्मा की) कला (शक्ति) देखी है, [योगी घरों में जा कर हाथों से अन्न आदि माँग ले आते हैं। यहाँ गुरु नानक देव ने शरीर को तो घर बनाया है और हृदय को माँगने का हाथ बनाया है] ॥ १ ॥

हे सन्तगण, गुरु के उपदेश से गिनने ही (व्यक्तियों ने) शब्द द्वारा (अपना) उद्धार किया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) ममता को मार कर अहंकार को मुखा दे और त्रिभुवन में तेरी (हरी की) ज्योति (देखे, यही वास्तविक योगी है) ॥ २ ॥

(सच्चा योगी) इच्छाओं को मार कर, (उम्ह) मन में ही (दवा) रखता है और सद्गुरु के शब्दों पर विचार करता है ॥ ३ ॥

(हे प्रभु) घट-घट में तेरी ज्योति का दर्शन करना ही—(यही उन योगियों का) शृङ्गी (बजाना) है, सुरति लगाना है और अनाहत शब्द का सुनना है ॥ ४ ॥

(उन योगियों ने) समस्त जगत् को वेणु समझ कर उसमें (अपना) मन रक्खा है (और उन्होंने अपने) अन्तर्गत ब्रह्म की अग्नि प्रज्वलित की है ॥ ५ ॥

(उन्होंने) पंच-भौतिक (शरीर) को प्राप्त कर (इसके अन्तर्गत) सदैव अपार (परमात्मा की) निर्मल ज्योति का दीपक जलाया है ॥ ६ ॥

(शरीर में स्थित) सूर्य (नाडी) और चन्द्रमा (नाडी), (इस शरीर रूपी किंगरी के) दो लोके हैं; यह शरीर ही किंगरी है। (इन दोनों लोकों के तारों से) निराला शब्द बजता है। [तात्पर्य यह कि सूर्य और चन्द्रमा नाडी में जब श्वास की गति नाम की भावना से प्रविष्ट होती है, तो उससे निराला आनन्द प्राप्त होता है] ॥ ७ ॥

(हे अवधूत), सच्चा योगी शिव की नगरी (परमात्मा की नगरी) में आसन लगा कर बैठता है—(उस परमात्मा की पुरी) अवलोक्य, अग्रम और अपार है ॥ ८ ॥

(हे योगी) यह शरीर ही नगरी है, (और) यह मन (शरीर रूपी नगरी का राजा है; पंच ज्ञानेन्द्रियाँ (मंत्री अथवा प्रजा के रूप में) विचारपूर्वक (इस नगरी में) बसती हैं ॥ ९ ॥

मन रूपी राजा हृदय रूपी आसन पर बैठ कर शब्द द्वारा (हरि-वश करता है) और गुणी होकर इस्त्राफ (न्याय) करता है ॥ १० ॥

(जो) मन को मार कर जीवित ही मर चुका है, (उस व्यक्ति से) बेचारे जीवन और मरण क्या कह सकते हैं ? (अर्थात् जो जीवित अवस्था में ही वासनाओं, इच्छाओं और अहंकार को मार चुका है, वह जीवन मरण से मुक्त हो गया है) ।

[विशेष : कालु=मरण । विकालु=काल का उल्टा, जन्म । अतः कालु विकालु=मरण और जीवन] ॥ ११ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही भूक्तियाँ हैं । (इन देवों की) रचना प्रभु ने स्वयं ही की है ॥ १२ ॥

(हे योगी, अपने) काया की शुद्धि करके तथा आत्म-तत्त्व विचार करके, (इस) संसार-सागर से तर जा ॥ १३ ॥

गुरु की सेवा से (मुझे) शाश्वत सुख प्राप्त हुआ है और (मेरे) अन्तःकरण में गुणकारी शब्द रम गया है ॥ १४ ॥

गुणदाता (प्रभु) ने (मेरे) अहंकार और तृष्णा को मार कर (अपने में) मिला लिया है ॥ १५ ॥

तीनों गुणोंवाली अवस्था को मिटा कर (लॉघ कर), चौथी अवस्था—सहजावस्था में रहे, यही निराली भक्ति है ॥ १६ ॥

गुरुमुख का योग यह है कि शब्द—नाम के द्वारा (वह) आत्म-तत्त्व को (खोजता है) और (अपने) हृदय में एक मुरारी (परमात्मा) को पहचानता है ॥ १७ ॥

(यदि) मन स्थिर होकर शब्द में अनुरक्त हो जाय, (तो) यही श्रेष्ठ कार्य है ॥ १८ ॥

(हे भवघूत), (ऐसा योगी) वेद के वाद-विवाद अथवा तर्क-वितर्क तथा पाखण्ड में नहीं पड़ता वह गुरु के उपदेश द्वारा शब्द—नाम का ही विचार करता है ॥ १९ ॥

(हे भवघूत), (ऐसा योगी) गुरु द्वारा योग कमाता है, गुरु के शब्द पर विचार करना ही, (उसका) जल और सत है ॥ २० ॥

(हे भवघूत), (गुरुमुख योगी) (वास्तविक) योग की युक्ति विचार कर (गुरु के) शब्द में (अपने अहंभाव से) मर जाता है और (अपने) मन को भी मार देता है ॥ २१ ॥

(हे भवघूत), माया का मोह ही (कठिन) संसार-सागर है, (किन्तु गुरु के) शब्द द्वारा (योगी) स्वयं तरता है (और अपने) कुल को भी तार देता है ॥ २२ ॥

(हे भवघूत), शब्द द्वारा ही (वे) चारों युगों में योद्धा हुए हैं और (उन्होंने) भक्ति की वाणी का विचार किया है ॥ २३ ॥

(हे भवघूत) यह मन माया में मोहित हो गया है, शब्द को ही विचार कर (यह माया से) निकल सकता है ॥ २४ ॥

नानक (कहता है कि हे प्रभु, मैं) तेरी शरण में हूँ; (तू) स्वयं ही बरक्षता है (और अपने में मिला लेता है) ॥ २५ ॥ ६ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रामकली, महिला १, दखणी, ओअंकार ॥

ओअंकारि ब्रह्मा उत्पत्ति । ओअंकारि कीम्रा जिनि चिति ॥

ओअंकारि सैल गुग भए । ओअंकारि बेद निरमए ॥

ओंकारि सबदि उधरे । ओंकारि गुरमुखि तरे ॥
 ओनम अखर सुणहु बीचारु । ओनम अखरु त्रिभबण सारु ॥१॥
 सुणि पाडे किआ लिखहु जंजाला ।
 लिखु राग नाम गुरमुखि गोपाला ॥१॥ रहाउ ॥
 ससै सभु जगु सहजि उपाइआ तीन भवन इक जोती ।
 गुरमुखि बसतु परापति होवै चुरि लै मारण मोती ॥
 समझै सूझै पड़ि पड़ि बूझै अंति निरंतरि साचा ।
 गुरमुखि देखै सानु समाले बिनु सचे जगु काचा ॥२॥
 धधे धरमु धरे धरमापुरि गुणकारी मनु धीरा ।
 धधे धूलि पड़े मुखि मसताक कंचन भए मनूरा ॥
 धनु धरणीधरु आपि अजोनी तोलि बोलि सनु पूरा ।
 करते की मिति करता जाणै कं जाणै गुरु मूरा ॥३॥
 डिआनु गवाइआ दूजा भाइआ गरबि गले बिलु खाइआ ।
 गुर रसु गोत बाइ नही भावै सुणीए गहिर गंभीरु गवाइआ ॥
 गुरि सनु कहिआ अमृतु लहिआ मनि तनि सानु सुखाइआ ।
 आपे गुरमुखि आपे बेवै आपे अंमृतु पोआइआ ॥४॥
 एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु बिआपे ।
 अंतरि बाहरि एकु पछाणै डउ घर महतु सिजापे ॥
 प्रभु नेइ हारि दूरि न जाणहु एको सुसटि सबाई ।
 एकंकारु अवरु नही दूजा नानक एक समाई ॥५॥
 इसु करते कउ किउ गहि राखहु अफरिओ तुलिओ न जाई ।
 माइआ के देवाने प्राणी भूठि ठगउरी पाई ॥
 लबि लोभि सुशुताजि विमूते इब तब फिरि पशुताई ।
 एकु सरेवै ता गति मिति पावै आवणु जाणु रहाई ॥६॥
 एकु अचारु रंगु इकु रूपु । पउण पाणी अगनी असरूपु ॥
 एको अवरु भवै तिहु लोइ । एको बूझै सूझै पति होइ ॥
 गिआनु धिआनु ले समसरि रहै । गुरमुखि एकु बिरला को लहै ॥
 जिसनो बेइ किरपा ते सुख पाए । गुरु बुझारै आखि सुणाए ॥७॥
 ऊरम धूरम जोति उजाला । तीन भवण महि गुर गोपाला ॥
 ऊगबिआ असरूपु दिखावै । करि किरपा अपुनै घरि आवै ॥
 ऊनखि बरस नीअर धारा । ऊतम सबदि सवारणहारा ॥
 इसु एकै का जाणै भेउ । आपे करता आपे बेउ ॥८॥
 उगवै मूरु असुर संहारे । ऊचउ देखि सबदि बीचारे ॥
 ऊपरि आदि अंति तिहु लोइ । आपे करे कयै सुलै सोइ ॥
 ओहु बिधाता मनु तनु बेइ । ओहु बिधाता मनि मुखि सोइ ॥
 प्रभु जग जीवनु अवरु न कोइ । नानक नाम रते पति होइ ॥९॥

राजन राम रवै हितकारि । रए महि लुभै मनूअ। मारि ॥
 राति दिनति रहै रंगि राता । तीनि भवन जुग चारे जाता ॥
 जिनि जाता सो तिसही जेहा । अति निरमाइसु सीभसि देहा ॥
 रहसो रामु रिदै इक भाइ । अंतरि सबदु साचि लिब लाइ ॥१०॥
 रोसु न कीजै अमृतु पीजै रहणु नही संसारे ।
 राजे राइ रंक नही रहणा आइ जाइ जुग चारे ॥
 रहण कहण ते रहै न कोई किंसु पहि करउ बिनंती ।
 एकु सबदु रामनाम निरोधरु गुरु देखै पति मती ॥११॥
 लाज मरती मरि गई घूघटु खोलि चली ।
 सामु दिवानी बावरी सिर ते संक टली ॥
 प्रेमि बुलाई रली सिउ मन महि सबदु अनंदु ।
 लालि रनी लाली भई गुरुमुखि भई निचिदु ॥१२॥
 लाहा नामु रतनु जपि सारु । लवु लोसु बुरा अहंकारु ॥
 लाड़ी चाड़ी लाइतबारु । मनसुलु अंधा मुग्ध गवार ॥
 लाहे कारण आइआ जगि । होइ मजूरु गइआ ठगाइ ठगि ॥
 लाहा नामु पुंजो बेसाहु । नानक सची पति सचा पातिसाहु ॥१३॥
 आइ विगूता जगु जम पंथु । आई न भेटणु को समरथु ॥
 आथि सैल नीच घरि होइ । आथि देखि निबै जिसु दोइ ॥
 आथि होइ ता मुग्घु सिआना । भगति बिहना जगु बउराना ॥
 सभ महि बरते एको सोइ । जिस नो किरपा करे तिसु परगटु होइ ॥१४॥
 जुगि जुगि थापि सदा निरबेरु । जनमि मरणि नही धंधा घेरु ॥
 जो दीसै सो आपे आपि । आपि उषाइ आपे घट थापि ॥
 आपि अगोचरु धंधै लोई । जोग जुगति जगजीवनु सोई ॥
 करि आचारु सचु सुख होई । नाम विहूणा मुकति किव होई ॥१५॥
 विए नारै बेरोघु सरीर । किउ न मिलहि काटहि मन पीर ।
 वाट वटाऊ आवै जाइ । किआ ले आइआ किआ पलै पाइ ॥
 विए नारै तोटा सभ थाइ । लाहा मिलै जा बेइ बुझाइ ॥
 वरणु वापारु वणजै वापारी । विए नारै कैसी पति सारी ॥१६॥
 गुरु बीचारे गिआनी सोइ । गुरु महि गिआनु परापति होइ ॥
 गुरुदाता बिरला संसारि । साची करणी गुरु बीचारि ॥
 अगम अगोचरु कीमति नही पाइ । ता मिलीऐ जा लए मिलाइ ॥
 गुरुबंती गुरु सारे नीत । नानक गुरुमनि मिलीऐ मीत ॥१७॥
 कामु ओघु काइआ कउ गाले । जिउ कंचन सोहागा डाले ॥
 कसि कसबटी सहै सु ताउ । नदरि सराफ वंनोस चढ़ाउ ॥
 जगत पसू अहं कालु कसाई । करि करतै करणी करि पाई ॥
 जिनि कीतो तिनि कीमति पाई । होर किआ कहीऐ किछु कह्यु न जाई ॥१८॥

खोजत खोजत अंमृतु पीया । खिमा गही मन सतिगुर दीया ॥
 खरा खरा आखै समु कोइ । खरा रतनु जुग चारे होइ ॥
 खात पोअंत मूए नही जानिया । खिन महि मूए जा सबदु पछानिया ॥
 असथिरु चीतु मरनि मनु मानिया । गुर किरपा ते नामु पछानिया ॥१६॥
 गगन गंभीरु गगनंतरि वासु । गुरा गावै सुख सहजि निवासु ॥
 गइया न आवै आइ न जाइ । गुर परमादि रहै लिव लाइ ॥
 गगनु अगंसु अनायु अजोनी । असथिरु चीतु समाधि सगोनी ॥
 हरि नामु चेति फिरि पयहि न जूनी । गुरमति सारु होर नाम बिहूनी ॥२०॥
 घर वर फिरि थाकी बहुतेरे । जाति असख अंत नही मेरे ॥
 केले मात पिता सुत धीया । केले गुर चले कुनि हूया ॥
 काचे गुर ते मुकति न हूया ॥
 केतो नारि वरु एकु समालि । गुरमुखि मरगु जीवगु प्रभ नालि ॥
 बहविस दूदि घरै महि पाइया । मेलु भइया सतिगुरु मिलाइया ॥२१॥
 गुरमुखि गावै गुरमुखि बोलै । गुरमुखि तोलि तोलावै तोलै ॥
 गुरमुखि आबै जाइ निसगु । परहरि मेलु जलाइ कलंकु ॥
 गुरमुखि नाद बेद बीचारु । गुरमुखि मजनु चतु अचारु ॥
 गुरमुखि सबदु अंमृतु हे सारु । नानक गुरमुखि पावै पारु ॥२२॥
 चंचलु चीतु न रहई ठाड । चोरी निरगु अंगूरी खाइ ॥
 चरन कमल उरधारे चीत । चिरु जीवतु चेतनु नित नीत ॥
 चितत ही दोसै समु कोइ । चेतहि एकु तही सुखु होइ ॥
 चिति वसै राचै हरि नाइ । मुकति भइया पति सिउ घरि जाइ ॥२३॥
 छोजे बेह खुलै इकि गंदि । छेअनित बेखहु जगि हंति ॥
 घूप छाव जे सम करि जाएँ । बंधन काटि मुकति घरि आएँ ॥
 छाइया छछी जगतु भुलाना । लिखिया किरतु धुरे परवाना ॥
 छोजे जोबतु जरुआ सिरि कालु । काइया छोजै भई सिवालु ॥२४॥
 जापे आपि प्रभु तिहु लोइ । जुगि जुगि दाता अवरु न कोइ ॥
 जिउ भावै तिउ रखहि राखु । जसु जाचउ बेवै पति सालु ॥
 जागतु जागि रहा तुषु भावा । जा तू मेलहि ता तुमै समावा ॥
 जै जैकारु जपउ जगदीस । गुरमति मिलीऐ बीस इकीस ॥२५॥
 भलि बोलगु फिया जग सिउ वादु । भूरि मरै बेले परमादु ॥
 जनमि मूए नही जीवण आसा । आइ चले भए आस निरासा ॥
 भुरि भुरि भलि माटी रसि जाइ । कालु न चापै हरि गुन गाइ ॥
 भाई नवनिधि हरि कै नाइ । आपे देवै सहजि सुभाइ ॥२६॥
 जियानो बोले आपे बूझै ॥ आपं समझै आपे सूझै ॥
 गुर का कहिया अकि समावै । निरमल सूचे साचो भावै ॥

गुर सागर रतनी नही तोट । लाल पदारथ सांचु अखोट ॥
 गुरि कहिआ सा कार कमावहु । गुर की करणी काहे धावहु ॥
 नानक गुरमति सांचि समावहु ॥ २७ ॥
 टूटै नेहु कि बोलहि सही । टूटै बाह डूह बिंसि गही ॥
 टूटि बरीति गई बुर बोलि । बुरमति परहरि छाडी डोलि ॥
 टूटै गंठि पड़ै बीचार । गुर सबदी घरि कारजु सारि ॥
 लाहा सांचु न भ्रावं तोटा । त्रिभवण ठाकुरु प्रीतमु मोटा ॥ २८ ॥
 ठाकहु मनुआ राखहु ठाइ । ठहकि मुई भवगुणि पछुताइ ॥
 ठाकुरु एकु सबाई नारि । बहुते बेस करे कूड़िआरि ॥
 पर घर जाती ठाकि रहई । महलि तुलाई ठाक न पाई ॥
 सबदि सबारी सांचि पिआरी । साई सुहागणि ठाकुरि धारी ॥ २९ ॥
 डोलत डोलत हे सखी फाटे चीर सीमार ।
 डहपरि तनि सुखु नही बिनु डर बिरणठी डार ॥
 डरपि मुई घरि आपरौ डोठी कति सुजाणि ।
 डरु राखिआ गुरि आपरौ निरभउ नामु बखारि ॥
 डूगरि वासु तिखा घणी जब देखा नही डूरि ।
 तिखा निवारी सबदु मंनि अंशुनु पीआ भरपूरि ॥
 देहि देहि आखे सभु कोई जे भावं तै देइ ।
 गुरु बुझारै देवसो तिखा निवारै सोइ ॥ ३० ॥
 डंडोलत दूढत हउ फिरी डहि डहि पवनि करार ।
 भारे डहते डहि पए हउले निरुसे पारि ॥
 अमर अनाचो हरि मिले तिनकै हउ बलि जाउ ।
 तिन को धूड़ि अधुलीऐ संगति मेलि मिलाउ ॥
 मनु बीआ गुरि आपरौ पाइआ निरमल नाउ ।
 जिनि नामु बीआ तिसु सेवसा तिसु बलिहारै जाउ ॥
 जो उसारे सो डाहसो तिसु बिनु अवरु न कोइ ।
 गुर परसावो तिसु संभूला ता तनि दूखु न होइ ॥ ३१ ॥
 रा को मेरा किसु गही रा को होआ न होगु ।
 आत्रिणि जाणि विगुचीऐ दुबिधा बिआपै रोगु ॥
 राम विहूरो आदमी कलर कंध गिरंति ।
 बिगु नाबै किउ छूटीऐ जाइ रसातलि अंति ॥
 गणत गणावै अखरी अगणतु साचा सोइ ।
 अगिआनी मनिहीगु है गुर बिनु गिआतु न होइ ॥
 तूटी तंतु रबाब की वाजै नही विजोगि ।
 विछुड़िआ मेले प्रभू नानक करि संजोग ॥ ३२ ॥
 तरवर काइआ पंखि मनु तरवरि पखी पंच ।
 तनु चुगहि मिलि एक से तिन कउ फास न रंच ॥

उडहि त बेगुल बेगुले ताकहि चोग घली ।
 प'ख तुटे फाही पड़ी अक्खुणि भोड़ बली ॥
 बिनु साचे किउ छूटीऐ हरि गुण करमि मली ।
 आपि छडाए छूटीऐ बडा आपि धली ॥
 गुरपरसादी छूटीऐ किरपा आपि करेइ ।
 अपणै हाथि बडाईआ जै भावै तै बेइ ॥३३॥
 घर घर कंपै जीअड़ा थान बिहरण होइ ।
 थानि मानि सनु एकु है कानु न फीटै कोइ ॥
 थिरु नाराइणु थिरु गुरु थिरु साचा बीचारु ।
 सुरि नर नाथह नाथु तू निधारा आपारु ॥
 सरबे थान घनतरी तू दाता दातारु ।
 जह देखा तह एक तू अंतु न पारावारु ॥
 थान थनंतरि रवि रहिआ गुर सबदी बीचारि ।
 अणमंगिआ दानु देवसी बडा अगम अपारु ॥३४॥
 दइआ दानु दइआलु तू करि करि देखणहारु ।
 दइआ करहि प्रभ मेलि लैहि खिन महि दाहि उसारि ॥
 दाना तू बीना तुही दाना कै सिरि दानु ।
 दालद भंजन दुख दलण गुरमुखि गिआनु धिआनु ॥३५॥
 धनि गईऐ बहि भूरीऐ धन महि चीनु गवार ।
 धनु बिरली सनु संजिआ निरमलु नामु पिआरि ॥
 धनु गइआ ता जाण बेहि जे राचहि रंगि एक ।
 मनु बीजै सिरु सउपोऐ भी करते की टेक ॥
 धंधा धावत रहि गए मन महि सबदु अनंदु ।
 दुरजन ते साजन भए भेटे गुर गोविंद ॥
 बनु बनु फिरती दूढती बसतु रही घरि बारि ।
 सतिगुरि मेलो मिलि रही जनम सरण दुखु निवारि ॥३६॥
 नाना करत न छूटीऐ बिरु गुण जमपुरि जाहि ।
 ना तिसु एहु न ओहु है अक्खुणि फिरि पछुताहि ॥
 ना तिसु गिआनु न धिआनु है ना तिसु घरसु धिआनु ।
 बिरु नावै निरभउ कहा किआ जाणा अभिमानु ॥
 याकि रही किब अपड़ा हाथ नही ना पारु ।
 ना साजन से रंगूले किसु पही करी पुकार ॥
 नानक प्रिउ प्रिउ जे करी मेले मेलणहारु ॥
 जिनि बिछोडो सो मेलसो गुर कै हेति अपारि ॥३७॥
 पापु बुरा पापी कउ पिआरा । पापि सबे पापे पासारा ॥
 परहरि पापु पछाणै आपु । ना तिसु सोगु बिजोग संतापु ॥

नरकि पड़ंतउ किउ रहै किउ बंचै जम कालु ।
 किउ आबण जाणा बीसरै भूछ बुरा लै कालु ॥
 मनु जंजाली वेड़िआ भी जंजाला माहि ।
 बिरगु नावै किउ छूटीऐ पापे पचहि पचाहि ॥३८॥
 फिर फिर काही फासै कऊआ । फिर पछुताना अब किआ हूआ ॥
 फाया बोग चुगै नही बूझै । सतगुरु मिलै त आखी सूझै ॥
 जिउ मछलो फायो जम जालि । बिरगु गुर बाते सुकति न भानि ॥
 फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जाइ । इक रंगि रचै रहै लिव लाइ ॥
 इव छूटै फिरि फास न पाइ ॥३९॥
 बीरा बीरा करि रही बीर भए बैराइ ।
 बीर चले घरि आपणै बहिरा बिरहि जलि जाइ ॥
 बाबुल कँ घरि बेटडी वाली बालै नेहि ।
 जे सोइहि बरु कामणी सतिगुरु सेवहि तेहि
 बिरलो गिआनो बूझणउ सतिगुरु साचि मिलेइ ।
 ठाकुर हाथि बडाईआ जै भावै तै देइ ॥
 बाणी बिरलउ बीचारसो जे को गुरमुखि होइ ।
 इह बाणी महगुरख की निज घरि वासा होइ ॥४०॥
 भनि भनि घड़ीऐ घड़ि घड़ि भंजै ढाहि उसारै उसरे ढाहै ।
 सर भरि सोखै भी भरि पोखै समरथ बेपरवाहै ॥
 भरमि भुलाने भए दिवाने बिरगु भागा किआ पाईऐ ।
 गुरमुखि गिआनु डोरो प्रभि पकड़ी जिन लिखै तिन जाईऐ ॥
 हरि गुरु गाइ सदा रांग राते बहड़ि न पछोताईऐ ।
 भभै भालहि गुरमुखि बूझहि ता निज घरि वासा पाईऐ ॥
 भभै भउजलु मारगु बिखड़ा आस निरासा तरीऐ ।
 गुर परसादो आपो चीन्है जीवतिआ इव मरीऐ ॥४१॥
 माइआ माइआ करि मुए माइआ किसै न साथि ।
 हंसु चलै उठि डुमरणो माइआ भूली आथि ।
 मनु भूठा जमि जोहिआ अवगुण चलहि नालि ।
 मन महि मनु उलटो मरै जे गुरु होवहि नालि ॥
 मेरी मेरी करि मुए बिरगु नावै दुलु भालि ॥
 गड़ मदर महला कहा जिउ बाजी दीबारणु ।
 नानक सचे नाम बिरगु भूठा आवण जाणु ॥
 आपे चतुरु सरूपु है आपे जाणु सुजाणु ॥४२॥
 जो आवहि से जाहि कुनि आइ गए पछुताहि ।
 लख चउरासीह मेवनी घटै न बधै उताहि ॥
 से जन उबरे जिन हरि भाइआ ।
 धंधा मुआ बिगूतो माइआ ॥

जो दीसै सो चालसी किस कउ मीतु करेउ ।
 जीउ समपउ आपणा तनु मनु आगै देउ ॥
 असथिरु करता तू घरणी तिसही की मै ओट ।
 गुण की मारी हउ सुई सबदि रती मनि चोट ॥४३॥
 राणा राज न को रहै रंगु न तुंगु फकोरु ।
 वारी आपो आपणी कोइ न बंधे धोर ॥
 राहु बुरा भीहावला सर डूगर असगाह ।
 मै तनि अवगण भुरि सुई विगु गुण किउ घरि जाह ॥
 गुणीआ गुण ले प्रभ मिले किउ तिन मिलउ पिआरि ।
 तिन ही जैसी थो रहां जपि जपि रिदै मुरारि ॥
 अवगुणी भरपूर है गुण भी वसहि नालि ।
 विगु सतगुर गुण न जापनी जिकरु सबदि न करे बीचारु ॥४४॥
 लसकरीआ घर संमले आहे वजहु लिखाइ ।
 कार कमावहि सिरि धरणी लाहा पलै पाइ ॥
 लखु लोभु बुरिआईआ छोडे मनहु विसारि ।
 गड़ि बोही पातिसाह की कबे न आवै हारि ॥
 चाकरु कहोए खसम का सउहे उतर देइ ।
 वजहु गवाए आपणा तखति न वंसहि सेइ ॥
 प्रीतम हथि वडिआईआ जै भावै तै देइ ।
 आपि करे किमु आलीऐ अवरु न कोइ करेइ ॥४५॥
 बीजहु सूभे को नही बहै दूलीचा पाइ ।
 नरक निवारणु नरह नरु साचउ साचे नाइ ॥
 वगु नृगु हूडत फिरि रही मन महि करउ बीचारु ।
 लाल रतन बहु माणकी सतिगुर हाथि भंडारु ॥
 ऊतमु होवा प्रभु मिले इक मनि एकै भाइ ।
 नानक प्रीतम रसि मिले लाहा लै परथाइ ॥
 रचना राचि जिनि रबी जिनि सिरिआ आकारु ।
 गुरमुखि बेभ्रंतु धिआईऐ भ्रंतु न पारावारु ॥४६॥
 ड़ाड़ै रुड़ा हरि जोउ सोई ।
 तिसु बिनु राजा अवरु न कोई ॥
 ड़ाड़ै गारुड़ तुम सुरगुह हरि वसै मन माहि ।
 गुर परसादी हरि पाईऐ मनु को भरमि भुलाहि ॥
 सो साहु साचा जिसु हरि धनु रासि ।
 गुरमुखि पूरा तिसु साबासि ॥
 रुड़ी बाणी हरि पाइआ गुर सबदी बीचारि ।
 आपु गइआ दुखु कटिआ हरि वरु पाइआ नारि ॥४७॥

सुइना रुपा संचोऐ धनु काचा बिलु छारु ।
 साहु सदाए संचि धनु दुबिधा होइ लुभारु ॥
 सचिभारी सनु संचिभ्रा साचउ नामु भ्रमोलु ।
 हरि निरमाइलु ऊजलो पति साची सनु बोलु ॥
 साजनु मोतु सुजाणु तू तू सरवरु तू हंसु ।
 साचउ ठाकुर मनि वसे हउ बलिहारी तिसु ॥
 माइभ्रा भमता मोहणी जिनि कीतो सो जाणु ।
 बलिभ्रा भ्रमंतु एकु है बूझै पुरलु सुजाणु ॥४८॥
 लिमा बिहूरो खपि गए लूहणि लख भ्रसंख ।
 गणत न भ्रावै किउ गणी खपि खपि मुए बिसंख ॥
 खसमु पछाणै भ्रापणा खलै बंधु न पाइ ।
 सबदि महली खरा तू लिमा सनु सुख भाइ ॥
 खरनु खरा धनु धिभ्रानु तू भ्रापे वसहि सरीरि ।
 मनि तनि मुखि जापै सदा गुण भ्रंतरि मनि धरि ॥
 हउमै खपै खपाइसो बीजउ वसु विकारु ।
 जंत उपाइ विचि पाईभ्रनु करता भ्रलगु भ्रपार ॥४९॥
 सुसटे भेउ न जाणै कोइ । सुसटा करै सु निहवउ होइ ॥
 संपै कउ ईसरु धिभ्राईऐ । संपै पुरबि लिले को पाईऐ ॥
 संपै कारणि चाकर चोर । संपै साथि न चालै होर ॥
 बिनु साचे नही वरगह भानु । हरि रसु पोवै छुटै निदानि ॥५०॥
 हेरत हेरत हे सखी होइ रही हैरानु ।
 हउ हउ करती मै सुई सबवि रवै मनि गिभ्रानु ॥
 हार डोर कंकन घरो करि थाकी सोगारु ।
 मिलि प्रीतम सुलु पाइभ्रा सगल गुणा गलि हारु ॥
 नानक गुरमुखि पाईऐ हरि सिउ प्रीति पिभ्रारु ।
 हरि बिनु किनि सुलु पाइभ्रा बेखहु मनि बोचारि ॥
 हरि पइरा हरि बूझणा हरि सिउ रखहु पिभ्रारु ।
 हरि जपोऐ हरि धिभ्राईऐ हरि का नामु भ्रधारु ॥५१॥
 लेलु न भिटई हे सखी जा लिखिभ्रा करतारि ।
 भ्रापे कारणु जिनि कीभ्रा करि किरपा पगु धारि ।
 करते हपि वडिभ्राईभ्रा बूझहु गुर बीचारि ।
 लिखिभ्रा केरि न सकीऐ जिउ भाबी तिउ सारि ॥
 नवरि तेरी सुलु पाइभ्रा नानक सबडु बीचारि ।
 मनमुख भूले पचि मुए उबरे गुर बीचारि ॥
 जि पुरलु नवरि न भ्रावई तिस का किभ्रा करि कहिभ्रा जाइ ।
 बलिहारी गुर भ्रापणे जिनि हिरवै विता दिखाइ ॥५२॥

पाथा पड़िआ आखीऐ बिदिआ बिचरै सहजि सुभाइ ।

बिदिआ सोधै ततु सहै राम नाम लिब लाइ ॥

मनमुख बिदिआ बिक्रदा बिलु खटे बिलु लाइ ॥

धूरल सबदु न चीनई सूभ बूभ नह काइ ॥५३॥

पाथा गुरमुख आखीऐ चाटड़िआ मति देइ ।

नामु समालहु नामु सँगरहु लाहा जग महि लेइ ॥

सबी पटी सनु मनि पड़ीऐ सबदु सु सारु ।

नानक सो पड़िआ सो पंडितु बोना जिसु राम नामु गलि हारु ॥५४॥१॥

विशेष : “दसगी” शब्द का सम्बन्ध “राग रामकली” से है, न कि ‘ओअंकार’ से । ‘ओअंकार’ तो वाणी का नाम है, क्योंकि इस वाणी में ओकार परमात्मा का वर्णन है । यह वाणी ५२ अक्षरों को लेकर ‘पट्टी’ के तर्ज पर लिखी गई है । अंत में ‘पट्टी’ शब्द भी आया है । यह वाणी काशी में चतुरदास प्रादि पंडितों को सुनाई गयी थी ।

अर्थ : ओकारस्वरूप (परमात्मा स) ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, (और ब्रह्मा ने अपने) चित्त में ओकारस्वरूप (परमात्मा का ही) चिन्तन किया । ओकार से ही वेद उत्पन्न हुए । ओकार से ही शब्द द्वारा (लोग) तर गए । ओकार से ही गुरु को मानने वाले तर गए । “ॐ नमः” अक्षर का भाव सुनो । ‘ॐ नमः’ अक्षर त्रिभुवन का तत्त्व है ॥ १ ॥

ऐ पांडे (पंडित), सुनो, क्या प्रपंच लिख रहे हो ? (यदि तुम्हें कुछ लिखना ही है तो) गुरु के द्वारा गोपाल का ‘राम नाम’ लिखो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

‘सत्से’ (‘स’ अक्षर द्वारा कहते हैं कि) सारे जगत् को (उस प्रभु ने) सहज ही उत्पन्न किया और तीनों लोकों में एक ज्योति (स्थापित की) । गुरु की शिक्षा द्वारा ही (नाम कनी) वस्तु की प्राप्ति होती है, (अतएव, ऐ साधक, तू) (नाम रूपी) माणिक-मोती (इस संसार-सागर में) चुन ले । (ऐ साधक), समझ और पढ़-पढ़कर जान कि (मनुष्य के) अन्तःकरण में निरन्तर रूप से सत्य (हरी ही व्याप्त है) । गुरु की शिक्षा से उस सत्य का दर्शन कर और उसे सम्हाल अथवा स्मरण कर । बिना सच्चे (हरी) के सारा जगत् कच्चा है ॥ २ ॥

“धधे” (‘ध’ द्वारा यह कथन है कि) धर्म की पुरी अथवा सत्संग में धर्म धारण कर; (यह सत्संग) अत्यन्त गुरुकारी है और मन को धैर्य देनेवाला है । (सत्संग की) धूल जब मत्थे और मुँह पर पड़ती है, तो रङ्गी और निकम्मा लोहा भी सोना हो जाता है, (भाव यह कि बुरा मनुष्य भी प्रच्छा हो जाता है) । वह धरणीधर, (परमात्मा) धन्य है । वह प्रयोनि (हरी) पूर्ण रूप से सत्य तौलता है और बोलता है । कर्त्ता पुरुष की मिति कर्त्ता पुरुष ही जानता है अथवा श्रमा गुरु जानता है ॥ ३ ॥

(मनुष्य) द्वैतभाव में (पढ़कर) आत्म-ज्ञान गंवा देता है और (माया का) विश्वास कर गवं में गल जाता है । (ऐसे द्वैतवादी व्यक्ति के लिए) गुरु के (अमृत) रस का गीत व्यर्थ है, न तो (उसे) (वह गीत) प्रच्छा ही लगता है और न (वह) सुनता ही है; (इस प्रकार वह) गहरे और गंभीर (परमात्म-तत्त्व) को गंवा देता है । गुरु के सत्य कथन से ही (फिर उसने) अमृत प्राप्त किया (और उसके) तन मन सत्य (की प्राप्ति से) सुखी

हो गए। गुरु की शिक्षा (प्रभु) स्वयं ही देता है, (वह) आप ही (नाम-पदार्थ) देता है (और वह) आप ही अमृत पिलाता है ॥ ४ ॥

(मुख से) सभी कोई (परमात्मा) 'एक है', 'एक है'—ऐसा कहते हैं, (पर हृदय से अनुभव नहीं करते), (इसीलिए वे) अहंकार के गर्व में व्याप्त हो जाते हैं। (जो व्यक्ति) भीतर और बाहर एक (परमात्मा) को पहचानता है, उसे इस विधि से (उस परमात्मा का) महल और घर जान पड़ता है। प्रभु समीप ही है, (उस) हरी को दूर न समझो, सारी सृष्टि में एक हरी ही है। हे नानक, एक ओंकारस्वरूप (परमात्मा) ही है, और दूसरा कोई नहीं है, एक (प्रभु ही सर्वत्र) व्याप्त है ॥ ५ ॥

इस कर्ता पुरुष (परमात्मा) को किस प्रकार पकड़ कर रख सकते हो ? यह न पकड़ा जा सकता है और न तोला जा सकता है ? हे माया के भूटे (आकर्षणों की) ठगौरी में पड़ कर (विमुग्ध हुए) पगले प्राणी, (तुम सब लालच, लोभ और मुहताजी में अब तब (सदैव ही) नष्ट हो रहे हो। (अभी चेत जाग्रो, समय है), नहीं तो पड़ताओगे। यदि एक (परमात्मा) की सेवा करोगे, तभी गति-मिति पाओगे (और तभी) आना-जाना (जीवन-मरण) समाप्त होगा।

[विशेष ठगउरी : < ठगमूलि (संस्कृत) वह नशीली जड़ी, जिसे ठग लोग राहगीरो को खिला कर बेहोश करते हैं। माया भी ठगनेवाली है। इसीलिए 'ठगउरी' कहा गया है।] ॥६॥

एक (परमात्मा का) ही आचार है, (उसी का) रग है और उसी का रूप है। (एक परमात्मा आप ही) पवन, जल तथा अग्निस्वरूप है। एक जीवात्मा (भ्रमर) तीनों लोकों में भ्रमण कर रहा है, (जीवात्मा भी परमात्मा का ही स्वरूप है)। (जो व्यक्ति) इस एक (परमात्मा को) जान लेता है, (वह) मुलम्ब जाता है (और उसकी) प्रतिष्ठा होती है। (वह) व्यक्ति ज्ञान और ध्यान (का आश्रय) लेकर सम भाव से रहता है। गुरु की शिक्षा द्वारा कोई विरला ही एक (परमात्मा) को प्राप्त करता है। प्रभु (जिसके ऊपर) कृपा करके (इस ज्ञान को) देता है, वही इसे पाता है। गुरु के द्वारा (इस ज्ञान को) कहला कर सुनाता है ॥ ७ ॥

उर्मि और धूल [तात्पर्य यह कि लहरो (जल) तथा धूलमय (पृथ्वी)—जल धूल] में उसी की ज्योति का प्रकाश है। गुरु रूपी गोपाल (परमात्मा) तीनों भुवनो में व्याप्त है। प्रकाश में गुरु द्वारा प्रकट होकर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। (वह) कृपा करके अपने (हृदय रूपी) घर में ले आ कर स्थित करता है। निरन्तर—एकरस में (निर्भर की भाँति) झुक कर (अमृत) धार की वर्षा होती है। (गुरु का) उत्तम शब्द ही इसे संवारनेवाला है। (जो) इस एक का भेद जानता है, वह आप ही कर्ता और आप ही देव है ॥ ८ ॥

(जब साधक के अन्तःकरण में नाम रूपी) सूर्य उदय होता है, (तो, वह) (कामादिक) भ्रमुरो का संहार कर देता है। (वह) ऊँची दृष्टि से शब्द द्वारा विचार करता है, तो उसे तीनों लोकों के ऊपर, आदि और अंत में एक (हरी ही) कर्ता, वक्ता और श्रोता (दिखाई पड़ता) है। वही विधाता (रचयिता) (प्राणियों को) तन और मन देता है (और) वही

विधाता (उनके) मन और मुख में (व्याप्त) है । प्रभु ही जगत् का जीवन है, और (दूसरा) कोई नहीं है । हे नानक, नाम में अनुरक्त होने से प्रतिष्ठा होती है ॥ ९ ॥

(जो व्यक्ति) राजा राम का प्रेमी होकर (उनमें) रमण करता है (वह संसार रूपी) रणक्षेत्र में युद्ध करके मन को मार देता है । (वह) रात दिन (प्रभु के) रंग में रंगा रहता है । तीनों सुबनों और चारों युगों में (एक प्रभु ही) जाना जाता है, (प्रसिद्ध है) । जो (ऐसे प्रभु को इस रूप में) जान लेता है, वह उन्हीं के सट्टा हो जाता है । वह अत्यन्त पवित्र हो जाता है और उसका शरीर (जन्म) सफल हो जाता है, (तात्पर्य यह कि वह जीवन्मुक्त हो जाता है) । (वह) एक भाव से राम को हृदय में (धारण कर के) प्रसन्न रहेगा । वह (अपने) अन्तःकरण में (गुरु का) शब्द (धारण कर) (तथा परमात्मा से) सच्ची लिव लगा कर (सदैव ही आनन्दित रहेगा) ॥ १० ॥

(हरी से) क्रोध नहीं करो, (उसके नाम का) अमृत पियो, (यह समझ लो कि) इस संसार में नहीं रहना है । राजा, राय और कंगाल (किसी को भी) यहाँ नहीं रहना है; (वे सब) आते-जाते रहते हैं; चारों युगों (की यही प्रणाली रही है) । यह कहने से कि यही रहना है कोई नहीं सकता, (क्योंकि सभी लोभ जगत् की अपना मान बँट्टे है); (अतएव मैं) किससे प्रार्थना करूँ ? एक राम नाम ही ऐसा शब्द है, जिसका प्रभाव रोकना नहीं जा सकता, (जो विशेष रूप से उद्धार करनेवाला है), प्रतिष्ठा देनेवाली बुद्धि द्वारा गुरु ही इसे प्रदान करता है ॥ ११ ॥

मारनेवाली लोक-लज्जा (अब) मर गई है (अतएव वह स्त्री—जीवात्मा) अब प्रकट हो कर (धूँधट खोल कर) (अपना जीवन) व्यतीत करती है । अविद्या रूपी साम पगली हो गई है अब उसकी शंका सिर से टल गई है । प्रेमस्वरूप (परमात्मा) ने प्रेम से (उसे) बुलाया है, उसके मन में (परमात्मा के) शब्द का आनन्द आ गया है । लाल (अनुरागमय परमात्मा) में रंग कर (वह) लाल रंगवाली (अनुरागमयी) हो गयी, गुरु की शिक्षा द्वारा (वह) निश्चिन्त हो गई ॥ १२ ॥

नाम-रत्न ही (परम) लाभ है; (अतएव इसी) सार-तत्त्व को जपो । लालच, लोभ और अहंकार (बहुत ही) बुरे हैं । (किसी को छोड़ने के लिए) इधर-उधर से ले आ कर बातें कहनी तथा जुगली करनी (लाइतवार)—(ये बातें भी बहुत ही बुरी हैं) । मनमुख भ्रंशा (भ्रजानी), मूर्ख और गँवार है । वह लाभ के निमित्त इस जगत् में आया; (किन्तु) (बेगारी का) मजदूर होकर (वह ठगिनी माया से) ठगाता फिरता है । नाम की पूँजी का व्यापार करो—यही लाभ है । हे नानक, सच्चे पातशाह (बादशाह) को सच्ची प्रतिष्ठा होती है ॥ १३ ॥

(यह) संसार यम के पथ (का अनुगामी होने के कारण), यहाँ (आकर) नष्ट हो जाता है । माया (के प्रभाव) को मेटने में कोई भी समर्थ नहीं है । (यदि) माया को सेज (सैल) नीच के घर में भी हो, तो उसे देख कर (धनी, निर्धन) दोनों ही विनम्र होते हैं । यदि माया (धन-धान्य) हो, तो मूर्ख भी सयाना हो जाता है । भक्ति के बिना (सारा) जगत् बीराया है । वही एक (परमात्मा) सभी में बरत रहा है; (किन्तु) जिसके ऊपर कृपा करता है, उसी पर प्रकट होता है ॥ १४ ॥

निर्वैर (परमात्मा) युग-युगान्तरो से सदैव विराजमान है । उसे न तो जन्म-मरण है, (न वह किसी) धंधे में ही दोड़ता है । जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है, वह सब (परमात्मा) आप ही आप है । वह आप ही (सब को) उत्पन्न करता है और आप ही घट-घट को स्थापित करता है । (परमात्मा) आप तो अगोचर है, (किन्तु) लोग धधे में (लिस है) । योग की युक्ति में ही वह जग-जीवन (परमात्मा) है । उत्तम कर्मों के करने से ही सत्य और मुख (की प्राप्ति) होती है । बिना (परमात्मा के) नाम के मुक्ति (भला) किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? ॥ १५ ॥

बिना नाम के शरीर ही विरोधी हो जाता है । (नाम) क्यों नहीं मिलता, (जिससे हम अपने) मन की पीड़ा काट ले ? पथिक—मुसाफिर (जीवात्मा) वाट पर भ्रमता जाता है । (समझ में नहीं आता कि वह) क्या ले कर (इस संसार में) आया है और क्या पल्ले में लेकर (यहाँ से) (चला जाता है) । बिना नाम के सभी स्थानों में घाटा है । यदि (गुरु नाम को) समझा दे, तभी लाभ मिल सकता है । (सच्चा) व्यापारी (राम नाम का ही) व्यापार करता है । बिना नाम के श्रेष्ठ मान (वास्तविक सम्मान) कैसे (मिल सकता है) ? ॥ १६ ॥

(जो) गुणों को विचारता है, (वही) ज्ञानी होता है । गुणों (को अपने) में ही ज्ञान की प्राप्ति होती है । (किन्तु) इस संसार में कोई विरना ही गुणों को प्रदान करनेवाला है । सच्ची करनी को गुरु के द्वारा विचार करो । अगम, अगोचर (मन और इन्द्रियों से परे परमात्मा) की कीमत नहीं प्राप्त होती । यदि (परमात्मा अपने में) मिला ले, तभी (उसकी कीमत) प्राप्त होती है । गुणवती स्त्री नित्य प्रति (अपने पति परमात्मा के) गुणों को याद करती है । नानक (कहता है कि) हे मित्र गुरु की शिक्षा को प्राप्त करो ॥ १७ ॥

काम और क्रोध काया को (उसी प्रकार) गला डालते हैं, (जिस भाँति) सोने को सोहागा गला देता है । जो सोना (जितनी ही अधिक) कसौटी के कस को (तथा अग्नि के) ताप को सहता है, सर्राफ़ की दृष्टि में वह उतने ही (सुन्दर) बरगुं वाला होता है । जगत् पटु है और अहंकार रूप काल-कसाई है । कर्त्ता-गुरु ने (रचना) रच कर, (जीवों के) हाथ में करनी डाल दी है । (भाव यह कि जो जैसा कर्म करते हैं, वे वैसा फल पाते हैं) । जिस प्रभु ने सृष्टि-रचना की है, वही उसकी कीमत जान सकता है । (प्रभु की रचना के सम्बन्ध में) और क्या कहा जाय ? कुछ कहते नहीं बनता है ॥ १८ ॥

खोजते-खोजते (नाम रूपी) अमृत (मैंने) पी लिया । (मेरे) मन ने जब क्षमा ग्रहण कर ली, (तब) सद्गुरु ने (नाम रूपी अमृत) दे दिया । सभी कोई 'खरा खरा' कहते हैं । किन्तु खरा रत्न चारों युगों में (कोई विरला ही होता है), (तात्पर्य यह कि सच्चे साधक और सिद्ध बहुत कम होते हैं) । (जीवन पर्यन्त) खाते-पीते मर गए, (किन्तु परमात्मा को) नहीं जान पाए । यदि शब्द—नाम को पहचान लिया तो क्षण मात्र में (अहंभावना से) मृत्यु हो गयी । (अहंकार से) इस भाँति मरने से चित्त स्थिर हो गया, और मन मान गया (शान्त हो गया) । (इस प्रकार) गुरु की कृपा से नाम पहचान लिया गया ॥ १९ ॥

(हरी) आकाश की भाँति गंभीर (और व्यापक है); जब यह व्यापक हरी हृदय रूपी आकाश में बस जाता है, (तो जीवात्मा उसका) गुणगान करने लगती है और उसका

निवास सहजावस्था के सुख में हो जाता है । (ऐसा व्यक्ति) न तो जन्मता मरता है (और न कहीं) भ्रष्टा जाता है । (वह) गुरु की कृपा से (परमात्मा में) लिव लगाए (स्थिर भाव से विराजमान रहता है) । (परमात्मा) गगन की भाँति (व्यापक और निर्लिप्त है), (वह) (मन, वाणी, इन्द्रिय से) परे (अगम) है, उसका कोई नाश नहीं है, अयोनि है । (ऐसे परमात्मा में) चित्त का स्थिर हो जाना ही सगुण (एक रस वाली अथवा सजाति-प्रत्यय) समाधि है । (ऐ मनुष्य), (तू) हरि-नाम का स्मरण कर (जिससे) फिर योनि के अन्तर्गत न पड़ । गुरुमत ही श्रेष्ठ मत है और (मत) नाम के विहीन है ॥ २० ॥

(मैं) बहुत से धरो-दरवाजों में फिरते फिरते थक गया । (मैं) (जितने) असंख्य जन्म (धारण कर चुका हूँ), उनका अन्त नहीं है । कितनी (बार मैं) माता, पिता, पुत्र और पुत्री हो चुका हूँ । फिर कितनी ही बार गुरु और शिष्य भी हुआ हूँ । किन्तु कच्चा गुरु (होने) है मुक्त नहीं हो सका । यह समझ (कि परमात्मा ही) एक पति है और कितनी ही उसकी स्त्रियाँ हैं । गुरुमुख का मरना-जीना उस प्रभु पति के साथ ही होता है । दशों दिशाओं में दूँडते दूँडते, (अन्त में) घर में ही (उस प्रभु को मेने) पा लिया । सद्गुरु ने (मेरा और परमात्मा का) मिलाप कराया और मेल हो गया ॥ २१ ॥

गुरुमुख (गुरु का अनुयायी) (हरी) ही गाता और (हरी ही) बोलता है । वह स्वयं (हरी को) तौल करता है और (दूसरो से भी उसकी) तौल करवाता है, (तात्पर्य यह कि वह स्वयं हरी को परखता है और दूसरों से भी परखवाता है) । गुरुमुख (अपने) पापों को त्याग कर और कलंको को जला कर असंग—निर्लिप्त होकर भ्रष्टा-जाता है । गुरुवाणी नाद-वेद का विचार है और गुरुवाणी ही स्नान (पवित्रता), आचरण और शुभ कर्मकाण्ड है, (तात्पर्य यह कि गुरुवाणी के अभ्यास से ही उपर्युक्त पुण्य अपने आप घा जाते हैं) । गुरुवाणी का शब्द अमृत का भी सार है । हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा ही (संसार-सागर से) पार पाया जाता है ॥ २२ ॥

चंचल चित्त (एक) स्थान पर नहीं रहता । (जीव रूपी) मृग (पाप रूपी) नए भ्रंकुरों (खेती) को चोरी से खाता है [विशेष : उपर्युक्त पंक्ति का इस भाँति भी अर्थ हो सकता है—(कामादि) मृग (शुभ गुणों की) खेती को चोरी से खाते हैं] । (यदि परमात्मा के) कमलवत चरणों को हृदय और चित्त में धारण किया जाय, (तो मनुष्य को) नित्य नित्य शाश्वत जीवन तथा चेतना (प्राप्त होती है) । सभी कोई चिन्ताकुल ही दिखाई पड़ते हैं । (यदि वे) एक (हरी को) चेतें, तभी सुख प्राप्त हो । जिसके चित्त में (हरी का) नाम बसता है, (वह उसी में) अनुरक्त हो जाता है । वह मुक्त हो कर प्रतिष्ठा के साथ (परमात्मा के) घर में जाता है ॥ २३ ॥

शरीर नष्ट होने से (जो भ्रंगो की) एक गाँठ बँधी होती है (वह मानो खुल जाती है, (तात्पर्य यह कि शरीर-नष्ट-भ्रष्ट हो कर पंच पत्व, पंच भूतों में मिल जाते हैं) । (फिर कर) देख लो, यह जगत नाशवान और अनित्य है । (जो व्यक्ति) धूप और छाया (दुःख और सुख) को समान (समझ) कर जानता है, (वह) (अपने समस्त सांसारिक) बन्धनों को काट कर अपने घर में मुक्ति ले आता है । यह (माया की) छाया खोखली है, (किन्तु सारा) संसार (इसी में) भूला हुआ है । किरत के अनुसार निश्चय ही (परमात्मा का) परवाना

लिखा हुआ है। वृद्धावस्था (प्रा जाती है), और युवावस्था नष्ट होने लगती है; (देखते देखते) सिर पर काल प्रा पहुँचता है। शरीर भी नष्ट हो कर (तात्काल के) शिवार (घास के समान बिखर जाता है ।)

[विशेष : किरत—अपने किए हुए कर्मों के संस्कार दृढ़ होकर हमारे स्वभाव के अंग बन जाते हैं, इसी को 'किरत' कहा जाता है] ॥ २४ ॥

प्रभु आप ही तीनों लोको मे प्रतीत होता है। (वही) युग-युगान्तरो का दाता है, (उसके अतिरिक्त) और कोई (दाता) नहीं है। (हे प्रभु), (तुम्हें) जैसा अच्छा लगे, वैसा (मुझे) रख और रक्षा कर। (मैं उस प्रभु की) कीर्ति—बड़ाई की याचना करता हूँ, (वह मुझे) प्रतिष्ठा और शाख (विश्वास) देता है। (हे प्रभु), (मैं) जागते-जागते जग गया, (तात्पर्य यह कि मुझे तेरा ज्ञान हो गया), और तुम्हें अच्छा लगने लगा। यदि (तू), (मुझे अपने मे) मिलाता है, तभी (मैं तुम्हें मे) मिलता हूँ। हे जगदीश (परमात्मा), (मैं तेरा) जयजयकार मनाता हूँ (जपता हूँ)। गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) बीस विस्वे नहीं इक्कीस विस्वे (निश्चय ही) (परमात्मा से) मिलता है।

[विशेष : बीस-इक्कीस : (बीस-विस्वे)—यह पुराना मुहावरा है, जिसका अर्थ 'निश्चय ही' होता है। बीस-इक्कीस का तात्पर्य यह है कि 'बीस विस्वे नहीं बल्कि इक्कीस विस्वे', अर्थात् 'बिलकुल निश्चय'] ॥ २५ ॥

जगत् से क्या झगडा किया जाय ? (उस जगत् से) बोलना व्यर्थ बकवास करना है। (यह जगत् तो) प्रमाद मे रोना रोकर मरते हुए देखा जा रहा है। (सारा जगत्) जन्मत-मरता रहता है, (पर, सच्चे) जीवन की आशा (उसे) नहीं होती। (किन्तु संसार के दुःख के घपेड़ों मे, अपनी) आशाओं से निराश हो कर, वह आकर चला जाता है। दुखडा रो रोकर तथा व्यर्थ बकवाद कर (उसका शरीर) मिट्टी मे मिल जाता है। (किन्तु जो व्यक्ति) हरी का गुणगान करता है, उसे काल नहीं दबा सकता। (वह) हरि के नाम द्वारा नव निद्रियो को पा लेता है। हरा (अपना अमृत रूपी नाम) साधक को (अपने) सहज स्वभाव से देता है ॥ २६ ॥

(प्रभु) आप ही ज्ञान की बातें कहता है और आप ही (उसे) समझता भी है; वह आप ही समझता है (और आप ही दूसरो को) सुझाता है (समझाता है)। गुरु का कहना जिसके अंग मे समा जाता है, (भाव यह कि जो गुरु के कथन को स्वीकार कर लेता है), (वह) निर्मल, पवित्र और सत्य (परमात्मा) को अच्छा लगने लगता है। गुरु (गुरु रूपी) रत्नों का सागर है, (उसमें कोई) कमी नहीं है। (गुरु में) सच्चे लाल-पदार्थ भरे हैं, (वे) न समाप्त होने वाले हैं। (अतएव) गुरु (जो कुछ भी) कहे, उसी कार्य को करो। गुरु की करनी की और क्या दौडते हो ? (गुरु के कर्म उसकी लीला मात्र हैं। वे हमारी समझ के परे हैं)। हे नानक, गुरु की शिक्षा द्वारा सच्चे (परमात्मा) मे समा जाओ ॥ २७ ॥

सामने बोलने से प्रेम टूट जाता है, (भाव परमात्मा का हुक्म मानने ही मे सुख है, तर्क-वितर्क करने में ठीक नहीं है)। दो (विपरीत) दिशाओं में खींचने से बाँह टूट जाती है और बुरा बोलने से (कुवाच्य कहने से) प्रीति टूट जाती है। बुरी मतिवाली (स्त्री) को पति त्याग देता है। यदि (प्रेम की) गाँठ टूट जाय, तो विचार द्वारा वह फिर पड़ सकती है,

(तात्पर्य यह कि टूटा हुआ सम्बन्ध फिर जुड़ सकता है, यदि मनुष्य यह विचार करे कि मुझसे क्या भूल हुई थी और क्यों वियोग हुआ है)। गुरु के शब्द द्वारा (अपने वास्तविक) घर (आत्मस्वरूपी घर) का कार्य सँभालो ; (इससे) सत्य (परमात्मा) का लाभ होगा (और किसी प्रकार का) घाटा नहीं होगा । त्रिभुवन का स्वामी (अपने भक्तों का) बड़ा प्रेमी है ॥ २८ ॥

मन को रोको और (अपने) स्थान पर रखो । (जीवात्मा रूपी झिझी आपस में) टक्कर खा खा कर मर गई (और अपने) भ्रवयुगो के कारण पछताती है । स्वामी तो एक मात्र (परमात्मा) है, (और लोग तो) सब उसकी झिझी हैं । झूठी (स्त्री) अनेक वेग धारण करती है । (किन्तु) दूसरे के घर में जाती हुई रोक दी जाती है । (पर जब उसे) महल में (पति-परमात्मा ने स्वयं) बुला लिया, (तो उसे कोई) रुकावट नहीं होती । जो (स्त्री) शब्द द्वारा संवारी गई है, (वही परमात्मा की) सच्ची प्रियतमा है । वही सुहागिनी है, (जिसे) स्वामी (परमात्मा) ने प्रीतिकार कर लिया है ॥ २९ ॥

हे सखी, (प्रियतम की खोज में) डोलते डोलते (मेरे सारे) वस्त्र फट गए और श्रृङ्गार (बिलर गए) । ईर्ष्या से शरीर में सुख नहीं होता (और) बिना (परमात्मा के) डर के (सारा) समूह (डार) नष्ट ही जाता है । (जब मैं संसार के) भय से अपने घर में ही मरने लगी, तो सुजान कंत ने (कृपादृष्टि से) मुझे देखा । मेरे गुरु ने निर्भय (परमात्मा) के नाम का वर्णन करके (मेरा) भय रोक दिया । (जब मैं ग्रहंकार रूपी) पर्वत पर बसती थी, तो मेरे भ्रन्तर्गत भ्रत्यंत तृषा (सासारिक तृष्णा) थी, (किन्तु) जब (मैंने) (ज्ञान की दृष्टि से) देखा, तो (तृषा निवारण करनेवाले पति परमात्मा को) प्रति निकट—(दूर नहीं) पाया । (मेने) शब्द—नाम का मनन करके (अपनी सासारिक) प्यास का निवारण कर दिया (और नाम रूपी) भ्रमृत (पेट) भर कर पिया । सभी कोई यही कहते हैं—(‘हे प्रभु’, दो, दो’, (किन्तु) जो (उसे) ग्रच्छा लगता है, उसी को वह देता है । गुरु के द्वार पर ही (परमात्मा) देगा ; और वही गुरु तृषा निवारण करेगा ॥ ३० ॥

हूँड़ती हूँड़ती मैं फिर रही हूँ (पर पति परमात्मा को नहीं पा रही हूँ) (संसार एक नदी के समान है, जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है । साधारणतया अधिकांश मनुष्य इसके किनारे पर ही) बह बह के गिर पड़ते हैं । (जो) (पापों के बोझ से) भारी हैं, (वे तो) बह बह के गिर पड़ते हैं, (और जो पुण्यों से) हल्के हैं, (वे) पार हो जाते हैं । (जिन्हें) भ्रमर और भ्रयाचक (बेमुहताज) हरी प्राप्त होता है, उन पर मैं बलिहारी हो जाती हूँ । उनकी धूलि (संसार से) मुक्त करती है (छुड़ाती है) ; (भ्रतएव) सत्संगति के मिलाप में मिलो, (क्योंकि यह सत्संगति मोक्ष-दायिनी है) । गुरु के द्वारा (मैंने) अपना मन (परमात्मा को) दे दिया है, (जिसके फलस्वरूप) (उनका) निर्मल नाम पा लिया है । जिस (गुरु ने) मुझे (हरी का) नाम दिया है, उसकी सेवा करूँगा, भार उस पर बलिहारी हो जाता हूँ । जिस (प्रभु ने) (सृष्टि का) निर्माण किया है, (वही इसका) विनाश भी करेगा ; उसके बिना दूसरा और कोई न (रचयिता है, न पालनकर्त्ता है और न संहारकर्त्ता है) । गुरु की कृपा से (यदि) वह स्मरण किया जाय, (तो) शरीर में कष्ट नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

(इस संसार में) मेरा कोई नहीं है ; भवः किसे (रक्षा के लिए) पकड़ूँ ? (प्रभु के अतिरिक्त) दूसरा न कोई हुआ है और न होगा । भाने-जाने में (जन्म धारण करने में और

मरने में) (मनुष्य) नष्ट होता है (और उसे) द्वैतभाव का (महान्) रोग व्याप्त हो जाता है (यस लेता है) । नाम से बिहीन मनुष्य रेत की दीवाल की भाँति (क्षणभंगुर है) और गिर जाते हैं । बिना नाम के (मनुष्य का) छुटकारा किस भाँति हो सकता है ? अंत में वह (यहाँ से) रसातल (पाताल—निम्न लोकों, नरक से अभिप्राय है) को जाता है । उस सच्चे और अगणित (अनन्त) प्रभु को (मनुष्य) गिनती देकर अक्षरों द्वारा वर्णन करता है, (पर भला वह अनन्त ब्रह्म की किस प्रकार गणना कर सकता है) ? (माया में अस्त) अज्ञानी (मनुष्य) बुद्धिहीन है, (तभी तो वह परमात्मा को गिनती के अन्तर्गत ले आना चाहता है) । गुरु के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता । (परमात्मा से) बिछुड़े हुए जीव, रवाब के टूटे तार की भाँति है, (जिस भाँति टूटे तार से कोई स्वर नहीं निकल सकता, उसी भाँति बिछुड़े जीव में आनन्द का कोई स्वर नहीं निकलता) । हे नानक, उन बिछुड़े हुआ को प्रभु ही संयोग से (अपने में) मिला लेता है ॥ ३२ ॥

शरीर रूपी वृक्ष पर मन रूपी पक्षी (निवास करता है), [शरीर मन का अधिष्ठान है । मन का स्वरूप संकल्प-विकल्प करना और सुख-दुःख भोगना है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के समूह को 'अन्तःकरण चतुष्टय' कहते हैं । इसलिए अगली तुको में पक्षी का रूप बहु वचन लिखा गया है । गुरुवाणी में 'मन' का अर्थ प्रायः 'जीवात्मा' होता है] । (उस काया रूपी वृक्ष पर) एक और पक्षी है, (जो) श्रेष्ठ (पंच) है—(यह है 'परमात्मा') । [इस प्रकार, मन रूपी पक्षी और परमात्मा रूपी पक्षी एक ही काया रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं] । एक (परमात्मा) से मिल कर, (जब वे पक्षी) (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) तत्त्व (परमात्म-तत्त्व) चुम्बते हैं, (तो उन्हें) रंच मात्र भी फाँस (में पड़ने का भय नहीं रहता—वे सासारिक बन्धनों में नहीं आते) । (किन्तु यदि वे पक्षी परमात्मा से) पृथक् पृथक् हो कर उड़ते हैं (और विषय रूपी) सुन्दर चारे को देखते हैं, तो उनके पंख टूट जाते हैं, (अर्थात् साधन-सम्पत्ति-बिहीन हो जाने हैं और किए पापों की) भीड़ आकर इकट्ठी हो जाती है । (बंधन में पड़ जाने से) बिना सत्य (परमात्मा) के किस प्रकार छूटा जाय ? हरी—गुण रूपी मणि—कृपा (में ही प्राप्त होती है) । (प्रभु-हरी) (जब) आप (इस बंधन से) छुड़ाए, (तभी जीव) छूट सकता है, (क्योंकि) वह स्वामी (बहुत) बड़ा है । (जब) (प्रभु) आप ही कृपा करें, तभी गुरु की कृपा में जीव (बंधनों से) छूट सकता है, (अन्यथा नहीं) । उसी (प्रभु के) अपने हाथ में बड़ाई है; (किन्तु) जिसे (देने को) प्रिय लगती है, उसी को (वह) प्रदान करता है ॥ ३३ ॥

(जब) जीव (अपने वास्तविक स्थान से बिछुड़ कर) स्थान-बिहीन हो जाता है, (तो वह) थरथर काँपने लगता है । स्थान वाला और मान वाला एक सच्चा (हरी) ही है, (उसके द्वारा बनाया हुआ कोई भी) काम, नहीं बिगड़ता है । (इस जगत् में) नारायण स्थिर है, गुरु स्थिर है, सच्चा विचार (ब्रह्मज्ञान) स्थिर है, (बाकी सब कुछ नश्वर और अनित्य है) । (हे हरी), देवताओं, मनुष्यों और नाथों का नाथ (तू ही है), निराधारों का आधार भी (तू ही है) । हे दाताओं का दाता, तू सभी स्थान-स्थानान्तरी (में व्याप्त है, रमा है) । जहाँ देखता है, वहाँ एक तू ही (दिखाई देता है), तेरा विस्तार और अन्त नहीं है । गुरु के शब्दों पर विचार करने से (यह भलीभाँति अनुभव हो जाता है कि) तू ही स्थान-स्थानान्तरों में रमा हुआ है । हे महान्, अगम अगार (हरी), तू बिना मणि ही दान देगा ॥ ३४ ॥

हे दयालु (प्रभु, तू) (सृष्टि) रच कर (उसको) देखभाल करने वाला है ; (मुझे) दया का दान (दे) । हे प्रभु, तू दया करके (मुझे अपने मे) मिला ले, (क्योंकि तू सर्व-सामर्थ्यवान् है, जिससे सब कुछ सम्भव है । तू) क्षण (मात्र) में (सृष्टि को) नष्ट कर सकता है, (और क्षण मात्र ही में उसका) निर्माण भी कर सकता है । तू ही ज्ञाता है, तू ही द्रष्टा है (और तू ही) श्रेष्ठ दानो को देनेवाला है । (हे प्रभु), (तू ही) दरिद्रता को नष्ट करनेवाला तथा दुःखो को दलनेवाला है ; गुरु द्वारा ही (तेरा) ज्ञान और ध्यान (प्राप्त होता है) ॥ ३५ ॥

धन के चले जाने से (मनुष्य) बैठ कर (बहुत) दुःखी होता है ; मूर्ख का चित्त धन में ही रहता है । (किन्हीं) विरलो ने ही प्रेम द्वारा पवित्र नाम रूपी सच्चे धन का सग्रह किया है । एक (परमात्मा) के रंग में (जो व्यक्ति) रंगे है, (उनको मनस्विता धन में नहीं रमती) ; (वे तो) धन चला गया, (तो उसे) चले जाने देते हैं, (उसकी चिन्ता नहीं करने) । (वे लोग तो) मन देकर और सिर सोंप कर भी कर्ता-पुरुष का आश्रय (पकड़े रहते हैं) । (साधक के) मन में (जब) शब्द—नाम का आनन्द प्राप्त हो जाता है, (तो सासारिक) धंधो (प्रपंचो) (के पीछे) दौडना समाप्त हो जाता है । जब गुरु-गोविन्द मिल जाता है, तो दुष्ट व्यक्ति भी सज्जन हो जाते हैं । जिस वस्तु (परमात्म-वस्तु को) बन बन में ढूँढती फिरती थी, (वह तो) (अपने हृदय रूपी) घर में ही (उपस्थित) थी । मैं सद्गुरु से मिली, और अपना जन्म-मरण दुःख (सदैव के लिए) दूर कर के उनके साथ मिल कर (एक) हो गई ॥ ३६ ॥

नाना प्रकार के (कर्मों के) करने से छुटकारा नहीं प्राप्त होता । ऐसे (मनुष्यों के लिये) न यही लोक मिलता है और न परलोक ही प्राप्त होता है ; (वे अपने) अवगुणों (के कारण) बार बार पछताते हैं । उनमें न ज्ञान है, न ध्यान है, न धर्म है और न ध्यान है । बिना नाम (की प्राप्ति के मनुष्य) निर्भय कैसे (हो सकता है ? (नाम विहीन पुरुष) अहंकार (के अवगुणों) को किस प्रकार समझ सकता है ? मैं (मार्ग में) रुक गई हूँ, (उस प्रियतम तक) कैसे पहुँचूँ ? (उसका) न (कोई) हाथ से (थाह पायो जा सकती है) और न पार ही है । न तो वे रंगीले प्रियतम ही हैं, फिर (भला) किसके पास पुकार करूँ ? नानक कहते हैं, (कि हे जीवात्मा रूपी स्त्री), यदि तू 'हे प्रिय, हे प्रिय' की रट लगाओ, तो मिलाने वाला प्रियतम (निश्चित रूप से तुझे अपने में) मिला लेगा । जिसने विछोह कराया है, वही गुरु के अपार प्रेम के माध्यम से (तुझे अपने में) मिला लेगा ॥ ३७ ॥

(यद्यपि) पाप बुरा है, (फिर भी) पापी (मनुष्य को) (पाप करना) प्रिय लगता है । (पापी मनुष्य) पाप (के बोझ से ही) लदता है और (व्यवहार में भी पाप का) विस्तार करता है । (जो व्यक्ति) पाप को त्याग कर अपने आप को (आत्मस्वरूप) को पहचान लेता है, उसे न तो शोक होता है, न विद्वेग होता है और न (किसी प्रकार का) संताप होता है । (मनुष्य) नरक में पडने से किस प्रकार बचे ? (और वह) काल (रूपी) यमराज से किस प्रकार बचे ? (उसका) जाना जाना (जन्म धारण करना और मरना) किस प्रकार भूने (समाप्त हो) ? [इसका उत्तर यह है कि भूत का परित्याग करे, क्योंकि] भूत (बहुत ही) बुरा और नाश करनेवाला है । (यह) मन जंजालों (प्रपंचों) में, बन्धनों

से घिरा हुआ है। बिना नाम का (आश्रय ग्रहण किए हुए) (मनुष्य) किस प्रकार छूट सकते हैं ? (वे तो बिना नाम के) पापों में सड़ते-गलते हैं ? ॥३८॥

(कोवा) कोवे की वृत्ति वाला दुष्ट मनुष्य बार बार जाल में फँसता है और बार बार पछताता है। (किन्तु) अब (पछताने से) हो क्या सकता है ? (वह) फँसा हुआ (जीव रूपी पक्षी) (विषय रूपी) चारे को चुगता है, और यह नहीं समझता (कि यह चारा नहीं है बल्कि मेरी मृत्यु का सामान है)। (यदि संयोगवश उसे) सद्गुरु प्राप्त हो जाय, तो उसे आँखों से सुझाई पड़े। (उस फँसे हुए जीव को ठीक वही दशा होती है), जैसे मछली यमराज के जाल में फँस गई हो। बिना दाता गुरु के मुक्ति मत खोजो, (यह नहीं प्राप्त हो सकती ; और बिना मुक्ति-प्राप्ति के जीव) बार बार म्रता है और बार बार जाता है, (जन्म-मरण के चक्र में निरन्तर पड़ता रहता है)। (गुरु की शिक्षा से) एक (हरी) के रंग में रंग जाय और उसके एकनिष्ठ ध्यान में निमग्न रहे— (मनुष्य) इस प्रकार (जाल से) छूटता है और फिर जाल में नहीं पड़ता ॥३९॥

(शरीर रूपी बहिन जीवात्मा रूपी भाई के चले जाने पर) ‘हे भाई, हे भाई’, करती रहती है, किन्तु भाई (जीवात्मा) तो बैरी (के समान) हो गया है और एक बार भी अपनी बहिन (शरीर) की ओर नहीं देखता है। भाई (जीवात्मा) तो अपने घर चल देता है और बहिन (शरीर) (भाई के) वियोग में जल जाती है। पिता के घर की पुत्री (इस संसार में जीवात्मा), (अभी खेत में—माया में) (अन्य) बालिकाओं तथा बालकों (माया के आकर्षणों से) स्नेह करती है। किन्तु हे कामिनी (स्त्री), यदि तू सचमुच (परमात्मा रूपी) घर को चाहती है, (तो इस खेल की बालिकाओं और बालकों को— मायिक आकर्षणों को त्याग दे और) सद्गुरु की सेवा कर, (क्योंकि वही पति-परमात्मा से मिलायेगा बूझा कोई नहीं)। ब्रह्मज्ञानी को समझनेवाला विरला ही होता है ; सद्गुरु को सच्चा (परमात्मा) प्राप्त होता है। ठाकुर (परमात्मा) के हाथ में ही (सारी) बड़ाई है, जिस पर उसकी छपा झो, उसी को प्रदान करता है। कोई विरला ही व्यक्ति गुरुवाणी पर विचार करता है ; यदि कोई गुरुमुख हो तो। महापुरुष (सद्गुरु) की इस वाणी (पर विचार करने से अपने आत्मस्वरूप के घर में निवास होता है) ॥४०॥

(सर्व शक्तिमान् प्रभु) तोड़ तोड़ करके बनाता है और बना बना कर तोड़ता है ; ढहा कर निर्माण करता है और निर्माण करके फिर ढहाता है। (वह प्रभु) (संसार रूपी) सागर को भर कर सुखाता है और (उसे) फिर भरता और पोषण करता है, (तात्पर्य यह कि सर्व सामर्थ्यवान् हरी सृष्टि उत्पन्न करता है, पालन करता है और संहार करता है। उसके उत्पत्ति-पालन-संहार का यह चक्र अनवरत गति से चलता रहता है)। (किन्तु प्राणी माया में आसक्त हो कर) भ्रम में भूल गए हैं और पगले हो गये हैं। बिना आश्रय के (वे बेचारे) क्या पा सकते हैं ? गुरुमुखों की तो ज्ञान रूपी डोरी प्रभु ने (स्वयं) पकड़ रखी है ; (वह प्रभु उन्हें) जिधर खींचता है, (वे) उधर जाते हैं। (वे) हरि का गुणगान कर सदा (उसके) रंग में रंगे रहते हैं और फिर कभी नहीं पछताते है। ‘भम्भे’ (‘भ’ से यह अभिप्राय है कि हरी को) खोजो और गुरु द्वारा समझो, तभी अपने (वास्तविक) निज घर में निवास पा सकते हो। ‘भम्भे’ (से यह भी अभिप्राय है कि) संसार-सागर (के तरने का) मार्ग

(बहुत ही) कठिन है ; आशा-निराशा (से परे होकर यह संसार-सागर) तरा जा सकता है ।
गुरु की कृपा से अपने आप को पहचाने; इस प्रकार जीवित हो (अहंकार से) मर जाय, (यही
जीवन्मुक्ति है और यही सहजावस्था है) ॥४१॥

(सभी लोग) 'माया माया' कह कर मर गये, (किन्तु) माया किसी के साथ नहीं
गई । दुर्चिन्ता हंस (जीवात्मा) (यहाँ से) उठ कर चलता बना और माया यही [आधि =
अन्न] भूली रह गई । झूठा मन (जीवात्मा) यमराज द्वारा देखा जाता (दुख पाता है)
(और वह अपने) साथ अवगुण ही लेकर जाता है । यदि (मनुष्य के) साथ गुण होते हैं,
तो (अहंकारी) मन (ज्योतिर्मय) मन में उलट कर मर जाता है, (तात्पर्य यह कि अहंकारी
मन अपने स्वरूप को त्याग कर ज्योतिर्मय मन में परिवर्तित हो जाता है । लोग (अहंकार में
आकर) 'मेरी मेरी' (कह) कर मर गए, (इस प्रकार, इस संसार में) बिना नाम के
(सत्सारिक) वस्तुओं के लिये प्रयास करना (दुःख ही खोजना है । गढ़, घर, महल और कचहरी
कहाँ है ? (ये सब, बाजोगर के) खेल (की भाँति) (नश्वर और अनित्य है) । हे नानक,
नाम के बिना (सारा जगत्) झूठा है और आना-जाना (जीवन मरण) चलता रहता है ।
(प्रभु) आप ही चतुर, सुहावने रूपवाला, जाननेवाला और सजाना है ॥ ४२ ॥

जो (प्राणी) (इस संसार में) आते हैं, (वे निश्चित रूप में यहाँ से) चले जाते हैं,
(इस प्रकार वे) बारंबार आ-जा कर (जन्म धारण कर और मर कर) पछतते रहते हैं ।
(उनके लिए) चौरासी लाख योनिवाली मेदिनी (सृष्टि) है; (जिससे) न घटना है और न
जिसके ऊपर बढ़ना है, (अर्थात् उन्हें पूरे चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाना पड़ेगा) ।
वे ही (मनुष्य इस चौरासी लाख योनि के भ्रमण से) उबरते हैं, जिन्हें हरि प्रिय लगता है ।
(सासारिक) प्रपंचों के नष्ट हो जाने पर, माया भी नष्ट हो जाती है । (इस संसार में) जो
(कुछ भी) दिखाई पड़ रहा है, सब चला जायगा; (अतः) किसे (अपना) मित्र बनाऊँ ?
(मैं) (परमात्मा के सम्मुख अपना जी) प्राण सोपता हूँ, (उसी के) आंग (अपना) तन
और मन देता हूँ । हे स्वामी, (इस संसार में) तू ही एक स्थिर है, (शेष सभी वस्तुएँ अनित्य
और नश्वर हैं), अतएव मैं उसी प्रभु की शरण (पकड़ रहा हूँ) । गुणों की मारी हुई सारी
अहंभावना मर जाती है; शब्द—नाम (अथवा गुरु के उपदेश) में अनुरक्त होने से मन को
(आन्तरिक) चोट लगती है, (जिससे वह अपनी चंचलता को त्याग कर आत्मस्वरूप में
सहज भाव से स्थिर हो जाता है) ॥४३॥

(इस जगत् में) राणा, राव, रंक (गरीब), ऊँचा (अमीर, प्रधान, मुखिया) और
फकीर कोई भी नहीं रहता । अपनी अपनी बारी (सभी को जाना है); कोई (यहाँ) ठहर
नहीं सकता । (परमात्मा की प्राप्ति का) मार्ग (बहुत) बुरा और भयानक (दुर्गम) है—
(इसमें) अथाह समुद्र और पर्वत हैं । मेरे शरीर में अवगुण ही अवगुण हैं, (इसीलिए) दुखों
होकर मर रही हूँ, बिना गुणों के (अपने वास्तविक) घर में (आत्मस्वरूपी घर में) कैसे
जाना होगा ? गुणियों ने (अपने) गुणों को लेकर प्रभु से साक्षात्कार कर लिया; मैं उन
(गुणियों) से किस प्रकार प्यार से मिलूँ ? हृदय में मुरारी (परमात्मा) का नाम जप जप
कर मैं उन्हीं के समान हो रही हूँ । (मनुष्य) अवगुणों से परिपूर्ण हैं, (किन्तु इसके) साथ ही
साथ (उसमें) गुण भी वसते हैं । (पर) बिना सद्गुरु के (वे) गुण दिखाई नहीं पड़ते;

जब तक (गुरु के) शब्द के ऊपर विचार नहीं किया जाता, (तब तक गुरु प्रकट नहीं होते) ॥४४॥

(वे) सिपाही (जो जीवन का खेल खेलने के लिए तैयार हैं अपने अपने) डेरे सम्हाल लिए हैं; (वे लोग प्रभु परमात्मा के यहाँ से अपनी) तनस्वाहा लिखा कर (इस संसार में) काम करने के लिए आए हैं । वे (अपने) सिर (के बल पर) मालिक का काम करते हैं और पल्ले में लाभ पाते हैं । (परमात्मा के ऐसे सिपाहियों—उसके मक्तो ने) लालच, लोभ (आदि) बुराईयों को त्याग कर मन से भी भुला दिया है, (उनके मन में भी लालच, लोभ आदि के संस्कार नहीं जाग्रत होते) । (वे शरीर रूपी) गढ़ में पातशाह (हरी) की दुहराई (दोही) देते हैं, (और वे जीवन के युद्धस्थल में) कभी नहीं हारते । (इसके विपरीत) (अपने को) स्वामी का नौकर तो कहे, (किन्तु स्वामी के) सामने उत्तर-प्रत्युत्तर दे—(ऐसा नौकर) अपनी तनस्वाहा गँवा देता है, (और स्वामी भी उसे) तस्त् पर (ऊँची पदवी पर) नहीं रहने देता । प्रियतम (हरी) के ही हाथ में (सारी) बड़ाईयाँ हैं; जिस पर उसकी कृपा होती है, उसी को प्रदान करता है । (प्रभु सब कुछ) आप ही करता है, (और किसे कर्ता) कहा जाय ? (एक परमात्मा को छोड़कर) अन्य कोई भी नहीं कर्ता है ॥४५॥

(मुझे) दूसरा कोई नहीं सूझ पड़ता है, जो आसन लगा कर बैठे, (अर्थात् दूसरो पर हुकम करे; हुकम करनेवाला एक परमात्मा को छोड़कर और दूसरा कोई नहीं है) । नरक निवारण करने वाला नरो का नर (परमात्मा) ही है, वह सच्चे नाम करके सच्चा है । (मैं) वनो के वृण-वृण तक को ढूँढती फिरी और मन में विचार करती रही—(कि नाम रूपी) लाल, रक्त और माणिक्य बहुमूल्य है, (किन्तु) इसका भाण्डार सद्गुरु के हाथ में है । (जो) एक मन (वाला हो) और एक भाव (वाला हो) (और साथ ही गुणों में) उत्तम हो, (उसी को) प्रभु प्राप्त होता है । नानक कहते हैं (कि ऐसे व्यक्ति से) प्रियतम (परमात्मा) (बड़े) प्रेम से मिलता है (और वह व्यक्ति) परलोक के लिए लाभ लेकर जाता है । जिस प्रभु ने (समस्त) सृष्टि-रचना रची है, जिसने समस्त आकार (स्वरूप) का सृजन किया है और जिसका न अन्त है, न विस्तार, (उस) अनन्त (हरी) का गुरु द्वारा ध्यान करो ॥४६॥

डाढ़े (ड) (से यह अभिप्राय है कि एकमात्र) वही हरी सुन्दर (रूडा) है । उसके बिना (इस सृष्टि का) और कोई राजा नहीं है । 'डाढ़े' ('ड' के द्वारा गुरु नानक जी कहते हैं कि ऐ मनुष्य), तू गारुड मंत्र सुन—(गारुड सर्प का विष-नाशक मंत्र है और इस मंत्र का देवता गरुड है; भ्रजान रूपी विष को नष्ट करनेवाला गुरु-मंत्र ही गारुड-मंत्र है); (गुरु के उपदेश द्वारा) हरि को मन में बसाना ही (गारुड-मंत्र है) । गुरु की कृपा से ही हरि पाया जाता है; (यह ध्रुव सिद्धांत है), कोई भ्रम में न भूले । वही सच्चा साहूकार है, जिसके पास हरि रूपी धन की पूँजी (राशि) है । जो पूर्ण गुरुमुख (गुरु का अनुयायी) है, उसे धन्य है । (गुरु की) सुन्दर बाणी तथा गुरु के शब्दों पर विचार करने से (मैंने) हरि को पा लिया । (जीवात्मा रूपी) स्त्री ने (जब) हरी रूपी वर पा लिया, (तो उसका) ग्रहभाव दूर हो गया और दुःख कट गया ॥४७॥

सोने-चाँदी का संग्रह तो किया जाय; (पर) यह धन कच्चा (नश्वर) है, विष (के सवान है) और साक (हो जानेवाला है) । (इस संसार में) धन-संग्रह करके (लोग)

साहूकार कहलते है, (किन्तु) द्वेतभाव मे नष्ट हो जाते है। सच्चा (मनुष्य तो) सत्य (हरी) का संग्रह करता है; (हरी का) सच्चा नाम अमृत्य है। हरी निर्मल (माया से रहित) और उज्ज्वल (पवित्र) है, (उसकी) सच्ची प्रतिष्ठा और सच्ची बाणी है। (हे हरी), [तू ही साजन है, तू ही मित्र है, तू ही सुजान है, तू ही सरोवर है और तू ही] (उस सरोवर में बिहार करनेवाला) हंस है। (जिसके) मन में सच्चा ठाकुर (स्वामी, प्रभु) निवास करता है, मैं उस (व्यक्ति) पर बलिहारी हूँ। (संसार को) मोहनेवाली माया और ममता का जिस (परमात्मा) ने निर्माण किया है, (वही इनके रहस्य को) जाने। जो सुजान पुरुष (परमात्मा) को जानता है, (उसकी दृष्टि में) बिष और अमृत (दुःख और सुख) एक (समान) है ॥४८॥

ताखीं, असंख्य (मनुष्य) बिना क्षमा (धारण किए) कुंठे में (पड़ कर) खप गए (नष्ट हो गए)। (जितने लोग नष्ट हो गए, उनकी) गिनती नहीं की जा सकती; (फिर मैं उनकी) गणना किस प्रकार करूँ ? (केवल इतना कह सकता हूँ कि) असंख्य व्यक्ति (बिना क्षमा के) खप खप कर मर गए। (यदि कोई अपने) पति (परमात्मा) को पहचान ले, तो उसके बन्धन खुल जाते है (और फिर वह) बन्धनो मे नहीं पड़ता। तू शब्द—नाम द्वारा खरा (पवित्र) होकर (परमात्मा के) महलों में (जाने का अधिकारी हो जायगा) और क्षमाभाव तथा सत्य स्वभावतः ही (सहज भाव से, सुखपूर्वक) (तेरे अन्तःकरण मे प्रविष्ट हो जायेंगे। फिर तेरे शरीर मे खर्च के लिए ध्यान रूपी खरा (पवित्र) धन (अपने आप) आकर बस जायगा, (तात्पर्य यह कि सहज ध्यान के द्वारा तू सहज स्थिति मे स्थित हो जायगा)। तेरे तन, मन और मुख सदैव (हरी का) जप करते रहेंगे, अन्तःकरण में गुणों (का समावेश हो जायगा) और मन मे धैर्य (टिक जायगा)। अहंकार में (जीव) खपता-खपता रहता है; (हरी के बिना) दूसरी वस्तु ही विकार (रूप) है। (कर्त्ता पुरुष) प्राणियो को रच कर (उनके बीच में) स्वतः प्रविष्ट हो गया, (किन्तु फिर भी वह) कर्त्ता पुरुष सबसे पृथक् (निलम्बित) और अपार है ॥४९॥

सृष्टि-रचयिता का भेद कोई भी नहीं जान सकता। (जो कुछ) सृष्टि-निर्माता करता है, वह निश्चित रूप से होता है। (मनुष्य) धन के निमित्त ईश्वर का ध्यान करते हैं, (किन्तु वे यह नहीं जानते कि) पूर्व के कर्मानुसार ही संपत्ति प्राप्त होती है। संपत्ति के ही निमित्त (बड़े बड़े विश्वसनीय) नौकर चोर बन जाते हैं, (किन्तु उनके साथ) संपत्ति नहीं जाती। बिना सत्य (परमात्मा की) आराधना किए (उसके) दरबार मे मान नहीं प्राप्त होता। हरि के (अमृत) रस पीने से ही (अंत मे) मनुष्य का छुटकारा होता है ॥५०॥

हे सखी, (मैं प्रियतम परमात्मा) को देख देख कर (विस्माद अवस्था—आश्चर्यमयी अवस्था, मे पड़ कर हैरान हो गई। (इस विस्माद अवस्था की प्राप्ति से) 'मैं मैं' करने वाली अहंभावना मर गई, शब्द—नाम मे रमण करने से मन मे अज्ञान हो गया। हार, विवाह के समय के आभूषण (डोर), तथा कगन (आदि) बहुत से (आभूषणों को पहन कर) और (नाना भाँति के अन्ध) शृङ्गारों (से सज कर) थक गई। (किन्तु इन शृङ्गारों से कुछ भी नहीं हुआ, जब) प्रियतम से मिली, तभी सुख की प्राप्ति हुई, (इस प्रकार) समस्त गुणों के हार (परमात्मा को मैंने अपने) गले मे (धारण कर लिया)। हे नानक, शुरु के द्वारा हो

(प्रियतम) हरी से प्रीति और प्यार प्राप्त होता है। मन में विचार करके (यह) देखो कि हरी के बिना किसने सुख पाया है ? (अतएव, तुम) हरी को ही पढ़ो, हरी को ही समझो और हरी से ही प्रेम रखो; हरी को जपो, हरि का ही ध्यान करो और हरि-नाम को ही (अपना) आश्रय बनाओ ॥५१॥

हे सखी, कर्तार ने जो लेख लिख दिया है, वह (कभी) नहीं मिटता । (हरी) जो स्वयं (सृष्टि का मूल) कारण है (और) जिसने (समस्त सृष्टि) रची है, वही कृपा करके (साधक के अन्तःकरण में) बरण रखता है, (तात्पर्य यह कि उसे प्राप्त होता है) । कर्ता पुरुष के हाथ में समस्त बढ़ाईयाँ (विभूतियाँ) हैं, गुरु के द्वारा विचार करके (उन्हें) समझो । (हे प्रभु) (तेरा) लिखा हुआ लेख, (कोई) भेट नहीं सकता, (अतएव, हे हरी) जैसे तुझे अच्छा लगे, वैसे (मेरी) संभाल कर । नानक का कथन है कि तेरी कृपादृष्टि से तथा (गुरु के) शब्द को विचार कर (मैंने) बहुत सुख पाया । मनमुख (माया में) भूल कर (भटक कर) जल कर (दुखी होकर) मर गए (और गुरुमुख) गुरु द्वारा विचार करके (इस संसार-सागर) से तर गए । जो (व्यक्ति) (कर्ता) पुरुष की कृपादृष्टि में नहीं आता, उसे क्या कह कर वर्णन किया जाय ? (मैं तो) अपने गुरु पर बलिहारी हूँ, जिसने (कर्ता पुरुष को) (मेरे) हृदय ही में दिखा दिया ॥५२॥

(उसी) शिक्षक को पढ़ा हुआ कहना चाहिए, (जो) सहज भाव से (ब्रह्म) विद्या का उच्चारण करे (कथन करे) । [विशेष=विचरे=वि+चरे] विशेष रूप से उच्चारण करे ।] (इस प्रकार) विद्या का शोधन करके, राम नाम में लिव लगा कर तत्त्वज्ञान प्राप्त करे । मनमुख (व्यक्ति) तो विद्या बेचता है, (अन्तः) वह विष ही कमाता है और विष ही खाता है । मूर्ख (मनुष्य) (गुरु का) शब्द नहीं पहचानता (समझता), (क्योंकि, उसे) कोई सूझ-बूझ नहीं है ॥५३॥

गुरुमुख (गुरु के अनुयायी) को हँ (सच्चा) शिक्षक कहना चाहिए, वह जिज्ञासुओं (शिष्यों) को (वास्तविक) बुद्धि प्रदान करता है—(कि) नाम का स्मरण करो, नाम का ही संग्रह करो और जगत् में लाभ प्राप्त करो, (क्योंकि) नाम की प्राप्ति से बढ़ कर कोई भी लाभ नहीं है । मन में सत्य का होना ही सच्ची पट्टी है, श्रेष्ठ शब्द—नाम को धारण करना ही (वास्तविक) पदना है । हे नानक, वही व्यक्ति पढ़ा है, वही पढ़ित है, वही चतुर है, जिसके गले में राम नाम का हार है ॥५४॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसाद ॥ रामकली, महला १, सिध गोसति

सिध सभा करि आसणि बैठे संत सभा जैकारो ।
 तिसु आगे रहरासि हमारी साखा अपर अपारो ॥
 मसतकु काटि धरो तिसु आगे तनु मनु आगे वेउ ।
 नानक संतु मिलै सबु पाईऐ सहज भाद जसु लेउ ॥१॥
 किआ भवीऐ सचि सूचा होइ ।
 साख सबन बिनु मुकति न कोइ ॥१॥ रहाउ ॥

कवन तुम्हे किम्मा नाउ तुमारा कउनु मारगु कउन सुप्रामो ।
 साबु कहउ अरदासि हमारी हुउ संत जना बलि जाग्रो ॥
 कह बैसहु कह रहोऐ बाले कह आबहु कह जहो ।
 नानकु बोले सुणि बैरागी किम्मा तुमारा राहो ॥२॥
 घटि घटि बैसि निरंतरि रहोऐ चालहि सतिगुर भाए ।
 सहजे आए हुकमि सिधाए नानक सदा रजाए ॥
 आसणि बैसणि चिर नाराइगु ऐसी गुरमति पाए ।
 गुरमुखि ब्रह्मै आपु पछारौ सचे सचि समाए ॥३॥
 बुनोआ सागरु दुतरु कहोऐ किउकरि पाईऐ पारो ।
 चरपटु बोले अउधू नानक देहु सवा बीचारो ॥
 आपे आलै आपे समझै तिसु किम्मा उतरु दीजै ।
 साबु कहहु तुन पारगरामी तुभु किम्मा बैसगु दीजै ॥४॥
 जैते जल महि कमलु निरालमु मुरगई नैसालो ।
 सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ नानक नामु बखारो ।
 रहहि इकांति एको मनि वसिआ आसा माहि निरासो ।
 अगसु अगोचरु देखि दिखाए नानकु ता का दासो ॥५॥
 सुणि सुप्रामो अरदासि हमारी पूछउ साबु बीचारो ।
 रोसु न कीजै उतरु दीजै किउ पाईऐ गुर दुप्रारो ॥
 इहु मनु चलतउ सच घरि बैसे न नकु नामु अघारो ।
 आपे मेलि मिलए करता लागै साचि पिप्रामो ॥६॥
 हाटो बाटो रहहि निराले रुखि बिरखि उदिप्राने ।
 कंब मूलु अहारो लाईऐ अउधू बोले गिप्राने ॥
 तीरधि नाईऐ सुनु फलु पाईऐ मैलु न लागै काई ।
 गोरखपूनु लोहारीपा बोले जोग जुगति बिधि साई ॥७॥
 हाटो बाटो नीद न आवै पर घरि चितु न हुलाई ।
 बिनु नावै मनु टेक न टिकई नानक भूख न जाई ॥
 हाटु पटगु घरु गुरू दिखाइआ सहजे सनु बापारो ।
 छंडित निद्रा अलप अहारं नानक तनु बीचारो ॥८॥
 दरसन भेख करहु जोगिद्रा मुंड्रा भोली लिखा ।
 बारह अंतरि एकु सरेवहु खटु दरसन इक पंथा ॥
 दन बिधि मनु समझाईऐ पुरखा बाहुड़ि चोट न लाईऐ ।
 नानकु बोले गुरमुखि ब्रह्मै जोग जुगति इब पाईऐ ॥९॥
 अंतरि सबवु निरंतरि मुंड्रा हुजमै ममता दूरि करी ।
 कामु क्रोधु अहंकारु निवारै गुर कै सबदि सु समझ परी ॥
 लिखा भोली भरिपुर्णि रहिआ नानक तारै एकु हरी ।
 साचा साहिबु साची नाई परलै गुर की बात खरी ॥१०॥

ऊँधउ खपरु पंच भू टोयो काँइआ कड़ासरु मनु जागोटी ।
 सतु संतोखु संजसु है नालि । नानक गुरमुखि नामु समालि ॥११॥
 कवनु सु गुपता कवन सु मुकता ।
 कवनु सु अंतरि बाहरि जुगता ॥
 कवनु सु भावै कवनु सु जाइ ।
 कवनु सु त्रिभवरु रहिआ समाइ ॥१२॥
 घटि घटि गुपता गुरमुखि मुकता ।
 अंतरि बाहरि सबदि सु जुगता ॥
 मनमुखि बिनसै भावै जाइ ।
 नानक गुरमुखि सावि समाइ ॥१३॥
 किउकरि बाधा सरपनि खाधा ।
 किउकरि खोइआ किउकरि लाधा ॥
 किउकरि निरमसु किउकरि अंधिआरा ।
 इहु ततु बीचारे सु गुरु हमारा ॥१४॥
 दुरमति बाधा सरपनि खाधा ॥
 मनमुखि खोइआ गुरमुखि लाधा ॥
 सतिगुर मिलै अंधेरा जाइ ।
 नानक हउमै भेटि समाइ ॥१५॥
 सुन निरंतरि दोजे बंधु ।
 उठे न हंसा पड़े न कंसु ॥
 सहज गुफा घर जायै साचा ।
 नानक साचे भावै साचा ॥१६॥
 किमु कारण गृहु तजिओ उदासी ।
 किमु कारण इहु भेषु निवासी ॥
 किमु वखर के तुम बणजारे ।
 किउकरि सासु संयावहु पारे ॥१७॥
 गुरमुखि खोजत भए उदासी । दरसन कै ताई भेल निवासी ॥
 साच वखर के हम बणजारे । नानक गुरमुखि उतरसि पारे ॥१८॥
 किनु बिधि पूरखा जनमु वटाइआ । काहे कउ तुभु इहु मनु लाइआ ।
 किनु बिधि आसा मनमा खाई । किनु बिधि जोति निरंतरि पाई ॥
 किनु वंता किउ खाईऐ सारु । नानक साचा करहु बीचारु ॥१९॥
 सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ । अनहति राते इहु मनु लाइआ ॥
 मनसा आसा सबदि जलाई । गुरमुखि जोति निरंतरि पाई ॥
 त्रैगुण भेटे खाईऐ सारु । नानक तारे तारणहारु ॥२०॥
 आदि कउ कवनु बीचारु कथीअले सुन कहा घाँ बासी ।
 गिआन की मुद्रा कवन कथीअले घटि घटि कवन निवासी ॥

काला का ठीगा किउ जलाईमले किउ निरभउ धरि जाईऐ ।
सहज संतोख का आसखु जाणै किउ छेबे बैराईऐ ॥
गुर के सबदि हउमै विलु मारै ता निज धरि होवै बासो ।
जिन रचि रचिआ तिसु सबदि पछारै नानक ता का दासो ॥२१॥

कहा ते भ्रावै कहा इहु जावै कहा इहु रहै समाई ।
एसु सबद कउ जो अरघावै तिसु गुर तिलु न तमाई ॥
किउ ततै अविगतै पावै गुरमुखि लखै पिआरो ।
भ्रापे सुरता भ्रापे करता कहु नानक बीचारो ॥
हुकमे भ्रावै हुकमे जावै हुकमे रहै समाई ।
पूरे गुर ते साचु कमावै गति मिति सबवे पाई ॥२२॥

भ्रादि कउ बिसमावु बीचारु कथीमले सुंन निरंतरि वासु लीआ ।
अकलपत मुद्रा गुर गिआनु बीचारीमले घटि घटि साचा सरब जोआ ॥
गुरबचनो अविगति समाईऐ तत् नितंजलु सहजि लहै ।
नानक दूजी कार न करणी सेवै सिलु सु खोजि लहै ।
हुकमु बिसमावु हुकमि पछारै जीअ जुगति सनु जाएँ सोई ।
भ्रापु मेटि निरालमु होवै अंतरि साचु जोगी कहोऐ सोई ॥२३॥

अविगतो निरमःइलु उपजे निरगुण ते सरगुण बीआ ।
सतिगुर परबे परम पदु पाईऐ साखे सबदि समाह लीआ ॥
एके कउ सनु एका जाएँ हउमै दूजा दूरि कीआ ।
सो जोगी गुर सबदु पछारै अंतरि कमलु प्रगासु कीआ ॥
जीवतु मरै ता सनु किछु सूभै अंतरि जाएँ सरब दइआ ।
नानक ताकउ मिलै बडाई भ्रापु पछारै सरब जोआ ॥२४॥

साची उपजे साचि समावै साखे सूखे एक भइआ ।
भूठे आवहि ठबर न पावहि दूजै आवागउरु भइआ ॥
आवागउरु मिटै गुर सबदी भ्रापे परलै बलसि लइआ ।
एका बेदन दूजै बिआपी नामु रसाइखु बीसरिआ ॥
सो बूभै जिसु भ्रापि बुझाए गुर के सबदि सु सुकतु भइआ ।
नानक तारे तारणहारा हउमै दूजा परिहरिआ ॥२५॥

मनमुखि भूले जम की काणि । पर घर जोहै हारै हारिणि ॥
मनमुखि भरनि भवै बेबाणि । बेमारणि मूसे मंत्रि मसारिणि ॥
सबदु न खोने लखे कुषाणि । नानक साचि रते सुखु जाणि ॥२६॥

गुरमुखि साखे का भउ पावै । गुरमुखि बाणी अघड़ घड़ावै ॥
गुरमुखि निरमल हरि गुण गावै । गुरमुखि पवित्र परम पदु पावै ॥
गुरमुखि रोमि रोमि हरि चिआवै । नानक गुरमुखि साचि समावै ॥२७॥

गुरमुखि परचै बेद बीचारी । गुरमुखि परचै तरीऐ तारी ॥
 गुरमुखि परचै सु सबदि गिभानो । गुरमुखि परचै अंतर बिधि जानी ॥
 गुरमुखि पाईऐ अलख अपारु । नानक गुरमुखि मुकति दुआरु ॥२८॥
 गुरमुखि अकधु कधै बीचारि । गुरमुखि निबहै सपरिवारि ॥
 गुरमुखि जपीऐ अंतरि पिआरि । गुरमुखि पाईऐ सबदि अचारि ॥
 सबदि भेदि जाएँ जाणाई । नानक हउमै जालि समाई ॥२९॥
 गुरमुखि घरती साखे साजी । तिस महि ओपति खपति सुबाजी ॥
 गुर कै सबदि रपै रंगु लाइ । साचि रनउ पति सिउ घरि जाइ ॥
 साख सबद बिनु पति नहो पावै । नानक बिनु नावै किउ साचि समावै ॥३०॥
 गुरमुखि असटसिधो सभि बुधी । गुरमुखि भवजलु तरीऐ सच सुधी ॥
 गुरमुखि सर अपसर बिधि जाएँ । गुरमुखि परविरति निरविरति पछाणै ॥
 गुरमुखि तारे पारि उतारे । नानक गुरमुखि सबदि निसनारे ॥३१॥
 नामे राते हउमै जाइ । नामि राते सचि रहै समाइ ।
 नामि राते जोग जुगति बीवार । नामि राते पावहि मोख दुआरु ॥
 नामि राते त्रिभवण सोभी होइ । नानक नामि रते सदा सुनु होइ ॥३२॥
 नामि राते निध गोसटि होइ । नामि राते सदा तपु होइ ॥
 नामि राते सचु करणी सारु । नामि राते गुण मिश्रान बीचार ॥
 बिनु नावै बोलै सभु बेकार । नानक नामि राते तिन कउ जैकार ॥३३॥
 पूरे गुर ते न मु पाइआ जाइ । जोग जुगति सचि रहै समाइ ॥
 वारहु महि जोगी भरवाए संनिआसी छिप्र चारि ।
 गुर कै सबदि जो मरि जीवै सो पाए मोख दुआरु ॥
 बिनु सबद सभि दूजै लागे बेखहु रिदै बीचारि ।
 नानक बडे से बडभागी जिनी सनु रलिआ उरधारि ॥३४॥
 गुरमुखि रतनु लहै लिब लाइ । गुरमुखि परखै रतनु सुभाइ ॥
 गुरमुखि साखी कार कमाइ । गुरमुखि साखे मनु पतीआइ ॥
 गुरमुखि अलखु लखाए तिसु भावै । नानक गुरमुखि चोट न खावै ॥३५॥
 गुरमुखि न.मु बानु इसनानु । गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ॥
 गुरमुखि पावै दरगह मानु । गुरमुखि भउ भंजनु परधानु ॥
 गुरमुखि करणी कार कराए । नानक गुरमुखि मेलि मिलाए ॥३६॥
 गुरमुखि सासत्र सिमृति बेद । गुरमुखि पावै घटि घटि भेद ॥
 गुरमुखि बैर बिरोध गवावै । गुरमुखि सगली गणत मिटावै ॥
 गुरमुखि राम नामि रंगि राता । नानक गुरमुखि खसमु पछाता ॥३७॥
 बिनु गुर भरमै छावै जाइ । बिनु गुर घाल न पवई पाइ ॥
 बिनु गुर मनुआ अति डोलाइ । बिनु गुर नृपति नही बिलु लाइ ॥
 बिनु गुर बिसीअरु उसै मरि बाट । नानक गुर बिनु घाटे घाट ॥३८॥

जिस गुरु मिलै तिसु पारि उतारै । यबगण भेटै गुणि निसतारै ॥
 मुकति महा सुख गुर सबहु बीचारि । गुरमुखि कबै न आवै हारि ॥
 तनु हटड़ी इहु मनु बणजारा । नानक सहजे सनु बापारा ॥३६॥
 गुरमुखि बांधिओ सेतु बिधातै । लंका छूटी दैत सतापै ॥
 रामचंदि मारिओ अहिरावणु । भेदु बभौलण गुरमुखि परचाइणु ॥
 गुरमुखि साइरि पाहण तारे । गुरमुखि कोटि तेतीस उघारे ॥४०॥
 गुरमुखि चूकै आबणु जाणु । गुरमुखि दरगह पावै माणु ॥
 गुरमुखि खोटे खरे पछाणु । गुरमुखि लागै सहजि धिमानु ॥
 गुरमुखि दरगह सिफति समाइ । नानक गुरमुखि बंधु न पाइ ॥४१॥
 गुरमुखि नामु निरंजन पाए । गुरमुखि हउमै सबदि जलाए ॥
 गुरमुखि साचे के गुण गाए । गुरमुखि साचै रहै समए ॥
 गुरमुखि साचि नामि पति ऊतम होइ । नानक गुरमुखि सगल भवण की सोझी
 होइ ॥४२॥

कवण भूलु कवण मति बेला । तेरा कवणु गुरु जिस का तू बेला ॥
 कवण कथा ले रहहु निराले । बले नानक सुणहु तुम बाले ॥
 एसु कथा का बेइ बीचारु । भवजलु सबदि लंघावण हारु ॥४३॥
 पवन आरंभु सतिगुर मति बेला । सबहु गुरु सुरति धुनि बेला ॥
 अकथ कथा ले रहउ निराला । नानक जुगि जुगि गुर गोपाला ॥
 एकु सबहु जिनु कथा बीचारी । गुरमुखि हउमै अगनि निवारी ॥४४॥
 मैण के दंत किउ खाईए सारु । जितु गरबु जाइ सु कवणु आहारु ॥
 हिबे का घरु मंदरु अगनि पिराहुनु । कवन गुफा जितु रहै आवाहुनु ॥
 इत उन किस कउ जाणि समावै । कवन धिमानु मनु मनहि समावै ॥४५॥
 हउ हउ मै मै विचहु खोवै । दूजा भेटे एको होवै ॥
 जगु करड़ा मनमुलु गाधारु । सबहु कमाईए खाईए सारु ॥
 अंतरि बाहरि एको जाएौ । नानक अगनि मरै सतिगुर के भाएौ ॥४६॥
 सब भै राता गरबु निवारै । एको जाता सबहु बीचारै ॥
 सबहु वसै सनु अंतरि हीअ्रा । तनु मनु सीतल रंगि रंगीअ्रा ॥
 कामु क्रोधु बिलु अगनि निवारै । नानक नदरो नदरि पिअ्राए ॥४७॥
 कवन मुखि चंदु हिबै घरु छाइअ्रा । कवन मुखि सूरजु तपै तपाइअ्रा ॥
 कवन मुखि कालु जोहत नित रहै । कवन बुधि गुरमुखि पति रहै ॥
 कवनु जोषु जो कालु संधारै । बोले बाणी नानक बीचारै ॥४८॥
 सबहु आलस सति जोति अघारा । सति घरि गुरु बसै मिटै अंधिअ्राए ॥
 सुखु दुखु सम करि नामु अघारा । आपे पारि उतारण हारा ॥
 गुर परबे मनु साचि समाइ । प्रणवति नानक कालु न खाइ ॥४९॥

नाम ततु सम ही सिरि जाये । बिनु नावै डलु कालु संताये ॥
 ततो ततु मिलै मनु मानै । बूजा जाइ इकतु धरि आनै ॥
 बोलै पवना गगनु गरजै । नानक निहचलु मिलगु सहजै ॥५०॥
 अंतरि सुनं बाहरि सुनं त्रिभवण सुनमसुनं ।
 खउये सुनै जो नरु जाएँ ता कउ पापु न पुनं ॥
 घटि घटि सुनं का जाएँ भेद । आदि पुरखु निरंजन देउ ॥
 जो जनु नाम निरंजन राता । नानक सोई पुरखु बिधाता ॥५१॥
 सुनो सुन कहै सभु कोई । अनहत सुनं कहा ते होई ॥
 अनहत सुनि रते से कैसे । जिस ते उपजे तिस ही जैसे ॥
 ओइ जनमि न मरहि न आवाहि जाहि । नानक गुरमुखि मनु समझाहि ॥५२॥
 नउ सर सुभर दसवै पूरे । तह अनहत सुनं वजावहि तूरे ॥
 साचै राखे देखि हजूरै । घटि घटि साबु रहिआ भरपूरे ॥
 गुपती बाणी परगटु होइ । नानक परखि लए सनु सोइ ॥५३॥
 सहज भाइ मिलीऐ सुखु होवै । गुरमुखि जाये नोइ न सोवै ॥
 सुनं सबहु अपरंपरि धारै । कहते मुकतु सबदि निसतारै ॥
 गुर की दीखिआ से सचि रते । नानक आपु गवाइ मिलए नही आते ॥५४॥
 कुबुधि खवावै सो किनु ठाइ । किउ तनु न बूझै चोटा खाइ ॥
 जमदरि बाधे कोइ न राखै । बिनु सबदै नाही पति साखै ॥
 किउकरि बूझै पावै पारु । नानक मनमुखि न बूझै गशारु ॥५५॥
 कुबुधि मिटे गुर सबडु बीचारि । सतिगुरु भेटै मोख दुआरि ॥
 तनु न चीनै मनमुखु जलि जाइ । दुरमति बिछुड़ि चोटा खाइ ॥
 मानै हुकमु सभे गुण मिश्रान । नानक दरगह पावै मानु ॥५६॥
 साबु बखर धनु पलै होइ । आपि तरै तारे भी सोइ ॥
 सहजि रता बूझै पति होइ । ता की कीमति करै न कोइ ॥
 जहू देखा तह रहिआ समाइ । नानक पारि परै सच भाइ ॥५७॥
 सु सबद का कहा बासु कथीअले जिनु तरीऐ भवजसु संसारो ।
 त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिस कहु कवनु अधारो ॥
 बोलै खेले असथिरु होवै किउकरि अलखु लखाए ।
 सुखि सुआमो सनु नानकु प्रणवै अणै मन समझाए ॥
 गुरमुखि सबवै सचि सिव लागे करि नवरी मेलि मिलाए ।
 आपे दाना आपे बीना पूरै भागि समाए ॥५८॥
 सु सबद कउ निरंतरि बासु अलख जहू देखा तह सोई ।
 पवन का वासा सुन निवासा अकल कला घर सोई ॥
 नदरि करै सबडु घट महि बसै बिचहु भरमु गवाए ।
 तनु मनु निरमलु निरमल बाणी नामो मंनि बसाए ।
 सबदि गुरु भवसागर तरीऐ इत उत एको जाएँ ।
 बिहनु वरनु नही छाइआ माइआ नानक सबडु पछाणै ॥५९॥

त्रै सत ग्रंथुल बाई अउधु सुन सतु आहारो ।
 गुरमुखि बोलै ततु बिरोलै चीनै अलख आहारो ॥
 त्रै गुण मैटै सबहु वसाए ता मनि चूकै अहंकारो ।
 अंतरि बाहरि एको जाणै ता हरि नामि लगै पिआरो ॥
 सुखमना इडा पिगुला बूझै जा आपे अलखु लखाए ।
 नानक तिहु ते ऊपरि साचा सतिगुर सबदि समाए ॥६०॥
 मन का जीउ पवनु कथीअले पवनु कहा रसु खाई ।
 गिआन की मुद्रा कवन अउधु सिध की कवन कमाई ॥
 बिनु सबदै रसु न आवै अउधु हउमै पिआस न जाई ।
 सबदि रते अंमृतु रसु पाइआ सत्ते रहे अघाई ॥
 कवन बुधि जितु असथिख रहोए किनु भोजन तृपतासै ।
 नानक दुखु सुखु सम करि जायै सतिगुर ते कालु न प्रासै ॥६१॥
 रंगि न राता रस नहीं माता । बिनु गुर सबदै जलि बलि ताता ॥
 बिदु न राखिआ सबहु न भाखिआ । पवनु न साधिआ सतु न अराधिआ ॥
 अकथ कथा ले सम करि रहै । तउ नानक आतमराम कउ लहै ॥६२॥
 गुर परमादी रंगे राता । अंमृतु पीआ सावे मता ॥
 गुर वीचारी अगनि निवारी । अपिआ पीआ आतम सुख धारी ॥
 सतु अराधिआ गुरमुखि तउ तारी । नानक बूझै को वीचारी ॥६३॥
 इहु मनु मेगलु कहा बनीअले कहा वसै इहु पवना ।
 कहा वसै सु सबहु अउधु ता कउ चूकै मन का भवना ॥
 नदरि करे ता सतिगुर मेले ता निज घरि वासा इहु मनु पाए ।
 आपे आपु खाइ ता निरमलु होवै धावतु बरजि रहाए ॥
 किउ भूलु पछाणै आतमु जाणै किउ ससि घरि सूरु समावै ।
 गुरमुखि हउमै बिचहु खोवै तउ नानक सहजि समावै ॥६४॥
 इहु मन निहचलु हिरदै वसोअले गुरमुखि भूलु पछाणि रहै ।
 नाभि पवनु घरि आसणि बैसै गुरमुखि खोजत ततु सहै ॥
 सु सबहु निरंतरि निज घरि आछै त्रिभवरण जोति सु सबदि सहै ।
 आवै वूख भूख साचे को साचे हो तृपतासि रहै ॥
 अनहद बाणी गुरमुखि जाणी बिरलो को अरयावै ।
 नानक शखै सतु सुभाखै सचि रूपे रंगु कबहू न जावै ॥६५॥
 जा इहु हिरदा देह न होनी तउ मनु कंठे रहता ।
 नाभि कमल असथंभु न होतो त पवनु कवन घरि सहता ॥
 रूपु न होतो रेख न काई ता सबदि कहा लिव लाई ।
 रकतु बिदु की मड़ी न होतो मिनि कीमति नहीं पाई ॥
 वरतु भेलु असरूपु न जायी किउकरि जापसि साचा ।
 नानक नामि रते बैरागी इब तब साचो साचा ॥६६॥

हिरवा बेह न होतो भउधू तउ मनु सुनि रहै बैरागी ।
 नामि कमलु असयंभु न होतो ता निज घरि बसतउ पवनु अनरागी ॥
 रूपु न रेलिआ जाति न होतो तउ भकुलीणि रहतउ सबदु सुसारु ॥
 गउनु गगनु जब तबहि न होतउ त्रिभवरु जोति आपे निरंकारु ॥
 वरनु भेलु असरूपु सो एको एको सबदु विडाणी ।
 साच बिना सूचा को नाहो नानक भकथ कहाणी ॥६७॥
 कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा कितु कितु दुखि बिनसि जाई ।
 हउमै बिचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई ॥
 गुरमुखि होवै सु गिआनु तनु बीचारै हउमै सबदि जलाए ।
 तनु मनु निरमलु निरमलु बाणी साचै रहे समाए ॥
 नामे नामि रहै बैरागी साचु रलिआ उरिघारे ।
 नानक बिनु नावै जोगु कदै न होवै बेलहु रिदै बीचारै ॥६८॥
 गुरमुखि साचु सबदु बीचारै कोइ ।
 गुरमुखि सचु बाणी परगटु होइ ॥
 गुरमुखि मनु भोजै विरला बूझै कोइ ।
 गुरमुखि निज घरि वासा होइ ॥
 गुरमुखि जोगी जुगति पछाणै ।
 गुरमुखि नानक एको जाणै ॥६९॥
 बिनु सतिगुर सेवे जोगु न होई ।
 बिनु सतिगुर भेटे मुकति न कोई ॥
 बिनु सतिगुर भेटे नामु पाइआ न जाइ ।
 बिनु सतिगुर भेटे महा दुखु पाइ ॥
 बिनु सतिगुर भेटे महा गरब गुबारि ॥
 नानक बिनु गुर मुआ जनसु हारि ॥७०॥
 गुरमुखि मनु जीता हउमै मारि ।
 गुरमुखि साचु रलिआ उरघारि ॥
 गुरमुखि जगु जीता जमु कालु मारि बिवारि ॥
 गुरमुखि दरगह न आपे हारि ॥
 गुरमुखि भेलि मिलाए सुो जाणै ।
 नानक गुरमुखि सबदि पछाणै ॥७१॥
 सबदै का निबेड़ा सुरिण तू भउधू बिनु नावै जोगु न होई ।
 नामे राते अनदिनु माते नामे ते सुखु होई ॥
 नामे ही ते सभु परगटु होवै नामे सोझी पाई ।
 बिनु नावै भेल करहि बहुरेरे सचै आपि लुआई ॥
 सतिगुर ते नामु पाइऐ भउधू जोग जुगति ता होई ।
 करि बीचारु मनि बेलहु नानक बिनु नावै मुकति न होई ॥७२॥

तेरी गति मिति तू है जाणहि किआ को प्राप्ति बलाए ।
तू आपे गुपता आपे परबटु आपे सभि रंगि मारै ॥
साधिक सिध गुरु बहु चले खोजत फिरहि कुरमारै ।
मागहि नामु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कउ कुरमारै ॥
अबिनासी प्रभि खेलु रचाइआ गुरमुखि सोभी होई ।
नानक सभि जुग आपे वरतै दूजा अवरु न कोई ॥७३॥

विशेष : सिध गोसटि (सिद्ध-गोष्ठा) : गुरु नानक देव की सिद्धों के साथ अवल बटाले (देखो भाई गुरुदास, वार १, पौडो ३६-४४) और मोरख हटडी (पुरातन जनम साखी के अनुसार) नामक दोनों स्थानों में बार्ता हुई थी । 'सिद्ध गोष्ठी' में दोनों स्थानों की वार्ताओं का सार है । इसमें 'हठयोग' और 'नाम स्मरण' के सम्बन्ध में विचार किया गया है । उपर्युक्त स्थानों में गुरु नानक देव का दीवान सजा का और सिद्ध आकर आसन लगा कर बैठ गए । इस लम्बी बाणी में उन्हीं समयों के प्रश्नोत्तर हैं ।

अर्थ : सिद्धगण (गुरु नानक देव के दरबार में आए और) सभा में आसन लगा कर बैठ गए (और उन्होंने कहा), "हे संतो की सभा, तेरा जयजयकार हो" (तुम्हें हमारा नमस्कार है) । [इस पंक्ति की अग्रिम पंक्तियों में गुरु नानक देव का उत्तर है—] (हम) तो उस (परमात्मा) के आगे ही प्रार्थना करते हैं, जो अपरंपार है । उस (परमात्मा) के आगे मस्तक काट कर रख देना चाहिए (अहंभाव को बिल्कुल नष्ट कर देना चाहिए); (उसके) सम्मुख तन-मन भी समर्पित कर देना चाहिए । नानक (का कथन है) कि सत (गुरु) के मिलने पर ही, सत्य (परमात्मा) प्राप्त होता है, फिर सहज भाव से (स्वाभाविक ही) प्रतिष्ठा (यश) ग्रहण करो, (तात्पर्य यह कि परमात्मा की प्राप्ति से यश स्वाभाविक ही प्राप्त हो जाता है) ॥१॥

(योगियों की भाँति) फिरते रहने से क्या (होता है) ? सत्य द्वारा ही पवित्र हो सकता है । सच्चे शब्द—नाम के बिना कोई मुक्त नहीं हो सकता ॥१॥ रहाउ ॥

(योगीगण गुरु नानक देव से प्रश्न करते हैं), "तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा पंथ क्या है ? और क्या प्रयोजन है ?" (इस पर गुरु नानक देव जी सीधा सा एक उत्तर देते हैं)—"मैं सच्ची बात कहता हूँ; मेरी यही प्रार्थना है कि मैं सन्तजनों पर बलिहारी हूँ ।" (योगियों अथवा सिद्धों ने गुरु नानक देव से फिर प्रश्न किया)—"हे बालक, तुम कहाँ बैठते हो ? कहाँ रहते हो ? कहाँ आते हो ? और कहाँ जाते हो ? हे वैराग्यवान्, तुम्हारा मार्ग क्या है ?"—(इन प्रश्नों को) सुन कर (गुरु नानक देव) कहते हैं—॥२॥

(गुरु नानक देव सिद्धों—योगियों को उत्तर देते हैं), "जो (हरी) प्रत्येक घट (हृदय) में विराजमान है; (उस हरी में हम लोग अच्छी तरह तन मन से) निरन्तर निवास करते हैं और सद्गुरु के हुक्म के अनुसार चलते हैं (यही हमारा मार्ग है) । हम सज्ज स्वभाव से यहाँ आ गए हैं (और जब परमात्मा का) हुक्म होगा, तो चले जायेंगे । नानक तो सदैव ही (प्रभु की) मर्जी में रहता है । (हमने) आसन में तथा बैठने में नारायण ही को स्थिर समझा है—(ऐसी बुद्धि हमने) गुरु के द्वारा पाई है । जो व्यक्ति गुरु के द्वारा अपने आप को समझता है, वह सच्चा (व्यक्ति) सत्यस्वरूप हरी में ही समा जाता है ।" ॥३॥

चरपट (एक योगी विशेष) पूछता है, “हे अवधूत (त्यागी), नानक, (मुनि), (यह) जगत् दुस्तर सागर कहा जाता है । (मुझे) बताइए कि किस प्रकार (इससे) पार हुमा जाय ? (इस समस्या—प्रश्न पर) (आप अपने सच्चे विचार दीजिए, (प्रकट कीजिए) । (चरपट योगी के उपर्युक्त प्रश्न को सुन कर गुरु नानक जी इस प्रकार कहते हैं)—

“(हे योगी), तू आप ही प्रश्न करता है और आप ही समझता है, (भला) ऐसे (व्यक्ति) को क्या उत्तर दिया जाय ? (तात्पर्य यह कि तूने तो जगत् को स्वयं ही दुस्तर कह दिया है, इसका उत्तर भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो दुस्तर है, वह तरा किस प्रकार जा सकता है) ? हे पार पहुँचे हुए (सिद्ध), [‘पारगामी’ शब्द गुरु नानक देव ने व्यय्य रूप में कहा है], सत्य बता, तुझे (इस विचार में) क्या बैठने दिया जाय ? (तात्पर्य यह कि तू ने तो इसका निर्णय पहले से कर लिया है; जगत् को दुस्तर समझ कर पहले छोड़ बैठा है और इससे अपने को पार पहुँचा हुआ मान लिया है । भला जिस वस्तु को तू छोड़ बैठा, उससे पार कैसे हो गया ? तुझे तो विचार में बैठने नहीं देना चाहिए, क्योंकि तू तो प्रश्न करके, उसका उत्तर स्वयं देकर फिर पूछने बैठा है कि संसार को किस प्रकार तरना चाहिए) ॥४॥

(गुरु नानक जी इस पद में योगियों को और भी स्पष्ट उत्तर देते हैं)—जिस प्रकार जल में (रहते हुए भी) कमल निर्लिप्त रहता है और (जिस प्रकार) जल-मुर्गी नदी के सामने (नदी में तैरती है, और उसके पंखे नहीं भोजते हैं), (उसी प्रकार तुम लोग भी संसार में रहते हुए, इससे अलिप्त रहो) । अपनी मुरति (स्मृति) शब्द—नाम में लगा कर, संसार-सागर तरना चाहिए । नानक (तो हरी के) नाम का वर्णन करता है । एकान्त में रहकर एकनिष्ठ मन में निवास करे और आशाओं में निराश रहे । स्वयं भ्रम, भ्रमोचर (हरी) का साक्षात्कार करे (और दूसरों को भी साक्षात्कार कराए, नानक कहते हैं कि ऐसे (पुरुषों के) हम दास हैं ॥५॥

(उन सिद्धों—योगियों में से एक सिद्ध प्रश्न करता है)—“हे स्वामी, हमारी प्रार्थना मुनि, (मैं) सच्चे विचार पूछता हूँ । प्रश्न सुन कर क्रोध न कीजिए, (और विचार-पूर्वक स्पष्ट) उत्तर दीजिए—गुरु के द्वार की किस प्रकार प्राप्ति होती है ?” (गुरु नानक देव उत्तर देते हैं)—“नानक (कहता है, यदि (हरि-नाम) मनुष्य का आसरा बन जाय, तो यह चलायमान मन अपने असली घर में टिक जाता है । (यदि) सत्य (परमात्मा) प्रिय लगने लगे, तो कर्ता पुरुष स्वयं ही (अपने में जीव को मिला) लेता है ॥ ६ ॥

(उन योगियों में से एक योगी—“लोहारीपा, गोरखनाथ का शिष्य गुरु नानक से कहता है कि— “हम लोग हाट और रास्तो से निराले (पृथक्), (भाव से) रूखों-बुझों तथा वनों में निवास करते हैं । कदमूल (आदि) का आहार करते हैं, (और हे) अवधूत (नानक), (हम लोग) ज्ञान की ही बातें बोलते हैं । तीर्थों में स्नान करने से सुख तथा फल की प्राप्ति होती है (और इससे) किसी प्रकार की मेल नहीं लगती । (और हम सिद्ध—योगी सदैव ही भ्रमण कर करके तीर्थों में स्नान करते हैं, अतः हम निष्ठाप हैं) ।” गोरखनाथ जो का पुत्र लोहारीपा कह रहा है कि यही योग की विधि है ॥ ७ ॥

(गुरु नानक देव लोहारीपा की बातों को काट कर अपनी बातों का प्रतिपादन करते हैं)— हाट और बाट में जिसे (अज्ञान) नींद न आवे, (और) पर-स्त्री (तथा पर-धन) में

जिसका चित्त चलायमान नहीं होता, (वही सच्चा योगी है) । बिना नाम के मन को टिकने के लिए कहीं सहारा नहीं मिलता, (और बिना नाम के भ्रान्तरिक) क्षुधा भी नहीं शान्त होती । गुरु ने (मेरे भीतर) बाजार, शहर और घर दिखा दिया है, (जहाँ) स्वाभाविक ही सत्य का व्यापार होता रहता है । मैं थोड़ा (मैं) सोता हूँ और अल्पाहार करता हूँ और तत्त्व का विचार करता हूँ ॥८॥

“हे योगिराज, (परमात्मा का) दर्शन ही, तुम्हारा वेश हो (और यही) तुम्हारी मुद्रा, भोली तथा कंधा हो । (अपने) छः दर्शनों को (परमात्मा का) एक पंथ बनाओ और (योगियों के) बारह सम्प्रदायों में (एक हरी की ही) आराधना करो । ऐ (योगी) पुरुष, इस प्रकार अपने मन को समझाओ और फिर (सांसारिक) चोटे मत खाओ ।” नानक कहते हैं (योग की इन सूक्ष्म बातों को) (कोई) गुरुमुख ही समझ सकता है ? इस प्रकार योग की युक्ति प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

(योग की भ्रान्तरिक विधि गुरु नानक इस प्रकार बताते हैं)— भ्रन्तःकरण में निरन्तर शब्द— नाम को बसाना ही, (यही योगी की) मुद्रा है । (साथ ही वास्तविक योगी) अहंकार तथा ममता का भी निवारण करे । (जो साधक— योगी काम, क्रोध तथा अहंकार का निवारण करता है, उसी को गुरु के शब्द समझ पड़ते हैं । ‘एक मात्र हरी ही (ससार-सागर से) तारता है’—(यह भाव) योगी का कंधा है, (उस परमात्मा में) पूर्ण रूप से निवास करना, (यही तुम्हारी) भोली की पूर्णता हो । (हरी ही) सच्चा साहब है और सच्चे नाम-वाला है ; गुरु की दिखाई हुई इस बात को (शिष्य) परख कर देख लेता है (कि उसकी बात) खरी है, (तात्पर्य यह कि गुरु की बताई हुई बात सच्ची निकलती है,) ॥ १० ॥

(गुरु नानक देव आध्यात्मिक रूपक के माध्यम से वास्तविक योग बतलाने हैं)— (सामारिक विषयो से) उलटी हुई (चित्तवृत्ति ही) (तुम्हारा) खप्पर हो, पंच तत्त्वों (से दैवी गुणों को ग्रहण करना यही तुम्हारी) टोपी हो, तुम्हारा शरीर ही कुशासन हो और मन कोपीन (लंगोटी) हो— (इन्हीं वस्तुओं की साधना वास्तविक योगाभ्यास है) । सत्य, सन्तोष और संयम (तुम्हारे) साथी (यहाँ शिष्य से अभिप्राय है) हो । हे नानक, गुरु के द्वारा नाम का स्मरण कर ।

[विशेषः पंच भूतों के दैवी गुण निम्नलिखित हैं— आकाश से निलिप्तता, वायु से समदृष्टि भाव, अग्नि से मेल जलाना, पानी से (भ्रान्तरिक अशुद्धियों को) धोना तथा पृथ्वी से घेय और क्षमा भाव ग्रहण करना] ॥ ११ ॥

[ऊपर के ११ पद सिद्धो— योगियों और गुरु नानक देव के प्रश्नोत्तर के रूप में हैं । इसके बाद के पदों में सामान्य बातें कही गई हैं और किसी विशेष योगी से प्रश्नोत्तर नहीं है ।]

कौन सा (पुरुष) गुप्त है ? कौन मुक्त है ? और कौन सा (व्यक्ति) भीतर और बाहर से (परमात्मा से) युक्त है ? कौन (व्यक्ति) माता है और कौन जाता है ? और कौन (व्यक्ति) त्रिभुवन में व्याप्त (हरी में) समा जाता है ? ॥ १२ ॥

षट-षट में (व्याप्त) हरी ही गुप्त है । गुरुमुख (गुरु का अनुयायी) ही मुक्त है ? (जो) भीतर-बाहर शब्द— नाम (से युक्त है), वही युक्त है । मनमुख (इस संसार में) माता और जाता है और नष्ट होता है नानक कहते हैं कि गुरुमुख (त्रिभुवन में व्याप्त) सच्चे (हरी में समा जाता है) ॥ १३ ॥

किस प्रकार (जीव) बंधा है और किस प्रकार सर्पिली (माया) ने (उसे) खा लिया है ? किस प्रकार (जीव ने) (हरी को) खो दिया और किस प्रकार (उसे) प्राप्त किया ? (जीव) किस प्रकार निर्मल (पवित्र) होता है ? और किस प्रकार (उसके) अंधकार (अज्ञान) का नाश होता है ? जो इन तत्त्वों का विचार करे, वह हमारा गुरु है ॥ १४ ॥

दुबुद्धि ने ही (जीव को) बांध रक्खा है और सर्पिली (माया ने (उसे) खा लिया है । मनमुख ने (हरी को) खो दिया है और गुरुमुख ने (हरी को) प्राप्त कर लिया है । सद्गुरु के मिलने पर ही अंधकार नष्ट होता है । नानक कहते हैं कि अहंकार को भेट कर (जीव परमात्मा में) समा जाता है ॥ १५ ॥

शून्यावस्था (अकुर अवस्था में) (मन को) बांध दो, (टिका दो) । फिर (मन रूपी) हंस नदी उड़ता और (शरीर रूपी) दीवाल भी नहीं गिरती । (योगी) सहजावस्था—चतुर्थ अवस्था—तुरीयवस्था रूपी गुफा को (अना) सच्चा घर जानता है । हे नानक, सच्चे (प्रभु) को सच्चा (मनुष्य) ही अच्छा (लगता) है ॥ १६ ॥

किस कारण घरबार छोड़ कर उदासी (विरक्त, त्यागी) हो गए ? किस कारण इस वेश में निवास दिया, (सात्पर्य यह कि इस वेश को धारण किया) ? तुम किस सौदे के बनजारे (व्यापारी हो) ? किस प्रकार (इस) साथ (समूह) को पार करोगे ?

गुरुमुखों को खोजते हुए (मैं) (विरक्त-त्यागी हो गया । (प्रभु के) दर्शन के निमित्त इस वेश को धारण किया । हम सत्य रूपी सौदे के ही व्यापारी हैं और गुरुमुखों के द्वारा साथियों (समूह) को पार उतारेंगे ॥ १७ ॥

(हे पुरुष), किस विधि में (तू ने) अपने जीवन को पलट दिया है, (जिससे मनुष्य से देवता बने हुए दिखाई पड़ते हो) ? किस (वस्तु) में तू ने अना मन जोड़ा है, (अपनी चितवृत्ति कहाँ टिकाई है) ? किस उपाय से (तूने) (जीवों को बन्धन में डालनेवाली) आशा और इच्छा को खा लिया है ? किस विधि में (तूने हरी की अलख और) निरन्तर ज्योति प्राप्त की है ? बिना दाँतो के तू ने (विकार रूपी) लोहे को किस प्रकार भक्षण कर लिया ? हे नानक, (इस वस्तु का) सच्चा सच्चा विचार करो ॥ १८ ॥

सद्गुरु के घर में आकर जन्म लिया, तो (उसने) आवागमन को मिटा दिया । [तात्पर्य यह है कि सद्गुरु के सम्पर्क में आने से पिछले संस्कारों (किरत) को मिटा कर गुरु के आदेशानुसार नवोन्मेष आध्यात्मिक जीवन बिताना प्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप पिछले संस्कार दग्ध हो गए परमात्मा और अब की भक्ति का आनन्दमय जीवन प्राप्त हो गया, जिससे जीवन और मरण समाप्त हो गए ।] अनाहत (अहम-मण्डल के संगीत) में (मैं) अनुरक्त हूँ (और उसी से) इस मन को युक्त कर दिया है । (गुरु के) शब्द द्वारा (मैंने) आशा और इच्छा भी जला दी है । गुरु की शिक्षा द्वारा (परमात्मा की अलख और) निरन्तर ज्योति प्राप्त की है । तीनों गुरों—सत्व, रज, तम—को मिटा कर (विकार रूपी) लोहे को खा गया । हे नानक, तारनेवाला (हरी) ही (जीवों की) तारता है ॥ २० ॥

(सृष्टि-रचना के पूर्व) आदि (काल) की क्या अवस्था थी ? इसका किस प्रकार विचार करते हो ? उस समय शून्य (निरंकार) कहाँ बसता था ? ज्ञान की कौन कौन सी मुद्राएँ कहलाती हैं ? [योगियों के पाँच प्रकार के साधन—(खेचरी, भूचरी, चेचरी, गोचरी

और उन्मनी) को मुद्रा कहते हैं ।] और घट घट में कौन निवास करता है ? काल (यमराज) का सोंटा (लट्ठ) किस प्रकार जलाया जाय ? और निर्भय (परमात्मा) के घर में किस प्रकार जाया जाय ? सहज संतोष का आसन किस प्रकार जाने ? और (कामादिक) बैरियों का किस प्रकार नाश करे ?

[विशेष : “सहज सतोष का आसन जाणै किउ छेदे बैराईऐ” पंक्ति में ‘किउ’ शब्द ‘देहरी दीपक’ है; अतः यह शब्द दोनों स्थानों में प्रयुक्त होगा—जैसे ‘सहज संतोष का आसन जाणै किउ ?’ तथा “किउ छेदे बैराईऐ ?” ।] (यदि) गुरु के शब्द द्वारा अहंकार के विष को मार दे, तभी आत्मस्वरूप के घर में निवास प्राप्त हो सकता है । जिस (परमात्मा) ने (समस्त सृष्टि) रच रखी है, उसके शब्द—नाम को जो पहचानता है, (मैं) नानक उसका दास हूँ ॥२१॥

(यह जीव) कहाँ से आता है ? कहाँ जाता है ? (अन्त में) (यह) कहाँ समा जाता है ? इस शब्द का जो (ठीक ठीक) अर्थ लगा ले, (वह पूर्ण गुरु है) और उस में तिल भर भी (रंच मात्र) इच्छा नहीं है, (वह पूर्णकाम, तृप्त और समृद्ध है) । तत्त्वरूप अव्यक्त (हरी) को (जीवात्मा) किस प्रकार प्राप्त करे ? गुरु के द्वारा (हरी के प्रति) प्रेम कैसे उत्पन्न हो ? जो (परमात्मा) आप ही श्रोता है और आप ही वक्ता है, हे नानक, (ऐसे प्रभु के सम्बन्ध में अपने) विचार बतलाओ । (गुरु नानक देव का यह उत्तर है)—(परमात्मा के) हुक्म से (जीव) उत्पन्न होता है (और उसी के) हुक्म से (वह) यहाँ से जाता है (और अन्त में उसके) हुक्म में ही समा जाता है । पूर्ण गुरु से ही सत्य कमाया जाता है (और उसके) शब्द से ही (जीव की) गति-मिति प्राप्त होती है ॥२२॥

(सृष्टि के प्रारम्भ के) पूर्व (आदिकाल) के विचार का कथन करना आश्चर्यमय है । उस समय शून्य (निर्गुण हरी) अपने आप में निवास किए था, (तात्पर्य यह कि वह अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित था) । गुरु की शिक्षा पर विचार करके कल्पना-रहित हो जाना ही मुद्रा है । जो सब को जीवन प्रदान करनेवाला है, वह सच्चा हरी घट-घट में व्याप्त है । गुरु के वचन से (साधक) अव्यक्त (परमात्मा) में समा जाता है और (उमें) तत्त्व-रूप निरञ्जन सहज ही प्राप्त हो जाता है । नानक कहते हैं कि जो शिष्य (गुरु और परमात्मा की) सेवा के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं करता, (वह) (परमात्मा को) खोज कर पा लेता है । (परमात्मा का) हुक्म आश्चर्यमय (अनिवार्य) है । (ऐसे) हुक्म को जो पहचान लेता है, वह जीवन की सच्ची युक्ति जान लेता है । जो अपने अहंभाव को भेंट कर अन्तःकरण से निलस हो जाता है, (उसी को) सच्चा योगी कहना चाहिए ॥२३॥

अव्यक्त और माया रहित स्वयं ही उत्पन्न हुआ—(इसीसे वह स्वयंभू है) फिर निर्गुण (ब्रह्म) से सगुण ब्रह्म उत्पन्न हुआ । [गुरुवाणी में परमात्मा के निर्गुण और सगुण दोनों ही स्वरूप बतलाए गए हैं । निर्गुण स्वरूप में तो कोई सृष्टि नहीं हुई । निर्गुण ब्रह्म स्वयं अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है । फिर उसने सृष्टि रचना की और अपने आप को प्रकृति के रूप में दिखलाया । गुरुवाणी में परमात्मा के जितने भी गुण वर्णन किए गए हैं, वे सब सगुण ब्रह्म में हैं । निर्गुण ब्रह्म तो स्वयं अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है ।] सद्गुरु से एक हो जाने से (भुलमिल जाने से) परम पद की प्राप्ति होती है । (सद्गुरु शिष्य को) अपने सच्चे शब्द में मिला लेता है । एक (परमात्मा)

को वह निश्चित रूप से एक ही जानता है और अहंभाव तथा द्वैतभाव को दूर कर देता है। जो (गुरु के) शब्द को पहचानता है, वही (वास्तविक) योगी है और (उसका) हृदय-कमल प्रकाशित हो जाता है। जो (व्यक्ति) जीवित ही (अहंभाव से) मर जाता है, उसे सब कुछ सुनाई पड़ने लगता है और वह (अपने) अन्तःकरण में (सभी प्राणियों के ऊपर) दया करनेवाले (हरी) को जान लेता है। हे नानक, उस (व्यक्ति) को निश्चित बड़ाई प्राप्त होती है, जो अपने आप को सभी प्राणियों के भीतर देखता है, (तत्पर्य यह कि वह परमात्मा की एक ज्योति घट-घट में देखता है) ॥२४॥

(गुरुमुख) सच्चे (हरी) से उत्पन्न होता है और (अन्त में) सत्य (हरी) में ही समा जाता है। (जो व्यक्ति) सत्य (परमात्मा) के द्वारा पवित्र हुए हैं, वे सत्य के साथ एकाकार हो जाते हैं। (जो व्यक्ति) झूठ (द्वैतभाव) में आते हैं, उन्हें (परमात्मा का) स्थान नहीं प्राप्त होता। वे द्वैतभाव के कारण आवागमन (के चक्र) में पड़ते रहते हैं। यह आवागमन (जन्म-मरण का चक्र) गुरु के शब्द द्वारा ही मिटता है, (परमात्मा) आप ही परख कर, उसे बख्श देता है। द्वैतभाव के कारण यह वेदना (समस्त जीवन) में व्याप्त हो जाती है; नाम रूपी रसायन के (सेवन करने से) (यह वेदना) मिट जाती है। (किन्तु इस रहस्य को) वही समझता है, जिसे (परमात्मा) स्वयं ही समझा देता है, (ऐसा व्यक्ति) गुरु के शब्द से मुक्त हो जाता है। हे नानक, तारनेवाला (हरी) अहंकार और द्वैतभाव को दूर करके स्वयं ही तार देता है ॥२५॥

मनमुख यमराज की लज्जा (शरम) में भटकता है। वह दूसरों की स्त्री अथवा धन को ताकता है, जिसमें हानि ही हानि है। मनमुख भ्रमित हो कर मुनसान, निर्जन (उजाड़) स्थानों में भटकता है। स्मशान में मंत्र पढ़नेवाला योगी कुमार्प में पड़ कर लूटा जाता है। (वह) (गुरु के) शब्द को नहीं समझता और कुवाच्य (दुर्वचन) बोलता है। हे नानक, सत्य में अनुरक्त होने को ही सुख समझो ॥२६॥

गुरुमुख सत्य (परमात्मा) का भय पाता है। गुरुमुख को वाणों असत्य मन को भी (साध्य) बना देती है, (तत्पर्य यह कि गुरुमुख का वाणी से बुरा से बुरा मनुष्य अच्छा हो जाता है)। गुरुमुख निर्मल (पवित्र) हरि का गुणगान करता है। गुरुमुख परम पवित्र पद (आत्म पद, तुरीय पद, सहज पद, मोक्ष पद अथवा निर्वाण पद) पाता है। गुरुमुख रोम-रोम से हरि का ध्यान करता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख सत्य स्वरूप (हरी) में समा जाता है ॥२७॥

गुरुमुख के परिचय से वेदों का विचार (स्वतः) हो जाता है। गुरुमुख के परिचय से (संसार-सागर से सुगमता पूर्वक) तरा जाता है। गुरुमुख के परिचय से और उसके शब्द से (शिष्य) ज्ञानी हो जाता है। गुरुमुख के परिचय से आन्तरिक विधियों का ज्ञान होता है, (अर्थात् वह ऐसी युक्ति जान लेता है, जिससे अन्तःकरण वश में हो जाय और आध्यात्मिक जीवन बिताने की युक्ति ज्ञात हो जाय)। गुरु की शिक्षा द्वारा भलख और अपार ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। नानक कहते हैं (कि संक्षेप में यह कि) गुरु की शिक्षा ही मोक्ष का द्वार है ॥ २८ ॥

गुरु की शिक्षा (और उसके) विचार द्वारा अकथनीय (ब्रह्म) का कथन होता है। गुरु की शिक्षा द्वारा परिवार (के साथ रहते हुए धर्म एवं जीवन का) निर्वाह हो जाता है। गुरु द्वारा (हरी का नाम) आन्तरिक प्रेम से जपा जाता है। गुरु की शिक्षा के आचरण द्वारा

शब्द—नाम की प्राप्ति होती है। शब्द के द्वारा बिंध कर (साधक स्वयं हरी को) जानता है और दूसरो को भी जानाता है। नानक कहते हैं कि (वह) अहंकार को जला कर (हरी मे) समा जाता है ॥ २६ ॥

गुरुमुखो के लिये ही (गुरुमुखों की उत्पत्ति के लिए ही) सच्चे (हरी) ने सृष्टि रची है। उस धरती मे (जीवो का) उत्पन्न होना अथवा मरना उसका खेल है। गुरु के शब्द द्वारा (साधक) प्रेम से रंगा जाता है। सत्य मे अनुरक्त होने के कारण (वह साधक अथवा शिष्य) प्रतिष्ठा से (अपने वास्तविक) घर मे जाता है। सच्चे शब्द के बिना (मनुष्य को) प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त होती है। नानक कहते हैं कि बिना नाम के (मनुष्य) सत्यस्वरूप (हरी मे) (भला) कैसे समा सकता है ? ३० ॥

गुरुमुख (गुरु का अनुयायी) होने से अष्ट-सिद्धियाँ तथा समस्त बुद्धियाँ प्राप्त होती है। सच्ची गुद्धि होने के कारण गुरुमुख ससार-सागर से तर जाता है। गुरुमुख भले-बुरे की विधि (सत्-असत् का विवेक) जानता है। गुरुमुख प्रवृत्ति और निवृत्ति (मार्ग) को (भलीभाँति) पहचानता है। गुरुमुख (श्रोतों को) तार कर पार उतारता है ? (पर गुरु के शब्द द्वारा ही नरता है, उसको अपनी कुछ भी शक्ति नहीं है)। इस प्रकार, हे नानक, (वह) गुरु के शब्द द्वारा विस्तार करता है ॥ ३१ ॥

नाम (शब्द) मे अनुरक्त होने से अहंकार नष्ट हो जाता है। नाम मे अनुरक्त होने से (साधक) सत्य, (हरी मे) समा जाता है। नाम मे अनुरक्त होने से योग की युक्ति का विचार (सफल होता है)। नाम मे लगने से (शिष्य को) मोक्ष का द्वार प्राप्त हो जाता है। नाम मे ही लगने से तीनों भूवनों की समझ हो जाती है (कि उनके अन्तर्गत परमात्मा की अखण्ड ज्योति व्याप्त हो रही है) नानक कहते हैं कि नाम मे अनुरक्त होने से सदैव ही सुख प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

नाम मे अनुरक्त होने से सिद्धो के साथ (सफल) गोष्ठी होती है। नाम में लगे रहने से शाश्वत तप होता रहता है। नाम मे लगना ही सच्ची करनी का सार-तत्त्व है। नाम मे अनुरक्त होने से ही (समस्त) गुण, ज्ञान और विचार (प्राप्त होते हैं)। बिना नाम के बोलना सब व्यर्थ ही है। नानक कहते हैं कि जो व्यक्ति नाम मे अनुरक्त है, उनका जयजयकार है ॥ ३३ ॥

पूर्ण गुरु से ही नाम पाया जाता है। सत्य मे युक्त रहना यह योग की युक्ति है। बारह पंथो मे योगी और दश सम्प्रदायी मे संन्यासी भ्रमते रहते हैं। [“दस नाम संनिआसीआ जोगी बारह पंथ चलाए”—भाई गुरदास।] किन्तु गुरु के शब्द मे जो (व्यक्ति अपने अहभाव से) मरता है, वही मोक्ष का द्वार पाता है। हृदय मे विचार करके देख लो बिना शब्द (नाम) में (अनुरक्त हुए) सभी द्वैतभाव मे लगे हैं। नानक कहते हैं वे मनुष्य अत्यन्त बड़भागी हैं जिन्होंने अपने हृदय मे सत्यस्वरूप (हरी) को धारण कर रक्खा है ॥ ३४ ॥

गुरुमुख (हरी में) लिब लगा कर (हरी रूपी) रत्न प्राप्त करता है और वह इस रत्न को स्वाभाविक ही परख लेता है। गुरुमुख (गुरु द्वारा दिखाई गई) सच्ची करनी करता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) सच्चे (हरी को) मन से विश्वास करता है। गुरु द्वारा (जब परमात्मा की कृपा होती है), तो (उसे) अलक्ष्य (हरी) दिखाई पड़ जाता है। नानक कहते हैं कि गुरु का अनुयायी कभी चोट नहीं खाता है ॥ ३५ ॥

गुरु के द्वारा (हरी का) नाम, दान और स्नान (पवित्रता आदि गुण) प्राप्त होते हैं। गुरु के द्वारा सहजावस्था में ध्यान लग जाता है और गुरु की शिक्षा द्वारा ही (शिष्य) (हरी के) दरबार में सम्मान पाता है। गुरुमुख भय को नष्ट करनेवाले और प्रधान (हरी) को प्राप्त कर लेता है। गुरुमुख (गुरु की बताई हुई) सच्ची करनी और कार्य (स्वयं करता है और दूसरो से भी) कराता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख को (हरी अपने में) मिला कर एक कर लेता है ॥३६॥

गुरुमुख शास्त्रों, स्मृतियों और वेद के ज्ञान को जानता है। गुरुमुख घट-घट के भेद को अपने घट में जानता है, (अर्थात् वह यह समझता है कि जो हरी मेरे घट में रम रहा है, वही प्रत्येक घट में व्याप्त है)। गुरुमुख बैर-विरोध को नष्ट कर देता है। गुरुमुख (अहंकार में होने वाले) सारे हिसाब-किताब को मिटा देता है। गुरुमुख रामनाम के रंग में रंगा रहता है। नानक कहते हैं कि गुरुमुख पति (परमात्मा) को पहचान लेता है ॥३७॥

बिना गुरु के (मनुष्य माया के) भ्रम में पड़कर आता-जाता रहता है (जन्मता मरता रहता है)। बिना गुरु के की हुई कमाई (परमात्मा के यहाँ) प्रामाणिक नहीं होती। बिना गुरु के मन (चंचल होकर) अत्यधिक डोलता रहता है। बिना गुरु के (मनुष्य माया) का विष खाता है, (जिससे) तृप्त नहीं होता है। बिना गुरु के (मनुष्य को) (विषयो का) सर्प इस लेता है, और (वह) रास्ते ही में मर जाता है। नानक कहते हैं कि (इस प्रकार) बिना गुरु के घाटा ही घाटा है ॥३८॥

जिसे गुरु मिलता है, उसे (संसार-सागर से) पार उतार देता है। (वह गुरु शिष्य के) भ्रवगुणों को दूर कर, गुणों द्वारा उसका उद्धार कर देता है। (गुरु के) शब्द पर ही विचार करने से मुक्ति और महान् आनन्द (की प्राप्ति होती है)। गुरुमुख (इस संसार के युद्ध में) कभी हार कर नहीं आता। शरीर हाट (बाजार) है और यह मन (उस बाजार का) व्यापारी है, (तात्पर्य है मन रूपी व्यापारी से ही शरीर रूपी बाजार चलता है। यदि व्यापारी सच्चा है, तो बाजार भी सुन्दर ढंग से चलता है)। नानक कहते हैं (कि इस शरीर रूपी बाजार में मन रूपी व्यापारी) सहज भाव से सत्य (परमात्मा) का व्यापार करता है ॥३९॥

विशेष : निम्नलिखित, (४० वें पद में) श्रीरामचन्द्र जी द्वारा सेतु-बाँधने और लंका जीतने के रूपक के माध्यम से गुरु नानक देव ने गुरुमुख की महत्ता प्रदर्शित की है।

अर्थ : गुरुमुखों ने विधाता (कर्तार, परमात्मा रूपी) पुल बाँध कर देह रूपी लंका जीत ली। (देह रूपी लंका से जब समस्त भ्रवगुण लूट लिए गए), (तो कामादिक) दैत्यो को (अत्यंत) संताप हुआ। (इस प्रकार) (गुरुमुख रूपी) रामचन्द्र ने अहंकार रूपी रावण को मार डाला। गुरु द्वारा जो परिचय (ज्ञान) प्राप्त हुआ, यह विभीषण का भेद (बताना था)। गुरुमुखों ने (संसार—)—सागर से (पापी) पत्थरो को तार दिया। गुरुमुखों ने तैत्तिरीय करोड़ (तात्पर्य यह कि असंख्य मनुष्यों) का उद्धार किया ॥४०॥

गुरु के द्वारा (मनुष्य) का आना-जाना (जन्मता, मरना) समाप्त हो जाता है। गुरु के उपदेश द्वारा (परमात्मा के) दरबार में सम्मान प्राप्त होता है। गुरु के उपदेश द्वारा ही खोटो-खरो (बुरो और अच्छो) की पहचान होती है। गुरु के द्वारा ही सहज ध्यान लगता है।

गुरुमुख (परमात्मा को) स्तुति द्वारा (उसके) दरबार में प्रवेश पा जाता है । नानक कहते हैं कि गुरु का अनुयायी बंधन में नहीं पड़ता ॥४१॥

गुरुमुख निरंजन नाम (माया से रहित नाम) को पा जाता है । गुरुमुख शब्द—नाम के द्वारा अहंकार को जला देता है । गुरुमुख सत्यस्वरूप (हरी) के गुण गाता है । गुरुमुख सत्यस्वरूप (हरी) में समा जाता है । सत्य नाम के द्वारा गुरुमुख की उत्तम प्रतिष्ठा होती है । नानक कहते हैं कि गुरुमुख को समस्त भुवनो की समझ आ जाती है (कि एक हरी समस्त भुवनो में व्याप्त है) ॥४२॥

(योगीश्वर नानक महाराज से फिर प्रश्न करते हैं)—(जीवन का) मूल (प्रारम्भ) कहाँ है ? और किसका मत (धर्म-ग्रहण करने की) बेला है ? (तात्पर्य यह कि कौन धर्म मानने योग्य है) ? तेरा कौन गुरु है, जिसका तू शिष्य है ? किन विचारों को लेकर तू (संसार से) निर्लिप्त रहता है ? हे बालक नानक, (इन प्रश्नों को) सुनकर (हमें इनके उत्तर) बता । इन बातों का विचार करके यह भी बताना (कि जिस शब्द की तूने इतनी महत्ता बतलाई है) उस शब्द के द्वारा गुरु (किस प्रकार) संसार-सागर से पार उतारता है ? ॥४३॥

(गुरु नानक देव उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं)—“प्राण (पवन) ही (जीवन का) प्रारम्भ (मूल) है । और यह बेला सद्गुरु के मत की है, (अर्थात् सद्गुरु-का धर्म ही इस समय का युगधर्म है) । शब्द गुरु है और शब्द में सुरति का निरन्तर टिकना, यही बेला है । युग-युगान्तरो, से (भूत, वर्तमान और भविष्य काल में रहनेवाले) अकथनीय (हरी की) कथा (विचार) (हृदय में धारण कर) (इस संसार के मायिक प्रपंचों से) निराला निर्लेप रहता हूँ । (केवल) गुरु-शब्द ही एक ऐसा है, जिसके द्वारा हरी की कथा विचारी जाती है । गुरु द्वारा ही अहंकार की अग्नि का निवारण होता है ॥४४॥

मोम के दाँतों से लोहा कैसे खाया जाय ? (तात्पर्य यह कि अपनी आत्मिक निर्बलता से अहंकार कैसे दूर किया जाय) ? जिस (वस्तु) से गर्व दूर हो जाय, वह कौन सा आहार है ? बर्फ का तो घर है और पोशाक (लिबास) आग की है, (भाव यह कि तमोगुणी मन नश्वर शरीर में रहता है; जिस प्रकार बर्फ को आग गला देती है, वैसे ही तमोगुणी मन शरीर को नष्ट कर देता है) । वह कौन सी गुफा है, जहाँ (मन) स्थिर रहे ? किसे प्रत्येक स्थान में (विराजमान) जान कर लीन (निमग्न) हो ? वह कौन सा ध्यान है, जिसे मन अपने आप में समाहित रहे ? ॥४५॥

(उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर इस पद में दिया गया है)—अहंकार और ‘मैं पन’ (की भावना को) (अपने) में से मिटा दे और द्वैतभाव को मिटा दे, (तो परमात्मा के साथ) (मनुष्य) एक हो जाता है । जगत् बहुत कठोर (कड़ा) है और मनमुख गंवार है, (तात्पर्य यह कि मनमुख अपनी मूर्खता से जगत् की कठिनाइयों को नहीं दूर कर सकता) । (यदि) शब्द—नाम की कमाई की जाय, (तो अहंकार रूपी) लोहा खाया जा सकता है । अदर और बाहर एक परमात्मा को ही जाने । नानक कहते हैं कि सद्गुरु की इच्छा से ही (शरीर में स्थित) अग्नि (तमोगुणी अग्नि अथवा तृष्णा की अग्नि) शान्त होती है ॥४६॥

सत्य (परमात्मा) के भय में लगने से गर्व का निवारण हो जाता है । (हरी को) एक जान कर, (उसके) शब्द नाम के ऊपर विचार करे । सत्य शब्द हृदय के अन्तर्गत बसने

से तन-मन झीतल हो जाते हैं (और मनुष्य हरी के) रंग में रँग जाता है । नानक कहते हैं कि परमात्मा की कृपादृष्टि से काम-क्रोध रूपी विष की अग्नि का निवारण हो जाता है ॥ ४७ ॥

किस प्रकार चन्द्रमा (मनुष्य का मन) ठंडक का घर और अंधेरा बना रहता है ? किस प्रकार प्रकाश करता हुआ सूर्य (ज्ञान) प्रचण्ड होना है ? किस प्रकार काल का देखना समाप्त होता है ? किस विधि से गुरु के द्वारा प्रतिष्ठा होती है ? कौन और (ऐसा) शूरवीर है, जो काल का भी संहार करता है ? नानक (इन प्रश्नों को) विचारता है (और उनके उत्तर में) इस प्रकार बचन बोलता है ॥ ४८ ॥

शब्द—नाम का उच्चारण करने से चन्द्रमा में (भाव यह कि चन्द्रमा की भाँति ठंडे और अंधेरे मन में) अनन्त प्रकाश हो जाता है । (जिस प्रकार) चन्द्रमा के घर में सूर्य आकर बसता है, तो चन्द्रमा का अन्धकार नष्ट हो जाता है, (तात्पर्य यह कि जब ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश अंधकारयुक्त (अज्ञानी) मन में पड़ता है, तो मन में परम प्रकाश हो जाता है और उसकी नेराश्य-भावना (ठंडक) दूर हो जाती है) । (हरी के) नाम का आश्रय लेकर सुख-दुख की समान (समझा जा सकता है) । (परमात्मा) आप ही (ससार-सागर से) पार उतारने-वाला है । गुरु की प्रतीति से मन सत्य (परमात्मा) में टिक जाता है । नानक विनय-पूर्वक कहता है (कि ऐसे व्यक्ति को) काल भक्षण नहीं करता, (वह काल के पाश से मुक्त हो जाता है) ॥ ४९ ॥

नाम-तत्त्व सब का शिरोमणि प्रतीत होता है । (परमात्मा के) तत्व से (जब) (जीवात्मा का) तत्व मिल जाता है, तो मन मान जाता है, (तात्पर्य यह कि मन अपनी चंचलता को त्याग कर शान्त हो जाता है) । (इससे) द्वैतभाव चला जाता है और हृदय में एक भाव (अद्वैतभाव) आ जाता है । (ऐसी अवस्था में) प्राण बोलने लगते हैं, (भाव यह कि प्राणों में नवीन उमंग आ जाती है, जिससे नवीन जीवन की लहर चल पड़ती है) और गगन (दशम द्वार) गरजने लगता है, (तात्पर्य यह कि परमात्मा के मिलाप की अवस्था प्रबल हो जाती है) । नानक कहते हैं, (कि तब मन) निश्चल हो जाता है और (हरी के साथ) मिलाप भी सहज ही हो जाता है ॥ ५० ॥

शून्य (निर्गुण हरी) (सबके) भीतर है, वही (सब के) बाहर भी है, (इस प्रकार समस्त) त्रिभुवन शून्य (निर्गुण हरी) से (ही व्याप्त है) । जो व्यक्ति चतुर्य पद—सहजावस्था के द्वारा शून्य (निर्गुण हरी) को जानता है, उसे पाप-पुण्य (का लेप) नहीं लगता । सारे घटों के बीच निर्गुण और व्यापक हरी का भेद जो अपने घट में भी जानता है, वह आदि पुरुष और निरंजन देव (का ही स्वरूप है) । जो व्यक्ति निरंजन (निर्गुण हरी) के नाम में अनुरक्त है, (उसमें शक्ति का आगमन होता है और वह ओरो के जीवन का) निर्माता हो जाता है—ऐसा नानक (का कथन है) ॥ ५१ ॥

सभी कोई 'शून्य शून्य' ('निर्गुण ब्रह्म', 'निर्गुण ब्रह्म') कहते हैं । किन्तु उस अनाहत शून्य—(निर्गुण हरी) (की प्राप्ति) किस प्रकार हो ? जो अनाहत (निर्गुण हरी) में अनुरक्त है, वे किस प्रकार के मनुष्य हैं ? इसका उत्तर यह है कि जो अनाहत शून्य में निमग्न है, वे उसी के समान हैं, जिससे उत्पन्न हुए हैं । ऐसे (पुरुष) न जन्मते हैं, न मरते हैं, न (कहीं) आते हैं (और) न (कहीं) जाते हैं, (क्योंकि वे निर्गुण परमात्मा से मिलकर एक हो गए हैं) । नानक कहते हैं कि गुरु के द्वारा मन को समझाओ ॥ ५२ ॥

नौ गोलको (दो नासिका-रन्ध्र, दो श्रवणेन्द्रिय के रन्ध्र, दो आँखें, एक मुख, एक शिश्न-द्वार और एक गुदा-द्वार) को (पूर्ण रीति से) भर दे, और फिर दशम द्वार को पूर्ण रीति से भरे, (तात्पर्य यह कि इन्द्रियो को विवेक, वैराग्य और अभ्यास द्वारा इतना अधिक साध ले, कि विषयो के प्रति न तो उनकी इच्छा हो और न आसक्ति हो और परमात्मा के चिन्तन की वृत्ति भी परमात्मा से सदैव युक्त रहे), वहाँ अनाहत-शून्य का तुर्य (तुरही बाजा) बजने लगता है, (तात्पर्य यह कि आत्मिक-मण्डल का संगीत होने लगता है; पूर्ण आनन्द प्राप्त होने लगता है) । (ऐसे साधक) सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त होकर, (उसे) अति निरुद देखते हैं (और यह अनुभव करते हैं कि) सत्य (परमात्मा) प्रत्येक घट में परिपूर्ण है (व्यास हैं) । बाणी का गुप्त अर्थ भी प्रकट हो जाता है । नानक कहते हैं कि जिस सत्य की ओर बाणी सकेत करती थी, वह प्रत्यक्ष हो जाता है ॥५३॥

सहज भाव से (परमात्मा के साथ) मिलने से, (परम) मुख होता है । गुरुमुख (परमात्मा से सहज भाव से मिल कर) (ज्ञान में) जगता है, (वह फिर अज्ञान-निद्रा में) नहीं सोता । शून्य-शब्द (अजपा जाप) (उसे) अपरंपार (हरी) में धारण किए रहता है—टिकाए रखता है । (वह) नाम जपते हुए मुक्त होकर (औरों को भी) शब्द द्वारा तार तार देता है । गुरु के उपदेश (दीक्षा) से (वह) सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त हुआ है । नानक कहते हैं कि (वह) आपापन गंवा कर (परमात्मा से) मिला है, (अतः अब उसमें) कोई भ्रान्ति—संशय-भावना नहीं है ॥५४॥

(जो व्यक्ति शब्द को छोड़ कर) दुर्बुद्धि (की बातें) बोलता है, (भाव यह कि मूर्खतापूर्ण बाने करता है), (उसका) क्या ठिकाना है ? (वह) (परमात्मा के) तत्त्व को क्यों नहीं समझता, (जिसके फलस्वरूप) चोटे खाता है ? (वह) यमराज के दरवाजे पर बाँधा जाता है और उसकी रक्षा कोई भी नहीं कर सकता । बिना शब्द के (उसकी) न तो कोई प्रतिष्ठा होती है और न कोई शाख । (ऐसा व्यक्ति) (परमात्मा को) कैसे समझे, (जिससे वह ससार-सागर से) पार हो ? नानक कहते हैं कि मनमुख और गंवार (परमात्मा को) नहीं समझता ॥५५॥

गुरु के शब्द पर विचार करने से कुबुद्धि मिट जाती है । सद्गुरु से मिलने पर मोक्ष का द्वार (प्राप्त हो जाता है) । मनमुख तत्त्व को नहीं पहचानता, (जिससे वह) जल जाता है । (वह अपनी) दुर्बुद्धि (के कारण परमात्मा से) बिछुड़ कर चोटे खाता है । (परमात्मा का) हुक्म मानने पर सभी गुण और ज्ञान (अपने आप आ जाते हैं) । नानक कहते हैं (कि ऐसा व्यक्ति) (परमात्मा के) दरबार में सम्मान पाता है ॥५६॥

(यदि) (मनुष्य के) पल्ले—पास में सत्य के सौदे का धन होता है, (तो) वह स्वयं तरता है (और दूसरों को भी) तारता है । (जो परमात्मा को) समझ कर सहजावस्था—चतुर्थ पद में अनुरक्त है, (उसकी महान्) प्रतिष्ठा होती है । ऐसे व्यक्ति की कीमत को कोई भी नहीं आँक सकता । (ऐसा व्यक्ति) जहाँ भी देखता है, वहाँ ही (पूर्ण निर्गुण ब्रह्म को) व्याप्त (देखता है) । नानक कहते हैं इस सत्य भाव के कारण, वह संसार से पार हो जाता है ॥५७॥

(यह योगियों का प्रश्न है)—उस शब्द का निवास कहाँ माना जाता है, जिसके द्वारा संसार-सागर तरा जाता है ? [योगी यह मानते हैं कि जब साँस ली जाती तो दश अंगुल तक साँस नासिका के बाहर जाती है । अतएव वे इसके सम्बन्ध में पूछते हैं]—दश अंगुल (तीन + सात) तक वायु (निकलने का) (जो प्रमाण) माना जाता है, उसका आधार क्या है ? (जो सत्ता हमारे अन्तर्गत) बोलती है, क्रीड़ा करती है, वह किस प्रकार स्थिर हो ? अलक्ष्य (परमात्मा) किस प्रकार दिखाई पड़े ? नानक विनयपूर्वक कहता है—हे स्वामी, मुनो । मैं उस बात को निवेदन करता हूँ—जिसके द्वारा अपने मन को समझाया है, (तात्पर्य यह कि मैं अनुभव की बात बताता हूँ) । गुरुमुख (गुरु का अनुयायी) सच्चे शब्द—नाम में लिव लगाता है (और हरी उस पर) कृपादृष्टि करके (अपने में) मिला लेता है । (प्रभु) आप ही द्रष्टा है और आप ही जाता है, (जिस व्यक्ति का) पूरा भाग्य होता है, (वही) (परमात्मा में) प्रविष्ट होता है ॥५८॥

वह शब्द (नाम) सभी स्थानों में परिपूर्ण है । वह सर्वव्यापक है, (अतएव) अलक्ष्य है । जिस प्रकार पवन का निवास है, उसी प्रकार शून्य का भी निवास है (निर्गुण हरी पवन की भाँति सर्वव्यापी है, वह निष्कल हरी (अपनी) कलाओं से युक्त है—(जिस प्रकार वायु का भोका आवे, तो प्रतीत होता है, उसी प्रकार जिन्हें परमात्मा की कृपा प्राप्त है, उन्हें वह सर्वव्यापी प्रतीत होता है) । (वह परमात्मा) अपनी ऐसी कला में सर्वव्यापी हो रहा है, जिसमें किसी कला का निर्माण दृष्टि में नहीं आता । (यदि) परमात्मा कृपादृष्टि करे, तभी शब्द का (हृदय रूपी) घट में निवास होता है (और मनुष्य के) बीच से सारे भ्रम दूर हो जाते हैं । नाम को हृदय में बसाने से तन और मन निर्मल हो जाते हैं और बाणी भी पवित्र हो जाती है । गुरु के शब्द में संसार-सागर तरा जाता है; यहाँ और वहाँ एक (परमात्मा) को ही जाने, (उसके प्रतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं है) । नानक कहते हैं कि (वह मनुष्य) शब्द के द्वारा इस बात को जानता है (कि परमात्मा) निहल और वर्ण में परे है, न उसमें माया है और न छाया है; (वह परमात्मा माया और छाया का निर्माता है) ॥५९॥

हे अवधूत (त्यागी, विरक्त) श्वासो (दस अंगुल पर्यन्त निकली हुई वायु) के द्वारा शून्य (निर्गुण हरी का) नाम जपना तथा सत्य (बोलना) यही श्वासो (जीवन) का आसरा है । गुरुमुख तत्व को मँथन कर के बोलता है (और वह) अलक्ष्य और अपार हरी को पहचानता है (साक्षात्कार करना है) । यदि शब्द—नाम (को हृदय में) बसा कर तीनों गुणों—सत्त्व, रज और तम—को भेट दे, तभी मन से अहंकार का नाश होता है । (जब) भीतर और बाहर एक (परमात्मा) को जानता है, तभी हरि का नाम प्यारा लगता है । जब अलख (हरी) स्वयं ही बोध कराता है, तभी (तीन नाडियों)—इडा, पिंगला और सुषुम्ना—के ज्ञान का बोध होता है । नानक कहते हैं कि सच्चा (हरी) इन तीनों नाडियों के ज्ञान से ऊपर (परे) है, (और वह) सद्गुरु के शब्द से जुड़ा हुआ है ॥६०॥

(योगीगण फिर प्रश्न करते हैं)—मन का जीवन वायु (प्राणवायु) कही जाती है, किन्तु वायु को खाने के लिए कहाँ से रस प्राप्त होता है ? हे अवधूत (नानक) ज्ञान की क्या मुद्राएँ हैं ? और सिद्धों की वास्तविक कमाई क्या है ? (अब आगे गुरु नानक देव उत्तर देते हैं)—बिना शब्द के (श्वासों को) रस नहीं प्राप्त होता, (अर्थात् शब्द ही श्वासों को स्थिर

करने वाला रस है) (और बिना शब्द के) अहंकार की व्यास दूर नहीं होती । (भाव यह कि अहंकार शब्द से दूर होता है) । (जो व्यक्ति) शब्द—नाम में रत है, (उन्हीं को) (परमात्म-रस रूपी) अमृत प्राप्त होता है और सत्य (हरी को पाकर (वे) तृप्त हो जाते हैं । (इस पंक्ति में योगियों का प्रश्न है और आगे की पंक्ति में गुरु नानक देव का उत्तर है)— वह कौन सी बुद्धि है, जिससे स्थिर भाव से रहा जाता है ? कौन सा भोजन है, जिसमें तृप्ति होती है ? नानक कहते हैं कि जब सुख-दुख समान प्रतीत होने लगे, (तब मन स्थिर हो जाता है) और फिर (ऐसे प्राणी को) काल भी नहीं असता ॥६१॥

बिना गुरु शब्द के (परमात्मा के) रंग में नहीं रंग सका (और उसके) रस में भी मतवाला नहीं हो सका, (इसलिये मनुष्य बार बार) दग्ध होकर जलता-बलता रहता है । गुरु के शब्द का भी उच्चारण नहीं किया, (इसलिये) बौध्यों को भी रक्षा नहीं कर सका । प्राणवायु स्थिर नहीं कर सका, क्योंकि सच्चे (हरी की) आराधना नहीं की । यदि कोई अकथनीय हरी की कथा कह कर दुःख-सुख को समान कर लेता है, तो वही आत्माराम (घट घट व्यापी हरी) को प्राप्त कर लेता है ॥ ६२ ॥

गुरु की कृपा से (हरी के) रंग में रंग गया और (परमात्म-रूपी) अमृत पीकर सत्य (परमात्मा) में मतवाला हो गया । गुरु (के शब्दों पर) विचार करके (वासना की) अग्नि को शान्त कर दिया । (हरिनाम के) अमृत को पीकर आत्म-सुख को धारण किया । गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य (परमात्मा) की आराधना करके (संसार-सागर से) तर गया । नानक कहते हैं कि कोई (विरला ही इस रहस्य को) समझ सकता है ॥ ६३ ॥

यह (अहंकार में मतवाला) मन (रूपी) हाथी कहाँ बसता है ? यह प्राणवायु कहाँ बसती है ? हे अवधूत, (नानक) वह शब्द कहाँ बसता है, जिसमें मन का चक्कर लगाना समाप्त हो जाता है ? (यदि) (प्रभु) कृपादृष्टि करे, तभी सद्गुरु का मिलाप होता है और तभी यह मन अपने (आत्मस्वरूपी) घर में निवास पाता है । (यदि मनुष्य) आप ही अपने अहंकार को खाये, तभी (यह) पवित्र होता है (और तभी मायिक प्रपंचों के पीछे) दौड़ना समाप्त होता है । किस प्रकार अपने मूल को (मनुष्य) पहचाने, किस प्रकार आत्मा को जाने और किस प्रकार (टंडे और अंधेरे) चन्द्रमा (मन) में (ज्ञान रूपी) सूर्य आकर बस जाय ? नानक कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा अहंकार को (अपने) भीतर से नष्ट करे, (तभी) सहजावस्था—तुरीयावस्था—चतुर्थ पद में समा सकता है ॥ ६४ ॥

हृदय (आत्मस्वरूप) में बसने से, यह मन निश्चल होता है । गुरु की शिक्षा द्वारा मूल (कर्ता पुरुष) पहचाना जाता है । नाभि रूपी घर में प्राणवायु आसन करके बैठती है, (श्वासों का आना-जाना नाभि से ही माना जाता है) । गुरु द्वारा खोजने से हो यह तत्त्व प्राप्त होता है । वह शब्द (हरी) जो निरन्तर (सभी प्राणियों में) है, अपने हृदय में भी आ जाय, तो तीनो भुवनों में बसनेवाली ज्योति शब्द द्वारा प्राप्त हो जाती है । [यह उत्तर है— “कहा बसे सु सबद” का । यहाँ ‘शब्द’ कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।] सच्चे (हरी) को भूख (समस्त) दुखों को खा जाती है (और साधक) सत्य (हरी) में ही तृप्त रहता है । अनाहत नाद (आत्मिक-मण्डल का संगीत) गुरु के द्वारा जाना जाता है । कोई बिरला

ही (इसका वास्तविक) अर्थ समझता है । नानक जो कुछ भी कहता है, सत्य ही कहता है ; सत्य (हरी) में रंगने से, (उसका रंग) कभी नहीं जाता है ॥ ६५ ॥

(योगियों का प्रश्न है)— जब यह हृदय और शरीर नहीं थे (तत्पर्यं यह कि जब इनका निर्माण नहीं हुआ था), तो मन किस स्थान पर रहता था ? जब नाभि-कमल (प्राणों का) स्थम्भ— सहारा नहीं था, तो प्राणवायु किस घर में टिकती थी ? (श्वासों का आसरा नाभि को माना गया है) । जब न कोई रूप था, न रेखा थी, तब शब्द द्वारा किस प्रकार लिब लग सकती थी ? जब (माता के) रज (और पिता के) वीर्य (से निमित्त) यह शरीर नहीं था, (तो परमात्मा की) मिति और कीमत तो पाई नहीं जाती थी ? जब न कोई वर्ण तथा रूप दिखते थे, उस समय सत्य (परमात्मा) कैसे दिखाई देता था ? (गुरु नानक देव ने अंतिम प्रश्न का उत्तर पहले दिया है । प्रश्न यह था कि जब हरी का न कोई वर्ण है न रूप है, तो उसका ध्यान किस प्रकार किया जाता था ?), (उत्तर इस प्रकार है)— नानक (कहता है) कि हे बैरागी, (जब प्रभु के) नाम में अनुरक्त होया जाय, तो (प्रत्येक स्थान में) सच्चा (हरी दिखने लग जाता है) ॥ ६६ ॥

विशेष : यहाँ पहले प्रश्नों के उत्तर दिये जा रहे हैं । इन प्रश्नों के उत्तर में विशेष बात यह है कि संसार निर्माण के पूर्व सारी चेतन सत्ता जो पृथक् पृथक् प्रतीत हो रही है, (जैसे प्राण, वायु, पृथ्वी, आकाश, आदि) वह अपने आदि स्रोत— निर्गुण ब्रह्म में लीन थी ।

अर्थ :—हे भवभूत, बैरागी, जब हृदय और शरीर न थे, (जब ये सत्ता में नहीं आए थे), उस समय मन शून्य (निर्गुण ब्रह्म) में ही स्थित था । नाभि-कमल (जो प्राणवायु का) सहारा है, नहीं था, तो उस समय वायु (प्राणवायु) अपने निज घर (निर्गुण स्वरूप) में ही बसती थी । जब न कोई रूप था, न कोई रेखा थी, उस समय तत्त्व रूप शब्द कुल-रहित (परमात्मा—निर्गुण ब्रह्म) में बसता था । जिस समय पृथ्वी, (भुवन) और आकाश नहीं थे, उस समय त्रिभुवन में व्याप्त (परमात्मा की अखण्ड) ज्योति अपने ही निरंकार स्वरूप में स्थित थी । (समस्त) वर्ण, वेश और रूप (एक हरी के ही हैं); एक आश्चर्य रूप शब्द (परमात्मा) के ही (सारे वर्ण, वेश और रूप हैं) । सत्यस्वरूप (हरी), जिसकी कहानी अकथनीय है, (उसे जाने बिना), कोई भी (प्राणी) पवित्र नहीं हो सकता ॥ ६७ ॥

(हे सम्माननीय) पुरुष, किस-किस ढंग से जगत् की उत्पत्ति होती है और किस-किस दुःख से यह नष्ट हो जाता है ? (आगे की पंक्तियों में गुरु नानक देव का उत्तर है)—(हे सम्माननीय) पुरुष, अहंकार से जगत् उत्पन्न होता है और नाम भूलने पर दुःख पाता है । (जो व्यक्ति) गुरु द्वारा दीक्षित होता है, वही ब्रह्मज्ञान के तत्त्व पर विचार करता है और शब्द—नाम के द्वारा अहंकार जला देता है । (उसके) तन और मन निर्मल हो जाते हैं (और उसकी) बाणी भी पवित्र हो जाती है । वह सत्यस्वरूप (हरी) में समाया रहता है । (वह अर्हतिश) नाम में ही (अनुरक्त होने के कारण संसार से) विरागी—विरक्त रहता है और अपने हृदय में सच्चे (हरी) को धारण किए रहता है । नानक (का यह मत है) कि नाम के बिना योग कभी (सिद्ध) नहीं हो सकता; (इस तथ्य को) हृदय में विचार कर देख लो ॥ ६८ ॥

कोई (बिरला) ही गुरु के द्वारा सत्य शब्द—(हरी) का विचार करता है । गुरु के द्वारा ही सच्ची वाणी प्रकट होती है । गुरु द्वारा मन (परमात्मा के प्रेम-रस में) भोगता है, (इस तथ्य को) कोई (बिरला) ही समझ सकता है । गुरु की शिक्षा द्वारा ही अपने निज घर (आत्मस्वरूप) में निवास होता है । गुरु द्वारा ही योगी (योग की) मुक्ति को समझ लेता है । नानक कहते हैं कि गुरु द्वारा ही (साधक) एक (परमात्मा) को जानता है ॥६६॥

बिना सद्गुरु की सेवा किये योग (कभी सिद्ध) नहीं होता । बिना सद्गुरु के मिले कोई मुक्ति भी नहीं मिलती । [भेटे = भेंट लेकर मिलने को भेटना कहते हैं] । बिना सद्गुरु के मिले, नाम भी नहीं पाया जाता । बिना सद्गुरु के मिले, अत्यधिक दुःख प्राप्त होता है । बिना सद्गुरु के मिले अहंकार के महान् अन्धकार में (रहना पड़ता है) । हे नानक, बिना गुरु के मिले (मनुष्य) जन्म—जीवन (की बाजी) हार कर (सांसारिक प्रपंचो में ही) मर जाता है ॥७०॥

गुरुमुख (गुरु के अनुयायी) ने अहंकार को नष्ट कर मन जीत लिया है । गुरुमुख ने सत्यस्वरूप (हरी) को हृदय में धारण कर रक्खा है । गुरुमुख ने यमराज-काल (मृत्यु) को मार कर विदीर्ण करके, जगत् जीत लिया है । गुरुमुख (परमात्मा के) दरबार में कभी हार कर नहीं आता, (तात्पर्य यह कि शुभ गुणों के आचरण से परमात्मा के दरबार में उसकी प्रतिष्ठा होती है) । जिसे गुरु के द्वारा संयोग करके मिलाता है, वही (इस रहस्य को) जान सकता है । नानक कहते हैं कि गुरुमुख शब्द—नाम को (सच्चे रूप में) पहचानता है ॥७१॥

बिशेष :—७२ वें और ७३ वें पद में सारी गोष्ठी का सारांश दिया गया है कि नाम के बिना योग नहीं सिद्ध हो सकता । नाम से ही वास्तविक सुख, पूर्ण ज्ञान और मुक्ति मिलती है । यह नाम गुरु के द्वारा प्राप्त होता है ।

अर्थ :—हे अवधूत योगी, तू सारे उपदेश—गोष्ठी (शब्द) का निर्णय सुन; बिना नाम के योग कभी नहीं (प्राप्त) हो सकता (जो व्यक्ति) नाम में अनुरक्त है, वह सदैव (प्रतिदिन) मतवाला बना रहता है; नाम से सुख प्राप्त होता है । नाम से ही समस्त (रहस्य) प्रकट हो जाते हैं; नाम से ही सूझ-बूझ—समझ प्राप्त होती है । बिना नाम के (लोग) बहुत से बेश बनाते हैं, (पर उस हरी को नहीं पा सकते, क्योंकि) प्रभु को उन्होंने भुला दिया है । हे अवधूत, सद्गुरु से नाम प्राप्त होता है और तभी योग की मुक्ति भी (ज्ञात) होती है । नानक (का यह कथन है कि) विचार करके मन में (अच्छी तरह से) समझ ले कि बिना नाम के मुक्ति नहीं (प्राप्त) होती ॥७२॥

(हे प्रभु), अपनी गति-मिति तू स्वयं ही जानता है, कोई कह कर (उसे) क्या बर्णन करे ? तू आप ही गुप्त है, आप ही प्रकट है और आप ही सभी रंगों (आनन्दों) में (पड़कर) आनन्द मनाता है । तेरी ही आज्ञा से असंख्य साधक-सिद्ध एवं गुरु-शिष्य (तुझे) ओजते फिरते हैं । वे नाम गाँते हैं (और कहते हैं कि)—“यह भिन्ना हमें प्राप्त हो” ; वे तेरे दर्शन के निमित्त कुत्बान (न्यूछावर) हैं । अविनाशी प्रभु ने ऐसा खेल रचा है, (कि वह समझ में नहीं आता) ; (ही), गुरु की शिक्षा द्वारा उसकी समझ होती है । नानक कहता

है कि सभी युगों में (प्रभु) आप ही बरत रहा है, (उसके अतिरिक्त) कोई दूसरा नहीं है ॥७३॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रामकली की वार, महला १,

जोधें वीरै पूरबाणी की धुनी,

सलोक : सतो पापु करि सतु कमाहि । गुर दीखिआ घरि देखए जाहि ॥
 इसतरी पुरखे छटिऐ भाउ । भावे आबउ भावे जाउ ॥
 सासतु बेदु न माने कोइ । आपो आपे पूजा होइ ॥
 काजी होइ के बहे निआइ । केरे तसबो करे लुदाइ ॥
 बढी लैके हकु गवाए । जे को पूछे ता पड़ि सुराए ॥
 तुरक मंत्रु कनि रिदै समाहि । लोक मुहावहि चाड़ी लाहि ॥
 बउका बे के सुचा होइ । ऐसा हिंदू बेखनु कोइ ॥
 जोगी गिरहो जटा बिभूत । आपे पाछे रोवहि पूत ॥
 जोगु न पाइआ जगति गवाई । किनु कारणे सिरि छाई पाई ॥
 नानक कलि का एहु परवारु । आपे आखरु आपे जायु ॥१॥
 हिंदू के घरि हिंदू आवै । मृतु जनेऊ पड़ि गलि पावै ।
 सुतु पाइ करे बुरिआई । नाता धोता थाइ न पाई ॥
 मुसलमानु करे वडिआई । बिगु गुर पीरे को थाइ न पाई ॥
 राहु दसाइ श्रोथे को जाइ । करणी बाभ्रु भिसति न पाइ ॥
 जोगी के घरि जगति दसाइ । तित कारणे कनि मुंद्रा पाइ ॥
 मुंद्रा पाइ फिरै संसारि । जियै कियै सिरजणहार ॥
 जेते जीअ तेते बाटाऊ । चोरो आई टिल न काऊ ॥
 एयै जालै सु जाइ सिजालै । होरु फकड़ हिंदू मुसलमालै ॥
 सभना का दरि लेखा होइ । करणी बाभ्रु तरै न कोइ ॥
 सचो सतु बखालै कोइ । नानक अगै पुछ न होइ ॥२॥

विशेष :—जोधा और वीरा दो राजपूत थे । ये दोनों भाई-भाई थे । ये “राबिनहुड” की भांति जंगल में रहते थे । अकबर इन्हें वश में ले आना चाहता था । किन्तु उन्होंने कहलवाया, “हम ऐसे-वैसे राजपूत नहीं हैं, जो अपनी पुत्रियों को देकर तुम्हारे गुलाम हुए हैं ।” अकबर ने इन पर चढ़ाई कर दी । ये दोनों भाई युद्धस्थल में लड़कर स्वर्गधाम सिधारे । चारणों ने इनके शौर्य के गीत बनाए, जिसका उदाहरण निम्नलिखित है—

“सनमुख होए राजपूत शूतरी रणकारीआं ।

इंदर सणै अप्पछरा मिल करनि जुहारीआं ॥”

इस वार की पीड़ियों को गाने का संकेत इसी वार की तर्ज पर किया गया है ॥

अर्थ : सत्गुरु :—दानी लोग पाप से एकत्र किए (धन) से दान देते हैं (और दानी होने का दम्भ भरते हैं) । गुरु शिष्यों के घर पर दीक्षा (शिक्षा) देने जाते हैं । स्त्री-पुरुष से धन के लिए प्रेम है । (जब धन नहीं है), तो चाहे कोई भ्राए (और चाहे) जाए । कोई शास्त्र-वेद नहीं मानता है, (सब मनमुख हो गए हैं); अपने-अपने स्वार्थ की पूजा होती है । काजी होकर न्याय करने के लिए बैठता है । (लोगों को दिखलाने के लिये) तस्बीह (माला) फेरता है और "खुदा, खुदा" करता है । रस्सत लेकर सच्चाई (ईमानदारी) गंवा देता है । यदि कोई पूछता है (कि ऐसा क्यों करते हो), तो (उसे कोई न कोई शर्मा या मिसला) पढ़ कर सुना देता है ॥ (उपर्युक्त वर्णन तो मुसलमानों के सम्बन्ध में है अब हिन्दुओं की दशा का चित्रण करते हैं)—(हिन्दू लोग) तुरकों का मन्त्र—इस्लामी कलमा कानो और हृदय में बमते हैं; वे लोगो को लूटते हैं और चुगली करते हैं । चौका देकर पवित्र होते हैं—इस प्रकार के हिन्दू को देखो । योगी गृहस्थ होते हैं (और) जटा (रखते) हैं तथा (शरीर में) भस्म—विभूति लगाते हैं । (उनके मरने पर उनके) आगे-पीछे (होकर) पुत्र रोते हैं । इस प्रकार योग को नहीं प्राप्त किया, (और योग की) युक्ति भी गंवा दी । (पता नहीं) किस कारण सिर में (व्यर्थ) राख डाली ? हे नानक, कलियुग का यही प्रमाण है कि आप ही कहनेवाले और आप ही जाननेवाले बन बैठते हैं ॥१॥

हिन्दुओं के घर में हिन्दू (तात्पर्य यह कि ब्राह्मण) आता है । (वह कुछ मन्त्र) पढ़ कर सूत का यशोपवीत गले में पहना देता है । सूत (का यशोपवीत) पहन कर भी (वह प्राणी बुराई नहीं छोड़ता) और बुराई करता जाता है । केवल (बाह्य सफाई)—नहाने-घोने से हो, (मनुष्य) (परमात्मा के यहाँ) स्थान नहीं पाता । मुसलमान (अपने धर्म की) प्रशंसा करता है । (किन्तु) बिना पीर-गुरु के कोई भी (खुदा के दरबार में) कबूल नहीं होता । राह पूछ कर उस स्थान पर कोई बिरला ही पहुँचता है । बिना (शुभ) कर्म किए बिहिस्त (स्वर्ग) की प्राप्ति नहीं होती । (मनुष्य) योगी के घर में योग की युक्ति पूछने के लिए जाता है । उस (परमात्मा की प्राप्ति) के निमित्त कानो में मुद्रा पहनता है । मुद्रा पहन कर संसार में विचरण करता है । पर वह सिरजनहार तो जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) है । जितने जीव हैं, उतने ही पथिक हैं । (परमात्मा के यहाँ से) बिट्ठी (मोत की पुकार) आ गई, तो इसमें कोई ढील नहीं पड़ेगी; (तब तो वहाँ जाना ही पड़ेगा) । जो इस संसार में उस (प्रभु) को जानता है, वही आगे (उसे) प्राप्त करता है । (बिना प्रभु के जाने) हिन्दू-मुसलमान सब व्यर्थ (फोकट) हैं । (परमात्मा के) दरवाजे पर सभी का लेखा होता है, (चाहे वह हिन्दू हो, अथवा मुसलमान) । बिना (शुभ) करनी के कोई भी (इस संसार-सागर से) नहीं तर सकता । यदि कोई सच्चा ही सच्चा कहता है, तो आगे (परमात्मा के दरबार में) जाकर (कर्मों के हिसाब-किताब के लिए) उसकी पूछ नहीं होती ॥२॥

पउड़ी हरि का मंदर आखीऐ काइआ कोटु गड़ ।

अंबर साल जवेहरी गुरमुखि हरि नाम पड़ ॥

हरि का मंदर सरीर अति सोहणा हरि हरि नाम द्विड़ ।

मनमुख आपि लुआइअनु माइआ मोह नित कड़ ॥

सभना साहिबु एक है पूरे भागि पाइआ जाई ॥१॥

पङ्कड़ी : शरीर को हरि का रहनेवाला घर कहना चाहिए, (बल्कि उसका) किला हो कहना चाहिए । गुरु के द्वारा हरि-नाम पढो, (तो इसके) अन्तर्गत लाल-जवाहर (के समान भूमूल्य गुण प्राप्त होंगे) । हरी के रहने का स्थान, (यह) शरीर बड़ा ही सुहावना है, (किन्तु) हरी-हरी नाम को हठ करो । मनमुख अपने आप को नष्ट कर देते हैं; (वे) माया-मोह में ही निर्योग्य रहते रहते हैं । सभी (प्राणियों) का स्वामी एक मात्र (हरी) है, वह नड़े भाष्यो से पाया जाता है ॥ १ ॥

सलोक ना सति बुझीआ ना सति सुखीआ ना सति पाणी जंत फिरहि ।
 ना सति भुंड भुडाई केसी ना सति पड़िआ बेस फिरहि ॥
 ना सति रुखी बिरखी पथर आपु तछावहि दुख सहहि ।
 ना सति हसती बधे संगल ना सति गार्ई घाटु चरहि ॥
 जिसु हथि सिधि बेवै जे सोई जिसनो बेइ तिसु भ्राइ मिलै ।
 नानक ताकउ मिलै बडाई जिसु घटि भोतर सबहु रवै ॥
 सभि घटि मेरे हुउ सभनी भंदरि जिसहि लुभाई तिसु कउरु कहे ।
 जिसहि दिखाला बाटड़ी तिसहि भुलावै कउरु ॥
 जिसहि भुलाई पंध सिरि तिसहि दिखवै कउरु ॥३॥
 सो गिरही जो निघनु करे । जपु तपु संजमु भोखिआ करे ॥
 पुन दान का करे सरोरु । सो गिरही गंगा का नीरु ॥
 बोलै ईसरु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥४॥
 सो भउधूतो जो धूपे आपु । भिखिआ भोजनु करै संतापु ॥
 भउठ पटल महि भोखिआ करे । सो भउधूतो सिव पुरि चढ़ै ॥
 बोलै गोरलु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥५॥
 सो उदासी जि पाले उदासु । अरथ उरथ करे निरजनु वासु ॥
 चंद सूरज की पाए गंडि । तिसु उदासी का पड़ै न कंधु ॥
 बोलै गोपीचंदु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥६॥
 सो पाखंडो जि काइआ पखाले । काइआ की अगनि बहसु परजाले ॥
 सुपने बिदु न बेई भरणा । तिसु पाखंडो जरा न मरणा ॥
 बोलै चरपटु सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥७॥
 सो बैरागी जि उसटे बहसु । गगन मंडल महि रोषै धंसु ॥
 अहिनिसि अंतरि रहै भिमानि । ते बैरागी सत समानि ॥
 बोलै भरथरि सति सरूपु । परम तंत महि रेख न रूपु ॥८॥
 किउ मरै मंडा किउ जीबै जुगति । कंन पड़ाइ किआ लाजे भुगति ॥
 आसति नासति एको नाउ । कउरु सु अलख जितु रहै हिआउ ॥
 धूप छाव जे समकरि सहै । ता नानकु आखै गुरु को कहै ॥
 छिअ बरतारे बरतहि पूत । ना संसारी ना भउधूत ॥
 निरंकारि जो रहै सचाइ । काहे भिखिआ भंगरि जाइ ॥९॥

सलोक : दुखी होने में सत् (की प्राप्ति); (तात्पर्य सिद्धि) नहीं है, न सुखी होने में सिद्धि है और न जल-जन्तुओं की भाँति पानी के फिरने में ही सिद्धि है । न तो सिर के बाल मुँडाने में सिद्धि है, न पढ़ने में सिद्धि है और न देश-देशान्तरो के भ्रमण में ही सिद्धि है । रुख-वृक्ष एवं पत्थर (की भाँति स्थिर हो जाने में भी) सिद्धि नहीं है, (बहुत से लोग) अपने आप को कटाते हैं तथा दुःख सहते हैं, (इसमें भी सिद्धि नहीं है) । (सासारिक ऐश्वर्यों में—उदाहरणार्थ) हाथियों को साँकल के बाँधने और गायों के इधर-उधर चरने में भी सिद्धि नहीं है । वह (परमात्मा) जिसके हाथ में सिद्धि देता है, (उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है) ; जिसे वह देता है, उसी को (सिद्धि) आकर मिलती है । नानक कहता है कि उसी व्यक्ति को बड़ाई प्राप्त होती है, जिसके हृदय के भीतर शब्द—नाम का स्मरण होता है । (परमात्मा कहता है) —“सभी घटों के भीतर मैं हूँ, जिसे मैं भुलावा दे दूँ; उसे और कौन मार्ग बता सकता है ? और जिसे मैं मार्ग दिखला दूँ, उसे कौन भुलावा दे सकता है ? जिसे मार्ग के प्रारम्भ में ही भुला दूँ (भटका दूँ), उसे (मार्ग), कौन दिखा सकता है ?” ॥ ३ ॥

वही (वास्तविक) गृहस्थ है, जो (इन्द्रियो तथा मन का) निग्रह करता है; (वह) (परमात्मा से) जप, तप और सयम की भिक्षा माँगे, (अपने) शरीर को पुण्य-दान (करने वाला) बनावे । जो गंगा-जल (की भाँति पवित्र और निर्मल है), वही गृहस्थ है । ईश्वर [एक आदर्श गृहस्थ का नाम है], कहता है, (कि वह परमात्मा) सत्य-स्वरूप है, उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है । [अथवा उपर्युक्त पंक्तियों का इस भाँति में अर्थ हो सकता है—ईश्वर (परमात्मा) सत्यस्वरूप कहलाता है । उस परम तत्त्व में कोई रूप-रेखा नहीं है ।] ॥ ४ ॥

वही अवधूत है, जो अपनापन जला दे; (और) कष्ट-सहन को ही भिक्षा का भोजन बनावे । (वह) (हृदय रूपी) नगर में (ज्ञान की) भिक्षा माँगे । वही (वास्तविक) अवधूत है, जो परमात्मा के देश में चढ़ता है । गोरखनाथ (अवधूत—योगी विशेष) कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है; उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ५ ॥

वही (वास्तविक) उदासी है, जो उदासीन—विरक्त धर्म का (यथोचित) पालन करता है । (वह) नीचे-ऊँचे (सभी स्थानों में) उस निरजन का निवास-स्थान समझे । वह अपने ही अन्तर्गत चन्द्रमा (की शीतलता) और सूर्य (का ज्ञान) एकत्र करे । ऐसे उदासी के शरीर का नाश नहीं होता । गोपीचंद (उदासी विशेष का नाम) कहते हैं कि परमात्मा सत्य स्वरूप है । उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ६ ॥

वही (सच्चा) पाखण्डी है, जो शरीर को धोता है, (तात्पर्य यह कि शुद्ध करता है) । (वह) शरीर की अग्नि में ब्रह्माग्नि प्रज्वलित करे । (वह) स्वप्न में भी वीर्य को न गिरने दे; ऐसे पाखण्डी को न जरावस्था (वृद्धावस्था) होती है, और मरण ही होता है । चर्पटनाथ कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है; उस परम तत्त्व में न कोई रेखा है और न कोई रूप है ।

[विशेष : पाखण्डी एक मत है, जिसके अनुसार लोगों की दृष्टि से बचने के लिए जान-बूझ कर और के और कर्म किए जाते हैं । यह वाम मार्ग का एक पंथ है] ॥ ७ ॥

वही (वास्तविक) बैरागी है, जो ब्रह्म को (मन को ओर) उलटे और आश्रय (स्यम्भ) रूप (परमात्मा को) दशम द्वार में आरोपित कर दे । (वह) अर्हनिश भान्तरिक ध्यान में (निमग्न) रहे । वह बैरागी सत्यस्वरूप (परमात्मा) का ही रूप हो जाता है । भरघरी कहते हैं कि परमात्मा सत्यस्वरूप है । उस परम तत्त्व में कोई रेखा अथवा रूप नहीं है ॥ ८ ॥

कान फटवा कर भोजन करने से क्या (लाभ) ? (भला) इससे बुराई क्यों मरे और (वास्तविक) जीवन की युक्ति किस प्रकार (प्राप्त हो) ? वह कौन सा अक्षर है, जिसके साथ हृदय (स्थिर होकर) टिके ? वह केवल नाम ही है, जो (संसार के) 'अस्ति' (होने में) और 'नास्ति' (न होने में) विद्यमान था । नानक कहते हैं (कि हे योगी, तुम्हें) कोई गुरु ही समझा सकता है कि धूप-छाँह (दुःख सुख) को समान समझो । (लोग ऊपर कहे हुए) छः व्यवहारों (तात्पर्य यह है कि (१), गृहस्थ, (२), अवधूत, (३) उदासी, (४) पाखण्डी, (५) बैरागी, और (६) कनफटा)—के बीच पुत्र (शिष्य) होकर बरत रहे हैं; किन्तु न तो वे सुन्दर गृहस्थ ही होने हैं, और न त्यागों विरक्त ही । जो (व्यक्ति) निर्गुण (परमात्मा) में लीन हो जायगा, (वह भला, द्वार द्वार) भीख क्यों माँगने जायगा ? ॥ ९ ॥

पङ्क्ति : हरि मंदर सोई आखीऐ जिघट्ट हरि जाता ।

मानस बेह गुर बचनी पाइआ सभ आतम रासु पछाता ॥

बाहिर मूलि न खोजीऐ घर माहि विधाता ।

मनमुख हर मंदर की सार न जाणनी तिनी जनमु गवाता ॥

सभ माहि इकु बरतदा गुर सबनी पाइआ जाई ॥ २ ॥

पङ्क्ति : जहाँ पर हरि जाना गया, उसी (स्थान) को "हरि-मन्दिर" कहना चाहिए । मनुष्य के देह में गुरु के उपदेश द्वारा (हरी को प्राप्त किया और) सभी (स्थानों) में आत्मा-राम को पहचाना । (कही) बाहर मूल (आदि पुरुष) को खोजने मत जाओ, (तुम्हारे) घर (हृदय) में ही रचयिता (कर्ता-पुरुष) विद्यमान है । मनमुख "हरि-मन्दिर" का पता (खोज-खबर) नहीं जानने, उन्होंने (मायिक प्रपंचों में ही) अपना (अमूल्य मानव)-जन्म गँवा दिया । सभी में एक (परमात्मा) बरत रहा है, (किन्तु) वह गुरु के शब्दों से ही पाया जाता है ॥ २ ॥

सलोक : नानक आखै रे मना सुणीऐ सिख सही ।

लेखा रनु मंगेसीआ बैठा कडि बही ॥

तलबा पउसनि आकीआ बाकी जिना रही ।

अजराईलु फरेसता होसी आइ तई ॥

आवरणु जाणु न सुझई भीड़ो गली फही ।

कूड़ निलुटे नानका ओइकि सखि रही ॥ १० ॥

सलोक : नानक कहता है कि ऐ मन, (तू) सच्ची शिक्षा सुन—परमात्मा (अपनी) बही निकाल कर (कर्मों का) लेखा-जोखा माँगने बैठेगा । उन बागियों (मनमोहों) के बुलावे आ पड़ेगे, जिनके (जिम्मे) लेखे का बाकी (हिसाब) है । फरिश्ता अजराईल (मुसलमानों के अनुसार मौत का देवता) (द्वार पर) तैयार होकर (सजा देने के लिए) आया होगा । उस

समय तंग गले में फँसी हुई (जीवात्मा) को भ्राना-जाना कुछ नहीं सूझेगा । हे नानक, (ऐसी परिस्थिति में) झूठे हार जते हैं, अन्त में सत्य ही में बचाव (रक्षा) है ॥ १० ॥

पउड़ी : हरि का सभु सरोरु है हरि रवि रहिआ सभु भ्रावै ।

हरि की कीमति ना पवै किछु कहगु न जापै ॥

गुरपरसादी सालाहीऐ हरि भगती रावै ।

सभु मनु तनु हरिआ होइआ अहंकारु गवावै ॥

सभु किछु हरि का खेतु है गुरमुखि किसै बुझाई ॥३॥

पउड़ी : (जितने भी शरीर दिखाई पड़ रहे हैं), सभी हरि के शरीर हैं, और हरी आप ही सभी (शरीरों) में व्याप्त है । हरी की कीमत नहीं पाई जा सकती और कुछ कहने को भी नहीं सूझ पड़ता । गुरु की कृपा में, (हरी की) स्तुति करके, उसकी भक्ति में रँग जाना चाहिए । (ऐसा करने से) सारा तन, मन हरा (प्रकुलित) हो जाय और (सारे) अहंकार को नष्ट कर दे । (यह) सब कुछ हरी का खेल है, गुरु के द्वारा किसी को (यह रहस्य) समझ पड़ता है ॥ ३ ॥

सलोकु : सहंसर बान बे इंदु रोभाइआ । परसुराम रोवै घरि आइआ ॥

अजै सु रोवै भीखिआ खाइ । ऐसी दरगह मिलै सजाइ ॥

रोवै रामु निकाला भइआ । सीता लखमणु विछुड़ि गइआ ॥

रोवै दहसिरु लंक गवाइ । जिन सीता आदी डउरु बाइ ॥

रोबहि पांडव भए मजूर । जिन कै सुभामी रहन हइरि ॥

रोवै जनमेजा खुइ गइआ । एकी कारण पापी भइआ ॥

रोबहि सेख मसाइक पीर । अंति कालि मनु लागै भोइ ॥

रोबहि राजे कंन पड़ाइ । घरि घरि मानहि भीखिआ जाइ ॥

रोबहि किरपन संचहि धनु जाइ । पंडित रोबहि गिघ्रानु गवाइ ॥

बाली रोबहि नाहि भतारु । नानक दुखीआ सभु संसारु ॥

मंनै नाउ सोई जिणि जाइ । अउरी करम न लेखै लाइ ॥११॥

सावणु राति अहाइ दिनु कामु कोशु दुइ खेतु ।

लसु वत्र दरोगु बीउ हासी राहकु हेत ॥

हलु बीचारु बिकार मए हुकमी खटे खाइ ।

नानक लेखै मंगिए अउतु जखेदा जाइ ॥१२॥

भउ भुइ पवितु पाएगु सतु संतोखु बलेवु ।

हलु हलेमी हली चितु जेता वत्र बलत संजोगु ॥

नाउ बीजु बखसीस बोहल दुनीआ सगल दरोग ।

नानक नदरी करमु होइ जावहि सगल विजोग ॥१३॥

सलोक : (गौतम ऋषि की पत्नी ग्रहत्या का धोखे में सतीत्व नष्ट करने के लिए) इन्द्र को सहस्र भगोवाला (बनने का) दण्ड दे कर क्लृप्ता गया । (श्री रामचन्द्र जी के द्वारा शक्ति ले लेने पर) परशुराम धर आ कर रोने लगे । (श्री रामचन्द्र के पितामह राजा) अज

पउड़ी : मनमुख के (हृदय में सदैव) मोह (रूपी) भ्रंशकार (व्याप्त) रहता है, (जिससे वह भ्रष्टनिश) द्वैतभाव में ही बोलता है। द्वैतभाव (के आवरण में) सदैव दुःख ही दुःख है। (द्वैतभाव में आचरण करके सुख पाना ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार) नित्य पानी को मथ कर (मक्खन प्राप्त करना); (तात्पर्य यह कि द्वैतभाव के आचरण से सुख की प्राप्ति करना ठीक उसी भाँति है, जिस भाँति पानी मथ कर मक्खन की प्राप्ति की प्राप्ति रखना)। गुरुमुख नाम का ध्यान करता है। (वह) (उस नाम रूपी दही) को मथ कर तत्त्व रूपी (मक्खन) निकालता है। उसके घनतःकरण में, और घट (शरीर) में (ज्ञान का) प्रकाश हो गया है; (उसने) ढूँढ़ कर (परमात्मा को) प्राप्त कर लिया है। (जीव) आप ही (भ्रजान में) भ्रमित होकर भटकता रहता है, (परमात्मा की इस लीला के संबंध में) कुछ कहा नहीं जा सकता ॥४॥

सलोक : नानक इहु जोउ मछली भीवरु तुसना कासु ।
मनुष्या ग्रंथु न चेतई पड़े भ्रंशिता जासु ॥
नानक चितु अचेतु है चिता बधा जाइ ।
नदरि करे जे आपणी ता आपे लए मिलाइ ॥१४॥

सलोक : नानक कहते हैं कि यह प्राणी (जीव) मछली (के समान) है और तृष्णा रूपी काल मल्लाह (के समान) है। (किन्तु) ग्रन्था (भ्रजानी) मन (कुछ) समझता नहीं, (जिससे) बिना जाने ही (धोखे में) (काल के) जाल में पड़ जाता है। हे नानक, (यह) चित्त (अत्यंत) भ्रसावधान है (और अपनी) चिन्ताओं के कारण ही बाँधा जाता है। (हाँ), यदि (प्रभु) अपनी कृपादृष्टि करे, तो स्वयं ही (भटकते हुए जीव को) अपने में मिला कर (एक कर ले) ॥ १४ ॥

पउड़ी : से जन साचे सदा सदा जिनो हरि रसु पीता ।
गुरुमुखि सचा मनि वसै सनु सउदा कीता ॥
सभु किछु घर ही माहि है बडभागी लीता ॥
अंतरि तुलना मरि गई हरि गुण गाबीता ॥
आपे मेलि मिलाइअनु आपे बेइ भुभाई ॥५॥

पउड़ी : जिन (व्यक्तियों) ने हरि-रस को पी लिया है, वे पुरुष सदैव सदैव से सच्चे हो गए हैं। गुरु की शिक्षा द्वारा सच्चा (परमात्मा) मन में (आकर) बस जाता है; (उन्होंने) सच्चे सौदे को किया है। सभी कुछ (वस्तु) इसी घर (शरीर) में है, बड़भागी (अत्यन्त भागशाली) ही ने (उसे) (प्राप्त) कर लिया है। हरि का गुणगान करने से आन्तरिक तृष्णा शान्त हो जाती है। (प्रभु) स्वयं अपने में (प्राणी को) मिला लेता है और स्वयं (उसे) बोध करा देता है ॥ ५ ॥

सलोक : बेलि पिआइआ कति बुलाइआ ।
कटि कुटि करि लु बि बड़ाइआ ॥
लोहा बडे वरजी पाड़े खूई धागा सीबै ।
इउ पति पाटी सिफती सीपै नानक जीबत जोबै ॥

होइ पुराणा कपड पाटे सूई धागा गंढे ।
 साहु पलु किहु चले नाही घड़ी मुहुतु किछु हंढे ॥
 सब पुराणा होवे नाही सीता कहे न पाटे ।
 नानक साहिबु सबो सचा तिचरु जापी जावे ॥१५॥
 सब की कातो सबु सभु सारु ।
 घाड़त तिस की अपर अपार ॥
 सबवे साए रखाई साइ ।
 गुण की भेके बिचि समाइ ॥
 तिसदा कुठा होबे सेलु ।
 लोह लबु निकथा वेलु ॥
 होइ हलासु लगै हकि जाइ ।
 नानक दरि दीदारि समाइ ॥१६॥
 कमरि कटारा बंकडा बंके का असबगरु ।
 गरबु न कीजे नानका मनु सिरि आवै भार ॥१७॥

संक्षेप : (पहने छई को) घोट कर, (फिर) धुन कर, (फिर) कातकर, (तब) बुना जाता है । (तत्पश्चात् फिर उस बुने हुए वस्त्र को) काट कूट कर (ठीक कर), (रंगने के पहले) खूब पर चढ़ाया जाता है । [खूब = जिस पात्र में वस्त्र तपाये जाते हैं; उसे खूब कहते हैं] । (तत्पश्चात् उस वस्त्र को) लोहा (तात्पर्य यह कि)—कैची काटती है, (तब) दरजो उसे फाड़ता है (और ध्रुत में) सुई-धागा में उसे सीने हैं । इसी प्रकार फटी हुई प्रतिष्ठा को (परमात्मा की) स्तुति करनेवाला (पुरुष) (उसके गुणगान रूपी सुई-धागे से) सी देता है । हे नानक, (इस प्रकार वह व्यक्ति अमरत्व का) जीवन जीता है । (यदि) वस्त्र पुराना होकर फट जाता है, तो सुई-धागा (उसे) सी देते हैं, (परन्तु ऐसा वस्त्र बहुत दिनों तक नहीं चलता, वह अन्त में फट हो जाता है; इसी प्रकार सासारिक जीवन बहुत दिनों तक नहीं चलता, चाहे वह कितनी सुंदर युक्ति से क्यों न रहा जाय) । (सासारिक जीवन) महोना, पक्ष कुछ भी नहीं चलता; घड़ी, मुहूर्त में ही (वह) नष्ट हो जाता है । सत्य पुराना (कभी) नहीं होता, (क्योंकि वह शाश्वत और चिर-नवीन है) । सत्य सिया जाने पर (फिर) कभी नहीं फटता, (तात्पर्य यह कि सत्य का साक्षात्कार कर लेने पर, फिर च्युत होने का भय नहीं रहता) । नानक कहते हैं कि साहब (परमात्मा) शाश्वत सत्य है, हम इसे जितना अधिक जपते रहें, यह उतना ही अधिक स्थायी और शाश्वत (हमें) दिखलाई पड़ता है ॥ १५ ॥

विशेष : १६ वे 'सलोक' में गुरु नानक देव जी ने बताया है कि मनुष्य-जीवन 'हलाल' का जीवन किस प्रकार बनाया जा सकता है । इसे रूपक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । जो मनुष्य इस प्रकार अपने को 'हलाल' करता है, वही परमात्मा के दरबार में पहुँचता है ।

अर्थ : सत्य की छुरी (बनावे) और सारा लोहा भी (उस छुरी का) सत्य का ही हावे । अपरंपार (निर्गुण हरी) ही उस (छुरी) की बनावट हो । (उस छुरी को) शब्द रूपी—नाम रूपी साधन पर (पंजी करके) ले आ । (शुभ) गुणों की ध्यान में (इस ज्ञान रूपी छुरी को) रख । यदि शेष इस प्रकार की छुरी का कुट्टा किया हुआ हो (ध्वन किया हुआ

हो), (तात्पर्य यह कि यदि शेष का जीवन इस प्रकार निमित्त किया गया हो), तो (ऐसे शेष के) लोभ रूपी रक्त को निकला हुआ ही समझो । (ऐसा पुण्यात्मा) हलाल होकर हक—सत्य (हरी) में जा लगता है और उसके दर्शन से उसके दरबार में प्रविष्ट हो जाता है । ['हलाल' = जिस जानवर का रक्त बिलकुल निकल जाय, उसे 'हलाल' कहते हैं] ॥ १६ ॥

(चाहे) कमर में सुन्दर कटार (बँधी हो) और सुन्दर (घोड़े पर) सवार हो, (पर) नानक कहते हैं, (कि इस सासारिक ऐश्वर्य पर) फूले मत समाओ, (क्योंकि यह क्षणभंगुर है) बल्कि सिर के बल पड़ जाओ (और अपनी विनम्रता प्रदर्शित करो) ॥ १७ ॥

पउड़ी : सो सतसंगति सबदि मिलै जो गुरुमुखि चले ।

सचु धिआइनि से सचे जिन हरि खरचु धनु पलै ॥

भगत सोहनि गुण गावहे गुरमति अचलै ।

रतन बीचारु मनि वसिआ गुर कै सबदि भले ॥

आपे मेलि मिलाइदा आपे बेइ बडिआई ॥ ६ ॥

पउड़ी : जो गुरुमुखों के कथनानुसार चलता है, उसे सतसंगति में शब्द—नाम की प्राप्ति होती है । जिनके पास (पल्ले) हरि-घन रूपी खर्च है, वे सच्चे (पुरुष) सत्यस्वरूप (हरी) का ही ध्यान करते हैं । ऐसे भक्त गुरु द्वारा दी गई बुद्धि में अचल हैं, (वे प्रभु का) गुणगान करके (उसके दरबार में) सुशोभित होते हैं । गुरु के उत्तम (भले) उपदेश द्वारा (उनके) मन में विचार रूपी रतन बस गया है । (प्रभु) (साधक को) स्वयं ही अपने में मिलाता है और स्वयं ही बढ़ाई (प्रतिष्ठा) प्रदान करता है ॥ ६ ॥

सलोक : सरवर हंस धुरे ही मेला खसमँ एवै भाणा ।

सरवर अंदरि हीरा मोती सो हंसा का खाणा ॥

बगुला कागु न रहई सरवरि जे होवै अति सिआणा ।

ओना रिजकु न पइओ ओथे ओन्हा होरो खाणा ॥

सबि कमारै सचो पाईऐ कूड़ै कूड़ा माणा ।

नानक तिन को सतिगुरु मिलिआ जिना धुरे पैया परवाणा ॥ १८ ॥

साहिबु मेरा उजला जेको चिति करेइ ।

नानक सोई सेबीऐ सदा सदा जो बेइ ॥

नानक सोई सेबीऐ जितु सेबीऐ दुखु जाइ ।

अबगुण वंजनि गुण रवहि मनि सुबु वसै आइ ॥ १९ ॥

सलोक : (गुरु रूपी) सरोवर और (गुरुमुख रूपी) हंस का मिलाप प्रियतम (हरी) ने अपनी मर्जी के अनुसार पहले से रच रक्खा है । (उस गुरु रूपी) सरोवर में (जो गुण रूपी) हीरा और मोती हैं, वे ही (गुरुमुख रूपी) हंसों के आहार हैं । जो अत्यन्त चतुर (सासारिक बुद्धि वाले) (मनमुख रूपी) बगुले और कौवे हैं, वे (गुरु रूपी) सरोवर में नहीं रह सकते । (उनका विषय रूपी) आहार (घांघे, मेढक आदि) उस स्थान पर नहीं प्राप्त होता, उनका आहार (विषय—मेढक, घोधा) तो अन्य ही है । (गुरु रूपी सरोवर में तो गुण रूपी हीरा मोती विद्यमान हैं, और वह मनमुख रूपी बगुनो और कौबो को प्रिय नहीं है) ।

सत्य की कमाई से सत्य की ही प्राप्ति होती है । झूठो का झूठ ही भोग होता है । नानक कहते हैं कि जिन्हें प्रारम्भ से ही (परमात्मा का) परवाना (हुक्म) मिला रहता है, उन्हें ही गुरु प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

यदि कोई (परमात्मा को) चित्त में स्मरण करे, (तो) वह मेरा साहब (परम) प्रकाशक (अनुभव होता) है । हे नानक, उसी प्रभु की आराधना कर जो सदैव सदैव देता ही रहता है । हे नानक, उसी प्रभु की सेवा करनी चाहिए, जिसकी सेवा से (समस्त) दुःख नष्ट हो जाते हैं, अवगुण दूर हो जाते हैं, गुण अन्दर आ कर बस जाते हैं और मन में सुख आकर निवास करने लगता है ॥ १९ ॥

पउड़ी : आपे आपि बरतबा आपि ताड़ी लाईअनु ।
 आपे ही उपबेसबा गुरमुखि पतोआईअनु ।
 इकि आपे उभड़ि पाइअनु इकि भगती लाइअनु ।
 जिसु आपि बुभाए सो बूझसी आपे नाइ लाईअनु ॥
 नानक नामु पिआईऐ सचो बडिआई ॥७॥

पउड़ी : (प्रभु) आप ही (सर्वत्र) बरत कर रहा है, आप ही ताड़ी (ध्यान) लगा कर (अपने में) (निमग्न) है, (तात्पर्य यह कि प्रभु अपनी ही महिमा में स्वयं प्रतिष्ठित है) । (वह) स्वयं ही उपदेश देता है और स्वयं ही गुरु के द्वारा धर्म प्रदान कराता है । कुछ कुछ (व्यक्तियों) को (वह) स्वयं कुमार्ग में डाल देता है और कुछ को भक्ति में लगाता है । (वह प्रभु) स्वयं जिसे समझाता है, वही समझता है; (प्रभु) स्वयं ही (साधक को अपने) नाम में लगाता है । हे नानक, नाम का ध्यान कर (वही) सच्ची बड़ाई (प्रतिष्ठा) है ॥ ७ ॥

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु मारु महला १, चउपदे, घर १

सबद

[१]

सलोकु : साजन तेरे चरन की होइ रहा सदा घूरि ।

नानक सरणि तुहारोप्रा खेलउ सदा हुजूरि ॥१॥

सलोकु : हे साजन, (मैं) सदैव तेरे चरणों की धूलि हो रहा हूँ । (मैं) नानक
(सदैव) तेरी शरण में (रह कर), (तुझे) सदैव (अपने) सामने देखता रहूँ ॥ १ ॥

सबद : पिछुनु राती सबड़ा नामु खसम का लेहि ।

खेमे छत्र सराइचे दिसनि रय पीड़े ।

जिनी तेरा नामु धिआइप्रा तिन कउ सदि मिले ॥१॥

बाबा मैं करमहोण कूड़िप्रार ।

नामु न पाइप्रा तेरा ग्रंथी भरमि भूला मनु मेरा ॥१॥रहाउ॥

साब कीते बुलु परकुड़े पूरबि लिले माइ ।

सुल बोड़े बुल ग्रयले दुले दुलि बिहाइ ॥२॥

बिछुड़िप्रा का किप्रा वीछुड़े मिलिप्रा का किप्रा सेलु ।

साहिबु सो सालाहोए जिनि करि बेलिप्रा लेलु ॥३॥

संजोयो भेलाबड़ा इनि तनि कीते भोग ।

बिजोगी मिलि बिछुड़े नानक भी संजोग ॥४॥१॥

सबद : (जिन्हे) पिछली रात्रि (ब्राह्म-मूर्तल भयवा प्रमृत बेला) में (प्रभु का)
बुलावा होता है, (वे ही) पति (परमात्मा) का नाम लेते हैं । उनके लिए तम्बू, छत्र,
कनातें और रय (सदैव) कसे तैयार मिलते हैं, (तात्पर्य यह कि उन्हें बड़ाई प्राप्त होती है) ।
(हे प्रभु) जिन्होंने, तेरे नाम का ध्यान किया है, उन्हें (तू) बुलाकर देता है ॥ १ ॥

हे बाबा, मैं भाग्यहीन और भूटा हूँ । (मैं) भ्रजानी—ग्रन्थ ने तेरे नाम को नहीं पाया,
मेरा मन (सांसारिक प्रपंचों में) भ्रमित होकर भटक गया । ॥ १ ॥ रहाउ ॥

स्वादों के करने से दुःख प्रफुल्लित हुए, (अर्थात् स्वादों के चक्कर में पड़ने से दुःखों की ही अभिवृद्धि हुई) । हे माँ, (मेरे ये दुःख) पहले के लिखे थे । (मानव-जीवन में) सुख थोड़े हैं और दुःख बहुत से हैं; (सारी आयु) दुःख ही दुःख में व्यतीत होती है ॥ २ ॥

(जो हरी से) बिछुड़े हैं, उनका और बिछोह क्या हो सकता है ? (क्योंकि बड़ा से बड़ा वियोग तो संसार में यही है) । जो (प्रभु परमात्मा से) मिले हैं, उनका और मिलाप क्या हो सकता है ? (क्योंकि प्रभु-मिलन से बढ़ कर और कौन मिलन हो सकता है) ? उस प्रभु की स्तुति करनी चाहिए, जो (सृष्टि-रचना का) खेल रच कर, उसे देख रहा है । (तात्पर्य यह कि सृष्टि रच कर उसकी देखभाल कर रहा है) ॥ २ ॥

संयोग करके (मानव-जन्म में) (हरी से) मेल हुआ; पर इस शरीर में आकर भोगों में रम गए और इस प्रकार वियोग में आ कर मिल कर भी (प्रभु से) बिछुड़ गए । पर हे नानक, संयोग (लौट कर) फिर भी (प्राप्त हो सकता है) ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

मिलि मात पिता पिंडु कमाइआ । तिनि करते तेलु लिखाइआ ॥

लिखु दाति जोति बडिआई । मिलि माइआ सुरति गवाई ॥१॥

मूरख मन काहे करसहि माणा । उठि चलणा खसमै भारणा ॥१॥ रहाउ ॥

तजि साद सहज सुखु होई । घर छडायो रहै न कोई ॥

किछु खार्ज किछु धरि जाइऐ । जे बाहुडि दुनीआ आईऐ ॥२॥

सखु काइआ पटु हडाए । फुरमाइसि बहुतु चलाए ॥

करि मेज सुखाली सोवे । हथी पउदी काहे रोवे ॥३॥

घर घुमणवाणी आई । पाप पथर तरणु न जाई ।

भउ बेड़ा जोउ चड़ाऊ । कहु नानक देवै काहू ॥४॥२॥

माता-पिता के संयोग से (यह) शरीर प्राप्त किया । (फिर) उस (शरीर) में कर्त्ता-पुरुष ने (अपने मर्जों का) लेख लिख दिया । (कर्त्ता-पुरुष की लिखावट) 'ज्योति' और 'बड़ाई' की थी—[तात्पर्य यह कि हमारे शरीर में हरी ने दो दाते—वस्त्रिषो रक्खीं; पहली तो अपनी ज्योति की, जिसके प्रकाश के द्वारा मनुष्य को 'सत्' और 'असत्' का बोध होता है, और दूसरी, बड़ाई (प्रतिष्ठा) की, जिसके सहारे मनुष्य ऊँचे उठने की अभिलाषा करता है । ये दोनों भाव हमारे अन्तर्गत 'प्रभु के संयोग' का कार्य करते हैं और हमें परमात्मा की ओर खींच ले जाते हैं] । किन्तु हमारे अन्तर्गत अपनी किरति (संस्कार) के अनुसार नीचे गिराने वाले भाव भी होते हैं, जो 'वियोग' का काम करते हैं । वे (निम्न भाव हमें) माया के (आकर्षण में डाल कर) (हरी की) सुरति नष्ट कर देते हैं ॥ १ ॥

अरे मूर्ख मन, अभिमान क्यों कर रहा है ? पति (परमात्मा) के आदेशानुसार (तुझे यहाँ से) उठ कर चले जाना है ॥१॥ रहाउ ॥

(अरे मनुष्य), (माया के) स्वादों को त्याग दे, तो सहजावस्था—तुरीयावस्था—अतुल्य पद का सुख (प्राप्त) हो । घर छोड़ने पर, कोई भी नहीं रह सकता । (अतएव) कुछ

तो खाओ और कुछ (शुभ कर्म के रूप में भविष्य के लिए) रख जाओ । यदि फिर कर दुनियां में आना पड़े, (तो तेरी रखी हुई वस्तुएं—शुभ कर्म के रूप में तेरा साथ दे) ॥ २ ॥

(अरे मानव), शरीर को वस्त्रों से सजा कर (खूब ऐश्वर्य) भोगता है । (अपना) हुस्म भी बहुत चलाना है । आराम देनेवाली सेजों को रच कर (खूब सुखपूर्वक) सोता है । (किन्तु फिर) (यमराज के) हाथों में पड़कर रोता क्यों है ? ॥ ३ ॥

(एक तो) घर-गृहस्थी ही भँवर है, (और दूसरे) पापों के पत्थर (गले में बंधे हैं) पापों के पत्थरों के साथ (ससार-सागर) तरा नहीं जा सकता । (अतएव परमात्मा के) भय रूपी बेड़े पर जीव को चढ़ा दे (और भवसागर पार हो जा) । नानक कहता है कि किसी विरले को ही (प्रभु इस शुभ अवसर को प्राप्त करने का सीमाव्य) प्रदान करता है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए ।

जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंनु हरे ॥१॥

चित्त चेतसि की नही बावरिआ ।

हरि बिभरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥रहाउ॥

जाली रैन जालु दिनु हूआ जेती घड़ी फाही तेती ।

रसि रसि चोग जगहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी ॥२॥

काइआ आरगु मनु बिचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ।

कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ संती चित भई ॥३॥

भइआ मनुरु कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिल तिनेहा ।

एकु नामु अमृतु ओहु बेवै तउ नानक तृसटसि बेहा ॥४॥३॥

(हमारा) कर्म कागज है (और उस कागज पर लिखने का साधन, तात्पर्य) दवात मन है; बुरे और भले (दो प्रकार के) लेख (नित्य) लिखे जा रहे हैं । (ये लेख हमारे किरत-कर्म, स्वभाव बन जाते हैं) । ये ही किरत (संस्कार) जिस जिस प्रकार (कर्म करने के लिए) (हमें) चलाते हैं (प्रेरित करते हैं), उस उस प्रकार (हम चलते हैं, (कर्म करने के लिए प्रेरित होते हैं) । (कर्मों के प्रभाव को क्षीण करने के लिए, शुभ गुणों के बरतने की आवश्यकता है । परमात्मा ही शुभ गुणों का भाण्डार है) । हरी के गुणों का अन्त नहीं है ॥ १ ॥ अरे बावले चित्त, (तू शुभ गुणों के भाण्डार, प्रभु, परमात्मा का) स्मरण क्यों नहीं करता ? हरि के विस्मरण से तेरे गुण नष्ट हो रहे हैं ॥१॥ रहाउ ॥

(हमें फँसाने के लिए) रात जाली (छोटी जाल) और दिन जाल (बने हैं), (दिन और रात में) जितनी पड़ियाँ हैं, उतने ही पाश (बन्धन हैं) हैं, (तात्पर्य यह कि प्रत्येक घड़ी में माया के आकर्षण पाश की भाँति हमें बाँधते रहते हैं) । (हम) आनन्द से—स्वाद ले ले कर (जाल और जाली में पड़े हुए) चारे को (मायिक आकर्षणों को) चुगते हैं और नित्य फँसते जाते हैं । अरे मूर्ख किन गुणों से (इस जाल और जाली के पाशों से) मुक्त होंगे ? ॥२॥

(यह) शरीर भट्ठी है और मन (उस शरीर रूपी भट्ठी में डाला हुआ) लोहा है; पंच कामादिक अभिर्या हैं, जो (शरीर रूपी भट्ठी में) लगी है (और मन रूपी लोहे को जला रही हैं) । पाप रूपी कोयले (उस शरीर रूपी भट्ठी में) पड़ कर, (उस) मन रूपी लोहे को (और भी अधिक) दग्ध कर रहे हैं बिता रूपी संसो से (मन जकड़ कर पकड़ा गया है, जिससे वह छूटकर कहीं जा भी नहीं सकता) ॥ ३ ॥

यदि ऐसे लोगों को गुरु मिल जाय, तो उनका (मन रूपी) निकम्मा लोहा फिर कंचन हो सकता है, (तात्पर्य यह कि भ्रष्टकारी और विषयासक्त मन गुरु के प्राप्त होने पर ज्योतिर्मय मन के रूप में परिवर्तित हो सकता है) (जब) वह (गुरु) एक नाम रूपी अमृत प्रदान करेगा, तभी यह शरीर (जीवन) स्थिर होगा, (अन्यथा जीवन का भटकना कभी समाप्त नहीं होगा ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

बिभल सभारि बसति निरमल जल पदमनि जावस रे ।

पदमनि जावस जल रस संगति संग दोख नही रे ॥१॥

दावर तू कबहि न जानसि रे ।

भक्तसि सिबासु बसति निरमल जल अमृतु न लखसि रे ॥२॥ रहाउ ॥

बसु जल नित न वसत झलोझल मेर खचा गुन रे ।

खंड कुमुदिनी दूरहु निवसति अनुभव कारनि रे ॥३॥

अंशुत खंडु दूषि मधु संखसि तू बन चातुर रे ।

अपना आपु तू कबहु न छोडसि विसन प्रीति जिउ रे ॥४॥

पंडित संगि वसहि जन मूरख आगम सास सुने ।

अपना आपु तू कबहु न छोडसि सुभान पूछि जिउ रे ॥५॥

इकि पालंडी नामि न राखहि इकि हरि हरि चरणी रे ।

पूरबि लिखिआ पावसि नानक रसना नामु जपि रे ॥६॥ रहाउ ॥

विशेष : इस 'सवद' में गुरु नानक जी ने बताया है कि मनुष्य की दो वृत्तियाँ होती हैं, एक 'कमल' वाली है, और दूसरी 'दादुर' वाली वृत्ति है । गुरुमुखों की 'कमल' वाली वृत्ति और मनमुख की 'दादुर' वृत्ति है ।

अर्थ : पवित्र (सरोवर) में निर्मल जल बसता है उस (सरोवर में) कमल और शैवाल (सिवार) (दोनों ही) हैं । कमल शैवाल और जल (दोनों की) संगति करता हुआ, संग दोष से रहित रहता है, (अर्थात् दोनों से निर्लिप्त रहता है) ॥ १ ॥

हे दादुर, तू (कमल की इस निर्लिप्त वृत्ति) को कभी नहीं जानता । तू भी (कमल की ही भाँति) उसी सरोवर में निवास करता है, पर अमृत जल (की विशेषता नहीं जानता, (तू सदैव) सिवार (एक प्रकार की तालाब की घास) का ही भक्षण करता है ॥१॥ रहाउ ॥

हे दादुर, तू नित्य जल में निवास करता है और भीरें वहाँ नहीं बसते । पर फिर भी वे भीरे कमल के पुष्पो की चर्चा में मत्त रहते हैं । (चंद्रमा और कुमुदिनी का अग्न्य उदाहरण

लो) । चंद्रमा और कुमुदिनी (परस्पर कितनी) दूर निवास करते हैं । (किन्तु चन्द्रमा को उदय हुआ जानकर कुमुदिनी भी आनन्द से खिल उठती है । यह क्यों) ? (कुमुदिनी की प्रसन्नता का कारण चन्द्रमा की महत्ता का) अनुभव करना है । इसी कारण (कुमुदिनी इतनी दूर रहने हुए भी खिल जाती है) । (यही दशा परमात्मा के भक्तों की है । वे परमात्मा की समीपता का अनुभव करते हुए, सदैव आनन्दित रहते हैं) ॥ २ ॥

(हे दादुर, अब तो) तू चतुर बन, और अमृत के छण्ड दूध और मधु आदिक (सुमधुर वस्तुओं का) संग्रह कर, (धर्मात् हे मनमूख, अब तो चतुर बन कर सात्त्विकी वृत्तियों का संचय कर) । किन्तु यह निश्चय है कि (तू अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ेगा, जिस प्रकार चुगलीखोर (अच्छो से अच्छी) प्रीति पाकर भी (अपने चुगली करनेवाले स्वभाव को नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार तू भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ेगा) ।

उपर्युक्त पद का अर्थ कुछ सिक्ख विद्वान् इस भाँति करते हैं—[हे जल (वन) मे ही अपने आप को चतुर समझनेवाले दादुर, देख, दूध मे अमृत-खण्ड मधु आदिक वस्तुएं पड़ी हैं, पर जोक (पिसन) उन्हें छोड़ कर केवल रक्त चूसने मे ही प्रीति रखतो है । उसी प्रकार तू भी अपने स्वभाव को न छोड़ते हुए गंदगी ही भक्षण करता है ।] ॥ ३ ॥

पंडितों के साथ मूर्ख व्यक्ति निवास करते हैं और (नाना प्रकार के) वेद-शास्त्र सुनते हैं, (किन्तु वे अपने स्वभाव को नहीं त्यागते, वे मूर्ख के मूर्ख बने रहते हैं), (उसी प्रकार) तू भी अपने स्वभाव को कभी नहीं त्यागेगा, जैसे कुत्ते की पूँछ (को चाहे जितनी सीधी की जाय, किन्तु वह टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है) ॥ ४ ॥

कुछ ऐसे पाखण्डी हैं, (जो) (हरि के) नाम मे अनुरक्त नहीं होते, और कुछ ऐसे (भक्त हैं), (जो सदैव) हरि के चरणों में ही लगे हैं । हे नानक, पूर्व का लिखा हुआ (अवश्य) पावोगे; हे जीभ, (हरि का) नाम जप ॥ ५ ॥ ४ ॥

[५]

सलोक : पतित पुनीत असंख होहि हरि चरनी मनु साग ।

अठसठि तोरण नामु प्रभ नानक जिसु मसतकि भाग । १ ॥

सलोक : हरि के चरणों में मन लगाने से असंख्य पतित (तत्क्षण) पुनीत हो जाते हैं । हे नानक, प्रभु का (केवल एक नाम) अठसठ तीर्थों (के समान) है (किन्तु) जिसके भाग्य में होता है, (वही ऐसे पवित्र नाम को पाता है) ॥ १ ॥

सबब : सखी सहेली गरबि गहेली ।

सुरि सहु की इक बात सुहेली ॥ १ ॥

जो मै बेदन सा किसु आखा माई ।

हरि बिनु जोउ न रहै कैसे राखा माई ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हउ बोहागणि खरी रंजाणी ।

गइआ सु जोबनु धन पछुताणी ॥ २ ॥

तू बाना साहिबु सिरि मेरा ।

जिअमति करी जनु बंदा तेरा ॥ ३ ॥

भणति नानकु अवेसा एही ।

बिनु वरसन कैसे रबउ सनेही ॥४॥५॥

सबहु : अहंकार में प्रसी हुई, ऐ सखी-सहेलो, प्रियतम की (एक) सुखदायिनी बात सुन ॥ १ ॥

हे माँ, मेरे अन्तर्गत जो कुछ वेदना है, उसे मैं कह रही हूँ । बिना हरि के मेरे प्राण नहीं रहते । श्री माँ, (मैं कैसे उन प्राणी को) धारण करूँ ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं दुहागिनी हूँ (और) बहुत ही दुखी हूँ । युवावस्था चली गई है, (और अब) खी पछता रही है ॥ २ ॥

(हे प्रभु), तू (सब) ज्ञाता है और सुमेरु का भी मिर है, (तात्पर्य यह कि सर्वोपरि है) । (मैं) तेरी खिदमत (सेवा) करता हूँ । (मैं तेरा) बदा (दास) हूँ ॥ ३ ॥

नानक कहता है कि (मुझे केवल एक) यही विन्ता है कि दर्शन के बिना स्नेही (प्रेमी) से कैसे रमण करूँ ? ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाउ सभाया ।

गुर की बचनी हाटि बिकाना जितु लाइआ तितु लाग़ा ॥१॥

तेरे लाले किआ चतुराई । साहिब का हुकमु न करणा जाई ॥१॥रहाउ॥

मा लाली पिउ लाला मेरा हउ लाले का जाइआ ।

लाली नाचै लाला गावै भगति करउ तेरी राइआ ॥२॥

पीअहि त पाणी आणी मोरा आहि त पीसण जाउ ।

पखा फेरी पैर अलोवा जपत रहा तेरा नाउ ॥३॥

लूणहरामी नानक लाला बखसिहि तुधु वडिआई ।

आदि जुगादि दइआपति बाता तुधु बिणु मुकति न पाई ॥४॥६॥

(मैं तो ग्राम बाजार में) मूल्य देकर खरीदा हुआ (स्वामी हरी का) गुलाम हूँ । (तेरा) गुलाम ही मेरा नाम है, (और मैं तेरा गुलाम होकर) सौभाग्यशाली हूँ । गुरु के वचनों पर मैं हाट-हाट में बिका हूँ और जिस (कार्य) में (उसने मुझे) लगा दिया है, उसी में (मैं) लगा हूँ ॥ १ ॥

तेरे गुलाम की क्या चतुराई हो सकती है ? (हे प्रभु), (तुम्हें) साहब का हुक्म मुझसे (ठीक-ठीक) नहीं माना जाता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे स्वामी), मेरे रग रग में तेरे प्रति सेवा-भाव समाया हुआ है । मेरे आगे-पीछे का सारा सम्बन्ध तेरे सेवक ही होने का है । (हे प्रभु), दासो (लाली) नाचती है और दास गाता है, हे राय (स्वामी), मैं तेरी भक्ति करता हूँ । [उपर्युक्त पंक्तियों का यही भाव है कि हे स्वामी, मेरी पीढ़ियों से तेरी सेवा होती आ रही है । मैं खानदानी गुलाम हूँ । (उस समय में बादशाहों और अमीरों के पास कई पीढ़ियों से गुलाम बले आते थे । जिनका एक मात्र सेवा करना ही धर्म था । न तो उनका कोई निजी अधिकार था, और न कोई निजी सम्पत्ति) ॥२॥

हे स्वामी, (यदि) (तू) जल पी, तो तुझे जल ने झाँके (और यदि तू) खा, (तो तेरे निमित्त आटा) पीसने जाऊँ, (तात्पर्य यह कि जो कुछ भी तुझे मंजूर हो, वही काम मैं करूँ) । (यदि तेरो आज्ञा हो तो) पंखा झूलूँ, पेर दवाऊँ, (जो कुछ भी कार्य करता रहूँ) तेरा नाम (अवश्य) जपता रहूँ ॥ ३ ॥

हे नानक, (मैं) नमकहरामी सेवक हूँ । (यदि मेरे अवयुगो को) क्षमा कर दे, (तो इसमें तेरी) बड़ाई ही है । हे दया के स्वामी, (तू) आदि काल तथा युग-युगान्तरो से है । तेरे बिना मुक्ति नहीं प्राप्ति की जा सकती ॥ ४ ॥ ६ ॥

[७]

कोई भाले भूतना को कहै बेताला ।

कोई भाले आदमी नानकु बेचारा ॥१॥

भइआ दिवाना साह का नानकु बउराना ।

हुउ हरि बिनु अवरु न जाना ॥१॥रहाउ॥

तउ देवाना जाणीऐ जा भँ देवाना होइ ।

एकी साहिब बाहरा दूजा अवरु न जाणै कोइ ॥२॥

तउ देवाना जाणीऐ जा एका कार कमाइ ।

हुकमु पछाणै लखम का दूजी अवर सिआणप काइ ॥३॥

तउ देवाना जाणीऐ जा साहिब घरे पिम्राह ।

मँदा जाणै आप कउ अवरु भला सतार ॥४॥७॥

बेचारे नानक को कोई भूत कहता है, कोई बैताल कहता है, तो कोई आदमी कहता है ॥ १ ॥

नानक अपने शाह (परमात्मा के प्रेम में डूब कर) दीवाना और पगला हो गया है । मैं हरी के बिना अन्य किसी (बड़े से बड़े सासारिक व्यक्ति) को नहीं जानता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(वास्तव में उसी व्यक्ति को सच्चा) दीवाना तब समझना चाहिए, जब वह (परमात्मा के) भय में दीवाना हो; और (वह) एक साहब (हरी) को छोड़ कर दूसरे और (व्यक्ति) को न जाने ॥ २ ॥

(मनुष्य को सच्चा) दीवाना, तभी समझना चाहिए, जब (वह) एक (परमात्मा) का ही काम करे । पति परमात्मा का हुक्म पड़ाने, (यही बुद्धिमानी है), और बुद्धिमानों को किस लिए है ? ॥ ३ ॥

मनुष्य को सच्चा दीवाना, तभी समझना चाहिए, जब वह (अपने हृदय में) साहब का प्रेम धारण करे, वह अपने को (बहुत) निकृष्ट समझे, और संसार (के सभी प्राणियों को) भला समझे ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

इहु धनु सरब रहिआ भरपूरि ।

सनमुखि फिरहि सि जाणहि दूरि ॥१॥

सो बनू बखरु नामु रिदै हमारै ।

बिसु तू बेहि तिसै निसतारै ॥१॥रहाउ॥

न इहु धनु जलै न तसकरु लै जाइ ।

न इहु धनु डूबै न इसु धन कउ मिलै सजाइ ॥२॥

इसु धन की बेखहु बड़िभाई ।

सहजे माते अनदिनु जाई ॥३॥

इक बात अनूप सुनहु नर भाई ।

इसु धन बिनु कहहु किनै परम गति पाई ॥४॥

भगति नानकु अकथ की कथा सुणाए ।

सतिगुरु मिलै त इहु धनु पाए ॥५॥८॥

यह (हरि-नाम) धन सर्वत्र पूर्ण रूप से भरा हुआ है, (किन्तु) मनमुख भटकते रहते हैं और इसे बहुत दूर जानते हैं ॥ १ ॥

यह (हरिनाम) धन का सोदा हम सब के हृदय में है; (किन्तु, हे प्रभु), जिसे तू (यह धन) देता है, उसी का यह निस्तार करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यह (हरिनाम रूपी) धन न तो जल सकता है, न (इसे) चोर (चुराकर) ले जा सकता है । न यह धन डूब सकता है, और न इस धन (वाले) को कोई सजा ही मिल सकती है ॥ २ ॥

इस धन की बड़ाई को तो देखो । (जिसके पास यह धन है, वह) सहजावस्था में लीन हुआ, प्रतिदिन व्यतीत करता है, (तात्पर्य यह है कि सहजावस्था में वह सदैव प्रफुल्लित रहता है) ॥ ३ ॥

हे भाई, मनुष्य (इस धन के सम्बन्ध में) एक और अनुपम बात सुनो—इस धन के बिना, (भला) बताओ, किसी (व्यक्ति) ने परम गति प्राप्त की है ? ॥ ४ ॥

नानक कहता है और अकथनीय (हरी) की कथा सुनाता है । जब (मनुष्य) सबगुरु से मिले तभी इस धन को प्राप्त कर सकता है, (अन्यथा नहीं) ॥ ५ ॥ ८ ॥

[८]

सूर सर सोसि लै सोम सर पोखि लै जुगति करि मरतु सु सनबंधु कीजै ।

मीन की अपल सिउ जुगति मनु राखीऐ उडै नह हंसु नह कंधु छीजै ॥१॥

झूठे काइचे भरमि भुला । नह कीनिआ परमानंदु बैरागी ॥१॥रहाउ॥

अजर गहू आरि लै अमर गहू भारि लै भाति तजि छोडि तउ अविउ पीजै ।

मीन की अपल सिउ जुगति मनु राखीऐ उडै नह हंसु नह कंधु छीजै ॥२॥

भरति नानकु जनो रवै जे हरि मनो मन पवन सिउ अंशुतु पीजै ।

मीन की अपल सिउ जुगति मनु राखीऐ उडै नह हंसु नह कंधु छीजै ॥३॥६॥

सूर्य के स्वर (डडा नाड़ी), (तात्पर्य यह कि तमोगुणी स्वभाव) को जला कर सुखा डाल, चन्द्रमा के स्वर (पिण्डा), (तात्पर्य यह कि सत्वगुणी स्वभाव) का पोषण

कर, (बुद्धि कर) और युक्तिपूर्वक महत् (वायु—प्राणवायु को रोक कर), (सुषुम्ना नाड़ी में) सम्बन्ध स्थापित कर । [समस्त पंक्ति का भावार्थ है तमोगुणी स्वभाव को जानना ही इडा-नाड़ी में प्राणी को ले जाना है; सत्त्वगुण बढ़ाना ही पिंगला नाड़ी में प्राणी को स्थित करना है और जीवन को युक्तिपूर्वक बिताना ही प्राणी को सुषुम्ना में स्थिर करना है] । मीन के समान मन की चंचल गति को युक्तिपूर्वक रोकनी चाहिए । (इससे) आत्मा (अपने सत्-स्वरूप में टिक जायगी और) (इधर-उधर) नहीं भटकेगी; और फिर शरीर भी नहीं नष्ट होगा, (अर्थात्, जीवन-मरण समाप्त हो जायगा) ॥ १ ॥

ऐ मूर्ख, (मनुष्य) किस लिए भ्रम में भूला हुआ है ? (तू ने) निर्लेप परमानन्द रूप (हरी को) नहीं समझा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(तू) वृद्ध न होनेवाली (माया) को पकड़ कर जला डाल, और न मरनेवाले (मन) को पकड़ कर मार डाल । भ्रान्ति को त्याग दे, (तथा अन्य मायिक आकर्षणों को) छोड़, तभी (हरिनाम रूपी) अमृत पी सकता है । मीन के समान मन की चंचल गति को युक्तिपूर्वक रोकनी चाहिए, (इससे) आत्मा (अपने सत्-स्वरूप में टिक जायगी और) (इधर-उधर) नहीं भटकेगी; और फिर शरीर भी नष्ट नहीं होगा, (अर्थात्, जीवन-मरण समाप्त हो जायगा) ॥ २ ॥

नानक कहता है, हे मनुष्यो, (सुनो), जो हरी को मन ही मन स्मरण करता है उसकी प्राणवायु के साथ-साथ अमृत भीतर जाता है (और वह व्यक्ति भ्रान्त्यपूर्वक रस) अमृत को पीता है; (तात्पर्य यह कि वह व्यक्ति इबास-प्रवास में नाम जपता हुआ भ्रान्त्य में तन्मय रहता है) । मीन के समान मन की चंचल गति को युक्तिपूर्वक रोकनी चाहिए; (इससे) आत्मा (अपने सत्-स्वरूप में टिक जायगी और) (इधर-उधर) नहीं भटकेगी; और फिर शरीर भी नष्ट नहीं होगा, (अर्थात्, जीवन-मरण समाप्त हो जायगा) ॥ ३ ॥ ६ ॥

[१०]

माइया सुई न मनु सुआ सरु लहरी मे मतु ।

बोहियु जल सिरि तरि टिकै साचा बखरु जितु ॥

माएकु मन महि मनु मारसी सबि न लागै कतु ।

राजा तखति टिकै गुणी भे पंचाइसु रतु ॥१॥

बाबा साचा साहियु दूरि न बेनु ।

सरब जोति जगजीबना सिरि सिरि साचा लेनु ॥१॥रहाउ॥

बहुमां बिसनु रिखी सुनि संकरु इंदु तपै भेजारी ।

मानै हुकुमु सोहै दरि साचै आकी मरहि अफारी ।

जंगम जोध जती संनिभासी गुरि पूरै बीबारी ।

बिनु सेवा फलु कबहु न पावसि सेवा करणी सारी ॥२॥

निबनिआ धनु निगुरिआ गुरु निमाणिआ तू माणु ।

अंधुलै माएकु गुरु पकड़िआ निताणिआ तू ताखु ॥

होम जया नहीं आसिआ गुरमती सांचु पछारणु ।
 नाम बिना नाहा दरि कोई भूझा बाबण जाणु ॥३॥
 साचा नामु सत्ताहीऐ साचे ते वृपति होइ ।
 गिआम रतनि मनु भाजीऐ बहृङ्गि न मैला होइ ॥
 जब लगु साहिबु मनि वसै तब लगु बिघनु न होइ ।
 नानक सिरु वे छुटीऐ मनि तनि साचा सोइ ॥४॥१०॥

(मनुष्य) न तो माया को मार सका और न मन को ही बशीभूत कर सका; (वह) संसार-सागर की लहरो में ही मत्त है । जिसके अन्तर्गत सच्चे (हरि के नाम का) सौदा है, ऐसा शरीर रूपी जहाज इस (संसार रूपी) सागर की लहरो पर तैर कर पार लग कर टिक जाता है । (नाम रूपी) माणिक्य, जो मन के भीतर है, वही (अहंकारी) मन को मारता है, (बशीभूत करता है), सत्य के कारण, उसमें कटीती नहीं होती । (परमात्मा के) भय के कारण, (जीवात्मा) पाँच गुणों—सत्य, संतोष, दया, धर्म और धैर्य—में अनुरक्त होता है; (और इन्हीं) गुणों के कारण (जीवात्मा रूपी) राजा सिंहासन (तन्त्र) पर विराजमान होता है ॥ १ ॥

हे बाबा, सच्चे साहब (हरी) को दूर न देख । वह जगज्जीवन है और उसकी ज्योति सर्वत्र है और प्रत्येक सिर के ऊपर (उसकी) सच्ची लिखावट है, (तात्पर्य यह कि प्रत्येक प्राणी उसके विधान के अन्तर्गत है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, श्रुति, मुनि, शंकर, इन्द्र, तपस्वी, भिखारी (कोई भी हो) इनमें से जो भी उसके हुक्म को मानता है, (वह उसके) सच्चे दरवाजे पर सुशोभित होता है, (जो उसका हुक्म नहीं माननेवाले हैं—(बागी अथवा विद्रोही है), वे फूल-फूल कर (अत्यन्त दुखी होकर) मर जाते हैं । पूर्ण गुरु के द्वारा (यह) विचार किया गया है कि जंगम—(योगियों का एक सम्प्रदाय विशेष), योद्धा, यती, सन्यासी आदि बिना सेवा के फल नहीं प्राप्त कर सकते, सेवा ही सर्वश्रेष्ठ करनी है ॥ २ ॥

(सद्गुरु ही) निर्धनियों का धन है, गुरु-बिहीनों (निगुरों) का गुरु है, मान-बिहीनों का मान है । (मैं) अज्ञानी—(अन्धे) ने गुरु रूपी माणिक्य को पकड़ लिया है, (क्योंकि) तू ही शक्तिहीनों की शक्ति है । (मैं) होम, जप आदि (कोई भी वस्तु) नहीं जानता, गुरु की सच्ची शिक्षा की ही (मुझे) पहचान (परिचय, जानकारी) है । नाम के बिना (हरी के) दरवाजे पर कोई भी आसरा—पनाह—नहीं होता; (सारी वस्तुएँ) मिथ्या है, (नाम के बिना मनुष्य का) आना-जाना (बना रहता है) ॥ ३ ॥

(हे साधक), सच्चे नाम की स्तुति करो, (क्योंकि) उसी सच्चे (नाम) से (वास्तविक) वृत्ति होती है । ब्रह्मज्ञान रूपी रत्न से मन को पवित्र करो, (ऐसा करने से मन निर्मल हो जायगा और) फिर मैला नहीं होगा । जब तक साहब (प्रभु, हरी) मन में बसता है, तब तक कोई भी विघ्न-बाधा नहीं उपस्थित होती । हे नानक, (परमात्मा को अथवा सद्गुरु को) सिर समर्पित कर (सब त्याग करके), (इस ससार-सागर से) छुटकारा पावो; (इससे तुम) तन मन से सच्चे हो जाओगे ॥ ४ ॥ १० ॥

[११]

योगी जुगति नामु निरमाइलु ता कै मैलु न रातो ।
 प्रीतम नाथु सदा सत्तु संगे जनम मरण गति बीतो ॥१॥
 गुसाई तेरा कहा नामु कुसे जातो ।
 जा तउ भीतरि महलि बुलावहि पूछउ बात निरंती ॥१॥ रहाउ ॥
 ग्रहमणु ग्रहमु गिअन इसनानी हरि गुण पूजे पातो ।
 एको नामु एक नाराइणु त्रिभवण एका जोती ॥२॥
 जिहवा डंडी इहु घटु छाबा तोलउ नामु अजाबो ।
 एको हाटु साहु सभना सिरि वणजारे इक भातो ॥३॥
 दोबे सिरे सतिसुरु निबेडे सो बूझै जिसु एक लिब लागी जीवहु रहे निभरातो ।
 सबदु बसाए भरमु चुकाए सदा सेवकु दिनु रातो ॥४॥
 ऊपरि गगनु गगन परि गोरखु ता का अगमु गुरु पुनि वासी ।
 गुरु बचनो बाहरि घरि एको नानकु भइआ उदासी ॥५॥११॥

(वह) योगी, (जिसकी) योग-युक्ति निर्मल नाम है, उमे रतो भर भी मैल नहो लगती । जिसके साथ प्रियतम, नाथ (हरी) सदैव है, उसकी जन्म-मरण की अवस्था समाप्त हो जाती है ॥ १ ॥

हे गोस्वामी, तेरा नाम कैसा है, (और वह) किस प्रकार जाना जाता है ? यदि (तू) अपने महल के भीतर बुला ले, तो मैं अमेवता की बातें पूछूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(जो) ब्रह्मज्ञान में स्थान करता है, (वही) ब्राह्मण है; हरि के गुणों का गान करना ही पत्रों द्वारा (परमात्मा की) पूजा करनी है । एक ही नाम है, एक नारायण है और त्रिभुवन में (उसी नारायण की) ज्योति व्याप्त है—(इसी की अनुभूति ब्रह्मज्ञान है) ॥ २ ॥

(यह) जीभ (तराजू की) डंडी है, (और) यह हृदय (घट) पलड़ा है, (इस तराजू पर मैं) अनुलनीय नाम को तौलता हूँ । (हरी का दरवाजा) हाट है, (और वही उसका) तथा सभी का साह (स्वामी) है, (गुरुमुख) एक ही प्रकार के बनजारे है, (जो उसके दरबार रूपी हाट में एकत्र होते हैं) ॥ ३ ॥

सद्गुरु लोक-परलोक (दोनों छोरों) का (अन्तिम) निर्णय करता है (अर्थात् सद्गुरु साधक के लोक-परलोक दोनों को सुधारता है); (जिसे) एक (परमात्मा) से खिन्न लग गई है, वही (इस परम रहस्य को) समझता है; (उसका) मन भी भ्रान्ति-रहित हो जाता है । जो सेवक दिन-रात शब्द को अपने मन में बसा लेता है, (उसका) भ्रम सदैव के लिए नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

सब से ऊपर (श्रेष्ठ) गगन (दशम-द्वार) है, और वहाँ गोरख (आत्मा) का निवास है । फिर अगम गुरु (परमात्मा) वहाँ (जीवात्मा) का सह-निवासी है, (अर्थात् वहाँ जीवात्मा और परमात्मा एक हैं) । नानक कहता है कि गुरु के उपदेश द्वारा (मेरे लिए) घर और बाहर एक हो गए हैं, (इसीलिए अब मैं सच्चा) उदासी, (त्यागी, विरक्त) हो गया हूँ ॥ ५ ॥ ११ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर ५ ॥

[१२]

अहिनिजि जागै नीब न सोबै । सो जाएँ जितु बेदन होबै ॥
 प्रेम के कान लगे तनि भीतरि बैदु कि जाएँ कारी जोउ ॥१॥
 जिसनो साचा सिफती लाए । गुरमुखि बिरले किसै बुझाए ॥
 भ्रमृत की सार सोई जाऐ जि भ्रमृत का वापारी जोउ ॥१॥ रहाउ ॥
 पिर सेती धन प्रेमु रचाए । गुर कै सबदि तथा जितु लाए ।
 सहज सेती धन खरी सुहेली नृसना तिखा निबारी जोउ ॥ २ ॥
 सहसा तोड़े भरमु चुकाए । सहजे सिफती घरलु चड़ाए ॥
 गुर कै सबदि मरे मनु मानै सुंदरि जोगा घारी जोउ ॥३॥
 हउमै जलिघा मनहु बिसारे । जमपुरि बजहि सङ्ग करारे ॥
 अब के कहिए नामु न मिसई तू सहु जीभड़े भारी जोउ ॥४॥
 माझा ममता पबहि लिझाली । जमपुरि फासहिगा जमजाली ॥
 हेत के बंधन तोड़ि न सांफहि ता जमु करे सुघारी जोउ ॥५॥
 ना हउ करता ना भे कीघा । भ्रमृत नामु सतिगुरि दोषा ।
 जिसु तू बेहि तिसै किघा चारा नानक सरणि तुमारी जोउ ॥६॥१॥१२॥

(हरी का प्रेमी) दिन-रात (उसके प्रेम में) जगता है, (वह भ्रजान की) निद्रा में नहीं सोता । (किन्तु इस भ्रम को) वही जान सकता है, जिसके (हृदय में प्रेम की) वेदना हो । जिसके शरीर में प्रेम के तीर लग जाते हैं, (भला), बैद्य (उसकी) प्रीति क्या जान सकता है ? ॥ १ ॥

सच्चा (परमात्मा) जिसे (अपनी) स्तुति में लगाता है, (वही उसकी स्तुति करता है) । किसी बिरले ही गुरुमुख को (वह अपने स्वरूप का) बोध कराता है । जो व्यक्ति भ्रमृत का व्यापारी होता है, वही भ्रमृत का पता जानता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिस प्रकार स्त्री (अपने) पति के साथ प्रेम करती है, उसी प्रकार (शिष्य को भी) अपने गुरु के शब्द में चित्त लगाना चाहिए । उस अत्यन्त सुखी स्त्री ने सहज भाव से (पूर्ण आनन्द और शान्ति से) (अपनी) वृष्णा और नृषा (व्यास) का निवारण कर दिया ॥ २ ॥

(जो साधक) संशय तोड़ देता है, भ्रम नष्ट कर देता है और सहज भाव से (परमात्मा की) स्तुति का धनुष चढ़ाता है, (तात्पर्य यह कि सहज रीति से परमात्मा के गुणगान में लीन रहता है), गुरु के शब्द द्वारा (अपने अहंकार से) मर जाता है और मन को मार देता है, वही सुन्दर योग को धारण करनेवाला (पुरुष) है ॥ ३ ॥

(जो) अहंकार में जला पड़ा है, (उसने अपने) मन को भी भुला दिया है । जमपुरी में (ऐसे व्यक्तियों के ऊपर) कठिन—भयंकर तलवारें खड़केगी (चलेगी) । मार पड़ते समय भाँगे से नाम नहीं मिलेगा; तब तो हे जीब, तुझे कठोर (भारी) सजा सहनी पड़ेगी ॥ ४ ॥

(हे जीव, तू भ्रमो) माया और ममता के चिन्तन में पड़ा है, (किन्तु स्मरण रख), यमपुरी में यमजाल में ब्रह्म फँसाया जायगा । (यदि) तू मोह के बन्धन नहीं तोड़ सकता, (तो समझ ले कि) यमराज (तुझे अव्यधिक) दुखी बनायेगा ॥ ५ ॥

न तो मैंने (भ्रमे) कुछ किया है और न (भ्रम) कुछ कर रहा हूँ । सद्गुरु ने मुझे (हरिनाम रूपी) भ्रम प्रदान कर दिया है । (हे प्रभु), जिसे तू देता है, उसके ऊपर किसी का क्या चारा (चल सकता) है ? नानक तो तेरी शरण में है ॥ ६ ॥ १ ॥ १२ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मारु, महला १, घर १

असटपदीआं

[१]

वेद पूराण कथे सुखे हारे सुनी अनेका ।
 अठसठि तीरथ बहु घणा भ्रमि थाके भेला ॥
 साचो साहिबु निरमलो मनि मानै एका ॥१॥
 तू अजरारु अमर तू सब चालणहारी ।
 नामु रसाइणु भाइ लै परहरि बुलु भारी ॥१॥ रहाउ ॥
 हरि पड़ीऐ हरि बुझीऐ गुरमती नामि उधारा ।
 गुरि पूरे पूरी मति है पूरे सबदि बीचारा ॥
 अठसठि तीरथ हरि नामु है किलविख काटणहारा ॥२॥
 जलु बिलोवै जलु मयै ततु लोड़े अंधु अगिघाना ।
 गुरमती दधि मयोऐ अंमृतु पाईऐ नामु निधाना ॥
 मनमुख ततु न जाणनी पसू माहि समाना ॥३॥
 हउमै मेरा मरो मरु मरि जंमै बारोबार ।
 गुर कौ सबदे जे मरे फिरि मरे न डूजी बार ॥
 गुरमती जग जीवनु मनि वसै सनि कुल उधारण हार ॥४॥
 सचा बखरु नामु है सचा बापारा ।
 साहा नामु संसारि है गुरमती बीचारा ॥
 डूजै भाइ कार कमावणी नित तोटा सैसारा ॥५॥
 साची संगति थानु सनु सजे घरबारा ।
 सचा भोजु भाउ सनु सनु नामु अघारा ।
 सचो बाणी संतोखिघ्रा सचा सबदु बीचारा ॥६॥
 रस भोगण पातिसाहीघ्रा दुख सुख संघारा ।
 मोटा नाउ धराईऐ गलि अउगण भारा ॥
 माएस बाति न होवई तू बाता सारा ॥७॥

अगम अगोचर तू धरणी अविगतु अपारा ।

गुर सबदी वरु जोईऐ मुकते भझारा ॥

नानक मैलु न जूकई साचे वापारा ॥८॥१॥

बहुत से मुनि वेदों और पुराणों का कथन और श्रवण करके हार गए; (अनेक) वेशधारी अड़सठ तीर्थों का अत्यधिक भ्रमण करके थक गए, (किन्तु शान्ति न प्राप्त कर सके) । एक सच्चे और निर्मल साहब (हरी के स्मरण से ही यह) मन मानता है, (शान्त होता है) ॥ १ ॥

(हे प्रभु, तू) अजर है, अवर (सबसे परे) है, अमर है और सभी को चलानेवाला है । (जो व्यक्ति) तेरे नाम-रसायन को प्रेमपूर्वक लेता है, वह महान् दुःखों को दूर कर लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे शिष्य), हरी को ही पढ़ और हरी को ही समझ; गुरु द्वारा नाम (लेने से) उद्धार होता है । पूर्ण गुरु में ही पूर्ण बुद्धि होती है (और उसी में) पूर्ण शब्द का विचार है । हरिनाम ही अड़सठ तीर्थ हैं (और वही) पापों को काटनेवाला है ॥ २ ॥

अंधा, अज्ञानी (मनुष्य) पानी बिलोता है और पानी मथता है, (किन्तु उस पानी के मथने से) तत्त्व (मक्खन) निकालना चाहता है, (तात्पर्य यह कि सासारिक कार्यों को तो करता है और चाहता है परम सुख) । (यदि) गुरु के उपदेश द्वारा (शब्द को) मथा जाय, तो नाम-निधान (रूपी मक्खन) प्राप्त होता है । मनमुख तत्त्व को नहीं जानता, (वह अपने तमोगुणी स्वभाव के कारण) पशु-स्वभाव में ही समा जाता है ॥ ३ ॥

(जो व्यक्ति) 'अहंकार' और 'मैंपन' की मृत्यु में मरता है, (वह) बारंबार जन्मता और मरता रहता है । (जो व्यक्ति) गुरु के शब्द द्वारा (अपने अहभाव से) मर जाता है, (वह) फिर दूसरी बार नहीं मरता । गुरु की शिक्षा द्वारा (जिसके) मन में जगजोवन (हरे) बसता है, (वह व्यक्ति अपने) समस्त कुल का उद्धारकर्त्ता हो जाता है ॥ ४ ॥

नाम ही सच्चा सीदा है और सच्चा व्यापार है । गुरु द्वारा विचार करने से (हरि का) नाम ससार (का परम) लाभ प्रतीत होता है । (एक हरी को छोड़ कर) अन्य द्वैत भाव में कार्य करने से संसार में नित्य घाटा ही घाटा होता है ॥ ५ ॥

(गुरुमुखों की) सच्ची सगति होती है, (उनका) स्थान सच्चा होता है (और उनका) घर-बार भी सच्चा ही होता है । (उनका) भोजन सच्चा होता है, उनका प्रेम (भाव) भी सच्चा ही होता है । उनका सहारा (आधार) सच्चा (हरि का) नाम होता है । (वे) सच्ची वाणों और सच्चे शब्द के विचार से सतुष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

बादशाही आनन्द और भोग (और अन्य सासारिक) दुःख-सुख (मनुष्य का) संहार करते हैं, (तात्पर्य यह कि अमूल्य मानव-जीवन आनन्द, भोग और रंगरलियाँ मनाने में ही नष्ट हो जाता है) । (मनुष्य अपना) नाम तो बहुत बढ़ा रखता है, किन्तु (उसके) गले में श्रवणों का भार है । (हे प्रभु), मनुष्य के दिग् दुग् कोई दान नहीं होते, (असली और) श्रेष्ठ दाता तो तू ही है ॥ ७ ॥

हे स्वामी, तू अगम, अगोचर और अविनाशी है । गुरु के शब्द द्वारा (हरी का) दरवाजा दूढ़ा जाय, तो मुक्ति का भाण्डार प्राप्त हो जाता है । हे नानक, सच्चे व्यापार का

मिलाप कभी समाप्त नहीं होता, (तात्पर्य यह कि सच्चे व्यापार—सच्ची भक्ति से परमात्मा की प्राप्ति सदैव के लिये हो जाती है) ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

बिबु बोहिआ लादिआ दीआ समुंद भंभादि ।
 कधी दिसि न आबई ना उरवारु न पारु ॥
 बंभी हाथि न खेवट्ट जलु सागरु असरातु ॥१॥
 बाबा जगु काथा महा जालि ।
 गुरपरसादी उबरे सचा नामु समालि ॥१॥ रहाउ ॥
 सतिगुरु है बोहिआ सबदि लघावरुणहारु ।
 तिय पवसु न पावको ना जलु ना आकारु ॥
 तियै सचा सचि नाइ भवजल तारणहारु ॥२॥
 गुरिमुखि लंघे से पारि पए सचे सिउ लिब लाइ ।
 आवागउगु निवारिआ जोतो जोति मिलाइ ।
 गुरमती सहनु ऊपजै सचे रहै समाइ ॥३॥
 सपु पिड़ाई पाईऐ बिबु अंतरि मन रोसु ।
 पूरबि लिखिआ पाईऐ किसनो दोजै दोसु ॥
 गुरमुखि गारडु जे सुणे मंने नाउ संतोसु ॥४॥
 मगर मछु फहाईऐ कूंडी जालु बताइ ।
 दुरमति काथा फाहीऐ फिरि फिरि पछोताइ ॥
 जंमगु मरगु न सुझई किरतु न भेटिआ जाइ ॥५॥
 हउमै बिबु पाइ जगनु उपाइआ सबदु वसै बिबु जाइ ।
 जरा जोहि न सकई सचि रहै लिब लाइ ॥
 जीवन मुकतु सो आखीऐ जितु विचतु हउमै जाइ ॥६॥
 धंधै धावत जगु बाधिआ ना बूझै बीचारु ।
 जंमगु मरगु बिसारिआ मनमुखु मुगधु गवारु ॥
 गुरि राखे से उबरे सचा सबदु बोचारि ॥७॥
 सुहृदु पिजरि प्रेम कै बोलै बोलणहारु ।
 सनु सुनै अमृतु पीऐ उडे न एका बार ॥
 गुरि मिलिऐ खसमु पछाणीऐ कहु नानक मोख दुआरु ॥८॥२॥

(मनुष्य) विषयो का जहाज लाद कर संसार-सागर में डाल देता है । (पारेणाम यह होता है उसे संसार-सागर का) किनारा नहीं दिखाई पड़ता, (सुझाई पड़ता) ; (उसे) न तो यह पार दिखाई देता है और न वह पार । न तो हाथ में बास (लगी) है, न मल्लाह है (और इसके विपरीत) संसार-सागर का जल बढ़ा ही भयावह है ॥ १ ॥

हे बाबा, यह संसार (माया के) महा जाल में फँसा हुआ है । गुरु की कृपा से सच्चे नाम को स्मरण करके (इस महा जाल से) बचा जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सद्गुरु (संसार-सागर से पार उतरने के लिए) जहाज है, (वह अपने) शब्द द्वारा (मनुष्यों को) पार लगा देता है । (उस सद्गुरु रूपी जहाज का आश्रय लेने से) वहाँ वायु, अग्नि, जल तथा अन्य किसी प्रकार के आकार (का भय) नहीं (रह जाता) । उस स्थान पर (सद्गुरु के सान्निध्य में) सत्य (परमात्मा है), (और उसका) सच्चा नाम है, (जो) संसार-सागर से पार करनेवाला है ॥ २ ॥

गुरु के माध्यम से (जो व्यक्ति) सच्चे (परमात्मा) से लिब लगा कर (संसार-सागर) लांघना चाहते हैं, वे उसके पार हो जाते हैं । (सद्गुरु ने) (शिष्य के) आवागमन (जन्म-मरण) का निवारण कर दिया और (जीवात्मा की) ज्योति को (परमात्मा की) ज्योति से मिलाकर (उन्हें एक कर दिया) । गुरु की शिक्षा द्वारा ही सहजावस्था—युरीयावस्था की उत्पत्ति होती है, (जिसके फलस्वरूप शिष्य) सत्यस्वरूप (परमात्मा) में समाहित हो जाता है ॥ ३ ॥

चाहे साँप को पिटाती (में डाल कर) बंद कर दिया जाय, (फिर भी) (उसके) भीतर विष (और उसके) मन में रोष रहता है (उसी प्रकार मनुष्य अपने आप को चाहे किसी वेश में परिवर्तित कर दे, तो भी उसके भीतर विषय रूपी विष विद्यमान रहते हैं) किन्तु इसमें उसका कोई दोष नहीं है, वह तो अपने पूर्व जन्म के कर्मों के स्वभाव के अनुसार व्यवहार कर रहा है । (हाँ, यदि वह) गुरु के द्वारा शब्द—नाम रूपी गारुड-मंत्र सुने और नाम को माने, तो उसके (विषय रूपी) विष दूर हो जायँ (और उसका मन) संतुष्ट—शान्त हो जाय ॥ ४ ॥

(जिस प्रकार समुद्र अथवा अन्य बड़े जलाशयों में) कूँडी (कौंटा) और जाल डाल कर मगरमच्छ फँसाए जाते हैं, (उसी प्रकार माया के विषयो द्वारा) दुर्बुद्धि (मनुष्य) फँसाया जाता है, (वह बधन में फँसने के कारण बार-बार पड़ताता है । (उसे) जन्म-मरण की सूझ नहीं होती, (उसके किए हुए कर्मों के पूर्व) संस्कार नहीं भेटे जा सकते ॥ ५ ॥

(प्रभु ने) अहंकार का विष डाल कर जगत् की उत्पत्ति की, (तात्पर्य यह कि अहंकार ही सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है); (यदि मनुष्य के मन में) शब्द—नाम का निवास हो जाय, (तो अहंकार का) विष दूर हो जाता है । (ऐसे मनुष्य को) बुद्धावस्था दुःख नहीं दे सकती, (क्योंकि वह) सत्य में लिब लगाए रहता है । जिसके भीतर से अहंकार नष्ट हो जाता है, उसी को जीवमुक्त कहना चाहिए ॥ ६ ॥

(सारा) जगत् प्रपंचो (के पीछे) दोड़ते हुए बँधा है; (किसी व्यक्ति में) इस विचार की समझ नहीं होती । भूख और गँवार मनमुख ने जन्म-मरण (के कष्टों को) भुला दिया है, (इसी से वह मनमानी काम करता है) । जिसकी गुरु रक्षा करता है, वह सच्चे शब्द को विचार कर बच जाता है ॥ ७ ॥

(हरी के) प्रेम के पिंजरे में (पड़कर) (जीवात्मा रूपी) तोता (सुग्गा) प्रेम के बोल बोलता है । (वह प्रेम रूपी पिंजरे) में सत्य रूपी (चारा) चुगता और (परमात्मा के प्रेम

रस रूपी) अमृत (का जल) पीता है, और वह यहाँ से एक बार भी नहीं उड़ता, (तात्पर्य यह कि जोवात्मा रूपी तोते का जन्म-मरण समाप्त हो जाता है) । नानक कहते हैं कि गुरु से मिलकर पति (परमात्मा) को पहचानो, वही (गुरु ही) मोक्ष का द्वार है ॥ ८ ॥२ ॥

[३]

सबदि मरै ता मारि मरु भागो किनु पहि जाउ ।
जिसकै डरि भै भागीऐ अमृतु ताको नाउ ॥
मारहि राखहि एकू तू बीजउ नाही थाउ ॥१॥
बाबा मै कुचीलु काचउ मति हीन ।
नाम बिना को कछु नहीं गुरि पूरै पूरी मति कीन ॥१॥ रहाउ ॥
अवगणि सुभर गुण नहीं बिनु गुण किउ धरि जाउ ।
सहजि सबदि सुलु ऊपजे बिनु भागा धनु नाहि ।
जिन कै नामु न मनि वसै से बने दूख सहाहि ॥२॥
जिनी नामु विसारिआ से किनु घ्राए संसारि ।
घ्राये पाछे सुलु नहीं गाडे तावे छारि ॥
विछुड़िआ मेला नहीं दूख घणो जम दुआरि ॥३॥
अगै किआ जाणा नाहि मै भूले तू समझाइ ।
भूले मारु जो दमे तिस कै लागउ पाइ ॥
गुर बिनु दाता को नहीं कोमति कहणु न जाइ ॥४॥
साजनु बेला ता गलि मिला सानु पठाइओ लेलु ।
मुखि धिमाए धन खड़ी गुरमुखि आखी बेलु ॥
तुघु भावै तू मनि वसहि नदरी करमि बिसेलु ॥५॥
भूख पिआसो जे भवै किआ तिसु मागउ बेइ ।
बीजउ सूभे को नहीं मनि तनि पूरनु बेइ ॥
जिनि कीआ तिनि देखिआ आपि बडाई बेइ ॥६॥
नगरी नाइकु नवतनो बालकु लील अनूप ॥
नारि न पुरलु न पंखलु ताचउ चतुरु सरूप ॥
जो तिसु भावै सो धोए तू दोषकु तू छुपु ॥७॥
गीत साव चाले सुणे बाव साव तनि रोगु ।
सनु भावै साचउ खवे छूटे सोग विजोगु ॥
नानक नामु न बीसरै जो तिसु भावै सु होगु ॥८॥३॥

(हे साधक), शब्द—नाम मे (अहंकार-भावना से) मर कर, (इस) मृत्यु को मार, (नहीं तो) भग कर किसके पास जायगा ? जिस हरी के भय से भय अपने आप नष्ट हो जाता है, उसका नाम ही अमृत (अमर करनेवाला) है । (हे प्रभु), एक तू ही मार

सकता है और रक्षा भी कर सकता है; मेरे लिए (तुम्हें छोड़ कर) दूसरा कोई स्थान नहीं है ॥ १ ॥

हे बाबा, मैं गन्दा, कच्चा और बुद्धिहीन हूँ। नाम के बिना कोई कुछ भी नहीं हो सकता; पूर्ण गुरु ने पूर्ण बुद्धि प्रदान की है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं श्रवणगुण से भली-भाँति परिपूर्ण हूँ, (मुझमें कोई भी) गुण नहीं है; बिना गुणों के अपने (वास्तविक) घर (परमात्मा के निकट) कैसे जाऊँ ? सहज (पूर्ण स्थिरता और शान्ति प्रदान करनेवाले) शब्द के द्वारा मुख उत्पन्न होता है। (परन्तु) बिना भाग्य के (यह) धन (हाथ में) नहीं आता। जिनके मन में नाम नहीं बसता, वे बंधे जाते हैं और दुःख सहन करते हैं ॥ २ ॥

जिन (व्यक्तियों) ने नाम भुला दिया है, (भला) वे संसार में घ्राए ही क्यों ? (उत्पन्न हो क्यों हुए) ? (उन्हें) आगे-पीछे (कहीं भी) सुख नहीं है, वे राख से लदे हुए छकड़े हैं, (तात्पर्य यह कि उनके शरीर पापों से भरे हुए हैं)। जो बिछुड़े हैं, उनका मेल नहीं होता और यम के द्वार पर (उन्हें) महान् कष्ट (भोगना होगा) ॥ ३ ॥

(मार्ग में) आगे क्या है, (यह) मेरा जाना हुआ नहीं है; (हे प्रभु), (मार्ग) भटके हुए को तू ही (मार्ग) दिखाता है, (समझाता है)। भूले हुए को जो मार्ग दिखाता है (बताता है), (मैं) उसके चरणों में लगता हूँ। गुरु के बिना कोई भी दाता (इस संसार में) नहीं है; (उस गुरु की) कीमत कहीं नहीं जा सकती ॥ ४ ॥

पति (साजन) के देखने पर, उससे गले लग कर मिल; सत्य रूपी चिट्ठी (लिखावट) उमने भेजी है। स्त्री मुंह (लटकाए) सोच-विचार (ध्यान) में खड़ी है; हे स्त्री, उसे (पति-परमात्मा को) गुरु द्वारा आँखों में देख ले। (हे हरी), जब तुम्हें अच्छा लगता है, तभी तू मन में बसता है; (जिसके मन में तू बसता है, उसके ऊपर विशेष) कृपादृष्टि होती है ॥ ५ ॥

(जो स्वयं ही) भूल-व्यास में (इधर-उधर) भटक रहा है, उसमें क्या माँगूँ ? (वह माँगने पर) दे ही (क्या सकता) है ? देनेवाला और कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता; जो (हमारे) शरीर और मन में पूर्ण रूप (से व्याप्त) है, (यही) देता है। (जिस प्रभु ने हमारी) रचना की है, वही (हमारी) देवभाल भी करता है (और वह) आप ही बड़ाई देता है ॥ ६ ॥

(शरीर रूपी) नगरी का स्वामी (हरी है), (वह) नवीन शरीरवाला है और बालको (की भाँति) नित्य (नई-नई) अनुपम लीला कर रहा है। (वह हरी) स्त्री, पुरुष और पक्षियों (की सीमा से परे है); (वह) चतुर और सत्यस्वरूप है। जो (कुछ) उस प्रभु को अच्छा लगता है, वही होता है; (हे प्रभु), तू ही (प्रकाश रूपी) दीपक है (और तू ही सुगन्धि रूपी) धूप है ॥ ७ ॥

(मैंने बहुत से) गीतों को सुना, (और अनेक) स्वादों का रसास्वादन किया, (किन्तु सारे) स्वाद व्यर्थ हैं और शरीर में रोग (उत्पन्न करनेवाले हैं)। (यदि मनुष्य) सत्य (परमात्मा से ही) प्रेम करे, सत्य ही बोले, (तो वह सासारिक) शोक और (परमात्मा के) वियोग से छूट जाता है। हे नानक, नाम को नहीं भुलाना चाहिए; जो उस (प्रभु) को अच्छा लगेगा, वही होगा ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

साची कार कमावणी होरि लालच बादि ।
 इहु मनु साचै मोहिआ जिहवा सचि सादि ॥
 बिनु नाचै को रसु नही होरि चलहि बिनु लादि ॥१॥
 ऐसा लाला मेरे लाल को सुणि खसम हमारे ।
 जिउ कुरमावहि तिउ चला सनु लाल पिआरे ॥१॥ रहाउ ॥
 अनदिनु लाले चाकरी गोले सिरि मोरा ।
 गुर बचनी मनु वेचिआ सबदि मनु धोरा ॥
 गुर पूरे साबसि हे कटै मन पीरा ॥२॥
 लाला गोला धरणी को किआ कहउ वडिआईऐ ।
 भाएँ बखसे पूरा धरणी सनु कार कमाईऐ ॥
 बिनुडिआ कउ मेलि लए गुर कउ बलि जाईऐ ॥३॥
 लाले गोने मति खरी गुर की मति नोकी ।
 साची सुरति सुहावणी मनमुख मति फोकी ॥
 मनु तनु तेरा तू प्रभू सनु धीरक धुरकी ॥४॥
 साचै बैसगु उठरण सनु भोजनु भाखिआ ।
 चिति सचै वितो सचा साचा रसु चाखिआ ॥
 साचै घरि साचै रखे गुर बचनि सुभाखिआ ॥५॥
 मनमुख कउ आलसु घरणो फाथे ओजाड़ी ।
 फाथा चुगै नित चोगड़ी लगि बंधु बिगाड़ी ॥
 गुरपरसादी मुकुनु होइ साचे निज ताडी ॥६॥
 अनहति लाला बेधिआ प्रभ हेति पिआरी ।
 बिनु साचे जीउ जलि बलउ भूठे वेकारी ॥
 बादि कारा सभि छोडीआ सची तरु तारी ॥७॥
 जिनी नामु विसारिआ तिना ठउर न ठाउ ।
 लाले लालचु तिआगिआ पाइआ हरि नाउ ॥
 तू बखसहि ता मेलि लैहि नानक बलि जाउ ॥८॥४॥

(सच्चे साधक) सच्ची करनी करते हैं; (उनके लिए) (संसार के) और लोभ
 व्यर्थ है । (ऐसे मनुष्यों का) मन सत्य (परमात्मा) में मोहित है (और उनकी) जिह्वा सच्चे
 (नाम के) स्वाद (में रत) है । बिना नाम के (इस संसार में) कोई रस नहीं है; और
 (सासारिक) लोग (माया का) विष लाद कर (यहाँ से चले जाते हैं) ॥ १ ॥

हमारे स्वामी (हरी के समान) और कौन सुना जाता है ? मैं अपने लाल (प्रियतम,
 स्वामी) का ऐसा गुलाम हूँ कि जो कुछ भी वह आज्ञा देता है, उसी में मैं चलता हूँ, (वह
 हमारा) प्यारा लाल सत्यस्वरूप है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मैं) प्रतिदिन (अपने स्वामी की) सेवावाली चाकरी में हूँ; (भुक्त) सेवक के सिर पर (मेरा) स्वामी (मोरा) है। गुरु के आदेशानुसार (मैंने अपने मन को) बेच दिया और शब्द—नाम मे (मेरा) मन धैर्यवान् हो गया है। (उस) पूर्ण गुरु को धन्य है, (जिसने) मन की पीड़ा काट दी है ॥ २ ॥

स्वामी (हरी) के गुलाम की क्या बड़ाई बतलाई जाय ? पूर्ण स्वामी (अपने) मर्जी से (किसी भी मनुष्य को) बन्ध देता है, (हरी के आदेश से मनुष्य को) सत्य कार्य करने चाहिए। (गुरु ही हरी से) बिछुड़े हुए (मनुष्यों को उसने) मिलाता है, (ऐसे गुरु पर) बलिहारी हो जाना चाहिए ॥ ३ ॥

गुरु को बुद्धि उत्तम होने से, (उसके) सेवक की बुद्धि भी उत्तम और स्वच्छ हो गई है। सच्ची (वृत्ति) होने के कारण (उसकी सुरति) सुहावनी हो गई है; (किन्तु जो व्यक्ति) मनमुग्न है, (उनकी) बुद्धि फीकी (होती है)। (गुरुमुख यह समझता है कि हे प्रभु, यह मेरा) मन और शरीर सब कुछ तेरा ही है तू ही (मेरा) प्रभु है; सत्य प्रारम्भ से ही उन्हें धैर्य प्रदान करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

(गुरुमुखों का) सत्य मे ही बैठना और उठना (होता है); (वे) सत्य का ही भोजन करते हैं। (उनके) चित्त में सत्य (हरी) के होने से, उनका धन भी सच्चा ही होता है; (वे) सत्य-रस (परमात्म-प्रेम) का ही आस्वादन करते हैं। जिन (गुरुमुखों) की वाणी गुरु के उपदेश (वचन) द्वारा सुन्दर हो गई है, उन्हें सत्य (हरी) ने (अपने) सत्य घर मे रक्खा है ॥ ५ ॥

मनमुग्न को (हरी के भजन करने मे) बहुत आलस्य होता है; (वह संसार के विकट) वन मे फँस गया है। (वह) फँसा हुआ (प्राणी) (माया के पदार्थ रूपी) चारों के चुगने में लग कर (हरी से) सम्बन्ध बिगाड़ लेता है। गुरु की कृपा से अपने सच्चे स्वरूप मे ताड़ी (ध्यान) लगा कर (वह) मुक्त हो सकता है ॥ ६ ॥

(प्रभु का) दास अपने स्वामी के प्रेम और प्यार मे निरन्तर बिधा रहता है। (जो) सच्चे (हरी) के बिना हैं, (वे) भूठे और बिकारी हैं, (उनका) जी जलता-बलता रहता है। (हे मनुष्य) सारे व्यर्थ कार्यों को त्याग दे; (प्रभु की) सच्ची तेराकी तर ॥ ७ ॥

जिन्होंने नाम भुला दिया है, उनका कोई भी ठौर-ठिकाना नहीं होता। (प्रभु के) सेवक ने (सांसारिक) लोभ का परित्याग कर दिया, (जिससे उसे) हरि के नाम की प्राप्ति हो गई। (हे हरी यदि) तू कृपा करे, तो अपने में मिला लेता है। नानक (तुझ पर) बलिहारी है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

लाले गारबु छोबिआ गुर के भे सहजि सुभाई ॥

लाले लसम पछालिआ बडी बडिआई ॥

लसमि मिलिऐ सुख पाइआ कोमलि कहणु न जाई ॥१॥

लाला गोला लसम का लसमे बडिआई ।

गुरपरसायी उबरे हरि की तराणई ॥१॥ रहाउ ॥

लाले नो सिरिकार है धुरि खसमि कुरमाई ।
 लाले हुकमु पछाणिआ सदा रहै रजाई ॥
 आपे मीरा बखसि लए बडी बडिआई ॥२॥
 आपि सच्चा समु सनु है गुर सबवि बुझाई ।
 तेरी सेवा सो करे जिसनो लैहि तू लाई ॥
 बिनु सेवा किनै न पाइआ बूजै भरमि लुआई ॥३॥
 सो किउ मनहु विसारीऐ नित बेवै चढ़ै सबाइआ ।
 जीउ पिंडु समु तिसदा साहु तिनै बिचि पाइआ ॥
 जा कृपा करे ता सेवोऐ सेवि सचि समाइआ ॥४॥
 लाला सो जीवतु मरै मरि बिचहु आप गवाए ।
 बंधन तूटहि मुकति होइ नृसना अगनि बुझाए ॥
 सभ महि नामु निधानु है गुरमुखि को पाए ॥५॥
 लाले बिचि गुण किछु नही लाला अवगणिआरु ।
 तुधु जेवहु दाता को नही तू बखसणहारु ॥
 तेरा हुकमु लाला मने एह करणी सारु ॥६॥
 गुरु मागरु अमृतपरु जो इछे सो फलु पाए ।
 नामु पदारथु अमरु है हिरदै मन वसाए ॥
 गुर सेवा सदा मुखु है जिसनो हुकमु मनाए ॥७॥
 सुइना रूपा सभ धातु है माटो रलि जाई ।
 बिनु नाबै नालि न चलई सतिगुरि बूझ बुझाई ॥
 नानक नामि रने मे निरमले साचै रहे समाई ॥८॥१॥

(प्रभु के) सेवक ने गुरु से भय आर सद्ब (शान्त) स्वभाव (सीख कर) अहंकार का परित्याग कर दिया है । सेवक ने पति (परमात्मा) को पहचान लिया है ; (इसमें वह) बहुत बड़ी बडाई (का पात्र बना है) । स्वामी (हरी) के मिलने में (उमें) (परम) मुख प्राप्त हुआ है, (उस मुख की) कीमत् कहीं नहीं जा सकती ॥ १ ॥

(सच्चा साधक) प्रभु का दाम—सेवक है, स्वामी की ही (सारी) बडाई है । गुरु की कृपा से हरि की शरण में (जाने में), सेवक तर जाने है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(प्रभु का हुक्म मानना ही) दाम के सिर का कार्य है, (प्रभु ने) प्रारम्भ में ही उसे (हुक्म में लगने की) आज्ञा दे दी है । (सच्चा) सेवक (प्रभु के) हुक्म को पहचान कर सदैव उसकी आज्ञा में (रत) रहता है । मालिक—स्वामी ने (हरि ने सेवक के ऊपर) स्वयं ही बड़ी कृपा की है ; (यह उसकी) बड़ी महत्ता है ॥ २ ॥

गुरु के उपदेश से (शिष्य को यह) बोध हुआ है कि (प्रभु) स्वयं भी सच्चा है, (और उसकी) समस्त (रचना भी) सच्ची है । (हे प्रभु) तेरी सेवा वही (भाग्यशाली) कर सकता है, जिसे तूने पकड़ कर उसमें लगा दिया है । बिना सेवा के किसी ने भी

(हरी को) नहीं प्राप्त किया है ; (बिना सेवा के मनुष्य) द्वैतभाव में पड़ कर नष्ट हो गए हैं ॥ ३ ॥

(भला, उस प्रभु को) मन से कैसे भुलाया जाय, जो नित्य देता रहता है, (और जिसका दिया हुआ) सवाया बढ़ता रहता है ? (प्राणिमात्र के) समस्त प्राण और शरीर उसी (प्रभु) के हैं ; (समस्त प्राणियों के) भीतर (उसी प्रभु ने) श्वास भी डाल रखी है, (जिसके सहारे प्राणी जीते हैं) । जब (वह प्रभु) कृपा करता है, तभी (उसकी) प्राराधना हो सकती है ; सेवा करने से (साधक) सत्य (हरी में) समा जाते हैं ॥ ४ ॥

(सच्चा) सेवक वही है, जो जीते ही मर जाय, (और इस प्रकार मर कर अपने) अन्तर्गत से (इस मरने के) अहंकार को भी दूर कर दे । (जो साधक अपनी) वृष्णा की अग्नि को बुझा देता है, (उसके) बन्धन टूट जाते हैं (और वह) मुक्त हो जाता है । सभी के अन्तर्गत (हरि के) नाम का भाण्डार है ; गुरु के उपदेश द्वारा कोई विरला ही (साधक इस नाम रूपी धन को) पाता है ॥ ५ ॥

(मुझ) सेवक में कोई भी गुण नहीं है, (मैं) सेवक (बहुत ही) अवगुणी हूँ । (हे प्रभु), तुझसे बड़ा कोई भी दाता नहीं है, तू ही क्षमा करनेवाला है । तेरा दास तेरे हुक्म को माने, (यही उसके लिए) श्रेष्ठ करनी है ॥ ६ ॥

गुरु (नाम रूपी) अमृत का सागर है ; (शिष्य गुरु के पास) जो कुछ भी इच्छा करे, वही (उसे) प्राप्त होता है । (शिष्य) नाम रूपी अमर पदार्थ (को गुरु से ग्रहण करके) उसे अपने मन और हृदय में बसा लेता है । गुरु की सेवा ही शाश्वत सुख है ; जिसमें (प्रभु) हुक्म मनवाता है, (वही इस हुक्म को मानता है) ॥ ७ ॥

सोना, चाँदी सभी धातु हैं, (और एक न एक दिन) मिट्टी में मिल जाती है । (हरी के) नाम के बिना (कोई अन्य वस्तुएँ मनुष्य के) साथ नहीं जाती, सद्गुरु ही इस समझ को समझाता है । हे नानक, जो नाम में रत है, वे ही निर्मल (पवित्र) है, (वे) सत्य (परमात्मा) में समा जाते हैं ॥ ८ ॥ ५ ॥

[६]

हुकमु भइआ रहणा नही घुरि फाटे चोरै ।

एह मनु अवगणि बाधिआ सहु बेह सरीरै ॥

पूरे गुरि बखसाईअहि सभि गुनह फकीरै ॥१॥

किउ रहीऐ उठि चलणा कुमु सबव बीचारा ।

जिसु तू मेले सो मिले घुरि हुकमु अपारा ॥१॥ रहाउ ॥

जिउ तू राखहि तिउ रहा जो बेहि सु छाउ ॥

जिउ तू चलावहि तिउ जला सुखि अमृत नाउ ॥

मेरे ठाकुर हृषि बडिआईआ मेलहि मनि आउ ॥२॥

कीता किआ सालाहीऐ करि बेले सोई ।

जिनि कीआ सो मनि बसे मे अवरु न कोई ॥

सो साचा सालाहीऐ साचो पति होई ॥३॥

पंडितु पड़ि न पहुचई बहु आल जंजाला ।

पाप पुन दुइ संगमे खुधिआ जम काला ॥

विछोड़ा भउ बीसरे पूरा रखवाला ॥४॥

जिन की लेलै पति पवै से पूरे आई ।

पूरे पूरी मति है सची बडिआई ॥

बेदे तोटि न आबई ले ले यकि पाई ॥५॥

खार समुद्र डंडोलीऐ इकु मलीआ पावै ।

दुइ दिन चारि सुहावणा माटी तिसु खावै ॥

गुरु सागरु सनि सेवीऐ दे तोटि न आबै ॥६॥

मेरे प्रभ भावनि से ऊजले सभ मैलु भरीजै ।

मैला ऊजलु ता बीऐ पारस संगि भीजै ।

वंनो साचे लाल की किनि कीमति कीजै ॥७॥

भेली हाथ न लभई तीरथि नही दाने ।

पूछउ बेद पड़तिआ मूठी बिगु माने ॥

नानक कीमति सो करे पूरा गुरु सिमाने ॥८॥६॥

प्रारम्भ से ही चिह्नी के फटने से, (तात्पर्य यह कि हरी के पास से फटी हुई चिह्नी आने में) — (यह समझ लेना चाहिए कि अब उसका) हुक्म हो गया है । (अब इस संसार में) नहीं रहता है । [उत्तरी भाग में कही कही यह रिवाज है कि मृत्यु का संदेश देनेवाली चिह्नी को ऊपरी भाग में फाड़ दिया जाता है] । यह मन अवगुणों से बंधा हुआ है और इस देह-शरीर में (अवगुणों के कारण) दुःख ही सहायक है । (किन्तु यह विश्वास है कि) मुझ फकीर (दास) के अपराध पूर्ण गुरु द्वारा क्षमा किए जायेंगे ॥ १ ॥

(इस संसार से) उठ कर चलना किस प्रकार समाप्त हो, (तात्पर्य यह कि जन्म-मरण का चक्र किस प्रकार समाप्त हो) ? (इस बात को गुरु के) शब्द के द्वारा विचार करके समझ । (हे प्रभु), जिने तू अपने में मिलाता है, वही तुझ में मिलता है ; यह अनन्त हुक्म प्रारम्भ से ही (लिखा रहता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु, मेरी यही इच्छा है कि) जिस प्रकार तू (मुझे) रखे, (मैं) उसी प्रकार रहूँ । तू जो (कुछ भी) दे, (मैं) वही खाऊँ । तू जिस प्रकार मुझे बलावे, (व्यवहार में लगावे), मैं तेरा अमृत रूपी नाम मुख में रख कर, उसी प्रकार चलों (तात्पर्य यह कि उसी प्रकार व्यवहार करूँ, जैसा तू मुझे करने के लिए प्रेरणा दे) । मेरे ठाकुर के हाथ में सभी बड़ाईयाँ (ऐश्वर्य) हैं ; मेरे मन में यही चाह है कि मुझे (वह अपने में) मिला ले ॥ २ ॥

(परमात्मा द्वारा उत्पन्न) किए हुए (जीव) की क्या प्रशंसा की जाय, जब कि (उन्हे उत्पन्न करके हरी उनकी स्वयं) देखभाल (निगरानी) करता है ? जिस (प्रभु ने हम सब का निर्माण) किया है, वह (मेरे) मन में निवास करे, मेरे लिए (तो उस प्रभु के अतिरिक्त) और कोई दूसरा नहीं है । उस सच्चे (हरी) की प्रशंसा करने से सच्ची प्रतिष्ठा होती है ॥ ३ ॥

पड़ित पढ़ कर (परमात्मा के पास) नहीं पहुँच पाता, (क्योंकि वह) बहुत से घरेलू प्रपंचों (टंटों) में (उलझा रहता है) । (वह) पाप-पुण्य के बंधनों में (तथा सांसारिक विषयों की) भूल में यमराज के दुःखों का भागी होता है । जिसका रक्षक पूर्ण (हरी) हो जाय, वह (प्रभु से) वियोगी (पुरुष) भय को भूल जाता है (और प्रभु हरी से मिल कर एक हो जाता है) ॥ ४ ॥

जिनके हिसाब में (परमात्मा के यहाँ से) प्रतिष्ठा होती है, हे भाई, (वे ही) पूर्ण (व्यक्ति) हैं । (ऐसे) पूर्ण (व्यक्ति) की बुद्धि भी पूर्ण होती है (और उनकी) सच्ची बड़ाई होती है । (प्रभु हरी के) देने में (किसी प्रकार की) कमी नहीं आती, लेते लेते (हम भले ही) थक जाते हैं ॥ ५ ॥

खारे समुद्र के ढूँढ़ने पर (मनुष्य) एकाध रत्न पा जाता है । (ऐसे समुद्र का रत्न) दो-चार दिनों के लिए मुहावना होता है ; (फिर) मिट्टी उसे खा लेती है, (अर्थात् वह नष्ट हो जाता है) । (अतएव) सच्चे गुरु रूपी सागर की सेवा करो, (वह गुरु रूपी सागर अनन्त गुण रूपी रत्नों में परिपूर्ण है), उसके देने में किसी प्रकार की कमी नहीं आती ॥ ६ ॥

मेरे प्रभु को जो (व्यक्ति) अच्छे लगते हैं, वे ही उजले (पवित्र) हैं, (बाकी और) सब लोग मैल से भरे हुए हैं । (जब) (गुरु रूपी) पारस के साथ भोजा हो, (अर्थात् स्पर्श हो), तो मैला भी निर्मल हो जाता है, (अर्थात् अवगुणी व्यक्ति भी गुणी हो जाता है) । नाम रूपी सच्चे लाल के प्राप्त होने में जो रंग उस पर चढ़ा है, उसकी कीमत नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

अनेक वेश बनाने में, तीर्थयात्रा करने एवं (बहुत) दान देने से (यह नाम रूपी सच्चा रत्न) हाथ में नहीं आता । वेद-पढ़ने वालों (के पास जाकर) पूछ लो कि बिना (इस नाम रूपी रत्न के) माने (समस्त जगत्) लूटा गया है । नानक कहते हैं कि जिससे पूर्ण गुरु और उसका ज्ञान प्राप्त हो गया, (वही इस नाम रूपी सच्चे रत्न की) कीमत कर सकता है ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

मनमुख सहृदय घर तजि विगुँचे अवरा के घर हेरै ।

गृह घरमु गवाए सतिगुरु न भेटे दुरमति घूमन घेरै ॥

दिसंतरु भवे पाठ पढ़ि चाका नृसना होइ बधेरै ॥

काची पिंडो सबहु न चीने उदर भरै जैसे दोरै ॥१॥

बाबा ऐसी रवत रवे संनिआसी ।

गुर कै सबवि एक लिय लागी तेरे नामि रते नृपतासी ॥१॥रहाउ॥

घोली गेरु रंगु बड़ाइआ वसत्र भेल भेलारी ।

कापड़ फारि बनाई लिखा भोली माइआ घारी ॥

घरि घरि माले जगु परबोवे मनि ग्रंथे पति हारी ।

भरमि भुलाए सबहु न चीने जूऐ बाजो हारी ॥२॥

अंतरि अगनि न गुर बिनु ब्रूँ भै बाहरि पूछर तापै ।
 गुर सेवा बिनु भगति न होयो किउकरि चीनसि आपे ॥
 निदा करि करि नरक निवासी अंतरि आतम जापै ।
 अठसठि तीरथ भरमि विगूबहि किउ मलु धोपै पापै ॥३॥
 छाणी लाहु बिभूत चड़ाई माइया का मगु जोहै ।
 अंतरि बाहरि एक न जाणै साबु कहे ते छोहै ॥
 पाहु पड़े मुखि भूठो बोले निगुरे की मति ओहै ।
 नामु न जपई किउ सुबु पावै बिनु नावै किउ सोहै ॥४॥
 मूँहु मुडाइ जटा सिख बाधो मोनि रहै अभिमाना ।
 मनूआ डोले बहुदिस धावै बिनु रत आतम गिआना ॥
 अंमृतु छोडि महा बिलु पीवै माइया का देवाना ।
 किरतु न मिटई हुकमु न ब्रूँ पसूआ माहि समाना ॥५॥
 हाथ कमंडलु कापड़ीआ मनि तृसना उपजी भारी ।
 इसत्री तजि करि कामि विआपिआ चितु लाइआ पर नारी ॥
 सिख करे करि सबदु न चीनै लंपटु है बाजारी ।
 अंतरि बिनु बाहरि निभराती ता जमु करे लुआरी ॥६॥
 सा संनिआसी जो सतिगुर सेवै विचहु आपु गवाए ।
 छादन भोजन की आस न करई अंचितु मिले सो पाए ।
 बकै न बोले खिमा धनु संगहै तामसु नामि जलाए ।
 धनु गिरही संनिआसी जोगी जि हरि चरणी चितु लाए ॥७॥
 आस निरास रहै संनिआसी एकसु सिउ लिय लाए ।
 हरि रसु पीवै ता साति आवै निजघरि ताड़ी लाए ॥
 मनूआ न डोले गुरमुखि ब्रूँ धावतु वरजि रहाए ।
 गृहु सरीरु गुरमती लोजे नामु पदाःयु पाए ॥८॥
 ब्रह्मा जिसनु महसु सरेसठ नामि रते वीचारी ।
 छाणी बाणी गगन पताली जंता जोति तुमारी ॥
 सभि सुख मुक्ति नाम धुनि बाणी सनु नामु उरधारी ॥
 नाप बिना नही छूटसि नानक साची तरु तू तारी ॥९॥७॥

मनमुख किसी जोश (अथवा क्षणिक वैराग्य की) लहर में आकर (अपना) घर त्याग कर नष्ट होता है (और फिर पेट भरने के लिए) दूसरो के घरों की ओर ताकता है । (वह अपने) गृहस्थ-धर्म को नष्ट कर देता है ; सदगुरु के न मिलने से, दुर्बुद्धि के भंवर में पड़ा रहता है । (वह) देश-देशान्तरों में भ्रमण करता है ; (धार्मिक ग्रंथों के) पाठ करके थक जाता है ; (किन्तु उसकी) तृष्णा और भी अधिक बढ़ती जाती है । इस कच्चे (नश्वर) शरीर से, (यह) शब्द—नाम नहीं पहचानने (की चेष्टा करता) और पशु के समान अपना पेट भरता रहता है ॥ १ ॥

ऐ बाबा, संन्यासी को इस प्रकार रहनी रहनी चाहिए—(वह) गुरु के शब्द मे एकनिष्ठ निब लगाए रहे (और हे प्रभु), तेरे ही नाम मे वह तृष्ट होता रहे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(किन्तु पाखण्डी संन्यासी) गेरू घोल कर (अपने) वस्त्र रंग लेता है और भिखारी का सा वेश बना लेता है । मायाधारी संन्यासी कपड़ो को फाड़ कर कंधा और भोली बना लेता है । (यह स्वयं तो) घर घर मे (भीख) मांगता है, किन्तु जगत् को उपदेश देता (फिरता) है ; वह मन से अंधा है (विवेक-विहीन) है, (और अपनी) प्रतिष्ठा गँवा देता है । (वह माया के) भ्रम में भटक गया है, शब्द—नाम नहीं पहचानता ; वह (जीवन रूपी) जुए की बाजी हार जाता है ॥ २ ॥

ऐसे मनुष्य के भीतर तो (तृष्णा की) अग्नि जल रही है, किन्तु बिना गुरु के यह समझ नहीं आती । (वह) बाहर से धूनी तापता है, (पर इस धूनी तापने से कुछ भी नहीं होता) । गुरु की सेवा के बिना भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती (और बिना भक्ति-प्राप्ति के मनुष्य) अपने आप को (असली स्वरूप को) कैसे पहचान सकता है ? (ऐसा मनुष्य) (दूसरो की) निन्दा कर-कर के नरक का निवासी होता है (और उसके) भीतर घनघोर अंधकार प्रतीत होना है [विशेष आ—तम—घनघोर अंधकार] । (वह) अडसठ तीर्थों मे भ्रमण करके नष्ट होता है । (उसके) पापो की मैन (भला) किस प्रकार धोई जाय ? ॥ ३ ॥

(वह) खाक छान कर, विभूति (भभूत) बना कर (अपने शरीर मे) मल कर माया का मार्ग देखता है । (वह) एक (परमात्मा) को भीतर-बाहर नहीं जानता है (और यदि उसे कोई) सत्य (वस्तु) बतलाता है, (तो वह) कुढ़ होता है । (वह) पाठ पढ़ता है, (किन्तु साथ ही) मुख से भूढ़ भी बोलता है ; उसकी बुद्धि बिना गुरु की है, (इसीलिए वह ठीक मार्ग पर नहीं चलता) । (वह) नाम तो जपता नहीं (और बिना नाम के जपे) किस प्रकार सुख पा सकता है ? बिना नाम के वह कैसे मुशोभित होगा ? ॥ ४ ॥

(कुछ लोग तो) मूँड मुड़ा लेते हैं, (सिर घुटा लेते हैं), (कुछ लोग) जटा (रख लेते हैं), (कुछ लोग लम्बी) शिखा (चोटी) (रखते हैं) (और कुछ लोग) अभिमान मे मौन धारण कर लेते हैं । (किन्तु) बिना आत्म-ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) मे रत हुए (उनका) मन (स्थिर न होकर) दसो दिशाओ मे दौड़ता रहता है । माया मे दीवाने होकर (वे नाम रूपी) अमृत (को पीना) छोड़ कर, (विषयो के) महा विष को पीते हैं । (उनके पूर्व जन्मो के कर्मों द्वारा निर्मित) संस्कार (फिरत) नहीं मिटते, (जिससे वे परमात्मा के) हुक्म को नहीं समझते (और अन्त मे वे) पशु (योनि में) समा जाते हैं ॥ ५ ॥

कापडी (सम्प्रदाय विशेष का साधु) हाथ मे कमण्डल ले लेता है, (जिससे कि लोग उसे त्यागी और विरक्त समझें, किन्तु उसके) मन मे बहुत भारी तृष्णा उत्पन्न रहती है । (उसने अपनी) स्त्री तो छोड़ दी है ; (किन्तु) कामातुर होने के कारण (वह) पर-नारी का चिन्तन करता है । वह शिक्षा तो देता है, (किन्तु स्वयं) शब्द नहीं पहचानता है, वह (महान्) लम्पट और बाजारी (संसारी) है । उसके भीतर तो विष (भरा हुआ है) ; (किन्तु) बाहर से (वह ऐसा ढोंग—पाखण्ड रचता है कि) शान्त (दिखाई पड़े), पर यम-राज (ऐसे मनुष्य को अवश्य) बरबाद करेगा ॥ ६ ॥

जो सद्गुरु को सेवा करता है (और अपने) भीतर से आवापन (अहंकार) नष्ट कर देता है, वही (वास्तविक) संन्यासी है । (वह) वस्त्र और भोजन को (कुछ भी) आशा नहीं करता, (जो कुछ) बिना चिन्ता किए (स्वाभाविक रूप से) मिल जाता है, उसी को पाकर (संतुष्ट रहता है) । (वह) बकवास नहीं करता, क्षमा-धन का संग्रह करता है और तमोगुण को (हरि के) नाम द्वारा जला डालता है । (ऐसा) गृहस्थ, संन्यासी अथवा योगी धन्य है, जो हरि के चरणों में (अपना) चित्त लगाता है ॥ ७ ॥

(जो) (समस्त) आशाओं से निराश हो जाता है और एक (परमात्मा से) लिब लगाए रहता है, (वही) संन्यासी है । (जो व्यक्ति) हरि-आ पीता है (और अपने) निज घर (आत्म-स्वरूप) में तडी लगाता है, (ध्यान लगाता है), उसी को शान्ति प्राप्त होती है । (जो व्यक्ति) मन से चलायमान नहीं होता, और गुरु की शिक्षा द्वारा दीड़ते हुए (मन को) रोक रखता है, (वह हरी को) समझता है । (जो व्यक्ति) गुरु की शिक्षा द्वारा (अपने) गृह रूपी शरीर में ही खोजता है, (वह) नाम रूपी पदार्थ पा जाता है ॥ ८ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश (इसीलिए) श्रेष्ठ है (कि वे) नाम को विचार कर (उसमें) रत हुए हैं । (हे प्रभु), तेरी ज्योति (चारों) खानियों में—(अंडज, जेरज, उद्भिज और स्वेदज) (तथा उनकी) बोलियों में, आकाश में, पाताल में, (तथा सभी) प्राणियों में व्याप्त हो रही है, (अर्थात् ये सब तेरी ही सत्ता से प्रकाशित हैं) । समस्त सुख और मुक्ति नाम और वाणी के उच्चारण में हैं ; (इसीलिए मैं) सत्यनाम को हृदय में धारण करता हूँ । हे नानक, नाम के बिना (कोई भी) नहीं मुक्त होगा, (अतएव) सच्ची तैराकी तैः ॥ ९ ॥ ७ ॥

[८]

भात पिता संजोगि उपाए रक्तु बिडु मिलि पिंडु करे ।

अतरि गरभ उरधि लिब लागी सो प्रभु सारे दाति करे ॥१॥

संसार भवजलु किउ तरै ।

गुरुमुखि नामु निरंजनु पाईऐ अफरिओ भारु टरै ॥१॥रहाउ॥

ते गुरु विसरि गए अपराधी मे बडरा किआ करउ हरे ।

तू दाता दइआलु सभे सिरि अहिनिंसि दाति समारि करे ॥२॥

चारि पदारथ ले जगि जनमिआ सिब सकती घरि बासु घरे ।

लागी भूल माइआ नगु जोहै सुकति पदारथु मोहि खरे ॥३॥

करण पलाव करे नही पावे इत उत दूढत थाकि परे ।

कामि ओधि अहंकारि विआपे कूड़ कुटंब सिउ प्रीति करे ॥४॥

खावे भोग सुणि सुणि बेखे पहिरि दिखावे काल घरे ॥

बिनु गुरु सबद न आपु पछाए बिनु हरि नाम न काल टरे ॥५॥

जेता मोहु हउमे करि भूले मेरी मेरी करते छोनि खरे ।

तनु धनु बिनसे सहसे सहसा फिरि पछुतावे सुखि धूरि परे ॥६॥

बिरधि भइछा जोबनु तनु खिसिआ कफु कंठु बिरुयो नैनहु नीर डरे ।

खरण रहे कर कंषण लागे साकत रामु न रिदै हरे ॥७॥

सुरति गई काली हू धउले किसै न भावै रलियो घरे ।

बिसरत नाम ऐसे दोल लागहि जसु भारि समारे नरकि खरे ॥८॥

पूरब जनम को लेलु न मिटई जनमि मरै का कउ दोसु घरे ।

बिनु गुर बादि जोवरु होरु मरणा बिनु गुर सबवे जनमु जरे ॥९॥

लुसी लुआर भए रस भोगण फोकट करम बिकार करे ।

नामु बिसारि लोभि झूलु खोइयो सिरि धरमराइ का डंडु परे ॥१०॥

गुरमुखि राम नाम गुण गावहि जा कउ हरि प्रभु नदरि करे ।

ते निरमल पुरख अपरपर पूरे ते जग महि गुर गोविंद हरे ॥११॥

हरि सिमरहु गुर वचन समारहु संगति हरि जन भाउ करे ।

हरि जन गुरु परधानु दुआरै नानक तिन जन की रेगु हरे ॥१२॥॥

(प्रभु ने) माता-पिता के संयोग में —अर्थात् (माना के) रज (और पिता के) वीर्य से इस शरीर की उत्पत्ति की । (माना के) गर्भ के अन्तर्गत (जीव) ऊर्ध्व होकर, (जिस हरी से) निव (ध्यान) लगाए था, वही प्रभु बाहर भी सम्मान करता है और दान देता है ॥ १ ॥

इस संसार-सागर को किस प्रकार तरा जाय ? गुरु द्वारा निर्जन (माया से रहित) नाम पाने से अहंकार-जनित (पापों का) बड़ा बोझ टल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(परमात्मा के रचे हुए) वे सारे गुण भूल गए, (मैं) अपराधी हूँ ; हे हरी, मैं बाबला क्या कहूँ ? (हे हरी), तू दाना है, दयालु है और सभी के सिर पर है, (अर्थात् सबका स्वामी है) ; (तू) दिन-रात सम्मान कर (याद करके) (सभी को) दान देता रहता है ॥ २ ॥

(मनुष्य) चार पदार्थों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) को (लक्ष्य बनाकर) जन्म लेता है, (किन्तु जगत् में आकर वह इन्हें भूल कर) शिव की शक्ति (माया) ही में निवास करने लगता है । (विषयों की) भूख लगने पर वह माया का ही मार्ग देखने लगता है और महान मोह में मुक्ति रूपी पदार्थ को (भुना देता है ॥ २ ॥

(मनुष्य माया के जंगल में भटक कर सही रास्ता नहीं पाता) (वह) कारुण्य-प्रलाप करता है, (किन्तु मार्ग) नहीं पाता, (वह) इधर-उधर दूँढ़ कर थककर पड़ जाता है । काम, क्रोध और अहंकार (उसे) व्याप्त हो जाते हैं, झूठे कुटुम्ब में बड़ा प्रीति करता है ॥४॥

(मनुष्य) काल के घर में (तात्पर्य यह कि नन्दर संसार में) (नाना भाँति के व्यंजनों को) खाता है, (अपने भोगों को) भोगता है ; (सुन्दर संगीत) सुनता है, (सुन्दर स्वरूप) देखता है, (और आकर्षण वस्त्र तथा आभूषण) पहन कर (दूसरों को) दिखाता है । बिना गुरु की शिक्षा के वह (अपने वास्तविक स्वरूप को)—अपने आप को नहीं पहचान पाता और बिना हरिनाम (के प्राप्त किए) काल (उसके सिर पर से) नहीं टलता ॥ ५ ॥

(मनुष्य) जितना ही मोह और अहंकार करके (हरी को) भूलता है , (उतना ही) 'मेरी मेरी' (अर्थात् , यह वस्तु 'मेरी है, मेरी है') कहता है , (किन्तु काल सभी वस्तुओं को) भली-भाँति छीन कर , (उसे ले जाता है) । (जो) भ्रम रूप उसका शरीर और धन था , (वह सब) नष्ट हो जाता है (और उसके साथ ही साथ) भ्रम भी दूर हो जाता है और मुख में धूल पड़ने से वह पछताता है ॥ ६ ॥

(धीरे धीरे मनुष्य) वृद्ध हो जाता है , यौवन और शरीर खिसक जाते हैं , कठ मे कफ अवरोध हो जाती है और नेत्रों से जल बहने लगता है , चरण शिथिल पड़ जाते हैं , हाथ कंपने लगते हैं ; (किन्तु ऐसी अवस्था में भी वह) शाक्त (माया का उपासक) (अपने) हृदय में राम-हरी को नहीं धारण करता ॥ ७ ॥

(वृद्धावस्था में) (मनुष्य की) स्मरण-शक्ति (सुरति) नष्ट हो जाती है , काने (बाल) श्वेत हो जाते हैं , (ऐसे वृद्ध व्यक्ति को) किसी को घर में रखना अच्छा नहीं लगता । (हरि) नाम के विस्मरण से ही मनुष्य को इस प्रकार के दोष लगते हैं , (तात्पर्य यह मानव-जीवन में वृद्धावस्था के दुःख सहन करने पड़ते हैं) । (अन्त में ऐसे मायामग्न व्यक्तियों को) यम मार-मार के संभाल लेता है (अपने वश में कर लेता है) और नरक में ले जाता है ॥ ८ ॥

पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों का प्रभाव नहीं जाता , (जिससे मनुष्य बार-बार) जन्मतः और मरता रहता है , (परन्तु) किसे दोष दिया जाय ? बिना गुरु के (प्रमूल्य मानव-जीवन) व्यर्थ है ; (बिना गुरु के बारबार) मरना पड़ता है ; और बिना गुरु-शब्द के जन्म जल जाता है , (तात्पर्य यह कि जन्म नष्ट हो जाता है) ॥ ९ ॥

रसों के भोगने की खुशी में (मनुष्य) खूब (दुखी) हो रहे है (और उसी खुशी के पाने के लिए वे) व्यर्थ और विकार-युक्त (पापपूर्ण) कर्म कर रहे हैं । (मनुष्य) नाम को भुला कर लोभ के कारण मूल भी गँवा बैठता है , (इन्हीं कारणों से उसके सिर पर) धर्मराज (यमराज) के डंडे पड़ते हैं ॥ १० ॥

गुरु द्वारा (वे ही पुरुष) रामनाम का गुण गाते हैं , जिनके ऊपर प्रभु हरी कृपादृष्टि करता है । ऐसे पुरुष निर्मल , अपरम्पार और पूर्ण होते हैं । वे संसार में गुरु और गोविन्द हरी के ही स्वरूप हैं ॥ ११ ॥

(हे मनुष्य) , हरी का स्मरण कर , गुरु के वचनों को संभाल (स्मरण रख) और हरि-भक्तों की संगति में भाव (प्रेम) रख । हरी का भक्त ही गुरु है (और वह उसके) दरवाजे का प्रधान है । हे हरी , नानक ऐसे भक्तों के (चरणों की) रज है ॥ १२ ॥ ८ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मारु काफी, महला १, घर २

[६]

आवड अंअड बुंमणी किती मित्र करेड ।

साधन दोई न लहै बाढी किड धीरेड ॥१॥

मैडा मनु रता अपनड़े पिर नालि ।
 हउ धोलि घुमाई खनीऐ कोली हिक भोरी नवरि निहालि ॥१॥१॥१॥
 पेईअड़े डोहागणी साहुरड़े किउ जाउ ।
 मै गलि अउगण सुठड़ी बिनु पिर भूरि मराउ ॥२॥
 पेइअड़े पिर संमला साहुरड़े घरि वासु ।
 सुखि सर्वधि सोहागणी पिर पाइआ गुणतासु ॥३॥
 लेकु निहाली पट को कपड़ु अंगि बणाइ ।
 पिर सुली डोहागणी तिन खुली रैणि बिहाइ ॥
 किली बलउ साउड़े किली वेस करेउ ।
 पिर बिनु जोबनु धावि गइअसु बाढी भूरेवी भूरेउ ॥५॥
 सचे संदा सवड़ा सुरीऐ गुर बीबारि ।
 सचे सचा बैहणा नदरी नवरि पिआरि ॥६॥
 गिआनी अंजनु सच का डेखै डेखणाहार ।
 गुरमुखि बूझै जासीऐ हउमै गरबु निबारि ॥७॥
 तउ भावनि तउ जेहीआ मू जेहीआ किलीआह ।
 नानक नाह न बोछुड़ै तिन सचे रतड़ीआह ॥८॥१॥१॥६॥

विशेष : 'काफी' एक रागिनी है, जो निम्नलिखित पदों में 'माह' राग के साथ मिलाई गई है। इसमें 'लहंदा' भाषा के प्रयोग अधिक हुए हैं, 'बंजउ', 'डुंमणो', 'मंडा', 'डोहागणी', 'धीऐ'; आदि।

अर्थ : मैं दुःखिनी, (दुःखिनी, उदास) आती-जाती रहती हूँ और कितनों को हो (अपना) मित्र बनाती हूँ। स्त्री को पनाह नहीं मिलती; (वह प्रियतम से) बिछुड़ी हुई किस प्रकार धैर्य धारण करे ? ॥ १ ॥

मेरा मन अपने प्रियतम के साथ अनुरक्त हो गया है। हे प्रियतम, (यदि तू) रंचमात्र एक कृपादृष्टि से देख ले, तो मैं टुकड़े-टुकड़े होकर (तुझ पर) बलिहारी हो जाऊँ ॥१॥१॥१॥

मैं तो पोहर—नैहर में (तात्पर्य यह कि इस जन्म में) दुहागिनी (छूटी हुई) हूँ, (भला मैं) समुराल में (प्रियतम हरी के यहाँ) किस प्रकार जा सकती हूँ ? मुझ में बहुत से अवगुण हैं; (और उन अवगुणों से) मैं मोही गयी हूँ; बिना प्रियतम (हरि) के (मैं) दुखी होकर मर रही हूँ ॥ २ ॥

(यदि) प्रियतम (हरी) को नैहर (इस संसार) में स्मरण किया जाय, तो (जीवात्मा रूपी स्त्री का) समुराल में (हरी के) घर निवास हो जाता है और वह दुहागिनी गुणों के भाण्डार प्रियतम (हरी) को पाकर सुख से शयन करती है ॥ ३ ॥

स्त्री बाहे रेशम की तोशक और रजाई (का भले ही व्यवहार करे), (और अपने) शरीर को (सुन्दर) वस्त्रों से सुसज्जित कर ले, (किन्तु यदि वह अपने) प्रियतम की छोड़ी हुई है, तो वह दुहागिनी है (और उसकी आयु रूपी) रात्रि दुःख में ही न्यतीत होती है ॥ ४ ॥

(चाहे मैं) कितने ही स्वादो को चक्कूँ , कितने ही वेश बनाऊँ , (किन्तु) बिना प्रियतम के (मेरा) जीवन व्यर्थ चला जाता है ; (प्रियतम से) बिछुड़ी हुई (मैं) दुःख में ही दुखी होती हूँ ॥ ५ ॥

सच्चे का उपदेश गुरु के विचार द्वारा सुनो । सच्चे का (सत्संग रूपी) सच्चा स्थान है ; (प्रभु की) कृपादृष्टि हो , (तभी उसके) प्रेम में (मनुष्य लग पाता है) ॥ ६ ॥

ज्ञानी सत्य का श्रंजन लगाकर देखनेवाले (हरी) को देखता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (साधक) अहंकार और गर्व का निवारण करके (हरी को) सम्भत्ता और जानता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु, हरी) , जो तुझे अच्छे लगते हैं , वे तेरे ही समान हैं ; मेरे समान (तुच्छ) तो कितने ही हैं । हे नानक , (जिनसे) पति (परमात्मा) नहीं बिछुड़ता , वे ही सत्य (परमात्मा में ठीक-ठीक) अनुरक्त हैं ॥ ८ ॥ १ ॥ ९ ॥

[१०]

ना भैया भरजाईया ना से सतुड़ीग्राह ।

सचा साकु न तुटई गुरु भेले सहीग्राह ॥१॥

बलिहारी गुर आपरो सद बलिहारै जाउ ।

गुर बिनु एता भवि थकी गुरि पिरु भेलिसु दितम् मिलाइ ॥१॥१॥१॥

कुकी नानी मासोग्रा बेर जेठानडीग्राह ।

आबनि वंजनि ना रहनि पूर भरे पहीग्राह ॥२॥

मामे ते मामाखीग्रा भाहर बाप न माउ ॥

साथ लडे तिन नाठीग्रा भोड़ धणी दरिग्राउ ॥३॥

साचउ रंगि रंगावलो सखी हमारो कंतु ।

सचि विछोड़ा ना योऐ सो सतु रंगि रवंतु ॥४॥

सभे रुती बंढोग्रा जितु सचे सिउ नेहु ।

सा धन कंतु पछाणिग्रा सुखि सुतो निसि डेहु ॥५॥

पतराए कूके पातणी वंजहु ध्रुकि बिलाड़ि ।

पारि पबंदे डिटु मे सतिगुर बोहियि चाड़ि ॥६॥

हिकनी लदिग्रा हिकि लवि गए हिकि भारे भर नालि ।

जिनो सतु बर्राजिग्रा से सचे प्रभ नालि ॥७॥

ना हम बंगे आखीग्रह नुरा न बिसै कोइ ।

मानक हउमे मारीऐ सचे जेहड़ा सोइ ॥८॥१॥१०॥

(इन) बहनों , भोजाश्यों और सासुओं के बीच (कोई भी जीवात्मा रूपी स्त्री) नहीं रहती । सच्चा सम्बन्ध (तो परमात्मा का ही है) , (जो) कभी नहीं टूटता ; गुरु निश्चय ही (सही ही) (उससे) मिलाता है ॥ १ ॥

(मैं) अपने गुरु पर बलिहारी हूँ , उस पर सदैव बलिहारी हूँ । गुरु के बिना मैं इतना भटक कर थक गई , (परन्तु) कठ्ठे भी शरण नहीं मिली । गुरु ने (मुझे अपने साथ) मिला कर , (फिर) पति (परमात्मा) से मिला दिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥

कूपी , नानी , मौसी , देवर , जेठानी—ये सब सम्बन्धी आते-जाते रहते हैं , ये (स्थिर) नहीं रहते ; (ऐसे आनेजाने वाले) पथिकों से (मार्ग) भरा-पूरा रहता है , (अर्थात् वे संसार-चक्र में आते-जाते रहते हैं) ॥ २ ॥

मामा और मामी , भाई तथा माँ-बाप (इस संसार में कोई भी) नहीं रहते । (इन चार दिन के) पाहुनों के जो काफिले लदे हुए हैं , (वे सब नश्वर हैं) । (संसार रूपी) सागर में (आवागमन—जन्म-मरण की) यह बड़ी भीड़ बनी रहती है ॥ ३ ॥

हे सखी , हमारा कत (पति) सच्चे रंग का रसिक—रंगीला—मौजी है । (जो स्त्री) उस पति (परमात्मा) को प्यार से स्मरण करती है , उसका सत्य (परमात्मा) ने (कभी) बिछोह नहीं होता ॥ ४ ॥

जिस समय सत्य (हरे) से प्रेम होता है , (उस समय) सारी ऋतुएँ गुहावनी (सुन्दर) हो जाती हैं । स्त्री (अपने) कत को पहचान कर रान-दिन मुख-पूर्वक (उसके साथ) शयन करती है ॥ ५ ॥

(गुरु रूपी) मल्लाह पुकार कर कहता है कि दौड़ कर (इस संसार-सागर से) पार हो जाओ । मैंने सद्गुरु रूपी जहाज पर चढ़ कर (अपने को संसार-सागर के) पार पहुँचा हुआ देखा ॥ ६ ॥

कुछ लोग लद चुके हैं , (तात्पर्य यह कि यहाँ से जाने के लिए तैयार हो चुके हैं) , कुछ लोग लद कर चले गए हैं और कुछ लोग (पापों के) भारी बोझों के साथ हैं । (किन्तु) जिन्होंने सत्य (परमात्मा) का ही व्यापार किया है , (उन्हें न कहीं आना है और न कहीं जाना है) , वे सत्य प्रभु के साथ ही हैं ॥ ७ ॥

हम (अपने को) अछड़ा नहीं कहते हैं , (हमें) कोई भी (व्यक्ति) बुरा नहीं दिखाई पड़ता है । हे नानक , (जो व्यक्ति) अहंकार को मारता है , (वह) सत्य (परमात्मा) के ही समान होता है ॥ ८ ॥ २ ॥ १० ॥

[११]

ना जाणा मूरखु हे कोई ना जाणा सिआणा ।

सदा साहिब के रंगे राता अनबिनु नामु बख्शाणा ॥१॥

बाबा मूरखु हा नावै बलि जाउ ।

तू करता तू बाना बीना तेरे नामि तराउ ॥१॥

मूरखु सिआणा एकु हे एकु जोति दुइ नाउ ।

मूरखा सिरि मूरखु हे जि संने नाही नाउ ॥२॥

गुरदुआरे नाउ पाईऐ बिनु सतिगुर पले न पाइ ।

सतिगुर के भाणै मानि बसै ता अहिनिशि रहै लिब लाइ ॥३॥

राजं रंगं रूपं मालं जोबनु ते जूझारो ।
 हुकमी बाधे पासै खेलहि चउपड़ि एका सारो ॥४॥
 जगि चतुर सिआणा भरमि भुलाणा नाउ पंडित पड़हि गाबारी ।
 नाउ बिसारहि बेदु समालहि बिलु भूले लेखारी ॥५॥
 कलर खेती तरवर कंठे बागा पहिरहि कजलु भरै ।
 एहु संसार तिसै की कोठी जो पैसे सो गरबि जरै ॥६॥
 रयति राजे कहा सबाए दुहु अंतरि सो जासो ।
 कहत नानकु गुर सचे की पउडी रहसो प्रललु निबासो ॥७॥३॥११॥

(मैं) न तो किसी को मूर्ख समझता हूँ और न किसी को चतुर । साहब (हरी) के रंग में रंगा हुआ (मैं) सदैव (उसके) नाम का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

हे बाबा, हाय (मैं तो) मूर्ख हूँ । (किन्तु प्रभु के) नाम के ऊपर बलिहारी हूँ । (हे हरी), तू कर्ता है, तू जाता है, (तू) द्रष्टा है, तेरे नाम के द्वारा (मैं) तर जाऊंगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मूर्ख और चतुर (सयाने), (हरी की सृष्टि में) एक है; (कहने के लिए मूर्ख और चतुर) दो नाम हैं, (किन्तु वास्तव में उन दोनों के बीच परमात्मा की) एक ही ज्योति है । (मेरी दृष्टि में) जो (व्यक्ति) हरी का नाम नहीं मानता, वह मूर्खों का शिरोमणि है ॥ २ ॥

गुरु के द्वार पर नाम पाया जाता है, बिना सद्गुरु के (नाम रूपी धन) पत्ते नहीं पड़ता । सद्गुरु के आदेशानुसार, (जिस व्यक्ति के मन में) नाम बस जाता है, तो (वह) अहंनिश (उसी में) निव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाए रहता है ॥ ३ ॥

(जिनके) राज्य, सुख-सामग्री, रूप, सम्पत्ति और योजन है, (वे सब) जुआड़ी (के समान हैं), (क्योंकि जैसे जुआड़ी का धन क्षणभंगु है, वैसे यौवन, रूप, सम्पत्ति आदि भी क्षणभंगुर हैं) । (परमात्मा के) हुक्म में बंधे हुए (सभी प्राणी (सृष्टि रूपी) चौपड़ के खेल में (अपनी-अपनी) मुहूर्तों के गामे खेल रहे हैं ॥ ४ ॥

चतुर और सयाना संसार नाम को भुला कर भ्रम में भटक रहा है, (नाम के बिना) मूर्ख पण्डित (व्यर्थ ही शास्त्रादिक) अध्ययन करते हैं । (जो विद्वान्) नाम को भुला कर वेद को ही संभालते हैं (स्मरण करते हैं), वे (माया के) विष में भूल कर (व्यर्थ की बातें) लिखते हैं ॥ ५ ॥

(जिस प्रकार) बालू (अथवा) बंजर की खेती तथा नदी के किनारे के वृक्ष (क्षण-भंगुर हैं), (उसी प्रकार नाम के बिना अन्य साधन भी मिथ्या हैं), (संसार में) बहुत से लोग सफेद (कपड़े) तो पहनते हैं, (किन्तु उनके भीतर से) कालिख भड़ती है, (तात्पर्य यह कि बहुत से लोग बाह्य वेश तो साधु का बनाए रहते हैं, किन्तु भीतर से अत्यन्त क्लृप्त होते हैं) । यह संसार तृष्णा की कोठरी है, (जो व्यक्ति इसमें) प्रविष्ट होता है, वह अहंकार में जलता है ॥ ६ ॥

प्रजा और राजा सब कहाँ हैं ? (अर्थात् सभी क्षणभंगुर हैं); (जो व्यक्ति भी) द्वैत-भाव में है, वह चला जाता है, (नष्ट हो जाता है) । नानक कहते हैं कि गुरु ही सत्य (पर-

मात्मा को प्राप्ति को) सीढ़ी है, (उसी के उपदेश से यह अनुभव होता है कि) वह अलक्ष्य (हरी) ही सदैव रहता है ॥ ७ ॥ ३ ॥ ११ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मारु सोलहे, महला १,

[१]

साखा सलु सोई भवरु न कोई ।

जिनि सिरजो तिन ही कुनि गोई ॥

जिउ भाबै सिउ राखहु रहणा तुम सिउ किम्रा सुक^१ आई हे ।^२ ॥

आपि उपाए आपि लपाए । आपे सिरि सिरि धंधे लाए ॥

आपे बीचारी गुणकारी आपे मारगि लाई हे ॥२॥

आपे दाना आपे बीना । आपे आपु उपाइ पतीना ॥

आपे पउरु पाणी बैसंतरु आपे मेलि मिलाई हे ॥३॥

आपे ससि मूरा पूरो पूरा । आपे गिआनि घिआनि गुरु मूरा ॥

कालु जालु जमु जोहि न साकै साखे सिउ लिव लाई हे ॥४॥

आपे पुरलु आपे ही नारी । आपे पासा आपे सारी ॥

आपे पिड़ बाधी जमु खेलै आपे कीमति पाई हे ॥५॥

आपे भवरु फलु फलु तरवरु । आपे जलु थलु सागरु सरवरु ॥

आपे मछु कछु करणी करु तेरा रूपु न लखणा जाई हे ॥६॥

आपे दिनसु आपे ही रंगी । आपि पतीजै गुर की बैणी ॥

आदि जुगादि अनाहदि अनदिनु घटि घटि सबहु रजाई हे ॥७॥

आपे रतनु अनूप अमोलो । आपे परखे पूरो तोलो ॥

आपे किसही कसि बलसे आपे दे ले भाई हे ॥८॥

आपे धनलु आपे सरबाणा । आपे सुवड़ सखु सिआणा ॥

कहता बकता सुणता सोई आपे बणत बणाई हे ॥९॥

पउरु गुरु पाणी पित जाता । उबर संजोगी घरती माता ॥

रैणि दिनसु दुइ दाई दाइआ जमु खेलै खेलाई हे ॥१०॥

आपे मछुली आपे जाला । आपे गऊ आपे रखवाला ॥

सरब जोआ जणि जोति तुमारी जैसी प्रभि कुरमाई हे ॥११॥

आपे जोगी आपे भोगी । आपे रसीआ परम संजोगी ॥

आपे बेबाली निरंकारी निरभउ ताड़ी लाई हे ॥१२॥

जाखी बाणी तुम्हहि सनाली । जो बीसै सभ आवण जाखी ॥

तेई साह सखे बापारी सतिगुर ब्रूह बुन्हाई हे ॥१३॥

सबहु सुभाए सतिगुरु पूरा । सरब कला साचे भरपूरा ॥
 अकरिओ वेपरबाहु सवा तू ना तिसु तिलु न तमाई हे ॥१४॥
 कालु बिकालु भए देवाने । सबहु सहज रसु अंतरि माने ॥
 आपे सुकलि तृपति बर दाता भगति भाइ मनि भाई हे ॥१५॥
 आपि निरालमु गुरगम गिघाना । जो बीसे तुफ माहि समाना ॥
 नानकु नीनु भिलिघा दरि जाचे मै बीजे नामु बडाई हे ॥१६॥१॥

विशेष : सोलह पदों वाले शब्द को 'सोलहे' कहा गया है, पर सोलहे १५, १७ तथा २१ पदों के भी आए हैं ।

अर्थ : वही (एक) सत्यस्वरूप (हरी) ही सत्य हैं; (उसके अतिरिक्त) और कोई दूसरा नहीं है । जिस (प्रभु) ने (यह सृष्टि) रची है, वही फिर इसका नाश करता है । (हे हरी), तुझे जैसा लगे, वैसे मुझे रख, (और मुझे भी वैसे ही) रहना है; तुझमें क्या उज़र की जाय ? ॥ १ ॥

(प्रभु) आप ही (सृष्टि) उत्पन्न करता है, आप ही (उसका) संहार करता है और आप ही प्रत्येक प्राणी को धंधे में लगता है । (प्रभु) आप ही विचारवान् और गुणवान् है और आप ही (भटके हुए प्राणियों को) मार्ग पर लगाता है ॥ २ ॥

(प्रभु) आप ही जाना है, आप ही द्रष्टा है और आप ही अपने को (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न करके प्रसन्न होता है । (वह) आप ही पवन, जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्व) है और आप ही (इन पंच तत्त्वों का) मेल मिला कर (प्राणियों के शरीर का निर्माण करता है) ॥ ३ ॥

(वह) परिपूर्ण (हरी) आप ही चन्द्रमा है और आप ही सूर्य है । आप ही ज्ञान-व्यान है और आप ही शूरवीर गुरु है । (जो व्यक्ति) सच्चे (परमात्मा) से जिव लगाता है, (उसे) यमराज के काल का जाल दुःख नहीं दे सकता ॥ ४ ॥

(हरी) आप ही पुरुष है और आप ही नारी है । आप ही (संसार रूपी) चौपट है और आप ही (जीव रूपी) मुहर है । (हे प्रभु), तू ने यह खेल रच दिया है और (सारा) जगत् इसी में खेल रहा है और तू स्वयं ही इसकी कीमत का (अनुमान करता है) ॥ ५ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही भँवर है, फूल, फल है और वृक्ष है । (तू) आप ही जल, बल, सागर और सरोवर है । आप ही मच्छ और कच्छप है, आप ही करण और कारण है । (हे हरी), तेरा रूप नहीं देखा जा सकता है ॥ ६ ॥

(हे हरी, तू) आप ही दिन है और आप ही रात है । गुरु के बच्चों में (तू शिष्य के रूप में) आप ही प्रसन्न होता है । आदि काल तथा युग-युगान्तरो से प्रतिदिन और निरन्तर घट-घट में (प्राणी-प्राणी में) तेरा ही हुक्म और मरजी बरत रही है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही अनुपम और अमूल्य रत्न है और आप ही (उस अनुपम रत्न को) पुरो तोल है परखनेवाला (जोहरी) है । (तू) आप ही (अपनी) कसौटी पर कस कर किसी-किसी (गुरुमुख रूपी) रत्न को बरखा देता है, (तात्पर्य यह कि मुक्त कर देता है) । हे भाई, (प्रभु) आप ही देता है और आप ही लेता है ॥ ८ ॥

(हे हरी, तू) आप ही धनुष है और आप ही बाण चलानेवाला है । (तू) आप ही सुन्दर स्वरूपवाला और चतुर है । (तू आप ही) कथन करनेवाला, वक्ता और श्रोता है और आप ही (अपने को) बनानेवाला है ॥ ६ ॥

पवन (सृष्टि भर का) गुरु है और जल ही मानो पिता है; अपने उदर के संयोग से (सभी को उत्पन्न करने से) पृथ्वी ही माता है, (पृथ्वी माता इसलिये कहलाती है कि यह भी माता के समान सभी वस्तुओं को अपने उदर में रखती है और उदर से उत्पन्न करती है) । रात्रि और दिन दोनों ही दाई और दायी हैं [दायी=दाई का पति] । सारा जगत् इसी (विराट् खेल में) खेलता रहता है ॥ १० ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही मछली है और आप ही (उसे फँसानेवाला) जाल है । (तू) आप ही गाय और आप ही (उसकी) रक्षा करनेवाला (खाला) है । (हे निरंकार हृगे), समस्त जीवां प्रार (सारे) जगत् में तेरी ही ज्योति (व्याप्त) है । (हे स्वामी, तेरी) आज्ञा (सभी के ऊपर) है ॥ ११ ॥

(सृष्टि में निहित रहने के कारण, हे प्रभु, तू) आप ही योगी है, (और जीव रूपी भोक्ता के अन्तर्गत विराजमान होने से) तू भोगी भी है । आप ही संयोग करानेवाला परम रसिक भी है । (हे स्वामी, तू) आप ही बाणी से रहित निरंकार-देव, और निर्भयस्वरूप है, तू आप ही अपने ध्यान में (निमग्न है), (तात्पर्य यह कि स्वयं ही अपनी महिमा में प्रतिष्ठित) है ॥ १२ ॥

(हे प्रभु, चारों) खानियों के जीव—(अंडज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज) (और उनकी) बोलियां तुम में ही समाहित हो जाती है । (इस सृष्टि में तुम छोड़कर) जो भी (वस्तुएँ) दिखाई पड़ती है, (सभी) जाने-जाने वाली हैं, (नश्वर हैं) । जिन्हें मद्गुरु ने समझ दी है, (वे ही) साह (परमात्मा) के सच्चे व्यापारी हैं ॥ १३ ॥

पूर्ण मद्गुरु शब्द के द्वारा (अपने शिष्य को यह) समझा देता है कि सच्चा परिपूर्ण (हरी) समस्त कलाओं (शक्तियों) में युक्त है । (हे स्वामी) तू पहुँच के बाहर है और बेपरवाह है, तुम में तिल भर भी लालच अथवा इच्छा नहीं है ॥ १४ ॥

(जो साधक) शब्द—नाम रूपी सहज रस को अपने अन्तर्गत मानते हैं, (तात्पर्य यह कि नाम का रसास्वादन करते हैं), उनके लिए मरण और जन्म (काल-विकाल) दीवाने हो जाते हैं, (भाव यह कि उनके जन्म-मरण समाप्त हो जाते हैं) । (हे प्रभु, तू) आप ही मुक्ति-तृप्ति के बरों को देनेवाला है ; मन को अच्छी लगनेवाली प्रेमा भक्ति (को भी तू ही प्रदान करता है) ॥ १५ ॥

(हे हरी) तू आप निर्लेप हैं ; (किन्तु) गुरु-गम्य ज्ञान से (यह बोध होता है कि) जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, (वह) तुम में ही समा जाता है । नीच नानक, तेरे दरवाजे पर यही भीख माँगता है कि मुझे (अपने) नाम की महत्ता प्रदान कर ॥ १६ ॥ १ ॥

[२]

आपे भरती पडसु अकासं । आपे साचे गुण परगास ।

जती सती संतोखी आपे आपे कार कभाई हे ॥१॥

जिसु करणा सो करि करि बैलै । कोइ न भेटै साखे लेलै ॥
 आपे करे कराए आपे आपे दे वडिआई हे ॥२॥
 पंच चोर चंचल बिनु जालहि । पर घर जोहहि घर नही भालहि ॥
 काइआ नगरु दहे दहि देरी बिनु सबवे पति जाई हे ॥३॥
 गुर ते बूझै त्रिभवणु सूझै । मनसा मारि मने सिउ लूझै ॥
 जो तुधु सेवहि से तुधु हो जेहे निरभउ बाल सखाई हे ॥४॥
 आपे सुरगु मछु पइआला । आपे जोति सरूपी बाला ॥
 जटा बिकट बिकराल सरूपी रूपु न रेखिआ काई हे ॥५॥
 वेद कतेबो भेदु न जाता । ना तिसु मात पिता सुत आता ॥
 सगले सैल उपाइ समाए अलखु न लखणा जाई हे ॥६॥
 करि करि थाकी मोत घनेरे । कोइ न काटै अक्खणु मेरे ॥
 सुरि नर नाथु साहिबु सभना सिरि भाइ मिलै भउ जाई हे ॥७॥
 भूले चूके मारगि पावहि । आपि भुलाइ तू है समभावहि ॥
 बिनु नावै मै अक्खरु न दोसै नावहु गति मिति पाई हे ॥८॥
 गंगा जमुना केल केदारा । कासो कांती पुरी दुआरा ॥
 गंगा सागरु बेणी संगसु अठसठि अंकि समाई हे ॥९॥
 आपे सिध साधिक बीचारी । आपे राजनु पंचा कारी ॥
 तखति बहै अदली प्रभु आपे भरसु भेदु भउ जाई हे ॥१०॥
 आपे काजी आपे मुला । आपि अमुलु न कबहू भुला ॥
 आपे मिहर दइआपति दाता ना किसै को बैराई हे ॥११॥
 जिसु बखसे तिसु दे वडिआई । सभस दाता तिसु न तमाई ॥
 भरपुरि धारि रहिआ निहकेवलु गुपतु प्रगटु सभ ठाई हे ॥१२॥
 किआ सालाही अगम अपारै । साखे सिरजणहार मुरारै ॥
 जिसनो नदरि करे तिसु मेले मेलि मिलै मेलारै हे ॥१३॥
 ब्रह्मा बिसन महसु बुआरै । ऊभे सेवहि अलख अपारै ॥
 होर केतो दरि दोसै बिललादी मै गणत न आवै काई हे ॥१४॥
 साची कीरति साची बाली । होर न दोसै बेद पुराणी ॥
 पूंजी साबु सखे गुरु गावा मै घर होर न काई हे ॥१५॥
 जुगु जुगु साचा है भी होसी । कउगु न मूआ कउगु न मरसी ॥
 नानक नोचु कहै बेनंती दरि देखहु लिख लाई हे ॥१६॥२॥

(हे प्रभु, तू) आप ही पृथ्वी है (और आप ही उस पृथ्वी को धारण करने वाला धर्म रूपी) बैल है, (आप ही) आकाश है । आप ही सब्बे गुणोवाला और प्रकाश-स्वरूप है । (तू), आप ही यती; सत्वगुणी और संतोषी है और आप ही (सारे) कार्यों को करता है ॥ १ ॥

(जो हरी के द्वारा किया हुआ सृष्टि-रूपी) कार्य है, उसे रच-रच कर, (हरी स्वयं उसकी) देखभाल करता है । (उस हरी की) सच्ची लिखावट को कोई भी

(व्यक्ति) मेट नहीं सकता । (प्रभु) स्वयं ही करता है, स्वयं ही (जीवों को प्रेरित करके उनके द्वारा) कराता है और स्वयं ही प्राणियों को बड़ाई प्रदान करता है ॥ २ ॥

(काम, क्रोध, मद, लोभ और ग्रहंकार—ये) पाँचों चोर चंचल चित्त को (और भी) चलायमान करते हैं । (ये पाँचों चित्त को अपने साथ मिलाकर) दूसरों का घर ताकते हैं, किन्तु अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूप) को नहीं देखते । यह शरीर रूपी नगर ढह ढह कर ढेर हो जाता है ; बिना शब्द—नाम के अनुभव किए (प्राणी की) प्रतिष्ठा चली जाती है ॥ ३ ॥

गुरु से समझने पर (शिष्य को) त्रिभुवन की समझ आ जाती है । (अतः, शिष्य को) वासनाओं—इच्छाओं ग्रथवा संकल्पों को वशीभूत करके मन से ही युद्ध करना चाहिए । (हे प्रभु) जो (खोग) तेरी सेवा करते हैं, वे तेरे ही समान हैं ; हे निर्भय (हरी, तू) बाल्यावस्था से ही उनका मित्र है ॥ ४ ॥

(हे प्रभु, तू) आप ही स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक है ; आप ही ज्योति है और आप ही रूपवान् नवयुवक है ; विकट (भयानक) जटाओंवाला और विकराल स्वरूपवाला भी (तू) आप ही है, (साथ ही, हे हरी) न तेरा कोई रूप है और न तेरी कोई रेखा है ; (अतएव हरी सगुण और निर्गुण दोनों आप ही हैं) ॥ ५ ॥

वेद और कर्त्तव्य (मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ) (हरी का) भेद नहीं जान सके । (उस हरी के) न कोई माता-पिता है, न पुत्र है और न भाई हैं । सारे पर्वतों को उत्पन्न करके (उन्हें फिर अपने में) लीन कर लेता है ; वह अलक्ष्य हरी (इन चर्म-वक्षुओं से) नहीं देखा जा सकता ॥ ६ ॥

(मैं) बहुत से मित्र बना-बना कर धक गयी ; किन्तु मेरे अवगुणों को कोई भी नहीं काट सका, (दूर कर सका) ; जो साहब देवता, मनुष्य और नाथ आदि सभी के सिर पर है, (उन्हीं से) प्रेमपूर्वक मिलने में (संसार का) भय दूर हो जाता है ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), भूलें-भटकों को (तू ही) (टीक) मार्ग पर लगाता है । (तू) स्वयं ही (प्राणियों को मार्ग से) भटकाता है, (और फिर तू ही उन्हें मार्ग भी) बताता है । मुझे तो नाम के बिना और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता । नाम से ही गति-मिति पाई जाती है ॥ ८ ॥

गंगा, यमुना (आदि पवित्र नदियाँ), (श्री कृष्ण की) श्रीडाभूमि (वृन्दावन), केदारनाथ, काशी, कांची, जगन्नाथपुरी, द्वारिकापुरी, गंगासागर, त्रिवेणी (गंगा, यमुना और सरस्वती) का संगम (प्रयागराज) (तथा अन्य) अड़सठ तीर्थस्थान, (हरी के ही) अंक में समाए हैं ।

[विशेष : 'कांती' को कुछ सिक्ख विद्वानों ने 'मधुरापुरी' बतलाया है; किन्तु मेरी समझ में इसका अभिप्राय 'कांची' (कांजीवरम्) से है, जो मद्रास प्रान्त में है । यह शैवों और वैष्णवों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है । 'कांतीपुरा' नेपाल राज्य का भी प्रसिद्ध स्थान है] ॥ ९ ॥

(हे हरी, तू) आप ही सिद्ध, साधक और विचारवान् है । आप ही राजा और पंचायत का कार्य करनेवाला—न्याय करनेवाला है (तात्पर्य यह कि ईश्वर आप ही न्यायकारी हैं) । न्यायकर्त्ता (हरी ही) सिंहासन पर बैठ कर (न्याय करता है) ; (हे प्रभु, तेरा साक्षात्कार करने पर साधकों के सारे) भ्रम, भेद और भय दूर हो जाते हैं ॥ १० ॥

(हे स्वामी, तू) आप ही काजी है (और आप ही) मुल्ला है । (तू) आप ही न भूल करनेवाला है और (तूने) कभी भूल नहीं की है । (हे प्रभु, तू) आप ही कृपा है, दयापति है और दाता है ; (तू) किसी का भी बैरी नहीं है ॥ ११ ॥

(हे प्रभु, तू) (जिसके ऊपर) कृपा करता है, उसे बड़ाई प्रदान करता है । (तू) सभी का दाता है और (तुझमें) तिल मात्र भी लालच नहीं है । हे निष्केवल (निर्लेप हरी), (तूने सभीको) पूर्णरूप से धारण किया है ; (तू) सभी स्वानों में गुप्त और प्रकट रूप से (विराजमान) है ॥ १२ ॥

सच्चे सिरजनहार मुरारी, अगम और अपार (परमात्मा की) क्या प्रशंसा की जाय ? जिसके ऊपर (वह) कृपादृष्टि करता है, (उसे गुरु से) मेल मिलाता है, (तत्पश्चात् उसके माध्यम से स्वयं अपने) मेल में मिला लेता है ॥ १३ ॥

(हे प्रभु), ब्रह्मा, विष्णु, महेश तेरे दरवाजे पर खड़े होकर (तुझ) अनख, अपार की सेवा करते हैं । और कितनी ही (शक्तियाँ) तेरे दरवाजे पर बिलखती हुई दिवनाई पड़ती हैं, (उनमें से) किसी की गणना मुझे नहीं आ सकती, (अर्थात्, वे असंख्य हैं और उनकी गणना नहीं हो सकती) ॥ १४ ॥

वेदों और पुराणों में (उस प्रभु की) सच्ची कीर्ति और सच्ची वाणी है, (इसके अतिरिक्त) और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता । (हरी ही) सच्ची पूंजी है ; (इसलिए मैं उस) सच्चे (हरी) का गुणगान करता हूँ, मुझे तो और कोई आसरा (आश्रय) नहीं है ॥ १५ ॥

युग-युगान्तरो में (वही) सच्चा (हरी) (वर्तमान काल में) है, (भूतकाल में) था (और भविष्य में) रहेगा । (उस अविनाशी परमात्मा के अतिरिक्त इस दृश्यमान जगत् में) कोन (ऐसा जड़ अथवा चेतन है) जो नहीं मरा अथवा जो नहीं मरेगा ? (परमात्मा के अतिरिक्त इस जगत् में सभी कुछ नाशवान है) । नीच नानक एक विनती करता है (कि हे मनुष्य), निब (एकनिष्ठ ध्यान) लगाकर (उस हरी का) दरवाजा देख, (जिममें तेरे सारे दुःख नष्ट हो जायेंगे और अपार सुख होगा) ॥ १६ ॥ २ ॥

[३]

दूजी दुरमति अंनो बोली । काम क्रोध की कची चोली ॥

घरि वरु सहजु न जाएँ छोहरि बिनु पिर नीव न पाई हे ॥ १ ॥

अंतरि अगनि जले भड़कारे । मनमुलु तके कुंडा चारे ॥

बिनु सतिगुर सेवे किउ सुलु पाईऐ साचे हापि बडाई हे ॥ २ ॥

कामु क्रोधु अहंकारु निवारे । तसकर पंच सबदि संधारे ॥

गिअन खड़गु लै मन सिउ लूभै मनसा मनहि समाई हे ॥ ३ ॥

मा की रकतु पिता बिदु धारा । मूरति मूरति करि आपारा ॥

जोति दाति जेती सभ तेरी तू करता सभ ठाई हे ॥ ४ ॥

तुभ ही कीआ जंमए मरएण । गुर ते समझ पड़ी किआ इरएण ॥

तू वइआलु वइआ करि बेलाहि दुलु वरदु सरोरदु जाई हे ॥ ५ ॥

निज घरि बैसि रहे भउ खाइआ । पावत राखे ठाकि रहाइआ ॥

कमल बिगास हर सर सुभर आतम रामु सखाई हे ॥ ६ ॥

मरगु लिखाइ मंडल महि आए । किउ रहोए चलणा परयाए ॥
 सचा अमरु सचे अमरापुरि सा सचु मिले बडाई हे ॥७॥
 आपि उपाइआ जगनु सबाइआ । जिनि सिरिआ तिनि धंधे लाइआ ॥
 सचै ऊपरि अवर न दीसै साचे कोमति पाई हे ॥८॥
 ऐथै गोइलड़ा दिन चारे । खेसु तमामा पुंछुकारे ॥
 बाजी खेलि गए बाजीगर जिउ निसि सुपनै भखलाई हे ॥९॥
 तिन कउ तखति मिली वडिआई । निरभउ भनि वसिआ लिव लाई ॥
 खंडी ब्रह्मंडी पाताली पुरीई त्रिभवण ताड़ी लाई हे ॥१०॥
 साची नगरी तखतु सचावा । गुरमुखि साचु मिलै सुखु पावा ॥
 साचे साचै तखति बडाई हउमै गणत गवाई हे ॥११॥
 गणत गणीऐ सहसा जीऐ किउ सुखु पावै दूऐ तीऐ ॥
 निरमलु एकु निरंजनु दाता गुर पूरे ते पति पाई हे ॥१२॥
 जुगि जुगि विरली गुरमुखि जाता । साचा रवि रहिआ मनु राता ॥
 तिस की ओट गही सुखु पाइआ मनि तनि मेलु न काई हे ॥१३॥
 जीभ रसाइणि साचै राती । हरि प्रभु संगी भउ न भराती ॥
 खवर खेत रजे गुर बाणी जोतो जोति मिलाई हे ॥१४॥
 रखि रखि पैर धरे पउ धरणा । जत कत देखउ तेरो सरणा ॥
 दुख सुख देहि तू है मनि भावहि तुझी सिउ वणि आई हे ॥१५॥
 अंत कालि को बेली नाही । गुरमुखि जाता तुधु सालाही ॥
 नानक नामि रते बैरागी निजघरि ताड़ी लाई हे ॥१६॥३॥

द्वंदभाव और दुर्बद्धि के कारण (जीवात्मा रूपी स्त्री) अंधी और बौली (बनकर फिरती है) । अपने काम क्रोध की कच्ची (नखर) चोली पहनी है । अपने घर (शरीर) के भीतर ही पति (परमात्मा) और (उसका) सहज प्रेम स्थित है , (पर वह) छोकरी (भोलीभाली—अनजान लड़की) उसे नहीं जानती ; बिना प्रियतम के उसे नोद नहीं लग सकती ॥ १ ॥

(मनमुख के) भीतर (तृष्णा की भयंकर) अग्नि ' भड भड ' करके जल रही है ; मनमुख (तृष्णा से) चारो दिशाओ में ताकता फिरता है , (जिससे उसे सुख प्राप्त हो) । (किन्तु) बिना सद्गुरु की सेवा किए (उसे) मुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? सच्चे (गुरु अथवा परमात्मा) के हाथ में ही सारी बडाइयाँ हैं ॥ २ ॥

(जो साधक) काम, क्रोध और अहंकार का निवारण करता है , शब्द—नाम के द्वारा पाँच चोरो—(काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार)—का संहार करता है और ज्ञान की तलवार लेकर मन से खूँझता है , (उसकी सारी) वासनाएँ—कामनाएँ (उसके ज्योतिर्मय) मन में लीन हो जाती हैं ॥ ३ ॥

(हे हरी), माता के रज एवं पिता के वीर्य की धार से (तू ने) अनन्त आकारों (मूर्ति सुरति) का निर्माण किया है । जितने भी प्रकाश और दान हैं, सब तेरे ही हैं, तू सभी स्थानों का निर्माता (रचयिता) है ॥ ४ ॥

(हे स्वामी), तू ने ही जन्म और मरण बनाए हैं ; (मुझे) गुरु मे यह समझ आई (कि तू ही सब कुछ है) ; (अतएव) अब क्या डरा जाय ? हे दयालु (हरी), तू, दया (की दृष्टि से) मेरी ओर देख ले, (जिससे मेरे) शरीर के दुःख और दरिद्र नष्ट हो जायें ॥ ५ ॥

आने (आत्मस्वरूप) घर में बैठ जाने में, भय समाप्त हो गया । दौड़ते मन को (मैंने) रोका (और उसे रोकर) असली स्वरूप में ठिका दिया । (इसी कारण, मेरा हृदय-रूपी) कमल विकसित हो गया, (इन्द्रिय रूपी) सरोवर हरे-भरे होकर प्रेम से लबालब भर गए, (तात्पर्य यह कि पूर्ण आनन्द प्राप्त हो गया) ॥ ६ ॥

(मनुष्य परमात्मा के यहाँ) मरना लिखा कर (भूमण्डल) (मर्त्यलोक) में आता है । (अतएव, वह यहाँ सदैव) किस प्रकार रह सकता है ? (अन्त में तो) परलोक जाना ही है । सच्चे (लोग) अमर (परमात्मा) की सच्ची अमरपुरी में (जाते हैं) ; वह सत्य स्वरूप (हरी) उन्हें मिलता है, (यही उनकी) बड़ाई है ॥ ७ ॥

(हरी ने) आप ही समस्त जगत् को उत्पन्न किया है । जिस (हरी ने) सब को रचा है, उसी ने (सबको अपने अपने) धंधे में भी लगाया है । सत्य (हरी) के ऊपर (कोई) और (दूसरा) नहीं दिखाई पड़ता, सच्चे (पुरुषों) के द्वारा ही उसकी कीमत पाई जाती है ॥ ८ ॥

इस (संगार रूपी) चारमाह में चार दिन रहता है । यहाँ अंधकार (अज्ञान) में मारे खेल-उमाड़े होते हैं । (जीवात्मा रूपी) बाजीगर अपनी अपनी बाजी खेल कर चले गये, जिन प्रकार रात्रि की स्वप्नावस्था में (मनुष्य) बड़बड़ाता है, (पर उसकी वास्तविकता नहीं होती), (उसी प्रकार संसार के समस्त व्यवहार और क्रिया-कलाप भी मिथ्या ही हैं) ॥ ९ ॥

(जिन्होंने) लिव लगा कर निर्भय हरी को (अपने) मन में बसा लिया है, उन्हें (हरी के) तल्ल (सिंहासन) पर बड़ाई प्राप्त होती है । (ऐसे सिद्ध पुरुष सदैव यही देखते हैं कि) (हरी ही) खण्डो, ब्रह्मांडो, पाताल तथा त्रिभुवन की (समस्त) पुरियों में तांडी (ध्यान) लगाकर (बैठा है), (अर्थात् हरी ही सर्वत्र व्याप्त है) ॥ १० ॥

(शरीर रूपी) सच्ची नगरी में (हृदय रूपी) सिंहासन पर सत्यस्वरूप (हरी) का (निवास है) । गुरु द्वारा (यह) सत्य (हरी) मिलता है, (जिसमें) सुख की प्राप्ति होती है । सच्चे (व्यक्तियों) को (हरी के) सच्चे तल्ल की बड़ाई प्राप्त होती है, (ऐसे व्यक्ति) अहंकार की गणना को नष्ट कर देते हैं, (तात्पर्य यह है कि वे लोग परमात्मा का साक्षात्कार करके अपने समस्त अहंभाव को मिटा देते हैं) ॥ ११ ॥

(मनमुख अहंकार में अपने कर्मों की) गिनती गिनता रहता है और संशय में जोखित रहता है । (वह) त्रिगुणात्मक (माया के) द्वैतभाव में कैसे मुक्त पा सकता है ? एक (हरी ही) निर्मल, निरंजन और दाता है ; पूर्ण गुरु से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

युग-युगान्तरों में किसी बिरले (साधक) ने ही गुरु के द्वारा (सत्यस्वरूप हरी को) जाना है । (जो) सत्य (हरी सर्वत्र) रम रहा है, (उसमें मेरा) मन अनुरक्त हो गया है । (मैंने) उस (प्रभु की) शरण ग्रहण की, (जिससे मुझे परम) सुख प्राप्त हुआ (और मेरे) तन और मन में किसी प्रकार की मेल नहीं रह गई ॥ १३ ॥

(मेरी) जीभ सच्चे (राम -) - रसायन में अनुरक्त है । (मुझे) प्रभु, हरी संगी (मिल गया है, जिससे मुझमें) भय और भ्रम नहीं (रह गए हैं) । मेरे कान गुरुवाणी की ध्वनि से तृप्त हो गए हैं ; (और मुझ जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की अखण्ड और सर्व व्यापिनी) ज्योति से मिल गई है ॥ १४ ॥

(मैंने इस) पृथ्वी पर सोच सोच कर पैर रखे हैं, (अर्थात्, विचारपूर्वक जीवन व्यतीत किए हैं) । (मैं) जहाँ कहीं भी देखता हूँ, (तेरी ही) शरण (खोजता हूँ), (तात्पर्य यह है कि मैं जहाँ भी रहता हूँ, तेरी ही शरण पकड़ता हूँ) । (हे प्रभु, तू चाहे मुझे) दुःख दे, (और चाहे) सुख दे, (किन्तु दोनों ही दशाओं में) तू (मेरे) मन को अच्छा लगता है । (मेरी) तुझ ही से बनती है ॥ १५ ॥

(हे प्रभु) अंतकाल में (तुझे छोड़कर) कोई (अन्य) सहायक नहीं होता । गुरु की शिक्षा से (तुझे) जान कर (मैंने) तेरी स्तुति की । हे नानक, पैरागी (त्यागी, विरक्त) ने (तेरे) नाम में अनुरक्त हो कर, अपने (वास्तविक) घर में (आत्मस्वरूप में) ध्यान लगाया है ॥ १६ ॥ ३ ॥

[४]

आदि जुगादी अपर अपारे । आदि निरंजन खसम हमारे ॥

साचे जोग जुगति बीचारी साचे ताड़ी लाई हे ॥१॥

केतड़िआ जुग धुं धूकारै । ताड़ी लाई सिरजणहारै ॥

सनु नामु सची बडिआई साचे तखति बडाई हे ॥२॥

सतनुगि सतु संतोखु सरीरा । सति सति बरतै गहिर गंभीरा ॥

सचा साहिबु सनु परखै साचे हुकमि चलाई हे ॥३॥

सत संतोखी सतिगुरु पूरा । गुर का सबदु मने सो सूरा ॥

साची दरगह सानु निवासा मानै हुकमु रजाई हे ॥४॥

सतनुगि साचु कहै सनु कोई । सचि बरतै साचा सोई ॥

मनि मुखि साचु भरमु भउ भंजनु गुरमुखि साचु सखाई हे ॥५॥

जेतै धरम कला इक लूकी । तीनि चरण इक बुबिधा लूकी ॥

गुरमुखि होबै सु साचु बखारै मनमुखि पचै अवाई हे ॥६॥

मनमुखि कबे न दरगह सीकै । बिनु सबदै किउ अंतर रीकै ॥

बाधे आबहि बाधे जाबहि सोभी बूझ न काई हे ॥७॥

बडिआ दुआपरि अफी होई । गुरमुखि बिरला चीनै कोई ॥

बुई पग धरमु धरे धरणीधर गुरमुखि साचु तिपाई हे ॥८॥

राजे घरमु करहि परबाए । आसा बंधे दान कराए ॥
 राम नाम बिनु मुक्ति न होई थाके करम कमाई हे ॥६॥
 करम घरम करि मुक्ति मंगाही । मुक्ति पदारथ सबदि सलाही ॥
 बिनु गुर सबदे मुक्ति न होई परपंचु करि भरमाई हे ॥१०॥
 माइआ ममता छोडो न जाई । से छूटे सच्चु कार कमाई ।
 अहिनिस्ति भगति रते बीचारी ठाकुर सिउ बरिण घ्राई हे ॥११॥
 इकि जप तप करि करि तोरथ नाबहि । जिउ तुषु भावै तिवै खलाबहि ॥
 हठि निग्रहि अपतीजु न भोजै बिनु हरि गुर किनि पति पाई हे ॥१२॥
 कलीकाल महि इक कल राखी । बिनु गुर पूरे किनै न भाखी ॥
 मनमुखि कूडु बरतै वरतारा बिनु सतिगुर भरसु न जाई हे ॥१३॥
 सतिगुर वेपरबाहु सिरंदा । ना जम काणि न छंदा बंदा ॥
 जो तिसु सेवे सो अविनासी ना तिसु काल संताई हे ॥१४॥
 गुर महि आपु रलिआ करतारे । गुरमुखि कोटि असंख उधारे ॥
 सरब जोआ जग जीवनु दाता निरभउ मैसु न काई हे ॥१५॥
 सगले जाचहि गुर भंडारी । आपि निरंजनु अलख अपारो ।
 नानकु साचु कहै प्रभ जाचै मे दीजै साचु रजाई हे ॥१६॥४॥

हे आदिकालीन और युग-युगान्तरो (मे विराजमान, हरी), हे सब से परे और अपार (प्रभु), हे आदि निरंजन (और) हमारे स्वामी, हे सच्चे, तुझमे युक्त होने की युक्ति (मैं) विचारता हूं और तुझ सच्चे से ताड़ी लगाता हूं, (ध्यान जोड़ता हूं) ॥ १ ॥

सिरजनहार (हरी) ने कितने ही युगों के घनघोर अंधकार में शून्य-समाधि लगाई, [तात्पर्य यह कि सृष्टि-रचना के पूर्व अनन्त युगों तक घनघोर अन्धकार था । उस समय निर्गुण हरी अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित था] । (हरी के) सच्चे नाम की सच्ची महत्ता है और (उसके) सच्चे सिंहासन की भी सच्ची बड़ाई है ॥ २ ॥

(शून्य समाधि के पश्चात्, फिर अपने सगुण रूप के अन्तर्गत हरी ने युगों का निर्माण किया । सतयुग का वर्णन करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं कि)—सतयुग के शरीरों में, (तात्पर्य यह कि मनुष्यों में) सत् और सन्तोष (की प्रमुखता थी) । (लोग) गहरे और गंभीर होते थे और सत्य ही सत्य का व्यवहार करते थे । सच्चा साहब (हरी) (उनकी) सच्चाई परख कर (अपना) सच्चा हुक्म चलाता था ॥ ३ ॥

पूर्ण सद्गुरु सच्चा और सन्तोषी होता था । जो (व्यक्ति) गुरु की शिक्षा मानता था, वह शूरवीर होता था । (सतयुग के लोग) सच्चे दरबार में सच्चे (हरी) का निवास (समझ कर), (उसका) हुक्म और मर्जी मानते थे ॥ ४ ॥

सतयुग में सभी लोग सत्य बोलते थे (और यह ध्रुव नियम है कि) (जो कोई) सत्य का व्यवहार करता है, (वह) सच्चा ही होता है । (उस समय मनुष्यों के) मन और मुख

(दोनों) में सत्य होता था, (सत्य का यह व्यवहार उनके) भ्रम और भय को दूर कर देता था (और इस प्रकार के) गुरुमुखों (सत्यवादी पुरुषों) का सत्य ही सहायक होता था ॥ ५ ॥

त्रेतायुग में (धर्म रूपी बैल के चार पैरों में से एक पैर टूट गया), धर्म की एक कला (शक्ति) का ह्रास हो गया। उस युग में (धर्म के चार पैरों में से) तीन पैर रह गए; (धर्म के एक पैर का स्थान द्विविधा ने ले लिया और) द्विविधा प्रबल पड़ गई। (यदि) गुरुमुख (सत्यवादी पुरुष) हो, (तो) वह सत्य (परमात्मा) का वर्णन करता है; मनमुख तो व्यर्थ की बातों में पचता है—दग्ध होता है ॥ ६ ॥

मनमुख (हरी के) दरबार में कभी नहीं सफल होता है। बिना (गुरु के) शब्द के श्रान्तःकरण किस प्रकार प्रसन्न हो? (ऐसे मनमुख व्यक्ति) बंधे ही आते हैं और बंधे ही चले जाते हैं, (उन्हें) कोई समझ-बूझ नहीं होती है ॥ ७ ॥

द्वापरयुग में (धर्म की दूसरी कला) दया (के चले जाने पर) धर्म की आधी शक्ति रह जाती है, (क्योंकि चार कलाओं में से सत्य और दया का ह्रास हो जाता है)। गुरु की शिक्षा द्वारा कोई विरला ही (साधक इस रहस्य को) समझता है। (इस प्रकार, द्वापरयुग में) पृथ्वी को धारण करनेवाले धर्म (रूपी बैल) के (केवल) दो चरण रह जाते हैं, गुरु के द्वारा ही उसके स्थान पर सत्य प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

राजा लोग किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए धर्म करते हैं, (निस्वार्थ भाव में नहीं); (इस प्रकार) (वे) आजा के बंधन में बंध कर दान करते हैं। (अतएव चाहे जितने कर्मों को कर के (मनुष्य) थक जायें किन्तु राम नाम के बिना मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

(लोग) कर्म-धर्म (कर्मकाण्ड) करके मुक्ति मांगते हैं, (किन्तु कर्मकाण्ड में मुक्ति नहीं प्राप्त होती)। शब्द—नाम की स्तुति करने में ही मुक्ति-मार्ग (प्राप्त होता है)। (लोग चाहे) जितना (जगत् के) प्रपंचों (कर्मकाण्डों) को करके अमृत हो, (किन्तु) बिना गुरु के शब्दों के मुक्ति नहीं प्राप्ति हो सकती ॥ १० ॥

(सासारिक मनुष्यों से) माया और ममता नहीं छोड़ी जा सकती है। (जो साधक गुरु के द्वारा) सच्ची करनी की कमाई करते हैं, वे ही (माया और ममता से) छूटते हैं। (ऐसे व्यक्ति) विचारपूर्वक अहंनिश (हरी की) भक्ति में रत रहते हैं; ठाकुर—स्वामी (हरी) से उनकी खूब बनती है ॥ ११ ॥

कुछ लोग जप-तप करके तीर्थादिकों में स्नान करते हैं। (हे प्रभु) तुझे जैसा रुचता है, वैसा ही उन्हें चलाता है, (कार्य में लगाता है)। हठपूर्वक (इन्द्रियों के) निग्रह करने से यह अविश्वसनीय (मन) (हरी के प्रेम में) नहीं भीजता—अनुरक्त होता है। (बला बताओ) बिना हरि रूपी गुरु (के मिले हुए) किसने प्रतिष्ठा पाई है? ॥ १२ ॥

कलियुग में धर्म की केवल एक कला (शक्ति) (हरी ने) बचा रखी है। बिना पूर्ण गुरु के कोई भी (हरी का वर्णन) नहीं कर सका; (अर्थात् बिना पूर्ण गुरु के हरी का साक्षात्कार ही नहीं सकता और बिना साक्षात्कार के कोई व्यक्ति हरी का क्या वर्णन कर सकेगा?)। मनमुख तो (सदैव) झूठे ही व्यवहारों में बरतता है; बिना सद्गुरु के (उसका) भ्रम नहीं मिट सकता ॥ १३ ॥

विशेष : [निम्नलिखित पद में 'सद्गुरु' शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिए हुआ है ।]

अर्थ : सद्गुरु बेपरवाह और सिरजनहार है ; न तो (उसे) यम का (कोई) भय है , और न (तो उसमें) बंदे (मनुष्य) की दीनता—मुहताजी ही है । (जो साधक) उसकी आराधना करता है , वह अविनाशी (परमात्मा) ही (हो जाता है) ; (उसे फिर) काल संतप्त नहीं करता ॥ १४ ॥

कत्तरि (कर्तापुरुष , परमात्मा) ने अपने आपको गुरु में रक्खा है और गुरु के माध्यम से (उसने) करोड़ों—असंख्य (व्यक्तियों) का उद्धार किया है । जगत् के सभी जीवों का जीवनदाता निर्भय हरी ही है ; उसमें किसी प्रकार की मेल (कल्मष, पाप) नहीं है ॥ १५ ॥

समस्त (प्राणी) गुरु रूपी भंडारी से ही याचना करते हैं , (क्योंकि हरी स्वयं तो) निरजन (माया से रहित) अलक्ष्य और अपार है , (इसीलिए उसने भंडार का भंडारी गुरु को बनाया है) । हे प्रभु , नानक सत्य कहता है ; और हे आज्ञा देनेवाले (हरी) , (तुझमें) यही मागता है कि (तुझे) सत्य (की भीख) दे ॥ १६ ॥ ४ ॥

[५]

साचै मेले सर्बादि मिलाए । जा तिसु भाणा सहजि समाए ।

त्रिभवण जोति घरी परमेसरि अबरु न दूजा भाई हे ॥१॥

जिसके चाकर तिसको सेवा । सबदि पतीजै अलख अमेवा ॥

भगता का गुणकारी करता बखसि लए वडिआई हे ॥२॥

देदे तोटि न आवै साचे । लै लै सुकरि पउदे काचे ॥

मूल न बूझहि साचि न रीऊहि दूजै भरमि भुलाई हे ॥३॥

गुरमुखि जागि रहे दिन राती । साचे की लिव गुरमति जाती ॥

मनमुख सोइ रहे से लूटे गुरमुख साबतु भाई हे ॥४॥

कूड़े आवै कूड़े जावै । कूड़े राती कूड़ु कमावै ॥

सबदि मिले से दरगह पैधे गुरमुखि सुरति समाई हे ॥५॥

कूड़ि मुठी ठगी ठगवाड़ी । जिउ वाड़ी ओजाड़ि उजाड़ी ॥

नामि बिना किलु सादि न लावै हरि बिसरिऐ दुलु पाई हे ॥६॥

भोजनु साचु मिले आपाई । नामु रतनु साची वडिआई ॥

चीनै आपु पछाणै सोई जोती जोति मिलाई हे ॥७॥

नाबहु भुली चोटा खाए । बहुतु सिआरण भरमु न जाए ।

पचि पचि सुए अचेत न चेतहि अजगरि भारि लदाई हे ॥८॥

बिनु बाइ बिरोधहि कोई नाही । मै बिखालिहु तिसु सालाही ॥

मनु तनु अरपि मिले जगजीवनु हरि सिउ बरण बराई हे ॥९॥

प्रभ की गति मिति कोइ न पावै । जे को वडा कहाइ वडाई खावै ॥

साचे साहिब तोटि न दातो सगली तिनहि उपाई हे ॥१०॥

बडी बडिआई वेपरवाहे । आपि उपाए दानु समाहे ॥
 आपि दइआलु दूरि नही दाता मिलिआ सहजि रजाई हे ॥११॥
 इकि सोगी इकि रोगि बिआपे । जो किछु करे सु आपे आपे ॥
 भगति भाउ गुर की मति पूरी अनहवि सबदि लखाई हे ॥१२॥
 इकि नागे भूखे भवहि भजाए । इकि हठु करि मरहि न कीमति पाए ॥
 गति अविगत की सार न जाएँ बूझै सबदु कमाई हे ॥१३॥
 इकि तोरधि नावहि अनु न खावहि । इकि अगनि जलावहि बेह खपावहि ॥
 राम नाम बिनु सुकति न होई किनु बिधि पारि लंघाई हे ॥१४॥
 गुरमति छोडहि उभड़ि जाई । मनमुखि रामु न जपै अवाई ॥
 पचि पचि बूडहि कूड़, कमावहि कूडि कालु बैराई हे ॥१५॥
 हुकमे आवै हुकमे जावै । बूझै हुकमु सो साचि समावै ॥
 नानक साचु मिलै मनि भावै गुरमुखि कार कमाई हे ॥१६॥५॥

(जब साधक) सत्य (गुरु) में मिलता है , (तो वह गुरु उंगे) शब्द—नाम से मिला देता है । (यदि) उस (हरी की) इच्छा हुई , (तो वह) सहजावस्था में समा जाता है । परमेश्वर ने तीनों भुवनो (को प्रकाशित करनेवाली) ज्योति (हमारे अन्तर्गत) रख दी है , (जिससे अब) और कोई दूसरा अच्छा ही नहीं लगता ॥ १ ॥

जिसका चाकर हो , उसी की सेवा (करना चाहिए) , (तात्पर्य यह कि हमें के सेवक को एकमात्र हरी की ही आराधना करनी चाहिए) । अलख और अभेद (हरी) शब्द—नाम के द्वारा प्रसन्न होता है । कर्त्ता (हरी) भक्तों का कल्याण करनेवाला है ; (वह उन्हें) क्षमा करके (अपनी शरण में) लेकर बड़ाई प्रदान करता है ॥ २ ॥

सच्चे प्रभु को (प्राणियों के) देने में (किसी प्रकार की) कमी नहीं आती ; किन्तु कच्चे (अविवेकी और अज्ञानी) लोग , (हरी से) ले ले कर मुकर जाते हैं । वे (कच्चे लोग) द्वेषभाव के भ्रम में भटक कर न तो अपने मूलस्वरूप (आत्म-स्वरूप) को समझते हैं और न सत्य (हरी) में ही रीझते हैं—(प्रसन्न होते हैं) ॥ ३ ॥

गुरुमुख (हरी के चिन्तन में) अहर्निश जगते रहते हैं ; गुरु की बुद्धि द्वारा (गुरुमुख ने) सत्य (हरी) में लिव लगाना जान लिया है । मनमुख (अज्ञान-निद्रा में) सोते रहते हैं , (इसी से वे माया द्वारा) बूटे जाते हैं , (किन्तु) गुरुमुख सही-सलामत रहते हैं ॥ ४ ॥

(मनमुख) झूठ में ही आते हैं और झूठ में ही चले जाते हैं , (तात्पर्य यह कि झूठ में ही मनमुख का जन्म-मरण होता है) । झूठ में अनुरक्त होने से, वे झूठ में समा जाते हैं । (जो साधक) शब्द—नाम से मिलते हैं , वे (हरी के) दरबार में सम्मान पाते हैं । गुरु की शिक्षा द्वारा (वे) (हरी की) सुरति में समा जाते हैं ॥ ५ ॥

झूठी (जीवात्मा रूपी स्त्री) (कामादिक) ठगों की बाड़ी में ठगो गई है । जिस प्रकार (पशु आदि) बाड़ी उजाड़ देते हैं , (उसी प्रकार शरीर रूपी) बाड़ी को (कामादिकों) ने उजाड़ दिया है । (वास्तव में) नाम के बिना कुछ स्वाद नहीं आता , हरि के विस्मृति होने पर (बहुत) दुःख प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

सच्चे भोजन (परमात्मा) के मिलने पर ही (साधक) अघाता है—वृष्ट होता है । नाम रूपी रत्न के मिलने पर ही सच्ची बड़ाई प्राप्त होती है । (यदि साधक) अपने आप को पहचाने , तो (उस हरी को भी) पहचान लेता है (और उसकी) ज्योति (परमात्मा की अखण्ड) ज्योति से मिल जाती है ॥ ७ ॥

नाम के भूलने पर (मनुष्य) चोटें खाते है , (तात्पर्य यह कि यातनाएँ सहते हैं) । बहुत सयानापन (चतुरता) होने पर भी भ्रम नहीं दूर होता । अश्विकी—मूर्ख मनुष्य (पापों के) बहुत भार (बोझ) से लदे हुए पच पच कर मर जाते है , (किन्तु फिर भी) नहीं सावधान होते है ॥ ८ ॥

कोई भी व्यक्ति बिना झगड़े और विरोध के नहीं है ; (यदि कोई व्यक्ति ऐसा है , तो) मुझे दिखा दो , (मैं) उसकी प्रशंसा करूँ , और तन-मन (उसे) अर्पित करूँ , ताकि जगत् का जीवन (हरी) मुझे प्राप्त हो जाय और हरी से मेरी बात बन जाय ॥ ९ ॥

प्रभु की गति-मिति कोई भी नहीं पा सकता । यदि कोई व्यक्ति अपने को बड़ा कहलाता है , तो बड़ाई ही (उसे) खा जाती है , (तात्पर्य यह कि मान उसे ले डूबता है) । सच्चे साहब के दानों में (किसी प्रकार की) कमी नहीं है ; सारी (सृष्टि) को उत्पत्ति उसी (प्रभु) ने की है ॥ १० ॥

बेपरवाह (हरी) की महत्ता (बड़ाई) (बहुत) बड़ी है । आपही (सारे प्राणियों को) उत्पन्न करके (उन्हें) दान पहुँचाता है , (तात्पर्य यह कि स्वयं प्राणियों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही उनकी खोज-खबर लेता है) । (प्रभु) आप ही दयालु हैं , (वह) दाता दूर नहीं है ; आज्ञा प्रदान करनेवाला (परमात्मा) (साधको से) स्वाभाविक ही मिल जाता है , (क्योंकि वह दूर तो है नहीं) ॥ ११ ॥

(संसार में) कुछ लोग शोकानुर है और कुछ लोग रोग में फँसे हैं , (अतएव प्रभु) जो कुछ भी करना है , वह अपने ही आप करता है । गुरु को पूर्ण बुद्धि से प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है ; (गुरु के) अनाहत शब्द द्वारा (हरी विषयक) समझ आती है ॥ १२ ॥

कुछ लोग नंगे और भूखे (रहकर) (तीर्थोंदि को में) भटकते रहते है , कुछ लोग हठ-निग्रह करके मरते है , (किन्तु प्रभु हरी की) कीमत नहीं जान पाते । (ऐसे लोग) अव्यक्त (अविनाशी हरी) की गति का पता नहीं जानते , (उसे तो) (गुरु के) शब्द की कमाई द्वारा ही जान सकते हैं ॥ १३ ॥

कुछ लोग तीर्थों में स्नान करते है और अन्न नहीं खाते है , (फलाहार आदि करते है) ; कुछ लोग आग में जला कर देह को खपा देते है । (किन्तु) बिना रामनाम के मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ; (बिना रामनाम के) किस प्रकार (संसार-सागर से) पार हुआ जा सकता है ? ॥ १४ ॥

(जो लोग) गुरु की बुद्धि का परित्याग करते है , वे कुमार्ग पर चले जाते है । अवार-णीय (अमोढ़ , जो रोका न जा सके) मनमुख रामनाम को नहीं जपता , (मनमुख) पच-पच कर (संसार-सागर में) डूबते है ; (वे) झूठ ही कमाते हैं (और अन्त में इसी) झूठ के कारण काल उनका बेरी हो जाता है ॥ १५ ॥

(सारे प्राणी प्रभु के) हुक्म से आते हैं और (उसी के) हुक्म से चले जाते हैं ।
(जो व्यक्ति परमात्मा के इस) हुक्म को समझता है, वह सत्यस्वरूप (हरी) में ही समा
जाता है । नानक कहते हैं कि गुरु के द्वारा कार्य करने से सत्य (हरी) प्राप्त हो जाता है,
(जो) मन को (बहुत ही) अच्छा लगता है ॥१६॥१५॥

[६]

आपे करता पुरखु बिधाता । जिनि आपे आपि उपाइ पछाता ॥
आपे सतिगुरु आपे सेवकु आपे सुसटि उपाई हे ॥१॥
आपे नेइ नाही दूरे । बूझहि गुरुमुखि से जन पूरे ॥
तिनकी संगति अहिनिनि लाहा गुर संगति एह बडाई हे ॥२॥
जुगि जुगि संत भले प्रभ तेरे । हरि गुरु गावहि रसन रसेरे ॥
उसतति करहि परहरि दुखु दालदु जिन नाही बिल पराई हे ॥३॥
ओइ जागत रहहि न सूते दीसहि । संगति कुल तारे साजु परीसहि ॥
कलमिल मैलु नाही ते निरमल ओइ रहहि भगति लिब लाई हे ॥४॥
बुझहु हरिजन सतिगुर बाणी । एहु जोबनु सासु है बेह पुराणी ॥
आजु कालि मरि जाईऐ प्राणी हरि जपु जपि रिदै धिआई हे ॥५॥
छोडहु प्राणी कूड़ कबाड़ा । कूड़ मारे कालु उछाहाड़ा ॥
साकत कूड़ि पचहि मनि हउमै दुहु मारगि पचै पचाई हे ॥६॥
छोडिहु निदा ताति पराई । पड़ि पड़ि दभहि साति न आई ॥
मिलि सत संगति नामु सलाहहु आतम रामु सखाई हे ॥७॥
छोडहु काम क्रोधु बुरिआई । हउमै धंधु छोडहु तंपटाई ।
सतिगुर सरणि परहु ता उबरहु इउ तरीऐ भवजलु भाई हे ॥८॥
आगे बिमल नदी अगनि बिलु भेला । तिथै अवरु न कोई जीउ इकेला ॥
भइ भइ अगनि सागरु वे लहरी पड़ि दभहि मनसुख ताई हे ॥९॥
गुर पहि मुकति दानु वे भाणै । जिनि पाइआ सोई बिधि जाणै ॥
जिन पाइआ तिन पूछहु भाई सुलु सतिगुर सेव कमाई हे ॥१०॥
गुर बिनु उरभि मरहि बेकारा । जमु सिरि मारे करे लुभारा ॥
वाधे मुकति नाही नर निवक दूबहि निद पराई हे ॥११॥
बोलहु साजु पछाणहु अंवरि । वूरि नाही बेलहु करि नंदरि ॥
बिघनु नाही गुरुमुखि तरु तारी इउ भउजलु पारि संघाई हे ॥१२॥
बेहो अंवरि नामु निवासी । आपे करता है अविनासी ॥
ना जीउ मरे न मारिआ जाई करि बेलै सबवि रजाई हे ॥१३॥
ओहु निरमलु है नाही अंधिआरा । ओहु आपे तलति बहै सचिआरा ॥
साकत कूड़े बंधि भवाईअहि मरि जनमहि आई जाई हे ॥१४॥

गुर के सेवक सतिगुर पिआरे । ओइ बेसहि तखति सु सबहु बीचारे ॥

ततु सहहि अंतरगति आणहि सतसंगति सानु बडाई हे ॥१५॥

आपि तरे जनु पितरा तारे । संगति सुकति सु पारि उतारे ॥

नानकु तिसका खाला गोला जनि गुरमुखि हरि लिब लाई हे ॥१६॥६॥

(प्रभु) आप ही कर्तापुरुष और सृष्टि-रचयिता (विधाता) है । जिस (प्रभु) ने अपने आप को उत्पन्न किया है, (वही अपने आप को) पहचानता है । (प्रभु हरी) आप ही सद्गुरु है, आप ही सेवक है और आप ही ने सृष्टि उत्पन्न की है ॥१॥

(प्रभु) आप ही समीप है, (वह) दूर नहीं है । (जो व्यक्ति) गुरु के द्वारा (उपयुक्त बातें) समझते हैं, वही पूर्ण पुरुष हैं । (ऐसे पूर्ण पुरुष को) संगति में अहंनिश (सदैव) लाभ ही लाभ है । गुरु की संगति में ऐसी ही बडाई (प्राप्त होती) है ॥२॥

(हे हरी) तेरे संत युग-युगान्तरो से भले (अच्छे) रहे हैं, वे जीभ द्वारा आनन्द से हरि का गुणगान करते हैं । वे दुःख-दारिद्र्य का परित्याग करके (प्रभु की) स्तुति करते हैं, उन्हें दूसरो से चिन्ता (भय) नहीं है ॥३॥

वे (ब्रह्मज्ञान में) जगते रहते हैं; (और कभी अज्ञान की निद्रा में) सोते हुए नहीं दिखाई पड़ते । (वे भगवान् के भक्त) सत्य को परोस कर (वितरित कर) सगति और कुलों को तारते हैं । (उन्हें) पापों की मेल नहीं (लगती), वे निर्मल रहते हैं, वे (हरी की) भक्ति में निब लगाए रहते हैं ॥४॥

ऐ हरि के भक्तो, सद्गुरु की बाणी समझो—यह यौवन, श्वास और देह पुराने हो जाने वाले हैं । यह (नश्वर) प्राणी आज अथवा कल में (निश्चित ही) मर जायगा, (अतएव) हृदय में ध्यान कर के हरि का जप करो ॥५॥

ऐ प्राणी, झूठी गप्पे छोड़; झूठ बोलनेवाले को काल उछल कर मारता है । शाक्त (माया के उपासक) झूठ में दग्ध होते हैं; (जिनके) मन में अहंकार है (और जो) द्वैत भाव में हैं वे पच-पच कर (दग्ध हो हो कर) (नष्ट हो जाते हैं) ।

[विशेष—कबाड़ा=टूटी-फूटी वस्तुओं को अच्छी बनाकर दिखाना, जैसा कि कबाड़ी लोग करते हैं; तात्पर्य यह कि गर्व मारना] ॥६॥

(ऐ प्राणी), पराई निन्दा और ईर्ष्या त्याग दे, (बड़े-बड़े विद्वान्) पढ़-पढ़ कर दग्ध होते हैं, (उन्हें) शक्ति नहीं आती । (अतएव, हे प्राणी) सत्संगति में मिल कर (हरी के) नाम की प्रशंसा कर, (क्योंकि) सभी में रमा हुआ (परमात्मा) ही (सब का) सखा है ॥७॥

(हे प्राणी), काम, क्रोध (आदि) बुराइयों को त्याग दे, अहंकार के धंभो (प्रपंचो) एवं लम्पटता को भी त्याग दे । (तू यदि) सद्गुरु की शरण में पड़ेगा, तभी उबर (बच) सकेगा; हे भाई, इस प्रकार संसार-सागर से तर कर (पार हो) ॥८॥

(हे मनुष्य), (इस संसार से जाने पर) आगे आग की निर्मल नदी है और विष की लपटें (निकल रही हैं), (तात्पर्य यह कि नारकीय यंत्रणायें हैं); वहाँ और कोई नहीं है, अकेला जीव (मात्र) है । अग्नि का सागर 'भडभड' शब्द करके (प्रचण्ड रूप से) (लपट रूपी) लहरें निकाल रहा है; मनमुख उसी स्थान पर पड़ कर दग्ध होते हैं ॥९॥

गुरु के पास मुक्ति है, (जिसे) वह अपनी मर्जी—इच्छा के अनुसार देता है । जिस (भाग्यशाली) ने इसे प्राप्त किया है, वही (इसकी प्राप्ति की) विधि जानता है । हे भाई, जिन्होंने (इसे) प्राप्त किया है, उनसे पूछो; (वे लोग यही उत्तर देगे कि) आनन्दपूर्वक सद्गुरु की सेवा करके (यह वस्तु) कमाई गई है ॥१०॥

(मनमुख) गुरु के बिना विकारों में उलझ कर मरते हैं । यमराज (उनके) सिर पर (चोटे) मार-मार कर (उन्हें) दुखी करता है । (माया के विषयों में) बद्ध (प्राणियों को) मुक्ति नहीं (प्राप्त होती), लोगों की निन्दा करनेवाले (प्राणी) पराई निन्दा में ही डूब (मरते) हैं ॥११॥

(हे प्राणी), सत्य बोलो (और अपने) अन्तर्गत (स्थिर हरी को) पहचानो । (अपनी) दृष्टि डाल कर देखो, (प्रभु हरी) दूर नहीं है । गुरु की शिक्षा द्वारा तैराकी तैरो, (इससे) कोई भ्रं विघ्न नहीं (आयेंगे); इस प्रकार (कुशल तैराकी तैर कर तुम) संसार-सागर से पार हो जाओगे ॥१२॥

जीवात्मा (देही) के अन्तर्गत परमात्मा (नाम) का निवास है । (वह) अविनाशी (परमात्मा) स्वयं ही रचयिता है । (परमात्मा द्वारा निर्मित यह) जीव न तो मरता है और न मारा जाता है, अपनी इच्छावाला हरी [रजा वाला हरी=रजाई] (अपने) शब्द (हुक्म) द्वारा (सृष्टि) रच-रच कर (उसकी) देखभाल करता है ॥१३॥

वह (परमात्मा) (परम) निर्मल है, (उसमें रंजमात्र) अंधकार (अज्ञान) नहीं है । वह सच्चा (हरी) स्वयं ही सिंहासन पर बैठ कर (न्याय करता है) । शाक्त (माया के उपासक) झूठ में बंध कर भटकते रहते हैं (और बारंबार) जन्मते-मरते तथा आते-जाते रहते हैं ॥१४॥

गुरु के सेवक सद्गुरु (परमात्मा) के अत्यंत प्यारे हैं । जो (व्यक्ति) (गुरु के) शब्दों पर विचार करते हैं, (वे हरी के दरबार में) सिंहासन पर बैठते हैं । वे (परमात्म-) सत्त्व को प्राप्त कर लेते हैं और आन्तरिक दशा को जान लेते हैं; (सचमुच ही) सत्संगति की सच्ची महत्ता है ॥१५॥

हरि-भक्त (गुरुमुख) स्वयं तरता है (और अपने) पितरों को भी तार देता है । (इस प्रकार) सत्संगति से मुक्ति होती है, (और वह मुक्ति लोगों को संसार-सागर से) पार उतार देती है । जिन्होंने गुरु के उपदेश द्वारा परमात्मा से समाधि (लिब) लगाई है, नानक उनका गुलाम है ॥१६॥१६॥

[विशेष—लाला=फारसी, गुलाम, दास, सेवक । गोला=गुलाम, सेवक]

[७]

केते जुग बरते गुबारै । ताड़ी लाई अपर अपारै ॥

बुंछकारि निरासु बैठा ना तबि धंघु पसारा हे ॥१॥

जुग छतीअ तिनै बरताए । जिउ तिसु भाणा तिवै चलाए ॥

तिसहि सरोकु न दोसै कोई आपे अपर अपारा हे ॥२॥

गुपते ब्रह्म जग बतुआरे । घटि घटि वरतै उदर मभारे ॥
 जुगु जुगु एका एको वरतै कोई ब्रह्मै गुर वीचारा हे ॥३॥
 बिंदु रकनु मिलि पिंडु सरीआ । पउरु पाणी अगनी मिलि जीआ ॥
 आपे चोज करे रंग महली होर माइआ मोह पसारा हे ॥४॥
 गरभ कुडल महि उरघ घिआनी । आपे जाणै अंतरजामी ।
 सासि सासि सत्तु नामु समाले अंतरि उदर मभारा हे ॥५॥
 चारि पदारथ लै जगि आइआ । सिब सकती घरि बासा पाइआ ॥
 एकु विसारे ता पिड़ हारे अंधुलै नामु विसारा हे ॥६॥
 बालकु भरै बालक की लीला । कहि कहि रोवहि बालु रंगीला ॥
 जिस का सा सो तिन ही लीआ भूला रोवणहारा हे ॥७॥
 भरि जोबनि भरि जाहि कि कीजै । मेरा मेरा करि रोबीजै ॥
 माइआ कारण रोइ विगुबहि धुगु जीवरु संसारा हे ॥८॥
 काली ह कुनि घउले आए । विरु नावै गधु गइआ गवाए ॥
 दुरमति अंधुला बिनसि बिनासै मूठे रोइ पूकारा हे ॥९॥
 आपु वीचारि न रोवै कोई । सतिगुरु मिलै त सोभी होई ॥
 बिनु गुर बजर कपाट न खुलहि सबदि मिलै निसतारा हे ॥१०॥
 बिरधि भइआ तनु छोड़ै बेहो । रामु न जपई अंति सनेहो ॥
 नाम विसारि चले मुहि कालै दरगह भूदु खुआरा हे ॥११॥
 नामु विसारि चले कूड़िआरो । आवत जात पड़े सिरि छारो ॥
 साह्वरड़े घरि बासु न पाए पेईअट्टै सिरि मारा हे ॥१२॥
 खाजै पैभै रली करीजै । बिनु अम भगती बाबि मरीजै ॥
 सर अपसर की सार न जाणै जमु भारै किआ चारा हे ॥१३॥
 परवरनी नरवरति पछाणै । गुर कै संगि सबदि घरु जाणै ॥
 किसही मंदा आखि न चले सचि खरा सचिआरा हे ॥१४॥
 साच बिना दरि सिभै न कोई । साच सबदि पैभै पति होई ।
 आपे बखसि लए तिसु भावै हउमै गरबु निवारा हे ॥१५॥
 गुर किरपा ते हुकमु पछाणै । जुगह जुगंतर की बिधि जाणै ॥
 नानक नामु जपहु तरु तारी सत्तु तारे तारणहारा हे ॥१६॥७॥

बिषय : परमात्मा पहले निर्गुण था । तत्पश्चात् सगुण होकर उसने सृष्टि-रचना की और जीव उत्पन्न किए । जन्म के समय मनुष्य उच्च आदशों को लेकर आता है; पर संसार की माया में पड़कर वह उन आदशों को भूल जाता है । वह दुर्बुद्धि में पड़ कर हरी का स्मरण नहीं करता । गुरु के कपाट खोलने पर, वह परमात्मा के हुक्म को पहचान कर सत्य में लगता है ।

अर्थ : कितने ही युगों तक अंधकार विद्यमान था । अनन्त और अपरंपार (निगुण हरी अपने मे ही) ताड़ी लगाए था । (उस समय) अंधकार मे—शून्यावस्था मे निरूपित (हरी) बैठा था; उस समय कोई धंधे (प्रपंच) और प्रसार (सृष्टि के फैलाव) नहीं थे ॥१॥

इस प्रकार छत्तीस युग, (तात्पर्य यह कि अनन्त समय) व्यतीत हो गए । जिस प्रकार उस (प्रभु) की इच्छा होती है, उसी प्रकार (वह) (सृष्टि-क्रम) चलाता है । उनके समान कोई (दूसरा) नहीं दिखाई पड़ता, (वह प्रभु) आप ही सबसे परे और अनन्त है ॥२॥

चारो युगो मे गुप्त होकर सभी (जड़-चेतन मे) वह (हरी) ही बरतता था— (विद्यमान था) । घट-घट मे तथा हृदय-हृदय मे वही बरतता था । युग-युगान्तरो मे एक मात्र (हरी ही) विद्यमान था, (है और रहेगा); (इस तत्त्व को) कोई विरला ही गुरु के विचार द्वारा समझ पाता है ॥३॥

(हरी ने) (पिता के) वीर्य (तथा माता के) रक्त (रज) से शरीर का निर्माण कर दिया, पवन, जल और अग्नि (आदिक पंच तत्वों) से जीव खड़ा कर दिया । (शरीर रूपी) रंग मल मे (हरी ही) कोनुक—लीला कर रहा है, और माया तथा मोह का प्रसार (फैलाव) भी (उसी ने) कर रक्खा है ॥४॥

(माता के) गर्भ मे (जीव) ऊर्ध्व होकर (हरी के) ध्यान में लीन रहता है । (उसकी इम दशा को) अन्यामी (हरी) ही जानता है । जीव (माता के) उदर-मध्य श्वास-श्वास से सच्चे नाम को स्मरण करता है ॥५॥

(मनुष्य) चार पदार्थों—(अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष)—के (आदर्शों की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर) इस जगत् में उत्पन्न हुआ; (किन्तु अपने आदर्शों को भूल कर उसने) शिव की शक्ति (परमात्मा की शक्ति)—माया के घर मे अपना निवास बना लिया । अंधे (अज्ञानी) मनुष्य ने नाम को बिसरा दिया; (यदि मनुष्य) एक (परमात्मा) के नाम को भुला देता है, तो (संसार रूपी) खेल, (तात्पर्य यह कि अमूल्य मानव-जीवन) हार जाता है ॥६॥

(जब) बालक मर जाता है, (तो उसके माता-पिता अपने बालक की) लीलाओं को (याद करते हैं) और “बालक बड़ा रंगीला” था, कह-कह रोते हैं । (किन्तु) रोनेवाला (इस बात को) भूल जाता है कि जिस (हरी) का (वह बालक) था, उसी ने (उसे) ले लिया, (अतः रोना-पीटना व्यर्थ है) ॥७॥

(यदि) भरी जवानी मे ही (लोग) मर जाते हैं, तो क्या किया जा सकता है ? (केवल) ‘मेरा मेरा’ कह कर (उसके परिवार के लोग) रोते हैं । माया के कारण (लोग) रो-रो कर नष्ट होते हैं (और कहते हैं कि) हाय, संसार के जीवन को धक्कार है ॥८॥

(धीरे धीरे अवस्था बढ़ती है और) फिर काले बाल सफेद हो जाते हैं । बिना नाम के उनकी (अमूल्य जीवन रूपी) पूँजी-नष्ट हो जाती है, (वे उसे) नष्ट कर देते हैं । दुबुद्धि अंधा (अविबेकी) पुत्थ (स्वयं) नष्ट होता है और (दूसरो को भी) नष्ट करता है; (जब), वह ठगा जाता है, (तो) रो-रो कर बिलखता है ॥९॥

(यदि) कोई अपने आपको (अपने वास्तविक स्वरूप) को विचारता है, (तो) वह नहीं रोता है । (किन्तु) सद्गुरु के मिलने पर ही (इस प्रकार की) समझ (प्राप्त) होती

है। बिना गुरु के (अज्ञान रूपी) वज्रवत किवाड़े नहीं खुलते; (गुरु के) शब्द के प्राप्त होने पर ही उद्धार होता है ॥१०॥

बृद्ध हो जाने पर जीवात्मा का शरीर छीजने लगता है। (किन्तु ऐसी अवस्था में भी) वह अन्तिम समय के साथी राम को नहीं जपता। (अन्त में वे) नाम भुला कर और मुंह काला करके (यहाँ से) चले जाते हैं; (अपनी) भूठ के कारण (वे) (हरी के) दरबार में दुखी होते हैं ॥११॥

(माया में आसक्त) भूठे लोग नाम भुला कर (इस संसार से) चले जाते हैं। (उनके) आने-जाने में सिर पर राख पड़ती है, (अर्थात् बेहज्जती होती है)। माया के (इस लोक) में भी उनके सिर पर मार पड़ती है और ससुराल (परलोक) में भी (उन्हें) घर में निवास नहीं मिलता ॥१२॥

(माया में आसक्त प्राणी) खाता, पहनता और मौज उड़ाता है। (किन्तु) बिना अन्तरिक भक्ति के, (वह), व्यर्थ ही मर जाता है। उसे भले-बुरे की समझ नहीं होती, (यदि उसे) यमराज मारता है, तो (किसी का, क्या चारा हो सकता है) ? ॥ १३ ॥

(मनुष्य को) प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग के (यथोचित रूप को) समझना चाहिए। (तत्पश्चात्) गुरु की सत्संगति से (उसके) उपदेश द्वारा (अपने वास्तविक) घर (आत्मस्वरूप) को जानना चाहिए। (संसार में) किसी को बुरा कह कर व्यवहार नहीं करना चाहिए, मनुष्य सत्य द्वारा ही खरा और सच्चा होता है ॥ १४ ॥

सत्य के बिना कोई भी (व्यक्ति) (हरी के) दरवाजे पर सफल नहीं होता। सत्य शब्द—नाम के द्वारा ही (मनुष्य परमात्मा के दरबार में सम्मान के) वस्त्र पहनने को पाता है (और उसकी) प्रतिष्ठा होती है। (यदि हरी को) अच्छा लगता है, तो स्वयं ही उसे क्षमा कर देता है (और उसके) अहंकार तथा गर्व को दूर कर देता है ॥ १५ ॥

गुरु की कृपा द्वारा (साधक परमात्मा के) द्वेष को पहचान लेता है (और वह युग-युगान्तरो की (साधना की) विधि भी जान जाता है, (तात्पर्य यह कि उसे यह भलीभाँति ज्ञात हो जाता है किस युग में ज्ञानमार्ग की साधना श्रेयस्करो है और किस युग में भक्तिमार्ग, अथवा कर्ममार्ग की। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस युग में नाम-जपना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है)। हे नानक, नाम जपो और (संसार-सागर) सच्ची तैराकी से तैरो; (एका करने में) तारनेवाला (हरी) (निश्चय ही) तार देगा ॥१६॥१॥७ ॥

[८]

हरि सा मीतु नाही मै कोई । जिनि तनु मनु बीअरा सुरति समोई ॥

सरब जीअरा प्रतिपालि समाले सो अंतरि दाना बीना हे ॥१॥

गुरु सरबक हम हंस विअारे । सागर महि रतन ताल बहू सारे ॥

मोती माएक होरा हरि जसु वाबत मनु तनु भीना हे ॥२॥

हरि अगम अगाधु अगाधि निराला । हरि अंतु न पाईऐ गुर गोयला ॥

सतिगुर मति तारे तारणहारा मेलि लए रंगि सीना हे ॥३॥

सतिगुर बाभ्रु मुकति किनेही । ओहू आदि जुगादी राम सनेही ॥
 वरगह मुकति करे करि किरपा बलसे अवगुण कीना हे ॥४॥
 सतिगुरु दाता मुकनि कराए । सभि रोगु गवाए भ्रंभृतु रसु पाए ॥
 जमु जागाति नाही करु लागै जिसु अगनि कुभी ठरु सीना हे ॥५॥
 काइआ हंस प्रीति बहु धारी । ओहू जोगी पुरखु ओहू सुंदरि नारी ॥
 अहिनिमि भोगे चोज बिनोदी उठि चलतै मता न कीना हे ॥६॥
 सृसटि उपाइ रहे प्रभ छाजै । पउए पाणी बैसतरु गाजै ॥
 मनुआ डोलै दूत संगति मिलि सो पाए जो किछु कीना हे ॥७॥
 नामु विसारि दोख दुख सहैऐ । हुकमु भइआ चलरा किउ रहैऐ ॥
 नरक कूप महि गोते खावै जिउ जल ते बाहर मोना हे ॥८॥
 चउरासीह नरक साकतु भोगाईऐ । जैसा कीचै तैसो पाईऐ ॥
 सतिगुर बाभ्रु मुकति न होई किरति बाधा प्रसि दीना हे ॥९॥
 खंडेधार गली अति भोड़ी । लेखा लोभै तिल जिउ पोड़ी ॥
 मात पिता कलत्र सुत बेली नाही बिनु हरि रस मुकति न कीना हे ॥१०॥
 मोत सले केते जग माही । बिनु गुर परमेसर कोई नाही ॥
 गुर की सेवा मुकति पराइलि अनदिनु कीरतनु कीना हे ॥११॥
 कूडु छोडि साचे कउ धावहु । जो इछहु सोई फलु पावहु ॥
 साच बलर के वापारी बिरले लै लाहा सउदा कीना हे ॥१२॥
 हरि हरि नामु बलरु लै चलहु । दरसनु पावहु सहजि महलहु ॥
 गुरमुखि खोजि लहहि जन पूरे इउ समबरसी कीना हे ॥१३॥
 प्रभ बेअंत गुरमति को पावहि । गुर के सबदि मन कउ समभावहि ॥
 सतिगुर की बाणी सति सति करि मानहु इउ आतम रामे लीना हे ॥१४॥
 नारद सारद सेवक तेरे । त्रिभरणि सेवकु बडहु बडेरे ॥
 सभ तेरी कुदरति तू सिरि सिरि दाता सभु तेरो कारण कीना हे ॥१५॥
 इकि वर सेबहि वरवु बंजाए । ओहू वरगह पँथे सतिगुरु छडाए ॥
 हुउमे बंधन सतिगुर तोड़े चितु चंचलु चलणि न दीना हे ॥१६॥
 सतिगुर मिलहु चीनहु बिधि साई । जितु प्रभ पावहु गणत न काई ॥
 हुउमे भारि करहु गुर सेवा जन नानक हरि रंगि भीना हे ॥१७॥॥१८॥

हरी के समान मेरा कोई दूसरा मित्र नहीं है; जिस (हरी) ने मुझे तन और मन दिए हैं, (उसी ने) (मेरे अन्तर्गत) सुरति भी प्रविष्ट की है, (अर्थात् स्मरण-शक्ति भी उसी ने प्रदान की है) । (जो) समस्त जीवों को पालता और संभालता है, (वही) ज्ञाता और द्रष्टा (हरी) हमारे भीतर भी है ॥ १ ॥

गुरु सरोवर है और हम (उसके) प्रिय हंस हैं । (गुरु रूपी) सागर में (बहुमूल्य) गुण और हरि-यश रूपी) बहुत से लाल और रक्त (विद्यमान) हैं । हरियश रूपी मोती,

माणिक्य और हीरा का गुणगान करने से मेरे तन और मन भोग जाते हैं, (प्रसन्न हो जाते हैं ।) ॥ २ ॥

हरी अगम, अथाह, अगाध और निराला है। उसका का अन्त नहीं पाया जा सकता। गुरु रूपी हरी (गोपाल) द्वारा ही (वह जाना जाता है)। सद्गुरु के उपदेश द्वारा तारने वाला हरी (साधकों को) तार देता है और अपने प्रेम में लीन करके मिला लेता है ॥ ३ ॥

सद्गुरु के बिना (भला) मुक्ति कैसी ? (अर्थात्, सद्गुरु के बिना मुक्ति किसी प्रकार भी नहीं प्राप्त हो सकती)। वह राम (हरी) आदि काल से तथा युगों से (हमारा) स्नेही (सहायक) है। (वह हरी अपने) दरबार में कृपा करके मुक्त कर देता है और (सारे) किए हुए अपराधों को क्षमा कर देता है ॥ ४ ॥

दाता सद्गुरु ही (शिष्यों को) मुक्त कराता है, वह (साधकों के) सभी रोगों को नष्ट कर देता है (और हरि-प्रेम रूपी) अमृत को प्राप्त कराता है। (हरी के प्रेम में) जिसकी (आन्तरिक) अग्नि नृणा शान्त हो जाती है, और (जिसका) सीना ठंडा हो जाता है (छाती शीतल हो जाती है), (उनके ऊपर) कर बसूल करनेवाले यमराज का कर नहीं लगना (तात्पर्य यह कि वह यमराज के कष्टों से बच जाता है) ॥ ५ ॥

जीव रूपी हंस (शरीर रूपी स्त्री से) अनेक प्रकार की प्रीति करता है। वह (जीवात्मा) तो योगी पुरुष है, (अर्थात् योगी के समान चक्कर लगा कर चला जानेवाला है) और यह (शरीर) सुन्दर स्त्री है। वह कीतुकी और विनोदी (जीवात्मा) अर्हनिश (उस शरीर रूपी सुन्दर स्त्री) को भोगता है, (और उसके साथ विविध भाँति के) चोज (कीतुक, विनोद) करता है, (किन्तु अन्त में जब) उठ कर चल देता है, (तो उस शरीर रूपी स्त्री से) सलाह नहीं करता, (उसे यों ही छोड़ कर चल देता है) ॥ ६ ॥

सृष्टि उत्पन्न करके प्रभु (हरी) उसमें छा रहा—व्याप्त हो रहा है। पवन, जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों से निमित्त यह शरीर) गर्जता है; और मन (कामादिक) दूतों की संगति में मिल कर (विषयों में) डोलता रहता है। (अन्त में मनुष्य) जो कुछ किए रहता है, वही पाता है ॥ ७ ॥

(मनुष्य) नाम को भुला कर (बहुत से) दोषों और दुःखों को सहन करता है। (अन्त में जब परमात्मा का) हुक्म हो जाता है, (तो वह इस संसार से) चल देता है; (भला तब वह) किस प्रकार रह सकता है ? (मनुष्य अपने धृणित और पापपूर्ण कर्मों के अनुसार) नरक-कूप में (पड़ कर) गोते खाता है, (और उसे उसी प्रकार कष्ट होता है), जिस प्रकार जल में बाहर कर देने पर मछली (को कष्ट होता है) ॥ ८ ॥

चौरासी (लाख योनियों में भ्रमण रूपी) नरक शाक्तों (माया में आसक्त व्यक्तियों) को भोगाए जाते हैं। (मनुष्य) बैसा करता है, बैसा ही (फल) पाता है। बिना सद्गुरु के मुक्ति नहीं हो सकती। (पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों से) संस्कारों (किरत) के बंधन में वह जकड़ कर घस लिया गया है ॥ ९ ॥

(आगे जहाँ जीवात्मा को जाना है, वह) गली बहुत ही तंग (सँकरी) है और अड़ि की धार के समान तीक्ष्ण है। (वहाँ, कर्मों के) लेखे लिए जायेंगे, (यदि कर्म धृणित

और पापमय है, तो मनुष्य उसी प्रकार कोल्हू में पेरे जायेंगे), जिस भांति तिल (कोल्हू में डाल कर) पेरा जाता है। (उस समय) माता, पिता, स्त्री और पुत्र (कोई भी) सहायक नहीं होंगे; बिना हरी के प्रेम के (कोई भी व्यक्ति) मुक्त नहीं कर सकता ॥ १० ॥

जगत् में मित्र और संगी-साथी (चाहे) कितने ही हो, (किन्तु) बिना गुरु अथवा परमेश्वर के (अन्त में) कोई भी (साथ) नहीं (निबाहता)। मुक्ति का आसरा गुरु की सेवा ही है; (उस सेवा में) प्रति दिन हरि-कीर्तन किया जाता है ॥ ११ ॥

(हे मनुष्य, यदि तुम) भूत त्याग कर सत्य की ओर दौड़ने लगे (प्रवृत्त हो जाओ), (तो तुम जिस फल की) इच्छा करो, वही फल पा जाओ। किन्तु (इस) सत्य (रूपी) सोदे के विरले ही व्यापारी होते हैं, वे (सत्य रूपी) सोदे से (मुक्ति रूपी) लाभ प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

(हे साधक, यदि तुम) हरि-नाम रूपी सोदे को लेकर चलो, (तो) महज ही (हरी के) महलो में (उसका) दर्शन पा जाओगे। पूर्ण पुरुष गुरु की शिक्षा द्वारा (हरी को) खोज कर प्राप्त कर लेते हैं, इस प्रकार (वे लोग) समदर्शी हरी को पहचान लेते हैं ॥ १३ ॥

गुरु की शिक्षा द्वारा कोई (विरला) ही अग्रन्त प्रभु को पाता है। (अतएव, हे साधक), गुरु के उपदेश द्वारा (अपने चंचल) मन को समझाओ और सद्गुरु की सत्य वाणी को सत्य ही मानो; इस प्रकार आत्माराम (हरी) में लीन हो जाओ ॥ १४ ॥

(हे हरी), नारद (ऋषि) और सरस्वती देवी— (सभी) तेरे सेवक हैं और त्रिभुवन में (जो) बड़े से बड़े (लोग) हैं (वे सब) भी तेरे सेवक हैं। (हे प्रभु), मारी कुदरत तेरी ही है, तू प्रत्येक (जीव) का दाता है; यह सारा कारण (ससार) तेरा ही बनाया हुआ है ॥ १५ ॥

कुछ लोग (हरी के) दरवाजे में (उसकी) आराधना करके, (अपने) दुःख-दर्दों को नष्ट कर देते हैं। सद्गुरु (उन्हे सभी प्रकार के बन्धनों में) छुड़ा देता है (और वे) (परमात्मा के) दरबार में (सम्मान का वस्त्र) पहनते हैं ॥ १६ ॥

(हे साधक), सद्गुरु से मिल कर वह विधि समझ लो, (जिनसे) प्रभु को प्राप्त कर लो (और कर्मों का) कोई हिसाब न रह जाय। अहंकार को मार कर गुरु की सेवा करो, सेवक नानक तो हरी के प्रेम में भीग गया है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

[६]

असुर सधारण रामु हमारा। घटि घटि रमईआ रामु विभारा ॥

नाले अलखु न लखीऐ मूले गुरुमुखि लिखु बीबारा हे ॥ १ ॥

गुरुमुखि साधू सरणि तुमारी। करि किरपा प्रभि पारि उतारी ॥

अगनि पाणी सागरु अति गहरा गुरु सतिगुरु पारि उतारा हे ॥ २ ॥

मनमुख अंधुले सोभी नाही। आबहि जाहि मरहि मरि जाही ॥

पूरबि लिखिआ लेखु न मिटई जमवरि अंधु लुभारा हे ॥ ३ ॥

इकि आबहि जाबहि घरि वासु न पावहि। किरत के बाधे पाप कमावहि ॥

अंधुले सोभी बूझ न काई सोभु बुरा अहंकारा हे ॥ ४ ॥

पिर बिनु किआ तिसु धन सीगारा । पर पिर राती खससु बिसारा ॥
 जिउ बेसुआ पूत बापु को कहीऐ तिउ फोकट कार बिकारा हे ॥५॥
 प्रेत पिजर महि दुख घनेरे । नरकि पवहि अग्निमान अंधेरे ॥
 धरमराइ की बाकी लीज जिनि हरि का नामु बिसारा हे ॥६॥
 मूरजु तपै अग्नि बिलु भाला । अपतु पमू मनसु बेताला ॥
 आसा मनसा कूड़ु कमावहि रोगु नुरा नुरिआरा हे ॥७॥
 मसतकि भारु कलर सिरि भारा । किउकरि भवजसु लघसि पारा ।
 सतिगुरु बोहिधु आबि जुगावो राम नामि निस्तारा हे ॥८॥
 पुत्र कलत्र जगि हेतु पिआरा । माइआ मोहु पसरिआ पासारा ॥
 जम के फाहे सति गुरि तोड़े गुरमुखि ततु बीचारा हे ॥९॥
 कूड़ि मुठी चालै बहु राही । मनसु दुखै पड़ि पड़ि भाही ॥
 अमृत नामु गुरु बड दाणा नामु जपहु सुखसारा हे ॥१०॥
 सतिगुरु तुठा सनु दड़ाए । सभि दुख भेटे मारगि पाए ॥
 कंडा पाइ न गडई मूले जिसु सतिगुर राखणहारा हे ॥११॥
 खेहू खेहू रले तनु छीजै । मनसु पायरु सैनु न भीजै ॥
 करण पलाव करे बहुतेरे नरकि सुरगि अवतारा हे ॥१२॥
 माइआ बिलु भुइअगम नाले । इनि दुबिधा घर बहुते गाले ॥
 सतिगुरु बाभहु प्रीति न उपजै भगति रते पतीआरा हे ॥१३॥
 साकत माइआ कउ बहु धावहि । नामु बिसारि कहा सुलु पावहि ॥
 त्रिहुगुण अंतरि खपहि खपावहि नाही पारि उतारा हे ॥१४॥
 कूकर नूकर कहीअहि कूड़िआरा । भउकि मरहि भउ भउ हारा ॥
 मनि तनि भूटे कूड़ु कमावहि दुरमति दरगह हारा हे ॥१५॥
 सतिगुरु मिलै त मनूआ टेकै । राम नामु बे सरणि परेकै ॥
 हरि धनु नामु अमोलकु देवै हरि जसु दरगह पिआरा हे ॥१६॥
 राम नामु साधू सरणार्ई । सतिगुर वचनी गति मिति पाई ॥
 नानक हरि जपि हरि मन मेरे हरि भेले भेलणहारा हे ॥१७॥३॥६॥

हमारा राम (कामादिक) असुरो का संहार करनेवाला है । (वह) प्यारा राम घट-घट मे रमा हुआ है । (वह) अलक्ष्य (प्रभु) समीप ही है, किन्तु बिनकुल भी नहीं देखा जा सकता । गुरु द्वारा वह लिखा हुआ (वर्णित) (परमात्मा) मिल जाता है, (वह गुरु ही के लेख द्वारा) विचारा जाता है ॥१॥

गुरुमुख या साधु (बही है), जो तेरी क्षरण में (आता है); प्रभु कृपा करके (उन्हे संसार-सागर से) पार उतार देता है । (विषयों की) अग्नि रूपी जल का सागर बहूज ही गहरा है, सदगुरु ही (उस सागर से) पार उतारता है ॥२॥

अंधे (अज्ञानी) मनमुखों को समझ नहीं होता । (वे अपनी अज्ञानता के कारण) (बारंबार) आते-जाते रहते हैं और मर-मर कर (इस संसार से) चले जाते हैं । (किन्तु) पहले का लिखा हुआ (भाग्य) लेख नहीं मिटता, (अतएव) वे अंधे यमराज के दरवाजे पर दुखी होते हैं ॥३॥

कुछ लोग (इस संसार में) आते-जाते, जन्मते-मरते रहते हैं और (अपने वास्तविक) घर में (परमात्मा के दरबार) में स्थान नहीं पाते । (वे अपने पूर्व जन्म के लिए हुए कर्मों के) संस्कारों (किरत) में बंध कर पाप ही कमाते हैं । उन अंधों में कोई सुख-बुद्धि नहीं होती, (क्योंकि वे) लोभ और बुरे अहंकार में (फंसे हुए हैं) ॥४॥

बिना प्रियतम के स्त्री का शृङ्गार किस काम का ? (अपने वास्तविक) पति (हरी) को भूल कर (वह) पर-पति (विषयो) में आसक्त हुई है । जिस प्रकार वेश्या के पुत्र का पिता किसे कहा जाय ? (तात्पर्य यह कि उसका पिता कोई नहीं होता), (उसी प्रकार प्रभु हरी को न माननेवाला होता है) । उसके सारे कार्य व्यर्थ और बेकार होते हैं ॥५॥

(जो शरीर मन रूपी) प्रेत के रहने का पिजड़ा है, (उसमें) बहुत से दुःख हैं । (दुष्कर्मों व्यक्ति) अज्ञानान्धकार के (घनघोर) नरक में दग्ध होते हैं । जिन्होंने हरि-नाम को बिसराया है, उनके जिम्मे धर्मराज का (हिसाब) बाकी रहता है; (अर्थात् उनके कर्मों के अनुसार फल भोगना रहता है) ॥६॥

(मनमुख अपनी) आशा और वासना (की पूर्ति की लिए) झूठ ही कमाते हैं, (उनके अहंकार का) रोग बहुत ही बुरा (भयानक) होता है । (इसीलिए मनमुख जब यहाँ से प्रस्थान करते हैं, तो उन्हें नारकाय यंत्रणाएँ सहनी पड़ती हैं । (उनके निमित्त) सूर्य अग्नि की भाँति तपता है और उससे बिष की लपटे निकलती हैं । प्रतिष्ठाहीन, पशु और बैताल (भूत) मनमुख (उमी भयंकर अग्नि में दग्ध होता है) ॥७॥

(मनमुख के) मस्तक पर (पाप रूपी) रेतीली मिट्टी का भारी बोझा (लदा) होता है । (ऐसी परिस्थिति में वह) संसार-सागर से किस प्रकार पार हो ? (इस प्रश्न का उत्तर यह है—) आदि और युग-युगान्तरो से (संसार-सागर से पार करने के लिए) सद्गुरु ही जहाज है; राम नाम के द्वारा (सद्गुरु महा पापियों का भी) उद्धार कर देता है ॥८॥

(सासारिक प्राणी) पुत्र-स्त्री और जगत् के निमित्त प्रेम तथा माया के मोह के फँसे हुए प्रसार (फैलाव) (में बंध जाता है) । किन्तु जिन्होंने गुरु का अनुयायी होकर तत्त्व का विचार किया है, उनके (सारे) यम-पाश सद्गुरु (परमात्मा) तोड़ डालता है ॥९॥

झूठ की ठगी हुई (दुनियाँ एक को छोड़ कर) कई और मार्गों में चलती है । मनमुख (विषयो में लिस होने के कारण) अग्नि में पड़-पड़ कर दग्ध होता है । गुरु ने अमृत रूपी (हरी के) नाम का महान् दान दे दिया है; अतएव समस्त सुखों के तत्त्व—नाम को जपो ॥१०॥

सद्गुरु संतुष्ट होकर नाम को दृढ़ करता है । (वह) सारे दुःखों को भेट कर (सही) मार्ग बताता है । जिसकी रक्षा करनेवाला सद्गुरु है, उसके पाँवों में बिलकुल भी काँटा नहीं गड़ता ॥११॥

खाक से खाक में मिल कर (यह) शरीर नष्ट हो जाता है । (किन्तु इस तथ्य को देख कर भी) पत्थर की शिला (के समान) मनमुख (का अन्तःकरण) नहीं द्रवीभूत होता (और

वह अपनी ही चाल चलता है) । वह बारंबार (अपने बुरे-भले कर्मों के अनुसार) नरक और स्वर्ग में पड़ता रहता है । (किन्तु जब नरक में जाता है तो) अत्यधिक कारुण्य-प्रलाप करता है ॥१२॥

(मन रूपी) साँप को माया का विष जकड़े हुए है । इस द्वैतभाव (दुविधा) ने बहुत से घरों को गलाया है, (नष्ट किया है) । (यह ध्रुव सिद्धान्त है कि) सद्गुरु के बिना (हरी-विषयक) प्रीति नहीं उत्पन्न होती, (जो व्यक्ति हरी की) भक्ति में अनुरक्त है, (वही) प्रसन्न होता है ॥१३॥

शाक्त (माया के उपासक) माया के निमित्त अत्यधिक दौड़ते-धूपते रहते हैं । (किन्तु वे) नाम को भुना कर (भला) सुख कहाँ पा सकते हैं ? वे इस त्रिगुणात्मक (संसार) में खप-खुप जाते हैं; (वे इस संसार-सागर से) पार नहीं उतर पाते हैं ॥१४॥

झूठो को झूठ और झूकर कहना चाहिए । वे भयभीत होकर 'भों-भों' भूँक कर मर जाते हैं । (वे) तन और मन (दोनों ही) से झूठे हैं, वे झूठ ही कमाते हैं (और अपनी इमी) दुर्बुद्धि के कारण (हरी के) दरबार में हार जाते हैं ॥१५॥

(भाग्यवश, यदि) सद्गुरु मिल जाय, तो (वही) (शिष्य के) मन को स्थिर करता है । शरण में पड़े हुए को, (सद्गुरु ही) रामनाम देकर (उसका उद्धार करता है) । (सद्गुरु ही) हरि-नाम रूपी अमूल्य धन देता है; (हरी के) दरबार में हरि-यश ही प्यारा होता है ॥१६॥

राम नाम (का आश्रय लेने से), साधु की शरण में (जाने से) एवं सद्गुरु के वचनों से (शिष्य को) गति-मिति प्राप्त हो जाती है । नानक कहते हैं कि हरि जपने से हरी मेरे मन में (बस गया है) और मिलानेवाले (हरी) ने (मुझे) अपने में मिला लिया है ॥१७॥१८॥१९॥

[१०]

घरि रहू रे मन सुगध इम्राने । राम जपहु अंतरगति धिअने ॥

सालच छोड़ि रचहु अपरंपरि इउ पावहु मुक्ति दुआरा हे ॥१॥

जिसु बिसरिए जसु जोहण लागै । समि सुख जाहि दुखा फुनि आगै ॥

राम नामु जपि गुरुमुखि जीअड़े एहु परम ततु बीचारा हे ॥२॥

हरि हरि नामु जपहु रसु मीठा । गुरुमुखि हरि रसु अंतरि बीठा ॥

अहिनिस् रामु रहहु रंगि राते एहु जपु तपु संजसु सारा हे ॥३॥

राम नामु गुरबचनी बोलहु । संत सभा महि इहु रसु टोलहु ॥

गुरमति खोजि सहहु घरु अपना बहुड़ि न गरम भभारा हे ॥४॥

सनु तीरथि नावहु हरि गुण गावहु । ततु बीचारहु हरि लिब लावहु ॥

अंत कालि जसु जोहि न साकै हरि बोलहु रामु पिआरा हे ॥५॥

सतिगुरु गुरुसु दाता बड दाणा । जिसु अंतरि सासु सु सबदि समाणा ॥

जिस कउ सतिगुरु मेलि मिलाए तिसु जूका जम भै भारा हे ॥६॥

पंच ततु मिलि काइआ कीनी । तिस महि राम रतनु ले चीनी ॥
 आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि बीचारा हे ॥७॥
 सत संतोखि रहहु जन भाई । लिमा गहहु सतिगुर सरणई ॥
 आतमु चीनि परातमु चीनहु गुर संगति इहु निसतारा हे ॥८॥
 साकत कूड़ कपट महि टेका । अहिनिंसि निंदा करहि अनेका ॥
 बिनु सिमिरन आवहि कुनि जावहि अम जोनी नरक मझारा हे ॥९॥
 साकत जम की कारण न छूटे । जम का डंडु न कबहु भूके ॥
 बाकी धरमराइ की लोजै सिरि अफरिआो भक्त अफारा हे ॥१०॥
 बिनु गुर साकतु कहहु को तरिआ । हउमै करता भवजलि परिआ ॥
 बिनु गुर पारु न पावै कोई हरि जपोऐ पारि उतारा हे ॥११॥
 गुर की दाति न भेटे कोई । जिसु बखसे तिसु तारे सोई ॥
 जनम मरण दुखु नेड़ि न आवै मनि सो प्रभु अपर अपारा हे ॥१२॥
 गुर ते भूले आवहु जावहु । जनमि मरहु कुनि पाप कमावहु ॥
 साकत मूड़ अचेत न चेतहि दुखु लागै ता रामु पुकारा हे ॥१३॥
 सुख दुख पुरब जनम के कीए । सो जाएँ जिनि दातें दीए ॥
 किस कउ दोसु देहि तू प्राणी सहु अपना कीआ करारा हे ॥१४॥
 हउमै ममता करवा आइआ । आसा मनसा बंधि चलाइआ ॥
 मेरी मेरी करत किआ ले चाले बिलु लावे छार बिकारा हे ॥१५॥
 हरि की भगति करहु जन भाई । अकथ कथहु मनु मनहि समाई ॥
 उठि चलता ठाकि रखहु घरि अपुने दुखु काटे काटणहारा हे ॥१६॥
 हरि गुर पूरे की ओट परातो । गुरमुखि हरि लिब गुरमुखि जाती ॥
 नानक राम नामि मति ऊतम हरि बखसे पारि जतारा हे ॥१७॥१८॥१९॥

ऐ मूर्ख और अज्ञानी मन (अपने वास्तविक) घर (आत्मस्वरूपी घर) में रहो,
 (कहीं अन्यत्र मत भटको) । अन्तर्मुखी ध्यान से राम को जपो । लालच त्याग कर अपरंपार
 (सब से परे, हरी) में अनुरक्त हो; इस प्रकार (ऐसा करने से तुम) मुक्ति का द्वार पा
 जाओगे ॥१॥

जिस (राम नाम) का विस्मरण होने से यमराज (मनुष्य को दुःख देने के लिए)
 प्रतीक्षा करने लगता है, (और जिसके भूलने से) सारे सुख नष्ट हो जाते हैं और दुःख आगे
 आने लगते हैं, (ऐसे राम नाम को, हे प्राणी, क्यों भूलते हो) ? हे जीव, गुरु के द्वारा राम
 नाम का जप कर; यही परम तत्त्व (और महान्) विचार है ॥२॥

(हे प्राणी), (अमृत रूपी) मीठे रस, हरिनाम का जप करो । गुरु के माध्यम से
 हरि-रस हृदय में (स्पष्ट रूप से) दिखाई पड़ता है, (अनुभव होता है) । (हे साधक),
 अर्हतिश राम के रंग में रंगे रहो । यही जप, तप और संयम का सार है ॥३॥

(हे साधक), गुरु के उपदेशानुसार राम नाम जपो । संतो की सभा में इस (राम नाम-के) रस को ढूँढ़ो । गुरु के द्वारा (अपना वास्तविक) घर (आत्मस्वरूपी घर) प्राप्त कर लो, (ताकि) फिर गर्भ के मध्य में न (आना पड़े) ॥४॥

(ऐ साधक, तुम) सत्य के तीर्थ में स्नान करो और हरि का गुणगान करो । (परम) तत्त्व का विचार करो (और) हरि में लिव (एकनिष्ठ ध्यान) लगाओ । (ऐसा करने पे) यमराज (तुम्हें दुःख देने के लिए) प्रतीक्षा नहीं करेगा, (अतएव हे साधक), प्यारे राम और हरी को बोलो (जपो) ॥५॥

सद्गुरु गुरुष दाता है और बहुत बड़े दान (देनेवाला है) । उस सद्गुरु के अन्तर्गत सत्य (हरी) और (उसका) शब्द—नाम समाया हुआ है । जिस (व्यक्ति) को सद्गुरु (अपने) साथ मिला कर (हरी) से मिलाना है, उसका यमराज का बोझ समाप्त हो जाता है ॥६॥

(हरी ने) पंच तत्त्वों को मिलाकर काया का निर्माण किया है और उस (काया) में राम रूपी रत्न रक्खा है, (अर्थात्, जीवों की काया में परमात्मा का निवास है), (उस राम रूपी अलौकिक रत्न को) पहचानना चाहिए । जीवात्माएँ (आत्म), परमात्मा है और परमात्मा स्वयं भी जीवात्माओं में है । (ऐसा हरी) गुरु की बाणी के विचार द्वारा मिलता है ॥७॥

हे (हरी के) भक्त, भाई, सत्य और सतोप (का आश्रय ग्रहण करो) । सद्गुरु का शरण में पड़ कर क्षमा धारण करो । गुरु की सगति में रहकर (सब से पहले) आत्मा को पहचानो, (तत्पश्चात्) परमात्मा का साक्षात्कार करो, इस प्रकार, (तुम्हारा) निस्तार हो जायगा ॥८॥

शाक्त (माया का उपासक) झूठ और कपट में ही आश्रय (सहारा) लेता है । (वह) अहिंसा (दूसरों की) अनेक प्रकार की निन्दा करता रहता है । बिना (हरी के स्मरण के) (शाक्त लोग) गर्भ-योनि तथा नरक में बारबार आने-जाते रहते हैं ॥९॥

शाक्त के लिए यमराज का भय (कभी) नहीं समाप्त होता । उनके ऊपर यमराज का डंडा कभी नहीं समाप्त होता । उनसे धर्मराज का बाकी हिसाब (पूरा-पूरा) लिया जाता है, अहंकारी लोगों के सिर पर (पाप का) बहुत भारी बोझ है ॥१०॥

बिना गुरु के (भला) बताओ कौन शाक्त तरा है ? (वह शाक्त) तो अहंकार करता हुआ संसार-सागर में ही पड़ा रहता है । बिना गुरु के कोई भी व्यक्ति (संसार-सागर का) पार नहीं पा सकता; (अतएव गुरु की शिक्षा द्वारा) हरि का जप करो, (हरि नाम-जप ही) (तुम्हें) पार उतार देगा ॥११॥

गुरु की दाति—बख्शिश को कोई भेंट नहीं सकता । जिसके (श्रवणों को गुरु) क्षमा कर देता है, उसे वह (हरी) तार देता है । जिसके मन में अपरंपार (सब में परे) प्रभु (वस) गया है, जन्म-मरण के दुःख उस (व्यक्ति) के समीप नहीं आ सकते ॥१२॥

(यदि तुम) गुरु से भूले हुए हो, (तो इस संसार-चक्र में) आने-जाते रहो । जन्म धारण करो और मरो और फिर पाप की कमाई करो । विवेकहीन, मूर्ख शाक्त (माया के उपासक) इस बात को नहीं चेतते; यदि (उनके ऊपर) दुःख पड़ता है, तब राम को पुकारते हैं ॥१३॥

पूर्व जन्म के कर्मानुसार (प्राणियों को) सुख-दुःख प्राप्त होता रहता है । जिस दाता (हरी) ने सुख-दुःख (भोगने को) दिए हैं, वही (इस रहस्य को) जान सकता है । (अतएव) हे प्राणी, तू (दुःख की प्राप्ति के लिए) किसे दांप देता है ? अपने किये हुये (बुरे कर्मों) के अनुसार कठिन (दुःख) सहन कर ॥ १४ ॥

(हे प्राणी), (तू) अहंकार और ममता करता हुआ (इस जगत् में) (अब तक) चला आया ; (किन्तु) आशा और वासना के (बंधनों में) बंधे होने के कारण, यहाँ से चला दिया गया । (तू इस ससार में) 'मेरी मेरी' तो (अवश्य) करता रहा, (किन्तु) भगना बताओ यहाँ से, तू, कोन सी वस्तु ले कर अपने साथ चला ? (माया का) विष और विचारों की छार ही लाद कर (तू) इस संसार से चला गया ॥ १५ ॥

हे भक्त, भाई, हरी की भक्ति करो । मन को मन में ही समाहित कर के अकथनीय (परमात्मा) का कथन करो । (अपने) उठ कर चलने हुये (मन) को— चलायमात्र (मन) को अपने (वास्तविक) घर, (आत्मस्वरूपी घर) में टिकाओ, (ऐसा करने से) (दुःखों को) काटनेवाला हरी (तुम्हारे) दुःखों को काट देगा ॥ १६ ॥

(गुरुमुख ने) हरी रूपी पूर्ण गुरु की शरण पहचान ली है । गुरु-परायण शिष्य ने हरी की लगन गुरु द्वारा जान ली है । हे नानक, रामनाम (के जपने में) मति उत्तम हो जाती है और हरी (साधकों को) क्षमा करके (उन्हें ससार सागर से) पार उतार देता है । ॥ १७ ॥ ॥ ४ ॥ १० ॥

[११]

सरणि परे गुरदेव तुमारी । तू समरथु दइभालु मुरारी ॥
तेरे चोज न जाएँ कोई तू पूरा पुरखु जिघाता हे ॥१॥

तू प्रादि जुगादि करहि प्रतिपाला । घटि घटि रूपु अनूपु दइभाला ॥
जिउ तुषु भावे तिवै चलावहि सभु तेरो कीआ कमाता हे ॥२॥

अंतरि जोति भली जग जीवन । सभि घट भोगै हरि रसु पीवन ॥
आपे तेवै आपे देवै तिहु लोई जगन पित दाता हे ॥३॥

जगतु उपाइ लेलु रचाइआ । पवसै पारणी अगनी जीउ पाइआ ॥
बेही नगरी नउ दरवाजे सो बसबा गुपतु रहाता हे ॥४॥

चारि नदी अगनी असराला । कोई गुरुमुखि बूझै सबवि निराला ॥
साकत दुरमति डूबहि दाभहि गुरि राखे हरि लिब दाता हे ॥५॥

अपु तेसु वाइ पृथमी आकासा । तिन महि पंच तनु घरि वासा ॥
सतिगुर सर्बादि रहहि रंगि दाता तजि माइआ हउमै आता हे ॥६॥

इह मनु भीजै सबवि पतीजै । बिनु नावै किआ टेक टिकीजै ।
अंतरि चोरु मुहै घर बंदरु इनि साकति द्रुतु न जाता हे ॥७॥

बुंदर द्रुत भूत भीहाले । लिखोतालि करहि बेताले ॥
सबब सुरति बिनु आवै जावै पति सोई आवत जाता हे ॥८॥

कृत् कलरु तनु भसमै डेरी । बिनु नावै कैसी पति तेरी ॥
 बाधे मुकति नाही जुग चारे जमकंकरि कालि पराता हे ॥६॥
 जमदरि बाधे मिलहि सजाई । तिसु अपराधी गति नही काई ॥
 करणपलाब करे बिलसावै जिउ कुंडी मोनु पराता हे ॥१०॥
 साकतु फासी पड़े इकेला । जम बसि कीम्रा अंधु दुहेला ॥
 राम नाम बिनु मुकति न सूझै आनु कालि पचि जाता हे ॥११॥
 सतिगुर बाकु न बेली कोई । ऐधै ओधै राखा प्रभु सोई ॥
 राम नामु वेवै करि किरपा इउ सलल सलल मिलाता हे ॥१२॥
 भूले सिख गुरु समझाए । उभड़ि जावे मारगि पाए ॥
 तिसु गुर सेवि सदा बिनु रातो दुख भंजन संगि सखाता हे ॥१३॥
 गुर की भगति करहि किम्रा प्राणी । ब्रह्मै इंद्रि महेसि न जाणी ॥
 सतिगुरु अलखु कहहु किउ लखीऐ जिसु बखसे तिसहि पछाता हे ॥१४॥
 अंतरि प्रेमु परापति दरसनु । गुरबाणी सिउ प्रीति सु परसनु ॥
 अहिनिनि निरमल जोति सबाई घटि दीपकु गुरमुखि जाता हे ॥१५॥
 भोजन गिआनु महारसु मोठा । जिनि चाखिआ तिनि दरसनु डीठा ॥
 दरसनु देखि मिले बैरागी मनु मनसा भारि समाता हे ॥१६॥
 सतिगुरु सेवहि से परधाना । तिन घट घट अंतरि ब्रह्म पछाना ॥
 नानक हरि जसु हरि जन की सगति दीजै जिन सतिगुर हरि प्रभु जाता हे ॥
 ॥१७॥५॥११॥

हे गुरुदेव, हम तेरी शरण में पड़े हैं। तू समर्थ है, दयालु है और परमात्मा (मुरारी) है। (हे प्रभु), तेरे कौन-कौन को कोई भी नहीं जान सकता, तू पूर्ण पुरुष और विधाता (सिरजनहार) है ॥ १ ॥

तू आदि काल तथा युग-युगान्तरों से (सारे प्राणियों की) प्रतिपाल करता आया है। हे दयालु (हरी) तेरा अनूप (अद्वितीय) रूप घट-घट में (व्याप्त है)। (हे प्रभु), जैसा तुझे अच्छा लगता है, (तू) उसी प्रकार (प्राणियों को प्रेरित करके) चलाता है। सभी (प्राणी तेरे) किए हुए के अनुसार (अपने-अपने कार्यों को) कर रहे हैं ॥ २ ॥

हे जगत् के जीवन हरी, (तेरी) आन्तरिक ज्योति भली प्रकार से (ससार के प्राणियों के अन्तर्गत) व्याप्त हैं। हरी ही सारे शरीरों को भोगता है और उनके स्वाद को ग्रहण करता है। हरी आप ही लेता है और आप ही देता हैं, वही संसार के तीनों लोकों का पिता और दाता है ॥ ३ ॥

(हरी ने) जगत् उत्पन्न करके खेल रचा है; पवन, जल और अग्नि (आदि पंच तत्त्वों) से प्राणियों का निर्माण किया है। इस देह रूपी नगरी में नव दरवाजे (दो कानों के छिद्र, दो आँखें, दो नासिका के द्वार, एक मुख, एक गुदा द्वार और एक शिश्न-द्वार) भी (उसी ने) बनाए हैं, दशम द्वार (बना कर) उसे गुप्त रक्खा है ॥ ४ ॥

अग्नि की भयानक चार नदियाँ हैं—हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध—

[यथा—हंसु हेतु लोभु क्रोभु चारे नदीआ अग्नि ।

पवहि दम्हहि नानका तरीऐ चरनी लगि ॥

महला १, बार, माझ ।]

(गुरु के) निराले (अद्वितीय) शब्द द्वारा कोई विरला ही गुरुमुख (इस तथ्य को) समझता है । दुर्बुद्धि शाक्त (माया के उपासक उपर्युक्त नदियों में) डूबते हैं और दग्ध होते हैं; (जिसकी) गुरु रक्षा करता है, (वह उपर्युक्त नदियों से बच कर) हरी की लिव में अनुरक्त रहता है ॥ ५ ॥

जल, अग्नि, पवन, पृथ्वी और आकाश (इन पंच भूतों के संयोग से हरी ने प्राणियों का शरीर बनाया है । इन (प्राणियों) में से जो पंच तत्व, (तात्पर्य यह कि जो सत्वगुणी) है उनके बीच गुरुमुखों का निवास है । गुरुमुख सद्गुरु के उपदेश के रंग में रंगे होते हैं, (वे) माया, अहंकार और भ्रान्ति (भ्रम) का त्याग कर देने हैं ॥ ६ ॥

यह मन (जब) शब्द—नाम में विश्वास करता है, तभी (प्रेम-रस में) भोजता है । बिना नाम के (भला) यह किता आसरे में टिक सकता है ? अहंकार रूपी भीतरी चोर शरीर रूपी गृह को लूट रहा है, किन्तु इस शाक्त को, (मायासक्त को) उस दूत—चोर का ज्ञान नहीं है ॥ ७ ॥

(कामादिक बड़े ही) द्वन्द्वालु (भगड़ालू) दूत हैं और भयानक भूत हैं । वे बंसुरे भूतों की भाँति खीचातानी—संघर्ष कर रहे हैं, (और जिसके फलस्वरूप मनुष्य कामादिकों का जबर्दस्ती शिकार हो जाता है) । शब्द—नाम की सुरति के बिना (मनुष्य) (इस संसार-चक्र में) आता-जाता रहता है, और इस जाने-जाने में वह (अपनी) प्रतिष्ठा खो देता है ॥ ८ ॥

(यह) झूठा शरीर रेत और भस्म की ढेर है, (जो शीघ्र ही ढह जाता है), बिना नाम का (आश्रय लिए, भला) तेरी किस प्रकार प्रतिष्ठा होगी ? (ऐसे लोग) (माया में) बँधे हैं, चारों युगों में उनकी मुक्ति नहीं है, यम के सेवक काल ने उन्हें पहचान लिया है, (अतः उन्हें छोड़ नहीं सकता) ॥ ९ ॥

(मनमुख) यमराज के दरवाजे पर बाँधा जाता है और उसे सजा मिलती है । ऐसे अपराधी की कोई (सद्-) गति नहीं होती । (वह मजा पाने पर) काष्ण्य-प्रलाप करके (उसी प्रकार) बिलखता है, जिम प्रकार मछली काँटे में फँस कर (दुखी होती है) ॥ १० ॥

शाक्त (मायासक्त) अकेले ही (यमराज की) फाँसी में पड़ता है । यमराज उसे (अपने) वश में करके अंधा और दुखी (बनाते हैं) । राम-नाम के बिना मुक्ति (की कोई भी विधि) सम्भव नहीं पड़ती, (वह) आजकल में (शीघ्र ही) दग्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

सद्गुरु के बिना (मनुष्य का) कोई भी सहायक नहीं होता । वही प्रभु (सद्गुरु) यहाँ (इस संसार में) और वहाँ (परलोक में) रक्षा करता है । (वह सद्गुरु) कृपा करके रत्ननाम देता है (और रामनाम में मनुष्य को उसी प्रकार मिला देता है), जैसे पानी से पानी मिलकर (एक हो जाता है) ॥ १२ ॥

भूले हुए शिष्य को गुरु ही समझता है; कुमार्ग पर जाते हुए (उम शिष्य को) (गुरु ही ठीक) मार्ग पर लगाता है । (जो गुरु) दुःखों को दूर करनेवाला और साथ का सहायक है, (हे साधक) उस गुरु की सदा दिनरात सेवा करो ॥ १३ ॥

साधारण (प्राणी) गुरु की भक्ति क्या कर सकते हैं ? गुरु की सच्ची भक्ति उनकी पहुँच में पड़े है । ब्रह्मा, इन्द्र और महेश भी (गुरु की सच्ची भक्ति का मर्म) नहीं समझ सके । (ऐसी परिस्थिति में) अलक्ष्य सद्गुरु को किस प्रकार लखा जाय, (जाना जाय) ? जिसके ऊपर (प्रभु) (अपनी) कृपा कर दे, वही (सद्गुरु को) पहचान सकता है ॥ १४ ॥

आंतरिक प्रेम से ही (गुरु का) दर्शन प्राप्त होता है । जिसे गुरु की बाणी में प्रीति हो, (उसे सद्गुरु का) स्पर्श—मेल प्राप्त होता है । ऐसे गुरुमुख को प्रत्येक स्थान पर, और प्रत्येक समय निर्मल ज्योति (फेरी हुई दिखाई पड़ती है), (और उसके) हृदय में भी (ज्ञान का) दीपक सदैव जलता हुआ दिखाई पड़ता है ॥ १५ ॥

ज्ञान का भोजन परम स्वादिष्ट और अत्यन्त मीठा होता है । जिन (भाग्यशालियों) ने इसका आस्वादन किया है, (उन्होंने) इसका दर्शन भी किया है । बेगामी (विरक्त, त्यागी) (गुरु का) दर्शन करके (परमात्मा से) मिलते हैं, (वे) ज्योतिर्मय मन के द्वारा वासनाओं—इच्छाओं को मार कर (पूर्ण ब्रह्म में) समाहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥

(जो भाग्यशाली) सद्गुरु की आराधना करते हैं, वे प्रधान (श्रेष्ठ) होते हैं । वे प्रत्येक घर (शरीर—जीव) के अन्तर्गत ब्रह्म को पहचान लेते हैं । (हे प्रभु), नानक को हरी का यश और उन हरि-भक्तों की संगति दे, जिन्होंने सद्गुरु के द्वारा प्रभु हरी को पहचान लिया है ॥ १७ ॥ ५ ॥ ११ ॥

[१२]

साचे साहिब सिरजणहारे । जिन घर चक्र धरे बीचारे ॥

आपे करता करि करि बेलै साचा बेपरवाहा हे ॥१॥

बेकी बेकी जंत उपाए । दुइ पंथी दुइ राह चलाए ॥

गुर पूरे विगु मुकति न होई सचु नामु जपि लाहा हे ॥२॥

पड़हि मनमुख पर बिधि नही जाना । नाम न बूझहि भरमि भुलाना ॥

ले कै बढी बेनि उगाही दुरमति का गलि फाहा हे ॥३॥

सिमृति सासत्र पड़हि गुराणा । वादु बखारणहि ततु न जाणा ॥

विगु गुर पूरे ततु न पाईऐ सच सूचे सचु राहा हे ॥४॥

सभ सालाहे सुणि सुणि आखै । आपे दाना सचु पराखै ॥

जिन कउ नवरि करे प्रभु अपनी गुरमुखि सबदि सलाहा हे ॥५॥

सुणि सुणि आखै केती बाणी । सुणि कहीऐ को अंतु न जाणी ॥

जा कउ अलख ललाए आपे अकथ कथा सुणि ताहा हे ॥६॥

जनमे कउ बाजहि बाधाए । सोहिलड़े अगिआनी गाए ॥

जो जनमै तिसु सर पर भरणा किरतु पइआ सिरि साहा हे ॥७॥

सजोगु बिजोगु मेरै प्रभि कीए । सुसटि उपाइ दुखा सुख दीए ॥
 दुख सुख ही ते भए निराले गुरमुखि सोखु सनाहा रे ॥८॥
 नोके साचे के वापारी । सखु सजवा लै गुर बीचारी ॥
 सखा बखरु जिसु धनु पलै सबदि सचै ओमाहा हे ॥९॥
 काची सजदी तोटा आवै । गुरमुखि बरासु करे प्रभ भावै ॥
 पूंजी साबतु रासि सलामति चूका जम का फाहा हे ॥१०॥
 समु को बोले आपण भाणै । मनमुख दूजै बोलि न जाणै ॥
 अंधले की मति अंधली बोली आइ गइआ दुखु ताहा हे ॥११॥
 दुख महि जनमै दुख महि मरणा । दुखु न मिटै बिनु गुर की सरणा ॥
 दूखी उपजै दूखी बिनसै किआ लै आइआ किआ लै जाहा हे ॥१२॥
 सची करणी गुर की सिरकारा । आवगु जागु नही जम धारा ॥
 डालि छोडि तनु मूल पराता मनि साचा ओमाहा हे ॥१३॥
 हरि के लोग नही जमु मारै । ना दुखु देखहि पथि करारै ॥
 राम नामु घट अंतरि पूजा अवरु न दूजा काहा हे ॥१४॥
 ओड़ न कथनै सिफति सजाई । जिउ तुषु भावहि रहहि रजाई ॥
 दरगह पैधे जानि सुहेले हुकमि सचे पातिसाहा हे ॥१५॥
 किआ कहोए गुण कथहि घनेरे । अंतु न पावहि बडे बडेरे ॥
 नानक साखु मिलै पति राखहु तू सिरि साहा पातिसाहा हे ॥१६॥६॥१२॥

साहब ही सच्चा सिरजनहार, जिसने धरती का चक्र (तात्पर्य यह है कि गोल पृथ्वी को) बड़े विचारपूर्वक धारण कर रखा है । वह सच्चा और बेपरवाह कर्तापुरुष (सृष्टि) रच-रच कर उसकी देखभाल (संभाल) करता है ॥ १ ॥

(उसी कर्ता पुरुष ने) पृथक्-पृथक् जन्तुओं (प्राणियों) को उत्पन्न किया है । उसी ने गुरुमुख और मनमुख) दो प्रकार की शिक्षावाले (तथा भले और बुरे) दो प्रकार के मार्ग चलाए हैं । बिना पूर्ण गुरु के मुक्ति नहीं हो सकती ; (परमात्मा के) सच्चे नाम को जपकर लाभ (प्राप्त करे) ॥ २ ॥

मनमुख (शास्त्रादिक) का अध्ययन (तो अवश्य) करते हैं, पर (वे) (जीवन बिताने की) युक्ति नहीं जानते । (वे) नाम को नहीं समझते हैं, (जिसके फलस्वरूप) भ्रम में भटकते रहते हैं । (वे मनमुख) रिश्वत लेकर गवाही देते हैं, (जिससे ऐसे) दुर्बुद्धियों के गले में (भय की) फाँसी पड़ती है ॥ ३ ॥

(सासारिक मनुष्य) स्मृतियों, शास्त्रों और पुराणों को तो पढ़ते हैं और तर्क-वितर्क (वाद-विवाद) का वर्णन करते हैं; (किन्तु वास्तविक) तत्व को नहीं जानते हैं । बिना पूर्ण गुरु के तत्व नहीं पाया जाता ; सच्चे और पवित्र आचरणवालों ने सत्य को (अपना) मार्ग बनाया है ॥ ४ ॥

सभी लोग (परमात्मा के सम्बन्ध में) सुन-सुनकर (उसकी) स्तुति करते हैं (और उसके सम्बन्ध में) कथन करते हैं ; (किन्तु उसकी महिमा का अंश मात्र भी वर्णन नहीं कर

पाते हैं) । (प्रभु) आप ही जाता है (और वही) सत्य को (सच्चे रूप में) परख सकता है । प्रभु (हरी) जिन (भाग्यशालियों) के ऊपर अपनी कृपादृष्टि करता है, (वे) गुरु द्वारा नाम (शब्द) की स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

(कितने ही मनुष्य) (प्रभु हरी के संबंध) में सुन-सुन कर कितनी ही वाणी का कथन करते हैं । (किन्तु) सुनने और कहने से कोई भी (उस परमात्मा का) अन्त नहीं जान सकता । जिसे (प्रभु) स्वयं अवलोक्य (अपने को) लक्षित करा दे, उसी को अकथ हरी को कथन करनेवाली बुद्धि प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

(मनुष्यों के) जन्म लेने पर (बाजे) बजते हैं और बधाइयाँ मिलती हैं; अज्ञानी लोग प्रसन्नता के गीत (भी) गाते हैं । (किन्तु वे लोग यह नहीं समझते) कि (जो व्यक्ति) जन्म लेता है, उसे मरना भी अवश्य होता है । जिस प्रकार के कर्म है, उसी प्रकार की लग्न (मृत्यु की तिथि) लिखी रहती है ॥ ७ ॥

(परमात्मा से मिलन और विरह (की अवस्था की सृष्टि) मेरे प्रभु ने ही की है । (उसी प्रभु ने) सृष्टि उत्पन्न करके (जीवों को उनके कर्मानुसार) सुख और दुःख भी दिए हैं । (आदर्श शिष्य) गुरु के द्वारा शील का कवच (धारण कर) दुःख (एवं) सुख में निर्लस हो जाते हैं ॥ ८ ॥

सत्य (परमात्मा) के व्यापारी साफ-सुथरे (पवित्र) होते हैं । गुरु के द्वारा विचार कर (वे) सत्य रूपी सोदे का धन (जिसके) पल्ले है (पास है), सच्चे शब्द द्वारा (उसके अन्तर्गत अपूर्व) उत्साह होता है ॥ ९ ॥

कच्चे (सासारिक) सोदे में कमी आती है । (यदि कोई साधक) गुरु के द्वारा सच्चे सोदे का व्यापार करे, (तो वह) प्रभु को अच्छा लगता है । (उस व्यक्ति की) पूँजी (और) राशि पूर्ण (एवं) सुरक्षित रहती है (और उसके लिए) यम के बंधन समाप्त हो जाते हैं ॥ १० ॥

नभी व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार बोलते हैं । द्वैतभाव में होने के कारण मनमुख बोलना भी नहीं जानता ; (वह जभी बोलता है, तभी द्वैतभाव की बातें ही बोलता है) । (माया में) अंधे (व्यक्ति) की बुद्धि और वचन अंधे ही होते हैं, उन्हे जन्म धारण करने के और मरने के दुःख (सदैव) बने रहते हैं ॥ ११ ॥

(मनमुख) दुःख में ही उत्पन्न होता है और दुःख में ही मरता है । गुरु की शरण में गए बिना, (उसका) दुःख (कभी) नहीं मिटता । (इस प्रकार वह) दुःख में ही उत्पन्न होकर दुःख में ही नष्ट हो जाता है ; (वह इस संसार में) क्या लेकर आया है और क्या लेकर (यहाँ से) चला जाता है ? ॥ १२ ॥

(जो व्यक्ति) गुरु की प्रजा हैं, (तात्पर्य यह कि जो लोग गुरु के होकर रहते हैं,) (उनकी) करनी सच्ची होती है । उनके ऊपर यम (के कानून) की धारा नहीं लगती ; (वे यम के कानून की धारा के अन्तर्गत इस संसार में न आते हैं और न जाते हैं) क्योंकि वे गुरु की दृक्मत् में हैं, अतः (यमराज की दृक्मत् से परे हो जाते हैं) । उसने (माया रूपी) डाली को त्याग कर (परमात्मा रूपी) मूल को पहचान लिया है, (इसीलिए उसके) मन में (अपूर्व) उल्लास है ॥ १३ ॥

हरि के लोगो (भक्तो) को यम नहीं मारता है (दण्ड देता है) । (वे भक्त) कठिन मार्ग के दुःखो को भी नहीं देखते हैं । (उनके) घट के अन्तर्गत रामनाम की (निरन्तर) पूजा (होती रहती है) ; कोई और दूसरी (वस्तु) (उनके हृदय में) नहीं होती ॥ १४ ॥

हरी की सुन्दर (सजी हुई) प्रशंसा का कोई अन्त नहीं है । (हे हरी), जैसा तुझे अच्छा लगे, तेरी ही मर्जी में रहना चाहिए । (जो व्यक्ति हरी के हुक्म और रजा में रहते हैं, वे) सच्चे पातशाह (बादशाह) के हुक्म से (उसके) दरबार में सम्मान का पहनावा पहन कर सुख से जाते हैं ॥ १५ ॥

(अनेक प्रकार से हरी के गुण वर्णन किए जाते हैं, किन्तु) उन गुणों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है ? बड़े से बड़े (व्यक्ति भी) (उस हरी के गुणों का) अन्त नहीं पा सकते हैं । नानक कहते हैं (कि हे प्रभु), तू शाहों का श्रेष्ठ पातशाह है, (हे प्रभु, ऐसी कृपा कर जिससे) सत्य (दूरो) की प्राप्ति हो, (मेरी) प्रतिष्ठा रख ॥ १६ ॥ ६ ॥ १२ ॥

[१३]

मारू, महला १, दखणी

काइआ नगर नगर गड़ अदरि । साचा वासा पुरि गगनंदरि ॥

असधिक धानु सदा निरमाइलु आपे आपु उपाइदा ॥१॥

अंदरि कोट छजे हट नाले । आपे लेवै बसतु समाले ।

बजर कपाट जड़े जड़ि जालै गुर सबदी खोलाइदा ॥२॥

भीतरि कोट गुफा घर जाई । नउ घर थापे हुकमि रजाई ॥

दसवै पुरलु भलेलु अपारी आपे भललु ललाइदा ॥३॥

पउण पाणी अगनी इक वासा । आपे कीतो लेलु तमासा ॥

बलदी जलि निवरे किरपा ते आपे जलनिधि पाइदा ॥४॥

घरलि उपाइ धरी घरमसाला । उतपति परलउ आपि निराला ॥

पवणै लेलु कीआ सभ थाई कला लिचि ढाहाइदा ॥५॥

भार अठारह मालणि तेरी । चउरु दुलै पवणै लै फेरी ॥

चंडु सूरलु बुइ दीपक राखे ससि घरि सूरु समाइदा ॥६॥

पंखी पंच उडरि नही धावहि । सफलिओ बिरलु अमृत फलु पावहि ॥

गुरमुखि सहजि रबै गुण गावै हरि रसु जोग चुगाइदा ॥७॥

फिलिमिलि फिलकै चंडु न तारा । सूरज किरणि न बिहुलि गैरारा ॥

अकथी कथउ चिहनु नही काई पुरि रहिआ मनि भाइदा ॥८॥

पसरी किरणि जोति उजिआला । करि करि देखै आपि दइआला ॥

अनहुदु रुणभुणकारु सदा धुनि निरभउ कै घरि वाइदा ॥९॥

अनहुदु बाजे अमु भउ भाजे । सगल विआपि रहिआ प्रभु छाजे ॥

सभ तेरो तू गुरमुखि जाता दरि सोहै गुण गाइदा ॥१०॥

आदि निरंजनु निरमलु सोई । अबरु न जाणा दूजा कोई ।
 एकंकारु वसे मनि भावै हउमै गरनु गवाइदा ॥११॥
 अंमंतु पीछा सतिगुरि दीछा । अबरु न जाणा दूआ तीछा ॥
 एको एकु सु अपरपरंपरु परलि लजाने पाइदा ॥१२॥
 गिआनु धिआनु सनु गहिर गंभीरा । कोइ न जाणै तेरा चीरा ॥
 जेतो है तेती तुघु जाचै करमि मिले सो पाइदा ॥१३॥
 करसु घरसु सनु हायि तुमारै । बेपरवाहु अलुट भंडारै ॥
 तू बड़आलु किरपालु सदा प्रभु आपे मेलि मिलाइदा ॥१४॥
 आपे देखि विखावै आपे । आपे थापि उयापे आपे ॥
 आपे जोड़ि बिछोड़े करता आपे मारि जीवाइदा ॥१५॥
 जेतो है तेती तुघु अंवरि । देखहि आपि बैसि बिजमंवरि ॥
 नानकु सानु कहै बेनंती हरि दरसनि सुनु पाइदा ॥१६॥१॥१३॥

नगरो और गडो के बीच (एक) काया ही (वास्तविक) नगर है । सच्चे (हरी) का निवास गगनंदर पुरी (दशम द्वार) में है । (वह दशम द्वार) स्थिर स्थान है और सदैव निर्मल है । (प्रभु) अपने आप को स्वयं ही उस स्थान पर टिकाता है ॥ १ ॥

(शरीर रूपी) गढ़ के अन्तर्गत (अनेक) बाजार भी साथ-साथ सजे हैं । (प्रभु) आप ही वस्तु ग्रहण करता है (और) आप ही उसे सँभालता है । (उस शरीर रूपी गढ़ में) वस्त्र-कपाट जड़े हैं , (वह हरी) आप ही दरवाजे बंद करना जानता है और गुरु के शब्द द्वारा आप ही दरवाजे खोलता भी है ॥ २ ॥

(शरीर रूपी) गढ़ के अन्तर्गत (दशम द्वार रूपी) युफा है, (जिसे हरि ने) घर का स्थान (बनाया है) । (उसी हरी ने) अपने हुक्म और मर्जी से नी-गोलक (रूपी) धरो (दो नासिका के छिद्र, दो आँखें, दो कान, एक मुख, एक शिश्न-द्वार और एक मल-द्वार) की स्थापना की है । दशम (द्वार) में अलक्ष्य और अपार पुरुष (स्वयं निवास) करता है ; वह अलक्ष्य (पुरुष) आप ही अपने को दिखाता है ॥ ३ ॥

पवन, जल, और अग्नि (आदि पंच तत्वों के अन्तर्गत) एक (जीवात्मा) का निवास है । (इस प्रकार) (सृष्टि रचना के) खेल-तमाशे (प्रभु) ने आप ही किया है । जो जलती हुई अग्नि जल से बुझ जाती है, उसी (अग्नि को बड़वाग्नि के रूप में) प्रभु ने अपनी कृपा से समुद्र में डाल रक्खा है, (और वह ज्यों की त्यों बनी रहती है, यही उसकी महत्ता है) ॥ ४ ॥

(प्रभु हरी ने) पृथ्वी रच कर उसे धर्म कमाने के रूप में बनाया है । वह स्वयं उत्पत्ति और प्रलय करता है, (फिर भी) निर्लेप रहता है । (हरी ही ने) द्वालों (पवन) का खेल प्रत्येक स्थान में (और प्रत्येक जीव के अन्तर्गत) रचा है ; (यदि वह) इस शक्ति को (प्राणी के अन्तर्गत से) खींच ले, तो वह बह कर ढेर हो जाता है ॥ ५ ॥

(समस्त वनस्पतियों का) अठारह अडर (तेरे शरीर में मलने के लिये) लेप है । [प्राचीन विचार है कि प्रत्येक पेड़-पौदे का एक-एक पत्ता लेकर एकत्र करके तौला जाय, तो उनका वजन अठारह भार होता है । एक भार का वजन पाँच कच्चे मन के बराबर होता है] । पवन का फेरी लेना (तेरे ऊपर) जँवर करना है । चंद्रमा और सूर्य तेरे दो दीपक के रूप में

रखे गये हैं, और चन्द्रमा के घर में सूर्य आता है, (भाव यह है कि सूर्य से चन्द्रमा प्रकाश ग्रहण करता है) ॥ ६ ॥

(गुरुमुख रूपी वृक्ष के) पाँच (ज्ञानेन्द्रिय रूपी) पक्षी उड़ कर (कहीं) दौड़ते नहीं हैं । (वे गुरुमुख रूपी) वृक्ष फलयुक्त हैं और (नाम)—अमृतफल को पाते हैं । गुरुमुख सहज भाव से (हरी में) रमण करता है और (उसका) गुण गाता है ; (वह सदैव) हरिरस के चारे को चुगता है ॥ ७ ॥

(दशम द्वार अथवा हरी का स्थान) चमक-दमक से प्रकाशित होता रहता है, वहाँ न चन्द्रमा है, न तारागण ; (वहाँ) न सूर्य की किरणें हैं, न बिजली है (और) न आकाश है । (मैं तो) उस अकथनीय अवस्था का वर्णन कर रहा हूँ, जिसका कोई भी चिह्नादिक नहीं है । (वह) मन को अच्छा लगनेवाला (हरी सर्वत्र) परिपूर्ण है ॥ ८ ॥

(ज्ञान की) किरणें (सर्वत्र) फैली हुई हैं, (और उनकी) ज्योति का (सर्वत्र) प्रकाश है । दयालु (हरी ब्रह्मज्ञान की किरणें) रच-रच कर स्वयं (उन्हें) देखता है । (इस ब्रह्मतान की ज्योति के प्रकट होने से) अनाहत शब्द की मोठी ध्वनि (रूपाभुणकार) निर्भय हरी के घर में सदैव बजती रहती है ॥ ९ ॥

(हरी के साक्षात्कार होने से) और अनाहत शब्द के बजने से भ्रम और भय (दूर) भग जाते हैं । जो प्रभु सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, वह (सभी लोगो की) छाया करता है, (रक्षा करता है) । (समस्त संसार की वस्तुएँ) तेरी ही हैं ; तू मुखद्वारा जाना जाता है ; (जो व्यक्ति गुरु द्वारा तुझे जान लेते हैं, वे) वे तेरा गुणगान करते हुए, (तेरे) दरवाजे पर सुशोभित होते हैं ॥ १० ॥

वह (हरी) आदि है, निरंजन (माया से रहित है) और निर्मल है । (मैं तो उस हरी को छोड़ कर) किसी और को नहीं जानता । (यदि) एक (ब्रह्म हृदय में) बस जाय, (तो) मन को (बहुत) अच्छा लगता है । (प्रभु को हृदय में बसाने से साधक अपने) अहंकार और गर्व को नष्ट कर देता है ॥ ११ ॥

(मैंने) सदगुरु के देने से (हरी रूपी) अमृत पी लिया, (जिसके फलस्वरूप एक ब्रह्म दिखाई देने लगा), (अतः अब मैं) दूसरे तीसरे को नहीं जानता । (वह हरी) एक ही है, वह अनन्त और परे से परे है । (वह अपने भक्तरूपी खरे सिककों को) परख कर (अपने) खजाने में डाल देता है ॥ १२ ॥

(वास्तव में) सच्चे (हरी के) ज्ञान और ध्यान (अत्यंत) गहरे और गम्भीर है । (हे प्रभु), तेरे विस्तार को कोई भी नहीं जान सकता । (इस संसार में) जितने भी हैं, उतने तुम्ही से याचना करते हैं । (जिसके ऊपर तेरी) कृपा होती है, वही (तुम्हें) पाता है ॥ १३ ॥

(हे प्रभु), कम, धर्म और सत्य (सब कुछ) तेरे ही हाथ में है । (हे) बेपरवाह (हरी) (तेरा) भाण्डार अक्षय है । (हे) प्रभु, तू सदैव ही (प्राणियों पर) दयालु (और) कृपालु है, (तू) आप ही (अपने) में मेल मिलाता है ॥ १४ ॥

(हे स्वामी), (तू) आप ही देखता है (और) आप ही (दूसरों को) दिखाता है । (तू) आप ही स्थापित करता है और आप ही नाश करता है । (तू) आप ही संयोग करता

हे और आप ही वियोग करता है; हे कर्त्तापुरुष, (तू) आप ही मारता है और आप ही जिलाता है ॥ १५ ॥

(हे हरी), (संसार की) जितनी (वस्तुएं) हैं, सब तेरे ही अन्तर्गत हैं । (तू) इस (शरीर रूपी) पक्के मन्दिर में बैठकर (सब कुछ) देखता रहता है । नानक सच्ची विनती करके कहता है (कि मुझे तो) हरि के दर्शन से ही मुख प्राप्त होता है ॥१६॥१॥१३॥

[१४]

दरसन पावा जे तुष्ट भावा । भाइ भगति साचे गुण गावा ॥
तुष्ट भाए तू भावहि करते आपे रसन रसाइदा ॥१॥
सोहनि भगत प्रभू दरबारे । मुक्तु भए हरि दास तुमारे ॥
आपु गवाइ तेरै रंगि राते अनदिनु नामु धिआइदा ॥२॥
ईसरु ब्रह्मा बेबी बेवा । इंद्र तपे मुनि तेरी सेवा ॥
जती सती केते बनवासी अंतु न कोई पाइदा ॥३॥
विराजु जाणाए कोइ न जाणै । जो किछु करे सु आपण भाणै ॥
लख चउरासीह जोअ उपाए भाणै साह लवाइदा ॥४॥
जो तिसु भावै सो निहचउ होवै । मनमुलु आपु गणाए रोवै ॥
नावहु भुला ठउर न पाए आइ जाइ दुलु पाइदा ॥५॥
निरमल काइआ ऊजल हंसा । तिसु बिचि नामु निरंजन अंसा ॥
सगले दूख अंमृतु करि पोवै बाहुड़ि दुलु न पाइदा ॥६॥
बहु सादहु दूख परापति होवै । भोगहु रोगु सु अंति विगोवै ॥
हरखहु सोगु न मिटई कबहु विरु भाणै भरमाइदा ॥७॥
गिआन बिहरणी भवै सबाई । साचा रवि रहिआ लिव लाई ॥
निरभउ सबदु गुरू सनु जाता जोती जोति मिलाइदा ॥८॥
अटलु अडोलु अतोलु मुरारे । खिन महि डाहे केरि उसारे ॥
रूपु न रेखिआ मिति नही कीमति सबदि भेदि पतीआइदा ॥९॥
हम वासन के दास पिआरे । साधिक साच भले बीचारे ॥
मंने नाउ सोई जिएण जासी आपे साचु हड़ाइदा ॥१०॥
पले साचु सचे सचिआरा । साचे भावै सबदु पिआरा ॥
अिभवणि साचु कला धरि थापी साचे ही पतीआइदा ॥११॥
बडा बडा आलै सभु कोई । गुर बिनु सोभी किनै न होई ॥
साचि मिले सो साचे भाए ना बीछुड़ि दुलु पाइदा ॥१२॥
घुरहु बिछु'ने धाही रु'ने । मरि मरि जनमहि मुहलति पु'ने ॥
जिसु बलसे तिसु बे बडिआई मेलि न पछोताइदा ॥१३॥

आपे करता आपे भुक्ता । आपे तुष्टता आपे मुक्ता ॥

आपे सुकति दानु सुकतीसरु ममता मोहू सुकाइदा ॥१४॥

दाना कै स्तिरि दानु बीचारा । करणकारण समरसु अपारा ॥

करि करि बेखै कीता अपस्या करणी कार कराइदा ॥१५॥

से गुण गावहि साचे भावहि । तुभ ते उपवहि तुभ माहि समावहि ॥

नानक साचु कहै बेनंती मिलि साचे सुख पाइदा ॥१६॥२॥१४॥

यदि तुम्हें रुचता है, तो (तेरा) दर्शन प्राप्त होता है और भाव-भक्ति से सच्चा गुणगान होता है । (हे) कर्ता-पुरुष; तू अपनी मर्जी से (प्राणियों को) अच्छा लगता है; (तू) आप ही रसना के अन्तर्गत रस उत्पन्न करता है ॥

(हे) प्रभु, तेरे दरबार में (तेरे) भक्त सुशोभित होते हैं । (हे स्वामी), तेरे भक्त (तेरा चिन्तन करके) मुक्त हो गए हैं । (वे भक्त) अपने आपेपन को नष्ट कर तेरे रंग में अनुरक्त हुए हैं और प्रतिदिन (तेरे) नाम का ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

शिव, ब्रह्मा, देवी, देवता, इन्द्र, तपस्वी, मुनि (आदि) तेरी सेवा करते हैं । यती, सत्वगुणी एवं कितने ही वनवासी (तेरा ध्यान करते हैं), किन्तु कोई भी तेरा अन्त नहीं पाता ॥ ३ ॥

बिना (प्रभु के) जनाए, कोई भी (उसे) नहीं जान पाता है । हरी जो कुछ भी करता है, अपनी मर्जी से करता है । (उसी प्रभु ने) चौदासी लाख (योनियों के) जीवों की उत्पत्ति की है और अपनी आज्ञा से ही सभी (प्राणियों) से श्वास लिवाता है ॥ ४ ॥

जो (कुछ) उस (हरी) को रुचता है, वह निश्चित रूप से होता है । मनमुख अपने आप गणना करता है, (इसीलिए वह) रोता है । (वह मनमुख) नाम को भूल कर (कही भी) स्थान नहीं पाता । वह (संसार-चक्र में) घ्रा-जा कर दुःख पाता रहता है ॥ ५ ॥

निर्मल काया में उज्ज्वल (पवित्र) हंस (जीवात्मा) का (निवास है) । उस (जीवात्मा) के अन्तर्गत निरंजन (माया से रहित) नाम का अंश (विद्यमान है) । (जो भ्राम्यशाली व्यक्ति उस नाम का साक्षात्कार कर लेता है, (वह) समस्त दुःखों को अमृत (समझ) कर पीता रहता है (और उसे) दुःख नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥

अनेक स्वादों (के भोगने) में दुःखों की ही प्राप्ति होती है । (इस प्रकार) भोगों में रोग (का भय सदैव बना रहता है), (जो मनुष्य भोगों के भोगने में रत रहता है), वह अन्त में नष्ट हो जाता है । (भोग भोगनेवाले मनुष्यों का) हर्ष और शोक कभी नहीं मिटता, (परमात्मा की) आज्ञा में (अपने को मिलाए) बिना (मनुष्य) भटकता रहता है ॥ ७ ॥

ज्ञान के बिना सारी (दुनिया) भटकती रहती है । सच्चा (हरी) (सभी प्राणियों के अन्तर्गत) लिव लगा कर रम रहा है । गुरु के शब्द द्वारा निर्भय और सच्चा (हरी) जाना जाता है, (और उसके जानने पर जीवात्मा परमात्मा से मिलकर उसी प्रकार एक हो जाती है, जिस प्रकार) ज्योति से मिलकर ज्योति (एक हो जाती है) ॥ ८ ॥

मुरारी (परमात्मा) अटल, अडोल और अतुलनीय है । (वह सर्व शक्तिमान् हरी) एक क्षण में (तो समस्त जगत्) नष्ट कर देता है (और दूसरे क्षण) फिर (उनका) निर्माण

कर देता है । (उस प्रभु का) न (कोई) रूप है, न (कोई) रेखा है, न कोई मिति है और न कोई कीमत है, (गुरु के शब्द द्वारा, बिध कर (मनुष्य) प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥

(हे) प्यारे (हरी), हम तो (तेरे) दासों के दास हैं, साधक ही सच्चे, भले और विचारवान् होने हैं । (जो साधक) नाम का मनन करता है, (अंत में संसार की बाजी) वही जीतेगा; (प्रभु) आप ही (अपने भक्तों को) अपना सच्चा (नाम) दृढ़ करता है ॥ १० ॥

सच्चे सत्य के साधक को सत्य (हरी) ही पल्ले (पड़ता है) । सच्चे (हरी को वही मनुष्य) अच्छा लगता है, जिसे शब्द (नाम) प्यारा लगता है । हरी ने त्रिभुवन में सत्य को ही शक्ति (के रूप में) स्थापित किया है, (इसीलिए) (मनुष्य) सच्चा होने से ही आनन्दित होता है ॥ ११ ॥

सभी कोई (परमात्मा को) 'महान्' 'महात्' कहते हैं, (परन्तु केवल मुख से कहते हैं, हृदय से इस बात को नहीं अनुभव करते), वास्तव में गुरु के बिना (परमात्मा की) समझ किसी को भी नहीं (प्राप्त) होती । (जो व्यक्ति) सत्य (परमात्मा) में लीन होता है, वही सच्चे हरी को अच्छा लगता है, (वह कभी हरी से) बिछुड़ कर दुःख नहीं पाता है ॥ १२ ॥

(जो मनुष्य) (हरी से) प्रारम्भ से ही बिछुड़े हैं, वे ढाढ़े मार कर रोते हैं । (वे बारबार इस संसार में) मर-मर कर जन्मते हैं और (अपना) समय पूरा करते हैं । (प्रभु) जिसके ऊपर कृपा करता है, उसी को बड़ाई प्रदान करता है (और उसे अपने में) मिला लेता है, (जिसमें उसे फिर) पछताना नहीं पड़ना है ॥

(प्रभु) आप ही कर्त्ता (निर्माता) है और आप ही भोक्ता है; (वह) आप ही तम है (और) आप ही मुक्त है । (वह आप ही) (मुक्ति रूपी) दान है और आप ही मुक्ति का स्वामी है; (वह जीवों को मुक्ति प्रदान कर उनकी) समता और मोह को भी आप समाप्त करता है ॥ १४ ॥

(हे प्रभु, तेरा मुक्तिरूपी) दान (अन्य सभी) दानों से श्रेष्ठ विचारा गया है । समय (प्रभु) अपार है और करण (तथा) कारण है । (वह) अपने किए हुए को रच-रच कर स्वयं ही देखता है । (मनुष्यों को प्रेरित करके प्रभु आप ही) उनसे करणी और कार्य कराता है ॥ १५ ॥

(जो व्यक्ति) सच्चे (परमात्मा) को अच्छे लगते हैं, वे ही (उसका) गुणगान करते हैं । (हे हरी), तुम्ह ही से (जीव) उत्पन्न होते हैं (और अन्त में) तुम्ह ही में समा जाते हैं । नानक सच्ची विनती (करके) कहता है कि सच्चे (प्रभु) से मिलकर (परम) सुख प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ २ ॥ १४ ॥

[१५]

अरबब नरबब धुंभूकारा । धरणि न गगना हुकमु अशारा ॥

ना जितु रेनि न बंदु न सूरजु सुन समाधि लगाइवा ॥१॥

लागी न बागी पउरण न पागी । ओपति लपति न आवण जागी ॥

खंड पताल सपत नही सागर नवी न नीरु बहाइदा ॥२॥

ना तवि सुरगु मल्लु पइआला । दोजकु भिसतु नही खै काला ॥
 नरकु सुरगु नही जंमयु मरणा ना को भाइ न जाइवा ॥३॥
 ग्रहमा बिसनु महेसु न कोई । अवरु न दीसै एको सोई ॥
 नारि पुरलु नही जाति न जनमा ना को दुलु सुलु पाइदा ॥४॥
 ना तवि जती सती बनवासी । ना तवि सिध साधिक सुखवासी ॥
 जोयो जंगम भेलु न कोई ना को नाथु कहाइदा ॥५॥
 जप तप संजम ना ब्रत पूजा । ना को आखि बलाएँ पूजा ॥
 आपे आपि उपाइ विगसै आपे कोमति पाइदा ॥६॥
 ना सुचि संजमु तुलसी माला । गोपी कानु न गऊ गोवाला ॥
 तंतु मतु पाखंडु न कोई ना को वसु वजाइदा ॥७॥
 करम धरम नही माइआ माखी । जाति जनमु नही दीसै आखी ॥
 ममता जालु कालु नही माथै ना को किसै धिआइदा ॥८॥
 निंदु बिंदु नही जोउ न जिंदो । ना तवि गोरलु ना माछिंदो ॥
 ना तवि गिघानु धिघानु कुल भोपति ना को गलत गणाइदा ॥९॥
 वरन भेल नही ब्रह्मण खत्री । बेउ न बेहुरा गऊ गाइत्री ॥
 होम जग नही तीरथि नाबणु ना को पूजा लाइदा ॥१०॥
 ना को मुला ना को काजी । ना को सेलु मसाइकु हाजो ॥
 रईअति राउ न हउमै दुनीआ ना को कहणु कहाइदा ॥११॥
 भाउ न भगति ना सिब सकती । साजनु मोतु बिंदु नही रकती ॥
 आपे साहु आपे बरजारा साचो एहो भाइदा ॥१२॥
 बेद कतेब न सिमूत सप्तत । पाठ पुराण उदै नही आसत ॥
 कहता बकता आपि अगोचरु आपे अललु लखाइदा ॥१३॥
 जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइआ । बाभु कला आडाणु रहाइआ ॥
 बहमा बिसनु महेसु उपाए माइआ मोहु वधाइदा ॥१४॥
 बिरले कउ गुरि सबदु सुणाइआ । करि करि बेलै हुकमु सबाइआ ॥
 खंड ब्रह्मंड पाताल अरंभे गुपतहु परगटी आइदा ॥१५॥
 ता का अंतु न जाएँ कोई । पूरे गुर ते सोझी होई ॥
 नानक साचि रते बिसमावी बिसम भए गुण गाइदा ॥१६॥३॥१५॥

बिशेष : निम्नलिखित पद में हरी के नियुक्त स्वरूप का वर्णन है ।

अर्थ : कई घरब तथा घरबों से परे (अगणित युगों तक) अन्धकार ही अन्धकार था ।
 (उस समय) न तो पृथ्वी थी और न आकाश था ; (प्रभु का) अपार हुक्म (मात्र) था ।
 न दिन था, न रात थी ; न तो चन्द्रमा था और न सूर्य, (प्रभु) शून्य-समाधि लगाए था ॥ १ ॥

(उस समय, जीवों की) चार खानियाँ (ब्रह्मज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज) नहीं थीं (और उनकी) बाणी भी नहीं थी; पवन और जल भी नहीं थे । उत्पत्ति, विनाश, जन्म-मरना (कुछ भी) नहीं थे । न खण्ड थे, न पाताल और न सप्त सागर ही थे; नदियों में जल भी नहीं बहता था ॥ २ ॥

तब न तो स्वर्गलोक था, न मर्त्यलोक न पाताल । (मुसलमानों के) दोजख और विहिश्त भी नहीं थे । न तो क्षय था और न काल । (हिन्दुओं के) नरक और स्वर्ग भी नहीं थे; न तो जन्म-मरण थे और न आवागमन ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश कोई भी नहीं थे । उस एक (निर्गुण ब्रह्म) को छोड़कर दूसरा और कोई नहीं दिखाई पड़ता था । स्त्री-पुरुष नहीं थे, न जातियाँ थी और न जन्म था; कोई दुःख-सुख भी नहीं पाता था ॥ ४ ॥

तब यती, सत्सगुणी और वनवासी (कोई) नहीं थे । तब सिद्ध, साधक और मुख भोगनेवाले (भोगी) नहीं थे, योगियो, जंगमों के कोई वेश भी नहीं थे और न कोई नाथ ही संबोधित किया जाता था ॥ ५ ॥

जप, तप, संयम, व्रत, पूजा (कुछ भी) नहीं थे । (उस निर्गुण ब्रह्म को छोड़कर) कोई द्वैतभाव का वर्णन करनेवाला नहीं था । (प्रभु) अपने आप को उत्पन्न करके स्वयं विकसित होता था । (वह) अपनी कीमत् स्वयं ही जान सकता था ॥ ६ ॥

शौच (पवित्रता), संयम तथा तुलसी (आदि) की माला भी (नहीं) थी । न गोपियाँ थी, न कृष्ण (कान्हू); न गौर्ण्यी और न खाल-वाल ही थे । तंत्र, मंत्र, पाखण्ड आदि कुछ भी क्रियाएँ न थी, कोई (कृष्ण से तात्पर्य है) वंशी नहीं बजाता था ॥ ७ ॥

कर्मकाण्ड (और अन्य) धर्म भी नहीं थे और न माया रूपी मक्खी ही थी । आँखों से जालि और जन्म के दर्शन भी नहीं होते थे । किसी के भाग्य में न ममता का जाल था और न काल था । कोई किसी का ध्यान भी नहीं करता था । (अर्थात् ध्याता, ध्येय और ध्यान—त्रिपुटी का सर्वथा अभाव था) ॥ ८ ॥

निन्दा और स्तुति (वन्दना) नहीं थी । जीव-जन्तु (कुछ भी) नहीं थे । न गोरखनाथ थे और न मत्स्येन्द्रनाथ । तब न ज्ञान था, न ध्यान और न कुलों (वंशों) की ही उत्पत्ति थी । कोई कर्मों-धर्मों की गिनती भी नहीं लेता था ॥ ९ ॥

(उस समय) वर्णाश्रम, वेश (आदि) ब्राह्मण, क्षत्रिय (कुछ) नहीं थे । देवता, मंदिर, गो (और) गायत्री भी नहीं थे । यज्ञ-होम, (कुछ भी) नहीं थे । तीर्थ-स्नान भी नहीं थे (और) न कोई पूजा ही करता था ॥ १० ॥

शेख, मवायख (शेख का बहुवचन रूप), हाजी (आदि उस समय) नहीं थे । (तब) प्रजा और राजा कोई भी थे; न अहंकार था और न संसार । कोई कुछ कहता-कहलाता भी नहीं था ॥ ११ ॥

(तब) भाव-भक्ति (एवं) शिव-शक्ति नहीं थी । साजन और मित्र (तथा पिता के) वीर्य (एवं माता के) रज भी नहीं थे । (वह निर्गुण ब्रह्म) स्वयं ही अपना साहू और स्वयं ही अपना बनजारा (व्यापारी) था । (वह स्वयंभू) अपनी सत्य-महिमा में प्रतिष्ठित था ॥ १२ ॥

(मुसलमानों के) कतेब (कुरान आदि धार्मिक ग्रंथ) (तथा हिन्दुओं के) वेद, स्मृति और शास्त्र (कुछ भी) नहीं थे । पाठ, पुराण, सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं थे । (इस प्रकार) वह स्वयं कथन करनेवाला वक्ता था । वह अगोचर, वह अलक्ष्य स्वयं ही अपने को प्रदर्शित कर रहा था ॥१३॥

जब उस (प्रभु) की मर्जी हुई, तो उसने (पल मात्र में) जगत् को उत्पन्न कर दिया । (उस प्रभु ने) सृष्टि-रचना को बिना शारीरिक शक्ति के सहारा दिया है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी (उसी हरी ने) उत्पन्न किया और माया-मोह को भी वृद्धि की ॥१४॥

(प्रभु, हरी) किसी विरले (भाग्यशाली) को ही गुरु के शब्द सुनाता है । वह अपने हुक्म से सब कुछ रच-रचकर (उनकी) देल भाल करना रहता है (प्रभु ने) खण्ड, ब्रह्माण्ड और पाताल का प्रारम्भ किया (निर्माण किया) ; (इस प्रकार जो वस्तुएं अभी तक) गुप्त थी, उन्हें प्रकाश में लाया (प्रकट किया) ॥१५॥

उस (प्रभु) का कोई भन्त नहीं जान सकता । पूर्ण गुरु से ही उसकी समझ (प्राप्त होती है) । नानक कहते हैं कि जो व्यक्ति सत्य में अनुरक्त होने हैं, वे आश्चर्यान्वित होकर आनन्द (स्वरूप) में स्थित होकर, (उस प्रभु का) गुणगान करते हैं ॥१६॥१७॥१८॥

[१६]

आपे आपु उपाइ निराला । साचा थानु कीओ दइआला ॥
 पउए पाणी अगनी का बंधनु काइआ कोटु रचाइदा ॥१॥
 नउ घर थापे थापणहारै । दसवै वासा अलख अपारै ॥
 साइर सपत भरे जलि निरमलि गुरुमुखि मैलु न लाइदा ॥२॥
 रवि ससि दीपक जोति सबाई । आपे करि देखै बडिआई ॥
 जोति सरूप सदा सुखदाता सचे सोभा पाइदा ॥३॥
 गड़ महि हाट पटण बापारा । पूरै तोलि तोलै बणजारा ॥
 आपे रतनु बिसाहे लेबै आपे कीमति पाइदा ॥४॥
 कीमति पाई पावणहारै । बेपरवाह पूरै भंडारै ॥
 सरब कला ले आपे रहिआ गुरुमुखि कितै बुझाइदा ॥५॥
 नबरि करे पूरा गुरु भेटै । जम जंदाह न मारै केटै ॥
 जिउ जल अंतरि कमलु बिगासी आपे बिगसि धिआइदा ॥६॥
 आपे बरखै अंशुतधारा । रतन जवेहर लाल अपारा ॥
 सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ प्रेम पदारथु पाइदा ॥७॥
 प्रेम पदारथ लहै अमोलो । कबही न घाटसि पूरा तोलो ॥
 सचे का बापारी होबै सचो सउदा पाइदा ॥८॥
 सचा सउदा विरला को पाए । पूरा सतिगुरु मिलै मिलाए ॥
 गुरुमुखि होइ सु हुकमु पछाणै मानै हुकमु समाइदा ॥९॥

हुकमे आइआ हुकमि समाइआ । हुकमे दीसै जगतु उपाइआ ॥
 हुकमे सुरगु भट्ट पइआला हुकमे कला रहाइदा ॥१०॥
 हुकमे धरती घडल सिरि भारं । हुकमे पउए पारो नैएारं ॥
 हुकमे सिब सकती घरि बासा हुकमे खेल खेलाइदा ॥११॥
 हुकमे आडाए आगासी । हुकमे जल यल त्रिभवए बासी ।
 हुकमे सास गिरास सदा फुनि हुकमे बेखि दिखाइदा ॥१२॥
 हुकमि उपाए दस भउतारा । वेब दानव भ्रगएत अपारा ॥
 माने हुकमु सु दरगह पैभै साचि मिलाइ समाइदा ॥१३॥
 हुकमे जुग छतीह गुदारे । हुकमे सिध साधिक बीचारे ॥
 आपि नासु नयो सभ जा की बखसे मुकति कराइदा ॥१४॥
 काइआ कोटु गइ महि राजा । नेब खवास भला दरवाजा ॥
 मिथिआ लोभु नाही घरि बासा लबि पापि पछुताइदा ॥१५॥
 सतु संतोखु नगर महि कारी । जतु सतु संजसु सरणि मुरारी ॥
 नानक सहजि मिलै जगजीवनु गुर सबदी पति पाइदा ॥१६॥१४॥१६॥

(उस) निराले (प्रभु ने) अपने आप को (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न किया । (उस)
 दयालु हरी ने (अपना) सच्चा स्थान (समस्त सृष्टि के) अन्तर्गत बनाया । (उसी हरी ने)
 पवन, जल और अग्नि (आदि पंच तत्वों) को एकत्र करके शरीर रूपी गढ़ का निर्माण
 किया ॥१॥

स्थापित करनेवाले (हरी ने शरीर के) नौ घरो गोलको (दो नासिका के छिद्र, दो
 कान, दो आंखें, एक मुख-द्वार, एक मलद्वार, और एक शिश्नद्वार) की स्थापना की । दशम द्वार
 (को रच कर) अलक्ष्य और अपार प्रभु ने (अपना) निवास-स्थान (बनाया) । गुरुमुख के सप्त
 सरोवर (पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि) (नाम रूपी) निर्मल जल से भर गए हैं, (इससे
 अब उसे) मेल नहीं लगती ॥२॥

सूर्य और चन्द्रमा (उसके) दीपक हैं (और उन दीपकों के अन्तर्गत) सारा प्रकाश
 (उसी का) है । (प्रभु) स्वयं ही रच कर (अपनी) महिमा को देखता रहता है । वह
 सुखदाता (प्रभु) शाश्वत ज्योति-स्वरूप है । सच्चा (हरी स्वयं ही अपनी) शोभा पाता है ॥३॥

(शरीर रूपी) गढ़ के अन्तर्गत बाजार, नगर और व्यापार (चल रहे हैं) । वह
 बनजारा (व्यापारी) पूरी तौल से (सारी वस्तुओं को) तौल रहा है । प्रभु आप ही (नाम
 रूपी) रत्न खरीदता और ग्रहण करता है और आप ही उसकी कीमत पाता है ॥४॥

पानेवाला (हरी) आप ही (अपनी) कीमत पाता है । (वह हरी) बेपरवाह है और
 (उसका) भाण्डार परिपूर्ण है । (प्रभु) समस्त कलाओं (शक्तियों) को लेकर स्वयं ही (स्थित)
 रहता है । गुरु की शिक्षा द्वारा (प्रभु इस रहस्य को) किसी (बिरले) को ही समझाता है ॥५॥

(यदि प्रभु) कृपादृष्टि करे, (तभी) पूर्ण गुरु प्राप्त होता है । (गुरु के मिलने पर)
 निर्दयी यमराज धक्के नहीं मारता । (प्रभु अपना) ध्यान करके स्वयं (उसी प्रकार) विकसित
 होता है, जिस प्रकार जल में कमल विकसित होता है ॥६॥

(हरी) आप ही (नाम रूपी) अमृत-धार, अपार रत्नो, जवाहरों और लालों की वर्षा करता है । सद्गुरु के मिलने पर पूर्ण (हरी) प्राप्त होता है, (जिससे) प्रेम-पदार्थ की प्राप्ति होती है ॥७॥

(साधक) जिस अमृत्य प्रेम-पदार्थ को प्राप्त कर लेता है, (वह) कभी नहीं घटता है, (क्योंकि उसकी) पूरी तौल होती है । (जो व्यक्ति) सत्य (हरी) का व्यापारी होता है, वही सच्चे सौदे को पाता है ॥८॥

कोई बिरला ही (साधक) सच्चे सौदे (हरी) को पाता है । (यदि) पूर्ण सद्गुरु मिले, (तभी) सच्चे सौदे का मिलाप करता है । (यदि कोई गुरुमुख हो, तभी वह हुक्म को पहचानता है, (जो व्यक्ति प्रभु के) हुक्म को मानता है, (वह उसी में) समाहित हो जाता है ॥९॥

(परमात्मा के) हुक्म से ही (समस्त प्राणी इस जगत् में) आए हैं, (और उसके) हुक्म से ही (सभी) उसमें विलीन हो जाते हैं । (उसके) हुक्म से ही (यह) जगत् उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है । (उस प्रभु के) हुक्म से स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, (और) पाताललोक (उत्पन्न हुए हैं) (और उसके) हुक्म से (समस्त लोक) शक्ति धारण करते हैं ॥१०॥

(परमात्मा के) हुक्म ही से (धर्म रूपी) बैल के ऊपर पृथ्वी का (सारा) भार है । हुक्म से ही पवन, जल, आकाश (आदि पंच तत्त्व उत्पन्न हुए हैं) । हुक्म से जीवात्मा (शिव) का माया (शक्ति के घर में निवास होता है; और हुक्म से ही (परमात्मा जीवात्मा को नाना भाँति के) खेल खिलाता है ॥११॥

हुक्म से आकाश का फैलाव हुआ है । हुक्म से ही जल, स्थल और त्रिभुवन में (प्राणियों का) वास है । हुक्म से ही सदैव (जीवों की) स्वासे और प्रास (भोजन) चलते हैं; (और) फिर हुक्म से ही देख के दिखाता है, (तात्पर्य यह कि हुक्म से ही दृष्टि काम करती है) ॥१२॥

(परमात्मा ने अपने) हुक्म से ही दस अवतारों की उत्पत्ति की । अगणित और अपार देवताओं तथा दानवों (की भी उत्पत्ति) हुक्म से ही हुई । (जो व्यक्ति परमात्मा के) हुक्म को मानता है, उसे (हरी के) दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । (वह) सत्य परमात्मा से मिल कर (उसी में) समाहित हो जाता है ॥१३॥

हुक्म से ही (हरी ने) छत्तीस युग (पर्यन्त) (शून्य समाधि में) व्यतीत किया । हुक्म के (अन्तर्गत) ही सिद्ध साधक (एवं) विचारवान् हुए । हरी आप ही नाथ है; (उसकी) सारी रचना (उसके) हुक्म में नहीं हुई है; (वह प्रभु मनुष्यों को) वश कर आप ही उन्हें मुक्ति देता है ॥१४॥

काया रूपी कोट और गढ़ में (मन रूपी) राजा का निवास है । (पंच कर्मेन्द्रियाँ नाथ हैं, (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ) खास सेवक (खावास) हैं, (दशम द्वार रूपी इस गढ़ का) सुन्दर दरवाजा है । (आत्म स्वरूपी) घर में मिथ्या, लोभ आदि का निवास नहीं रहता । लालच और पाप के कारण (मनुष्य को) पछताना पड़ता है ॥१५॥

(शरीर रूपी) नगर में सत्य और संतोष कारिन्दे हैं । परमात्मा (मुरारी) की शरण मे (जाना ही मनुष्य का) यत्, सत्वगुण और संयम हैं । नानक कहते हैं कि सहज भाव से ही जग-जीवन प्राप्त होता है और गुरु के शब्द से ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥१६॥१४॥१६॥

[१७]

सुन कला अपरंपरि धारो । आपि निरालमु अपर अपारी ॥
 आपे कुवरति करि करि बेलै सुनहु सुनु उपाइदा ॥१॥
 पउरु पाणी सुनै ते साजे । मूसटि उपाइ काइआ गड़ राजे ॥
 अननि पाणी जोउ जोति तुमारी सुनै कला रहाइदा ॥२॥
 सुनहु ब्रह्मा बिसनु महेसु उपाए । सुनै वरते जुग सबाए ॥
 इसु पदु बीचारे सो जनु पूरा तिसु मिलीए भरसु सुकाइदा ॥३॥
 सुनहु सपत सरोवर थापे । जिनि साजे बीचारे आपे ॥
 तितु सतसरि मनूआ गुरमुखि नाबै फिरि बाहुड़ि जोनि न पाइदा ॥४॥
 सुनहु चंडु मूरजु गैणारे । तिस की जोति त्रिभवण सारे ॥
 सुनै अलख अपार निरालमु सुनै ताड़ी लाइदा ॥५॥
 सुनहु धरति अकासु उपाए । बिनु थंमा राखे सनु कल पाए ॥
 त्रिभवण साजि मेखुलो माइआ आपि उपाइ खपाइदा ॥६॥
 सुनहु खाणी सुनहु बाणी । सुनहु उपजी सुनि समाणी ॥
 उतभुज चलतु कीआ सिरि करतै बिसमादु सबदि बेलाइदा ॥७॥
 सुनहु राति बिबसु दुइ कीए । ओपति खपति सुखा दुख दीए ॥
 सुख दुख ही ते अमरु अतीता गुरमुखि निजघरु पाइदा ॥८॥
 साम वेडु रिगु जुजरु अथरवणु । ब्रह्मे मुखि माइआ है त्रैगुण ॥
 ताकी कीमति कहि न सकै को तिउ बोले जिउ बोलाइदा ॥९॥
 सुनहु सपत पाताल उपाए । सुनहु भवण रखे लिब लाए ॥
 आपे कारणु कीआ अपरंपरि सभु तेरो कीआ कमाइदा ॥१०॥
 रज तम सत कल तेरी छाइआ । जनम मरण हउमै दुखु पाइआ ॥
 जिसनो कृपा करे हरि गुरमुखि गुणि चउयै मुकति कराइदा ॥११॥
 सुनहु उपजे बस अवतारा । मूसटि उपाइ कीआ पासारा ॥
 देव दानव गण गंधरब साजे सभि लिखिआ करम कमाइदा ॥१२॥
 गुरमुखि समझै रोगु न होई । इह गुर की पउड़ी जाएँ जनु कोई ॥
 जुगह जुगंतरि मुकति पराइण सो मुकनि भइआ पति पाइदा ॥१३॥
 पंच ततु सुनहु परगासा । बेह संजोयी करम अभिआसा ॥
 बुरा भला बुइ मसतकि लीले पापु पुनु बीजाइदा ॥१४॥

ऊतम सतिगुर पुरख निराले । सबदि रते हरि रसि मतवाले ॥

रिधि बुधि सिधि गिझानु गुरु ते पाईऐ पूरे भागि मिलाइदा ॥१५॥

इसु मन माइझा कउ नेहु घनेरा । कोई बूझु गिझानी करहु निबेरा ॥

आसा मनसा हउमै सहसा नरु लोभी कूडु, कमाइदा ॥१६॥

सतिगुरु ते पाए बीबारा । सुंन समाधि सच्चे घर बारा ॥

नानक निरमल नादु सबद धुनि सनु रामे नामि समाइदा ॥१७॥५॥१७॥

सब से परे (अपरंपार हरी) ने शून्य-समाधि धारण की थी । अपरंपार (परमात्मा) (सबसे) निर्लेप है । (निर्गुण हरी) कुदरत—(माया—शक्ति—प्रकृति) को रच कर, (उसकी) देखभाल—निगरानी करता रहता है । शून्य ब्रह्म (शून्य समाधि की अवस्था से कुदरत अथवा प्रकृति की जड़ अवस्था)—शून्य अवस्था उत्पन्न करता है ॥१॥

(उस निर्गुण हरी ने) शून्यावस्था से ही पवन और जल उत्पन्न किया । (शून्यावस्था से ही) सृष्टि उत्पन्न करके काया रूपी गढ़ की रचना की, (जिसमें मन रूपी) राजा को (रक्खा) । अग्नि, जल आदि तत्वों (से निर्मित शरीर के अन्तर्गत, हे प्रभु), जीवात्मा को रख दिया, (जो वास्तव में) तेरी ही ज्योति है । (उत्पन्न करने की) शक्ति शून्य में ही विराजमान थी ॥२॥

शून्य से ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न किए गए । शून्य से ही समस्त युग व्यवहार में आए । इस पद को जो (मनुष्य) विचार करता है, वह पूर्ण पुरुष है । ऐसे (व्यक्ति) के मिलने पर भ्रम समाप्त हो जाता है ॥३॥

शून्य से सप्त सरोवरों (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि) की स्थापना हुई । (निर्गुण हरी ने उन सप्त सरोवरों की रचना) आप ही विचारपूर्वक की । (यदि) मन उस (सत्संग रूपी) सच्चे सरोवरों में गुरु द्वारा स्नान करे, तो फिर लोट कर योनि के अन्तर्गत नहीं पड़ता ॥४॥

शून्य से ही चन्द्र, सूर्य और आकाश (की उत्पत्ति हुई) । उसी (शून्य) की ज्योति समस्त त्रिभुवन (में व्याप्त है) अलक्ष्य, अपार, निर्लेप और शून्य (हरी) शून्य में ही ताड़ी लगाकर (बैठा है) ॥५॥

शून्य से पृथ्वी और आकाश उत्पन्न हुए । सच्ची कला (शक्ति) को ढान कर बिना किसी आधार के ही (उस प्रभु ने समस्त सृष्टि) धारण कर रक्खी है । (उस निर्गुण हरी ने) त्रिभुवन को रच कर माया की रस्सी में बाँध रक्खा है; (हरी) आप ही सृष्टि उत्पन्न करके आप ही (उसे अपने में) विलीन कर लेता है ॥६॥

शून्य से ही (अंडज, जेरज, उद्भिज और स्वेदज आदि चार) खानियाँ और शून्य से ही (उन सब की) बाणियाँ उत्पन्न हुईं । (ये सब) शून्य से उत्पन्न हुईं और शून्य में ही समा जायँगी । (सबसे पहले हरी ने) उद्भिज (आदि चार खानियों के जीवों) को चलायमान किया और अपने शब्द (हुक्म) द्वारा आश्चर्यमय खेल रच दिया ॥७॥

(निर्गुण हरी ने) शून्य से ही दिन और रात, दोनों का निर्माण किया; उत्पत्ति और विनाश शून्य से (उत्पन्न किया); (जीवों को) सुख एवं दुःख भी (शून्य से ही) दिया । गुरुमुख प्रभर होकर सुख-दुःख से निर्लिप्त हो गया और (उसने अपने निजी घर (हरी के घर) को प्राप्त कर लिया ॥८॥

ब्रह्मा के मुख से त्रिगुणात्मक (चारो वेद)—सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद निकले (और साथ ही त्रिगुणात्मक) माया भी निकली । (उस निर्गुण परमात्मा की) कीमत कोई भी नहीं कह सकता है । (प्राणी तो) वैसा ही बोलता है; (जैसा प्रभु) बोलवाता है ॥६॥

(निर्गुण हरी ने) शून्य से ही सात पातालों की उत्पत्ति की । (शून्य से ही हरी ने समस्त) भुवनों को (अपने अपने स्थान पर स्थापित कर) रक्खा, (जो प्रभु के ध्यान में) लिव लगाए हैं । अपरंपार (हरी) ने अपने को ही (जगत् का निमित्त और उपादान) कारण बनाया । (हे प्रभु, सभी कोई व्यक्ति) तेरे किए को ही कमाते हैं ॥१०॥

(हे प्रभु,) सत्त्व गुण, तमोगुण (एवं) तमो गुण सभी तेरी छाया (माया) की कला (शक्ति) है । (प्राणी तेरे द्वारा उत्पन्न किए) जन्म-मरण, अहंकार आदि (के चक्र में पड़ कर) दुःख पाते रहते हैं । जिस पर (परमात्मा) गुरु द्वारा कृपा करे, (वह) तीनों गुणों में ऊपर उठकर तुरीयावस्था में पहुँच कर मुक्त हो जाता है ॥ ११ ॥

शून्य से ही दस अवतार हुए । (शून्य से ही निर्गुण हरी ने) सृष्टि उत्पन्न करके (उसका) प्रसार किया । (शून्य से ही) देव, दानव, (शिव के) गण एवं गंधर्व निमित्त किए गए । सभी कोई (प्रभु द्वारा) लिखे गये कर्मों को कमाते हैं ॥ १२ ॥

गुरु के द्वारा (जो व्यक्ति शून्य के इस रहस्य को) समझ लेता है, (उसे) रोग नहीं होता । गुरु की इस सीढ़ी को कोई (विरला ही) व्यक्ति जानता है । (जो इस सीढ़ी को जानता है), वह युग-युगान्तरो से मुक्तिपरायण होकर मुक्त हो जाता है, और प्रतिष्ठा पाता है ॥ १३ ॥

पच तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी) शून्य से प्रकाशित हुए हैं । (जीव इन तत्त्वों से) देह का संयोगी हो कर, (तात्पर्य यह कि देह से सम्बन्धित होकर) कर्मों का अभ्यास करता है । (जीवों के) मस्तक में भले और बुरे दो (कर्म) लिखे रहते हैं (और उन्हीं के अनुसार वह भले और बुरे दो प्रकार के कर्मों को करके) पाप-पुण्य के बोझ बोता है ॥ १४ ॥

(इस जगत् में) सद्गुरु पुरुष उत्तम और निराला है । (वह) शब्द (नाम) में अनुरक्त रहता है और हरि-रस में मतवाला (बना रहता है) । ऋद्धि-सिद्धि, बुद्धि, ज्ञान गुरु ने ही प्राप्त होता है । पूर्ण भाग्य से (उसका) मिलाप होता है ॥ १५ ॥

इस मन का माया के साथ अत्यधिक स्नेह है । किसी ब्रह्मज्ञानी से (परमात्म-तत्त्व) समझ कर, (इस माया की) निवृत्ति करो । लोभी मनुष्य, आशा, इच्छा, अहंकार, सशय मे (पड़कर) झूठ ही कमाता है ॥ १६ ॥

(सच्चा शिष्य) सद्गुरु से विचार प्राप्त करता है, (जिससे) सत्य (परमात्मा) की शून्य समाधि के घर-बार में (सदैव स्थित रहता है) । हे नानक, (साधक उस दशा में) शब्द की ध्वनि के साथ निमल नाम का नाद सुनता है (और निश्चित रूप में) राम नाम में समा जाता है ॥ १७ ॥ ५ ॥ १७ ॥

[१८]

जह देला तह दोन बह्माला । भाइ न जाई प्रभु किरपाला ॥

जोभा भंदरि जुगति समाई रहिभो निरालसु राइभा ॥१॥

जगु तिस की छाइआ जिसु बापु न भाइआ । ना तिसु भैए न भराउ कमाइआ ॥
ना तिसु ओपति छपति कुल जाती ओहु अजरारु मन भाइआ ॥२॥

तू अकाल पुरखु नाही तिरि काला । तू पुरखु अलेख अगंम निराला ॥
सत संतोखि सबदि अति सीतलु सहज भाइ लिब लाइआ ॥३॥

त्रै बरताइ चउथै घरि वासा । काल बिकाल कीए इक प्रासा ॥
निरमल जोति सरब जगजीवनु गुरि अनहदु सर्बदि बिछाइआ ॥४॥

ऊतम जन संत भले हरि पिआरे । हरि रस माते पारि उतारे ॥
नानक रेण संत जन संगति हरि गुर परसादी पाइआ ॥५॥

तू अंतरजामी जोअ सभि तेरे । तू दाता हम सेवक तेरे ॥
अमृत नामु कृपा करि दीजे गुरि गिआन रतनु दीपाइआ ॥६॥

पंच तनु मिलि इहु तनु कीआ । आतम राम पाए सुखु थोआ ॥
करम करतुति अमृत फलु लागा हरि नाम रतनु मनि पाइआ ॥७॥

ना तिसु भूल पिआस मनु मानिआ । सरब निरंजनु घटि घटि जानिआ ॥
अमृत रस राता केवल बैरागी गुरमति भाइ सुभाइआ ॥८॥

अधिआतम करम करे बिनु राती । निरमल जोति निरंतरि जाती ॥
सबदु रसालु रसन रसि रसना बेगु रसालु बजाइआ ॥९॥

बेगु रसाल बजावै सोई । जा की त्रिभवन सोभी होई ॥
नानक बूझहु इस बिधि गुरमति हरि राम नामि लिब लाइआ ॥१०॥

ऐसे जन बिरले संसारे । गुर सबदु बीचारहि रहहि निरारे ॥
आपि तरहि संगति कुल तारहि तिन सफल जनसु जमि आइआ ॥११॥

घरु दरु मंदरु जाणै सोई । जिसु पूरे गुर ते सोभी होई ॥
काइआ गइ महल महली प्रभु साचा सनु साचा तखतु रचाइआ ॥१२॥

चतुरदस हाट दीबे दुइ साखी । सेवक पंच नाही बिलु चाखी ॥
अंतरि वसतु अनूप निरमोलक गुरि मिलिऐ हरि धनु पाइआ ॥१३॥

तखति बहै तखतै की लाइक । पंच समाए गुरमति पाइक ॥
आवि जुगादी है भी होसी सहसा भरसु चुकाइआ ॥१४॥

तखति सलामु होवै दिनु राती । इहु साचु बडाई गुरमति लिब जाती ॥
नानक रामु जगहु तरु तारी हरि अंति सखाई पाइआ ॥१५॥१॥१६॥

जहाँ देखता हूँ, वहीं दीनदयालु (हरी) दिखलाई पड़ता है । वह कृपालु प्रभु न (कही) आता है और न कही जाता है । राजा (हरी) (सभी) जीवों के अन्तर्गत युक्तिपूर्वक व्याप्त है, (किन्तु फिर भी) निर्लेप है ॥ १ ॥

जिस प्रभु के न माँ है, न बाप, (जो स्वयंभू है), जगत् उसका प्रतिबिम्ब है । (उस प्रभु के न बहिन है, न भाई ; न उसकी उत्पत्ति है और न विनाश और न कुल है, न जाति ; वह अजर है और सब से परे है और (सब के) मन को अच्छा लगनेवाला है ॥ २ ॥

(हे हरी), तू अकाल पुरुष है, तेरे सिर (के ऊपर) काल नहीं है, तू अलक्ष्य पुरुष है, अगम और निर्लेप है । सत्य, संतोष से अत्यन्त क्षीतल शब्द (नाम) की प्राप्ति होती है तथा सहज भाव से लिव (एकनिष्ठ धारणा) लगती है ॥ ३ ॥

(प्रभु, हरि ने) तीनों गुणों का विस्तार करके तुरीयावस्था में (स्वयं) निवास किया । (उसने) मरण और जन्म (विकालु=काल का उलटा, जन्म) एक प्रास में खा लिया (अर्थात् जीवन और मरण समाप्त कर दिया) । उस निर्मल ज्योति एवं सर्वमय, जगज्जीवन (हरी को) गुरु ने अपनी अनहद वाणी द्वारा दिखा दिया ॥ ४ ॥

संत-जन उत्तम एवं हरि को प्यारे तथा भले होते हैं । (वे संत गण) हरि के रम में मतवले (रहते हैं) (और हरी उन्हें) पार उतार देता है । हे नानक, संत-जनो की (चरण-धूलि) एवं संगति गुरु की कृपा से प्राप्त कर ली ॥ ५ ॥

(हे हरी), तू अंतर्धामी है और सभी जीव तेरे हैं, तू (सभी का) दाता है और हम (सब) तेरे सेवक हैं । (हे प्रभु), कृपा करके (अपने) अमृत रूपी नाम को प्रदान कर ; गुरु ने ज्ञान (रूपी) रत्न को प्रकाशित कर दिया ॥ ६ ॥

पंच तत्त्वों के मिलाप से (हरी ने) इस शरीर का निर्माण किया । आत्माराम (हरी) के प्राप्त होने पर सुख की प्राप्ति हुई ; कर्म और करनी के अमृत-फल लग गये और मन ने हरि-नाम रूपी रत्न पा लिया ॥ ७ ॥

(जो व्यक्ति) निष्केवल बैरागी गुरु की बुद्धि और प्रेमभाव के अनुसार (हरि-नाम के) अमृत रस में अनुरक्त है, उसे भूख-प्यास नहीं रह जाती, (उसका) मन मान जाता है, (शान्त हो जाता है) क्योंकि (उसने सबसे निर्लेप (निरंजन हरी) को (समस्त) घटों में जान लिया है ॥ ८ ॥

(सच्चा शिष्य परमात्मा की) निर्मल और निरंतर ज्योति को जान कर दिनरात आध्यात्मिक कर्म करता है । शब्द (नाम) जो रसों का घर है, उसके रस में रसी हुई जीभ रसीली वेणु बजाती है ॥ ९ ॥

(परमात्मा का ज्ञान हो जाने से शिष्य को) त्रिभुवन की समझ आ जाती है (और वह) रसीली वेणु बजाता है । हे नानक, इस प्रकार गुरु की बुद्धि द्वारा हरि और रामनाम में लिव लगा कर, (उस प्रभु को) समझो ॥ १० ॥

(जो व्यक्ति) गुरु के शब्द को विचार कर निर्लेप रहते हैं, ऐसे व्यक्ति संसार में विरले ही होते हैं । (वे स्वयं) तो तरते ही हैं, (समस्त) संगति तथा कुल को भी तार देते हैं ; उनका जगत् में जन्म लेकर आना सफल है ॥ ११ ॥

जिसे पूर्ण गुरु द्वारा समझ होती है, वह (परमात्मा के) घर, दरवाजे तथा महल को जान लेता है । सच्चा प्रभु ही महल का स्वामी (महली) है (और उसी ने) काया रूपी गढ़ (तथा उसके भीतर) महलों की सच्ची रचना की है (और उसके भीतर) (दशम द्वार रूपी) सच्चे तख्त को भी रचा है ॥ १२ ॥

चौदह भुवनो के हाट (तथा चन्द्रमा और सूर्य के) दीपक (इस बात के) साक्षी हैं (कि) सेवकों और पंचो (श्रेष्ठ जनो) ने (माया के) विष को नहीं चक्का, (क्योंकि उनके) अन्तर्गत अनुपम और अमूल्य वस्तु हरि-नाम है, (यही हरिनाम उन्हें माया के विष से बचाता है) ; गुरु के मिलने पर ही हरि-धन प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

उस तत्त्व पर वही बैठता है, (जो) उसके योग्य होता है । (पर उसके योग्य कौन है ?) । वह दास जिनके (काम, क्रोध आदि) पंच विकार नष्ट हो गये हैं और जिसने संशय और भ्रम दूर कर दिया है, वह आदि तथा युग-युगान्तरों में व्याप्त तथा (वर्तमान में) 'है' (भूतकाल में) 'था' तथा (भविष्य काल में) 'रहेगा' (हरी को पहचान लेता है) ॥ १४ ॥

(ऐसे व्यक्ति के) तत्त्व को दिन रात सलाम होता है । सत्य हरी की यह बड़ाई गुरु द्वारा (प्रदत्त) लिव से जानी जाती है । हे नानक, राम-नाम जपो (और जीवन की) तैराकी तैरो ; अंत में हरी ही सहायक पाया जाता है ॥ १५ ॥ १ ॥ १६ ॥

[१६]

हरि धनु सचहू रे जन भाई । सतिगुर सेजि रहहु सरखाई ॥
तसकरु चोरु न लागै ता कउ धुनि उपजै सबदि जगाइआ ॥१॥
तू एकंकारु निरालसु राजा । तू आपि सबारहि जन के काजा ॥
अमरु अडोलु अपारु अमोलकु हरि असथिरु यानि सुहाइआ ॥२॥
देही नगरी ऊतसु थाना । पंच लोक बसहि परधाना ॥
ऊपरि एकंकारु निरालसु सुनि समाधि लगाइआ ॥३॥
देही नगरी नउ दरवाजे । सिरि सिरि करलौहारै साजे ॥
दसवै पुरसु अतोलु निराला आपे अलसु लखाइआ ॥४॥
पुरसु अलेसु सचे दीवाना । हुकमि चलाए सनु नोसाना ॥
नानक खोजि लहहु घरु अपना हरि आलस राम नासु पाइआ ॥५॥
सरब निरंजन पुरसु तुजाना । अवसु करे गुर गिआन समाना ॥
कामु क्रोधु लै गरदनि मारे हउमै लोभु चुकाइआ ॥६॥
सचै यानि बसै निरंकारा । आपि पछाएँ सबहु बोचारा ॥
सचै महलि निवासु निरंतरि आवण जाणु चुकाइआ ॥७॥
ना मनु चलै न पउणु उडावै । जोगी सबहु अनाहुनु वावै ॥
पंच सबव भुण्णकारु निरालसु प्रभि आपे वाइ सुणाइआ ॥८॥
भउ बेरागा सहजि समाता । हउमै सिआगी अनहवि राता ॥
अंजनु सारि निरंजनु जासै सरब निरंजनु राइआ ॥९॥
बुख भै अंजनु प्रभु अविनासी । रोख कटे काटी जम फासी ॥
नानक हरि प्रभ सो भउ अंजनु गुरि मिलिऐ हरि प्रभु पाइआ ॥१०॥

काले कवलु निरंजनु जाणै । बूझै करसु सु सबदु पछारै ॥
 आपे जाणै आपि पछारै सभु तिस का चोलु सबाइया ॥११॥
 आपे साहु आपे वरणजारा । आपे परखे परखणहारा ॥
 आपे कसि कसवटी लाग् आपे कीमति पाइआ ॥१२॥
 आपि दइआलि दइआ प्रभि धारो । घटि घटि रवि रहिआ बनवारी ॥
 पुरखु अतीतु बसै निहकेवलु गुर पुरखै पुरखु मिलाइआ ॥१३॥
 प्रभु दाना बीना गरबु गवाए । दूजा मेटै एकु दिखाए ॥
 आसा माहि निरालसु जोनी अकुल निरंजनु गाइआ ॥१४॥
 हउमै मेडि सबदि सुखु होई । आपु वीचारे गिआनी सोई ॥
 नानक हरि जसु हरि गुण लाहा सत संगति सनु फलु पाइआ ॥१५॥२॥१६॥

हे भाई, भक्त, हरि रूपी धन का सचय कर, सद्गुरु की सेवा कर के उसकी शरण में रह । (जिस भक्त के अन्तर्गत सहज ही) शब्द (नाम) की ध्वनि उत्पन्न होती रहती है और (आत्मस्वरूप में) जागता रहता है, उसे (कामादिक) चोर नहीं लगते ॥ १ ॥

(हे प्रभु), तू एककार और निर्लेप राजा है, तू भक्तों का कार्य आप ही सँवारता है । हे हरी, तू अमर, अडिग, अपार (और) अमूल्य है; तेरा स्थान स्थिर (और) सुहावना है ॥ २ ॥

(वह) देह रूपी नगरी उत्तम स्थान है, (जिसमें सत्य, संतोष, क्षमा, दया और अर्जुन आदि) पाँच (गुण) प्रधान होकर बसते हैं । (सभी गुणों के) ऊपर एककार और निर्लेप हरी (दशम द्वार में) शून्य-समाधि लगा कर बैठा है ॥ ३ ॥

देह रूपी नगरी में नौ दरवाजे (दो आँखें, दो कान, दो नासिका-छिद्र, एक मुख, एक मलद्वार और एक शिश्न-द्वार) हैं । प्रत्येक व्यक्ति की रचना कर्तापुरुष (हरी) ने ही की है । दशम (द्वार में) सबसे परे (अतीत) (और) निर्लेप पुरुष (हरी विराजमान है); (वह) अलक्ष्य (प्रभु) आप ही अपने को दिखाता है ॥ ४ ॥

अलक्ष्य पुरुष का सच्चा दीवान है, वह (अपने) हुक्म से सच्चा निशान चलाता है । हे । नानक, अपने (सच्चे) घर को खोज कर प्राप्त कर, और आत्माराम हरी को पा ॥ ५ ॥

सबसे निर्लेप (परमात्मा) गुजान पुरुष है । (वह) न्याय करता है, (और) गुरु के ज्ञान के अन्तर्गत सभाया है, (अर्थात् गुरु द्वारा ज्ञान में प्राप्त होता है) । (सद्गुरु) काम, क्रोध आदि को गरदन पकड़ कर मार देता है तथा अहंकार और लोभ को भी समाप्त कर देता है ॥ ६ ॥

निरंकार (प्रभु) सच्चे स्थान में निवास करता है । (गुरु के) शब्द द्वारा (सच्चा शिष्य अपने) आप को पहचानता है (उस शिष्य का) निरन्तर सच्चे महल में निवास होता है और वह अपने आवागमन (जन्म मरण) को समाप्त कर देता है ॥ ७ ॥

(ऐसे शिष्य का) मन चलायमान नहीं होता, (वासना रूपी) बायु (उसके चित्त को) बिचलित नहीं करती । (वह) योगी (अपने अन्तर्गत) निरन्तर अनाहत शब्द को बजाता रहता है । पाँच प्रकार के शब्दों की मीठी और स्पष्ट ध्वनि निर्लेप प्रभु आप ही बजा कर

सुनता है । [तार, चाम, पातु, घड़े और फूँक वाले बाजो को पाँच प्रकार के बाजे कहते हैं] ॥ ८ ॥

(सच्चा शिष्य परमात्मा के) भय (और सासारिक विषयो के) बैराग्य द्वारा सहजा-वस्था (तुरीयावस्था) में समा जाता है । (वह अहंकार को त्याग कर अनाहत शब्द में अनुरक्त हो जाता है । (वह) (ज्ञान का) अजन लगा कर माया से रहित हरी निरंजन), तथा सबसे निर्लेप राजा (हरी) को जान लेता है ॥ ९ ॥

अविनाशी प्रभु दुःख और भय को नष्ट करनेवाला है । (ऐसे प्रभु के साक्षात्कार से सासारिक) रोग कट जाते हैं; (प्रभु का साक्षात्कार) यम की फाँसी को भी काट देता है । हे नानक, वह प्रभु हरी, भय को नष्ट करनेवाला है । गुरु के मिलने पर प्रभु हरी की प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

(जो व्यक्ति) निरंजन (हरी) को जानता है, वह काल को ग्राम बना लेता है, (अर्थात् काल को खा जाता है) । (जो) परमात्मा की) कृपा को समझता है, वह शब्द (नाम) को पहचान लेता है । उसी (प्रभु का) सब कौतुक है, (अपने) समस्त (कौतुक को) आप ही जानता है और आप ही पहचानता है ॥ ११ ॥

(प्रभु) आप ही साहकार है और आप ही व्यापारी है । आप ही पारखी है और आप ही (सब कुछ) परखता है । आप ही (साधकी को) कसौटी पर कसता है और आप ही उनकी कीमत पाता है ॥ १२ ॥

प्रभु आपही दयालु है और आपही (जीवों पर) दया धारण करता है । वह बनबारी (हरी) घट घट में रमण कर रहा है । हरी निर्लेप है, (वह) निष्केवल (भाव से) बसता है । समर्थ गुरु समर्थ (हरी) को मिला देता है ॥ १३ ॥

प्रभु ज्ञाता और द्रष्टा है ; (साधकों के) अहंकार को (वही) नष्ट करता है । (प्रभु ही) द्वैतभाव को मिटाकर एक (अपने को ; अद्वैत) को दिखाता है । (मनुष्य) योनि के (अंतर्गत जन्म लेता हुआ भी), आशाओं से निर्लस हो जाता है, (क्योंकि वह) सकुल और निरंजन हरी का गुणगान करता है ॥ १४ ॥

अहंकार को मिटाने से, शब्द (नाम में रमण करने से) आनन्द (प्राप्त) होता है । (जो) अपने आप को विचारता है, वही (वास्तविक) जानी है । हे नानक, हरि-यश (का गुणगान करने से) हरि के गुणों की प्राप्ति होती है और सत्संगति से सच्चे फल की प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ २ ॥ १६ ॥

[विशेष : उपर्युक्त पद में 'चुवाइया', 'गुणाइया', 'पाइया', 'गाइया' आदि भूतकाल को क्रियाएँ हैं, किन्तु अर्थ की स्वाभाविकता के लिए इनका प्रयोग वर्तमान काल की क्रियाओं में किया गया है ।]

[२०]

सचु कहहु सचै घरि रहस्या । जीवत मरहु भवजलु जगु तरस्या ॥

गुरु बोहिय गुरु बेड़ी तुलहा मन हरि जपि पारि लंघाइया ॥१॥

हउमै धमता लोभ बिनासनु । नउ दर मुकते दसवै आसनु ॥
 ऊपरि परै परै अपरंपरु जिनि धापे आपु उपाइआ ॥२॥
 गुरमति लेबहु हरि लिव तरीऐ । अकलु गाह जम ते किआ डरीऐ ॥
 जत जत देखउ तत तत तुमही अवरु न दुतीआ गाइआ ॥३॥
 सनु हरि नामु सचु है सरणा । सनु गुरु सबहु जितै लगि तरणा ॥
 अकथु कथै देखै अपरंपरु कुनि गरभि न जोनी जाइआ ॥४॥
 सच बिनु सतु संतोखु न पावै । बिनु गुरु मुकति न आवै जावै ॥
 भूल मंत्र हरि नामु रसाइए कहु नानक पूरा पाइआ ॥५॥
 सच बिनु भजजलु जाइ न तरिआ । एहु समुद्रु अथाहु महा बिलु भरिआ ॥
 रहै अतीतु गुरमति ले ऊपरि हरि निरभउ कै घरि पाइआ ॥६॥
 झूठी जग हित की चतुराई । बिलम न लागै आवै जाई ॥
 नामु विसारि चलहि अभिमानो उपजै बिनसि लपाइआ ॥७॥
 उपजहि बिनसहि बंधन बंधे । हउमै भाइआ के गलि कंधे ॥
 जिसु राम नामु नाही मति गुरमति सो जमपुरि बंधि जलाइआ ॥८॥
 गुर बिनु मोख मुकति किउ पाईऐ । बिनु गुर राम नाम किउ धिआईऐ ॥
 गुरमति लेहु तरहु भव दुतरु मुकति भए सुख पाइआ ॥९॥
 गुरमति कूसनि गोबरधन धारे । गुरमति साहरि पाहण तारे ॥
 गुरमति लेहु परम पदु पाईऐ नानक गुरि भरमु सुकाइआ ॥१०॥
 गुरमति लेहु तरहु सचु तारी । आतम चीनहु रिदै मुरारी ॥
 जम के फाहे काटहि हरि जपि अकुल निरंजनु पाइआ ॥११॥
 गुरमति पंच सखे गुर भाई । गुरमति अगनि निवारि समाई ॥
 मन मुख नामु जपहु जग जीवन रिद अंतरि अलखु लखाइआ ॥१२॥
 गुरुमुखि बूझै सबवि पतीजै । उसतति निंदा किसकी कोजै ॥
 चीनहु आपु जपहु जगदीसरु हरि जगंनाथु मनि भाइआ ॥१३॥
 जो ब्रह्मडि खंडि सो जाएहु । गुरुमुखि बूझहु सबवि पछाणहु ॥
 घटि घटि भोगे भोगणहारा रहै अतीतु सबाइआ ॥१४॥
 गुरमति बोलहु हरि जसु सूबा । गुरमति आली बेल्हु ऊबा ॥
 लवली नामु सुगै हरि बाली नानक हरि रंगि रंगाइआ ॥१५॥३॥२०॥

(यदि) सच्चे घर में रहना है, (तो) सच बोलो । यदि संसार रूपी सागर को उरना है, (तो) जीवित ही मर जाओ, (तात्पर्य यह कि अहंकारविहीन हो जाओ) । गुरु शी जहाज है, गुरु ही नौका और बेड़ा है । हे मन, (गुरु की धारण में जाकर, उसके उपदेश द्वारा) हरि जपो, (वही संसार-सागर से) पार लेंगाता है ॥ १ ॥

दशम द्वार में आसन लगाने से, (शरीर के) नव द्वारों (के विषयों से मुक्ति मिलती) (नव द्वार=दो नासिका छिद्र, दो आँखें, दो कान, एक मुख, एक शिश्न-द्वार एक गुदा-

द्वार), (इससे) अहंकार, ममता और लोभ का नाश होता है। (दशम द्वार के) ऊपर परे से परे (हरि) है, जिसने अपने आप को उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

(हे साधक), गुरु के द्वारा बुद्धि लेकर, हरि की लिव द्वारा तर जा। बनावट से रहित (हरि) के गुणगान (करने से), यमराज से क्यों डरा जाय? (हे प्रभु), (मैं) जहाँ-जहाँ देखता हूँ वहाँ-वहाँ तुम्ही हो, (इसीलिए मैं) अन्य दूसरे का गुणगान नहीं करता ॥ ३ ॥

हरी-नाम ही सच्चा है, (उसकी) शरण ही सच्ची है। गुरु का शब्द ही सच्चा है, जिसके आश्रय में तरा जाता है। (गुरु के शब्द से ही) अकथनीय (परमात्मा) का कथन होता है (और) परे से परे हरी देखा जाता है, (जिसके फलस्वरूप साधक को) पुनः गर्भ और योनि के अन्तर्गत नहीं उत्पन्न होना पड़ता ॥ ४ ॥

सत्य (के आचरण के) बिना सत्वगुण और संतोष की प्राप्ति नहीं होती। बिना गुरु के मुक्ति नहीं होती, (और बार बार संसार में) आना-जाना पड़ता है। हरिनाम ही मूल मंत्र और रसायन है, नानक कहते हैं कि (उम्मी के द्वारा) पूर्ण (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

सत्य (के आचरण के) बिना संसार-सागर नहीं तरा जाना। यह (संसार रूपी) सागर अथाह है और महान् विष से भरा हुआ है। (साधक) गुरु द्वारा उपदेश ग्रहण कर (लेकर), (इस संसार-सागर में) निलीन रहता है और निर्भय हरी का घर प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

जगत् के प्रेम (मोह) की चतुराई भूठी होती है। (जगत् के प्रेम को नष्ट होते) देर नहीं लगती, (मनुष्य फिर मर कर) आता-जाता रहता है। अहंकारी (प्राणी) नाम को भुलाकर (इस संसार में) चल देता है, (इस प्रकार वह) उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है और खप जाता है ॥ ७ ॥

(अहंकारी जीव) (माया के) बंधनों में बँधकर उपजता और नष्ट होता रहता है। (उमके) गले में अहंकार और माया का फंदा (पडा रहता है)। जिस (व्यक्ति) को गुरु के उपदेश द्वारा बुद्धि नहीं प्राप्त है और राम नाम में (अनुराग) नहीं है, वह बाँध का यमपुरी चलाया जाता है ॥ ८ ॥

गुरु के बिना मोक्ष-मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है? बिना गुरु के रामनाम का ध्यान किस प्रकार किया जा सकता है? (अतएव) गुरु का उपदेश ले कर दुस्तर (कठिन) संसार- (सागर) में तर जा, (सासारिक बन्धनों से) मुक्त होने पर ही सुख की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

गुरु की शिक्षा से ही कृष्ण ने गोवर्धन (पर्वत) धारण किया। गुरु के उपदेश से ही समुद्र पर (श्री रामचन्द्र जी ने) फस्वर तैरये। (इसीलिए) गुरु की शिक्षा लेकर, परमपद को प्राप्त कर; हे नानक, गुरु (समस्त) भ्रम समाप्त कर देता है ॥ १० ॥

गुरु की शिक्षा लेकर सच्ची तराकी तैरो और (अपने) हृदय में आत्मरूपी मुरारी (परमात्मा) को पहचानो। (हे साधक), हरि जपकर यमराज के बंधन काट डाल और अकुल निरंजन (माया से रहित हरी) को प्राप्त कर ॥ ११ ॥

संत, मित्र और गुरु भाई की (शाख) गुरु के उपदेश द्वारा ही है। गुरु की शिक्षा वृषाग्नि को दूर कर समाप्त कर देती है। मन और मुख (दोनों) से जगज्जीवन (हरी) का नाम जपो ; (इससे) हृदय के अन्तर्गत अलक्ष्य हरी दिखलाई पड़ता है ॥ १२ ॥

जिसे गुरु द्वारा समझ आ जाती है, वह नाम से संतुष्ट हो जाता है ; (ऐसी स्थिति में वह) किसकी निन्दा करे और किसकी स्तुति ? (हे शिष्य), अपने आप को पहिचान और जगदीश्वर को जप ; जगन्नाथ हरी मन को (बहुत) प्रिय) लगता है ॥ १३ ॥

जो (प्रभु) खण्ड-ब्रह्माण्ड में (व्याप्त) है, उसे जान, गुरु के उपदेश द्वारा उसे समझ (और उसके) शब्द द्वारा (उस प्रभु को) पहचान। घट-घट में (रम कर जीव रूप से हरी सभी) भोगों को भोगनेवाला है (और फिर भी) सब से अतीत (निर्वैष) रहता है ॥ १४ ॥

गुरु के उपदेश द्वारा हरी के पवित्र यश का कथन करो। गुरु की शिक्षा द्वारा ऊँचे (प्रभु) का आँखों से दर्शन करो। हे नानक, श्रवणों से हरि-सबधी वाणी (और उसके) नाम का श्रवण करो, (इस प्रकार) हे प्राणी, वाणी नेत्र और श्रवण (द्वारा) हरि के रंग में रंग जाओ ॥ १५ ॥ ३ ॥ २० ॥

[विशेष : उपर्युक्त पद में भी 'उपाइआ', 'गाइआ', 'जाइआ', 'खाइआ', 'चलाइआ', 'चुकाइआ', 'लखाइआ', 'भाइआ', 'रंगाइआ', आदि क्रियाएँ भूतकाल की हैं, किन्तु इनका प्रयोग वर्तमान काल के ही लिए अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इसी प्रकार अन्य पदों में भी यही बात है।] ॥

[२१]

कामु क्रोधु परहण पर निदा । लसु लोभु तजि होहु निचिदा ॥

भ्रम का संगलु तोड़ि निराला हरि अंतरि हरि रसु पाइआ ॥१०॥

निसि दामनि जिउ चमकि चंदाइगु देखै । अहिनिनिसि जोति निरंतरि पेखै ॥

आनंद रूपु अनूपु . सरूपु गुरि पूरै बेलाइआ ॥२॥

सतिगुर मिलहु आपे प्रभु तारे । ससि घरि सूरु दीपकु गैणारे ॥

बेखि अदिसटु रहहु निब लागी सभु त्रिभवरि ब्रह्म सुबाइआ ॥३॥

अमृत रसु पाए लुसना भउ जाए । अनभउ पदु पावै आपु गवाए ॥

ऊचो पदवी ऊचो ऊचा निरमलु सबदु कमाइआ ॥४॥

अहसट अगोचरु नामु अपारा । अति रसु मीठा नामु पिआरा ॥

नानक कउ जुगि जुगि हरि जसु दीजै हरि जपोऐ अंतु न पाइआ ॥५॥

अंतरि नामु परापति होरा । हरि जपते मनु मन ते घीरा ॥

दुष्ट घट भउ भंजन पाईऐ बाहुड़ि जनमि न जाइआ ॥६॥

मगति हेति गुर सबद तरंगा । हरि जसु नामु पदारसु मंगा ॥

हरि भावै गुर भेलि मिलाए हरि तारे जगनु सुबाइआ ॥७॥

जिनि जपु जपिओ सतिगुर मति वा के । जमकंकर कालु सेवक पग ताके ॥

ऊतम संगति गति मिति ऊतम जगु भउजलु पारि तराइआ ॥८॥

इहु भजजु जगत् सबदि गुर तरीऐ । अंतर की बुबिधा अंतरि जरीऐ ॥
 पंच बाण से जम कड मारै गगनंतरि धरणु चड़ाइआ ॥१॥
 साकत नरि सबद सुरति किज पाईऐ । सबद सुरति बिनु आईऐ जाईऐ ॥
 नानक गुरुमुखि मुकति पराइणु हरि पूरै भागि मिलाइआ ॥१०॥
 निरभज सतिगुरु है रखवाला । भगति परापति गुर गोपाला ॥
 घुनि अनंदु अनाहुदु बाजे गुर सबदि निरंजनु पाइआ ॥११॥
 निरभज तो सिरि नाही लेखा । आपि अलेखु कुवरति है बेखा ॥
 आपि अतीतु अजोनी संभज नानक गुरमति सो पाइआ ॥१२॥
 अंतर की गति सतिगुरु जाए । सो निरभज गुर सबदि पछाणै ॥
 अतरु देखि निरतरि बूझै अनत न मनु डोलाइआ ॥१३॥
 निरभज तो अम अंतरि बसिआ । अहिनिमि नामि निरंजन रसिआ ॥
 नानक हरि जसु संगति पाईऐ हरि सहजे सहजि मिलाइआ ॥१४॥
 अंतरि बाहरि सो प्रभु जाए । रहै अलिषतु चलते घरि आए ॥
 ऊपरि आदि सरब तिहु लोई सनु नानक अमृत रसु पाइआ ॥१५॥१४॥२१॥

(हे प्राणी), काम-क्रोध और पर निन्दा का परित्याग कर, लालच और और लोभ त्याग कर निश्चित हो जा । भ्रम की साँकल तोड़ कर निलसि हो जा । अन्तःकरण में हो हरि-रस की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

जिस प्रकार रात्रि के समय (बादलों से आच्छादित अंधकार में) बिजली की चमक के साथ प्रकाश दिखलाई पड़ता है, (उसी प्रकार परमात्मा की आन्तरिक) ज्योति (घट-घट में) निरंतर दिखलाई पड़ती है । (निगुण हरी के) आनन्दमय और अद्वितीय स्वरूप को पूर्ण गुरु दिखा देता है ॥ २ ॥

सद्गुरु से मिलो, (इससे प्रभु सद्गुरु के माध्यम से) आप ही तार देगा और (तुम्हारे हृदय रूपी) आकाश के चन्द्रमा में (मनुष्य की बुद्धि में) (गुरु-ज्ञान रूपी) सूर्य का प्रकाश हो जायगा । अदृष्ट (हरी) को देखकर, लिव लगाकर उसी में टिक जाओगे और समस्त त्रिभुवन में ब्रह्म ही ब्रह्म दिखलाई पड़ेगा ॥ ३ ॥

(निगुण हरी के) अमृत-रस पाने पर तृष्णा और भय चले जाते हैं । (जब साधक) ज्ञानपद को पाता है, (तो) (अपने) अहंभाव को गँवा देता है । पवित्र शब्द को कमाई से उच्च पदवी (और) ऊँचे से ऊँचा (स्थान प्राप्त होता है) ॥ ४ ॥

(हरी का) नाम अदृष्ट, अगोचर और अपार है । (वह) प्यारा नाम अत्यन्त रसीला और मीठा (होता है) । (हे हरी), नानक को युग-युगान्तरों में हरि यश प्रदान कर, (ताकि वह) हरि जप करे ; (हरी का) अन्त नहीं पाया जाता ॥ ५ ॥

हृदय में नाम रूपी हीरे की प्राप्ति से और हरि का जप करने से मन से ही मन धैर्यशील हो जाता है ; (अर्थात् ज्योतिर्मय मन द्वारा अहंकारी मन शान्त हो जाता है), दुर्गम मार्ग के भय को दूर करने वाला (हरी) प्राप्त हो जाता है और फिर जन्म नहीं धारण करना पड़ता ॥ ६ ॥

(सच्चा शिष्य) गुरु के उपदेश द्वारा भक्ति के निमित्त उत्साह (तरंग) (माँगता है) ; (वह) हरी का यश और नाम रूपी पदार्थ माँगता है । (यदि) हरी चाहे, (तो साधक) गुरु से मिलाकर (अपने में) मिला लेता है ; हरी ही समस्त जगत् को तारता है ॥ ५ ॥

जो हरी का जप जपता है, उसे गुरु की बुद्धि (मति) आती है, यम के दूत (किकर, दास) तथा काल उसके सेवक हो जाते हैं । उत्तम संगति से गति-मति भी उत्तम हो जाती है, और संसार-सागर (सुगमता से) पार तरा जा सकता है ॥ ८ ॥

(हे साधक), इस संसार-सागर को गुरु के उपदेश द्वारा तर जा ; आन्तरिक दुविधा को (अपने हृदय के अन्तर्गत जला डाल और दशम द्वार में (शब्द रूपी) धनुष को चड़ाकर पंच बाणों (सत्य, संतोष, दया, धर्म और धैर्य) से यमराज को मार डाल ॥ ९ ॥

शाक्त मनुष्य में शब्द की स्मृति कैसे आ सकती है ? बिना शब्द (नाम) की स्मृति के जन्म-मरण होता रहता है । हे नानक, गुरुमुख ही मुक्तिपरायण होता रहता है, पूर्ण भाग्य में हरी (ऐसे गुरुमुखों में) मिलाता है ॥ १० ॥

निर्भय सद्गुरु ही रक्षक होता है ; गुरु-गोपाल में ही भक्ति की प्राप्ति होती है । (गुरु के उपदेश से) अनाहत शब्द की आनन्द-ध्वनि बजती है । गुरु के उपदेश में ही निरंजन (माया से रहित हरी) पाया जाता है ॥ ११ ॥

निर्भय वही है, (जिसके) सिर पर किसी का लेखा (हुक्म) नहीं है । ऐसा अलेख (बिना किसी के हुक्म का, हरी) आप ही हैं, (वह हरी) कुदरत—प्रकृति (के माध्यम) से देखा जाता है (हरी) आप ही सबसे अतीत, अयोनि और स्वयंभू है, हे नानक, ऐसा (प्रभु) गुरु के उपदेश द्वारा प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

सद्गुरु ही (साधक की) आन्तरिक अवस्था जानता है । (जो) गुरु के शब्द—उपदेश को पहचानता है, वह निर्भय (हो जाता है) । (साधक अपने) अन्तःकरण को देखकर, (उसके अन्तर्गत) निरन्तर (व्याप्त हरी) को समझ लेता है और अन्यत्र मन नहीं डुलाता है ॥ १३ ॥

(जो सभी के) हृदय के अन्तर्गत बसा है, वही निर्भय (हरी) है (और सच्चा साधक वही है जो) निरंजन (हरी) के नाम में रसयुक्त (बना) है । हे नानक, हरि का यश सत्संगति से प्राप्त होता है और हरी सहज भाव से सहजावस्था में मिला लेता है ॥ १४ ॥

(जो व्यक्ति) अंतर-बाहर उसी प्रभु को जानता है, (वह संसार से) अलिप्त रहता है, और चलायमान (मन) को अपने (आत्मस्वरूपी) घर में ले आकर (स्थित कर देता है) । हे नानक, (जो हरी) सबके ऊपर, सब के आदि में और तीनों लोक में व्याप्त है, (शिष्य) उसी का अमृत रस प्राप्त कर लेता है ॥ १५ ॥ ४ ॥ २१ ॥

[२२]

कुदरति करनेहार अपारा । कीते का नाही किनु चारा ॥

जोअर उपाइ रिजकु ने आपे सिरि सिरि हुकमु बसाइआ ॥१॥

हुकमु चलाइ रहिआ भरपूरे । किमु नेहै किमु आखां दूरे ॥
 गुप्त प्रगट हरि घटि घटि देखहु वरतै ताहु सबाइआ ॥२॥
 जिस कउ मेले सुरति समाए । गुर सबदी हरि नामु धिआए ॥
 भानद रूप अनूप अगोचर गुर मिलिए भरमु जाइआ ॥३॥
 मन तन धन ते नामु पिआरा । अंति सखाई चलखावारा ॥
 मोह पसार नही संगि बेली बिनु हरि गुर किन सुख पाइआ ॥४॥
 जिस कउ नदरि करे गुरु पूरा । सबदि मिलाए गुरमति सारा ॥
 नानक गुर के चरन सरेखहु जिनि भूला मारगि पाइआ ॥५॥
 संत जना हरि धनु जसु पिआरा । गुरमति पाइआ नामु तुमारा ॥
 जाचिहु सेव करे दरि हरि कै हरि दरगह जसु गाइआ ॥६॥
 सतिगुरु मिलै त महलि बुलाए । साची दरगह गति पति पाए ॥
 साकत ठउर नाही हरि मंदर जनम मरै दुलु पाइआ ॥७॥
 सेवहु सतिगुर समुंदु अथाहा । पावहु नामु रतनु धनु लाहा ॥
 बिखिआ मलु जाइ अवतसरि नावहु गुर सरे संतोखु पाइआ ॥८॥
 सतिगुर सेवहु संक न कोजै । आसा माहि निरासु रहोजै ॥
 संसा दुख बिनासनु सेवहु फिरि बाहुड़ि रोगु न लाइआ ॥९॥
 साचे भावै तिसु बडीआए । कउनु सु दूजा तिसु समभाए ॥
 हरि गुर मूरति एका वरतै नानक हरि गुर भाइआ ॥१०॥
 वाचहि पुसतक वेद पुरानां । इक बहि सुनहि सुनावहि कानां ॥
 अजगर कपट कहहु किउ खुलै बिनु सतिगुर तनु न पाइआ ॥११॥
 करहि बिभूति लगावहि भसमै । अंतरि क्रोधु चंडालु सु हजमै ॥
 पाखंड कीने जोगु न पाईए बिनु सतिगुर अलखु न पाइआ ॥१२॥
 तीरथ वरत नेम करहि उडिआना । जलु सतु संजसु कथहि गिआना ॥
 राम नाम बिनु किउ सुखु पाईए । बिनु सतिगुर भरमु न जाइआ ॥१३॥
 निउली करम भुइअंगम भाठी । रेचक कुंभक पूरक मन हाठी ॥
 पाखंड धरमु प्रीति नही हरि सिउ गुर सबद महारसु पाइआ ॥१४॥
 कुदरति देखि रहे मनु मानिआ । गुर सबदी सभु ब्रह्मसु पछानिआ ॥
 नानक आतम रामु सबाइआ गुर सतिगुर अलखु लखाइआ ॥१५॥१॥२॥

कुदरत—प्रकृति का निर्माता अपार (कर्ता पुरुष) है । (परमात्मा द्वारा) रचे हुए (किए हुए) जीव का कुछ भी बश नहीं है । (हरी ही) जीवों को उत्पन्न करके, (उन्हें) खूगाक देता है और प्रत्येक के ऊपर (अपना) हुक्म चलाता है ॥ १ ॥

(प्रभु अपना) हुक्म (सबके ऊपर) चलाकर परिपूर्ण रहता है । (उस प्रभु के शासन में) किसे समीप और किसे दूर कहा जाय ? (अर्थात् प्रभु के लिए न कुछ दूर है और न कुछ

समीप, सभी वस्तुएं समान हैं) । (हे साधक), गुप्त और प्रकट हरी को प्रत्येक घट में देख ; सभी के बीच सोच-समझ कर वही बरत रहा है ॥ २ ॥

(प्रभु) जिसे (अपने में) मिलाता है, (वह) उसकी सुरति में समा जाता है, (वह) गुरु के उपदेश द्वारा हरि के नाम का ध्यान करता है । आनन्दस्वरूप, अद्वितीय (अनुपम) और अगोचर (हरि) गुरु द्वारा प्राप्त होता है ; (उसके प्राप्त होने पर समस्त) भ्रम चले जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं) ॥ ३ ॥

(हरी का) नाम तन, मन और धन (सबसे) प्यारा है । चलते समय अंत में (वही प्रभु) सहायक होता है । मोह के प्रसार के साथ में कोई भी सहायक नहीं होता ; बिना हरी और गुरु के किसने सुख प्राप्त किया है ? (अंत में गुरु और परमात्मा ही सहायक होने हैं) ॥ ४ ॥

जिस पर पूर्ण गुरु कृपादृष्टि करता है, (उस) शूरवीर को अपनी बुद्धि द्वारा शब्द—नाम में मिला देता है । हे नानक, गुरु के चरणों की आराधना कर, जिससे भूले हुए भी मार्ग पा गए हैं ॥ ५ ॥

मत-जनों को हरि का धन और (उमका) यश प्यारा होता है । (हे हरी) गुरु के उपदेश द्वारा तेरा नाम पाया जाता है । याचक, हरी के दरवाजे पर (उसकी) सेवा करता है और (उसकी) दरबार में उसका यश गाता है ॥ ६ ॥

(यदि) सद्गुरु प्राप्त होता है, (तो वही वास्तविक) घर में (परमात्मा के घर में) बुलाना है और परमात्मा के सच्चे दरबार में ही (मनुष्य) शुभ गति और प्रतिष्ठा पाता है । हरी के महल में यातक—मनमुख को ठीर (स्थान) नहीं प्राप्त होता, (वह) शाक्त व्यक्ति) जन्म धारण कर और मर कर दुःख पाता रहता है ॥ ७ ॥

(हे शिष्य), सद्गुरु (रूपी) अयाह समुद्र की सेवा कर, (जिससे) नाम रूपी रत्न, धन और लाभ को प्राप्त कर । (नाम रूपी) अमृत सरोवर में स्नान कर, (जिससे) विषय रूपी मैल नष्ट हो जाय, गुरु रूपी सरोवर में ही संतोष की प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

(हे सच्चे शिष्य) सद्गुरु की सेवा कर (और किसी प्रकार की) शंका न कर, (जगत् की) आशाओं के मध्य निराश होकर रह । संशय और दुःख को नष्ट करनेवाले (हरी) की आराधना कर, (जिससे) फिर लौटकर (सासारिक) रोग नहीं लगेंगे ॥ ९ ॥

(जो व्यक्ति) सच्चे (हरी) को अच्छा लगता है, उसी की बड़ाई है । कोई और उसके योग्य नहीं है । हरी और गुरु की मूर्ति एक होकर बरत रही है, हे नानक हरी को गुरु और गुरु को हरी अच्छा लगता है ॥ १० ॥

(लोग) वेदों-पुराणों की (धार्मिक) पुस्तकें बाँचते हैं, कुछ लोग बैठकर कानो से (धार्मिक प्रवचन) स्वयं सुनते हैं और दूसरों को सुनवाते हैं, (किन्तु उनके अज्ञान-कपाट नहीं खुलते) । (भला बताओ), बहुत बड़ा (अज्ञान रूपी) कपाट किस प्रकार खुले ? बिना सद्गुरु के (अज्ञान रूपी कपाट नहीं खुलता और उसके खुले बिना) (परमात्म-) -तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती ॥ ११ ॥

(कुछ लोग) विभूति (भस्म) बनाकर, (वही) भस्म (शरीर में) लगाते हैं, (किन्तु उनके अन्तर्गत) क्रोध रूपी चाण्डाल और अहंकार (छिपे रहते हैं) । (ऐसे)

पाखण्ड करने से (वास्तविक) योग की प्राप्ति नहीं होती ; बिना सद्गुरु के अलक्ष्य (परमात्मा) नहीं पाया जाता ॥ १२ ॥

(कुछ लोग) वनो और तीर्थों में (बस कर) नियम-व्रत करते हैं ; (वे) यत, सत्त्वगुण और संयम (का आचरण करते हैं) और ज्ञान का कथन करते हैं । किन्तु रामनाम के बिना सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? बिना सद्गुरु के भ्रम का नाश नहीं होता ॥ १३ ॥

(हठयोगियों के) नेवली-कर्म, तथा कुण्डलिनी (का उत्थान) एवं (दशम द्वार रूपी) भट्ठी (की प्राप्ति) तथा रेचक, कुंभक एवं पूरक (आदि प्राणायाम) तथा मन को हठपूर्वक (निग्रह करने की अन्य क्रियाएँ) (बाह्य क्रियाएँ) हैं । पाखण्डपूर्ण धर्म से हरि से प्रीति नहीं प्राप्त हो सकती ; गुरु के शब्द से ही महा रस (परमात्म-रस) की प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

(हरी की) कुदरत देखने से (और उस पर मनन करने से) मन मान जाता है, (शान्त हो जाता है) । गुरु के शब्द पर (विचार करने से) सभी (घटो) में ब्रह्म पहचान लिया जाता है । हे नानक, सभी (जड़-चेतन) में व्यापक राम है , सद्गुरु उस अलक्ष्य (हरी) को दिखा देता है ॥ १५ ॥ ५ ॥ २२ ॥

१०१ सतिगुरु प्रसादि ॥ राग मारु, वार, महला १,

सलोकु : विगु गाहक गुण बेचीऐ तउ गुण सहघो जाइ ।
 गुण का गाहकु जे मिलै तउ गुण लाख बिकाइ ॥
 गुण ते गुण मिलि पाईऐ जे सतिगुर माहि समाइ ॥
 मोलि अमोलु न पाईऐ वणजि न लोजै हाटि ।
 नानक पूरा तोलु है कबहु न होवै घाटि ॥१॥
 भूली भूली मे फिरी पाधरु कहै न कोइ ॥
 पूछहु जाइ सिम्राणिम्रा डुलु काटै मेरा कोइ ॥
 सतिगुरु साचा मनि वसे साजनु उत हो ठाइ ।
 नानक मनु नृपतासीऐ सिफतो साचै नाइ ॥२॥
 महल कुचजी मड़वड़ी काली मनहु कसुघ ।
 जे गुण होबनि ता पिरु रवै नानक अखगुण मुंघ ॥३॥
 साचु सील सचु संजमी सा पूरी परबारि ।
 नानक अहिनिंसि सदा भली पिर के हेति पिम्रारि ॥४॥

सलोकु : (यदि) बिना गाहक के गुण बेचा जाय, तो वह सस्ते में (बिक) जाता है । यदि गुण का कोई (सच्चा) ग्राहक मिल जाय, तो वह लाखों में बिकता है । गुणवाले (पुणी) से हो मिलकर गुण की प्राप्ति होती है । (सारे गुण) सद्गुरु में ही समाए होते हैं । वे गुण अमूल्य हैं । (उनका कोई) मूल्य नहीं पा सकता, (प्राक सकता) और न वे (किसी) हाट

में ही खरीदे जा सकते हैं । हे नानक, (गुणों की) तोल पूरी होती है, (इसमें) किसी प्रकार घटी नहीं होती ॥ १ ॥

मैं भूलती-भूलती फिर रही हूँ, कोई मुझसे (प्रियतम का) मार्ग नहीं बतलाता है । (मैं) किसी ज्ञानवान (के पास) (जाकर मार्ग पूछूँ,) (कदाचित् उनमें से) कोई मेरे दुःख को काट दे । (जिस सच्चे शिष्य के) मन में सच्चा सद्गुरु निवास करना है, साजन (हरी) भी वही (उसके मन में) निवास करता हुआ दिखलाई पड़ता है । हे नानक, सच्चे नाम की स्तुति से मन तृप्त कर ॥ २ ॥

शरीर के साथ अपने को एक समझने वाली स्त्री, कुचज्जी (बुरे आचरण वाली), मन की काली और अपवित्र होती है । नानक कहते हैं कि हे भवगुणों से भरी हुई स्त्री, (तुझ में) गुण हो, (तभी) (तुझमें) प्रियतम रमण कर सकता है, (अन्यथा नहीं) ॥ ३ ॥

हे नानक, (जो स्त्री) प्रियतम के निमित्त ग्रहणित प्यार करती है, (वही) भली है, सच्चे आचरणवाली, सच्ची रहनी वाली और परिवार में पूरी उतरने वाली है ॥ ४ ॥

पड़ोई : आपणा आपु पछाणिआ नामु निधानु पाइआ ।
किरपा करि कै आपणी गुर सबदि मिलाइआ ॥
गुर की बाणी निरमली हरि रसु पीआइआ ।
हरि रसु जिनी चाखिआ अनरस ठाकि रहाइआ ॥
हरि रसु पी सदा तृपति भए फिरि तृसनामुख गवाइआ ॥१॥

पड़ोई : नाम-निधान की प्राप्ति से अपने आप (अपने वास्तविक स्वरूप—आत्मा) की पहचान होनी है । (प्रभु) अपनी (महुती) कृपा करके, गुरु के शब्द में मिला देता है । गुरु की वाणी (अत्यन्त) पवित्र होनी है, (यह) हरि-रस को मिला देती है । जिन्होंने हरि-रस का आस्वादन कर लिया है, उनके अन्य रस समाप्त हो जाते हैं । (भक्त-गण) हरि-रस पीकर सदैव तृप्त होते हैं, तत्पश्चात् (वे अपनी) तृष्णा और क्षुधा नष्ट कर देते हैं ॥ १ ॥

[विशेष : उपर्युक्त पड़ोई में 'पछाडिआ', 'पाइआ', 'मिलाइआ', 'पीआइआ', 'चाखिआ', 'रहाइआ', 'गवाइआ' आदि शब्द भूतकाल की क्रिया के हैं, परन्तु इतना प्रयोग वर्तमान काल की क्रिया के लिए स्वाभाविक प्रतीत होता है ।]

सलोकु : ससुरे पेईऐ कंत की कंतु अगंसु अयाहु ।
नानक धंतु सुहागणी जो भावहि बेपरवाह ॥५॥

सलोकु : (जो स्त्री अपने) ससुराल तथा नेहर में अगम, अथाह प्रभु (परमात्मा) की प्यारी होती हैं), (वह स्त्री धन्य है) । जो स्त्री बेपरवाह (पति, परमात्मा) को प्यारी होती है, (वही) धन्य है और वही सुहागिनी है ॥ ५ ॥

पड़ोई : तखति राजा सो बहै जि तखतै लाइक होई ।
जिनी सनु पछाणिआ सनु राजे सेई ॥
एहि भूपति राजे न आखीअहि दूजै भाइ दुखु होई ।
कीता किआ सालाहोऐ जिसु जावे बिलस न होई
निहचलु सचा एकु है गुरुमुखि ब्रम्मे सु निहचलु होई ॥२॥

पउड़ी : वही राजा तस्त (सिंहासन) पर बैठता है, जो तस्त के लायक होता है। जिन्होंने सत्य (परमात्मा) को पहचान लिया है, सच्चे राजे वे ही हैं। (इन) भूषणियों को राजा नहीं कहना चाहिए, (क्योंकि ये सब) द्वैतभाव में दुःखी होते हैं। प्रभु के बनाए हुए (प्राणी) की क्या प्रशंसा की जाय ? इन (प्राणियों) के नष्ट होने में विलम्ब नहीं होता। सच्चा और एक (हरी ही) निश्चल है, गुरु द्वारा (जो इस रहस्य को) समझ लेता है, वह निश्चल हो जाता है ॥ २ ॥

सलोकु : ना मैला ना धुंधला ना भगवा ना कबु ।
 नानक लालो लालु है सचै रता सनु ॥६॥
 हुकमि रजाई साखती दरगह सचु कबूल ।
 साहिबु लेखा मंगसी दुनीआ देखि न भूल ॥
 दिल दरबानी जो करे दरबेसी दिल् रासि ।
 इसक मुहबति नानका लेखा करते पासि ॥७॥
 अलगउ जोइ मधूकइउ सारंगपाणि सबाइ ।
 हीरे हीरा बेधिया नानक कंठि सुभाइ ॥८॥

सलोकु : (मेरे ऊपर) न मैला (तमोगुण), न धुंधला (रजोगुण), न भगवा (सत्वगुण) (और न इनके कारण माया का) कच्चा रंग चढ़ा है, हे नानक, सच्चे (नाम की) लाली के कारण सच्चा लाल रंग चढ़ा है, (अर्थात् पूर्ण आनन्द प्राप्त है, क्योंकि) सत्य से सत्य मिल गया है ॥ ६ ॥

रजा वाले (हरी) के हुकम में रहने से (हरी से) बन आती है। (हरी के) समीप सत्य ही स्वीकार किया जाता है। (हे प्राणी) दुनिया देखकर मन भूल ; (जब) साहब (हरी) (तुमसे कर्मों का) लेखा मंगिया, (तो क्या देगा) ? दिल की (ठीक-ठीक) निगरानी करनी (और उसे) सीधे रास्ते पर ले जाना, (यही सच्ची) फकीरी है। हे नानक, इसक और मुहब्बत का लेखा (हिसाब) कर्तापुरुष के पास है ॥ ७ ॥

जो (मनुष्य) (सासारिक प्रपंचों से) दृष्ट होकर भोरे की भांति (गुणग्राही होकर) रहता है, (वह) सभी में सारंगपाणि (हरी) को देखता है, (उसका मन रूपी) हीरा (नाम रूपी) हीरे से बेधा गया है। हे नानक, (हरी रूपी माला) स्वाभाविक ही (उसके हृदय रूपी) कंठ में आ बसती है ॥ ८ ॥

पउड़ी : मनमुख कालु विघ्नापदा मोहि माइआ लागे ।
 खिन महि मारि पछाड़सी भाइ दूजे ठागे ॥
 फिर बेला हथि न आवाई जम का डंडु लागे ।
 तिन जम डंडु न लगई जा हरि लिब जागे ॥
 सब तेरी तुष्ट छडावणी सब तुष्ट लागे ॥३॥

पउड़ी : मोह और माया में लगने के कारण, मनमुख) (व्यक्ति) को काल व्यापता (सनाता) है। द्वैतभाव में लगने (के कारण), (काल उमे) क्षण में पछाड़ देता है। जब यमराज के डंडे (ऊपर) पड़ने लगते हैं, (तो) फिर (उससे बचने की) बेला हाथ में नहीं

भाती । जो (व्यक्ति) (हरी के) प्रेम में लगे हैं, उन्हें यमराज का डंडा नहीं लगता । (हे हरी, सारी सृष्टि) तेरी है, तू ही (उसे) मुक्त करता है । सभी (कोई) तुझी से मुक्त हैं ॥ ३ ॥

सलोक : सरबे जोइ अगछमी दूखु घनेरो प्राथि ।
कालरु लादसि सरु लाघणउ लाभु न पूजी साथि ॥६॥
पूजी साचउ नामु तू अणुटउ दरबु अपारु ।
नानक बखरु निरमलउ धनु साहु बापारु ॥१०॥
पूरब प्रीति पिराणि लै मोटउ ठाकुरु मारिण
माथै ऊभै जमु मारसी नानक भेलगु नामि ॥११॥

सलोक : सभी के मध्य स्थिर रहनेवाले (अगछमी) हरी को देख ; माया में अत्यधिक दुःख है । (मनमुख अथवा शाक्त व्यक्ति) खारी और निकम्मी मिट्टी (कालर) तो लादे है, किन्तु तरना (चाहता) है समुद्र, (भला यह कैसे सम्भव है) ? साथ में कोई पूजी है और न कोई लाभ ॥ ९ ॥

(हे हरी) तेरा सच्चा नाम ही (वास्तविक) पूजी है ; (नाम ही) शाश्वत और अपार द्रव्य है । हे नानक, (यह) सौदा (अत्यन्त) निर्मल है । इस धन का साहु (परमात्मा) (और इसका) व्यापार (हरि-भक्ति) धन्य है ॥ १० ॥

(हे साधक), (हरी की) पुरानी प्रीति पहचान और महान्—बड़े ठाकुर (प्रभु) को पूज । हे नानक, नाम में मिलने से, (इतनी सामर्थ्य आ जायगी कि) यमराज के भी मुँह के ऊपर मार सकेगा ॥ ११ ॥

पउड़ी : आपे पिंडु सवारिअनु बिचि नवनिधि नामु ।
इकि आपे भरमि भुलाइअनु तिन निहकल कामु ॥
इकनी गुरमुखि बुझिआ हरि आतम रामु ।
इकनी सुणि कै मंनिआ हरि ऊतम कामु ॥
अंतरि हरि रंगु उपजिआ गाइआ हरि गुण नाम ॥४॥

पउड़ी : (हे प्रभु, तूने) आप ही (मनुष्यों के) शरीर की रचना की है और (उस शरीर के) मध्य में, नाम रूपी नवविधि को रक्खा है । कुछ लोगों को (तूने) आप ही भ्रमित करके भुला रक्खा है, (ऐसे व्यक्तियों के) समस्त कार्य निष्फल हो जाते हैं । कुछ लोग गुरु के द्वारा आत्मा में रहे हुए हरी को जान लेते हैं । कुछ लोग (श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा) मुन कर यह बात मान लेते हैं कि हरि (की आराधना ही) उत्तम कार्य है । (सच्चा साधक अपने हृदय में) हरि-प्रेम उपजने पर, हरि के गुणों का गान करता है ॥ ४ ॥

सलोक : भोलतरि भै मान वसै हेकै पाघर हीहु ।
अति डाहपरि दुखु घरणो तीने थाव भरीहु ॥१२॥
मांदलु बेबि सि बाजणो घरणो घड़ीऐ जोइ ।
नानक नामु समाति तू बीजउ अवरु न कोइ ॥१३॥
सागरु गुणो अथाहु किनि हावाला देखीऐ ।
वडा बेपरबाहु सतिगुरु मिलै त पारि पवा ॥

मम भरि दुख ब दुख ।

नानक सचे नाम बिनु किसै न लखी सुख ॥१४॥

सलोक : भोलेपन से (हरी का) भय मन में बसता है; (यही) एक रास्ता है, (यही) एक चाल है । (हममें) अत्यन्त दाहपन (ईर्ष्या, जलन) और घना दुःख है; (ईर्ष्या और दुःख से) तीनों स्थान (मन, वाणी और शरीर) भ्रष्ट रहते हैं ॥ १२ ॥

जो (व्यक्ति) (जीवन में) बहुत 'घड़-घड़' करता है, (तात्पर्य यह कि जो बहुत बकवाद करता है), उसके लिए वेदों में भी वही (बकवाद का) ढोल घड़-घड़ बजता (दृष्टा प्रतीत होता है) हे नानक, तू नाम को सम्हाल, (नाम के सिवा) और कुछ दूसरा नहीं है ॥ १३ ॥

(संसार रूपी) सागर, तीनों गुणों से युक्त अथाह है । (उसकी) किस भाँति याह पाई जाय ? बड़े और वेपरवाह सद्गुरु की (जब) प्राप्ति हो, तभी (यह) पार पाया जा सकता है । (संसार के) मध्य दुःख ही दुःख भरा है । हे नानक सच्चे (हरी) के नाम बिना किसी की भी भूख नहीं नष्ट होती ॥ १४ ॥

पउड़ी : जिनी अंदरु भालिआ गुर सबदि सुहवै ।

जो इछनि सो पाइवे हरिनामु घिआवै ॥

जिसनो कृपा करे तिसु गुरु मिलै सो हरि गुरु पावै ।

धरमराइ तिन का मितु है जम मगि न पावै ।

हरिनामु घिआवहि दिनसु राति हरि नामि समावै ॥१५॥

पउड़ी : जिन्होंने गुरु के सुहावने उपदेश द्वारा (अपने) अन्तर्गत (परमात्मा को) खोजा है, वे नाम का ध्यान कर, जो कुछ इच्छा करते हैं, पा लेते हैं । जिसके ऊपर (परमात्मा) कृपा करता है, उसी को गुरु प्राप्त होता है और वही हरि के गुण गाता है । धर्मराज उनका मित्र हो जाता है (और वे) यम का मार्ग नहीं पाते हैं । (वे) अहनिश हरिनाम का ध्यान करते हैं और अन्त में (उसी) हरिनाम में समा जाते हैं ॥ ५ ॥

सलोक : सुणीऐ एकु बखानीऐ सुरगि मिरति पइआलि ।

हुकमु न जाई भेटिआ जो लिखिआ सो नालि ॥

कउरु मूया मारसी कउरु आबै कउरु जाइ ।

कउरु रहसी नानका किस की सुरति समाइ ॥१५॥

हउ मुआ मै मारिआ पउरु बहै वरीआउ ।

तुसना थकी नानका जा मनु रता नाइ ॥

लोइए रते लोइणी कंनो सुरति समाइ ।

जोभ रसाइए झुनड़ी रती लाल लवाइ ॥

अंबर सुसकि भकोलिआ कोमति कही न जाइ ॥१६॥

सलोक : स्वर्गलोक, मृत्युलोक (और) पाताललोक में (एक हरी) सुना जाता है (और उसी का) वर्णन होता है । (उस हरी का) हुक्म भेटा नहीं जा सकता; (उसका) लिखा जो कुछ भी होता है, वह साथ होता है । कौन मरता है और कौन मारता है ? कौन

आता है (जन्म लेता है) और कौन जाता है (मरता है) ? कौन हर्षित होता है और किसकी सुरति (हरी में) समाती है ? ॥ १५ ॥

(जीव) अहंभाव से मरता है और ममता (उसे) मारती है, और श्वास (प्राणवायु) नदी (के समान) बलती है । हे नानक, जब मन (हरी के) नाम में अनुरक्त हो जाता है, तो वृष्णा शान्त हो जाती है, (समाप्त हो जाती है) । आँखें नेत्रोंवाले हरी में और (उसकी) सुरति नेत्रों में समा जाती है, (तात्पर्य यह कि मनुष्य की सुरति कानो द्वारा हरी के यश-श्रवण में लीन हो जाती है) । जीभ नाम-रसायन को चुगनेवाणी है और नामजप कर तथा प्यारे में (अनुरक्त होकर) लाल हो जाती है । (इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है—प्रियतम (लाल) के नाम-स्मरण में जीभ चुनरी की भाँति रङ्ग गई है और रस का घर हो रही है); (इसका तीसरा अर्थ यह भी हो सकता है, जीभ नाम रूपी रसायन में लगकर चुन्नी (रत्न) हो गई है, वह स्वयं तो नाम में रंगी ही है, दूसरो को भी नाम में लगाती है) । हृदय सुगन्ध में डूब गया है और उसकी कीमत कही नहीं जा सकती ॥ १६ ॥

पङ्क्ति : इस जुग महि नामु निधानु है नामा नालि चले ।
एह अलुटु कदे न निवुटई खाइ खरचउ पले ॥
हरिजन नेड़ि न आवइ जम कंकर जम कले ।
से साह सचे बलजारिआ जिन हरि धनु पले ॥
हरि किरपा ते हरि पाईऐ जा आपि हरि धले ॥६॥

पङ्क्ति : इस युग में (कलियुग में) नाम ही (समस्त सुखों का) भाण्डार है और नाम ही (मनुष्य के) साथ (अंत में) जाता है, (तात्पर्य यह कि अन्तिम समय में नाम ही साथी होता है) । (नाम) अक्षय है, (यह) खाने-खरचने पर कभी समाप्त नहीं होता (और सदैव) पल्ले (बना रहता है) । यमदूत तथा यमकाल हरि के भक्त के निकट नहीं आते, जिसके पल्ले हरि धन है, वे ही सच्चे साहूकार और व्यापारी है । हरी की कृपा से, जब वह (अपने में) मिला ले, तभी उसकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

सलोक : हउमै करी तां तू नाही तू होवहि हउ नाही ।
बूझहु गिआनी बूझणा एह अकथ कथा मन माहि ॥
बिनु गुर ततु न पाईऐ अललु बसै सभ माहि ।
सतिगुरु मिले त जाणीऐ जां सबडु बसै मन माहि
आपु गइआ असु भउ गइआ जनम मरन दुख जाहि ।
गुरमति अललु लखाईऐ अतम मति तराहि ॥
नानक सोहं हंसा जपु आपहु त्रिभवण तिसै समाहि ॥१७॥
जिनि कीआ तिनि देखिआ आपे जाणै सोइ ।
किसनो कहीऐ नानका जा घरि बरतै सभु कोइ ॥१८॥

सलोक : (हे हरी), (यदि) अहंकार करता हूँ, तो तू नहीं प्राप्त होता, (और यदि) तू प्राप्त हो जाता है, तो अहंभाव नहीं रह जाता । हे ज्ञानी, इस अकथनीय बात को मन में समझने की चेष्टा करो । यद्यपि अलक्ष्य (परमात्मा) सभी (जड-चेतन) में व्याप्त है, (किन्तु) बिना गुरु के यह तत्व पाया नहीं जाता । यदि सद्गुरु प्राप्त हो, और उसका शब्द मन में बस

जाय, तभी इस तत्व को जाना जा सकता है। अपनापन नष्ट हो जाने से, भय और भ्रम तथा जन्म-मरण के दुःख नष्ट हो जाते हैं। गुरु के द्वारा अलक्ष्य (हरी) देखा जाता है, (गुरु द्वारा दी गई) उत्तम बुद्धि से ही (संसार-सागर) तरा जाता है। नानक कहते हैं कि हे हंस, (जीवात्मा) सोःहं (मैं बही हूँ) का जप कर, इसी में तीनों लोक समाए हुए हैं।

जिस (हरी) ने (यह संसार) बनाया है वही (इसकी) देखभाल करता है। जब सब कुछ (अपने) भीतर ही बरतता है, तो हे नानक, अन्य किसमें (क्या) कहा जाय ? ॥ १८ ॥

पउड़ी : सभे थोक विसारि इको मितु करि ।
 मनु तनु होइ निहालु पापा बहै हरि ॥
 आवण जाणा चुकै जनमि न जाहि मरि ॥
 सबु नामु प्राधारु सोमि न मोहि जरि ॥
 नानक नामु निधानु मन महि संजि घरि ॥७॥

पउड़ी . सारे पदार्थों को भुला कर, एक (हरी) को ही मित्र बना। हरी (समस्त) पापों को जला डालता है, (जिस कारण, हे प्राणी, तू) तन और मन से निहाल हो जायगा। (तेरे) आवागमन भी समाप्त हो जायेंगे और जन्म धारण कर (फिर) नहीं मरोगे। हे प्राणी तू सत्य (हरी) के नाम का आश्रय ग्रहण कर (जिससे) शोक और मोह में दग्ध न हो। हे नानक, नाम रूपी निधान को मन में संग्रह करके रख ॥ ७ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

राग तुखारी, महला १, बारहमाहा

छंद

[१]

तू सुणि किरत करंमा पुरबि कमाइया ।
सिरि सिरि सुख सहंमा देहि सु तू भला ॥
हरि रचना तेरो किआ गति मेरी हरि बिनु घड़ी न जीवा ।
प्रिअ बाझु दुहेली कोइ न बेली गुरमुखि अंशुतु पीवां ॥
रचना राचि रहे निरंकारी प्रभ मनि करम सु करमा ।
नानक पंथु निहाते साधन तू सुणि आतमरामा ॥१॥

बाबोहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीया ।
साधन सभि रस खोलै अंकि समाणीया ॥
हरि अंकि समाणी जा प्रभ भाणी सा सोहागणि नारे ।
नव घर थापि महल घर ऊचउ निजघरि वासु मुरारे ॥
सभ तेरी तू मेरा प्रीतमु निसिबासुर रंगि राबै ।
नानक प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा कोकिल सबदि सुहावै ॥२॥

तू सुणि हरि रस भिने प्रीतम आपणे ।
मनि तनि रवत रवने घड़ी न बीसरे ॥
किउ घड़ी बिसारी हउ बलिहारी हउ जीवा गुण गाए ।
ना कोई मेरा हउ किसु केरा हरि बिनु रहणु न जाए ॥
छोट गहो हरि चरण निबासे भए पवित्र सरीरा ।
नानक हसटि वीरघ सुख पावै गुरसबबो मनु धीरा ॥३॥
बरसे अंमृत धार बूंद सुहावणी ।
साजन बिले सहजि सुभाइ हरि सिउ प्रीति बानी ॥

हरि मंदरि धावै जा प्रभ भावै धन ऊभी गुण सारी ।
 घरि घरि कंतु रबै सोहागणि हउ किउ कंति बिसारी ॥
 उनवि धन छाए बरसु सुभाए मनि तनि प्रेसु सुखावै ।
 नानक बरसै अमृत बाणी करि किरपा घरि धावै ॥४॥

चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े ।
 बन फूले मंभ बारि मै पिरु घरि बाहुड़ै ॥

पिरु घरि नही धावै धन किउ सुख पावै बिरहि बिरोध तनु छोड़े ।
 कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहोजै ॥
 भवरु भवंता फूली डाली किउ जीवा मरु माए ।
 नानक चेति सहजि सुख पावै जे हरि वरु घरि धन पाए ॥५॥
 बैसाखु भला साखा वेस करे ।
 धन देखै हरि दुआरि धावहु दइआ करे ॥

घरि आउ पिआरे दुतर तारे तुघु बिनु अदु न मोलो ।
 कीमति कउण करे तुघु भावां देखि दिखावै डोलो ॥
 दूरि न जाना अंतरि माना हरि का महलु पछाना ।
 नानक बैसाखीं प्रभु पावै सुरति सबवि मनु माना ॥६॥

माहु जेहु भला प्रीतम किउ बिसरै ।
 थल तापहि सर भार सा धन बिनउ करै ॥
 धन बिनउ करेदी गुण सारेदी गुण सारी प्रभ भावा ।
 साधै महलि रहै बैरागी धावण बेहि त आवा ॥
 निमाणी नितानी हरि बिनु किउ पावै सुख महली ।
 नानक जेठि जाणै तिसु जैसी करमि मिलै गुण गहिली ॥७॥

आसाइ भला सूरजु गगनि तपै ।
 धरती दूख सहै सोखै अगनि भखै ॥
 अगनि रसु सोखै मरीऐ धोखै भी सो किरतु न हारे ।
 रघु किरै छाइआ धन ताकै टीहु लवै मंभि बारे ॥
 अवगण बाधि चली दुखु आगै सुखु तिसु साचु समाले ।
 नानक जिस नो इहु मनु दीआ मरणु जोवरण प्रभ नाले ॥८॥

सावणि सरस मना घण वरतहि रुति आए ।
 मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ॥
 पिरु घरि नही धावै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए ।
 सेज इकेला खरी बुहेली मरणु भइआ दुखु कमाए ॥
 हरि बिनु नोद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ।
 नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए ॥९॥

भादउ भरमि भुलो भरि जोबरिण पछुतारणी ।
जल थल नीरि भरे बरस रुते रंगु मारणी ॥
बरसै निसि काली किउ सुख बाली दादर मोर लवंते ।
प्रिउ प्रिउ चवे बबोहा बोले भुइअंगम फिरहि डसंते ॥
मछर डंग साइर भर सुभर बिनु हरि किउ सुख पाईऐ ।
नानक पूछि चलउ गुर अपुने जह प्रभ तह ही जाईऐ ॥१०॥

असुनि घाउ पिरा साधन भूरि सुई ।
ता मिलीऐ प्रभ मेले दूजै भाइ लुई ॥
भूठि विगुती ता पिर सुती कुकह काह सि कुले ।
आगै घाम पिछे रुति जाडा देखि चलत मनु डोले ॥
दहबिसि साख हरी हरीआवल सहजि पकै सो मोठा ।
नानक असुनि मिलहु पिआरे सतिगुर भए बसीठा ॥११॥

कतकि किरतु पइआ जो प्रभ भाइआ ।
दोषकु सहजि बलै तति जलाइआ ॥
दोषक रस धन पिर मेलो धन ओमाहै सरसी ।
अवगण मारी मरै न सोभै गुणि मारी ता मरसी ॥
नामु भगति बे निजघरि बैठे अजहु तिनारी आसा ।
नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी लटु मासा ॥१२॥

मंधर माहु भला हरि गुरा अंकि समावए ।
गुरावंती गुरा रवे मै पिरु निहचलु भावए ॥
निहचलु चतरु सुजारु बिधाता चचलु जगतु सबाइआ ।
गिआनु धिआनु गुरा अंकि समाए प्रभ भाए ता भाइआ ।
गीत नाव कवित कबे सुणि राम नामि दुख भागै ।
नानक साधन नाह पिआरी अम भगती पिर आगै ॥१३॥

पोखि तुखारु पडै बरु नृगु रसु सोखे ॥
आवत की नाही मनि तनि बसहि सुखे ॥
मनि तनि रवि रहिआ जगजीवनु गुरसबदी रंगु मारणी ।
अंडज जेरज सेतज उतभुज घटि घटि जोति समाणी ॥
बरसनु बेहु दइआपति बाले गति पावहु मति वेहो ।
नानक रंगि रबे रसि रसोआ हरि सिउ प्रीति सनेहो ॥१४॥

माधि पुनीत भई तोरपु अंतरि जानिआ ।
साजन सहजि मिले गुरा गहि अंकि समानिआ ॥
प्रीतम गुरा अंके सुणि प्रभ बंके तुषु भाबा सरि नावा ।
गंग जमुन तह बेणी संगम सात समुंद समावा ॥

पुंन दान पूजा परमेसुर गुणि गुनि एको जाता ।
 नानक भाधि महारसु हरि जपि अठसठि तीरथ नाता ॥१५॥
 फलगुनि मनि रहसी प्रेमु सुभाइआ ।
 अनविनु रहसु भइआ आपु गवाइआ ॥
 मन मोहु चुकाइआ जा तिसु भाइआ करि किरपा धरि आओ ।
 बहुते बेस करी पिर बाभळु महली लहा न पाओ ॥
 हार डोर रस पाट पटंबर पिरि लोड़ी सीमारी ।
 नानक भेलि लई गुरि अपर्यै धरि बरु पाइआ नारी ॥१६॥
 बेदस माह खली पिती वार भले ।
 घड़ी भूरत पल साचे आए सहजि मिले ॥
 प्रभ मिलें पिआरे कारज सारे करता सभ बिधि जाणै ।
 जिनि सीमारी तिसहि पिआरी मेलु भइआ रंगु माणै ।
 धरि सेज सुहावो जा पिरि रावो गुरुमुखि मततकि भागो ।
 नानक अहिनिसि राखे प्रीतसु हरि बरु थिरु सोहागो ॥१७॥१॥

(हे हरी), तू सुन, (अपने) पिछले कमाए हुए कर्मों की किरत (कमाई) के अनुसार प्रत्येक जीव सुख (अथवा दुःख) सहता है, जो तू दे, वही भला है । हे हरी, (यह सब) तेरी रचना है, इसमें मेरी क्या गति हो सकती है ? बिना हरी के (जीवात्मा रूपी स्त्री) एक घड़ी भी नहीं जी सकती । बिना प्रियतम के (स्त्री) दुःखी रहती है, (उसका) कोई सहायक नहीं (होता), (मैं तो) गुरु के द्वारा अमृत पीती हूँ । निरंकार (हरी) की रचना में (जीव मात्र) रंगे हुए हैं, (पर वास्तव में) हरी जी को मन में बसाना सबसे उत्तम कर्म है । नानक कहता है कि हे आत्माराम (हरी) तू सुन, (जीवात्मा रूपी) स्त्री, तेरा पथ निहार रही है ॥ १ ॥

(चित्त रूपी) पपीहा 'पीपी' बोलता है (और जीभ रूपी) कोयल प्यार की बोली बोलती है । (जो स्त्री) (पति के) श्रोक में बसी है, वह सभी रसों को भोगती है । जो (स्त्री) प्रभु को अच्छी लगती है, वही हरी के श्रोक में समायी है, वही सुहागिनी स्त्री है । (वह स्त्री) नौ गोलकों (दो कान, दो नासिका-रन्ध्र, दो आँखें, एक मुख, एक शिश्न-द्वार, एक गुदा द्वार) (वाले शरीर को) पति का ऊँचा महल बना कर, (और वहाँ) अपने आत्मरूपी घर में हरी का निवास देखती है । हे प्रियतम (हरी), सारी (जीवात्मा रूपी स्त्रियाँ) तेरी हैं; तू मेरा है । (मैं) (तेरे साथ) अर्हानिश आनन्द मनाती हूँ । नानक कहता है कि (हे प्रियतम हरी), चित्त रूपी पपीहा 'पी-पी' बोलता है (और जीभ रूपी) कोयल (प्यार की) कूक से सुशोभित होती है ॥ २ ॥

अपने प्रियतम के हरि-रस में भीजे हुए तथा जिसके तन, मन में (वह हरी) रमा हुआ है; और एक घड़ी भी नहीं भूलता (उसका) हाल, (भावार्थ मेरा हाल) सुन । (मैं उस प्रियतम को एक घड़ी भी क्यों विसराऊँ ? मैं (उसके ऊपर) न्योछावर हूँ; मैं उसका गुणगान करके ही जीवित हूँ । मैंने हरी के चरणों की शरण ग्रहण की है (और उसी में अपना)

निवास (बनाया है), (इसी कारण) मेरा शरीर पवित्र हो गया है । नानक (का कथन है कि प्रभु की कृपा)—दृष्टि से महान् सुख की प्राप्ति हुई है और गुरु के उपदेश से मन टिक गया है ॥ ३ ॥

(परमात्मा के प्रेम रूपी) अमृत-धार की वर्षा होती है, (उस अमृत-वर्षा की) बूंदें (बड़ी) सुहावनी होती है । (गुरु रूपी) मित्र (मुझे) सहज भाव से प्राप्त हो गए हैं; (जिससे) हरी से (गहरी) प्रीति (जुड़) गई है । जब प्रभु को रचता है, तभी हरी (हृदय रूपी) मन्दिर में आता है (और उस समय जीवात्मा रूपी) स्त्री खड़ी होकर (तत्पर होकर) गुणों को संभालती है, (स्मरण करती है) । घर-घर में (वह) प्रियतम (हरी) सुहागिनियों को भोगता है फिर मुझे उस कंठ ने क्यों भुला दिया है ? झुक कर बादल छाए हैं, सुन्दर वर्षा हो रही है, (मेरे) तन और मन मे प्रेम सुख दे रहा है । हे नानक, अमृत-वाणी की वर्षा हो रही है, (वह हरी) कृपा करके (हृदय रूपी) घर में आ बसा है ॥ ४ ॥

चैत मे वसन्त (कितना सुहावना लगता है); भीरो की गुञ्जार भी (बड़ी) सुहावनी है । बनों में वनराजि फूल पड़ती है, (यदि) मेरे घर प्रियतम आ जाय, (तो वह भी फूल उठे), (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार वसन्त के आगमन से बनों में वनराजि फूल उठती है, उसी प्रकार यदि मेरा प्रियतम मेरे घर में आ जाय, तो आनन्द-मंगल हो जाय) । (यदि) प्रियतम घर नहीं लौटता, तो स्त्री कैसे सुख पा सकती है ? विरह के विरोध (संधर्ष) मे (उसका) शरीर (निरन्तर) छीजता रहता है । अमराइयो मे कोयल सुहावनी बोली बोलती है, (भला वियोग का) दुःख अंक (हृदय) में कैसे सहा जाय ? (बिना प्रियतम के बाह्य प्रकृति के उल्लास नारी के हृदय में वेदना का संचार करते हैं) । फूली हुई डालियों में भँवरा चक्कर लगा रहा है, (हे मेरी) माँ, (यह तो) मीत है, (मैं) किस प्रकार जीवित रहूँ ? हे नानक, (यदि) चैत मे, स्त्री अपने पति को घर में पा जाय, (तो उसे) सहज सुख की प्राप्ति हो जाय ॥ ५ ॥

वैशाख (महीना बहुत) अच्छा है; (इस महीने मे) (वृक्षों की) शाखाएँ (खूब) वेधा बनाती है, (अर्थात् फूलती-फलती है) । स्त्री (अपने) द्वार (पर खड़ी होकर, प्रियतम) हरी की प्रतीक्षा करती है (और कहती है), “हे प्रियतम, दया करके (अब) घर आ जा और इस दुस्तर (संसार-सागर) को तार; तेरे बिना मेरा कौड़ी (मात्र) भी मूल्य नहीं है । किन्तु (यदि मैं) तुम्हें अच्छी लभूँ, तो मेरी कीमत कौन पा सकता है ? (कोई ऐसे प्रियतम हरी को स्वयं) देख कर (मुझे) दिखावे । (हे प्रभु), मैं तुम्हें दूर नहीं जानती, (अपने) अंतर्गत ही माननी हूँ; (इसी से मैंने) हरि का निवास-स्थान (महल) पहचान लिया है ।” हे नानक, (इस प्रकार) वैशाख मे (सुहागिनी स्त्री को) प्रभु अच्छा लगता है; (उस प्रभु की) सुरति और शब्द मे (युक्त होकर) मन मान जाता है, (शान्त हो जाता है) ॥ ६ ॥

जेठ के सुन्दर (महीने) में, (भला) प्रियतम किस प्रकार भूले ? (सारा) संसार (स्वयं) भार के समान तप रहा है । स्त्री (अपने प्रियतम से) विनय करती है । स्त्री (परमात्मा के) गुणों को स्मरण करती हुई विनती करती है कि हे प्रभु मैं तेरे गुणों को याद करती हूँ,

ताकि (मैं तुझे) अच्छी लगूँ । निलेप (हरी) सच्चे महल मे निवास करता है, (यदि वह अपने महल में) भाने दे, तो भ्राऊँ । हरी के बिना मैं मान-बिहीन और शक्ति-रहित हूँ, (बिना हरी के, जीवात्मा रूपी स्त्री उसके) सुख के महलों मे कैसे सुख पा सकती है ? हे नानक, जेठ मे (उस प्रभु के) जानने से (जीवात्मा रूपी) उसी के समान हो जाती है । (परमात्मा की) कृपा द्वारा (हरी) प्राप्त होता है, (और जीवात्मा रूपी स्त्री) गुणों को ग्रहण करने वाली (बन जाती है) ॥ ७ ॥

आषाढ़ (के) भले (महीने) में सूर्य आकाश मे तपता है । (घोर उष्णता से) पृथ्वी दुःख सहन करती है, (निरन्तर) सूखती है और प्राण के समान तपती है । अग्नि (रूपी सूर्य) जल (रस) को सुखाता है, (बेचारा जल) सुलग-सुलग कर मरता है, (फिर भी निर्दयी सूर्य का) कार्य जारी है—(वह अपने जलानेवाले स्वभाव से बाज नहीं आता) । (इस सूर्य का) रथ (निरन्तर) फिरता रहता है और स्त्री (गर्मी से रक्षा पाने के लिए) छाया ताकती फिरती है; जंगल में टिड्डे (वृक्षों के नीचे) 'ची ची' शब्द करते रहते हैं, (भावार्थ यह कि टिड्डे पानी के लिए तड़पते रहते हैं) । (जो जीवात्मा रूपी स्त्री इस संसार से) भ्रवगुणो (की पोटली) बाँध कर चलती है, (उसे) आगे (परलोक मे) दुःख मिलता है, सुख उसी को प्राप्त होता है, (जो) सत्य को सभालती है । हे नानक, जिस (प्रभु) ने इस मन को दिया है, उसी प्रभु के साथ जीवन और मरण (दोनों ही) है ॥ ८ ॥

सावन मे (वर्षा) ऋतु आ गई है, बादल बरस रहे हैं, (हे मेरे मन) आनन्दित हो, मेरे तन मन को प्रियतम अच्छे लगते हैं, (किन्तु मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर) परदेश चले गए है । (मेरे) प्रियतम घर नहीं आ रहे है, (मैं) शोक मे मर रही हूँ; बिजली चमक कर डरा रही हैं । (मैं अपनी) सेज पर अकेली हूँ और अत्यधिक दुखी हूँ । हे माँ, यह दुःख मरण (के समान) हो गया है (भला) कटो, हरी के बिना कैसी भूख और नीद ? शरीर पर वस्त्र भी सुखद नहीं प्रतीत होते । हे नानक, जो (स्त्री) प्रियतम के अंक मे समा जाती है, वही सुहागिनी है (और सच्चे अर्थ मे) कंत वाली (काता) है ॥ ९ ॥

भादो (के महीने) में (स्त्री) यौवन में भरी है और भ्रम में पड़ कर भूल गई है, (जिससे) पछता रही है । जलाशयो और स्थलों में जल भर गया है । (इस) ऋतु में वर्षा हो रही है (और लोग) रग मना रहे हैं । अंधेरो (काली) रात्रि मे वर्षा हो रही है; (भला बिना प्रियतम के ऐसे समय मे) स्त्री को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? मेढक और मोर बोल हैं । परीहा 'पी पी' कह कर बोल रहा है । साँप (प्राणिनों को) डसते फिरते है । मच्छर डंक मारते हैं (काटते हैं), सरोवर लबालब भरे हैं, (ऐसे समय में स्त्री) बिना (प्रियतम) हरी के कैसे सुख पा सकती है ? हे नानक, अपने गुरु से पूछ कर (हरी के मार्ग की ओर) चलो; जहाँ प्रभु हों, वही जाओ ॥ १० ॥

आश्विन (का महीना आ पहुँचा), प्रियतम (अब तो) आ जा; (तेरी) स्त्री (तेरे) वियोग मे) दग्य हो कर मर रही है । (जीवात्मा रूपी स्त्री प्रियतम हरी से) तभी मिलती है, जब प्रभु (स्वयं कृपा करके) मिलाता है, (वह) द्वैतभाव में नष्ट हो जाती है । झूठी (माया) में (पड़कर वह जीवात्मा रूपी स्त्री) नष्ट होती है और अपने, प्रियतम (हरी) के

द्वारा त्याग दी जाती है। कोकाबेली और कास आदि फूल गए हैं (उपर्युक्त फूलों का रङ्ग ध्वेत होता है, तात्पर्य यह कि जबानी गई, बूढ़ावस्था आ पहुँची और काले बाल ध्वेत हो गए)। आगे-आगे तो घूप (उष्णता चली जा रही है) और पीछे-पीछे जाड़े की श्रुत (चली आ रही है)। (इस) परिवर्तन को देखकर मन डरता है। दशों दिशाओं में शाखाएँ हरी-हरी (दिखाई पड़ रही हैं); (प्रत्येक स्थान में) हरियाली (दिखाई पड़ती है)। (वृक्षों में लगे हुए फल) सहज भाव से पक कर मीठे हो रहे हैं। नानक कहते हैं कि हे प्रियतम, आश्विन के महीने में मिलो, (अब तो मेरे और तुम्हारे बीच) मध्यस्थ सदगुरु हो गए हैं ॥ ११ ॥

कार्तिक में उसी को फल प्राप्त होता है, जो (उस) प्रभु को अच्छा लगता है। वही दीपक सहज भाव से जलता है, जो ज्ञान-तत्त्व से जलाया जाता है। (उस) दीपक में प्रेम (रस) का तेल है; (उस दीपक के प्रकाश में) स्त्री और पति—जीवात्मा और परमात्मा का मिश्रण होता है, (और फिर जीवात्मा रूपी स्त्री) भिलन के उत्साह से आनन्दित हो जाती है। पापों की मारी हुई (जीवात्मा रूपी स्त्री) मर कर मुक्त नहीं होती, गुणों से ही मारी जाकर (वह) मुक्त होती है। (हे प्रभु) जिन्हें तू नाम और भक्ति देता है, वे अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूप) में बैठते हैं और उन्हें निरन्तर तेरी आशा लगी रहती है। नानक कहते हैं कि हे प्रभु कपट (माया) के दरवाजे को खोल कर मिलो, (अब तो बिरह इतना तीव्र हो रहा है कि) एक घड़ी छः महीने के समान हो गई है ॥ १२ ॥

(यदि) हरि के गुण हृदय में समा जायें, (तो) अग्रहन का महीना बहुत अच्छा (हो जाय)। गुणवती (स्त्री) गुणस्वरूप (हरी) को स्मरण करती है, (काश कि) मुझे भी निश्चल हरी प्यारा लगता (और मैं भी उसे स्मरण करती)। विधाता (कर्ता)पुरुष ही निश्चल चतुर और मुजान है, (अन्य) समस्त जगत् चंचल (और नद्वर) है। (जब) प्रभु की इच्छा—मर्जी होती है, (तभी साधक के) हृदय में ज्ञान, ध्यान (तथा अन्य दैवी) गुण आ बसते हैं, (और वह प्रभु को) प्रिय लगता है। कवियों (के समीप) (मैंने) गीत, संगीत-नाद (एवं अनेक प्रकार की) कविताएँ सुनी, (किन्तु उनसे कुछ भी न हुआ); (अन्त में) राम नाम सुनने से मेरा दुःख समाप्त हो गया। हे नानक, (जो) स्त्री पति में आन्तरिक भक्ति करती है, वही स्वामी को प्यारी होती है ॥ १३ ॥

पौष (के महीने) में तुषार पड़ता है, वन (के वृक्षों) और तृणों का रस सूख जाता है। (हे प्रभु, तू मेरे) तन, मन तथा मुख में बसा हुआ है, (फिर) क्यों नहीं (मेरे समीप) आता? (प्रभु ही) तन और मन में रम रहा है, (वही) जगत् का जीवन है; गुरु के उपदेश द्वारा (इस वस्तु के साक्षात्कार से) आनन्द प्राप्त होता है। झंझ, जेरज अथवा पिडज; स्वेदज तथा उड्झिज (आदि चारों खानियों) के प्रत्येक घट में (हरी की अखण्ड और शाश्वत) ज्योति व्यस्त हो रही है। हे दयापति, हे दाता (अपना दिव्य) दर्शन (मुझे) दे तथा (ऐसी) मति—बुद्धि प्रदान कर कि (मैं) (शुभ) गति पा जाऊँ। हे नानक, जिसे हरि से प्रीति और स्नेह हो गया है, (वह जीवात्मा रूपी स्त्री) रस के रसिक (हरी, को प्रेम से भोगती है ॥ १४ ॥

माघ में, ज्ञान-तीर्थ को अपने अन्तर्गत ही जान कर (मैं) पवित्र हो गई। सहज भाव से (मुझे) साजन मिल गए; (उनके) गुणों को ग्रहण करके (मैंने) अपने अन्तःकरण में धारण कर लिया। हे श्रेष्ठ (बकि) प्रभु सुन, (मैंने) प्रियतम के गुणों को (अपने) अंक—

हृदय में (समवा लिया); तुझे अच्छा लगना ही (ज्ञान के) सरोवर में स्नान करना है । (इसी ज्ञान के सरोवर में) गंगा, यमुना, (सरस्वती) का संगम तथा त्रिवेणी—प्रयागराज तथा सातों समुद्र (के पवित्र स्नान) आ जाते हैं । एक परमेश्वर को युग-युगान्तरो में जानना ही (समस्त) पुण्य, दान और पूजा है । हे नानक, माघ में हरी का जप ही महा (अमृत) रस है और यही अड़सठ तीर्थों का स्नान है ॥१५॥

फागुन में, जिन्हें (हरी का) प्रेम अच्छा लग गया, (उनके) मन में प्रसन्नता—उल्लास है । अपनेपन को नष्ट करने से अहर्निश आनन्द प्राप्त हो गया । उस (प्रभु) के अच्छा लगने पर मन के मोह समाप्त हो गए; (हे प्रभु) कृपा कर के (मेरे अन्तःकरण रूपी) घर में आ (बसो) अनेक वेशादिक के बनाने से भी, बिना प्रिय (हरी) के (जाने), (उसके) महल में स्थान नहीं प्राप्त होता । (जब) प्रियतम हरी ने मुझे चाहा, (तो मैं) हार, डोर, पाट, पाटम्बर से सजाई गई । हे नानक, गुरु ने (जीवात्मा रूपी स्त्री को) अपने में मिला लिया, (जिसके फल-स्वरूप) स्त्री (जीवात्मा) ने अपने घर (हृदय) में ही घर (परमात्मा) को पा लिया ॥१६॥

(इस प्रकार जब) सच्चा (हरी) सहजभाव में आकर मिल जाता है, तो बारह महीने, (छः) ऋतुएँ, (पन्द्रह) तिथियाँ और (सातों) दिन, तथा घड़ी, मुहूर्त, पल (सभी कुछ) अच्छे हो जाते हैं, (क्योंकि हरी के मिलने का उल्लास और क्षण बना रहता है) । प्यारे प्रभु के मिलने पर (सारे) कार्य सिद्ध हो जाते हैं, कर्तापुरुष (लोक-परलोक की) समस्त विधियाँ जानता है । जिन (जीवात्मा रूपी स्त्रियों ने) युग युगों और मदाचरण से अपना श्रृंगार किया है, वे ही (प्रियतम हरी को) प्यारी हैं; (प्रियतम हरी से) मिलन हो जाने से (वे निरन्तर) आनन्द मनाती हैं । जब प्रियतम (हरी) (उन्हें) भोगता है, तो उनके घर और सेज सुहावनी हो जाती है । गुरु द्वारा ही मस्तक का भाग्य (जगता) है । हे नानक, प्रियतम हरी (उनके साथ) अहर्निश रमण करता है (और उनका) सौभाग्य—सोहाग स्थिर हो जाता है ॥१७॥१॥

[२]

पहिले पहर नैरा सलोनड़ीए रैरिण अंधिआरी राम ।
बखरु रालु मुईए आवै वारी राम ।
वारी आवै कवगु जगावै सूती जम रसु चूसए ।
रैरिण अंधेरी किआ पति तेरी चोरु पड़ै घरु भूसए ॥
राखणहारा अगम अपारा सुणि बेनंती मेरोआ ।
नानक भूरलु कबहि न चेतै किआ सूभै रैरिण अंधेरोआ ॥१॥
दूजा पहरु भइआ जागु अचेती राम ।
बखरु रालु मुईए खाजै खेती राम ॥
राखणु खेती हरि गुर हेती जागत चोरु न लागै ।
जम मणि न जावहु ना दुलु पावहु जम का डरु भउ भागै ॥
रवि ससि दीपक गुरमति दुआरै मनि साचा मुखि धिआवए ।
नानक भूरलु अजहु न चेतै किव दूजै सुलु पावए ॥२॥

तीजा पहलु भइआ नीब बिआपी राम ।
 भाइआ सुत बारा बूझि संतापी राम ॥
 भाइआ सुत बारा जगत बिआरा बोग सुगै नित फासै ।
 नामु बिआवै ता सुखु पावै गुरमति कालु न घासै ॥
 जंमए मरए कालु नही छोडै बिगु नावै संतापी ।
 नानक तीजै त्रिबिधि लोका भाइआ मोहि बिआपी ॥३॥
 जउबा पहलु भइआ दउतु बिहागै राम ।
 तिन घरु राखिअइआ ज़ो अनदिनु जागै राम ॥
 गुर पूछि जागे नामि लाने तिना रैए सुहेलीआ ॥
 गुर सबहु कमाबहु जनमि न आवहि तिना हरि प्रभु बेलीआ ॥
 कर कंषि चरण सरीरु कपै नैए अंधुले तनु भसम से ।
 नानक दुखीआ जुग चारे बिनु नाम हरि के मनि बसे ॥४॥
 लूली गंठि उठो लिखिआ भाइआ राम ।
 रस कस सुख ठाके बंधि चलाइआ राम ॥
 बधि चलाइआ जो प्रभ भाइआ ना दीसै ना सुणीऐ ।
 आपण वारी समसै आवै पकी खेती सुणीऐ ॥
 घड़ी चसे का लेखा लीजै बुरा भला सहु जीआ ।
 नानक सुरि नर सबदि मिलाए तिनि प्रभि कारगु कीआ ॥५॥२॥

विशेष : इस पद में रात्रि के चार पहलुओं की समता मनुष्य की आयु के चार भागों से की गई है। जिस प्रकार निद्रा में बेहोश व्यक्ति के घर में चोर पैठ कर, उसका सारा सामान चुरा लेते हैं, उसी प्रकार हरि-स्मरण-बिहीन प्राणी के हृदय में कामादिक चोर प्रविष्ट होकर, उसके समस्त गुणों को चुरा लेते हैं। अतएव साधक प्राणी को सदैव सचेष्ट रहना चाहिए।

अर्थ : हे सुन्दर नेत्रवालो, (आयु रूपी) रात्रि के पहले पहर में (घनघोर) अन्धकार (अज्ञान) रहता है। हे जिज्ञासु (जीवात्मा), (नाम रूपी) सौदे की (भलीभाँति) रक्षा कर; (तेरे) (जगने की) बारी आयेगी। (यदि) बारी आने पर (अज्ञानता की निद्रा में) सो गई, (तो तुझे) कौन जगायेगा ? (तेरा सभी) आनन्द-रस यमराज चूस लेगा। अंधेरी रात्रि में (तेरी) क्या प्रतिष्ठा होगी ? (कामादिक) चोर प्रविष्ट होकर घर मूस (चुरा) लेगे। हे अगम, अपार और रक्षक (हरी), मेरी प्रार्थना सुन। नानक कहते हैं कि मूर्ख (अज्ञानी) कभी नहीं चेतता; (मोह की) अंधेरी रात्रि में उसे क्या सूझ पड़ेगा ? ॥१॥

रात्रि का दूसरा पहर (व्यतीत) हो गया; (हे) मूर्ख, (अब तो जग) हे जिज्ञासु (रूपी स्त्री, नाम रूपी) सौदे की रक्षा कर; (तेरी जीवन रूपी) खेती (काल द्वारा) खाई जा रही है। हरि एवं गुरु के साथ प्रेम करके (अपनी) खेती की रक्षा कर; (यदि तू) जगती रहेगी, (तो कामादिक) चोर नहीं लगेंगे। (ज्ञान में जाग्रत हो जाने पर, तू) यमराज के मार्ग पर नहीं जायेगी और न दुःख ही पायेगी, यमराज के (समस्त) भय भग जायेगे। गुरु के उपदेश द्वारा, सूर्य और चन्द्रमा के दीपक जल उठते हैं, (तात्पर्य यह कि गुरुपदेश द्वारा ज्ञान

रूपी सूर्य और शीतलता रूपी चंद्रमा उदय हो जाते हैं) । सच्चे मुख से (हरी का नाम ले) और सच्चे मन से (हरी का) ध्यान कर । नानक कहता है कि हे मूर्ख, तू अब भी नहीं सचेत होती; (भला) द्वैतभाव से सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? ॥२॥

(आयु रूपी रात्रि का) तीसरा प्रहर हो गया; (अज्ञान रूपी) नींद व्याप्त हो गई है । पुत्र और स्त्री की माया में दुःख संतप्त कर रहा है । (मनुष्य) धन, पुत्र और स्त्री तथा जगत् के प्रिय (भोग रूपी) चारे को चुगता है और नित्य उसमें फँसता जाता है । (जब मनुष्य हरी के नाम का ध्यान करता है, (उसे) तभी सुख प्राप्त होता है; गुरु की बुद्धि द्वारा (साधक को) काल नहीं प्रसता । (जब तक मनुष्य हरी के नाम का ध्यान नहीं करता), (तब तक उसे) जन्म, मरण एवं काल नहीं छोड़ते हैं; (इस प्रकार) बिना नाम के (मनुष्य) सतप्त होता रहता है । नानक कहता है (कि आयु के) तीसरे (प्रहर में) संसार की त्रिगुणात्मक (माया) एवं मोह व्याप्त हो गए हैं ॥३॥

(आयु रूपी रात्रि का) चौथा प्रहर आ पहुँचा (तात्पर्य यह कि आयु समाप्त होने को आ गई) दिन का प्रकाश (आ गया) । जो सदैव (ज्ञान में) जगता है, (वह) अपने (वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर की रक्षा कर लेता है । (जो साधक) गुरु से (ज्ञान) पूछ कर (उसमें) जगता है और नाम में लग जाता है, उसको (जीवन रूपी) रात्रि सुखदायिनी (हो जाती है) । ऐसे लोग गुरु के शब्द की कमाई करते हैं । (वे) जन्म धारण कर, (फिर इस संसार में) नहीं आते । उनका साथी प्रभु हरि (स्वयं) हो जाता है । (आयु के अंतिम प्रहर में) हाथ-पैर तथा (समस्त) शरीर कंपने लगता है, नेत्र बंधे हो जाते हैं और शरीर भस्म (के समान कान्तिहीन) हो जाता है । हे नानक, बिना हरि के मन में बसे, (संसार के प्राणी) चारों युगों में दुःखी रहते हैं ॥४॥

(पाप-पुण्य के) लेखे की गाँठ खुल गई (और परमात्मा का) हुक्म आ पहुँचा कि चलो । कसैले (यदि छ' प्रकार के) रस (तथा जीवन के अन्य) सुख समाप्त हो गए, (संसार के मोहग्रस्त प्राणी यमदूतों द्वारा) बाँध कर चलाये जाते हैं । प्रभु के आदेशानुसार (ऐसे प्राणी) बाँध कर चलाये जाते हैं । (ऐसी दशा में जीव) न तो देखता है और न सुनता है । सभी की (इस संसार से चलने की) बारी आती है, पकी खेती काट ही ली जाती है । (हरी) घड़ी-मुहूर्त का लेखा लेगा; जीव को भले-बुरे को सहन करना होगा । हे नानक, (हरी ने) गुरु-नरों (भाव महात्माओं) को शब्द द्वारा अपने से मिला लिया है, (उस प्रभु ने) ऐसा कारण रचा है ॥५॥॥२॥

[३]

तारा चड़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम ।

सेवक पूर करंमा सतिगुरि सबवि दिखालिआ राम ॥

गुर सबवि दिखालिआ जनु समालिआ अहिनिशि बेलि बीचारिआ ।

धावत पंच रहे घरु जाणिआ कामु क्रोधु बिलु मारिआ ॥

अंतरि जोति भई गुर साखी बीने राम करंमा ।

नानक हुउमै मारि पतीऐ तारा चड़िआ लंमा ॥१॥

गुरुमुखि जागि रहे चूकी अभिमानी राम ।
 अनदिनु भोरु भइआ साचि समानी राम ॥
 साचि समानी गुरुमुखि मनि भानी गुरुमुखि साबतु जाये ।
 साचु नामु भ्रमृतु गुरि दीआ हरि चरनी तिव लागे ॥
 प्रगटी जोति जोति महि जाता मनमुखि भरमि भुलाणी ।
 नानक भोरु भइआ मनु मानिआ जागत रैणि बिहाणी ॥२॥
 अउगुण बीसरिआ गुणी घरु कीआ राम ।
 एकी रवि रहिआ अवरु न बीआ राम ॥
 रवि रहिआ सोई अवरु न कोई मनही ते मनु मानिआ ।
 जिनि जल थल त्रिभवरण छटु छटु थापिआ सो प्रभु गुरुमुखि जानिआ ॥
 करण कारण समरथ अपारा त्रिविधि मेटि समाई ।
 नानक अवरण गुणह समारो ऐसी गुरमति पाई ॥३॥
 आवण जाए रहे चूका भोला राम ।
 हउमे मारि मिले साचा चोला राम ।
 हउमे गुरि छोई परगटु होई चूके सोग संतापे ।
 जोती अंदरि जोति समानी आपु पछाता आपे ॥
 पेईअडै घरि सबबि पतीणी साठुरडै पिर भारी ।
 नानक सतिगुरि मेलि मिलाई चूकी कारिण लोकारी ॥४॥३॥

व्यापक स्वरूप हरी सब को प्रकाशित कर रहा है, वह किस प्रकार देखा जाय ? [लंबा तारा=बड़ा तारा, जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है] । जब सेवक पूरे कर्मवाला (भाग्य वाला) हो, तो सद्गुरु अपने शब्द द्वारा वह तारा (आत्मप्रकाश) दिखा देता है । गुरु द्वारा शब्द दिखाने पर (साक्षात्कार कराने पर), सत्य संभाल लिया जाता है और अहंनिश देख कर विचार किया जाता है । पंच ज्ञानेन्द्रियाँ दोड़ने से समाप्त हो जाती है और (अपना वास्तविक) घर जान लिया जाता है तथा काम-क्रोध के विष मर जाने हैं । गुरु की शिक्षा द्वारा आन्तरिक ज्योति प्रकट हो जाती है और राम के (न्यारे) कर्म जान लिये जाते हैं । हे नानक, अहंकार को मार कर (साधक) तृप्त हो जाता है, व्यापकस्वरूप हरी सब को प्रकाशित कर रहा है ॥१॥

[उपर्युक्त पद मे 'दिलालिआ', 'बीचारिआ', 'मारिआ' आदि क्रियाएँ भूतकाल की हैं, किन्तु अर्थ की स्वभाविकता के लिए इनका अर्थ वर्तमान काल मे लिखा गया है ।]

गुरु के अनुयायी (ज्ञान मे) जगते हैं, (उनकी) अभिमानावस्था समाप्त हो जाती है । (उनके लिए) सदैव (ज्ञान का) सबेरा हो जाता है और वे सत्यस्वरूप (हरी) में समा जाते हैं, उन्हें गुरु की शिक्षा अच्छी लगती है और वे सत्य मे समा जाते हैं; गुरु की शिक्षा द्वारा वे पूर्ण रूप से जग जाते हैं । गुरु सब्बे नाम रूपी भ्रमृत को दे देता है, जिससे (उनका) एक-निष्ठ ध्यान हरि के चरणों मे लग जाता है । (उन्हें) (ज्ञान की अखण्ड) ज्योति प्रकट हो जाती है और (उसी) ज्योति में उन्हें ज्ञान हो जाता है । मनमुख तो भ्रम मे भटकते रहने हैं । हे नानक (ज्ञान का) सबेरा हो जाने पर मन मान जाता है (और प्रकाश रूपी ज्ञान में जगने से) (अज्ञान रूपी रात्रि) स्वतः समाप्त हो जाती है ॥२॥

[उपयुक्त पद में भी भूतकाल की क्रियाओं का प्रयोग वर्तमान काल ही के लिए किया गया है ।]

(सच्चे साधक का मन) अवगुणों को भुलाकर गुणों में (अपना) घर बना लेता है । एक (प्रभु ही सर्वत्र) रम रहा है, और कोई दूसरा नहीं है । (एक हरी ही सर्वत्र) रम रहा है, और कोई नहीं है; मन से ही मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) । जिसने जल, स्थल, त्रिभुवन तथा घट-घट (प्राणी-प्राणी) का निर्माण किया है, वह प्रभु गुरु द्वारा जाना जाता है । (हरी ही) करण और कारण है, (वह) अपार तथा सामर्थ्यवान् है, त्रिगुणात्मक माया को मिटाकर समाप्त कर देता है । हे नानक, गुरु के द्वारा ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जाती है कि अवगुण गुण में से समा जाते हैं ॥ ३ ॥

(हरी की कृपादृष्टि से जीव के) आवागमन समाप्त हो जाते हैं और (माया का) भुलावा भी समाप्त हो जाता है । अहंकार के मारने से (शरीर रूपी) चोला सच्चा हो जाता है, (अर्थात् सफल हो जाता है) । (जब) गुरु अहंकार को नष्ट कर देता है, (तो हरी अपने आप) प्रकट हो जाता है और शोक तथा संताप नष्ट हो जाते हैं । (जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की अखण्ड और शाश्वत) ज्योति में लीन हो जाती है, (और जीवात्मा) अपने आप को पहचान लेती है । (जीवात्मा रूपी स्त्री) नैहर (इस लोक) में शब्द—नाम से (अपने) घर में निश्चित हो जाती है और ससुराल (परलोक) में प्रियतम (हरी) को अच्छी लगती है ॥ हे नानक, (जब) सद्गुरु मिल कर (अपने में) मिला लेता है, तो लोगों की मुहताजी समाप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

भोलाबड़ भुली भुलि भुलि पछोताएी ।
 पिर छोडिअड़ी सुती पिर की सार न जारणी ।
 पिर छोडी सुती अवगणि सुती तिसु धन बिधए राते ।
 कामि ओधि अहंकारि विगुती हउमे लगी ताते ॥
 उडरि हंसु चलिआ फुरमाइआ भसमे भसम समाएी ।
 नानक सजे नाम बिहूणी भुलि भुलि पछोताएी ॥१॥

सुगि नाह पिआरे इक बेनंतो मेरी ।
 तू निजघरि बसिअड़ा हउ रुलि भसमे डेरी ॥
 बिनु अपने नाह कोड न चाहै किआ कहीऐ किआ कोजै ॥
 अमृत नामु रसन रसु रसना गुरसबवी रसु पीजै ।
 बिणु नावै को संगि न साथी आबै जाइ घनेरी ।
 नानक लाहा ले घरि जाईऐ साची सबु भति तेरी ॥२॥

साजन देसि बिबेसीअड़े सानेहड़े बेदी ।
 सारि समाले तिन सजणा सुंथ नैए भरेदी ॥

सुं घ नैए भरेबी गुण सारेवी किउ प्रभ मिला पिआरे ।
 मारगु पधु न जाएउ बिलड़ा किउ पाईऐ पिरु पारे ॥
 सतिगुर सबदी मिले बिछुनी तनु मनु आगे राखे ।
 नानक अमृत बिरसु महा रस फलिआ मिलि प्रीतम रसु बाखे ॥३॥
 सहलि बुलाइड़ीऐ बिलसु न कीजे ।
 अनविनु रतड़ीऐ सहजि मिलीजे ॥
 सुखि सहजि मिलीजे रोसु न कीजे गरबु निवारि समाएषी ।
 साखे राती मिले मिलाई मनसुखि आवण जाणी ॥
 जब नाचो तब घूघटु कैसा मटुकी फोड़ि निरारी ।
 नानक आपे आपु पछातौ गुरमुखि तनु बीचारी ॥४॥४॥

भूलखे मे भूलकर (जीवात्मा रूपी स्त्री बार-बार) भटक कर पछताती है । (वह स्त्री) प्रियतम द्वारा छोड़ी गई (सासारिक प्रपंचो मे) सो रही है, (वह) प्रियतम का पता नहीं जानती । (वह) प्रियतम से छोड़ी जाकर सोती है, अबगुणो (के कारण वह) छोड़ी गयी है, ऐसी स्त्री को रात्रि बिना प्रियतम के है, (अर्थात् वह रेंडापे की रात्रि बिताती है) । वह काम, क्रोध और अहंकार द्वारा नष्ट की गई है, इसी से अहंकार मे अनुरक्त है । (जब जीव रूपी) हंस (हरी की) आत्मा से (शरीर से) उड कर चला जाता है, तो भस्म (नखर देह) भस्म मे समाहित हो जाती है । हे नानक, सच्चे नाम के बिना (जीवात्मा रूपी स्त्री) भटक-भटक कर पछताती है ॥ ४ ॥

(हे मेरे) प्रिय नाथ (स्वामी), मेरी एक बिनती सुन । तू तो मेरे ही घर मे बसता है, (किन्तु इस तथ्य को अनुभव न करने के कारण) मैं भस्म की ढेरी होकर नष्ट हो रही हूँ । बिना अपने नाथ (पति) के कोई भी नहीं चाहता, (उस सम्बन्ध मे) क्या कहा जाय और क्या किया जाय ? (हरी का) अमृत नाम, जो रसो का रस है, (उसे) गुरु के शब्द द्वारा रसना से पी । बिना नाम के (प्राणी का) कोई भी संगी-साथी नहीं होता, (जीव का) आना-जाना अधिकता है बना रहता है । हे नानक, (परमात्मा को भक्ति का) लाभ लेकर घर जा, (तभी तेरी) सच्ची मति (सिद्ध होगी) ॥ २ ॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री का) पति विदेश चला गया है ; (वह स्त्री अपने प्रियतम को) सदेशा भेजती है । वह स्त्री उन सज्जनों को याद करती है और नेत्रो मे (आँसू) भरती है । स्त्री नेत्रो मे (आँसू) भरती है और गुणो को याद करती है; (वह सोचती है) कि प्रियतम प्रभु किस प्रकार मिले ? (मैं तो) (प्रियतम के) कठिन मार्ग को नहीं जानती । (जो) प्रियतम (बिल्कुल) पास है, (भला, उसे) कैसे प्राप्त किया जाय ? (यदि जीवात्मा रूपी स्त्री अपना) तन मन गुरु के आगे रख दे; (पूर्ण भाव से आत्म समर्पण कर दे), (तो वह) बिछुड़ी हुई स्त्री सद्गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा से) मिल सकती है । हे नानक, (नाम रूपी) अमृत के वृक्ष मे (भक्ति रूपी महान् (फल) फला है, (जिसमे अमृतवत) रस है । प्रियतम (हरी) से मिलकर इस रस का आस्वादन कर ॥ ३ ॥

(हे, हरी के) महल मे बुलाई गई (स्त्री), (वहाँ जाने मे) देर मत कर; हे प्रतिदिन प्रेम-रस मे रत रहनेवाली स्त्री, सहज भाव से (प्रियतम हरी से) मिल ।

(हे जीवात्मा रूपी स्त्री) सहजावस्था के सुख में मिल, (किसी प्रकार की) क्रोध न कर; ग्रहंकार को दूर करके (परमात्मा में) समाहित हो जा । सच्चे (हरी) में अनुरक्त (जीवात्मा रूपी स्त्री) गुरु द्वारा मिलाए जाने से हरी में) मिल जाती है; किन्तु मनमुख (स्त्री संसार-चक्र में) भ्राती-जाती रहती है । जब नाचना ही है, तो घूँघट कैसा ? (लोक लज्जा की) मटकी तोड़कर पृथक् होना पड़ता है । [भावार्थ यह कि परमात्मा की भक्ति में लोकलज्जा का त्याग करना ही पड़ता है] । हे नानक, (सच्चा साधक) गुरु के द्वारा तत्त्व का विचार करके अपने आप को पहचान लेता है ॥ ४ ॥ ४ ॥

[५]

मेरे लाल रंगीले हम लालन के लाले ।
गुर अलखु लखाइआ अबरु न दूजा भाले ॥
गुरि अलखु लखाइआ जा तिसु भाइआ जा प्रभि किरपा धारी ।
जगजोवनु दाता गुरखु बिधाता सहजि मिले बनवारी ॥
नदरि करहि तू तारहि तरीऐ सचु देवहु दीनदइआला ।
प्रणवति नानक दासनि दासा तू सरब जोआ प्रतिपाला ॥१॥

भरि पुरि धारि रहे अति पिआरे ।
सबदे रवि रहिआ गुर रूपि मुरारे ॥
गुर रूप मुरारे त्रिभवरण धारे ता का अँतु न पाइआ ।
रंगी जिनसी जंत उपाए नित देवै चडै सबाइआ ॥
अपरंपरु आपे थापि उधापे तिसु भावै सो होवै ।
नानक हीरा हीरै बेधिआ गुण कै हारि परोवै ॥२॥

गुण गुणहि समाखे मसतकि नाम नीसाखो ।
सबु साचि समाइआ जूका आवरण जाखो ॥
सबु साचि पछाता साचै राता साबु मिलै मनि भावै ।
साचै ऊपरि अबरु न दीसै साचै साचि समावै ॥
मोहनि मोहि लीआ मनु मेरो बंधन खोलि निरारे ।
नानक जोती जोति समाखी जा मिलिआ अति पिआरे ॥३॥

सब घर खोजि लहे साचा गुर यानो ।
मनमुखि नह पाईऐ गुरमुखि गिआनो ॥
देवै सबु दानो सो परवानो सब दाता बड दाणा ।
अमरु अजोनी असयिरु जापै साचा महलु चिराणा ॥
दोति उचापति लेखु न लिखीऐ प्रगटी जोति मुरारी ।
नानक साचा साचै राखा गुरमुखि तरीऐ तारी ॥४॥५॥

हे मेरे भ्रानन्दी प्रियतम (लाल रंगीले), हे मेरे प्यारे (लालन), हम तेरे गुलाम हैं । [फारसी, लाला=गुलाम] । (जब) गुरु अलक्ष्य (हरी) को दिखा देता है, (तो) भ्रोरों के खोजने की (आवश्यकता) नहीं रहती । (जब प्रियतम हरी को) अच्छा लगता है, (और वह) कृपा करता है, (तभी) गुरु अलक्ष्य (हरी) का साक्षात्कार करता है । बनवारी (हरी, परमात्मा) जगत् का जीवन और दाता है, (वही पूर्ण) पुरुष और रचयिता है और सहज भाव से प्राप्त होता है । हे दीनदयालु (गुरु), तू (स्वयं) (संसार-सागर से) तरता है (और जो तेरे सम्पर्क में) आते हैं, उन्हें भी तारता है । (तू) कृपा करके (मुझे) सत्य (हरी) को प्रदान कर । (तेरे) दासों का दास नानक बिनती करता है, कि तू सभी जीवों का प्रतिपालक है ॥ १ ॥

विशेष : उपर्युक्त पद में 'लखाइमा', 'भाइआ' आदि शब्द भूतकाल के हैं, किन्तु उनका प्रयोग वर्तमान काल में ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

परिपूर्ण (परमात्मा) में अख्यंत प्यारा (गुरु) धारण किया गया है, (अर्थात् सद्गुरु पूर्ण ब्रह्म में भनीभाति स्थित है) । मुरारी (हरी) का स्वरूप गुरु शब्द में समा हुआ है । गुरु स्वरूप मुरारी (हरी) ने त्रिभुवन धारण कर रखा है, उसका अन्त नहीं पाया जा सकता । (हरी ने ही) विभिन्न भाँति के जीवों की सृष्टि की है । (वह) उन्हें प्रतिदिन (दान) देता रहता है, (उन दोनों की संख्या उत्तरोत्तर) सवाई बढ़ती जाती है, (अर्थात् हरी के दानों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है) । अपरंपार (हरी) स्वयं ही निर्माण करता है, (और स्वयं ही) नष्ट करता है । (जो कुछ) उसे अच्छा लगता है, वही होता है । हे नानक, (सद्गुरु गुणों के) हार में अपने को पिरोता है और हीरों में हीरा होकर बेधा जाता है ॥ २ ॥

(इस प्रकार) गुण, गुण में समा जाते हैं और मत्थे में नाम का निशान पड़ता है, अर्थात् भाग्य में नाम जपना लिखा जाता है । (अतएव,) सच्चा (साधक) सच्चे (हरी) में समा जाता है, (और संसार-चक्र में) भ्राना-जाना समाप्त हो जाता है । सच्चा (साधक) सत्य (हरी) को पहचान कर, सत्य में ही अनुरक्त हो जाता है, (जिसके फलस्वरूप) उसे सत्य प्राप्त होता है, (जो) मन को बहुत ही अच्छा लगता है । (वह) सच्चा (साधक) सच्चे (हरी) में समाहित हो जाता है, (और उस) सत्य (हरी) के ऊपर और (कोई वस्तु) नहीं दिखाई पड़ती, (क्योंकि उसी में सभी कुछ प्रतिष्ठित है) । मोहन (हरी) ने मेरे मन को मोहित कर लिया है, (वही सासारिक) पाशों को खोलकर मुक्त करता है । हे नानक, जब (साधक) अत्यन्त प्रिय (हरी) से मिलता है, (तो वह उसी भाँति एक हो जाता है), (जिस भाँति) ज्योति से ज्योति मिलकर एक हो जाती है । [अथवा जब साधक परमात्मा से मिलता है, तो वह एक हो जाता है, और उसकी परिच्छिन्न ज्योति परमात्मा की अखण्ड और शाश्वत ज्योति से मिलकर एक हो जाती है] ॥ ३ ॥

सच्चे गुरु के स्थान खोजने से, सच्चे घर (हरी के घर) की प्राप्ति होती है । मनमुख होने से (ज्ञान) नहीं प्राप्त होता; गुरु के अनुयायी होने से ही ज्ञान प्राप्त होता है । (जो) सच्चे (हरी) का दान देता है, वही प्रामाणिक है, वही सदैव दाता है, और वही बुद्धिमान है । (सद्गुरु के उपदेश से) भ्रमर, अयोनि और स्थिर (परमात्मा) (तथा उसका) सच्चा और अटल, शाश्वत महल प्रतीत होने लगता है । (ऐसी अवस्था में साधक के) नित्य के

कर्मों के कर्ज का हिसाब नहीं लिखा जाता । मुरारी (हरी) की (अखण्ड और शाश्वत) ज्योति प्रकट हो जाती है । हे नानक, सच्चा (हरी) सच्चे (व्यक्ति) पर ही रीझता है; गुरु के उपदेश द्वारा (रू.सार-सागर की) तैराकी तैर, (और उसे तैर कर पार हो जा) ॥४॥५॥

[६]

ए मन मेरिआ तू समझु अचेत इम्राणिआ राम ।
ए मन मेरिआ छुडि अवगण गुणी समाणिआ राम ॥
बहु साद लुभाये किरत कमाये विछुडिआ नही मेला ।
किउ दुतरु तरीऐ जम डरि मरीऐ जम का पंचु दुहेला ॥
मनि रामु नही जाता साभ प्रभाता अवघटि रुखा किआ करे ।
बंधनि बाधिआ इन बिधि छूटै गुरमुखि सेबै नरहरे ॥१॥

ए मन मेरिआ तू छोडि भाल जंजाला राम ।
ए मन मेरिआ हरि सेबहु पुरखु निराला राम ।
हरि सिमरि एकंकारु साचा सभु जगतु जिनि उपाइआ ।
पउगु पाणी अगनि बाधे गुरि लेलु जगति बिलाइआ ॥
आचारि तू बीचारि आये हरिनामु संजम जय तपो ।
सखा सैनु पिआरु प्रीतमु नामु हरि का जपु जपो ॥२॥

ए मन मेरिआ तू धिरु रहु चोट न लावही राम ।
ए मन मेरिआ गुण गावहि सहजि समावही राम ॥
गुण गाइ राम रसाइ रसोअहि गुर गिआन अंजनु सारहे ।
त्रैलोक दीपकु सबदि चानगु पंच दूत संधारहे ॥
भै काटि निरभउ तरहि दुतरु गुरि मिलिऐ कारज सारए ।
रूपु रंगु पिआरु हरि सिउ हरि आपि किरपा धारए ॥३॥

ए मन मेरिआ तू किआ लै आइआ किआ लै जाइसो राम ।
ए मन मेरिआ ता छुटसो जा भरसु बुकाइसो राम ।
धनु संचि हरि हरि नाम बखरु गुर सबदि भाउ पछाएहे ।
मेलु परहरि सबदि निरमलु महलु घरु सनु जाण हे ॥
पति नामु पावहि घरि सिधाबहि भोलि अंमृत पी रसो ।
हरिनामु पिआरैये सबदि रसु पाईऐ बड भाणि जपोऐ हरि जसो ॥४॥

ए मन मेरिआ बिनु पउड़ीआ मंदरि किउ चढ़ै राम ।
ए मन मेरिआ बिनु बेड़ी पारि न अंबडै राम ॥
पारि साजनु अपारु प्रीतसु गुर सबदि सुरति लंकावए ।
मिलि साथ संगति करहि रसोआ फिरि न पछोतावए ॥
करि बइआ बानु बइआल साखा हरिनाम संगति पावओ ।
नानकु पइअंवे सुखहु प्रीतम गुर सबदि अनु समझावओ ॥५॥६॥

विशेष : इस पद की पंक्तियों में 'राम' शब्द का प्रयोग तुक की पूर्ति के लिए किया गया है। गुरु नानक के कुछ पदों में इस प्रकार के 'शब्द' तुकों की पूर्ति के लिए मिलते हैं—यथा, 'राम', 'जी', 'बलिराम जीउ' आदि।

हे मेरे मूर्ख और अज्ञानी मन, तू समझ। हे मेरे मन, तू अवगुणों को त्याग कर गुणी (हरी) में समा जा। किरत कर्मों (किए हुए कर्मों) के स्वभावानुसार तू (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) के अनेक स्वादों में लुब्ध है, (इस भाँति, हरी से) बिछुड़ गया है और मिलाप नहीं हो रहा है। दुस्तर (संसार-सागर) को किस भाँति तरा जाय ? (संसार-सागर के पार हुए बिना) यमराज के भय से (नित्य) मरना होता है, (वास्तव में) यमराज का मार्ग (अत्यन्त) दुःखदायी है। हे मन, (तू ने) राम को नहीं जाना; संध्या और प्रभात समय (तात्पर्य यह कि प्रत्येक क्षण) अवघट (दुर्गम मार्ग) में अवरुद्ध है। (भला ऐसी परिस्थिति में, तू) क्या कर सकता है ? (तू सामारिक) पाशों में बंधा हुआ इस भाँति मुक्त हो सकता है—गुरु के उपदेश द्वारा नरहरी (परमात्मा) की आराधना करने से ॥ १ ॥

हे मेरे मन, तू घर के (समस्त) प्रपञ्चों को त्याग दे। हे मेरे मन, (तू) निराले (निर्लिप्त) पुण्य हरी की आराधना कर। (तू, उस) एककार और सच्चे हरी की आराधना कर, जिसने समस्त जगत् की रचना की है। गुरु (हरी) ने वायु और जल (आदि पंच तत्वों) को बाधकर रखा है। (और उन्हीं से) जगत् के खेल को दिखाया है, (अर्थात् पंचभूतों से सारे जगत् का निर्माण हरी ने ही किया है)। हे आचारवान् (कर्मकाण्डी) तू स्वयं ही विचार करके देख ले कि हरिनाम ही सयम और जप-तप है। हरिनाम ही सखा, स्वजन [सैनु = स्वजन] और प्यारा प्रियतम है; (अतएव, उसी के नाम का निरन्तर) जप कर ॥ २ ॥

हे मेरे मन, तू (हरी के नाम में) स्थिर रह, (जिसने फिर सासारिक) चोटें नहीं खायेगा। हे मेरे मन, तू (हरी के नाम का) गुणगान कर, (इससे तू) सहजावस्था में समाहित हो जायगा। राम के गुण गाकर (तू) प्रेम से रसवाला हो जा (और) गुरु (द्वारा प्रदत्त) ज्ञान के अजन को (अपने नेत्रों में) लगा, जिसके द्वारा तीनों लोकों के दीपक (हरी) का प्रकाश शब्द द्वारा प्राप्त हो जायगा; (उसी हरी के प्रकाश से) (कामादिक) पंचदूतों को मार डालेगा। निर्भय (हरी) (केवल से अपने) भय को काट, (इस प्रकार) दुस्तर (संसार) सागर को (तू) तर जायगा; (किन्तु इसके लिए) गुरु से मिल, (तभी) कार्य सिद्ध होगा। (जब) हरी आप ही कृपा करता है, (तभी) हरी के रूप रंग से प्रेम होता है। [वास्तव में नानक जी के अनुसार हरी तो अरूप और अवर्ण है, किन्तु यहाँ रूप-रंग से अभिप्राय उसके गुणों से है। हरी के सगुण रूप में गुण संभव है। गुरु नानक ने निर्गुण, सगुण और निर्गुण-सगुण तीनों स्वरूप माने हैं। हाँ, वे अवतारवाद को अवश्य नहीं मानते] ॥ ३ ॥

हे मेरे मन, तू क्या लेकर आया है और क्या लेकर (यहाँ से) जायगा ? हे मेरे मन, तू (सांसारिक बंधनों से) तभी छूटेगा, जब (अपने समस्त) भ्रमों को दूर कर देगा। (तू) हरी रूपी धन का संग्रह कर; गुरु के उपदेश द्वारा हरिनाम रूपी सोई का भाव पहचानो। (गुरु के) शब्द द्वारा (कामादिक) मेल दूर करके निर्मल हो जा और अपने सच्चे घर तथा महल में ठिकाना प्राप्त कर ले। (जब) तू अपने वास्तविक घर (आत्मस्वरूपी घर) को जायगा, तो

प्रतिष्ठा और नाम (यश) पायेगा और नाम के अमृत-रस को भक्तभोर कर पियेगा । (गुरु के) शब्द द्वारा हरिनाम का ध्यान कर (और आनन्द की) रसानुभूति प्राप्त कर; हरि के यश का स्मरण बड़े भाग्य से होता है ॥ ४ ॥

हे मेरे मन, बिना (साधन की) सीढ़ी के (हरी के) महल तक कैसे चढ़ा जाय ? हे मेरे मन, बिना (गुरु रूपी) नाव के (तू) (संसार सागर के) पार नहीं पहुँचेगा । अपार (परमात्मा), साजन और प्रियतम उस पार है; गुरु के शब्द की सुरति ही (संसार-सागर के पार) लँघा सकती है । (हे मन, तू) साधु-संगति में मिलकर आनन्द मना, (ताकि तुझे) फिर न पछताना पड़े । हे दयालु (स्वामी), दया का सच्चा दान कर, (जिससे साधुओं की) संगति में हरिनाम की प्राप्ति हो । नानक कहता है कि हे प्रियतम गुरु सुन, (अपने) शब्द द्वारा (मेरे) मन को समझा दे ॥ ५ ॥ ६ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

भैरउ, रागु महला १, घर १, चउपदे

सबद

[१]

तुभ ते बाहरि कछु न होइ । तू करि करि देखहि जाएहि सोइ ॥१॥
किआ कहोऐ किछु कहो न जाइ । जो किछु अहै सभ तेरो रजाइ ॥१॥ रहाउ ।
जो किछु करणा सु तेरै पासि । किस आगे कोचै अरदासि ॥२॥
आखणु सुनणा तेरी बाणी । तू आपे जाएहि सरब विडाणी ॥३॥
करे कराए जाणै आपि । नानक बेखै थापि उथापि ॥४॥१॥

(हे प्रभु), तुझसे बाहर कुछ भी नहीं है । तू ही (सृष्टि) रच रचकर, (उसकी)
जानकारी रखता है, (अर्थात्, उसकी देखभाल करता है) ॥१॥

(हे हरी), (तेरे सम्बन्ध में) क्या कहा जाय ? कुछ भी नहीं कहने बनता (इस
मृष्टि में) जो कुछ भी हो रहा है, सब तेरी ही मर्जी के अनुसार हो रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

(मुझे) जो कुछ भी (प्रार्थना) करनी है, वह तेरे ही पाम करनी है । और किसके
आगे अरदास (प्रार्थना) की जाय ? ॥२॥

जो कुछ बोलना या सुनना है तेरी बाणी ही है । हे सब प्रकार के कौतुकी को करने
वाले, तू (स्वयं ही) अपने आप को जानता है ॥३॥

(हे स्वामिन, तू जो कुछ भी) करता या कराता है, (उसे) आप ही जानता है ।
(हे प्रभु, तू) थाप-उथाप (बना-बिगाड़) कर आप ही देखता है ॥४॥१॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर २

[२]

गुर कौ सबदि तरे मुनि केते इंद्राबिक ब्रह्मादि तरे ।
सनक सनंदन तपसी जन केते गुरपरसादी पारि परे ॥१॥

भवजलु बिनु सबदै किउ तरीऐ ।

नाम बिना जगु रोगि बिघ्नापिघ्ना दुबिधा दुबि दुबि मरोऐ ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु देवा गुरु अलख अमेवा त्रिभवण सोभी गुरु की सेवा ।

आपे दाति करी गुरि दातै पाइआ अलख अमेवा ॥२॥

मनु राजा मनु मन ते मानिआ मनसा मनहि समाई ।

मनु जोगी मनु बिनसि बिघोगी मनु समझै गुण पाई ॥३॥

गुरु ते मनु मारिआ सबदु बीचारिआ ते बिरले संसारा ।

नानक साहिबु भरिपुरि लीणा साच सबवि निसतारा ॥४॥१॥२॥

गुरु के उपदेश से कितने ही मुनि तथा इन्द्र और ब्रह्मादिक तर गए । सनक, सनन्दन (सनातन तथा सनतकुमार, ब्रह्मा के पुत्र) तथा कितने ही तपस्वी गुरु की कृपा से ही (संसार-सागर से) पार हो गए ॥१॥

संसार-सागर (भला), बिना (गुरु के) शब्द के कैसे तरा जा सकता है ? (हरी के) नाम के बिना (समस्त) जगत् (दैहिक, दैविक तथा भौतिक) रोगों में ग्रसित है और द्वैतभाव में ही डूब-डूब कर मर रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु ही देव है, गुरु ही अलक्ष्य और अभेद है; गुरु की सेवा से ही त्रिभुवन की जानकारी (प्राप्त होती है ।) । दाता गुरु (जब) आप ही दान करता है, (तभी) अलख और अभेद (परमात्मा) प्राप्त होता है ॥२॥

[निम्नलिखित पंक्तियों में मन की पृथक्-पृथक् दशाओं का वर्णन किया गया है, क्योंकि सब कुछ मन का ही खेल है । सब से पहले मन को राजा कहा गया है । राजा रजोगुणी वृत्तियों का सूचक है । गुरु के उपदेश से मन की रजोगुणी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, जिससे वह स्थिर एवं संतुष्ट हो जाता है ।]

मन राजा है; (ज्योतिर्मय) मन से (अहंकारी अथवा रजोगुणी) मन मानता है (और जितनी भी उसकी) इच्छाएँ हैं, वे मन में ही बिलीन हो जाती हैं । मन ही योगी है, (किन्तु यह) मन (हरी से) वियोगी होकर नष्ट हो जाता है; मन (परमात्मा का) गुणगान करके समझ जाता है—शान्त हो जाता है ॥३॥

(जिन्होंने) गुरु के द्वारा (उसके) शब्द पर विचार करके (अहंकारी) मन को मार दिया है, वे संसार में बिरले ही हैं । हे नानक, (वे लोग) साहब (प्रभु हरी) में पूर्ण रूप से लीन हो गए हैं । सच्चे शब्द के द्वारा उनका विस्तार हो जाता है ॥४॥१॥२॥

[३]

नैनी हसटि नही तनु होना जरि जोतिआ सिरि कालो ।

रूपु रंगु रहसु नही साचा किउ छोडै जम जालो ॥१॥

प्राणी हरि जपि जनमु गइओ ।

साच सबद बिनु कबहु न छूटसि बिरथा जनमु भइओ ॥१॥ रहाउ ॥

तन महि कामु क्रोधु हउ ममता कठिन पीर अति भारी ।

गुरमुखि रामु जपहु रस रसना इन बिधि तरु तू तारी ॥२॥

बहुरै करन भकलि भई होछी सबद सहजु नहो बूझिआ ।
जनमु पदारथु मनमुखि हारिआ बिनु गुर अंधे न सूझिआ ॥३॥
रहै उदास आस निरासा सहज धिआनि बैरागी ।
प्रणवति नानक गुरमुखि छूटसि राम नामि लिब सापी ॥४॥२॥३॥

विशेष : सामान्य व्यक्ति तो रूप, रस, गन्धादिक के तुच्छ विषयों में ही अमूल्य मानव-जीवन नष्ट कर देते हैं। गुरु द्वारा प्रदर्शित नाम द्वारा ही जीवन सफल होता है।

अर्थ : नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता; बूढ़ावस्था का जीता हुआ शरीर हीन हो गया है और सिर के ऊपर काल (मँडरा रहा है)। रूप, रंग के स्वाद सच्चे नहीं है, (तात्पर्य यह कि सूँठे नाशवान रूप-रस के बीच प्राणी लगा हुआ है), (इसलिये भला) यमराज का जाल उसे किस प्रकार छोड़ सकता है ? ॥१॥

हे प्राणी, हरि को जप; (तेरा) जन्म (योही) नष्ट होता जा रहा है। (तू) सच्चे शब्द के बिना कभी नहीं छूट सकता; (और बिना मुक्त हुए) तेरा जन्म-धारण करना व्यर्थ ही हुआ ॥१॥ रहाउ ॥

(हे प्राणी, तेरे) शरीर में काम, क्रोध, अहंता और ममता की महान् और कठिन पीड़ा हो रही है। गुरु द्वारा जीभ से प्रेम से रामनाम जप; इस प्रकार (संसार की) तेराकी तैर (और संसार-सागर को पार हो जा) ॥२॥

(हे प्राणी), तेरे कान बहरे हो गए हैं और अकल ओछी हो गई है, (जिससे) सहज भाव से शब्द को नहीं समझ रहा है। मनमुख व्यक्ति जन्म रूपी (अमूल्य) पदार्थ को (विषय भोगों में ही) हार जाता है, बिना गुरु के उस अंधे को (कुछ भी) सुझाई नहीं पड़ता ॥३॥

नानक विनती करके कहता है कि जो विरक्त आशा और निराशा के प्रति उदासीन रहता है और सहज ध्यान में (लिब) लगाए रहता है, (वही) गुरु की शिक्षा द्वारा (संसार से) मुक्त होता है और उसकी लिब (एकनिष्ठ धारणा) राम नाम में लगी रहती है ॥४॥२॥३॥

(४)

भंडी चाल चारण कर खिसरे तुचा देह कुमलानी ।
नेत्री धुंधि करन भए बहरे मनमुखि नामु न जानी ॥१॥
अंधुले किआ पाइआ जगि आइ ।
रामु रिदै नहीं गुर की सेवा चाले भूलु गवाइ ॥१॥रहाउ॥
जिह्वा रंगि नहीं हरि राती जब बोले तब फीके ।
संत जना की निदा विघ्नापसि पमू भए कबे होहि न नीके ॥२॥
अमृत का रसु बिरली पाइआ सतिगुर भेलि मिलाए ।
जब लगु सबद भेदु नहीं आइआ तब लगु कालु संताए ॥३॥
अन को वरु घर कबहु न जानसि एको वरि सचिआरा ।
गुर परसावि परम पदु पाइआ नामकु कहै बिचारा ॥४॥३॥४॥

बुढ़ावस्था में (मनुष्य की) चाल—गति भद्दी हो जाती है; हाथ और पैर ढीले हो जाते हैं, त्वचा और शरीर कुम्हला जाता है । नेत्र धुंध तथा कान बहरे हो जाते हैं; (किन्तु ऐसी अवस्था में भी) मनमुख (हरी के) नाम को नहीं जानता ॥१॥

(हे) अंधे (मनुष्य), इस जगत् में आकर तूने क्या प्राप्त किया ? न तो (तूने) हृदय में राम (नाम) को धारण किया, न तो गुरु की सेवा ही की । (मनुष्य जीवन रूपी) मूलधन को गँबा कर (इस संसार से) विदा हो गया ॥१॥ रहाउ ॥

(हे मनमुख, तेरी) जीभ हरी के प्रेम में नहीं अनुरक्त हुई, (वह) जब भी बोलती है, तभी फीके (बचन) बोलती है । (हे मनमुख, तू) संत-जनों की निन्दा में व्याप्त है । तू पशु हो गया है । (इस प्रकार के गन्दे विचारों से) तू कभी अच्छा नहीं हो सकता ॥२॥

कोई बिरला हो (साधक) (हरी नाम के) अमृत-रस को प्राप्त करता है; (यह तभी संभव है), जब सद्गुरु इसका मेल मिलाता है । जब तक शब्द—नाम का भेद (रहस्य) (समझ में) नहीं आ जाता, तब तक काल दुःख देता रहता है ॥३॥

(जो साधक) एक सच्चे परमात्मा के दरवाजे के अतिरिक्त अन्य किसी के घर-द्वार को नहीं जानता (वह) गुरु की कृपा से परम पद को प्राप्त कर लेता है, नानक (इस बात को) विचारपूर्वक कहता है ॥४॥३॥४॥

[५]

सगली रेंगि सोवत गलि काही दिनसु जंजालि गवाइआ ।

खिनु पलु घड़ी नही प्रभु जानिआ जिनि इहु जगलु उपाइआ ॥१॥

मन रे किउ छूटति दुलु भारी ।

किआ ले आबसि किआ ले जावसि राम जपहु गुणकारी ॥१॥रहाउ॥

ऊधउ कवलु मनमुख मति होछी मनि अंधे सिरि धंधा ।

कालु बिकालु सदा सिरि तेरे बिनु नाबै गलि फंधा ॥२॥

डगरी चाल नेत्र फुनि अंधुले सबद सुरति नही भाई ।

सासत्र बेद त्रै गुण है माइआ अंधलउ धंधु कमाई ॥३॥

खोइओ मूलु लामु कह पावसि दुरमति गिआन बिहारे ।

सबहु बीचारि राम रसु चाखिआ नानक साचि पतीखे ॥४॥४॥५॥

(सासारिक मनुष्य के) सोने में सारी रात भर गले में पाश—बन्धन पड़े रहते हैं, उस व्यक्ति का दिन भी जंजालो (सांसारिक प्रपंचों में ही) व्यतीत होता है । जिस (प्रभु) ने इस जगत् को उत्पन्न किया है, उस प्रभु को (उस मूर्ख प्राणी ने) एक पल, एक क्षण और एक घड़ी भर भी जानने की चेष्टा नहीं की ॥१॥

हे मन, (तू, भला संसार के) महान् दुःखों से किस प्रकार छूट सकेगा ? (तू) क्या लेकर (इस संसार में) आया है और क्या लेकर (यहाँ से) जायगा ? (हे मन, तू) राम (नाम) जप, (यह) अत्यंत गुणकारी है ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख का (हृदय रूपी) कमल उलटा है और उसकी बुद्धि ओछी है । मन अन्धा होने के कारण, उसके सिर पर (संसार के) धंधे पड़े रहते हैं । जन्म और मरण सदा तेरे सिर

पर बने रहते हैं [काल = मरण । विकाल का तात्पर्य, काल का विपरीत, अर्थात् जन्म । काल-विकाल = जन्म और मरण] इस प्रकार बिना (हरी के) नाम के तेरे गले में (सदैव) फंदा पड़ा रहता है ॥२॥

(हे मनमुख, तेरी) चाल ढगमगाने वाली है और नेत्र अन्धे हैं, हे भाई, तुम शब्द—नाम की स्मृति नहीं है । (शब्द—नाम को छोड़कर) समस्त शास्त्र और वेद त्रिगुणात्मक है । अंधा (मनुष्य) (त्रिगुणात्मक) माया में ही बंधे कमाता है ॥३॥

(अमृत्यु जीवन रूपी) मूलधन को (व्यर्थ की सांसारिक बातों में) खो देने से (परमात्मा का भक्ति-रूपी-लाभ कहीं से) प्राप्त होगा ? (इस प्रकार) दुर्बुद्धि ज्ञान से विहीन है । नानक ने (तो गुरु के) शब्द उपदेश पर विचार करके राम-रस को चख लिया और सच्चे (परमात्मा) में विश्वास कर लिया ॥४॥४॥५॥

[६]

गुरु के सगि रहै दिन राती रामु रसनि रंगि राता ।
अवरु न जाएसि सबहु पछाणसि अंतरि जाणि पछाता ॥१॥

सो जनु ऐसा मै मनि भाबै ।

आपु मारि अपरंपरि राता गुरु की कार कमावै ॥१॥रहाउ॥

अंतरि बाहरि पुरुषु निरंजनु आदि पुरुषु आबैसो ।

घट घट अंतरि सरब निरंतरि रवि रहिआ सत्तु बेसो ॥२॥

साचि रते सत्तु अमृतु जिहवा मिथिया मेलु न राई ।

निरमलु नामु अमृत रसु चालिआ सबदि रते पति पाई ॥३॥

गुणी गुणी मिलि साहा पावसि गुरुमुखि नामि बडाई ।

मगले दूख मिटहि गुरु सेवा नानक नामु सखाई ॥४॥५॥६॥

गुरु नानक देव कहते हैं कि हमें तो वह (मनुष्य अच्छा लगता है, जो दिन रात गुरु का संगति में रहकर शब्द पर विचार करता है । और हरी-रस में रहता हुआ गुरु की सेवा करता है । (ऐसा व्यक्ति परमात्मा को छोड़कर) और कुछ भी नहीं जानता, वह शब्द—नाम को पहचानता है, (वह अपने) अन्तर्गत (परमात्मा को) जान कर पहचान लेता है ॥१॥

नानक कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति मेरे मन को अच्छा लगता है, जो अपने आप को मार कर अपरंपार (परमात्मा) में अनुरक्त होकर, गुरु (द्वारा निर्दिष्ट) कार्यों को करता है ॥१॥ रहाउ ॥

निरंजन पुरुष अन्तर और बाहर (दोनों में व्याप्त है); उस आदि पुरुष को नमस्कार है । हरी सत्य के वेश में सभी के घट-घट में निरन्तर भाव से रम रहा है ॥२॥

(सच्चे साधक) सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त रहते हैं, (उनकी) जिह्वा में सत्य (रूपी) अमृत का निवास रहता है, (उनमें) मिथ्या की राई भर भी मेल नहीं (रहती) । (वे साधक) निर्मल नाम रूपी अमृत रस को चखते हैं, (वे) शब्द में रत रहते हैं, (जिससे उन्हें) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥३॥

गुणवान (शिष्य) गुणी (गुरु) से मिलकर (हरि नाम रूपी) लाभ प्राप्त करता है, (इस प्रकार) गुरु द्वारा नाम की बड़ाई प्राप्त होती है । नानक कहते हैं कि गुरु की सेवा से समस्त दुःख मिट जाते हैं और नाम सखा हो जाता है ॥४॥५॥६॥

[७]

हिरदै नामु सरब धनु धारणु गुर परसादी पाईऐ ।
 अमर पदारथ ते किरतारथ सहज धिआनि लिब लाईऐ ॥१॥
 मन रे राम भगति चितु लाईऐ ।
 गुरमुखि राम नामु जपि हिरदै सहज सेती घरि जाईऐ ॥१॥रहाउ॥
 भरमु भेदु भउ कबहु न छूटसि आवत जात न जानी ।
 बिनु हरिनाम को मुकति न पावसि डुबि सुए बिनु पानी ॥२॥
 धंधा करसि सगली पति खोवसि भरमु न मिटसि गयारा ।
 बिनु गुर सबद मुकति नही कबही अंधुले धंधु पसारा ॥३॥
 अकुल निरंजन सिउ मनु मानिआ मन हो ते मनु भूआ ।
 अंतरि बाहरि एको जानिआ नानक अवरु न दूआ ॥४॥६॥७॥

हृदय में (हरी का) नाम (धारण करना), सभी प्रकार के धनो को धारण करना है ; गुरु की कृपा से (नाम-धन) पाया जाता है । (जिन्हें) (परमात्मा रूपी) अमर पदार्थ प्राप्त होता है, वे ही कृतार्थ होते हैं, (वे लोग) सहज ध्यान (सहजावस्था) में वृत्ति लगाए रहते हैं ॥१॥

हे मन, राम की भक्ति में चित्त लगा । गुरु द्वारा राम नाम हृदय में जप और सहज भाव से (अपने आत्म स्वरूपी) घर में जा ॥१॥ रहाउ ॥

(हे प्राणी, तेरे) भ्रम, भेद-भाव और भय कभी नहीं छूटते । (तू इस संसार में) आठा-जाता रहता है, पर समझ नहीं आती । बिना हरी के नाम के कोई भी मुक्ति नहीं पाता, (ऐसे प्राणी) बिना पानी के ही डूब मरते हैं ॥२॥

ऐ गंवार, (सासारिक) धंधो को करने में ही, (तू अपनी) सारी प्रतिष्ठा खो देता है, तेरा भ्रम नहीं मिटता । बिना गुरु के उपदेश के कभी मुक्ति नहीं प्राप्त होती, अथा (प्राणी) सासारिक प्रपंचों के प्रसार में ही (लिप्त रहता) है ॥३॥

कुल-रहित और निरंजन (हरी) से मन मान गया (शान्त हो गया) (इस प्रकार) (ज्योतिर्मय) मन द्वारा (अहंकारयुक्त) मन मर गया । नानक कहता है कि अंतर और बाहर (दोनों स्थानों में) एक (हरी) को जान लिया; (अब हरी को छोड़कर) और कोई दूसरी (वस्तु) नहीं (प्रतीत होती) ॥ ४ ॥ ६ ॥ ७ ॥

[८]

जगन होमपुन तप पूजा बेह दुखी नित दूख सहै ।

राम नाम बिनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरमुखि सहै ॥१॥

राम नाम बिनु बिरथे जगि जनमा ।
 बिलु खावै बिलु बोली बोले बिनु नावै निहफनु मरि भ्रमना ॥१॥ रहाउ ॥
 पुसतक पाठ बिआकरण वखाएँ संधिआ करम तिकाल करै ।
 बिनु गुर सबद मुक्ति कहा प्राणी राम नाम बिनु उरभि मरै ॥२॥
 डंड कमंडल सिखा सुनु धोती तीरथि गवनु अति भ्रमनु करै ।
 राम नाम बिनु सांति न आवै जपि हरि हरि नामु सु पारि परै ॥३॥
 जटा मुकुट तनि भसम लगाई बसत्र छोडि तनि नगनु भइआ ।
 रामनाम बिनु तृपति न आवै किरत कै बांधे भेलु भइआ ॥४॥
 जेते जोग्र जंत जलि थलि महीअलि जत्र कत्र तू सरब जोआ ।
 गुर परसादि राखि से जन कड हरि रसु नानक भोलि पोआ ॥५॥७॥८॥

यज्ञ, होम, पुण्य, तप, पूजा आदि करने से देह दुखी ही रहती है, (शान्ति नहीं प्राप्त होती), (अतएव) नित्य दुःख सहन करना पड़ता है । राम नाम के बिना मुक्ति नहीं प्राप्त होती । गुरु की आज्ञा में चलनेवाले को नाम प्राप्त होता, (जिससे) मुक्ति (हो जाती है ॥ १ ॥

रामनाम के (प्राप्त किए) बिना, जगत् में जन्म लेना अर्थ है । बिना (हरी के) नाम के (मनुष्य विषयो के) विष को ही खाता रहता है और विष के वचन बोलता रहता है, (इस प्रकार अमूल्य मानव जीवन) निष्फल हो जाता है और मर कर (बारबार संसार-चक्र) में भ्रमित होना पड़ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मनुष्य) (धार्मिक) पुस्तकों का पाठ करता है और व्याकरण की व्याख्या करता है तथा त्रिकाल-सन्ध्या-कर्म करता है, (किन्तु) हे प्राणी बिना गुरु के शब्द से मुक्ति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? रामनाम के बिना (मनुष्य सासारिक जंजालों में) उलझ कर मर जाता है ॥ २ ॥

(सन्यासीगण) डंड-कमण्डलु तथा (ब्रह्मचारी-गण) शिखा, सूत्र और धोती (पहन कर) तीर्थस्थानों में अत्यधिक भ्रमण करते फिरते हैं, (किन्तु) रामनाम के बिना (उन्हें) शान्ति नहीं प्राप्त होती, (हे साधक,) हरि का नाम जप, (जो व्यक्ति) हरि-नाम जपता है, (वह इस संसार-सागर से) पार हो जाता है ॥ ३ ॥

(बहुत से मनुष्य सिर पर) जटा का झूड़ा (मुकुट) रख कर, शरीर में भस्म लगा कर, वस्त्र त्याग कर, शरीर से नग्न हो जाते हैं । (किन्तु) रामनाम के बिना उन्हें मुक्ति नहीं होती, (वे अपने) किरत-कर्मों (संस्कारों) के अधीन होकर इधर-उधर बेस बना कर घूमते रहते हैं ॥ ४ ॥

जल, स्थल और धरती-आकाश के बीच जितने भी जीव-जन्तु हैं तथा जहाँ-तहाँ— सभी स्थानों में (हे प्रभु) तू ही (व्याप्त है), तू ही सभी का प्राण है । हे प्रभु, तू गुरु की कृपा से (अपने) भक्त की रक्षा कर ले; नानक ने हरि-रस को (खूब) भक्तभोर कर पी लिया है ॥ ५ ॥ ७ ॥ ८ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु भैरउ, महला १, घर २

असटपदीआं

[१]

आत्म महि रामु राम महि आत्मु चीनसि गुर बीचारा ।
 अमृत बाणी सबदि पछाणी दुख काटे हउ मारा ॥१॥
 नानक हउमै रोग बुरे ।
 जह बेलां तह एका बेवन आपे बखसै सबदि धुरे ॥१॥ रहाउ ॥
 आपे परखे परखणहारै बहुरि सूलाकु न होई ।
 जिन कउ नदरि भई गुर भेले प्रभ माणा सनु सोई ॥२॥
 पउण पाणी बैसंत रोगी रोगी धरति सभोगी ।
 माता पिता माइआ बेह सि रोगी रोगी कुटुंब संजोगी ॥३॥
 रोगी ग्रहमा बिसनु सरुआ रोगी सगल संसारा ।
 हरि पदु चीनि भए से मुकते गुर का सबदु बीचारा ॥४॥
 रोगी सात समुंद सनदीआ खंड पताल सि रोगि भरे ।
 हरि के लोक सि साब सुहेले सरबो थाई नदरि करे ॥५॥
 रोगी खट दरसन भेखपारी नाना हठी अनेका ।
 बेद कतेब करहि कह बपुरे नह बूझहि इक एका ॥६॥
 मिठ रसु खाइ सु रोगि भरीजै कंद मूलि सुसु नाही ।
 नामु बिसारि चलहि अनमारगि अंत कालि पछुताही ॥७॥
 तीरथि भरमै रोगु न छूटसि पड़िआ बादु बिबादु भइआ ।
 बुबिधा रोगु सु अधिक वडेरा माइआ का मुहताजु भइआ ॥८॥
 गुरमुखि साचा सबदि सलाहै मनि साचा तिसु रोगु गइआ ।
 नानक हरिजन अनदिनु निरमल जिन कउ करमि नीसाणु पइआ ॥९॥१॥

गुरु के विचार द्वारा यह बात समझनी है कि जीवात्मा मे हरी और हरी मे जीवात्मा है । गुरु के उपदेश द्वारा अमृत-नाम पहचाना जाता है, जो (समस्त) दुःखों को काट देता है और अहंकार को मार देता है ॥ १ ॥

हे नानक, अहंकार का रोग बहुत ही बुरा होता है । जहाँ भी (मैं) देखता हूँ, वहाँ (इसी) एक (अहंकार) का ही दुःख है । (गुरु के) शब्द द्वारा (प्रभु) आप ही प्रारम्भ से बख्शता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

परखनेवाला (प्रभु) आप ही (जीवों को) परखता है, (प्रभु के परख लेने पर), फिर, (तीव्र नोकोवाले) सूजे से (परख) नहीं होती है । [खोटे खरे सोने को परखने के

लिए तीव्र नोकवाले सूजे से छेद किए जाते हैं] । जिनके ऊपर (परमात्मा की) कृपादृष्टि हो जाती है, (उन्हें) गुरु परमात्मा से मिला देता है (और यही प्रभु की) सच्ची आज्ञा है ॥ २ ॥

वायु, जल तथा अग्नि रोगी है, भोगोवाली पृथ्वी भी रोगिणी है । माता, पिता, माया तथा यह देह भी रोगी है । कुटुम्ब से जुड़े हुए (अन्य कुटुम्बी आदि भी) रोगी हैं ॥ ३ ॥

रुद्र सहित ब्रह्मा, विष्णु भी रोगी है, (कःने का तात्पर्य यह कि) समस्त संसार ही रोगी है । गुरु के शब्दा पर विचार करके, (जिन्होंने) परमात्मा के चरणों को पहचान लिया है, वे ही मुक्त हुए हैं ॥ ४ ॥

(समस्त) नदियों सहित सातों समुद्र भी रोगी हैं । खण्ड और पाताल भी रोग से भरे (व्याप्त) हैं । हरि के जन ही सच्चे और सौभाग्यशाली हैं, (हरों उनके ऊपर) सभी स्थानों में कृपा करता है ॥ ५ ॥

छः प्रकार बेशधारी—(योगी, सन्यासी, जगम, बोधी, सरोबड़े तथा वेंरागी) रोगी हैं, (इसी प्रकार) नाना प्रकार के अनेक हठो—निग्रही भी रोगी ही है । वेद तथा कनेब (कुरान, जयूर तथा अंजील आदि धार्मिक ग्रन्थ) बेचारे क्या कर सकते हैं ? (वे तो) एक-एक को समझ भी नहीं सकते ॥ ६ ॥

(जो) मीठे (आदि विविध रसों का) आस्वादन करते हैं, वे भी रोग से भरे रहते हैं, कंदमूल (आदि के खाने) में भी सुख नहीं है । (जो व्यक्ति) नाम को भुला कर कुमार्ग पर चलते हैं, वे अन्तकाल में पछताते हैं ॥ ७ ॥

तीर्थादिको में भ्रमण करने से, (सासारिक) रोग नहीं छूटते, पढ़ने से वाद-विवाद और भी (बढ़ता) है । दुबिधा रोग तो और अधिक बड़ा होता है; (इसी रोग में पड़कर मनुष्य) माया का मुहताज हो जाता है ॥ ८ ॥

(जो साधक) गुरु के उपदेश द्वारा सच्चे मन से सच्चे शब्द—नाम की स्तुति करता है, उसके (सासारिक) रोग नष्ट हो जाते हैं । हे नानक, जिन (हरिभक्तों के ऊपर परमात्मा की) बख्शिश द्वारा कृपा का निशान पड़ जाता है, वे हरिभक्त सदैव निर्मल रहते हैं ॥ ९ ॥ १ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु बसंतु, महला १, धरु १, चरपदे, दुतुके

सबद

[१]

माहा माह सुमारखी चड़िआ सदा बसंतु ।
परफड़ु चित समालि सोइ सदा सदा गोबिंदु ॥१॥
भोलिआ हउमै सुरति विसारि ।
हउमै मारि बीचारि मन गुण बिचि गुणु तै सारि ॥१॥ रहाउ ॥
करम पेड़ु साखा हरी धरमु फुलु फलु गिआनु ।
पत परापति छाव घणौ ब्रूका मन अभिमानु ॥२॥
अखौ कुदरति कंनौ बाणी मुखि आखणु सचु नामु ।
पति का धनु पूरा होआ लागी सहजि धिआनु ॥३॥
माहा रूतौ आबखणु बेलहु करम कमाइ ।
नानक हरे न सूकही जि गुरुमुखि रहे समाइ ॥४॥१॥

महीनों में यह महीना मुबारक है, (क्योंकि इसमें) सदा बसन्त बढ़ा रहता है ।
[इस स्थान पर शाश्वत ब्रह्मानन्द को 'सदा बसन्त' कहा गया है । बसन्त ऋतु तो साल में केवल दो महीने रहती है, पर आत्मानन्द रूपी बसन्त शाश्वत काल के लिए हो जाता है] । हे चित्त, गोविन्द का सदैव स्मरण करके प्रफुल्लित हो जा ॥ १ ॥

हे भोले, अहंकार में पड़कर (तूने) (हरी की) स्मृति विसार दी है । (हे साधक), मन में विचार करके अहंकार को मार; (तू) गुणों को संभाल कर (रख ले), (अर्थात् शुभ गुणों में शुभ गुणों को जोड़ दे) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

कर्म तना है, हरी (का नामजप) उसकी शाखा है, धर्माचरण ही फूल है और ज्ञान-प्राप्ति फल है, हरी की प्राप्ति पते है और मन के अभिमान का नष्ट हो जाना घनी छाया है ॥ २ ॥

प्राँखों से (हरी का दर्शन करना), कानों से (उसका श्रवण करना) और मुख से सच्चे नाम की बाणी (उच्चरित करता ही) (सच्ची) कुदरत है । सहजावस्था के ध्यान में लगने से ही प्रतिष्ठा का धन पूरा होता है ॥ ३ ॥

महोने और ऋतुएँ तो (निरन्तर) आती-जाती रहती हैं; (अतएव) (हे प्राणी), कर्म कमा कर देख ले । हे नानक, जो व्यक्ति गुरु द्वारा (हरी में) लीन रहते हैं, वे सदैव हरे-भरे रहते हैं (और कभी) सूखते नहीं ॥ ४ ॥ १ ॥

[२]

रुति आइले सरस बसत माहि ।
रंगि राते रवहि सि तेरे चाइ ।
किसु पूज चड़ावउ लगउ पाइ ॥१॥
तेरा दासनिदासा कहउ राइ ।
जगजीवन जुगति न मिलै काइ ॥१॥रहाउ॥

तेरी मूरति एका बहुतु रूप ।
किसु पूज चड़ावउ बेउ धूप ॥
तेरा अंतु न पाइआ कहा पाइ ॥
तेरा दासनिदासा कहउ राइ ॥२॥
तेरे सठि संबत सभि तोरधा ।
तेरा सबु नामु परमेसरा ॥
तेरी गति अविगति नही जाणीये ।
अणजाणत नामु बखानीये ॥३॥
नानकु बेचारा किआ कहै ।
सभु लोकु सत्ताहे एकसै ॥
सिरु नानक लोका पाव है ॥
बलिहारी जाउ जेते तेरे नाव है ॥४॥२॥

(उन्ही भाग्यशाली व्यक्तियों के लिए) वसन्त ऋतु आई है और (वे) (इस वसंत ऋतु में) आनन्दित हैं—(कौन ? इसका वर्णन आगे की पंक्तियों में है)—जो (तेरे नाम में) अनुरक्त है और तेरे ही चाव—उत्साह में रमण करते है । (हरी को छोड़ कर मैं) किसी और को क्या पूजा चढ़ाऊँ ? ॥ १ ॥

हे राय (हरी, मैं) तेरे दासों का दास हूँ और कह रहा हूँ कि किसी (अन्य साधन) से जीवन की मुक्ति नहीं प्राप्त होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु), तेरी मूर्ति (स्थिति) तो एक ही है, (किन्तु) उसके स्वरूप बहुत से हैं । (मैं) किसे पूजा चढ़ाऊँ और (किसे) धूप (आदि सामग्री) निवेदित करूँ ? (हे हरी),

तेरा अन्त नहीं पाया जा सकता, (उसे) किस प्रकार प्राप्त किया जाय ? (मैं) तेरे दासों का दास हूँ और निवेदन कर रहा हूँ ॥ २ ॥

(हे प्रभु), साठ संवत् (तात्पर्य यह कि अनन्त वर्ष) और तीर्थ तेरे ही हैं । हे परमेश्वर, तेरा नाम सच्चा है । (हे हरी), तेरी गति अव्यक्त है, (वह) जानी नहीं जाती । (अतएव) बिना जाने ही तेरे नाम का गुणगान (और चिन्तन) करना चाहिए ॥ ३ ॥

(हे स्वामी) बेचारा नानक, तेरा क्या वर्णन करे ? सभी लोग उस एक प्रभु की ही स्तुति करते हैं । (जो गुरुमुख अहंनिश तेरो उपासना में लीन रहते हैं) (उन) लोगों के नरणों में नानक का सिर (समर्पित है) । जितने भी तेरे नाम हैं, (मैं उन सब की) वलैया लेता हूँ ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

सुइने का चउका कंचन कुआर । रूपे कीआ कारा बहुतु बिसयार ॥

गंगा का उदक करते की आग । गरुड़ा खाणा दूध सिउ गाडि ॥१॥

रे मन लेखै कबहू न पाइ । जामि न भोजै साच नाइ ॥१॥ रहाउ ॥

दसअठ लोले होवहि पासि । चारे बेद मुखागर पाठि ॥

पुरबी नाबै बरनां की दाति । बरत नेम करे दिन राति ॥२॥

काजी मुलां होवहि सेख । जोगी जंगम भगवे भेख ॥

को गिरही करमा की संधि । बिनु बूझे सब लड़ीअसि बंधि ॥३॥

जेते जीअ लिखी सिरि कार । करणी उपरि होवनि सार ॥

हुकमु करहि मूरख गावार । नानक साचे के सिफति भडार ॥४॥३॥

(चाहे) सोने का चौका हो और सोने ही की गायरें हों; (सोने क चौके के चारों ओर) चाँदी की लकीर—रेखा बहुत विस्तार के साथ (खीची गई हो), गंगा-जल (पीने के लिए हो) और यज्ञ की पवित्र अग्नि में (भोजन बनाया गया हो); कोमल भोजन दूध में भिला कर (खाया जाय) ॥ १ ॥

(किन्तु) हे मन, (उपर्युक्त ऐश्वर्य-सामग्रियों से) कभी (हरी के यहाँ का) लेखा—हिसाब नहीं पाया जाता । जब तक (हरी के) सच्चे नाम में अनुरक्त न हुआ जाय, (उपर्युक्त वस्तुएँ किसी लेखे में नहीं आती) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अठारह पुराण पास ही लिखे हुए पड़े हो, चारों वेदों का पाठ मुखाग्र (कण्ठस्थ) हो, (प्रमुख) त्योंहारों पर स्नान किए जायें, विविध वर्णों के (विधानानुसार) दान दिए जायें (और साथ ही) अहंनिश नियम-व्रत किए जायें; (किन्तु बिना हरी-नाम की प्राप्ति के सभी व्यर्थ हैं) ॥ २ ॥

(चाहे) काजी, मुल्ला और सेख हो (अथवा) भगवे वेशधारी जोगी-जंगम हो अथवा कोई गृहस्थी कर्मों को मिलाने वाला हो—तात्पर्य यह कि कर्मकाण्डी हो, (पर) बिना (हरों को भलीभाँति) समझे हुए, सभी लोग बाँध कर (यहाँ से) ले जाए जाते हैं ॥ ३ ॥

जितने भी जीव हैं, (सभी के) सिर पर (हरी का) हुक्म लिखा है । (मनुष्य की) करनी के ऊपर ही तत्त्व — फैसला, निर्णय होगा । (जो लोगो पर) शासन करने (की भावना रखते हैं), वे गँवार और मूर्ख हैं । हे नानक, सच्चे (हरी) के यश अथवा कीर्ति के भाण्डार (भरे पड़े हैं) ॥ ४ ॥ ३ ॥

[४]

सगल भवन तेरो माइआ मोह । मेँ अवरु न दोसै सरब तोह ॥
तू सुरि नाथा बेबा देव । हरिनामु मिलै गुर चरन सेव ॥१॥
मेरे सुंदर गहिर गंभीर लाल ।
गुरमुखि राम नाम गुन गाएँ तू अपरंपर सरब पाल ॥१॥ रहाउ ॥
बिनु साध न पाईएँ हरि का संगु । बिनु गुर मेल मलीन अंगु ॥
बिनु हरि नाम न सुख होइ । गुर सबदि सलहेँ साबु सोइ ॥२॥
जा कउ तू राखहि रखनहार । सतिगुरु मिलावहि करहि सार ॥
बिखु हउमै ममता परहराइ । सभि दूख बिनासे रामराइ ॥३॥
ऊतम गति मिति हरि गुन सरीर । गुरमति प्रगटे राम नाम हीर ।
लिब लागी नामि तजि दूजा भाउ । जन नानक हरि गुरु गुर मिलाउ ॥४॥४॥

(हे प्रभु), समस्त भुवनो (लोको) में तेरी ही माया का मोह फैला हुआ है । शुभ्र और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, सब कुछ तू ही तू है । तू देवताओं का नाथ और उनका भी देव है । गुरु के चरणों की सेवा में ही हरिनाम प्राप्त होता है ॥ १ ॥

हे मेरे सुन्दर, गहरे और गंभीर (विचारवाले) स्वामी, (साधक) गुरु के उपदेश द्वारा रामनाम का गुणगान करता है । हे अपरंपार स्वामी, तू सभी का पालनकर्ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बिना साधु के हरि के संग की प्राप्ति नहीं होती । बिना गुरु के यह मनुष्य का अंग (तात्पर्य यह कि जीवन) मलीन रहता है और उसकी शुद्धि हरि-नाम के बिना नहीं हो सकती । (जो साधक) गुरु के शब्द द्वारा हरी की स्तुति करता है, वही सच्चा होता है ॥ २ ॥

हे रक्षा करनेवाले, (प्रभु), जिसकी तू रक्षा करता है, उसे तू गुरु मिला देता है और (इस प्रकार उसकी) संभाल करता है और उसके अहंकार तथा ममता के विष को दूर करता है । राजा राम ही सारे दुःखों का नाश करता है ॥ ३ ॥

शरीर में हरी के गुणों को धारण करने से, साधक की गति-मिति (अवस्था) ऊँची हो जाती है । गुरु के उपदेश द्वारा ही राम नाम रूपी हीरा प्रकट होता है । द्वैतभाव के त्यागने से रामनाम की लिब (एकनिष्ठ धारणा) लग जाती है । भक्त नानक (का कथन है कि) सद्-गुरु ही हरी रूपी गुरु को मिलाता है ॥ ४ ॥

[५]

मेरी सखी सहेली सुनहु भाइ । मेरा पिर रोसालू संगि साइ ॥
 ओहु अलसु न लखीऐ कहहु काइ । गुरि संगि दिखाइओ राम राइ ॥१॥
 मिलु सखी सहेली हरि गुन बने ।
 हरि प्रभ संगि खेलहि बर कामनि गुरमुखि खोजत मन मने ॥१॥ रहाउ ॥
 मनमुखी दुहागणि नाहि भेउ । ओहु घटि घटि राबै सरब प्रेउ ॥
 गुरमुखि थिरु चीनै संगि बेउ । गुरि नामु दइाइआ जपु जपेउ ॥२॥
 बिनु गुर भगति न भाउ होइ । बिनु गुर सत न संगु बेइ ॥
 बिनु गुर अंधुले धंधु रोइ । मनु गुरमुखि निरमसु मनु सबदि खोइ ॥३॥
 गुरि मनु मारिओ करि संजोगु । अहिनिंसि राबै भगति जोगु ।
 गुर संत सभा दुखु मिटै रोगु । जन नानक हरि वरु सहज जोगु ॥४॥५॥

हे मेरी सखी सहेली, भावपूर्वक सुन—मेरा रसिक प्रिय (मेरे) साथ ही है । वह अलक्ष्य प्रभु दिखाई नहीं पड़ता, (भला) बताओ, (उमकी प्राप्ति) किस प्रकार हो ? गुरु का संग राजा राम को दिखा देता है ॥ १ ॥

(हे स्त्री, सच्ची) सखी-सहेलियों से मिल, (उनसे मिलने ही पर) हरि के गुण फवते हैं । प्रभु हरी (रूपी) वर के साथ (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ श्रीड़ा करती हैं; गुरु द्वारा (हरी की) खोज करने से मन मान जाता है—शान्त हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

दुहागिनी मनमुखी (स्त्रियाँ—जीवात्माएँ, हरी से बिलुप्टी होने के कारण) इस भेद को नहीं जानती कि सब का प्रियतम वह (हरी) घट घट में रम रहा है । गुरुमुख शिष्य अपने सग ही हरि देव को स्थिर रूप में जानता है । गुरु ने जपने योग्य हरी के नाम को दृढ़ करा दिया ॥ २ ॥

बिना गुरु के न भक्ति होती है; और न भाव । बिना गुरु के (हरी) संतो का साथ नहीं देता । गुरु के बिना मनुष्य (अज्ञान में) अन्धे रहते हैं (और सासारिक) प्रपंचों में रोते रहते हैं । मन गुरु के शब्द द्वारा अपनी मैल दूर करके निर्मल हो जाता है ॥ ३ ॥

गुरु ने अपनी संयोग (स्थापित करके, शिष्य के अहंकारी) मन को मार दिया (जिससे शिष्य) अहिनिश भक्ति योग में लीन रहता है । गुरु और संत-सभा में दुःख और रोग मिट जाते हैं । नानक भक्त कहता है कि सहज योग से हरि रूपी वर प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

आपे कुवरति करे साजि । ससु आपि निबेड़े राजु राजि ॥
 गुरमति ऊतम स'गि साधि । हरि नामु रसाइसु सहजि आधि ॥१॥
 मत बिसरति रे मन राम बोलि ।
 अपरंपरु अगम अगोचरु गुरमुखि हरि आपि तुलाए अतुलु तोलि ॥१॥ रहाउ ॥

गुर चरन सरेबहि गुर सिख तोर । गुर सेव तरे तजि मेर तोर ॥
 नर निबक लोभी मन कठोर । गुर सेव न भाई सि चोर चोर ॥२॥
 गुरु तुठा बखसे भगति भाउ । गुरि तुठै पाईये हरि महलि ठाउ ॥
 परहरि निदा हरि भगति जागु । हरि भगति सुहाबी करमि भागु ॥३॥
 गुरु भेलि मिलावै करे दाति । गुर सिख पिप्रारे दिनसु राति ।
 फसु नामु परापति गुरु तुसि बेइ । कहु नानक पावहि विरले केइ ॥४॥६॥

(प्रभु) आप ही कुदरत—प्रकृति की रचना करता है । (वह) अपनी हुक्मत करके सत्य निर्गुण करता है । (प्रभु ही) उत्तम गुरुमत द्वारा (आध्यात्मिक) संग—साथ (प्रदान करता है) । सहजावस्था मे ही नाम रूपी रमायन (प्रकट होता है) । [राजुराजि=राजु= हुक्मत; राजि=राज करके, हुक्मत चला कर । आवि<अस्ति=है] ॥ १ ॥

हे मन, राम राम कह, (इसे) भूल मत । अपरपार, अगम तथा अगोचर हरी अतुलनीय होते हुए भी गुरु के द्वारा अपने को तुलना देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु), तेरे गुरुमुख व्यक्ति गुरु की आराधना करते हैं । (सच्चे शिष्य) गुरु की सेवा से मेरी-मेरी (भावना) को त्याग कर, मुक्त हो जाते हैं । (जो) व्यक्ति निन्दक, लोभी तथा कठोर मन के हैं, (उन्हें) गुरु की सेवा नहीं अच्छी लगती और (वे) चोरो में चोर हैं, यर्थात् महान् चोर हैं ॥ २ ॥

संतुष्ट होने पर गुरु भक्ति और प्रेम प्रदान करता है । गुरु के संतुष्ट होने पर हरि के महलो में स्थान पाया जाता है । (हे शिष्य), निन्दा त्याग कर हरि-भक्ति में जग । हरी की भक्ति का भाग (हिस्सा) (परमात्मा की) कृपा से ही प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(परमात्मा अपनी कृपा के) दान में सद्गुरु का मेन मिलाता है (जिसके फलस्वरूप) सद्गुरु और प्रिय शिष्य दिन रात (एक रहते हैं) । सद्गुरु संतुष्ट होकर (हरि-) नाम-प्राप्ति रूपी फल प्रदान करता है । नानक कहता है कि कोई विरले (भाग्यशाली) ही (हरि-नाम को) प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ ६ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बसंतु हिडोल, धरु २ ॥

[७]

सालग्राम बिप पूजि मनावहु सुकृनु तुलसी माला ।
 राम नामु जपि बेड़ा बांधहु दईछा करहु बड़भाला ॥१॥
 काहे कलरा सिचहु जनसु यबावहु ।
 काबो छहनि दिवाल काहे गहु लावहु ॥१॥ रहाउ ॥
 कर हरिहुट माल टिख परोवहु तिसु भीतरि मनु जोवहु ॥
 अमृत सिचहु अरहु किप्रारे तउ माली के होवहु ॥२॥

कामु क्रोमु दुइ करहु बसोले गोडहु धरती भाई ।
जिउ गोडहु तिउ तुम्ह सुख पावहु किरतु न भेटिआ जाई ॥३॥
बगुले ते कुनि हंसुला होवै जे तू करहि बइभाला ।
प्रणवति नानक दासनिदासा दइआ करहु बइभाला ॥४॥१॥७॥

हे ब्राह्मण (विप्र), (तू), (हरी को) बालिग्राम बना और शुभ करणी को तुलसी की माला समझ, रामनाम के जप का बेड़ा बाँधो । हे दयालु प्रभु, (हम लोगों के ऊपर) दया कर ॥ १ ॥

(हे प्राणी, तू), बालू बाले रेतिले खेत को सींच कर, क्यों (अपना) जन्म नष्ट कर रहा है ? कच्ची (होने के कारण) दीवाल बह जायगी, फिर चूना क्यों लगा रहा है ? (तात्पर्य यह कि धार्मिक दिखावा क्यों कर रहा है ?) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे साधक), हाथों को (तात्पर्य यह कि सेवा-वृत्ति को) (कुँए के) झरहट के पात्रों की माला बना और उसके अन्तर्गत (अपने) मन को युक्त कर । (तू, हरि-प्राप्ति रूपी) अमृत से (अपनी जीवन-रूपिणी) क्यारी सींच, तभी (तू) (सच्चे हरी रूपी) माली (का पुत्र) हो सकता है ॥ २ ॥

काम-क्रोध को खुरपे अथवा रम्मे बना (और इन्हीं से) हे भाई, (तू) धरती गोड । तू जैसे जैसे (इस प्रकार धरती) गोड़ेगा, वैसे ही वैसे सुख पायेगा; की हुई कमाई (कभी) निष्फल नहीं जायगी ॥ ३ ॥

हे दयालु (हरी, यदि) तू (कृपा) करे, तो बगुला हंस रूप में परिणत हो जाता है, (अर्थात् अत्यंत तमोगुणी व्यक्ति सत्वगुणी और नीर-क्षीर-विवेकी साधु हो जाता है) हे दयालु हरी, तेरे दासों का दास नानक विनय करता है कि मुझ पर दया कर ॥ ४ ॥ १ ॥ ७ ॥

[८]

साहुरड़ी वधु सभु किलु साभी पेवकड़े धन बले ।
आपि कुचजी दोसु न बेऊ जाणा नाहो रले ॥१॥
मेरे साहिबा हउ आपे भरमि भुलाणी ।
अखर सिले सेई गावा अवर न जाणा बाणी ॥१॥ रहाउ ॥
कडि कसीदा पहिरहि खोली तां तुम्ह जाणहु नारी ।
जे घर राखहि बुरा न चालहि होबहि कंत पिआरी ॥२॥
जे तू पड़िआ पंडितु बीना बुइ अखर बुइ नावा ।
प्रणवति नानक एक लंघाए जे करि सचि समावां ॥३॥२॥८॥

समुराल में (परमात्मा के यहाँ) सारी वस्तुओं में (जीवात्मा रूपी स्त्री) का साभा हो जाता है, किन्तु नैहर (मायिक प्रपंचों) में (आत्मिक) धन जुदा-पृथक् ही रहता है । मैं स्वतः कुचजी (बुरे आचरण वाली) हूँ, अपने को दोष नहीं देती; मैं उस वस्तु को (आत्मिक धन को) रखना—सँभालना नहीं जानती ॥ १ ॥

हे मेरे साहब, मैं आप ही (माया के) भ्रम में भटकती फिरती हूँ । मेरे सिर पर जो तेरे हृन्म की निखावट लिखी गई है, उसी के अनुसार करती हूँ, अपनी ओर से अब कोई अन्य बनावट नहीं बन सकती ॥ १ ॥ रहाउ ॥

यदि (नाम रूपी) कसीदे को काढ कर, (प्रेम रूपी) चोली धारण कर, तभी तू (सच्चे अर्थ में) स्त्री जानी जा सकती है । (हे जीवात्मा रूपी स्त्री,) यदि (परममत्मा रूपी प्रियतम) तुझे (अपने) घर मे रख ले, तो तू बुराई नहीं अनुभव कर सकती और स्वामी को (अत्यन्त) प्यारी हो जायगी ॥ २ ॥

(यदि तू) दो अक्षर के दो नामों को पढ़ ले, तो तू पंडिता और द्रष्टा हो जायगी । नानक विनय करके कहता है एक (हरी) ही उन्हें (इस सागर-सागर से) पार कर सनता है, जो सच्चे भाव मे उस (सच्चे हरी मे) समाहित है ॥ ३ ॥ २ ॥ ८ ॥

[६]

राजा बालकु नगरी काचो दुसटा नालि पिआरो ।

दुइ माई दुइ बापा पढ़ीअहि पंडित करहु बोचारो ॥१॥

सुआमी पंडिता तुम्ह वेहु मती । किन बिधि पावहु प्राणपती ॥१॥ रहाउ ॥

भीतरि अग्नि बनासपति मउलो सागरु पंडै पाइआ ।

चंदु सूरजु दुइ घर ही भीतरि ऐसा गिआनु न पाइआ ॥२॥

राम रवंता जासीऐ इक माई भोगु करेइ ।

ता के लखल जासीअहि लिमा धनु संपहेइ ॥३॥

कहिआ सुराहि न खाइआ मानहि तिन्हा ही सेती बासा ।

अणबति नानकु दासनिदासा खिनु तोला खिनु मासा ॥४॥ ३॥६॥

(मन रूपी) राजा बालक है, (शरीर रूपी) नगरी कच्ची (नश्वर) है, और (इसका) प्रेम (कामादिक) दुष्टों से है । (इस शरीर की) दो माताएं (आशा और तृष्णा) और दो पिता (राग और द्वेष) कहे जाते हैं । हे पंडित, (उपर्युक्त तथ्य पर) विचार कर ॥ १ ॥

(हे) स्वामी, (हे) पंडित, तू (मुझे) यह बुद्धि दे कि प्राणपति (हरी) को किस प्रकार प्राप्त करूं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बनस्पतियों के अन्तर्गत अग्नि है, (तथापि) वे हरी की इच्छा से हरी-भरी (प्रफुल्लित) रहती हैं; सागर भी मर्यादा के भीतर बंधा रहता है; चन्द्रमा और सूर्य (दोनों ही अपने अग्रिम-स्वरूपी) घर में (स्थित हैं); (तथापि) इस प्रकार का ज्ञान नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥

राम का (वास्तविक) स्मरण करनेवाला उसे समझना चाहिये, जो माया के भोगों से (वृत्त हो जाय), (भाव यह कि माया के भोगों को नश्वर समझ कर, उससे विमुक्त हो जाय; उन भोगों में आसक्ति न रहे) । उस (राम मे स्मरण करनेवाले का प्रमुख) लक्षण यह है कि वह क्षमा-धन का संग्रह करता है ॥ ३ ॥

ऐसे व्यक्तियों को बासनायुक्त समझना चाहिये, जो कहा सुनते नहीं और खायी हुआ मानते नहीं, (वे कृतघ्नी हैं) । (प्रभु के) दासों का दास नानक कहता है कि (यह मन) क्षण में तोला और क्षण में मासा हो जाता है, (अर्थात् मन की स्थिति सदैव बदलती रहती है, कभी यह ऊँचा हो जाता है, और कभी नीचा) ॥ ४ ॥ ३ ॥ ६ ॥

[१०]

साचा साहु गुरु सुखदाता हरि मेले सुख गवाए ।
करि कृपा हरि भगति दृष्टाए अनदिनु हरि गुण गाए ॥१॥
मत भूलहि रे मन चेति हरी ।
बिनु गुर मुक्ति नाही त्रै लोई गुरमुखि पाईऐ नामु हरी ॥१॥ रहाउ ॥
बिनु भगती नहीं सतिगुर पाईऐ बिनु भागा नहीं भगति हरी ।
बिनु भागा सतसंगु न पाईऐ करमि मिलै हरिनामु हरी ॥२॥
घटि घटि गुपतु उपाए बेखै परगटु गुरमुखि संत जना ।
हरि हरि करहि सु हरि रंगि भोने हरि जलु अमृत नामु मना ॥३॥
जिन कउ तखति मिलै बडिआई गुरमुखि से परधान कीए ।
पारसु भेटि भए से पारस नानक हरि गुरि संगि योए ॥४॥ ६ ॥ १० ॥

गुरु ही सच्चा साहु और सुख देनेवाला है; (वह शिष्य को) हरी से मिला कर (उसकी सासारिक) भूल मिटा देता है । (सद्गुरु) कृपा करके (शिष्य को) हरि-भक्ति दृढ़ करता है, (जिसमें वह) प्रतिदिन हरि का गुणगान करता है ॥ १ ॥

हे मन, भूल मत कर, हरी का स्मरण कर । बिना गुरु के त्रैलोक्य में (कहीं भी) मुक्ति नहीं मिल सकती । गुरु के उपदेश द्वारा ही हरी का नाम पाया जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बिना भक्ति के सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती और बिना भाग्य के हरि-भक्ति नहीं प्राप्त होती । बिना भाग्य के सत्संग भी नहीं पाया जाता । (परमात्मा की कृपा से) हरिनाम मिलता है ॥ २ ॥

(हरी) सृष्टि उत्पन्न करके, (उसकी) देखभाल करता है, (वह घट-घट में रमता हुआ भी गुप्त है; (किन्तु) गुरु द्वारा संत-लोगों के बीच प्रकट होता है । (जो व्यक्ति निरन्तर) हरी-हरी करते हैं, वे उस हरी के रंग में रंग जाते हैं और उनके मन में हरी-नाम रूपी अमृत-जल का (बास होता है) ॥ ३ ॥

जिन्हें (हरी की ओर से) तब्त के ऊपर बैठने की बड़ाई प्राप्त होती है, वे गुरु के द्वारा प्रधान बनाये जाते हैं । (वे) (गुरु रूपी) पारस का स्पर्श करके (स्वयं भी) पारस हो जाते हैं । नानक कहता है कि (वे लोग) सदैव हरी रूपी गुरु के साथ में (एक) हो जाते हैं ॥ ४ ॥ ४ ॥ १० ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ बसंतु, महला १, घर १, दुतुकीआ

असटपदीआं

[१]

जगु कऊआ नामु नही चीति । नामु विसारि गिरै बेलु भोति ॥
मनूआ डोलै चीति अनोति । जग सिउ तूटी भूठ परीति ॥१॥
कामु क्रोधु बिगु बजरु भारु । नाम बिना कैसे गुन चारु ॥१॥ रहाउ ॥
घरु बालू का घूमनघेरि । बरखसि बाणी बुदबुदा हेरि ॥
मात्र बूंद ते धरि चकु फेरि । सरब जोति नामै की चेरि ॥२॥
सरब उपाइ गुरु मिरि मोरु । भगति करउ पग लागउ तोर ॥
नामि रतो चाहत तुभ ओरु । नामु दुराइ चले सो चोरु ॥३॥
पति खोई बिगु अंचलि पाइ । साच नामि रतो पति सिउ धरि जाइ ।
जो किछु कोन सि प्रभु रजाइ । भे माने निरभउ मेरी माइ ॥४॥
कामनि चाहै सुंदरि भोगु । पान फूल मोठे रस भोग ॥
खोलै बिगस तेतो सोग । प्रभ सरणागति कीन्हसि होग ॥५॥
कापड़ पहिरसि अविकु सीगारु । माटी फुली रूपु बिकारु ।
आसा मनसा बांधो बारु । नाम बिना सूना घर बारु ॥६॥
गाछहु पुत्री राजकुआरि । नामु भणहु सचु दोतु सवारि ॥
प्रिउ सेवहु प्रभ प्रेम अचारि । गुर सबदी बिलु तियास निवारि ॥
मोहनि मोहि लोआ मनु मोहि । गुरकै सबदि पछाना तोहि ॥
नानक ठाढे चाहहि प्रभु दुआरि । तेरे नामि स'तोले किरपा धारि ॥८॥१॥

विशेष : राजा शिवनाभ की धरती पर गुरु नानक देव ने अपने पवित्र चरण रखे । कहते हैं कि उनके चरण रखते ही राजा शिवनाभ का सूना बाग हरा-भरा हो उठा । इस पर राजा ने गुरु नानक देव की परीक्षा के लिए अति रूपवती स्त्रियों को भेजा । वे अश्रिग रहे । उन्होंने इस पद मे उन स्त्रियों को समझाया है—

अर्थ : संसार कौवा [अभिप्राय यह कि मायासक्त] है । (जगत्) हरि-नाम को भूल कर (विषय रूपी) चारो को देख कर ढिग जाता है । चित्त मे बदनीयती (के कारण), मन चलायमान हो जाता है । (यह सब कुछ देख कर हमारी तो) जगत् से झूठी प्रीति टूट चुकी है ॥ १ ॥

काम-क्रोध का विष बज्रवत भारी है । (हरी) नाम के बिना (शुभ) गुणों के आचार किस प्रकार (प्राप्त हो सकते हैं) ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(संसार का रहना उस) बालू के घर (के समान है, जो (चारो ओर) समुद्र के चक्र से घिरा होता है । वर्षा-ऋतु मे जैसे तुम बुदबुद की बनावट को देखती हो, (वैसी ही संसार

की भी स्थिति है) । (प्रभु ने) बूँद मात्र से चाक फिरा कर शरीर को बना दिया है ।
[तात्पर्य यह कि जिस प्रकार कुम्हार अपनी चाक पर अनेक मिट्टी के बरतनों का निर्माण करता है, उसी प्रकार प्रभु ने अपनी चाक पर बिन्दु (बीर्य के एक बूँद) से प्राणियों का शरीर बना देता है] । सारी ज्योतिषी नाम की ही चेरी है ॥ २ ॥

सभी को रचकर, (उनका) शिरमोर गुरु (तू ही) है । (तेरी महिमा का अनुमान कर मैं) तेरी भक्ति करता हूँ और (तेरे) चरणों में पड़ता हूँ । (हे प्रभु, मैं तेरे) ज्ञान में लग कर, तेरी ही ओर देखता रहता हूँ । जो नाम को छिपा कर चलता है, वह चोर है ॥ ३ ॥

(नाम को भुलानेवाला व्यक्ति) प्रतिष्ठा खोकर, पल्ले में (सासारिक विषय रूपी) विष पाता है । (जो व्यक्ति) सच्चे नाम में अनुरक्त है, (वह) प्रतिष्ठा के साथ (अपने वास्तविक आत्मस्वरूपी) घर में जाता है । जो कुछ (हरी ने) किया है, वह अपनी मर्जी के अनुसार किया है । हे मेरी माँ, जो व्यक्ति हरी के भय को मानता है, वह निर्भय हो जाता है ॥ ४ ॥

स्त्री चाहती है कि सुन्दरी (होऊँ) और (विविध प्रकार के) भोग कर्क—(यथा) पान (खाऊँ), फूलों (की शय्या पर सोऊँ) मोठे रसो (का आस्वादन कर्क) । (किन्तु वह भोगों में जितना अधिक) खिलती और विकसित होती है, (उतना ही अधिक) शोक (भी) करती है । पर जो प्रभु की दारण में है, (वह जो कुछ भी) करना चाहती है, वह हो जाता है ॥ ५ ॥

(स्त्री खूब सुन्दर सुन्दर) कपड़े पहनती है और खूब शृंगार करती है, (किन्तु समझ लो कि) मिट्टी फूलों हुई है और विकार रूप हुई है । आशा और मनसा ने (हरी का) दरवाजा रोक रक्खा है । नाम के बिना घरबार सुना है ॥ ६ ॥

हे पुत्री, हे राजकुमारी चली जाओ । दिन संवार कर (अमृत बेला अथवा ब्राह्म-मुहूर्त को संभाल कर) सच्चा नाम जपो । (प्रभु के प्रेम के आधार पर प्रियतम (हरी) की सेवा करो । गुरु के शब्दों द्वारा (विषयों के) विष की तृषा निवारण करो ॥ ७ ॥

मोहन (हरी) ने मेरा मन मोह लिया है । (हे हरी, मैंने) गुरु के शब्द द्वारा तुझे पहचान लिया है । नानक प्रभु के दरवाजे पर खड़ा होकर उसे देखना चाहता है । हे प्रभु, तू यह कृपा कर कि तेरे नाम में (मुझे) संतोष प्राप्त हो ॥ ८ ॥

[२]

मनु भूलउ भरमसि आइ जाइ । अति लुबध लुभानउ बिलस माइ ॥

नह असबिह दोसै एक भाइ । जिउ मोन कुंडलीआ कंठि पाइ ॥१॥

मनु भूलउ समझति साच नाइ । गुर सबद बीचारे सहज भाइ ॥१॥ रहाउ ॥

मनु भूलउ भरमसि भवर तार । बिल बिरथे चाहै बहू बिकार ।

मैगल जिउ फासति कामहार । कड़ि बंधनि बाधिअसो तीस मार ॥२॥

मनु सुगथी दादर भगति हीनु । वरि असट सरापी नाम बीनु ॥

ता कै जाति न पातो नाम लीन । सबि इख सखाई गुणह बीन ॥३॥

मनु चले न जाई ठाकि राहु । बिनु हरि रस राते पति न साहु ।
 तू आपे सुरता आपि राहु । धरि धारण बेले जायै आपि ॥४॥
 आपि भुलाए किनु कहउ जाइ । गुरु मेले बिरथा कहउ माइ ।
 अवगण छोडउ गुण कमाइ । गुर सबदी राता सचि समाइ ॥५॥
 सतिगुर मिलिऐ मति ऊतम होइ । मनु निरमलु हउमै कहे धोइ ।
 सदा सुकतु बंधि न सकै कोइ । सदा नामु बखायै अवरु न कोइ ॥६॥
 मनु हरि कै भाएँ आबै जाइ । सभ महि एको किछु कहयु न जाइ ।
 सभु हुकमो वरतै हुकमि समाइ । दूख सूख सभ तिसु रजाइ ॥७॥
 तू अभुल न भूली कबे नाहि । गुर सबदु सुणायै मति अगाहि ॥
 तू मोटउ ठाकुरु सबद माहि । मनु नानक मानिआ सवु सलाहि ॥८॥२॥

मन (माया के विषयो मे) भूल कर और भ्रमित होकर (संसार-चक्र मे) घ्राता जाता रहता है । (वह) माया के विषम (आकर्षणो) में प्रत्यधिक लुब्ध हो गया है । (किसी) एक का प्रेम स्थिर नहीं दिखाई पड़ता । (मन लोभ मे फँस कर इस प्रकार मारा जाता है) जैसे मछली (चारे के लोभ के कारण) गले मे कुडी डलवा कर (मारी जाती है) ॥१॥

हे भूले हुए मन, सच्चे नाम को समझ; (तू) सहज भाव से गुरु के शब्दों पर विचार कर ॥१॥ रहाउ ॥

हे मन, (तू) भीरे की भाँति भटक कर भ्रमित हो रहा है । (नी) गोलको—बिलो वाली इन्द्रियाँ व्यर्थ है, (इन्हो के द्वारा मन) बहुत से विकारो मे (फँस जाता है) । (हे मन, तू) कामानुर होकर हाथी की भाँति फँस जाता है, (जिसके फलस्वरूप) बंधन मे कस कर बाँधा जाता है और सिर पर मार पड़ती है ॥२॥

हे मूर्ख मन, (तू) भक्ति से होन होकर दादुर (के समान हो गया है) । (मनुष्य) नाम के बिना (हरि के) दरवाजे से भ्रष्ट तथा धापित हो जाता है । उसकी न जाति है, न पति; न (उसका कोई) नाम भी लेता है । गुणो के बिना होने मे, समस्त दुःख ही उसके साथी होते हैं ॥३॥

मन (सदैव) चलायमान रहता है, (वह) रोका नहीं जा सकता । बिना हरि-रस में अनुरक्त हुए, न (उसकी कोई) प्रतिष्ठा होती है (और न कोई) शाख ही । (हे प्रभु), तू आप ही सुरतिवाला है, (अतः) आप ही रक्षा कर । धरती को धारण कर तू ही उसे देखता और जानता है ॥४॥

(प्रभु जब) आप ही (मनुष्य को) भुलाना है, तो किसमे (इस बात को) कहूँ ? हे माँ, गुरु के मिलने पर ही (यह) व्यथा कही जा सकती है । (गुरु के कहने पर) अवगुणो का त्याग कर गुणो को कमाता हूँ । (जो) गुरु के शब्दों मे अनुरक्त होता है, वह सत्य में समाहित हो जाता है ॥५॥

सद्गुरु से मिलने पर बुद्धि उत्तम हो जाती है । (सद्गुरु मन से) अहंकार को काढ कर धो देता है, (जिससे) मन निर्मल हो जाता है । (अहंकार निवृत्त हो जाने से (प्राणी)

सदेव के लिए मुक्त हो जाता है, (फिर उले) कोई बांध नहीं सकता । (ऐसा व्यक्ति) सदेव नाम का ही वर्णन करता है, अन्य किसी (वस्तु) का नहीं ॥ ६ ॥

(जीवन्मुक्त पुरुषों का) मन हरी की आज्ञा में आता जाता है । सभी में एक (हरी ही व्याप्त है); कुछ कहते नहीं बनता । सभी कुछ (हरी के) हुक्म में बरत रहा है (और अन्त में) हुक्म में ही समा जाता है । उसी (हरी) की ही मर्जी से सब दुःख-मुख होते हैं ॥ ७ ॥

(हे प्रभु); तू न भूलनेवाला है और कभी नहीं भूलता । गुरु का शब्द सुनाने से (साधको की) बुद्धि अगाध हो जाती है । (हे ठाकुर), तू बहुत बड़ा है (और गुरु के) शब्द में (विद्यमान) है । हे नानक, सत्य की स्तुति करके मन मान गया (शान्त हो गया) ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

बरसन की विप्रास जिसु नर होइ । एकतु राखै परहरि दोइ ॥

दूरि दरदु मधि अमृतु खाइ । गुरुमुखि बूझै एक समाइ ॥१॥

तेरे बरसन कउ केतो बिललाइ । बिरला को चीनसि गुर सबदि मिलाइ ॥२॥

॥ रहाउ ॥

बेद बखारि कहहि इकु कहीऐ । ओहु बेधंतु अंतु किनि सहोऐ ॥

एको करता जिनि जगु कीआ । बाभु कला धरि गगनु धरीआ ॥२॥

एको गिआनु धिआनु धुनि बाणी । एकु निरालसु अकथ कहाणी ॥

एको सबदु सबा नोसाणु । पूरै गुर ते जाणै जाणु ॥३॥

एको धरसु दृढ़ै सनु कोई । गुरमति पूरा जुगि जुगि सोई ॥

अनहदि राता एक लियतार । ओहु गुरुमुखि पावै अलख अपार ॥४॥

एको तखतु एको पातिसाहु । सरबी थाई वेपरबाहु ।

तिस का कीआ त्रिभवण सारु । ओहु अगसु अगोचरु एककारु ॥५॥

एका भूरति साचा नाउ । तियै निबडै सानु निआउ ॥

साची करणी पति परवारु । साची दरगह पावै मारु ॥६॥

एका भगति एको हे भाउ । बिनु भै भगती आबउ जाउ ॥

गुर ते समझि रहै मिहमारु । हरि रसि राता जनु परवारु ॥७॥

इत उत बेखउ सहजे राबउ । तुझ बिनु ठाकुर किसे न भावउ ॥

नानक हुअै सबदि जलाइआ । सतिगुरि साचा बरसु दिखाइआ ॥८॥३॥

जिस व्यक्ति की (हरी के) दर्शन की प्यास—चाह होती है, वह द्वैत का परित्याग करके, एकत्व भाव—अद्वैतभाव में अनुरक्त रहता है । (वह सांसारिक) दुःखों को दूर करके (भक्ति रूपी) अमृत मय कर खाता है । गुरु द्वारा (परमात्मा के रहस्य को) समझ कर, (वह) एक हरी में समा जाता है ॥ १ ॥

(हे हरी), तेरे दर्शन के निमित्त कितने ही लोग बिललाने रहते हैं; (किन्तु) गुरु क शब्द के संयोग से—मेल से कोई बिरला ही (तुम्हें) पहचान पाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वेद व्याख्या करके कहते हैं कि एक (हरी) को ही कहना चाहिए—जपना चाहिए । वह (हरी) बेभ्रंत है; उसका भ्रंत किसने पाया है ? (अर्थात् किसी ने भी नहीं) ; एक ही कर्त्ता (पुरुष) है, जिसने जगत् की रचना की है । बिना किसी कला के ही आकाश धारण कर रक्खा है ॥ २ ॥

एक गुरुवाणी का उच्चारण ही ज्ञान-ध्यान है । एक निर्लेप (हरी) की ही अकथनीय कहानी—वार्ता है । (गुरु का) एक शब्द ही सच्चा निशान है । (हे साधक), पूर्ण गुरु से जानने योग्य (हरी को) जान ॥ ३ ॥

यदि कोई सत्य को समझे, (तो सारे) धर्म एक हैं । गुरु की बुद्धि द्वारा (यह बोध होता है कि) वही पूर्ण (हरी) युग-युगान्तरो से (व्याप्त है) । (जो, हरी के) अनाहत शब्द में एकाग्र होकर लिव और एकनिष्ठ ध्यान लगाए रखता है, वही गुरुमुख श्रलक्ष्य और अपार (हरी) को पाता है ॥ ४ ॥

एक पातशाह (बादशाह, अर्थात् परमात्मा) का एक ही तख्त है और वह बेमुहताज सभी स्थानों में (रम रहा है) । तीनों भुवनों के तत्व उसी द्वारा रचे गए हैं, वह (हरी) अग्रम, अगोचर और एककार है ॥ ५ ॥

(हरी का) एक ही स्वरूप—हस्तो है, और उसका नाम सच्चा, (अर्थात् वह सत्य नामवाला है) । वही पर (उसी के यहाँ) सच्चे न्याय से निर्णय होता है । सच्ची करनी से ही प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता (प्राप्त होती है) और सच्चे दरवाजे पर मान प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

एक ही भक्ति और एक ही भाव होना चाहिए । बिना (हरी के) भय और भक्ति के (मनुष्य का) आना-जाना (बना रहता है) । (हे साधक), गुरु के द्वारा (परमात्म तत्व) समझ कर (इस संसार में) मेहमान की भाँति रह । प्रामाणिक व्यक्ति हरि-रस में अनुरक्त रहते हैं ॥ ७ ॥

(हे प्रभु), (मैं) इधर-उधर देखता हूँ और सहजभाव से—प्रेम से (तुम्हें ही) स्मरण करता हूँ, (क्योंकि) हे ठाकुर (स्वामी) तेरे बिना मुझे कोई और नहीं अच्छा लगता । नानक ने शब्द—नाम के द्वारा अहंकार जला दिया है । सद्गुरु ने मुझे (हरी का) सच्चा दर्शन करा दिया है ॥ ८ ॥ ३ ॥

[४]

चंचलु चीतु न पावै पारा । आवत जात न लागै बारा ॥

दूख धरौ मरोऐ करतारा । बिनु प्रीतम को करै न सारा ॥१॥

सभ उत्तम किनु आखउ होना । हरि भगती सचि नामि पतीना ॥१॥रहाउ॥

अउलथ करि धाकी बहूतेरे । किउ दुख जूकै बिनु गुर मेरे ॥

बिनु हरि भगती दूख धरौरे । दुख सुख दाते ठाकुर मेरे ॥२॥

रोगु वडो किउ बांधउ धीरा । रोगु बुझै सो काटै पीरा ॥
 मै भवगण मन माहि सरीरा । दूढत खोजत गुरि मेले बीरा ॥३॥
 गुर का सज्जु दाखु हरि नाउ । जिउ तू राखहि तिबै रहाउ ॥
 जगु रोगी कह बैलि दिखाउ । हरि निरमाइलु निरमलु नाउ ॥४॥
 घर महि घर जो देखि दिखावै । गुर महली सो महलि बुलावै ॥
 मन महि मनूआ चित महि चीता । ऐसे हरि के लोग अतीता ॥५॥
 हरख सोग ते रहहि निरासा । अंमृतु चाखि हरि नामि निवासा ॥
 आपु पछाणि रहै लिब लाग़ा । जनमु जीति गुरमति दुलु भागा ॥६॥
 गुरि दीआ ससु अंमृतु पीवउ । सहजि मरउ जीवत ही जीवउ ॥
 अपणो करि राखहु गुर भावै । तुमरो होइ सु तुम्हहि समावै ॥७॥
 भोगी कउ दुलु रोग विआपै । घटि घटि रवि रहिआ प्रभु जापै ।
 सुख दुख ही ते गुर सबदि अतीता । नानक रामु रवै हित चीता ॥८॥४॥

चित्त चंचल है, (अतः संसार मे ही भटकता रहता है, किन्तु) उसका पार नही पाता, (चलायमान चित्त के कारण, परमात्मा की समझ नही आती, जिससे मनुष्य को संसार-चक्र में) आते-जाते देर नही लगती । हे कर्तार, अत्यधिक दुःख होने के कारण, (सासारिक और मायासक्त प्राणी निरन्तर) मरता रहता है । बिना प्रियतम (हरी) के कोई भी खबर नही लेता ॥ १ ॥

(इस संसार मे) सभी कोई उत्तम हैं, (मैं) हीन किसे कहूँ ? हरि-भक्ति (और हरि के) सच्चे नाम से (जीव) तृप्त हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बहुत सी औषधियों को करके थक गई, (किन्तु मेरे दुःखों की समाप्ति नही हुई), (भला) बिना गुरु के मेरे दुःखों की समाप्ति किस प्रकार हो ? बिना हरि-भक्ति के दुःखों की अधिकता रहती है । हे मेरे दाता, ठाकुर (मालिक) सभी सुख-दुःख तेरे ही हैं ॥ २ ॥

(इस संसार मे) बड़े-बड़े रोग है, (मैं) किस प्रकार घेर्य बाँधू ? (जो गुरु) रोग को जानता है, (वही) व्यथा काट सकता है । मेरे मन और शरीर मे भवगुण ही भवगुण है । हे भाई, (वीर), दूढ़ते-खोजते गुरु से मिलाप हो गया ॥ ३ ॥

गुरु का शब्द और हरिनाम ही दवाई हैं । (हे हरी मुझे) जिस भाँति रख, उसी भाँति रहूँ । (सारा) जगत् ही रोगी है, (तो फिर) किससे मिलकर (अपना) रोग दिवाऊँ ? हरी ही पवित्र है और (उसका) नाम निर्मल है ॥ ४ ॥

(जो गुरु) (मन रूपी) घर के अन्दर (हरी का) घर देख कर (ओरो को) दिखा देता है, वह गुरु के महल द्वारा (हरी के) महल मे बुला लेता है । हरी के भक्तगण ऐसे अतीत (वैराग्यवान्) होते हैं कि अपने मन और चित्त के भीतर ही (वास्तविक) रोग और चित्त प्राप्त कर लेते हैं । तात्पर्य यह कि अपने ज्योतिर्मय मन द्वारा हरी का साक्षात्कार कर लेते हैं) ॥ ५ ॥

(परमात्मा के भक्तगण) हर्ष और शोक से निराश (उदासीन) हो जाते हैं (वे नाम रूपी) अमृत चखते हैं (और साथ ही) हरिनाम में निवास करते हैं । (वे) अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान कर, (उसी के) ध्यान में लगे रहते हैं । गुरु के उपदेश से वे जन्म (की बाजी) जीत लेते हैं (और उनके समस्त) दुःख भग जाते हैं ॥ ६ ॥

गुरु ने (मुझे) सच्चा (नाम रूपी) अमृत दे दिया है, (मैं उसी को) पीता हूँ । (मैं गुरु-कृपा से) सहजावस्था में (स्थित होकर अपने अहंभाव से) मर गया हूँ (और अब) जीवित ही जीवन्मुक्त हो गया हूँ । हे गुरु, (यदि तुझे) अच्छा लगे, (तो मुझे) अपना समझ कर रख । [कई प्रतियों में यह पाठ 'राखड' है । पर आगे की पंक्ति के भावानुसार 'राखहु' ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है] । (हे प्रभु, जो व्यक्ति) तेरा हो जाता है, वह तुझी में समा जाता है ॥ ७ ॥

दुःख और रोग रोगियों को ही व्यापते हैं । (किन्तु) (जो भाग्यशाली साधक) गुरु के उपदेश द्वारा दुःख-मुख से अतीत हो गए हैं, (उन्हें) घट-घट में रमता हुआ प्रभु (स्पष्ट) प्रतीत होता है । नानक तो दिली प्रेम से राम में रमण करता है ॥ ८ ॥ ४ ॥

[५]

इकतुकीआ

मनु भसम अंधूले गरबि जाहि । इनि बिधि नागे जोगु नाहि ॥१॥
मूढ़े काहे बिसारिओ तै राम नाम । अंत कालि तेरै आवै काम ॥रहाउ॥
गुर पूछि तुम करहु बीचारु । जह देखउ तह सारिगपाणि ॥२॥
किआ हउ आखा जां कछु नाहि । जाति पति सभ तेरै नाइ ॥३॥
काहे मालु दरहु देखि गरबि जाहि । चलती बार तेरो कछु नाहि ॥४॥
पंच मारि चितु रखहु थाइ । जोग जुगति की इहै पांइ ॥५॥
हउमै पैखड़ु तेरै मनै माहि । हरि न चेतहि मूढ़े सुकति जाहि ॥६॥
मत हरि बिसरिए जम वसि पाहि । अंत कालि मूढ़े चोट खाहि ॥७॥
गुर सबहु बिचारहि आपु जाइ । साच जोगु मनि वसै आइ ॥८॥
जिनि जोउ पिंडु दिता तिसु चेतहि नाहि । मड़ी मसाणी मूढ़े जोगु नाहि ॥९॥
गुर नानकु बोलै भली बाणि । तुम होहु सुजाखे लेहु पछाणि ॥१०॥५॥

हे भसम के ग्रन्थे, भला तू गर्व क्यों करता है ? ['भसम के ग्रन्थे' का भाव यह है कि जिसने भसम लगाने के अहंकार में वास्तविकता की सुधि-बुधि खो दी है और अहंभाव में अन्धा हो गया है । मत, अरबी, शब्द है, = भला, क्यो] । हे नागे, इस विधि में योग नहीं है ॥ १ ॥

हे मूढ़, तूने राम नाम क्यों बिसार दिया ? तेरे अन्तिम समय में वही काम आयेगा । ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे साधक), गुरु से पूछ कर इस बात पर विचार कर (कि हरी सर्वत्र व्याप्त है) । (मैं तो) जहाँ देखता हूँ, वहाँ हरी (शारंगपाणि) ही (दिखलाई पड़ता है) ॥ २ ॥

जब मेरा कुछ है ही नहीं, तो मैं क्या कह सकता हूँ । (मेरी) जाति और प्रतिष्ठा तो तेरे नाम से ही बनी है ॥ ३ ॥

(हे अहंकारी), माल और द्रव्य देख कर क्यों गर्व करता है ? (अन्त में) चलते समय तेरा कुछ भी नहीं होगा ॥ ४ ॥

पंच कामादिकों को मार कर, चित्त ठिकाने रख; योग की युक्ति की यही बुनियाद है ॥ ५ ॥
अहंकार का बंधन तेरे मन में है । [पैखंडू = जानवरी के पैरों को बांधने की रस्सी, जिससे वे अपने स्थान से आगे न बढ़ सकें] । हे मूढ़, हरि का स्मरण नहीं करता, (जिससे तू) मुक्त हो जा ॥ ६ ॥

(हे मनुष्य) हरि को मत भूल, यम पास ही बसता है । (हरि को भज, नहीं तो) हे मूर्ख, अन्तिम समय में चोट खायगा ॥ ७ ॥

(हे शिष्य), गुरु के शब्दों पर विचार कर, (जिसमें तेरा) आपापन नष्ट हो जाय और वास्तविक (सच्चा) योग (तेरे) मन में धा बने ॥ ८ ॥

(हे मूर्ख) जिस (हरी) ने (तुझे) प्राण और शरीर दिए हैं, (तू) तू उसका स्मरण नहीं करता । हे मूढ़, मढी-मसाणी में योग नहीं है ॥ ९ ॥

नानक गुगोंवाली भली बात (बाणी) कहता है । तू (तो) सुन्दर आँखोंवाला है, इसे (भलीभाँति) पहचान ले ॥ १० ॥ ५ ॥

[६]

दुबिधा दुरमति अंधुली कार । मनमुखि भरमै मझि गुबार ॥ १ ॥

मनु अंधुला अंधुली मति लागे । गुर करखी बिनु भरमु न भागे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मनमुखि अंधुले गुरमति न भाई । पसू भए अभिमानु न जाई ॥ २ ॥

लख चउरासीह जंत उपाए । मेरे ठाकुर भाखे सिरजि समाए ॥ ३ ॥

सगली भूलै नही सबदु अचार । सो समझै जिसु गुरु करताउ ॥ ४ ॥

गुर के चाकर ठाकुर भाखे । बलसि लीए नाही जम काखे ॥ ५ ॥

जिन कै हिरदै एको भाइआ । आपे मेले भरमु चुकाइआ ॥ ६ ॥

बे मुहतासु बेअनु अपारा । सचि पतीजे करखै हारा ॥ ७ ॥

नानक भूले गुरु समझावै । एकु दिखावै साचि टिकावै ॥ ८ ॥ ६ ॥

दुबिधा और दुर्बुद्धि (अज्ञानता की) अन्धी लकोरे हैं । मनमुख (अज्ञानता के) अन्धकार में भटकता फिरता है ॥ १ ॥

अन्धा मन, अन्धी बुद्धि में लगता है । गुरु (द्वारा निर्दिष्ट) कार्यों में लगे बिना भ्रम नहीं दूर होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मनमुख अंधे (अज्ञानी) होते हैं, (जिससे उन्हें) गुरु द्वारा प्रदत्त बुद्धि अच्छी नहीं लगती । (वे अज्ञानता में) पशु हो गए हैं, फिर भी (उनका) अभिमान नहीं दूर होता ॥ २ ॥

मेरे ठाकुर (स्वामी, हरी) ने चौरासी लख जीवों की उत्पत्ति की है; (वह) अपनी मरजी से (जीवों को) उत्पन्न करके अपने में ही लीन कर लेता है ॥ ३ ॥

(संसार के) सभी (प्राणी) भूल में पड़े हैं; (उनके पास) न तो शब्द नाम है और आचार । जिसके (पास) गुरु रूपी कर्त्ता-पुरुष है, वही (इस रहस्यपूर्ण बात को समझता है ॥ ४ ॥

गुरु के चाकर—सेवक ठाकुर के आज्ञानुसार (चलते हैं), (ऐसे सेवकों को हरी) बख्श लेता है; (उन्हें) यमराज का भी कोई भय नहीं रहता ॥ ५ ॥

जिनके हृदय में एक (हरी) अच्छा लग जाता है, (उन्हें वह हरी) आप ही अपने में मिला लेता है (और उनका) भ्रम समाप्त कर देता है ॥ ६ ॥

(वह हरी) बेमुहताज, बेभ्रत और अपार है; वह कर्तार सत्य से ही प्रसन्न होता है ॥ ७ ॥

नानक कहता है कि (हरि-पय से) भूले-भटकों को गुरु ही समझाता है; (गुरु उन्हें) एक (हरी) को दिखा कर सत्य में टिका देता है ॥ ८ ॥ ६ ॥

[७]

आपे भवरा फूल बेलि । आपे संगति मीत मेलि ॥१॥

ऐसी भवरा बासुले । तरवर फूले बन हरे ॥१॥रहाउ॥

आपे कवला कतु आपि । आपे रावे सबदि थापि ॥२॥

आपे बछरु गऊ खीरु । आपे मंदरु थंढु सरीरु ॥३॥

आपे करणी करणहारु । आपे गुरमुखि करि बीखारु ॥४॥

तू करि करि बेखहि करणहारु । जोति जीअ असंल बेद अपारु ॥५॥

तू सरु सागरु गुण गहीरु । तू अकुल निरंजनु परम हीरु ॥६॥

तू आपे करता करण जोगु । निहकेवल राजन सुखी लोगु ॥७॥

नानक आपे हरि नाम सुझादि । बिनु हरि गुर प्रीतम जनमु बादि ॥८॥७॥

(हरी) आप ही भौरा, आप ही फूल तथा आप ही बेलि है; आप ही सत्संगति है, आप ही मित्र है और आप ही मिलाप है ॥ १ ॥

(गुग्गुलु रूपी) भौरा (प्रभु की अद्वैतमयी) गुग्गुलु की बास लेता है, (जिसके लिए समस्त) तरवर फूले रहते हैं और (समस्त) बन हरे-भरे बने रहते हैं । [तात्पर्य यह है कि उसे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ता है] ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हरी) आप ही माया (कमला है) और आप ही (उस माया का) कंत—स्वामी है । (गुरु के) शब्द की स्थापना करके आप ही उसमें आनन्द करता है ॥ २ ॥

(प्रभु) आप ही बछड़ा है, आप ही गाय और आप ही दूध है, शरीर रूपी मन्दिर का आप ही खंभा है ॥ ३ ॥

(हरी) आप ही करनी और आप ही (उस करनी को) करनेवाला है । गुरु के उपदेश द्वारा आप ही विचार भी करता है ॥ ४ ॥

(हे प्रभु), हे कर्ता पुख, तू (सृष्टि) रच-रच कर, (उसकी) देखभाल करता है और अगणित जीवों की ज्योति को आसरा देता है ॥ ५ ॥

(हे प्रभु), तू गुणों का गम्भीर सागर है । तू कुल-रहित, निरंजन (माया से परे) और महान् हीरा है ॥ ६ ॥

(हे स्वामी), तू आप ही कर्ता है, और करने योग्य (कर्म भी) है । हे राजन्, तू निष्केवल है और तेरे (सभी) लोग (प्रजा) सुखी हैं ॥ ७ ॥

नानक हरि-नाम के स्वाद में तृप्त होता है । प्रियतम हरी और गुरु के बिना जन्म व्यर्थ है ॥ ८ ॥ ७ ॥

१ओ सतिगुर प्रसादि ॥ बसंत हिंडोलु, घर २

[८]

नउ सत खडवहू तीनि चारि करि महलति चारि बहाली ।

चारे बोवै चहु हथि दोए एका एकी वारी ॥१॥

मिहरवान मधुसूदन माधो ऐसी सकति तुम्हारी ॥१॥ रहाउ ॥

घरि घरि लसकरु पावकु तेरा धरमु करे सिकदारी ।

धरती देग मिलै इक बेरा भागु तेरा भंडारी ॥२॥

नासाबूरु होवै फिरि मंगै नारदु करे खुमारी ।

लबु अघेरा बंदोखाना अउगुण पैरि लुहारी ॥३॥

पूंजी मार पवै नित मुदगर पापु करे फोटवारी ।

भावै खंगा भावै मंदा जैसी नदरि तुम्हारी ॥४॥

छादि पुरख कउ अलहु कहीऐ सेखा छाई वारी ।

देवल देवतिआ करु लागी ऐसी कीरति जाली ॥५॥

कूजा बांग निवाज मुसला नील रूप बनवारी ।

घरि घरि मीआ सभनां जीआं बोली अवर तुमारी ॥६॥

जे तू मीर महीपति साहिबु कुबरति कउण हमारी ।

चारे कुंट सलामु करहिगे घरि घरि सिफति तुम्हारी ॥७॥

तीरथ सिमृति पुंन दान किछु लाहा मिलै दिहाड़ी ।

नानक नामु मिलै बडिआई मेका घड़ी सम्हाली ॥८॥१॥८॥

(हे प्रभु, तूने) नी खण्ड, सप्त दीप, चौदह भुवन, तीन लोक, चार युग रच कर चार युगों की अवधि में बँटा दिया है । चारों वेद के दीपक चारों युगों में अपनी-अपनी वारी से से प्रकाश करते हैं ॥ १ ॥

हे मेहरवान, मधुसूदन, माधव तेरी इस प्रकार की शक्ति (सचमुच बड़ी विनक्षण और अद्भुत है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥

प्रत्येक शरीर में (स्थित) पावक तेरा लवकर है और घमंराज तेरी सरदारी (नौकरी) करते हैं । पृथ्वी देग है, जिससे एक बार ही सब कुछ मिलता है और तेरा (निर्मित) भाग्य-भाग्यदार (सबके लिए) बँटता है ॥ २ ॥

(मनुष्य हरी के यहाँ से बहुत कुछ पाता है, किन्तु वह संतुष्ट नहीं होता और) बेसब्र होकर फिर माँगता है; नारद (के समान चलायमान मन, मनुष्य को) नष्ट करता है । लालच ग्रंथकार युक्त बंदोखाना है और पैरों में अवगुणों की बेड़ी पड़ती है ॥ ३ ॥

(यमदूतों के) मुद्गर की नित्य मार पड़नी ही (पापियों की) पूँजी है और पाप (उनकी) कोतवाली करता है । (हे प्रभु, यदि तुझे) रुचे तो अच्छा बना देता है, (और यदि तुझे रुचे तो) मंद बना देता है; (यह सब तेरी) दृष्टि का (ही परिणाम है) ॥ ४ ॥

(अब) शेषों—मुसलमानों की भ्रमलदारी हो गई है, (जिसे वे) आदि पुरुष (परमात्मा को) 'अल्लाह' नाम से संबोधित करने लगे हैं । (अब) मन्दिरों और देवताओं पर कर लग गए हैं; इसी प्रकार का रिवाज चल पड़ा है ॥ ५ ॥

अज्ञान का स्वर सुनाई पड़ता है, मुसल्ले पर नमाज (पड़ी जाती है) और बनवारी (हरी) का स्वरूप भी नीलवर्ण का हो गया है । [मुगलों के राज्य में सभी कर्मचारीगण नीले वस्त्र पहनते थे] । घर-घर में 'मियां मियां' होने लगा है और सभी जीवों (यहाँ लोगों का तात्पर्य है) की बोलियाँ भी बदल गई हैं ॥ ६ ॥

(हे हरी), तू मालिक, महोपति और साहब है, (यदि तू ने उपयुक्त वस्तुएं दिखा दी हैं), तो उसमें हमारी क्या शक्ति चल सकती है ? (अब) चारों दिशाओं में सलाम चल पड़ा है, और घर-घर में (मुगलों की) प्रशंसा चल पड़ी है ॥ ७ ॥

हे नानक, तीर्थदिकों में जो कुछ लाभ मजदूरी के तौर पर मिलता था, वह एक घड़ी के स्मरण में मिल गया है, (इस प्रकार) नाम से बड़ाई प्राप्त हो गई है ॥ १ ॥ ८ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूर्ति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु सारंग, महला १, चउादे, घर १

सबद

[१]

अपने ठाकुर की हउ बेरी ।
चरन गहे जगजीवन प्रभ के हउमै मारि निबेरी ॥१॥ रहाउ ॥
पूरन परम जोनि परमेसर प्रीतम प्रान हमारे ॥
मोहन मोहि लिखा मनु मेरा समझसि सबदु बीषारे ॥१॥
मनमुख हीन होछी मनि भूठी मनि तनि पीर सरीरे ।
जब की राम रंगीले राती राम जपत मन पीरे ॥२॥
हउमै छोडि भई बैरागनि तब साची सुरति समानी ।
अकुल निरंजन सिउ मनु मानिआ बिसरी साज सुकानी ॥३॥
भूत भविष्य नाही तुम जैसे मेरे प्रीतम प्रान अघारा ।
हरि कै नामि रती सोहामनि नानक राम भतारा ॥४॥१॥

मैं अपने स्वामी (हरी) की मेविका हूँ । मैंने अपने प्रभु, जगत् के जीवन की शरणाग
पकड़ी (और प्रभु ने मेरे) अहंकार को मार कर समाप्त कर दिया ॥१॥ रहाउ ॥

परमेश्वर पूर्ण और परम ज्योतिस्वरूप है; वह प्रियतम हमारा प्राण है । मोहन (हरी)
ने मेरा मन मोह लिया है; (गुरु के) शब्द द्वारा विचार करके (मन उसे) समझता है ॥१॥

मनमुख हीन, ओछी और भूठी बुद्धिवाला है, (उसके) तन, मन और (समस्त)
शरीर में पीड़ा ही पीड़ा होती रहती है । जब से (मैं) रंगीले राम में अनुरक्त हो गई हूँ,
(तब से) 'राम नाम' जपने लगी हूँ और (मेरा) मन चैर्यशील हो गया है ॥२॥

(जब से मैं) अहंकार छोड़कर बैरागिनी हो गई हूँ, तब से मैं (हरी की) सच्ची
सुरति में समा गई हूँ । (मेरा) मन कुल-रहित, निरंजन (हरी) से मान गया है; और अब
(सारी) लोकलज्जा भूल गई हूँ ॥३॥

हे मेरे प्रियतम, प्राणधार तेरे समान भूत-भविष्य मे और कोई नहीं है । हे नानक, (मैं) हरि के नाम मे अनुरक्त हूँ और पनि राम की मुहागिनी हूँ ॥४॥१॥

[२]

हरि बिनु किउ रहीऐ दुखु बिआपै ।
जिहवा सादु न फोकी रम बिनु बिनु प्रभ कालु संतापै ॥१॥ रहाउ ॥
जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआमी ।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ जल रमि कमल बिगासी ॥१॥
ऊनवि घनहनु गरजे बरसै कोकिल मोर बैरागी ।
तरवर बिरख बिहंग भुइअगम धरि पिर धन सोहागै ॥२॥
कुचिल बुरुषि कुनारि तुलखनी पिर का सहजु न जानिआ ।
हरि रस रंगि रमन नही नृपती दुरमति दू न समानिआ ॥३॥
आइ न जावै ना दुखु पावै ना दुख दरदु सगरे ।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीरे ॥४॥२॥

हरि के बिना (भना) किस प्रकार रहा जाय ? (बिना हरी के अत्यधिक) दुःख व्याप्त हो रहा है । (हरि कबी) रम के बिना, जिह्वा में स्वाद नहीं रहता, (और वह) फोकी रहती है, बिना प्रभु के काल सताप देता है ॥१॥ रहाउ ॥

जब तक प्रियतम का दर्शन और रस नहीं हो जाता, तब तक भूख और प्यास (बनी रहती है) । (प्रभु का) दर्शन करने ही मन मान जाता है (शान्त हो जाता है) (और जीवात्मा इस प्रकार प्रकुलित हो जाती है, जिस प्रकार) जल में रसयुक्त कमल खिल जाता है ॥१॥

बादल झुककर गरजते-बरसते हैं, (जिसमें) कोयलों और मोरों में प्रेम उत्पन्न होता है । तरवर, बैल [बिरख < संस्कृत वृषभ], पक्षी, सर्प आदि (वर्षा ऋतु के आगमन से जिस प्रकार आनन्दित हो जाते हैं, उसी प्रकार), जिनके घर में पति हैं, वह मुहागिनी स्त्री आनन्दित होती है ॥२॥

कुचिल (गधे), कुरुपिण्णी, बुरी तथा कुलक्षणी स्त्री प्रियतम (हरी) के स्वभाव को नहीं जानती । जिसकी जीभ हरि-रस के प्रेम में तृप्त नहीं होकर वह दुःखिनी दुखी मे पड़ी रहती है ॥३॥

(जो हरि-रस में आनन्दित है), वह न (कही) आता है और न जाता है, (वह) दुःख भी नहीं पाता; (उसके) शरीर में दुःख-दाग्द्वि (का निवास) नहीं रहता । नानक कहता है (कि जीवात्मा रूपी स्त्री) प्रभु के सान्निध्य से सहज सुखवाली हो जाती है, प्रभु को देख कर (उसका) मन धैर्यवान् हो जाता है ॥४॥२॥

[३]

दूरि नाही मेरो प्रभु पिआरा ।

सतिगुरि बचनि मेरो मनु मानिआ हरि पाए प्रान अघारा ॥१॥ रहाउ ॥

इन बिधि हरि मिलोऐ वर कामनि धन सोहागु पिघारी ।
जाति वरन कुल सहसा जूका गुरमति सबदि बीचारी ॥१॥
जिसु मनु मानै अभिमानु न ताकउ हिंसा लोभु बिसारे ।
सहजि रबै वरु कामणि पिर की गुरमुखि रंगि सवारे ॥२॥
जारहु ऐसी प्रीति कुटुंब सनबधी माइआ मोहु पसारी ।
जिसु अंतरि प्रीति राम रसु नाही दुबिधा करम बिकारी ॥३॥
अंतरि रतन पदारथ हित कौ दुरै न लाल पिघारी ।
नानक गुरमुखि नामु अमोलकु जुगि जुगि अंतरि धारी ॥४॥३॥

मेरा प्यारा प्रभु (मुझसे) दूर नहीं है । सद्गुण के वचन से मेरा मन मान गया (शान्त हो गया) और मैंने प्राणाधार (हरी) को प्राप्त कर लिया ॥१॥ रहाउ ॥

इस विधि हरि रूपी वर से (जीवात्मा रूपी) स्त्री मिलती है, (उस) प्रियतमा का सौभाग्य धन्य है । गुरु के द्वारा शब्द पर विचार करने से जाति, वर्ण, कुल (आदि) के संशय, भ्रम समाप्त हो जाते हैं ॥१॥

जिसका मन (हरी में) मान जाना है, उसे अभिमान नहीं होता और वह हिंसा तथा लोभ भूल जाता है । पति की स्त्री (मुहागिनी) गुरु द्वारा अपने आप को प्रेम में मँवार कर अपने हरी रूपी वर को स्वाभाविक ही मानती है ॥२॥

(हे साधक), कुटुम्ब-संबंधी माया-मोह के प्रसङ्गवाली प्रीति को जला डाल । जिसके भीतर राम-रस (संबंधी) प्रीति नहीं है, उसके किए हुए कर्म दुबिधा वाले होते हैं, (इसीलिए) बेकार होते हैं ॥३॥

जिसके अन्तर्गत प्रेम-पदारथ है, वह लाल (प्रियतम) की प्यारी (स्त्री) छिपती नहीं । नानक कहता है कि ऐसी (जीवात्मा रूपी स्त्री) गुरु द्वारा दिए गए अमूल्य हरि-नाम को युग-युगान्तरो के लिए अपने अन्त करण में धारण कर लेती है ॥४॥३॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु सारंग महला १, धरु १

असटपदीआं

[१]

हरि बिनु किउ जीवा मेरी माई ।
जै जगदीस तेरा जसु जाचउ मे हरि बिनु रहनु न जाई ॥१॥ रहाउ ॥
हरि का पिघास पिघासो कामनि बेखउ रेनि सवाई ॥
लौधर नाथ मेरा मनु लोना प्रभु जानै पोर पराई ॥ ॥
गणत सरीरि पोर है हरि बिनु गुर सबदी हरि पाई ।
होहु बइघालु कृपा करि हरि जीउ हरि मिउ रहां समाई ॥२॥

ऐसी रबत रबहु मन मेरे हरि चरणी चितु लाई ॥
 बिसम भए गुण गाइ मनोहर निरभउ सहजि समाई ॥३॥
 हिरदै नामु सवा धुनि निहचल घटै न कीमति पाई ।
 बिनु नावै सभु कोई निरधनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥४॥
 प्रीतम प्रान भए सुनि सजनी दूत मुए बिलु खाई ।
 जब की उपजी तब की तैसो रंगल भई मनि भाई ॥५॥
 सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवां हरि गुन गाई ।
 गुर कै सबदि रता बैरागी निजघरि ताड़ी लाई ॥६॥
 सुध रस नामु महारसु मोठा निजघरि तनु गुसाई ।
 तह ही मनु जह ही तै राखिआ ऐसो गुरमति पाई ॥७॥
 सनक सनादि ब्रह्मादि इंद्रादिक भगति रसे बनिआई ।
 नानक हरि बिनु घरो न जीवा हरि का नामु बडाई ॥८॥१॥

हे मेरी माँ, (मै) हरि के बिना किस प्रकार जिऊँ ? (हे) जगदीश, तेरी जय हो, (मै तेरे) यश की याचना करता हूँ; हरि के बिना (मुझसे) रहा नहीं जाता ॥१॥ रहाउ ॥
 हरि (के प्रेम की) प्यास में, (मै जीवात्मा रूपी) स्त्री प्यासी हूँ और समस्त (जीवन रूपी) रात्रि भर (उसकी) प्रतीक्षा करती हूँ । श्रोधर (हरी) तथा नाथ में मेरा मन लीन हो गया है, (मेरा) प्रभु पराई पीडा जानता है, (क्योंकि वह घट-घट-वामी है) ॥१॥

हरि के बिना शरीर में चिन्ता [गणत = हिसाब, गणना, चिन्ता] और पीडा है; गुरु के शब्द द्वारा (मैने) हरी को पा लिया है । हे हरी जो, कृपा करके (मेरे ऊपर) दयानु हो जा, (ताकि मै) तुझ में युक्त हो जाऊँ ॥२॥

हे मेरे मन, ऐसी रहनी रह कि हरि के चरणों में चित्त लगा रहे । मनोहर (हरी) के गुणों को गा कर मै आनन्दित हो गया हूँ और सहजावस्था (मे स्थित होकर) निर्भय हो गया हूँ ॥३॥

(मेरे) हृदय में हरिनाम की निश्चल लगन (धुनि) सदैव लगी रहती है, (यह लगन) न तो घटती है और न इसका मूल्य ही पाया जा सकता है । बिना नाम के सभी कोई निधन है—सद्गुरु ने यह समझ (भलीभाँति) समझा दी है ॥४॥

हे सखी (सजनी) मुन, हरी मेरे प्राण-प्रियतम हो गए हैं, (जिसके फलस्वरूप कामादिक) दूत विष खा कर मर गए हैं; [अर्थात् हरी के साक्षात्कार से कामादिक नष्ट हो गए हैं] । जितनी प्रीति उत्पन्न हुई, उतनी ही रही, (उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई) । (मैं) प्रेम के रंग में मन से रंग गई हूँ ॥५॥

सदैव सहज-समाधि लगी रहती है; हरि में ही एकनिष्ठ धारणा (लिव) लगी रहती है और जीव (प्राण) हरी का ही गुणगान करते हैं । मैं (सासारिक विषयों से) वैराग्यवान् होकर, गुरु के शब्दों में अनुरक्त होकर (अपने) आत्मस्वरूपी घर में ताड़ी—ध्यान लगाए हूँ ॥६॥

शुद्ध रसवाला नाम (मुझे अत्यधिक) मीठा प्रतीत हुआ, (क्योंकि यह महान् रस है और इसी रस से सारी सृष्टि रसमयी है); (इस अनुभूति से) अपने आत्मस्वरूपी घर में तत्स्वरूप गोस्वामी (हरी) प्राप्त हो गया । (हे हरी) जहाँ पर तुने मन को रक्खा है, वही पर (वह) टिक गया है; (तात्पर्य यह कि हरी में मन स्थित हो गया है), गुरु के द्वारा (ब्राह्मी-स्थिति) प्राप्त हो गई है ॥७॥

सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार (ब्रह्मा के पुत्र), ब्रह्मा (विष्णु, महेश), इन्द्रादिक (देवतागण) हरि-भक्ति में लग गए, (जिससे उन सबों का हरी से) मिलाप हो गया । नानक कहता है कि मैं हरी के बिना (एक) घटो भी नहीं जी सकता, हरी का नाम ही (सच्ची) बड़ाई है ॥८॥१॥

[२]

हरि बिनु किउ धीरे मनु मेरा ।

कोटि कल्प के दुख बिनासन साधु दड़ाइ निबेरा ॥ रहाउ ॥

श्रोधु निवारि जले हउ ममता प्रेम सदा नउरंगी ।

अनभउ बिसरि गए प्रभु जाचिआ हरि निरमाइलु संगी ॥१॥

चंचल मति तिआगि भउ भंजन पाइआ एक सबदि लिव लागी ।

हरि रसु चाखि लूआ निवारी हरि मेलि लए बडभांगी ॥२॥

अभरत सिचि भए सुभर सर गुरमति साधु निहाला ।

मन रति नामि रते निहकेवल आदि जुगादि दइआला ॥३॥

मोहनि मोहि लीआ मनु मोरा बडे भाग लिव लागी ।

साधु बीचारि कलिबिख दुख काटे मनु निरमलु अनरागी ॥४॥

गहिर गंभीर सागर रतनागर अवर नही अन पूजा ।

सबदु बीचारि भरम भउ भजन अवरु न जानिआ दूजा ॥५॥

मनूआ मारि निरमलु पदु चीनिआ हरि रस रते अधिकाई ।

एकस बिनु मै अवरु न जानां सतिगुरि बूझ बुझाई ॥६॥

अगम अगोचरु अनाधु अजोनी गुरमति एको जानिआ ।

सुभर भरे नाही चितु डोलै मन ही ते मनु मानिआ ॥७॥

गुरपरसादी अकथउ कथोए कहउ कहावै सोई ।

नानक दीन दइआल हमारे अवरु न जानिआ कोई ॥८॥२॥

हरि के बिना मेरा मन किस प्रकार धैर्य धारण करे ? (वह हरी) करोड़ों कल्पों के दुःखों का नाश करनेवाला है और सत्य को दृढ़ करा कर मुक्त करनेवाला है ॥१॥ रहाउ ॥

(हरि-प्राप्ति से) श्रोध निवृत्त हो गया, जिससे अहंता और ममता (की भावना) दग्ध हो गई और शाश्वत नवीन (नवरंगी) प्रेम की प्राप्ति हो गई । (हरी के अतिरिक्त) अन्य भय विस्मृत हो गए, प्रभु की याचना से निर्मल हरी को संगी (के रूप में प्राप्त कर लिया) ॥१॥

चंचल बुद्धि के त्याग से भय को नष्ट करनेवाले (निर्भय हरी) को प्राप्त कर लिया; (अब) एक शब्द—नाम में लिब (एकनिष्ठ धारणा) लग गई है । हरि-रस का आस्वादन करके (मैंने) (सात्त्विक) तृप्ता निवृत्त कर दी, (मुझ) बड़भागी को हरी ने अपने में मिला लिया ॥२॥

रिक्त (सरोवर नाम कृपी अमृत-जल से) सींचे जा कर लबालब भरे सरोवर हो गए । गुरु के द्वारा सत्य का दर्शन कर लिया । मन की प्रीति (दिखी प्रेम) में निष्केवल (हरी के) प्रेम में (मैं) रंग गया हूँ । (हरी) आदि युगों (युगान्तरो) से दयालु (ही रहा है) ॥३॥

मोहन (हरी) ने मेरा मन मोह लिया है, बड़े भाग्य से (उसमें) लिब (एकनिष्ठ धारणा) लग गई है । सत्य (हरी) को विचार कर कल्मषों (पापों) एवं दुःखों को (मैंने) काट दिया है और (मेरा) मन निर्मल (हरी) में अनुरक्त हो गया है ॥४॥

(हरी ही) रत्नों की खाने का गढ़ और गभीर समुद्र है, (हरी के अतिरिक्त) किसी और तथा अन्य की पूजा (मैंने) नहीं की । (गुरु के) शब्दों पर विचार करके भ्रम तथा भय को दूर करनेवाले (हरी) को ही पहचाना, और किसी को नहीं पहचाना ॥५॥

(अहंकारयुक्त) मन को मार कर (परमात्मा के) निर्मल-पद को पहचान लिया और हरि-रस में अत्यधिक अनुरक्त हो गया । एक परमात्मा के अतिरिक्त मैंने किसी और को नहीं जाना, सद्गुरु ने ही यह समझ समझाई ॥६॥

(मैंने) गुरु द्वारा अग्रम, अगोचर, जिसका कोई नाथ न हो (सर्व-स्वतंत्र) अयोनि, और एक (हरी) को जान लिया । (अब मेरा हृदय-रूपी सरोवर हरि के अमृत-जल से) पूर्ण रूप से भर गया है, (जिससे) चित्त चलायमान नहीं होता और (ज्योतिर्मय) मन से (ग्रहंकारी) मन मान गया है ॥७॥

गुरु की कृपा से अकवनीय (परमात्म-तत्त्व) का कथन होने लगा, (वह प्रभु जो कुछ भी मुझमें) कहलाता है, वही कहता हूँ । नानक कहता है कि दीन-दयालु (हरी) ही हमारा है; (उमे छोड़कर मैंने) किसी और को नहीं जाना ॥८॥२॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सारंग की वार, महला १,

राइ महमे हसने की धुनि

सलोक : न भोजै रागो नादी बेदि ।

न भोजै सुरतो गिआनी जोगि । न भोजै सोगी कीतै रोजि ॥

न भोजै रूपी माली रगि । न भोजै तीरथि भविऐ नंगि ॥

न भोजै दातों कीतै पुनि । न भोजै बाहरि बेठिआ सुनि ॥

न भोजै भेड़ि मरहि भिड़ि मूर । न भोजै केते होबहि धूड़ि ॥

लेखा लिखोऐ मन कै भाइ । नानक भोजै साचै नाइ ॥१॥

नव छिग्र खट का करे बीचार । निसि दिन उच्चरै भार अठार ॥

तिनि भी अंतु न पाइआ तोहि । नाम बिहूण मुक्ति किउ होइ ॥

नाभि वसत ब्रह्मे अंतु न जाणिआ । गुरमुखि नानक नाम पछाणिआ ॥२॥

विशेष : महमा और हसना कागडे के दो राजपूत सरदार थे । एक बार हसने ने घोड़े से महमे को अकबर बादशाह द्वारा कैद करा दिया । किन्तु महमे ने अपने शौर्य-प्रदर्शन से अकबर बादशाह को प्रसन्न कर लिया । अकबर पाकर फौज लेकर उसने सहने के ऊपर आक्रमण कर दिया । दोनों में परस्पर बहुत देर तक द्वन्द्व-युद्ध होता रहा । अंत में महमे की विजय हुई । चारणो ने इस द्वन्द्व-युद्ध पर कविताएँ रची । इस बार के गाए जाने का ढंग निम्नलिखित है—

‘महमा हसना राजपूत राइ भारे भट्टी

हसने बेईमानगी नान महमे बट्टी’

संलोक : अर्थ : (हरी) वेदों के रागों और नाद (स्वर) से प्रसन्न नहीं होता, न तो सुरति से, न शान से और न योग से ही । न तो (वह) नित्य शोक करने से प्रसन्न होता है और न रूप, धन-माल और आनन्द-कैलि से ही । न तो (वह) तीर्थस्थानों में नागों के रूप में भ्रमण करने से प्रसन्न होता है और न दान-पुण्य करने से ही । (हरी) न तो बाहर (जाकर) शून्य-समाधि लगाने में प्रसन्न होता है और न युद्धस्थल में दूरवीरों के साथ लड़कर मरने से ही । (प्रभु) कितनों के धूल में होने से भी नहीं प्रसन्न होता है । मन की अवस्था के अनुसार (कर्मों का) लेखा लिखा जाता है, [तात्पर्य यह कि हमारे भले और बुरे होने की कसौटी विशिष्ट कर्मों का सम्पादन नहीं है, बल्कि भले और बुरे की कसौटी मन की शुभ अवस्था अशुभ भावना है] । नानक कहता है कि प्रभु सच्चे नाम के (स्मरण) से प्रसन्न होता है ॥१॥

(चाहे कोई) नव व्याकरणों, छः शास्त्रों तथा छः वेदाङ्गों—(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) का (नित्य) विचार करे (अथवा) अर्हानिश अठारह (पर्वों के) भार वाले (महाभारत) का उच्चारण करे—पाठ करे, (किन्तु) वह तैरा अन्त नहीं प्राप्त कर सके । (भला) नाम के बिना कैसे मुक्ति हो सकती है ? (विष्णु की) नाभि (से निकले हुए कमल) में निवास करते हुए, ब्रह्मा (परब्रह्म का) अन्त न जान सके । गुरु के उपदेश द्वारा नानक ने नाम-तत्त्व को पहचान लिया ॥२॥

पड़ड़ी : आपे आपि निरजना जिनि आपु उपाइआ ।

आपे खेलु रचाइआनु सभु जगतु सबाइआ ॥

त्रैगुण आपि सिरजिअनु माइआ मोहु वधाइआ ।

गुर परसावी उबरे जिन भाणा भाइआ ॥

नानक सचु बरतवा सभ सचि समाइआ ॥१॥

पड़ड़ी : वह निरंजन (माया से रहित हरी) आप ही आप है और उसी ने अपने आप को (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न किया है । (प्रभु ने) आप ही (सृष्टि रूपी) खेल की रचना की है; सारा जगत् (उसी की रचना है ।) उसी प्रभु ने त्रिगुणों—सत्त्व, रज तथा तम—की सृष्टि की, (और उन्हीं तीनों गुणों के द्वारा) माया के मोह की वृद्धि की । जिन्हें (परमात्मा का) हुक्म अच्छा लग गया, (वे) गुरु की कृपा से संसार-सागर से तर गए । नानक कहता है कि (सभी स्थानों में) सत्य (परमात्मा) बरत रहा है और सभी स्थानों में वह व्याप्त है ॥१॥

सलोकु : जिनसि यापि जीआं कउ भेजै जिनसि यापि लै जावै ।
 आपे यापि उथापै आपे एते बेस करावै ॥
 जेते जीअ फिरहि अउधूनी आपे भिखिआ पावै ।
 लेले बोलए लेले चलए काइतु कीचहि दावे ॥
 मूल मति परवाएण एहो नानकु आखि सुणाए ।
 करणी ऊपरि होइ तपावसु जे को कहै कहाए ॥३॥

सलोकु : (प्रभु) भाति भाति के जीवो को बनाकर (संसार में) भेजता है; भाति भाति के जीवो की रचना और संहार (प्रभु ही करता है) । (इस प्रकार) सृजन और संहार (हरी ही) करना है; (मानूम नहीं वह) कितने वेश (जीवो को) धारण कराता है । अव-
 धूतो के रूप में जितने जीव फिर रहे हैं, (उनके रूप में प्रभु) आप ही भिक्षा पा रहा है ।
 (परमात्मा के लेखे —हिंसाव श्रवण गणना के अनुसार (जीवो का) बोलना और चलना होता है; (अनएव, हे प्राणी) क्यों लम्बे लम्बे दावे कर रहा है ? मूल मत—सिद्धान्त यह है (और यह) प्रामाणिक भी है और इसे नानक कह कर सुना रहा है, —“कहने को चाहे कोई कहे, कहावे, (किन्तु इन बातों में कोई सार नहीं है, सच्ची बात तो यह है कि) प्राणियों की करनी के ऊपर ही (हरी का) न्याय होना है” ॥३॥

पउड़ी : गुरुमुखि चलतु रचाइओतु गुण परगटी आइआ ।
 गुरुवाणी सद उचरै हरि मनि बसाइआ ॥
 सकति गई अमु कटिआ सिव जोति जगाइआ ।
 जिन कै पोतै पुनु है गुरु पुरखु भिलाइआ ॥
 नानक सहजे मिलि रहै हरि नामि समाइआ ॥२॥

पउड़ी : गुरुमुख ने यह कौतुक रच दिया कि (साधक के अन्तर्गत हरी के) गुण आ-
 आकर प्रकट होने लगें, (साधक शिष्य) सदैव गुरुवाणी का उच्चारण करता है और हरि को मन में बसा लेता है । (उसको) माया चली जाती है, भ्रम कट जाने है और शिव-ज्योति जाग्रत हो जाती है । जिनके पल्ले पुण्य है, (उन्हें) गुरु कर्तापुरुष (हरी से) मिला देता है । नानक कहता है कि (वे) सहज भाव से (परमात्मा से) मिल रहे हैं और हरी के नाम में समाहित हो रहे हैं ॥२॥

[उपर्युक्त पौड़ी में ‘बसाइआ’ ‘मिलाइआ’ आदि शब्द भूतकाल के हैं, किन्तु अर्थ की स्वाभाविकता के निमित्त उनका वर्तमान काल रूप में अर्थ लिखा गया है] ।

सलोकु : जुड़ि जुड़ि विछुड़े विछुड़ि जुड़े
 जीवि जीवि सुए सुए जीवे ॥
 केतिआ के बाप केतिआ के बेटे केते गुर चले हुए ।
 आगे पाछे गणत न आवै किआ जाती किआ हुरिण हुए ॥
 सभु करणा किरतु करि लिखोऐ करि करि करता करे करे ।
 मनमुखि मरोऐ गुरुमुखि तरीऐ नानक नदरी नदरि करे ॥४॥

सलोक : (जीव) जुड़-जुड़ कर बिछुड़ने हैं और बिछुड़-बिछुड़ कर जुड़ने हैं । (वे) जी-जी कर मरते हैं और मर-मर कर (फिर) जीने हैं (अर्थात् जन्म धारण करने हैं) । (सृष्टि-परम्परा का यह परिणाम है कि पुनर्जन्मवाद में) (न मालूम) कितने लोग कितनों के बाप हुए हैं और कितनों के बेटे, कितनों के गुरु हुए हैं और कितनों के चेले । (कितनी योनियों में जीव भटक चुका है, इसमें) आगे-पीछे की गणना नही हो सकती, किन किन जातियों (वर्णों में जीव पड़ चुका है और) अब उमे (किन किन वर्णों में) पड़ना है (उसे कोई नही जानता) । (मनुष्य की) सर्वा वरनी, किए हुए कर्मों के निम्ने अनुसार होती है । करता पुरुष (हरी) ही सब कुछ कर-कर के (फिर) करता है । नानक कहता है कि मनमुख तो (संसार के आवागमन के चक्र में) मरता रहता है, (किन्तु) गुरुमुख (समार-मागर में) तर जाता है, कृपादृष्टि करनेवाला (हरी ही) (जीवों पर) कृपादृष्टि करता है ॥४॥

पउड़ी : मनमुखि दूजा भरसु है दूजै लोभाइया ।
 कूडू कपटु कमावदे कूड़ो आलाइया ।
 पुत्र कलत्रु मोह हेतु है मभु दुखु सबाइया ।
 जम हरि बधे मारोअहि भरमहि भरमाइया ॥
 मनमुखि जनमु गवाइया नानक हरि भाइया ॥३॥

पउड़ी : मनमूखों में द्वैतभाव तथा भ्रम है, और वे इसी द्वैतभाव में (अहंनिश) लुब्ध रहते हैं । (वे) भूठ और कपट कमाते हैं तथा भूठ ही बोलते हैं । (उनका) सारा मोह और प्रेम पुत्र और स्त्री के प्रति है, (इसीलिए) (उन्हें) सभी प्रकार के दुःख होते हैं । (वे) यमराज के द्वार पर बांधे जा कर मारे जाते हैं और नित्य भ्रम में पड़कर भटकते रहते हैं । मन-मुख ने तो अपना (अमृत्यु) जन्म (जीवन्), (प्रपन्च में पड़ कर) गँवा दिया, किन्तु नानक तो हरी को अच्छा लग गया ॥३॥

सलोक : नानक तुलोअहि तोल जे जोउ पिछै पाईऐ ।
 इकसु न पुजहि बोल जे पूरे पूरा करि मिलै ।
 बडा आखणु भारा तोलु । होर हउनी मती हउले बोल ॥
 धरती पाणी परबन भार । किउ कंडे तोले सुनिआर ॥
 तोला मासा रतक पाइ । नानक पुछिआ देइ पुजाइ ॥
 मूरखु अंधिआ अंधी घातु । कहि कहि कहणु कहाइनि आपु ॥५॥
 आखणि अउखा सुनणि अउखा आखि न जापो आखि ।
 इकि आखि आखहि सबदु भाखहि अरघ उरध बिनु राति ॥
 जे किहु होइ त किहु दिसे जापै रूपु न जाति ।
 सभि कारण करता करे घट अउघट घट थापि ॥
 आखणि अउखा नानका आखि न जापै आखि ॥६॥

सलोक : नानक कहते हैं कि (वही व्यक्ति परमात्मा को) तोल सकता है, जो तराजू के एक पलड़े पर अपने आन्तरिक प्रेम को रख दे । (हरी की) स्तुति (बोल) की समता में कोई वस्तु नही पुज सकती, जिन्होंने पूर्ण हरी को पूर्ण रूप से अपने में मिला लिया है । (हरी

की) स्तुति का तौल बहुत बड़ा है, और (सासारिक) बुद्धि तथा वचन हल्के हैं । (हरी की) स्तुति का तौल धरती, जल तथा पर्वत के समान बजनी है । भला सोनार (कर्मकाण्डी) की (छोटी सी) तराजू पर वह किम प्रकार तोला जा सकता है ? (समस्त कर्मकाण्ड) तोले-मासे के समान हल्के मूल्य के हैं, किन्तु नानक कहते हैं कि सोनार (अर्थात् कर्मकाण्डी) उन्हें (तोले) मामे रूपी कर्मकाण्डी को) बड़ा बड़ा कर पुरा कर देता है, (परन्तु इससे होगा कुछ भी नहीं) । सासारिक मायाग्रस्त प्राणी) मूर्ख ओ अन्ये हैं, उनकी दौड भी अन्धी है, वे कह कह करके अपने आप को प्रकट करते हैं ॥५॥

(हरी का) कथन कठिन है (और उसका) श्रवण भी कठिन है, निरा कथन से अनुभव नहीं होता । कुछ लोग दिनरात यों-वया (अध-उरध) कथन करने हैं और वचन बोलते हैं । (किन्तु यदि हरी का) कोई स्वरूप हो, तो वह दिखाई पड़े, (उम प्रभु का कोई) स्वरूप अथवा जाति नहीं दिखाई पड़ती । कर्त्तापुरुष ही सभी कारणों को करता है, सीधे और दुर्गम (घट अउघट) स्थानों की स्थापना (बट) आप ही करता है । नानक कहता है कि (हरी के संबंध में) कथन करना बहुत कठिन है, निरा कथन से अनुभव नहीं होता ॥६॥

पउड़ी : नाइ सुणिए मनु रहसोए नामे साति आई ।
नाइ सुणिए मनु तृपतोए सभ दुख गवाई ॥
नाइ सुणिए नाउ उपजै नामे बडिआई ।
नामे ही सभ जाति पति नामे गति पाई ॥
गुरुमुखि नामु धिआईए नानक लिव लाई ॥४॥

पउड़ी : नाम का श्रवण करने (और उससे) मन में प्रसन्न होने से शान्ति आती है । नाम के श्रवण में मन तृप्त होता है और सभी दुःखों का नाश होता है । नाम के श्रवण से नाम (प्राप्त) होता है—प्रसिद्धि होती है और नाम से ही बड़ाई प्राप्त होती है । नाम में सारी जाति है (और उसी में सब) प्रतिष्ठा है, नाम से ही गति प्राप्त होती है । नानक कहता है कि गुरु के उपदेश द्वारा लिव लगा कर नाम का ध्यान कर ॥४॥

सलोकु : जूठि न रागीं जूठि न बेदीं । जूठि न चंद मूरज की भेदी ॥
जूठि न श्रंनी जूठि न नाई । जूठि न मीहु वरिऐ सभ थाई ॥
जूठि न धरती जूठि न पाणी । जूठि न पउरी माहि समाणी ॥
नानक निगुरिआ गुणु नाही कोइ । मुहि फेरिऐ मुहु जूठा होइ ॥७॥
नानक चुलीआ सुचोआ जे भरि जाली कोइ ।
सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ ॥
बहमण चुली संतोख की गिरही का सतु दान ।
राजे चुली निआव की पड़िआ सतु धिआनु ॥
पाणी बितु न धोपई मुखि पीते तिख जाइ ।
पाणी पिता जगत का फिरि पाणी सभु छाइ ॥८॥

सलोकु : रागों यथवा वेदों में जूठापन नहीं है । चद्रमा और सूर्य (के कारण ऋतुओं के छः) भेदों में भी जूठापन नहीं है । न तो अन्नादिक में जूठापन है और न स्नान में ही, (जैसा ना० बा० फा०—६२

कि जेनो लोग मानते हैं) । मेह के सभी स्यानों के बरसने में भी जूठापन नहीं है । धरती और जल भी जुटे (भ्रशुद्ध) नहीं हैं । पवन के व्याप्त होने में भी जूठापन नहीं है । गुणविहीन नानक में कोई भी गुण नहीं है । (हरी की ओर से) मुँह फेरने में—मनमुख होने में ही—मुँह जूठा होता है ॥७॥

नानक कहता है कि (वही पवित्रता के लिए) चुल्लू (कुल्ला) है, (जिससे अस्तरिक पवित्रता प्राप्त हो, जो कोई ऐसे चुल्लू को करता है, (वही पवित्र है) । श्रोता (पंडित) की पवित्रता ज्ञान (और विचार) है और योगी की पवित्रता समय है । ब्राह्मण की पवित्रता संतोष है और गृहस्थी की सच्चाई तथा दान । राजाओं की पवित्रता न्याय है और पढ़ने की (वास्तविक सुद्धि) सच्चा ध्यान है । मुख से पानी (पीने से) से तृषा (भले ही चली) जाय, किन्तु उससे चित्त निर्मल नहीं होता । पानी सारे जगत् का पिता (मूल कारण) है और अंत में पानी ही सारी (सृष्टि को) ब्या जाता है ॥८॥

पउड़ी : नाइ सुणिए सभ सिधि हे रिधि पिल्लै प्रावै ।
 नाइ सुणिए नउ निधि मिलै मन चिदिआ पावै ॥
 नाइ सुणिए संतोषु होइ कवला चरन धिआवै ।
 नाइ सुणिए सहजु ऊपजै सहजे सुलु पावै ॥
 गुरमती नाउ पाईए नानक गुरण गावै ॥५॥

पउड़ी : (हरि-)- नाम के श्रवण से सारी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ (प्राप्त होती हैं), (वे) पीछे पीछे चलती हैं । नाम के श्रवण से नवनिद्धियाँ एवं मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं । नाम सुनने से संतोष की प्राप्ति होती है और माया (कमला) (उसके) चरणों का ध्यान करने लगती है । नाम के सुनने से सहजावस्था की उत्पत्ति होती है, जिससे सहज—स्वाभाविक सुख प्राप्त होता है । गुरु के द्वारा नाम पाया जाता है, नानक तो नाम का गुणमान करता है ॥५॥

सलोक : दुख बिचि जमगु दुखि मरगु दुखि बरतगु संसारि ।
 दुलु दुलु अगै आखीऐ पढ़ि पढ़ि करहि पुकार ॥
 दुख कीआ पडा खुलहीआ सुलु न निकलिआ कोइ ।
 दुलु बिचि जीउ जलाइआ दुखोआ चलिआ रोइ ।
 नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ ।
 दुख कीआ अगो मारोअहि भी दुलु दारु होइ ॥६॥
 नानक दुनीआ भसु रंगु भसू हू भसु खेह ।
 भसो भसु कमावणी भी भसु भरीऐ बेह ॥
 जा जीउ बिचहु कढीऐ भसू भरिआ जाइ ।
 अगै लेखै मगिऐ होर दसूणी पाइ ॥१०॥

सलोक : (मनुष्य) दुःख में जन्मता है और दुःख ही में मरता है और दुःखों में ही संसार के मध्य व्यवहार करता है । पढ़ पढ़ कर के (पंडितगण) यही पुकार कर कहते हैं (कि इस संसार से चले जाने के बाद) अगै भी दुःख ही दुःख है । दुःख की गठियों के खुलने

पर भी (उनसे) कोई सुख नहीं निकलता, [तात्पर्य यह है कि दुःखों के बीच सुख की आशा रखना भ्रम मात्र है] । (इस संसार में) जब दुःखों में ही दग्ध किया गया और दुःखों में ही रोकर (यहाँ से) चला भी गया । नानक कहता है (कि परमात्मा की) स्तुति में रत होने से तब मन हरे हो जाते हैं । (जीव) दुःख की आग में मारा जाता है, पर ओषधि (दारू) भी दुःख ही होता है ॥६॥

नानक कहता है कि दुनिया भस्म (खाक) के रगवाली है; (दुनिया की सारी वस्तुएँ) भस्म और खाक (हो जानेवाली हैं) । (सासारिक) कमाई भी भस्म की भस्म है । (मनुष्य की) देह भी भस्म में ही भरी है, (क्योंकि) यदि जीव (प्राण) (शरीर) में से निकाल लिया जाय, तो शरीर में भस्म ही भस्म रह जातो है । आगे (हरी के यहाँ कर्मों का) हिमाव माँगने से (जीव अपने पाप-कर्मों के कारण) दशगुनी भस्म और पाता है ॥१०॥

पउड़ी : नाइ सुणिए सुखि संजमो जमु रेड़ि न आवै ।
नाइ सुणिए घटि चानरणा आन्हेरु गवावै ॥
नाइ सुणिए आपु बुझीए लाहा नाउ पावै !
नाइ सुणिए पाप कटीअहि निरमल सनु पावै
नानक नाइ सुणिए मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै ॥६॥

पउड़ी : नाम के श्रवण स पवित्रता और सयम (को प्राप्ति होती है) और यमराज समीप नहीं आते । नाम के श्रवण से हृदय में प्रकाश (ज्ञान) हो जाता है और अंधकार (अज्ञान) नष्ट हो जाता है । नाम के श्रवण से (साधक) अपने आप को (अपने आत्म स्वरूप को) समझ लेता है और नाम (रूपी धन) का लाभ पाता है । नाम के श्रवण से (समस्त) पाप कट जाते हैं और निर्मल सत्यस्वरूप (हरी) की प्राप्ति होती है । हे नानक, नाम के श्रवण से मुख उज्ज्वल होता है, (इसीलिए) सच्चा (शिष्य) गुरु के द्वारा नाम का ध्यान करता है ॥६॥

सलोक : घरि नाराइरु सभा नालि । पूज करे रखै नावालि ॥
कुंगू चंनरु कुल चडाए । पेरी पै पै बहुतु मनाए ॥
मारुआ मंगि मंगि पैन्हें लाइ । अंधी कंमी अंध सजाइ ॥
भुलिआ बेइ न मरदिआ रखै । अंधा भगड़ा अंधी सखै ॥११॥

सभे सुरती जोग सभि सभे बेद पुराण ।
सभे करणै तप सभि सभे गीत गिआन ॥
सभे बुधो सुधि सभि सभि तीरथ सभि धान ।
सभ पातिसाहीआ अमर सभि सभि खुसीआ सभि खान ॥
सभे माणस देव सभि सभे जोग विआन ।
सभे पुरीआ खंड सभि सभे जीअ जहान ॥
हुकमि चलाए आपणै करमो बहे कलाम ।
नानक सच्चा सखि नाई सनु सभा बीबानु ॥१२॥

सलोकु : (मूर्ति पूजक) अपने घर में नारायण (की मूर्ति), उनको सभा-सहित (रख देता है) ; (वह मूर्तियों को) स्नान कराकर रखता है (और उनकी) पूजा करता है । (वह उन पर) केशर-मिश्रित चंदन अर्पित करता है, (चढ़ाता है) (और उनके) चरणों में पड़कर अनेक भौंति से मनाता है । लोगों से माँग-माँग कर (वह) पहनता खाता है । अंधे कर्मों की सजा भी अन्धी (मिलती) है । (मूर्ति) न तो भूखों को भोजन देती है और न मरनेवालों की रक्षा ही करती है । (इस प्रकार मूर्तिपूजा) अंधों के साथ अंधे (अविवेक-पूर्ण) भगड़े (के समान है) ॥ ११ ॥

सभी श्रुतियों, सभी योगों, सभी वेद-पुराणों, सभी कर्मों, सभी तपों, सभी ज्ञान के गीतों, सभी वुद्धियों, सभी सुधियों, सभी तीर्थों, सभी स्थानों, सभी बादशाहियों, सभी शासनो (अमर—दृक्मन, शासन), सभी खुशियों, सभी भोजनों, सभी मनुष्यों, सभी देवताओं, सभी योग-ध्यानों, सभी पुरियों, सभी खण्डों तथा ससार के सभी जीवों पर (हरी अपना) हुक्म चलाता है, (सभी जीवों के) कर्मानुसार (हरी की) कलम चलती है । [गुरु नानक देव जी कर्मों का फल देनेवाला परमात्मा को मानते हैं । बौद्धों आदि के अनुसार उनकी दृष्टि में कर्म स्वतः फल नहीं देते] । हे नानक, (हरी) सच्चा है, (उसका) नाम भी सच्चा है, (उसकी) सभा और कचहरी भी सच्ची है ॥ १२ ॥

पउड़ी : नाइ मंनिऐ मुख ऊपजै नामे गति होई ।
नाइ मंनिऐ पति पाईऐ हिरदै हरि सोई ॥
नाइ मंनिऐ भवजलु लंघीऐ फिरि बिघनु न होई ।
नाइ मंनिऐ पंथु परगटा नामे सभ लोई ।
नानक सतिगुरि मिलिऐ नाउ मंनोऐ जिन देवे सोई ॥७॥

पउड़ी : नाम के मनन करने से सुख उत्पन्न होता है और नाम से ही गति (शुभ गति—मुक्ति) प्राप्त होती है । नाम के मनन से (लोक-परलोक, दोनों में ही) प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और हृदय में वह हरि (बस जाता) है । नाम के ऊपर मनन करने से मसार-सागर लांघ लिया जाता है और फिर (किसी प्रकार के) विघ्न नहीं होते । नाम के मनन करने से (सच्चा) मार्ग प्रकट हो जाता है और नाम में ही समस्त प्रकाश है । हे नानक, सद्गुरु से मिलकर (उसकी शिक्षा द्वारा) नाम का मनन कर, वही (सद्गुरु) उस नाम को प्रदान करता है ॥ ७ ॥

सलोकु : पुरोआ खंडा सिरि करे इक पैरि घिआए ।
पउरु मारि मनि जपु करे सिरु मुंडी तले बेइ ॥
तिसु उपरि ओहू टिक टिकै किसनो जोरु करेइ ।
किसनो कहीऐ नानका किसनो करता बेइ ।
हुकमि रहाए आपणै मूरखु आपु गणोइ ॥१३॥
हे हे आखां कोटि कोटि कोटी हू कोटि कोटि ।
आखू आखां सदा सदा कहहि न आबै तोटि ॥
ना हउ यकां न ठाकोआ एवड रखहि जोति ।
नानक चसिअहू तुल बिद उपरि आखरु दोसु ॥१४॥

सलोक : (चाहे कोई तीर्थयात्रा में विविध) पुरियो और खण्डो मे (अपना) सिर रखता फिरे (और चाहे कोई), एक पैर पर (स्थित होकर) ध्यान करे, (अथवा) पवन (के समान चंचल) मन को मार कर जप करे और सिर को गर्दन से अलग कर के नीचे (गिरा दे), (किन्तु इन सब कठोर साधनों से हरी द्रवीभूत नहीं होता) । किसके ऊपर (मनुष्य) अपनी टेक रखता है ? (तात्पर्य यह कि उपर्युक्त साधनों के ऊपर भरोसा रखना, समीचीन नहीं, क्योंकि उनके आश्रय तुच्छ हैं) । किसके ऊपर अपना जोर समझे ? हे नानक, किसे कहा जाय कि उसे कर्त्ता पुरुष देता है ? (इसका तात्पर्य यह है कि यह नहीं कहा जा सकता कि किसके ऊपर प्रसन्न होकर हरी अपने दान देता है) । (हरी) अपने ही हुगम में (सभी को) रखता है, किन्तु मूर्ख उसे अपना करके मानता है ॥ १३ ॥

यदि मैं करोड़ों बार कहूँ कि (हे हरी तू) है, (तू) है, (तो भी थोड़ा ही है, मैं सदैव मुंह से (तेरा) कथन करता रहूँ, (फिर भी तेरे वर्णन में किसी प्रकार की) कमी नहीं आ सकती, (क्योंकि तू वर्णनातीत है) । (यदि) मुझमें इतनी शक्ति (ज्योति) दे दे कि मैं वर्णन करने में थकूँ नहीं और न किसी के रोके रूकूँ, तो भी तेरा बहुत अल्प वर्णन कर सकता हूँ, क्योंकि तू कथन से परे है । हे नानक, जो यह कहता है कि मैंने थोड़े से कुछ अधिक कहा है, वह दोष करता है । [१५ बार आँख फड़कने को एक 'बिसा' कहते हैं, १५ बिस्से का एक 'बसा', २० बिस्से का एक पल होता है । ६० पल की एक घड़ी, और ७॥ घड़ी का एक पहर, आठ पहर का रात-दिन होता है । 'बिस्से' की तीसरे भाग को 'बुख' और 'बुख' के आधे भाग को बिंद कहा जाता है] ॥ १४ ॥

पउड़ी : नाइ मंनिए कुलु उधरै सभु कुटंबु सबाइआ ।
नाइ मनिऐ संगति उधरै जिन रिदै वसाइआ ॥
नाइ मनिऐ सुणि उधरै जिन रसन रसाइआ ।
नाइ मनिऐ दुख भुख गई जिन नामि चितु लाइआ ॥
नानक नामु तिनी सालाहिआ जिन गुरु मिलाइआ ॥८॥

पउड़ी : नाम के मनन से समस्त कुल और सारे कुटुम्ब का उद्धार हो जाता है । नाम के (ऊपर) मनन करने से उस संगति का उद्धार हो जाता है, जिसने अपने हृदय में (हरी को) बसा लिया है । जिन्होंने (नाम को) श्रवण करके, मनन द्वारा जीभ (नाम के द्वारा) रसमयी बना ली, उनका उद्धार हो गया । जिन्होंने मनन द्वारा नाम को अपने चित्त में धारण कर लिया, उनके दुःख और क्षुधा निवृत्त हो गई । नानक कहता है कि उन्होंने ही नाम का स्मरण किया है, जिन्हें गुरु का मिलाप हो गया है ॥ ८ ॥

सलोक : सभे रातो सभि दिह सभि थिती सभि वार ।
सभे रतो माह सभि सभि धरतीं सभि भार ॥
सभे पाणी पउण सभि सभि अगनी पाताल ।
सभे पुरीआ खंड सभि सभि लोअ लोअ आकार ॥
हुकमु न जापी केतड़ा कहि न सकोजै कार ।
आखहि थकहि आखि आखि करि सिफनीं बीवार ॥
तुण न पाइओ बपुड़ी नानकु कहै गवार ॥१५॥

अखों परणै जे फिरां देवां सभु आकारु ।
 पुछा गिआनो पंडितां पुछां बेद बीचार ॥
 पुछा देवां मारणसां जोध करहि अवतार ।
 सिध समाधी सभि सुणी जाइ देवां दरबारु ॥
 अगै सच्चा सचि नाइ निरभउ भै विगु सारु ।
 होर कचो मतो कनु पितु अंगिआ अंगु बीचारु ॥
 नानक करमी बंदगी नदरि लंघाए पारि । १६॥

संलोक : सभी रातों, सभी दिनों, सभी तिथियों, सभी वारों, सभी ऋतुओं, सभी महीनों, सारी पृथ्वियों, सारे पदार्थों (भार), समस्त जलों, सारे लोकों और समस्त आकारों (के ऊपर प्रभु का ही हुक्म है) । प्रभु का हुक्म, कितना बड़ा है, यह प्रतीत नहीं हो सकता, उसके कार्यों को भी नहीं कहा जा सकता । उसकी स्तुति तथा विचार कह-कहकर (लोग) थक जाते हैं, किन्तु हे नानक, फिर भी वे बेचारे गंवार (प्रभु की अनन्तता का पार) तृणमात्र भी नहीं पा सके ॥ १ ॥

आँखों का सहारा लेकर फिरने में सारे आकारों (मूर्तिमान वस्तुओं) को (मैंने) देख लिया । ज्ञानियों, पंडितों और वेदों के विचारों को भी पूछ लिया । देवताओं और मनुष्यों से भी पूछकर देख लिया; (वे लोग तो) योद्धाओं को अवतार बना देते हैं । सिद्धों की समाधि की भी सारी बातें सुन ली (और बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के) दरबारों को भी जाकर देख लिया, (किन्तु इन सब में कोई सार नहीं है) । आगे मच्छा (हरी) और उसका सत्य नाम ही रहता है (जेप वस्तुएँ यही का यही रह जाती हैं) ; (हरी ही) निर्भय है, वह भय से रहित है, (इसी से) श्रेष्ठ है । (हरी को छोड़कर) और बुद्धियाँ कच्छा, पोन्गो और अन्य हैं, तथा अन्य विचार भी अन्य ही हैं । हे नानक, (प्रभु की) बख्शीश द्वारा (उनकी) भक्ति—बंदगी तथा कृपादृष्टि ही पार लंघाती है ॥ १६ ॥

पउड़ी : नाइ मंनिऐ दुरमति गई मति परगटी आउआ ।
 नाउ मंनिऐ हउमै गई सभि रोग गवाइआ ॥
 नाइ मंनिऐ नामु ऊपजै सहजे सुलु पाइआ ।
 नाइ मंनिऐ सांति ऊपजै हरि मंनि वसाइआ ॥
 नानक नामु रंतनु है गुरमुखि हरि घिआइआ ॥६॥

पउड़ी : नाम के मनन से दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है और (शुभ तथा सात्विक) बुद्धि प्रकट होती है । नाम पर मनन करने से अहंभावना नष्ट हो जाती है, (जिससे) सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं । नाम पर मनन करने से (हृदय में) नाम उत्पन्न हो जाता है, जिससे सहज ही सुख प्राप्त होता है । नाम पर मनन करने के शान्ति उत्पन्न होती है और मन में हरि बसा लिया जाता है । हे नानक, नाम (वास्तविक) रत्न है और गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का ध्यान किया जाता है ।

[विशेष : 'गई', 'गवाइआ', 'पाइआ', 'वसाइआ', 'घिआइआ' आदि शब्द भूतकाल के हैं, किन्तु वर्तमान में प्रयोग करने से अर्थ में स्वाभाविकता अधिक आ जाती है] ॥ ६ ॥

सलोकु : होरु सरीकु होवे कोई तेरा तिसु अगै तुधु आखां ।
 तुधु अगै तुधु सालाही मे अंधे नाउ सुजाखा ।
 जेता आखणु साही सबदी भाखिआ भाइ सुभाई ।
 नानक बहुता एही आखणु सभ तेरी बडिआई ॥१७॥
 जां न सिआ किरा चाकरी जां जंमे किरा कार ।
 सभि कारण करता करे देखै वारो वार ॥
 जे चुपै जे मंगिऐ दाति करे दातार ॥
 इकु दाता सभि मंगते फिरि देखहि आकार ॥
 नानक एवै जाणीऐ जीवै देवणहार ॥१८॥

सलोकु : यदि कोई और तेरे समान (सरीक) हो, तो उसके आगे तेरा वर्गन कहूँ;
 (पर तेरे समान कोई और है ही नहीं, जिसके आगे मैं तेरा वर्गन कर सकूँ । अपने समान तू
 स्वयं ही है) । मैं तेरे सम्मुख तेरी प्रशंसा करता हूँ, (पर यज्ञ मभव नहीं है); मैं हूँ तो अंधा,
 किन्तु नाम 'सुन्दर आँखवाला' (सुजाखा) है । जो कुछ कहना होता है, वह सब शब्दों
 द्वारा ही होता है, कथन करना भी अपने भाव (प्रेम) और स्वभाव के अनुसार होता है ।
 हे नानक, बहुत कुछ कहने (का यही गारांश है कि) सब कुछ तेरी ही बड़ाई है ॥ १७ ॥

जब जीव का अस्तित्व नहीं था, तो वह कौन सी चाकरी—कार्य करता था और जब
 उसने जन्म ले लिया, तो भी वह क्या कर सकता है ? (तात्पर्य यह कि जीव के वश में कुछ
 भी नहीं है, सभी कुछ परमात्मा के अधीन है) । (अतएव यह समझना चाहिए कि) सभी
 सृष्टि (कारण) कर्त्ताधुरूप ही रचना है (और उन्हें रच कर) बार-बार (उनकी) देवभाल
 करता है । चाहे चुप रहा जाय (अथवा) चाहे माँगा जाय, वह दाता (प्रभु अपनी) भर्जी
 के अनुसार दान करता है । चाहे समस्त सृष्टि (आकार) धूम कर देख ले, (तो तुझे यही
 पता चलेगा कि) दाता एक है और सब उसमें माँगनेवाले हैं । (समस्त सृष्टि के पर्यटन
 करने पर) नानक को इतना ही पता लगता है कि दाता (हरी ही) है और वह चिरजीवी
 (शाश्वत तथा अटल) है ॥ १८ ॥

पउड़ी : नाइ मंनिऐ सुरति ऊपजै नामे मति होई ।
 नाइ मनिऐ गुण उवरै नामे सुखि सोई ॥
 नाइ मनिऐ भ्रमु कटोऐ फिरि दुखु न होई ।
 नाइ मंनिऐ सालाहोऐ पापां मति धोई ॥
 नानक पूरे गुर ते नाउ मनीऐ जिन बेवै सोई ॥१०॥

पउड़ी : नाम पर मनन करने से (हरी की) स्मृति (सुरति) उत्पन्न होती है और
 नाम से (सुंदर और सात्त्विक) बुद्धि (प्राप्त होती है) । नाम पर मनन करने से (हरी के)
 गुणों का उच्चारण होता है और नाम से ही सुख से सोना होता है । नाम पर मनन करने से
 (सारे) भ्रम कट जाते हैं, (जिससे) फिर दुःख नहीं होता । नाम के मनन से (हरी की)
 स्तुति होने लगती है और पापमयी बुद्धि धुल कर (पवित्र हो जाती है) । हे नानक, पूर्ण शुरु
 से ही नाम के ऊपर मनन किया जाता है, (वह नाम उन्हीं के द्वारा मनन किया जाता है),
 जिन्हें वह (हरी) दे देता है ॥१०॥

सलोक : सासत्र वेद पुराण पढ़ता । पुकारता अजाएता ॥
 जा बूझै तां सूझै सोई । नानक आखै कूक न होई ॥१६॥
 जा हउ तेरा तां सभु किछु मेरा हउ नाही तू होवहि ।
 आपे सकता आपे सुरता सकनी जगत् परोवहि ॥
 आपे भेजे आपे सदे रचना रचि रचि देखै ।
 नानक सचा सबी नाई सतु पवै धुरि लेखै ॥२०॥

सलोक : (अहंकारी व्यक्ति) वेदो, शास्त्रो और पुराणो को पढ़ता है । (वह यह) पुकारता है (कि मैंने वेदो-शास्त्रो को पढ़ा है), (पर अनुभव की दृष्टि से कुछ भी) नहीं जानता । जब (साधक परमात्म-तत्त्व को) बूझ लेता है, तो उसे (सब कुछ) सुझाई पड़ने लगता है । नानक कहता है (कि ज्ञानावस्था में) चिल्लाना नहीं रह जाता ॥१६॥

जब मैं तेरा (हो जाता हूँ), तो सभी कुछ मेरा हो जाता है, (क्योंकि चाहे मैं रहूँ या) न रहूँ, (पर) तू तो (सदैव) रहता है । (हे प्रभु), तू आप ही शक्तिशाली है और आप ही ज्ञानवान (सुरता=सुरति-स्मृति वाला; ज्ञानवान) है । तू अपनी शक्ति में (ममस्त) जगत् को पिरोये है । तू (जीवो को इस संसार में) आप ही भेजता है, और आप ही (उन्हें) बुला लेता है, तू (सारी) सृष्टि रच रचकर, उसे देखता रहता है—निगरानी करना रहता है । हे नानक, सच्चे नाम के कारण (प्रभु) सच्चा है, (जिनके भाग्य में) प्रारम्भ से ही लिखा रहता है, (वे ही) सत्य को पाते हैं ॥२०॥

पउड़ी : नामु निरंजन अलखु हे किउ लिखिआ जाई ।
 नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई ॥
 नामु निरंजन बरतदा रविआ सभ ठाई ।
 गुर पूरे ते पाईऐ हिरदै देइ दिखाई ॥
 नानक नदरी करमु होइ गुर मिलीऐ भाई ॥११॥

पउड़ी : (हे भाई, हरी का) नाम निरंजन (माया से रहित) और अलक्ष्य है, (यह) किस प्रकार लखा—देखा जाय ? (हरी का) निरंजन नाम (प्रत्येक जीव के) साथ है, (किन्तु) हे भाई, यह प्राप्त किस प्रकार किया जाय ? (हरी का) निरंजन नाम (सर्वत्र) बरत रहा है और सभी स्थानों में रम रहा है, (व्याप्त है) । पूर्ण गुरु में ही (यह नाम) पाया जाता है; वह (शिष्य के) हृदय में ही (नाम) दिवा देता है । नानक का कथन है कि हे भाई, (प्रभु की) कृपादृष्टि हो, सभी गुरु का मिलाप होता है ॥११॥

सलोक : कलि होई कुते सुही खाजु होआ सुरदार ।
 कुडु बोलि बोलि भउकणा चूका घरसु बीचाह ।
 जिन जीवंदिआ पति नही मुइआ सदी सोइ ।
 लिखिआ होवै नानक करता करे सु होइ ॥२१॥

रंन होईआ बोधोआ पुरस होए सईआद ।
 सीलु सजमु सुच भंनो लाणा लासु अहाजु ॥
 सरसु गइआ धरि आपरै पति उठि चली नालि ।
 नानक सचा एकु है अवरु न सचा भालि ॥२२॥

सलोकु :—कलियुग मे (लोग) कुत्ते के मुँहवाले हो गए है, और उनकी खाद्यवस्तु (खाज) मुरदे का मांस (मुरदार) हो गई है। [अर्थात् कलियुग मे लोग कुत्ते के समान लालची हो गए है और रिश्वत तथा बेईमानी से पैसे खाते है] । (वे) झूठ बोल बोल कर भूकते है ; (इस प्रकार) धर्म-सम्बन्धी (समस्त) विचार समाप्त हो चुके है। जिनकी पति (प्रतिष्ठा) जीवित रहते हुए नहीं है, मरने पर (उनकी) शोभा (सोइ) मन्द ही होती है। हे नानक, जो मत्थे मे लिखा होता, वही होता है और जो कर्त्तापुरुष करता है, वही होता है ॥२१॥

स्त्रियाँ मूर्ख हो गई है और पुरुष शिकारी (जालिम) । शील, संयम और पवित्रता मोड कर (लोग) खाद्य-अखाद्य खाने लगे है ; श्रम अथवा शरम [श्रम=संस्कृत, श्रम; फारसी शरम] (उठकर) अपने घर चली गई है; (उसके) साथ प्रतिष्ठा भी उठ कर चली गई है; (तात्पर्य यह है कि लोगो मे मे लज्जा और प्रतिष्ठा नष्ट हो गई है अथवा श्रम-उद्योग और प्रतिष्ठा की भावना लोगो से लुप्त हो चुकी है) । हे नानक, एक (हरी ही) सच्चा है, (हरी के अतिरिक्त) अन्य सत्य को मत खोज ॥२२॥

पड़ड़ी : बाहुरि भसम लेपन करे अंतरि गुबारी ।
 खिथा भोली बहु भेल करे दुरमति अहंकारी ॥
 साहिब सबदु न ऊचरै साइआ मोह पसारी ।
 अंतरि लालचु भरसु है भरमे गावारी ॥
 नानकु नामु न चेतई जूऐ बाजो हारी ॥१२॥

पड़ड़ी : (बाह्य योगी) बाहर तो (शरीर पर) भस्म की लेप करता है; (भस्म लगाता है), किन्तु अन्तःकरण—हृदय में (अज्ञानता के कारण घनघोर) अन्धकार है। (योगी) (बाहर से ता) कथा, भोली (आदि धारण करके) अनेक वेश बनाता है, (किन्तु भीतर से) दुर्बुद्धि और अहंकारयुक्त है। माया-मोह के प्रचार में (फँसने के कारण, वह) साहिब (परमात्मा) के नाम का उच्चारण नहीं करता। (उस बाह्य योगी के) भीतर—हृदय मे लालच और भ्रम है, (जिससे वह) गँवार—मूर्ख भटकता रहता है। नानक का कथन है कि वह नाम नहीं चेतता और (मनुष्य के जीवन की अमूल्य) बाजी, (सांसारिक प्रपंच रूपी) जूए मे हार जाता है ॥१२॥

सलोकु : लख सिउ प्रीति होबै लख जीवणु किआ लुतोआ किआ चाउ ।
 बिछुड़िआ बिसु होइ बिछोड़ा एक घड़ी महि जाइ ॥
 जे सउ बहिआ मिठा खाजै भी फिरि कउड़ा खाइ ॥
 मिठा खाधा जिति न आबै कउड़तणु धाइ जाइ ॥
 मिठा कउडा दोबे रोग । नानक अंति बिगुते भोग ॥

भल्लि भल्लि भल्लरणा भगड़ा भल्ल ।

भल्लि भल्लि जाहि भल्लहि तिन्ह पासि ॥२३॥

कापड़ु काठु रंगाइआ रांगि । घर गच कीते बागे बाग ॥

साब सहज करि भनु खेलाइआ । ते सह पासठु कहसु कहाइआ ।

मिठा करि कै कउड़ा खाइआ । तिनि कउड़े तनि रोगु जमाइआ ॥

जे फिरि मिठा पेड़े पाइ । तउ कउड़तरण चूकसि माइ ।

नानक गुरमुखि पावै सोइ । जिस नो प्रापति लिखिआ होइ ॥२४॥

ससोकु ; लाखों व्यक्तियों से प्रेम हो और लाखों (वर्ष का) जीवन हो, (किन्तु फिर भी) खुशियों और उमंगों (चाव) का क्या (मूल्य) है ? (ऐश्वर्यों के) बिछुड़ने से वियोग, का दुःख (विस) होता है और (सारी खुशियाँ) एक घड़ी में चली जाती है । चाहे सौ वर्षों तक मीठा खाया जाय, फिर भी (अन्त में) कड़ुवा खाना ही पड़ता है । (जब कड़ुवा खाना होता है), तो मीठे खाने की ओर चित्त नहीं जाता, (अर्थात् जब दुःखों को भोगना होता है, तो पूर्व के सुखों की स्मृति नहीं आती कि मैंने सुख भोगे हैं, तो दुःख भी मुझ ही को भोगना है) और बार-बार कड़ुवे की ओर ही दौड़ता है । (इस प्रकार) मीठे और कड़ुवे—सुख-दुःख दोनों ही रोग हैं । नानक का विचार है कि अन्त में भोगों के कारण (जीव) नष्ट होते हैं ; जो लोग झूठे ही बुका करते हैं, वे इसी प्रकार भल्ल भल्ल कर खप जाते हैं । (ऐसे व्यक्ति) भल्ल भल्ल कर नष्ट होते रहने हैं, (फिर भी विषयों की ओर) भल्ल मारने जाते हैं ॥ २३ ॥

कपड़ों और लकड़ियों (आदि) को रंगों से रंगा कर (कुरसियाँ आदि बहुत से सामान बनवा लिए) । मकान को जूते आदि से (ऐसा बनाया कि) सफेद हो सफेद (दिखलाई पड़ने लगा) । स्वादों और मुखों के बीच (अपने) मन को क्रीड़ा करते रहे और तुझ मालिक से कहते-कहाते रहे, (अर्थात् हरी से प्रेम करने के बजाय भगड़ा करते रहे) । कड़वी वस्तुओं (विषयों) को मीठा समझ कर खाते रहे; किन्तु उन कड़वी वस्तुओं (विषयों) के कारण शरीर में (नाना भाँति के) रोग संचित हो गए । यदि फिर (हरिनाम रूपी) मीठे वस्तु की प्राप्ति हो, तभी माया का कड़ुवापन (विषय-विकार) नष्ट हो सकता है, (अन्यथा नहीं) । हे नानक, उस वस्तु को गुरु की शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जाता है; जिसके भाग्य में लिखा होता है, (उसी को नाम रूपी मीठी वस्तु की) प्राप्ति होती है ॥२४॥

पउड़ी : जिन कै हरिदे मैलु कपटु हे बाहरु धोवाइआ ॥

कूड़ु कपटु कमावदे कूड़ु परगटी आइआ ॥

अंदरि होइ सु निकले नह छपे छपाइआ ।

कूड़े लालखि लपिआ फिरि जूनी पाइआ ।

नानक जो बोझे सो जाणया करतै लिखि पाइआ ॥१३॥

पउड़ी : जो (व्यक्ति) बाहर से तो खूब धुले-धुलाए है, किन्तु भीतर मैल और कपट से भरे हुए हैं, वे झूठ और कपट ही कमाते हैं (और अन्त में झूठ और कपट ही) आकर प्रकट

होते है । जो वस्तु भीतर होती है, वही बाहर आकर निकलती है; छिपाने से (कोई वस्तु) नहीं छिपती । (मनुष्य) झूठ और लालच में लग कर बारबार योनि के अन्नर्गत पड़ता है । है नानक, जो बोया जाता है, वही खाने को मिलता है, कर्तापुरुष के यहाँ यह सब लिया रहता है ॥१३॥

सलोक : बेडु पुकारे पुंनु पापु सुरग नरक का बीड ।
जो बीजै सो उगवै खांदा जाएँ जीउ ॥
गिग्रानु सलाहे बडा करि सचो सचा नाउ ।
सनु बीजै सनु उगवै दरगह पाईऐ थाउ ॥
बेडु वपारी गिग्रानु रासि करमी पलै होइ ।
नानक रासी बाहुरा लदि न चलिग्रा कोइ ॥२५॥

सलोक ; वेदों का कथन है कि पुण्य और पाप हो स्वर्ग तथा नरक के बीज हैं । जो बोया जाता है, वही उगता है, (जीव जो कुछ भी बोता है) वही उसे खाने को मिलता है । ज्ञान की की स्तुति महान् रूप में की जाती है, सत्य (परमात्मा) का सच्चा नाम है । सत्य के बोने से, सत्य ही उगता है और (हरी के) दरबार में सम्मान प्राप्त होता है । वेद तो (निरे) व्यापारी है, असली चीज तो ज्ञान है, (उस ज्ञान को) वेद अपनी पूँजी बनाकर बरतते हैं, ईश्वर की कृपा से ज्ञान प्राप्त होता है, (तात्पर्य यह है कि वेद में मुख्य वस्तु ब्रह्मज्ञान है, और वह परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है) । नानक का कथन है कि (ब्रह्मज्ञान रूपी) पूँजी के अतिरिक्त, (मनुष्य इस संसार से) कोई और वस्तु लाद कर नहीं जाता ॥ २५ ॥

पउड़ी : निमु बिरलु बहु संचीऐ अमृत रसु पाइआ ।
बिसीअरु मंत्रि बिसाहीऐ बहु दूधु पोआइआ ॥
मनमुलु अमिनु न भिजई पथरु नावाइआ ॥
बिबु महि अमृतु सिंचीऐ बिबु का फलु पाइआ ॥
नानक संगति मेलि हरि सभ बिबु लहि जाइआ ॥१४॥

पउड़ी : नीम के वृक्ष को बहुत सींचा जाय और, उसमें से चाहे अमृत रस ही पाया जाय, (किन्तु होता है, वह कड़ुवा ही) । (गारुड़) मंत्र के बल पर, यदि सर्प का विश्वास करके, (उसे) खूब दूध पिलाया जाय, (फिर भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता) । (इसी भाँति) मनमुख कोरे का कोरा हो रहता है, वह (उसी भाँति) नहीं भीजता, (जिस भाँति) पत्थर स्तान करने से, (नहीं भीजता) । विष (से पेठ) में चाहे अमृत ही डाल कर सींचा जाय, पर उसका फल विष ही प्राप्त होगा । नानक का विचार है कि सत्संगति द्वारा हरि की प्राप्ति से सारे विष नष्ट हो जाते हैं ॥१४॥

सलोक : मरणि न मूरतु पुछिआ पुछी थिति न बारु ।
इकनी लदिआ इकि लदि अले इकनी बधे भार ।
इकना होई साखली इकना होई सार ।
लसकर सलै वचामिआ छुटे बंक दुआर ।
नानक डेरी छारु की भो फिरि होई छार ॥२६॥

नानक डेरी डहि पई मिटो संदा कीटु ।

भीतरि चोर बहालिआ खोटु वे जीआ खोटु ॥२७॥

सलोकु : मरण न तो मुहूर्त पूछता है, न तिथि और न बार । [वह अपने समय पर आ ही जाता है, और जीव को लेकर चला जाता है] । कुछ ने तो अपना (माल-असबाब) लाद लिया, और कुछ लोग लाद कर चल दिए हैं और कुछ लोग अपना भार बाँध रहे हैं । कुछ तो (घोड़े के) साज समान संभाल चुके हैं और कुछ (अपने माल-असबाब की) खोज-खबर ले रहे हैं । लश्कर के साथ नगाड़े (बज चुके हैं) और सुन्दर (घर के) द्वार छूट चुके हैं । नानक का कथन है कि (मनुष्य का शरीर) पहले भी मिट्टी का ढेर था (और मर जाने पर भी) (मिट्टी का ढेर हो गया) ॥२६॥

नानक कहते हैं (कि मृत्यु के आने पर शरीर रूपी) मिट्टी का किला ढह कर मिट्टी का ढेर हो गया । (शरीर के किले के) भीतर (मन रूपी) चोर बैठा था, (अब उमका भी पता नहीं है) । (अतः), हे जीव, यह सब कुछ खोटा ही खोटा है ॥२७॥

पड़ड़ी : जिन अंदरि निंदा दुसदु है नक बढे नक बढाइआ ।

महा करुण दुखीऐ सदा काले मुह माइआ ॥

भलके उठि नित पर वरसु हिरहि हरि नाम चुराइआ ।

हरि जोड तिनको संगति मत करहु रखि लेहु हरि राइआ ॥

नानक पड़े किरति कमावदे मनमुखि वुख पाइआ ॥१५॥

पड़ड़ी : जिन व्यक्तियों के अन्तर्गत दुष्ट निन्दा (का वास) है, (उनकी) नाक कटनी है (और वे अपनी) नाक कटाते हैं । माया में (पड़कर), वे महा क्रूर और दुःखी होते हैं और उनका मुँह सदैव काला रहता है । नित्य प्रातःकाल उठकर (वे) दूसरों का द्रव्य चुराते हैं । (इन्होंने) हरि नाम को चुरा रखा है, (मुँह पर नहीं लाते), (अर्थात् हरि नाम मुँह में नहीं निकालते, उसे विसरा दिये हैं) । हे हरि जी, ऐसे व्यक्तियों का साथ (मुझे) न प्रदान कर, (हे प्रभु उन लोगों से) मेरी रक्षा कर ले । नानक का विचार है कि मनमुख पड़े हुए संस्कार के अनुसार कर्म करते हैं (और इसी से) दुःख पाते हैं ॥१५॥

सलोकु : धनवंता इवही कहै अवरो धन कड जाउ ।

नानक निरधनु तितु दिनि जितु दिनि बिसरै नाउ ॥२८॥

सूरज चड बिजोगि सभसै घटै आरजा ।

तनु मनु रता भोगि कोई हारै को जिएँ ।

सभु को भरिआ फूकि आखणि कहणि न थंम्होऐ ॥

नानक बैलै आपि फूक कडाए डहि पवै ॥२९॥

सलोकु : धनी (मायासक्त) व्यक्ति तो इस प्रकार कहता है कि मैं और धन लेने के लिए जाऊँ । पर नानक तो उस दिन अपने आप को निर्धन समझता है, जिस दिन (उसे) हरि का नाम विस्मृत हो जाय ॥२८॥

सूरज चढ़ने (से लेकर उसके) विच्छुने (डूबने) तक, (तात्पर्य यह कि सारा दिन) आयु घटती रहती है । (इस प्रकार सासारिक प्राणी) तन, मन से भोग में रत रहते हैं; (इस ससार में कोई हारता है और कोई जीतता है । सभी कोई ग्रहंकार से भरे हैं, और कहने सम-भाने से सकते नहीं,—समभाना-बुभाना नहीं मानते । नानक का कथन है कि (प्रभु आप ही सब कुछ देखता है, (यदि वह) श्वास (फूक) निकाल ले, तो (मनुष्य) डह जाता है ॥२६॥

पउडी : सतसंगति नामु निधानु हे जिथहु हरि पाइआ ॥
गुरपरसादी घटि चानणा ग्रान्हेरु गवाइआ ॥
लोहा पारसि भेटीऐ कंचनु होइ आइआ ॥
नानक सतिगुरि मिलिऐ नाउ पाईऐ मिलि नामु धियाइआ ॥
जिन्हु कै पोते पुंनु है तिन्हि दरसनु पाइआ ॥१६॥

पउडी : सतसंगति में ही नाम निधान (छिपा है), और वही से हरी की प्राप्ति होती है । गुरु की कृपा से हृदय में (घट में) प्रकाश (ज्ञान) हो जाता है और अन्धकार (अज्ञान) नष्ट हो जाता है । पारस के स्पर्श से लोहा कंचन के रूप में परिणत हो जाता है । हे नानक, सद्गुरु के मिलने पर नाम की प्राप्ति होती है, और उसमें मिलकर नाम का ध्यान होता है । [उपयुक्त पउडी में 'पाइआ', 'गवाइआ', 'भाइआ', 'धियाइआ' आदि क्रियाएँ, भूतकाल की हैं, किन्तु इनका अर्थ वर्तमान काल में लिखने से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है] । जिनके खजाने में पुण्य है, वे ही हरी और गुरु का दर्शन प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

सलोकु : धूगु तिना का जीविआ जि लिखि लिखि बेचहि नाउ ।
लेती जिन की उजड़ै खलबाड़े किआ धाउ ॥
सचै सरमे बाहरे अगै लहहि न दादि ।
अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ वादि ॥
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु ।
अकली पढ़ि कै बुझीऐ अकली कीचै दानु ॥
नानकु आखै राहु एहु होरि गलां सेतानु ॥३०॥
सचु वरनु संतोखु तीरयु गिआनु धिआनु इसनानु ।
दइआ देवता खिमा जयमाली ते माएस परधान ॥
जुगति धोती सुरति चउका तिलकु करणी होइ ।
भाउ भोजनु नानका बिरला त कोई कोइ ॥३१॥

गिआन बहूना गाबै गीत । भुखे मुलां घरे मसीति ॥
मखट्ट होइकै कंन पड़ाए । फकर करे होरु जातु गवाए ॥
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ । ता कै भूलि न लगोऐ पाइ ॥
घालि खाइ किछु हयहु बेइ । नानक राहु पछाणहि सेइ ॥३२॥

मनहु जि अंधे कूप कहिआ बिरबु न जाणनी ।
मनि अंधे ऊंधे कबलि दिसनि खरे करूप ॥

इकि कहि जाएहि कहिआ बुझहि ते नर सुखइ सरूप ॥

इकना नाद न बेब न गीअरसु रस कस न जाएंति ।

इकना सुधि न बुधि न अकलि सर अक्षर का भेड न सहंति ॥

नानक से नर असलि खर जि बिनु गुण गरबु करंति ॥३३॥

संक्षेपः—उनके जीवन को धिक्कार है, जो हरिनाम को लिख-लिख कर बेचते हैं, (अर्थात् जो व्यक्ति हरिनाम के आधार पर सासारिक ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनके जीवन को धिक्कार है)। जिनकी खेती उजड़ गई है, (उनके) खलियान में क्या होगा ? [तात्पर्य यह है कि जिनकी नाम-स्मरण रूपी खेती नष्ट हो चुकी है, उन्हें आध्यात्मिक लाभ क्या होगा ?]। सत्य और श्रम (उद्यम) के बिना आगे (परमात्मा के यहाँ), उनकी कोई भी कदर नहीं होगी। (जो) अक्ल भगडा-फसाद (बादि) में नष्ट की जाती है, (उसे) अक्ल नहीं कहना चाहिए। (सच्ची) अक्ल से साहब (हरी) का मेवा की जाती है और (सच्ची) अक्ल से (हरी के यहाँ) मान पाया जाता है। (सच्ची) अक्ल से हो पढ़ कर (सच्चे रूप में) समझा जाता है और उसी अक्ल से दान किया जाता है। नानक इसी को (वास्तविक) मार्ग कहता है, और बाते तो शैतान (की बाते) हैं ॥ ३० ॥

सत्य (जिन व्यक्तियों का) व्रत है, संतोष तोर्य है, ज्ञान-ध्यान ही स्नान है, दया देवता है, क्षमा जपमाली है, वे मनुष्य प्रधान हैं। हे नानक, जिनकी युक्ति (परमात्मा से मिलने की विधि) धोती है, सुरति (हरी की स्मृति) चौका है, (शुभ) करनी, जिनका तिलक है, भाव (प्रेम) ही जिनका भोजन है, (ऐसे मनुष्य) कोई-कोई बिरले ही होते हैं ॥ ३१ ॥

(लोग) ज्ञान के बिना ही गीत गाते हैं। भूषे मुल्ला (रोटी) पाने के निमित्त घर को ही मस्जिद (बना लेते) हैं। (लोग) निकम्मे (मखटू) नोकर (अपना) कान फटवा लेते हैं, फकीरी करके अपनी जाति (तात्पर्य यह कि मर्यादा) गँवा देते हैं। (जो लोग) कहलाते तो 'गुरु' और 'पीर' हैं, किन्तु मागने जाते हैं (भिक्षा), उनके चरणों में नहीं पडना चाहिए। नानक (के मत में) (जो व्यक्ति) परिश्रम करके खाता है (और अपनी कमाई में से) अपने हाथों से कुछ (दूसरों को) देता है, वही (व्यक्ति, वास्तविक) मार्ग पहचानता है ॥ ३२ ॥

जो मन से अन्धे कुएँ हैं, (अर्थात् जो बहुत अज्ञानी हैं)। (अपने) कहे हुए (उपदेश) की लज्जा नहीं रखते (तात्पर्य यह कि अपनी कही हुई बातों पर स्वतः आचरण नहीं करते), (वे अति हीन हैं)। मन अन्धा होने (के कारण) उनका (हृदय रूपी) कमल उलटा है और नितान्त (खरे) कुरूप दिखाई पड़ते हैं। कुछ लोग कह कर (उमें) जानते और समझते हैं, (अर्थात् कही हुई वस्तु पर आचरण करते हैं), ऐसे पुरुष सुन्दर स्वरूपवाले हैं, (वे ही सच्चे मनुष्य हैं)। कुछ लोग ऐसे हैं, (जो) नाद, वेद तथा गीत का रस (आनन्द), तथा कसंते आदि रस—(भला-बुरा) नहीं जानते। कुछ लोग (ऐसे हैं), (जिन्हें) सुधि-बुधि तथा अक्ल नहीं है और अक्षर का भेद भी नहीं जानते। नानक (के विचार से) वे मनुष्य असली (निरे) गधे हैं, जो बिना (किसी) गुण के ही गर्व करते हैं ॥ ३३ ॥

पउड़ी : गुरुमुखि सभ पबितु है धनु संवे माइया ।
हरि अरवि जो खरबे बेंबे सुख पाइया ॥
जो हरिनामु चिआइवे तिन तोटि न आइया ।
गुरुमुखां नवरी आववा माइया सुटि पाइया ॥
नानक भगतां होरु चिति न आवई हरि नामि समाइया ॥१७॥

पउड़ी : गुरुमुखों के लिए धन; सम्पत्ति, माया—सभी (वस्तुएँ) पवित्र हैं । जो हरि के निमित्त खर्च करते हैं और देने में सुख पाते हैं और हरी के नाम का ध्यान करते हैं, उन्हें (किसी प्रकार की) कमी नहीं आती । गुरुमुखों की दृष्टि में (हरी) आ जाता है, (इसलिए वे माया को पसंद ही नहीं करते), त्याग देते हैं । हे नानक, हरि-भक्तों के चित्त में (हरी के अतिरिक्त) और कुछ भी नहीं आता, (उनके हृदय में) हरी-नाम ही समाया रहता है ॥ १७ ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

रागु मलार, महला १, चउपदे, धरु १

सबद

[१]

खारणा पीरणा हसणा सउरणा बिसरि गइआ हे मरणा ।
खसमु बिसारि खुआरो कीनी धुगु जीवगु नही रहणा ॥१॥
प्राणी एको नामु धिआवहु ।
अपनी पति सेती घरि जावहु ॥१॥ रहाउ ॥
तुधनो सेवहि तुझु किआ देवहि मांगहि लेवहि रहहि नही ।
तू दाता जीआ सभना का जीआ अंदरि जीउ तुही ॥२॥
गुरुमुखि धिआवहि सि अंमृतु पावहि सेई सूचे होही ।
अहिनिशि नामु जपहु रे प्राणी मेले हछे होही ॥३॥
जेही रति काइआ सुख तेहा तेहो जेही बेही ॥
नानक रति सुहावे साई बिनु नावै रति केही ॥४॥

खाने, पीने, हँसने, सोने में ही (मनुष्य) काल को भूल गया है । उसने पति परमात्मा को बिसरा कर बरबादी कर दी है; (उसके) क्षणभंगुर जीवन को धिक्कार है ॥ १ ॥

हे प्राणी, एक (हरी) के नाम का ध्यान कर, ताकि अपनी मर्यादा—प्रतिष्ठा से (अपने आत्मस्वरूपी) घर में जा सके ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु), (जो) तेरी आराधना करते हैं—सेवा करते हैं, (वे) तुझे क्या देते हैं ? (कुछ भी नहीं); (वे) तुझसे मांगते रहते हैं, और लेने से बाज नहीं आते । (हे प्रभु), तू सभी जीवों का दाता है, जीवों के अन्तर्गत (तू ही) जीवन है ॥ २ ॥

(जो) गुरुमुख (तेरा) ध्यान करते हैं, वे, अमृत प्राप्त करते हैं, और वे ही पवित्र होते हैं । हे प्राणी, अर्हतिश (हरी का) नाम जप; नाम जप से अपवित्र (मेले) भी पवित्र (अच्छे) हो जाते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार की श्रुत होती है, उसी के अनुसार शरीर को सुख मिलता है और उसके प्रभाव से फिर उसी प्रकार का शरीर बनता है। नानक कहता है कि वही श्रुत सुहावनी होती है, (जो नाम से युक्त है)। बिना नाम के श्रुत किस काम की ? ४ ॥ १ ॥

[२]

करउ बिनउ गुर अपने प्रीतम हरि वरु आनि मिलावै ।

सुनि घनघोर सीतलु मनु मोरा लाल रती गुण गावै ॥१॥

बरसु घना मेरा मनु भीना ।

अंशुत बूँद सुहानी होअरै गुरि मोही मनु हरि रसि लीना ॥१॥ रहाउ ॥

सहजि सुखी वर कामणि पिअारी जिसु गुरबचनी मनु मानिआ ।

हरि वरि नारि भई सोहागणि मनि तनि प्रेमु सुखानिआ ॥२॥

अवगण तिआग भई बैरागनि असियरु वरु सोहागु हरी ।

सोगु विजोगु तिसु कवे न बिआपै हरि प्रभि अपरणी किरपा करो ॥३॥

आवण जाणु नही मनु निहचलु पूरे गुर की ओट गही ।

नानक राम नामु जपि गुरसुखि बनु सोहागणि सनु सही ॥४॥२॥

मे अपने गुरु से वियन करती हूँ, जो प्रियतम हरि रूपी वर को ले आकर मिला देता है। बादलों की गरज सुनकर मेरा मोर रूपी मन शीतल हो गया है, (तात्पर्य यह कि गुरु के उपदेश से मेरे मन को शान्ति प्राप्त हो गई है)। (स्त्री) (अपने) लाल—प्रियतम मे अनुरक्त होकर उसका गुणगान करती है ॥ १ ॥

हे घन, बरस, जिससे मेरा (मोर रूपी) मन भीये—आनन्दित हो। हृदय में अश्रुत की बूँदें अच्छी लग रही है—सुहा रही है, गुरु ने (मुझे अपने उपदेशों से) मोहित कर लिया है; (मेरा) मन हरि-रस में लीन हो गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

वह (हरी रूपी) वर की प्यारी स्त्री सहज सुखी पूर्ण आनन्दित हो गई है, जिसका मन गुरु की बाणी द्वारा मान गया है—शान्त हो गया है। हरि रूपी वर की (जीवात्मा रूपी) स्त्री (अब) सुहागिनी हो गई है, (हरी के) प्रेम से उसके तन और मन सुखी हो गए हैं ॥ २ ॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री) अवगुणों को त्याग कर बैरागिनी हो गई है (और उसने) हरी रूपी वर के स्थिर सौभाग्य को प्राप्त कर लिया है। प्रभु हरी ने (उसके ऊपर) अपनी कृपा कर दी है, (जिससे) शोक और वियोग (उसे) कभी नहीं व्याप्त होते हैं ॥ ३ ॥

(उस जीवात्मा रूपी स्त्री ने) पूर्ण गुरु की शरण पकड़ ली है, (जिससे उसका) आवागमन (आना-जाना) समाप्त हो गया है और निश्चल हो गया है। नानक का कथन है कि गुरु के द्वारा रामनाम का जप करके (जीवात्मा रूपी) स्त्री सच्चे रूप में सुहागिनी हो गई है ॥ ४ ॥ २ ॥

[३]

साची सुरति नामि नही कृपते हउमै करत गवाइआ ।
 परधन पर नारी रतु निदा बिलु खाई दुख पाइआ ॥
 सबदु चीनि भै कपट न छूटे मन मुखि माइआ माइआ ।
 अजगरि भारि लदे प्रति भारी मरि जनमे जनमु गवाइआ ॥१॥
 मनि भवै सबदु सुहाइआ ।
 भ्रमि भ्रमि जोनि भेख बहु कीन्है गुरि राखे सचु पाइआ ॥१॥रहाउ॥
 तोरयि तेजु निवारि न न्हाते हरि का नामु न भाइआ ।
 रतन पदारथु परहरि तिआगिआ जत को तत ही आइआ ॥
 बिसटा कोट भए उत ही ते उतही माहि समाइआ ।
 अधिक सुआद रोग अधिकारी बिनु गुर सहजु न पाइआ ॥२॥
 सेवा सुरति रहसि गुण गावा गुरमुखि गिआनु बीचारा ।
 खोजी उपजै बादी बिनसै हउ बलि बलि गुर करतारा ॥
 हम नीच हुते हीण मति भूटे तू सबदि सवारणहारा ।
 आतम चीनि तहा तू तारण सचु तारे तारणहारा ॥३॥
 बेसि सुधानि कहां गुण तेरे किआ किआ कथउ अपारा ।
 अलखु न लखीऐ अगमु अजोनी तू नायां नाथणहारा ॥
 किंसु पहि देखि कहउ तू कैसा सभि जाचक तू दातारा ।
 भमति हीणु नानकु बरि बेखहु इकु नामि मिलै उरिधारा ॥४॥३॥

(मनुष्य की) न तो सच्ची सुरति लगती है और न नाम में तृप्त होता है; (वह)
 अहंकार करने में ही (अपने को) नष्ट कर देता है (वह) पर धन, पर नारी और (पराई)
 निन्दा में रत रहता है, इस प्रकार (तमोगुण के) विष खा कर दुःख पाता रहता है। शब्द
 के पहचाने (बिना) (मनमुख के) भय और कपट नहीं छूटते, और उसके मन तथा मुख—
 दोनो ही में माया ही माया बसती है [“मन मुखि” वाला पाठ श्री करतारपुर वाली प्रति
 की है। अन्य प्रतियों में “मनमुखि” पाठ है]। (ऐसे लोग पापों के) भारी बोझ से लदे हैं;
 (वे) बार-बार जन्मते-मरते-रहते हैं और अपना जीवन नष्ट करते रहते हैं ॥ १ ॥

(यदि) मन में (गुरु का) शब्द अच्छा लगता है, तो (जीवन) सुहावना हो जाता
 है। (नहीं तो) अनेक योनियों में भटक-भटक कर बहुत संशय धारण करने पड़ते हैं; गुरु के
 द्वारा रक्षा करने पर ही सत्य परमात्मा की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(लोग) तीर्थों और तमोगुण (तेज—क्रोध, तमोगुण) को दूर करके स्नान नहीं
 करते और उन्हें हरि का नाम भी नहीं अच्छा लगता। (वे) (नाम रूपी) पदार्थ—रतन को
 त्याग कर जहाँ के तहाँ चले जाते हैं—(अर्थात् जन्ममरण के चक्र में भटकते हैं)। (जिस
 प्रकार) विष्टा का कोट वहीं से उत्पन्न होकर, वही समा जाता है; (उस प्रकार वे लोग
 भी योनि में उत्पन्न होकर फिर उसी में चक्कर लगाते हैं)। (सासारिक प्राणी) जितने
 ही अधिक (विषयों के) स्वाद में (लिप्त होते हैं), उतने ही अधिक (उनके) रोगों की
 वृद्धि होती है। बिना गुरु के सहजावस्था नहीं प्राप्त होती ॥ २ ॥

(हे प्रभु), (मैं) सेवा और सुरति (परमात्मा की स्मृति) मे लगूँ और प्रसन्नता-पूर्वक (तेरा) गुणगान करूँ तब गुरु की शिक्षा द्वारा ब्रह्मज्ञान पर विचार करूँ । जिज्ञासु (तो अपनी साधना से) सफल हो जाता है और वादी (अपने वितण्डावाद से) नष्ट हो जाता है । मैं तो गुरु रूपी कर्ता-गुरु पर बलिहारी हूँ । (हे सद्गुरु), हम नीच, मतिहीन, और झूठे हैं, तू (अपने) शब्द से सँवारने वाला है । जहाँ आत्मा समझा जाता है—जाना जाता है, हे तारने वाले (सद्गुरु अथवा हरी) वहाँ तू उपस्थित रहता है ॥ ३ ॥

(हे हरी, मैं) किस सुन्दर स्थान में बैठ कर तेरे किन-किन अपार गुणों का कथन करूँ ? (तू तो अनन्त है, मैं तेरे गुणों का कथन कर ही नहीं सकता) । (हे स्वामी, तू) अलक्ष्य, अयोनि और अगम है, तू नाथ—स्वामी (कहलानेवालों) को भी वशीभूत करने वाला (नाथनेवाला) है । मैं किसे देखकर तुझ जैसा कहूँ ? सभी (व्यक्ति) तेरे याचक हैं, तू (सभी का) दाता है । (हे प्रभु), तू, भक्तिहीन नानक को (उसके) दरवाजे पर देख, (ताकि) उसे नाम प्राप्त हो जाय, (और उसे) वह अपने हृदय में धारण कर ले ॥ ४ ॥ ३ ॥

[उपर्युक्त पद की 'गवाइआ', 'पाइआ' आदि क्रियाएं भूतकाल की हैं । किन्तु स्वाभाविकता की दृष्टि से इनका अर्थ वर्तमान काल में लिखा गया है]

[४]

जिन धन पिर का साधु न जानिआ सा बिलख बदन कुमलानी ।

भई निरासी करम की फासी बिनु गुर भरमि भुलानी ॥१॥

बरसु घना मेरा पिरु घरि आइआ ।

बलि जावां गुर अपने प्रीतम जिनि हरि प्रभु आरि मिलाइआ ॥१॥रहाउ॥

नउतन प्रीति सदा ठाकुर सिउ अनविनु भगति सुहाबी ।

सुकति भए गुर दरसु विखाइआ जुगि जुगि भगति सुभाबी ॥२॥

हम थारे त्रिभरण जगु तुमरा तू मेरा हज तेरा ।

सतिगुरि मिलिए निरजनु पाइआ बहुरि न भवजलि फेरा ॥३॥

अपुने पिर हरि देखि बिगासी तउ धन साधु सीगारो ।

अकुल निरंजन सिउ सचि साची गुरमति नामु अघारो ॥४॥

सुकति भई बंधन गुरि लोले सबदि सुरति पति पाई ।

नानक राम नामु रिद अंतरि गुरमुखि मेलि मिलई ॥५॥४॥

जिस (जीवात्मा रूपी) स्त्री ने अपने (परमात्मा रूपी) पति का स्वाद नहीं जाना, वह व्याकुल मुखवाली कुम्हला जाती है । कर्म के पाश में पड़कर निराश हो जाती है, (इस प्रकार) बिना गुरु के वह भ्रमित होकर भटकती रहती है ॥ १ ॥

हे बादल, (तू) बरस (तात्पर्य यह कि हे गुरु, तू उपदेश कर) मेरा प्रियतम (हरी, मेरे आत्मस्वरूपी) घर में आ गया है । अपने प्रियतम गुरु की (मैं) बलैया लेती हूँ, जिसने प्रभु हरी को ले आकर (मुझसे) मिला दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

नित्य नवीन ठाकुर (हरी) से शाश्वत (सदा की) प्रीति हो गई है और (हरी से) अर्हनिश की गुहावनी भक्ति लग गई है । गुरु ने (परमात्मा का) दर्शन करा दिया है, (जिससे मे जीवात्मा रूपी स्त्री) मुक्त हो गई हैं । युग-युगान्तरों के लिए भक्ति शोभावाली हो गई है ॥ २ ॥

हम तेरे हैं, तीनों लोको की सृष्टि तेरी है । तू मेरा है, और मैं तेरा हूँ । सद्गुरु के मिलने से निरंजन (माया से रहित हरी) की प्राप्ति हो गई है; (अब) संसार-सागर में फिर चक्कर नहीं लगेगा ॥ ३ ॥

(मैं) अपने प्रियतम हरी को देख कर विकसित हो गई हूँ; यही स्त्री का सच्चा शृंगार है । अकुल (कुलरहित) निरंजन (हरी) की सच्ची (प्रीति में) अनुरक्त हो गई हूँ । गुरु की सच्ची बुद्धि द्वारा (प्राप्त) हरिनाम ही (मेरा) आधार हो गया है ॥ ४ ॥

गुरु ने बंधन खोल दिये हैं, (जिससे मैं) मुक्त हो गयी हूँ । शब्द—नाम की सुरति (स्मृति) से प्रतिष्ठा पा गई हूँ । हे नानक, रामनाम हृदय के अन्तर्गत (आ बसा) है; गुरु ने अपनी शिक्षा द्वारा (मुझे पहले अपने में) मिलाकर (अब हरी में) मिला दिया है ॥५॥६॥

[५]

परदारा परधनु परलोभा हुजमे बिखै बिकार ।

दुसट भाउ तजि निद पराई कामु क्रोध चंडार ॥१॥

महलि महि बैठे अगम अपार ।

भीतरि अमृत सोई जनु पावै जिसु गुर का सबदु रतनु आचार ॥१॥रहाउ॥

दुख सुख दोऊ सम करि जानै बुरा भला संसार ।

सुधि बुधि सुरति नामि हरि पाईऐ सत संगति गुर पिआर ॥२॥

अहिनिश लाहा हरिनाम परापति गुरु दाता देवणहार ।

गुरमुखि सिख सोई जनु पाए जिसनो नदरि करे करतार ॥३॥

काइआ महलु मंदरु घरु हरि का तिसु महि राखी जोति अपार ।

नानक गुरमुखि महलि बुलाईऐ हरि मेले मेलणहार ॥४॥५॥

अहंकार रूपी विषय-विकारो मे (लित होकर सासारिक प्राणी) पराई स्त्री और पराये धन मे लित है । (हे मायासक्त प्राणी), दुष्ट भावों, पराई निंदा, काम-क्रोध रूपा चाण्डालों का परित्याग कर ॥१॥

अगम और अपार (हरी) (शरीर रूपी) महल में बैठा हुआ है । इस भीतरी अमृत को वही जन—साधक पाता है, जिसके आचार गुरु के शब्द रूपी रत्न है, (अर्थात् जो गुरु के शब्द रूपी रत्नों की कमाई करता है) ॥१॥ रहाउ ॥

(सच्चा साधक) इस भले-बुरे संसार में दुःखो और सुखों को समान भाव से जानता है । सत्संगति एवं गुरु के प्यार से हरि के नाम की सुधि-बुधि और सुरति (स्मृति) प्राप्त होती है ॥२॥

(वही शिष्य) हरिनाम की प्राप्ति का लाभ अर्हनिश प्राप्त करता है, (जिसे) दाता और देनेवाले गुरु ने (प्रदान कर दिया है) । उसी जन (भक्त) को गुरु के द्वारा शिक्षा प्राप्त होती है, जिसके ऊपर कर्तापुरुष कृपादृष्टि करता है ॥३॥

(मनुष्य का) शरीर हरी का घर, महल और मन्दिर है, इसमें (हरी ने) अपार ब्रह्म-ज्योति रख दी है । हे नानक, गुरु के द्वारा हरी को (शरीर रूपी) महल में बुला; मिलाने वाला (गुरु ही) (ऐसा मिलाप) कराता है ॥४॥५॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर २॥

[६]

पवणै पाणी जाणै जाति । काइआं अगनि करे निभरांति ॥
जंमहि जोअ जाणै जे थाउ । सुरता पंडितु ता का नाउ ॥१॥
गुरु गोविंद न जाणीअहि माइ । अनडोठा किछु कहसु न जाइ ॥
किआ करि आखि बखारोऐ माइ ॥१॥रहाउ॥
ऊपरि दरि असमानि पइआसि । किउ करि कहोऐ वेहु बोचारि ॥
बिनु जिह्वा जो जपै हिआइ । कोई जाणै कैसा नाउ ॥२॥
कथनी बदनो रहै निभरांति । सो बूझै होवै जिसु वाति ॥
अहिनिजि अंतरि रहै लिब लाइ । सोई पुरख जि सचि समाइ ॥३॥
जाति बुलीनु सेवकु जे होइ । ता का कहणा कहहु न कोइ ॥
बिचि सनाती सेवकु होइ । नानक पहोआ पहिरै सोइ ॥४॥१॥६॥

(पंडित) यह तो जानता है कि पवन और जल (के संयोग से) उत्पत्ति (जाति) लेनी है (और साथ ही यह भी) निस्सन्देह रूप से (जानता है कि) अग्नि भी (शरीर को) निर्मित करती है, पर यदि (वह) जीवों की उत्पत्ति के (वास्तविक) स्थान को जाने, (अर्थात् परमात्मा को जाने), तो उसका नाम श्रोता पंडित हो सकता है ॥१॥

हे माँ, (बिना गुरु के) गोविन्द (परमात्मा) नहीं जाना जाता । बिना देखे, (उसके संबंध में) कुछ कहा नहीं जा सकता । हे माँ, (उस हरी का) क्या कह कर वर्णन किया जाय ?

ऊपर, भीतर (तात्पर्य यह कि नीचे), आकाश और पाताल में—(सभी स्थानों में हरी व्याप्त है) । (इस बात का) विचार करके (मुझे कोई बता दे) (कि उसे) किस प्रकार कहा जाय —(उसका जप किस प्रकार किया जाय) ? (उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर निम्न पंक्तियों में है) । जो बिना जोभ (के सहारे), (उस हरी को) हृदय में जपता है, (ऐसा) कोई (विरला) ही जान सकता है कि नाम किस प्रकार का है ॥२॥

(हरिनाम के जप में) निस्सन्देह मुंह का कथन—उच्चारण बन्द हो जाना चाहिये, (हृदय से जप करना चाहिये) । (परन्तु इस रहस्य को) वही समझ सकता है, जिसके ऊपर हरी का दान होता है । (हरी के चिन्तन में) हृदय में अहंनिश लिब (एकनिष्ठ धारणा) लगी रहनी चाहिये । जो सत्य (परमात्मा) में समा जाता है, वही (सच्चा) पुरुष है ॥३॥

यदि कुलीन (प्रतिष्ठित) जाति में कोई (व्यक्ति) (हरी का) सेवक हो, तो (उसकी अवस्था का) कोई वर्णन नहीं कर सकता । (किन्तु) यदि नीची जाति में (कोई हरी का सेवक हो, तो वह नानक (के शरीर के चाम के) झूते पहने ॥४॥१॥१६॥

[७]

दुख विछोड़ा इकु दुख भूल । इकु दुख सकतवार जमदूत ॥
 इकु दुख रोगुलनै तनि धाइ । वैद न भोले दारु लाइ ॥१॥
 वैद न भोले दारु लाइ ।
 दरदु होवै दुख रहै शरीर । ऐसा दारु लगै न बीर ॥१॥रहाउ॥
 खसमु विसारि कीए रस भोग । तां तनि उठि खलोए रोग ॥
 मन अंधे कउ मिलै सजाइ । वैद न भोले दारु लाइ ॥२॥
 चंदन का फल चंदन वासु । मारुस का फल घट महि सासु ॥
 सासि गये काइया डलि पाइ । ता कै पाछे कोइ न खाइ ॥३॥
 कंचन काइया निरमल हंसु । जिसु महि नासु निरंजन अंसु ॥
 दूख रोग सभि गइया गवाइ । नानक छूटसि साचै नाइ ॥४॥२॥७॥

एक दुःख तो वियोग का दुःख होता है और एक दुःख भूल का । एक दुःख शक्तिशाली यमदूत का होता है और एक दुःख शरीर में रोग का दौड़ कर लगना है । (इस प्रकार संसार में अनेक प्रकार के दुःख हैं) । (अतएव) हे भोले वैद्य (तू, किस दुःख की निवृत्ति के लिए दवा ला रहा है) ? (तू, दवा मत ला, (क्योंकि तुझे अमली रोग का पता नहीं है) ॥१॥

हे भोले वैद्य, (तेरी दवा में भी) दर्द होता है और शरीर में दुःख होता है, हे भाई तेरी दवा (मुझ पर) लग नहीं रही है; (अतः) भोले वैद्य, दवा मत ला ॥१॥ रहाउ ॥

पति (परमात्मा) को भुलाकर अनेक प्रकार के रसों और भोगों के भोगने में शरीर में (अनेक प्रकार के) रोग उठ खड़े होते हैं । अन्ये (अविवेकी) मन को सजा मिलती है । हे भोले वैद्य दवा मत ला ॥२॥

चंदन की सुगन्धि ही चंदन का (वास्तविक) फल—परिणाम है । शरीर में (घट में) स्वासों का रहना ही मनुष्य जीवन की सार्थकता—फल है । स्वास निकलने पर शरीर ढह जाता है । (शरीरपात हो जाने के) पश्चात्, कोई भी दवा नहीं खा सकता ॥३॥

सोने के शरीर में निर्मल हंस—जीवात्मा (का निवास) है, जिस (जीवात्मा) में निरंजन (हरी) का अंश है । (हरी-नाम से समस्त) दुःख और रोग नष्ट हो जाते हैं । हे नानक, सच्चे (हरी) के नाम से ही छुटकारा मिलेगा ॥४॥२॥७॥

[८]

दुख महारा मारण हरि रामु । सिला संतोख पोसण हृषि दानु ॥
 नित नित लेहु न छोखे देह । अंत कालि जसु मारे ठेह ॥१॥
 ऐसा दारु खाहि गवार । जितु खाखे तेरे जाहि बिकार ॥१॥रहाउ॥

राजु मासु जोबनु ससु छाव । रधि फिरंदै दोसहि थाव ॥

बेह न नाउ न होवै जाति । ओपै त्रिहु ऐथै सब राति ॥२॥

साद करि समधां वृसना छिउ तेसु । कामु ओषु भगनी सिउ मेसु ॥

होम जग भरु पाठ पुराण । जो तिसु भावै सो परवाण ॥३॥

तपु कामवु तेरा नाम नोसानु । जिन कउ लिखिआ एहु निधानु ॥

से घनवंत दिसहि घरि जाइ । नानक जननी धंनो माइ ॥४॥३॥५॥

दुःखो के विष को (दूर करने के लिए) हरि नाम ही कुश्ते का मसाला है, (अथवा) दुःख रूपी विष का मारक हरिनाम हैं । मारण = (१) कुश्ते का मसाला; (२) मारक, (मारने वाला) । (उस मसाने के पीसने के लिए) संतोष ही सिल है और हाथों से दान देना (उसका वास्तविक) पीसना है । (हे साधक), (उस हरिनाम रूपी कुश्ते का) नित्य सेवन कर; इससे तेरी देह नहीं छोड़ेगी, (तू अमरधर्मा हो जायगा); (ऐसा नहीं करेगा, तो) अंतिम समय में यमराज (तुझे) ठोकर मारेगा ॥१॥

हे गँवार—मूर्ख (तू) ऐसी औपधि खा, जिसके खाने से तेरे समस्त विकार नष्ट हो जायें ॥१॥ रहाउ ॥

राज, धन, (माल), यौवन (आदि) सभी (वस्तुएँ) छाया (के समान क्षणभंगुर है) । (सूर्य के) रथ के फिरने से—घूमने से (सारे) स्थान (ठीक ठीक) देखे जाते हैं । (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ग्रंथकार में कोई वस्तु सूझती नहीं और प्रकाश में सारी वस्तुएँ यथा स्थिति में देखी जा सकती है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में राज्यादिक वैभव छाया के समान क्षणभंगुर प्रतीत होने लगते हैं) । शरीर, नाम (ख्याति, प्रसिद्धि) तथा जाति का आगे चल कर कुछ भी मूल्य नहीं होता, (वयोकि) वहाँ दिन है, (ब्रह्मज्ञान का प्रकाश है); (और यहाँ अज्ञानता के कारण) रात्रि है ॥२॥

(गुरु नानक देव आगे की पंक्तियों में यज्ञ का रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि हे साधक तू स्वादो को तो समिधा (यज्ञ की लकड़ी), तृण्णा को घी-तेल तथा काम-क्रोध को अग्नि (बना) कर और सभी को एकत्र कर (इस यज्ञ में हवन कर) । (ऐसा यज्ञ करने से) यज्ञ-होम तथा पुराण (आदि धार्मिक ग्रंथों के) पाठ का फल प्राप्त हो जाता है । (फिर मनुष्य हरी की रजा-मर्जी का बंदा हो जाता है) और उसके लिए वही प्रामाणिक हो जाता है, जो हरी को रुचे ॥३॥

(हे हरी, साधक की) तपश्चर्या के कागज पर तेरे नाम का निशान—परवाना लिखा रहता है; (पर यह परवाना उन्हीं को प्राप्त होता है), जिनके (भाग्य में) यह भाण्डार (हरी के यहाँ से) लिखा रहता है । (इसी परवाने के बल पर, सच्चे साधक अपने आत्मस्वरूपी) घर में जाकर धनवान दिखाई पड़ते हैं । हे नानक, (ऐसे व्यक्तियों की) माता, जननी धन्य है ॥४॥३॥५॥

[८]

बागे कापड़ बोले बैण । लंभा नकु काले तेरे नैण ॥

कबहूँ साहिबु देखिआ भैण ॥१॥

ऊडां ऊडि चडां असमानि । साहिब संचिध तेरे तारि ॥
 जलि थलि झुंगरि बेलां तोर । धान धनंतरि साहिबु बीर ॥२॥
 जिन तनु साजि दोए नालि खंभ । अति नुसना उडारै की डंभ ॥
 नवरि करे तां बंधां धीर । जिउ बेलासे लिउ बेला बीर ॥३॥
 न इहु तनु जाइगा न जाहिगे खंभ । षडारै पाणी अगनी का सनबध ॥
 नानक करमु होवै जपीऐ करि गुरु पीरु । सचि समावै एहु सरीरु ॥४॥४॥६॥

(हे बहिन, तेरे) वस्त्र ध्वेत हैं (और तू मोठे) वचन बोलती है, (तेरी) नासिका लम्बी है (और तेरे) नेत्र काले हैं । हे बहिन, (तू इतनी सुंदर तो है, किन्तु) क्या तू ने (अपने) साहब (हरी) को भी कभी देखा है ? ॥१॥

(मैं बहुत ऊँची) उड़ान उड़ कर आकाश में चढ़ गया । हे साहब और सामर्थ्यवान् हरी, तेरी ही शक्ति से (मैं ऊँची उड़ान उड़ सका) । हे भाई, (बीर) (मैंने) जल, स्थल, पर्वत और किनारे आदि को देखा और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी (स्थान-स्थानान्तरो में साहब (परमात्मा ही विराजमान है) ॥२॥

उसी (प्रभु) ने शरीर को रचकर उसके चलाने के निमित्त (श्वास रूपी) खंभे का (सहारा) दिया है । (किन्तु मनुष्य सामर्थ्यवान् हरी को न समझ कर) अति तृष्णा के कारण उड़ने (भटकने के) दाह (डंभ < संस्कृत दहन)—प्यास, तृष्णा में पड़ा है । (यदि हरी की) कृपादृष्टि प्राप्त हो जाय, तभी धैर्य बंध सकता है । हे भाई, (मुझे तो प्रभु) जैसा दिखाता है, वैसा ही देखता हूँ ॥३॥

(हे भाई) न तो यह शरीर कही जायगा और न (श्वास रूपी) खंभे ही कही जायेंगे । (ये तो सब) वायु, पानी और अग्नि (आदि पंच तत्वों) के संयोग—संबंध से बने हैं । नानक का कथन है यदि (हरी की) बख्शिश होती है, तभी गुरु रूपी पीर (बना) कर, (उसे) जपा जाता है । (ऐसा करने से) यह शरीर सत्य (हरी) में ही समा जाता है ॥४॥४॥६॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मलार, महला १, घर

असटपदीयां

[१]

चकवी नैन नीव नहि चाहि बिनु पिर नीव न पाई ।
 मूरु चहै प्रिउ देखै नैनी निवि निबि लागै पाई ॥१॥
 पिर भाबे प्रेसु सखाई ।
 तिसु बिनु घड़ी नहीं जगि जीवा ऐसी विधास तिसाई ॥१॥रहाउ॥
 सरवरि कमलु किरणि आकासो बिषसै सहजि सुभाई ।
 प्रीतम प्रीति बनी अग्नि ऐसी जोती जोति बिभाई ॥२॥

चातुकु जल बिनु प्रिउ प्रिउ टेरे बिलप करै बिललाई ।
घनहर घोर दसौ बिसि बरसै बिनु जल पिआस न जाई ॥३॥
मीन निवास उपजै जल ही ते सुख दुख पुरबि कमाई ।
खिनु तिलु रहि न सकै पनु जल बिनु मरनु जोवनु तिसु ताई ॥४॥
घन बांडी पिरु बेस निबासी सच्चे गुर पहि सबदु पठाई ।
गुरा संग्रहि प्रभु रिदै निबासी भगति रती हरखाई ॥५॥
प्रिउ प्रिउ करै सभै है जेती गुर भाबै प्रिउ पाई ।
प्रिउ नाले सद ही सवि संगे नवरी मेलि मिलाई ॥६॥
सभ महि जोउ जोउ है सोई घटि घटि रहिआ समाई ।
गुर परमादि घर ही परगासिआ सहजे सहजि समाई ॥७॥
अपना काजु सवारहु आपे सुखदाते गोसांई ।
गुरपरसावि घर ही पिरु पाइआ तउ नानक तपति बुझाई ॥८॥१॥

चकवो (अपने) नेत्रों में नींद नहीं चाहती । बिना प्रियतम के (उसे) नींद नहीं प्राप्त होती । (आकाश में) सूर्य चढ़ने से, वह (अपने) प्रियतम को नेत्रों से देखती है और भुंक भुंककर (उसके) चरणों में लगती है ॥१॥

(मुझे तो) सहायक प्रियतम का प्रेम अच्छा लगता है । उसके बिना जगत् में एक घड़ी भर भी जीना अच्छा नहीं लगता । उसके निमित्त—ऐसी (महान्) तृप्ता और प्यास है ॥१॥ रहाउ ॥

कमल तो सरोवर में है और सूर्य की किरणें आकाश में हैं, (फिर भी किरणों के छिटकते ही) कमल सहज भाव से विकसित हो जाता है । प्रियतम की आन्तरिक प्रीति उस प्रकार की (एकाकार) होती है, जिस प्रकार ज्योति (की प्रीति) ज्योति से मिलकर (एक) हो जाती है ॥२॥

चातक (स्वाती नक्षत्र के) जल बिना 'पो पो' पुकारता है और बिलख-बिलख कर विलाप करता है । घनघोर बादल दसो दिशाओं में बरसता है, (किन्तु चातक के लिए व्यर्थ है), (क्योंकि) बिना (स्वाती नक्षत्र के) जल के उसकी प्यास बुझती नहीं । [इसी प्रकार हरी सभी के ऊपर कृपा करके उन्हें नाना भाँति के पदार्थ देता है । किन्तु भक्त रूपी चातक को तो तमो शान्ति मिलती है जब उसे नाम रूपी स्वाती-जल की प्राप्ति होती है] ॥३॥

मछली का निवास जल ही से उत्पन्न होता है । (उसके) पूर्व के कर्मानुसार उसका सुख-दुःख पानी ही में है । (वह) पानी के बिना क्षण भर भी, तिल भर भी, पल भर भी नहीं रह सकती । उस (जल) पर ही (मछली का) जीवन-मरण निर्भर है ॥४॥

(जीवात्मा रूपी) स्त्री परदेसिन होकर (पति से) विछुड़ी है (और उसका) पति (अन्य देश में) बस रहा है; सच्चे गुरु के द्वारा (वह अपने प्रियतम परमात्मा) के पास शब्द (संदेश) भेजती है; (वह) गुणों का संग्रह करती है, (जिससे) प्रभु (हरी) उसके हृदय में निवास करने लगता है, और जीवात्मा रूपी स्त्री (परमात्मा रूपी पति की) भक्ति में अनुरक्त होकर हृषित होती है ॥५॥

(जितनी भी जीवात्मा रूपी स्त्रियाँ हैं), वे सभी 'प्रिय-प्रिय' करती रहती हैं, किन्तु यदि गुरु को अच्छी लगती है, तभी (हरी) प्रियतम को पा सकती है, (अन्यथा नहीं) । प्रियतम हरी के साथ ही शाश्वत और सच्चा संग है, (गुरु ही) कृपा करके (पहले उसे अपने) संग में मिलाकर (तत्पश्चात्) हरी से) मिला देता है ॥६॥

सभी (प्राणियों में) जीव और सभी जीवों में (वह हरी है, (इस प्रकार प्रभु हरी) षट-षट में व्याप्त हो रहा है । गुरु की कृपा से (हृदय रूपी) घर (ज्ञान में) प्रकाशित हो गया (और साधक) सहज भाव से ही सहजावस्था (तुरीयावस्था) में समाहित हो गया ॥७॥

हे सुखदाता गोसाईं, तू अपना कार्य आप ही करता है । नानक का कथन है कि गुरु की कृपा से उसने (अपने हृदय रूपी) घर में प्रियतम (हरी) को प्राप्त कर लिया, इसमें तपन बुझ गई ॥८॥१॥

[२]

जागतु जागि रहै गुर सेवा बिनु हरि मै को नही ।

अनिक जतन करि रहगु न पावै आबु कानु ढरि पाही ॥१॥

इसु तन घन का कहहु गरबु कैसा ।

बिनसत बार न लागै बवरे हउमै गरबि लपै जगु ऐसा ॥२॥रहाउ॥

जे जगदीश प्रभू रखवारे राखै परखै सोई ।

जेती है तेतो तुभ ही ते तुम्ह सरि अवह न कोई ॥३॥

जोअ उपाइ जुगति वसि कीनी आपे गुरमुखि अंजनु ।

अमर अनाथ सरब सिरिमोरा काल बिकाल भरम भै लजनु ॥४॥

कागद कोटु इहु जगु है वपुरो रंगनि चिह्न चतुराई ।

नानी सो बूँद पवनु पति खोवै जनमि मरे लिनु ताई ॥५॥

नदी उपकंठि जेसे घर तरवरु सरपनि घर घर माही ।

उलटी नदी कहाँ घर तरवरु सरपनि डसे दूजा मन मांही ॥६॥

गारडु गुर गिआनु धिआनु गुर बचनी बिखिआ गुरमति जारी ।

मन तन हेंव भए सनु पाइआ हरि की भगति निरारी ॥७॥

जेती है तेतो तुषु जाचै तू सरब जोआं दइआला ।

तुम्हरी सरसि परे पति राखहु साबु मिलै गोपाला ॥८॥

बाधी धंधि अंध नही सूझै अधिक करम कमावै ।

सतिगुर मिलै त सूझसि बूझसि सब मनि गिआनु समावै ॥९॥

निरगुण वेह सावी बिनु काचो मै पूछउ गुर अपना ।

नानक सो प्रभु प्रभू बिखावै बिनु सावै जगु सुपना ॥१०॥२॥

(ब्रह्मज्ञान में) जगनेवाला (साधक) गुरु की सेवा के माध्यम से (अहर्निश) जागता रहता है । बिना हरी के (इस संसार में) मेरा कोई नहीं है । अनेक यत्नों के करने पर भी

(मनुष्य इस संसार में) नहीं रह पाता । (जिस प्रकार अग्नि की भयंकर) आँच कच्ची वस्तुओं को पिघला देती है, (उसी प्रकार इस नश्वर संसार में शरीर पिघल जाता है) ॥१॥

(भला बुरा) इस तन और धन का अभिमान किस प्रकार किया जाय ? अरे बावरे, (इस तन-धन को नष्ट) होने में देरी नहीं लगती, अहंकार और गर्व में पड़ कर जगत् इसी प्रकार खपता रहता है ॥१॥ रहाउ ॥

हे प्रभु, रक्षक, जगदीश (तेरी) जय हो । जीवों की रक्षा और परख वही (जगदीश) करता है । (हे कर्तापुरुष) जितनी भी सृष्टि है, सब तुम्हीं से उत्पन्न हुई है; तेरे समान और कोई दूसरा नहीं है ॥२॥

जीवों को उत्पन्न करके (उनके जीवन की) युक्ति (हरी ने) अपने वश में रखी है । (हरी) आप ही ज्ञानरूपी अंजन है, जो गुरु द्वारा प्राप्त होता है । (हरी) अमर है, सर्वस्वतंत्र है [अनाद्य—जिसका कोई भी नाथ न हो; जो सर्व स्वतंत्र हो], सर्व शिरोमणि है; जन्म-मरण और भय-भ्रम को नष्ट करनेवाला है । [काल=मरण । विकाल=काल का विपरीत, अर्थात् जन्म] ॥३॥

यह बेचारा जगत् कागज का किला है; इस कोट का रंग और चिह्न (सासारिक) चतुराई है । पानी की नन्ही-सी बूँद अथवा पवन के (छोड़ा सा) चलने से उस कागज के किले की सारी शोभा (पति) नष्ट हो जाती है, क्षणमात्र में (प्राणी) जन्म कर मर जाता है ॥४॥

नदी के किनारे पर वृक्ष अथवा घर हो और उस घर में सर्पिणी का घर हो, यदि नदी उलट कर (बहने लगे), तो वह घर अथवा वृक्ष कहाँ रहता है ? (तात्पर्य यह कि नष्ट हो जाता है), सर्पिणी भी (ऐसा अवसर पाकर) मनुष्य को आ इसती है; मन में द्वैतभाव (अथवा माया) का होना सर्पिणी है । [तात्पर्य यह कि हमारा शरीर मीत के किनारे ही रहता है । इमे प्रत्येक समय मृत्यु का भय है । काल रूपी सर्पिणी से बचने का एकमात्र उपाय है—गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान] ॥५॥

गुरु द्वारा प्रदत्त ब्रह्मज्ञान ही (इस सर्पिणी से बचने का) गारुड मंत्र है । गुरु की शिक्षा द्वारा उसके वचनों पर ध्यान करने से (माया के) विष जल जाते हैं और तन, मन बर्ष के समान शीतल हो जाते हैं, सत्व की प्राप्ति से हरि की निराली (निष्केवल) भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥६॥

(हे प्रभु) जितनी भी (सृष्टि) है, वह तुझ ही से माँगती है; तू सभी जीवों के ऊपर दयालु है । (हे प्रभु) मैं तेरी शरण में पड़ा हूँ, (मेरी) प्रतिष्ठा—मर्यादा रख; सत्याचरण से ही गोपाल प्राप्त होता है ॥७॥

धंधो—प्रपंचों में फँसी हुई (दुनिया) अन्धी हो गई है, (जिससे) उसे सुझाई नहीं पड़ता, (वह हिसाबूँ) बधिको का कर्म करती है । सद्गुरु के मिलने ही पर ही (दुनिया) समझती बूझती है; (उस सद्गुरु की शिक्षा से) सच्चा ज्ञान मन में समा जाता है ॥८॥

गुणविहीन देह सत्य (परमात्मा) के बिना कच्ची है, मैं (इस संबंध में) अपने गुरु से पूछता हूँ । नानक का कथन है कि प्रभु गुरु, प्रभु (परमात्मा) को दिखा देता है, (साथ ही यह भी दृढ़ करा देता है कि) बिना सत्य परमात्मा के यह जगत् स्वप्नवत् है ॥९॥२॥

[३]

चातुक मीन जल हो ते सुनु पावहि सारिग सबदि सुहाई ॥१॥
 रैन बबोहा बोलियो मेरी माई ॥१॥ रहाउ ॥
 प्रिय सिउ पीति न उलटै कबहू जो तै भावै साई ॥२॥
 नीद गई हउमै तनि थाकी सच मति रिदै समाई ॥३॥
 रुखी बिरलीं ऊहउ भूखा पीवा नामु सुभाई ॥४॥
 लोचन तार ललता बिललाती दरमन पिआस रजाई ॥५॥
 प्रिय बिनु सीगारु करो तेता तनु तापै कापरु अंगि न सुहाई ॥६॥
 अपने पिआरे बिनु डकु खिनु रहि न सकउं बिन मिले नौद न पाई ॥७॥
 पिर नभीकि न बूझे अपुड़ी सतिगुरि दोषा दिलाई ॥८॥
 सहजि मिलिआ तब ही सुख पाइआ तृसना सबदि बुभाई ॥९॥
 कहु नानक तुम्ह ते मनु मानिआ कोमति कहनु न जाई ॥१०॥३॥

चातक कोर मीन जल में सुख पाने है और मृग को (वीणा आदि की) ध्वनि से सुख प्राप्त होता है ॥१॥

हे मेरी माँ, रात्रि में पपीहा ('पी-पी') बोलता है । (उसकी दर्द भरी आवाज से मेरे हृदय में वेदना होती है) ॥१॥ रहाउ ॥

(वास्तविक) प्रीति प्रियतम से कभी उलटती नहीं; (अर्थात् प्रीति एक रस बनी रहती है); (हे स्वामी) प्रीति तो वही है, जो तुम्हें बचे, अच्छी लगे ॥२॥

(प्रियतम हरी के मिलने से अज्ञान की) नीद चली गई, शरीर में अहभावना समाप्त हो गई और हृदय में सच्ची बुद्धि समा गई ॥३॥

(मैं जंगलो के) रुखों-वृक्षों पर उड़ कर जाता हूँ, (किन्तु) भूखा हो रहता हूँ; (अन्त में अमृतवन) नाम को प्रेम से (सुभाई) पाँकर (तृप्त होता हूँ) ॥४॥

(हे प्रभु, तेरे) दर्शन की प्यास तृप्त करने के लिए, नेत्र तार में बंधे हैं, (तात्पर्य यह कि टकटकी लगाए देख रहे हैं) और जिह्वा बिलख रही है ॥५॥

प्रियतम (हरी) के बिना मैं (जितना ही) शृंगार करती हूँ, उतना ही शरीर तप्त होता है; कपड़े भी अंगों को नहीं मुहाते ॥६॥

अपने प्रियतम के बिना (मैं) एक क्षण भी नहीं रह सकती; बिना (प्रियतम के) मिले नीद भी नहीं प्राप्त होती ॥७॥

प्रियतम (हरी, बिलकुल) नजदीक है, (किन्तु जीवात्मा रूपी) बेचारी (स्त्री) उसे नहीं समझ पाती; अंत में सद्गुरु (उसे) दिखा देता है ॥८॥

(प्रियतम हरी) सहज भाव से मिल गया, तभी (वास्तविक) सुख को प्राप्ति हुई; (गुरु के) शब्द द्वारा तृष्णा भी बुझ गई ॥९॥

नानक कहता है (कि हे प्रभु हरी) तुम्हसे (मेरा) मन मान गया, (शान्त हो गया); (अब उसको) कोमल नहीं जा सकती ॥१०॥३॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ घर २ ॥

[४]

अखली ऊंडी जलु भर नालि । डूगर ऊचउ गड़ु पातालि ॥
 सागर सीतलु गुर सबद बीचारि । मारगु सुकत। हउमै मारि ॥१॥
 मै अंधुले नावै की जोति । नाम अघारि चला गुर कै भै भेति ॥१॥ रहाउ ॥
 सतिगुर सबदी पाधरु जाणि । गुर कै तकीऐ साचै ताणि ॥
 नामु सम्हालसि रुकी बारिणि । थै भावै दरु लहसि पिराणि ॥२॥
 ऊंडा बैसा एक लिवतार । गुर कै सबदि नाम आधार ॥
 ना जलु डूंगरु न ऊची धार । निज घरि वासा तह मगु न चालणहार ॥३॥
 जितु घरि वसहि तू है बिधि जाएहि बीजउ महलु न जापै ।
 सतिगुर बाभळु समझ न होवी समु जगु दबिआ छापै ॥
 करण पलाउ करै बिललतउ बितु गुर नामु न जापै ।
 पल पंकज महि नामु छडाए जे गुर सबदु सिजापै ॥४॥
 इकि मूरख अंधे सुगध गवार । इकि सतिगुर कै भै नाम अघार ॥
 साची बारी मीठी अमृत धार । जिनि पीती तिसु मोखदुआर ॥५॥
 नामु भै भाइ रिदै वसाही गुर करणी सबु बारी ।
 इंदु वरसै धरति सुहावी घटि घटि जोति समाणी ॥
 कालर बीजसि दुरमति ऐसी निगुरे की नीसाणी ।
 सतिगुर बाभळु घोर अंधारा डूबि मुए बितु पाणी ॥६॥
 जो किछु कीनो सु प्रभू रजाइ । जो घुरि लिखिआ सु भेटणा न जाइ ॥
 हुकमे बाधा कार कमाइ । एक सबदि राचै सचि सभाइ ॥७॥
 चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं ।
 सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करनि मिलै बैसालं ॥
 जांमगु मरणा दीसै सिरि ऊभो लुधिआ निद्रा कालं ॥
 नानकु नामु मिलै मन भावै साची नदरि रसालं ॥८॥१॥४॥

सारी (पृथ्वी) जल के भार से झुकी हुई है, पर्वत ऊंचा है और खाईं पाताल तक है, (अर्थात् बहुत गहरी है) । [इस पंक्ति में मार्ग की तीन कठिनाइयाँ दिखाई गई हैं—लहरें मारता हुआ समुद्र, पर्वत की ऊँचाई और खाईं की गहराई । पर अगली पंक्तियों में यह बताया गया है गुरु-कृपा और परमात्मा की कृपा से सारी कठिनाइयाँ आसान हो जाती हैं] । गुरु के शब्दों पर विचार करने से सागर शीतल हो जाता है तथा अहंकार को मारने से मार्ग मुक्त हो जाता है, (उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं रह जाती) ॥१॥

मुक्त अन्धे के लिए तो नाम की ज्योति (का ही सहारा) है। हरिनाम, गुरु के भय (एवं गुरु द्वारा दिखाए गए) भेद—रहस्य के सहारे मैं (आध्यात्मिक मार्ग में) चला हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

सद्गुरु के शब्द द्वारा मार्ग जाना जाता है। गुरु के सहारे सत्य (परमात्मा) की शक्ति (का बोध होता है)। (सच्चा साधक) सुन्दर वाणी द्वारा नाम संभालता है। हे हरी, (यदि साधक) तुझे भ्रष्टा लगे, तो (वह) तेरा दरवाजा पहचान लेता है ॥ २ ॥

(सच्चा शिष्य परमात्मा में) एक लिबतार लगा कर बैठा है, (तात्पर्य यह कि एक-निष्ठ ध्यान में लीन है)। गुरु की शिक्षा द्वारा हरिनाम को ही (उसने अपना) आधार बना लिया है। (ऐसे साधक के लिए) न तो (मार्ग में) जल पड़ता है, न पर्वत और न ऊँची धार हो। [उसके साधनमार्ग की सारी कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं]। (वह अपने आत्म स्वरूपी) घर में बस जाता है, उसे फिर मार्ग नहीं चलना पड़ता, (तात्पर्य यह कि आवागमन का मार्ग समाप्त हो जाता है) ॥३॥

जिस घर में (हरी) बसता है, (हे गुरु), तू ही उसकी विधि जानता है, औरो को (दूसरो को) वह महल नहीं प्रतीत होता। सद्गुरु के बिना समझ नहीं होती, सारा जगत् (अज्ञानता रूपी) रोग से दबा है। (सासारिक प्राणी माया के प्रपंचों में फँस कर) कारुण्य-प्रलाप करता है और विलसता है; बिना गुरु के (उसे) नाम नहीं प्रतीत होता। यदि गुरु के शब्द द्वारा नाम को पहचान लिया जाय, तो पंकज रूपी आँखों के पलक मारते ही, (तात्पर्य यह कि पलक मारते ही) (वह)—नाम (शिष्य को सासारिक बन्धनों से) छुड़ा देता है ॥४॥

कुछ लोग तो मूर्ख, अन्धे, मुग्ध और गर्वार होते हैं, (वे विषयों को ही सर्वस्व समझते हैं) और कुछ लोग सद्गुरु के भय से नाम का आश्रय (ग्रहण करते) हैं। (गुरु की) सच्ची वाणी मोठी अमृतधार है, जिसने उसे पिया है, (उसे) मोक्ष-द्वार प्राप्त हो गया है ॥५॥

(साधकगण) हरिनाम को भय और प्रेम से (अपने) हृदय में बसाते हैं, (वे) गुरु के कार्य करते हैं और सत्य वाणी (पर आचरण करते हैं)। (गुरु-शब्द रूपी) बादल—इन्द्र बरसता है, तो (साधक की हृदय-रूपिणी) पृथ्वी मुड़ावनी लगनी है और प्रत्येक घट में (हरी की) ज्योति व्याप्त दिखाई पड़ती है। गुरु-विहीन प्राणी निर्बुद्धि होता है; उसकी बुद्धि बालू के खेत (के समान बंजर होती) है; (उसमें) बीने से (कुछ भी नहीं उगता)—यही उसकी निशानी है। सद्गुरु के बिना घनघोर अंधकार रहता है, (सद्गुरु-विहीन प्राणी) बिना पानी के ही डूब मरते हैं ॥६॥

जो कुछ किया जाता है, वह प्रभु की आज्ञा से होता है। जो प्रारम्भ से (हरी, की ओर से) लिखा रहता है, वह भेदा नहीं जा सकता। (प्राणी हरी के) हुक्म में बंध कर कार्य करता है। (जो व्यक्ति हरी के) एक शब्द—नाम में अनुरक्त होता है, वह सत्य में समा जाता है ॥७॥

(हे प्रभु), तेरा हुक्म चारों दिशाओं में बरत रहा है; चारों दिशाओं तथा पाताल में (तेरा) नाम ही (व्याप्त) है। प्रभु का सच्चा शब्द सभी में बरत रहा है। सदैव स्थिर रहने वाला (हरी) कृपा से ही प्राप्त होता है। जन्म, मरण, क्षुधा, निद्रा और काल सिर के ऊपर खड़े दिखाई पड़ रहे हैं। नानक का कथन है कि रसिक (हरी) की कृपादृष्टि तथा (उसके) मन को बचने से ही नाम की प्राप्ति होती है ॥८॥१॥४॥

[५]

मरण मुक्ति गति सार न जानै । कठे बैठी गुर सबदि पछानै ॥१॥
 तू कैसे आड़ि पायो जालि । अलखु न जाचहि रिदै सम्हालि ॥१॥ रहाउ ॥
 एक जीअ कै जीअ खाहो । जलि तरती बूडी जल माही ॥२॥
 सरब जीअ कीए प्रतपानी । जब पकड़ो तब ही पछुतानी ॥३॥
 जब गलि फासि पड़ी अति भारी । ऊडि न साकै पंख पसारो ॥४॥
 रसि छूगहि मनमुखि गावारि । फाथी छूटहि गुण गिअन बीचारि ॥५॥
 सतिगुरु सेवि तूटै जमकालु । हिरदै साचा सबदु सम्हालु ॥६॥
 गुरमति साची सबदु है सारु । हरि का नामु रखै उरिधारि ॥७॥
 से दुख आगै जि भोग बिलासे । नानक मुक्ति नही बिनु नावै साचे ॥८॥२॥५॥

(जीवात्मा रूपी स्त्री) मरण तथा मुक्ति की गति की खबर नहीं जानती । गुरु के समीप बैठकर ही (वह) उसके शब्द को पहचान सकती है ॥१॥

(हे जीवात्मा रूपी) आड़ि, तू कैसे जाल में फँस गयी ? [आड़ि=बगुले की भाँति का एक पक्षी जो जल के किनारे रहता है] । [अथवा इसका अर्थ यह भी हो सकता है—(हे मछली), तू जाल के आड़ि (घेरे में कैसे फँस गई ?) अलख्य (हरी) को हृदय के अन्तर्गत संभालना नहीं जानती ? ॥१॥ रहाउ ॥

एक जीव को (दूसरा) जीव खाता है (अथवा एक जीव अपने जीवन की रक्षा के निमित्त कई जीवों को खाता है) । (इस प्रकार) जल में तैरानेवाले (जीव) जल ही में डूब जाते हैं ॥ २ ॥

सारे जीवों को (तू ने) बहुत तपाया है, किन्तु जब (स्वतः) पकड़ी गई, तब पछताने लगी ॥ ३ ॥

जब गले में बहुत बड़ी फाँसी पड़ गई, तो पंखें खोल कर उड़ नहीं सकती ॥ ४ ॥

मनमुखी गैवारिन (जीवात्मा) स्वाद ले लेकर (चारा) चुगती है; (किन्तु) जाल में पड़ कर फँस जाती है । (हे जीवात्मा) तू शुभ गुणों और ज्ञान को विचार कर इस बंधन से छूट सकती है ॥ ५ ॥

(हे जीवात्मा) मद्गुरु की सेवा कर, ताकि यमराज रूपी काल का भय दूट जाय—समाप्त हो जाय । (तू) अपने हृदय में सच्चे शब्द को सम्हाल ॥ ६ ॥

जिस (जीवात्मा) ने गुरु की सच्ची शिक्षा से श्रेष्ठ शब्द धारण किया है, वह हरी का नाम अपने हृदय में बसाती है ॥ ७ ॥

जो (सांसारिक) भोगो-बिलासों में पड़े हैं, उन्हें आगे दुःख होता है । नानक का कथन है कि बिना सच्चे नाम के मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ८ ॥ २ ॥ ५ ॥

१ओं सतिगुर प्रसादि ॥ रागु मलार, वार, महला १

राणे कैलास तथा मालदे की धुनि

सलोकु : हेको पाधरु हेकु दरु गुर पउड़ी निज धानु ।

रुड़ ठाकुर नानका सभि सुख साबउ नामु ॥१॥

विशेष : कैलास देव और माल देव दो सगे भाई थे । जहाँगीर के शासन काल में जम्मू-कश्मीर के दोनों राजा थे । उनकी और से बादशाह जहाँगीर को सदैव भय बना रहता था । दोनों की शक्ति को क्षीण करने के लिए जहाँगीर ने कूटनीति का प्रयोग किया उसने एक भेदिए द्वारा दोनों भाइयों को आपस में लड़ा दिया । दोनों में घमासान युद्ध हुआ । इस युद्ध में माल-देव की विजय हुई और कैलास देव बन्दी बना लिया गया । किन्तु मालदेव ने अपने पराजित भाई के साथ वही व्यवहार किया, जैसा सिकन्दर ने पोरस के साथ किया था । मालदेव ने अपने भाई को आधा राज्य वापस कर दिया । चारणों ने इस युद्ध का वर्णन वार में किया है । इस वार का तर्ज निम्नलिखित है :—

धरत घोड़ा, परवत पलाण, सिर टट्टर अम्बर ।

नै से नदी नडिम्नवे राणा जल कंबर ॥

सलोकु : (अपने आत्मस्वरूपी) स्थान प्राप्त करने के लिए गुरु सीढ़ी है—यह एक ही मार्ग है और एक ही दरवाजा है । नानक का ठाकुर (अति) सुन्दर है और उसके सच्चे नाम में सभी दुख (भरे) हैं ॥ १ ॥

पउड़ी : आपोन्हे आपु साजि आपु पछाणिया ।

अंबर धरति विछोड़ि चंदोआ तारिआ ॥

बिरु थंम्हा गगनु रहाइ सबदु नोसरिआ ।

सूरजु चंदु उपाइ जोति सभारिआ ॥

कोए राति दिनंतु चोज बिडासिआ ॥

तीरथ घरम बीचार नाबण पुरबारिआ ।

तुधु सरि अवरु न कोइ कि आलि बसारिआ ॥

सबै तखति निवासु होर आबण जासिआ ॥१॥

पउड़ी : (हे कर्तापुरुष, हरी) तूने अपने आप को (सृष्टि के रूप में) निमित्त कर आप ही उसे पहचानता है । आकाश और पृथ्वी का विच्छेद करके, (उन्हें पृथक् करके), (आकाश की) चादनी तूने ही तानी है । शब्द (हुक्म) को प्रकट करके (तात्पर्य यह है कि अपने हुक्म द्वारा) बिना किसी आसरे (थम्हा) के आकाश को टिका रक्खा है । सूर्य और चन्द्रमा को उत्पन्न करके (उनके अन्तर्गत, तूने ही) ज्योति प्रविष्ट कराई है । रात्रि और दिन (दो विरोधी तत्वों) को तू ने ही निमित्त किया है, (इस प्रकार, तेरे) चरित्र आश्चर्यजनक हैं । तीर्थादिकों में धर्म-सम्बन्धी विचारों एवं पुण्य-पर्वों पर स्नानादिक (का विधान तू ने ही किया है) । (हे स्वामी), तेरे समान और कोई नहीं है । (फिर तेरा) वर्णन करके क्या कहा जाय ? (हे श्रुत, तेरे) तत्त्व की ही शाश्वत स्थिति (निवास) है, (शेष) और (वस्तुएं) तो जानेजानेवाली—क्षणभंगुरा हैं ॥ ॥

सलोकु : नानक सावणि जे बसै चहु ओमाहा होइ ।
नागां मिरगां मछीआं रसीआं धरि धनु होइ ॥२॥

नानक सावणि जे बसै चहु वेछोड़ा होइ ।
गई पुता निरखना पंथी जाकरु होइ ॥३॥

सलोकु :—नानक का कथन है कि यदि सावन बरसता है, तो (इन) चारों को उत्साह (आनन्द) होता है—साँपों, मृगों, मछलियों एवं (उन) भोगियों को जिनके घर में धन होता है ॥ २ ॥

नानक का कथन है कि यदि सावन बरसता है, तो (इन) चारों को वियोग होता है—गाय के बछड़ों को, निर्धनों को, पथिकों को और (यदि) नीकर हो, (तो उसे) ॥ ३ ॥

पउड़ी : तू सच्चा सचिआरु जिन सत्तु बरताइआ ।
बैठा ताड़ी लाइ कवलु छपाइआ ॥
ब्रह्मे बड़ा कहाइ अतु न पाइआ ।
न तिसु बापु न माइ किनि तू जाइआ ॥
ना तिसु रूपु न रेल बरन सबाइआ ॥
ना तिसु भुख पिआस रजा पाइआ ।
गुर महि आपु समोइ सबदु बरताइआ ॥
सच्चे ही पतीआइ सचि समाइआ ॥२॥

पउड़ी :—(हे हरी) तू ही (एक मात्र) सच्चा और अति सच्चा है, जो (सभी स्थानों में) सत्य रूप से बरत रहा है । (तू) ताड़ी लगा कर—ध्यान लगाकर बैठा है और कमल को छिपा रक्खा है । [ब्रह्मा का उत्पत्ति-स्थान कमल माना जाता है । यहाँ कमल का अभिप्राय सब की उत्पत्ति के आदि कारण से है] । ब्रह्मा बड़े तो कहे जाते हैं, (किन्तु वे भी) तेरा अन्त न पा सके । उस (हरी) के न बाप है और न माँ; (हे हरी), तुझे किसने उत्पन्न किया है ? (अर्थात् किसी ने नहीं, तू अयोनि और स्वयम्भू है) । न उस (प्रभु) का (कोई) रूप है, न रेखा—बिह्व और न सभी रंगों में से (उसका कोई) रंग ही है । उसे न भूख (लगती) है और न प्यास, (वह सदैव) तृप्त रहता है ।

[विशेष :—'रजा' और 'धाइआ' दोनों शब्दों का अर्थ तृप्त होना है । पुरानी पंजाबी में 'धाउणा'—तृप्त होने के अर्थ में प्रयुक्त होता था, 'श्री गुरु ग्रन्थ कोश'—पृष्ठ ६६६] ।

(हे हरी, तूने) अपने आप को गुरु में समवा रक्खा है—प्रविष्ट कर रक्खा है (और उस गुरु के) शब्द—उपदेश (के माध्यम से) बरत रहा [अथवा गुरु में अपने आपको प्रविष्ट करके अपना हुक्म (शब्द) बरत रहा है] । सच्चे (हरी) द्वारा (गुरु) पतियाता है—विश्वास करता है (और वह) सत्य में समाया है ॥ २ ॥

सलोकु : बैबु बुलाइआ वैगो पकड़ि डंडोले बांह ।
भोला बंदु न जाएई करफ कलेजे माहि ॥४॥

कुलहां देंबे बाबले लेंबे बडे निलज ।
 चूहा खड न भावइ तिकलि बंन्है छज ॥
 बेन्हि दुधार्द से भरहि जिन कउ बेनि सि जाहि ।
 नानक हुकमु न जापई कियै जाइ समाहि ॥
 फसलि अहाड़ी एकु नामु सावणी सवु नाउ ।
 मै महबूदु लिखाइआ खसमे कै दरि जाइ ॥
 दुनीआ के दर केतड़े केते आवहि जाहि ।
 केते मंगहि मंगते केते मंगि मंगि जाहि ॥५॥
 सउ मरु हसती घिउ गुडु खावै पंजि सै बाराखा लाइ ।
 डकै फूकै लेह उडावै साहि गइऐ पछुताइ ॥
 अंधी फूकि सुई देवानी । खसम मिटी फिरि भानी ॥
 अशु गुला चिड़ी का सुगणु गैरि चड़ी बिसलाइ ।
 खसमे भावै ओहा चंगी जि करे खुदाइ खुदाइ ॥
 सकता सीहू मारे सै मिरिआ सभ पिछै पै खाइ ।
 होइ सताणा घुरे न भावै साहि गइऐ पछुताइ ॥
 अंधा किस नो मुकि सुणावै । खसमे भूलि न भावै ॥
 अक सिउ प्रीति करे अकतिडा अक डाली बहि खाइ ।
 खसमे भावै ओहो चंगा जि करे खुदाइ खुदाइ ॥
 नानक दुनीआ चारि विहाड़े सुखि कोले दुखु होई ।
 गला वाले हैनि धनेरे छडि न सकै कोई ॥
 मर्खी मिठै मरणा ।
 जिन तू रखहि तिन नेड़ि न भावै तिन भउ सागर तरणा ॥६॥

सलोकु :—विशेष : यह 'सलोकु' गुरु नानक की बाल्यावस्था से संबंधित है । गुरु जी बाल्यावस्था में परमात्मा के प्रेम एवं विरह में अत्यधिक व्याकुल थे । वे ईश्वरानुराग में ससार को भूल चुके थे । उनके पिता जी ने उन्हें बीमार समझ कर वैद्य को दिखाया । गुरु नानक जी ने इस 'सलोके' में वैद्य को समझा कर अपने आन्तरिक प्रेम की वास्तविक स्थिति बताई है ।

अर्थ : वैद्य इलाज (वंदगी) करने के लिए बुलाया गया । वह बाँह पकड़ कर (मर्ज) दूँकता है, (तात्पर्य यह कि नाड़ी पकड़ कर, उसके लक्षणों से रोग का पता लगाना चाहता है) । (किन्तु) भोला वैद्य यह नहीं जानता (कि मेरे) कलेजे में दर्द—करक है; (बाह्य उपचारों से मेरी शोषधि नहीं हो सकती) ॥ ४ ॥

कुलही (टोपी) देने वाले (तथा शिष्यों से माँग कर) लेनेवाले (गुरु अथवा पीर) बाबले और बड़े निर्लज्ज हैं । चूहा स्वयं तो बिल में समाता नहीं, (किन्तु वह अपनी) कमर में सूँप बाँध कर (उसमें प्रविष्ट होना चाहता है) । [उसी प्रकार सांसारिक गुरु स्वयं तो तर सकता नहीं, किन्तु श्रोता को तारने का बीड़ा लेता है] । (जो दूसरों को) दुष्प्राप्त देते हैं, वे स्वयं भरते हैं और जिन्हें (दुष्प्राप्त) दी जाती है, (वे भी इस संसार से) चले जाते हैं । (नानक का कथन है कि सांसारिक मनुष्यों को)

हरी का हुक्म नहीं मुझाई पड़ता, (वे न मालूम) कहाँ समा जाते हैं । (हरी का) एक नाम भसाड़ की फसल है (और उसका) 'सत्य नाम' सावन की (फसल है) । मैंने पति (परमात्मा के) दरवाजे पर जाकर (उन फसलों का) पट्टा—माफी का पट्टा लिखा लिया है । दुनियाँ के दरवाजे पर कितने ही (मौजूद) हैं, कितने ही आते हैं और कितने ही चले जाते हैं । कितने तो (इस दुनियाँ में) मंगते—भिल्लमंगे (होकर) माँगते हैं और कितने ही माँग-माँग कर चले जाते हैं ॥ ५ ॥

हाथी सवा मन घी और गुड़ खा जाता है तथा पाँच सी मन दाने (अन्न) । (वह बहुत खाकर) डकार मारता है और खेह उठाना है, किन्तु सौंस चली जाने पर—(निकल जाने पर) पछताता है । अंधी और दीवानो (दुनियाँ) अहंकार में पड़कर मरती रहती है । (जब वह) पति (परमात्मा) में समाती है, (तभी) अच्छी लगती है । (आटे की) आधो गोली चिड़िये का चारा होता है, (किन्तु) वह उतने ही को खा कर) आसमान में चढ़ कर बोलती है । पर यदि (वह) परमात्मा को अच्छी लगे तो वही चिड़िया (अपने अहंभाव को त्याग कर) 'खुदा-खुदा' करने लगती है । शक्तिशाली (सिंह) सौ मृगों को मारता है; (किन्तु उसके) पीछे सभी (जन्तु) खाते हैं । हैं । (कोई जानवर इतना) शक्तिशाली हो, कि अपनी) माँ में न समाए, (किन्तु) श्वास निकल जाने पर (वह) पछताता है । ऐ अंधे, (प्राणी) तू गरज कर (बुकि) किने (अपनी बातें) सुना रहा है ? (तू अपने अहंकार के कारण) पति (परमात्मा) को तिलकुल भी अच्छा नहीं लगता । आक (मदार) पर बैठने वाली मकड़ी (अस्तिडा) आक ही से प्रेम करती है, उसकी डाली पर बैठ कर उसे खाती है । किन्तु पति परमात्मा के अच्छी लगने पर (वह मकड़ी भी) अच्छी हो जाती है और 'खुदा-खुदा' करने लगती है । नानक का कथन है कि दुनिया चार दिनों की है; (इस दुनियाँ में) सुख करने से दुःख ही होता है । (इस जगत् में) बात करनेवाले तो बहुत में हैं, (किन्तु सुखों को) कोई नहीं त्याग सकता—(सभी कोई मोखिक त्यागी हैं) । (वे सांसारिक प्राणी विषय-भोगों में लिप्त होकर उसी प्रकार मर जाते हैं, (जिस प्रकार) मक्खी मोठे में उलझ कर मर जाती है ; (हे प्रभु), जिनकी तू रक्षा करता है, उनके निकट (सांसारिक विषय-भोग) नहीं आने और वे संसार-सागर को तर जाते हैं ॥ ६ ॥

पड़ड़ी : अगम अगोचर तू धरणी सचा अलख अपार ।
तू दाता सभि मंगते इको बेवणहार ॥
जिनी सेविआ तिनी सुतु पाइआ गुरमती वीचार ।
इकना नो तुषु एवै भावदा माइआ नालि पिआर ॥
गुर कै सबदि सलाहीऐ अंतरि प्रेम पिआर ।
बिरु प्रीती भगति न होवई विरु सतिगुर न लगै पिआर ॥
तू प्रभु सभि तुषु सेवदे इक ढाढी करे पुकार ।
बेहि दानु संतोखिआ सचा नामु मिलै आषार ॥३॥

पड़ड़ी : (हे हरी) तू अगम, अगोचर, सच्चे स्वामी [वणी—सिन्धी शब्द है, जिनका अर्थ स्वामी, मालिक है], अलक्ष्य और अपार है; तू दाता है और सब मंगते—भिल्लारी

हैं, (तू) ही एक देनेवाला है। गुरु की शिक्षा पर विचार करके, जिन व्यक्तियों ने तेरी आराधना की है, (उन्होंने) सुख पाया है। कुछ प्राणियों के सम्बन्ध में तेरी यह इच्छा है कि वे माया के साथ प्यार करते रहे। गुरु के उपदेश द्वारा आन्तरिक प्रेम और स्नेह से (हरी की) स्तुति करनी चाहिए। बिना प्रीति के (प्रेमा) भक्ति नहीं (उत्पन्न) होती और बिना सद्गुरु के प्रीति नहीं होती। (हे हरी), तू प्रभु है और सब तेरी आराधना करते हैं। (तेरा) एक चारण (नानक) (भक्ति-प्राप्त के निमित्त) पुकार कर रहा है। तू संतोषियों को यह दान दे कि (तेरा) सच्चा नाम ही उन्हें आधार प्राप्त हो ॥३॥

सलोक : राती कालु घटे दिन कालु । छिजै काइआ होइ परालु ॥
वरतिणि वरतिआ सरब जंजालु । भुलिआ चुकि गइआ तपतालु ॥
अंधा भलि भलि पइआ भेरि । पिछै रोवहि लिआवहि केरि ॥
बिनु बूझे किछु सूझे नाही । मोइआ रोंहि रोंदे मरि जाही ॥
नानक खसमे एवै भावै । सेई मुए जिन चिति न आवै ॥७॥

सुआ पिआरु प्रीति सुई सुआ वैरु वादी ।
बंनु गइआ रूपु विएसिआ दुखी देह रुली ॥
किछु ग्राइआ कह गइआ किहु न सीओ किहु सी ।
मनि मुलि गला गोईआ कीता चाउ रली ।
नानक सचे नामु बिनु सिर खुर पति पाटी ॥८॥

सलोक :—दिनरात, समय (काल) बीतता जाता है। शरीर छोड़ता और (धान के) पलाल—पियरा (के समान जर्जर होता है)। सारे जंजानमय व्यवहारों में ही बरताव होते रहे। (सासारिक विषयों में) भटक कर (सारे) तपों के प्रकार समाप्त हो गए। (अर्थात् मायिक प्रपंचों में पड़कर तपश्चर्या की भावना जाती रही)। अंधा प्राणी भ्रम-भ्रम कर (जन्म-मरण के) भ्रमों में पड़ जाता है और पीछे इसलिए रोता है (कि पूर्वकृत कर्मों को) लौटा लिया जाय। बिना (हरी को) समझे हुए कुछ भी मुभाई नहीं पड़ता। (मायासक्त जीते) मरते हुए रोते हैं और रोकर मर जाते हैं; नानक का कथन है कि पति (परमात्मा) को इसी प्रकार अच्छा लगता है। (वास्तव में) वे ही प्राणी मरते हैं, जिनके चित्त में (हरी) नहीं आता ॥ ७ ॥

(मनुष्य के मरने के पश्चात्) उसके मोड़ (प्यार), प्रीति, वैर-विरोध सब कुछ समाप्त हो जाते हैं; (उसका) रंग चला जाता है, रूप नष्ट हो जाता है और दुःखी देह नष्ट जाती है। (मनुष्य के मरने के पश्चात्, यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि वह) 'कहाँ' से आया और कहाँ चला गया, (वह) कुछ नहीं था कि कुछ था भी ? (सासारिक प्राणियों का समय) मन और मुख से बातें बनाने में तथा चाव और रंगरलियाँ करने में (बीत जाता है)। नानक का कथन है कि बिना हरी के सच्चे नाम के सिर से लेकर पैर तक की (अर्थात् सारी की सारी) प्रतिष्ठा फट जाती है ॥८॥

पंजड़ी : अमृत नामु सवा सुखवाता अते होइ सखाई ।
बाहु गुरू जगतु बजराणा नावै सार न पाई ॥

सतिगुरु सेवहि से परवारु जिन्ह जोती जोति मिली ।
 सो साहिबु सो सेवकु तेहा जिसु भाणा मनि बसाई ॥
 आपणै भाएँ कहु किनि सुलु पाइआ अंधा अंधु कमाई ।
 बिलिआ कबे ही रजै नाही भूरख भुख न जाई ॥
 दूजै सभु को लगि बिगुता बिनु सतिगुरु बुझ न पाई ।
 सतिगुरु सेवे सो सुलु पाए जिस नो किरपा करे रजाई ॥४॥

पउडी : (हरी का) अमृत नाम सदैव सुखदाता है और अंत में (वही) सहायक होता है । गुरु के बिना (सारा) जगत् बौराया रहता है, उसे नाम की खबर—सूझ नहीं प्राप्त होती । (जो व्यक्ति) सद्गुरु की सेवा करते हैं और जिन्होंने (परमात्मा की शाश्वत और अखंड ज्योति में) (अपनी) ज्योति मिला दी है, वे ही प्रामाणिक हैं । वही नेवक उस साहब (हरी का सच्चा) सेवक है, (जिसने) प्रभु की इच्छा (अपने) मन में बसा ली है । (भला बताओ) इच्छा के अनुसार चलनेवाले (किस व्यक्ति) ने सुख पाया है ? (वह मनमुख) अंधा तो अंधे ही कर्मों को करता है, (जिससे संसार-चक्र में फँसा रहता है) । मूर्ख (प्राणी) विषयो से कभी नहीं तृप्त होता और न उनसे भूख ही जाती है । द्वैतभाव में पड़कर सभी नष्ट हो जाते हैं; बिना सद्गुरु के समझ नहीं आती । (जो) सद्गुरु की सेवा करता है, उसी को सुख प्राप्त होता है; (पर सद्गुरु की सेवा उसी को प्राप्त होती है), जिसके ऊपर रजा वाला, परमात्मा कृपा करता है ॥ ४ ॥

सलोकु : सरमु घरमु दुइ नानका जे धनु पलै पाइ ।
 सो धनु मित्र न कानीऐ जितु सिरि चोटां खाइ ॥
 जिन कउ पलै धनु वसै तिन का नाउ फकीर ।
 जिन्ह कै हिरदै तू बसहि ते नर गुणी गहीर ॥६॥

दुखी दुनी सहैड़ीऐ जाइ त लगहि दुख ।
 नानक सवे नाम बिनु किसै न लयी भुख ॥
 रूपी भुख न उतरै जां देखां तां भुख ।
 जेने रस सरोर के तेते लगहि दुख ॥१०॥

अंधी कंभी अंधु मनु मनि अंधे तनु अंधु ।
 चिकड़ि लाऽऐ किय़ा थोऐ जां तुटै पथर बंधु ॥
 बंधु तुटा बेड़ी नही ना तुलहा ना हाथ ।
 नानक सवे नाम त्रिगु केते डुबे साथ ॥११॥

लख मए सुझा लख मए रुपा लख साहा सिरि साह ।
 लख लसकर लख बाजे नेजे लखी घोड़ी पातिसाह ॥
 जिधै साइरु संघणा अगनि पाणि असगाह ।
 कंधी बिसि न आवई धाही पवै क्हाह ॥
 नानक ओथै जाणीअहि साह केई पातिसाह ॥१२॥

श्रम अथवा लज्जा [सरमु = (१) संस्कृत, श्रम; (२) फारसी, लज्जा] तथा धर्म (के द्वारा यदि कोई नाम रूपी) धन प्राप्त कर लेता है, (तो वही वास्तविक धन है) वह (सामारिक) धन मित्र नहीं कहला सकता, (जिससे अन्त में) सिर पर चोटे खाने पड़ती है। जिनके पास (उपर्युक्त सासारिक) धन है, वे कंगाल—फकीर हैं। (हे प्रभु), जिनके हृदय में तू बसता है, वे मनुष्य गुणी और गंभीर होते हैं ॥ ६ ॥

माया (सम्पत्ति) दुःखों से एकत्र की जाती है, और (उसके चले) जाने पर भी दुःख ही होता है, (अतएव धन-सम्पत्ति आदि और अन्न दोनों में दुःखदायी है)। नानक का कथन है कि बिना (हरी के सच्चे) नाम के किसी की भी भूल मिटी नहीं। सौदर्य (रूप) द्वारा भी भूल नहीं मिटती; अतः जहाँ देखी जाती है, भूल ही भूल (दिखाई पड़ती) है। शरीर में जितने ही आनन्द होते हैं, (उनके साथ) उतने ही दुःख भी (लगे रहते) हैं ॥ १० ॥

अंधे (अविवेकपूर्ण) कर्मों से मन भी अन्धा (अज्ञानी) होता है, मन के अन्धे होने से शरीर भी अन्धा (अविवेकी) हो जाता है। जहाँ पर पत्थर (का बनाया हुआ) बाँध टूट जाता है, वहाँ कीचड़ स्थापित करने से क्या बन सकता है ? [तात्पर्य यह कि सासारिक साधनों से हरी की प्राप्ति नहीं हो सकती]। बाँध टूट गया है; न तो नाव है, न बेड़ा है और न (जल में) हाथ ही लगता है, (तात्पर्य यह है कि शाह नहीं मिलती)। नानक का कथन है कि (ऐसी स्थिति में) नाम के बिना (मसार-सागर में न मालूम) कितने (प्राणी) माध-साथ हूब गए हैं ॥ ११ ॥

(इस संसार में मनुष्य के पास चाहे) लाखों मन सोना हो, लाखों मन चाँदी हो, (और वह चाहे) लाखों बादशाहों का शिरोमणि बादशाह हो, (उसके पास) लाखों की की लश्कर—सेना हो, लाखों बाजे और भाले (तात्पर्य यह कि अम्ब-शस्त्र) हों, और लाखों घोड़ियों का बादशाह हो, (तात्पर्य यह कि अनेक घुड़शाले हो), (किन्तु) जहाँ (संसार)-समुद्र को पार करना है, वहाँ अग्नि की अथाह जलगाहि है, किनारा भी दृष्टि में नहीं आता (और वहाँ) हाथ हाथ की ढाँडे (मुनाई) पड़ती है, (वहाँ इन सासारिक ऐश्वर्यों से कुछ भी काम नहीं चलेगा। वे तो यहाँ के यहीं रह जायेंगे)। नानक कहता है कि वही पर (यह वस्तु) जानी जायगी कि कौन सच्चा शाह अथवा बादशाह है ॥ १२ ॥

पउड़ी : इकन्हा गलीं जंजोर बंदि रबानीऐ ।
बधे छुटहि सचि सचु पछालीऐ ॥
लिखिआ पलै पाइ सा सचु जालीऐ ।
हुकमी होइ निबेइ गइआ जालीऐ ॥
भउजल तारलहारु सबदि पछालीऐ ।
चोर जार जूझार पीड़े घालीऐ ॥
निदक लाइतवार मिले हइवारीऐ ।
गुरमुखि सचि समाइ सु दरगह जालीऐ ॥५॥

पउड़ी : कुछ (मनुष्यों) के गले में जंजीर डाली जाती है (और वे) परमात्मा के बंदोखाने में (ले जाये जाते हैं)। [रबानीऐ = रब, हरी के]। (किन्तु वे लोग) सच्चों में सच्चे (हरी को) पहचान कर छूट जाते हैं। जिसके (भाग्य में परमात्मा की कृपा) लिखी

रहती है, वही (हरी को) जानता है । (हरी के दुःख से) मनुष्य के भाग्य का निर्णय होता है; इस बात का पता आगे जाकर लगेगा । (हे शिष्य) संसार-सागर को तारने वाले शब्द— नाम को पहचान । चोर, व्यभिचारी, जुआरी (हरी के बन्दीखाने में, नरक में) घानी में पेर जाते हैं । निन्दकों और अविवेकियों के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ती हैं । (जो) गुरु की शिक्षा द्वारा सत्यस्वरूप (हरी) में समाए रहते हैं, वे (उस हरी) के दरबार में माने-जाते हैं ॥१॥

सलोक : हरणां बाजां ते निकदारां एन्हा पड़िया नाउ ।
फांधी लगी जाति फहाइन अगै नाही याउ ।
सो पड़िया सो पंडितु बीना जिनी कमाणा नाउ ।
पहिलो वे जड़ ग्रंदरि जंमे ता ऊपरि होवै छाउ ॥
राजे सीह मुकदम कुते ।
जाइ जगाइन बेटे सुते ॥
चाकर नहुदा पाइन्हि घाउ ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु ॥
जियै जीआं होसो सार ।
नकीं बढीं लाइतबार ॥१३॥

सलोक : (लोग) गृगों और बाजों के समान अपनी जाति के लोगों को फँसानेवाले हो गए हैं), (उन्ही को) सिकंदारी (दूकूमत है); उनका नाम पढ़े-लिखों में है; (किन्तु वे लोग) अपनी जाति के लोगों को फाँसी में फँसते हैं; (ऐसे लोगों को) आगे (परमात्मा के यहाँ) स्थान नहीं मिलेगा । जिन्होंने हरिनाम की कमाई की है, वे ही पढ़े-लिखे हैं, वे ही पंडित हैं और वे ही सयाने—चतुर हैं । पहले (वृक्ष का) बीज जमीन के अन्दर जमता है, (फिर वह पल्लवित होकर) ऊपर (बढ़ता है) और उसकी छाया होती है । [इसी प्रकार नाम रूपी बीज पहले भीतर जमता है, तत्पश्चात् उसका प्रभाव बाह्य जगत् पर भी पड़ने लगता है] । (इस समय) राजागण सिंह (के समान हिंसक) तथा चौधरी [मुकदम—अरबी, चौधरी] कुत्ते के समान (लालची) हो गए हैं । वे सोती हुई (प्रजा को) जगाकर, (उसका मास भक्षण कर रहे हैं) । (राजाओं के) नौकर (अपने) तीव्र नाखूनों से घाव करते हैं (और लोगों का) खून कुत्तो (मुकदमों) के द्वारा चाट जाते हैं । जिस स्थान पर प्राणियों के कर्मों की छानबीन होगी, वहाँ उन लाइतबारों की नाक काट ली जायगी ॥ १३ ॥

पड़ड़ी : आपि उपाए मेदनी आपे करदा सार ।
भै बिनु भरमु न कहोए नामि न लगे पिआर ।
सतिगुर ते भउ ऊपजै पाईए मोख दुआर ।
भै ते सहलु पाईए मिलि जोती जोति अपार ॥
भै ते भैजलु लंघोए भूरमती बीचार ।
भै ते निरभउ पाईए जिसदा अंतु न पारावार ॥
मनमुख भै की सार न जाएन्ही तृसना जलते करहि पुकार ।
नानक नाबै ही ते सुलु पाइआ गुरमती उरिघार ॥६॥

पउड़ी : (प्रभु) आप ही सृष्टि उत्पन्न करता है और आप ही उसकी खोज खबर लेता है, (संभाल करता है) । बिना (हरी के) भय से भ्रम नहीं कटता और नाम में प्रेम भी नहीं उत्पन्न होता । सद्गुरु (के सम्पर्क) में (परमात्मा का) भय उत्पन्न होता है (और उसी से) मोक्षद्वार की प्राप्ति होती है । (परमात्मा के) भय से सहजावस्था की प्राप्ति होती है (और परमात्मा की अखण्ड और शाश्वत) ज्योति से (जीवात्मा की) ज्योति मिलकर (एक हो जाती है) । गुरु की शिक्षा पर विचार करने से (भय की उत्पत्ति होती है) और उस भय से भय का समुद्र पार कर लिया जाता है । भय से ही निर्भय (परमात्मा) की प्राप्ति होती है, जिसका न अंत है, न सीमा । मनुष्य भय की खबर नहीं जानते; (वे) वृष्णा में जलकर चिल्लाते रहते हैं । नानक का कथन है कि गुरु की शिक्षा हृदय में धारण करने से नाम के द्वारा सुख की प्राप्ति हो गयी ॥ ६ ॥

सलोक : रूपै कामे दोसती भुखे सावै गंधु ।
लबै मालै घुलि मिलि मित्रलि ऊवै सउड़ि पलंगु ॥
भंऊकै कोपु लुगारु होइ फकड़ पिये अंधु ।
सुपे चंगा नानका बिरु नावै मुहि गधु ॥ १४ ॥
राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग ।
एनी ठगा जगु ठगिया रिनै न रखी लज ॥
एनः ठगन्हि ठग से जि गुर की पैरी पाहि ।
नानक करमा बाहरे होरि केते मुठे जाहि ॥ १५ ॥

सलोक : काम की रूप से दोस्ती रहती है तथा भूख से स्वाद का संबंध रहता है । लानची (व्यक्ति) धन से घुल-मिल कर एक हो जाता है । [मित्रलि = प्रभेद, एक] । निद्रालु के लिए तंग जगह ही पलग हो जाती है । क्रोध भूकता है, (अर्थात् क्रोध की दोस्ती वकवास से होती है); (क्रोधी मनुष्य) बरबाद होता है और अन्धा हांकर वकवास करता है । नानक का कथन है कि शान्त (व्यक्ति) ही अच्छा होता है, बिना नाम (लिए) मुंह में दुर्गन्ध होती है ॥ १४ ॥

राज्य, माल (धन-सम्पत्ति), सौन्दर्य, जाति और यौवन—ये पांच ठग हैं । इन (पांच) ठगों ने (सारे) जगत् को ठगा है, किसी की भी लज्जा नहीं रक्खी । किन्तु इन (पांच) ठगों को वे लोग ठग लेते हैं, जो गुरु के चरणों में पड़ते हैं । नानक कहते हैं कि बिना (हरी की) कृपा के (न मानूम) कितने अन्य व्यक्ति (इन पांच ठगों द्वारा) ठगे गए हैं ॥ १५ ॥

पउड़ी : पड़िया लेखेदारु लेला मंगीए ।
बिरु नावै कूड़ियारु अउला तंगीए ॥
अउघट रुधे राह गलीयां रोकीयां ।
सचा बेपरवाहु सबदि संतोखीयां ॥
गहिर गभीर अथाहु हाथ नु लभई ।
मुहे मुहि चोटा लाहु बिरु गुर कोइ न छुटसी ॥
पति सेती धरि जाहु नामु बखारीए ।
हुकमी साह गिराहु बँदा जारोए ॥ ७ ॥

पड़ड़ी : पड़े हुए (कर्मों के) लेखे को (अवश्य देना होगा), लेखा लेनेवाला इसका हिसाब अवश्य माँगेगा । बिना नाम के झूठा व्यक्ति कठोर रूप में तग होता है । (बिना नाम के उनके) मार्ग कठिन और अवरोध होने हैं और उनकी गलियाँ रूकी रहती है । सच्चा और वेपरवाह (हरी, गुरु के माध्यम द्वारा शिष्य को) संतुष्ट करता है । (हरी) गहरा, गंभीर और अयाह है, (उसकी) थाट नहीं मिलती । बिना गुरु के कोई भी नहीं छूटेगा और मुँह पर (यमराज की) चोटे खायेगा । नाम का गुणगान करने से प्रतिष्ठा के साथ (अपने आत्म-स्वरूपी) घर में जाना होता है । “ (परमात्मा के) हुक्म के अन्तर्गत (जीव की) (प्रत्येक) श्वास (और प्रत्येक) ग्रास दिए गए हैं—(साधक) इसे भली-भाँति जानता है ॥ ७ ॥

सलोकु : पउरै पाणी अगनी जोउ तिन किआ खुसोआ किआ पोड ।
 धरती पाताली आकासो इकि दरि रहनि बजोर ॥
 इकना बडो आरजा इकि मरि होहि जहोर ।
 इकि देखाहि निखुटै नाही इकि सदा फिरहि फकीर ॥
 हुकमी साजे हुकमी डाहे एक चसे महि लख ।
 सभु को नथै नथिआ बलसे तोड़े नथ ॥
 वरना चिहना बाहरा लेखे बाभु अलखु ।
 किउ कथोये किउ आखोये जापै सचो सनु ॥
 करना कथना कार सभ नानक आपि अकथु ॥
 अकथ को कथा सुणेइ ।
 रिधि बुधि सिधि गिआनु सदा सुखु होइ ॥१६॥

अजरु जरै त नउ कुल बंधु । पूजै प्राण होवै थिरु कंधु ॥
 कहाँ ते आइआ कहाँ एहु जाणु । जीवत मरत रहै परवाणु ॥
 हुकमे बूझै तनु पड़ाणै । इहु परमादु गुरु ते जाणै ॥
 होहा फड़ीअणु नानक जाणु । ना हउ ना मै जूनी पाणु ॥१७॥

सलोकु : (कर्तापुरुष ने) पवन, पानी और अग्नि आदि (पंच तत्वों के) संयोग में जीवों की उत्पत्ति की, उन (जीवों) की (अनेक) सुशिक्षा और (अनेक) पीड़ाये होती है । कुछ व्यक्ति तो धरती, पाताल और आकाश में तथा उसके दरवाजे पर बजीर बन कर रहते हैं । कुछ (लोगों) की लम्बी आयु होती है और कुछ मर कर दुःखी होते हैं । कुछ लोग तो (श्रीरो को) देकर (तब) खाते हैं, उनका (धन) कभी समाप्त ही नहीं होता और कुछ लोग गरीब बन कर फिरते रहते हैं । (प्रभु अपने) हुक्म में ही क्षणमात्र में लाखों को बनाता है और लाखों को नष्ट करता है । (प्रभु) सभी (प्राणियों को) अपनी नाथ में नाथे रहता है (वशीभूत किए रहता है) ; (वह) कृपा करके (अपनी) नाथे (बन्धन) तोड़ देता है । (वह) वणों, चिह्नों से रहित है ; (उसके कर्मों का लेखा नहीं होता), (इसीलिए, वह) बिना लेखे का है, वह अलक्ष्य है । (उस प्रभु का) किस प्रकार कथन किया जाय और किस प्रकार वर्णन किया जाय ? (वह) सत्य ही सत्य प्रतीत होता है । करना और कहना सब कुछ उसी के कार्य है ; (किन्तु) नानक का कथन है (कि प्रभु) स्वयं कथन से परे है । जो

उस अकथनीय (प्रभु की) कहानी सुने, तो उसे श्रुद्धियाँ, बुद्धि, सिद्धियाँ तथा ज्ञान (की प्राप्ति होती है और शाश्वत सुख होता है ॥ १६ ॥

यदि (मनुष्य) भ्रजर (न जलनेवाले कामादिको) को जला दे, तो नव गोलक (दो कान, दो नासिका द्वार, दो अग्नि, एक मुँह, एक शिश्नद्वार एक गुदामार्ग) उसके अधीन हो जाते हैं । प्राणी की आराधना करने पर (तात्पर्य यह कि श्वास के आधार पर नाम जप से) शरीर स्थिर हो जाता है । कहाँ से आया है और कहाँ जाना है—(यह भगड़ा) तथा जन्म-मरण समाप्त हो जाते हैं (और साधक) प्रामाणिक हो जाता है । (जो साधक) (हरी के) हुक्म को समझता है, (वह) तत्त्व समझ लेता है । यह प्रसाद गुरु से ही जाना जाता है । नानक का कथन है कि (हे प्राणी, तू इस बात को) जान ले कि (जो कोई कहता है कि) 'मैं हूँ'—(अर्थात् अहंकारी मनुष्य), नष्ट किया जाता है । (जिसकी यह धारणा है कि) 'मैं नहीं हूँ', वह योगि के अंतर्गत नहीं पड़ता ॥ १७ ॥

पउड़ी : पढ़ीऐ नामु सालाह होरि बुधी मिथिआ ।
बिनु सच्चे बापार जनसु बिरथिआ ॥
भंतु न पारावार न किनही पाइआ ।
सभ जगु गरबि गुबार तिन सनु न भाइआ ॥
चले नामु बिसारि ताबणि ततिआ ।
बलदी भंदरि तेसु बुबिधा घतिआ ॥
आइआ उठी लेलु फिरै उबतिआ ॥
नानक सच्चे मेसु सच्चे रतिआ ॥८॥

पउड़ी : हरिनाम को पढ़ा जाय और उसी की स्तुति की जाय—(यही बुद्धि सत्य है); और (सासारिक) बुद्धियाँ मिथ्या हैं । (हरी के) नाम के सच्चे व्यापार के बिना, जन्म निष्फल है । किसी ने भी (हरी का) अन्त और सीमा नहीं पाई है । सारा जगत् गर्व और अन्धकार (अज्ञान) में है, (इसीलिए) उन्हें सत्य (परमात्मा) अच्छा नहीं लगता । (जो व्यक्ति) हरिनाम विसार कर (यहाँ से) जाते हैं, वे कड़ाही में गरम किए जाते हैं—पकाए जाते हैं । उस जलती (कड़ाही में) दुविधा—द्वैतभाव का तेल पड़ता है । (मनमुख व्यक्ति संसार में) आते हैं और उठ कर चले जाते हैं, अर्थात् जन्मते-मरते रहते हैं, (वे अपनी आधु-पर्यन्त माया के) खेल में आबारा की भाँति भटकते फिरते हैं । नानक का कथन है कि जो सत्य (परमात्मा) में अनुरक्त है, उसका सत्य से मेल है ॥ ८ ॥

मलोकु : पहिलां मासहु निमिआ मासै भंदरि बासु ।
जीउ पाइ मासु सुहि मिलिआ हनु चंसु तनु मासु ॥
मासहु बाहरि कडिआ संसा मासु गिरासु ।
मुहु मासै का जीभ मासै की मासै भंदरि सासु ॥
बडा होआ बीआहिआ घरि लै आइआ मासु ।
मासहु ही मासु ऊपजै मासहु सभो साकु ॥
सतिगुरि मिलिऐ हुकसु हुभोऐ तांको आबै रासि ।
आपि छुटे नह छुटीऐ नानक बचनि बिरासु ॥१८॥

मासु मासु करि मूरखु भगड़े गिघ्रानु धिघ्रानु नही जाएँ ।
 कउरु मासु कउरु सागु कहावै किसु महि पाप समाएँ ॥
 गँडा मारि होम जग कोए देवतिया की बारो ।
 मासु छोडि बैसि नकु पकड़हि रातो मारणस खारो ॥
 फड़ु करि लोकां नो दिखलावहि गिघ्रानु धिघ्रानु नही सूझै ।
 नानक अंधे सिउ किघ्रा कहीऐ कहै न कहिघ्रा बूझै ॥
 अंधा सोइ जि अंधु कमावै तिसु रिदै सि लोचन नाही ।
 मात पिता की रकतु निपने मछी मासु न खाही ॥
 इसत्री पुरखै जां निसि मेलत प्रोचै मंधु कमाही ॥
 मासहु निमे मासहु जंमे हम मरसै के भांडे ।
 गिघ्रानु धिघ्रानु कछु सूझै नाही चतुरु कहावै पांडे ॥
 बाहर का मासु मंदा सुधामी घर का मासु चंगेरा ।
 जोअ जंत सभि मासहु होए जोइ लइघ्रा वासेरा ॥
 अमखु भखहि भखु तजि छोडहि अंधु गुरु जिन केरा ॥
 मासहु निमे मासहु जंमे हम मासै के भांडे ।
 गिघ्रानु धिघ्रानु कछु सूझै नाही चतुरु कहावै पांडे ॥
 मासु पुराणी मासु कतेबों चहु जुगि मासु कमाणा ।
 जजि काजि वीघ्राहि सुहावै ओचै मासु समाणा ॥
 इसत्री पुरख निपजहि मासहु पातिसाह सुसतानां ।
 जे ओइ दिसहि नरकि जांबे तां उन का दानु न लैणा ॥
 वेंदा नरकि सुरगि लैवै देखहु एहु धिडाणा ।
 आपि न बूझै लोक बूझाए पांडे खरा सिघ्राणा ॥
 पांडे तू जाएँ ही नाही किघहु मास उपंना ।
 तोइअहु अंनु कमावु कपाहां तोइअहु त्रिभवगु गंना ॥
 तोघ्रा घालै हउ बहु बिधि हथ्ता तोऐ बहुतु बिकारा ।
 एते रस छोडि होवै सनिघ्रासी नानकु कहै बिचारा ॥१६॥

सलोकु : सर्व प्रथम वीर्य का पेट में टिकना मांस के अन्तर्गत होता है (और फिर यह) मास (के लोथड़े के रूप में माता के गर्भ के) अंतर्गत वास करता है । (जब उस मासपिंड में) जीव पड़ता है, (जीव का प्रागमन होता है), तो (उसे) मास का ही मुँह मिलता है, (उसकी) हड्डियाँ, चाम और शरीर भी मास के बनते हैं । (जब मनुष्य बच्चे के रूप में) मास-निमित्त (माता के गर्भ से) बाहर निकलता है, (तो पहले पहल वह अपना) प्रास—प्राहार (पाने के लिए) मास (के बने) स्तन को (अपने मुँह में रखता है, ताकि उसे पीने को दूध मिले) । (उसका) मुँह भी मास का है, जीभ भी मास की है, (और उसकी) सासे भी मास के ही भीतर (आती जाती हैं) । बड़ा होने पर, विवाह करने के पश्चात् (बह) मास (की बनी हुई स्त्री को) अपने घर ले आता है । मांस से ही मास की उत्पत्ति होती है; उसके सारे संबंध भी मास के ही होते हैं । सद्गुरु से मिलकर (हरी का) हुक्म समझने पर,

मनुष्य को सच्चा रास्ता आता है, (तात्पर्य यह कि वह सच्चे मार्ग पर चलने लगता है) । [रासि—फारसी 'रास्ता' का संक्षिप्त रूप, श्री गुरु ग्रंथ कोश, पृष्ठ १०६४] । नानक का कथन है कि मनुष्य अपने प्रयत्नों से (इस मसार में) नहीं छूटना, (प्रत्युत ऐसी) बातों से (उसका) नाश होता है ॥१८॥

मूर्ख लोग 'माम-मास' कह कर भ्रमण करते हैं, वे ज्ञान-ध्यान (कुछ भी) नहीं जानते । (वे यह नहीं जानते कि) कौन सो वस्तु मास कहलाती है, (और कौन मी) साग और किस वस्तु में पाप समाया है । देवताओं के स्वभाव (वागों) (को समझ कर कि वे लोग मास खाना पसंद करते हैं) गेंडे मार कर होम-यज्ञ किये जाते थे । (जो व्यक्ति) मास खाना छोड़कर, (उसके समीप) बैठने पर नाक पकड़ने हैं (कि बदबू आ रही है), वे रात को मनुष्यों का भक्षण कर जाते हैं । (वे लोग) दम्भ—पावण्ड करने लोगों को दिखाते हैं, (किन्तु उन्हें) ज्ञान-ध्यान (कुछ भी नहीं) सूझता । नानक का कथन है कि अंधे में क्या कहा जाय ? यदि उससे कहा भी जाय, तो कहना (शिक्षा देना) नहीं समझता । वही व्यक्ति अंधा है (अज्ञानी) है, जो अंधे (अविवेकपूर्ण) कर्मों को करता है, उसके हृदय में वे (ज्ञान की) राशियाँ नहीं हैं । माता-पिता के रक्त—रज (और वीर्य) में तो उत्पन्न हुए पर मछली और मास नहीं खाते । जिस रात्रि में स्त्री-पुरुष का संयोग होता है, तो वहाँ भी मंद ही कर्म करते हैं, (तात्पर्य यह कि मांस के ही शरीर से भोग-विलास करते हैं) । वीर्य मास-निर्मित (गर्भ में) स्थित होता है और मास (के लोथड़े के रूप में मनुष्य का) जन्म होता है, (इस प्रकार) हम सब मास ही के भंडे हैं । ज्ञान-ध्यान तो कुछ सूझता नहीं, कहलाते हैं सयाने पंडित । (हे स्वामी), (बकरे आदि का) बाहर से लाया हुआ मास घुरा होता है (और) घर की स्त्री, पुत्रादिकों का) मास प्यारा होता है । (जितने भी) जीव-जन्तु हैं, सभी मास द्वारा ही (निर्मित) हुए हैं, जो व भी (माता के उदर के अन्न में : मास ही में) निवास करता है । जिनका गुरु अंधा होता है, वे न खाते वाली (प्रभक्ष्य वस्तुएँ, तात्पर्य यह कि हराम की कमाई) तो खाते हैं, (किन्तु) भक्ष्य वस्तुएँ (तात्पर्य यह कि मासादिक) त्याग देते हैं । वीर्य मास निर्मित (गर्भ में) स्थित होता है और मास (के लोथड़े के रूप में) मनुष्य का जन्म होता है; (इस प्रकार) हम सब मास ही के पात्र हैं । ज्ञान-ध्यान तो कुछ सूझता नहीं, पर कहलाते हैं सयाने पंडित । (हिन्दुओं के) पुराणों (तथा मुसलमानों के) कतेब (कुरान आदि धार्मिक पुस्तकों) में भी (मास खाना आता है) । चारों घुमों में मास का प्रयोग होता रहा है । यज्ञ और विवाह (आदि) सुहावने—शुभ कार्य हैं, (किन्तु) उन अवसरों पर भी मास का प्रयोग होता आया है । (जितने भी) स्त्री-पुरुष हैं, (सभी) मास से उत्पन्न होते हैं; पातशाह और सुलतान (आदि बड़े बड़े व्यक्ति भी मास में ही उत्पन्न होते हैं) । (हे पंडित) यदि (तेरी दृष्टि में दान देनेवाले) वे लोग नरक जाते हुए दिखाई पड़ते हैं, तो उनका दान (तुझे) नहीं लेना चाहिए । देनेवाला तो नरकगामी हो और लेनेवाला स्वर्गगामी ! यह जबर्दस्ती तो देखो ! पंडित बनना तो बहुत चतुर है, और लोगों को (धर्म की बातें) समझाता है, (किन्तु) स्वयं (कुछ) नहीं समझता । हे पंडित तू यह जानता ही नहीं कि मास कहाँ से उत्पन्न हुआ है । जल से अन्न, गन्ने और कपास (की उत्पत्ति होती है), जल से ही त्रिभुवन (की उत्पत्ति भी) गिनी जाती है । जल को मैं अनेक विधि से अच्छा कहता हूँ, (यह परम पवित्र है), किन्तु इसमें विकार भी बहुत से हैं, (क्योंकि जल ही अपना स्वरूप

परिवर्तित करके अनेक रसों में निमित्त हो जाता है और मांस आदि सारी वस्तुएँ इसी से बनती हैं अतएव) इन सभी रसों को त्याग कर तभी संन्यासी—त्यागी हुआ जा सकता है, (किन्तु संसार में रहते हुए सभी रसों का त्याग असंभव है, अतएव पंडित का सारा पक्ष—त्याग का पक्ष गलत मिथ्य होता है), नानक यह विचार करके कहता है ॥ १६ ॥

पउड़ी : हउ किया आखा इक जीभ तेरा अंतु न किनही पाइआ ।
सच्चा सबदु बीचारि से तुझ ही माहि समाइआ ॥
इकि भगवा वेसु करि भरमदे बिगु सतिगुर किनै न पाइआ ।
देस विसंतर भवि धके तुधु अंदरि आपु लुकाइआ ॥
गुर का सबदु रतंतु है करि जानगु आपि दिखाइआ ।
आपणा आपु पछाणिआ गुरकी सचि समाइआ ॥
आवागउगु बजारीआ बाजारु जिनी रचाइआ ।
इकु थिरु सच्चा सालाहरणा जिन मनि सच्चा भाइआ ॥६॥

पउड़ी : (हे हरी) मैं एक जिह्वा से तेरा क्या वरणं कर्क ? तेरा अन्त किसी ने नहीं पाया है । (जिन्होंने गुरु के) सच्चे शब्द—उपदेश के ऊपर विचार किया है, वे तुझी में समा गए हैं । कुछ लोग तो भगवा वेश धारण कर फिरते हैं, (किन्तु उन्हें तत्त्वोपलब्धि नहीं होती), बिना सद्गुरु के किसी ने भी (हरी का) नहीं पाया है । (अज्ञानी पुरुष) देश-देशान्तरों में भटक कर थक गए (किन्तु इस रहस्य को नहीं जान पाये कि हे हरी), तू (उनके) अन्तर्गत ही अपने आपको छिपा रक्खा है । (सच्चे साधक) गुरु की शिक्षा द्वारा अपने आप को पहचान कर सत्य (परमात्मा) में समाहित हो गए हैं । आवागमन (का चक्र) (उन्हीं) बाजारी मनुष्यों (सामाजिकों) के लिए है, जिन्होंने (इस संसार में) बाजार रच रक्खा है, (अनेक दिखावे और प्रदर्शन में सज्जत हैं) । जिनके मन में सच्चा परमात्मा अच्छा लग गया है, वे एक, स्थिर (शाश्वत) तथा सच्चे (हरी) की स्तुति में (निमग्न) हैं ॥ ६ ॥

सलोक : नानक माइआ करम बिरखु फल अमृत फल विसु ।
सभ कारण करता करे जिसु खबाले तिसु ॥२०॥
घर महि घरु दिखाइ बेइ सो सतिगुर पुरखु सजागु ।
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजें सबदु नीसागु ॥
दोष लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरातु ।
तार घोर बाजित्र तह साचि तखति सुलतानु ॥
सुखमन कै घरि रागु सुनि सुनि मंडलि लिब लाइ ।
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाइ ॥
उलटि कमलु अमृति भरिआ इहु मनु कतहु न जाइ ।
अजपा जापु न बीसरै आदि जुगादि समाइ ।
सभि सखीआ पंचे मिले गुरमुखि निज घरि वासु ॥
सबदु खोजि इहु घर लहै नानकु ता का दासु ॥२१॥
चिलमिल बिसीआर दुनीआ फानी ।
कालूबि अकल मन गोर न मानी ॥

मन कमीन कमतरौन तू बरीझाउ सुवाइझा ।
 एकु चीउ मुझै बेहि अवर जहर चीज न भाइझा ।
 पूराब खाम कूजै हिकमति सुवाइझा ।
 मन तुझाना तू कुवरती काइझा ॥
 सग नानक दीवान मसताना नित चड़े सवाइझा ।
 आतस दुनीझा लुनक नामु सुवाइझा ॥२२॥
 धनु सु कागदु कलम धनु धनु भांडा धनु मसु ।
 धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइझा सवु ॥२३॥
 आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तूं ।
 एको कहोए नानका दूजा काहे कू ॥२४॥

सलोक : नानक का कथन है (कि त्रिगुणात्मक) माया में किए हुए कर्म वृक्ष के समान है, (जिसमें सुख-दुख रूपी) अमृत और विष—दो फल लगे हैं । सभी कारणों को कर्तापुरुष ही करता है; (वह) जिसे जो फल खिलाता है, उसे वह फल खाना पड़ता है ॥२०॥

(वास्तव में) सद्गुरु और सयाना—चतुर पुरुष वही है, (जो) साधक को उसके हृदय रूपी) घर में (आत्मस्वरूपी) घर दिखा देता है । (जीवात्मा और परमात्मा के मिलन की अवस्था में) पाँच शब्दों की एकरस ध्वनि बजती रहती है और शब्द के नगाड़े बजने रहते हैं । [पाँच शब्द में तार, चाम, धातु, चड़े और फूँक द्वारा बजाए जाने वाले बाजे आते हैं, तात्पर्य यह कि उल्लास-मूचक नाना-भाँति के बाजे बजते हैं और बड़ा आनन्द होता है] । (उस अवस्था में समस्त) द्वीप, लोक, पाताल, खण्ड, मण्डल (अपने ही स्वरूप में स्थित दिखाई पड़ते हैं, जिससे) बड़ा आश्चर्य होता है । [हैरान = फारसी आश्चर्य] । वहाँ बाजा की उच्च ध्वनि होती रहती है और ऊँचे सिंहासन पर सुलतान (हरी) बिराजमान रहता है । (मिलन की अवस्था में) सुगुम्ना नाडी (खुल जाती है), जिसमें सूक्ष्ममण्डल में लिव (एकनिष्ठ धारणा) लग जाती है (और अनेक प्रकार के) राग सुनाई पड़ते हैं । यह अकथनीय कथा ही विचारणीय है; (इस अवस्था में सारी) इच्छाएँ मन में समाहित हो जाती हैं । (हृदय रूपी) कमल (माया में) उलट जाता है, और उसमें (हरिनाम रूपी) अमृत भर जाता है, (यह चंचल) मन कभी भी आता जाता नहीं, (और आत्मस्वरूप में स्थिर तथा शान्त हो जाता है) । (उस अवस्था में दश-प्रश्नास के द्वारा निरन्तर) अजपा जप (चलने लगता है और वह कभी) भूलता नहीं । (साधक) आदि और युगयुगान्तरो में स्थित (परमात्मा में) समाहित हो जाता है । (इन्द्रियों रूपी) सखियों से पाँच सत्वगुण (सत्य, संतोष, दया, धर्म, धैर्य) मिल जाते हैं और गुरुमुख (गुरु का अनुयायी अपने आत्मस्वरूपी वास्तविक) घर में स्थान पा जाता है । शब्द—नाम को खोज कर जो (साधक) इस (उपर्युक्त) घर को प्राप्त कर लेता है, नानक (अपने को उसका) दास (मानता है) ॥२१॥

दुनियाँ (की चमक) बिजली (चिलमिल) के समान है, किन्तु है नश्वर—क्षणभंगुर । पर (मेरी) उलटी अकल तथा मन कब्र को नहीं मानते; (तात्पर्य यह कि मेरी उलटी बुद्धि में यह बात नहीं आती कि मौत इतने समीप है) । (हे स्वामी), मैं कमीना और अति तुच्छ हूँ । हे खुदा, तू दरिया (की भाँति उदार और पवित्र है) । (हे प्रभु), मुझे एक ही वस्तु

(अपनी भक्ति) दे, और जहरवाली (सासारिक) वस्तु (मुझे) अच्छी नहीं लगती । [मन=फारसी, मैं] कच्चा कूजा पानी से भरा हुआ है [कूजा=कूजे में जमाई हुई मिसरी], (तात्पर्य यह कि शरीर नष्टकर है); यह उसी की हिकमत है । मैं कुछ कर सकने योग्य तेरी ही ताकत से होता हूँ । (हे प्रभु), नानक तेरे दरवाजे का कुत्ता है, और मस्ताना है, (उसकी मस्ती) नित्य सवाई चढती है । [सग=फारसी=कुत्ता] । (हे खुदा), यह दुनिया आग है और तेरा नाम ठंडा है, (अर्थात् तेरा शीतल नाम लेने से जगत् का ताप नष्ट हो जाता है) ॥२२॥

वह कागज धन्य है, (जिस पर सत्य हरी का नाम लिखा जाता है), वह कलम धन्य है, (जिसके द्वारा वह लिखा जाता है), वह दवात और स्वाही भी धन्य है (जिनके माध्यम से वह लिखा जाता है) और वह लिखारी—लेखक भी धन्य है, जो सत्यनाम को लिखता है ॥२३॥

(हे प्रभु) तू आप ही पट्टी है, आप ही कलम है और (उस पट्टी के) ऊपर का लेख भी तू आप ही है । (अतः) नानक (की दृष्टि में उस प्रभु को) एक ही कहा जाना चाहिए, दूसरा किस लिए कहा जाय ? ॥ २४॥

पउड़ी : तू आपे आपि बरतदा आपि बणत बणाई ।
तुधु बिनु कूजा को नही तू रहिया समई ॥
तेरो गति मिति तू है जाणदा तुधु कीमति पाई ।
तू अलख अगोचर अगम है गुरमति बिखाई ॥
अंतरि अगिआनु दुख भरमु है गुर गिआनि गवाई ।
जिसु कृपा करहि तिसु भेलि लैहि सो नामु धियाई ॥
तू करता पुरख अगंमु है रविया सभ ठाई ।
जितु तू लाइहि सचिया तितु को लगे नानक गुण गाई ॥१०॥ सुधु ॥

पउड़ी : (हे प्रभु), तू (सर्वत्र) आप ही आप बरत रहा है और आप ही ने (समस्त) रचना का निर्माण किया है । तेरे बिना और कोई दूसरा नहीं है, तू ही (सर्वत्र) समाया हुआ है—व्याप्त है । (हे स्वामी), अपनी गति-मिति तू आप ही जानता है, तू ही अपनी कीमत पा सकता है, (दूसरा कोई भी नहीं) । तू अलक्ष्य, अगोचर और अगम है; गुरु की शिक्षा द्वारा दिखाई पड़ता है । (मनुष्य के) हृदय में अज्ञान, दुःख और भ्रम रहते हैं, गुरु का ज्ञान (उन्हें) नष्ट कर देता है । जिसके ऊपर तू कृपा करता है, उसे अपने में मिला लेता है और वह तेरे नाम का ध्यान करता है । (हे स्वामी), तू कर्तापुरुष और अगम है और सर्वत्र व्याप्त है । जिसे तू सत्य में लगा देता है, उसे और कौन (अन्य कामों में) लगा सकता है ? नानक (तेरा) गुणगान करता है ॥१०॥ सुधु ॥

१ॐ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभ' गुर प्रसादि

रागु परभाती विभास, महला १, चउपदे, घर १

सबद

[१]

नाइ तेरं तरणा नाइ पति पूज । नाउ तेरा गहणा मति मकमूदु ॥
नाइ तेरं नाउ मने सभ कोइ । बिणु नावै पति कबहु न होइ ॥१॥
अवर सिराण्य सगली पाजु । जे बखने तै पूरा काजु ॥१॥ रहाउ ॥
नाउ तेरा ताणु नाउ दीबाणु । नाउ तेरा लसकरु नाउ सुलतानु ॥
नाइ तेरे मानु महत परबाणु । तेरी नदरी करमि पवै नीसाणु ॥२॥
नाइ तेरै सहजु नाइ सालाह । नाउ तेरा प्रमृनु बिनु उठि जाइ ॥
नाइ तेरै सभि सुख बसहि मनि आइ । बिनु नावै बाची जमपुरि जाइ ॥३॥
नारी बेरी घर दर देस । मन कीआ खुसीआ कोचहि बेस ।
जां सवे तां ढिल न पाइ । नानक कूड़ु कूड़ो होइ जाइ ॥४॥१॥

(हे हरी) तेरे नाम के द्वारा (संसार-सागर से) तरा जाता है और तेरे नाम के द्वारा ही (मनुष्य की) प्रतिष्ठा होती है (और वह) पूजा जाता है । तेरा नाम ही आभूषण है; नाम द्वारा ही ज्ञान (मति) का लक्ष्य पूरा होता है । तेरे नाम द्वारा ही (किसी का) नाम सब लोगों द्वारा माना जाता है, (तात्पर्य यह कि नाम द्वारा किसी की प्रसिद्धि होती है) । बिना नाम के कभी प्रतिष्ठा नहीं होती ॥१४॥

(नाम के अतिरिक्त बाकी) सारी चतुराइयाँ दिखावा (मात्र) हैं । जिसे (प्रभु) वक्षता है, उसका कार्य पूर्ण होता है ॥१॥ रहाउ ॥

(हे प्रभु) तेरा नाम ही बल है और वही आसरा है [दीबाणु=वह हाकिम, जिसके पास प्रार्थना की जा सके, तात्पर्य यह कि आसरा] । तेरा नाम ही लक्षर और सुलतान है । तेरे नाम में ही मान, महता—बड़ाई और प्रामाणिकता प्राप्त होती है । तेरी कृपादृष्टि और बख्शिश से प्रामाणिकता का निशान— चिह्न मिलता है ॥२॥

तेरे नाम से सहजावस्था (प्राप्त होती है), तेरे नाम से ही (तेरी) स्तुति (करने की शक्ति प्राप्ति होती है), तेरा नाम अमृत है, (उसके सेवन करने से माया का) विष उठ जाता है । तेरे नाम के द्वारा मन मे सभी सुख आकर बसते हैं । बिना नाम के (मनुष्य) बाँध कर यमपुरी ले जाया जाता है ॥३॥

नारी, घर, दरवाजे, देश (मिलिकयत), मन की अनेक खुशियाँ, (अनेक) वेशों का धारण करना—(ये सब वस्तुएँ) बधनस्वरूप हैं । [बेरी=बेड़ी; बंधन स्वरूप] । (किसी मनुष्य के पास उपर्युक्त वस्तुएँ हों), (किन्तु) यदि (परमात्मा उसे) बुला लेगा, तो उसे जाने मे देर (ढिल) नहीं लगेगी । नानक का कथन है (कि ये वस्तुएँ उस समय कुछ भी मदद न कर सकेंगी, ये सब यहाँ ही रह जायँगी), ये तो सब झूठी की झूठी साबित होगी ॥४॥१॥

[२]

तेरा नाम रतनु करमु जानगु सुरति तिये लोइ ।

अंधेर अंधी बापरै सगल लीजै खोइ ॥१॥

इहु संसार सगल बिकारु । तेरा नाम दारु अवरु नासति करणहार अपारु ।

॥१॥ रहाउ ॥

पाताल पुरीआ एक भार होवहि लाख करोड़ि ।

तेरे लाल कीमति ता पवै जा सिरै होवहि होरि ॥२॥

दूखा ते सुख ऊपजहि सूखी होवहि दूख ।

जितु मुख तू सालाहीअहि तितु मुख कैसो भूख ॥३॥

नानक भूरखु एकू तू अवरु भला सैसार ।

जितु तनि नामु न ऊपजै से तन होहि सुआर ॥४॥२॥

(हे हरी), तेरा नाम रत्न और बलिश है; (जिस) मनुष्य की सुरति मे नाम है, वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है । अन्धी (अविवेकमयी) सृष्टि मे अन्धकार (अज्ञान) होता रहता है, (जिससे मनुष्य) सब कुछ खो देते हैं ॥१॥

यह सारा संसार बिकार (माय) है । (हे हरी), तेरा नाम ही (इस संसार-बधन से छूटने की) दवा है । (नाम को छोड़कर) और कुछ भी नहीं है । हे कर्तापुरुष, (तू) अपार है ॥१॥ रहाउ ॥

(समस्त) पाताल और (सारी) पुरियाँ, (तराजू के एक पलड़े पर) भार बना कर रखी जायँ, ऐसे ही लाखों, करोड़ों के और (भार हों), (किन्तु ये सब तेरे नाम की समता नहीं कर सकते) । (हाँ, यदि तराजू के) पलड़े पर कुछ और वस्तुएँ रखी गई हों, (भाव यह कि तेरी बड़ाइयाँ और गुण हों), तब हे प्रियतम (लाल), तेरी कीमत पाई जा सकती है, (तेरी महत्ता को तोलने के लिए तेरे नाम का तुल्यमान ही समर्थ है, अन्य वस्तुएँ नहीं) ॥२॥

दुःखों से सुख की उत्पत्ति होती है और सुखों से दुःख (उत्पन्न) होते हैं । (हे स्वामी), जिस मुख से तू प्रशंसा किया जाता है, (भला) उस मुख मे धुधा कैसे हो सकती है ? (तात्पर्य यह कि तेरे प्रशंसा करनेवाले को कभी किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती) ॥३॥

हे नानक, तू ही भकेला मूर्ख है, और (सारा) संसार भला है । जिन शरीरो में नाम नहीं उत्पन्न होता, (अर्थात् जिन शरीरो से नाम नहीं लिया जाता), वे शरीर नष्ट हो जाते हैं ॥४॥२॥

[३]

जै कारणि बेद ब्रह्मै उचरे सँकरि छोडी माइआ ।

जै कारणि सिध भए उदासी देवी मरसु न पाइआ ॥१॥

बाबा भनि साचा मुखि साचा कहौऐ तरीऐ साचा होई ।

दुसमनु दूखु न घावै नेड़ै हरि मति पावै कोई ॥१॥ रहाउ ॥

अननि बिब पवणै की बाणी तीन नाम के दासा ।

ते तसकर जो नामु न लेवहि वासहि कोट पंचासा ॥२॥

जेको एक करै चंगिआई मनि चिति बहुतु बफावै ।

एते गुण एतोआ चंगिआईआ बेइ न पछोतावै ॥३॥

तुधु सालाहनि तिन धनु पले नानक का धनु सोई ।

जे को जीउ कहै ओना कउ जम की तलब न होई ॥४॥३॥

जिस (प्रभु की प्राप्ति) के निमित्त ब्रह्मा ने वेदों का उच्चारित किया और शंकर ने माया का परित्याग किया । जिसकी (प्राप्ति के) निमित्त सिद्धगण भी विरक्त हुए, (उसका) रहस्य देवतागण भी न पा सके ॥१॥

हे बाबा, सच्चे मन और सच्चे मुख से सत्य (परमात्मा) को कहा जाय—जपा जाय, तभी (संसार-सागर में) तरा जा सकता है और सत्यस्वरूप (हरी) हुआ (बना) जा सकता है, (ग्रन्थवा नहीं) । (कामादिक) शत्रु तथा (त्रिताप) दुःख समीप नहीं आते; हरि संबंधी बुद्धि कोई (विरला ही) पाता है ॥१॥ रहाउ ॥

(यह जगत्) भूमि (तमोगुण), जल (सत्वगुण) तथा पवन (रजोगुण) से बना हुआ है; ये तीनों नाम के ही दास हैं, (अधीन हैं) । जो व्यक्ति नाम नहीं लेते, (वे) चोर हैं, और वे (पृथ्वी के) पचासवें कोट में निवास करते हैं । [पृथ्वी के ४६ कोट माने गए हैं । पचासवाँ कोट तबि का बना हुआ माना जाता है । उस तबि के कोट में खाने पीने को कुछ भी नहीं मिलता । उसी कोट में वे चोर निवास करते हैं और अनेक यातनाएं सहते हैं—सबदारथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पृष्ठ १३२८] ॥२॥

यदि कोई व्यक्ति एक भी भलाई करता है, तो (अपने) मन तथा चित्त में बहुत फूलता है—अभिमान करता है; (पर जरा हरी की ओर तो देखो) । (उसमें) इतने गुण हैं और वह इतनी भलाईयाँ करता है, (फिर भी) उनकी चिन्ता नहीं करता ॥३॥

(हे हरी), जो (मनुष्य) तेरी स्तुति करते हैं, उन्हीं के पल्ले (नाम रूपी) घन पड़ता है; नानक का भी वही घन है । यदि कोई प्राणी (जीव) उस (प्रभु) को कहता है, (उसका नाम जपता है), तो उसे यमराज की तलब—माँग नहीं होती ॥४॥३॥

[४]

जाके रूपु नाही जाति नाही नाही मुखु मासा ।
 सतिगुरि मिले निरंजनु पाइआ तेरे नामि हे निबासा ॥१॥
 भवभू सहजे ततु बीचारि । जाते फिरि न भवहु सैसारि ॥१॥ रहाउ ॥
 जाके करमु नाही धरमु नाही नाही सुचि माला ।
 सिव जोति कंनहु बुधि पाई सतिगुरु रखवाला ॥२॥
 जाके बरतु नाही नेमु नाही नाही बकवाई ।
 गति भवगति की चित नाही सतिगुरु कुरमाई ॥३॥
 जाके आस नाही निरास नाही चित सुरति समझाई ।
 तंतु कउ परमतंतु मिलिआ नानका बुनि पाई ॥४॥४॥

जिस (हरी) के न (कोई) रूप न है, कोई जाति है, न मुख (आदि) अंग है, और न मास (आदि घातुएँ) है, सद्गुरु के मिलने पर वह निरंजन (माया से रहित हरी) पाया जाता है, (हे हरी) भक्तों का निवास तेरे नाम में ही होता है ॥१॥

हे अवधूत, सहज भाव से तत्त्व का विचार कर, जिससे पुनः इस संसार में न आना पड़े ॥१॥ रहाउ ॥

जिस (हरी) के न (कोई) कर्म है और न धर्म है, जिसमें न पवित्रता (आदि कोई क्रियाएँ) है और न माला (आदि कोई बाह्य चिह्न है); उस दिव-ज्योति (कल्याणमयी ज्योति) के पाम (मेने वास्तविक) बुद्धि प्राप्त कर ली है, (और अब) सद्गुरु ही (मेरा) रक्षक है ॥२॥

जिसके न (कोई) व्रत है, न नेम और न (कोई) बकवास है, जिसे सुन्दर गति और बुरी गति की (कोई) चिन्ता नहीं है, (उस हरी के संबंध में) सद्गुरु ने शिक्षा दे दी है ॥३॥

जिसके न (कोई) आशा है और न निराशा, (ऐसा प्रभु) चित्त में सुरति (स्मृति) लगाने में समझा जाता है, (इस विधि से) तत्त्व (जीव) को परम तत्त्व (परमात्मा) प्राप्त हो जाता है, नानक को (इस प्रकार की) बुद्धि प्राप्त हो गई है ॥४॥४॥

[५]

ताका कहिआ दरि परवाणु । बिषु अंमृतु दुइ समकरि जाणु ॥१॥
 किआ कहोऐ सरबे रहिआ समाइ । जो किछु दरतें सब तेरी रजाइ ॥१॥ रहाउ ॥
 प्रगटी जोति चूका अभिमानु । सतिगुरि दोआ अंमृत नामु ॥२॥
 कलि महि आइआ सो जनु जाणु । साची दरगह पावै माणु ॥३॥
 कहणा सुनणा अकथ घरि जाइ । कथनी बदनो नानक जलि जाइ ॥४॥५॥

उन (संतों) का कहना (हरी के) दरवाजे पर प्रामाणिक समझा जाता है, जो विष और अमृत (तात्पर्य यह कि दुःख और सुख को) समान भाव से जानते हैं ॥१॥

(हे प्रभु तेरे संबंध में) क्या कहा जाय ? तू सभी (स्थानों) में समायी है, (अर्थात् तू सर्वत्र व्याप्त है) । (हे स्वामी, संसार में) जो कुछ भी बरत रहा है, (वह) सब तेरी मर्जी के अनुसार है ॥१॥ रहाउ ॥

सद्गुरु ने (कृपा करके जब) नाम रूपी अमृत दे दिया, तो (ब्रह्मज्ञान को अखण्ड और शाश्वत ज्योति) प्रकट हो गई (और समस्त) अभिमान समाप्त हो गए ॥२॥

ऐसे (उपर्युक्त सन्त) जन के आगमन को कलियुग में (सार्धक) समझना चाहिए । (वे ही लोग हरी के) सच्चे दरबार में मान पाते हैं ॥३॥

उसका कहना सुनना यही है कि वह अकथनीय हरी के घर में जाकर (शाश्वत निवास करता है) । हे नानक, (ऐसे व्यक्ति के समस्त) मौखिक कथन जल जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

[६]

अमृत नीरु गिधानि मन मजनु अठसठि तोरथ स'गि गहे ।

गुर उपदेसि जवाहर भाणक सेवे सिलु सो खोजि लहे ॥१॥

गुर समानि तोरथु नही कोड ।

सरु सं तोलु तासु गुरु होइ ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु दरीआउ सदा जलु निरमलु मिलिआ दुरमति मैलु हरै ।

सतिगुरि पाईऐ पूरा नावरणु पसू परेतहु देव करै ॥२॥

रता सचि नामि तलहोअलु सो गुरु परमलु कहीऐ ।

जाकी वासु बनासपति सउरै तासु चरणु लिब रहीऐ ॥३॥

गुरमुखि जोअ प्राण उपजहि गुरमुखि सिब घरि जाईऐ ।

गुरमुखि नानक सचि समाईऐ गुरमुखि निज पदु पाईऐ ॥४॥६॥

(साधक को) ज्ञान द्वारा (नाम रूपी) अमृत-जल (प्राप्त होता है), (जिसमें) उसका मन स्नान करता है, (फिर वह उस स्थान में) अठसठि तीर्थों को (अपने साथ) लिए (फिरता है) । सद्गुरु के उपदेश में (अनेक) जवाहर-माणिक्य (रूपी उपदेश छिपे हैं), (प्रत्येक शिष्य गुरु की) सेवा करके उन्हें खोज कर प्राप्त कर सकता है ॥ १ ॥

गुरु के समान कोई (अन्य) तीर्थ नहीं है । संतोष रूपी सरोवर वह गुरु है ॥ १ ॥ ॥ रहाउ ॥

गुरु (पवित्र) दरिया (नद) है, (उसका उद्देश्य रूपी) जल सदैव निर्मल रहता है । (उस गुरु रूपी पवित्र नद में) मिलने से दुर्बुद्धि की मैल दूर हो जाती है । सद्गुरु की प्राप्ति में पूर्ण स्नान होता है, (वह सद्गुरु) पशुओं-प्रेतों (तात्पर्य यह कि तमोगुणों मनुष्यों) को भी देव बना देता है ॥ २ ॥

(जिसका हृदय) तब तक सच्चे (हरी के) नाम में अनुरक्त है, उस गुरु को चन्दन (के समान) कहा जाना चाहिए । (जिस प्रकार) उस (चंदन की) सुगन्ध (अपने आस पास की) वनस्पतियों को सुगन्धित कर देती है, (उसी प्रकार गुरु की सत्संगति उसके पास रहनेवाले प्राणियों को सँवार देती है); उस (गुरु के) चरणों में लिब (एकनिष्ठ धारणा) लगाए रहना चाहिए ॥ ३ ॥

गुरु द्वारा (साधक में नवीन) जीव और प्राण उत्पन्न होने हैं; गुरु की शिक्षा द्वारा शिव-कल्याण (स्वरूपी, आत्मरूपी घर में) जाना होता है । नानक का कथन है कि

गुरु के द्वारा ही (तत्त्वा साधक) सत्यस्वरूप (हरी) में समा जाता है और गुरु की शिक्षा द्वारा आत्म-पद की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ ६ ॥

[७]

गुरु परसादी बिदिआ बीचारै पड़ि पड़ि पावै मानु ।

आपा मथे आपु परगासिआ पाइआ अंभृतु नामु ॥१॥

करता तू मेरा जजमानु ।

इक दक्षिणा हउ तै पहि मांगउ बेहि आपरणा नामु ॥१॥रहाउ॥

पच तसकर धावत राखे झुका मनि अभिमानु ।

दिसटि बिकारी दुरमति भागी ऐसा ब्रह्म आनानु ॥ २ ॥

जनु सनु चावल दैआ करण करि प्राप्ति पाती धानु ॥

दूध करमु सतोगु घीउ करि ऐसा मांगउ दानु ॥ ३ ॥

लिमा धीरजु करि गऊ लवेरी सहजे बछरा खोरु पीऐ ।

सिफति सरम का कपड़ा मांगउ हरिगुरु नानक रबतु रहै ॥४॥७॥

(शिष्य को) गुरु की कृपा में ब्रह्मविद्या का विचार होता है (और वह शास्त्रों) को पढ़-पढ़ कर प्रतिष्ठा पाता है । (गुरु की कृपा में) अपने मध्य (अपने अंतःकरण में) आत्मस्वरूप (हरी) प्रकाशित हो गया और नाम रूपी अमृत की प्राप्ति हो गई ॥ १ ॥

हे कर्तापुरुष, तू मेरा यजमान (दान देनेवाला) है । (तू मेरा यजमान है, अतएव) मैं एक दक्षिणा तेरे पास से (तुझसे) मांगता हूँ—(वह दक्षिणा यह है) । कि तू अपना नाम मुझे दे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(गुरु की कृपा से) पाँचों (ज्ञानेन्द्रियों रूपी) चोर दौड़ने में रुक गए और मन का अभिमान समाप्त हो गया । ऐसा ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया कि विकारमयी दृष्टि और दुर्मेन नष्ट हो गई ॥ २ ॥

(हे प्रभु) मैं ऐसा दान मांगता हूँ, (जिसमें) यत (इन्द्रिय-विग्रह) और सत्वगुण चावल हो, दया (अन्न का) दाना हो (हे हरी), (हरि-की) प्राप्ति को पत्तल तथा (धान्य) बना कर मुझे (दे दे) । (हे स्वामी, मेरी दक्षिणा में) कर्म दूध हो, सतोष घी हो ॥ ३ ॥

(हे हरी, मेरे दान में) क्षमा और धैर्य को लवाई (हाल की व्याई हुई) गाय और सहजावस्था को बछड़ा बना । (वह सहजावस्था रूपी बछड़ा क्षमा और धैर्य रूपी गाय का) दूध पिये । (हे साहब), मैं (तेरी) स्तुति और श्रम—उद्योग के बख्त मांगता हूँ, नानक (की यही भिक्षा है कि वह) हरि के गुणों में भिरन्तर रमण करता रहे ॥ ४ ॥ ७ ॥

[८]

आवतु किने न राखिआ जावतु किउ राखिआ जाइ ।

जिस ते होआ सोई पर जाऐ जां उस हो माहि समाइ ॥१॥

तू है है बाहु तेरी रजाइ ।

जो कुछ करहि सोई पर होइबा अबरु न करणा जाइ ॥१॥रहाउ॥

जैसे हरहट की माला टिड लगत है इक सखनी होर केर भरीअन है ।

तैसो ही इहु खेलु खसम का जिउ उस की बडिआई ॥२॥

सुरती कै मारगि बलि कै उलटी नदरि प्रगासी ।

मनि वोचारि देलु ब्रह्म गिआनी कउनु गिरही कउनु उदासी ॥३॥

जिस की आसा तिसही सउपि कै एहु रहिआ निरबाणु ।

जिस ते होआ सोई करि मानिआ नानक गिरही उदासी सो परबाणु ॥४॥८॥

न तो आने (जन्म) को कोई रोक सका है और जाने (मरण) को ही कोई रोक सका । (मनुष्य) जिससे उत्पन्न हुआ और जिसमे लीन होता है, वह (हरी) ही भलीभाँति इसे जान सकता है (कि जन्म-मरण का रहस्य क्या है) ॥ १ ॥

(हे स्वामी), तू ही (अकेला) है, (तू) धन्य है, तेरी मर्जी—इच्छा धन्य है । (हे प्रभु, तू) जो कुछ करता है, वह जरूर होता है, (उसके अतिरिक्त) और कुछ नहीं किया जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जैसे रहट के पाशो की माला (चलते समय) एक खाली होनी रहनी है और एक भरती रहती, वैसे ही पति (परमात्मा की सृष्टि का) खेल (निरन्तर चलता रहता है), (अर्थात् इस खेल मे कोई आता है और कोई जाता है); यह सब (उस हरी की महता बड़ाई है ॥ २ ॥

(हरी की) सुरति (स्मृति) के मार्ग पर चल कर (हमारी) दृष्टि (माया की ओर से) उलट कर प्रकाशित हुई है । हे ब्रह्मजानी, मन मे विचार कर इस बात को देख ले—समझ ले कि कौन गृहस्थ है और कौन विरक्त ॥ ३ ॥

जिस (हरी) की आशा है, (अर्थात् जिस हरी ने आशा की उत्पत्ति की है), उमी को (इसे) सोप कर (साधक) निर्वाण-पद को पा लेता है । नानक का कथन है जिस (प्रभु) मे (सारी वस्तुएँ) उत्पन्न हुई हैं, उमे जो व्यक्ति जान लेता है, वह प्रामाणिक हो जाता, (चाहे वह) गृहस्थ हो (और चाहे) विरक्त ॥ ४ ॥ ८ ॥

[८]

दिसटि बिकारी बंधनि बांधे हउ तिस कै बलि जाई ।

पाप पुन की सार न जाएँ भूला फिरै अजाई ॥१॥

बोलहु सनु नामु करतार । फुनि बहुडि न आबए बार ॥१॥रहाउ॥

ऊचा ते फुनि नीचु करतु है नीच करै सुलतानु ।

जिनी जाणु सु जाणिआ जगि ते पूरे परबाणु ॥२॥

ताकउ समझावए जाईऐ जे को भूला होई ।

आपे खेल करे सभ करता ऐसा बूझे कोई ॥३॥

नाउ प्रभातै सबदि धिआईऐ छोडहु बुनी परीता ।

प्रणवति नानक दासनिदासा जमि हारिअ। तिनि जोता ॥४॥६॥

(जो साधक) विकारो दृष्टि को बचन के अन्तर्गत बाँध देता है, मैं उसकी बलैया लेता हूँ । जो व्यक्ति पाप और पुण्य की वास्तविकता नहीं जानता, वह व्यर्थ भटकता फिरता है ॥ १ ॥

(हे शिष्य), कर्तार का सच्चा नाम बोल—जब, (इससे तू) लौट कर पुनः (संसार में) नहीं आयेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(सामर्थ्यवान् हरी) ऊँचे से नीचा बनाता है और नीचो को सुलतान बना देता है । जिन लोगों ने जाननेवाले हरी को भलीभाँति जान लिया है, वे पूर्ण और प्रामाणिक हैं ॥ २ ॥

यदि कोई भूल करता हो, तो उसे समझाने के निमित्त जाना चाहिए, (किन्तु) कोई (बिरला ही इस बात को समझता है कि प्रभु स्वयं ही सारे खेल खेल रहा है ॥ ३ ॥

प्रभात बेला (अमृत बेला; ब्राह्म मुहूर्त) में (गुरु के) शब्द द्वारा हरि-नाम का ध्यान करना चाहिए, (हे साधक), सासारिक प्रीति को त्याग । (प्रभु के) दासो का दाम नानक विनय करता है कि जो जगत् में अपनी हार मान चुका है, (अर्थात् जो अत्यधिक विनम्र हो गया है), उसी ने यहाँ (वास्तविक) विजय प्राप्त की है ॥ ४ ॥ ६ ॥

[१०]

मनु माइअ मनु पाइअ मनु पंखी आकासि ।

तसकर सबदि निवारिअ नगर बुठा साबासि ॥

जा तू राखहि राखि लेहि साबतु होवै रासि ॥१॥

ऐसा नामु रतनू निधि मेरै ।

गुरमति देहि लगउ पगि तेरै ॥१॥रहाउ॥

मनु जोगी मनु भोगीअ मनु मूरखु गावार ।

मनु दाता मनु भंगता मन सिरि गुरु करतार ।

पंच मारि सुख पाइअ ऐसा ब्रह्म बोचार ॥२॥

घटि घटि एकु बखानीऐ कहउ न बेखिअ जाइ ।

छोटो पूछो रालीऐ बिनु नावै पति जाइ ॥

जा तू भेलहि ता मिलि रहां जां तेरो होइ रजाइ ॥३॥

जाति जनमु नह पूछीऐ सच घर लेहु बताइ ।

सा जाति सा पति है जेहे करम कमाइ ॥

जनम मरन दुखु काटीऐ नानक छूटसि नाइ ॥४॥१०॥

मन माया है और मन ही (उस माया के पीछे) दौड़नेवाला है । मन ही पक्षी (होकर) आकाश में (उड़ता-फिरता है) । (साधक ने काम, क्रोध आदि) चोरो को (गुरु) के शब्द द्वारा निवारण किया है; चोरो के निवारण करने से अब

प्राध्यात्मिक जीवन का) नगर बस गया है, (उसमें) शाबानी प्राप्त हुई (हे प्रभु) जिसकी तू रक्षा करके रख लेता है, उसकी राशि (पूँजी) पूरी होती है ॥ १ ॥

नाम रूपी ऐसा रख मेरे (पास) खजाने के रूप में (छिपा है) । हे गुरु मुझे शिक्षा दे; (मैं) तेरे पैरों में लगता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

मन (कभी) योगी होता है, (और कभी मूर्ख और गँवार । मन (कभी) दाता (बन जाता) है और कभी मँगता—भिक्षमंगा, कभी मन यह भी समझता है कि मेरे सिर के ऊपर गुरु और कर्तार है । पंच (कामादिकों) को मार कर मुख की प्राप्त होती है—(यही वास्तविक) ब्रह्म विचार है ॥२॥

घट-घट (मे व्याप्त) एक (हरी) ही वर्णन किया जाता है, (किन्तु) किसी से (चर्म चक्षुओं द्वारा) नहीं देखा जाता । छोटा ध्यक्ति (नरक में) सीधा करके मारा जातों है—फलाया जाता है । (इस प्रकार) बिना नाम के (उसकी) प्रतिष्ठा चली जाती है । (हे हरी) जब तू (मुझे) मिलाता है, तो (मैं) तुझ में मिल रहता हूँ, (पर यह होता तभी है), जब तेरी मर्जी होती है ॥ ३ ॥

(हरी के) दरबार में जाति-जन्म की पूछ नहीं होती, अतएव सच्चे घर का पना—(तात्पर्य) यह उत्तम जीवन व्यतीत करने का ढङ्ग) सीखना चाहिए । जैसे कर्म किए जाने हैं, वैसे ही जाति और प्रतिष्ठा (बनती है) । नानक का कथन है कि हरि नाम के द्वारा जन्म-मरण के दुःखों को काट कर छुटकारा मिल जाता है ॥ ४ ॥ १० ॥

[११]

जागनु बिगसे मूठो अंधा । गलि फाही सिरि मारे धंधा ॥

आसा आबै मनसा जाइ । उरभी ताणी किछु न बसाइ ॥१॥

जागसि जीवण जागणहार । सुख सागर अमृत भंडारा ॥१॥रहाउ॥

कहिअो न बूझे अंधु न मूर्खे भोंडी कार कमाई ।

आपे प्रीति प्रेम परमेसुर करमी मिलै बडाई ॥२॥

दिनु दिनु आबै तिलु तिलु छीजै माइआ मोहू घटाई ।

बिनु गुर बूडो ठउर न पावै जब लग दूजो राई ॥३॥

अहिनिजि जीआ देखि सन्हालै सुलु दुलु पुरबि कमाई ।

करमहीणु सलु भोखिआ मांगै नानक मिलै बडाई ॥४॥११

जागता हुआ ही यह अधा (जीव) लूटा जा रहा है और इसी में वह प्रसन्न होता है । (उसके) गले में पाश—फाँसी है और सिर पर (सासारिक) धंधे चोटे मार रहे हैं । (जीव) आशा (लेकर इस संसार में उत्पन्न होता है, (किन्तु आशा पूरी न होने पर) इच्छा—वासना लेकर (यहाँ से) चला जाता है । (मनुष्य का) (अत्यंत) उलझनमय है, इस पर (किसी का कुछ) बंध नहीं चलता ॥ १ ॥

(सभी प्राणियों का) जीवन रूप (हरी, सदैव) जागता रहता है । (वह हरी) मुख समुद्र तथा अमृत का भंडार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(मनमुख) कहने पर नहीं समझता; उस ग्रंथे को कुछ सुझाई नहीं पड़ता, (वह सदैव) भोड़े कर्म करता रहता है । परमेश्वर अपनी प्रीति और प्रेम में आप ही (जीवों को लगाता है) । (हरी की) कृपा में ही (साधक को) बड़ाई प्राप्त होती है ॥ २ ॥

(मनुष्य के जीवन के) प्रति दिन (समीप) आते जा रहे हैं, (वह) तिल-तिल करके छोड़ रहा है, माया और मोह (उसके) घट—हृदय में व्याप्त रहते हैं । बिना गुरु के (वह 'सार-सागर' में) डूब जाना है, (उसे तब तक कोई) ठौर-ठिकाना नहीं प्राप्त होता, जब तक राई भर भी द्वैतभाव (उसके अन्नर्गत) रहता है ॥३॥

(हरी) दिन-रात जीवों को देख कर (उनकी आवश्यकताओं को समझ कर) उनकी सँभाल करता रहता है और उनके पूर्व के कर्मानुसार सुख-दुःख (देता रहता है) । कर्महीन नानक सत्य की भीख माँग रहा है कि उसे (नाम की) महत्ता—बड़ाई प्राप्त हो ॥४॥१॥

[१२]

मसटि करउ मूरखु जगि कहिआ ।

अधिक बकउ तेरी लिब रहोआ ॥

भूल चूक तेरै दरबारि । नाम बिना कैसे आचार ॥१॥

ऐसे भूठि सुठे संसारा । निदकु निदैं मुझे पिआरा ॥१॥रहाउ॥

जिसु निदहि सोई बिधि जाएँ । गुर के सबदे दरि नोसाएँ ॥

कारण नामु अंतरिगति जाएँ । जिसुनो नदरि करे सोई बिधि जाएँ ॥२॥

मे मैली ऊजलु सचु सोइ । ऊतमु आखि न ऊचा होइ ॥

मनमुखु खूतिह महा बिलु खाइ । गुरमुखि होइ सु राचे नाइ ॥३॥

अथी बोलौ मुगधु गवारु । होणी नोनु बुरी बुरिआरु ॥

नोधन कउ धनु नामु पिआरु । इहु धनु सारु होरु बिलिआ छारु ॥४॥

उसतति निदा सबदु वीचारु । जो देवै तिस कउ जैकारु ॥

तू बखसहि जाति पति होइ । नानक कहै कहावै सोइ ॥५॥१२॥

(यदि) मैं शान्त, मोन रहना हूँ, (मसट मारता हूँ), तो जगत् मूर्ख कहता है और यदि अधिक बकवास करता हूँ तो तेरी प्रीति रह जाती है । (हे हरी), भूल-चूक तेरे दरबार में (परखी जाती हैं) । बिना नाम के आचारों से क्या लाभ ? ॥१॥

सासारिक प्राणी इसी प्रकार भूठ में लूटे जा रहे हैं । (जो) निन्दक निन्दा करता है, (वह मुझे) प्यारा है ॥१॥ रहाउ ॥

जिसकी निन्दा की जाती है, वह (जीवन की युक्ति) जानता है । गुरु के शब्द द्वारा (साधक) हरी के द्वार पर प्रकट होता है । बन्ध कारण रूप (हरी के) नाम को (अपने) अन्तःकरण में जानता है । जिसके ऊपर (हरी) कृपादृष्टि करता है, वही (उपर्युक्त) विधि को जान पाता है ॥२॥

मैं तो मलिन हूँ; सत्यस्वरूप वह (हरी) उज्ज्वल—पवित्र है । (कोई व्यक्ति) उत्तम कहलाने (मात्र) से, ऊँचा नहीं बन पाता । मनमुख खुल कर—अत्यक्ष रूप से (माया के)

महा विष को खाता है । (जो) गुरुमुख होता है, (वह) (सच्चे) नाम में अनुरक्त होता है ॥३॥

(नाम से विहीन व्यक्ति) अंधे, बौले, मूख, गंवार, हीन (निकम्मे), नीच और बुरो में बुरे होते हैं । (मुझ) निर्धन को तो नाम-धन ही प्यारा है । यही धन तत्वरूप है, अन्य (मायिक) विषय तो खाक (के समान) है ॥४॥

(हरी ही किसी को) स्तुति, (किसी को) निन्दा और (किसी को) शब्द के विचार (का दान देता है) । जो (प्रभु उपर्युक्त वस्तुएं) देता है, उसकी 'जय-जय' करनी चाहिये, (तात्पर्य यह कि साधक को यह मानना चाहिये कि जो कुछ हरी की मर्जी होती है, वही होता है) । (हे प्रभु, यदि) तू कृपा कर दे, तो जाति की प्रतिष्ठा अपने आप मिल जाती है । नानक कहता है (कि हरी आप ही) सब कुछ कहलवाता है ॥५॥१२॥

[१३]

खाइआ मेलु बधाइआ देधे घर की हासि ।
बकि बकिवाहु चलाइआ बिनु नावै बिलु जासि ॥१॥
बाबा ऐसा विश्रम जालि मनु वासिआ ।
बिबलु भागि सहजि परगासिआ ॥१॥
बिलु खाएा बिलु बोलएा बिलु की कार कमइ ।
जमदरि बाधे मारीअहि छूटसि सावै नाइ ॥२॥
जिव आइआ तिव जाइसी कीआ लिखि लै जाइ ।
मनमुखि भूलु गवाइआ दरगह मिलै सजाइ ॥३॥
जगु लोटी सनु निरमली गुरसबदों बोचारि ।
ते नर बिरले जाणीअहि जिन अंतरि गिआनु मुरारि ॥४॥
अजरु जरै नीरुअ भरै अमर अमंद सरूप ।
नानक ज च की मोनु सै धे भावै राखहु प्रीनि ॥५॥१३॥

(मनुष्य बहुत) खाकर मल ही बढ़ाता है (और अधिक) पहन कर अपने (आत्म स्वरूपी) घर की हानि ही करता है और अधिक बोल कर बकवास खड़ा कर देता है; (इस प्रकार) बिना नाम के जाने (उसके समस्त क्रिया-कलाप) विषमय ही समझो ॥१॥

हे बाबा, ऐसे विषम जाल में पड़ा हुआ मन लहरों और भाग्युक्त जल को लींच कर सहज ही प्रकाशित हो गया है । [बिबलु=लहरो और भाग्युक्त जल । भालि=लींच कर, पार कर] ॥१॥ रहाउ ॥

(मनमुख) विष ही खाता है, विष ही बोलता है और विषयुक्त ही कर्म करता है । (जब वह) यमराज के दरवाजे पर बांधा जाता है, (तो किसी प्रकार नहीं छूट सकता), (वह) सच्चे नाम से ही छूट सकेगा ॥२॥

(मनमुख) जिस प्रकार (गुरुहोनि संसार में आया था), उसी प्रकार (गुरुविहीन वहाँ से) चला भी जायगा । (वह अपने) किए हुए (दुष्कर्मों का लेखा) (लिखकर अपने

साथ) ले जाता है । (इस प्रकार) मनमुख प्राणी (अमूल्य मनुष्य जीवन रूपी) मूलबन को भी गँवा देता है और उसे (हरी के) दरबार में सजा मिलती है ॥३॥

(हे साधक) गुरु के शब्द द्वारा (यह) विचार कर कि जगत् छोटा है और सत्य (हरी) निर्मल है । जिनके अन्तर्गत ज्ञान-स्वरूप मुरारी (परमात्मा) (प्रत्यक्ष विराजमान अनुभव होता है) ऐसे लोगों को विरला ही जानना चाहिये ॥४॥

यदि अजर (न जल सकने वाले कामादिक विकार) जन जायें, तो अमर और आनन्द स्वरूप निर्भर (सदैव) भरने लगता है, [तात्पर्य यह कि यदि कामादिक भावनाएँ नष्ट हो जायें, तो अमर और आनन्द-स्वरूप हरी का निरन्तर प्रवाह हृदय में प्रवाहित होने लगता] । नानक जल के मीन के समान है, (भाव यह कि जैसे मीन जल चाहता है, वैसे ही हे हरी, नानक तुझे चाहता है) । यदि तुझे अच्छा लगे, तो मेरी प्रीति रख । [ये=तुझे] ॥५॥१३॥

(१४)

मीत नाद हरख चतुर्दाई । रहस रंग कुरमाइसि काई ॥
पेन्हणु खारणा चीति न पाई । मातु सहसु सुखु नामि बसाई ॥१॥
किआ जानां किआ करै करावै । नाम बिना तनि किछू न सुखावै ॥१॥रहाउ॥
जोग बिनोद स्वाद आनंदा । मनि सत भाइ भगति गोबिंदा ॥
कीरति करम कार निज संदा । अंतरि रवतौ राज रविदा ॥२॥
प्रिउ प्रिउ प्रीति प्रेमि उर धारी । दीनानाथ पीउ बनवारी ॥
अनदिनु नामु दानु अतकारी । तृपति तरंग ततु बीचारी ॥३॥
अकथी कथउ किआ मे जोरु । भगति करी कराइहि मोर ॥
अंतरि वसे चूकै मे मोर । किसु सेवी दूजा नही होरु ॥४॥
गुर का सबद महा रसु मीठा । ऐसा अमृतु अंतरि डोठा ॥
जिनि चाखिआ पूरा पदु होइ । नानक धापिओ तनि सुलु होइ ॥५॥१४॥

संगीत के नाद, हर्ष, चानुरी, आनन्द, प्रमोद (रंग), हुक्म (आदि) मे कुछ (काई) (सुख नहीं है), खाना-पहना भी चित्त मे नहीं आते (अर्थात् खाने-पहनने मे भी सुख नहीं है) । सच्चा और सहज सुख तो नाम में बसता है ॥१॥

(मैं) क्या जानूँ (कि हरी) क्या करता-कराता है ? (मुझे तो) नाम के बिना कुछ भी नहीं सुहाता ॥१॥ रहाउ ॥

(मेरी) बुद्धि में सच्चे भाववाली गोविन्द की भक्ति (स्थिर हो गई है), (इसलिए) योग के कोतुक, स्वाद, आनन्द (आदि सभी पदार्थ) प्राप्त हो गए हैं । (हरी की) कीर्ति का (उच्चारण करना), यह मेरा निजी कार्य है । रवि (सूर्य) और इन्दु (चन्द्रमा) का प्रकाशक (हरी) हृदय में रम गया है । [श्री कर्तारपुर वाली प्रति में 'रविदा' के स्थान पर 'रवदा' पाठ है] ॥२॥

प्रियतम (हरी) की प्रीति (मैंने) प्रेम से हृदय में धारण कर ली है । वह बनवारी (हरी) दीनानाथ (और सभी का) प्यारा है । (मेरे लिए प्रतिदिन हरिनाम ही दान और व्रता-

बिक (किया) है । (मैं हरी रूपी) तत्त्व को विचार कर (विषय-विकारों की) तरंगों से तृप्त हो गया है ॥३॥

मुझमें क्या जोर—शक्ति है (कि मैं) अकथनीय (हरी) का कथन करूँ । (यदि वह हरी) मुझसे भक्ति कराए, तो मैं करूँ । (हरी के) हृदय में बसने से 'मैं' और 'मेरावन' समाप्त हो जाता है । (मैं हरी को छोड़कर और) किसकी सेवा करूँ ? (हरी के अतिरिक्त) और दूसरा कोई है ही नहीं ॥४॥

गुरु का शब्द, अत्यधिक मीठा रस (अमृत) है । (मैंने) ऐसे अमृत को (अपने) अन्तःकरण में देख लिया । जिन्होंने इस अमृत रस को चख लिया, (उन्हें) पूर्ण पद की प्राप्ति हो गई । नानक तो (इस अमृत का आस्वादन करके) तृप्त हो गया (और उसके) शरीर को (अत्यधिक) सुख प्राप्त हुआ ॥५॥१ ॥

(१५)

अंतरि देखि सबदि मनु मानिआ अवरु न रांगनहारा ।

अहिनिशि जीआ देखि समाले निम ही की सरकारा ॥१॥

मेरा प्रभु रांगि घणौ अति रुझी ।

बीन बइआलु प्रीतम मनमोहनु अति रस लाल सगुड़ी ॥१॥रहाउ॥

ऊपरि कृपु गगन पनिहारी असनु पीबएहारा ।

जिसकी रचना सो विधि जाणै गुरमुखि गिआनु बीचारा ॥२॥

पसरी किरणि रसि कमल बिगाने ससि घरि मूरु समाहारा ।

कालु बिधु'सि मनसा मनि मारी गुरप्रसादि प्रभु पाइआ ॥३॥

अति रसि रंगि चसूने राती दूजा रंगु न कोई ।

नानक रसनि रसाए राते रवि रहिआ प्रभु मोई ॥४॥१५॥

(गुरु के) शब्द द्वारा (हरी को) हृदय में ही देखकर (मेरा चंचल) मन मान गया—शान्त हो गया (और उसे यह अनुभूति हो गई कि मन को) रंगनेवाला (हरी को छोड़कर) कोई और नहीं है । (हरी ही) जीवों को देखकर अहिनिश उनकी संभाल करता है (और उसी की) हुकूमत—बादशाही (सर्वत्र) है ॥१॥

मेरा प्रभु घने रंगवाला और अति सुन्दर है । प्रियतम (हरी) दीनदयालु, मन को मोहनेवाला, अति रसज्ञ—रसिक और घना लाल (तात्पर्य यह कि अति अनुरागमय) है ॥१॥ रहाउ ॥

ऊपर आकाश में कुंआ है, (अर्थात् गगनारध के दशम द्वार में अमृत कूप है); (बुद्धि ही उस कुएं की) पनिहारिनी है और उस अमृत को पीनेवाला (मन) है । गुरु की शिक्षा द्वारा (मैंने) इस ज्ञान पर विचार किया है कि जिस प्रभु की सृष्टि है, वही (अपने में मिलाने की) विधि जानता है ॥२॥

(गुरु-ज्ञान की) किरणें फैल गईं, (जिससे) (हृदय रूपी) कमल रसयुक्त होकर (मकरंद से परिपूर्ण) होकर प्रस्फुटित—विकसित हो गया और चन्द्रमा के घर में सूर्य का निवास हो गया, (तात्पर्य यह है कि गानवी मन रूपी चन्द्रमा के अन्तर्गत गुरु-ज्ञान रूपी सूर्य

का प्रकाश हो गया) । (इस दिव्य ज्ञान से) काल विध्वंस हो गया, (नष्ट हो गया) और इच्छाएं (मनसा) मन में ही मार दी गईं, (इस प्रकार) गुरु का कृपा से प्रभु की प्राप्ति हो गई ॥३॥

(जीवात्मा स्त्री स्त्री हरि के) रस में (धराधोर हो गई) (और उसके प्रेम के) गाढ़े लाल रंग में रंग गई । (अब उसके लिए) कोई अन्य (सासारिक) रंग नहीं रह गया । [चलूला < फारसी, चूँ लालहू = 'लाला' फूल के समान गहरा लाल] । नानक का कथन है (कि मैं तो अपनी) जीभ को रसमयी बना कर (हरी के प्रेम में) अनुरक्त हो गया हूँ, (जिसके फलस्वरूप मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि) वही प्रभु (सर्वत्र) रम रहा है ॥४॥१५॥

[१६]

बारह महि रावल खपि जावहि चहू छिब महि संनिप्रासी ।

जोगी कापड़ीआ सिर खूथे बिनु सबदै गलि फासी ॥१॥

सबदि रते पूरे बैरागी ।

अउहठि हसत महि भीखिया जावी एक भाइ लिब लागी ॥१॥रहाउ ।

ब्रह्मण वादु पड़हि करि किरिया करणी करम कराए ।

बिनु बूझे किछु सूझै नाही मनमुख बिछुड़ि दुखु पाए ॥२॥

सबदि मिले से मूचावारी साची दरगह माने ।

अनदिनु नाभि रतनि लिब लागे जुगि जुगि साचि समाने ॥३॥

सगले करम धरम सुचि संजय जप तप तीरथ सबदि बसे ।

नानक सतिगुर मिलै मिलाऽआ दूख परछन काल नसे ॥४॥१६॥

(अपने) बारह सम्प्रदायों में योगी आर दस सम्प्रदायों में संन्यासी खप जाते हैं । [रावल=योगी । चहू + छिब=चार और छः, दस] । कापड़ी सम्प्रदाय के योगी सिर (के बालों को) बटे रहते हैं, (किन्तु) बिना (गुरु के) शब्द-ज्ञान के, (उनके) गले में फाँसी पड़ी रहती है ॥१॥

(जो साधक) गुरु के शब्द में अनुरक्त हैं, वे ही पूर्ण बैरागी हैं । उन्होंने विशेष करके हृदय के अन्तर्गत ही (प्रभु-प्रेम की) भिक्षा माँगी है, (जिसके फलस्वरूप) एक भाव—अनन्य भाव में उनकी लिब लग गई है (तात्पर्य यह कि परमात्मा के अनन्य प्रेम में वे निमग्न हो गए हैं, जिससे उनकी वृत्ति अन्तर्मुख हो गई है) ॥१॥ रहाउ ॥

ब्राह्मण वाद-विवाद (तर्क-वितर्क) । संबंधी ग्रंथों का अध्ययन करते हैं (और उन्हीं के आधार पर) क्रियाएं करके (अन्य लोगों द्वारा) कर्मों का सम्पादन कराते हैं । बिना (हरी) के समझे, कुछ भी सूझ नहीं पड़ता, मनमुख (हरी से) बिछुड़ कर दुःख पाता है ॥२॥

(जो व्यक्ति गुरु के) शब्द से मिल चुके हैं, वे ही पवित्र आचारवाले हैं, (हरी के) सच्चे दरबार में उनका मान होता है । वे प्रतिदिन लिब (एकनिष्ठ प्रीति) लगा कर नाम में अनुरक्त रहते हैं और युग-युगान्तरो के लिए (सदैव के लिए) सत्य (परमात्मा) में, समा जाते हैं ॥३॥

(गुरु के) शब्द में समस्त कर्म-धर्म, शुचि, संयम, जप, तप तथा तीर्थादिक आ बसते हैं । नानक का कथन है (कि हरी के) मिलाने पर ही (हमें) गुरु मिलता है; (गुरु की प्राप्ति से) दुःख, पाप (प्रायश्चित्त) तथा काल नष्ट हो जाते हैं ॥४॥१६॥

[१७]

संता की रेणु साथ जन संगति हरि कीरति तरु तारी ।
 कहा करे बपुरा जसु डरपै गुरुमुखि रिदै मुरारी ॥१॥
 जलि जाड जीवनु नाम बिना ।
 हरि जपि जापु जपड जपमाली गुरुमुखि भ्रावै सादु मना ॥१॥ रहाउ ॥
 गुर उपदेस सातु सुसु जाकड किष्ठा तिसु उपमा कहोऐ ।
 साल जबेहर रतन पदारथ खोजत गुरुमुखि लहीऐ ॥२॥
 चीनै गिमानु धिमानु धनु साची एक सबदि लिव लावै ।
 निरालंनु निरहारु निहकेवल निरभड ताड़ी सावै ॥३॥
 साइर सपत भरे जल निरमलि उलटी नाव तरावै ।
 बाहरि जाती ठाकि रहावै गुरुमुखि सहिज समावै ॥४॥
 सो गिरही सो दासु उदासी जिनि गुरुमुखि आपु पद्यानिभा ।
 नानक कहै अबरु नही दूजा साच सबदि मनु मानिभा ॥५॥१७॥

(हे साधक, तू) यह तेराकी तैर—संत-जनों की चरण-धूलि (ग्रहण कर), साधु-जनों की संगति में हरि के यश (कीर्ति) का (गुणगान कर); (इस विधि से संसार-सागर पार हो जा) । गुरुमुख के हृदय में मुरारी (हरी) का वास होता है; (इससे) बेचारा यमराज (उसका क्या कर सकता है ? (वह तो इस प्रकार के साधक से) डरता है ॥१॥

हे जीवन, (तू) नाम के बिना जल जा । (हे साधक) गुरु की शिक्षा द्वारा (हृदय रूपी) जपमाला—सुमिरनी से हरि का जप कर, (इससे) मन में (विलक्षण) स्वाद प्रायेगा ॥१॥ रहाउ ॥

जिसे गुरु के उपदेश द्वारा सच्चे मुख की प्राप्ति हो गई है, उसकी उपमा क्या करी जाय ?, (अर्थात् उसकी जिससे उपमा की जाय) ? गुरु की शिक्षा द्वारा खोजने से (नाम रूपी) लाल, जवाहर, रत्न तथा (अलौकिक) पदार्थ (हृदय में ही) प्राप्त हो जाने हैं ॥२॥

(गुरु के) एक शब्द में लिव (एकनिष्ठ प्रीति) लगाकर (साधक) ज्ञान, ध्यान, और (हरी रूपी) सच्चे धन को पहचानता है तथा अश्रय-रहित, निराहारी, निष्केवल, निर्भय (हरी) में ताड़ी—ध्यान लगाता है ॥३॥

सात सरोवर (पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि और मन), (हरि नाम रूपी भ्रमृत) जल से भर गए हैं, (साधक) उलटी नाव चला रहा है (तात्पर्य यह कि विषयोन्मुखी वृत्ति को उलट कर हरियुक्ती वृत्ति बना लेता है) । (वह) बाहर जलते हुए (मन) को रोक कर (आत्म-स्वरूप में) टिकाए रखता है, (इस प्रकार) गुरु की शिक्षा द्वारा (वह) सहजावस्था में समा जाता है ॥४॥

जिस (साधक) ने गुरु द्वारा अपने आप को पहचान लिया, वही (वास्तविक) गृहस्थ है, वही (सच्चा) दास है और वही (पूर्ण) विरक्त है । नानक कहता है (कि हरी के अतिरिक्त) और कोई दूसरा नहीं है, (गुरु के) शब्द से मेरा मन मान गया—शान्त हो गया ॥५॥१७॥

१ॐ सतिगुर प्रसादि ॥ प्रभाती-विभास, महला १

असटपदीआं

[१]

दुबिधा बउरी मनु बउराइआ । भूटे लालचि जनमु गवाइआ ॥
 लपटि रहो कुनि बंधु न पाइआ । सतिगुरि राखे नामु टुड़ाइआ ॥१॥
 ना मनु मरे न माइआ मरे ।
 जिनि किछु कोआ सोई जाणै सबदु बीचारि भउसागुर तरै ॥१॥ रहाउ ॥
 माइआ संचि राजे अहंकारी । माइआ साथि न चलै पिपारी ॥
 माइआ ममता है बहु रंगी । बिनु नावै को साथि न संगी ॥२॥
 जिउ मनु देखहि परमनु तैसा । जैसी मनसा तैसी दसा ॥
 जैसा करमु तैसी लिब लावै । सतिगुरु पूछि सहज घर पावै ॥३॥
 रागि नादि मनु दूजे भाइ । अंतरि कपटु महा दुख पाइ ॥
 सतिगुर भेटै सोभी पाइ । सचै नामि रहै लिब लाइ ॥४॥
 सचै सबदि सच्चु कमावै । सचो बाणो हरि गुण गावै ॥
 निजघरि वासु अमरवदु पावै । ता दरि सचै सोभा पावै ॥५॥
 गुर सेवा बिनु भगति न होई । अनेक जतन करै जे कोई ॥
 हउमै मेरा सबदे खोई । निरमलु नामु वसै मनि सोई ॥६॥
 इसु जग महि सबदु करणी ह सारु । बिनु सबदे होरु मोहु गुबारु ॥
 सबदे नामु रखै उरपारि । सबदे गति मति भोजदुआरु ॥७॥
 अवरु नाही करि बेखणहारो । ताचा आपि अनूपु अपारो ॥
 राम नाम अतम गनि होई । नानक खोजि लहै जनु कोई ॥८॥१॥

बाबली दुबिधा ने मन को बाबली बना दिया है, (जिससे) भूटे लालच में पड़कर (उसने अपना अमूल्य) मानव-जन्म नष्ट कर दिया है । (दुबिधा मनुष्य से कस कर) लिपट गई है, फिर इसे कोई रोक नहीं सकता । (ऐसी परिस्थिति में) सद्गुरु ने नाम टुड़का कर (साधक की) रक्षा की ॥ १ ॥

(जब तक) मन नहीं मरता, (तब तक) माया नहीं मरती । जो कुछ उसने किया है, उसे वही जानता है; (साधक गुरु के) शब्द को विचार कर संसार से तर जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(बड़े-बड़े) अहंकारी राजागण माया का संग्रह करते हैं, (किन्तु उनकी) प्यारी माया (उनके) साथ नहीं चलती । माया की ममता बहुरंगिनी है । बिना हरिनाम के कोई भी संगी-साथी नहीं होता ॥ २ ॥

जैसा (अपना) मन होता है, वैसा ही दूसरो का मन दिखाई पड़ता है । जैसी मन की इच्छा होती है, वैसी ही उसकी दशा भी हो जानी है । जैसे कर्म होते हैं, वैसी ही सुरति

(लिव) भी बन जाती है । सद्गुरु से पूछने पर सहजावस्था (सहज घर) की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

(दुनियाँ के) रागों और नादों में लगा हुआ मन द्वैतभाव में रहता है । अन्तःकरण में कपट होने के कारण (मनमुख) बहुत दुःख पाता है । सद्गुरु से मिलने पर समझ आती है, (जिससे साधक) (हरी के) सच्चे नाम में लिव लगाए रहता है ॥ ४ ॥

(गुरु के) सच्चे शब्द द्वारा (साधक) सत्य की कमाई करता है और सच्ची वाणी से हरि का गुणगान करता है । (हरि का गुणगान करने से) (उसका आत्मस्वरूपी) घर में निवास हो जाता है, (जिससे वह) अमर पद पा जाता है और तब (हरी के) सच्चे दरवाजे पर शोभा पाता है ॥ ५ ॥

चाहे कोई अनेक यत्नों को करे, किन्तु गुरु-सेवा के बिना भक्ति नहीं (प्राप्त) हो सकती । (जो साधक गुरु के) शब्द द्वारा 'अहंकार' और 'मेरेपन' (अपने पन) को खो देता है, उसके मन में पवित्र हरिनाम का वास होता है ॥ ६ ॥

इस जगत् में (गुरु के) शब्द ही कमाई श्रेष्ठ वस्तु है । बिना शब्द के और (वस्तुएँ) मोहयुक्त और अंधकार पूर्ण हैं । (गुरु के) शब्द के द्वारा (साधक) हृदय में हरिनाम धारण कर रखता है । (गुरु के) शब्द से ही मुक्ति (गति), (श्रेष्ठ) बुद्धि तथा मोक्षद्वार प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

(हरी के बिना) और कोई दूसरा नहीं है, (जो उत्पन्न करके) फिर देखभाल करता है । (हरी) आप ही सच्चा, अद्वितीय और अपार है । रामनाम से उत्तम गति होती है । नानक का कथन है कि कोई (बिरला) ही पुरुष (उम) खोज कर प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ १ ॥

[२]

माइया मोहि सगल जगु छाइया । कामणि बेलि कामि लोभाइया ॥

सुत कंचन सिउ हेतु बघाइया । सभु किछु अपना इहु रामु पराइया ॥१॥

ऐसा जापु जपउ जपमाली । दुख सुख परहरि भगति निराली ॥१॥ रहाउ ॥

गुण निधान तेरा अनु न पाइया । साब सबदि तुभ माहि समाइया ॥

आवागउणु तुषु आपि रचाइया । सेई भगत जिन सचि चितु लाइया ॥२॥

गिआनु धिआनु नरहरि निरबाणी । बितु सतिगुर भेटे कोइ न जाणी ॥

सगल सरोवर जोति समाणी । आनद रूप बिटहु कुरबाणी ॥३॥

भाउ भगति गुरमती पाए । हउमै बिचहु सबदि जताए ॥

धावतु राखै ठाकि रहाए । सचा नामु मंनि बसाए ॥४॥

बिसम बिनोब रहे परमावी । गुरमति मानिआ एक लिव लावी ॥

बेलि निवारिआ जल महि आगो । सो बूझै होवै बडभागो ॥५॥

सतिगुरु सेवे भरसु चुकाए । अनदिनु जागे सचि लिव लाए ॥

एको जागै अवरु न कोइ । सुखदाता सेवे निरमसु होइ ॥६॥

सेवा सुरति सबदि बीचारि । जपु तपु संजसु हउमै मारि ॥

जीवन मुक्तु जा सब सुणाए । सबी रहत सचा सुख पाए ॥७॥

सुखदाता दुखु भेटणहारा । अवरु न सूभसि बीजो कारा ॥

तनु मनु धनु हरि आगे राखिआ । नानकु कहै महा रसु जाखिआ ॥८॥२॥

माया का मोह समस्त जगत् में छाया हुआ है (व्याप्त है) । कामिनी को देखकर कामी पुरुष लुब्ध हो जाता है । (सांसारिक प्राणी) पुत्र और काचन से प्रीति बढ़ाते हैं । (वे) सब कुछ तो अपना समझते हैं, पर एक राम को पराया (मानते) हैं ॥ १ ॥

(हे हरी), (मे) जपमाला—सुमिरनी से ऐसा जप करूँ कि (सांसारिक) दुःखो-मुखो का परित्याग कर (तेरी) निराली भक्ति प्राप्त करूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे गुणनिधान (हरी), तेरा अंत नहीं पाया जा सका । (गुरु के) सच्चे शब्द द्वारा (मैं) तुम्हीं में समा गया । (हे प्रभु), आवागमन (जन्म-मरण) की रचना तू ने ही की है । वे ही (वास्तविक) भक्त हैं, जिन्होंने अपना चित्त सत्य (हरी) में लगा दिया है ॥ २ ॥

निर्वाणस्वरूप नरहरि (हरी) का ज्ञान और ध्यान, सद्गुरु के प्राप्त हुए बिना कोई भी नहीं जान सकता । समस्त सरोवरो (घटो, प्राणियो) में (हरी को ही) ज्योति व्याप्त है; उस आनन्दस्वरूप (हरी) पर मैं कुरवान हूँ ॥ ३ ॥

गुरु की शिक्षा द्वारा प्रेम (भाव) और भक्ति की प्राप्ति होती है । (साधक को अपने) आन्तरिक अहंकार को जला देना चाहिए; (वह) अपने दौड़ते हुए मन को रोक रखे और (हरी के) सच्चे नाम को मन में बसा ले ॥ ४ ॥

(गुरु की शिक्षा द्वारा) प्रमाद उत्पन्न करनेवाले आश्चर्यजनक (त्रिसम) कौतुक समाप्त हो गए । गुरु की शिक्षा मानने में (हरी में) एकनिष्ठ लिव (प्रीति) लग गई । (साधक ने हरी को) देखकर—साक्षात्कार कर (नाम रूपी) जल से (तृष्णा रूपी) अग्नि निवारण कर दी । जो इस रहस्य को समझता है, वह परम भाग्यशाली है ॥ ५ ॥

(सच्चा शिष्य) सद्गुरु की सेवा करके भ्रम को नष्ट कर दे तथा सत्य (हरी) में प्रीति लगा कर प्रतिदिन जागता रहे । (वह) एकमात्र (हरी) को जाने, (उसे छोड़कर) और कोई दूसरा नहीं है । मुखदाता हरी की सेवा से (साधक) निर्मल हो जाता है ॥ ६ ॥

जब शब्द में विचार करने से (साधक की) सुरति सेवा में (लग जाती है), तो उसकी अहभावना मर जाती है और जप, तप तथा संयम (उसके साथी हो जाते हैं) । (साधक) जब शब्द—नाम को (निरन्तर) गुनाता रहे, (तभी उसे) जीवन्मुक्त समझना चाहिए । सच्ची रहनी से सच्चा मुख प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

सुखदाता (हरी) दुखों को भेटनेवाला है । (सच्चे शिष्य को हरि-भजन और गुरु-सेवा के अतिरिक्त) अन्य दूसरा कार्य नहीं सूझता । नानक कहता है कि (मैंने अपना) तन, मन, धन हरि के आगे समर्पित कर दिया, (इसी) महा (अमृत) रस का आस्वादन कर लिया ॥ ८ ॥ २ ॥

[३]

नियली करम भुअंगम भाठी देखक पूरक कुंभ करे ।

बिनु सतिगुर किछु सोभी नाही भरने भूला बूडि मरे ॥

ना० वा० फा०—१००

करउ अडाई धरती मांगो वायन रूपि बहानै ।
 किउ पइआसि जाइ किउ छलीऐ जे बलि रूपु पछानै ॥३॥
 राजा जनमेजा वे मतीं वरजि बिआसि पढ़ाइआ ।
 तिन्हि करि जग अठारह घाए किरतु न चले चनाइआ ॥४॥
 गलत न गणी हुकसु पछाणा बोली भाइ सुभाई ।
 जो किछु बरतै तुघै सलाहीं सभ तेरी वडिआई ॥५॥
 गुरमुखि अलिपतु लेपु कबे न लागै सदा रहै सरणाई ।
 मनमुख मुगधु आगै चेतै नाही दुखि लागै पछुताई ॥६॥
 आपे करे कराए करता जिनि एह रचना रचीऐ ।
 हरि अभिमानु न जाई जीअनु अभिमाने पै पचीऐ ॥७॥
 भुलए बिचि कीआ सभु कोई करता आपि न भुलै ।
 नानक सचि नामि नितनारा को गुर परसादि अघुलै ॥८॥४॥

गौतम तपस्वी की स्त्री अहत्या (थी) । उमें देख कर इन्द्र मोहित हो गया । (गौतम श्रृषि के शाप से जब इन्द्र के) शरीर में सहस्र भगो के चिह्न हो गए, तो (वह अपने) मन में पछताने लगा ॥१॥

अरे भाई, जान बूझ कर कोई भूल मत करना । जिसे (हरी) स्वयं भुलवाता है, वही भूल करता है । और जिसे वह समझाता है, वह समझ जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

(जो) हरिचन्द्र पृथ्वीपति और राजा थे, उन्हें भी अपने (भाग्य के) कागज (की लिखावट की) कीमत का पता न था, (यथांत वे भी अपनी भाग्य-लिपि नहीं जान सके थे) । (यदि वे विश्वामित्र को दान देने को) अवगुण समझते, तब फिर क्यों पुण्य करते (दक्षिणा देने), और क्यों मंडी में (स्वयं परिवार सहित डोम के हाथों) बिचने ? [नेखासि < अरबी, नखास = मंडी] ॥२॥

(हरी ने) वामन-रूप के बहाने (राजा बलि में) अडाई पग धरती मांगी । यदि बलि (वामन के उस) रूप को पहचानता होता, तो पाताल में जा कर क्यों छला जाता ? ॥३॥

व्यास देव ने राजा जन्मेजय को शिक्षा देते समय यज्ञ समझा कर रोक दिया (कि अश्वमेध यज्ञ मत करना), (किन्तु परिणाम को जानते हुए भी उन्होंने प्रारब्धानुसार) यज्ञ किया और अठारह (ब्राह्मणों) को मारा, (जिसके फलस्वरूप उन्हें कोढ़ हो गया, अतः यह स्पष्ट है कि) किरति कर्मों द्वारा बने हुए भाग्य मिटते नहीं ॥४॥

(मैं) स्वाभाविक रूप से कहता हूँ कि मैं हिसाब-किताब नहीं लगाता (गिनती नहीं गिनता), (मैं साथे सोधे) हरी का हुक्म पहचानता हूँ । (हे हरी) जो कुछ भी बरत रहा है, (तू ही बरत रहा है) ; (मैं) तेरी स्तुति करता हूँ कि सब कुछ तेरी ही महता—बड़ाई (सर्वत्र दिखाई पड़ रही है) ॥५॥

गुरुमुख (गुरु का अनुयायी) अलिप्त रहता है, (वह) कभी (इस संसार में) लिपाय-मान नहीं होता, क्योंकि (सदैव हरि की) शरण में रहता है । मनमुख मूर्ख होता है; (वह) आगे (मरने में पहले) नहीं चेतता; (अतएव उमें अंत में) दुःख होता है, (जिससे) पछताता है ॥६॥

जिस कर्त्तपुरुष ने यह सृष्टि-रचना रची है, (वह) आप ही करता-कराता है । हे हरी, (मनुष्य का) अभिमान (उसके) हृदय से नहीं जाना, (अतएव वह उसी) अभिमान में पच जाता है ॥७॥

सभी किसी ने भूल में ही (अपने अपने कर्म) किए हैं, (किन्तु) कर्त्तपुरुष (हरी) आप (कुछ भी) नहीं भूलता । नानक का कथन है कि कोई (बिरला ही व्यक्ति) गुरु की कृपा से सत्य नाम (का आश्रय ग्रहण कर) जगत् से छूट जाता है, (तात्पर्य यह कि मुक्त हो जाता है) । [अघुलै—इसकी उत्पत्ति 'घुलना' क्रिया में है । 'अघुलना' क्रिया 'घुलना' का विपरीत है । जिस प्रकार पानी में खाड़ घुल-मिलकर एक हो जाती है, किन्तु जब वही खाड़ पानी से फिर निकाल ली जाती है तो यह उसका 'अघुलना' होता है, उसी प्रकार जीव मंसार-सागर, में घुलमिल कर माया से एक हो गए हैं, वे यदि उस माया में निकल कर अपने वास्तविक स्वरूप में आ जायें, तो 'अघुलै' हो जाते हैं, तात्पर्य यह कि बच जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं—श्री गुरु ग्रंथ घोश, पृष्ठ २८] ॥८॥४॥

[५]

आवरण सुनए नाम अघारु । धंधा छुटकि गइआ बेकारु ॥
जिउ मनमुखि दूजै पति छोई । बिनु नावै मै अवरु न कोई ॥१॥
सुनि मन धंधे मूरख गवार ।
आवत जात लाज नहीं लागै बिनु गुर बूडै बारो बार ॥१॥ रहाउ ॥
इसु मन माइआ मोहि बिनासु । घुरि ठुकसु लिखिआ तां कहीऐ कासु ।
गुरमुखि बिरला चोने कोई । नाम बिहूना मुकति न होई ॥२॥
अमि अमि डोलै लख चउरासी । बिनु गुर बूझे जम की फासी ॥
इहु मनुआ खिनु खिनु ऊभि पइआनि । गुरमुखि छूटै नाम समालि ॥३॥
आपे सबे दिल न होइ । सबदि मरै सहिजा जीवै सोइ ॥
बिनु गुर सोभी कसै न होइ । आपे करै करावै सोइ ॥४॥
अगडु चुकावै हरि गुण गावै । पूरा सतिगुरु सहजि समावै ॥
इहु मनु डोलत तउ ठहरावै । सचु करणी करि कार कमावै ॥५॥
अंतरि जूठा किउ सुचि होइ । सबदी धोवै बिरला कोइ ॥
गुरमुखि कोई सचु कमावै । आवणु जाणु ठाकि रहावै ॥६॥
अउ लाणा पोणा सुख सारु । हरि जन संगति पावै पारु ॥
सचु बोले बोलावै पिआरु । गुर का सबडु करणी है सारु ॥७॥
हरि जसु करसु धरसु पति पूजा । काम क्रोध अगनी सहि भूजा ॥
हरि रसु चाखिआ तउ मनु भोजा । प्रणवति नानकु अवरु न दूजा ॥८॥५॥

हरिनाम को कहना-सुनना ही (मेरा) आश्रय हो गया है, (अतएव) बेकार कामों के धंधे छूट गए हैं । जिस प्रकार मनमुख द्वैतभाव में पड़ कर अपनी प्रतिष्ठा खोता है, (किन्तु वह अपना हठ नहीं छोड़ता, उसी प्रकार मैंने भी नाम को ही अपना आश्रय बनाने का हठ किया है), नाम के बिना मेरा और कोई (आश्रय) नहीं है ॥१॥

हे अंधे; मूर्ख और गंवार मन, (तत्पर्यं यह कि अज्ञानी मनुष्य) सुन, तुझे (पुनः पुनः संसार मे) भ्राने जाने मे लज्जा नहीं लगती ? बिना गुरु के तू बार बार (इस संसार सागर मे) डूब रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

माया और मोह (के चक्कर मे पड़कर) इस मन का विनाश हो जाता है, (अथवा माया में मोहित होकर इस मन का विनाश हो जाता है)। (यदि) प्रारम्भ से ही (हरी का) हुक्म (इसी प्रकार) लिखा गया है, तो किससे कहा जाय ? कोई विरला ही गुरु की शिक्षा द्वारा (नाम-तत्व को) पश्चानता है। नाम-विहीन व्यक्ति को मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ॥२॥

(मनुष्य चौरासी लाख योनियो में भटक भटक कर फिरता रहता है। बिना गुरु से नमस्ते यमराज की फांसी (सदैव गले में पड़ी रहती है)। यह मन क्षण भर में आकाश मे (चढ़ जाता है) और क्षण भर में पाताल मे (जा गिरता है), (किन्तु यह) गुरु की शिक्षा द्वारा नाम का स्मरण करके छूट जाता है ॥३॥

(यदि हरी) आप बुलाता है, (तो उसमे) देर नहीं लगती (जो साधक गुरु के) शब्द मे मरता है, उसी का जीना सफल होता है। बिना गुरु (की शिक्षा ग्रहण किए) किसी को (आध्यात्मिक) समझ नहीं आती। (परन्तु ये सब वस्तुएं) प्रभु आप ही करता और कराना है, (ये और किसी के बूते की नहीं हैं) ॥४॥

पूर्ण सद्गुरु (मासारिक) भगड़ो—प्रपंचो को समाप्त कर देता है, (अहर्निश) हरि का गुणगान करता है तथा सहजावस्था में समा जाता है। यदि यह मन झोलता है, तो उसे स्थिर कर रखता है। (वह) सच्ची करनी के आधार पर कर्मों का सम्पादन करता है ॥ ॥

(जिसका) हृदय अपवित्र है, वह किस प्रकार पवित्र हो सकता है ? (गुरु के) शब्द द्वारा कोई विरला ही (साधक) (अपने जूठे—अपवित्र हृदय को) धोता है। कोई (विरला ही साधक) गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य की कमाई करता है। (और इस प्रकार अपने) आवा-गमन को रोक देता है ॥६॥

(परमात्मा का) भय ही खाना, पीना और श्रेष्ठ सुख है। हरि-भक्तो की संगति से (संसार-सागर से) पार दुआ जा सकता है। (हरी का) भक्त सत्य बोलता है, (क्योंकि यह सत्य उसके) प्यार हो बुलवाता है; (तत्पर्यं यह कि उसे सत्य बुलवानेवाला प्यार ही है। वह सत्य को प्यार करता है, इसीलिए सत्य बोलता है)। गुरु के शब्दों (के ऊपर आचरण करना) उसकी श्रेष्ठ करनी है ॥७॥

जिसने हरियश (के गुणगान को) कर्म, धर्म, प्रतिष्ठा और पूजा समझ ली है, उसने काम, क्रोधादिक (विकारों) को ज्ञानाग्नि में दग्ध कर दिया है। नानक विनय करता है कि (जब मैंने) हरि-रस को चख लिया, तो मन भीज गया (आनन्दित हो गया और मेरी दृष्टि में एक हरी को छोड़ कर) और दूसरा कोई न (रह गया) ॥८॥५॥

[६]

राम नामु जपि अंतरि पूजा । गुर सबदु बीचारि अवरु नही डूजा ॥१॥
 एको रवि रहिया सभ ठाई । अवरु न दोसै किमु पूज चड़ाई ॥१॥ रहाउ ॥
 मनु तनु आगै जोझड़ा तुभ पासि । जिउ भावै तिउ रखउ शरदासि ॥२॥
 सच्चु जिहवा हरि रसन रसाई ; गुरमति छूटसि प्रभ सरणाई ॥३॥
 करम धरम प्रभि मेरे कोए । नामु बडाई सिरि करमां कोए ॥४॥
 सतिगुरि कै बसि चार पदारथ । तीनि समाए एक कृतारथ ॥५॥
 सतिगुरि दीए मुक्ति धियानां । हरि पदु जोन्हि भए परधाना ॥६॥
 मनु तनु सीतलु गुरि बूझ बुझाई । प्रभु निवाजे किनि कीमति पाई ॥७॥
 कहु नानक गुरि बूझ बुझाई । नाम बिना गति किनै न पाई ॥८॥६॥

रामनाम के जप से हृदय के अन्तर्गत ही पूजा हो जाती है । (हे शिष्य) गुरु के शब्दों पर विचार कर, (उसके अतिरिक्त) और कोई दूसरी वस्तु नहीं है ॥१॥

एक (हरी ही) सभी स्वानों में व्याप्त है । (मुझे तो उसे छोड़ कर) और कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता । (फिर मैं अपनी) पूजा किसे चढ़ाऊँ, (अर्पित करूँ) ? ॥१॥ रहाउ ॥

(हे हरी), (मेरे) तन, मन और प्राण तेरे आगे समर्पित हैं; मेरी यह प्रार्थना (शरदास) है कि इन्हें जैसा चाह, वैसा रख ॥२॥

सत्य ने जिह्वा को हरि-रस में (लगा कर, उभं) रसमयी—आनन्दमयी बना दिया है । गुरु की शिक्षा द्वारा प्रभु की शरण में जाने से (मनुष्य सासारिक बन्धनों से) छूट जाता है ॥३॥

(हे प्रभु), मेरे किए हुए सभी कर्मों और धर्मों (की अपेक्षा नाम की साधना सर्वोपरि है) । नाम की बड़ाई (मेरे सभी) किए हुए कर्मों से ऊपर है ॥४॥

सद्गुरु के अधीन (अर्थ धर्म, काम, मोक्ष)—चारों पदार्थ हैं । (उनमें से प्रथम) तीन—अर्थ, धर्म और काम तो समाप्त हो जाते हैं, (अन्तिम) एक—मोक्ष ही कृतार्थ (करनेवाला है) ॥५॥

सद्गुरु (अपने शिष्य का) ध्यान (केवल) मुक्ति की और (लगा) देता है, (जिसके फलस्वरूप वह) परि-पद समझ कर, प्रधान हो जाता है ॥६॥

गुरु द्वारा समझ देने से, (शिष्य के) तन और मन शीतल हो जाते हैं । प्रभु ने (जिस व्यक्ति को) बड़ाई प्रदान की, उसकी कीमत कौन पा सकता है ? ॥७॥

नानक कहता है कि गुरु ने (मुझे) समझ दे दी है, (जिससे मैं परम संतुष्ट और शान्त हो गया हूँ) । नाम के बिना कोई भी मुक्ति (गति) नहीं पा सकता ॥८॥६॥

[७]

इकि धुरि बलसि लए गुरि पूरै सची बलत बलाई ।
हरि रंग रते सवा रंगु साचा दुख बिसरे पति पाई ॥१॥
भूठी दूरमति को नतुराई । बिनसत बार न लागै काई ॥१॥ रहाउ ॥
मनमुख कउ दुख दरदु विघ्रापसि मनमुखि दुख न जाई ।
सुख दुख दाता गुरमुखि जाता । मेलि लए सरणई ॥२॥
मनमुख ते अम भगति न होवसि हउमै पचहि दिवाने ।
इहु मनुआ खिनु ऊभि पइआलो जब लगि सबद न जाने ॥३॥
भूख पिआसा जगु भइआ तिपति नही बिनु सतिगुर पाए ॥
सहजै सहलु मिलै सुलु पाईऐ वरगह पैधा जाए ॥४॥
दरगह दाना बीना इकु आपे निरमल गुर की बाणी ।
आपे सुरता सलु बीचारसि आपे भूझै पदु निरबाणी ॥५॥
जलु तरंग अगनी पवने कुनि त्रै मिलि जगतु उपाइआ ।
ऐसा बलु छलु तिन कउ दोआ हुकमी ठाकि रहाइआ ॥६॥
ऐसे जन बिरले जग अंदरि परखि खजानै पाइआ ।
जाति वरन ते भए अतीता ममता लोभु चुकाइआ ॥७॥
नामि रते तोरय से निरमल दुख हउमै मैलु चुकाइआ ।
नानकु तिन के चरन पखालै जिना गुरमुखि साचा भाइआ ॥८॥७॥

कुछ लोगों को पूर्ण गुरु ने ठीक तार पर बख्श कर (अर्थात् उनके ऊपर गुरु ने कृपा कर के) उनकी सच्ची बनावट बना दी है । हरि के रंग में अनुरक्त होने से उन पर सच्चा रंग सदैव चढ़ा रहता है, उनके दुःख विस्मृत हो जाते हैं और उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥१॥

बुद्धि की भूठी चतुरता को नष्ट होने में कोई देर नहीं लगती ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख को दुःख-दर्द (बहुत) व्याप्त होते हैं; मनमुखी (बुद्धि से) दुःख दूर नहीं होते । गुरु की शिक्षा द्वारा सुख-दुःख का देनेवाला (हरी) जाना जाता है; (गुरु ही शिष्य को अपनी) शरण देकर (उसे परमात्मा से) मिला देता है ॥२॥

मनमुख से आन्तरिक (दिली) भक्ति नहीं होती; (माया के) दीवाने—(वे लोग) अहंकार में पच जाते हैं । जब तक शब्द—नाम को नहीं जान लेता, (तब तक) यह मन क्षण मात्र में आकाश (में उड़ता है) और क्षणमात्र में पाताल में (जा गिरता है) [अर्थात् बिना नाम को जाने मन चंचल रहता है] ॥३॥

(सारा) जगत् भूखा प्यासा है, (वः) बिना सद्गुरु (की शरण ग्रहण किए), तृप्ति नहीं पा सकता । सहजभाव से ही सहजावस्था मिलती है, (उसके प्राप्त होने पर) आनन्द की प्राप्ति होती है (और परमात्मा के) दरबार में (साधक) प्रतिष्ठा की पोशाक पहन कर जाता है ॥४॥

गुरु की निर्मल वाणी से (साधक को यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि हरी के) दरबार में हरी आप ही झकेला द्रष्टा और जाता है । [दाना=द्रष्टा । बीना=जाता] । वह आप ही श्रोता होकर सत्य के ऊपर विचार करता है और आप ही निर्वाणपद को समझता है ॥५॥

(हरी ने) तरंगयुक्त जल, अग्नि और पवन—इन तीन तत्त्वों को उत्पन्न करके, फिर इनके संयोग से (पंच तत्त्वों द्वारा) जगत् उत्पन्न किया । (हरी ने पंच तत्त्वों को) ऐमा छल-बल प्रदान किया, (कि उनके द्वारा सृष्टि निर्मित हो गई); (पर वे सब) उसके दृबम में स्थिर हैं—(बँधे हैं) ॥६॥

संसार में ऐसे जन विरले ही हैं, (जिन्होंने) परब कर (हरिनाम रूपी) सजाने को प्राप्त कर लिया । (ऐसे भक्तगण) जाति एवं वर्ण से अतीत—परे हो जाते हैं (और वे) ममता तथा लोभ को भी समाप्त कर देते हैं ॥७॥

(जो साधक) नाम रूपी तीर्थ में अनुरक्त है, वे निर्मल हैं; (उन्होंने) दुःख, अहंकार एवं (आन्तरिक) मल को समाप्त कर दिया है । नानक ऐसे (लोगों) के चरण धोता है, जिन्हें गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य (परमात्मा) अच्छा लग गया है ॥८॥७॥

— — —

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

सलोक सहस्रकृती, महला १

[१]

पढ़ि पुस्तक संधिआ बावं । सिल पूजसि बगुल समाधं ॥
मुलि भूठु बिभूलन सार । त्रै पाल तिहास बिचारं ॥
गलि माला तिलक लिलाटं । दोइ धोती बसत्र कपाटं ॥
जो जानसि ब्रह्मं करमं । सब फोकट निसचै करमं ॥
कहु नानक निसचो ध्यावै । बितु सतिगुर बाट न पावै ॥१॥

विशेष : यह सलोक 'आसा की वार' में भी आया है।

अर्थ : (पंडित लोग धार्मिक) पुस्तकें पढ़कर गंध्या करने हैं और वाद-विवाद में (रत रहते हैं) । (वे) मूर्तिपूजा करने हैं और बगुल-समाधि लगाने हैं । (वे) मुँह से भूठ बोल कर लोहे की (सोने का) आभूषण बना कर दिखा देते हैं, (तात्पर्य यह कि भूठ के बल पर, वे बुरी वस्तु की अच्छी का भाँति दिखा देते हैं) । (वे) तीन पादोवाली (गायत्री) का तीन काल (प्रातः, मध्याह्न, संध्या) में विचार करने हैं । (उनके) गले में माला तथा ललाट पर तिलक रहता है । (उनके) दो धोतियाँ होनी हैं तथा सिर पर पूजा करने के समय वे) वस्त्र रखते हैं । यदि (वह पंडित) ब्रह्म-कर्म अर्थात् (हरी का आचार) जानता तो सारे उपयुक्त बाह्य कर्म) व्यर्थ (जान पड़ते) । नानक का कथन है कि वह तो निश्चय (मन से) (हरी का) ध्यान करता है । बिना मद्गुरु के (ठीक) मार्ग नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥

[२]

निहफलं तस्य जनमस्य जावद ब्रह्म न बिदते।।
सागरं संसारस्य गुरपरसादी तरहि के।
करण कारण समरयु है कहु नानक बीभारि।
कारण करते बसि है जिनि कल रली भारि ॥२॥

विशेष : यह सलोक बार 'भाभ' की २३ वीं पउड़ी के साथ दर्ज है। उस स्थल पर यह सलोक 'महला दूजा' (गुरु अंगद देव) का लिखा गया है।

अर्थ :—(तब तक) उसका जन्म निष्फल है, जब तक ब्रह्म को नहीं जान लेता। कोई विरला ही व्यक्ति संसार-सागर को गुरु की कृपा से तरता है। नानक यह विचार करके कहता है कि (हरी) कारणो का कारण है और सामर्थ्यवान् है। (सभी) कारण उस कर्ता पुरुष के अधीन है, जिसने समस्त शक्तियाँ (अपने अन्तर्गत) धारण कर रखी है ॥ २ ॥

[३]

जोग सबदं निगान सबदं बेद सबदं त ब्राह्मणह् ।

रूपनी सबद सूर सबदं सूद्र सबदं पराकृतह् ॥

सरब सबदं त एक सबदं जेको जानसि भेउ ।

नानक ताको दासु है सोई निरंजन बेउ ॥३॥

विशेष :—यह सलोक भी 'भाभ की बार' में 'महला दूजा' के नाम से लिखा गया है।

अर्थ :—योगियों का तरीका ज्ञान का तरीका है, ब्राह्मणों की विधि वेदों का (पढ़ना-पढ़ाना) है। क्षत्रियों की विधि शौर्य-प्रदर्शन है। शूद्रों की प्रणाली अन्य वर्णों की सेवा है। पर यदि कोई व्यक्ति भेद जानता हो, तो उसके लिए सारी विधियों की एक विधि है, [तात्पर्य यह कि पृथक्-पृथक् धर्म ठीक नहीं है। प्रत्येक मनुष्य में सभी वर्णों के धर्मों का समन्वय हो, अर्थात् उसमें पादित्य, शौर्य और सेवा आदि का सम्मिश्रण हो]। (जो उपयुक्त रहस्य जानता है), नानक उसका दास है; (सचमुच ही ऐसा व्यक्ति) निरंजन-स्वरूप देव ही है ॥ ३ ॥

[४]

एक कृस्नं त सरबदेवा देव बेवात प्रातमह् ।

प्रातमं श्री बास्वदेवस्य जे कोई जानसि भेउ ॥

नानक ताको दासु है सोई निरंजन बेउ ॥४॥

विशेष :—यह सलोक भी 'भाभ की बार' में 'महला दूजा' के नाम से लिखा गया है।

अर्थ : सारे देवताओं का एक कृष्ण (हरी ही, शिरोमणि) देव है। वही देवताओं के देवत्व की आत्मा है। यदि कोई इस भेद को जानता हो, तो उसके लिए यह आत्मा बासुदेव की ही प्रतीत होती है। नानक कहता है कि ऐसे (आत्मज्ञ पुरुष) का वह दास है; वह व्यक्ति (साक्षात्) निरंजन देव है ॥ ४ ॥

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

सलोक वारां ते वधीक, महला १

सबद

[१]

उतंगी पैओहरी गहिरो गंभीरी ।
ससुड़ि सुहीआ किव करी निवगु न जाइ थगी ॥
गनु जि लगा गिइवड़ी सखीए घउलहरी ।
ते ओ दहवे डिठु में मुंघ न गरनु थगी ॥१॥

विशेष :—कुछ सलोक तो वारो में पउडियों के साथ दर्ज हैं । जो वचे थे, वे यहाँ दिए गए हैं ।

हे उच्च पयोधरावाली (जीवात्मा रूपी स्त्री), (मेरी) गहरी और गम्भीर (शिक्षा सुन और भुक्त कर पनि परमात्मा को प्रणाम कर) । (स्त्री इस प्रकार उत्तर देती है)
“हे साम जी, मैं भला, प्रणाम किस प्रकार करूँ ? भारी स्तनों के कारण (मुझमें) भुका नहीं जाता ।”—(इस पर सास उपदेश देती है)—“पर्वत (गिरिवड़ी < गिरिवर) के समान जो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, बूने में बनी हैं, उन्हें भी मैंने दहले हुए देखा है । (अतएव) हे मुखे, स्तनो (तात्पर्य यह कि यौवन) का अहंकार मत कर ।” ॥ १ ॥

[२]

सुणि मुंघे हरणाखीए गूड़ा बैगु अपारु ।
पहिला वसतु सिज्राणी के तां कीचै वापारु ॥
दोही दिचे बुरजना मित्रां कूं जैकारु ।
जितु दोही सजण मिलनि लहु मुंघे बोचारु ॥
तनु मनु दोजै सजणा ऐसा हसणु सारु ।
तिसु सिउ नेहु न कीचई जि दिसै चलणहारु ॥
नानक जिन्ही इव करि सुझिया निन्हा बिटहु कुरबाणु ॥२॥

हे हिरणाक्षी, (हिरण के समान आँखोवाली), मुग्धे, (मेरे) गूढ़ और अपार वचन सुन—पहले वस्तु समझ कर (पहचान कर), तब व्यापार कर । तू यह दुहाई दे कि

दुर्जनो की संगति नहीं करेगी; (साधु रूपी) मित्रो का जपजयकार कर । हे मुग्धे, जिस दुहाई देने से सज्जन (साधु पुरुष) मिले, (उसे) विचार कर प्राप्त कर । सज्जनों—साधु पुरुषों को तन, मन समर्पित कर दे,—यही (खुशी) श्रेष्ठ खुशी है । जो (वस्तुएं) चलनेवाली (नश्वर) दिखाई पड़ती हैं, उसमें स्नेह—प्रेम मत कर । नानक का कथन है कि जिन्होंने इस भाँति (तथ्य) समझ लिया है, (मैं) उनके ऊपर कुरबान हूँ ॥ २ ॥

[३]

जे तू तारू पारिण ताह पुछु तिहुं कल ।

ताहू खरे सुजाण बंझा एनो रूपरी ॥३॥

यदि तू पानी का तीराक होना चाहता है, तो उससे पूछ जिन्हें तीरने का कला (युक्ति) मालूम है, वे सच्चे (खरे) चतुर हैं, जो इस (संसार रूपी) लहरो को लाँघ गए हैं ।

[४]

भइ भखइ ओहाइ लहरी वहनि लखेसरी ।

सतिगुर सिउ आलाइ बेडे डुबणि नाहि भउ ॥४॥

बादलों का अधकार है तथा बाढ़ की लाखों तरंगें उठ रही हैं (प्रवाहित हो रही हैं), [लोभ-मोह का अज्ञान हो तथा कामादिक की प्रचण्डता हो], (ऐसी परिस्थिति में) सद्गुरु को जोर से आवाज दो, तो (तुम्हारा) बेडा डूबने का भय नहीं रहेगा; (अर्थात् तुम संसार-सागर में नहीं डूबोगे) ॥ ४ ॥

[५]

नानक दुनोआ कैंसो होई । सालकु मितु न रहिओ कोई ॥

भाई बंधी हेतु चुकाइआ । दुनिआ कारण दीनु गवाइआ ॥५॥

हे नानक, (यह) दुनियाँ कैंसो ? (यहाँ) मार्ग-प्रदर्शक, सच्चा मित्र (सालिक) कोई भी नहीं रहा । (यहाँ) भाई-बन्धुओं ने (अपना) प्रेम दूर कर दिया और दुनियाँ ही के कारण (सभी लोगो ने) अपना दीन गँवा दिया ॥ ५ ॥

[६]

है हे करि कै ओहि करेनि । गला पिटनि सिरु लोहेनि ॥

नाउ लैनि अरु करनि समाइ । नानक तिन बलिहारै जाइ ॥६॥

(संसार में लोग) 'हाय-हाय' और 'ओह ओह' करते हैं, गला पीटते हैं और सिर, (के बाल) नोचते हैं; (किन्तु यह सब व्यर्थ है, दण्ड करने की अपेक्षा यदि लोग) हरिनाम ले और श्रम्यास करें, (तो बहुत ही सुन्दर हो), (जो लोग ऐसा करते हैं), नानक उनके ऊपर बलिहारी हो जाता है ॥ ६ ॥

[७]

रे मन डीसि न डोलीऐ सोधे मारगि धाउ ।
 पाछै बाधु डरावणो भ्रागै भगनि तलाउ ॥
 सहसे जीअरा परि रहिप्रो माकउ अवरु न ढंगु ।
 नानक गुरमुखि छुटीऐ हरि प्रीतम सिउ संगु ॥७॥

अरे मन, (इस संसार में) डिंग कर भटकी मत, (हरी की प्राप्ति के) सोधे मार्ग पर चल । (इस संसार में) पीछे तो (सांसारिक भय रूपी) डरावना बाध है और भ्रागे (वृष्णा रूपी) भ्रमि का तालाब है । (मेरा) जी संशय में पड़ा हुआ है, (क्योंकि) मुझे (मुक्ति का) ढंग नहीं आता है । नानक का कथन है कि गुरु की शिक्षा द्वारा ही मुक्त हुआ जा सकता है, (सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने पर) प्रियतम हरी का संग (सब दिन के लिए) हो जाता है ॥ ७ ॥

[८]

बाधु मरै मनु मारीऐ जिसु सतिगुर दोलिआ होइ ।
 भ्रापु पछाणै हरि मिले बटुड़ि न मरणा होइ ॥
 कीचड़ हाथु न बूडई एका नदरि निहालि ।
 नानक गुरमुखि उबरे गुरु सरवरु सची पालि ॥८॥

जिसे सद्गुरु को दोखा होता है, (वही) मन मारता है, (मन के मारने से सांसारिक भय रूपी) बाध पर जाता है । अपने भ्राा को पहचानने से हरि मिलता है, (जिससे) फिर मरना नहीं होता । यदि कोई साधक एक दृष्टि (समदृष्टि) में देखता हुआ (चलता है), तो (उसका) हाथ (मोह रूपी) कीचड़ में नहीं डूबता । नानक का कथन है कि गुरु की शिक्षा द्वारा ही बचा जा सकता है । गुरु रूपी सरोवर का (अमृत जल पाने के लिए उसकी शिक्षा का) पुल—बांध बना रहता है । [तालाब के किनारे कीचड़ होता है । कीचड़ से बचने के लिए एक बाँध बांध दिया जाता है । यदि कोई व्यक्ति कीचड़ में बचने के लिए उस बाँध को लाँघना चाहे, तो उसे एक दृष्टि से देखना चाहिए, नहीं तो यदि ध्यान इधर-उधर बट गया, तो वह गिर कर कीचड़ में फँस जायगा, और उसके हाथ कीचड़ से सन जायेंगे] ॥ ८ ॥

[९]

भगनि मरै जलु लोड़ि लहु विगु गुरनिधि जलु नाहि ।
 जनमि मरै भरमाईऐ जे लख करम कमाहि ॥
 जमु जानाति न लगई जे चलै सतिगुर भाइ ।
 नानक निरमलु अमर पडु गुरु हरि मेलै मेलाइ ॥९॥

(हे साधक, यदि वृष्णा रूपी) भ्रमि को बुझाना (मारना) है, तो (नाम रूपी) जल प्राप्त कर, (किन्तु यह) जल गुरुनिधि के बिना नहीं प्राप्त होता । (गुरु के बिना) चाहे लाखों

कर्म किए जायें, (किन्तु सभी व्यर्थ है), जन्म-मरण (के चक्कर में) भटकना पड़ता है । यदि सद्गुरु के भावानुसार चला जाय, तो यमराज का कर (जागाति) नहीं लगता । नानक का कथन है कि (हरी का) अमर पद ही निर्मल है । गुरु (अपने में शिष्य को) मिला कर हरी से मिला देता है ॥६॥

[१०]

कलर केरी छपड़ी कऊआ मलि मलि नाइ ।
मनु तनु मैला अबगुणी चिनु भरी गंधीआइ ॥
सरबर हंसि न जाणिआ काग कुपंखी संगि ।
साकत सिउ ऐसी प्रीति हे बूझहु मित्रानी रंगि ॥
संत सभा जैकारु करि गुरुमुखि करम कमाउ ।
निरमलु नावणु नानका सुट तीरथु दरीआउ ॥१०॥

निकम्मी तलैया में कौवा मन मल कर स्नान करता है । [कलर=बट मिट्टी जिसमें कुछ पैदा न हो । इसमें कई प्रकार की खारे होती हैं, जो बीज को जला देती है । अर्थात् इसका तात्पर्य 'निकम्मे' से भी होता है] । उस अबगुणी के तन और मन गंदे ही रहते हैं । उसकी चोच (चिनु) (दुर्गन्धयुक्त वस्तुओं से भरी हुई) बदबू करती है, [तात्पर्य यह कि विषयासक्त प्राणी विषय-विकारों में सदैव निमग्न रहता है । उसे गुरु रूपी सरोवर का पता नहीं रहता] । (मनमुख रूपी) कुपंखी कीड़ों के संग में रहने के कारण (मनुष्य रूपी) हंस (गुरु रूपी) सरोवर को नहीं जानता । शक्त (मायासक्त प्राणी, शक्ति के उपासक) की प्रीति इसी प्रकार की होती है । (यदि हरी के वास्तविक रस को प्राप्त करना है, तो हे साधक), भावपूर्वक ब्रह्मज्ञानियों से (इस संबंध में) जिज्ञासा कर । (हे साधक) संत की सभा का जयजयकार मना और गुरु की शिक्षा के अनुसार कर्मों का सम्पादन कर । नानक का कथन है कि गुरु रूपी नदी के पवित्र तीर्थ का स्नान (परम) निर्मल है ॥१०॥

[११]

जनमे का फलु किआ गरी जा हरि भगति न भाउ ।
पैघा खाधा बादि है जां मनि दूजा भाउ ॥
बेखगु सुनणा भूउ है सुखि भूठा आलाउ ।
नानक नामु सनादि तू होरु हउमै आवउ जाउ ॥११॥

यदि (मनुष्य के अन्तर्गत) हरी की भक्ति और भाव नहीं है, (तो उसके) जन्म के फल की क्या गणना की जाय ? (अर्थात् उसका जन्म धारण करना निरर्थक है) । यदि मन में द्वैतभाव है, (तो) पढ़ना खाना व्यर्थ है । (द्वैतभाव वाले प्राणी का) देखना, सुनना (आदि) मिथ्या है; उसके मुख के आलाप भी मिथ्या ही है । हे नानक, तू नाम की स्तुति कर; (नाम की स्तुति न करने पर) और (लोग अहंकार में पड़कर (संसार-चक्र में) घाते जाते रहते हैं ॥११॥

[१२]

हैनि बिरले नाही घरो फेल फरङ्गु संसार ॥१२॥

(संसार में भक्तगण) बिरले हो होते हैं, अधिक नहीं; (शेष संसार तो निरा दिखावा और बकवास है ॥१२॥

[१३]

नानक लगी तुरि मरै जीबण नाही तारु ।

चोटे सेती जो मर लगी सा परवारु ॥

जिसनो लाए तिसु लगै लगी ता परवारु ।

पिरम पैकामु न निकलै लाइया तिन सुजाणि ॥१३॥

नानक का कथन है (कि जिस साधक को गुरु के उपदेश की चोट लग गयी), वह (अपने अहंभाव से) तुरन्त मर जाता है (और फिर उसे अहंभाव का) बल नहीं रहता । (ऐसी) चोट लगने से जो (अहंभाव से) मर जाता है, वही प्रामाणिक है । (प्रभु की कृपा) जिसे यह (चोट) लगाती है, उसी को लगनी है (और जिसे यह चोट) लग जाती है, वही प्रामाणिक (समझा जाता है) । प्रेम का (लगा हुआ) तीर (पैकान = फारसी, तीर) नहीं निकलता । (यह तीर) चतुरो को ही लगता है ॥१३॥

[१४]

भाडा धोवे कउए जि कच्चा साजिघा ।

धातू पंजि रत्नाइ कड़ा पाजिघा ॥

भांडा आणगु रासि जाँ तिसु भावसी ।

परम जोति जागाइ बाजा बावसी ॥१४॥

(हे प्राणी), जो (शरीर रूपी) पात्र कच्चा बनाया गया है, उसे क्या धोता है ? पंच तत्वों (धातुओं) को मिलाकर (यह शरीर रूपी पात्र) मिथ्या ही (बनाया गया है), (यह) दिखावा मात्र है । यदि गुरु चाहेगा, (तो शरीर रूपी) पात्र को दुरुस्त कर देगा । वह (हृदय में हरी की) महान् ज्योति जगा कर (आनन्द का) बाजा बजा देगा ॥१४॥

[१५]

मनहु जि अंधे धूप कहिघा बिरदु न जाएनी ।

मनि अंधे अंधे कवल दिसनि खरे करूप ।

इक कहि जाएनि कहिघा बुझनि ते नर सुघड़ सरूप ॥

इकना नादु न बेदु न गोअ रसु रसु कसु न जाएँति ।

इकना सिधि न बुधि न अकलि सर अखर का भेउ न लहँति ॥

नानक ते नर असलि खर जि जिनु गुण गरहु करंत ॥१५॥

जो व्यक्ति घनघोर अंधकारयुक्त मनवाले हैं, वे (अपने किए हुए (उपदेश) की लज्जा नहीं रखते। मन अन्धा होने से, उनका (हृदय रूपी) कमल उलटा है और वे अत्यन्त कुरूप दिखाई पड़ते हैं। कुछ लोग कहना मात्र जानते हैं, (आचरण करना नहीं); (किन्तु जो लोग) कह कर समझते हैं, (अर्थात् कही हुई बात पर आचरण करते हैं), वे लोग सुन्दर और स्वरूपवान् हैं, (तात्पर्य यह कि वे ही लोग मनुष्य गिनने योग्य हैं)। कुछ लोग न शब्द जानते हैं, न वेद, न संगीत के रस और न कसैले (आदि छः रस ही)। [तात्पर्य यह है कि न तो योगी हैं, न ज्ञानी हैं, न संगीतज्ञ हैं और भले बुरे का भी उन्हें बोध नहीं है]। कुछ लोग ऐसे हैं, (जिनमें) न तो सिद्धि है, न बुद्धि है, न अच्छी (सर < सार = श्रेष्ठ) अकल है और न (वे) अक्षर का भेद ही जानते हैं। नानक का कथन है वे मनुष्य असली गधे हैं, जो बिना गुणों के ही अभिमान करते हैं ॥१५॥

विशेष : उपर्युक्त 'सलोक' सारंग की वार में भी आया है।

[१६]

सो ब्रह्मणु जो बिदे ब्रह्मु ।
जपु तपु संजसु कमावै करमु ॥
सोल संतोख का रखै धरमु ॥
बंधन तोड़े होवै मुकतु ।
सोई ब्रह्मणु पूजण जुगनु ॥१॥

जो ब्रह्म को जानना है, वही ब्राह्मण है। (ऐसा ब्राह्मण) जप, तप और संयम करता है (तथा शुभ) कर्मों को करता है। (वह) शक्ति, सतोष के धर्म को रखता है और (माया के) बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो जाता है। ऐसा ही ब्राह्मण जगत् के पूजने योग्य है ॥१६॥

[१७]

खत्री सो जु करमा का सूरु । पुंन दान का करै सरीरु ॥
खेतु पछारण बीजै दातु । सो खत्री दरगह परवारु ॥
लबु लोभ जे कूड़ु कमावै । अपणा कीता आपे पावै ॥१७॥

जो कर्मों का शूरवीर है, वही (वास्तविक) क्षत्रिय है। (वह अपना) शरीर, (तात्पर्य यह कि जीवन) को पुण्यदान करनेवाला बना लेता है। (वह) वास्तविक खेत (पात्र) को पहचान कर दान का बीज बोता है। ऐसा ही क्षत्रिय (परमात्मा के) दरबार में प्रामाणिक समझा जाता है। यदि (कोई क्षत्रिय) लालच, लोभ और झूठ की कमाई करता है, तो वह अपने किए हुए का फल आप ही पाता है ॥१७॥

[१८]

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हउ न बालि ।
सिरी पैरी किम्रा फेड़िआ अंदरि पिरी सगुहलि ॥१८॥

ना० बा० फा०—१०२

तंदूर (अगीठी विशेष) के समान शरीर को मत तपा और न लकड़ों की भाँति हड्डियों को ही जला । (हे मनुष्य), सिर और पैरों ने क्या बिगाड़ा है (कि उन्हे कष्ट दे रहा है) । (अपने) अन्दर से प्रियतम (हरी) को देख ॥१८॥

विशेष : उपर्युक्त सलोक फरीद के १२०वें सलोक में भी आया है ।

[१९]

सभनो घटो सहु बसै सह बिनु घटुन कोइ ।

नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ ॥१९॥

सभी घटो (प्राणियों) में प्रियतम (हरी) वास कर रहा है; बिना प्रियतम (हरी) के कोई भी घट (प्राणी) नहीं है । नानक का कथन है (कि) वे ही (जीवात्मा स्त्री स्त्रियाँ) सुहागिनी हैं, जिन्हें गुरु की शिक्षा द्वारा (प्रियतम हरी) प्रकट होता है ॥१९॥

[२०]

जउ तउ प्रेम खेलण का छाउ । सिरु धरि तली गली मेरो आउ ॥

इतु मारणि पँरु धरीजै । सिरु बीजै काणि न कोजै ॥२०॥

यदि तुझे प्रेम के खेल खेलने की इच्छा है, तो (अपना) सिर पैरों के नीचे रख कर मेरी गली में आ । इस मार्ग में (तो तब) पैर रख, जब सिर देकर भी अहसान मत जता ॥२०॥

[२१]

नालि किराड़ा दोसती कूड़े कूड़ी पाइ ।

मरणु न जापै भूलिआ आवै कितै थाइ ॥२१॥

(माया के) व्यापारी के साथ दोस्ती करना (मिथ्या होती है); झूठ के कारण इस दोस्ती (की बुनियाद) झूठी होती है । यह भी बिलकुल पता नहीं रहता की मृत्यु कहाँ से आ जायगी ॥२१॥

[२२]

गिग्यान होणं अगिग्यान पूजा ।

अथ बरतावा भाउ दूजा ॥२२॥

ज्ञानविहीन (लोग) अज्ञानता की पूजा करते हैं । द्वैतभाव में (पड़ने के कारण उनके) व्यवहार भी अन्धे (अविवेकपूर्ण) होते हैं ॥२२॥

[२३]

गुर बिनु गिग्यानु धरम बिनु धिग्यानु ।

सच बिनु साखी भूलो न जाकी ॥२३॥

गुरु के बिना ज्ञान नहीं (होता), धर्म (विश्वास) के बिना ध्यान नहीं होता । सत्य (की अनुभूति) के बिना साखी (आदि पदों की रचना) नहीं हो सकती; मूलधन के बिना बाकी नहीं रह सकती ॥ २३ ॥

[२४]

माणू घलै उठी चलै ।

सावु नाही इबेही गलै ॥२४॥

इस बात में का स्वाद भाया कि मनुष्य जिस भाँति भाया उसी भाँति चला गया और बनाया कुछ भी नहीं । ॥ २४ ॥

[२५]

रामु भुरै दल मेलबं अंतरि बलु अधिकार ।

बतर की सेना सेबीऐ मन तनि जुहु अपार ॥

सीता लै गइआ बहुसिरो लखमणु भूषो सराप ।

नानक करता करणहारु करि बेखै यापि उयापि ॥२५॥

रामचन्द्र सेना एकत्र करते हैं, बन्दरो की सेना (उनकी) सेवा में है, (उनके) तन, मन में युद्ध की अपार (भावना) भी है, (उनके) अन्तर्गत बल और अधिकार भी है, (फिर भी वे) दुःखी हुए, (क्योंकि) सीता को रावण ले गया और शाप के कारण (शक्ति लगने से) लखमण मरे (मूर्च्छित हुए) । नानक का कथन है कि कर्तापुरुष ही करनेवाला है । (वह सृष्टि) बना बिगाड़ कर उसे देखता रहता है ॥ २५ ॥

[२६]

मन महि भूरै रामचंदु सीता लखमण जोगु ।

हरणबंतरु आराधिआ आइआ करि संजोगु ॥

भूला देतु न समझई तिति प्रभ कीए काम ।

नानक वेपरबाहु सो किरतु न मिटई राम ॥२६॥

सीता और लखमण के निमित्त मन में रामचन्द्र दुःखी हुए । उन्होंने हर्तृमान का स्मरण किया और संयोगवश वे आ पहुँचे । भूले (भविष्यकी) वेल्य (रावण) ने यह नहीं समझा कि उसी प्रभु ने (यह सब) काम किया, (रामचन्द्र ने नहीं) । नानक का कथन है (कि परमात्मा) वेपरबाहु (सर्व स्वतंत्र) है; किए हुए कर्मों का फल राम न मेट सके ॥२६॥

[२७]

लाहौर सहरु जहरु कहरु सबा पहरु ॥२७॥

लाहौर शहर में जहरीला जुल्म सबा पहर दिन चढ़े तक रहा ।

विशेष : उपर्युक्त 'सलोक' में गुरु नानक देव ने लाहौर के आक्रमण का जिक्र किया है । बाबर का लाहौर शहर पर यह चौथा आक्रमण था, जो १५२४ ई० में हुआ । बाबर के

सैनिको ने लाहौर को निरपराध और निरीह प्रजा पर जो जुल्म डाला, उसी का इस 'सलोक' में संकेत है ॥२७॥

[२८]

ऊदो साहै किम्रा नोसानो तोटि न आवै धंनो ।

उदोसीअ घरे हो चुटी कुड़िई रंनो धंनो ॥

सती रंनो घरे सिआपा रोबनि कूड़ी कंनो ।

जो लेवै सो बेवै नाहो खटे दंम सहंनो ॥२८॥

अहंकारी बादशाह की क्या निशानी है ? (इस प्रश्न का उत्तर अगली पंक्तियों में दिया जा रहा है)—उसके घर में अन्न की कमी नहीं रहती, (तात्पर्य यह कि अहंकारियों के हृदय रूपी घर में द्वैतभाव रूपी अन्न की कमी नहीं रहती, उनके अंतःकरण में पूर्ण रूप से द्वैत-भाव व्याप्त रहता है) । (मन की) अहंकारपूर्ण बादशाही (उसके हृदय में) बस रही है, लड़कियों और स्त्रियों की धूम मच रही है; (तात्पर्य यह कि कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ चंचल होकर धूम मचा रही हैं) । सैकड़ों स्त्रियाँ (होने के कारण) घर में मातमी (छापी रहती हैं); (वे स्त्रियाँ अपने) मिथ्यापूर्ण कर्मों के कारण रोती रहती हैं; (तात्पर्य यह कि इन्द्रियों की प्रबलता, चंचलता और मिथ्याचरण के कारण हृदय दुःखी रहता है, प्रसन्नता का अभाव रहता है) 'जो व्यक्ति उससे (रुपये) लेता है, वह देता नहीं,' (इसी) भय में वह रुपये पैदा करता है ॥ २८ ॥

[२९]

पबर तूं हरीआवला कबला कंचन बनि ।

कै दोलड़े सड़िओहि काली होईआ वेठुरी नानक मे तनि भंगु ॥

जाणा पाणी ना लहां जै सेतो मेरा संगु ।

जितु डिठै तनु परकुड़ै चड़ै चवगणि बंतु ॥२९॥

ह कमल, तू हरा-भरा है और तेरा वर्ण सोने की भाँति सुन्दर है । (पर तू बता तो) किस दोष से तू जल गया है और तेरी देह काली पड़ गई है ? नानक का कथन है (कि कमल उपर्युक्त प्रश्न का इस भाँति उत्तर दे रहा है)—मेरे शरीर में (कोई) विघ्न (भंग) आ पड़ा है । (वह विघ्न यह है कि मुझे) जल नहीं प्राप्त हुआ, जिससे मेरा (सहज) साव है । (वह जल ऐसा है) जिसके देखने से मेरा शरीर प्रफुल्लित होता है और मुझ पर चोगुना रंग चढ़ता है । [उपर्युक्त 'सलोक' में अग्न्योक्ति अलंकार है । यहाँ कमल जीवात्मा है और जल परमात्मा की भक्ति] ॥ २९ ॥

[३०]

रजि न कोई जीबिया पनुचि न बलिआ कोइ ।

गिआनो जोबै सवा सवा सुरती हो पति होइ ॥

सरकै सरकै सदा सदा एवै गई बिहाइ ।

नानक किस नो आलीऐ विगु पुछिआ ही ले जाइ ॥३०॥

(इस संसार में) कोई भी व्यक्ति तृप्ति भर नहीं जी सका (और अपने सारे कार्यों को समाप्त करके (यहाँ से) नहीं जा सका, (तात्पर्य यह कि अपने कार्यों को अधूरा ही छोड़कर मनुष्य यहाँ से कूब कर जाता है) । ब्रह्मज्ञानी ही सदैव जीवित रहता है, जिनको सुरति (हरी से) लगी रहती है, उन्हीं को प्रतिष्ठा मिलती है । 'कम खर्च' में काम चल जायगा' (ऐसा सोचने ही में सारी आयु) समाप्त हो गई । नानक कहता है कि यह बात किससे कही जाय ? बिना पूछे ही (यमदूत इस संसार से मनुष्य को) ले जाते हैं, (और उसके मनबूबे ज्यों के त्यों पड़े रहते हैं) ॥ ३० ॥

[३१]

दोसु न देवहु राइ नो मति चले जां बुदा होवै ।

गलां करे घरोरीआ तां अन्है पवणा खाती टोवै ॥३१॥

राय (धनी व्यक्ति) को दोष नहीं देना चाहिए; जब वह बूढ़ा होता है, तो उसकी बुद्धि चली जाती है । अंधा व्यक्ति बाते तो बहुत करता है, किन्तु गिरता है गड्ढे ही में ॥३१॥

[३२]

पूरे का कीआ सभ किछु पूरा घटि बधि किछु नाही ॥

नानक गुरमुखि ऐसा जालै पूरे मांहि समांही ॥३२॥

पूर्ण पुरुष (हरी का) किया हुआ ही सब कुछ होता है; उसमें (कुछ) घट बढ़ कर नहीं होता । हे नानक, गुरु को शिक्षा द्वारा जो व्यक्ति (उस पूर्ण पुरुष को) इस प्रकार जानता है, वह पूर्ण में ही समा जाता है ॥ ३२ ॥

— — —

परिशिष्ट (क)

गुरु नानक की संक्षिप्त जीवनी, व्यक्तित्व एवं शिक्षा

गुरु नानक सिक्खों के आदि गुरु है। उन्हें कोई गुरु नानक, कोई बाबा नानक, कोई नानक शाह, कोई गुरु नानक देव, कोई नानक पातशाह और कोई नानक साहब कहते हैं। गुरु नानक का जन्म १५ अप्रैल, १४६९ ई० (वैशाख, सुदी ३, सम्बत् १५२६ विक््रमी) में तलवडी नामक स्थान में हुआ था। सिक्ख लोग तलवडी को 'ननकाना साहब' भी कहते हैं। किन्तु सुविधा के लिए उनकी जन्म-तिथि कार्तिक पूर्णिमा को मनाई जाती है। तलवडी लाहौर जिले में (पाकिस्तान), लाहौर शहर से ३० मील दक्षिण-पश्चिम में है।

उनके पिता का नाम कालू एब माना का नाम तृप्ता था। उनके पिता खत्री जाति एब वेदी वंश के थे। वे कृषि और माधारण व्यापार करते थे और गांव के पटवारी भी थे।

भाई गुरुदाम जी ने अपनी 'वार' में गुरु नानक देव के अवतार के सूत्र में निम्नलिखित बातें कही हैं—

मुणी पुकार दानार प्रभु गुरु नानक जग माँहि पढाया।
चरन धोइ रहिगमि करि चरनामृतु सिक्खा पोलाया॥
पारब्रह्म पुरन ब्रह्म कलिजुग अदर इक दिखाया।
चार पैर धर्म दे चार वरन इक वरन कराया॥
राणा रक बराबरी पैरी पवणा जग वरताया।
उलटा खेल पिरम दा पैरा उपर सीस नवाया॥
कलिजुग बाबे तारिआ, सतिनाम पढ मत्र सुणाया।
कलि तारण गुरु नानक आया॥।

(वारा भाई गुरुदाम जी, वार १, पउडी २३)

भाई गुरुदाम जी फिर कहते हैं—

सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धु धु जग चानण होआ।
जिउँ कर मूरज निकलिआ तारे छपे अधेर पलोआ॥।

(वारा भाई गुरुदाम जी, वार १, पउडी २७)

गुरु नानक देव की बाल्यावस्था ग्राम में व्यतीत हुई, बाल्यावस्था से ही उनमें असाधारणता और विलक्षणता थी। वे बहुत कम भोजन करते थे और बहुत कम सोते थे। उनके साथी जब खेल-कूद में अपना समय व्यतीत करते थे, तो वे नेत्र बन्द कर आत्म-चिन्तन में निमग्न हो जाते थे। गुरु नानक देव का मुखमण्डल अद्भुत ज्योति से जगमगाता रहता था। उनके नेत्र शान्त और गम्भीर थे। जो कोई भी उन्हें देखता और स्पर्श करता, उसी में आनन्द का संचार हो जाता था। इस प्रकार वे अलौकिक और दिव्य बालक थे। उनकी बहिन नानकी ने शिशु नानक में सर्व प्रथम दिव्य ज्योति के दर्शन किए। उसका मन आनन्द से परिपूर्ण हो गया। वहाँ के शासक राय बुलार ने भी गुरु नानक में उस अपार और अखंड ज्योति के दर्शन किए, जो शताब्दियों में किसी भाग्यशाली को एकाध बार ही दीख पड़ती है।

सात वर्ष की आयु में वे पढ़ने के लिए गोपाल अध्यापक के पास भेजे गए। एक दिन, वे पढ़ाई से বিরक्त होकर, अन्तर्मुख होकर आत्मचिन्तन में निमग्न थे। अध्यापक जी ने पूछा, "पढ़ क्यों नहीं रहे हो?" गुरु नानक का उत्तर था, "क्या आप मुझे पढ़ा सकते हैं?" इस पर गोपाल अध्यापक ने कहा, "मैं सारी विद्याएँ और वेद-शास्त्र जानता हूँ।" गुरु नानक देव ने, "मुझे तो सासारिक पढ़ाई की अपेक्षा परमात्मा की पढ़ाई अधिक आनन्ददायिनी प्रतीत होती है" कह कर निम्नलिखित वाणी का उच्चारण किया—

जाहि मोहु घमि ममु करि मणि कागदु करि गार।

भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचार।।

लिखु नामु मालाह लिखु अनु न पारावार।।१।।६।।

(नानक-वाणी, सिरी राग, (सबदु ८)

अर्थात्, मोह को जलाकर (उसे) घिस कर स्याही बनाओ, बुद्धि को ही श्रेष्ठ कागज बनाओ और चित्त को लेखक। गुरु से पूछ कर विचारपूर्वक लिखो। नाम लिखो, (नाम की) स्तुति लिखो और (साथ ही यह भी) लिखो (कि उस परमात्मा का) न तो अंत है और न सीमा है।

इस पर अध्यापक जी आश्चर्यान्वित हो गए और उन्होंने बालक नानक को पहुँचा हुआ फकीर समझ कर यह कहा, "तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।।"

इसके पश्चात् गुरु नानक ने स्कूल छोड़ दिया। वे अपना अधिकांश समय मनन, निदिध्यासन, ध्यान एवं सत्यग में व्यतीत करने लगे। गुरु नानक ने सबधित सभी जन्म-सावियों इस बात की पुष्टि करती है कि उन्होंने विभिन्न सम्प्रदाय के साधु-महात्माओं से सत्यग किया। उनमें से बहुत से ऐसे थे, जो धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। अन्तर्माध्य के आधार पर यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि गुरु नानक देव ने फारसी का भी अध्ययन किया था। उनकी वाणी में कुछ पद ऐसे हैं, जिनमें फारसी शब्दों का आधिक्य है। यथा—

यक अरज गुफतम पेमि तो दर गाम कुन करतार।

हका कबीर करीम तू बे ऐव परबदगार।।१।।

दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी।

मम सर मूड अजरईल रिजफतह दिल हेचि न दानी।।१।।रहाउ।।

(अर्थ के लिए देखिए, रागु निलग, (सबद), पद १)

गुरु नानक की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति एवं विरक्ति से उनके पिता, कालू चिन्तित रहा करते थे। नानक जी को विक्षिप्त समझ कर कालू जी ने उन्हें भ्रम चराने का काम सौंपा। एक दिन ऐसा हुआ कि गुरु नानक देव भ्रम चराने-चराते योगनिद्रा में निमग्न हो गए। भ्रमों में एक किसान के खेत में पड़ गई और उन्होंने उसकी खेती चर ली। किसान ने इसका उलाहना दिया। किन्तु जब उस किसान का खेत देखा गया, तो सभी आश्चर्य में पड़ गये कि उसकी फसल का एक भी पौदा नहीं चरा गया था।

बालक नानक की यह दशा देख कर उनके पिता जी ने कहा, "बेटा खेती की सँभाल कर, वह पक कर तैयार है।" इस पर उन्होंने यह उत्तर दिया—

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु।

नामु बीजू सतोख मुहागा रखु गरीबी वेमु।।

भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु ॥१॥२॥

सोरठ रागु

(अर्थ के लिए, देखिए, रागु सोरठ, सबद पद २)

इस पर उनके पिता जी ने कहा, “बेटा, यदि खेती नहीं करते तो दुकानदारी ही करो।”
इस पर नानक देव जी का यह उत्तर था—

हाणु हटु करि आरजा मचु नाम करि वधु।

सुरति सोच करि भांडसाल निमु विचि तिमनो ग्यु ॥

वणजारिआ मिउ वणजु करि लै लाहा मन हमु ॥२॥२॥

सोरठ रागु।

(अर्थ के लिए देखिए, रागु सोरठ, सबद, पद २)

नानक की बात को सुनकर कालू जी ने कहा, “बेटा यदि तुम्हारा मन खेती और दुकानदारी में नहीं लगता, तो सौदागरी अथवा नौकरी कर।” नानक देव जी ने तुरन्त उत्तर दिया—

मुणि मामन मउदागरी, सतु घोडे लै चतु।

खगचु वनु चगिआईआ मतु मन जाणहि कलु।

निरकार कं देसि जाहि ता मुखि लहहि महलु ॥३॥

लाइ चितु करि चाकरी मनि नामु करि कमु।

बनु बदीआ करि धावणी ताको आखै धनु ॥

नानक देखै नदरि करि चडै चवगण वनु ॥४॥२॥

मोरठि

(अर्थ के लिए देखिए, रागु सोरठि, सबद २)

९ वर्ष की आयु में उनके यज्ञोपवीत संस्कार के लिए पुरोहित हरदयाल बुलाए गए। जिस समय पुरोहित जी जनेऊ पहनाने लगे, उस समय नानक जी ने कहा—

दडआ कपाह सतोखु सूतु जतु गडी मतु वतु।

एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे धतु ॥

ना एहु तुटे न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ ॥

(बार आसा, पहला १)

अर्थात्, “दया कपाम हो, सतोष सूत हो, समय गाठ हो और (उस जनेऊ) की सत्य ही पूरन हो। यही जीव के लिए (आध्यात्मिक) जनेऊ है। हे पाण्डेय (पंडित) यदि इस प्रकार का जनेऊ तुम्हारे पास हो तो मेरे गले में पहना दो। यह जनेऊ न तो टूटता है, न इसमें मील लगती है, न यह जलता है और न यह खोता ही है।”

किसी बात में गुरु नानक का मन न लगता हुआ देखकर, उनके माता-पिता बहुत ही हैरान हुए। उनकी सासारिक उदासीनता और विरक्ति देखकर उन लोगों ने यह समझा कि वे रोगी हैं। एक दिन एक निपुण वैद्य को बुलवाकर गुरु नानक देव की नाडी दिखाई। वैद्य ने नाडी देख कर उनके रोग का पता लगाना चाहा; किन्तु शरीर में कोई मर्ज हो, तब तो पता चले? वैद्य के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। वह मर्ज का पता न लगा सका। इस पर गुरु नानक देव की ने कहा—

बैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि डडोले बांह।

भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि ॥

(बार मलार, महाला १)

सन् १४८५ ई० में उनका विवाह बटाला निवासी, मूला की कन्या सुलखनी से हुआ। उनके वैवाहिक जीवन के सबब में बहुत कम जानकारी है। २८ वर्ष की आयु में उनके बड़े पुत्र श्रीचंद का जन्म हुआ। ३१ वर्ष की आयु में उनके द्वितीय पुत्र लक्ष्मीचंद अथवा लक्ष्मीदास उत्पन्न हुए।

गुरु नानक के पिता, कालू ने उन्हें एक एक करके कई कार्यों में लगाना चाहा, किन्तु उनके सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हुए। थोड़े के व्यापार के निमित्त दिए हुए रुपयों को गुरु नानक देव ने साधु-सेवा में लगा दिया। पूछने पर उन्होंने अपने पिता जी से कहा कि यहीं मच्छा व्यापार है। गुरु नानक देव की इस विरक्ति से ऊब कर, उनके बहनोई जयराम (उनकी बड़ी बहिन नानकी के पति) ने, उन्हें अपने पास सुल्तानपुर में बुला लिया। नवम्बर १५०४ ई० से अक्टूबर १५०७ ई० तक वे सुल्तानपुर में ही रहे। अपने बहनोई जयराम के प्रयास से वे सुल्तानपुर के गवर्नर दौलत खां के यहाँ मोदी रख लिए गए। उन्होंने अपना कार्य अत्यन्त ईमानदारी से पूरा किया। वहाँ की जनता तथा वहाँ के शासक दौलतखां नानक जी की ईमानदारी, कार्य-पटुता से बहुत प्रसन्न और मनुष्य हुए। अपनी आमदनी का अधिकांश भाग वे गरीबों और साधुओं को दे देते थे। वे समस्त रात्रि परमात्मा के चिन्तन में व्यतीत करते थे। तलवडी से आ कर मरदाना उनका सेवक हो गया। वह भी उनके साथ रहने लगा। मरदाना रवाब बजाने में अत्यंत निपुण था। गुरु नानक जब विचार-मागर में डूब जाते, तो कहने मरदाना अपनी रवाब तो उठा। मरदाना रवाब उठा कर बजाने लगता और गुरु नानक देव के हृदयोद्धार दिव्य मगीत-लहरी में प्रवाहित होने लगते। अद्भुत गर्मा बँध जाता। जां कोई भी इस दिव्य मगीत को सुनता, वही आनन्द-विभोग हो जाता और अपने आप का विस्मृत होकर स्वर्गीय जगत् में विचरण करने लगता। जिस प्रकार कस्तूरी की सुगंध चारों ओर फैल जाती है, उसी प्रकार गुरु नानक देव की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी।

एक दिन एक साधु ने आकर कहा, “मोदी जी सीधा तौल दीजिए।” गुरु नानक देव तराजू लेकर सीधा तौलने लगे। जब बारह बार तौल चुके और तेरहवें की बारी आई, तो वे “तेरा, तेरा” कहते हुए गंभीर ध्यान में निमग्न हो गए। सीधा तौलने जाने और “तेरा, तेरा” कहने जाने। पता नहीं इस वृत्ति में कितने मन तौल गए। पर उनके भाण्डार में कमी नहीं हुई, वृद्धि ही हुई। उनकी इस वृत्ति की मामाग्रिकों ने शिवायत की कि नानक तौं दौलतखां का भाण्डार ही लुटा रहे हैं। किन्तु तौला जाने पर सब सामान बढ कर निकला। इस प्रकार यह सच्चे रूप के देने का चमत्कार था। सभी आश्चर्य में पड़ गए।

गुरु नानक देव नित्य प्रातः काल वेई नदी में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन वे ब्रह्ममुहूर्त में एक सेवक के साथ स्नान करने गए। वे तीन दिन तक अदृश्य रहे। नदी में जाल डाले गए, बहुत खोज की गई। किन्तु उनका पता न चला। सभी लोगों को विश्वास हो गया कि गुरु नानक नदी में डूब कर बह गए। जब यह बात उनकी बहिन नानकी से बताई गई, तो उन्होंने दृढतायुक्त विश्वासमयी वाणी में कहा, “मेरा भाई डूबने वाला नहीं। वह तो दूसरो को तारने वाला है। यदि वह डूबा है, तो ससार को तारने के लिए ही।” कहने को तो गुरु नानक देव वेई नदी में डूबे थे, पर वे आत्मस्वरूप में लीन होकर ‘सच्च खण्ड’ में पहुँच गए थे। ‘सच्च खण्ड’ में पहुँच कर गुरु नानक देव ने दो वस्तुएँ प्राप्त की थी—‘नाम’ और ‘दीनता’। कहते हैं कि ‘सच्च खण्ड’ की स्तुति गुरु नानक देव ने—

“सो दरु केहा सो घरु जितु बहि सरब समाले” में की थी। (देखिये जपु जी, २७वी पउड़ी तथा रागु आसा, सबद १)

परमात्मा ने इस 'सत्य खंड' में उन्हें अमृत पिलाया और कहा, "मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। मैंने तुम्हें आनन्दित किया है। जो तुम्हारे सम्पर्क में आयेगा, वे भी आनन्दित होंगे। जाओ, नाम में रहो। दान दोगे, उपासना करो, स्वयं हरि नाम लो और दूसरों से भी नाम स्मरण कराओ।"

अधिकांश साखियों में यही ज्ञात होता है कि गुरु नानक देव के गुरु अकाल पुरुष (परमात्मा) हैं। गुरु नानक देव को अकाल पुरुष ने अपना ज्ञान स्वयं प्रदान किया था। इसलिए अकाल पुरुष, अपरपार, परब्रह्म परमेश्वर ही उनका गुरु हैं—

अपरपार पारब्रह्म परमेश्वर नानक गुरु मिलिआ सोई ।

(सोरठि, सबद ११)

इस घटना के पश्चात् वे परिवार का भार अपने स्वसुर, मूला को सौंप कर विचरण करने निकल पड़े। इस विचरण में वे अपने धर्म का प्रचार करते थे। मरदाना उनकी यात्रा का साथी रहा।

गुरु नानक की पहिली उदासी (विचरण-यात्रा) अक्टूबर १५०७ ई० में १५१५ ई० तक रही। इस यात्रा में उन्होंने हरिद्वार, अयोध्या, प्रयाग, काशी, गया, पटना, आसाम, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, सोमनाथ, द्वारिका, नर्मदातट, बीकानेर, पुष्करतीर्थ, दिल्ली, पानीपत, कुश्नेत्र, मुल्तान, लाहौर आदि स्थानों का भ्रमण किया। इस यात्रा में उन्होंने बहनों का हृदय-परिवर्तन किया। ठगों को मानु बनाया, वेदयात्रों का अन्तःकरण शूद्ध कर नाम का दान दिया। कर्मकाण्डियों को बाह्याडम्बरो से निकाल कर रागात्मिका भक्ति में लगाया। अहंकारियों का अहंकार दूर कर उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाया।

इस उदासी के पश्चात् दो वर्ष तक वे अपने माता-पिता के साथ रहे। उनकी दूसरी उदासी सन् १५१७ ई० में १५१८ ई० तक, यानी एक वर्ष की रही। इसमें उन्होंने ऐमनाबाद, मियालकोट, मुमेर पर्वत आदि की यात्रा करके करनार पुर आए।

तीसरी उदासी लगभग तीन वर्ष की रही। (१५१८ ई० में-१५२१ ई० तक)। इसमें उन्होंने रियासत बहावलपुर साधुवेला (मिन्ध), मक्का, मदीना, बगदाद, बलख, बुखारा, काबूल, गोरखट्टी, कंधार, ऐमनाबाद आदि स्थानों की यात्रा की। सन् १५२१ ई० बाबर का ऐमनाबाद पर आक्रमण गुरु नानक ने स्वयं अपनी आँखों में देखा था। उसका सजीव वर्णन भी उन्होंने अपनी बाणी में किया है।

गुरु नानक देव अपनी यात्राओं को समाप्त कर करनारपुर में बस गए। सन् १५२१ ई० से सन् १५३९ ई० तक करनारपुर ही में रहे। उनका करनारपुर का जीवन अत्यन्त कष्ट रह्य। गुरु गद्दी का भार गुरु अगददेव (बाबा लहना) को सौंप कर, वे १५३९ ई० में करनारपुर में 'ज्योती ज्योति' में लीन हुए। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में उनकी रचनाएँ 'महला १' के नाम से संग्रहीत हैं।

उनका व्यक्तित्व असाधारण, सरल और दिव्य है। वे सच्चे अर्थ में सद्गुरु रहे। वे सदैव परमात्मा में निवास करते थे और जो भी उनकी शरण में आया, उसे परमात्मा का साक्षात्कार कराया। उन्होंने लोगों को आध्यात्मिक जीवन का अमृत पिलाया और सांसारिक जीवन के प्रति वैराग्य-भावना उत्पन्न की। वे किसी जाति अथवा वर्ग विशेष के गुरु नहीं थे, बल्कि मानवमात्र के सद्गुरु थे। ऐसे कठिन युग में भी उन्होंने चीन, ब्रह्मा, लका, अरब, मिस्र, तुर्किस्तान, इसी तुर्किस्तान तथा अफगानिस्तान आदि की यात्राएँ कीं। जहाँ भी गए, वही वे प्रेम, भक्ति, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, सयम, तितिक्षा आदि का सदेश ले गए।

राजा रंक, फकीर, साधु ठग, वैश्य, सूफी, योगी सभी ने उनके चरणों में अपना मस्तक झुकाया और उन्हें अपना सद्गुरु समझा। गुरु नानक की दी हुई शिक्षाओं और उपदेशों को लोगों ने अपने हृदय में बसाया। उन्होंने लोगों को यही शिक्षाएँ दी, जो उनके पवित्र अन्तःकरण में परमात्मा की ओर से आई।

गुरु नानक के व्यक्तित्व में पैगम्बर और दार्शनिक दोनों का अपूर्ण मर्मिभ्रम था। उन्होंने जो कुछ भी अनुभव किया, उसे दृढ़ और आज्ञावाणी में व्यक्त किया। सत्य के निर्भय प्रकाशन में वे हिमालय की भाँति अडिग रहे। बड़ी बड़ी तलवारों और तोपों का भय उन्हें सत्य मार्ग से विचलित नहीं कर सका। यह गुण तो उनके पैगम्बर होने का ज्वलन्त प्रमाण है। परन्तु इसके साथ ही वे परमात्मा के प्रेम में सारंग की भाँति व्याकुल थे। वे विराट् प्रकृति को देख कर परमात्मा के प्रेम में निमग्न हो जाते थे। वे 'गगनमै थालु रवि चन्दक दीपक बने' के माध्यम से विराट् और अनन्त पुरुष की आरती में अपनी मुग्ध-बोध स्त्रो देते थे। यही उनकी महान् दार्शनिकता है।

गुरु नानक देव पूर्ण योगी और आदर्श गृहस्थ थे। मानवता की आर्त्त पुकार सुनकर, उन्होंने अपना घर-बार, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, का तृण की भाँति त्याग कर दिया। पूर्ण योगी की भाँति वे सदैव परमात्मा में निमग्न रहते थे और सभी आसक्तियों का अन्तर्त्याग कर चुके थे। वे सहज योगी थे। वे त्याग का भी त्याग कर चुके थे। उन्हें जब यह अनुभव हो गया कि उनका विचरण वाला कार्य समाप्त हो चुका है, तो वे तुरन्त 'गृहस्थ योगी' की भाँति जीवन व्यतीत करने लगे। मशर की दृष्टि में वे दो पुत्रों के पिता थे, किन्तु वास्तव में वे समस्त मानव-समाज के पिता थे। वे मानव जाति के उत्थान के लिए सतत चेष्टाशील रहते थे। वे लोगों की शारीरिक और आध्यात्मिक भूख दोनों ही मिटाते थे। उन्होंने लोगों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की दुःखाओं की निवृत्ति की। उन्होंने अपने जीवन के द्वाग 'करनी और कथनी' को एक किया।

वे कान्तिकारी और दूरदर्शी समाज-सुधारक थे। उन्होंने समाज के उन रोगों का निदान किया, जो उसे खाये जा रहे थे। निदान मात्र करने से ही सन्तुष्ट न होकर, उन्होंने उसकी औपधि भी दी। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का जिस प्रकार समाधान किया, वे उन्नत, सम्य और सुसंस्कृत देशों के आदर्शों की कसौटी पर खरी उतरती है। गुरु नानक देव ने 'परमात्मा से भय रखने वालों का प्रजातन्त्रवाद' प्रतिष्ठापित किया, जिसके अनुसार सभी लोगों को समान भाव से रहने का अधिकार है। जाति, वर्ग, वर्ण आदि में कोई भी भेद न हो। भ्रातृभाव, सेवा, समाज के परम आदर्श है। गुरु नानक द्वारा उनके शिष्यों की बसाई गई कर्तारपुर की वस्ती इस बात का आदर्श उदाहरण थी। उसमें सभी लोग समान रूप से रहते थे। कोई अपवाद अथवा विशिष्ट वर्ग नहीं था। इतनी प्रसिद्धि पाने पर भी गुरु नानक देव और उनकी सहधर्मिणी पर्याप्त कार्य में रत रहती थी। साठ वर्ष की आयु में भी गुरु नानक देव शारीरिक परिश्रम करते थे। किसी भी स्थान में जाति वर्णभेद नहीं था।

गुरु नानकदेव सहज और प्रकृति-जन्म कवि थे। नौ वर्ष की अल्पायु में ही वे असाधारण कविता कर लेते थे। उन कविताओं में अपार आध्यात्मिक भावना सन्निहित थी। वे परमात्मा, प्रकृति एवं मानव तीनों के ही अपूर्व कवि थे। उनके काव्य का पर्यवसान परमात्मा में होता था।

वे अपूर्व संगीतज्ञ थे। उनकी स्वर-लहरी में अपूर्व माधुर्य एवं आकर्षण था। उनके संगीत का प्रभाव हिंस पशुओं और मनुष्यों दोनों ही पर पड़ता था। घोर से घोर अत्याचारियों, क्रूरां,

नास्तिकों, अहंकारियों का हृदय उनकी संगीतमय वाणी से परिवर्तित और द्रवीभूत हो जाता था।

गुरु नानक सच्चे देशभक्त थे। कदाचित् वे ही सत-कवियों में सबसे महान् देशभक्त हैं। उन्होंने अपनी वाणी में जनता की कष्टना, देश के दुर्भाग्य, अत्याचारियों के अत्याचार, नृशंस राजाओं की पाशविक वृत्ति का निरूपण किया। यही कारण है कि मिर्कन्दर लोदी के कर्मचारियों द्वारा वे गिरफ्तार किए गए। गुरु नानक देव ने बाबर के अमेनावाद के आक्रमण का कष्टपूर्ण चित्रण किया।

‘खुरासान खसमाना कीआ हिनदुस्तानु डराइआ’ आदि ऐसी देशभक्तिपूर्ण पक्तियाँ हैं, जिन पर कोई भी देशभक्त गर्व कर सकता है। उन्होंने बहादुरी से बाबर को उपदेश दिया और उसके हृदय में कष्टना का संचार किया। उन्होंने देशवासियों के चरित्र उज्ज्वल बनाने और अँचा उठाने का प्रयास किया।

वास्तव में गुरु नानक देव अपूर्व विश्वबन्धु थे। यही कारण है कि उन्होंने इतने देशों की यात्राएँ कीं। अपनी वाणी में वहाँ के लोगों में आशा, प्रेम, भक्ति और त्याग का संदेश दिया। वे मानव मात्र को परमात्मा के प्रेम में युक्त करना चाहते थे। इसी प्रेम के उच्च धरातल पर मानव-मानव एक हो सकते हैं।

गुरु नानक जी अद्भुत साहसी और निर्भय थे। वे अपने मिशन का प्रचार करने जहाँ एक ओर हिमालय की बर्फीली चोटियों में गए, वहाँ दूसरी ओर अरब तथा मिस्र के रेगिस्तानों में भी गए। इस प्रचार कार्य में जो जो बाधाएँ और अड़चने आईं, उनका उन्होंने बड़े साहस से सामना किया। वे अपनी जान हथेली पर रख कर अपने मिशन का प्रचार करते थे। वे मृत्यु से निर्भय हो चुके थे। अपने शिष्यों को भी मृत्यु की भावना से अँचा उठा दिया था। वे कहते थे, “वीरों के लिए मृत्यु से बड़ कर कुछ भी श्रेयस्कर नहीं है, किन्तु मृत्यु सुन्दर कार्य के निमित्त अवश्य हो।” उस समय की कल्पना कीजिए, जिस समय वे अपने धर्म का प्रचार करते थे। उस समय दिल्ली में ऐंसे शासक हुकूमत करते थे, जो केवल इतना कहने पर लोगों का सिर कटवा लेते थे कि ‘सभी धर्म उतने ही अच्छे हैं, जितना कि इस्लाम धर्म।’ इसके अतिरिक्त समाज के उच्च वर्ण के लोग उन्हें ‘कुराहिया’ कहते थे। वे अपनी निर्भय शिक्षाओं के लिए गिरफ्तार भी किए जा चुके थे। किन्तु किसी भी अत्याचार, बहिष्कार से उनकी धार्मिक-भावना दमन न की जा सकी। वे सच्चे सत्याग्रही थे और अपने अखण्ड मिशन के प्रचार के लिए जीवन भर जूझते रहे।

किन्तु इन सब के बावजूद वे मृदुता और विनम्रता की प्रतिभूति थे। उन्होंने कभी कठोर वाणी का उच्चारण नहीं किया। वे पापियों और दुष्कर्मियों से भी प्रेम करते थे। वे अत्यन्त मृदुता और बुद्धिमत्ता से उन्हें मासारिक आकर्षणों से खींच कर ईश्वर में अनुरक्त कर देते थे। उनकी मृदु मुसकान में अलौकिक जादू था। वे अपनी मुसकान मात्र से हृदय परिवर्तित कर देते थे। उन्होंने अपनी वाणी में स्थान स्थान पर अपने को ‘दासानुदास’, ‘पतित’, ‘हीन’ ‘ओछी मति’ वाला कहा है। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि ‘‘मेरा ही धर्म सर्वश्रेष्ठ है।’’ उन्होंने अपने शिष्यों को विनम्रता, सहिष्णुता, प्रेम, त्याग तथा कर्मयोग का पाठ पढ़ाया।

उनमें क्रियाशक्ति और सकल्पशक्ति का अपूर्व सम्मिश्रण था। उनकी दृष्टि में धर्म यह नहीं था कि जगत् के सारे कार्यों को त्याग कर हाथ पर हाथ रख कर बैठा जाय। यही कारण है कि वे जानबूझ कर बाबर के अत्याचार-शिविर में गए और सारी कठिनाइयों को खेला। उन्होंने कल्पना मात्र नहीं किया, बल्कि जो कुछ सोचा उसे क्रिया में व्यवहृत किया।

उनकी सकल्प-शक्ति, क्रिया-शक्ति और सहन-शक्ति अद्वितीय थी। उस युग में कदाचित् ही किसी धर्म-सुधारक ने इतनी लम्बी यात्राएँ करके अपने धर्म का प्रचार किया हो।

गुरु नानक देव में विभिन्न देशों की भाषाओं के समझने की अपूर्व शक्ति थी। इन दृष्टि से उनकी ग्रहण-शक्ति अपार थी। जिस देश में वे गए, उसी देश की भाषा में उन्होंने अपनी बातें कही। यदि वे उस देश की भाषा पर इतना अधिकार न रखते होते, तो उनकी शिक्षाएँ, इतनी लोकप्रिय न होती।

गुरु नानक के व्यक्तित्व में प्रत्युत्पन्नमति एवं विनोद भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। हरिद्वार में गंगा में हिलकर पश्चिम की ओर जल देना, काबा में मस्जिद की ओर पैर फैला कर विश्राम करना और जगन्नाथ जी की आरती से पृथक् होकर विराट् पुरुष की आरती में रत होना ('गगनमै थालु रवि चंद दीपक बने') आदि घटनाएँ इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

गुरु नानक जी की शिक्षा या मूल निबोड यही है कि परमात्मा एक, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सदा, कर्त्ता, निर्भय, निर्बैर, अयोनि और स्वयम्भू है। वह भवन-वत्सल, घट-घट-व्यापी, दाना, रक्षक, भूतधार, सर्वनियन्ता है। वह सर्वत्र व्याप्त है। उसकी प्राप्ति के लिए रागात्मिका भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। मूर्तिपूजा आदि निरर्थक है। बाह्य साधनों से परमात्मा नहीं प्राप्त होता। आन्तरिक साधन ही उसकी प्राप्ति के उपाय है। गुरु-कृपा, परमात्म-कृपा एवं शुभ कर्मों के आचरण से परमात्मा की प्राप्ति होती है। नाम-जप परमात्म-प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है और वह नाम गुरु के द्वारा प्राप्त होता है। व्यावहारिक जगत् में 'नाम, दान एवं स्नान' शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धि के लिए आवश्यक है। इस प्रकार गुरु नानक पंद्रहवीं एवं सोलहवीं शताब्दी की अरुण विभूति है। तभी तो गुरु अर्जुन देव ने उनके मन्त्र में कहा था—“वे परमात्मा की प्रतिमूर्ति थे। बल्कि परमात्मा ही थे।”

परिशिष्ट (ख)

नानक-वाणी के कुछ विशिष्ट शब्द

गुरु नानक ने अपनी वाणी में कुछ ऐसे शब्दों के प्रयोग किए हैं जिनकी जानकारी उनके वास्तविक अभिप्राय के समझने के लिए आवश्यक है। इनमें से कतिपय शब्द चुन कर नीचे दिए जा रहे हैं—

ओंकार :—इसका अभिप्राय 'ॐ' से है। ॐ वेदों और उपनिषदों का सार तत्त्व है। यह ब्रह्म का प्रतीक है। समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी से मानी गई है। भूत, भविष्य, वर्तमान और इन तीनों से परे त्रिकालातीत तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ॐ के ही स्वरूप है। माण्डव्योपनिषद् में इसकी विषद व्याख्या की गई है।

गुरु नानक देव भी ओंकार से ही ब्रह्मादिक की उत्पत्ति मानते हैं—

“ओंकारि ब्रह्मा उत्पत्ति। ओंकार की आ जनि चिति”

(रामकली, दखणी ओंकार)

गुरु नानक की एक विशेष वाणी का नाम भी 'ओंकार' है, जो रामकली राग में है। यह 'पट्टी' के तर्ज पर लिखी गई है। इसके अन्त में 'पट्टी' शब्द भी आया है।

अजपा जाप :—अजपा जप बिना किसी प्रयास का स्वाभाविक जप है। इस जप में बाह्य-साधनों का सहारा नहीं किया जाता। बाह्य साधनों का अभिप्राय यह है कि जिह्वा से नामोच्चारण करना, जप-गणना के लिए माला अथवा अँगुलियों का सहारा लेना। बौद्ध-सिद्धों की साधना-पद्धति में 'अजपा-जप' की साधना पर बहुत बल मिलता है। बौद्ध-सिद्ध अपनी साधना-पद्धति को दृढ़ करने के लिए श्वास-प्रश्वास की गति नियन्त्रित करने के लिए 'चण्डाग्नि' प्रज्वलित करते थे। इससे 'श्वास-प्रश्वास' में सहज भाव से जप होने लगता था। इसी से अजपा जप को 'सहज जप' भी कहा जाता है। वज्रयोगी साधक 'अजपा जप' को 'वज्र जाप' कहते थे। नाथपंथी साधकों ने इस जप को 'अजपा जप' का नाम दिया। सभी मत कवियों ने इस जप की महत्ता स्वीकार की है। इस जप में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार एकदम शान्त हो जाते हैं और जप की अखण्ड धारा अपने आप प्रवाहित होने लगती है। गुरु नानक देव ने 'अजपा जप' का स्थान स्थान पर संकेत किया है। यथा—

“अजपा जापु जपै मुखि नाम”

(बिलावल महला १, धिती, १६वाँ छन्द)

तथा “अजपा जापु न बीसै आदि जुगादि समाइ।”

(मलार की वार, महला १)

अनहद नाद :—जो अखण्ड नाद जगत् के अन्तस्थल और निखिल ब्रह्माण्ड में ध्वनित हो रहा है, उसी को शरीर में स्थित कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करके अपने अन्तर्गत सुनना ही 'अनहद नाद', वा 'अनाहत नाद' है। इस 'अनाहत नाद' के श्रवण से मन विशुद्ध और चित्त शान्त हो जाता है। इस अनाहत नाद के श्रवण से मन अपने 'मूल स्थान' में स्थित हो जाता है, इसी से उसकी चंचलता शान्त हो जाती है।

गुरु नानक ने अनाहत शब्द के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। परन्तु उनके 'अनाहत नाद' का स्वरूप योगियों के 'अनाहत नाद' के स्वरूप से कुछ भिन्न प्रतीत होता है। योगी तो दशम द्वार की प्राप्ति के पहले ही अनाहत शब्द सुनने लगता है। किन्तु गुरु नानक के अनुसार अनाहत शब्द के आनन्द की अनुभूति दशम द्वार में पहुँच कर होती है। यथा—

गुरमति राम जयै जनु पूरा।

तितु घट अनहत बाजे तूरा ॥२॥१६॥

(गडडी गुआरेरी, असटपदीआ)

तथा, पंच सबद धुनि अनहत बाजे हम घरि साजन आए ॥१॥१॥२॥

(सूही, महला १)

गुरु नानक देव ने अनाहत शब्द की प्राप्ति का साधन साधना-बहुल और क्रिया-क्लिष्ट योग की साधना को नहीं माना है। उनकी दृष्टि में नाम-जप योग-प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है—

नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवे देखहु रिदै विचारे ॥

(रागु रामकली, मिथ गोमति)

पूर्ण गुरु की आराधना से योग-सिद्धि होती है—

बिनु सतिगुरु सेवे जोगु न होई ॥

(रामकली, मिथ गोमति)

अमृत रस :—‘अमृत रस’ को ‘महा रस’ भी कहा गया है। इसका मूल स्रोत सहस्र दल कमल है, जिसे ‘सहस्रार’ भी कहते हैं। योगियों ने इसमें ‘अमर वाहणी’ की भी सजा दी है। सिद्ध सरहपा ने ‘अमर वाहणी’ की अपेक्षा ‘सहज रस’ को अधिक महत्त्व दिया था। गोरखनाथ का संकेत ‘सहस्र दल कमल’ से टपकने वाले अमृत से है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास द्वारा ‘अमृत रस’ की प्राप्ति होती है, जिससे शरीर अजर अमर हो जाता है।

किन्तु गुरु नानक देव का अभिप्राय ‘अमृत रस’ से ‘हरि रस’, ‘परमात्म-रस’ से है—

अमृत रस पाए तुसना भउ जाए।

अनभउ पदु पावै आपु गवाए ॥

(मारु, महला १)

अमृत रसि राता केवल बैरागी गुरमति भाइ मुभाइआ

(मारु, महला १)

करम खण्ड :—गुरु नानक देव ने जपु जी की ३७वीं से लेकर ३७वीं पंजी में यह दिखलाया है कि परमात्मा की मृष्टि-रचना ‘धर्म’, ‘ज्ञान’, ‘श्रम’, ‘कर्म’ अथवा (कृपा) तथा ‘मर्त्य’ के आधार पर चल रही है। उन्होंने प्रत्येक का पृथक् पृथक् खण्ड अथवा मण्डल दिखलाया है। वे मानो पंच भूमियाँ अथवा भूमिकाएँ हैं। ‘करम खण्ड’ चौथी भूमिका है। ‘करम खण्ड’ (कृपा खण्ड) में परमात्मा की शक्ति को छोड़कर और कुछ नहीं है। उस खण्ड में महाबली शूरवीर ही निवास करते हैं। उन सब में राम ही समाया रहता है। उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिनके मन में राम निवास करते हैं, न तो वे मरते हैं और न (काल द्वारा) ठगे जाते हैं। उस खण्ड में परमात्मा के भक्तों के अनन्त लोक बसे हैं। उस खण्ड में भक्तगण शाश्वत आनन्द में निमग्न रहते हैं, क्योंकि हरी का सच्चा नाम उनके मन में बसा हुआ है (देखिए जपु जी, ३७वीं पंजी का पूर्वांश)

सृष्टि का उपर्युक्त खण्डों में विभाजन गुरु नानक देव की मौलिकता है।

किरत-कर्म :—किरत कर्म वे अच्छे अथवा बुरे कर्म हैं, जो जीव ने पिछले जन्मों में किए हैं। बारम्बार उन्हीं कर्मों के करने के कारण आदत पड़ जाती है। उसी आदत के बशीभूत होकर पुरुष जो कर्म करता है, वह किरत कर्म कहलाता है। किरत कर्म भोगने ही पड़ते हैं, मिटते नहीं। कर्मों के भोग के लिए कर्मों की किरत भाग्य में लिख दी जाती है—

आवै जाइ भवाईऐ पइऐ किरति कमाइ।

पूरबि लिखिआ किउ मेटीऐ लिखिआ लेख् रजाउ।

बिनु हरि नाम न छुटीऐ गुरमति मिलै मिलाइ॥७॥१०॥

(‘सिरी रागु, असटपदीआ, महला १)

किरत कर्म महान् बलशाली होते हैं—

इकि आवहि जावहि घरि वासु न पावहि।

किरत के बाधे पाप कमावहि॥४॥३॥९॥

(मारू, सोलहे, महला १)

अथवा—

किरतु पइआ नह मेटै कोउ।

किया जाणा किया आपै होइ॥

(गउडी, महला १)

किरत-कर्म की दुरुहता भेटने में यदि कोई समर्थ है, तो वह है ‘हरि-किरत-कर्म’। परमात्मा के नाम का गुणगान ही ‘हरि-किरत-कर्म’ है।

कुचज्जी :—बुरे आचारवाली स्त्री को कुचज्जी कहते हैं। पति परमेश्वर में जीवात्मा रूपी स्त्री अपने बुरे आचारों के कारण ही बिछुड़ जाती है। जीवात्मा रूपी स्त्री अपनी अह-भावना में आकर पति परमेश्वर को भूल कर नाना प्रकार के कष्ट पाती है। अन्त में जब यह ‘सुचज्जी’—सुंदर आचारवाली होती है, तभी पति-परमात्मा में मिलाप होता है। (देखिए रागु सूही, महला १, कुचज्जी)

खटु करम (षट्-कर्म) :—इसका अभिप्राय योग के षट् कर्मों में है। वे निम्नलिखित हैं—

(१) धोती :—कपड़े की महीन और साफ पट्टी निगल कर भीतर की सफाई करके उसे बाहर निकाल देना।

(२) नेती :—बारीक और मजबूत तागा नासिकामार्ग से निगल कर मुख मार्ग से निकाल लेना। इससे नासिका और मुखद्वार स्वच्छ हो जाते हैं, जिससे श्वास-प्रश्वास की गति सुंदर रूप में चलती है और उसमें किसी प्रकार की रुकावट नहीं आती।

(३) निवज्जी :—पेट को अन्दर खींच कर चारों ओर घुमाना है। इससे पेट की क्रिया सुचारु ढंग से चलने लगती है। पाचन-क्रिया ठीक रहती है और उदर-संबन्धी कोई विकार नहीं उत्पन्न होते।

(४) बसती :—बाँस की पतली नली गुदामार्ग में डालकर श्वास के द्वारा जल ऊपर चढ़ाना और अतडी साफ करके फिर उसे निकाल देना।

(५) त्राटक :—किसी विशेष केन्द्रबिन्दु पर आँखों को केन्द्रित करके अपलक दृष्टि से ना. वा. फा—१०४

देखना । इससे नेत्रों की शक्ति बढ़ती है । इस क्रिया से नेत्र के समस्त विकार दूर होते हैं और सिद्धि प्राप्त होती है ।

(६) **कपालभाति** —लुहार की धोकनी के समान श्वासों को जोर से खींच कर शीघ्रता से बाहर निकालना । इससे नाड़ियों की शुद्धि होती है ।

खसम :—खसम शब्द का प्रयोग कदाचित् सिद्ध साहित्य में सर्वप्रथम मिलता है और इसका अर्थ इस प्रकार है (ख = आकाश, शून्य = सम, समान) अर्थात् शून्यवत । सिद्धों ने 'खसम' शब्द का प्रयोग मन के लिए किया है, जिसका अर्थ 'शून्यवत निर्लिप्त एवं व्यापक' मन से है । मन की यह स्थिति तब होती है, जब वह नितान्त निर्वासनिक हो जाय । योगियों ने इस प्रकार के मन को 'गगनोपम' एवं 'शून्यवत' कहा है । नाथपथियों ने 'खसम' शब्द का प्रयोग नहीं किया है ।

सत साहित्य में 'खसम' शब्द का प्रयोग बराबर मिलने लगता है । किन्तु इसका प्रयोग विभिन्न अर्थ में है । 'खसम' अरबी शब्द है और इसका अर्थ 'पति' होता है । गुरु नानक ने 'खसम' का प्रयोग पति-परमात्मा के लिए ही किया है । यथा—

चाकठ कहीऐ खसम का मउहे उतरे देउ ।

(रामकली, दखणी आंजकार)

खसमु विमारहि ते कमजानि ।

नानक नावे बाझु सनानि ॥४॥२॥

(राग आसा, महला १, चउपदे, धरु २)

खसमं भावे सो करे मनहु चिदिआ सो फलु पाइमी ।

ता दरगह पैधा जाइसी ॥

(आसा की वार, महला १)

खसमु विसारि खुआरी कीनी धृगु जीवणु नही रहना ॥

(राग मलार, चउपदे, महला १, धरु १)

खसमु विसारि कीए रस भोग ।

तां तनि उठि खलोए रोग ॥

(मलार, महला १, धरु २)

गिआन खंड (ज्ञान खण्ड) —जपु जी में गुरु नानक देव ने सृष्टि की पांच भूमिकाएँ बतलाई है—धर्म खंड, ज्ञान खंड, गरम खण्ड (लज्जा खण्ड), करम खण्ड (रूपा खण्ड) तथा सच्च खंड । 'ज्ञान खण्ड' इन पंच भूमिकाओं में से दूसरी भूमिका है । ज्ञान खण्ड की भूमिका में स्थित होने पर प्रभु की शक्तियों का ज्ञान उत्पन्न होता है । यह भौतिक खण्ड नहीं, मानसिक मण्डल है । ज्ञान खंड में कितने ही वायु देव, वरुण देव (जल देवता), अग्नि देव, कृष्ण और महेश हैं । न मालूम कितने ब्रह्मा है जो अनेक सृष्टि का निर्माण करते रहते हैं तथा नाना रूप-रंग के वेश उत्पन्न करते हैं । इस ज्ञान खण्ड में अनेक कर्मभूमियाँ, अनन्त सुमेरु पर्वत, ध्रुव, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य स्थित हैं । अनन्त मण्डल और अनन्त देश इसमें विराजमान हैं । न मालूम कितने सिद्ध, बुद्ध, नाथ, देवी, देवता दानव, मुनि, रत्न, खानियाँ—(उद्भिज, अडज, जेरज, पिडज), कितने प्रकार की बोलियाँ, कितने ही राजे, बादशाह उस ज्ञान खंड की भूमिका में स्थित हैं । ज्ञान खंड की सृष्टि का न अन्त है और न सीमा । यह

‘नेति नेति’ है। इस खड में ज्ञान की प्रबलता रहती है। ज्ञानखण्ड में ज्ञानी-जन नाद में अनुरक्त रहते हैं और विनोद, कौतुक, आनन्द में निमग्न रहते हैं।

गुरुमुखः—[सस्कृत, गुरुमुख = गुरु + मुख; जिसने गुरु द्वारा दीक्षा ली हो]।

नानक-वाणी में गुरुमुख शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। यथा—

(१) गुरु से दीक्षित।

(२) वह व्यक्ति जिसे नाम प्राप्त हो गया हो अथवा वह साधक जो अहंनिश नाम का जप करता हो। अथवा वह सिद्ध जिसने नाम से एकनिष्ठ ध्यान लगा कर मन को जीत लिया हो।

(३) परमात्मा।

(४) गुरु।

(५) गुरु का दर्शन।

(६) गुरु की शिक्षा से।

(७) गुरु के द्वारा, तथा

(८) गुरु वा।

दस प्रकार प्रमाणानुसार ‘गुरुमुख’ के उपर्युक्त अर्थ होते हैं।

दशम द्वार —दशम द्वार योगमार्ग का बहुत ही प्रचलित शब्द है। गुरु नानक देव ने अपनी वाणी में इस शब्द का प्रयोग किया है। गुरु नानक के अनुसार दशम द्वार अनेक रूपों और निरकार के नाम का भाण्डार है। तात्पर्य यह कि हमारे अन्तःकरण में जहाँ निरकारी ज्योति का निवास है, वही दशम द्वार है। यथा—

भीतरि कोंट गुफा घर जाई।

नउ घर थापे हुकमि रजाई॥

दसवै पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा॥३॥१॥१३॥

(मारू, सोलहे, महला १)

नउ घर थापे थापण हारै।

दसवै वासा अलख अपारै॥

साइर सपत भरे जल निरमलि गुरुमुखि मैलु न लाउदा॥२॥४॥१६॥

(मारू, सोलहे, महला १)

देही नगरी नउ दरवाजे।

सिरि सिरि करणहारै साजे॥

दसवै पुरख अतीतु निराला आपे अलखु लखाइआ॥४॥२॥१९॥

(मारू, सोलहे, महला १)

दुहागिनी :—(दुहागण, दोहागणी, डोहागणि) : इसकी उत्पत्ति प्राकृत के ‘दोहग्ग’ से हुई है। प्राकृत का यह ‘दोहग्ग’ शब्द सस्कृत के ‘दोर्भाग्य’ से उत्पन्न हुआ है। अतएव दुहागिनी अथवा दोहागिनी का अभिप्राय ‘मद भाग्य वाली’ स्त्री से है। किन्तु गुरु नानक तथा अन्य सिक्ख गुरुओं ने इसका प्रयोग ‘पति-परित्यक्ता’ के अर्थ में किया है, जिसकी व्यंजना यह है कि वह ‘जीवात्मा रूपी स्त्री’ जो अपने अवगुणों के कारण ‘पति परमात्मा’ से त्यागी गई है। यथा—

सभि राती सोहागणी मै बोहागणी काई राति जीउ॥

(राग सुही, महला १, कुचज्जी)

धरम खड्ड :—गुरु नानक जी ने जपु जी की ३४वीं से लेकर ३७वीं पउडी तक में सृष्टि-क्रम की पंच भूमिकाएँ स्थापित की हैं—धर्म खड्ड, ज्ञान खड्ड, शरम (लज्जा खड्ड), करम खड्ड (कृपा खड्ड), तथा सच्च खड्ड। धर्म खड्ड इन पंच भूमिकाओं की पहली भूमिका है। 'धर्म' का अभिप्राय प्रकृति के नियमों का सव्यूहृत है। धर्मखड्ड में परमात्मा ने रात्रि, ऋतुएँ, तिथियाँ, वार, पवन, जल, अग्नि, पाताल आदि की रचना की। उन सब के बीच में पृथ्वी को धर्मशाला के रूप में स्थापित किया, अर्थात् पृथ्वी धर्म-बद्ध है, वह धर्म के आश्रित है। प्रभु ने उस पृथ्वी में अनेक जीवों के विधान और उनकी अनेक जातियाँ तथा प्रकार निमित्त किए। उन जीवों के अनन्त रूप और अनन्त नाम हैं। देश, काल, नाम, रूप का यह जगत् प्रत्येक जीव के धर्मानुसार चल रहा है। प्रत्येक जीव के कर्मानुसार परमात्मा विचार करता है। जीवों के कर्मों का फलदाता परमात्मा सच्चा है और उसका दरबार भी सच्चा है। उसके दरबार में पंच तन्मात्राएँ सुशोभित हैं। परमात्मा की कृपा एवं दया से उसका निशान—चिह्न प्राप्त होता है। इस 'धर्म खड्ड' में कच्चे लोग कर्म-अग्नि द्वारा पकाए जाते हैं। वहाँ पहुँचने पर ही पापात्मा और पुण्यात्मा परखे जाते हैं। (देखिए जपु जी ३४वीं पउडी)।

नाद-विदु —'नाद' और 'विदु' शब्द हमारे शास्त्रों में बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। नाद तत्त्व शरीर के बाहर भी है और भीतर भी है। नाद ही के द्वारा अव्यक्त परमात्मा ने अपने को व्यक्त रूप में प्रकट किया। नाम-रूपात्मक जगत् अव्यक्त परमात्मा का व्यक्त विलास है। योगीगण अभ्यास के द्वारा नाद को अपने अन्तर्गत सुनते हैं। यह नाद अन्तर्ज्योति का शब्द रूप है। इसी नाद से अज्ञानान्धकार का नाश होता है। नाद परमात्म-तत्त्व का प्रतीक है और बिन्दु शक्ति का बोधक है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहक-शक्ति में कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार 'नाद' और 'विदु' में कोई अन्तर नहीं है। शिव और शक्ति का मिलन नाद-विदु के मिलन का प्रतीक है। गुरु नानक जी की दृष्टि नाद-विदु पर थी। यथा—

नाद बिद की मुरति समाइ । सतिगुरु सेवि परम पदु पाइ ॥२॥१२॥

(राग आसा, महला १, चउपदे, घर२)

निरंजन —निरजन का तात्पर्य 'अंजन रहित' है। विद्वानों ने 'अंजन' का अर्थ अनेक प्रकार से किया है। कोई इसका अर्थ 'माया' लगाते हैं और कोई, 'विकार', 'कलुष' अथवा 'कल्मष'। इस प्रकार इसका अर्थ 'निलेप', 'निष्केवल' अथवा 'निर्विकार' है।

मुण्डकोपनिषद् में 'निरजन' शब्द का प्रयोग इस भाँति पाया जाता है—

यदा पश्य. पश्यते ह्रस्ववर्णं

कर्तारमीश पुरुष ब्रह्मयोनिम् ।

तदा विद्वान्पुण्यपापं विधूय

निरञ्जन. परम साम्यमुपैति ॥

(मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक ३, खण्ड १, मन्त्र ३)

अर्थात्, "जिस समय द्रष्टा सुवर्णवर्ण और ब्रह्मा के भी उत्पत्तिस्थान, उस जगत्कर्त्ता ईश्वर पुरुष का देखता है, उस समय यह विद्वान् पाप-पुण्य दोनों को त्याग कर निलेप हो अत्यन्त समता को प्राप्त हो जाता है।" शंकराचार्य जी ने अपने भाष्य में 'निरजन' का अर्थ 'निलेप' विगतकलेश' लिखा है। योग-ग्रन्थों में 'निरजन' का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। 'हठयोग प्रदीपिका' में इस शब्द का अर्थ नित्य, शुद्ध, बुद्ध और युक्त ब्रह्म के लिए किया गया है। नाथ-ग्रन्थों में 'निरजन' में 'त्यो' लगाने की बात कही गई है। सिद्ध साहित्य में 'निरंजन'

शब्द को उनके 'शून्य' ने बहुत प्रभावित किया है। उड़ीसा और राजस्थान में 'निरजनी सम्प्रदाय' हैं, जो 'निरजन' की स्थापना करते हैं।

गुरु नानक ने अपनी वाणी में 'निरजन' का प्रयोग निर्विकार, निराकार, अदृश्य, अलक्ष्य, व्यापक, घट-घट-व्यापी ब्रह्म के लिए किया है। यथा—

अजनु सारि निरजनु जाणै सरब निरजनु राइआ ॥१॥२॥११॥

(मारू, सोलहे महला १)

कही कही मावक की 'निलिप्त-भावना' के अर्थ में भी इसका व्यवहार पाया जाता है। यह अर्थ शकराचार्य जी के 'निलोप, विगत क्लेश' अर्थ से बहुत कुछ सादृश्य रखता है। यथा—

अजन माहि निरजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।

(मूसी, महला १, घर ७)

पंच चेले —पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, त्वचा, जिह्वा। यथा—

पच चेले बस कीजहि रावलु इहु मन कीजै डडाता।

पंच चोर —काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार। यथा—

पच चोर चचल चिनु चालहि।

पर घर जोहहि घर नहीं भालहि ॥३॥२॥

(मारू सोलहे, महला १)

पंच तसकर —पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार।

यथा—

पच तसकर धावत राखे चूका मन अभिमानु।

दिमटि बिकारी दुरमति भागी ऐमाब्रह्म गिआनु ॥२॥३॥

(रामु परभाती विभास, महला १)

पंच परधान :—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी।

(जपु जी, १६वी पउडी)

पंच परवाणु : शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।

(जपु जी, १६वी पउडी)

मनमुख —इसका तात्पर्य मनोन्मुखी व्यक्ति है। गुरु नानक एव अन्य सिक्ख गुरुओं की वाणी में इस शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। यह शब्द गुरुमुख का ठीक उल्टा है। गुरु का अनुयायी अथवा गुरु की शिक्षा के अनुरूप चलने वाला व्यक्ति गुरुमुख है, किन्तु अहंकारयुक्त मन के अनुरूप चलने वाला 'मनमुख' है। मनमुख सासारिक सुखों को ही सर्वस्व समझता है। उसे स्वप्न में भी पारमाधिक आनन्द के प्रति आकर्षण नहीं होता। उदाहरणार्थ—

मनमुख तोटा नित है भरमहि भरमाए।

मनमुख अधु न चेतई किउ दरसन पाए ॥६॥११॥

(आसा, महला १, असटपदीआ)

लिब :—'लिब' की उत्पत्ति संस्कृत के 'लय' से प्रतीत होती है। अतः 'लिब' का अभिप्राय, 'परमात्मा में लय' हो जाना है। तीन प्रकार के जप होते हैं, साधारण जप, २ अजपा जप, ३ लिब जप। जिह्वा जप अथवा साधारण जप परमात्म-प्राप्ति का प्रथम साँपान है। यह जप साधक को 'अजपा जप' तक पहुँचा देता है। 'अजपा जप' से 'लिब' जप प्राप्त

होता है। 'लिव' जप में वृत्ति द्वारा परमात्मा का जप और ध्यान होने लगता है। इस जप में जिह्वा और मन एकाग्र हो जाते हैं। इस जप में मनुष्य का व्यक्तिगत आन्तरिक भाव ब्रह्माण्ड के समष्टिगत आन्तरिक भाव में मिलकर विलीन हो जाता है। परमात्मा में पूर्ण लयभाव लिव जप से ही शक्य है।

'लिव' का अर्थ प्रमगानुसार कई अर्थों में होता है—

(१) परमात्मा के चरणों में मन का युक्त हो जाना—

कलिमल मैलु नाही ते निरमल ओइ रहहि भगति लिव लाई हे ॥४॥१६॥

(मारु, सोलहे)

(२) प्रीति। यथा—

गुरमुखि जागि रहे दिन राती। साचे की लिव गुरमति जाती ॥४॥१५॥

(मारु, सोलहे)

(३) वृत्ति का एकरस परमात्मा में जुड़ जाना। यथा—

चुप चुपि न होवई जे लाइ रहा लिवतार ॥

(जपु जी, पउड़ी १)

सच खण्ड —गुरु नानक देव ने समस्त सृष्टि-रचना का विभाजन निम्नलिखित पंच खण्डों में किया है—'धरम खण्ड', 'गिआन खण्ड', 'सरम खण्ड', 'करम खण्ड' और 'सच खण्ड'। ये पाँचों खण्ड क्रमशः एक दूसरे से सूक्ष्म हैं। 'सच खण्ड' अन्तिम खण्ड है। निरकार परमात्मा का 'सच खण्ड' में ही निवास है। अपनी कृपा दृष्टि से वह भक्तों को देखता रहता है। 'सच खण्ड' में अनन्त खण्ड, मण्डल एवं ब्रह्माण्ड है। उनका कोई कथन नहीं कर सकता। वहाँ अनन्त लोक आकाशवत् है और सब के सब परमात्मा के 'हुक्म' के अनुसार अपने कार्य में रत हैं। शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति परमात्मा की इस अनन्तता को विचार करता है और प्रसन्न होता है। इसका कथन करना अत्यन्त कठिन है। यह वर्णनातीत है।

(देखिए, जपु जी ३७वीं पउड़ी, उत्तरार्द्ध)

सबद —इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'शब्द' से हुई है। सन्तों की वाणी में इसका प्रयोग बहुत अधिक पाया जाता है। गुरु नानक ने भी इस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया है। यथा—

(१) व्याकरण के अर्थ में ध्वनि अथवा नाद। उदाहरण,

आम अदेमे ते निहकेवलु हउमै सबदि जलाए।

(आसा की वार, महला १)

अर्थात्, "नाम जपने वाला व्यक्ति आशा तथा अंदेशों से पवित्र हो जाय (और अहंकार में इतना अधिक निवृत्त हो जाय कि) इस 'शब्द' को ही जला दे।"

(२) नाम के अर्थ में भी इसका प्रयोग हुआ है। उदाहरण,

घडीऐ सबदु सची टकसालु।

(जपु जी, ३८वीं पउड़ी)

(३) अनाहत शब्द के लिए भी इसका प्रयोग मिलता है—

सबदि अनाहदि सो सह राता नानकु कहै विचारा ॥४॥१८॥

(रागु आसा, महला १, चउपदे, घर २)

(४) गुरु की शिक्षा अथवा उपदेश के लिए भी 'सबद' का प्रयोग किया गया है—

जिस कउ नवरि करे गुरु पूरा ।

सबदि मिलाए गुरमति सूर। ॥५॥५॥२२॥

(मारू, सोलहे, महला १)

(५) श्री गुरु ग्रंथ साहिब अथवा गुरु नानक की वाणी में प्रयुक्त आदि के पदों को भी 'सबद' कहा जाता है, जैसे 'मारू, महला १, सबद'

(६) कहीं कहीं इसका प्रयोग 'हुकम' के अर्थ में भी हुआ है

(७) बहस, चर्चा, गोष्ठी—

सबदै का निबेड़ा मुणि तू अउधू बिनु नावै जोगु न होई ।।

(सिध गोसटि, रामकली)

(८) धर्म—

जोग सबदं गिआन सबद बेंद सबदं त ब्राह्मणह ।

(रागु जजावती, सलोक, सहमकृती, महला १)

अर्थात् "योगी का धर्म क्या है?"—"ज्ञान धर्म है"।

इस प्रकार 'सबद' का प्रयोग गुरु नानक देव ने अनेक अर्थों में किया है।

सरम खंड —पृष्ठि-रचना के पाँच खण्ड है—'धर्म खण्ड', 'ज्ञान खंड', 'सरम खण्ड', 'करम खण्ड' और 'मंच खंड'। 'सरम खण्ड' भूमिका की दृष्टि से तीसरी भूमिका है। इसका तात्पर्य है—'लज्जा अथवा प्रतिष्ठा के प्रति ध्यान'। उस भूमिका में वाणी द्वारा वस्तुओं की अनुपम रचना होती है। उसकी बातें वर्णनातीत है। उसी भूमिका में स्मृति, मति, मन और बुद्धि की रचना होती है। देवताओं एवं मित्रों की स्मृति की भी रचना उसी मंडल में होती है।

सहज —'सहज' शब्द की व्युत्पत्ति 'सह जायते इति सहज' के आधार पर की जाती है, अर्थात् वे गुण जो जन्म के साथ उत्पन्न हो और स्वाभाविक रूप में विराजमान हों। "कुछ लोगों का अनुमान है कि यह शब्द चीनी भाषा के 'ताओ' का संस्कृत रूपान्तर है और ताओ चीन देश के एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय को सूचित करता है। चीन के ताओ धर्म के प्रमुख प्रचारक लाओत्से नाम के एक महापुरुष थे जो लगभग महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। कहते हैं कि ईसा की गानवी शताब्दी के आमपास अस्म के किसी राजा ने इस धर्म के एकाग्र ग्रंथों का चीनी से संस्कृत अनुवाद कराया था। यह भी प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष के मद्रास प्रान्त की ओर कोई 'भग' अथवा 'भोग' नाम का इस धर्म का एक अनुयायी भी आया था, जिसने उधर अपना प्रभाव डाला। 'ताओ' शब्द की व्याख्या 'स्वाभाविक प्रवृत्तिमूलक' मार्ग से की जाती है जो सिद्धों की सहज विषयक धारणा के भी अनुकूल है। . . . कुछ लोगों ने हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ विष्णुपुराण के अन्तर्गत भी 'सहज' शब्द का लगभग इसी रूप में अस्तित्व पाया है और वह लगभग ४०० ई० की रचना है।" (कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, संवत् २०११ वि० संस्करण, पृष्ठ २४७)। सिद्धों ने इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक किया है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग 'स्वाभाविक' एवं 'द्वैताद्वैत विलक्षण स्थिति' दोनों ही अर्थों में किया है। सिद्ध लोग 'सहज' शब्द के प्रयोग में बौद्धों के 'शून्य' शब्द से प्रभावित ज्ञात होते हैं।

नाथपंथियों में 'सहज' शब्द का प्रयोग कम पाया जाता है। कदाचित् इसका प्रमुख कारण है कि वे लोग 'सहज साधना' की अपेक्षा 'हठयोग' में अधिक विश्वास करते थे।

गुरु नानक देव ने 'सहज' शब्द का प्रयोग दोनो ही अर्थों में किया है—(१) स्वाभाविक तथा (२) निर्वाण पद। गुरु नानक के अनुसार सहजावस्था, मोक्ष पद, जीवनमुक्ति-अवस्था, चतुर्थ पद, तुरीयपद, तुरीयावस्था, निर्वाण पद, तत्त्व ज्ञान, ब्रह्मज्ञान और राजयोग सब लगभग एक ही है। इनके नामों में विभेद है। पर इन सब की आन्तरिक अनुभूति एक ही है।

'सहज' शब्द के 'स्वाभाविक अर्थ' के प्रयोग में गुरु नानक की निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत की जाती हैं—

सहजि संतांखि सीगारिआ मिठा बोलणी।

(सिरी राग, सबद १०)

जिम्बु नर रामु रिदै हरि रामि।

सहजि मुभाइ मिले साबामि॥२॥११॥

(गउडी, सबद, महला १)

सहजि मुभाइ मेरा सह मिलै दरसनि रूपि अपाह॥२॥२॥११॥११॥

(गउडी, सबद, महला १)

सहजि मुभाइ अपना जाणिआ॥२॥१४॥२७॥

(आसा, महला १)

'सहज' शब्द के 'तुरीय' अथवा 'निर्वाण पद' की प्राप्ति के अर्थ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण में दी जाती हैं—

पूरा सतिगुरु सहजि समावै॥५॥१५॥

(प्रभाती विभाम, अमटपदीआ, महला १)

सहजै सहजु मिले मुखु पाईऐ दरगह पैघा जाग॥१४॥७॥

(प्रभाती विभाम, अमटपदीआ, महला १)

सहजे मिलि रहै अमरा पदु पावै॥१०॥१॥

(तिलंग, महला १, घर २)

गुरु नानक जी ने स्थान स्थान पर इस शब्द का प्रयोग 'सहज समाधि' के लिए भी किया है। यथा—

सहज समाधि मदा लिव हरि सिउ जीवा हरि गुन गाई॥६॥१॥

(राग सारंग, असटपदीआ, महला १, घर १)

साकत —साकत की उत्पत्ति संस्कृत के 'शाक्त' से मानी जाती है। इसकी उत्पत्ति अरबी के 'साकित' से भी मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है 'डिगा हुआ', 'बुरा'। संस्कृत में शक्ति के उपासक को शाक्त कहते हैं किन्तु सन्त कवियों ने 'साकत' का प्रयोग रूढ़ि अर्थ में किया है, जिसका अभिप्राय 'माया का उपासक' होता है। अर्थात् 'वह व्यक्ति जो परमात्मा को छोड़ कर माया की उपासना करता है'। कबीर ने भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। गुरु नानक देव के 'साकत' शब्द का प्रयोग का अर्थ 'विषयासक्त प्राणी' अथवा 'मायासक्त जीव' होता है।

उदाहरणार्थ—

साकत माइआ कउ बहु धावहि।

नामु विसारि कहा सुख पावहि॥

विदुगुण अतरि खगहि खपावहि नाही पारि उतारा हे ॥१४॥१३॥११॥

(मारू सोलहे, महला १)

साकत निरगुणिआगिआ आपण मूलू पछाणु ॥५॥१५॥१॥

(मिरी रागु, अमटपदीआ, महला १)

साकत दुरमनि डूबहि दाबहि गुरि राखे हरि लिब राता हे ॥५॥१५॥१॥

(मारू सोलहे, महला १)

कबीर ने भी 'साकत' का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। यथा—

साकत मरहि मत सभि जीबहि । राम रसाइनु रसना पीवहि ॥३॥१३॥१॥

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, गउड़ी, कबीर, पृष्ठ ३२६)

राम राम राम रमे रहीऐ ।

साकत मिउ भूलि नहीं कहीऐ ॥१॥१२हाउ ॥७॥१२०॥१॥

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, आसा, कबीर जी, पृष्ठ ४८१)

साकत गुआनु सभु करे कराइआ ।

जो धुरि लिखिआ सु करम कमाइआ ॥४॥७॥१२०॥१॥

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, आसा, कबीर जी, पृष्ठ ४८१)

सुनं —गुरु नानक की बाणी में 'मुन' शब्द का प्रयोग स्थान स्थान पर मिलता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'शून्य' शब्द में हुई है। शून्य शब्द का व्यवहार भारतवर्ष में बहुत पहले से होता आ रहा है। किन्तु विभिन्न युगों एवं दर्शनों में इसके पृथक् पृथक् अर्थ थे। ब्राह्मण ग्रंथों में इसका प्रयोग 'सत्ता' के रूप में हुआ था। माण्डूक्योपनिषद् की कारिका में गौडपदाचार्य ने इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। बौद्ध दर्शन-ग्रंथों में 'शून्य' शब्द का व्यवहार बहुत अधिक पाया जाता है। शंकराचार्य जी ने स्थान स्थान पर वेदान्त-दर्शन में बौद्धों के 'शून्यवाद' का खण्डन करके उसे 'क्षणिक और शून्य' कहा है। कुछ विद्वान् बौद्धों के शून्यवाद को परमार्थ सत्ता का ही रूप मानते हैं। इस प्रकार बौद्धों का शून्य विवादास्पद विषय है। नागार्जुन ने इसे मन्-अमन् के बीच द्वैताद्वैत विलक्षण वस्तु माना है। महायानियों ने शून्य को 'परमार्थ सत्ता' के रूप में स्वीकार किया है और उसे 'महासुखवाद' का प्रतीक माना है। मिद्ध लोम बौद्धों की शून्य-भावना से प्रभावित हुए हैं और शून्य का प्रयोग लगभग उन्हीं के समान अर्थों में किया है। ऋष्योष्य प्रदीपिका में 'शून्य' का प्रयोग 'ब्रह्मरथ', 'देशकाल परिच्छिन्न ब्रह्म', 'सुषुम्ना नाडी', 'अनाहत चक्र' आदि के लिए हुआ है। गोरखनाथ जी ने शून्य का प्रयोग द्वैताद्वैत अनिर्वचनीय तत्त्व, ब्रह्मरथ के अतिरिक्त समाधि अवस्था के लिए भी किया है।

गुरु नानक देव के अनुसार 'शून्य' वह शब्द है, जो सब की उत्पत्ति का मूल कारण है। इसी से सब की उत्पत्ति है—

पउणु पाणी सुनै ते साजे ॥२॥१॥

सुनहु ब्रह्मा विमनु महेसु उपाए ॥३॥५॥१७॥१॥

(मारू, सोलहे, महला १)

गुरु नानक देव ने "सिद्ध गोष्ठी" (रामकली) के ५१, ५२ और ५३ में शून्य की महत्वपूर्ण विवेचना की है। मोहन सिंह जी ने अपनी पुस्तक "पंजाबी भाखा विगिआन अते ना० वा० फ०—१०५

गुरमति गिआन" मे उपर्युक्त सिद्ध गोष्ठी के पदों में शून्य की व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की है—

“वह अटल, निश्चल पदवी कैसी है ? उसमें कोई फुरना नहीं फुरती। स्फुरण के कारण ही सारे कथन, भय, वैर तथा द्वैतभाव होते हैं। उस अफुर अवस्था में जिसमें आशा, मनमा, तृष्णा, वैर, मोह आदि नहीं होते, शून्यावस्था कहते हैं। शून्यावस्था तीनों गुणों की प्रवृत्तियों से परे की अवस्था है। इसे चौथी अवस्था भी कहते हैं”

अतः गुरु नानक देव का ‘शून्य’ उपनिषदों का ‘ब्रह्म’, योगियों का ‘परमात्मा’, वेदों के ‘ॐ’ का ही प्रतीक है। उनका शून्य वह शून्य है जो सर्वभूतान्तरात्मा है, घट-घट-व्यापी है, निरकार ज्योति के रूप में सभी के भीतर व्याप्त है। वह निरकार ज्योति, वह शून्य ब्रह्म जड-चेतन सभी में रमा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य की आत्मिक वृत्ति उसका निवास-स्थान है। इसी शून्य का साक्षात्कार करना मनुष्य जीवन की चरम सिद्धि और परम पुरुषार्थ है।

गुरु नानक देव ने इस ‘सुन’ को स्थान स्थान पर ‘सुन समाधि’ भी कहा है। उदाहरणार्थ—

मतिगुरु ते पाए वीचारा। सुन समाधि सचे घर बारा॥१७॥१५॥१७॥

(मारू, मोलहे, महला १)

कही कही इसका प्रयोग ‘असप्रज्ञात समाधि’ के लिए भी किया गया है। जैसे,

सुन समाधि सहज मनु राता।

नजि हउ लोभा एकां जाता॥८॥१३॥

(रामकली, महला १, अमटपदीआ)

सुचञ्जी —गुरु नानक ने आनी वाणी में कुछ ऐसे लक्ष्यार्थ शब्दों के प्रयोग किए हैं, जो जीवात्मा पर पड़ित होते हैं। ‘मुचञ्जी’ भी उन्हीं शब्दों में से एक है। मुचञ्जी का शाब्दिक अर्थ होता है—“सुदूर आचार वाली” अर्थात् वह स्त्री, जिसके आचार सुदूर हों, जिनसे पति प्रसन्न हो। ‘मुचञ्जी’ ‘कुचञ्जी’ का विपरीत शब्द है। ‘मुचञ्जी’ का लक्ष्यार्थ ऐसी जीवात्मा में है, जिनमें अनन्य भाव से अपने को पति-परमात्मा में समर्पित कर दिया हो और अपनी मर्जी को परमात्मा की मर्जी में नियोजित कर दिया हो। (देविअ, रागु सूही, महला १, मुचञ्जी)

सुरति :—‘सुरति’ शब्द ‘स्मृति’ से निकला है। कुछ विद्वान् इसका सबध ‘स्मृत’ से जोड़ते हैं। ‘स्मृत’ को ‘चित्त-प्रवाह’ का द्योतक मानते हैं। किन्तु ‘स्मृत’ के अर्थ में इसका प्रयोग कहीं नहीं मिलता है। “तत्त्व का पुनः पुनः अनुसन्धान ही सुरति है।” ‘स्मृति’ में ज्ञान की प्रधानता परिलक्षित होती है, किन्तु ‘सुरति’ में ‘रति’ अथवा ‘प्रेम’ की भी प्रधानता हो जाती है। सत-साहित्य में सुरति शब्द का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है।

गुरु नानक देव ने ‘सुरति’ शब्द के प्रयोग कई अर्थों में किए हैं। सर्व प्रथम ‘सुरति’ का प्रयोग ‘प्रेमपूर्ण स्मरण’ के रूप में दिया गया है, जैसे

सुरति होवै पति ऊगवै गुर वचनी भउ खाइ॥४॥१०॥

(सिरी रागु, सबद, महला १)

अर्थात्, “जब (साधक) गुरु के वचनों द्वारा (परमात्मा से) भय खाता है, तो उसे ‘प्रेमपूर्ण स्मृति’ (सुरति) प्राप्त होती है (और परमात्मा के यहाँ प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।)” ‘सुरति’ शब्द का प्रयोग गुरु नानक ने ज्ञान अथवा समझ के अर्थ में भी किया है।

उदाहरण,

एका सुरति जेते है जीअ।
सुरति बिहणा कोइ न कीअ॥
जेही सुरति तेहा तिन राहु।
लेखा डको आवहु जाहु॥१॥१०॥
(मिरी रागु, महला १)

अर्थात्, "जितने भी जीव हैं, (सब में) एक ही ज्ञान—समझ है। इस ज्ञान के बिना कोई भी नहीं निमित्त किया गया। जिसकी जैसी समझ होती है, उसका वैसा मार्ग भी होता है।" आदि।

'सुरति' का प्रयोग चितवृत्ति के अर्थ में भी गुरु नानक ने किया है। यथा—

सबदु गुरु सुरति धुनि चेला॥४४॥

(रामकली, मिघ गोसटि, महला १)

'सुरति' का प्रयोग 'श्रुति' के अर्थ में भी व्यवहृत किया गया है। उदाहरणार्थ।

सभि सुरती मिलि मुरति कमाई॥२॥१॥

(रागु आमा, महला १, चउपदे, घर २)

इस प्रकार 'गुरु नानक-वाणी' में 'सुरति' शब्द के प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुए हैं।

सुहागिनी —संस्कृत के 'सौभाग्यवती' से निकला है। सत-साहित्य के कवियों ने इस शब्द का प्रयोग लक्ष्यार्थ में किया है। इसका अर्थ है—"वह 'जीवात्मा रूपी' सुहागिनी, जिसका पति (परमात्मा) जीवित हो"। अर्थात् वह भाग्यशाली साधक जो परमात्मा से अहंनिश संबंध बनाए रहे और उसके चिन्तन में अहंनिश निमग्न रहे।

कबीर ने भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में स्थान स्थान पर किया है। उदाहरण,

एक सुहागनि जगत पिआरी॥१॥

सोहागनि गलि सोहै हार॥२॥४॥७॥

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागु गोंड, वाणी कबीर जीउ की, पृष्ठ ८७१)

बिनु सोहागनि लागै दोखु॥१॥

धनु सोहागनि महा पवीत॥१॥२॥७॥

सोहागनि किरपन की पूती॥२॥

सोहागनि है अति मुदरी॥३॥

सोहागनि भवन त्रै लीआ॥४॥

सोहागनि उरवारि न पारि॥५॥५॥८॥

गुरु नानक जी ने 'सुहागिनी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है—

सोहागणी किआ करमु कमाइआ।

पूरबि लिखिआ फलु पाइआ॥८॥१॥

(सिरी रागु, महला १, घर ३)

सहीआ से सोहागणी जिन सह नालि पिआरु जीउ॥८॥१॥

(सिरी रागु, महला १, घर ३)

अर्थात् वे ही सहेलियाँ सुहागिनी हैं, जिनका प्रियतम के साथ प्यार है। भावार्थ यह कि वे ही जीवात्माएँ सौभाग्यशालिनी हैं, जो पति-परमात्मा के प्रेम में अनुरक्त हैं।

सोइह :—'सोइहम्' का अर्थ है "वही (परब्रह्म) मैं हूँ।" सोइह जीव और ब्रह्म की

अभिन्नता का प्रतिपादक है। इसका प्रयोग वेदों और उपनिषदों में मिलता है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम्मुखम्
यो सावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।। ओ३म् खम्बहम् ।।
(शुक्ल यजुर्वेद ४०।१७)

ईशावास्योपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद् उपनिषद् में सोऽहम् शब्द मिलता है—

‘योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।
(ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र १६)

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।
(बृहदारण्यकोपनिषद् ५—१५—१)

सोऽह की साधना श्वास-प्रश्वाम के आधार पर की जाती है। संत कवियों ने स्थान स्थान पर इसकी साधना की ओर संकेत किया है। कबीर साहब ने स्थान स्थान पर सोऽह-जप का संकेत किया है, जैसे

“लगी मोहगम की डोरि”

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में एक स्थल पर कबीर ने मोऽह के जप का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया है—

सो ब्रह्माडि पिडि मो जानु। मानसरंवारि करि इमनानु ।।
सोहं मो जा कउ है जाप। जा कउ लिपत न होइ पु न अरु पाप ।।

॥६॥१॥१॥

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, भैरव, कबीर जीउ, अमटपदी, घर २, पृष्ठ ११६२)
संत कवि भीखा ने सोऽह की अनुभूति को योग-युक्ति के अभ्यास का वास्तविक फल माना है—

जोग जुक्ति अभ्यास करि सोह सबद समाय ।।

(संत वानी-संग्रह, भाग १, पृष्ठ २१०)

दयाबाई ने सोऽह को अजपा जाप माना है। यह परम गम्य और आत्म-अनुभव का सार है—

अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार ।

(संत वानी संग्रह, भाग १, पृष्ठ १६९)

संत बुल्ला साहब ने सोऽह के सबध में अपनी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त की है—

सोह हसा लागलि डोर ।

सुरति निरति चढु मनवां मोर ।।१॥

(संत वानी-संग्रह, भाग २, पृष्ठ १७१)

संत गरीबदासजी ने सोऽह को ब्रह्म माना है—

तुमही सोह मुरत हौ तुमही मन अरु पौन ।

इसमें दूसर कौन है, आवै जाप सो कौन ।।

(संतवानी-संग्रह, भाग १, पृष्ठ १९२)

सुन्दरदास जी ने सोऽह जप की महत्ता उदात्त वाणी में अभिव्यक्त की है—

सोह सोहं सोह हसं। सोहं सोह सोहं अंसो ।

स्वासो स्वासं सोह जापं। सोहं सोहं आपै आपं ।।

(सुन्दर ग्रंथावली, भाग १, पृष्ठ ४७)

सुन्दरदास जी ने अपने स्फुट काव्य में सोऽह से बह कर कोई भी जप नहीं माना है—

मन सी न माला कोऊ सोह सो न जाप और,
आतम सो देव नाहि देह सो न देहरा ॥

(सतवानी-संग्रह, भाग २, पृष्ठ १२५)

गुरु नानक देव ने सोऽह जप के सबध में अधिक तो नहीं कहा है। किन्तु एकाध स्थल पर उसके प्रति अपने जो विचार व्यक्त किए हैं, वे वेदान्ती दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल हैं। कुछ सिक्ख विद्वान् इस बात में सहमत नहीं हैं कि गुरु नानक देव की सोऽह के प्रति आस्था थी। पर उनकी वाणी में सोऽह सबधी जो बातें मिलती हैं, उनसे उसके प्रति अशर निष्ठा परिलक्षित होती है—

सोह आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ ॥९॥११॥

(मिरी राग, महला १, घर १, असटपदीआ)

ततु निरजन जोनि सवाई सोह भेदु न कोई जीउ ॥५॥११॥

(‘सोरठि, महला १)

एक स्थल पर गुरु नानक देव ने सोऽह-जप का स्पष्ट निर्देश भी किया है—

नानक सोह हसा जपु जापहु त्रिभवण तिसै समाहि ॥

(मारू की वार, महला १)

उपर्युक्त पंक्ति का भाव यह है, “नानक कहता है कि हे हसा (जीवात्मा) सोऽह का जप करो। उसी (जप) में त्रिभुवन समाए है।”

हउमै —‘हउमै’ की उत्पत्ति ‘अहमति’ से मानी जाती है। किन्तु इसका व्यापक अर्थ ‘अहंकार’ होता है। ‘अफुर’ ब्रह्म है में परमात्मा के ‘हुकम’ से क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। यही क्रियाशीलता सगुण ब्रह्म बन जाती है। ‘हुकम’ की उत्पत्ति के साथ ही साथ ‘हउमै’ (अहंकार) की उत्पत्ति होती है। यही ‘हउमै’ जगत् की उत्पत्ति का मुख्य कारण है—

हउमै बिचि जगु उपज पुरखा नामि बिसरिऐ दुखु पाई ॥

(रामकली, महला १, सिध गोसटि)

‘हउमै’ के कारण सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी सृष्टि-परम्परा निरन्तर चलती रहती है। इन्हीं त्रिगुणों के सम्मिश्रण से नाना रूपात्मक सृष्टि का निर्माण होता है और उत्पत्ति, स्थिति, लय की परम्परा चलती रहती है।

योगवासिष्ठ में भी अहंकार को ही सृष्टि-क्रम का मूल कारण माना है (द योगवासिष्ठ . बी० एल० आश्रय, पृष्ठ १८८)। इस प्रकार योगवासिष्ठ और गुरु नानक ने अहंकार को ही सृष्टि का मूल कारण माना है।

गुरु नानक ने अहंकार को सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण तो माना है। पर इसका प्रयोग सामान्य अहंकार के रूप में भी किया गया है, यथा—

१. धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार,

२. विद्यागत अहंकार,

३. कर्मकाण्ड और वेश-संबंधी अहंकार,

४. जाति संबंधी अहंकार,

५. धन-संपत्ति सम्बन्धी अहकार,

६. परिवार सम्बन्धी अहकार,

७. रूप-यौवन सम्बन्धी अहकार।

हुकम —‘हुकम’ अरबी का शब्द है। जिसका अर्थ ‘आज्ञा’ होता है। गुरु नानक की बाणी में इस शब्द का बहुत बड़ा महत्त्व है। ‘हुकम’ का अर्थ डॉ० शेर्गिह ने ईश्वरीय इच्छा (Divine Will) माना है (फिलासफी आफ मिक्लिज्म, शेर्गिसह, पृष्ठ १८२); किन्तु डॉ० मोहर्तासह ‘हुकम’ का अर्थ सृष्टि-विधान (Universal Order) मानते हैं (पंजाबी भाषा विगिआन अते गुरमति गिआन, मोहर्तासह, पृष्ठ २९)। गुरु नानक देव जी ने जपु जी में ‘हुकम’ को सृष्टि का मूल कारण माना है (देखिए जपु जी, २ री पउडी)।

गुरु नानक देव ने मारू राग के मोंलहवे, सोलहे में ‘हुकम’ की विषय व्याख्या की है। उन्होंने ‘हुकम’ से जीवों की उत्पत्ति मानी है और ‘हुकम’ से ही वे फिर उसी में लीन हो जाते हैं।”

कई स्थलों पर ‘हुकम’ का प्रयोग ‘मनुष्य की आज्ञा’ के लिए भी किया गया है, यथा—

हुकमु करहि मूरख यावार ॥४॥३॥

(रागु वसंतु, सबद, महला १)

हुकम-रजाई गुरु नानक देव जी ने अपनी बाणी में ‘हुकम-रजाई’ कर्मों की चर्चा की है। ‘हुकम-रजाई’ कर्म वे हैं, जो परमात्मा की प्रेरणा आज्ञा, मर्जी अथवा इच्छा से होते हैं। मेरी ऐसी धारणा है कि यह कर्म मिट्ठावस्था का कर्म है। विद्युत् अन्तःकरण में ही परमात्मा की अन्तर्बेनि सुनाई पड़ती है। आध्यात्मिक कर्मों के सम्पादन में, जिसका अन्तःकरण नितान्त पवित्र हो गया है, वही परमात्मा की प्रेरणा के वास्तविक रहस्य को समझ सकता है। ‘हुकम रजाई’ कर्म अपने से नहीं होते, बल्कि गुरु की महान् कृपा और परमात्मा की अनुकम्पा से होते हैं।

प्रभु की ‘रजा’ में अपनी ‘इच्छा शक्ति’ और ‘क्रियाशक्ति’ को मिला देना ‘हुकम रजाई’ कर्म का वास्तविक रहस्य है। भुना हुआ बीज जैसे उग नहीं सकता, वैसे ही ‘हुकम रजाई’ कर्म बन्धनों में बाँध नहीं सकते। ऐसे कर्मों के हाथ में मुक्ति की कुंजी है। गुरु नानक जी ने अपनी बाणी में इसकी ओर संकेत किया है—

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।

(जपु जी, पउडी १)

ता कउ बिधनु न लागई चालै हुकमि रजाई ॥३॥२०॥

(रागु आसा, महला १, असटपदीआ, घर ३)

हुकमि रजाई जो चलै सो पवै खजानै ॥४॥२०॥

(रागु आसा, महला १ असटपदीआ, घर ३)

हुकमि रजाई साखती दरगह सबु कबूल ॥

(मारू की वार, महला १)

परिशिष्ट (ग)

गुरु नानक-वाणी में प्रयुक्त राग

संगीत-विद्या में रागों का बहुत बड़ा महत्व है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अन्त में रागमाला की सूची दी गई है, जिसमें इस बात का संकेत मिलता है कि पदों के गायन में रागों की बड़ी महत्ता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में प्रयुक्त रागों के संबंध में, सचखंड-वासी (स्वर्गीय) डॉक्टर चरन सिंह ने बड़ी खोज की थी। किन्तु उन्हें पुस्तकालय रूप देने के पूर्व उनका देहान्त हो गया। खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित, 'श्री गुरु ग्रंथ कोश' के अन्तिम—तीसरे भाग में उनकी खोज का मार दिया गया है।^१ डॉक्टर साहब का मत है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब की रागमाला अन्य संगीत-मतां से भिन्न है। यह 'गुरुमत संगीत' का मौलिक प्रयास है। अतएव 'गुरु ग्रंथ साहिब' के रागों को किसी अन्य संगीत मत का अनुयायी नहीं समझना चाहिए। डॉ० साहब ने अपने शोध में ११ विभिन्न रागमालाओं के मानचित्र दिए हैं और अन्त में सभी के तुलनात्मक अध्ययन से प्रवे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'गुरुमत' का संगीत सभी से पृथक् एवं मौलिक है। 'गुरुमत संगीत' के आदि प्रतिष्ठाता गुरु नानक देव हैं। उन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब के ३१ रागों में से १९ रागों का पहले ही प्रयोग किया था। गुरु नानक की वाणी में निम्नलिखित १९ राग प्रयुक्त हैं—रागु सिरि, माझ, गडडी, आमा, गुजरी, वडहसु, मोरठि, धनासिरी, तिलग, सूही, बिलावल, रामकली, मारु, तुखारी, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार तथा प्रभाती। 'बिहागडा राग' में केवल वार मात्र है। अतः इसकी गणना रागों के साथ नहीं की जाती। गुरु नानक के सभी राग शिव, कालीनाथ, भरत, हनुमान, सिद्ध मारस्वत, रागार्णव, मुनि सोमनाथ, मतंग मुनि, सारंग देव, कश्यप मुनि, भावभट्ट, तथा संगीत-रत्नाकर के मतों से भिन्न हैं।

१ **सिरि रागु**—यह राग गुरुमत-संगीत के अनुसार शुद्ध राग माना गया है। यद्यपि 'गुरु ग्रंथ साहिब' के 'रागमाला'-क्रम में इसे पाँचवाँ राग माना गया है। कहते हैं कि 'वेई' नदी तट पर एक उद्यान में बैठकर, स० १५६० विक्रमीय में इसी राग में "मोती त मंदर उसरहि रत्नी त होउ जडाउ।" का उच्चारण किया। गुरु नानक देव का परम प्रिय शिष्य 'मरदाना' ने रवाब बजा कर इसे संगीतात्मक रूप प्रदान करने में योग दिया। इसीलिए सिक्खों के पाँचवे गुरु, अर्जुन देव ने इस जेठा राग मान कर 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में इसे सर्व प्रथम स्थान दिया।

'नानक-प्रकाश' साखी के अनुसार, उपर्युक्त घटना के भी पूर्व गुरु नानक देव ने अपने पुरोहित को इसी राग में उपदेश दिया था—'जालि मोहु घसि मसु करि, मति कागदु करि

१. श्री गुरु ग्रंथ कोश खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर, भाग ३, पृष्ठ ११६८—

सार।^१ भाई मनीसिंह की साखी में लिखा है कि यह शब्द पंडित ब्रजनाथ के प्रति सर्व प्रथम कहा गया था। शिव और कालीनाथ के मतानुसार सिरि राग पहला है, किन्तु भरत और हनुमान के मतानुसार 'भैरव' राग पहला है।

२ **माफ** —गुरुमत संगीत के अनुसार यह पृथक् रागिनी है। इसका प्रयोग 'माझे'—देम में होता था। सिरि राग, 'मध-माधवी' मलार के संयोग में यह रागिनी बनी है। यह अन्य किसी मत के परिवार में प्रयुक्त नहीं है।

३ **गउडी** —गुरुमत संगीत के अनुसार यह 'सिरी' राग की रागिनी है। रागार्णव मत के अनुसार 'गोड' मालव की रागिनी है। सिद्ध-सारस्वत के अनुसार यह दीपक राग की रागिनी है। हनुमान और भरत के मतानुसार यह 'मालकोश' राग की रागिनी मानी जाती है, जैजावती, आसावरी तथा शुद्ध मोरठ के मेल में 'गौरी' होती है।

परंतु गुरुमत में 'गउडी' के मेल, गउडी-पूरबी, गउडी-माला, गउडी-मालवा, गउडी-बैरागणि, गउडी-मुआरेरी, गउडी-पूरबी गउडी-दीपकी, गउडी-माझ, गउडी-चेनी आदि में विद्यमान है। यह बात अन्य मतों में नहीं है।

४ **आसा** —यह रागिनी गुरुमत-संगीत के अनुसार मेघ-राग की रागिनी है, उदाहरणार्थ —“पुन गावहि आसा गुन गुनी।”^२ सिरि राग और मारू के सम्मिश्रण और मेघ की छाया में आसा रागिनी बनती है। गुरुमत में आसा और आमावरी इकट्ठी लिखी गई है। यह आमावरी 'मेघ' के स्पर्श में आसा के साथ मिलती है। सिरि राग की रागिनी आमावरी उस स्थान पर है, जहाँ केवल आमावरी अथवा 'मुधग', वा 'मुध' की सूचना है, जिसमें यह बात प्रमाणित होती है कि 'मुध' और 'आमावरी' मिली हुई हैं। कालीनाथ मत के अनुसार 'आसावरी', 'पचम' की रागिनी है और 'रागार्णव' के अनुसार 'मलार' की रागिनी मानी जाती है। 'आमा' और 'आमावरी' का मेल केवल गुरुमत संगीत में प्राप्त होता है।

५ **गूजरी** —गुरुमत के संगीत के अनुसार यह दीपक की रागिनी है—‘कामोदी अउ गूजरी सग दीपक के थापि।’^३ 'भैरव' और 'रामकली' के सम्मिश्रण में 'गूजरी' बनती है। परन्तु शिवमत और कालीनाथ मतों के अनुसार यह भैरव की रागिनी मानी जाती है। सिद्ध-सारस्वत मत में इसे 'मालकोश' के अन्तर्गत माना गया है। रागार्णव के अनुसार यह पचम की रागिनी है।

६ **विहागड़ा** —विहागड़ा राग में गुरु नानक देव का न कोई सबद है, न अष्टपदी और न छत ही। इस राग में केवल 'वार' मात्र है। अतः कुछ सिक्ख विद्वानों ने इस राग को नानक के पदों के लिए महाना नहीं दी है। किन्तु 'वार' तो है ही। अतएव इसकी भी गणना करना कुछ अमंगत नहीं है।

गुरुमत संगीत के अनुसार यह भिन्न राग है। केदाग और गीडी के सम्मिश्रण में विहागड़ा बनता है। कालीनाथ मत के अनुसार यह भैरव की रागिनी है। भरत मत के अनुसार विहागड़ा दीपक का पुत्र है।

७. **वडहंसु** —गुरुमत के संगीत के अनुसार यह भी भिन्न राग है। मारू, गौरानी,

१ गुरु नानक-बाणी, सिरि राग, सबद ६

२ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

३ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ १४३०

दुर्गा, धनासरी और जैती के सम्मिश्रण से 'वडहस' बनता है। प्राणियों के देहान्तोपरान्त 'वडहस' और 'मारु' राग ही गाये जाते हैं। परन्तु अन्य मतों में इस प्रकार की कोई बात नहीं है। भरत मत में 'वडहसु' मिरी राग का पुत्र है; शिव मतानुसार यह पचम की रागिनी है। 'रागार्णव' ने मेघ की रागिनी माना है। 'सुर-ताल-समूह' में इसे मालकोश का पुत्र माना गया है।

८ **सोरठि** —यह रागिनी गुरुमत के संगीत में 'मेघ' राग की रागिनी मानी जाती है। —'सोरठि गोड मलारी धुनी।' ^१ सिधवी, कानडा, काफी, मलार के सम्मिश्रण से सोरठि रागिनी बनती है। परन्तु अन्य मतों में सोरठि रागिनी 'नट-नारायण' की रागिनी मानी गई है। 'मान कतूहल' में बगला, गूजर, पचम, गंधार, भैरवी के सम्मिश्रण से सोरठि रागिनी बनती है। हनुमान मत के अनुसार सोरठि 'मेघ' की रागिनी है।

९ **धनासरी** —यह रागिनी गुरुमत संगीत में मालकोश की रागिनी है, उदाहरणार्थ —"धनासरी ग पाचउ नाई।" ^२ आसावरी और मारवा का सम्मिश्रण भी इस रागिनी में रहता है। किन्तु कालीदास मत में यह मेघ की रागिनी मानी गई है। 'सुरताल-समूह' में इसे मालकोश की 'बह' बनाया गया है। 'नाद-विनोद' में इसे दीपक की रागिनी माना गया है।

१० **तिलंग** —गुरुमत मर्गत-शास्त्र के अनुसार इसे 'हिडोल' की रागिनी माना गया है—"तेलगी देवकरी आई।" ^३ तिलग रागिनी, 'श्याम', 'गौरी' एवं पूरबी के सम्मिश्रण से बनती है। हिडोल की छाया तो रहती है। किन्तु "सुरताल-समूह" में यह मेघ की रागिनी लिखी गई है। कालीदास मत में इसे 'नट-नारायण' की रागिनी माना गया है।

११. **सूही** —गुरुमत संगीत में यह 'मेघ' राग की रागिनी है,—“ऊचे सुरि मूहउ पुनि कीली।” ^४ भैरव, मिरी राग, कानडा, सारंग के सम्मिश्रण से 'सूही' अथवा 'सूहवी' बनती है और 'मेघ' की छाया तो रहती है। 'सुरताल-समूह' में इसे 'भैरव' की बहू माना गया है।

१२ **बिलावल** —बिलावल का गुरुमत-संगीत में 'भैरव' राग का पुत्र माना गया है—“ललत बिलावल गावहीं अपुनी अपुनी भाति। असट पुत्र भैरव के गावहि गाइन पात्र।” ^५ 'देवगिरी' और 'मुघरई' के मयोंग से बिलावल होता है। भरत मतानुसार बिलावल को पुत्र ही माना गया है। परन्तु अन्य मतों में 'बिलावली' रागिनी को 'बिलावल' मानते हैं। यह भ्रामक है। भरत मत के अनुसार 'बिलावली' भैरव की 'बधू' है। इन्द्रहनुमान मत में इसे 'हिडोल' की रागिनी माना गया है।

१३ **रामकली** —गुरुमत के संगीत के अनुसार यह भिन्न रागिनी है। 'सकराभरण', 'जडाना' और 'सोरठि' के सम्मिश्रण से यह बनती है। किन्तु भरत-मत के अनुसार यह

१. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

२. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

३. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

४. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

५. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

यह 'हिडोल' की रागिनी है। हनुमान मत में यह 'सिरी राग' की रागिनी मानी जाती है और इसमें 'भैरव', 'विभास' और 'हिडोल' का सम्मिश्रण तथा 'सिरी राग' की छाया है। 'रागाणव' के मतानुसार 'रामकली' 'पंचम' की रागिनी है और इसमें 'ललित', 'रेवा' तथा 'भीमपलासी' का मेल है।

नोट .- रामकरी और रामकली ताँ एक ही है। किन्तु 'रामगिरी' एक पृथक् रागिनी है। दक्षिणी रामकली केवल गुरुमत संगीत में ही है। अन्य मतों में नहीं।

१४ **मारू** —गुरुमत संगीत में 'मारू राग' 'मालकोश' का पुत्र माना गया है—“मारू ममत अग मेवारा।”^१ 'टक', 'इराक', 'भैरवी', 'आसा' के सम्मिश्रण से यह बनता है। अन्य मतों में यह 'सिरी राग' का पुत्र माना गया है।

१५ **तुलारी** —इस रागिनी का गुरुमत-संगीत की ओर से ही प्रचार हुआ है। भैरव, रामकली और टोडी के संयोग से यह बनी है। अन्य मतों में 'मुलारी', 'कुमारी', 'धुलार' और 'कुमारी' आदि तो हैं, किन्तु 'तुलारी' उनसे सर्वथा भिन्न है।

१६ **भैरउ** —गुरुमत-संगीत में यह गिनती के लिए पहला राग है—“प्रथम राग भैरउ वै करही।” इस प्रकार द्वितीय राग 'मालकोशक' है—“दुतीआ मालकोशक आलापहि।”^३ तीसरा 'हिडोल', चौथा 'दीपक', पाँचवाँ 'सिरी राग' और छठा 'मेघराग' है—“ससटम मेघ राग वै गावहि।”^४ उपर्युक्त छ रागों में से 'सिरी राग' और 'भैरउ' ही श्री गुरु ग्रंथ साहिब में प्रयुक्त हुए हैं। शेष चार रागों के परिवार तो बरते गए हैं, पर वे स्वयं नहीं। शुद्ध रूप में 'सिरी राग' और 'भैरउ' के ही प्रयोग हुए हैं।

'समेसर' और 'कालीनाथ' के मतानुसार 'भैरउ' तीसरा राग माना गया है। परन्तु 'रागाणव', 'सिद्ध-सारस्वत', 'भर्त' तथा 'हनुमान' मत के अनुसार यह पहला राग है।

१७ **बसंत** —गुरुमत संगीत के अनुसार 'वसंत' राग 'हिडोल' राग का पुत्र है—“गावहि सरस बसंत कपोदा।”^५ यह राग “हिडोल” और 'मालकोश' के सम्मिश्रण से बनता है किन्तु 'समेसर', 'कालीनाथ', 'सिद्ध-सारस्वत' मतों में इसे शुद्ध राग माना गया है। 'संगीत-विनोद' और 'बुद्ध प्रकाश दर्पण' इसे 'हिडोल' की रागिनी मानते हैं, जिसमें 'दरबारी' 'कानडा' 'विभास' और 'भैरउ' का मेल है। गुरुमत-संगीत में 'बसती' नामक पृथक् रागिनी 'हिडोल' की ही मानी गई है—“बसती सधूर मुहाई”^६ बसती रागिनी में 'सारंग', 'नर', तथा 'बिलावल' का सम्मिश्रण तथा 'हिडोल' की छाया है। इसे कुछ लोग 'बहार' कहते हैं। पर यह कहना गलत है, क्योंकि 'बसती', 'अडाना', और 'सोहनी' के सम्मिश्रण से 'बहार' रागिनी बनती है। गुरुमत संगीत में 'वसंत-हिडोल' माना गया है, किन्तु अन्य मतों में नहीं।

१. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

२. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४२९

३. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

४. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

५. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

६. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

१८ **सारंग अथवा सारग** —गुरुमत-संगीत में यह राग 'मिरी' राग का पुत्र है—“सालू सारग सागरा अउर गोड गभीर।” ‘दरबारी’, ‘कानडा’, ‘मध-माधवी’, ‘देवगिरी’, ‘मलार’ तथा ‘नट’ के मेल से ‘सारग’ बनता है। पर अन्य मतों में यह बात नहीं है। ‘शिव मत’ में यह ‘नट-नागायण’ की रागिनी मानी गई है। और ‘भरत मत’ इसे ‘मेघ’ की रागिनी मानता है।

१९ **मलार** —गुरुमत संगीत में यह ‘मेघ’ की रागिनी मानी गई है—“मोरठि गोड मलारी धुनी।” यह रागिनी ‘मोरठि’, ‘मध-माधवी’, तथा ‘कानडा’—इन तीनों के मेल से बनती है। किन्तु ‘हनुवत’ आदि मतों में ‘मलार’ राग का पुत्र माना गया है। मेघ, गोड, और सारग के मेल से यह रागिनी बनती है।

२० **प्रभाती** गुरुमत संगीत के अनुसार यह भिन्न रागिनी है। यह ‘आसा’ और ‘भैरो’ के मेल से बनी है। इसका मेल विभ्राम के साथ माना गया है। यह बात अन्य मतों में नहीं पाई जाती। गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रभाती और विभास दोनों रागिनियाँ मिलाकर लिखी गई हैं।

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

२. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, रागमाला, पृष्ठ १४३०

परिशिष्ट (घ)

सहायक ग्रन्थों की सूची

ENGLISH

1. Adi Granth. Earnest Trumpp : Wm H. Allen & Co; London. 1877.
2. A History of the Punjabi Literature. Mohan Singh; University of Punjab, Lahore, 1st, Edition, 1932.
3. A Short History of the Sikhs. Teja Singh & Gan a Singh, Orient Longmans Ltd, Bombay, Calcutta and Madras, 1st Ed, 1930.
4. Encyclopaedia of Religion Edited by J. mes Hastings (Vol. VI) T. and Clark, Edinburg, 1913.
5. Essays in Sikhism Teja Singh, Sikh University Press, Lahore, 1944.
6. Evolution of the Khalsa Vol. I. Indu Bhushan Banerjee, University of Calcutta, 1936
7. Gorakh Nath & Medieval Hindu Mysticism. Mohan Singh : Oriental College, Lahore, 1936.
8. History of the Sikhs Cunningham, J. D., Oxford University Press 1918 Revised & New Edition.
9. J. R. A. S. Part XVIII Calcutta (Fredrick Pincott)
10. Life of Guru Nank Deva. Kartar Singh, Sikh Publishing House. Amritsar, 1. Ed, 1937.
11. Philosophy of Sikhism Sher Singh . Sikh University Press Lahore, 1 Ed, 1944.
12. The Guru Granth Sahib (English Trans, 1st 2 Vols) Gopal Singh : Availabl ewith, Missionary Quarterly, Agfa Bldg, F. iz Bazar, Delhi—6.
13. The Hindu View of Life. S. Radhakrishnan : George Allen & Unwin, London, 1937.
14. The Phislosophy of Yogavashista. B. L. Atreya . Theosophical Publishing House. Madras, 1937.
15. The Sacred Writings o' the Sikhs Written under the direction of S. Radhakrishnan; George Allen & Unwin, London.
16. The Sikh Religion (In 6 Vols) M. A. Macauliffe : Clarendon Press, Oxford, 1909.
17. Transformation of Sikhism Gokal Chand Narang : New Book Society, Lahore. III, Ed. 1946.

पंजाबी

- कुल हौर धारमिक लेख : साहिब सिंह . लाहौर बुक शाप, , प्रथम, सस्करण, १९४६ ई०
- गुरमति अधिआतम करम फिलासफी : रणधीर सिंह : प्रकाशक, ज्ञानी नाहर सिंह,
गुजरावाला, अमृतसर, प्रथम संस्करण, १९५१ ई०
- गुरमति दरशन शेरसिंह शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर,
प्रथम संस्करण, १९५१ ई०
- गुरमति निरणय जोधसिंह मेसर्स अतरचंद कपूर एण्ड सन्स, अनारकली,
लाहौर छठा संस्करण, १९४५ ई०
- गुरमति प्रकाश . साहिब सिंह . लाहौर बुक शाप, प्रथम संस्करण, १९४७ ई०
- गुरमति प्रभाकर : कान्ह सिंह श्री गुरमत प्रेस, अमृतसर, तीसरा संस्करण
१९२२ ई०
- गुर वाणी विआकरण साहिब सिंह प्रकाशक प्रोफेसर साहिब सिंह, खालसा
कालेज, अमृतसर, प्रथमसंस्करण, १९३९ ई०
- गुरु ग्रंथ साहिब की साहित्यिक विशेषता—गोपाल सिंह . पंजाबी एकेडमी दिल्ली,
प्रथम संस्करण, १९५८ ई०
- दस बाग मटीक : साहिब सिंह लाहौर बुक शाप, प्रथम संस्करण, १९४६ ई०
- पंजाबी भाषा विगिआन अते गुरमति मोहन सिंह : कस्तूरीलाल एण्ड सन्स, बाजार
गिआन माई मेवा, अमृतसर, प्रथम संस्करण, १९५२ ई०
- वारा भाई गुरदास जी शिरोमणि गुरु द्वारा प्रबन्धक कमेटी,
अमृतसर, प्रथम संस्करण, १९५२ ई०
- शब्द दारथ श्री गुरुग्रंथ साहिब जी (चार भाग) . शिरोमणि
गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, तीसरा संस्करण,
१९५९ ई०
- श्री गुरु ग्रंथ कोश : खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर, १९५० ई०

संस्कृत

- उपनिषद् : ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस, बंबई, तृतीय
संस्करण १९२५ ई०
- पातंजल योग दर्शनम् : पतंजलि : लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
- श्रीमद्भगवद्गीता : शाकम्भाष्य गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९८ वि०

हिन्दी

- उत्तरी भारत की सन्त परम्परा . परशुराम चतुर्वेदी : भारती भण्डार, लीडर प्रेस,
इलाहाबाद
- कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथम संस्करण १९४२ ई०

बोर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० २४ मित्र

लेखक भिन्न जयशम

शीर्षक ज्ञानमय बानी ४६६१

